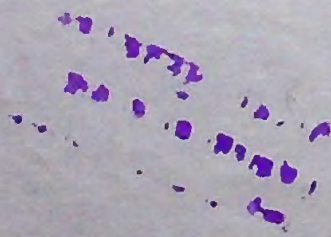


The background of the book cover is a colorful illustration. On the left, a woman with dark hair, wearing a white sari and a bindi, is seated and holding a book. She is surrounded by lush green foliage and flowers. To her right, a large tree with yellow flowers stands against a blue sky. In the background, a body of water is visible, with a small boat and a temple structure on the right. The title is written in large, stylized red Hindi characters with white outlines. A faint circular stamp with the number '2766' is visible in the upper right corner.

हिन्दी साहित्य का इतिहास

डा. रामप्रसाद मिश्र



श्री (रा) पुष्पकालिका
(१०००, १, १, १००)
२२६६

हिन्दी साहित्य का इतिहास

(खण्ड-1)

हिन्दी साहित्य का इतिहास

(खण्ड-1)

डॉ. रामप्रसाद मिश्र

नमन प्रकाशन

नई दिल्ली -110002

© लेखक
पहला संस्करण : 2008
ISBN: 81-8129-151-4

नमन प्रकाशन

4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन : 23247003, 23254306

भूमिका

अमर 'मिश्रबन्धु' के अमर 'विनोद' एवं महान् आ. रामचन्द्र शुक्ल के महान् 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के अतिरिक्त शताधिक ग्रन्थों के होते हुए, मैंने 'हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास' क्यों लिखा? स्वयं आ. शुक्ल ने अपने इतिहास की पाठ्यक्रममूलक त्वरा का उल्लेख किया है, डॉ. नगेन्द्र ने स्वसम्पादित इतिहास में हिन्दी-साहित्य के किसी व्यवस्थित इतिहास के अभाव का सत्य स्वीकार किया है। हिन्दी प्रायः समग्र भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, टोबैगो, गुयाना प्रभृति तक किसी न किसी रूप में बोली या समझी जानेवाली विश्वभाषा है, जिसका प्राध्यापन विश्व के अन्यत्र स्थित शताधिक विश्वविद्यालयों में भी होता है। हिन्दी अपने निज रूप में भी अनेक विभाषाओं का समाहार है। अंगों के बिना अंगी कैसा? हिन्दी राष्ट्रभाषा भी है, राजभाषा भी, जनभाषा भी। क्या कोई ऐसा इतिहास उपलब्ध है जिसमें इन विन्दुओं का ध्यान रखा गया हो? यह ग्रन्थ 1960 ई. से पठित, चिन्तित, परिवर्तित, शत-प्रतिशत मौलिक अनेकानेक स्थापनाओं के समावेश एवं सुनियोजित परिश्रम का परिणाम है, जिस पर भारी व्यय भी किया, जिस पर स्वास्थ्य भी वार दिया। 1960-1963 ई. में चिन्तित-रचित 'हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास' 1967 ई. में प्रकाशित हुआ जिसके संक्रान्तिकाल, पुनरुत्थानकाल, शास्त्रीयकाल नामकरणों ने अनेक परवर्ती साहित्येतिहासकारों को प्रभावित किया (प्रायः यही 1985 ई. में संशोधित 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' के रूप में प्रकाशित हुआ)। अनेक शीर्षस्थ विद्वानों ने इस ग्रन्थ की भारी प्रशंसा की तथा विशाल साहित्येतिहास लिखने को प्रेरित भी किया। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी सब का परिणाम है। इसका पूर्व प्रकाशित दोनों इतिहासों से कोई सम्बन्ध नहीं। अब इस संस्करण में वस्तुतः चतुर्थ-अवतार प्रस्तुत है। प्रायः 200 नए साहित्यकार थे; जिनमें प्रतिष्ठापन-सामर्थ्य विद्यमान था, उनका विवेचन पर्याप्त विस्तार से किए बिना कर्तव्यपूर्ति सम्भव न थी। आरम्भिक प्रयासों में अनेक परिवर्तन भी किए थे जो इस रूपरेखा से स्पष्ट हो जाएंगे—

संक्रान्तिकाल (800-1300 ई.),
पुनरुत्थानकाल (1300-1600 ई.),
शास्त्रीयकाल (1600-1800 ई.),
बौद्धिककाल (1800 ई. से) :

सन्धियुग (1800-1850 ई.),
सुधारवादी युग (1850-1900 ई.),
आदर्शवादी युग (1900-1920 ई.),
स्वच्छन्दतावादी युग (1920-1940 ई.),
यथार्थवादी युग (1940 ई. से)।

हर्ष है कि अब यह 2008 में संशोधित एवं प्रवर्द्धित ग्रन्थ दो जिल्द में प्रकाशित हो रहा है। उद्धरण कम किए हैं तथा उन्हें यथा आकार कसकर छापा गया है। कुछ अनावश्यक से नाम भी कम किए हैं। अन्य अनुक्रमणिकाएँ हटा दी हैं। पर्याप्त नूतन का समावेश किया है। प्रथम प्रकाशन में व्यवस्था की हत्या की गई थी, कुछ त्रुटियाँ भी रह ही जाती हैं, मूल्य बहुत था। अतः यह ग्रन्थ-रूप सर्वथा उपयोगी सिद्ध होगा।

हिन्दी में भारत की आत्मा सुरक्षित है। उसके साहित्य का आरम्भ सरहपा जैसे बौद्धों और स्वयंभू जैसे जैनों ने लगभग एक साथ किया, उसके पुनरुत्थानकाल के वाहक अमीर खुसरो थे और नायक कबीर, उसके शास्त्रीयकाल के पुरोधा महाकवि केशवदास थे। जिन्होंने 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' भी लिखी तथा इस काल में उत्तर से दक्षिण तक सारे देश में सहस्राधिक मुस्लिम बन्धुओं ने इसे सँवारा, उसके बौद्धिककाल में शत-शत ईसाई-सिख-पारसी प्रभृति बन्धु भी आ जुड़े। कोई प्रमुख राज्य नहीं जहाँ के लोगों ने हिन्दी को दुलार न दिया हो। हिन्दी भारतीय सहिष्णुता एवं धर्मनिरपेक्षता की प्रतीक है। इस सत्य को राजनीति-अन्ध एवं साम्प्रदायिकता-ग्रस्त व्यक्ति ही नकारेंगे। वैचारिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य के आयाम अतुलनीय रूप से विराट् हैं। बौद्ध, जैन, सूफी, वेदान्त (अद्वैत),

विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, यत्र-तत्र द्वैत, कहीं-कहीं त्रैत प्रभृति प्रायः समग्र भारतीय दर्शन तो इसमें विद्यमान हैं ही, आधुनातन पाश्चात्य दर्शनों (व्यक्तिवाद, समाजवाद, मनोविश्लेषणवाद, परामनोविज्ञान, अस्तित्ववाद, मानवतावाद, एकविश्ववाद इत्यादि) का भी प्रभावी समावेश प्राप्त होता है।

मेरा यत्न रहा है कि मैं हिन्दी के विश्वभाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं जनभाषा रूपों के अनुरूप उसके विराट् साहित्य (इतिहास, धर्म, दर्शन, राजनीति प्रभृति से स्वभावतः सम्पृक्त क्योंकि साहित्य समग्र जीवन का ललित उद्गार है) का व्यवस्थित एवं एकतान तथा परंपरा-प्रगति के सहज-अद्वय से निष्पन्न मौलिक इतिहास लिखूँ। किन्तु सफल हूँ? निर्णय सुधीजन करें! कृपया यह ध्यान रखें कि इसमें मैंने सारा जीवन झोंक दिया, 1960 ई. तक का अध्ययन + परवर्ती अध्ययन + तब से अनेक रूप लेखन-प्रकाशन। अपार व्यय, राज्यक्षमा, मधुमेह (डाइलिसिस समेत) इत्यादि उपहार स्वीकार! साहित्य मेरा स्वास है। मैं किसी दल, वाद, राज्य का बन्दी नहीं रहा और जो सत्य लगा उसे बलपूर्वक कहा (चतुर न था) किन्तु केवल इसीलिए अनादर एवं उपेक्षा का पात्र नहीं हूँ। 'अन्ततोगत्वा' 1998 ई. के बाद रचा गया है। रुग्णकाल से भी जुड़ा। अतः समय अथवा क्रम नहीं है। किन्तु यथास्थान तिथियाँ दी हैं। यह नवीनता तथा अद्यतता लाभकर सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास है।

—रामप्रसाद मिश्र

6/12/2005

एच-41, विकासपुरी
नई दिल्ली-110018

विषय-सूची

प्रवेश
साहित्येतिहास और आलोचना

1. संक्रान्तिकाल (800-1300 ई.)

प्रस्तावना 23, सिद्ध-काव्य बौद्धधर्म और सहजयान-वज्रयान 24, बौद्धधर्म के चार आर्यसत्य 25, सिद्धयोग 26, पंचमकार 26, अन्तस्साधनावाद और समतावाद 27, प्रतीकवाद और सन्ध्याभाषा 28, संख्या तथा तदनन्तर्गत कवि 29, प्रभाव के कारण 29, पतन के कारण 30, प्रमुख सिद्ध-कवि सरहपा 31, राग द्वेशाख 32, शबरपा 33, लूहिपा (लुइपा) 33, दारिकपा 34, कर्णरीपा (आर्यदेव) 34, डोंभिपा 35, कण्ठपा (कहणपा, कृष्णपा, कर्णपा) 35, कुक्कुरिपा 36, भूसुकपा (शांतिदेव) 36, शांतिपा (रत्नाकर शांति) 37, नाथ-काव्य, सिद्ध और नाथ 37, व्यापक समन्वय 38, प्रमुख नाथ 38, हठयोग 38, विशुद्ध निवृत्तिमार्ग 40, प्रमुख नाथ-कवि, जालंधरनाथ 41, गोरखनाथ 41, ज्ञानेश्वर 42, मुक्ताबाई 43, उमाँबा² 43, चर्पटनाथ (चरपट) 44, चौरंगीनाथ 44, जैन-काव्य, तीर्थंकर और महावीर 45, उदात्त किन्तु अव्यावहारिक धर्म 46, बहुआयामी सम्वेदनशीलता 47, प्रमुख जैन-कवि स्वयंभू : 'हिन्दी के आदिकवि' के दावेदार 49, देवसेन 50, हेमचन्द्र⁵ 51, विनयचन्द्र सूरि 52, रासो-काव्य, विशुद्ध संक्रान्तिकाव्य 53, प्रमुख नायक 53, मोहम्मदीयत और मोहम्मदी हमले 57, भारत और मोहम्मदी राज्य 57, मृत्युंजय हिन्दू का संक्रान्तिकाल 60, आशान्वित-अनुभूति का उद्गार 62, सम्पन्न परम्परा 63, प्रमुख रासोकार एवं अन्य कवि, नरपति नाह 64, चन्द्रवरदायी 65, पृथ्वीराजरासो 67, उत्कृष्ट शृंगार काव्य 70, उच्चस्तरीय वीरकाव्य 71, जगनिक⁴ 71, जज्जल 74, अन्य कवि, मुंज 76, बादरवेणा¹ 77, उपसंहार 77,

2. पुनरुत्थानकाल¹ (1300-1600 ई.)

प्रस्तावना 79, विकासवाद और पुनरुत्थानवाद 80, महान् जनकाव्य 81, वेद 84, उपनिषद् 85, पुराण 86, दार्शनिक पृष्ठभूमि : शंकर तथा अन्य आचार्य 87, भक्तिमार्ग 89, भक्ति और अवतारवाद 92, सम्पूर्ण जीवन-साहित्य 94, हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्णकाल 95, सूफ़ी काव्य, भारत और सूफ़ी-मत 97, सूफ़ी दर्शन 99, भारत के सूफ़ी सम्प्रदाय 99, भारत पर सूफ़ी प्रभाव 100, हिन्दी की सूफ़ी कविता 101, प्रमुख प्रवृत्तियाँ 102, सौन्दर्यवाद 103, प्रेमवाद 104, विरहवाद 105, प्रचारवाद 106, उपसंहार 107, प्रमुख कवि, खुसरो¹ 107, दाऊद 114, कुत्बन¹ 119, जायसी 121, पदमावत 122, मंझन 134, सन्त-काव्य, सन्त-पुनरुत्थान के प्रतीक 136, निर्गुणधारा एवं ज्ञानाश्रयीशाखा की निराधारता 137, अद्वैतवाद एवं तत्प्रेरित रहस्यवाद 138, वैष्णव प्रभाव 141, मानवतावाद

एवं रूढ़िखण्डनवाद 143, भाषा-शैली 146, प्रमुख कवि, नामदेव 147, मोहम्मदीयत का प्रभाव 149, जयदेव 150, रैदास 151, सदन 166, सेन 167, धना 167, पीपा 168, धरमदास 168, कमाल 170, नानक 171, सिख पंथ का उद्देश्य 172, दादू¹ 181, वावरी साहिबा 181, वाजिद (वाजिंद) 182, वषना जी 182, अर्जुन 183, आदि ग्रंथ एवं सिख पंथ, राम-काव्य राम की अतुलनीयता 189, महान् मानवतावाद 190, अद्वितीय आशावाद 194, अतुलनीय जीवनकाव्य 195, अप्रतिम काव्यसृजन 196, अभूतपूर्व प्रभाव 196, प्रमुख कवि रामानन्द 197, पुरुषोत्तम² 199, जनजसवन्त 200, अग्रदास³ 201, नाभादास 203, लतीफ़शाह 204, विश्वकवि तुलसी 205, मार्मिक नारी संवेदन 214, उदांत तत्व 224, हास्य व्यंग 236, राजनीति 237, दर्शन 240, कृष्ण-काव्य, कृष्ण की जीवन्तता 248, गहनलीला तत्व 250, ललित मानवतावाद 252, महान् गीतिकाव्य 253, प्रमुख कवि, विद्यापति 255, विष्णुदास 264, हरिदास² 265, सूरदास 266, सूरसागर : महाकाव्य या गीतिकाव्य? 270, सूर-श्याम : लघु-सूर 289, सूर-कल्याण² 291, सूर-श्रीगोपाल 291, सूरजदास 293, कुंभनदास 294, परमानन्ददास 295, गोविन्दस्वामी 296, छीतस्वामी 296, कृष्णदास 297, चतुर्भुजदास 297, नन्ददास 298, गदाधर भट्ट¹ 299, हित हरिवंश 300, ध्रुवदास 301, हरिराम 'व्यास' 302, जीवनवृत्त एवं 'आत्मकाव्य' में उसकी विवृति 304, लालचदास¹ 313, नरोत्तमदास¹ 314, सुदामा-चरित³ 314, श्री भट्ट 316, प्रिथीराज (पृथ्वीराज) 316, रसखान¹ 319, नीति-काव्य 322, युग-काव्य 323, शास्त्रीय काव्य 325, विविध रचनाकार, ज्योतिरीश्वर ठाकुर¹ 326, दामो 326, कल्लोल 326, छीहल¹ 327, जसवन्त 327, कृपाराम 328, करनेस 329, वजही 330, आलम (अकबरकालीन) 330, तानसेन¹ 331, तानतारंग खाँ 332, वाजबहादुर 332, रूपमती² 333, फैज़ी 334, बलभद्र मिश्र 335, एकनाथ 335, अकबर 336, वीरबल 339, नरहरि 341, गंग 343, रहीम 345, कुली कुत्वशाह 349, राय प्रवीण 350, लालनदास 350, उपसंहार 351

3. शास्त्रीय काल

(1600-1800 ई.)

प्रस्तावना 353, रसवाद बनाम अद्वैतवाद 354, अंतस्साधना 355, आकर्षक प्रकृतिचित्रण 357, इतिहास-बोध एवं नव्यता-आह्वान 359, हिन्दी ही उर्दू की जननी है 361, ब्रजभाषा तथा कवित्त-सवैया-दोहा-छंदत्रय एवं अलंकरण का परमोत्कर्ष 363, शृंगारकाव्य 365, शृंगाररस का शास्त्रीय निरूपण 366, नायिकाभेद 366, नखशिख 367, षड्भुज-वर्णन 367, प्रेम एवं सौन्दर्य 367, उल्लेख्य कवि, केशवदास 369, अमरेश¹ 385, हेमविजय 385, मंडन 386, मुबारक 387, पुहकर कवि 388, इब्राहीम आदिलशाह 388, लीलाधर 389, ताहिर 389, सेन (कवि) 389, सेनापति 390, सुंदर 394, तोष (तोषमणि) 394, चिन्तामणि 395, ठाकुर (प्रथम) 397, भीषम 397, अली आदिलशाह 397, बिहारी¹ 398, मतिराम 406, 'मधनायक' ('मध') 411, कुलपति मिश्र 411, सुखदेव 412, महान् गुरु : गुरुनां गुरु 414, विराट् अटनः लाभ एवं हानि 415, जमाल¹ 424, रामजी¹ 424, निशाती 425, शम्भु (शिवाजी-पुत्र) 425, कालिदास त्रिवेदी 427, देव 428, करीम 436, शेख रंगरेज़िन 437, अब्दुल रहमान¹ 438, 'महीपति'³ 438, 'रसलीन'¹ 439, याकूब खाँ 439, श्रीपति 440, 'सदारंग' 440, मोहम्मदशाह रंगीले 441, 'दक्षन' ('दक्ष') 441, 'रसरंग'¹ 442, 'भूपति' 442, महबूब 442, पठाल सुल्लालन 443, दत्त² 443, सूरति¹ मिश्र 444, सोमनाथ 445, रघुनाथ बंदीजन 445, 'रसनायक' 447, भिखारीदास 447, 'कवीन्द्र' उदयनाथ¹ 449, कान्ह¹ 449, ठाकुर (द्वितीय) 449, दूलह 450, शिवनाथ 451, शाह आलम 451, देवकीनंदन 452, किशोर 453, मीरन 453, पद्माकर 454, भट्टात्मक-भट्टकाव्य² 457, जवाहिर³ 458, जानकीराम 459, 'रंगखान' 459, वीर काव्य हिन्दु वीरतत्व और मुगल वंश का पतन 459, प्रमुख कवि, जटमल 463, बनवारी 465, भूषण 466, चिरजीवी 472, लाल कवि 473, गोविन्दसिंह 474, रामावतार 475, घनश्याम¹ शुक्ल 478, गंजन 478, भगवंतराय खींची 479, शंभुनाथ¹ मिश्र 479, सूदन 480, रतन कवि¹ 482, राम काव्य, 482, प्रमुख कवि, तुकाराम 485, हृदयराम¹ 485, नरहरिदास¹ 486, बाल अली¹ 487, जानकीरसिकशरण 487, रसिक अली¹ 487, 'प्रेमीयमन' 488, ललकदास 488, ख्यामदास 489, मधुसूदनदास 490, मनियारसिंह 490, खुमान³ बंदीजन 'मान' 491, कृष्ण काव्य 492, प्रमुख कवि, घासीराम¹ 495, ताज बेगम 496, आदिल¹ 497, तालिव 497, हरिवल्लभ 498, 'चंदसखी' 498, नागरीदास 499, सुंदरि कुँवरि बाई 499, अलबेली अलि 500, ब्रजवासीदास 500, 'कारे' (कालेखाँ) 501, चाचा हित वृंदावनदास 502, नज़ीर अकबराबादी¹ 503, संत काव्य, 504, प्रमुख कवि, रज्जब 507, मलूकदास 507, गरीबदास 509,

सुंदरदास¹ 510, तेगबहादुर 510, निपट निरंजन 513, प्राणनाथ 513, अक्षर अनन्य, 515, यारी साहब² 515, जगजीवन साहब¹ 516, दरिया साहब (मारवाड़ वाले) 517, सहजोबाई 518, दयाबाई¹ 518, मीतादास¹ 519, दूलनदास 520, दूलनदास 520, चरणदास 521, गरीबदास 522, नितानंद 522, दरिया साहब 523, पलटू 524, आत्मपरक प्रेम काव्य, 524, प्रमुख कवि आलम 526, घनआनंद 529, बोधा 535, ठाकुर (तृतीय) 536, सूफी काव्य, 536, प्रमुख कवि, उस्मान 539, नूरमोहम्मद 540, नीति काव्य, 542 प्रमुख कवि घाघ 543, गिरिधर कविराय 545, हास्य काव्य, 546 अनुवाद काव्य 547, प्रमुख अनुवादक कवि, जसवंत सिंह 549, सरयूराम पंडित 551, गुमान मिश्र 552, गोकुलनाथ¹ 552, गोपीनाथ¹ 553, मणिदेव 554, गद्य 554, कुछ अन्य रचनाकार, रामप्रसाद निरंजनी 556, जहाँगीर 556, शहरयार 557, क्रादिर 557, लालचन्द (लख्योदय)⁴ 557, बनारसीदास जैन 558, शाहजहाँ¹ 559, जलालुद्दीन 560, भरमी 560, छत्रसाल 560, करन कवि 562, मीर जलील⁵ 563, बुल्लाशाह⁶ (बुल्लेशाह⁷) 563, अनीस 564, सीतल 565, सौदा 567, पुखी¹ 568, महाताब 568, कल्याणदास 569, 'गरीब'⁷ 569, थान कवि 569, शीतलादीन 570, विष्णु की प्रार्थना 570, रामचन्द्र 571, शेख सादी¹ 572, उपसंहार 572

4. बौद्धिककाल (1800. ई. से)

प्रस्तावना 576, सन्धि-युग, प्रमुख विशेषता: गद्य 581, कविता 582, नवयुग-वाहक साहित्यकार, लल्लूजी 'लाल' 583, सदन मिश्र 584, सदासुखलाल 'नियाज' 584, इंशाअल्ला खाँ 585, युगलकिशोर शुक्ल: हिन्दी-पत्रकारिता के जनक 585, राममोहन राय 587, तुलसी साहब 587, बहादुरशाह (द्वितीय¹) 'जफ़र'² 588, मंचित¹ 589, गुरुदीन पौंडे 589, पहलवानदास 590, ऐनानन्द 591, यशोदानन्दन 591, नवलसिंह कायस्थ 592, दीन दरवेश 592, रसिक गोविन्द 593, बेनी² 'प्रवीन' 594, बैताल 595, गिरधारीलाल⁵ 596, प्रेमसखी¹ 597, जोधराज 597, 'आशी' 598, विश्वनाथसिंह 598, गुमानी¹ 600, ग्वाल कवि 601, प्रतापसाहि 602, बकसी² 603, दीनदयाल गिरि, 603, चन्द्रशेखर वाजपेयी 605, बलवानसिंह 'काशिराज' 606, 'ललितकिशोरी' 607, 'ललितमाधुरी' 607, नजीब खाँ 'रसिया' 608, रामसहायदास 608, बनादास 608, प्रताप 609, घीसादास³ 609, अयोध्याप्रसाद वाजपेयी 'औध' 610, जीतादास 611, नबी कवि 611, स्वातितिरुनाल 612, पजनेस 612, सूर्यमल्ल मिश्रण 613, द्विजदेव 614, प्रकृति-सौन्दर्य 614, नेत्र सौंदर्य 615, प्रेम प्रभाव 615, 'क्षितिपाल' 615, 'लेखराज'¹ 616, गिरिधरदास, (मूलनाम गोपालचन्द्र) 616, सुधारवादी युग, प्रस्तावना 618, आधुनिक विकास का श्रीगणेश 619, गद्य का अभूतपूर्व उत्कर्ष: प्रगति का सर्वांगीण सन्देश 620, विविध गद्य-विधाओं का उद्भव एवं विकास, नाटक 623, उपन्यास 624, कहानी 625, निबन्ध 625, आलोचना 627, आधुनिक राष्ट्रीय कविता का प्रस्थान-युग 627, सुधारवादी युग का साहित्य टकसाली-जनसाहित्य है 629, उपसंहार 630, प्रमुख साहित्यकार, रघुनाथदास 'रामसनेही' 631, जुगलानन्द्यशरण 631, सेवक¹ 632, सरदार कवि 632, गोकुल कवि 633, पतितदास 634, ठाकुरप्रसाद मिश्र 'पंडित प्रवीन' 634, रघुराजसिंह 635, शंकरदास 636, गंगादास 636, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द 638, दयानन्द¹ 639, खैराशाह 640, राजा लक्ष्मणसिंह 641, हरिसेवक⁴ 642, श्रद्धाराम फिल्लौरी⁶ 642, हरीदास 643, मुरारिदान 644, काली कवि 645, शिवसिंह 646, प्रतापकुँवर बाई 647, प्रतापबाला 648, गणेशप्रसाद¹ 648, फ्रेडरिक पिन्कोट 649, नवीनचन्द्र राय 650, 'बेनी'³ द्विज¹ 650, बलदेव¹ 651, आलम बेगम⁴ 651, मथुरा¹प्रसाद मिश्र 652, शरच्चन्द्र 'सोम'³ 652, लछिराम 653, ईसुरी 653, बालकृष्ण भट्ट 654, रसिकबिहारी 655, नेवाज बिलग्रामी 656, सहजुराम 656, गोविन्द गिल्लाभाई 657, देवीप्रसाद¹ 657, काशीनाथ खत्री 658, बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवर जी 658, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 659, ग्रीयर्सन¹ 668, श्रीनिवास 669, प्रेमघन 670, प्रतापनारायण मिश्र⁴ 671, हाजी अली खाँ 675, जगमोहन सिंह 675, 'द्विजराज' 676, अम्बिका दत्त व्यास 676, रामकृष्ण वर्मा 677, राधाचरण गोस्वामी 678, शीतलाप्रसाद³ उपाध्याय 'शीतल'⁴ 678, शिवबिहारीलाल मिश्र 679, 'ब्रजराज' 679, नकछेदी तिवारी¹ 'अजान' 680, राधाकृष्णदास 680, रामसुजानसिंह 681, श्रीनिधि 682, 'विशाल कवि' 682, युगलप्रिया 683, कन्हैयालाल¹ पोद्दार 683, रामप्रतापसिंह 684, कवि लाल 684,

5. आदर्शवादी युग (1900-20. ई.से)

प्रस्तावना 687, कविता में सर्वतोमुखी नव्यता 689, राष्ट्रकाव्य 692, रामकाव्य 694, कृष्णकाव्य 695, प्रकृतिकाव्य 697, रहस्यकाव्य 699, ब्रजभाषा-काव्य 701, हिन्दी-निबन्ध का स्वर्ण-युग 703, हिन्दी-आलोचना का स्वर्ण-युग 707, कहानी का उद्भव एवं विकास 713, उपन्यास का उत्कर्ष 715, नाटक की विषम यात्रा 721, आकलन 723, प्रमुख साहित्यकार, सीताराम बी.ए. 'भूप' 723, 'नवनीत'⁵ 724, जगन्नाथप्रसाद 'भानु' 725, गोविन्दनारायण मिश्र¹ 726, श्रीधर पाठक 727, नाथूराम शर्मा 'शंकर'² 729, मदनमोहन मालवीय 730, देवकीनन्दन खत्री 733 ओझा 734, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 734, युगगुरु 735, गद्यमूर्ति 745, बलदेवदास 747, किशोरीलाल गोस्वामी 747, बालमुकुन्द गुप्त 749, मिश्रबन्धु 751, हरिऔध¹ 755, प्रियप्रवास 757, रंगपाल 764, रत्नाकार 765, हरिश्चन्द्र 769, गंगावतरण 772, भगवानदीन 'दीन' 779, गोपालराम गहमरी 780, रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' 781, डॉ. भगवानुदास¹ 783, बुन्देलावाला 784, चन्द्रवती मिश्र 784, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री 785, माधवप्रसाद मिश्र 785, 100 साल पूर्व की एक कथा- एक अज्ञात लेखिका 786, ब्रजेश² 789, रामचरित उपाध्याय 790, अमीरअली 'मीर'² 791, आधुनिक-केशव : रामनाथ 'जोतिषी' 792, श्रीरामचन्द्रोदय महाकाव्य 793, मोहम्मद वज़ीर ख़ाँ 794, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी 795, श्यामसुन्दरदास 797, कामताप्रसाद¹ गुरु 799, आचार्य पद्मसिंह शर्मा 799, वचनेश¹ 800, चन्द्रभानुसिंह 801, आगा हश्म कश्मीरी 801, शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' 802, कविरत्न 803, प्रेमचन्द 804, रामदास गौड़¹ 816, पूर्णसिंह 816, पुरुषोत्तमदास टंडन² 817, मुंशी अजमेरी 820, सनेही² 821, स्मरणीय गुरु 822, रामचन्द्र² शुक्ल 826, रूपनारायण पांडेय 'कमलाकर' 835, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद 835, मैथिलीशरण गुप्त 836, बुद्धकाव्य के श्रेष्ठ कवि 845, यशोधरा 852, लोचनप्रसाद पांडेय 860, सन्तराम बी.ए. 861, देवीदत्त शुक्ल 861, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी 862, द्वारकाप्रसाद शुक्ल 'शंकर' 863, राधावल्लभ पांडेय 'बन्धु'³ 863, रामनरेश त्रिपाठी 864, राधेश्याम कथावाचक 867, राधिकारमण प्रसाद सिंह 868, मन्नन द्विवेदी गजपुरी 868, कृष्णबिहारी मिश्र 870, गणेशशंकर विद्यार्थी 870, नारायणप्रसाद 'बेताब' 874, गोपालशरण सिंह 875, कौशिक 876, खलकसिंह देव 876, बनारसीदास चतुर्वेदी 877, हितैषी 878, सियारामशरण¹ गुप्त 881, मुकुटधर पाण्डेय 882, वियोगीहरि 883, सुदर्शन⁴ 884, 'कैरव' 885, किशोरीदास वाजपेयी 886, महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति' 887।

6. स्वच्छन्दतावादी युग 891 (1920-40 ई.)

प्रस्तावना 890, छायावाद नहीं प्रत्युत स्वच्छन्दतावाद 891, स्वच्छन्दतावादी कविता आदर्शवादी कविता का विकास है 892, स्वच्छन्दतावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 893, कल्पना 895, नव्यता 897, प्रतीकवाद 898, अद्वैत का सरस-गान रहस्यवाद 900, अपूर्व प्रकृतिचित्रण 902, गहन नारी-संवेदन 908, राष्ट्रवाद, स्वातन्त्र्य-प्रेम एवं दलित-संवेदन 910, महान् अभिव्यक्ति-पक्ष 913, स्वच्छन्दतावादी कविता : वस्तुवादी मूल्यांकन 914, स्वच्छन्दतावादी गद्य 917, वादमुक्त स्वच्छन्दतावादी कवि 918, गाँधी 919, श्याम बिहारी शर्मा 'बिहारी' 921, काका कालेलकर 923, वृन्दावनलाल वर्मा 924, माखनलाल चतुर्वेदी 925, आ. नरेन्द्रदेव 928, सम्पूर्णानन्द 928, प्रसाद 930, अलेक्सेई वारान्निक्कोव 949, ब्रजरत्नदास 949, बदरीनाथ भट्ट 950, चतुरसेन शास्त्री 951, राय कृष्णदास 951, गुरुभक्तसिंह 'भक्त' 952, हरिभाऊ उपाध्याय 953, शिवपूजन सहाय 954, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी 954, अवधेश मालवीय 955, दुलारेलाल भार्गव 955, 'बेढब'¹ बनारसी¹ 956, 'लली' 957, 'शिलीमुख' 957, अमर²नाथ झा 958, निराला 958, 'ऊँट' 973, केशवदेव शुक्ल 'केशव' 974, ज्योतिषचन्द्र घोष 974, कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय 975, नवीन¹ 976, 'बिस्मिल' 979, पद्मिनी 980, गोविन्दबल्लभ पन्त¹ 982, बलदेवप्रसाद मिश्र 982, उदयशंकर भट्ट 983, राष्ट्रीय आत्मा 984, मोहनलाल महतो 'वियोगी' 985, भगवतीप्रसाद वाजपेयी 986, अनूप शर्मा 987, पन्त 988, स्फीत कवि 990, कौशलेन्द्र राठौर 1000, द्वारकाप्रसाद¹ मिश्र 1002, मुन्शीराम शर्मा 'सोम' 1003, रामवृक्ष बेनीपुरी 1003, प्रभुदयाल मीतल 1005, कृष्णानन्द गुप्त² 1005, भगवतीचरण वर्मा 1006, सुभद्राकुमारी चौहान 1007, जर्नादनप्रसाद झा 'द्विज'¹ 1008, प्रतापनारायण श्रीवास्तव¹ 1009, गंगाशरण सिंह⁴ 1009, कृष्णशंकर

शुक्ल 1010, सोहनलाल द्विवेदी 1011, आशुकि जगमोहननाथ अवस्थी 'मोहन' 1012, डॉ. रामकुमार वर्मा 1014, हृदयेश 1016, नंददुलारे वाजपेयी 1016, महादेवी 1017, रामसहाय पांडेय 'चंद्र' 1021, 'मिलिन्द' 1021, केदारनाथ¹ मिश्र 'प्रभात' 1022, भगतसिंह 1023, रसिकेन्द्र 1023, रघुवीरसिंह 1024, हरिकृष्ण 'प्रेमी'¹ 1025, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' 1025, 'प्राणेश' 1026, श्रीराम शर्मा 1026, मुक्त 1028, आरसीप्रसाद सिंह² 1028, भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'¹ 1029, 'कमलेश'¹ 1030, बालकृष्ण राव 1030, सुमित्राकुमारी सिन्हा 1032, नगेन्द्र 1032, दिनेशनदिनी डालमिया 1033, जानकीवल्लभ शास्त्री 1034।

7. यथार्थवादी युग

(1940. ई.से)

प्रस्तावना 1036, यथार्थवाद के अनुरूप परिस्थितियाँ 1039, आक्रोश का उद्गार 1040, क्रान्ति और शान्ति 1041, स्वतन्त्र भारत का आलोचना-साहित्य 1044, यथार्थवाद के विभिन्न रूप 1047, समाजपरक-यथार्थवादी साहित्य 1049, वादवृद्ध-समाजपरक साहित्य (प्रगतिवादी साहित्य) 1051, वादमुक्त-समाजपरक साहित्य (प्रगतिशील साहित्य) 1053, सांस्कृतिक उपन्यास 1054, व्यक्तिपरक-यथार्थवादी साहित्य 1056, वादवृद्ध-व्यक्तिपरक साहित्य 1057, प्रयोगवाद 1058, मनोविश्लेषणवाद, दादावाद, अत्यथार्थवाद 1059, अस्तित्ववाद 1060, वादमुक्त-व्यक्तिपरक साहित्य 1061, (पारम्परिक) यथार्थवादी नव-साहित्य 1062, नवरहस्यवादपरक साहित्य 1063, उत्तर-आधुनिकता 1064, रामपरक साहित्य 1064, कृष्णपरक साहित्य 1066, शिवपरक साहित्य 1067, बुद्धपरक साहित्य 1067, विविध साहित्य 1068, साहित्येतर-साहित्य 1068, आकलन 1068, स्पर्णीय साहित्यकार, गुलाबराय¹ 1069, इन्द्र विद्यावाचस्पति 1070, 'ब्रजनन्दन' 1071, हनुमानप्रसाद पोद्दार 1073, राहुल सांकृत्यायन 1074, श्रीनारायण चतुर्वेदी 1075, सेठ गोविन्ददास¹ 1076, धीरेन्द्र वर्मा 1077, 'उग्र'¹ : यथार्थवादीयुग के एक अग्रदूत 1078, नवीवृक्ष 'फलक' 1079, डॉ. रघुवीर 1080, इलाचन्द्र जोशी 1080, यशपाल 1081, लक्ष्मीनारायण मिश्र 1081, रामसिंहासन सहाय 'मधुर' 1082, वासुदेवशरण अग्रवाल 1083, वंशीधर शुक्ल 1085, उमादत्त सारस्वत 'दत्त' 1086, मनीराम द्विवेदी 'नवीन' 1086, जैनेन्द्र 1087, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 1087, विश्वनाथप्रसाद मिश्र 1088, बच्चन 1088, श्यामनारायण पांडेय 1092, हज़ारप्रसाद द्विवेदी 1093, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य'¹ 1094, मुक्तानन्द 1094, देवेन्द्र सत्यार्थी 1095, दिनकर 1096, माताप्रसाद गुप्त³ 1104, कामिल वुल्के 1104, सेवकेन्द्र¹ 1105, 'मृगेश': प्रयोगधर्मी, अवधी-कविरत्न 1107, राममनोहर लोहिया 1109, नागार्जुन 1110, भुवनेश्वर : एकांकी-मूर्ति 1111, 'अश्व' 1111, कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह 1112, शमशेरबहादुर सिंह 1112, 'झड़प' 1113, अज्ञेय 1114, केदारनाथ अग्रवाल 1119, रावी 1120, विष्णु प्रभाकर 1121, रामविलास शर्मा 1121, नरेन्द्र शर्मा 1122, भवानीप्रसाद मिश्र 1122, गोपालसिंह नेपाली¹ 1124, आनन्दशंकर माधवन् 1125, आचार्य तुलसी 1127, विद्यावती 'कोकिल' 1129, कमलारत्नम् (हीरा-कोयला) 1130, गोपालदास व्यास 1130, 'रमई काका' 1131, 'अंचल' 1132, रामदयाल पांडेय 1133, नलिनविलोचन शर्मा 1135, हिमांशु¹ 1135, शिवमंगलसिंह 'सुमन' 1136, अमृतलाल नागर 1137, क्षेमचन्द्र 'सुमन' 1139, गंगाप्रसाद³ मिश्र 1139, जगदीशचन्द्र माथुर 1140, डॉ. देवराज¹ 1141, मुक्तिबोध 1142, इन्दिरा गाँधी 1146, प्रभाकर माचवे 1147, गंगारत्न पांडेय 1149, विद्यावती मिश्र 1150, कंचनलता सक्करवाल 1151, भारतभूषण¹ अग्रवाल 1152, प्रयागनारायण त्रिपाठी 1152, गिरिजाकुमार माथुर 1153, रामकिंकर उपाध्याय 1154, चंद्रकिरण सौनरेक्सा 1155, डॉ. विश्वनाथ अय्यर 1155, दूधनाथ शर्मा 'श्रीश' 1155, फणीश्वरनाथ 'रेणु' 1156, नरेश मेहता¹ 1157, हरिशंकर परसाई 1158, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी 1158, शकुन्त माथुर 1159, 'राजेश'¹ 1160, काज वैकटेश्वर राव 1161, शिवानी 1161, 'अरुण'⁴ 1162, त्रिलोचन शास्त्री 1163, गुलाब¹ खंडेलवाल 1164, चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' 1164, डॉ. एन्. चन्द्रशेखरन् नायर 1165, रामदरश मिश्र 1166, मोहन राकेश 1166, विनीत विक्रम बौद्ध 1167, श्रीलाल शुक्ल 1169, दुष्यन्त कुमार 1169, विद्यानिवास मिश्र 1170, 'मधुप' 1170, धर्मवीर भारती 1171, लक्ष्मीनारायण लाल, 1172, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना 1172, कुँवर नारायण 1173, कृष्णा सोबती 1174, स्पेकल 1175, अमरेश¹ 1176, निर्मल वर्मा 1177, विष्णुकान्त शास्त्री 1178, शिवप्रसाद सिंह 1179, रघुवीर सहाय 1179, जगदीश गुप्त 1179, भगवतशरण अग्रवाल 1180, मन्नू भंडारी² 1181, लक्ष्मीकान्त वर्मा 1182, राजेन्द्र अवस्थी 1183, श्रीकान्त वर्मा 1183, धुरू, किसान 1184, रंजनीश 1185, राजेन्द्र यादव 1187, कुबेरनाथ राय 1187, डॉ. श्यामसिंह

‘शशि’ 1188, धूमिल 1189, हरीश निगम 1191, केदारनाथ सिंह 1192, सुमन राजे 1193, शिवन कृष्ण रैणा 1194, डॉ. स्वामीनाथ पांडेय 1195, सुमेरसिंह ‘शैलेश’ 1195, आचार्य विद्यासागर 1197, प्रह्लाद रामशरण 1206, अभिमन्यु ‘अनंत’ 1206।

उपविधाएँ एवं नवविधाएँ

1. नवगीत	1208	17. रिपोर्ताज (तात्कालिकी)	1222
2. हिन्दी-राजल	1209	18. साक्षात्कार (भेंटवार्ता-इंटरव्यू)	1223
3. हाइकू = त्रिशूल	1210	19. परिचर्चा	1224
4. अगीत	1211	20. संवाद	1224
5. लोकगीत	1211	21. बाल-साहित्य	1225
6. शोकगीत	1213	22. दर्शनपरक साहित्य	1226
7. गद्यगीत	1214	23. वेदपरक साहित्य	1227
8. एकांकी	1215	24. योगपरक साहित्य	1227
9. लघुकथा	1216	25. पत्र-साहित्य	1228
10. आत्मकथा	1217	26. चलचित्र-साहित्य	1229
11. जीवनी	1218	27. शिकार-साहित्य	1230
12. लोककथा	1219	28. पत्रकारिता	1231
13. हास्य-साहित्य	1220	29. हिन्दी-शोधकार्य	1232
14. यात्रावृत्त	1220	30. कोश-साहित्य	1233
15. संस्मरण	1221	31. भाषाविज्ञान	1234
16. रेखाचित्र	1222	32. साहित्येतिहास	1235

अन्ततोगत्वा

चरैवेति 1237, क्रान्त-कवि क्राजी नज़र-उल्-इस्लाम (नज़रुल) 1238, मुचकुन्द शर्मा 1240, सतना-सन्दर्भ 1243, प्रकीर्णक 1244, नोइडा 1244, हरिशंकर ‘आदेश’ 1245, हिन्दी की आरती 1246, मॉरीशस 1247, ‘रसपुंज’ 1247, साहित्यक पत्रकारिता 1248, सिख-हिन्दीसेवी 1248, अंगिका 1249, 1857-काव्य 1250, झाँसी की रानी 1252, तात्या टोपे 1254, कुँवरसिंह 1254, राना बेनीमाधव 1255, चहलारी-नरेश बलभद्रसिंह 1256, शीलादेवी 1257, श्यामलगिरि गोसाईं 1257, गोंड-नरेश शंकरशाह 1258, वाजिदअली शाह 1259, दलित-साहित्य: ऐतिहासिक विश्लेषण 1260, परप्ररेणा 1260, नवबौद्धवाद 1261, ईसाई-साँठगाँठ 1265, ‘आर्य’-विषयक परकीयतावादी राजनीति 1268, घातक प्रतिक्रियावाद 1269, आज का दलित साहित्य 1270, दलित-साहित्य : इतिहास के दर्पण में 1273, पूर्वबौद्धिककालीन दलित-साहित्य 1274, आदर्शवादी युग का दलित-साहित्य 1276, स्वच्छन्दतावादी युग का दलित-साहित्य 1278, यथार्थवादी युग का दलित-इतिहास 1280, डॉ. चक्रधर ‘नलिन’ 1285, हिन्दी: विश्वभाषा, राष्ट्रभाषा, जनभाषा 1287, रूहेलखंड में हिन्दीसेवा 1291, डॉ. कुमार विमल 1292, विजयसिंह ‘पथिक’ 1294, सीताराम चतुर्वेदी 1295, केशरीनाथ त्रिपाठी 1297, शाकुन्ता सिरोठिया 1298, डॉ. महेश अवस्थी 1299, ब्रजबुलि 1301, भगवतप्रसाद मिश्र ‘नियाज’ 1302, रोहिणीप्रसाद मिश्र 1303, डॉ. किशोरीलाल गुप्त 1304, महेन्द्र प्रसाद ‘मुकुन्दम’ 1306, डॉ. पवनकुमार 1308, दोहा 1310, डॉ. मेघासिंह चौहान 1311, प्रो. लल्लनप्रसाद 1312, प्रकाश द्विवेदी 1315, डॉ. राय राजेश्वर बली का ब्रजभाषा-काव्य 1318, जयप्रकाश नारायण 1320, डॉ. श्यामसुन्दर घोष 1322, डॉ. रंजना गुप्त 1323, ‘नूतन’ 1326, छन्द की वापसी 1327।

प्रवेश साहित्येतिहास और आलोचना

साहित्य समग्र जीवन का ललित उद्गार है। इसकी विभिन्न विधाओं में जीवन के प्रायः सारे पक्ष किसी-न-किसी रूप में चित्रित हो ही जाते हैं। ऋग्वेद एवं महाभारत इस कथन के दो अजर-अमर प्रमाण हैं। हिन्दी में 'रामचरितमानस' एवं 'कवितावली' में इस तथ्य के अपेक्षाकृत सार-रूप दर्शन किए जा सकते हैं। साहित्येतिहास में सम्बद्ध काल के जीवन-समाहार का विवेचन एवं उपलब्ध साहित्य के साथ उसका संश्लेषण किया जाता है, जो निस्सन्देह अत्यन्त कठिन एवं श्रमसाध्य कार्य है तथा जिसके लिए विवेचन, विश्लेषण एवं संश्लेषण की स्फीत प्रतिभा अपेक्षित है। साहित्येतिहासकार को साहित्य, इतिहास, सम्बद्ध धर्म या धर्मों, सम्बद्ध दर्शन या दर्शनों, सम्बद्ध राजनीति, सम्बद्ध जनश्रुतियों, लोककथाओं, लोकगीतों प्रभृति का स्फीत ज्ञान तो होना ही चाहिए, साहित्य का मर्म भी होना चाहिए। संश्लेषण साहित्येतिहासकार का मेरुदण्ड है, किन्तु इसके लिए विश्लेषण-क्षमता अपरिहार्य है। संश्लेषण अंगी है, विश्लेषण अंग।

खेद है कि आधुनिक इतिहास-लेखन प्रायः पाश्चात्यों के एकाधिकार में रहा है। वे मूर्तिपूजा-विरोधी एवं श्रेष्ठताग्रन्थिबद्ध होने के कारणों से भारतीय संस्कृति एवं उसके साहित्य इत्यादि का सम्यक् परिशीलन नहीं कर पाए। कुछ (जैसे मैक्स मुलर) ने तो अपना स्पष्ट उद्देश्य ईसाइयत का प्रचार-प्रसार बतलाया भी है। सर विलियम जोन्स, मैक्स मुलर, विन्सेन्ट ए. स्मिथ इत्यादि ने आर्यों को विदेशी घोषित किया (गोरों के ही सदृश)। प्रश्न उठता है कि यदि आर्य विदेशी थे तो आए कहाँ से? विलियम जोन्स इत्यादि द्वारा प्रतिपादित मध्य एशिया से? स्पष्टतः नहीं! भाषा-विज्ञान भी यह प्रमाणित नहीं कर सकता कि आर्य विदेशी थे। वे यहाँ से भी तो जा सकते थे? दयानन्द तिब्बत, तिलक उत्तर ध्रुव, राहुल रुस (वोल्गा से गंगा) को आर्यों का आदिदेश बताते हैं। शिवालिक पहाड़ियों के ऊपर और उनसे नीचे जीवन का उद्भव बताने वाले विद्वान् और वैज्ञानिक भी विद्यमान हैं। अनेक जर्मन विद्वान् और वैज्ञानिक आकर अनुसन्धान भी कर चुके हैं। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, जयशंकर प्रसाद प्रभृति इतिहासकार एवं ऐतिहासिक-नाट्यकार आर्यों को भारत का मूल निवासी बताते हैं, क्योंकि ऋग्वेद एवं अन्य शत-शत ग्रन्थ यही सिद्ध करते हैं। किसी में विदेशीपन की गन्ध तक नहीं है। ऐसा लगता है कि आर्य प्राचीन भारत के पश्चिमोत्तर अंचलों से सुमेरिया¹ तक प्रसरित थे और ईरान (आर्यायनः आर्यध्वनि से युक्त शब्द) भी उनसे सम्पृक्त था। 'शाहनामा' में सियावाशगढ़ और भारत का स्पष्ट वर्णन है। सियावश भारत से गया एक अमर योद्धा है। सुमेरिया (मिसोपोटामिया, ईराक में प्राचीन धनुर्धारी राम एवं लक्ष्मण की मुद्राएँ मिली हैं। आज भी रामादि जैसे स्थान विद्यमान हैं) के असुर बनीपाल जैसे सम्राट् का तो नाम ही भारतीय लगता है। अभिप्राय है कि प्राचीनतम उपलब्ध साहित्यिक प्रमाण भारत-इराक-ईरान (आर्यावर्त-आर्यक-आर्यामन) के सम्पृक्त भूभागों को आर्यों का आदिदेश सिद्ध करते हैं। तीनों आर्यों पर दावा कर सकते हैं: आर्यवर्त, इराक, ईरान नाम ही साक्षी हैं। आँख मूँदकर आर्यों को विदेशी कहना गहनतम विद्वत्ता के अनुरूप नहीं है।

ऋग्वेद की प्राचीनतमता उसके 'श्रुति' विशेषण (पत्र, मसि, लिपि का अभाव, केवल कथन एवं श्रवण), बहुदेववाद, गेहूँ के अभाव, नितान्त निर्जनता-चित्रणों (यम-यमी-सम्वाद) इत्यादि से ही स्पष्ट है। साढ़े चार हजार साल पुराना लघु-महाकाव्य 'गिल्गमेश' तक अपने एकदेववाद (सूर्यपूजन)² में विकसित-सा (परिवर्ती-सा) लगता है। वह बात और है कि ऋग्वेद का रचनाकाल दो हजार साल तक फैला लगता है—कहीं गेहूँ नदारद, कहीं लौह (?) विद्यमान! मैक्स मुलर तक ने ऋग्वेद को मानव जाति के पुस्तकालय का प्रथम ग्रन्थ माना है।

पाश्चात्य इतिहासकार मूर्तिपूजा के इतने विकट विरोधी तथा शिवपूजा के इतने विकट समर्थक रहे हैं कि खजुराहो, कोणार्क, जगन्नाथ पुरी, मदुरै, रामेश्वरम् इत्यादि के 'विस्मयों' की उपेक्षा भी कर गए। खजुराहो (छह बड़े तथा अनेक छोटे मन्दिरों वाला काला-विस्मय-परिसर विशेष रूप से) की समता का 'विस्मय' केवल पिरैमिड्स एवं चीन की दीवार में ही प्राप्त है। उनके पूर्वाग्रहों की नग्नता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि 'जातक' कथाएँ 'इतिहास' हैं (बुद्ध के विभिन्न प्राणियों के रूपों में पूर्वावतार 'वैज्ञानिक'

1. इराक (आर्यक—आर्यध्वनिमय) शब्द है। सुमेर या सुमेरु शब्द भी विद्यमान है।

2. शमस् (सूर्य) नायक गिल्गमेश का आराध्य है। आज तक शम्स शब्द प्रचलित है।

हैं) किन्तु 'पुराण' की कथाएँ कोरी गप्पें! बाइबिल की नरबलि-कथा पवित्र है, वेद की आदिम-बर्बर असभ्य! ईसा कहीं यूसुफ़ के पुत्र हैं, कहीं ईश्वर के पर यह कोई बिन्दु नहीं! मूर्तिपूजा-विरोधी होने के कारण गोरों ने मध्यकालीन दरबारी इतिहासकारों की दरबारी-इतिहासकारिता को प्रामाणिक माना है। महमूद गजनवी ने खजुराहो के मन्दिर क्यों नहीं तोड़े? क्या वह 'बुतफ़रोख्त' बन गया था? स्पष्ट है कि उसे राजा गंड से सन्धि करनी पड़ी थी। वह सोमनाथ-लूट के बाद रेगिस्तानी रास्ते से क्यों लौटा, जो विनाशकारी था? स्पष्ट है कि शिवापमान-क्षुब्ध भोज उससे युद्ध के लिए प्रस्तुत थे। सिकन्दर लोदी ग्वालियर-ध्वंस क्यों नहीं कर सका? शेरशाह कैसे मरा? ऐसे प्रश्नों में उनकी कोई रुचि नहीं! सुहदेव (सुहेलदेव—श्रावस्ती-नरेश जिसने सालार मसऊद गाज़ी को हराकर मार डाला), नरसिंहदेव (उड़ीसा), साँगा (चित्तौड़ के विजयस्तम्भ-निर्माता), मानसिंह तोमर (ग्वालियर), प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल, परवर्ती मराठों इत्यादि की विजयगाथाओं से उन्हें कोई सरोकार नहीं। खेद है कि परकीयतावादी भारतीय इतिहास-लेखक उन्हीं को प्रमाण माने बैठे हैं, घोर प्रतिगामिता को महान् प्रगतिशीलता बताते नहीं थकते।

हिन्दी-साहित्येतिहासकारों के समक्ष प्राचीन सन्दर्भों के विवेचन में पूर्वाग्रहग्रस्त गौरांग-रचित, विजातीयतावादी भारतीय लेखकों के तदनुकृत एवं प्रायः सर्वस्वीकृत बनाए गए इतिहास के सत्य के विश्लेषण की समस्या भी रही है, किन्तु सारे ही साहित्येतिहासकार इससे बचकर निकल गए हैं। केवल मिश्रबन्धु ने यत्र-तत्र सत्य-शोध का यत्न किया है, किन्तु वह अत्यल्प भी है तथा तर्ककृच्छ्र भी।

हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित समारम्भ सिद्धों की 'पुरानी हिन्दी'¹ के काव्यसृजन के साथ 800 ई. के लगभग हुआ। इसी समय जैनों ने भी काव्यरचना की। यदि सरहपा हिन्दी के आदिकवि हैं, तो स्वयंभू भी हिन्दी के आदिकवि के दावेदार हैं। नाथों की व्यवस्थित विद्यमानता भी यत्किंचित् परवर्ती ही है। किन्तु आ. रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' का आरम्भ 1050 वि. (993ई.) से किया है तथा अपने आदिकाल का प्रवृत्तिपरक नाम वीरगाथाकाल रखा है। मिश्रबन्धु का रासोकाल क्या बुरा था (क्योंकि वीरगाथाकाल नाम रासोकाव्यों पर ही आधृत है)? और शुक्लजी स्वयं रासो-काव्यों को 'भट्ट-भणंत' भी मानते हैं। वे स्वयं 'वीरगाथाकाल' का खण्डन कर देते हैं। यह नामकरण एकदम निराधार है। 'रासो' शब्द रास (रससम्पन्न) के द्वारा शृंगार की सूचना देता है तथा पृथ्वीराजरासो तत्त्वतः शृंगारप्रधान एवं वीसलदेवरासो वस्तुतः शृंगारप्रधान काव्य हैं, अन्य 'रासो' या तो अनुपलब्ध हैं या नितान्त परवर्ती। मेरठ इत्यादि जनपदों में 'रासा' शब्द कलह के अर्थ का सूचक है। किन्तु उक्त रासो-द्वय 'रासा' न होकर रास या शृंगार प्रधान हैं। खुसरो (दिहान्त 1325 ई.), नामदेव, दाऊद, विद्यापति इत्यादि प्रथम काल से एकदम अलग पुनरुत्थान के वाहक हैं। खुसरो ने हिन्दवी अपनाई, हिन्दुओं के प्रति उदारता दिखाई और ब्राह्मणों की बेहद तारीफ़ की। नामदेव ने हिन्दू-मुस्लिम-एकता का मण्डन और छुवाछूत वगैरह का खण्डन किया। दाऊद ने अवधी में सृजन किया और अहीरों की कथा (चन्दायन) गाई। विद्यापति के आश्रयदाता कीर्तिसिंह की इब्राहीमशाह ने असलान नामक सत्ता-दस्यु से रक्षा की। किन्तु किसी भी इतिहासकार ने इन महान् नवयुग-वाहकों का सम्यक् आकलन नहीं किया। शुक्ल जी ने तो खुसरो और विद्यापति को अपने आदिकाल (वीरगाथाकाल) के फुटकल खाते में डाल दिया है, वस्तुतः फेंक दिया है! चारणकाल (ग्रीअर्सन, डॉ. रामकुमार वर्मा), रासोकाल (मिश्रबन्धु), वीरगाथाकाल (श्यामसुन्दरदास), सिद्धसामन्तकाल (राहुल सांकृत्यायन) इत्यादि नामकरण इतिहासबोधविपन्न एवं एकांगी हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी एकदम कोरे, प्राचीनताध्वनिभार-स्रस्त 'आदिकाल' से ही काम निकालते हैं (काल-दृष्टि से शुक्ल ने वीरगाथाकाल को आदिकाल कहा ही था)। मैंने 1960 ई. के आसपास इस काल का नामकरण संक्रान्तिकाल किया, जो 'हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास' (1967 ई.—'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' 1985 ई. में भी) से भी प्रमाणित है। डॉ. रामखेलावन पांडेय (हिन्दी साहित्य का नया इतिहास) तथा डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा एवं डॉ. रामनिवास शर्मा (सम्पिलित : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास') प्रभृति ने इसे संक्रमणकाल के रूप में गृहीत किया है, किन्तु 'संक्रमण' केवल अपभ्रंशकाल से भाषाकाल में विकास मात्र की सूचना दे पाता है जबकि 'संक्रान्ति' ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक, भाषिक, साहित्यिक प्रभृति की समग्र-स्थिति का सटीक संकेत करती है। पहले मैंने संक्रान्ति काल 800-1400 ई. में माना था, सिद्धों से कबीर-पूर्व तक। किन्तु सम्प्रति 800-1300 ई. मानता हूँ, सिद्धों से खुसरो तक, क्योंकि खुसरो, नामदेव, दाऊद, विद्यापति, रामानन्द प्रभृति कबीर-पूर्ववर्तियों ने ही पुनरुत्थानकाल की स्थापना की थी और कबीर, नानक, शेरशाह, अकबर, रहीम, रसखान, ताज बेगम, तानसेन, बैजू, हुमायूँ का मकबरा, फ़तहपुर सीकरी, जहाँगीरी महल इत्यादि साहित्य, राजनीति, संगीत, स्थापत्यकला इत्यादि के जीवन-प्रतीक इसी पुनरुत्थान के उद्गार हैं—जिसका अभिनिवेशमुक्त गान तुलसी और सूर में प्राप्त होता है। तथा जो केशव ताजमहल

इत्यादि तक प्रसरित दीखता है। प्रतिक्रियावादी औरंगजेब ने इस पुनरुत्थान को समाप्त करने की दुश्चेष्टा के द्वारा मुगल-वंश को समाप्त कर डाला, जिसका प्रमुख कारण हिन्दू-शौर्य था। हिन्दू-मुस्लिम फूट के कारण भारत में अंग्रेजी राज्य प्रभावी हुआ।

संक्रान्तिकाल में सिद्ध एवं नाथ धार्मिक एवं सामाजिक संक्रान्ति के प्रतीक हैं, चारण राजनैतिक संक्रान्ति के जबकि जैनों ने अपने मत के अनुरूप पारम्परिक सृजन किया है। इन सब का प्रभाव आज तक विद्यमान है। सिद्धों के अन्तस्साधना-मंडन, छुवाछूत खण्डन इत्यादि का प्रभाव कबीर, नानक इत्यादि से होता आज तक प्रभावी है। योग में भोग का दर्शन उपनिषद् (छांदोग्य) के 'आत्मरति आत्ममिथुन आत्मक्रीड' इत्यादि में मूलभूत है, जिसे बुद्ध महावीर इत्यादि ने नकारा और प्रतिक्रियास्वरूप सिद्धों इत्यादि में इसका अतिरेक भी दृग्गत हुआ, इसकी विकृति भी दृग्गत हुई—डॉ. भगवान्दास, प्रसाद, दिनकर, रजनीश प्रभृति ने कामतत्त्व का क्रमशः दार्शनिक, कलात्मक, विवेचनात्मक, विकृत प्रभृति रूपों में निरूपण किया है। स्वयंभू इत्यादि का रामकाव्य जैनसमाज में आज भी जीवन्त है। नाथसम्प्रदाय एवं उनका हठयोग (कुण्डलिनीयोग) विश्व भर को प्रभावित कर रहा है। चारणकाव्य मध्यकाल में 'पराजय नहीं, संघर्ष' का प्रतीक है : पृथ्वीराज का चन्द्रवरदायी की प्रेरणा से मोहम्मद गौरी को मारना हिन्दू के विनष्ट न होने का द्योतक है। कंधार¹ (प्राचीन गांधार) में पृथ्वीराज की समाधि और उसके अपमान का सत्य चन्द्रवरदायी के "पृथ्वीराज द्वारा गौरी के वध" पर पुनरावलोकन का आग्रह करता है। सात सौ वर्षों तक चन्द्र का विवरण हिन्दू-मुसलमानों द्वारा स्वीकृत रहा है। गजनी में भी समाधि की चर्चा है। यदि यह इच्छात्मक-चिन्तना का भी है तो भी इसका भारी मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। हिन्दी-कविता कहीं भी पराजयवादी नहीं है, क्योंकि हिन्दुस्तान कभी पूर्णतः परास्त या परतन्त्र हुआ ही नहीं—स्थूल इतिहास भी साक्षी है। अरब मोहम्मद बिन-कासिम (712 ई.) की सफलता उसे प्राप्त बौद्धों के आत्मघाती एवं देशद्रोहात्मक सहयोग के बावजूद नितान्त अस्थायी एवं प्रान्तगत मात्र रही। तुर्क महमूद गजनीवी (आक्रमणकाल प्रायः 1000-30 ई.) केवल लाहौर-मुल्तान तक साम्राज्य-प्रस्तार कर सका। तुर्क मोहम्मद गौरी (1192 ई.) एवं उसके कुतुबुद्दीन ऐबक जैसे गुलामों का राज्य वस्तुतः आधे भारत में भी न था। गुलाम वंश, खिल्जी-वंश एवं तुगलक-वंश तुर्कों के थे। अलाउद्दीन खिल्जी एवं मोहम्मद तुगलक तक सारे भारत पर अधिकार न कर सके थे। सैयद-वंश एवं लोदी-वंश (कालांतर में मुगल-वंश के आरम्भ के कुछ बाद सूरी-वंश भी) पठानों के थे, जिनका प्रभाव बहुत कम ही रहा। तुर्क-पठान-काल को प्रख्यात इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार ने ठीक ही अंधकारकाल कहा है। मुगलकाल में अकबर ने उदारता अपनाकर पुनरुत्थान को व्यापकता प्रदान की और स्ववंश को स्थिरता। किन्तु सारा भारत तब भी परतन्त्र न हुआ था। ब्रिटिश-काल में भी प्रायः छह सौ छोटी-बड़ी रियासतें केवल इसीलिए छोड़ी गई थीं कि शान्ति रहे (इसे अकबर का प्रभाव माना जा सकता है)। फिर भी, स्वतन्त्रचेता राष्ट्र में कभी शान्ति नहीं रही। स्वातन्त्र्य-चेतना हिन्दुस्तान के इतिहास की आत्मा रही है और चन्द्रवरदायी, जज्जल, भूषण, सूदन इत्यादि में इसी ही विभिन्न शैलियों में उद्गार प्रदान किया गया है। तुलसी हों या सूर, देव हों या बिहारी, किसी ने पराजयवादी गान नहीं गाए। उन्होंने ध्वंस की अपेक्षा की तथा निर्माण को महत्त्व प्रदान किया। आधुनिक उर्दू कविता में हाली एवं इक़बाल ने भी हिन्दुस्तान की अपराजेयता के गान गाए हैं। चन्द्र की विजयिनी चेतना के दर्शन श्यामनारायण पाण्डेय (हल्दीघाटी) में किए जा सकते हैं। राष्ट्र युद्धों में नहीं, प्राणों में पराभूत होते हैं। भारत युद्ध हारा भी जीता भी, परन्तु पराभूत एवं परतन्त्र कभी नहीं हुआ। भारतीयता की आत्मा से अपरिचित एवं गौरांग इतिहास दृष्टि के बंदी मार्क्स की भारत-चर्चा उपेक्षा के योग्य है।

भक्तिकाल नामकरण वीरगाथाकाल की तुलना में अधिक साधारण है, किन्तु न तो इतिहास के व्यापक आयामों का स्पर्श कर पाता है, न विविध प्रवृत्तियों की सूचना दे पाता है। वस्तुतः मध्यकालीन भक्ति पाखण्ड-विडम्बन, समता-संस्थापन, संस्कृति-संरक्षण एवं शौर्य-संवर्द्धन को प्रेरणा प्रदान करनेवाले भारतीय पुनरुत्थान का विशद् उद्गार थी जो खुसरो, नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि में स्थूल तथा तुलसी, सूर, रहीम, रसखान इत्यादि में सूक्ष्म रूप में विवृत हुआ। पुराकाल में गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, नाग, किरात, कोल, शबर, वानर इत्यादि का समन्वय हुआ था। कालांतर में ईरानी, यूनानी, शक, कुषाण, हूण, पल्लव, शान इत्यादि का समन्वय हुआ। पुनरुत्थानकाल में इसके धार्मिक पृथक्ता के साथ दर्शन होते हैं। 'भक्तिकाल' एकप्रवृत्तिबद्ध एवं संकीर्ण नामकरण है। भक्ति जीवनगत विराट् क्रिया की एक प्रतिक्रिया मात्र है, जिसका धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक महत्त्व सार्वभौम भी है, मनोवैज्ञानिक भी, किन्तु वह जीवन का स्थान नहीं ले सकती। भक्तिकाल नाम की सैंकरी बाँहों में खुसरो, विद्यापति, अकबर, रहीम इत्यादि कहीं समा पाएँगे? केशव, सेनापति इत्यादि को फुटकल खाते में डालने का साहित्यिक अन्याय इसी का परिणाम है। जायसी इत्यादि सूफियों

1. एक कंधार उत्तरांचल में भी है।

को भक्ति के खूँटे में बाँधने का अनौचित्य भी इसी का नतीजा है। स्वयं तुलसी एवं सूर¹ कोरे भक्त मात्र न होकर क्रमशः जनजागरण के नेता एवं जीवनवाद के गायक हैं, सर्वरसनिष्पन्न एवं अनेकरसनिष्पन्न महाकवि हैं। शताधिक 'इतिहास' शब्दांकित ग्रन्थों में एक भी वास्तविक 'इतिहास'-ग्रन्थ होता तो 'भक्तिकाल' पर व्यापक ऊहापोह अवश्य करता। आ. शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) 'हिन्दीशब्दसागर' की भूमिका का पल्लवन एवं 'विनोद' (1913 ई.) का संक्षेपण करते हुए पाठ्यक्रम की त्वरा में लिखा था, यह उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। अनेक संकलनकर्ताओं की सामग्री से सम्पन्न डॉ. नगेन्द्र सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' की भूमिका में यह स्पष्टतः स्वीकार किया गया है कि हमारे पास कोई वास्तविक या व्यवस्थित साहित्येतिहास विद्यमान नहीं है। 'इतिहासों' की बाढ़ ही 'इतिहास' के अभाव की सूचक है। विविध सम्बद्ध विषयों के विराट् आलोक में साहित्य की प्रवृत्तियों का आकलन, विवेचन, विश्लेषण एवं संश्लेषण दशाब्दियों के घोर, सुचिन्तित एवं सुनियोजित प्रयास से ही सम्भव हो सकता है—पाठ्यक्रम के आग्रह या छात्रों को समयानुरूप अधिकाधिक सामग्री मुहैया करने के श्रम से नहीं।

अलंकृतकाल, रीतिकाल, कलाकाल, शृंगारकाल प्रभृति नाम नितान्त संकीर्ण ये एक प्रवृत्तिबद्ध हैं, इतिहासबोधविहीन तो हैं ही। 'अलंकृत' रस से न्याय नहीं कर पाता, 'रीति' आचार्य वामन के रीतिसम्प्रदाय² में उलझा देती है तथा किसी प्रवृत्ति की सुस्पष्ट सूचना भी नहीं देती, 'कला' भाव से न्याय नहीं कर पाती, 'शृंगार' अन्य रसों (विशेषतः 'वीर' जिसमें हिन्दी-साहित्य में वीररस के सर्वश्रेष्ठ महाकवि भूषण के अतिरिक्त सूदन एवं गुरु गोविन्दसिंह इत्यादि स्थायी महत्त्व के कवि समाविष्ट हैं) की उपेक्षा करता है तथा नीतिकाव्य, अनुवादकाव्य, गद्य इत्यादि से ध्यान हटाने का अनौचित्य भी वस्तुतः 'संक्रान्ति' में बचने के सामर्थ्य का परिणाम 'पुनरुत्थान' था तथा 'पुनरुत्थान' के साफल्य का परिणाम 'शास्त्रीयता' थी। अतः यह काल 'शास्त्रीय काल' था—'शास्त्रीय' में 'अलंकृत', 'रीति', 'कला', 'शृंगार' तो समाहित हो ही जाते हैं। ('रीतिबद्ध' तो समाहित हो ही जाता है, 'रीतिसिद्ध' भी समाहित हो जाता है तथा 'रीतिमुक्त' के घनआनन्द की 'लक्षणा' एवं 'व्यंजना' तथा उनका अलंकरण भी समाहित हो जाते हैं³, संस्कृत काव्यशास्त्र के विशद प्रभाव की सूचना भी मिल जाती है। शास्त्रीयता (क्लैसिसिज्म) पुनरुत्थान का प्रतिफल होती भी है, जिसके प्रायः समसामयिक साक्षी अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश इत्यादि साहित्यों के इतिहास भी हैं। पुनरुत्थानकाल एवं तदनंतर शास्त्रीयकाल विश्व साहित्येतिहास से मेल भी खाते हैं—ये मानव-इतिहास एवं साहित्य-विकास के शतशः अनुरूप हैं। इनसे हम अपनी इतिहासबोधसम्मत-साहित्यगाथा भी समझ सकते हैं, वैश्विक विकास से भी सम्पृक्त हो सकते हैं।

आधुनिककाल को 'गद्यकाल' कहना साहित्य को पंगु रूप में प्रस्तुत करना है। आ. शुक्ल ने अपना आधुनिककाल (गद्यकाल) 1900 वि. (1843 ई.) से आरम्भ किया है। क्यों? पता नहीं। वास्तव में आधुनिककाल का समारम्भ 1800 ई. से होता है क्योंकि इस वर्ष तत्कालीन राजधानी कलकत्ता (कोलकाता) में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज खुला, जिसके 'भाखा-मुंशी' (भाषा-शिक्षक या हिन्दी-अध्यापक) लल्लूजी 'लाल' (इन गुजरातमूलक महानुभाव का नाम रगड़कर अर्थात् 'जी' हटाकर तथा शेष नाम के साथ उपनाम भिड़ाकर—लल्लूलाल बनाकर—आ. शुक्ल ने मनमानेपन का प्रायः वैसा ही परिचय दिया है जैसा श्रद्धाराम फिल्लौरी को 'फुल्लौरी' कहकर, जिसका निष्ठा एवं आस्था से भरा अनुकरण परवर्ती 'इतिहासकार' एवं 'विद्वान्' करते चले आ रहे हैं एवं सदल मिश्र ने कुछ ही समय में 'प्रेमसागर' एवं 'नासिकेतोपाख्यान' प्रस्तुत कर गद्य का वह 'समारम्भ' किया जो लगातार गतिशील रहा। प्रायः इसी समय इंशाअल्लाह खाँ का 'खालिस' अजूबा ('रानी केतकी की कहानी') प्रकाश में आया। मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' का 'सुखसागर' भी इसी शृंखला की कड़ी है। लल्लूजी 'लाल', सदल मिश्र एवं सदासुखलाल 'नियाज' ईस्ट इंडिया कम्पनी (कम्पनी बहादुर) से किसी-न-किसी रूप से सम्बद्ध रहे, जबकि इंशा लखनऊ के नवाबों से। शुक्ल जी ने इन 'पर्याप्त' पूर्ववर्तियों को अपने 'आधुनिककाल' (1843 ई. से) में खींच डाला है तो पर्याप्त परवर्ती 'द्विजदेव', रघुराजसिंह इत्यादि को अपने 'रीतिकाल' में ढकेल दिया है⁴, और यह 'इतिहास' में भी 'सर्वस्वीकृत' है।

1. भ्रमरगीत प्रवृत्ति का विजयगीत है, निवृत्ति का पलायनगीत नहीं।

2. मुझसे कई संस्कृतज्ञों ने प्रश्न किए हैं।

3. 'रीतिबद्ध', 'रीतिसिद्ध' एवं 'रीतिमुक्त' का वर्गीकरण संकीर्ण 'रीतिकाल' नामकरण को सार्थक सिद्ध करता है।

4. 'द्विजदेव' (महाराज मानसिंह) ने 1857 ई. के संग्राम में अंग्रेजों के पक्ष से युद्ध किया था (महाराज रघुराजसिंह के सदृश)। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, राजा लक्ष्मण सिंह, ठाकुर शिवसिंह सेंगर इत्यादि भी अंग्रेजों के पक्षधर थे—प्रशंसक थे। कालांतर में, इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना (1885 ई.) करनेवाले, ऐलेन ऑक्लेविअन ह्यूम ने प्रशासक के नाते 1857 ई. में इटावा के कलेक्टर इत्यादि रूपों में 'गदर' को कुचलने में अपना प्रभावी योगदान दिया था।

आधुनिककाल (1800 ई. से) हिन्दी साहित्य के इतिहास का 'बौद्धिककाल' है, जो फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना, लल्लूजी 'लाल' एवं सदल मिश्र प्रभृति के गद्य, मुद्रणारम्भ, 'उदन्त मार्तण्ड' (1826 ई.) एवं 'बंगदूत' (1829 ई.) इत्यादि के समारम्भ से भी प्रमाणित है, परवर्ती सुधारवादी युग से भी। इस नाम की राष्ट्रीय इतिहास से पूर्ण संगति बैठ जाती है। 'बौद्धिककाल' आज भी सार्थक है, आगे रह सकता है। 'संक्रान्ति' में बचने के कारण 'पुनरुत्थान', 'पुनरुत्थान' के विकास के कारण 'शास्त्रीय' गति-प्रगति एवं तदनन्तर 'बौद्धिक' उत्कर्ष में बारह शताब्दियों का अनाहत साहित्यिक विकास सरलतापूर्वक हृदयंगम किया जा सकता है।

किसी मानक वैश्विक एवं राष्ट्रीय स्तर के हिन्दी-साहित्येतिहास का अभाव आधुनिककाल के इतिहास को देखकर निर्विवाद हो जाता है। भारतेंदु-युग की स्थापना मिश्रबन्धु कर चुके थे, जिसे शुक्ल जी ने ग्रहण कर लिया। किन्तु आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी से वैयक्तिक विरोध के कारण मिश्रबन्धु ने द्विवेदी-युग की चर्चा न की थी। यह गलत था। आ. शुक्ल ने द्विवेदी-युग माना। किन्तु निर्विवाद महानता के बावजूद, व्यक्ति पर आधृत युग इतिहास के सत्य को ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर पाता। 'भारतेन्दु-युग' राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, राजा लक्ष्मणसिंह, पारम्परिक शास्त्रीयग्रन्थकारों इत्यादि से न्याय नहीं कर पाता। द्विवेदी-युग रत्नाकर इत्यादि पारम्परिक रचनाकारों से न्याय नहीं कर पाता तथा पारसी थिएटर (जिसमें राधेश्याम कथावाचक इत्यादि भी सम्मिलित हैं) उसकी परिधि में नहीं आ पाते। व्यक्ति ही है, वह युग का समग्र रूप नहीं ग्रहण कर सकता। भारतेन्दु एवं द्विवेदी महान् साहित्य-नेता थे, सम्प्रति कालातीत किन्तु महत्त्वपूर्ण पुरानी व्यक्ति-आश्रित पाश्चात्य शैली पर उनसे युग को अभिहित करना किसी हद तक समझा भी जा सकता है। किन्तु विधाओं के 'इतिहास' तो बस गज़ब ही ढाते हैं : नाटक को उठाया और प्रसाद-युग तथा प्रसादोत्तर युग इत्यादि पर जा पटका! उपन्यास को उठाया और प्रेमचन्द-युग तथा प्रेमचन्दोत्तर-युग पर जा पटका! कविता को छायावाद-युग और छायावादोत्तर-युग में जा लपेटा! निबन्ध को शुक्ल-युग और शुक्लोत्तर-युग में बाँध दिया! आलोचना तो खैर शुक्ल-युग तथा शुक्लोत्तर-युग में बँधी सी है भी! और, खींच-खाँच कर तैयार हो गया 'इतिहास' तथा ठोंक-पीट कर बना दिए गए 'इतिहासकार'। किसी युग की विराट् साहित्यानुभूति को विधाओं में खंडित करना न इतिहाससम्मत है, न दर्शनसम्मत, न तर्कसंगत, न बौद्धिक। विधाएँ साहित्य तरु की शाखाएँ हैं, साहित्य-शरीर का अंग हैं। उनके लिए अलग-अलग व्यक्तिबद्ध 'इतिहास' गढ़ने ठीक नहीं। और, ऐसे 'इतिहास' गढ़ने में लगता ही क्या है? विधा को उठाया और व्यक्ति-विशेष के खूँटे से बाँध दिया! मेरे विचार से, आधुनिककाल अथवा बौद्धिककाल 1800-1850 ई. का समय सन्धि-युग था, जिसमें शास्त्रीयकाल आधुनिकता से जुड़ रहा था : प्रतापसिंह, रघुराजसिंह, द्विजदेव इत्यादि शास्त्रीयकाल के प्रतिनिधि हैं, तो लल्लू जी 'लाल', सदल मिश्र, युगल किशोर शुक्ल, राजा राममोहन राय इत्यादि बौद्धिककाल का 1850-1900 ई. का युग सुधारवादी युग था। राष्ट्रीय दृष्टि से आर्य समाज (1875 ई.), कांग्रेस (1885 ई.) इत्यादि के अस्पृश्यता-उन्मूलन, नारी-जागरण, राजनैतिक चेतना इत्यादि सुधार के प्रतीक थे तथा साहित्यिक दृष्टि से भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन इत्यादि इसी को शब्दसम्पन्न कर रहे थे। 1900-1920 ई. का समय राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा की दृष्टियों से आदर्शवादी युग था। तिलक, लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द, खुदीराम बोस इत्यादि राष्ट्रीय आदर्श के प्रतीक थे और महावीरप्रसाद द्विवेदी, हरिऔध, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि साहित्यिक आदर्श के राजनीति में गांधी और साहित्य में रवीन्द्र के प्रभाव के कारण 1920-1940 ई. का समय स्वच्छन्दतावादी युग रहा। गांधी का स्वदेशी आन्दोलन (प्रतीक चखी), ग्राम-स्वराज, असहयोग, "एक वर्ष में स्वराज्य" इत्यादि को न व्यावहारिक आदर्शवाद में समाहित किया जा सकता है, न व्यावहारिक या अव्यावहारिक या किसी भी प्रकार के यथार्थवाद में : वह शुद्ध स्वच्छन्दतावादी था, जिसके प्रेरक रूसो, ब्लेक, रस्किन, टॉल्स्टॉय इत्यादि स्वच्छन्दतावादी या उनसे मिलते-जुलते लोग थे। रवीन्द्र तो 'बंगाल के शैली'¹ विशेषण से ही स्वच्छन्दतावादी सिद्ध होते हैं उनका राष्ट्रवाद-विरोध या अन्तरराष्ट्रीयतावाद-समर्थन भी स्वच्छन्दतावादी ही है। अरविन्द का 'स्वर्ग का भूमिकरण' या 'भूमि का स्वर्गीकरण', सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (जिन्होंने 'भारत-भाग्य विधाता' प्रिंस ऑफ वेल्स का जयजयकार करते हुए 'जन-गण-मन-अधिनायक' गान के प्रणेता सर रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं प्रथम विश्वयुद्ध की स्वामिभक्तिपूर्ण एवं निष्ठापूर्ण सेवाओं के कारण 'कैसरे-हिन्द' से सम्मानित गांधी दोनों से प्रेरणा प्राप्त की 'सम्पूर्ण आदर्शवाद' (एक्सोल्सूट आइडीअलइज़म), देर-सवेर नेहरू का शान्तिवाद इत्यादि भी स्वच्छन्दतावादी ही थे। तिलक के यथार्थपुष्ट आदर्शवाद को गांधी ने इच्छित-चिन्तन से लबालब स्वच्छन्दतावाद में परिवर्तित कर दिया। 1942 ई. के स्वातन्त्र्य आन्दोलन में अहिंसा, अन्तरराष्ट्रीयतावाद, सम्पूर्ण-आदर्शवाद, शान्तिवाद इत्यादि का जनाज़ा निकलना राष्ट्रीय इतिहास में भी व्यक्ति-मुक्त यथार्थवादी युग

1. इधर 'शैले' का फ़्रेंशन ज़ोरों पर है।

का सूचक था, साहित्यिक इतिहास में भी। 1939 ई. से आरम्भ द्वितीय विश्वयुद्ध यथार्थवादी युग का ही विस्फोट था। अतः 1940 ई. से यथार्थवादी युग आरम्भ हुआ : आरम्भिक कच्चेपन के साथ इसका व्यक्तिवादपरक रूप प्रयोगवाद में विवृत हुआ, समाजवादपरक रूप प्रगतिवाद के रूप में तथा विविध विभाषागत पारम्परिक सृजन में भी इसकी छाप पड़ी।

मैंने 1960 ई. से अब तक प्रसरित चिन्तन, चिन्तन-परिवर्तन, मनन एवं विश्लेषण-संश्लेषण के आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास की यह रूपरेखा निर्धारित की है :

संक्रान्तिकाल (800-1300 ई.),
पुनरुत्थानकाल (1300-1600 ई.),
शास्त्रीयकाल (1600-1800 ई.),
बौद्धिककाल (1800 ई. से) :

सन्धियुग (1800-1850 ई.),
सुधारवादी युग (1850-1900 ई.),
आदर्शवादी युग (1900-1920 ई.),
स्वच्छन्दतावादी युग (1920-1940 ई.),
यथार्थवादी युग (1940 ई. से)।

‘व्यक्ति’ के प्रति सम्मान रखते हुए भी, मैं ‘इतिहास’ से ही सम्पृक्त रहा हूँ। विधाओं के पृथक् इतिहासों पर मेरा विश्वास नहीं है। साहित्य के एकल अथवा समग्र रूप का एकल अथवा समग्र विवेचन ही मेरा ध्येय रहा है। समय के आगे या पीछे की ओर छलाँगें लगाने से मैं विरत रहा हूँ। स्थूलतम स्तर की त्रुटियों से बचने की मैंने भरसक कोशिश की है। निस्सन्देह, इस विशाल कार्य में अनेकानेक त्रुटियाँ रह गई होंगी। वे आगे के विद्वान् सुधारेंगे। मेरा उद्देश्य एक मानक, विश्वस्तरीय, हिन्दी के विश्वभाषा- राष्ट्रभाषा रूपों के अनुरूप ‘इतिहास’ का प्रणयन रहा है। सफलता या विफलता का निर्णय निस्संग अधिकारियों पर, समय पर!

साहित्येतिहास सम्बद्ध साहित्य की आलोचना का (आकारानुरूप) विश्वकोश (या कोश) होता है (या उसे ऐसा होना चाहिए)। आलोचक का कार्य न्यायाधीश का कार्य होता है। योगभाषा में कहूँ तो, आलोचक को वृत्तिसारूप्यता से प्रमुक्त होना चाहिए, उसे आलोच्य के स्वरूप में अवस्थित हरेक सत्य का उद्घाटन करना चाहिए। मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ इत्यादि आलोचक ऐसे ही हैं, जो जितनी संवेदनशीलता के साथ प्रशंसा करते हैं, आवश्यकतानुसार उतनी ही कठोरता के साथ दोष-निरूपण भी। संस्कृत के आलोचकों ने अमर वस्तुवादी आलोचना लिखी है। उन्होंने बड़ों के लिए अलग तथा अन्यो के लिए अलग प्रतिमान नहीं बनाए। वे किसी संकीर्ण मत या वाद के बन्दी नहीं बने। खेद है कि हिन्दी-आलोचना वस्तुवाद की दृष्टि से सम्पन्न नहीं है। हिन्दी के प्रथम साहित्येतिहासकार ठाकुर शिवसिंह सेंगर परिचायक अधिक हैं, आलोचक कम या नहीं। ‘विनोद’ के अमर प्रणेता मिश्रबन्धु (गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र एवं शुक्रदेवबिहारी मिश्र-बन्धुत्रय) चिरस्मरणीय साहित्येतिहासकार होने के साथ उच्चकोटि के आलोचक भी थे, किन्तु उनकी परम्परावादी-अलंकारवादी अभिरुचि सार्वभौम आलोचना का व्यवधान बन गई है।

आलोचना में परम्परावाद से अभिप्राय है : कृतित्व में रस तथा काव्यगुणों की परख, दोष-निरूपण, अलंकार-चर्चा, भाषा तथा छन्द की समीक्षा और इन सब की समाहित के अनुरूप आकलन। जनता में अब भी परम्परावादी आलोचना का ही प्रचलन है। मिश्रबन्धु एवं आ. शुक्ल ने इसी पद्धति का अवलम्बन किया है। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अधिकतर पुस्तक-आलोचनाएँ लिखी हैं, अनेक कवियों एवं उनके कृतित्वों पर परिचयात्मक आलोचनाएँ लिखी हैं, उनकी आह्वानपरक आलोचना (‘कवि-कर्तव्य’, ‘कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता’ इत्यादि) ने इतिहास बनाया है; किन्तु वे व्यवस्थित एवं शास्त्रीय, विषयबद्ध एवं सोद्देश्य आलोचक न थे। आचार्य श्यामसुन्दरदास परम्परा को प्रगति से सम्पृक्त कर आलोचना के एक अमर विकासक बने—उनकी आलोचना वस्तुवाद की दृष्टि से विशेष प्रशंस्य है, किन्तु उसमें वंकिमता नहीं है। आ. पद्मसिंह शर्मा प्रशस्तिवादी आलोचक हैं, जिनकी तुलनात्मक आलोचना को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है, किन्तु उनकी आलोचना न व्यापक है, न व्यवस्थित। उनका कोई प्रभाव भी नहीं पड़ा। प्रशस्ति आलोचना नहीं होती। लाला भगवानदीन ‘दीन’ एवं कृष्णबिहारी मिश्र मिश्रबन्धु की क्रिया एवं प्रतिक्रिया के प्रतीक- आलोचक हैं। दोनों ने वस्तुवाद की अवहेलना तो नहीं की, किन्तु पूर्वाग्रह पर ध्यान रखा है। पं. कृष्णशंकर शुक्ल की आलोचना बहुत-कुछ मिश्रबन्धु एवं आ. शुक्ल के पथ पर हो चली है, किन्तु मौलिक है। डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’ भी प्रायः इसी पथ पर चले हैं, किन्तु उनकी आलोचना दर्शन पर विशेष प्रकाश डालती है। इन सभी आलोचकों ने रस को केन्द्र में रखा है तथा अलंकार, भाषा, छन्द इत्यादि का भी ध्यान रखा है। तुलनात्मक आलोचना को समहित करना इनकी विशेषता है। मिश्रबन्धु ने केशवदास को हिन्दी का मिल्टन माना है, श्यामसुन्दरदास ने रत्नाकर की टेनीसन से तुलना की है, पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी और गालिब की तुलना की है, भगवानदीन ‘दीन’ ने ‘बिहारी’ और

‘देव’ तथा कृष्णबिहारी मिश्र ने ‘देव और बिहारी’ की रचना तो तुलना को ही केन्द्र बनाकर की है। रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी और सूर की तुलना की है तथा सामान्यतः ग्रीसर्सन एवं विशेषतः मिश्रबन्धु तथा श्यामसुन्दरदास के सदृश ही तुलसी की सर्वश्रेष्ठता का सतर्क प्रतिपादन किया है।

मिश्रबन्धु कोरे परम्परावादी नहीं हैं। वे अपनी आलोचना में, पाश्चात्य आलोचना के प्रभाव से, ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि का विशद चित्रण करते हुए उसके आलोक में सम्बद्ध काल या कवि का आकलन करते हैं। कवि के कथ्य एवं इममें उसकी सफलता का विवेचन उनकी आलोचना की प्रमुख विशेषता है। मिश्रबन्धु अंग्रेजी के भी विद्वान् थे—विशेषतः श्यामबिहारी मिश्र एवं शुकदेवबिहारी मिश्र (दोनों उच्चशिक्षाप्राप्त एवं उच्चपदाधिकारी)। अतः अनध्ययन एवं अज्ञान के कारण मिश्रबन्धु की आलोचना में पाश्चात्य आलोचना-तत्त्वों के अभाव की चर्चा निराधार भी है, भ्रामक भी। हाँ, वे अपेक्षाकृत वस्तुवादी थे, संकीर्ण वाद-बुद्ध नहीं। भारत एवं भारती ही उनके आराध्य थे। हिन्दी-आलोचकों में महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु (विशेषतः श्यामबिहारी एवं शुकदेवबिहारी), श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र एवं रामविलास शर्मा अंग्रेजी के अच्छे जानकार रहे हैं। द्विवेदी जी की अंग्रेजी-पत्रावली (विशेषतः श्रीधर पाठक से सम्बद्ध) परिनिष्ठित अंग्रेजी के स्फीत ज्ञान की सूचना देती है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, कृष्णबिहारी मिश्र, डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’, पं. कृष्णशंकर शुक्ल, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदानसिंह चौहान इत्यादि का अंग्रेजी-ज्ञान भी पर्याप्त था। भगवानदीन ‘दीन’, पद्मसिंह शर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, क्षेमचन्द्र ‘सुमन’ भी अंग्रेजी से परिचित रहे हैं। मिश्रबन्धु के पृष्ठभूमि-पाश्चर्भूमिनिरूपण एवं वैश्विक आकलन की समता हिन्दी का कोई आलोचक नहीं कर सकता। वह स्फीत भी है, पर्याप्त वस्तुपरक भी। उनका इतिहास-ज्ञान भी स्फीत है। शुक्ल जी ने प्रायः मिश्रबन्धु का पथ अपनाया है, यद्यपि जॉन्सन, मैथ्यू आर्नोल्ड एवं रिचर्ड्स से अपने लोकमंगलवाद को स्पष्ट करते हुए, उन्होंने डंटन, ब्रैडले, क्रोचे (क्रोशे) इत्यादि के अतिव्यक्तिवादी दृष्टिकोणों का प्रत्याख्यान विदग्धता एवं मौलिकता के साथ किया है। निस्सन्देह, प्रातिभ-आलोचना की दृष्टि से आ. शुक्ल की समता कोई नहीं कर सकता। प्राच्य-पाश्चात्य-समन्वित सैद्धान्तिक आलोचना के वास्तविक प्रवर्तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ही हैं, क्योंकि मिश्रबन्धु ने पाश्चात्य आलोचना का प्रभाव केवल ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि के आलोक में सम्बद्ध काल या कवि के आकलन तक सीमित रखा था और आलोचना-भूमि रस, अलंकार, भाषा, गुणदोष-निरूपणादि से युक्त शतशः भारतीय ही रखी थी। शिक्षा एवं जीवन पर बढ़ते पाश्चात्य प्रभाव के कारण आ. शुक्ल को वैसी ही वरीयता प्राप्त तो हुई जैसी भारतविद् की तुलना में पश्चिमविद् को प्राप्त होती ही रहती है, किन्तु मिश्रबन्धु की भारतवादी आलोचना की अपनी एक अलग छवि है, इसमें सन्देह नहीं। कदाचित् कभी भारतवाद को वरीयता प्राप्त हो सकी, तो मिश्रबन्धु का सम्यक् आकलन सरल एवं सार्वभौम हो जाएगा।

मिश्रबन्धु का सूफी दर्शन एवं काव्य का विवेचन आ. शुक्ल के एतद्विषयक विवेचन से कम भड़कीला पर अधिक वस्तुपरक है। सूफियों का उद्देश्य मोहम्मदीयत का प्रचार था। वे उतने उदार न थे जितने बताए जाते हैं और जायसी तो लगभग एक कट्टर साम्प्रदायिक व्यक्ति थे। मुस्लिम उदारता के जैसे दर्शन अकबर, रहीम, रसखान, ताज बेगम, नज़ीर अकबराबादी, मुंशी अजमेरी इत्यादि में होते हैं वैसे मुईनुद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया, मुल्ला दाऊद, जायसी इत्यादि में नहीं, और नूरमोहम्मद इत्यादि तो घोर साम्प्रदायिक ही हैं। मानवतावाद सर्वश्रेष्ठ दर्शन है। हिन्दी-मुस्लिम इत्यादि एक हैं, मानव हैं, भारतवासी होने के कारण भाई-भाई हैं। एकता और भाईचारा पवित्र ही नहीं प्रत्युत उपयोगी भी हैं। फूट और दुश्मनी से राष्ट्र की भी क्षति है, हिन्दू की भी क्षति है, मुसलमान की भी क्षति है—राष्ट्रीय क्षति सबकी क्षति है। भारत के विभाजन से न भारत सुखी है, न पाकिस्तान, न भूखों मरता और अपनी प्रियमाण जनसंख्या के फ़ालतू भाग को कुशासित भारत में ढकेलता बांग्लादेश। संयुक्त राज्य अमेरिका प्रभृति महान् देशों में भारत से भी अधिक भिन्नता है किन्तु वह राष्ट्र की एकता में बाधक न होकर साधक बन चुकी है तथा राष्ट्रभाषा को विश्वभाषा बनाने में भी सहायक सिद्ध हुई है। किन्तु हमारे देश में ऐसा क्यों नहीं है? कारण पाखण्ड है! हम सत्य को झूठ और झूठ को सत्य बनाने के फेर में साम्प्रदायिकता की भयंकरतम वृद्धि करते आ रहे हैं। हमारे नेताओं का धर्म-विश्लेषण मिथ्या एवं पाखण्डपूर्ण है। सबसे बड़ा पाखण्ड हिन्दुओं पर अस्पृश्यता के उद्भव एवं उन्नयन के आरोप का है। ऋग्वेद, उपनिषद्, रामायण एवं महाभारत में अस्पृश्यता का कोई उल्लेख नहीं है। ऋग्वेद के ऊर्ध्वग्रावा एवं ज्ञानश्रुति, उपनिषद् के सत्यकाम जाबाल, रामायण के गुह इत्यादि-इत्यादि (स्वयं वाल्मीकि), महाभारत के विदुर इत्यादि-इत्यादि (स्वयं व्यास शूद्रा-माता के पुत्र थे) अकाट्य प्रमाण हैं। वाल्मीकि-रामायण का ऊलजुलूल कथाओं का पुलिंदा उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है, इसे सारे अध्येता जानते हैं क्योंकि युद्धकाण्ड में ही काव्य समाप्त हो जाता है, राम इत्यादि अयोध्या वापस आ जाते हैं, रामराज्य स्थापित हो जाता है। सीतात्याग की कल्पना परवर्ती पत्नीत्यागी बुद्ध एवं महावीर के प्रभाव से बौद्धों

एवं जैनों ने जोड़ी और नारी-अत्याचार-युगों में हिन्दुओं ने भी उसे भारी फूँक दी। बुद्ध एवं महावीर के प्रभाव के कारण नारी का बड़ा हास हुआ। सीतात्याग न वैदिक है, न आर्य। तुलसी के मानस तक ने इसकी उपेक्षा की है। कई पोंगा-पण्डित “सिमनिंदक अद्योध नसाएँ लोक बिसोक बनाई बसाएँ।” की अर्द्धाली के तिल को ताड़ बनाते हुए तुलसी को सीतात्याग से जोड़ने का यत्न करते हैं, किन्तु इसका अर्थ निंदक हेतु विशेष शोकरहित लोक बनाने और उसमें उसको बसाने (क्योंकि उसे स्वर्ग या बैकुंठ नहीं भेजा जा सकता था) का वर्णन मात्र है जो राम के कृपालु होने को उजागर करता है (यदि सीतात्याग का वर्णन करना होता तो सीधा करते—कालिदास एवं भवभूति कर चुके थे)। बाल की खाल निकालने वाले सदा रहे हैं। हर्ष है कि अब वे कम होते जा रहे हैं जिसका कारण जनता का बौद्धिक विकास है। शम्बूक-कथा तो राम का घोर अपमान करनेवाली अनैतिहासिक, अवैदिक एवं अमानवीय कथा है। तुलसी के मानस तक ने इसकी उपेक्षा की है। अस्पृश्यता बौद्धों एवं जैनों की देन है, क्योंकि इन्होंने भोजन तक में हिंसा-अहिंसा का बावला उठाया और आखेट करनेवाले मांसाहारियों को चांडाल¹ घोषित किया, जो क्रमशः अस्पृश्य समझे जाने लगे। वैष्णवों ने ऋषभदेव (आदिनाथ) और बुद्ध को विष्णु का अवतार घोषित किया तथा शाकाहार अपनाया। इसी के साथ अस्पृश्यता हिन्दूधर्म में घुसी। अस्पृश्यता के पाप से न बौद्ध मुक्त हैं, न जैन, न हिन्दू। बौद्धों ने रामकथा को कितना विकृत किया, इसका एक बड़ा प्रमाण दशरथ-जातक है (जिसमें राम-सीता भाई-बहन हैं और ऋग्वेद का यम-यमी-संवाद प्रमाण है कि यहूदियों तथा अनेक भारतीय पार्वत्य जातियों में प्रचलित भाई-बहन-विवाह अवैदिक है)। जैनों ने रामकथा को कितना विकृत किया, इसका एक बड़ा प्रमाण पद्मपुराण है (जिसके कुछ अंश इतने अश्लील हैं कि लिखे नहीं जा सकते)। जैन राम को विवेक का प्रतीक पद्म या पउम कहते हैं जिसके प्रमाण प्रायः द्वितीय शताब्दी में रचित विमल सूरि कृत ‘पउम-चरित’ (पद्मचरित जो प्राकृत में है) एवं प्रायः नवम शताब्दी में रचित स्वयंभू कृत ‘पउम-चरित’ (जो अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी में है) ही हैं, जिनमें राम अहिंसक हैं तथा रावणदि का वध लक्ष्मण करते हैं (और हिंसा के कारण नरकगामी होते हैं)। भारतेन्दु ने जैनों द्वारा धर्मग्रन्थों के विकृत करने पर दुःख व्यक्त किया है। विवेकानन्द, नेहरू, अम्बेडकर (14 अप्रैल 1894-13 दिसम्बर 1956, जन्म महु, देहान्त दिल्ली) इत्यादि नेताओं की एकान्त बुद्धस्तुति गहन अध्ययन की सूचना नहीं देती। अशोक-स्तुति तो वस्तुतः निराधार ही है क्योंकि वह साम्प्रदायिक भी था, धार्मिक हिंसा भी करता था, वृद्धावस्था में युवा तिष्यरक्षिता को पकड़ लाया था (कालांतर में वह किसी पूर्व-महारानी के युवा पुत्र कुणाल पर आसक्त हुई तथा प्रणयवचिता होने पर उसने षड्यन्त्र करके कुणाल की आँखें निकलवा डालीं—भंडाफोड़ होने पर वृद्ध कामुक अशोक विकराल हो उठा और उसे तक्षशिला में ठीक उसी स्थान पर जिन्दा जलवा दिया जिस स्थान पर कुणाल की आँखें फोड़ी गई थीं)। जीवन में अतृप्तकामवासना की ज्वाला में जलनेवाली तिष्यरक्षिता का मरण प्रकट अग्नि की ज्वाला में हुआ! और, अशोक महान् है! बुद्ध (बौद्ध), मुरहा (मौर्य), ‘देवानाप्रिय’ (मूखी) इत्यादि शब्दों का प्रचार यों ही नहीं हुआ। राम हों या कृष्ण, बुद्ध हों या महावीर, ईसा हों या मोहम्मद—सब मनुष्य थे। सबके जीवन में दुर्बलताएँ भी विद्यमान थीं। किसी एक को सातवें आसमान पर चढ़ाने से साम्प्रदायिकता बढ़ती है। निराधार एवं प्रक्षिप्त सीतात्यागकथा के आधार पर राम की निंदा एवं साधार एवं प्रामाणिक यशोधरात्याग के बावजूद बुद्ध की स्तुति घोर साम्प्रदायिक है। इतिहास साक्षी है कि राजनीति में अहिंसा राष्ट्र की पाखण्डमयी क्षति मात्र करती रही है। इसीलिए श्वेताम्बर सम्प्रदाय के तेरापंथ के युगप्रधान स्व. आचार्य तुलसी तक ने शत्रुनाश के आह्वानगीत गाए हैं। फिर, हिंसा-अहिंसा का बावला या बुद्ध, गांधी इत्यादि की राजनीति-प्रेरित स्तुति का क्या तुक? सद्गुण-प्रचार को राजनीति में लपेटना भयावह है। भारत का दयनीय रूप इसका प्रमाण है। हमारे दुच्चे एवं देशद्रोही नेता हिन्दू-बलिप्रथा की निंदा करेंगे और बाइबिल एवं कुरान की नरबलियुगीन क्रमशः इब्राहीम-इशहाक-कथा एवं इब्राहीम-इस्माइल-कथा की स्तुति। उनके ईद-उज्जुहा के सन्देश असत्य एवं पाखण्ड के प्रतीक होते हैं। वे प्रकृत्या मानवतावादी हिन्दूधर्म की निन्दा करेंगे और ईसाई-इतर व्यक्तियों के लिए नरक का प्रावधान करनेवाली ईसाईयत की प्रशंसा! मोहम्मदीयत गैर-मुसलमानों के लिए नरक की घोषणा करती है, मानवता को मोमिन और काफिर में बाँटती है, विश्व को दारुलइस्लाम और दारुलहरब में खण्डित करती है—स्वयं मोहम्मद का जीवन इतना विवादास्पद था कि कट्टर मुस्लिम देशों में उनकी आलोचना पर मृत्युदण्ड के प्रावधान की विवशता के दर्शन होते हैं, पर मोहम्मदीयत को प्रेम और भाईचारे का मज़हब बताया जाता है! धर्मनिरपेक्षता सत्य के शव पर स्थापित नहीं की जा सकती—भारत इस कथन का प्रमाण है। धर्मनिरपेक्षता एक पवित्र वस्तु है : अतीत की भूलों से शिक्षा लेना श्रेयस्कर भी है, व्यावहारिक भी—हम सब भारतवासी एक हैं! किन्तु एक भी राजनैतिक दल ऐसा नहीं हुआ जिसने धर्मनिरपेक्षता की आड़ में

1. चंड या भयानक कर्म करनेवाला।

साम्प्रदायिकता को बढ़ावा न दिया हो: परिणाम सामने हैं।

भयानक साम्प्रदायिक एवं देशद्रोही वे हैं जो जातक-कथाओं, वाइविल-कथाओं, कुरान-कथाओं इत्यादि को तो ऐतिहासिक मानते हैं तथा पुराण-कथाओं को काल्पनिक! प्रायः सारी धर्मकथाएँ काल्पनिक हैं : राम या कृष्ण का अवतार होना (फिर, निरे युद्ध क्यों?), बुद्ध का बोध (शेष मानव-जाति को अबोध मानना आपराधिक मिथ्यात्व है), ईसा का ईश्वर का एकमात्र पुत्र होना (क्या ईश्वर ईसा से पूर्व नपुंसक था तथा उनके मृत्युदण्ड के अनन्तर पुनः नपुंसक हो गया? प्रत्येक प्राणी ईश्वरपुत्र है!), मोहम्मद का नबी होना (तो उन्हें सत्तर युद्ध क्यों लड़ने पड़े? और 'खातिमुन्नबी' क्यों? मानवता आज सर्वाधिक समस्याग्रस्त है।) इत्यादि में एक का खण्डन तथा दूसरे का मण्डन ही साम्प्रदायिकता है। सारे सिख-गुरु खत्री थे और अनेक अन्तिम गुरु तो केवल सोढ़ी ही हुए। सिखों में खत्री, अरोड़ा, जाट इत्यादि जातियाँ तथा अकाली, सतनामी, मज़हबी इत्यादि वर्ग बाकायदा कायम हैं। अतः सिखपंथ को मानवतावादी बताना अनैतिहासिक है। हिन्दू-सिख सबमें दुर्बलताएँ-सबलताएँ हैं। सम्प्रदायिकता है किसी एक को परम-पावन या आदर्श घोषित करना! मानव एक है, उसकी सबलताएँ एक हैं, उसकी दुर्बलताएँ एक हैं। विज्ञान, मनोविज्ञान एवं रक्त मानव को एक घोषित करते हैं। अतः धर्मनिन्दा या धर्मप्रशंसा ही साम्प्रदायिकता है, जिसका प्रचार-प्रसार कांग्रेसी भी करते आ रहे हैं, कॉम्युनिस्ट भी, संघी भी, और खेद है कि 'राजनैतिक' पुरस्कारों (सारे बड़े साहित्य-पुरस्कार वस्तुतः राजनैतिक हैं), अलंकारों (पद्मश्री इत्यादि), शैक्षिक पदों (विश्वविद्यालयगत, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग-गत, विदेशी), संसद-सदस्यता (मनोनीत) इत्यादि के व्यामोह में साहित्यकार भी इनके पुछल्ले बने रहे हैं। स्वतन्त्र भारत में साहित्यिक तेजस्विता का हास दुर्भाग्यपूर्ण रहा है। इससे साहित्य की प्रभावान्विति का हास होना स्वाभाविक है। मिश्रबन्धु राजनीतिमुक्त थे। आ. शुक्ल नेहरू से प्रभावित हो गए थे, यद्यपि प्रेमचन्द के सदृश अभिभूत नहीं हुए थे। शुक्ल जी की जायसी-स्तुति आलोचना' शब्द के साथ पूरा न्याय नहीं कर सकी। किन्तु तासी, सर सैयद अहमद ख़ाँ इत्यादि साम्प्रदायिक (मूर्तिपूजाविरोधी इत्यादि) एवं हिन्दीशत्रुओं के समुचित प्रत्याख्यान के आलोचक-दायित्व का उन्होंने प्रशस्य निर्वाह किया है।

राम पर सर्वाधिक साहित्य, यही नहीं, श्रेष्ठतम साहित्य क्यों रचा गया? क्योंकि वे समग्र मानवतावादी थे जो निषाद, कोल, किरात, गृद्ध (भास), शबर, वानर, ऋक्ष, असुर, पिशाच इत्यादि जातियों, वर्गों, नृवंशों इत्यादि को एक कर सके, जनकपुर (नेपाल) से लंका तक विराट् भारतीय राष्ट्र का निर्माण कर सके। अहल्या के घर जाकर उसकी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करने वाले एवं आदिवासिनी शबरी के कुटीर पर जाकर उसे अमर करने वाले राम की समता का नारी-सम्मानकर्ता इतिहास एवं कल्पना दोनों में दूसरा नहीं मिलता। कैकेयी-सम्मान तो अतुलनीय है ही! किन्नर, यक्ष, नाग, गंधर्व इत्यादि का समन्वय पहले से ही चला आ रहा था। उनकी व्यक्तिगत महानता की अप्रमेयता रामकथा की अनादि-अनन्त व्यापकता से भी सिद्ध है। उनकी प्राचीनता 'काकुत्स्थ', वल्कल, हनुमान्-स्कंधारूढ़ युद्ध इत्यादि से ही सिद्ध है। राम इतिहास, कल्पना, कला, कविता, कथा इत्यादि के सीमान्त हैं। उनके बिना न बौद्धों का काम चला, न जैनों का, न कबीर-नानक इत्यादि पंथप्रवर्तकों का, न गांधी का (यद्यपि इन सबने उन पर अंश-शंका भी लिखा है)। राम की धर्मनिरपेक्षता इसी से सिद्ध है कि वे सारे तथाकथित धर्मों, मज़हबों, वादों के उद्भव से बहुत पहले हुए थे तथा न स्वर्ग का टिकट बाँटते फिरते थे, न नरक का हौवा खड़ा करके अपना उल्लू सीधा करते घूमते थे, सत्कर्म के ध्येय पर चलते हुए दूसरों को भी चलने की अनायास-प्रेरणा देते थे। डॉ. राममनोहर लोहिया के अनुसार, राम से आगे न इतिहास पहुँच सका है न कल्पना! लोहिया ने चित्रकूट का रामायण-मेला आरम्भ किया था। यह सन्तोष का विषय है कि मिश्रबन्धु एवं शुक्लजी ने राम और तुलसी का प्रशस्य आकलन किया है। कुछ परवर्ती अनध्येता छुटभैये और सरकारी विद्वान् (तथाकथित एवं सरकारी इतिहासकार भी) राम और तुलसी पर बेतरह टूट पड़े और टूट-टूट कर रह गए हैं।

मिश्रबन्धु की परम्परावादी आलोचना या रस-अलंकार-गुणदोष इत्यादि की समन्वित आलोचना-पद्धति आ. शुक्ल से होती हुई जनता में आज भी प्रचलित है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी भी एक सीमा तक उसी पर चले। किन्तु नन्ददुलारे, नगेन्द्र और रामविलास शर्मा परिसर-आलोचना (विश्वविद्यालय-परिसरों अथवा पाठ्यक्रमों में सीमित आलोचना) में सीमित रह गए। वैसे, परिसर-आलोचना के प्रवर्तक आ. रामचन्द्र शुक्ल ही थे, किन्तु वे तत्त्वतः भारतवादी थे तथा श्रेष्ठतर विद्वान् एवं श्रेष्ठतर चिन्तक होने के कारण अस्मितासम्पन्न भी थे। उन्होंने मिश्रबन्धु की परम्परावादी आलोचना को पाश्चात्य आलोचना-सिद्धान्तों के मौलिक ऊहापोह के कारण बहुत आगे तक बढ़ाया भी था। जब तक जनता रस से सम्पृक्त है, अलंकारों से बिदकती नहीं है, गुण दोष-निरूपण को हेय नहीं समझती, तब तक पारम्परिक आलोचना से खार खाना बेकार भी है, जनविरोधी भी। रसों के आधार हैं स्थायीभाव, जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चिरन्तन हैं। अलंकार वाणी के अंग हैं (यदि भंग न करते हों तो)। गुण-दोष जीवन के प्रतीक हैं। इनसे पूर्वाग्रह कैसा? हाँ,

इनको नवचिन्तन से सम्पन्नतर किया जा सकता है, जैसा आ. शुक्ल ने किया है। इनसे बचकर भी आलोचना लिखी जा सकती है, जैसी डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखी है। नगेन्द्र का फ्रायड वगैरह के आसपास चक्कर लगाकर 'रस-सिद्धान्त' की शरण में आना रस की शक्ति का परिचायक है। खेद है कि आजकल चार प्रकार का साहित्य लिखा जा रहा है जो अद्वय के अनुकूल न होने के कारण साहित्य के एक एवं विराट् 'व्यक्तित्व' की क्षति कर रहा है :

1. पारम्परिक साहित्य।
2. सम्मेलनी साहित्य।
3. जनसाहित्य (विभाषा-साहित्यों समेत)।
4. परिसर-साहित्य (शिक्षा एवं मीडिया में समादृत)।

मिश्रबन्धु ने साहित्य के व्यक्तित्व को खण्डित करने का यत्न नहीं किया। उनकी साहित्येतिहास एवं आलोचना की साधना पारम्परिक, सम्मेलनी एवं जन साहित्यों के समाहार का विवेचन करती है। आ. शुक्ल को वर्गीकरण-ग्रन्थि प्रायः सर्वत्र द्वैत की आखेट होती लगती है : कहीं 'सैद्धान्तिक' बताकर सिद्धों, नाथों, जैनों के साहित्य को अपने 'परिसर' से खेदने में हॉफती¹ दीखती है; कहीं 'सूक्ति' को अपने 'काव्य'-क्षेत्र से ढकेलती दीखती है; कहीं 'अलंकृत' कविता पर लट्ठ लेकर पिली पड़ी दीखती है। इसका प्रधान कारण पाश्चात्य प्रणाली की वह शिक्षा है जो भारतीय जनजीवन से अलग-थलग रही है तथा अब (वास्तविक या तथाकथित स्वतन्त्र भारत में) बेहद दूरी पर जा खड़ी हुई है। फिर भी, भारतवादी होने के कारण शुक्ल जी जन-जीवन में भी थोड़ा-बहुत प्रवेश पा सके हैं। भारतवादी होने के कारण डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पर उनकी अपनी अपेक्षाकृत संकीर्ण सीमा में यही बात कही जा सकती है। आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. रामविलास शर्मा विशुद्ध 'परिसर-आलोचक' एवं 'वाद-आलोचक' हैं। जनवाद का राग गला फाड़-फाड़ कर अलापने वालों में कोई जन-जीवन में प्रवेश नहीं पा सका—यह प्रवेश मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, निराला, दिनकर प्रभृति कुछ वाद-मुक्तों तक सीमित होकर रह गया है! क्यों? भारत में भारतवादी साहित्यकार ही जन-जीवन में प्रवेश पा सकता है। शेष सरकारी लाभ उठा सकते हैं, विदेशयात्रा कर सकते हैं, देशी-विदेशी पुरस्कार झटक सकते हैं और "परस्पर प्रशंसन्ति" वाली 'महानता' का तमगा भी लगा सकते हैं।

'अलंकार' शब्द सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ना या तो स्वरुचि के वंदी होने का सूचक है या अज्ञान का। सहज वार्ता तक में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, यमक, श्लेष अतिशयोक्ति, अत्युक्ति इत्यादि अलंकारों का प्रयोग होता रहता है। कविता में अलंकार अनायास आ जाते हैं। अनुप्रास तो सहजालंकार ही कहा जा सकता है—अंत्यानुप्रास (तुक) प्रमाण है ही। केशव, भूषण, पद्माकर इत्यादि का अलंकृत-काव्य साहित्य की शोभा है। अलंकृत-काव्य एक शैली के रूप में भी स्वीकार किया जाना चाहिए। अपनी रुचि कविता पर धोपने से अन्याय को प्रश्रय मिलता है। केशव के साथ शुक्ल जी का अन्याय एक निदर्शन माना जा सकता है। इस सम्मानित, लोकप्रिय एवं लोक-विख्यात महाकवि के साथ विश्वविद्यालय-परिसर के आलोचकों ने कुछ तो शुक्ल जी की अनुकृति तो कुछ अलंकारों के अज्ञान के कारणों से जैसा अन्याय किया है, वैसा संसार में किसी महाकवि के साथ नहीं किया गया। होमर, मिल्टन इत्यादि की अलंकृत कविता का पश्चिम में आज का सम्मान है। भारवि, श्रीहर्ष इत्यादि की अलंकृत कविता भी संस्कृत में आज तक समादृत है। स्वयं तुलसीदास की कविता अत्यन्त अलंकृत है। सूर, जायसी, भारतेन्दु, मैथिलीशरण, प्रसाद, आचार्य विद्यासागर इत्यादि की कविता भी पर्याप्त अलंकृत है।

मिश्रबन्धु की परम्परावादी-अलंकारवादी आलोचना पूर्वाधुनिक कविता के आकलन के लिए जितनी सटीक है उतनी आधुनिक कविता के लिए नहीं, क्योंकि यह समस्याप्रधान एवं प्रवृत्तिप्रधान है। साहित्य की काव्येतर विधाओं की आलोचना में भी मिश्रबन्धु को सफलता नहीं मिली। आचार्य शुक्ल रसवादी-लोकमंगलवादी आलोचक हैं। रसवादी आग्रह के कारण वे केशव के प्रासंगिक रसवाद तक को भूल गए! उनके रीतिकाल का समारम्भ चिन्तामणि त्रिपाठी से होना तो विस्मयकारी ही है, जिसे किसी ने नहीं स्वीकार किया। मिश्रबन्धु ने अपने अलंकृतकाल का समारम्भ सेनापति से किया है, श्यामसुन्दर दास एवं भगीरथ मिश्र प्रभृति ने रीतिकाल का समारम्भ केशवदास से किया है। केशवदास रसविरोधी नहीं है, यह 'कविप्रिया' एवं 'रसिकप्रिया' से ही नहीं, प्रत्युत 'रामचन्द्रिका' से भी प्रमाणित है। हिन्दी के उत्तरमध्यकाल का समारम्भ केशवदास से ही किया जाना उचित है, क्योंकि वे ही इसके उद्घाटनकर्ता भी थे, प्रेरक भी।

1. इनका विवेचन भी करते हैं, इन्हें रगेदते भी हैं।

इसे साहित्य जगत् ने प्रायः एक स्वर से स्वीकारा भी है।

आ. शुक्ल का रसवाद के प्रति आग्रह कवीरदास, केशवदास, बिहारी इत्यादि के साथ अन्याय कर गया है। उनका लोकमंगलवाद के प्रति आग्रह सिद्धान्ततः प्रशस्य है, किन्तु उसके कारण प्रायः समूचे रीतिकाल का विवेचन पर्याप्त सम्वेदन की दृष्टि से विपन्न रह गया है। वाद चाहे जो हो, पूर्वग्रह की स्थिति में विवाद बन जाता है।

यद्यपि आ. नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'महाकवि सूरदास' शीर्षक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ का प्रणयन किया है, तथापि वे छायावाद (स्वच्छन्दतावाद) एवं इसके कविद्वय प्रसाद एवं निराला के 'प्रस्थान' आलोचक के रूप में ही स्मरणीय हैं। सूर पर मिश्रबन्धु, शुक्ल, डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. ब्रजेश्वर शर्मा, डॉ. हरबंशलाल शर्मा, प्रभुदयाल मीतल प्रभृति ने प्रभूत शोधसामग्री प्रस्तुत की है, स्फीत आलोचना प्रस्तुत की है। डॉ. दीनदयाल गुप्त एवं श्री भगवतीप्रसाद देवपुरा ने अष्टछाप को तपपूर्वक उजागर किया है। यद्यपि आ. नन्ददुलारे वाजपेयी ने सूर पर गम्भीरतर शोध एवं आलोचनात्मक विवेचन किया है, तथापि वह प्रासंगिक है। सैद्धान्तिक दृष्टि से, आ. वाजपेयी ने स्वच्छन्दतावाद एवं अभिव्यंजनावाद पर विद्वत्तापूर्ण ऊहापोह किया है। आ. शुक्ल ने दोनों पर प्रहार किए थे। आ. वाजपेयी ने प्रहारों का निराकरण किया, जो प्रशस्य है। आ. शुक्ल और पं. कृष्णशंकर शुक्ल (आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास) ने पंत को वरीयता प्राप्त प्रदान की, वाजपेयी जी ने प्रसाद और निराला को कॉम्प्यूनिस्टों ने निराला को। किन्तु स्वच्छन्दता की झोंक में वे आदर्शवादी युग (द्विवेदी-युग) की कविता पर बेतहर पिल पड़े हैं। विश्वायामी एवं द्रष्टा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के गद्य-पद्य के वाक्यविन्यास की एकता के प्रतिपादन पर उनका प्रहार तर्कहीन एवं वस्तुवाद-विरोधी है। वर्डस्वर्थ—जैसे स्वच्छन्दतावाद-सीमान्त ने गद्य-पद्य के वाक्यविन्यास की एकता का प्रतिपादन किया है। प्राचीन एवं मध्यकालीन कविता की व्याख्या उसके गद्यरूप (अन्वय या प्रोज-आर्डर) के साथ की जाती है और अधुनातन कविता में गद्य-पद्य की दूरी बेहद कम रह गई है। हरिऔध के पवनदूत पर वाजपेयी जी का आक्रोश नितान्त भ्रामक है, क्योंकि कविता परम्परा से सदैव सम्पृक्त रही है। महाकवि एक साथ ही परम्परा का रक्षक एवं प्रगति का वाहक होता है। मैथिलीशरण गुप्त के षड्भक्त-वर्णन पर उनकी लट्ठबाजी एकदम बेकार है, क्योंकि भारत विश्व का एकमात्र देश है जिसमें दो-दो महीने की छह ऋतुएँ¹ होती हैं, जिनका वर्णन सर्वथा समीचीन है। नएपन की झोंक में आ. वाजपेयी यह भूल गए कि स्वयं प्रसाद में परम्परा स्फीत रूप में विद्यमान है, उन्होंने रस का भी ध्यान रखा है, अलंकार का भी। स्व. डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा के 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' करने पर यह कहते हुए विरोध करना कि प्रसाद के नाटक स्वच्छन्दतावादी हैं, सर्वतः निराधार है, क्योंकि 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में प्रसाद ने 'नाटकों में रस' का विवेचन किया है तथा वे रसविरोधी कहीं नहीं हुए। नाट्यवर्जनाओं पर तो भास (उरुभंगम्), शूद्रक (मृच्छकटिकम्) प्रभृति तक ने ध्यान नहीं दिया। आधुनिक नाट्यकार नाट्यवर्जनाओं पर ध्यान नहीं देता, क्योंकि वह यथार्थ-चित्रण को वरीयता प्रदान करता है। अनेक आधुनिक नाट्यकार रस का ध्यान नहीं रखते। कोई हर्ज नहीं। किन्तु प्रसाद रखते थे। विडम्बना यह है कि 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध'² की विस्तृत भूमिका आ. नन्ददुलारे वाजपेयी ने ही लिखी है। वस्तुतः प्रसाद के नाटकों में रसवाद एवं स्वच्छन्दतावाद का समन्वय प्राप्त होता है। स्वयं कामायनी रसवाद एवं स्वच्छन्दतावाद के समन्वय की प्रतीक है। आ. नन्ददुलारे वाजपेयी स्वच्छन्दतावादी-अभिव्यंजनावादी आलोचक थे, यही उनकी विशिष्टता भी है, यही उनकी सीमा भी है। स्वच्छन्दतावाद के प्रति आसक्ति के अतिरेक में उनकी प्रयोगवाद पर ध्वंसात्मक आलोचना प्रभावहीन हो गई है। किसी वाद का अतिरेक साहित्यकार को प्रभाववादी बना डालता है। मिश्रबन्धु का परम्परावाद-अलंकारवाद देव से अभिभूत होने पर उन्हें प्रभाववादी बना देता है, आ. शुक्ल का रसवाद-लोकमंगलवाद तुलसी से अभिभूत होने पर उन्हें प्रभाववादी बना देता है, आ. वाजपेयी का स्वच्छन्दतावाद-अभिव्यंजनावाद प्रसाद से अभिभूत होने पर उन्हें प्रभाववादी बना देता है। प्रभाववाद साहित्य का एक विराट् सत्य है। किन्तु उससे वस्तुवाद पर व्याघात अवश्य लगता है। आ. वाजपेयी इसके निदर्शन हैं।

डॉ. नगेन्द्र आ. शुक्ल के 'ऑउट-ऑफ-डेट (कालातीत) होने की घोषणा करते हुए फ्रायडवादी के रूप में साहित्य के अखाड़े में कूदे, पर उस दिग्गज को टस से मस न होता देख क्रमशः उसी की परिक्रमा करने लगे तथा रसवादी-मनोविज्ञानवादी आलोचक

1. वसन्त (चैत्र-वैशाख : "मधुमाधवौ वसन्तः"), ग्रीष्म (ज्येष्ठ-आषाढ), वर्षा (श्रावण-भाद्रपद), शरद (आश्विन-कार्तिक), हेमन्त (अग्रहायण या पंक्ति मार्गशीर्ष-पौष) एवं शिशिर (माघ-फाल्गुन)।

2. पुस्तक प्रसाद के देहान्त के बाद छपी।

के रूप में स्थायी महत्त्व प्राप्त कर सके। वस्तुतः संसार-साहित्य में रस-सिद्धान्त से बढ़कर कोई साहित्यिक सिद्धान्त बन ही नहीं सका, क्योंकि इसका आधार विश्व-दर्शन का सुमेरु अद्वैतवाद है तथा इसका संघटन मनोवैज्ञानिक स्थायीभावों से हुआ है। प्रौढतम नगेन्द्र का 'रससिद्धान्त' अपनाना उनके अध्ययन एवं मनन की स्फीति का द्योतक है, क्योंकि रससिद्धान्त पर प्रहार वही छुटभैया कर सकता है जिसे भारतीय एवं वैश्विक काव्यशास्त्र का सम्यक् बोध न हो या फिर वह "हम भी कुछ हैं" की मानसिक ग्रन्थि में बद्ध हो। फ्रायड का कामवाद, अतिरेक का स्पर्श करते हुए भी¹, कामतत्त्व का महान् एवं मौलिक निरूपण करता है तथा ऋग्वेद (इन्द्र-इन्द्राणी-सम्वाद, यम-यमी-सम्वाद इत्यादि), उपनिषद् (बृहदारण्यक में याज्ञवल्क्य की मैत्रेयी से नितान्त अन्तरंग चर्चा, छान्दोग्य में 'आत्मरति आत्ममिथुन आत्मक्रीड' इत्यादि), पुराण (सारे देवता विवाहित, परमयोगी शिव के दो विवाह, कामदेव इत्यादि), सिद्ध-साधना (पंचमकार), खजुराहो, कोणार्क इत्यादि से सम्पन्नतम भारत को वह पराया लगता भी नहीं। फ्रायड पर भारत का प्रभाव अवश्य पड़ा था, भले ही पश्चिम में व्याप्त श्रेष्ठताग्रन्थि के कारण वह प्रकट न किया गया हो। भारतीय पुरुषार्थ में काम एक मूल तत्त्व है। कामशास्त्र (वात्स्यायन) पर भारत को वैसा ही गर्व है जैसा 'अर्थशास्त्र' (चाणक्य), धर्मशास्त्र (महाभारत, विशेषतः उसकी आत्मा गीता) एवं-मोक्षशास्त्र (उपनिषद्) पर। वर्डस्वर्थ, ब्रॉउनिंग इत्यादि पर भारतीय प्रभाव भी प्रकट नहीं किया गया। रामायण, महाभारत, रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, ऋतुसंहारम्, गीतगोविन्दम्, कम्ब-रामायण इत्यादि में शृंगार का मनोहारी चित्रण फ्रायड को वात्सल्य की दृष्टि से देख सकता है। यद्यपि पद्मभूषण डॉ. नगेन्द्र कामतत्त्व का वैसा निरूपण नहीं कर सके जैसा भारतरत्न डॉ. भगवानुदास ('पुरुषार्थ' में कामाध्यात्म), क्योंकि वे न मौलिक चिन्तक हैं, न भारतीय दर्शन के अध्येता, तथापि कामविरोधी पाखण्ड के यत्किंचित् निराकरण में अवश्य सफल हुए हैं फ्रायडवाद की झोंक में नगेन्द्र ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के जिस लौह-अनुशासन की कल्पना की है, वह निराधार है। हरिऔध की देशसेविका-समाजसेविका नायिकाएँ उनके आदर्शवादी युग का उद्गार थीं, जिन पर व्यंग्य नगेन्द्र के इतिहास-ज्ञान पर शंका उत्पन्न करता है। एक बार डॉ. नगेन्द्र मुझसे आचार्य की पत्नी-प्रतिमा पर यत्किंचित् व्यंग्यपूर्ण चर्चा कर रहे थे। इस चर्चा का कारण उनका 'तरल रसिकता' से पूर्ण जीवन ही माना जाएगा, क्योंकि पत्नी-श्रद्धा स्वस्थ-सहज जीवन का एक अपरिहार्य अंग है। नगेन्द्र का अपने कामवाद, या कोई चाहे तो कह ले कि फ्रायड के कामवाद, के आधार पर द्विवेदी-युग (आदर्शवादी युग) की कविता की आलोचना इतिहासबोध की दृष्टि से नितान्त विपन्न है तथा 'साकेत : एक अध्ययन' में मैथिलीशरण गुप्त की प्रशंसा के कारण आत्मखण्डनात्मक भी। यद्यपि डॉ. नगेन्द्र भी, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी के सदृश, छायावाद एवं प्रसाद (विशेषतः कामायनी) के आलोचक के रूप में ही स्मरणीय हैं (क्योंकि 'रससिद्धान्त' और 'रीतिकाव्य की भूमिका' काव्यशास्त्रीय अधिक हैं, आलोचनात्मक अल्प तथा 'देव और उनकी कविता' में वे मिश्रबन्धु एवं कृष्णबिहारी मिश्र से आगे नहीं जा पाए तथा फ्रायडवाद के प्रशंसक होते हुए भी शृंगारी कविता पर तत्त्वतः आत्मखण्डनात्मक प्रहार में शुक्ल जी की कॉर्बन-कॉपी मात्र बन कर रह गए हैं), तथापि 'प्रस्थान' एवं मौलिकता के कारण आ. वाजपेयी श्रेष्ठतर आलोचक सिद्ध होते हैं। (भले ही काव्यशास्त्र पर अपने महान् अध्यवसाय एवं असंख्य ग्रन्थों के सम्पादन-संकलनादि के कारण कुल मिलाकर उनका कर्तृत्व अधिकतर पड़ जाता हो)।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न एक चिरस्मरणीय साहित्यकार हैं। ललितनिबन्धकार (विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय इत्यादि प्रयत्नज-रचनाकार उनके अनुगामी हैं), उपन्यासकार ('बाणभट्ट की आत्मकथा' की प्रेरणा से त्वरित-ग्रन्थकार मनु शर्मा इत्यादि ने महाभारत के पात्रों की आत्मकथाओं की झड़ी ही लगा दी तथा 'अनामदास का पोथा' की प्रेरणा से कृष्णा सोबती जैसों ने 'जिन्दगीनामा' ही पेश कर डाला) एवं आलोचक के त्रित्व में उनकी समता न आ. नन्ददुलारे वाजपेयी कर सकते हैं, न डॉ. नगेन्द्र, न डॉ. रामविलास शर्मा (डॉ. द्विवेदी के कई-कई चेले विद्वान् माने जाते हैं)। उनका व्यक्तित्व भी बड़ा है, कृतित्व भी। वे समन्वयवादी-मानवतावादी आलोचक हैं तथा विचार में कबीर, रवीन्द्र, गांधी इत्यादि तथा काव्यानुशीलन में कालिदास से बहुत प्रभावित होने के कारण सामान्य मौलिकता से ऊपर उठकर किसी 'प्रस्थान' की सूचना नहीं दे पाते। उनके उत्कृष्ट ग्रन्थ 'कबीर', 'नाथ-सम्प्रदाय', 'मध्यकालीन बोध का स्वरूप' एवं 'हिन्दी-साहित्य का आदिकाल' आलोचना-ग्रन्थ न होकर क्रमशः स्तुति-ग्रन्थ, शोध-ग्रन्थ एवं अनिर्णायक ग्रन्थ ('आदिकाल' कोई नाम नहीं है—भारी-भरकम पुरातनतावाद से लदा-फँदा एक तुक्का मात्र है) हैं। वे आलोचक के रूप में कोई खास पहचान नहीं बना पाए, विद्वान् के रूप में ठीक ही बहुत समादृत हुए। उनकी आलोचना स्तुति एवं भाषण के पाटों के बीच पिस कर रह गई है।

1. वे पागलों का उपचार करते थे।

डॉ. रामविलास शर्मा ने मार्क्सवाद को मजबूती से पकड़ा तथा अप्रतिहत निष्ठा का परिचय दिया। वे सांस्कृतिक दृष्टि से दरिद्र नहीं हैं, जबकि अधिकांश अन्य कॉम्यूनिस्ट हैं। क्रमशः भारतेन्दु, निराला और आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी पर वादबद्ध होते हुए भी उदारतासम्पन्न आलोचना लिखकर वे स्मरणीय आलोचक के रूप में सम्मानित हो चुके हैं। कॉम्यूनिस्टों ने विविध विषयक आलोचना-ग्रन्थ लिखे हैं, तथापि रामविलास शर्मा व्यक्तित्व की दृष्टि से भी विशिष्ट हैं, कृतित्व की दृष्टि से भी। भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में साम्यवादियों की भूमिका पर डॉ. शर्मा का स्फूर्त विवेचन उतना ही सत्य है जितना सत्य साम्यवादियों द्वारा प्रस्तुत इतिहास हो सकता है। उनकी आरम्भिक लट्टुमारवादी आलोचना ठीक ही कालातीत हो चुकी है। डॉ. शर्मा की सर्वहारावादी या वर्गसंघर्षवादी या मार्क्सवादी आलोचना इन वादों के अपने जन्मस्थानों में ही प्रियमाण हो जाने के साथ ही प्रियमाण नहीं हुई, क्योंकि बहुत पिछड़े भारत जैसे देशों में कॉम्यूनिज़्म अभी मरा नहीं है, उसकी जनवादी चेतना ने साहित्य पर टिकाऊ छाप तो छोड़ी ही है।

मार्क्सवाद या साम्यवाद ईश्वर और आत्मा को न मानने के कारण अमनोवैज्ञानिक तथा वर्गसंघर्ष-प्रतिपादन के कारण 'सम्पूर्ण मनुष्य' के सिद्धान्त का विरोधी है। व्यक्ति को कोने में ढकेल कर वेहोश करनेवाला दर्शन कभी सफल नहीं हो सकता। मार्क्स, लेनिन, स्टालिन, माओ इत्यादि के व्यक्तित्व नितान्त विवादास्पद रहे हैं। मार्क्स चिड़चिड़े और शराबी थे तथा अपनी आदर्श पत्नी जेनी के साथ अच्छा व्यवहार न करते थे। परिवार में रुग्ण पुत्री के साथ भी उनका व्यवहार ठीक न रहा। वे संयुक्त राज्य अमेरिका में पत्रकार की नौकरी चाहते थे। स्व. राष्ट्रपति जॉन केनेडी कहा करते थे कि यदि उन्हें यह नौकरी मिल जाती तो विश्व साम्यवाद के अभिशाप से बच जाता! मार्क्स कहा करते थे : "धन्यवाद ईश्वर को कि मार्क्स मार्क्सवादी नहीं है!" मार्क्स भारत में कभी किसी स्वर्णयुग की कल्पना तक न कर सकते थे तथा उसे पराजयों का देश मानते थे। यदि पराजयें ही होतीं तो हिन्दू बचता कैसे? 1904 ई. में 'ज़माना'—कानपुर से प्रकाशित इक़्वाल का तराना तक "कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी" कैसे कहता? मार्क्स के भारतविषयक अज्ञान एवं पूर्वाग्रह पर मुझे दुःख है। मौलिक समाजवादी विचारक एवं नेता डॉ. राममनोहर लोहिया ने मार्क्स के गौरांग-वर्चस्वी दृष्टिकोण पर कड़े प्रहार किए हैं। किन्तु एक यथार्थवादी दार्शनिक (द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद के प्रवर्तक), एक दलितपक्षीय इतिहास-विश्लेषक (सामन्त-बूर्ज्वा-सर्वहारा क्रम से) एवं विश्व-इतिहास की सर्वश्रेष्ठ सोवियत क्रान्ति (1917ई.) एवं अन्य महान् चीनी क्रान्ति (1948-1949 ई.) के प्रेरक होने से अनेक दशाब्दियों तक मानवता के मसीहा के रूप में पूज्य रहने के कारण मार्क्स मानव-जाति के इतिहास के एक प्रमुख व्यक्ति बन चुके हैं। सर्वहारावाद ने विश्व को एक नूतन जनवादी एवं प्रगतिशील चेतना से परिचित कराया, जिससे विराट् राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, कलागत या समग्रजीवनगत परिवर्तन हुए तथा पूँजीवादी देशों तक में श्रमिक-कृषक-दलित वर्गों का मान बढ़ा। लेनिन का लंदन-निर्वासनकाल में रशिया (रूस) के प्रशिआ (जर्मनी) से पिटने पर खुशी से उछल-उछल पड़ने से देशद्रोह एवं अवसरवाद (विश्वयुद्ध के मध्य ही लेनिन रूस के तानाशाह बने) को वह प्रश्रय मिला जिसके लिए साम्यवादी सर्वत्र कुख्यात हुए। किन्तु लेनिन एक महान् क्रान्तिकारी नेता तथा सोवियत संघ (अब अतीतगत) के अजर-अमर संस्थापक बने। साहित्य-चिन्तन में वह पर्याप्त उदार थे : पुश्किन के प्रेमी, टॉल्स्टॉय के प्रशंसक! निस्सन्तान होने पर भी अपनी पत्नी क्रुप्सकाया से उनका अच्छा प्रेम निभा। स्टालिन महान् सोवियत शक्ति के वास्तविक निर्माता थे, वास्तविक हिटलर विजेता थे, किन्तु अपनी क्रूरता के कारण निधनोपरांत वे 'अपने' सोवियत संघ¹ में ही तिरस्कृत हुए। माओ ने बुढ़ापे में एक अभिनेत्री से विवाह की गलती की, जिसने बड़े बावले मचाए। वे हनुमान् के भक्त थे तथा कवि होने के कारण 'महाकपिराज' जैसी कविताओं के प्रणेता भी। निस्सन्देह, वे एक महान् क्रान्तिकारी नेता थे, जिन्होंने अफीमची चीन को विश्व-शक्ति में परिणत कर दिया। किन्तु उनका भी यत्किंचित् अवमूल्यन अवश्य हुआ। भारतीय साम्यवादियों में कोई मँझोले क्रद का नेता भी नहीं हुआ। कुछ राज्यस्तरीय नेता हुए जो जर्जर बुढ़ापे तक गद्दी से जोंक की तरह चिपके रहे। इन्होंने जीवन में कोई आदर्श नहीं प्रस्तुत किया। कोई साम्यवादी नेता भारतीय स्तर तक का स्पर्श न कर सका। भारतीय साम्यवादियों ने आरम्भ (1925 ई. में सी.पी.आई. बनी—संयोगत् इसी वर्ष 21 स्वयं संघ की स्थापना भी हुई) से ही गांधी को 'साम्राज्यवाद का कुत्ता' कहा; द्वितीय महायुद्ध से पहले साम्राज्यवादियों और पूँजीवादियों का विरोध किया, क्योंकि तब स्टालिन हिटलर-विरोधी न थे, किन्तु ज्यों ही स्टालिन और हिटलर में कटाजुञ्ज हुई, वे फटाफट फासिस्टवाद के विकट विरोधी बन गए और 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन का प्रचण्ड प्रत्याख्यान करते हुए गांधी को देशद्रोही घोषित करने लगे तथा सुभाष को पानी पी-पी कर भरपेट गालियाँ दीं (तोजो का कुत्ता बताया)। 1962 ई. के चीनी आक्रमण के

1. उनकी जन्मभूमि जॉर्जिया अब रूस से भिन्न स्वतन्त्र देश है।

समय वे चीन का समर्थन करते थे! ऐसे राष्ट्रद्रोही कॉम्युनिस्ट 1947 ई. से पूर्व मुस्लिम लीग से गले से गला मिलाकर पाकिस्तान का समर्थन करते थे—अब प्रत्येक बिन्दु पर पाकिस्तान का पक्ष लेते हैं। सारा विश्व मुस्लिम साम्प्रदायिकता से परेशान है : कश्मीर घाटी में हिन्दू, बांग्लादेश में बौद्ध, अरब देशों में यहूदी, बोस्निया में ईसाई जैसे निदर्शन विद्यमान हैं। किन्तु भारतीय कॉम्युनिस्ट (जो केरल में लीग से लगकर सरकार चला चुके हैं, मुस्लिमबहुल मल्लपुरम् जिला बना चुके हैं जिसे मौलापुरम् कहा जाने लगा है, पश्चिम बंगाल के द्वार बांग्लादेशी मुस्लिमों के लिए खोल चुके हैं), हिन्दू-साम्प्रदायिकता का राग अलापते नहीं थकते! साम्यवादियों ने जब देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी का विरोध करते हुए रोमन लिपि में लिखित हिन्दुस्तानी (उर्दू का राजनैतिक नाम) के समर्थन में राष्ट्रभाषाद्रोह भी किया तथा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी के पक्षधर राहुल, यशपाल, रांगेय राघव इत्यादि साम्यवादियों को पार्टी से निकाल बाहर फेंका, तब किसी को आश्चर्य न हुआ! साम्यवादी इतिहासकारों ने इतिहास को विकृत किया है, कलाकारों ने कला को, साहित्यकारों ने साहित्य को। फिर भी, समाज में श्रमिक-जागरण एवं साहित्य में शोषित-सम्बेदन के कारण साम्यवादियों की देन को एकदम नकारना वस्तुवाद के विरुद्ध होगा। प्रतिभाहीन होने के कारण भाजपाई भी उनकी, परकीयतावादी ही सही, ईषत्-प्रतिभा के समक्ष नत हैं।

राहुल, रांगेय राघव, यशपाल, नागार्जुन, गंगाप्रसाद मिश्र, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, कृष्णा सोबती, भीष्म साहनी इत्यादि कथाकारों ने आर्यों को विदेशी (रूस से आया भी) और बर्बर-अत्याचारी, हिन्दुओं को साम्प्रदायिक और संकीर्ण परिवार को विकृत और भयावह, समाज को पतित और नारकीय, व्यक्ति को कामुक और कुण्ठित चित्रित करने में कोई कोर-कसर न छोड़ते हुए अपने रुग्ण-यथार्थवाद को प्रियमाण एवं भयावह बना डाला। देशद्रोह, समाजद्रोह, हिन्दूद्रोह, संस्कृतद्रोह, राम-द्रोह, तुलसी-द्रोह, रवीन्द्र-द्रोह, मैथिलीशरण-द्रोह, प्रसाद-द्रोह, पंत-द्रोह इत्यादि ही इन तथाकथित विद्रोहियों के लेखन-आयाम बनकर रह गए। साम्यवादियों ने भारत एवं भारती के गौरव की भयंकर क्षति की है। अपनी आपराधिक एकता के कारण ये विश्वविद्यालयों, साहित्य अकादमियों इत्यादि पर छा गए। कांग्रेस नेताओं की पार्टी बन गई थी अतः उसने लेखक, साहित्यकार, कलाकार, इतिहासकार इत्यादि कॉम्युनिस्टों से ही उधार लिए, क्योंकि ये ही निकट थे और इनसे दिल्ली की गद्दी को कभी कोई खतरा नहीं रहा। इन्होंने इस सौदेबाजी से प्रचण्ड लाभ उठाया। फिर भी, जब ये न कोई भारतेन्दु उत्पन्न कर सके, न द्विवेदी, न गुप्त न प्रसाद, न निराला, न पंत, न महादेवी, न दिनकर, न प्रेमचन्द, न शुक्ल, तो इन्होंने भारतेन्दु, प्रेमचन्द, निराला और हजारीप्रसाद द्विवेदी को उधार ले लिया, जो क्रमशः कट्टर भारतवादी, आदर्शोन्मुख-यथार्थवादी, अद्वैतवादी और सांस्कृतिक-समन्वयवादी थे।

स्पष्ट है कि 'वाद' की सीमाओं के कारण आलोचना (सृजनात्मक साहित्य भी) की भी सीमाएँ बन गई और उसका सार्वभौम रूप न खुल सका, न खिल सका। सम्प्रति साहित्यकार को अपने-अपने वाद का पुछल्ला बनाने में ही रचनाधर्मिता की इतिश्री समझने लगे हैं। वादमुक्त साहित्यकार अलग-थलग पड़े दीखते हैं। कृतित्व नहीं, व्यक्तित्व (वह भी थोपा-थापा) प्रधान हो गया है। साहित्य जीवन से अलग-थलग पड़ गया है। साहित्यकार का महत्व घटता जा रहा है। इससे उबरने का रास्ता है कि वादबद्ध नहीं प्रत्युत सार्वभौम साहित्य का सृजन हो तथा कृतित्व को वरीयता प्रदान की जाए। मैंने यही करने का यत्न किया है। किसी से लेना एक न देना दो! कठोर शब्दों के कर्तव्य का पालन भी किया है।

आलोचना में 'व्यक्तित्व' का अपरिहार्य विश्लेषण न हुआ तो 'कृतित्व' का अध्ययन अपूर्ण रह जाता है। मैं किसी भी व्यक्ति को पहले केवल व्यक्ति मानता हूँ, अन्य कुछ बाद में। मैंने प्रत्येक साहित्यकार का यथार्थवादी या वस्तुवादी आकलन किया है। खुसरो, विद्यापति, सुखदेव प्रभृति पर साहित्येतिहासों की सामग्री दयनीय रही है, मैंने इसे पुष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। कबीर पर आलोचना केवल आ. श्यामसुन्दरदास एवं डॉ. गुलाबराय ने लिखी है, आ. शुक्ल ने जो आलोचना लिखी है वह सामान्य भी है व्यंग्यात्मक भी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की स्तुतिपरक। कबीर के जीवन पर कोई वैज्ञानिक तो दूर, वस्तुवादी ऊहापोह तक किसी ने नहीं किया। मैंने कबीर के पैतृक दृष्टि से मुसलमान होने तथा नातिदीर्घजीवी होने के सत्य को सप्रमाण प्रस्तुत किया है तथा उनके साहित्य की वस्तुपरक आलोचना की है। जायसी के जीवन एवं साहित्य की वस्तुपरक आलोचना की है। अब तक सूरदास, सूरश्याम, सूरकल्याण, सूरश्रीगोपाल, सूरजदास (सूरज, सूरजचन्द्र) प्रभृति के काव्यसंकलन 'सूरसागर' को केवल महाकवि सूरदास कृत बताया जाता रहा है, मैंने विश्लेषण

1. चित्रकार हुसैन ने इंदिरा की चमचागिरी करते हुए दुर्गा-चित्र ही बना डाला (आपातस्थितिकाल के आसपास तानाशाही की गुलामी की) पर 6 दिसम्बर, 1992 के अयोध्या-काण्ड से विक्षिप्त होकर उसे कलकत्ता में जलनष्ट कर दिया। इस साम्प्रदायिकता की चित्रकार सतीश गुजराल तक ने निन्दा की।

किया है तथा इन सब पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डाला है। तुलसी के कल्पित जीवनवृत्त, विशेषतः उनके विवाहित होने की चटपटी गप्प, पर प्रकाश डाला है। केशवदास जैसे महाकवि का सम्यक् आकलन नहीं दृष्टिगोचर होता था, मैंने किया है—वे वस्तुतः तुलसी एवं सूर के अनन्तर हिन्दी के अन्यतम कवि हैं। देव, विहारी, भूषण, पद्माकर प्रभृति की महान् कविता पर अनध्ययनजन्य प्रहारों का निराकरण साहित्यिक कर्तव्य था, जो पूर्ण किया है। आधुनिक काल के साहित्यकारों पर वादमुक्त एवं वस्तुपरक प्रकाश डालने के भयानक कर्तव्य का पालन भी किया है।

बौद्धिक-अद्वैतवाद

मेरी इच्छा हिन्दी-आलोचना को विशुद्ध भारतीय रूप प्रदान करने की रही है। विश्वावलोकन एवं कहीं से भी तत्त्वग्रहण की अवहेलना मूर्खता की पर्याय होगी। किन्तु विजातीयतावाद तो देशद्रोह का पर्याय है। मेरे मत से, भारत को यूरोप या अमेरिका बनाने के स्वप्न देखनेवाले देशद्रोही हैं, विदेशी बैंकों में जमा-शुल्क (ब्याज का तो सवाल ही नहीं) देते हुए खरबों रुपए ठूसनेवाले नेता या अभिनेता या तस्कर या उद्योगपति या व्यापारी या अधिकारी देशद्रोही हैं (“धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी” से दुखी भारतेन्दु की आत्मा आज कितनी दुखी होगी जबकि उनके समय विदेश जाते धन से सौ-गुना धन विदेशों में पड़ा है), प्रत्येक बिन्दु पर भारत की निन्दा करनेवाले देशद्रोही हैं, भारतीय जनता के किसी वर्ग-विशेष का नितान्त हेय एवं तुच्छ रूप में चित्रित करनेवाले देशद्रोही हैं। मेरे मत से, हिन्दी को उर्दू बनाने के यत्न में लगे लोग हिन्दीद्रोही हैं। मेरे मत से, हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों की अनावश्यक भरमार करने वाले हिन्दीद्रोही हैं। मेरे जीवन का ध्येय भारत की अस्मिता की रक्षा करना है। मेरे लेखन का ध्येय भारती की अस्मिता की रक्षा करना है। दलवादी युग में मैं किसी दल में नहीं गया। वादवादी युग में मैं किसी वाद से नहीं बँधा। मेरा सिद्धान्त है, बौद्धिक-अद्वैतवाद जो तर्क के साथ आस्था-अनास्था, व्यक्ति-समाज, विश्व-राष्ट्र, विभिन्न साहित्य-रूपों इत्यादि में अनुस्यूत एकता का प्रतिपादक है। मैं भेदों को नहीं रूपों को मानता हूँ, मैं वर्गों को नहीं अंगों को मानता हूँ। मैं अन्तर नहीं पहचानता, ‘अन्तर’ देखता हूँ। मेरे लिए मन्त्र, ऋचा, श्लोक, छन्द, सूक्ति, लोकगीत, आर्षकाव्य, जनसाहित्य, नई कविता, प्रायः सबका महत्त्व है। ‘प्रायः’ का प्रयोग बड़ा सार्थक है, क्योंकि एक सूर्य एवं उसके असंख्य प्रतिबिम्ब एक भी हैं, भिन्न भी! एक आनन्दमूलक रस अद्वैतवाद का पुत्र है। अलंकार अनुभूति के अंग हैं। छन्द अभिव्यक्ति का अनुशासन है। ‘मुक्तकाव्य’ अभिव्यक्ति का एक विकास है। शरीर नहीं, आत्मा प्रधान है। आत्मा के बिना शरीर शव है। शरीर के कार्य नैसर्गिक हैं, हेय नहीं हैं। किन्तु आत्मा के कार्य चिरन्तन हैं। साहित्य-व्यापार आत्म-व्यापार है। उद्गार-धर्म आत्म-धर्म है। शरीर का अपना महत्त्व है—बिना शरीर की आत्मा प्रेत कहलाती है। दोनों अद्वैत की दो भंगिमाएँ हैं। बौद्धिक-अद्वैतवाद के जीवन-दर्शन एवं साहित्य-दर्शन के कारण मैं समग्र साहित्य का विग्रह देख सका हूँ, जिसके ‘अन्तर’ में सारे बाह्य अन्तर खप जाते हैं। किसी गहन एवं अस्मितासम्पन्न दर्शन के अभाव में हिन्दी-आलोचना अपना विराट् विग्रह प्रदर्शित नहीं कर पाई। सत्य को वाद में बद्ध करने, युगलाभ के कारण उसे तोड़ने-मरोड़ने और भय के कारण उससे कतराने के दुष्प्रभाव देखकर ही मैंने सत्य की विवृति को ही सबसे बड़ा इतिहास-धर्म एवं सबसे बड़ा आलोचना-कर्म माना है।

प्रश्न उठ सकता है, ‘अद्वैतवाद’ के साथ ‘बौद्धिक’ क्यों सम्पृक्त किया गया है? उत्तर है, प्रायः अद्वैतवाद आस्तिकता का प्रतीक माना जाता है और मैं आस्तिकता का मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व शिरसा स्वीकार करते हुए भी नास्तिकता को हेय नहीं मानता। कपिल, कणाद, बुद्ध, महावीर इत्यादि से मार्क्स, एंजल्स, लेनिन, स्टालिन इत्यादि का नास्तिकता से सम्बद्ध व्यक्तियों का मैं, सजगता के साथ, विराट् एवं सर्वोपरि ‘एकमानव’ की सर्वोपरिता के प्रतिपादन के साथ, सीमा के सार्वभौम अस्तित्व की स्वीकृति के साथ, आदर करता हूँ। मेरे अद्वैत में आस्था भी समाहित है, अनास्था भी। आस्था और अनास्था एक जीवन के दो पहलू मात्र हैं।

बौद्धिकरस

‘नई’ या ‘मुक्त’ या ‘स्वतन्त्र’ कविता का भी एक रस है : बौद्धिकरस। 1960 ई. से ही मैं हिन्दी-साहित्य के इतिहास के साथ-साथ बौद्धिकरस पर भी विचार करता आ रहा हूँ। 1964 ई. में ‘बौद्धिकरस’ प्रकाशित हुआ, जो कवितासंग्रह था। 1985 ई. में ‘काव्य में बौद्धिकरस और आलोचना में वस्तुवाद’ प्रकाशित हुआ, जो आलोचना-ग्रन्थ था। हर्ष है कि बौद्धिकरस के प्रवर्तक होने के कुछ और दावेदार निकल आए हैं! किन्तु मेरे उक्त ग्रन्थद्वय एवं उनके प्रकाशन-वर्ष सत्य को विचलित नहीं होने दे सकते। इसी प्रकार, ‘हिन्दी

साहित्य का नवीन इतिहास' (1967 ई.) एवं इसका संशोधित रूप 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' (1985 ई.) अपने प्रमाण आप हैं। इतिहास-सम्मत हिन्दी-साहित्येतिहास एवं तर्कसम्मत नवकाव्यरस बौद्धिकरस अन्योन्य-से हैं।

बुद्धि और भावना का द्वैत स्थूल कथन के उपयुक्त तो है, क्योंकि विश्लेषण ज्ञान का प्रतीक है, किन्तु सूक्ष्म अद्वैत इसे स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि संश्लेषण जीवन का सर्वोपरि सत्य है। विभिन्नता स्थूल सत्य है, एकता सूक्ष्म सत्य है। बौद्धिकरस बुद्धि के भावनासम्पन्न एवं भावना के बुद्धिसम्पन्न रूप को आधुनातनता के साथ स्वीकार करता है। बौद्धिक-अद्वैतवाद एक समग्र जीवन-दर्शन है, बौद्धिकरस इसका काव्यगत-चिन्तनसार।

मैं नए प्रयोगों का सम्मान करता हूँ। कविता में नए प्रयोग सदैव होते रहते हैं। तुलसीदास एवं केशवदास ने काव्य में नए प्रयोग किए थे। आधुनिक कविता नए प्रयोगों का सबसे गम्भीर एवं प्रभावी आह्वान आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया था¹। उन्होंने संस्कृत के वर्णवृत्तों के प्रयोग का आह्वान किया तो हरिऔध का 'प्रियप्रवास' जैसा श्रेष्ठ एवं खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य प्रकाश में आ गया। उन्होंने अतुकान्त कविता को स्वागतयोग्य माना तो मैथिलीशरण गुप्त द्वारा माइकेल मधुसूदन दत्त कृत महाकाव्य 'मेघनादवध' का वह अमर अनुवाद प्रकाश में आ गया जो बेजोड़ है तथा 'सिद्धराज' की रचना हुई। प्रियप्रवास भी अधिकांशतः अतुकान्त है। प्रसाद कृत 'प्रेमपथिक', 'महाराणा का महत्त्व' प्रभृति लघुकाव्य एवं पंत कृत 'ग्रन्थि' इसी के अन्य परिणाम थे। अनूप शर्मा कृत 'सिद्धार्थ' एवं 'वर्द्धमान' महाकाव्यद्वय प्रियप्रवास से प्रेरित हुए। उन्होंने उर्दू के गज़ल, रुबाई वगैरह के हिन्दी में प्रयोग को उचित ठहराया तो मैथिलीशरण गुप्त ने सीधे फ़ारसी से उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद किया, सनेही एवं रामनरेश त्रिपाठी ने अच्छे हिन्दी-गज़ल रचे, अन्यो ने भी लेखनी चलाई। आचार्य ने कल्पनाप्रवण काव्यरचना की बात उठाई तो रामनरेश के 'पथिक' एवं 'स्वप्न' तथा प्रसाद के 'प्रेमपथिक' जैसे प्रयोग सामने आए। 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता' शीर्षक अमर एवं साहित्य के समग्र इतिहास में सर्वाधिक प्रभावी भावात्मक-निबन्ध लिखकर आचार्य ने 'साकेत' के सृजन की वह प्रेरणा दी जिसका प्रभाव आज तक प्रसरित है : ऊर्मिला, लक्ष्मण, भरत, माण्डवी, शत्रुघ्न, श्रुतिकीर्ति, शबरी, अहल्या, जटायु, विभीषण, जामवन्त, दशरथ इत्यादि पर अनेकानेक काव्य प्रमाण हैं। प्रयोग को राष्ट्रीय अस्मिता से निष्पन्न रखने में आचार्य-प्रेरित कविगण पूर्णतः सचेष्ट एवं सफल रहे। खेद है कि कालान्तर में आचार्य के व्यक्तित्व की महत्ता एवं गुरुता के अभाव में अन्य नव्यतावाहक स्वयं तो परकीयता के आखेट बने ही, परकीयता-व्यामोह को एक व्यापक एवं संक्रामक रोग ही बना गए। अज्ञेय समेत कोई प्रयोगवादी कवि एवं उनसे नितान्त भिन्न कोई प्रगतिवादी कवि मैथिलीशरण एवं हरिऔध तो दूर, रामनरेश त्रिपाठी एवं सनेही के स्तर का जनजीवन-प्रवेश तक नहीं प्राप्त कर पाया। प्रयोगवादी कविता केवल विश्वविद्यालय-पाठ्यक्रमों के बल पर जीवित हैं। प्रगतिवादी कविता केवल साम्यवादी दल एवं उनके परिसर-प्रभाव के कारण किसी तरह साँसें ले रही है। प्रियप्रवास, साकेत, यशोधरा, जयद्रथवध, भारतभारती, पथिक, कामायनी, आँसू, पल्लव, अनामिका इत्यादि पाठक खरीदते भी हैं, ये केवल पाठ्यक्रमों के बल पर नहीं जीवित! कारण? विजातीयता! रवीन्द्र, तोरुदत्त, सरोजिनी नायडू, हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, अरविन्द इत्यादि की अंग्रेजी-कविता लुप्त क्यों हो गई? राजाराव, आर. के. नारायण, मुल्कराज आनन्द, नायपाल, विक्रम सेठ इत्यादि को कितने भारतीय जानते हैं? क्योंकि सर्जन न भारतीय है, न पाश्चात्य! रवीन्द्र बांग्ला-कवि के रूप में ही अमर हैं, भले ही नोबेल-प्राइज़ ने उन्हें अपने समय का एक विश्वकवि बना दिया हो। प्रयोग तभी सफल हो सकते हैं जब वे राष्ट्रीय अस्मिता से निष्पन्न हों। वैश्विक प्रभाव तभी कृतकार्य हो सकता है जब वह समग्रतः राष्ट्रीय परिवेश में व्यक्त हो। प्रेमचन्द पर अंग्रेजी, बांग्ला, फ्रेंच, रूसी इत्यादि के कथासाहित्य का भारी प्रभाव पड़ा था, किन्तु उन्होंने उसे खपा लिया था। गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी इसी सत्य का प्रमाण है। किसी परवर्ती कहानीकार या उपन्यासकार को प्रेमचन्द की सी लोकप्रियता एवं महत्ता न प्राप्त हुई। वृन्दावनलाल वर्मा का स्थान अवश्य उनके बाद लिया जा सकता है। कारण? वही भारतीय अस्मिता 1979 ई. में त्रिपाठी जन्म-शताब्दि-आयोजन (लखनऊ) में मैंने राष्ट्रीय अस्मिता को साहित्य का प्राणतत्त्व सिद्ध किया, तो स्व. अमृतलाल नागर ने भी इस बिन्दु को समर्थनपूर्वक उठाया था।

प्रयोगवादी आयातवादिता में लुप्त हो गए, तो प्रगतिवादी राष्ट्र-अवमानना में। प्रयोगवादी साहित्य में वैश्विकता के अपूर्व विकासक एवं अपने समय में नव्यता के विशेष वाहक के रूपों में स्मरणीय रहेंगे। प्रगतिवादी साहित्यकार जनता की सर्वोपरिता के प्रचारक एवं व्यापक जनजीवन के सम्मानकर्ता के रूपों में स्मरणीय रहेंगे। किन्तु ये विजातीयता के अतिरेक एवं राष्ट्रीय अस्मिता की अवहेलना

1. 'कवि-कर्तव्य' शीर्षक निबन्ध जो खड़ीबोली-कविता का प्रायः सार्वभौम घोषणापत्र सिद्ध हुआ।

के कारण आदरणीय न तो बन सके हैं, न इस स्थिति से उबर न पाने पर बन ही सकेंगे। साम्यवादियों को भारत एवं भारतीयता में कुछ भी मौलिक या प्रशस्य नहीं प्रतीत हो सका। उन्होंने जीवन के वीभत्स-चित्रण को ही प्रगति बनाने की दुश्चेष्टा की। इसके पीछे उनका तथा उनके कंधे पर बन्दूक रखकर खड़े होने वाले सत्तादल का राजनैतिक न्यस्त-स्वार्थ विद्यमान था : हम इतने पतित देश के उद्धार का तप कर रहे हैं अतः हमें पूजो! व्यापक प्रशासनिक प्रचार-प्रसार एवं शैक्षिक-साहित्यिक संस्थाओं पर सुनियोजित एकाधिकार के बावजूद वे विशेष सफल न हो पाए। उनकी तुलना में मैथिलीशरण, प्रेमचन्द, गुरुदत्त प्रभृति ही अधिक प्रचलित रहे। कारण? भारत अभी अस्मिता को त्यागने या नष्ट करने के लिए प्रस्तुत नहीं है। उनके सम्मिलित-संस्कृति के राग को राष्ट्र ने ध्यान से नहीं सुना, क्योंकि पर्याप्त सत्य होते हुए भी वह राजनीति से प्रेरित रहा है। कौन-सी संस्कृति है जो सम्मिलित या मिश्रित न हो? अरबी के यूनानी 'म्यूज़िक' से प्रेरित मौसीकी, यूनानी-हिकमत, यूनानी 'फिलॉसॉफी' का अनुवाद 'फलसफ़ा', यूनानी 'सोफिआ' (ज्ञान) से प्रेरित 'सूफ़ी', हिन्द के आसा नामक ब्राह्मण द्वारा ले जाई गई विद्या 'हिन्दसा'¹ (अंकगणित जिससे बीजगणित इत्यादि का विकास हुआ) जैसे शब्द ही साक्षी हैं कि उसके पास अपना मौलिक कुछ भी नहीं है। अरब शब्द का अर्थ ही 'गँव' या 'गँवाए' है और अरबी का ग्राम्यभाषा या ग्रामीणों की भाषा। कुरान साक्षी है कि मोहम्मद अरब के मूसा थे, जिन पर तौरात एवं इंज़ील (बाइबिल के दो अंश-विशेष) का भारी प्रभाव पड़ा है। पश्चिम का तो मज़हब ही आयातित है। अमेरिका यूरोप की पुत्री है। किन्तु कहीं भी परकीय उत्कोच से प्रेरित 'सम्मिलित' या 'मिश्रित' संस्कृति का बेसुरा राग गला फाड़ कर नहीं अलापा जाता। 'विभिन्नता' का रोग भारतीय नेताओं का राष्ट्रक्षयकारी रोग रहा है, जिसके कारण फूट के अनेक रूप भारत को चरते चले आ रहे हैं। क्या कोई ऐसा राष्ट्र भी है (विशेषतः विशाल राष्ट्र) जहाँ विभिन्नता न हो? किन्तु वह राष्ट्रीय एकता एवं अस्मिता के आड़े नहीं आती। हमारे देशद्रोही नेताओं, राष्ट्रद्रोही इतिहासकारों एवं जनद्रोही साहित्यकारों ने विभिन्नता जैसी स्वाभाविक एवं सहज वस्तु को पंचमांगिता की वहिका बना डाला है। मैंने अपने सारे साहित्य में ऐसे धिनौने नेताओं, इतिहासकारों, साहित्यकारों इत्यादि को बेनकाब किया है। सत्य का उद्घाटन साहित्येतिहासकार का सर्वोपरि कर्तव्य है। सत्य का चित्रण साहित्यकार का प्रथम दायित्व है, जिसके सामने भारतरत्न जैसे अलंकार तथा ज्ञानपीठ जैसे पुरस्कार कौड़ी के बराबर भी नहीं हो सकते।

×

×

×

साहित्यकार का कृतित्व ही उसके व्यक्तित्व के आकलन का माध्यम रहे, तो वह कृतित्व के उत्कर्ष के प्रति सजग रहता है। प्रयोगवादियों एवं प्रगतिवादियों ने धड़ेबाज़ी और प्रचार के बल पर व्यक्तित्व को इतना उछाला कि कृतित्व का महत्त्व ही नगण्यवत् होकर रह गया। 'अपनों' को जमाने के लिए उन्होंने 'अन्यों' को उखाड़ने के अभियान चलाए। प्रयोगवादी इस दृष्टि से आक्रामक नहीं हुए किन्तु प्रगतिवादी विदेशी प्रेरणा से सरफोड़-नीति पर चलें: महावीरप्रसाद द्विवेदी, गुप्त और पंत ही नहीं, सम्भवतः सरकारी इतिहासकारद्वय या नेहरू, पुच्छ, ताराचन्द, नीहारंजन राय एवं 'सरिता' इत्यादि के अरबपति मालिक की प्रेरणा से तुलसी तक पर प्रहार किए। अब भी आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी (सम्भवतः मानक भाषा, 'अयोध्या-विलाप' कविता, आदर्शवादी जीवन-दर्शन के कारणों से) एवं मैथिलीशरण गुप्त (सम्भवतः 'हिन्दू' काव्य, रामभक्ति, आदर्शवादी जीवन-दर्शन एवं संस्कृतनिष्ठ भाषा के कारणों से) के पीछे पड़े हुए हैं। क्या वह 'साहित्यिक' हैं?

कबीर का वेद-शास्त्र-पुराण-कुरान इत्यादि का प्रत्याख्यान अहंमूलक है, अशिक्षाजन्य है। उनका शिक्षा जैसे सर्वकालिक एवं सार्वभौम उपयोगी विषय का खण्डन नितान्त प्रतिक्रियावादी है। उनका अवतारवाद-प्रत्याख्यान एवं मोहम्मद की परमात्मावत् प्रतिष्ठा साम्प्रदायिक है। उनकी अश्लीलता विगर्हणीय है। उनकी नारी-निन्दा विश्व भर में सर्वाधिक व्यापक, अशालीन एवं अस्वच्छ होने के कारणों से सर्वथा घृणास्पद है। निस्सन्देह, वे पुनरुत्थान के एक महान् वाहक एवं नायक थे तथा उनका रैदास, नानक, दादू, रवीन्द्र इत्यादि पर प्रभूत प्रभाव ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पर कबीर की कोई प्रशस्त आलोचना की ही नहीं गई। जायसी की साम्प्रदायिकता उनकी उदारता से अधिकतर पड़ जाती है। विद्यापति (कीर्तिलता), केशवदास (जहाँगीर जसचन्द्रिका), सुखदेव (फाजिलअलीप्रकाश) इत्यादि कबीर, दाऊद, जायसी इत्यादि की तुलना में कहीं अधिक सहज असाम्प्रदायिक या वास्तविक धर्मनिरपेक्षतावादी हैं। रैदास कबीर से अधिक शालीन एवं प्रशस्त मानवतावादी हैं। तुलसी का मानस युगस्थिति से दुखी था अतः वे यथास्थान सबके प्रति आक्रोश व्यक्त कर जाते हैं, ब्राह्मणों की निन्दा में वे सर्वाधिक कठोर हैं, अतः उनके आक्रोश को शूद्रविरोधी

1. अभीर ख़ुसरा कृत 'नुह सपहर' अल बेरुनी ने ख़ुसरो से तीन सौ साल पहले गणित की भारतमूलकता बताई थी।

या नारीविरोधी कहना या तो त्वराजन्य होगा या अनध्ययनजन्य या राजनीति-प्रेरित। हाँ, यह कहा जा सकता है कि उनका मानवतावाद युगीन संकीर्णताओं से अपनी पूर्ण रक्षा नहीं कर सका। पंथ-प्रवर्तकों के अहंभाव एवं उनकी पैगम्बरग्रन्थ पर तुलसी ने प्रकाश डाला है, जिसके लिए ग्रीअर्सन ने प्रशंसा की है किन्तु आधुनिक आलोचकों ने नहीं। सन्तों में गुण थे, किन्तु उनकी भी सीमाएँ थीं अन्यथा भारत की वह दशा न होती जो है। साहित्येतिहासकार (इतिहासकार भी) का यह दायित्व है कि वह विराट् आयामों में सत्य का परीक्षण करें। मिश्रबन्धु एवं शुक्ल जी ने ऐसा किया है, भले ही वह पर्याप्त अथवा सर्वांगीण न हों, किन्तु अन्य किसी ने ऐसा नहीं किया। कोई इतिहास ऐसा नहीं जिसमें सर्वत्र इतिहास के आलोक में साहित्य का आकलन किया गया हो, महान् साहित्यकारों के गुण-दोष कर्तव्यनिष्ठ एवं सत्यनिष्ठ होकर प्रदर्शित किए गए हों। पुरानों को तो छोड़िए, प्रेमचन्द की निर्धनता की कल्पना में उनके द्वारा ब्याज पर रुपए चढ़ाना, बेटी के ब्याह में बहुत बड़ी राशि देहेज में खर्च करना, अच्छा बैंक-बैलेंस इत्यादि तक पर दृष्टि नहीं डाली गई। प्रेमचन्द, राहुल, अज्ञेय, मोहन राकेश, डॉ. माहेश्वर इत्यादि के निन्दनीय एवं नारी-अत्याचारपरक बहुविवाह तक की उपेक्षा की गई। अनेक साहित्यकारों (भारतेन्दु, प्रसाद, निराला, नगेन्द्र इत्यादि) की रसिकता का उल्लेख तक नहीं किया गया। फिर, इतिहास क्या हुआ? क्या व्यक्तित्व के बिना इतिहास इतिहास रह जाएगा? अंग्रेजी में शेक्सपीयर, मिल्टन, वर्डस्वर्थ, शेले, कीट्स इत्यादि के जीवन के दुर्बल-समेत समग्र पक्षों का वर्णन प्राप्त होता है। मनुष्य-मनुष्य है, उसे देवता या दानव बनाने से वही परिणाम निकलते हैं जो हमारे समक्ष हैं। महानों के दुर्बलता-दर्शन से सामान्यों को सुधार-प्रेरणा प्राप्त होती है : जब वे नहीं बचे तो हम क्या चीज़ हैं! इसके अतिरिक्त, सामान्य व्यक्ति यह सशक्त आश्वासन अनायास प्राप्त कर लेता है कि कर्तृत्व के बल पर वह भी महान् बन सकता है।

जीवन एक संश्लेषित प्रक्रिया है। उसका अनुशीलन विभिन्न तत्त्वों के विश्लेषण तथा उनके समन्वित रूप से साक्षात्कार द्वारा ही सम्भव है। वास्तविक साहित्येतिहासिक का अस्तित्व तभी प्रमाणित हो सकता है जब सम्बद्ध इतिहास, राजनीति, धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान प्रभृति उससे निसर्गतः अनुस्यूत हों। किसी सम्बद्ध तत्त्व का अज्ञान या अर्द्धज्ञान या उसकी उपेक्षा या लेखनभय साहित्येतिहास को न पूर्ण बनने देता है न सत्य! मेरा सम्बन्ध किसी राजनैतिक दल से नहीं रहा, मैं अध्ययन एवं लेखन की आसक्ति के कारण नेताओं या साहित्यकारों इत्यादि से मिल-जुल नहीं सका। सम्मेलनों इत्यादि में मेरी रुचि नहीं रही, त्वरित-लेखन, लाभ-लेखन, प्रचार-लेखन (पत्र-पत्रिका, आकाशवाणी, दूरदर्शन से सम्बद्ध), सम्पादन, संकलन इत्यादि के लिए मौलिक लेखन की व्यस्तता ने समय ही नहीं छोड़ा। अस्थायी या सामयिक वीरपूजा या वास्तविक अथवा तथाकथित महापुरुषपूजा में मेरी रुचि नहीं रही—मैं विश्लेषण एवं संश्लेषण में ही व्यस्त रहा हूँ। शिक्षक होते हुए भी मैंने प्राध्यापन मात्र किया है, अन्य लाभकर कार्य नहीं। मेरा जीवन सुविधाविपन्न भी नहीं रहा। “सब तज साहित्य भज” मेरा एकमात्र मन्त्र रहा है। कारण? अपने लेखन के प्रति विश्वास।

हिन्दी-साहित्य विश्व के सर्वश्रेष्ठ साहित्यों में एक आदरणीय स्थान का अधिकारी है। विश्वकवि तुलसीदास, शृंगार-वात्सल्य-सम्राट् सुधारक एवं रहस्यवादी सन्त-कवि कबीरदास, महान् कलावादी-कवि केशवदास, सरसतर सूफी कवि जायसी, विश्व की अतुलनीय कवयित्री मीरा (मीरा), कलाकार-कवि बिहारी, वीररस-सीमान्त भूषण, रस-कला-प्रयाग देव, प्रवाह के वैतालिक पद्माकर, नाट्यकार-कवि एवं सेवक सुधारक भारतेन्दु, अप्रतिम निर्माता एवं प्रेरक महावीरप्रसाद द्विवेदी, विराटतम आयामों एवं नवरहस्यवाद-सुमेरु पंत, आधुनिक विश्व की प्रमुख कवयित्री महादेवी, पाश्चात्य काव्यचेतना के प्रभावी परिचायक अज्ञेय प्रभृति के कारण हिन्दी-कविता विश्व की किसी भी कविता से पीछे नहीं हैं, कहानीकार भी। रामचन्द्र शुक्ल विश्वस्तरीय निबन्धकार भी हैं, आलोचक भी। उपन्यास, कहानी, एकांकी प्रभृति विधाओं में हिन्दी विश्वस्तरीय है। अन्य विधाएँ भी उभर रही हैं। ऐसे विराट् और बारह सौ साल पुराने साहित्य का इतिहास लिखना वैसा सरल नहीं है जैसा कि साहित्येतिहासों में दृग्गत होता है।

हिन्दी राजनैतिक षड्यन्त्रों के व्यूह में फँसा दी गई है। न्यस्तस्वार्थग्रस्त अंग्रेजी-समर्थक हिन्दी को उसका लोकतान्त्रिक एवं सवैधानिक अधिकार नहीं प्राप्त करने दे रहे। पेट्रो-डॉलर एवं आतंकवाद हिन्दी-चलचित्र को उर्दू का दास और असांस्कृतिक बनाने पर तुला है। राजनीति से प्रेरित क्षुद्र जातिवादी एवं विदेशवादी उभय तत्त्व हिन्दी की भाषागत अस्मिता एवं साहित्यगत संस्कृति को विनष्ट करने में जुटे हैं। साहित्य और जनता की दूरी बढ़ रही है। दूरदर्शन, विडियो-कैसेट्स, कॉम्पिक्स, व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाएँ इत्यादि साहित्य को निगलते दीखते हैं। उन्नत पश्चिम का असीम वर्चस्व राजनीति, विदेशनीति, वित्तनीति, यहाँ तक गृहनीति तक का नियामक बनता जा रहा है। विश्व मुस्लिम-आन्दोलन प्रचण्ड पराक्रमसम्पन्न ईसाईयों तथा सबलतर बौद्धों को संत्रस्त नहीं कर सकता—हिन्दू ही उसका नैसर्गिक आखेट है। हिन्दू बिकता भी सस्ते दर पर है, और पेट्रो-डॉलर तो महँगी खरीद भी कर लेता है। भारत एवं भारती का भविष्य अनिश्चित एवं आशाक्षीण लगता है। न्यस्त-स्वार्थ भारत एवं भारती के इतिहास को विकृत करने में जुटे हैं। ऐसे में, मैंने

यत्न किया है कि प्रायः 800-2000 ई. का हिन्दी-साहित्येतिहास वादमुक्त एवं वस्तुपरक रूप में प्रस्तुत करूँ “ताकि सनद रहे”। कितना श्रम, कितना व्यय, कितनी अपेक्षा, कितनी प्रतारणा, कितनी क्षति पर यह कार्य सम्भव हो सका है? उत्तर आप दें।

छोटे-छोटे अनुकृतिप्रधान इतिहासों में भूलें भरी पड़ी हैं। तब इस विशाल एवं मौलिक इतिहास में कितनी भूलें होंगी? संकेत आप करें। मुझे विश्वास है, मेरा निष्ठा को न्याय अवश्य प्राप्त होगा।

आलोचकों के अन्याय

महानता निराधार नहीं होती। किन्तु अधिकतर संयोग उसे सहायता पहुँचा देता है। कभी राज्याश्रय, कभी राजनीति, कभी सम्मान या पुरस्कार या अलंकार, कभी दल, तो कभी प्रेस भी महानता का सर्जन-विसर्जन कर डालते हैं। बुद्ध एवं ईसा की महानता के प्रधान कारण अशोक एवं कॉन्स्टेन्टाइन सम्राट्द्वय हैं अन्यथा “मैं बुद्ध हूँ” कहना मानव-जाति को अबोध सिद्ध करने का अपराध भी माना जा सकता है, “मैं ईश्वर-पुत्र हूँ” का सम्बोधन आपराधिक अशिष्टता से पूर्ण। मोहम्मद का “मैं अल्लाह का रसूल हूँ” कहना इसलिए भी निराधार है कि उन्हें अपने सम्प्रेषक से नहीं प्रत्युत सत्तर युद्धों से सफलता मिली तथा मानवता अधिकाधिक रक्तरंजित हो गई। ये तो हैं अधिकांश मनुष्यों द्वारा पूज्य सर्वोच्च माने जाने वाले महापुरुषों के वृत्त, अन्यों की कौन चलाए? महानता का सच्चा रूप वीरत्व एवं बलिदान में खुलता है जहाँ कल्पित, परकल्पनाधृत एवं प्रसाधनसिद्ध दिव्यता का पाखण्ड नहीं रहता प्रत्युत कर्तृत्व मुखरित होता है। आलोच्य-विन्तुओं के साथ भी, राम, कृष्ण, मूसा इत्यादि से जोन ऑफ आर्क, लक्ष्मीबाई, चन्द्रशेखर आजाद इत्यादि तक यथार्थवादी महानता की व्याप्ति अधिक प्रेरक प्रतीत होती है। आलोचक का कर्तव्य महानता की वस्तुवादी परख करना है।

साहित्य में महानता कर्तृत्वसिद्ध होने के कारण अपेक्षाकृत सरलतापूर्वक पहचानी और परखी जा सकती है। किन्तु सामयिक या दलगत या प्रचारगत लाभ कृत्रिम महानों की सृष्टि भी करते रहते हैं। आजकल हिन्दी में कृत्रिम महानों का जोर है, जो दल या प्रेस या आकाशवाणी या दूरदर्शन के कारखानों में गढ़े जाते हैं। महानता के खिलौने थोड़े दिन चलकर टूट जाते हैं। किन्तु इनके कारण तपस्वी एवं कर्तृत्वनिष्ठ वास्तविक महानों की बड़ी क्षति होती है। कई बार वे कुठित हो जाते हैं, कई बार रुग्ण, तो कभी-कभी अकारण कालकवलित भी।

‘आईने-अकबरी’ में तुलसी का नाम नहीं है। दूरदर्शन के पास निराला की छवि नहीं है। किन्तु दरबार के कारण गंग,¹ सुन्दर कवि² इत्यादि को अपार सामयिक लाभ हुआ। अधुनातन काल में यह बहुत ही अधिक हो रहा है। यह सत्य है कि साहित्य में प्रत्यक्ष कर्तृत्व अपरिहार्य है अतः आरोपित महानता विद्वानों या अध्ययनकर्ताओं को प्रभावित नहीं कर पाती। किन्तु साधारण जन, विशेषतः साहित्य के अध्ययन एवं चिन्तन के हास तथा दूरदर्शन, त्वरितग्रन्थों इत्यादि के विकास के इस युग में, विविध प्रचार-माध्यमों, पुरस्कारों इत्यादि से ही महानता का निर्धारण करते हैं या ऐसा करने के लिए विवश होते हैं।

प्रतिभा की यह विशेषता भी है और कभी भी, कि वह जन्म, जाति वंश, दल, क्षेत्र, पक्षपात, रूपरंग चाटूक्ति इत्यादि के बल पर पदासीन अयोग्यों का चरणवन्दन नहीं करती। आजकल शिक्षा, पत्रकारिता, आकाशवाणी-दूरदर्शन प्रभृति सरकारी प्रचार-माध्यमों में पदासीन अधिकतर व्यक्ति इतने निम्न स्तर के हैं कि उनकी स्तुति कर सकता है जिसकी अस्मिता मर चुकी हो या मारी जा चुकी हो। अतः अनेक तपस्वी साधक उपेक्षा का विषय बन कर देव से महादेव बन रहे हैं।

आलोचकों के दल बने हुए हैं, जो केवल दल देखते हैं, दल सुनते हैं, दल खाते हैं, दल पीते हैं, दल ओढ़ते हैं, दल बिछाते हैं, दल जीते हैं और दल मरते हैं। धड़ेबाजी सारी विधाओं पर छाई है। आलोचना अपवाद नहीं। दल से बाहर के व्यक्ति का ‘प्रवेश-निषेध’। साधारण लेखक एवं संकलनकर्ता तक “इसको क्यों चढ़ाया जाए” या “इसे क्यों फूँक दी जाए” या “इसे रगड़कर रख देंगे” के मन्त्रों का जप करते पाए जाते हैं। परिणाम यह है कि साहित्य का सहज रूप गौण हो गया है, आरोपित रूप प्रधान। “डॉ. देवराज की साहित्यसेवा श्रीनरेश मेहता की साहित्यसेवा से अधिक है” सुनकर साधारण व्यक्ति ही नहीं अपितु साधारण लेखक या साधारण विद्वान् तक या तो हँस पड़ेगा या घूरने लगेगा। “आनन्दशंकर माधवन् एक श्रेष्ठ साहित्यकार हैं” तो सुननेवाला ही न मिलेगा। “रामप्रसाद रावी का साहित्यिक दाय कृष्णा सोबती या भीष्म साहनी के साहित्यिक दाय से बहुत अधिक है” सुनकर ध्यान

1. “तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार।”

2. शाहजहाँ ने ‘महाकविराय’ तक की पदवी दे डाली।

देनेवाला न मिल पाएगा। “कन्हैयालाल मिश्र ‘प्रभाकर’ ने धर्मवीर ‘भारती’ से अधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यसेवा की है” सुनकर चकित होने वाले आसानी से मिल जाएँगे। “आचार्य विद्यासागर नागार्जुन से बड़े कवि हैं” सुनकर तो कॉम्युनिस्ट भाई कहने वाले का कॉलर ही पकड़ लेगा। पुरस्कारों एवं अलंकारों ने अतिन्यायप्राप्तों से न्याय कर समुद्र में वर्षा मात्र की है—और, न्याय के अपात्रों पर न्याय की वर्षा की बाढ़ में साहित्य को डुबाया भी है। डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’, श्री रामदयाल पाण्डेय, श्री गंगाप्रसाद मिश्र, श्री कैलाश कल्पित जैसे अनेक कवि एवं कथाकार तक आपाधापी के आखेट हुए हैं। यह सब आलोचक के अपराध के कारण ही सम्भव हो पाया है। और यह सब ईसा की बीसवीं सदी में हुआ है जिसके आरम्भ में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मिर्ज़ापुर के एक झाड़ंग-टीचर को महान् निबन्धकार रामचन्द्र शुक्ल के रूप में परिचित कराया था। हीरा डोम की भोजपुरी जनकविता को ‘सरस्वती’ का कण्ठहार बनाकर अधुनातन दलित-साहित्य का ऐतिहासिक प्रवर्तन किया, सरदार पूर्णसिंह को कुछ निबन्धों के बल पर अमर बनाया था, गुलेरी को केवल एक श्रेष्ठ कहानी के आधार पर प्रतिष्ठापित किया था! स्फीत रचनाकारों को पढ़े कौन? उन्हें उपेक्षा के टोकरे में डाल दो। स्व. गुरुदत्त, स्व. यज्ञदत्त शर्मा इत्यादि कथा-शिल्पी नहीं हैं, किन्तु कथाकार अवश्य हैं—इसे तक नहीं कहा या माना गया। अनध्ययन का अपराध।

आलोचकों के अपराधों के सर्वाधिक निर्मम आखेट हुए हैं विभाषाओं के कवि। पदलाभों, दललाभों, यात्रालाभों, पत्रपत्रिकालाभों, आकाशवाणी-दूरदर्शन-लाभों, इन-उन लाभों में बिका विभागाध्यक्ष (पदेन ‘विद्वान्’) या ‘आचार्य’ (प्रोफेसर), ‘प्रपाठक’ (रीडर), ‘प्रवक्ता’ (लेक्चर) आलोचना का एकाधिकारवादी ठेकेदार बन बैठा है। पढ़ने का समय कहाँ? जीने का समय कहाँ? किसे पड़ी है जो अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, मगही, अंगिका, मैथिली, राजस्थानी या मारवाड़ी, मेवाड़ी, बुंदेलखण्डी, बघेली, कौरवी, कुमाउँनी, डोगरी, पहाड़ी (हिमाचली) इत्यादि विभाषाओं को समेटे? ख्याति-आखेटक एवं पुरस्कार-लोभी छद्म-साहित्यकारों को आलोचक के उपेक्षा-अपराध से विभाषा को भाषा बनाने के राग को अलापने का अवसर अनायास प्राप्त हो जाता है, जिसे भारत के विभाजक तत्त्वों को प्रश्रय देने वाला देशद्रोही नेतृत्व बढ़ावा देता है क्योंकि वह साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, विभाषावाद की लहू से सने आटे की रोटी खाने का अभ्यस्त हो चुका है। विभाषाओं एवं विभाषा-रचनाकारों का सम्मान किए बिना हिन्दी का सहज-विराट रूप समझा तक नहीं जा सकता। विभाषाओं के बिना हिन्दी अंगभंगकाय हो जाएगी। वह टूट भी सकती है। मैथिली, राजस्थानी, डोगरी इत्यादि को अलग-सा कर लिया गया है क्योंकि पुरस्कार एवं राजनीति के लाभ प्राप्त हो सके हैं। इस रोग से हिन्दी को बचाने का प्रधान दायित्व भी आलोचक का है। अति विशेषतः द्विवेदी, विशेषतः मिश्रबन्धु एवं सामान्यतः रामचन्द्र शुक्ल ने विभाषाओं का ध्यान रखा था, ब्रजभाषा का ध्यान रखा था। यह ध्यान सारी विभाषाओं पर जाना चाहिए था। किन्तु आज, ‘आलोचक’ खड़ीबोली-साहित्य तक को दलगत या व्यक्तिगत नजरिए से ही देख पा रहा है (क्योंकि इसी में ‘लाभ’ है)—विभाषाओं तक उसकी चश्मे में बन्द आँखें जा ही नहीं पातीं।

बीसवीं सदी में अवधी-कविता पारम्परिक सृजन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है, नूतन सृजन की दृष्टि से भी। कृष्णायन (द्वारकाप्रसाद मिश्र), गांधीचरितमानस (विद्याधर महाजन), पारिजात (मृगेश), बुद्धचरितचंद्रोदय (विनीत विक्रम बौद्ध—पूर्वनाम रामखेलावन वमा)¹ जैसे महाकाव्य अधुनातन अवधी की सम्पन्नता के प्रतीक हैं। अधुनातन अवधी की एक प्रमुख एवं लोकप्रिय काव्यधारा हास्यव्यंग्य-प्रधान रही, जिसके प्रवर्तक थे बलभद्र दीक्षित ‘पढ़ीस’, विकासक थे वंशीधर शुक्ल, लोकप्रियता-शिखर तक ले जाने वाले थे चन्द्रभूषण त्रिवेदी ‘रमई काका’। बाराबंकी जनपद में अपनी किस्म के दुनिया में प्राप्त एकमात्र वृक्ष ‘पारिजात’² पर प्रयोजिष्यन् महाकाव्य के स्मरणीय प्रणेता ‘मृगेश’ ने इस परम्परा को भी सम्पन्न किया है। स्व. ‘भुशुंडि’ ने अवधी-हास्यकाव्य का प्रणयन भी किया है, खड़ीबोली-हास्यकाव्य का भी, और, वे स्फीत हास्य-व्यंग्य-गद्यकार भी थे—कुल मिलाकर हिन्दी के हास्य-साहित्य में उनको अद्वितीय स्थान का अधिकारी माना जा सकता है। गुरू किसान, डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र ‘मधुप’, डॉ. रामबहादुर मिश्र, डॉ. विद्याबिन्दु सिंह, डॉ. महेश अवस्थी, श्री आद्याप्रसाद सिंह ‘प्रदीप’, काका बैसवारी इत्यादि ने अवधी-साहित्य को सर्जन एवं विवेचन

1. इन्होंने ‘पाण्डव-मुराण’ (महाकाव्य) भी रचा है। कट्टर बौद्ध, अम्बेडकरवादी एवं कॉम्युनिस्ट हैं, राम-कृष्ण के प्रचण्ड विरोधी, तथा तदनुरूप ही लिखते हैं; किन्तु प्रतिभाशाली हैं (अधिकतर खड़ीबोली में रचा है)।
2. अवधी-कवि एवं अवधी कवितासेवी स्व. डॉ. त्रिभुवननाथ शर्मा ‘मधु’ (बाराबंकी) ने ‘पारिजात’ का प्रकाशन एवं व्यसनग्रस्त स्व. मृगेश की भरपूर सहायता कर (मेरे विचार से) साहित्य में मृगेश के वाहक का गौरव प्राप्त किया है।
3. सम्भवतः कविगण कॉम्युनिस्ट पार्टी के निष्ठावान सदस्य न थे?

की उभय दृष्टियों से पर्याप्त सम्पन्न रूप प्रदान करने में उल्लेख्य ही नहीं वरन् प्रशस्य सफलता प्राप्त ही है। यह नितान्त खेदजनक है कि जनवाद की डफली पीटनेवाले तत्त्वों ने अवधी-जनकाव्य की एकान्तिक उपेक्षा की है।¹ लखनऊ विश्वविद्यालय जैसी कुछेक शिक्षण-संस्थाओं ने आधुनिक अवधीकाव्य को पाठ्यक्रम-सम्मानित किया है, जो प्रशस्य है। किन्तु आलोचकों के अज्ञान या अपराध के कारण अभी कार्य बेहद कम हो पाया है।

रत्नाकर-परवर्ती ब्रजभाषा-कविता की विकट उपेक्षा भी आलोचकों के अपराध की ही सूचना देती है। रामनाथ 'जोतिषी' की चर्चा मिश्रबन्धु एवं शुक्ल कर गए थे, अतः वे एकदम अज्ञात नहीं रह सके। किन्तु श्यामबिहारी शर्मा 'विहारी', केशवदेव शुक्ल 'केशव', वचनेश, अनूप शर्मा,¹ 'ब्रजनन्दन',² 'प्रियदर्शी', 'राजेश', गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, गिरीश चतुर्वेदी, प्रकाश द्विवेदी, स्व. हरिशंकर उपाध्याय 'शंकर' इत्यादि उत्कृष्ट कवियों को आलोचना एवं साहित्येतिहास दोनों में या तो पर्याप्त न्याय नहीं मिला या इनकी एकान्त उपेक्षा की गई।

भोजपुरी एक स्फीत विभाषा है जिसका क्षेत्र उत्तर प्रदेश एवं बिहार के दो राज्यों तक प्रसरित है। छोटकुन, भागीरथी, भिखारी ठाकुर इत्यादि अमर जनकवियों ने भोजपुरी-कविता का मनोहारी शृंगार किया है। बलिया भोजपुरी का उत्तरप्रदेश-बिहार-संगमक्षेत्र है, जहाँ स्व. श्री कुलदीपनारायण राय 'झड़प' भोजपुरी-काव्यसृजन भी कर चुके हैं, भोजपुरी-काव्यविवेचन भी; और, भोजपुरी-काव्यसंवर्द्धन कराते भी रहे। भोजपुरी में महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य, गीतिकाव्य इत्यादि का सृजन तो हो ही रहा है, गद्य-लेखन भी चल रहा है। मगही में डॉ. मुचकुंद शर्मा, कुमारी राधा इत्यादि तथा अंगिका में सुमन सूर, 'प्राण' इत्यादि का सृजन भी उल्लेखनीय है।

कुमाउँनी हिन्दी की एक गौरवशालिनी विभाषा है। आधुनिक कुमाउँनी के भारतेन्दु गुप्त वस्तुतः भारतेन्दु-पूर्ववर्ती थे, जिनके समय से इस विभाषा में साहित्य-सृजन अप्रतिहत रूप से होता आ रहा है। बुन्देलखण्ड के जनकवि ईसुरी और स्व. सन्तोषसिंह बुन्देला जैसे कवि जनता को तो मन्त्रमुग्ध करते ही रहे हैं, साहित्यिक दृष्टि से भी मननीय हैं। बघेली वेदप्रकाश सिंह 'प्रकाश', श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' इत्यादि के द्वारा साहित्य-सर्जना चल रही है। इस सबके उल्लेख या संकेत के बिना हिन्दी साहित्य का कोई भी इतिहास अधूरा तो होगा ही, विपन्न भी होगा।

मैंने यत्न किया है कि विभाषाओं के साहित्यों के विकास को भी हिन्दी-साहित्येतिहास में यथासम्भव समाहित किया जाए। भारत के अहिन्दी भाषा-भाषियों से लेकर मॉरीशस, ट्रिनिडाड इत्यादि दूर देशों तक के हिन्दी-साहित्यकारों का उल्लेख किए बिना हिन्दी साहित्य का कोई इतिहास पूरा नहीं माना जा सकता। आचार्य विद्यासागर, आनन्दशंकर माधवन्, काज वेंकटेश्वर राव, एन्. चन्द्रशेखरन् नायर इत्यादि से लेकर अभिमन्यु 'अनत', प्रह्लाद रामशरण, हरिशंकर 'आदेश', स्मेकल इत्यादि तक ने हिन्दी को सृजनात्मक साहित्य से सम्पन्न किया है—जिसका आकलन किए बिना हिन्दी का राष्ट्रभाषा-रूप एवं विश्वभाषा-रूप प्रमाणित करना कठिन होगा। मैंने हिन्दी के निज-रूप, हिन्दी के राष्ट्रभाषा-रूप एवं हिन्दी के विश्वभाषा-रूप के 'बाह्य त्रित्' को 'आभ्यन्तर एक' में समाहित करने का यत्न किया है। बहुत कुछ शेष है, जो अन्य साहित्येतिहासकार एवं आलोचक करें।

1. खड़ीबोली-महाकाव्यद्वय 'सिद्धार्थ' एवं 'वर्द्धमान' के प्रणेता भी।

2. ब्रजभाषा-कवि एवं ब्रजभाषा-कविताप्रेमी स्व. डॉ. त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' ने 'ब्रजनन्दन-विलास' का प्रकाशन एवं कवि-सहायता करके ब्रजनन्दन-वाहक का भी गौरव पाया है। 'मधु' ने खड़ीबोली में अधिक लिखा है।

1. संक्रान्तिकाल¹ (800-1300 ई.)

सिद्ध-काव्य	नाथ-काव्य	जैन काव्य	रासो-काव्य
हिन्दी के आदिकवि सरहपा सवरपा (शवरपा) लुइपा (लूहिपा, लूइपा) शान्तिपा कण्हपा इत्यादि ।	जालन्धरनाथ (जालन्धरिपा) मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दरनाथ) गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) चर्पटनाथ इत्यादि ।	स्वयंभू (हिन्दी के आदिकवि के दावेदार) पुष्पदन्त देवसेन हेमचन्द्र इत्यादि ।	नरपति नाल्ह चन्द्रवारदायी जगनिक जज्जल इत्यादि ।
प्रवृत्तियाँ: अन्तस्साधना मानवतावाद उच्छृंखल प्रतीकवाद इत्यादि ।	प्रवृत्तियाँ: अन्तस्साधना मानवतावाद योगशुद्धि इत्यादि ।	प्रवृत्तियाँ: व्यापक आयामों के स्पर्श के साथ जैनधर्म का प्रतिपादन । रामकाव्य, नीतिकाव्य, युगकाव्य, व्याकरण-ग्रन्थ इत्यादि का सृजन ।	प्रवृत्तियाँ: आश्रयदाता अथवा उसके पूर्वजों की अतिरंजित प्रशंसा ।
भाषा: अपभ्रंश का जनवादी रूप या पुरानी हिन्दी (सन्ध्या-भाषा) ।	भाषा: अपभ्रंश का जनवादी रूप या पुरानी हिन्दी ।	भाषा: अपभ्रंश का जनवादी रूप या पुरानी हिन्दी ।	भाषा: डिंगल (अपभ्रंश-मिश्रित राजस्थानी) एवं पिंगल (ब्रजभाषा) ।
प्रभाव: नाथों, सन्तों इत्यादि से राहुल, यशपाल, रजनीश इत्यादि तक ।	प्रभाव: सन्तों, सूफियों इत्यादि से आज तक के हठयोगियों, सम्पूर्णानन्द, मुक्तानन्द इत्यादि तक ।	प्रभाव: रामकाव्य एवं नीतिकाव्य पर विशेष, विरहकाव्य पर पर्याप्त ।	प्रभाव: वीरकाव्य पर पर्याप्त ।

1. प्रचलित नाम चारणकाल या रासोकाल या वीरगाथाकाल या सिद्धसामन्तकाल या आदिकाल, जो एकांगी हैं, तथा जिनकी कालसीमाएँ भिन्न-भिन्न हैं ।

संक्रान्तिकाल (800-1300 ई.)

प्रस्तावना

चिरक्रान्त ब्रह्माण्ड में प्रतिपल संक्रान्ति होती रहती है, गतिशील शरीर में प्रतिपल परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक काल संक्रान्ति-सम्पृक्त होता है, प्रत्येक शरीर परिवर्तन-निलय होता है। किन्तु जिस काल में संक्रान्ति की प्रक्रिया विराट्, तीव्र, सशक्त एवं निर्णायक होती है वही काल संक्रान्तिकाल कहा जा सकता है; शरीर में जब बड़ा, प्रभावी, परिवर्तनकारी एवं निर्णायक अन्तर दृग्गत होता है तब अवस्थान्तर स्पष्ट माना जाता है। बुद्ध के 'पुद्गल नैरात्म्य' (अस्मिन् सति, इदं भवति) से मार्क्स के द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद तक, भास के 'कालक्रमेण जगतः परिवर्तमानः चक्रारपक्तिरिव गच्छति भाग्यपक्तिः' से टॉयन्बी के 'समय की साइकिल' तक यह तथ्य एकदम स्पष्ट है। भारत के हजारों वर्षों के उपलब्ध प्रामाणिक इतिहास में सबसे बड़ा संक्रान्तिकाल 800-1300 ई. के बीच माना जा सकता है, क्योंकि यह आन्तरिक एवं बाह्य उभय घटनाचक्रों की दृष्टि से इतना भयावह एवं विकट था कि सरलतापूर्वक "न भूतो न भविष्यति" कहला देता है, क्योंकि इसकी तुलना में बुद्ध एवं बौद्धधर्म के उत्थान, गौरांग-महाप्रभुओं का भारत पर शासन, स्वातन्त्र्योत्तर सत्ताकाल जैसे घटनाचक्र तक नितान्त अल्पप्रभावी लगते हैं। इस काल में विकटतम धार्मिक एवं राजनैतिक परिवर्तन ही नहीं हुए, अभूतपूर्व भाषिक परिवर्तन भी हुआ—बौद्धधर्म का वज्रयान-सहजयान रूप में पर्यवसान तथा क्रमशः हिन्दूधर्म के नाथ-पंथ, निर्गुणप्रधान संत-पंथ एवं सगुणप्रधान वैष्णव-पंथ में योग, समभाव, अहिंसा के साथ लय एक विराट् धर्मिक संक्रान्ति का सूचक है, सत्ता का देशी तत्त्वों के हाथ से निकलकर विदेशी (क्रमशः अरब एवं तुर्की) तत्त्वों के हाथ में जाना राष्ट्रीय इतिहास की भयानकतम राजनैतिक संक्रान्ति का सूचक है, विभिन्न प्राकृतों-अपभ्रंशों को हिन्दी, बांग्ला, उड़िया, पंजाबी, गुजराती, मराठी इत्यादि भाषाओं में परिवर्तित होना अभूतपूर्व भाषिक संक्रान्ति का सूचक है। सिद्ध, नाथ, जैन, राजपूत सब इसी विराट् एवं अभूतपूर्व संक्रान्ति से सम्पृक्त हैं। इतिहास का पहिया घूमा और ऊपर की तीली नीचे आ गई, नीचे की ऊपर। महानतम सूर्यवंश, महानतर चन्द्रवंश, महान् मौर्यवंश, महान् शुंग-वंश, महान् गुप्तवंश, उदार वर्द्धनवंश इत्यादि की गरिमा से मण्डित अद्वितीय भारत कबीलों में बँटे अरब आक्रांताओं एवं बर्बर तुर्कों का दयनीय आखेटस्थल बन गया! आज तक उसका रूप सिकुड़ता ही जा रहा है। वह मरा नहीं, यह विश्व-इतिहास का सबसे बड़ा आश्चर्य है जिसे घोर साम्प्रदायिक, पाकिस्तान का देव-पिता इकबाल तक 'कुछ बात' के रहस्य के साथ स्वीकार करता है। यह 'कुछ बात' भारत की अतुलनीय आध्यात्मिकता है जिसने प्रत्येक भारतीय को कलानिलय एवं स्वतन्त्र बनाए रखा।

इस काल के साहित्य में धार्मिक और साधनात्मक संक्रान्ति सिद्धों और नाथों, भाषिक संक्रान्ति जैनों तथा राजनैतिक संक्रान्ति रासोकारों द्वारा अभिलिखित मिलती है जो केवल ऐतिहासिक परिस्थितियों को ही चित्रित नहीं करती प्रत्युत सामाजिक परिस्थितियों को भी विवृत करती है। खेद है कि इस विराट् काल पर इतिहास, धर्म, दर्शन, काव्यकला इत्यादि की दृष्टियों से विशद विवेचन किसी साहित्येतिहास में नहीं मिलता। मिश्रबन्धु के महान् 'विनोद' में विशृंखल परिचयात्मक विवरण मात्र उपलब्ध होता है। शुक्ल के अमर 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में सिद्धादि की वाणी को 'सैद्धान्तिक' कहकर धता बताने का घोर अनौचित्य तथा 'विनोद' की सामग्री का संक्षेपण विरोधाभास का सूचक मात्र बनकर रह गया है—उनका कालनिर्धारण साधार नहीं है। रामकुमार वर्मा के स्फीत 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में सामग्री तो है किन्तु विश्लेषण-संश्लेषण नहीं। अन्य इतिहासों का अनुल्लेख ही न्यायसंगत होगा। मैंने 1960 ई. के आसपास इस काल को जिस प्रकार वर्गीकृत किया गया था वह 1962-1963 ई. में लिखित तथा 1967 ई. में प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास' ('हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' के रूप में 1985-1986 ई. में निकला, स्फीत 'आलोचना-सागर' के प्रथम खण्ड के रूप में 1988 ई. में) अंकित है, जिसका कई परवर्ती इतिहासों पर प्रभाव पड़ा। अब मेरे इतिहास-दर्शन में परिवर्तन हुआ है तथा संक्रान्तिकाल के साहित्य को चार वर्गों में विभक्त करना समीचीन लगा है (पंचम वर्ग 'स्वतन्त्र साहित्य', जिसमें अमीर खुसरो, मुल्ला दाऊद एवं मैथिल-कोकिल विद्यापति का विवेचन था, अब पुनरुत्थानकाल में विवेचित है) :

1. सिद्ध-काव्य

बौद्धधर्म और सहजयान-वज्रयान

सिद्ध-साधना बौद्धधर्म के वज्रयान¹ (जिसे सहजयान भी कहा गया) से सम्पृक्त है, जिसमें बुद्ध (563-483 ईसा-पूर्व)² का बारम्बार उल्लेख स्वाभाविक है। बुद्ध को विश्व-इतिहास में प्रथम व्यापक एवं प्रभावी धर्मप्रवर्तक माना जा सकता है क्योंकि ईसाइयत और मोहम्मदीयत परवर्ती है। वैसे, वे जरथुस्त्र (जोरास्टर), लाओ-त्से एवं कुंग फु-त्से (कन्फ्यूशियस) के समकालीन-से थे। ऐसा लगता है कि वे दुःख (चाहे वह वृद्ध का हो या रोगी का या मृत्युजन्य या प्रसवजन्य—वे पत्नी यशोधरा को राहुल के जन्म पर ही छोड़कर भाग खड़े हुए थे) से अभिभूत हो जाते थे। 'भारतीय दर्शन' के विद्वान् लेखक महामहोपाध्याय डॉ. उमेश मिश्र ने लिखा है, "गौतम बहुत दुर्बल प्रकृति के व्यक्ति थे। इन्हें दूसरों का भी दुःख सहन नहीं होता था, फिर अपने दुःख की तो बात ही क्या!... गौतम ने केवल परदुःख को न सह सकने के कारण घर छोड़ा, न कि यज्ञों में हिंसा को देखकर जैसा.... पाश्चात्य शिक्षासम्पन्न विद्वान् समझते हैं।"³ बुद्ध और महावीर के अहिंसा पर बेहद और बेकार का जोर देने से वर्णाश्रम-व्यवस्था में अस्पृश्यता का प्रदूषण फैला। हिंस्र एवं भयंकर लोगों को 'चांडाल' (चंड या प्रचण्ड कर्म करने के कारण) कहा जाता है। बौद्ध साहित्य में इन्हें तथा 'निषाद' प्रभृति को 'आखेटक' होने के कारण 'अस्पृश्य' घोषित किया गया। अस्पृश्यता, वस्तुतः जातिप्रथा, बौद्धधर्म की देन है—ऐसा साम्यवादी एवं मुस्लिमवादी इतिहासकार प्रो. इफान हबीब तक ने 'भारतीय इतिहास में जाति और मुद्रा' ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है। आज भी जैन-धर्माचार्यों में 'दूर रहना', 'छूना मत' जैसे वाक्य सुनकर छुआछूत का उद्गम देखा भी जा सकता है, सुना भी। जैनों ने रामायण, भागवत पुराण इत्यादि में विकट प्रक्षेप किए हैं। सीतात्याग, शम्बूकवध इत्यादि की प्रक्षिप्त कक्षाएँ प्रमाण हैं। बौद्धों ने दशरथ-जातक द्वारा रामकथा को विकृत किया। बुद्ध एक अच्छे-खासे जमींदार परिवार में पैदा हुए थे तथा किसानी करते-कराते थे (जैसाकि प्रख्यात एवं यथासम्भव प्रात्ययिक बौद्ध विद्वान् धर्मानन्द कोसम्बी ने अपने 'भगवान् बुद्ध' शीर्षक ग्रन्थ में लिखा भी है)। उनके ऐश्वर्यशाली राजवंश में जन्म, ग्रीष्म-पावस-शीत ऋतुओं के पृथक्-पृथक् प्रासाद इत्यादि की कल्पना अश्वघोष ('बुद्धचरितम्' एवं 'सौन्दरनन्द' के कवि) ने बहुत बाद में की, जिसका स्वयंवर-प्रकरण इत्यादि भी वाल्मीकि कृत रामायण से प्रभावित है (जैसाकि 'बौद्ध धर्म दर्शन' जैसे अपने विषय के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ में महान् विद्वान् आचार्य नरेन्द्रदेव ने स्पष्ट लिखा है)। मेरी समझ में, वे कल्पनाशील महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे तथा व्यापक क्षेत्र में कार्य करके विशेष ख्याति चाहते थे। सम्भवतः किसी पारिवारिक कुण्ठा से उद्वेलित होकर वे घर से भाग खड़े हुए। यह पलायन या पत्नी-सद्यःजातपुत्र के त्याग से ही नहीं प्रत्युत उसको राहुदशाग्रस्त या राहुल (विनाशकारी) कहने से भी स्पष्ट होता है। यदि हिंसा के कारण भागते तो भिक्षुओं को मांस खाने का आदेश कैसे देते और स्वयं सुअर का मांस अधिक खा जाने के कारण कैसे मरते। (जैसाकि महापरिनिब्बानसुत्त या महापरिनिर्वाणसूक्त से स्पष्ट है)? अतः अश्वघोष की कल्पनाओं और तदाधृत आर्नोल्ड, मैक्स मुलर, वेल्स इत्यादि के साधारणज्ञानजन्य विवरणों पर नहीं अपितु धर्मानन्द कोसम्बी, नरेन्द्रदेव, उमेश मिश्र इत्यादि के प्राचीनतम बौद्ध ग्रन्थों के गहन अनुशीलन पर आधृत विचारों को ही वरीयता देने पर सत्य का साक्षात्कार सम्भव है। राधाकृष्णन् इत्यादि पश्चिम-अनुवर्ती दर्शन-व्याख्याताओं एवं नेहरू⁴ इत्यादि पल्लवग्राही अध्येताओं को इस दिशा में महत्त्व देना सतहीपन को बढ़ावा देना मात्र होगा। रीस-डेविड्स के अनुसार, गौतम जन्म, पालन-पोषण, जीवन एवं मरण सभी दृष्टियों से हिन्दू थे तथा उनके धर्म में ऐसा कुछ नहीं है जो पूर्ववर्ती एवं परवर्ती हिन्दू धर्म में विद्यमान न हो। उमेश मिश्र के शब्दों में "बुद्ध के उपदेश उपनिषदों के उपदेशों के आधार पर थे।.... शंकर के अद्वैतवाद तथा नागार्जुन⁵ के शून्यवाद में तो केवल शब्दों ही में भेद मालूम होता है।" घर से भाग खड़े होने के बाद सिद्धार्थ ने अनेक गुरुओं एवं विद्वानों से सत्संग किया। उनकी महत्वाकांक्षा किसी से परितुष्ट न हुई। तब गया में अनेक तप-प्रयोग एवं चिन्तन

1. हीनयान तो हीन है ही, महायान से भी सशक्त-सुदृढ़ वज्रयान, हो हीनयानियों की निवृत्तिप्रधान एवं महायानियों की प्रवृत्तिप्रधान एकांगिताओं से ऊपर उठा, पूर्ण सहजयान है, स्वाभाविक यान है—ऐसे विचारों में बद्धमूल।
2. 623-543 ई. पू. भी प्रचलित है।
3. षष्ठ परिच्छेद, बौद्ध दर्शन, पृष्ठ 134 तथा द्रष्टव्य हैं राधाकृष्णन् इंडियन फिलॉसॉफी (भाग 1, पृष्ठ 354), वि. च. लाहा-बुद्धिस्टिक स्टडीज (पृष्ठ 113), विधुशंकर भट्टाचार्य-बैसिक कांशेषान ऑफ बुद्धिजम (पृष्ठ 7-8)।
4. डिस्कवरी ऑफ इंडिया, बुद्ध के 2500वें निर्वाण-दिवस पर भाषण इत्यादि।
5. द्वितीय (या तृतीय) शताब्दी। महायान के प्रवर्तक। महान् दार्शनिक, तार्त्रिक, समन्वयवादी।

के परिणामस्वरूप उन्हें लगा कि बोध प्राप्त हो गया है, वे बुद्ध हो गए हैं। किन्तु केवल इतने से तो बात बन न सकती थी। अतः वे चेलों की खोज में निकले। उन्हें तपभ्रष्ट समझकर छोड़ भागनेवाले कौण्डिन्य इत्यादि पंचवर्गीय भिक्षु सारनाथ में मिल गए, प्रभावित हुए। केवल सम्बन्धी देवदत्त ने सदा के लिए नाता तोड़ा। उनके भाई आनन्द तो सम्बन्धी भी थे। जब स्वयं क्षत्रिय होने के कारण बुद्ध ने लगातार दौड़धूप करके राजगृह के सम्राट् बिम्बसार, श्रावस्ती के महाराज प्रसेनजित् एवं कौशाम्बी के महाराज उदयन को प्रभावित कर लिया तब “यथ राजा तथा प्रजा” के सनातन सत्य के अनुसार उनका धर्मचक्र पूरे दल-बल के साथ घूमने लगा। सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन प्रमुख प्रचारक बनाए गए। फिर भी, ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है कि वैदिक धर्म का हास हो गया था। कालान्तर में अशोक, कनिष्क, हर्ष इत्यादि ने अपने-अपने कालों में बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अपार धन व्यय किया जिसके परिणामस्वरूप यह लंका, तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया, विएतनाम, कम्बोडिया, लाओस, बर्मा इत्यादि तक फैल सका किन्तु भारत में यह कभी कुछेक विभिन्न कुण्ठाओं से ग्रस्त राजाओं-महाराजाओं, धनिकों-व्यापारियों, बुद्धिजीवियों-कवियों इत्यादि के धर्म से बाहर फैलकर व्यापक जनधर्म नहीं बन सका। स्वयं अशोक के अपार साधन भी मुट्मरद भिक्षुओं के दलों की छीनाझपटी से न बच सके जैसाकि सारनाथ की लाट स्पष्ट करती है। आरम्भ में अशोक का जो उत्साह दिल्ली (आज के ग्रेटर कैलाश क्षेत्र) के (नए प्राप्त) शिलालेख में दृष्टिगोचर होता है (जिसके अनुसार, ‘देवानां प्रिय’ के शासन के थोड़े-से काल में ही आर्यावर्त के लोग देवताओं के सदृश हो गए हैं) वह कालान्तर में टाँय-टाँय-फिस्स हो गया। यथासमय इसका पूर्ण पतन भी हुआ अथवा विराट् हिन्दूधर्म ने इसे आत्मसात् कर लिया।

बौद्धधर्म के चार आर्यसत्य

बुद्ध के चार आर्य-सत्य¹ हैं—1. सर्व दुःखम्। 2. दुःख समुदयः॥ 3. दुःखनिरोध, तथा 4. दुःखनिरोधगामिनीप्रतिपद; अर्थात् संसार दुःखमय है; दुःखों का कारण है, दुःख का नाश होता है तथा दुःख के नाश के लिए उपाय भी हैं। ‘अष्टांगिक मार्ग’ (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि) पर चलकर मानव दुःखमुक्ति के लक्ष्य (निर्वाण) तक पहुँच सकता है। सम्यक् दृष्टि एवं सम्यक् संकल्प को प्रज्ञा, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त एवं सम्यक् आजीविका को शील तथा सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि को समाधि के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है, जो तीन मुख्य साधन हैं। बुद्ध ने प्रवृत्ति के अतिरेक एवं निवृत्ति के अतिरेक से बचते हुए दोनों में सात्विक समन्वय किया तथा ‘मध्यम प्रतिपदा’ (मध्यमार्ग) का प्रतिपादन किया। दार्शनिक दृष्टि से बुद्ध ने ‘सर्व अनित्यम्’, ‘सर्व अनात्मम्’ एवं ‘निर्वाणं शान्तम्’ द्वारा अनित्यवाद-अनात्मवाद-निर्वाणवाद का प्रतिपाद किया। ‘बौद्ध दर्शन’ के विद्वान् लेखक डॉ. बलदेव उपाध्याय इन तत्त्वों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, “विश्व के समग्र पदार्थ अनित्य हैं—स्थायी नहीं हैं। ऐसी कोई वस्तु विद्यमान नहीं है जिसे स्थायिता प्राप्त हो। इस सिद्धान्त का अंश है क्षणिकता का वाद। जगत् परिणामशाली है। कोई भी वस्तु स्थावर नहीं है। क्षण-क्षण में वस्तुएँ परिणाम-परिवर्तन प्राप्त होती रहती हैं। जगत् में ‘सत्ता’ नहीं है, ‘परिणाम’ ही केवल सत्य है। बुद्धदर्शन का यही मुख्य सिद्धान्त है। ग्रीक दार्शनिक हिरेक्लिटस ने भी परिवर्तन के तथ्य को माना है, परन्तु बुद्ध का यह मत इस ग्रीक तत्त्ववेत्ता से कहीं अधिक प्राचीन है। सब वस्तुएँ आत्मा (स्वभाव) से रहित हैं। आत्मा या जीव के नाम से जो तत्त्व पुकारा जाता है वह स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वह तो केवल मानसिक वृत्तियों का संघात मात्र है। वस्तुतः द्रव्य की सत्ता नहीं है। वह तो कतिपय गुणों का समुच्चय मात्र है। यह तथ्य अन्तर तथा बाह्य दोनों जगत् के पदार्थों के विषय में है। न अन्तर्जगत् या चित्त जगत् को कोई पदार्थ स्वरूपरहित है, न बाह्य जगत् का पदार्थ (धर्म) पहले अंश का नाम है पुद्गल नैरात्म्य तथा दूसरे अंश का नाम है धर्म नैरात्म्य। दोनों को एक साथ मिला देने से यह समस्त संसार ही आत्म-शून्य प्रतीत होता है। इस सिद्धान्त की मीमांसा हीनयान तथा महायान से बड़ी युक्तियों से की गई है। निर्वाण ही शान्त है। जगत् में दुःख का राज्य है। इसकी निवृत्ति ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। काम तथा तृष्णा से जगत् का उदय होता है। तृष्णा आदि क्लेशों का मूल अविद्या है। जब तक अविद्या का नाश नहीं होता, दुःखनिवृत्ति नहीं उपजती। इसके लिए आवश्यकता है प्रज्ञा की। शील, समाधि, प्रज्ञा—ये बुद्धधर्म के तीन रत्न हैं। प्रज्ञा का उदय निर्वाण का साधन है। इस प्रकार बुद्ध ने जगत् के दुःखमय जीवन से निवृत्ति पाने के लिए निर्वाण को शान्त बतलाया है।”

सिद्धयोग

सिद्धों की योगसाधना मूलतः हठयोग ही है। हठयोग नाथों की साधना का प्रतीक माना जाता है, क्योंकि सिद्धों ने उसमें पंचमकार (मांस, मत्स्य, मद्य, मुद्रा, मैथुन) का समावेश किया तथा नाथों ने उसे इससे मुक्त। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि हठयोग दोनों को सम्पृक्त करता है। सिद्धों की सूची नाथों और नाथों की सूची सिद्धों से इसीलिए गुंथी हुई है। ह और ठ प्रतीक हैं चन्द्र और सूर्य के। 'ह' या चन्द्र इड़ा (इँगला) नाड़ी है, 'ठ' या सूर्य (पिंगला)। ह और ठ का योग (समीकरण) ही सिद्धि है। चन्द्र और सूर्य का एकीकरण शीत-तापादि से मुक्त एक अप्रतिहत अलौकिक आनन्ददशा का सूचक है। नासिका-छिद्र ह और ठ हैं जिनका प्राण-अपान-वायुसमीकरण ही हठयोग है। अन्तर उत्पत्ति तथा समता लय है। ह और ठ, या चन्द्र और सूर्य, या गंगा और यमुना, या इड़ा और पिंगला, या प्राण और अपान का समीकरण ही आनन्द या महासुख है। यह प्रकृति-पुरुष-लय का प्रतीक है। कालान्तर में यही शक्ति-शिव-ऐक्य का द्योतक भी बना। अतः हठयोग द्वन्द्वमुक्त अखण्ड अप्रतिहत ऐक्य का द्योतक है। 'बौद्ध दर्शन' के विद्वान् लेखक डॉ. बलदेव उपाध्याय लिखते हैं, "शिव-शक्ति, पुरुष-प्रकृति आदि शब्द इसी आदि द्वन्द्व¹ के बोधक हैं। जीव देह में ये शक्तियाँ प्राण और अपान रूप में रहती हैं। प्राण और अपान का परस्पर संघर्ष ही जीवन है। प्राण अपान को और अपान प्राण को अपनी ओर खींचता रहता है। इन दोनों को उद्बुद्ध कर दोनों में समता लाना योगी का परम कर्तव्य है। प्राण और अपान की समता, इड़ा और पिंगला की समता, पूरक और रेचक की समानता (अथवा कुम्भक), सुषुम्ना के द्वार का उन्मोचन—एक ही पदार्थ है। इड़ा वाम नाड़ी है और पिंगला दाहिनी नाड़ी है तथा दोनों की समानता होने पर, दोनों के मध्य में स्थित सुषुम्ना नाड़ी का द्वार आप से आप खुल जाता है। इसी द्वार के सहारे प्राण की ऊर्ध्व गति करना योगियों का परम ध्येय है। सुषुम्ना के मार्ग ही को कहते हैं मध्यम पथ, मध्यम मार्ग, शून्य पदवी अथवा ब्रह्मनाड़ी। सूर्य और चन्द्र को यदि प्रकृति तथा पुरुष का प्रतीक मानें तो हम कह सकते हैं कि प्रकृति और पुरुष के आलिंगन के बिना मध्यम मार्ग कभी खुल नहीं सकता। वाम और दक्षिण के समान होने पर मध्यमावस्था का पूर्ण विकास ही निर्वाण है। इड़ा और पिंगला के समीकरण करने से कुण्डलिनी² शक्ति जागृत होती है। जब उत्चक्र का भेद कर आज्ञा-चक्र के ऊपर साधक की स्थिति होती है तब कुण्डलिनी धीरे-धीरे ऊपर चढ़कर चैतन्य समुद्र रूप सहस्रारचक्र में स्थित परम शिव के आलिंगन के लिए अग्रसर होती है। शिव-शक्ति का यह आलिंगन महान् आनन्द का अवसर है। इसी अवस्था का नाम युगल रूप है।" इस पंक्तियों में डॉ. बलदेव उपाध्याय ने सिद्धयोग, हठयोग (जिसे कुण्डलिनी-योग भी कह सकते हैं) इत्यादि का साधना-सिद्धान्त स्पष्ट किया है। बीसवीं सदी के महान् योगी स्वामी मुक्तानन्द परमहंस कृत 'चित्शक्तिविलास' एवं 'परमार्थप्रकाश' ग्रन्थों में सिद्धसाधनासिद्धान्त विशदतर रूप में निरूपित है, यद्यपि उनके सिद्धयोग में पंचमकार को प्रतीक-अप्रतीक कोई महत्त्व नहीं प्रदान किया गया। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'नाथ-सम्प्रदाय' में भी इस विषय का निरूपण किया गया है।

पंचमकार

सिद्धों ने इस चरम योगानन्द की प्राप्ति में पंचमकारों के सहयोग का उत्तेजक चित्रण किया है किन्तु इनका प्रतीकत्व स्पष्ट है—सहस्रार से निःसृत अमृत मद्य का प्रतीक है जिसका पान करनेवाला ही मद्यप है, ज्ञान-खड्ग द्वारा पुण्यापुण्य-पशु-आखेटक (चित्त को स्थूल जगत् से मुक्त कर सूक्ष्म बुद्ध या शिव या ब्रह्म में लीन करनेवाला) मांसाहारी है (मांस खा गया, स्थूल नष्ट कर चुका, सूक्ष्म मात्र में लीन है), इड़ा-पिंगला या गंगा-यमुना के श्वास-प्रश्वास या मत्स्य-द्वय का पाचक ही मत्स्य-भक्षी है, असत्संगति के विनाश (मुद्रण या जड़ीकरण) का अर्थ ही मुद्रा है, सुषुम्ना-सहस्रार-सम्भोग ही मैथुन है।¹

सिद्धों की पंचमकार-प्रतिष्ठा का स्थूल उद्देश्य साधारण जनता को मांस-मत्स्य-मदिरा-मुद्रा-मैथुन द्वारा आकृष्ट करना तो था, किन्तु उनकी साधना को वैदिक, औपनिषदिक तथा परवर्ती बौद्ध तन्त्र का यत्किंचित् आधार अवश्य प्राप्त था। काम की वैदिक प्रतिष्ठा

1. समग्र सृष्टि द्वन्द्वमयी है। एक तत्त्व दूसरे को आकर्षित करता है। एक तत्त्व दूसरे पर वर्चस्व चाहता है। शरीर में प्राण-अपान संसृति-द्वन्द्व के प्रतीक हैं। प्राण एवं अपान एक-दूसरे को खींचते रहते हैं। एक-दूसरे पर वर्चस्व स्थापित करते रहते हैं। प्राण-अपान-योग (हठयोग) इस द्वन्द्व को समाप्त कर समात की संसृष्टि करता है जो आनन्दमयी है।

2. 'कुल'। इसी से 'कौल' शब्द बना है। शक्ति 'कुल' है, शिव 'अकुल'। दोनों का योग आनन्द या महासुख या निर्वाण।

निर्विवाद है। बृहदारण्यक एवं छान्दोग्य उपनिषद् क्रमशः शारीरिक एवं आध्यात्मिक प्रतीकों द्वारा काम को साधनात्मक महत्त्व प्रदान करते हैं। महाभारत (श्रीमद्भगवद्गीता जिसका एक अंश है) में काम की ब्राह्मिक स्थिति प्रतिपादित है। तन्त्र ने काम के उदात्तीकरण को साधना में अधिकाधिक महत्त्व प्रदान किया, जिसका सूक्तियों और सन्तों पर भारी प्रभाव पड़ा। साधना तथा मादकपदार्थसेवन का इतिहास प्राचीनतर है। वेद में सोमरस देवता है, यूनान में भी वह पूज्य है, ईसा चेलों-भक्तों के साथ खाते-पीते हैं, मोहम्मद की हूरें भरे प्याले लिए घूमती हैं। अतः मद्य या वारुणी से एकवारगी चौंक पड़ना बेकार है। तन्त्र का अर्थ ही तन कर (विस्तार कर) त्राण करना है :

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्रसमन्वितान् ।
त्राणश्च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्याभिधीयते ॥

तन्त्र प्राचीनतम साधनामार्ग रहा है, जिसने ज्ञानविस्तार किया है (तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेनेति तन्त्रम्)। वैदिक, बौद्ध, जैन इत्यादि तन्त्र भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं जिनका अनेकानेक रूपों में विकास होता रहा तथा जिनके अनेक रूप विगर्हणीय भी सिद्ध हुए। डॉ. गोपीनाथ कविराज ने तन्त्र पर विशद ग्रन्थरचना की है।

अन्तस्साधनावाद और समतावाद

सिद्धों ने सहज जीवन-पद्धति का साधना से समन्वय किया, काम को उदात्त रूप प्रदान किया, अन्तस्साधना का प्रतिपादन किया, उच्च-निम्न का खण्डन कर समभावना का प्रचार-प्रसार किया, जिसका जनजीवन पर व्यापक प्रभाव आज तक स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। यह सत्य है कि उनके मुद्रावाद-मैथुनवाद ने स्थूल-प्रयोग का रूप भी ग्रहण किया था किन्तु विकृति किस साधना-पद्धति में नहीं आ घुसती? उन्होंने एक अखण्ड-अपार योगानन्द को महान् अभिव्यक्ति प्रदान की है, इसमें सन्देह नहीं :

1. जहँ मन पवन न संचरइ रवि ससि नाह पवेस¹
तहि वट चित्त विसाम करु सरहे कहिय उवेस ॥ (सरहपा)
2. घोर अँधारे चन्दमणि जिमि उज्जोव करेइ ।
परम महासुहु एखु खणे दुरिअ असेस हरेइ ॥ (सरहपा)
3. आइ ण मज्झ अणंत हिं नउ भउ नउ निव्वाण ।
एहु सो परम महासुहुउ नउ पर नउ अप्पाण ॥³

-
- | | |
|--------|--|
| 1. (क) | व्योमपंकजनिस्त्यन्दमुधापानरतो नरः ।
मधुपायी समः प्रोक्तः इतरे मद्यपायिनः ॥ (कुलार्णवतन्त्र) |
| | कुण्डल्याः मिलनादिन्दोः श्रवते यत् परामृतम् ।
पिबेत् योगी महेशानि सत्यं सत्यं वरानने ॥ (योगिनीतन्त्र) |
| (ख) | पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेनयोगवित् ।
परे लयं नयेत् चित्तं मांसाशी स निगद्यते ॥ (कुलार्णवतन्त्र) |
| (ग) | गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा ।
तौ मत्स्यौ भक्षयेत् यस्तु भवेत् मत्स्यसाधकः ॥ (आगमसार) |
| (घ) | सत्संगेन भवेत् मुक्तिरसत्संगेषु बंधनम् ।
असत्संगमुद्रणं यत्तु तन्मुद्राः परिकीर्तितः ॥ (विजयतन्त्र) |
| (ङ) | सुषुम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयन्तु परः शिवः ।
तयोस्त संगमो देवैः सुरतं नाम कीर्तितम् ॥ (मेरुतन्त्र) |

2. इड़ा-पिंगला के द्वन्द्व को स्थान नहीं। प्राणापान का द्वैत नहीं।

3. 'हेवज्रतन्त्र' का वचन।

4. पेखमि दह दिह सर्वइ सुन्न।²
चिअ विहुन्ने पाप न पुण्ण।। (भादेपा)
5. अनुभव सहज आ भोलरे जोई।
चोकोट्टि विमुका जइसो तइसो होई। (नारोपा)

प्रतीकवाद और सन्ध्याभाषा

उन्होंने मद्य या वारुणी, मुद्रा या योगिनी या मैथुन के वर्णन अवश्य किए हैं किन्तु वे प्रतीकसम्पन्न हैं :

1. एक से शुडिनि हुइ धरे सांधअ। चीअण वाकलअ वारुणी बांधअ।।
सहजे थिर करी वारुणी सांधे। जें अजरामर होइ दिट कांधे।। (विरूपा)
2. जोइनि तँइ बिनु खनहिं न जीवमि।
ते मुँह चुंबी कमल रस पीवामि।। (गुंडरीपा)
3. आजि भुसुक बंगाली भइली।
णिय घरिणीं चांडाली लेइली।।³ (भूसुकपा)
4. सुज लाउ ससि लगेलि तांती।
अणहा दांडी वाकि कि अत अवधूती।। (वीणापा)

सिद्धों ने कठिन एवं क्लेशकारी साधनामार्ग त्यागकर ऋजु एवं सरल साधनामार्ग अपनाने का परामर्श दिया:

1. उजु रे उज्जु छाड़ि मा लेहु रे बंक।
निअहि वोहिमा जाहु रे लंक।। (सरहपा)
2. भाव ण होइ अभाव ण जाइ।
आइस सँबोहे को पतिआइ।। (लुहिपा)
3. वाम दाहिण चापा मिलि मिलि मांगा।
वाटट मिलिलि महासुह सांगा।। (कँवलपा)

किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि सिद्ध चार्वाक या एपिक्यूरस या उमर खैयाम या रजनीश के सदृश खानपानविश्रामवादी थे, क्योंकि उन्होंने स्पष्ट कहा है :

तिनिएं पाटे लागेलि रे अणह कसण घण गाजइ।
तासुनि मार भयंकर रे सअ मंडल सएल भाजइ।।
मातेलि चीअ गअंदा धावइ निरंतरगअणंत तुसें घोलइ।।
पाप-पुण्ण वेणि तिड़िअ सिकल मोड़िअ खंभाठाण।
गअण टाकलि लागि रे चित्ता पइठ णिवान।।
महारसपाने मातेल रे तिहुअन सएल उएरती।
पंच विषय रे नायक रे वियख को बीन देखी।।
खर रवि किरण सँतापे रे अगणागण गइ पइठा।
भणंति महित्ता महिप्पा मइ एथु बुड़ंते किंपि न दिठा।।

(महीपा)

2. शून्य।

3. 'अवधूतिका' के विशुद्ध रूप के लिए डोंबी शब्द का व्यवहार किया जाता है। वामशक्ति और दक्षिणशक्ति के मिलन से जो अग्नि या तेज उत्पन्न होता है उसकी प्रथम अभिव्यक्ति में नाभिचक्र होती है। इस अवस्था में वह शक्ति अच्छी तरह विशुद्ध नहीं रहती। इसका सहजिया भाषा में सांकेतिक नाम चांडाली है। जब चांडाली विशुद्ध हो जाती है तब उसे डोंबी या बंगाली कहते हैं। —डॉ. बलदेव उपाध्याय

सिद्धों की सन्ध्याभाषा साँझ के कुछ स्पष्ट कुछ अस्पष्ट वातावरण के सदृश तथ्यप्रतीकसमन्वितभाषा है जिसे शतशः स्थूलदृष्टि से समझना सम्भव नहीं। डॉ. गोपीनाथ कविराज कथित एवं आ. रामचन्द्र शुक्ल समर्थित यह कथन निराधार है कि सिद्ध निम्नवर्गीय थे तथा उनका प्रभाव भी निम्नवर्ग तक सीमित रहा क्योंकि सरहपा, कणहपा, शान्तिपा इत्यादि विद्वान् एवं तिलोपा, दारिकपा, डोंगीपा, लूहिपा इत्यादि राजवर्गीय थे—वैसे, यदि सिद्ध निम्नवर्गीय एवं निम्नवर्गप्रभावकारी भी होते तो उन्हें विशेष गौरव प्राप्त होता क्योंकि संसार के अनेक धर्मवतार एवं उनके अनुयायी इसी प्रकार के थे। ईसा दरिद्र बढ़ई थे और उनके पतरस (पीटर) इत्यादि चले निषाद या मछलीमार! मोहम्मद अनाथ थे और उनके जैद इत्यादि चले गुलाम! सिद्धों ने प्रतीक-साधना ही नहीं दी, प्रतीक-भाषा भी दी जिसे कबीर इत्यादि ने अपनाया। सिद्ध ही उलटबाँसी के जनक भी थे :

टालत मोर घर नाहि षड़वेषी। हाड़ी ते भात नाहि निति आवेषी॥
का संसार वड़हिल जाअ। दुहिल दुधु कि पेटे षमाय॥
बलद बिआएल गाविआ बाँझे। पिटा दुहिए एतिना साँझे॥
जो जो बुधी सो धनि बुधी। जो सो चोर सोइ साधी॥
निते निते षिआला षिहेषम जुझअ। ढेण्ण पाएर गीत बिरले बुझअ॥

(तांतिपा)

संख्या तथा तदनन्तर्गत कवि

आ. रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में चौरासी सिद्धों के नाम अवतरित किए हैं—लूहिपा, लीलापा, विरूपा, डोंभिपा, शबरीपा,¹ सरहपा, कंकालिपा, मीनपा, गोरक्षपा, चौरंगीपा, वीणापा, शान्तिपा, तांतिपा, चमरिपा, खडगपा, नागार्जुन,² कणहपा, कर्णरिपा, थगनपा, नारोपा, शीलपा, तिलोपा, छत्रपा, भद्रपा, दोखंधिपा, अजोगिपा, कालपा, धोंभीपा, कंकणपा, कमरिपा, डेंगिपा, भदेपा, तंधेपा, कुकुरिपा, कुचिपा, धर्मपा, महिपा, अचिंतिपा, भल्लहपा, नलिनपा, भूसुकुपा, इन्द्रभूति, मेकोपा, कुठालिपा, जालंधरपा, राहुलपा, धर्वरिपा, धोकरिपा, मोदिनीपा, पंकजपा, घंटापा, जोगिपा, चेलुकपा, गुंडरिपा, लुचिकपा, निर्गुणपा, जयानंत, चर्पटीपा (चर्पट), चंपका, भिखनपा, भलिपा, कुमरिपा, चँवरिपा, मणिभद्रा (योगिनी), कनखलापा (योगिनी), कलकलपा, कंतालीपा, बहुरिपा, उधरिपा, कपालपा, किलपा, सागरपा, सर्वभक्षपा, नागबोधिपा, दारिकपा, पुतलिपा, पनहपा, कोकालिपा, अनंगपा, लक्ष्मीकरा (योगिनी), समुदपा, भलिपा।³

स्पष्ट है कि इन सिद्धों में अनेक नाथ, कोल, कापालिक इत्यादि विभिन्न प्रकार के साधक भी समाविष्ट हैं। सिद्ध राजा भी थे और रंक भी, ब्राह्मण भी थे और शूद्र भी, नर भी थे और नारी भी। इनका प्रधान केंद्र नालन्दा था तथा बिहार के अन्य क्षेत्रों, बंगाल, असम, उड़ीसा इत्यादि तक इनका प्रभाव प्रसरित था। 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के विद्वान् प्रस्तोता डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार सरहपा, शबरपा, भूसुकुपा, लुइपा,⁴ विरूपा, डोंभिपा,⁵ दारिकपा, गुंडरीपा, कुकुरिपा, कमरिपा, कणहपा, गोरक्षपा, तिलोपा और शान्तिपा (अर्थात् 84 में से 14) सिद्ध कवि भी थे। किन्तु महीपा, कँवलपा, वीणापा, भादेपा, तांतिपा इत्यादि ने भी कविता की है। अतः यह संख्या गलत है। ऐसा लगता है कि अधिकांश सिद्ध निर्गुणप्रधान-सन्तों के सदृश अपने सिद्धान्त एवं अनुभव कविता में ही व्यक्त करते थे।

प्रभाव के कारण

सिद्धों के जनता पर प्रभाव के कई कारण थे। एक कारण था काम एवं अन्य सुखों से सम्पृक्त सरल-सहज साधना-प्रणाली का अचूक आकर्षण (जब अभी-अभी बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में रजनीश ने संसार को झकझोर कर रख दिया तब सरहपा इत्यादि

1. शबरपा

2. महायान के आचार्य नागार्जुन से भिन्न

3. किन्तु यह संख्या 82 ही है।

4. लूहिपा

5. डोंभिपा

तो कहीं-अधिक मौलिक थे)। दूसरा कारण था बाह्य कर्मकाण्ड- तीर्थयात्रा-नदीस्नान-मन्त्रजाप इत्यादि से मुक्त अन्तस्साधना का आत्मगौरव-स्फुरणकारी-प्रतिपादन। तीसरा कारण था जनभाषा का ऐसा अटपटा प्रयोग जो समझ में आता-सा लगकर भी उत्सुकता जागृत करता था। किन्तु सबसे बड़ा कारण राजनैतिक था जिस पर किसी साहित्येतिहासकार का ध्यान नहीं गया। 647 ई. में हर्ष के मर जाने पर (उसके निस्सन्तान एवं उत्तराधिकारीहीन होने के कारण) उसके मन्त्री अर्जुन ने सत्ता हस्तगत कर ली। किसी अज्ञात कारण से अथवा प्रमादवश उसने अपनी राजसभा में ही विद्यमान रहने वाले चीनी राजदूत वांग ह्युएन-त्से पर आक्रमण किया जिससे रुष्ट होकर चीनी सम्राट् के मित्र तिब्बत-नरेश स्त्रांग-बस्ताम सगमा-पो ने आक्रमण कर दिया जिसके परिणामस्वरूप अर्जुन बंदी हुआ तथा तिरहुत विजित। इस ऐतिहासिक घटना से तत्कालीन बौद्धधर्म के प्रचलित रूप वज्रयान-सहजयान को बड़ा बल मिला, उसमें तिब्बती तान्त्रिकता का समावेश भी हुआ तथा सिद्ध बिहार-बंगाल से तिब्बत-नेपाल तक छा गए। अनेक स्थानीय राजा, मन्त्री, अधिकारी इत्यादि तक सिद्ध बनकर प्रसन्न हुए तथा जनता ने भी रुचि ली। राजनीति ने सदैव धर्म को अपने दरबार में नचाया है। राजसत्ताधारी का धर्म अनेक चाटूविकार भी अपनाते हैं, अनेक राजभक्त भी। मौर्यकाल, कुषाणकाल, वर्द्धनकाल में बौद्धधर्म, शुंगकाल, गुप्तकाल, राजपूतकाल में हिन्दूधर्म, म्लेच्छ-काल में मोहम्मदीयत तथा 12^{अंग्रेजी-काल} में ईसाइयत का इतिहास इसका साथी है।

पतन के कारण

सिद्धों का प्रभाव नवीनता के प्रति कौतूहल, पंचमकार के प्रति आकर्षण तथा राजनैतिक प्रभाव के कारणों से नवीं-दसवीं शताब्दियों में विशेष रहा किन्तु समय के साथ वह मिटता गया। किसी आध्यात्मिक साधना के शाश्वत या अधिकाधिक काल तक प्रभावी रहने के लिए जो गहनता, सूक्ष्मता एवं उदात्तता अपेक्षित होती है, जैसाकि उपनिषद् या गीता में है, वैसी वज्रयानी-सहजयानी साधना में नहीं थी। गुह्य एवं जटिल योग-साधना विशद एवं ग्राह्य जनसाधना नहीं बन सकती। अटपटी भाषा-शैली अस्थायी रुचि ही उत्पन्न कर सकती है। फिर, 'मुद्रा' वज्रयान-सहजयान का एक व्यावहारिक सत्य भी थी। मदिरा भी केवल प्रतीक न रह पाई। अतः मैथुन का प्रभाव बढ़ा जिसे मांस-मत्स्य का सहयोग प्राप्त था। लोग अपने-अपने घरों में बहू-बेटियों की चौकसी रखने लगे, 'योगियों (सिद्धों) को दूर से ही नमस्कार करने लगे। योगियों की कामुकता के गीत गाए जाने लगे जो आज तक प्रचलित हैं : सुरा-सौन्दर्य-कामुकता-अपराध के क्रोंड़ चलचित्र (छलचित्र)-जगत् तक गूँजते हैं! तन्त्रजन्य अन्धविश्वास एवं जीवनगत कामुकता के पाठों में बौद्धधर्म पिस गया। जिस धर्म में ईश्वर और आत्मा न हो, जो अप्राकृतिक-अव्यावहारिक-अस्वस्थ अविवाहवाद पर जोर देता हो, उसका अन्धविश्वासजर्जर एवं कामुकताभ्रष्ट होना स्वाभाविक-सा था। संघ के भिक्षुओं ने शारीरिकता से पीड़ित हो भिक्षुणी-प्रवेश पर बल दिया तो चतुर बुद्ध तक झुक गए थे, यद्यपि अपने सम्बन्धी आनन्द से व्यथा व्यक्त की थी। हिन्दुओं ने भिक्षुणियों के स्थान पर देवदासियों को मन्दिरों का अंग बनाया। जैसे अस्पृश्यता बौद्धधर्म-जैनधर्म से आई, वैसे ही देवदासी भी ईसाइयत की नन्स बौद्धों की भिक्षुणियाँ ही हैं। मोहम्मदीयत को बहुविवाह, रखैलों, काफिर नारियों पर बलात्कार इत्यादि के कारण इनकी आवश्यकता नहीं पड़ी। यदि राजनैतिक सत्ता का संबल प्राप्त रहता तो बात और हो सकती थी, क्योंकि शक्ति बालू से भी तेल निकाल सकती है किन्तु ऐसा भी न रहा। तन्त्र बहुत पहले ही बौद्धधर्म में घुस आया था। प्रसाद कृत नाटक 'स्कन्दगुप्त' का विकट अभिचारवादी प्रपंचबुद्धि इसी का एक प्रतीक है। हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत ऐतिहासिक उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भारत संक्रान्तिकालीन धार्मिक स्थिति के चित्रण में भी उसके दर्शन किए जा सकते हैं। प्रसाद कृत कहानी 'देवरथ' एवं गंगारत्न पाण्डेय की कहानी 'काया-कथा' में वज्रयानी-सहजयानी धर्मपिशाचों का हृदयविदारक चित्रण यह स्पष्ट कर देता है कि उनका अन्त निकट था।

समता-प्रतिपादन हर नए धर्म या राजनैतिक वाद का एक हथकण्डा मात्र है, जिसकी कलई खुलते देर नहीं लगती। समता-प्रचारक स्वप्रतिष्ठापन के हेतु ही इसका सहारा लेते हैं। जब एक बुद्ध है शेष अबुद्ध, तब समता कैसी? जब एक जितेन्द्रिय (जिन या महावीर) है शेष इन्द्रियपराभूत, तब समता कैसी? जब एक ईश्वरपुत्र है, शेष जन्मना पापी, तब समता कैसी? जब एक 'रसूलुल्लाह' (पैगम्बर) है शेष अनुयायी, तब समता कैसी? समता-प्रचार और लेनिन-शव-पूजा में क्या तुल्य-तरन्नुम? अतः समतावाद की डफली उतनी ही पीटी जानी चाहिए जितनी से कान न फटें! तीर्थाटन एवं कर्मकाण्ड का खण्डन प्रायः इसलिए किया जाता है कि जनता खण्डनकर्ता की पूजा एकाग्रचित्त होकर कर सके। यह खण्डन "आत्मा वै गुरुः" का सा औपनिषदिक मन्त्र न देकर अपनी पूजा के मण्डन में मूलभूत रहता है। मानवता इस खण्डन-मण्डन का आखेट बनती रहती है। यह व्यक्तिपूजा कहीं राजनैतिक सत्ता के बल पर स्थिर

रखी जाती है जैसे पश्चिम में, कहीं नग्नखड्ग के बल पर जैसे मोहम्मदी देशों में क्योंकि तर्क-वितर्क के समक्ष वह जीवित रख सकते किन्तु ऐसा थोड़े समय एवं छोटे क्षेत्र में ही हो पाया, अतः वे अतीत के गह्वर में लीन हो गए। किन्तु उनकी अन्तस्साधना (या योगपद्धति), समताभावना, शैली इत्यादि ने परवर्ती नाथों, निर्गुणप्रधान सन्तों एवं सूफियों पर भारी प्रभाव डाला तथा उनका सिद्धयोग आज भी किसी-न-किसी रूप में जीवित है। सिद्ध पुरानी-हिन्दी के आरम्भिक कवि थे, इसमें सन्देह नहीं। उनकी उपेक्षा सम्भव नहीं। वह सत्य की उपेक्षा मात्र हो सकती है।

प्रमुख सिद्ध-कवि

सरहपा

वज्रयानी-सहजयानी आचार्य-कवि सरहपा (800 ई. के इधर-उधर) हिन्दी के आदिकवि हैं। 1960 ई. के आसपास लिखित एवं पहली बार 1967 ई. में प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास' (1985 ई. में 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' के रूप में परिवर्तित-संशोधित रूप में पुनर्प्रकाशित) में मैंने प्रतिपादन किया था। डॉ. नगेन्द्र इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के 'आदिकाल' प्रकरण में डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने सरहपा को हिन्दी का आदिकवि मानने के पक्ष का सशक्त पल्लवन किया है। स्मरणीय साहित्येतिहासकार डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा एवं डॉ. रामनिवास शर्मा कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में सरहपा के हिन्दी-कृतित्व पर इसलिए शंका प्रकट की गई है कि वह भोटिया (तिब्बती) से राहुल सांकृत्यायन द्वारा रूपांतरित किया गया है। निःसन्देह, राहुल एक प्रात्ययिक विद्वान् न थे। बौद्ध होने पर वे बुद्ध-बौद्ध-चारण अधिक बन गए थे, विश्लेषक कम। साम्यवादी होने पर उन्होंने आर्यों की 'वोल्गा से गंगा' की यात्रा का चंडूखाने का किस्सा गढ़ डाला था। उनकी इतिहास-मीमांसा हिन्दू-पुराणकारों, बौद्ध-ग्रन्थकारों, जैन-कल्पनाकारों, मुस्लिम-इतिहासकारों, पाश्चात्य इतिहासकारों, कांग्रेस-चाटूक्तिकारों, दल-चारणों इत्यादि से भी अधिक पूर्वग्रहग्रस्त, न्यस्तस्वार्थग्रस्त एवं अग्राह्य है। किन्तु सरहपा का अस्तित्व एवं काव्य-सृजन एक ऐतिहासिक सत्य है जिसे प्रस्थानग्रन्थकार महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री जैसा प्रात्ययिक विद्वान् स्वीकार कर चुका है। भोटिया (तिब्बती) गृहीत एवं राहुल-प्रस्तुत होते हुए भी सरहपा की कविता निराधार नहीं मानी जा सकती। यह सत्य है कि शिवसिंह ने 'सरोज' में पुण्ड या पुष्य को हिन्दी का आदिकवि माना है किन्तु उनका वृत्त एवं कवित्व दोनों अज्ञात हैं, जिरा पर 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य' एवं 'साहित्य का आदिकाल' प्रभृति ग्रन्थों के प्रस्तोता डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने पुष्य के पुष्पदन्त (जैन-महाकवि) की कल्पना चस्पाँ कर दी है, किन्तु ये दोनों बिन्दु कालातीत एवं निराधार सिद्ध हो चुके हैं। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' (जो न साहित्यिक है, न वैज्ञानिक) में 'भरतेश्वर-बाहुबली-रास' के कवि शालिभद्र सूरि को हिन्दी के आदिकवि के रूप में ठोकने का जो आयास करते हैं वह काल, प्रभाव एवं महत्त्व की दृष्टि से निराधार होने के कारण स्थापना-व्यामोह के अतिरिक्त कुछ नहीं माना जा सकता। सरहपा का महत्त्व मिश्रबन्धु एवं शुक्ल जैसे साहित्येतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है, प्रायः समग्र परवर्तियों-अनुवर्तियों ने भी।

आदिकवि सरहपा का समय डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य के 'एन इंट्रोडक्शन टु द बुद्धिस्ट स्टडीज' में 633 ई. तथा राहुल ने 'पुरातत्त्व-निबन्धावली' एवं 'हिन्दीकाव्यधारा' में 769 ई. माना है। 633 ई. नितान्त विवादास्पद है, क्योंकि हर्ष के 606-47 ई. के राज्यकाल में नालन्दा विश्वविद्यालय जैसी महासंस्था का यह महाविद्वान् बाणभट्ट (जो स्वयं आज की भाषा में 'बिहारी' थे), ह्वेन्त्सांग (जो प्रखर बौद्ध था तथा नालन्दा में पढ़ा भी था) इत्यादि द्वारा शतशः अनुलिखित न रह सकता था। मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में सरहपा का समय 800 वि. (743 ई.) के लगभग माना है जो राहुल के समय से मेल खाता है। डॉ. बलदेव उपाध्याय ने 'बौद्ध दर्शन' में सिद्धों का समय नवम् से द्वादश शताब्दियों के मध्य माना है जो समीचीन लगता है। मेरा सरहपा का समय 800 ई. के इधर-उधर मानना राहुल, मिश्रबन्धु, बलदेव उपाध्याय इत्यादि के अनुरूप-सा है। सरहपा ने अनेक सैद्धान्तिक ग्रन्थ भी रचे थे, 'गुरुनां गुरुः' भी थे; उनका दीर्घ जीवन साधारण है।

मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में सरहपा के 16 काव्यग्रन्थों का उल्लेख किया है : क-ख दोहा, क-ख दोहा-टिप्पण, कायकोष-अमृतवज्रगीति, डाकिनीवज्रगुह्यगीति, दोहाकोषउपदेशगीति, दोहाकोषगीति, तत्त्वोपदेश-शिखर, दोहाकोषगीतिका, दोहाकोष-वसन्ततिलक, दोहाकोषचर्यागीति, दोहाकोषमहामुद्रोपदेश, द्वादशोपदेशगाथा, महामुद्रोपदेश-वज्रगुह्य-गीति, वाक्कोष-रुचिस्वरवज्र-गीति, सरह-गीतिका। ग्रन्थों के विषय मिलते-जुलते हैं; उनमें पुनरुक्तियाँ एवं समयुक्तियाँ स्वाभाविक हैं।

सरहपा के ग्रन्थ बाणभट्ट द्वारा उल्लिखित देशभाषा (जिसका प्रथम संकेत प्रख्यात पुरातत्त्ववेत्ता एवं इतिहासकार, 'हिन्दू पॉलिटी' के अमर प्रणेता डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल ने किया) या 'पुरानी हिन्दी' (जिसका प्रथम उल्लेख भाषाविद् पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने किया) में रचे गए थे, जिसका विभाषा-रूप मगही था—मगही से भोटिया-अनुवाद किए गए। 'दोहा' जो सदैव हिन्दी का एक प्रमुख छन्द रहा है, सरहपा में आदिगृहीत हुआ। उन्होंने हिन्दी के एक अन्य प्रमुख छन्द चौपाई का प्रयोग किया तथा पद भी गाए। सरहपा हिन्दी के प्रथम गीतकार भी थे।

प्रवृत्ति की दृष्टि से अन्तस्साधना, कर्मकाण्ड-खण्डन, समभावप्रतिष्ठापन, योगाचार इत्यादि तथा शिल्प की दृष्टि से प्रतीकायोजन के आदि-प्रयोक्ता सरहपा ही थे। उनका सारे सिद्धों, नाथों, निर्गुणप्रधान सन्तो, सूफियों इत्यादि पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पड़ा है। उनका शैलीगत प्रभाव विद्यापति, मीराँ (मीरा), सूर, तुलसी इत्यादि तक प्रसरित माना जा सकता है। रजनीश आधुनिक-सरहपा थे। सरहपा-परम्परा एक सतत-जीवन्त परम्परा है। सरहपा, शबरपा, लूहिपा शंतिपा, कण्हपा इत्यादि से लेकर राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, विनीत विक्रम बौद्ध इत्यादि तक 'बौद्धों की हिन्दी-सेवा' प्रबन्ध का विषय है।

सरहपा के वास्तविक नाम राहुलभद्र और सरोजभद्र बताए जाते हैं। पूर्ववर्ती बाणभट्ट और परवर्ती विद्यापति के सदृश यह भी बिहारी थे। शर (सर) बनानेवाली 'मुद्रा'¹ (योगिनी) के कारण सरहपा कहलाए। 'पा' (पाद = चरण) सिद्धों का आदरसूचक प्रत्यय ही बन गया है। शबरपा (सबरपा) इनके प्रधान शिष्य थे। यह नालन्दा के लेखक थे। परम्परा सुदीर्घ एवं प्रभावी सिद्ध हुई—यह 'सिद्ध' थे ही! कविता के उदाहरण प्रस्तुत हैं :

जहँ मन पवन न संचरइ, रवि शशि नाह प्रवेश।
तहि वट चित्त बिस्राम करु, सरहे कहिअ उपेश॥

पंडिअ सअल सत्य बक्खाणइ।
देहहि बुद्ध बसंत ण जाणइ॥
अमणागमण ण तेण बिखंडिअ।
तेणि णिलज्ज भनई हँउ पंडिअ॥

जो भबु सो निब्बाण खुलु, भबुण्ण मण्णहु पण्ण।
एकसाभावे बिरहिअ, निर्मलमयि पड़िबण्ण॥
घोरें-धारे चन्द्रमणि जिमि उज्जोअ करेइ।
परममहासुह एखुकणे दुरिअ अशेष हरेइ॥
जीवंतह जो नउ जरइ सो अजरामर होइ।
गुरु उपएसैं बिमलमयि सो पर घण्णा कोइ॥

राग देशाख

नाद न बिन्दु न रवि-शशि-मंडल चिअराअ सहाबे मूकल॥
उजु रे उज्जु छाड़ि मा लेहुरे बंक। निअहि वोहिमा जाहु रे लंक॥
हाथे रे कांकाण मा लोउ दापण। अपने अपा बुझतु णिम मण॥
पार उआरे सोई गजिअ। दुज्जण सांगे अवसरि जाइ॥
बाम दाहिण जो खाल विखला। सरह भणइ बप उजुवटि भाइला॥

1. हीनयान 'हीन' बन गया, महायान उतना दृढ़ न था अतः वज्रयान साधनापथ पर दौड़ाया गया तथा इसे ही स्वाभाविक यान या सहजयान कहा गया। यह सचमुच अत्यधिक सहज था। योग में मांस-मत्स्य-मैथुन-मुद्रा-मदिरा (पंचमकार) लिए गए। बौद्धधर्म के पतन में क्रसर रह गई। राहुल सर्वमांसमत्स्यभक्षण एवं उच्छृंखल नारीभोग में सरहपा के वंशज थे, रजनीश तो आधुनिक-सरहपा ही थे। योग-भोग गडमगड सहजयान की पहचान बन गया।

शबरपा

सरहपा के शिष्य शबरपा (सबरपा) या शबरीपा (सवरीपा) के इस नाम का कारण उनकी जाति की अर्थात् शवरी मुद्रा है। शबर एक प्राचीन आदिवासी वर्ग रहा है। गुजरात का साबरकाँठा शबर जाति का स्मारक लगता है। साबरमती नदी अन्य स्मारक है। केरल में शबरीमाला विद्यमान है। अरब में शबर साबरी कहलाए। अनेक मुसलमान आज तक सावरी लिखते हैं। केरल से अरब निकट भी है। इस जाति का सम्बन्ध साइबेरिया तक से सम्भव है। साइबेरिया पर भारतीय प्रभाव पुरातत्त्व-सिद्ध है। अंग्रेजी का 'सोबर' इस जाति का गुणजन्य शब्द प्रतीत होता है। शाबरमन्त्र एवं शाबरतन्त्र प्रसिद्ध हैं ही। राम के प्रति शबरी की भक्ति तो विश्व-प्रसिद्ध ही है। शबरपा बंग-नरेश धर्मपाल के लेखक लूहिपा (लुईपा) के गुरु थे। एक अन्य शबरपा दसवीं सदी में हुए जो मैत्रीपा या अवधूतीपा के गुरु थे। दोनों शबरपाओं की रचनाओं का गड्डमगड्ड भी सम्भव है। 'विनोद' में इनके चित्तगुरुर्यगंभीरार्थगीति, महामुद्रावज्रगीति, शून्यतादृष्टि, खड्गयोग, सहजशंवरस्वधिष्ठान एवं सहजोपदेशस्वधिष्ठान ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। 'विनोद' से ही गृहीत उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. ऊँचा-ऊँचा पावत तहिं बसइ सबरीबाली। मौरगि पीछ परहिण सबरी गिवत गंजरी॥
उमत सबरो पागल सबरो माकर गुली गुहाउ। तोहोरि जिय घरिणी णाभे सहज सुंदरी॥
णाणा तरुवर मोलिल रे गअणत लगेली डाली। एकेली सबरी ए वण हिंडइकर्ण कुंडल वज्रधारी॥
तिअ घाउ खाट पडिला सबरो महासुखे सेजि छाडली। सबरो भुजंग णइरामणि दारी पेढारति पाहाइली॥
2. हिअ तांबोला महासुहे कापूर खाई। सून निरामणि कंठेलइया महासुहे राति पोहाइ॥
गुरुवाक् पुंज आ विंध विअ मण बाणे। एक शरसंधाने विंधह-विंधह परम गिलाणे॥
उमत सबरो गरुआ रोषे। गिरिवर-सिहर संधि पहसंते सबरो लोड़िव कइले॥
3. गअणत गअणत तइला वाइही हेंचे कुराडी। कंठे नैरामणि बालि जागंते उपाडी॥
छाडु छाड भाआ मोहा विष में दुंदोली। महासुहे बिलसंति सबरो लइआ सुणमे हेली॥

शबरपा की कविता में सिद्धयोगसाधना की प्रतीकमयी अभिव्यक्ति पर्याप्त गम्भीर है। कुण्डलिनी, सहस्रार इत्यादि के प्रभावी प्रतीक शबरी-शबर इत्यादि में विदग्धतापूर्वक विवृत किए गए हैं। सिद्ध-कवियों में शबरपा का स्थान बहुत ऊँचा है।

लूहिपा (लुइपा)

शबरपा के शिष्य एवं बंग-नरेश धर्मपाल (राज्यकाल 780-813 ई.)¹ के लेखक तथा अभिसमय-विभंग, तत्त्वस्वभावदोहाकोष, बुद्धोदय, लूहिपादगीतिका इत्यादि के प्रणेता लूहिपा (लूहिपाद, लूइपा, लुइपा- छाप 'लुइ') को सामान्यतः अपनी समृद्ध सरहपा-शबरपा-शिष्यपरम्परा एवं विशेषतः राजशक्ति-सम्बन्ध के कारण 84 सिद्धसूची में प्रथम स्थान प्रदान किया जाता है। भारत ही नहीं, सारे संसार में राजनीति धर्म की नियामक शक्ति रही है। "यथा राजा तथा प्रजा!"। राम, कृष्ण इत्यादि स्वयं राजा थे, बुद्ध ने अपना नन्हा-सा राज्य छोड़कर बिम्बसार, प्रसेनजित्, उदयन इत्यादि बड़े राजाओं का दामन पकड़ा और इतने पर भी बौद्धधर्म तभी-तभी प्रभावी हुआ जब अशोक, कनिष्क, हर्ष, नेहरू, अम्बेडकर इत्यादि राजाओं या राजनीतिज्ञों ने इसे फूँक दी। ईसा का मज़हब तभी व्यापक हुआ जब रोमन सम्राट् कौंस्टेन्टाइन ने इसे बढ़ावा दिया, जब गोरों ने सारी दुनिया ही जीत डाली—भारत में पंजाब में ईसाई मज़हब तब ताक़तवर हुआ जब रणजीतसिंह का बेटा दिलीपसिंह (दलीपसिंह) ईसाई बना, कपूरथला-राजघराना ईसाई बना; स्वतन्त्रता-प्राप्ति के अनन्तर 'शिक्षतः ईसाई' (एजुकेशनली ए क्रिश्चियन) नेहरू एवं उनके वंश ने नागालैंड, मिजोरम एवं मेघालय नामक ईसाई राज्य ही बनवा डाले, 1988 में 'नागालैंड, फ़ॉर क्राइस्ट' का नारा ईसाई प्रधानमन्त्री राजीव, उनकी पोप-भक्त पत्नी सोनिया, तद्वत् राहुल-प्रियंका सन्ततिद्वय के प्रभाव का ही सूचक है। मोहम्मद को अल्लाह ने पैगम्बर बनाकर भेज तो दिया था किन्तु अरब ने तभी माना जब वे सत्तर युद्ध लड़े और दुनिया ने तब जब उमर, ग़ज़नवी, तैमूर लंग, बाबर जैसे भीषण योद्धाओं ने युद्धसंख्या सात सौ कर दी। हिन्दूधर्म बचा तो पुण्यमित्र शुंग एवं गुप्त-वंश के कारण। अतः लूहिपा को प्रथम सिद्ध माना गया तो क्या आश्चर्य! इनके प्रमुख शिष्य दारिकपा उड़ीसा के राजा

1. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (डॉ. ईश्वरीप्रसाद), पृष्ठ 156; राहुल ने 769-809 वि. (712-52 ई.) माना है, जो ठीक नहीं लगता।

थे। इनके एक अन्य शिष्य डेंगीपा (डेंगिपा) थे। डॉ. गोपीनाथ कविराज एवं तदनुवर्ती आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि सिद्धों का प्रभाव समाज के निम्न वर्ग पर ही अधिक पड़ा किन्तु यह आंशिक सत्य ही है, क्योंकि सिद्धों में अनेक विद्वान् ब्राह्मण, प्रभावी क्षत्रिय तथा चतुर कायस्थ थे—यही नहीं, कुछ राजा भी इनमें प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः दोनों रूपों में ही सम्मिलित थे—और प्रत्येक नए आन्दोलन के आखेट समाज के निम्न वर्ग के लोग ही होते या हो सकते हैं। लूहिपा की वाणी में प्रतीक-शैली के उत्कृष्ट निर्दशन प्राप्त होते हैं। इनके दार्शनिक उद्गार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी मूल्यवान् है :

1. काआ तरुवर पंच विडाल।¹ चंचल चीए पइठो काल।।
दिट करिअ महासुह परिमाण। लूइ भणइ गुरु पूछिअ जाण।....
2. भाव ण होइ अभाव ण जाइ। आइस सँबोहें को पतिआइ।।
लूइ भणइ बट दुलख विणाणा। तिअ धाए बिलसइ उह लागे णा।।

दारिकपा

लूहिपा (लूइपा) के शिष्य तथा वज्रघंटापाद (घंटापा) के गुरु दारिकपा उड़ीसा के राजा थे, जिनका समय दसवीं सदी के आरम्भ का लगता है। ओडियान-विनिर्गत महागुह्यतवोपदेश, तथतादृष्टि एवं सप्तमसिद्धान्त इनके वे ग्रन्थ हैं जिनमें गीतिशैली के अच्छे दर्शन होते हैं :

1. सुन करुणारि अभिन वारे का अवाक्चिअ। बिलसइ दारिक गअणत पारिमकुलें।।
अलक्ष - लख - चित्ता महासुहे। बिलसइ दारिक गअणत पारिमकुलें।।
2. कितो मंते कितो तंते कितो रे ज्ञाण बखाने। अपइ ठान महासुह लीणे दुलख परम निवाणे।।
दुःखे-सुखें एकु करिओ भुज्जइ इंदीजानी। स्वपरापर न चेवइ दारिक सअलानुत्तर मानी।।
राआ राआ राआरे अवर राअ मोहरा बाधा। लुइ-पाअ-पए दारिक द्वादश भुअणें लाधा।।

दारिकपा की शिष्या सहजयोगिनी चिन्ता ने संस्कृत में व्यक्तभावानुगत-तत्त्वसिद्धि नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें आस्तिकता के स्पष्ट दर्शन होते हैं :

प्रत्यात्मवेद्यौ भगवान् उपमावर्जितः प्रभुः।
सर्वगः सर्वव्यापी च कर्ता हर्ता जगत्पतिः।।
श्रीमान् वज्रसत्त्वोऽसौ व्यक्तभाव प्रकाशकः।....

इससे स्पष्ट है कि बौद्धधर्म का धर्म्मयान-सहजयान-रूप क्रमशः अमनोवैज्ञानिक नास्तिकता से हटता हुआ मनोवैज्ञानिक आस्तिकता की ओर गतिशील हो रहा था।

कर्णरीपा (आर्यदेव)

सरहपा के शिष्य, सिद्ध-नागार्जुन के शिष्य कर्णरीपा (आर्यदेव) वज्रयान-सहजयान के प्रख्यात संस्कृत-ग्रन्थकार हैं, जिनका हिन्दी-ग्रन्थ केवलमात्र 'निर्विकल्प-प्रकरण' है। इन्होंने तीर्थाटन, गंगास्नान, कर्मकाण्ड इत्यादि का सतर्क प्रत्याख्यान तथा अन्तस्साधना का सहजयानी प्रतिपादन किया है। सरहपा के यत्किंचित् परवर्ती यह आचार्य भी नालन्दा की विख्यात विद्यापीठ से सम्बद्ध थे। संस्कृत एवं हिन्दी के एक-एक उद्धरण प्रस्तुत हैं :

प्रतरन्नपि गंगायां नैव श्वा शुद्धिमर्हति। यस्माद्धर्मधियां पुंसां तीर्थस्नानं तु निष्फलम्।।
धर्मो यदि भवेत् स्नानात् कैवर्त्तानां कृतार्थता। नक्तं दिवं प्रविष्टानां मत्स्यादीनां तु का कथा।
जाहि मण इंदिअ पण हो णठा। ठा जाणमि अपा कैंहि गइ पइठा।।
अकट करुणा डमरुलि बजाअ। आज देव णिरासे राजइ।।

चौंदरे चंदकाति जिमि पतिभासअ । चिअ विकरणे तहि टलि पइसइ ।।
छाड़िअ भय धिण लोआचार । चाहते चाहते सुण विआर ।।
आज देवें सअल विहरिउ । भय धिण दूर णिवारिउ ।।

डोंभिपा

अक्षरद्विकोपदेश, नाड़ीविंदुद्वारेयोगचर्या, डोंबिगीतिका इत्यादि ग्रन्थों के रचयिता डोंभिपा (डोंबीपा) मगध के क्षत्रिय तथा वीणापा एवं विरूपा दोनों के शिष्य थे । डोंभिपा नामक एक अन्य सिद्ध भी हुए हैं । अतः रचनाओं की प्रात्ययिकता विवादास्पद हो गई है । डोंभिपा की वाणी में योगपद्धति का निरूपण प्रतीकायोजन के साथ भी स्पष्ट हुआ है :

1. नगर बाहिरें डोंबि¹ तोहोरि कुड़िया । छइ छोइ याइ सो बाह्य नाड़िआ ।।
आलो डोंबि तोए सँग करिबे म साँग । निधिण काण्ह कापालि जोइ लाग ।।
एक सो पद्मा चौसट्ठी पाखुडी । तहि चढ़ि नाचअ डोंबी वापुडी ।।
हाली डोंबि तो पुछमि सदभावे । अइससि जासि डोंबि काहरि नावें ।।
ताँति विकणअ डोंबि अवर ना चंगता । तोहोर अंतरे छाड़िनउ एट्टा ।।
तुलो डोंबी हाउँ कपाली । तोहोर अंतरे मोए घलिलि होडरि माली ।।
सरबर भांजीय डोंबी खाअ मोलाण । मारमि डोंबी लेमि पराणि ।।
2. गंगा-जउना माँझे रे बहइ नाई । तहि बुड़िली मातंगि पोइआ लीले पार करेइ ।।
वाहतु डोंबी वाहलो डोंबी वाटत भइल उछरा । सदगुरु पाअ पए जाइब पुणु जिणउरा ।।
पाँच केडु अल पड़ते मांगे पिटत काच्छी बाँधी । गअण दुखोलें सिचहु पाणीन पइसइ साँधी ।।
चंद-सूज्ज दुइ चका सिठी संसार पुलिंदा । बाम-दाहिण दुइ माग न खेइ बाहतु छंदा ।।
कबडी न लेइ बोडी न लेइ सुच्छडे पार करेइ । जो रथे चड़िला वाहवाण जाइ कुलें कुल बुड़ेइ ।।

कण्हपा (कहणपा, कृष्णपा, कर्णपा)

कर्णाटक में जन्मे, धर्मपा, कंतलिपा, महीपा, उधलिपा एवं भदेपा जैसे सिद्धों तथा कनखला एवं मेखला जैसी सहजयोगिनियों के गुरु सिद्ध जबलिपा के दादागुरु कण्हपा (कहणपा, कृष्णपा, कर्णपा) का समय नवीं सदी लगता है । जालंधरपाद का उल्लेख जालंधरनाथ का न होकर किन्हीं किसी सिद्ध गुरु का भी हो सकता है । सिद्धों में इनका पांडित्य सरहपा एवं शांतिपा के साथ-साथ अन्यतम है, गुरुत्व अतुलनीय । कण्हपा सिद्धों एवं नाथों के तटों के सेतु हैं । इनकी योगानन्द-अभिव्यक्ति नाथों की है जिसने कबीर नानक, जायसी इत्यादि निर्गुणप्रधान सन्तों एवं सूफियों को प्रभावित किया तथा इनके मुद्राप्रतीकादि सिद्धों के हैं जो परवर्ती मधुर-रहस्यवाद के प्रेरकतत्त्व बने । इनकी योगानन्द-अभिव्यक्ति नाथों की है जिसने कबीर, नानक, जायसी इत्यादि निर्गुणप्रधान सन्तों एवं सूफियों को प्रभावित किया तथा इनके मुद्राप्रतीकादि सिद्धों के हैं जो परवर्ती मधुर-रहस्यवाद के प्रेरकतत्त्व बने । सारे सिद्धों एवं नाथों में कण्हपा का कवि रूप सरहपा के साथ श्रेष्ठतम है । इनकी भाषा को 'पुरानी हिन्दी' कहना विशेष विवादास्पद नहीं हो पाता । इनकी छन्दयोजना भी अन्यो की तुलना में ठीक-ठाक है । महान् 'विनोद' से उनके प्रायः सभी सृजनोदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कोल्लअ रे ठिअ बोल्ल मुम्मणि रे कक्कोल । घने किपीटह बज्जइ करुणे किअइ ण रोल ।।
तहि पल खज्जइ गाढ़ें मअ णा पिज्जइ । हले कलिंजर पणिअइ दुंदुर बज्जइ ।।
चउसम कत्थुरि सिल्हा कप्पुर लाइलाइ । मालइ घाण सालि अइ तहिं भलु खाइअइ ।।
2. नाड़ि शक्ति दिट धरि अखदे । अनहा डमरु बाजए वीर नादे ।।
काहण कपाली योगी पइठ अचारे । देह-नअरी विहारए एकारें ।।

आलि-आलि घंटा चेउर चरणे । रवि शशि कुंडल किउ आभरणे ॥
 राग - देश - मोह लाइअ छार । परम मोख लवए मुत्तिहार ॥
 मारिअ सासु नणँद घरे शाली । माअ माटिआ काहण भइअ कवाली ॥

3.

सुण वाह तथता पहारी । मोह भंडार लुइ स अला अहारी ॥
 घुमइ नचेवइ सपरविभागा । सहज निदालु काहणिला लांगा ॥
 चेअण ण वेअण भर निद गेला । सअल सुफल करि सुहे सुतेला ॥
 स्वपणे मइ देखिल त्रिभुवण सुल । घोरिअ अवणागमण विहल ॥
 शाथि करिब जालंधरपादे । पाखिण राइअ मोटि पाडिआ चादे ॥

कुक्कुरिपा

कहा जाता है कि ये कपिलवस्तु के ब्राह्मण, चरपटीपा (चर्पट) के शिष्य एवं मीनपा के गुरुभाई थे। इनका समय भी दसवीं सदी के आरम्भ का लगता है। इनके 'तत्त्वसुख-भावनानुसारि योगभावनोपदेश' एवं 'स्रवपरिच्छेदन' शीर्षक दो हिन्दी-ग्रन्थ बताए जाते हैं। कुक्कुरिपा की प्रतीक-पद्धति में परकीया-योगी-काम अधिक खुलकर चित्रित हुआ है :

1.

दुलिदुहि पिटा धरण न जाअ । रुखरे तेंतलि कुंभीरे खाअ ॥
 आँगण धरण सुन भो बिआती । कानेट चौरि मिल अधराती ॥
 ससुरी निंद गेल बहुड़ी जागअ ।
 कानेट चोरे निकला गई मागअ ॥ दिवसइ बहुड़ी काइइ डरे भाअ ।
 राति भइले कामह जाअ ॥ अइसन चर्चा कुक्कुरीपाएं गाइइ ।
 कोड़ि मन्झें एकुड़ि अहिं सनाइइ ॥
 हाँउ निवासी खमण भतारे । मोहोर विगोआ कहण न जाअ ॥
 फटेलिउ गो माए अंत उड़ि चाहि । जा एथु बाहाम सी एथु नाहि ॥
 पहिल बिआण मोर वासन पूड़ । नाड़ि विआरंते सेव वापूड़ ॥
 जाण जौबण मोर भइलेसि पारा । मूल नखलि बाप संघारा ॥
 भाणथि कुक्कुरिपाए भव थीरा । जो एथु बझएं सो एथु वीरा ॥

भूसुकपा (शांतिदेव)

'सहजगीति' के प्रख्यात प्रणेता भूसुकपा (शांतिदेव) नालन्दा के निकट रहनेवाले क्षत्रिय थे जो कालान्तर में वहीं नियुक्त हो गए थे। इनका समय नवीं सदी का पूर्वार्द्ध है। इन्होंने मागधी विभाषा में सृजन किया है जो अनेक सिद्धों की तुलना में अधिक स्पष्ट है। इनके योग-प्रतीक तो अन्य सिद्धों जैसे ही हैं किन्तु उद्गार दुरुह नहीं हैं :

1.

अधराति भर कमल विकसउ । बतिस जोइणी तसु अंग उहणसिउ ॥
 चालिउअ वषहर मागे अवधूइ । रअणहु षहजे कहेइ ॥
 चालिअ षषहर गउ णिवाणें । कमलिनी कमल बहइ पणालें ॥
 विरमानंद बिलक्षण सुध । जो एथु बूझै सो एथु बुध ॥
 भूसुक भणइ मइ बूझिअ मेलें । सहजानंद महासुख लेलें ॥

2.

बाज णाव पाड़ी पँडआ खालें वाहिउ । अदल बंगाले क्लेश लुड़िव ॥
 आजि भूसुक बंगाली भइली । णिय घरणी चंडाली लेइली ॥
 उहि जो पंचघाट णह दिबि संज्ञा ण्ठा । ण जाणभि चिउ मोर कहिं मइ पइठा ॥
 सोण तरुअ मोर किपि ण थाकिउ । निअ परिवारे महासुहे ताकिउ ॥
 चउकोरि भंडार मोर लइआ सेस । जीवते भइलें नाहि विशेष ॥

शांतिपा (रत्नाकर शांति)

‘सुखदुःखद्वयपरित्यागदृष्टि’ के प्रणेता मगध में उच्च ब्राह्मण-कुलोत्पन्न शांतिपा (रत्नाकर शांति) सिद्धों में अन्यतम पांडित्य के लिए विख्यात हैं। यह विक्रमशिला विद्यापीठ में पूर्वद्वारपंडित बने। तिब्बत के महाकवि जे-चन् मि-ला-रे-पा (देहान्त 1122 ई.) इनके शिष्य थे। भोट के मारलोचवा भी इन्हीं के शिष्य थे। इनका समय ग्यारहवीं सदी के अन्त का है जो इनके शताधिकाब्दगत जीवन के कारण बारहवीं तक फैला हो सकता है। गम्भीर सैद्धान्तिकता को इन्होंने प्रवाहपूर्ण गीतिकाव्य में विवृत किया है :

1. सह-संवेगण सहज बिआरें, ते अलकख लकखण जोई।
जे जे उजूवाटे गेला अनावाट भइला सोई।।
कुले कुले मा होइ रे मूढा उजूवाटे संसारा।
वालभिण एकुवाकु ण भूलह राजपंथ कंटारा।।
भाआ मोहा समुदारे अंत न बुझसि थाहा।
आगे नाव न भेला दीसअ भांति न पुछसि माहा।।
सूना पंतर उह न दिसइ भांति न वाससि जांते।
एषा अट महासिद्धि सिज्झए उजूवाट जा अंते।।
वाभ-दहिन दो बाटाच्छाड़ा¹ शांति बुलथेउ संकेलिउ।
घाटनि गुमा खड़तड़ि नो होइ आखि² बुजिअ बाट जाइउ।।
2. तुला धुणि-धुणि आँसु रे आँसु। आँसु धुणि-धुणि णिखर सेसु।।
तउसे हेरुअ ण पाविअइ। शांति भणइ किण सभावि अइ।।
तुला धुणि-धुणि सुने अहारिउ। पुन लइआँ अपना चटारिउ।।
बहल बट दुइ मार न दिशअ। शांति भणइ बालग न पइसअ।।
काज न कारण जएहु जअति। सँएँ संवेगण बोलथी शांति।।

2. नाथ-काव्य

सिद्ध और नाथ

सिद्ध एवं नाथ सम्बद्ध भी हैं, भिन्न भी। सम्बद्ध यों कि दोनों का उत्स वज्रयान-सहजयान है तथा चौरासी सिद्धों की सूची में जालन्धरनाथ, मछन्दरनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ), गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) इत्यादि सिद्ध भी सम्मिलित हैं। भिन्न यों कि सिद्धों की भोगलिप्सा का प्रत्याख्यान कर नाथों ने योग को विशुद्ध एवं गम्भीर साधनात्मक रूप प्रदान किया तथा उसमें आस्तिकता भी लाए। सिद्ध-साधना में जब स्थूल भोगलिप्सा बढ़ गई, प्रतीक अलीक बन गए तब उसका रूप बदलना स्वाभाविक भी हो गया, क्योंकि विकास जीवन का श्वास है। नाथों ने सिद्धों का योग तो अपनाया पर भोग नहीं। उन्होंने सिद्धों के हठयोग को प्राविधिक जटिलताओं से निष्पन्न कर उसे शिव से सम्पृक्त कर दिया, जिससे बुद्ध दब गए। मिश्रबन्धु के शब्दों में, “महर्षि गोरखनाथ ने उच्च शैव मत निकालकर इन सहजियावालों को अपने मत में ले लिया। शायद गोरखपंथ के अघोरपंथ एवं वाममार्गी भाग इन्हीं के अस्तित्व के अनिवार्य फल थे। गोरखपंथ में वेदान्त की विशेष विभूतियों एवं शिव की उपासना वाली ऐसी प्रणलियाँ भी हैं जो इनके मत को लोक द्वारा ग्रहण के योग्य बनाती हैं।” आ. रामचन्द्र शुक्ल जैसे हठयोग के प्रति पूर्वाग्रह रखनेवाले तथा सिद्धों-नाथों इत्यादि के प्रति असंवेदनशील विद्वान् तक ने स्वीकार किया है, “गोरखनाथ के नाथपंथ का मूल भी यही वज्रयान शाखा है। चौरासी सिद्धों में गोरखनाथ (गोरक्षपा) भी गिन लिए गए हैं। पर यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपना मार्ग अलग कर लिया। योगियों की इस हिन्दूशाख³ ने वज्रयानियों के अश्लील और

1. तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपुन पहिचानै।

2. मैं कहता हूँ आँखिन देखी। (कबीर)

3. बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भी नाथपंथ की प्रधान पीठ गोरखपुर के महंत प्रभावी रहे—सांसद भी हुए। महंत अवैधनाथ ने डॉ. वेदप्रकाश जुनेजा कृत अध्यवसायपूर्ण ग्रन्थ ‘नाथ-सम्प्रदायः साधना, साहित्य और सिद्धान्त’ (1989 ई.) की प्रशंसा कर जागरूकता का परिचय दिया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने नाथपंथ पर अच्छा लिखा है।

वीभत्स विधानों से अपने को अलग रखा, यद्यपि शिव-शक्ति की भावना के कारण कुछ शृंगारमयी वाणी भी नाथपंथ के किसी-किसी ग्रन्थ (जैसे, शक्तिसंगमतन्त्र) में मिलती है। गोरख ने पतंजलि के उच्च लक्ष्य, ईश्वर-प्राप्ति को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया।

व्यापक समन्वय

नाथ-सम्प्रदाय ने पातंजल योग, वज्रयान-सहजयान, शैव दर्शन इत्यादि के नाना तत्त्वों का समाहार कर एक व्यापक साधनापथ प्रशस्त किया जो हिन्दू, जैन, मुसलमान, सबको आकृष्ट कर सका तथा शताब्दियों तक 'गोरख' शब्द ईश्वर, गुरु इत्यादि का प्रतीक बना रहा। 'नाथ-सम्प्रदाय' के विद्वान् डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "इस मत में बौद्ध जैन, वैष्णव, कापालिक, कौल आदि सभी प्रकार की साधनाओं का अन्तर्भाव हुआ है। इसीलिए इसके साहित्यिक प्रयत्नों में सबका कुछ-कुछ प्रभाव रह गया है। पारसनाथी और नीमनाथी शाखा के योगियों का सम्बन्ध जैन-परम्परा से है, कपिलानी या कपिलायन शाखा का वैष्णव-परम्परा से, जालंधरिपा और कानिपा का बौद्ध और कापालिक परम्परा से और मच्छन्दरनाथी तथा कई अन्य उपशाखाओं का सम्बन्ध कौल और शाक्त साधनाओं से है। प्रश्चिम के रावल वस्तुतः पाशुपत मत के अवशेष हैं और बारह पंथों से अलग माना जाने वाला बामारग अपने नाम से ही वाममार्ग की छाप लिए हुए है।"

प्रमुख नाथ

सिद्धों के सदृश नाथों की चौरासी संख्या भी लोकश्रुत है। चौरासी लाख योनियों में वर्चस्व का सूचक 'चौरासी सिद्ध' या 'चौरासी नाथ' एक प्रतीक है, ऐतिहासिक सत्य नहीं। सिद्धों की सूची में नाथ इत्यादि का समावेश संख्या-समीचीनता का सूचक है, साधना-एकता का नहीं। यह अपूर्ण-सी भी है। इसके अनेक नाम कल्पित-से लगते हैं। नाथों की सूची तो बहुत छोटी है। ज्ञानेश्वर (ज्ञानदेव) ने स्वयं को गोरखनाथ का शिष्य मानते हुए आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, गैरीनाथ, निवृत्तिनाथ और ज्ञानेश्वर की परम्परा लिखी है, जबकि गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह में नागार्जुन,¹ जड़भरत, हरिश्चन्द्र, पत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ, चर्पट, जालंधर और मलयार्जुन के नाम दिए गए हैं। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ने गोरखनाथ का समय बारहवीं सदी माना है। इसके बाद भी अनेक नाथ हुए, जिनमें प्राणनाथ विशेष उल्लेख्य हैं। आदिनाथ को कई लोग शिव मानते हैं, कई जालंधरनाथ। नाथों में जालंधरनाथ मच्छन्दरनाथ (मत्स्येन्द्रनाथ), गोरखनाथ (गोरक्षनाथ), चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, कणेरीनाथ, प्राणनाथ, अवैद्यनाथ इत्यादि की परम्परा प्रायः बारहवीं सदी से बीसवीं सदी के अन्त तक प्रसरित मिलती है। नाथपंथ के योगी कान की लौ में छेद कर बड़े-बड़े स्फटिक कुण्डल पहनने के कारण 'कनफटे' भी कहलवाते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से नाथपंथ वज्रयान-सहजयान का (हिन्दूरूप) विकास है। सामाजिक दृष्टि से नाथों ने वेद-शास्त्र-पुराणादि का अध्ययन, तीर्थटन, गंगास्नान इत्यादि व्यर्थ घोषित करते हुए योगमूलक अन्तस्साधना का प्रतिपादन किया। आठवीं सदी में सिंध पर अरब आधिपत्य के साथ ही भारत मोहम्मदीयत के सम्पर्क में आ चुका था। यद्यपि उक्त आधिपत्य न स्थायी सिद्ध हुआ न अतिप्रभावी तथापि उसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है, व्यावहारिक भी। दसवीं सदी के अन्त तथा ग्यारहवीं सदी के आरम्भ में पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त से पंजाब तक तुर्कों का राजनैतिक वर्चस्व स्थापित होने से भारत पर मोहम्मदीयत के प्रभाव में गहराई आई। मुईनुद्दीन चिश्ती जैसे मोहम्मदीयत के प्रचारक दिल्ली पर मुसलमानों के आधिपत्य से पूर्व ही भारत में काफ़ी अन्दर, अजमेर तक, आकर अंधविश्वासपूर्ण चमत्कार-कथाओं इत्यादि के द्वारा जनता को प्रभावित कर भावी मोहम्मदी वर्चस्व का पथ प्रशस्त करने लगे। अतः गोरखपंथ से मोहम्मदीयत का भी परिचय हुआ। कठिन साधनापंथ एवं निर्गुण-निरंजन-ईश्वर-प्रतिपादन के कारण मुसलमानों ने भी गोरखनाथ एवं गोरखपंथ का सम्मान किया।

हठयोग

योग एक अत्यन्त प्राचीन साधना-पद्धति है। ऋग्वेद के नासदीय-सूक्त में परमेष्ठी प्रजापति जिस "एकमात्र जलराशि² जिस पर ब्रह्म की सूक्ष्म आत्मा तैर रही थी" स्थिति का गहन एवं उदात्त निरूपण किया है उसे महान् तत्त्ववेत्ता तिलक ने ठीक ही "विश्व का सर्वश्रेष्ठ दर्शन" माना है, क्योंकि वही कालान्तर में बौद्धों की शून्य-समाधि तथा पतंजलि की निर्बीज-समाधि का मूल है, वही 'जल'

1. महायान-प्रवर्तक महान् नागार्जुन से भिन्न एवं परवर्ती।

2. बाइबिल की 'जिनेसिस' में इसका अनुवाद-सा प्राप्त होता है।

से सृष्टि' के सिद्धान्त का आदि-प्रतिपादन है। उपनिषद् ध्यान की व्यवस्थित चर्चा करते हैं। मोहेंजोदड़ो की प्राप्ति कम-से-कम पाँच हजार साल पुरानी मुद्रा में पशुओं से घिरे ध्यानस्थ पशुपति योग की भारतमूलकता एवं प्राचीनता के प्रात्ययिक प्रतीक हैं। योग का सीधा-सादा अर्थ है टोटल—जब जीव, जगत् एवं ब्रह्म एक हो जाएँ तब योग हुआ! इस अखण्ड-अद्वैत भूमिका में न उच्च है न निम्न, न जाति है न पाँति, न राजा है न रंक, न सुख है न दुःख, न भूमि है न स्वर्ग, न जड़ है न चेतन—केवल, केवल 'एक' है जिसे आनन्द या कैवल्य¹ या निर्माण या शून्य या निर्बीज या यह या वह कह सकते हैं किन्तु जो तत्त्वतः अनिर्वचनीय है। योग की सर्वोत्तम परिभाषा 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' में प्राप्त होती है: "संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।" नास्तिक बौद्ध जीवात्मा-परमात्मा के मिलन को प्रज्ञा-उपाय का मिलन मानते हैं जो तत्त्वतः अभिन्न लगता है। पतंजलि योग के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थकार हैं, विश्व के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में प्रतिष्ठित किए जाने योग्य हैं क्योंकि उन्होंने योग की परिभाषा, उपादेयता, पद्धति एवं प्रभावादि का विशद निरूपण किया है। उनके योगदर्शन (योगशास्त्र) के अनुसार, चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है (योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः)। ऐसा क्यों? चित्त की वृत्तियाँ जब तक निरुद्ध नहीं होतीं अर्थात् चंचल रहती हैं तब तक समग्र जगत् उन्हीं के अनुरूप लगता है, उसके वास्तविक रूप के दर्शन नहीं होते, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति वृत्तिसारूप्यता की सीमाओं का वंदी मात्र रहता है, उसका जीवन, उसके विचार, उसके कार्य, उसकी उपलब्धियाँ सब बद्ध रहते हैं। वृत्तिसारूप्यमितरत्र! किन्तु योगदशा में वह स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, 'एक' हो जाता है, आनन्दमय हो जाता है। तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। अतः योग कोरा तप न होकर एक सशक्त दर्शन है, एक उपयोगी शास्त्र है। पतंजलि एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं जो शुंग-वंश के संस्थापक सम्राट् पुष्यमित्र के गुरु एवं पुरोहित थे। एक ब्राह्मण (चाणक्य या कौटिल्य) ने मौर्य-वंश का आरम्भ किया था, दूसरे ब्राह्मण (पुष्यमित्र शुंग) ने उसका अन्त किया। पुष्यमित्र ईसा-पूर्व 183 में सम्राट् बने। इनके शासनकाल में बैक्ट्रिया के यवन राजा डिमीट्रिअस² ने आक्रमण किया। उसे इनके पौत्र वसुमित्र ने परास्त कर खदेड़ दिया। तब सम्राट् ने अश्वमेध किया जो पतंजलि ने ही सम्पन्न कराया। प्रसाद ने अपरिसमाप्त उपन्यास 'इरावती' में पुष्यमित्र एवं पतंजलि का यत्किंचित् चित्रण नहीं किया है (किन्तु उनके पुष्यमित्र सेनापति हैं तथा पतंजलि ब्रह्मचारी—उपन्यास के अधूरे रहने के कारण उनका भाव रूप चित्रित नहीं हो पाया)। पतंजलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का 'अष्टांगिक योग' निरूपित किया है, जो बुद्ध के 'अष्टांगिक मार्ग' (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि) का विकास होने के कारण अधिक व्यवस्थित तो है ही, आस्तिकता की अवहेलना भी नहीं करता (ईश्वरप्राणिधानाद्वा)। अतः सरल-नैसर्गिक वैदिक-योग, बौद्ध-योग, जैन-योग का प्रशस्य विकास पतंजलि के राजयोग में ही दृष्टिगोचर होता है। परवर्ती बौद्धों ने 'कुण्डलिनी' पर जोर दिया। पायु-उपस्थ के मध्य कुँडली बाँधे स्थित अधोमुखी शक्ति को कुण्डलिनी कहते हैं (क्योंकि वह कुण्डली मारे है)। उसके अधोमुख रहने से मानव-वृत्तियाँ अधोमुखी रहती हैं। यही कुण्डलिनी हठयोग का आधार है। हठयोग में 'मूलाधार' चक्र स्थित कुण्डलिनी को कठोर आसन-प्राणायामदि द्वारा जागृत कर सुषुम्ना के मार्ग से 'स्वाधिष्ठान', 'मणिपुर', 'हृदय', 'अनाहत', 'विशुद्ध' और 'आज्ञा' चक्रों को पार कराते 'सहस्रार'—चक्र तक पहुँचाया जाता है जहाँ स्थित शिव का इस शक्ति से योग हो जाता है अर्थात् साधक कृतार्थ हो जाता है। कबीर की भाषा में "आठ कैवल दल चरखा डोलैं" में इन्हीं का संकेत है। एक तो सुप्त कुण्डलिनी को जगाना ही कठिन है, दूसरे उसकी मूलाधार से सहस्रार तक की यात्रा सरल नहीं, क्योंकि उसमें षट्चक्रवेधन करना पड़ना है। अतः हठयोग-प्रक्रिया कठिन आसन-प्राणायाम से आरम्भ होने से लेकर कुण्डलिनी के सहस्रार तक पहुँचने की कठिनतर प्रक्रिया है। चौरासीलाख योनियाँ है, चौरासी सिद्ध हैं, चौरासी नाथ हैं, अतः आसन भी चौरासी से कम नहीं हो सकते। शरीरशास्त्र कुण्डलिनी, षट्चक्र एवं सहस्रार को नकारता है। एक्स-रे में वह अस्तित्व नहीं रखती। किन्तु व्यक्ति-व्यक्ति की योग्यता के अनुरूप चौरासी आसान, प्राणायाम इत्यादि की उपादेयता सन्देहरहित है जिसको शरीरशास्त्र, आयुर्विज्ञान, व्यायाम इत्यादि सभी स्वीकार करते हैं। प्रतीक-दृष्टि से हठयोग प्राणायाम के ऊर्ध्वीकरण-उदात्तीकरण द्वारा उच्चतम आध्यात्मिक भूमिका पर अधिष्ठित करनेवाली योग-प्रणाली है। बीसवीं सदी का विकसित संसार जहाँ महेश योगी के ध्यान से प्रभावित हुआ है, वहीं स्व. धीरेन्द्र ब्रह्मचारी के योगासनों से भी। योगासन साधन हैं, समाधि साध्य। अरविन्द, रमण महर्षि, मुक्तानन्द इत्यादि ने योग की समाधि-गरिमा से विकसित विश्व को चमकृत किया है।

1. कैवल्यता या एकता।

2. कहीं-कहीं मेनांडर (बौद्ध होने पर 'मिलिन्द') का उल्लेख मिलता है।

गोरखनाथ के अनुसार 'नाद' एवं 'बिन्दु' के योग से सृष्टि उत्पन्न हुई :

नाथांशो नादो, नादांशः प्राणः,

शक्त्यंशो बिन्दुः बिन्दोः शरीरम् ।¹

याज्ञवल्क्य के "विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" के औपनिषदिक अनिर्वचनीयतावाद को हठयोगियों ने अपने अनुरूप स्वीकार किया है : "शिवं न जानामि कथं वदामि । शिवं न जानामि कथं वदामि ।" के रूप में स्वीकार किया है । वास्तव में बौद्ध शून्यतावाद एवं जैन स्याद्वाद के बीच भी औपनिषदिक ब्रह्मवाद एवं तज्जन्य अनिर्वचनीयतावाद में ही दृग्गत होते हैं । गीता के "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" का दर्शन सिद्धों के "भाव न होय अभाव न जाय"² से होता नाथों के "शिवं न जानामि कथं वदामि" तक प्रसरित दीखता है । किन्तु योग तो 'योग' ही है—“यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे” के सत्य का साक्षात्कार ही आनन्द का विधान कर सकता है :

ब्रह्माण्ड को लौटि के पिण्ड में बाँधिए ।

कहै प्राणनाथ ऐसा योग साधिए ।³

विशुद्ध निवृत्तिमार्ग

सिद्धों की संसार में एक बड़ी सीमा तक आसक्ति थी, उनके योग में संसार का एक अंश उपादान के रूप में विद्यमान था । किन्तु नाथ कणेरी विशुद्ध विरक्ति एवं 'परचै' का प्रतिपादन करते हैं :

1. सगौ नहीं संसार चीत नहिं आवै बैरी ।

निरमय होय निसंक हरिष मैं हँस्यो कणेरी ।।

2. अकल कणेरी सगलै बन्द । बिन परचै जोग बिचारै छन्द ।।

बिन परचै जोख न होसी रावल । भुस कुट्यौं क्यों निकसै चावल ।।

सिद्धों की 'मुद्रा' एवं उनके परिग्रह से प्रभावित नाथों की कठोर भर्त्सना करते हुए चर्पट नाथ अपनी चटपटी वाणी में कहते हैं :

बाकर कूकर कींगुर हाथि । बाली भोली तरुणी साथि ।

दिन करि भिच्छा रात्यूँ भोग । चरपट कहै बिगोवै जोग ।।

कोरी कथनी या तोतारदंत-विद्या का प्रत्याख्यान करते हुए गोरखनाथ ने ठोस करनी पर जोर दिया—मन और वचन से नहीं, कर्म से महानता का प्रतिपादन किया :

कहणि सुहेली रहणि दुहेली कहणि रहणि बिन थोथी ।

पढ्या-गुणा सुवा बिलाई खाया, पंडित के हाथि रहि गई पोथी ।।

सिद्धों की विकृति को नाथों ने कृति द्वारा उन्मूलित करने का यत्न किया । यह सत्य है कि सरहपा, कणहपा⁴, शांतिपा इत्यादि के कृतित्व में कवित्व अपेक्षाकृत अधिक है तथा उनकी सन्ध्याभाषा की प्रतीक-योजना अपेक्षाकृत अधिक रोचक है, किन्तु गोरखनाथ, चर्पटीनाथ, चौरंगीनाथ इत्यादि से ईरान तक को प्रभावित किया था । नाथ हिन्दू-मुस्लिम-एकता के सशक्त संस्थापक भी बने । गोरखनाथ के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति कबीर, नानक, जायसी इत्यादि तक स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है । वे संक्रान्तिकालीन भारत के एक सर्वश्रेष्ठ महापुरुष थे ।

किन्तु कठिन एवं सैद्धान्तिकताप्रधान, शुष्क एवं अनाकर्षक हठयोग व्यापक जनजीवन को आकृष्ट न कर सकता था । व्यापक जनजीवन को सरल एवं व्यावहारिकताप्रधान निर्गुणप्रधान सन्तसाधना तथा इससे भी बहुत आगे बढ़कर सरल एवं तरल सगुणप्रधान

1. गोपीनाथ कविराज सम्पादित गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह ।

2. लूहिपा ।

3. प्राणनाथ शास्त्रीयकाल के एक श्रेष्ठ हठयोगी थे । बौद्धिककाल में, वस्तु वस्तुतः अभी-अभी, सम्पूर्णानन्द कृत कविता-संग्रह 'गगनगुफा' हठयोग से प्रेरित है ।

4. कणहपा नाथ भी माने जाते हैं ।

वैष्णवसाधना ने ही प्रभावित किया। इन सन्तों एवं वैष्णवों ने पुनरुत्थानकाल को वर्तमान सहस्राब्दि का स्वर्णकाल बनाने में भारी योगदान किया—महान् सम्राट् अकबर को प्रेरित किया, काल के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष विश्वकवि तुलसीदास का उद्भव किया।

प्रमुख नाथ-कवि

जालंधरनाथ

‘विमुक्तमंजरी गीत’ एवं ‘हुंकारचित्तविंदुभावनाचक्र’ (मगही) तथा अनेक अनुपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों के कर्ता जलेन्द्रनाथ या जालंधरपाद या जालंधरपा या जलंधरीपा या जालंधरनाथ को आदि-नाथ कहा जाता है, कण्ठपा (कर्णपा), मीनपा, धर्मपा एवं तंतिपा का गुरु माना जाता है यद्यपि यह निर्विवाद नहीं क्योंकि एक मीनपा मछन्दरपा के पिता कहे गए हैं जबकि कतिपय स्रोत मीनपा को ही मछन्दरपा मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जालंधर नाथ नाथ-पंथ के प्रवर्तक थे, जैसा कि स्वयं उन्होंने ‘विमुक्तमंजरीगीत’ में कहा है। स्वयं गोरखनाथ ने ‘गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह’ में इन्हें प्रवर्तकों में परिगणित किया है। तिब्बती परम्परा के अनुसार यह ब्राह्मण थे, जबकि किंवदंति के अनुसार यह ‘जालधारक’ (मछुआ)¹ थे। इनका स्थान जालंधर (पंजाब) रहा, जहाँ (नगर-नाम के अतिरिक्त) एक टीला आज भी स्मारक का कार्य करता है, किन्तु सिद्धों में इनकी प्रतिष्ठा एवं भाषा-शैली इत्यादि से ऐसा लगता है कि यह भी सरहपा इत्यादि के सदृश बिहारी थे जिनका प्रभाव पंजाब पर पड़ा—“धर का जोगी जोगड़ा आन गाँव का सिद्ध” लोकोक्ति का आधार चौरासी सिद्ध, उनका स्थानीय विरोध तथा अन्यत्र साफल्य इत्यादि ही रहे हैं। (बाइबिल में ईसा इस तथ्य को पहले ही व्यक्त कर गए थे)—पंजाब पर गोरखनाथ से दयानन्द तक अन्यक्षेत्रोत्पन्न धर्मनेताओं का प्रभाव भी स्पष्ट है। इनका समय आठवीं-नवीं सदी माना जाता है जो समीचीन नहीं क्योंकि एक तो यदि यह मछन्दरनाथ के गुरु या गुरुभाई थे तो ग्यारहवीं सदी में हुए होंगे, दूसरे इनकी भाषा-शैली ग्यारहवीं-बारहवीं सदी के अधिक निकट लगती है :

अखय निरंजन अर्द्धय अनु पद्य गगन कमरंजे साधना ।
 शून्यता विरासित राय श्री चिय देवपानबिन्दु समय जो दिता ।।
 नमामि निरालंब निरक्षर स्वभाव हेतु स्फुरन संप्रापिता ।
 सरदचंदसमय तेज प्रकासिता जरजचंद्रसमय व्यापिता ।।
 खड्ग योगांबर सादिरे चक्रवर्ति मेरु मंडल भमलिता ।
 निर्मल हृदयारे चक्रवर्ति ध्याविते अहितिसिखंजनमय साधना ।।
 आनंद परमानंद विरमा चतुरानंद जे संभवा ।
 परमा विरमा माँझरे न छादिरे महासुख सुगत संप्रद प्रापिता ।।
 हे वज्रकार चक्र श्री चक्रसंवर अनंत कोटि सिद्ध पारंगता ।
 श्रीहत वरियाते पूर्ण गिरि जालंधरि प्रभु महासुख जातहुँ ।।

गोरखनाथ

वज्रयान-सहजयान की ईश्वररहित कामुकता से मुक्तकर योग को प्रायः शिवसम्पृक्त साधनात्मक रूप प्रदान करने वाले, मध्यकालीन भारत के शत-शत हिन्दू-मुसलमान ज्ञानियों, ध्यानियों, कवियों इत्यादि को अत्यधिक प्रभावित करनेवाले, ज्ञानेश्वर, नामदेव, कबीर, नानक, जायसी इत्यादि के ज्योतिदाता, वस्तुतः हठयोग-प्रवर्तक महान् गुरु गोरखनाथ (बारहवीं सदी) का जन्म सम्भवतः उत्तरप्रदेश के नेपाल-समीपवर्ती क्षेत्र में हुआ था, जैसा कि गोरखपुर, गोरखा, गोरखाली (नेपाली) इत्यादि से अद्यावधि स्पष्ट है। पतंजलि के योग, शंकराचार्य के अद्वैत, सिद्धों की अन्तःसाधना एवं मोहम्मदीयत के एकेश्वरवाद का विलक्षण समाहार कर गोरखनाथ ने एक ऐसी व्यापक साधना-पद्धति विकसित की जो महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब इत्यादि देशांगों तथा नेपाल, अफ़ग़ानिस्तान, ईरान इत्यादि विदेशों तक प्रसरित हो गई थी। कठिन कल्पनाओं से ऊभचूभ यह साधना-पद्धति व्यापक लोकमंगल में असफल ही हो सकती थी? किन्तु इसका यत्किंचित् प्रभाव आज तक

1. ईसाइयत के सेंट पीटर (संत पतरस इत्यादि) भी मछुआ (मछुआरा) थे।

दिखाई दे जाता है। ह (सूर्य) + ठ (चन्द्र) नासिका-छिद्रों के प्रतीक हैं, जिनका सम्पूर्ण अनुशासन, अर्थात् प्राणायाम-प्रक्रिया पर पूर्णाधिकार कर, “यत् पिंडे तत् ब्रह्माण्डे” की सीमातीत स्थिति प्राप्त करने वाला योगी ‘नाथ’ हो जाता है। चौरासी आसन, षट्चक्र, सहस्रार इत्यादि हठयोगसाधना के ही प्रतीक हैं। ज्ञानामृत, योगचिंतामणि, योगसिद्धान्त-पद्धति, सिद्धसिद्धान्त-पद्धति प्रभृति संस्कृत तथा गोरखबोध, ज्ञानसिद्धान्तयोग, ज्ञानतिलक प्रभृति हिन्दी में रचित इनके ग्रन्थों के गद्य-पद्य दोनों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि ने इन पर अच्छा परिश्रम किया है। इनकी ‘बानी’ की बानगी देखिए :

1. मोटे-मोटे कूल्हे औ लंबे-लंबे पेट। भई ना रे पूताँ गुरु सों भेंट।
खड़-खड़ काया निरमल नेत। भई रे पूताँ गुरु सों भेंट॥
2. कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिना थोथी।
पढ़्या-गुणा सुआ बिलाई खाया, पंडित के हाथि रहि गइ पोथी॥
कहणि सुहेली रहणि दुहेली बिना खायौ गुड़ मीठा।
खाई हींग कपूर बखाणै, गोरख कह सब झूठा॥
3. अवधू रहिया हाटे-बाटे रूख बिरख की छाया।
तजिबा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया॥
झरै न पारा बाजै नाद। ससि ना सूर न बाद-बिबाद॥
पवन गोटिका रहन अकास। महियल अंतरि नभ के बिलास॥
4. नौ लख पातुरि आगे नाचै पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै तब अंतरि बसै भंडारा॥
5. अंजन माहिं निरंजन भेट्या, तिल मुख भेट्या तेल।
मूरति माहिं अमूरति परस्या, भया निरंतरि खेल॥

ज्ञानेश्वर

“हे विश्व सी माझे घरा” के विश्ववादी-मानवतावादी उद्घोषक, ‘ज्ञानेश्वरी’ (गीता की ज्ञान-योग प्रधान टीका) के द्वारा मराठी-साहित्य का व्यवस्थित एवं गौरवशाली समारम्भ करनेवाले गोरखनाथ अनुयायी युवा-सन्त ज्ञानेश्वर या ज्ञानदेव (1296 ई. में समाधि¹ जन्मस्थान अलंदी, पुणे से बीस किलोमीटर) बारकरी-सम्प्रदाय के आचार्य माने जाते हैं, जिससे आभास मिलता है कि यह भक्तिविरोधी न थे, यद्यपि नामदेव को सगुणोपासना से योगमार्ग-प्रवृत्त करनेवाले यह ही थे (वैसे, नामदेव पर खेचरनाथ का प्रभाव भी पड़ा)। प्रख्यात पंडित त्र्यम्बक पंत के वंशज, प्रख्यात विद्वान् विठ्ठल पंत के पुत्र, निवृत्तिनाथ के अनुज एवं शिष्य तथा सोपानदेव एवं मुक्ताबाई के अग्रज ज्ञानेश्वर गौरवशाली पृष्ठभूमि-पार्श्वभूमि से सम्पन्न थे जिन्हें ज्ञान एवं योग को भक्ति से सम्पृक्त करने के कारण महाराष्ट्र का तरुण शंकराचार्य कहा जा सकता है। उनके कर्म-सम्मान ने तिलक को भी प्रभावित किया। ज्ञानेश्वर ने खड़ी बोली में उपदेश-काव्य का सृजन किया है, जो अंधविश्वासपूर्ण एवं शुष्क होते हुए भी प्रभावी है। ज्ञानेश्वर का नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि पर प्रभाव एक स्पष्ट तथ्य है। उनका ‘स्वधर्म’ व्यक्ति-कर्तव्य-व्यंजक मानव-धर्म है। वे दुष्कर्मियों पर भी परमात्मा की कृपा चाहते हैं। नामदेव, मुक्ताबाई, तुकाराम, एकनाथ इत्यादि ने भी ज्ञानेश्वर का अनुकरण करते हुए खड़ीबोली में काव्य-रचना की है, जिसका ऐतिहासिक महत्त्व अत्यधिक है, क्योंकि यह खुसरो, नामदेव, मुक्ताबाई प्रभृति अन्य खड़ीबोली-रचनाकारों के समकालीन थे। उदाहरण प्रस्तुत है :

सो ही कच्चा वे कच्चा वे नहीं गुरु का बच्चा।
दुनिया तज कर खाक लगाई जाकर बैठा मन मों।
खेचरि मुद्रा बजासन यों ध्यान धरत है मन मों॥

1. इनका 700वाँ समाधि-दिवस रविवार, 24 नवम्बर 1996 को समारोहपूर्वक मनाया गया, जिसमें तिब्बत के स्वनिर्वासित बौद्ध-नेता नोबेल शान्ति-पुरस्कार विजेता दलाई लामा भी सम्मिलित हुए।

तीरथ करके ऊमर खोई जोग जगत में सारी। धन कामिनि औ कुंजर त्यागे जोग कमाया भारी॥
गुप्त होयकर परगट होवे गोकुल, मथुरा, कासी। सिद्ध हुए जी प्राण जु निकले सत्य लोक के वासी॥
शास्त्रों में तो नहीं रखा कुछ, पुरान गायन माया। भेद विधी का मारग चलता तनका लकड़ा काया॥
कुण्डलिनी को खूब चढ़ावे ब्रह्मरंध्र सो जावे। चलता है पानी के ऊपर बोलत सोई पावे॥
हुकुम निवृत्ति का ज्ञानेश्वर कूँ तिनको ऊपर जाना। सद्गुरु की जहँ कृपा भई तह आपहि आप पिछाना॥

मुक्ताबाई

मराठी की आदि-कवयित्री मुक्ताबाई (देहान्त 1297 ई.) निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर एवं सोपानदेव की अनुजा थीं। यह एक उत्कृष्ट हठयोगिनी थीं। ज्ञानेश्वर के सद्गुरु मुक्ताबाई ने भी खड़ीबोली में कविता की है। ज्ञानेश्वर के सद्गुरु ही मुक्ताबाई की कविता शुष्क एवं उपदेशात्मक है, कश्मीर की लल्लेश्वरी¹ तथा परवर्ती निर्गुणप्रधान सन्त कवयित्रियों सहजोबाई एवं दयाबाई (चरणदास की शिष्याओं) की कविता के सद्गुरु प्रांजल नहीं—विश्व की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री मीरा बाई की कविता के सद्गुरु मार्मिक एवं अभिभूतकारी नहीं, फिर भी, प्रभाव की दृष्टि से मुक्ताबाई महाराष्ट्र की लल्लेश्वरी मानी जा सकती हैं। उदाहरण प्रस्तुत है :

वाह वाह साहब जी सद्गुरु लाल गुसाई जी।

लाल बीच में उदला काला ओंठ पीठ सों काला। पीत उन्मनी भ्रमर गुँफा रस झूलनेवाला॥

सहस्रदल सों उलखली खाय आज लौ परवाना। जहाँ तहाँ साधु दसवा आपहि आप ठिकाना॥

सद्गुरु चले दोनों बराबर एक दसा मो माई। एक सो ऐसे दरसन पाए महाराज मुक्ताबाई॥

हठयोग में गुरुडम की प्रधानता हो गई थी। इस गुरुडम ने हिन्दूधर्म की क्षति भी की, विकास भी किया। क्षति यों कि अनेक पंथ चल गए, विकास यों कि इनमें से अनेक महापुरुष निकल सके—अविकसनशील मोहम्मदीयत विकासकों की हत्या कर देती है किन्तु उस तक में पंथ (सुन्नी, शिया, बहावी, अहमदिया इत्यादि जिनके रक्तपात की कथा संकीर्ण-मताधंता की सूचक है) निकल ही आया, क्योंकि अहं की प्रवृत्ति दुर्दमनीय है। मुक्ताबाई ने “सद्गुरु चले दोनों बराबर एक दसा मो माई” कहकर प्रकारान्तर से ‘आत्मा वै गुरुरेकः’ का मण्डन किया जो प्रशस्य है क्योंकि यह गुरुडम एवं विकास का संयोजन करता है।

उमाँबा²

बौद्ध धर्म के एक परवर्ती विकास महानुभाव-पंथ के प्रवर्तक चक्रधर (1272 ई. के इधर-उधर) के एक शिष्य नागदेवाचार्य की भगिनी उमाँबा मराठी की एक आदि-कवयित्री मानी जा सकती हैं जिन्होंने हिन्दी में भी कुछ अच्छी निवृत्तिवादी कविता की। उमाँबा ज्ञानेश्वर (1275-96 ई.) की भगिनी एवं एक प्रमुख ज्ञानेश्वर-शिष्य नामदेव (1270-1350 ई.) की समकालीन मुक्ताबाई (निधन 1297 ई.) की समकालीन थीं। इस काल (तेरहवीं सदी का उत्तरार्द्ध) में महाराष्ट्र में चक्रधर, दामोदर पंडित, ज्ञानेश्वर, उमाँबा, मुक्ताबाई और (हिन्दी की दृष्टि से) सबसे बढ़कर नामदेव ने प्रचुर काव्य-रचना की तथा दिल्ली में अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) ने इस अवधि एवं अनन्तर भी उसमें चार चाँद लगाए। ‘विनोद’ का उदाहरण प्रस्तुत है :

नगरद्वार हो भिच्छा करो हो बापु रे मोरी अवस्था लो।

जिहाँ जावो तिहाँ आप सरिखा कोउ न करी मोरी चिंता लो॥

हाट चौहाटा पड़ रहूँ माँग पंच घर भिच्छा।

बापुड़ लोक मोरी अवस्था कोउ न करी मोरी चिंता लो॥

1. विश्वविख्यात योगी स्वामी मुक्तानन्द परमहंस ने ‘लल्लेश्वरी’ गद्यगीतसंग्रह में लल्लेश्वरी (लल्ल) की वाणी का मुक्तानुवाद किया है, स्वयं उनकी ‘मुक्तेश्वरी’ पर कश्मीरी-कविता की जननी लल्लेश्वरी का प्रभाव दृग्गत होता है।
2. उमाँबाई। महाराष्ट्र-गुजरात में बाई को वा कहने का रिवाज अब तक है (गांधी की पत्नी कस्तूरबाई को कस्तूरबा कहते हैं। सिंह को सी कहने का रिवाज राजस्थान में भी रहा, रतनसिंह को रतनसी, नरसिंह मेहता को नरसी कहा गया।

उमाँबा का निवृत्तिकाव्य मुक्ताबाई के तद्वत् काव्य की तुलना में कम हठयोग-वैभव-नेषन्न होने पर भी अधिक सरल एवं स्पष्ट है। कालान्तर में, कश्मीरी की आदि-कवयित्री (वस्तुतः आदि-कवि) लल्लेश्वरी 'लल्ल' में यह निवृत्तिकाव्य व्यवस्थित सन्तकाव्य का रूप प्राप्त करता है।

चर्पटनाथ (चरपट)

सिद्धसूची एवं नाथसूची में युगपत् सम्मानित चर्पटनाथ (1350 ई. के लगभग) योगशुद्धि-प्रतिपादकों में अग्रणी हैं। हराम की चर्पटी¹ खानेवालों को वे करारी चर्पट² लगाते हैं। अनेक सिद्धों की भोगसाधना एवं अनेक नाथों के मन-वचन-कर्म-विपर्यय का प्रत्याख्यान करते हुए उन्होंने साधना की उज्ज्वलता का पथ प्रशस्त किया, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें किसी किंवदन्ती ने नागार्जुन, तो किसी ने जालंधरनाथ, तो किसी ने गोरखनाथ का शिष्य बतलाया, किन्तु वे गोरखनाथ इत्यादि का उल्लेख समकालीनों के रूप में नहीं करते तथा स्पष्टतः परवर्ती हैं। चर्पटनाथ की चटपटी वाणी में सरल हिन्दी का मिश्रित प्रयोग प्राप्त होता है :

1. माँगैं भिच्छा भरि-भरि खाहिं। नाथ कहावैं मरि-मरि जाहिं॥
बाकर कूकर कींगुर हाथि। बाली भोली तरुणी साथि॥
दिन करि भिच्छा रात्यूँ भोग। चरपट³ कहै बिगोवैं योग॥
2. इक पीत पटा, इक लंब जटा। इक सूत जनेऊ तिलक ठटा॥
इक जंगम कहिए भसम घटा। जउ लउ नहिं चीन्हैं उलटि घटा॥
तब चरपट सगले स्वांग नटा॥
3. किसका बेटा किसकी बहू। आप सवारथ मिलिआ सहू॥
जेता पूला तेती आल। चरपट कह सब आल जँजाल॥
4. चरपट चीर चंक्रमन कंथा चित्त चमाऊँ करना।
ऐसी करनी करौ रे अवधू बहुरि न होई मरना॥

चौरंगीनाथ

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री एवं महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने चौरंगीनाथ (1350 ई. के लगभग) को क्रमशः तृतीय एवं दशम सिद्ध मानते हुए प्राचीनतर घोषित किया है। वे मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दरनाथ) के शिष्य, शाकल (स्यालकोट) के विमाता द्वारा पैर कटवाए राजकुमार (डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की कल्पना में पूरन भगत का ही दूसरा नाम) इत्यादि भी माने गए हैं। योगानुभूति एवं अभिव्यक्ति की दृष्टियों से भी वे कबीर-पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं तथा उनके स्थान के विषय में कोई निर्णय करना 'चङ्गकठिन' है। 'प्राणसंकली' एवं 'भावतत्त्वभावनोपदेश' चौरंगीनाथ कृत ग्रन्थ माने जाते हैं। वाणी के आधार चौरंगीनाथ का चर्पटनाथ का समकालीन माना जा सकता है। इनकी वाणी में निवृत्तिप्रधान योग-साधना का ठीक-ठाक प्रतिपादन दृष्टिगोचर होता है :

मारिबा तौ मन मीर मारिबा, लुटिबा पवन भण्डार।
साधिबा तौ पंचतत्त साधिबा, सेइब तौ निरंजन निरंकार॥
माली लौ भल भाली लौ जो सींचै सहज कियारी।
उनमनि कला एक पहूपनि पाइले आवागमन निवारी॥

1. चर्पटीनाथ गलत प्रचलित है। चर्पटीनाथ का अर्थ हुआ चपातीनाथ या रोटीनाथ।

2. चपत।

3. प्रचलित परिपाटी (रूढ़िर्योगात् बलीयसी) के अनुसार पहले चर्पटीनाथ लिख दिया किन्तु वे छाप में सर्वत्र चरपट (चर्पट) लिखते हैं तथा 'यथा नाम तथा गुण' चपत लगाते भी हैं।

3. जैन-काव्य

तीर्थकर और महावीर

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (अचौर्य), ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह के कठोरतापूर्वक पालन पर आधृत तथा ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करते हुए भी प्रतिप्राणिभिन्न एवं तदाकरूप आत्मा को मानने वाले जैनधर्म को भौतिकवादी तथा अध्यात्मवादी तत्त्वों का सेतु माना जा सकता है। इन्द्रियजयी या जिन महावीर प्रभृति के अनुयायी होने के कारण अन्त्यायी जैन कहे गए; इन्हें यती, ब्रात्य, केशी, निर्ग्रन्थ एवं श्रमण भी कहा गया है।¹ जैन-दर्शन का प्रधान तत्त्व स्याद्वाद² भी सेतुवादी दर्शन ही है। हिन्दूधर्म, बौद्धधर्म एवं सिखधर्म के सदृश ही, जैनधर्म भी कर्मवाद-पुनर्जन्मवाद पर विश्वास रखता है। अपनी प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए बौद्धों ने चौबीस बोधिसत्वातारों की कल्पना की थी, जैनों ने चौबीस तीर्थकरों की स्थापना। जैनधर्म की प्राचीनता को मोहेंजोदड़ों इत्यादि से भी जोड़ा जाता है। इन्द्र ने 'पणि' वर्ग को परास्त कर दक्षिण एवं पूर्व में खदेड़ दिया। 'पणि' जैन बताए जाते हैं; फिनिशिया तक से उनका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। मोहेंजोदड़ों में लिंग-पूजा एवं वृषभ-पूजा का प्रचलन था। ऋषभदेव (आदिनाथ) की सन्दर्भ-कल्पना का यही आधार है। किन्तु जैन-साहित्यों से इन मतों की पुष्टि नहीं होती। चौबीस तीर्थकर हैं : आदिनाथ³ (ऋषभदेव), अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुण्ठनाथ, अवनाथ, (अरनाथ, अरहनाथ), मल्लिनाथ (मल्लीदेवी), सुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्द्धमान (महावीर)।

तीर्थकर	जन्मस्थली	पिता/माता	चिह्न	निर्वाणतिथि	निर्वाणस्थली
1. श्री ऋषभदेव जी	अयोध्या	श्री नाभि/मरु	बैल	माघ वदी 14	कैलास
2. श्री अजितनाथ जी	अयोध्या	श्री जितशत्रु/विजया	हाथी	चैत्र सुदी 5	सम्मेद शिखर
3. श्री सम्भवनाथ जी	श्रावस्ती	श्री जितारी/सेना	घोड़ा	चैत्र सुदी 6	"
4. श्री अभिनन्दन जी	अयोध्या	श्री सवर/सिद्धार्थ	बन्दर	बैसाख सुदी 6	"
" श्री सुमतिनाथ जी	अयोध्या	श्री मेघ/माला	चकवा	चैत्र सुदी 11	"
6. श्री पद्मप्रभु जी	कौशाम्बी	श्री धर/सुसीमा	कमल	फाल्गुन वदी 4	"
7. श्री सुपार्श्वनाथ जी	वाराणसी	श्री प्रतिष्ठ/पृथ्वी	सांथिया	फाल्गुन वदी 7	"
8. श्री चन्द्रप्रभु जी	चन्द्रपुरी	श्री महासेन/लक्ष्मणा	चन्द्रमा	फाल्गुन वदी 7	"
9. श्री सुविधिनाथ जी	काकंदी	श्री सुग्रीव/रामा	मगर	भादों सुदी 8	"
10. श्री शीतलनाथ जी	महिलपुर	श्री दृढ़रथ/नंदा	कल्पवृक्ष	कुँवार सुदी 8	"
11. श्री श्रेयांसनाथ जी	सिंगपुर	श्री विष्णु/विष्णा जबा	गेंडा	सावन वदी	"
12. श्री वासुपूज्य जी	चंपा नगर	श्री वसुपूज्य	भैंसा	भादों सुदी 14	चम्पापुर
13. श्री विमलनाथ जी	कपिलपुर	श्री कृत वर्मा/शमा	शूकर	असाढ़ वदी 8	"
14. श्री अनन्तनाथ जी	अयोध्या	श्री सिंगसेन/श्वेसा	सेही	चैत वदी 15	"

1. वनवारी-पर्वतवासी दिगम्बर 'तपस्वी' यती या जेती या जेती भी कहे गए। व्रत-प्रधान होने के कारण ब्रात्य माने गए। क्षौरमुक्त होने से केशी कहलाए। ग्रन्थमुक्त (जैन-साहित्य परवर्ती है) या विवाहग्रन्थिबन्धनमुक्त होने के कारण निर्ग्रन्थ माने गए। श्रम-प्रधान जीवन के कारण श्रमण कहे गए। जितेन्द्रियता के कारण जैन शब्द तो प्रचलित है ही। भयावह दिगम्बरत्व के कारण जिन्द शब्द जैन शब्द से ही निकला लगता है।

2. स्यात् (सम्भवतः, शायद) वाद = किन्तुपरन्तुवाद।

3. हठयोगियों के आदिनाथ (शिव—कुछ लोगों के अनुसार जालंधरनाथ) से स्पष्टतः भिन्न।

15. श्री धर्मनाथ जी	रत्नपुर	श्री भानू/सुब्रता	वज्रदंड	ज्येष्ठ सुदी 6	"
16. श्री शांतिनाथ जी	गजपुर	श्री विश्वसेन/चिरा	हरिण	ज्येष्ठ वदी 14	"
17. श्री कुंथुनाथ जी	गजपुर	श्री भूर/शिरी	बकरा	बैसाख सुदी 1	"
18. श्री अरहनाथ जी	गजपुर	श्री सुदर्शन/देवी	मच्छ	चैत्र वदी 14	"
19. श्री मल्लिनाथ जी	मिथिला	श्री कुम्भ/प्रभावती	कलश	फाल्गुन सुदी 5	"
20. श्री मुनि सुव्रत जी	राजाग्रही	श्री सुमिब्रपदमावती	कछुवा	फाल्गुन सुदी 12	"
21. श्री नमिनाथ जी	मिथिला	श्री विजयसेन/वत्रालाल	लाल कमल	वैशाख सुदी 14	"
22. श्री नेमिनाथ जी	सोरियापुर	श्री समुद्रविजय/शिक्षा	शंख	असाढ़ सुदी 7	गिरनार
23. श्री पार्श्वनाथ जी	वाराणसी	श्री अश्वसेन/वामा	सर्प	सावन सुदी 7	"
24. श्री महावीर स्वामी	कुंडग्राम	श्री सिद्धार्थ/त्रिशला	सिंह	कार्तिक सुदी 15	पावापुर

इनमें ऋषभदेव ऋग्वेद के ऋषि हैं तथा जैन-स्रोत वृषभ के कारण उनका शिव से ऐक्य स्थापित करते हैं जो चिंत्य है, नमिनाथ एवं नेमिनाथ रामा णकालीन राजा जनक के पूर्वज महाराज निमि के वंशज हो सकते हैं, पार्श्वनाथ (ईसा पूर्व आठवीं सदी) वाराणसी के राजा हो सकते हैं, जिन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय एवं अपरिग्रह पर आधृत एक प्रभावी 'निर्ग्रन्थ' संगठन खड़ा कर दिया था, जो जैनधर्म के वास्तविक प्रवर्तक एवं उन्नायक वर्द्धमान महावीर (599-27 ई. पू.)¹ को उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ। चौबीस में अधिकांश बोधिसत्त्वावतार कल्पित हैं। विष्णु-अवतारों पर भी यही बात लागू होती है। (ये भी चौबीस हैं)। बोधिसत्त्वावतारों एवं विष्णु अवतारों की तुलना में अपने केवलमात्र मानव-रूपों के कारण जैन-तीर्थंकार अधिक तर्कसंगत एवं ऐतिहासिक लगते हैं। सम्भावित ऐतिहासिकता की दृष्टि से पार्श्वनाथ एवं पूर्ण-ऐतिहासिकता की दृष्टि से महावीर को विशेष एवं यथार्थ महत्त्व प्रदान किया जा सकता है। 'वैज्ञानिक इतिहास' (साम्यवादी एवं कांग्रेसी के अतिरिक्त अन्य भी) केवल महावीर की ऐतिहासिकता स्वीकार करते हैं। मेरी समझ में, जिन्द एवं जेन्दावेस्ता (जिन-अवस्त्र) इत्यादि शब्द व्यापकता एवं प्राचीनता के सूचक हैं तथा ऋषभदेव (आदिनाथ) इत्यादि को भी काल्पनीक मात्र न मानने के आधार प्राप्त हैं। परवर्ती, कुरान में जिन जैन सूचक हो सकते हैं।

उदात्त किन्तु अव्यावहारिक धर्म

जैनधर्म एक अत्यन्त उदात्त किन्तु अव्यावहारिक प्रतीत होनेवाला धर्म है क्योंकि सम्पूर्ण अपरिग्रह सम्भव नहीं है, उसकी अहिंसा भयानक तक होती रही, नग्नता विकासवाद-विरोधिनी है, इसका केशलुंचन रोमांचक रूप से आलोच्य दिख सकता है। जैन-दर्शन परिणामवादी है जिसके अनुसार प्रत्येक वस्तु स्वरूप-परिवर्तन करती रहती है अतः अनेकवस्तुवत् अनेकधर्मता स्वाभाविक है, भिन्नता स्वाभाविक है। भगवान् महावीर ने अनेकान्त-दर्शन का प्रतिपादन किया है। जीव की सारी क्रियाएँ कर्मफलप्रसूता हैं। जीव को पंचकल्याणक-प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है : गर्भकल्याणक, जनकल्याणक, दीक्षाकल्याणक, तपकल्याणक (निःक्रमण-महोत्सव) एवं केवलज्ञानकल्याणक। 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसॉफी' तथा 'भारतीय दर्शन' के विद्वान् लेखक डॉ. उमेश मिश्र लिखते हैं, "साधारण रूप में 'बुद्ध' और 'मुक्त' के भेद से 'जीवन' दो प्रकार का है। बुद्ध या संसारी जीव पुनः 'त्रस्' (जंगम) तथा स्थावर के भेद से दो प्रकार का है।" स्पष्टतः आत्मा (जीव) की स्वीकृति के साथ भी जैन-दर्शन भेदवादी है। जीव 'नित्यपरिणामी' भी है, जिसका 'संकोच' भी होता है और 'विकास' भी—वह चींटी के शरीर में चींटी के समान छोटा और हाथी के शरीर में हाथी के समान बड़ा हो जाता है। जीव खण्डित भी हो सकता है। सूक्ष्म दार्शनिकता की दृष्टि से जीव का आकारवादी प्रतिपादन हास्यास्पद लगता है जो स्थूल भेदभाव का परिणाम मात्र है। डॉ. उमेश मिश्र के शब्दों में, "दर्शनों के तात्त्विक विचार का मुख्य ध्येय तो होना चाहिए 'भेद में अभेद' का ज्ञान, किन्तु जैन-सिद्धान्त में 'अभेद' का, या 'एकत्व' का, कहीं स्थान नहीं है। 'भेद' तो निम्नस्तर में पाया जाता है। अतएव, यह दर्शन ऊँचे स्तर तक हमें नहीं पहुँचाता।"

1. निधन वर्ष 470 ई. पू. भी माना जाता है। जन्म वैशाली एवं निधन पावा में। दोनों पटना के निकट हैं।

2. विल्ले स्मिथ (अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया) एवं सावरकर ('भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ' भाग 2) प्रभृति ने गुजरात के जैन राजा कुमारपाल (राज्यकाल 1245-73 ई.) द्वारा एक धनी व्यापारी के द्वारा चूक या जुए की 'हत्या' पर सर्वधनापहरण (और इस धन से 'यूक-विहार' के निर्माण) तथा एक सामान्य व्यक्ति को तश्तरी में कच्चा मांस लेकर चलने की 'हिंसा' पर मृत्युदण्ड की चर्चा की है।

किन्तु प्रत्येक प्राणी की भिन्न आत्मा एवं उसका आकार के अनुरूप होना नितान्त तर्कहीन नहीं माना जा सकता। पुनर्जन्मवाद के कारण जैन-आत्मा मोहम्मदी-रूह (ईसाई 'सोल' भी) से भिन्न है, क्योंकि उसे कयामत का इंतज़ार नहीं करना पड़ता।

महावीर द्वारा प्रतिपादित कटोरताधृत जीवन के प्रचार-प्रसार में भद्रबाहु (देहान्त 297 ई. पू.) को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है। इनका दिगम्बर (दिक् + अम्बर = दिशा ही जिसका वस्त्र है अर्थात् वस्त्ररहित) सम्प्रदाय समकालीन स्थूलभद्र द्वारा प्रवर्तित श्वेताम्बर (श्वेत अम्बर या वस्त्र धारण करनेवाले) सम्प्रदाय से भिन्न हो चुका था। 82 ई. में दोनों सम्प्रदाय बाक्रायदा अलग-अलग हो गए। तब से दिगम्बरों एवं श्वेताम्बरों में भी अनेकानेक भेदोपभेद होते रहते हैं। दिगम्बरों के अनुसार स्त्री तीर्थंकर नहीं हो सकती, उसे 'सिद्ध-शिला' लाभ (मोक्ष या कैवल्य) नहीं हो सकता। उन्नीसवें तीर्थंकर मल्ली पुरुष थे, जबकि श्वेताम्बरों के अनुसार स्त्री भी तीर्थंकर हो सकती है, मुक्तिलाभ कर सकती है, मल्ली स्त्री थी। दिगम्बर क्लृप्तियों को भी मुक्तिवहिष्कृत करते हैं, श्वेताम्बर नहीं। दिगम्बर महावीर को अविवाहित मानते हैं, श्वेताम्बर विवाहित।¹ दिगम्बरों के अनुसार 'केवल ज्ञान' प्राप्ति पर साधु भोजन नहीं करते, श्वेताम्बर इसे असम्भव मानते हैं। दिगम्बरों के अनुसार साधु को नग्न रहना चाहिए, श्वेताम्बरों के अनुसार साधु को वस्त्र धारण करने चाहिए। दिगम्बर मूर्तियों की नग्नता का प्रतिपादन करते हैं, श्वेताम्बर नहीं। दिगम्बर स्थूलभद्र एवं उनकी पाटलिपुत्र-सभा को महत्त्वहीन मानते हैं, श्वेताम्बर महत्त्वपूर्ण। दोनों में अन्य मतभेद भी हैं।

अव्यावहारिक जीवन-पद्धति एवं भेदवादी-स्थूलवादी जीवन-दर्शन के कारण जैनधर्म लोकप्रिय नहीं हो सका। इसे बिम्बसार या अशोक या कनिष्क या हर्ष या नेहरू या अम्बेदकर जैसे राजनीतिज्ञों के साधनों का अपार लाभ भी प्राप्त नहीं हुआ। फिर भी महावीर विश्वस्तरीय महापुरुष थे, खारवेल² महान् (कलिंग) एवं सुहदेव (सुहेलदेव—श्रावस्ती—नरेश जिन्होंने लुटेरे महमूद गज़नवी के उत्साही भांजे सालार मसऊद ग़ाज़ी को हराया और तलवार से मौत के घाट उतार दिया) राष्ट्रीय स्तर के वीर-योद्धा थे कन्नड़-महाभारत कार पम्म महाकवि थे, स्वयंभू पुरानी हिन्दी के एक उत्कृष्ट कवि थे, भामाशाह तो अमर देशभक्त हैं ही। सम्भवतः श्रेष्ठतम कालिदास-साहित्य के अमर टीकाकार मल्लिनाथ जैन थे। जैन जीवन-यापन उदात्त जीवन-यापन है। जैन समाज उन्नत समाज है। हिन्दी को स्वयंभू, हेमचन्द्र, बनारसीदास, जेनेन्द्र, आ. तुलसी, आ. विद्यासागर जैसे अनेक साहित्यकारों के कारण जैनों पर गर्व है। उनकी देशभक्ति, भारतीयता एवं हिन्दीप्रेम का स्तर सदैव उच्च ही रहा है। आज हिन्दू-जैन अभिन्नवत् है। निस्सन्देह, जैन धर्म विश्व का महान् एवं उदात्त धर्म है। जैन धर्म का दिगम्बरत्व सहज जीवन-साधना का परम प्रतीक है। दिगम्बरत्व अव्यावहारिक है, कठिनतम है, विकास विरोधी है—ये तर्क विचारणीय हो सकते हैं किन्तु यह प्राचीनतम मानव एवं प्राचीनतम साधना की निश्चिन्तता एवं उसके अपरिग्रह का परम पावन स्मारक तो है ही। 'बाइबिल' से 'पैराडाइज लॉस्ट' तक आदम-ईव की दिगम्बर-दशा प्रशंसित है। हिन्दूधर्म में शुकदेव इत्यादि दिगम्बर समादृत हैं। शर्मद शहीद जैसे गौरांग-सूफी दिगम्बर थे। आज भी 'नागा' साधु मिलते हैं, जो 'दिगम्बर' साधु के वर्ग के ही हैं।

जैन धर्म अहिंसा पर विशेष जोर देता है तथा इस सद्गुण की सर्वोपरिता विवादरहित है। हिन्दूधर्म एवं बौद्धधर्म इसे ज्यों-का-त्यों स्वीकार करते हैं। जैनधर्म का शाकाहार-प्रतिपादन भी प्रशस्य है, क्योंकि शाकाहार मानवीयता एवं सभ्यता का प्रतीक है।

बहुआयामी सम्बेदनशीलता

संक्रान्तिकालीन जैन-साहित्य परिमाण की दृष्टि से विपुल तथा गुण की दृष्टि से प्रशस्य है। मिश्रबन्धु, आ. शुक्ल, रामकुमार वर्मा, अगरचन्द नाहटा, नाथूराम 'प्रेमी', विमलकुमार जैन, गणपतिचन्द्र गुप्त इत्यादि ने स्फीत जैन-साहित्य के नाना रूपों पर प्रकाश डाला है। पं. सुखलाल, पं. अमृतलाल, मुनि नथमल इत्यादि जैन विद्वानों ने जैन-दर्शन पर प्रशस्य ग्रन्थरचना की है। यद्यपि संक्रान्तिकालीन जैन-साहित्य का प्रभाव सिद्ध-साहित्य के सदृश व्यापक एवं सुदूरगामी तथा नाथ-साहित्य के सदृश अप्रतिहत एवं अनवरत सिद्ध नहीं हुआ तथापि उसने रामकाव्य, कृष्णकाव्य, नीतिकाव्य, लोककाव्य एवं चरितकाव्य में उल्लेख उपलब्धियाँ अर्जित की हैं, उसकी रसवत्ता की तुलना में सिद्धसाहित्य कृत्रिम एवं बोझिल तथा नाथ-साहित्य टाट एवं सपाट लगता है। साहित्यिक रसवत्ता में रासो-साहित्य के अनन्तर जैन-साहित्य सर्वोत्तम है।

1. ऐतिहासिक दृष्टि से महावीर का यशोदा नामक स्त्री से विवाह हुआ था तथा वे एक पुत्री के पिता भी थे। उनके पिता सिद्धार्थ वैशाली के एक धनी सामन्त थे। उनका जीवन बुद्ध से मिलता-जुलता है।

2. खारवेल सारतः हिन्दू था जिसने यवनों को खदेड़ा और अश्वमेधयज्ञ किया (दृष्टव्य है सावरकर कृत 'भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ' का प्रथम भाग)।

हिन्दुओं के सर्वरससम्पन्न-सर्वकथासम्पन्न अष्टदश अग्निपुराण, कर्मपुराण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, वराहपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण, पद्मपुराण, वामनपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, आदिपुराण या ब्रह्मपुराण, मत्स्यपुराण, भागवतपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंगपुराण, मार्कण्डेयपुराण एवं भविष्यपुराण वैदिकों, शैवों, वैष्णवों, शाक्तों, जैनों (ऋषभदेव-अवतार), बौद्धों (बुद्ध-अवतार), सबको समाहित कर 'कथा' को विराट् राष्ट्रीय धर्म का प्रधान तत्त्व बना चुके थे। जैनों ने अपने ढंग से कथा-तत्त्व को सम्पन्न कर राष्ट्र-जीवन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। वे बौद्धों की तरह राष्ट्र की मुख्य धारा से कटे-कटे न रहे, जुड़े-जुड़े रहे। यही कारण है कि वे बचे तो रहे ही, गरिमामण्डित भी हुए।

स्वयंभू ने रामकाव्य, पुष्पदन्त ने कृष्णकाव्य, देवसेन ने नीतिकाव्य, हेमचन्द्र ने चरितकाव्य, मेरुतुंग ने शृंगारकाव्य, विनयचन्द्र सूरि ने प्रकृतिकाव्य, अबदव जैन ने वीरकाव्य रचा अथवा इनका स्पर्श किया। यह सत्य है कि जैन-साहित्य के प्रणेताओं का उद्देश्य अपने सम्प्रदाय का मण्डन था जिसके कारण उनके द्वारा राम, कृष्ण, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इन्द्र इत्यादि के साथ अन्याय भी हो गया है किन्तु यह भी सत्य है कि उनकी रचनाएँ राष्ट्र के व्यापक जीवन से सम्पृक्त रहीं। जैन-साहित्य का प्रधान रस शान्त ही हो सकता है, किन्तु उसमें वीर, शृंगार इत्यादि अन्य रसों का मनोहारी समावेश भी प्राप्त होता है। बारहमासा उसकी एक विशिष्ट निधि है। भाषा पुरानी हिन्दी है। उसमें यत्र-तत्र लालित्य के दर्शन भी होते हैं। वह अनलंकृत भी नहीं है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

किं वयतरु रे अयाण चिंतउ मण भितरि। किं चिन्तामणि कामधेनु आरोहौ बहु परि॥
चित्रावेली काज जिसे देसंतरु लंघउ। रयण रासि कारण किं से सायर उल्लंघउ॥
चौदह पूरब सार युगे एक नवकार। सायल काज महियल सैर दुत्तर तरै संसार॥
इक जीह इण मंत्र मणो गुण किता बखाणू। नाण हीन छउ मत्थ एह गुण पार न जाणू॥
जिम से जुंजै नित्य राउ महिमा उदवंतौ॥

अइ संपय नव पय सहित इगसठ लघु अक्षर। गुरु अक्षर सत्तेब एह जाणो परमाक्षर॥
गुरु जिणवल्लह सूरि¹ भणे सिव सुर के कारण। नरय तिरिय गट्ट रोग सोग बहु दुःख निवारण॥
जल थल पव्वय वन गहन समरण हुवे इकचित। पंच परमेष्टि मंत्रह तणी सेवा देख्यो नित्त॥

(जिनवल्लभ सूरि)

उपनूँ ए केवल नाण तउ विरहइ रिसहे सिउ ए।
आबिउ ए भरह नरिंद सिउँ अवधापुरि ए॥ (शालिभद्र सूरि²)
बोलह बाहुबली बलवंत। लोह खंडि तउ गरवीउ हंत॥

चक्र सरीसउ चूनउ करिउँ। सयलह गोत्रह कुल संहरउ॥ (शालिभद्र सूरि)

बाजिय संख असंख नादि काहल दुडु दुडिया। घोडे चढ्य सल्लार सार राडत सींगडिया॥
तउ देवाल उजोत्रि वेगि घाघरि रउ झमकइ। सम विसम नवि गणइ कोई नवि वारि उथक्कइ॥
सिजवाला धर धड हसुइ वाहिणि बहु वेगि। धरणि धडक्कइ रजु उडए नवि सूझइ मेगि॥
हय हींसह आर सइ करह वेगि बहइ बहल्ल। साद किया था हरइ अबरु नवि देइ बुल्ल॥
निसि दीवि झल हलहिं जेमि ऊगिउ तारायणु। पावल पारु न पामिय वेगि बहइ सुखासणु॥
आगे वाणिहि संचरए संगपति साहु दे सलु। बुद्धिवंतु बहु पुनिबंतु परि कमिहि सुनिश्चलु॥

(अबदव जैन)³

तं जि पहिय पिक्खेविणु पिअ उक्खिरीय। मंथर गय सरलाइवि उतावलि चलिय॥
तुह मणहर चल्लंतिय चंचल रमण भरि। छुड़वि खिसिय रसणाबलि किंकिण रव पसरि॥

(शालिभद्र सूरि)

1. जिनवल्लभ सूरि (देहान्त 1110 ई.) 'वृद्धनवकार' ग्रन्थ के कारण प्रसिद्ध हैं।

2. प्रख्यात खण्डकाव्य 'भरतेश्वर-बाहुबली रास' (1184 ई.) के प्रणेता। 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' के लेखक डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने इन्हें हिन्दी का आदिकवि माना है (जिसे किसी ने स्वीकार नहीं किया)। यदि स्वयंभू को हिन्दी का आदिकवि माना जाए तो 'पुरानी हिन्दी' एवं परम्परा के बिन्दु सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वैसे, सरहपा स्वीकृत है ही।

3. 'संगपति समरा रास' (रचनाकाल 1300 ई. के लगभग)।

परमेसर तित्थेसरह पय पंकज पणमेवि । भणि सुरास रेवंतगिरि अंबकि दिवि सुमिरेवि ।।
गामागर पुर वरग गहण सरिसरवरि सुपएसु । देवि भूमि दिसि पच्छिमह गणहरु सोरठ देसु ।।
जिणु तहिं मंडल मंडणउ मरगय मउड महंतु । निम्मल सामल सिहिर भर रेहइ गिरि रेवंतु ।।

(विजयसेन सूरि)¹

कोयल कलयलो मोर केकारओ । सम्मए महुयर महु गज्जारओ ।।
जलद जाल बंबाले नीझरणि रमाउलु रेहलु । उज्जिल सिहरु अलि कज्जल सामलु ।।

(विजयसेन सूरि)

जिन उचविस पय नमेवि गुरु चरण नवेवि । जंबूस्वामिहि तणू चरित्र भवि उनि सुणेवि ।।
करि सानिध सरसत्ति देवि जीयरय कहाणउ । जंबूस्वामिहि गुण गहण संखेवि बखाणउ ।।
जंबु दीवि सिरि भरत खिति तिहिं नयर पहाणउ । राजग्रह नामेण नयर पुहुवी बक्खाणउ ।।
राज करइ सेणिय रिंद नरवर हं जु सारो । तासु तणइ बुद्धिवंत मति अभयकुमारो ।।

(धर्मसूरि)²

सोहत सुंदर धण लावन्नु । सुमिरवि साँवल बन्नु ।।
सखि पति राजल चलि उत्तरिय । बार मास सुणि जिमि बज्जरिय ।।
नेमि कुमार सुमिरवि गिरनारि । सिद्ध राजल कन्न कुमारि ।।
श्रावण सरवाँण कडुए मेहु । गज्जइ विरहि रिझिज्जहु देहु ।।
बिज्जु झवक्कइ रक्खसि जेब । नेमिहि विणु सहि ससियइ केव ।।
सखी भणइ सामिणि मन झूरि । दुज्जण तणा मवँछित पूरि ।।
गयउ नेमि तउ विन ठउ काइ । अछइ अनेरा बरह सवाइ ।।
बोलइ राजल तउ इह बयणू । नत्थि नेमि बर सम बर रयणू ।।
धरइ तेजु गहगण सविताउ । गयणि न उग्गइ दिणयर जाउ ।।
भाद्र विभरिया सर पिक्खेवि । सकरुण रोवइ राजल देवि ।।
हा एकलड़ी मइ निरधार । किमि उवे षिसि करुणा सार ।।

(विनयचन्द्र सूरि)³

प्रमुख जैन-कवि

स्वयंभू : 'हिन्दी के आदिकवि' के दावेदार

अपरिसमाप्त पउम-चरित (पद्मचरित या रामचरित या जैन-रामायण), रिट्ठनेमि-चरित एवं स्वयंभू-छन्द के प्रणेता जैन-महाकवि स्वयंभू (800 ई. के आसपास) हिन्दी के आदिकवि के दावेदार के साथ-साथ हिन्दी के आदि रामकाव्याकार हैं, यद्यपि उनके राम अहिंसक हैं तथा महाकाव्य उनके निर्वाण एवं जैन-मुनीन्द्र के उपदेश के साथ समाप्त होता है। जैन-रामाणकारों में विमल सूरि (दूसरी सदी) कृत 'पउम-चरित' (प्राकृत) प्रथम हैं। स्वयंभू ने अपभ्रंश अपनाई जिसके अनेक अंश पुरानी-हिन्दी ही कहे जा सकते हैं। इनके मिलाप-वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। बहुत सम्भव है कि "जे प्राकृत कवि परम सयाने" कहने वाले विश्वकवि तुलसीदास विमल सूरि एवं स्वयंभू के काव्यों से परिचित रहे हों, किन्तु "स्वं सम्भवम्" को पकड़कर राहुल सांकृत्यायन की यह कल्पना कि वे स्वयंभू का उल्लेख करते हैं तथा उनसे प्रभावित हैं, ग्राह्य नहीं है क्योंकि तुलसी की कथा, दृष्टि, शैली शतशः भिन्न एवं अत्यधिक-श्रेष्ठतर है "स्वंसम्भवम् शंकरं" से तुलसी का अभिप्राय रामकथा के "रचि महेस निज मानस राखा" से निर्विवादतः स्पष्ट। पउम-चरित एक संकीर्ण महाकाव्य¹ है,

1. 'रेवंतगिरि रास' (रचनाकाल 1231 ई. के लगभग)।

2. जंबूस्वामी-रासा (रचनाकाल 1209 ई. के लगभग)।

3. नेमिनाथ-चउपई (रचनाकाल 1300 ई. के लगभग)

जिसमें राम अन्ततः सपरिवार जैनधर्म स्वीकार कर लेते हैं।¹ जैन-रामायणों में रावणादि का वध लक्ष्मण करते हैं तथा इस 'हिंसा' के कारण नरकगामी होते हैं—यह कल्पना दांते कृत 'डिवाइन कॉमेडी' की मोहम्मद और रोदित अली को भयानकतम नरक (इन्फर्नो) में देखने की कल्पना का स्मरण कराती है! दशरथ-जातक (बौद्ध-रामायण, चीनी-रामायण, दो जापानी-रामायणों में एक-दूसरी 'होबुत्सुशू' में कथा कम संकीर्ण है) में राम-सीता भाई-बहन हैं। नेहरू-छाप सरकारी विद्वान् डॉ. सुनीतिकुमार चार्डुज्या अपने वाममार्ग के अनुरूप रामायण को दशरथ-जातक से प्रेरित मानते थे! जातक कथाओं में मानवेतर- बोधिसत्त्वावतार भी विद्यमान है। चार्डुज्या तथा अन्य 'प्रगतिशील' चिन्तक उन्हें भी 'ऐतिहासिक' मान सकते हैं। मलेशियाई-रामायण में 'हज़रत राम' आदम के निकट-वंशज (दशरथ आदम के प्रपौत्र) हैं! इस सब से राम का विश्वपुरुषत्व तो स्पष्ट होता ही है!!

12000 श्लोकों एवं नब्बे सन्धियों में विभक्त स्फीत 'पउम-चरित' की अन्तिम सन्धियाँ त्रिभुवन नामक कवि द्वारा रचित हैं।² प्रधान छन्द चौपाई है। करुणरसप्रधान होते हुए भी पउम-चरित में युद्धवर्णन ओजपूर्ण हुए हैं। स्वयंभू विलाप के कवि हैं। 'स्वयंभू के विलाप-वर्णन' लघु-शोध का उत्तम विषय है। दशरथ, राम, भरत, रावण, विभीषण एवं मन्दोदरी के विलाप करुणरस के श्रेष्ठ निदर्शन हैं। मन्दोदरी के विलाप की करुणा में ओज का मिश्रण उसे तुलसी के मन्दोदरी-विलाप से अधिक स्वाभाविक एवं श्रेष्ठतर बना देता है :

रोवइ लंकासुर परमेसरि। हा रावण तिहुयण जण केसरि।।
 पइ विणु समर तूरु को वज्जइ। पइ विणु बालकील कहँ छज्जइ।।
 पइ विणु को विज्जा आराहइ। पइ विणु चन्द्रहास को साहइ।।
 पइ विणु को कुवेरु भंजेसइ। तिजगु विहंसणु कहों वसे होंसइ।।
 पइ विणु को जमु विणिवारेसइ। को कलासुद्धरणु करेसइ।।

क्या भाषा, क्या शैली, सभी दृष्टियों से 'पउम-चरित' पुरानी-हिन्दी का महाकाव्य है। इसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना जा सकता है, क्योंकि 'पृथ्वीराजरासो' की रचना अपने मूल रूप में प्रायः चार सौ साल बाद हुई और उसमें अगले प्रायः चार सौ साल तक प्रक्षेपण चलता रहा, जिसकी कोई व्यवस्थित परम्परा भी विकसित न हो सकी। स्वयंभू हिन्दी के श्रेष्ठतम जैन-साहित्यस्रष्टा हैं क्योंकि पुष्पदन्त, देवसेन, मेरुतुंग, विनयचन्द्र सूरि, शालिभद्र सूरि, बनारसीदास, विद्यासागर, नेमिचन्द्र जैन, इन्दु जैन इत्यादि में किसी की भाषा-शैली कुछ दूर पड़ती लगती है, किसी के विषय साधारणीकरण के अनुरूप नहीं बैठते, किसी की रचना क्लिष्ट दार्शनिकता से आच्छन्न है, किसी का स्तर साधारण है। स्वयंभू, पुष्पदन्त, हेमचन्द्र, बनारसीदास, विद्यासागर इत्यादि कवियों, जैनेन्द्र इत्यादि उपन्यासकारों, धन्यकुमार जैन जैसे अनुवादकों, नाथूराम 'प्रेमी' जैसे प्रकाशकों के कारण हिन्दी-साहित्य के इतिहास में जैन-बन्धुओं का महान् योगदान स्वयंसिद्ध है : प्रथम-महाकाव्यकार स्वयंभू जैन, प्रथम आत्मकथाकार बनारसीदास जैन, उत्कृष्ट उपन्यासकार जैनेन्द्र! हिन्दी के पुराने साहित्यकार सरहपा जैसे बौद्ध, स्वयंभू जैसे जैन, खुसरो जैसे मुसलमान थे। इसी से हिन्दी का सार्वभौम राष्ट्रभाषा-रूप स्पष्ट हो जाता है।

देवसेन

यदि स्वयंभू हिन्दी के आदि-रामकाव्यकार हैं, तो देवसेन (रचनाकाल 833 ई. इधर-उधर) आदि-नीतिकाव्यकार। आ. शुक्ल ने उनके 'श्रावकाचार' एवं 'दब्ब-सहाव-पयास' (द्रव्य-स्वभाव-प्रकाश) का उल्लेख करते हुए प्रथम ग्रन्थ से यह दोहा उद्धृत किया है :

जो जिण¹ सासण भाषियउ सो मइ कहियउ सारु।
 जो पालइ सइभाउ² करि सो तरि पावइ पारु।।

1. आ. विद्यासागर कृत 'मूक माटी' महाकाव्य (1988 ई.) नई शैली में रचित अभिनव एवं प्रतीकात्मक ग्रन्थ है किन्तु यह भी संकीर्णता से मुक्त नहीं है। इसमें जैनधर्म की जीवाकार (छोटी-बड़ी, विचित्र) आत्मा को मूक माटी के प्रतीक में चित्रित किया गया है। 'पउम-चरित' के अनन्तर 'मूक-माटी' हिन्दी के जैन-काव्यों में सर्वोपरि है।
2. राम कोई दुर्बल-स्नायुतन्त्र वाले अशोक न थे; फिर, राम के समय जैनधर्म के होने का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं।
3. नन्नय-तिवक्कन-एरन के महाभारत (तेलुगू), माधव कंदलि-शंकरदेव-माधवदेव की रामायण (असमिया), गोकुलनाथ- गोपीनाथ-मणिदेव के महाभारत (हिन्दी) का स्मरण आता है। पृथ्वीराजरासो चन्द-जल्हण-मलैसिंह इत्यादि की कृति है। 'पउम-चरित' को तो दो कवियों ने ही रचा है।

आचार्य देवसेन कृत 'सावयधम्म' दोहा उन्हें कबीर, तुलसी, रहीम, वृंद, गिरिधर कविराय, दीनदयाल गिरि प्रभृति नीतिकाव्यकारों की पंक्ति में समय की दृष्टि से प्रथम सिद्ध करता है—भाव में, विचार में, भाषा में, 'दृष्टान्त' अलंकृत दोहा-शैली में। वे भर्तृहरि³ (संस्कृत), तिरुवल्लुवर (तमिल) इत्यादि महान् भारतीय नीतिकाव्यकारों के एक सामयिक उत्तराधिकारी थे। प्रमाण प्रस्तुत हैं :

भोगहँ करै पमाणु जिय इंदिय म करि सदप्प । हुंति न भल्ला पोसिया दुद्धें काला सप्प ।।
काईं बहुतईं संपइयँ जइ किवणहँ घर होइ । उबहि⁴ णीरु खारे भरिउ पाणिउ पियइ ण कोइ ।।

हेमचन्द्र⁵

प्रसिद्ध (व्याकरणग्रन्थ) 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन'⁶ एवं (चरितकाव्य) 'कुमारपालचरित'⁷ के रचयिता जैनाचार्य कलिकाल-सर्वज्ञ हेमचन्द्र (बारहवीं सदी) हिन्दी-गुजराती की निकटता के एक अमर स्मारक हैं जिनके द्वारा उद्धृत यह दोहा भारतीय वीरपत्नियों के जीवन्त मनोविज्ञान को विवृत करने के कारण अत्यन्त लोकप्रिय तो है ही, प्राचीन हिन्दी (यही नहीं, खड़ीबोली) की एक निदर्शन-निधि भी है :

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु ।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ घर भग्गा एंतु ।।

धर्माचार्य एवं विद्वान् होते हुए भी हेमचन्द्र ने शृंगाररस की विभिन्न भंगिमाओं (ईर्ष्या, विरह, निद्राहीनता इत्यादि) से सम्बद्ध दोहे उद्धृत कर सरसता का परिचय दिया है :

जह सो न आवइ दूइ⁸ घरु काहँ अधोमुहु तुज्जु ।
वयणु ज खंडइ तउ सहि ए सो पिउ होइ न मुज्जु ।।
जे महु दिण्णा दिअहड़ा दइएँ पवसंतेण ।
ताण गणंतिए अंगुलिउँ जज्जरियाउ नहेण ।।
पिय संगमि कउ निहड़ी पिय हो परक्खहो केंव ।
मइ विन्निव विन्नासिया निह न एंव न तेंव ।।

हेमचन्द्र को गुजरात के जैन-इतिहास में उच्चस्थान प्राप्त है। पाटन में हेमचन्द्राचार्य नॉर्थ गुजरात यूनिवर्सिटी है (दिल्ली का मोगीलाल, लहरचन्द ईंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडोलॉजी इसी से सम्बद्ध है)। दोनों संस्थाएँ साधारण पर जैनधर्म सेवी हैं।

1. जिन, जितेन्द्रिय। तीर्थंकर, विशेषतः महावीर।

2. "सुनु, सतिभाउ कहहुँ, महिपाला!" (तुलसी)

3. राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन' ने 'भर्तृहरि' उपन्यास लिखा है। डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने विशाल उपन्यास रचा है। लखनलाल सिंह 'लखन' का 'भर्तृहरि' नाटक भी एक श्रेष्ठ कृति है।

4. उदधि, समुद्र।

5. हेमचन्द्र बांग्ला-साहित्यकार भी। डॉ. हेमचन्द्र जोशी हिन्दी-भाषावैज्ञानिक एवं भाषाविद्।

6. सिद्धराज जयसिंह (राज्यकाल 1100-1145 ई.) गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी राजा थे (जिन पर मैथिलीशरण गुप्त ने 'सिद्धराज' खण्डकाव्य रचा है)। आचार्य शुक्ल ने समय 1150-99 वि. (1093-1142 ई.) दिया है।

7. सिद्धराज का भतीजा कुमारपाल (राज्यकाल 1145-73 ई.) भी हेमचन्द्र का आश्रयदाता था। 'कुमारपालचरित' द्वयाश्रयकाव्य है जो प्राकृत में है किन्तु जिसमें अपभ्रंश का प्रयोग भी मिलता है। आ. शुक्ल ने कुमारपाल का राज्यकाल 1199-1230 वि. (1142-73 ई.) दिया है। जैन बनने पर यह राजा जुआँ मारने और कच्चा मांस लेकर चलने पर भी सर्वधनापहरण और मृत्युदण्ड देने के कारण कुख्यात रहा है। किन्तु इसने सोमनाथ-मन्दिर का जीर्णोद्धार भी कराया था; इस प्रक्रिया में मूल मन्दिर का प्रथम सोपान (सम्भवतः दरारों के कारण) नवप्रस्तर के नीचे दबा पड़ा था, जो अब सोमनाथ-संग्रहालय में सुधार-सँवार कर रखा मिलता है—पूर्वजों-समेत भीम सोलंकी, महमूद गज़नवी इत्यादि इससे सम्पृक्त हैं। सम्भवतः जीर्णोद्धार धर्मपरिवर्तन से पूर्व किया गया था।

8. दूती (हे दूती)।

विनयचन्द्र सूरि

संक्रान्तिकालीन जैन-साहित्य में गुजरात के विनयचन्द्र सूरि (तेरहवीं सदी) का 'नेमिनाथ-चउपई' में वर्णित बारहमासा साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। 'हिन्दी-कविता में बारहमासा' शोध का एक ललित विषय है। विनयचन्द्र सूरि, नरपति नाल्ह, जायसी इत्यादि सूफ़ी कवियों मीराँ (मीरा) प्रभृति ने बारहमासे रचे हैं। निस्सन्देह विनयचन्द्र सूरि हिन्दी के आदिबारहमासाकार हैं। सम्भवतः उन्होंने बारहमासा लोकगीत-परम्परा से ग्रहण किया है जो आज तक गतिशील है। विराट् हिन्दी-क्षेत्र की अनेक विभाषाओं में बहुत-से बारहमासे बहुत-सी शैलियों में गाए जाते हैं।¹ राम के जीवन से सम्बद्ध बारहमासे अधिक मिलते हैं। विनयचन्द्र सूरि का बारहमासा भाषा एवं छन्द की दृष्टियों से आज भी तरोताजा लगता है :

फागुन वागुणि पन्न पडति । राजल दुःखि कि तरु रोयति ॥
गळि गलि विहउ काइ न मूय । भणइ विहंगल धारणि धूय ॥
अजिउ भगिउ करि सखि विम्भासि । अछइ भला वर नेमिहि पासि ॥
अनुसखि मोदक जउ नवि हुंति । छुहिय सुहाली किन रुच्चंति ॥

उक्त पंक्तियाँ शैली की दृष्टि से आज भी प्रचलित बारहमासा से मिलती-जुलती हैं :

फागुन सखि घौरैं अबीर ।
हौं कइसे घोरौं बिना रघुबीर ॥
जराँ जइसे होरी ॥
जराँ जइसे होरी, उठै जइसे लूक ।
बिरह-अग्निनि तन दीन्हों है फूँक ॥
जराँ जइसे होरी ॥

1. टकहवे फ़िल्मी गीतों में जनवरी-फरवरी इत्यादि का गुलामी से ऊभचूभ बारहमासा मिल जाएगा ।

4. रासो-काव्य

विशुद्ध संक्रान्तिकाव्य

सिद्ध-साहित्य का साधनात्मक एवं सामाजिक महत्त्व निर्विवाद है, नाथ-साहित्य का योग-शुद्धीकरण आज तक प्रभावी है, जैन-साहित्य की व्यापक सम्येदनशीलता प्रशंस्य है, किन्तु रासो-साहित्य, सामाजिक एवं साहित्यिक महत्त्व इतना अधिक रहा है कि ग्रीअर्सन, मिश्रबन्धु, शुक्ल इत्यादि आरम्भिक साहित्येतिहासकारों ने इसे सर्वोपरि महत्त्व तक प्रदान कर डाला। चारणकाल (ग्रीअर्सन, रामकुमार वर्मा इत्यादि), रासोकाल (मिश्रबन्धु) एवं वीरगाथाकाल (शुक्ल इत्यादि) नामकरण समग्रतः रासो-साहित्याधृत हैं, सिद्ध सामन्तकाल (राहुल) नामकरण अंशतः। ये सारे नाम व्यापक इतिहास-बोध की दृष्टि से एकांगी हैं, क्योंकि जिस विराट् एवं भयावह संक्रान्तिकाल ने सिद्धों, नाथों, जैनों के सिद्धान्तों एवं उनकी भाषा-शैलियों को उद्भूत-विकसित किया उसी की पराकाष्ठा रासोकारों में विवृत हुई है—इतिहासचक्र की विषम गति एवं पुरानी हिन्दी जितनी रासो-साहित्य में व्यापक रूप से दृग्गत होती है उतनी सिद्ध-साहित्य, नाथ-साहित्य एवं जैन-साहित्य में नहीं। सरहपा इत्यादि सिद्धों को केवल कुछेक विद्वान् जानते हैं, गोरखनाथ इत्यादि हठयोगियों के नाम भर शेष हैं, स्वयंभू इत्यादि की कभी-कभी और कहीं-कहीं चर्चा चल जाती है, किन्तु पृथ्वीराज चौहान, जयचन्द्र, परमाल इत्यादि जीवन्त-इतिहासपुरुष बन चुके हैं तथा आल्हा, ऊदल, मलखान इत्यादि योद्धा जन-जीवन की साँसों में घुले दिखते हैं—चन्द्रवरदायी (चंद), श्रीहर्ष (संस्कृत¹), जगनिक इत्यादि कवि कालजयी सिद्ध हुए हैं। साहित्यिक दृष्टि से समूचे संक्रान्तिकाल की सर्वश्रेष्ठ कृति (अपनी सारी अप्रामाणिकता के बावजूद) ‘पृथ्वीराजरासो’ ही है। चाहे दिल्ली का पिरथीकोट-ध्वंसावशेष (1993 ई. के वैज्ञानिक उत्खनन से भी प्रमाणित) हो या अजमेर का तारागढ़, पृथ्वीराज चौहान एक ऐतिहासिक सत्य के रूप में विद्यमान हैं। चाहे कन्नौज के खण्डहर हों या इटावा के, जयचन्द्र एक ऐतिहासिक सत्य के रूप में ‘विद्यमान’ हैं, उनकी एक बौद्ध रानी सारनाथ के धमेख-स्तूप में ‘विद्यमान’ है। चाहे महोबा के खण्डहर हों या उरई (जहाँ उनके साले कुख्यात माहिल राजा थे) के, परमाल एक ऐतिहासिक सत्य के रूप में विद्यमान हैं।

प्रमुख नायक

‘पृथ्वीराजरासो’ के नायक पृथ्वीराज चौहान (राज्यकाल 1180-92 ई.) रासो-साहित्य के प्रमुख वीर हैं, जिन्होंने 1191 ई. में प्राचीन स्थाण्वीश्वर (स्थानेश्वर) तथा परवर्ती थानेसर से चौदह मील की दूरी पर स्थित तराइन² में ग़ज़नी तथा गोर के तुर्क आक्रांता मोहम्मद गोरी³ को बहुत बुरी तरह हराया और खदेड़ दिया था। पृथ्वीराज के भाई गोविन्द राय ने स्वयं प्रहार कर म्लेच्छ आक्रांता को बुरी तरह घायल कर दिया था। पुलकेशन् द्वितीय (सातवीं सदी) के थाणे और राजा गोविन्दचन्द्र (बारहवीं सदी) ने बनारस के युद्धों में म्लेच्छ आक्रांताओं को परास्त किया था, किन्तु पृथ्वीराज की इस विजय में उनकी पराजय भीषणतर थी। राजपूतों ने “पीठ दिखाने वालों

1. नैषधीयचरितम् (किरातार्जुनीयम् एवं शिशुपालवधम् के साथ-साथ संस्कृत महाकाव्यों की ‘बृहतत्रयी’ में समाविष्ट—‘लघुत्रयी’ कालिदास कृत रघुवंशम्, कुमारसम्भवम् एवं मेघदूतम् की है) के महाकवि जिन्हें स्वयं कान्यकुब्जाधीश्वर जयचन्द्र तांबूल-सम्मानित करते थे। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ‘नैषधीयचरितचर्चा’ लिखी है। उनके ‘श्रीहर्ष का कलियुग’, ‘दिक्पालों की विरह-व्यथा’, ‘नल का दुस्तर दूतकार्य’ इत्यादि निबन्ध नितान्त पठनीय हैं तथा उन्होंने ‘दमयन्ती का चन्द्रोपालम्भ’ निबन्ध को ‘साहित्य-सन्दर्भ’ में सादर ग्रहण किया है।

2. लेन-पूल इत्यादि ने ग़लती से ‘नराइन’ दिया है।

3. मिनहाज सिराज इत्यादि पुराने मुसलमान इतिहासकारों ने मुइज्जुद्दीन साम लिखा है, कहीं-कहीं शहाबुद्दीन गोरी भी लिखा मिलता है—मोहम्मद गोरी कब और कैसे प्रचलित हुआ, यह एक प्रश्न है।

को न मारो” की मूर्खतापूर्ण युद्धनीति न अपनाई होती तो घायल गोरी को उठाकर ले जाना तक सम्भव न हो पाता। इस काल में हिन्दू राम के वालि-वध, कृष्ण-प्रेरित द्रोणवध-कर्णवध, चाणक्य-प्रेरित नन्द-वध इत्यादि की महान् तक ग्राह्य युद्धनीति को भुलाने के कारण ही पतन के ग्रास बने (आज भी कई थोथे-आदर्शवादी इस घातक नीति की तारीफ़ में मोटे-मोटे गाल बजाते मिल सकते हैं)। महान् योद्धा छत्रसाल ने पृथ्वीराज की प्रत्याख्यान ठीक ही किया है। गोर पहुँचकर सुल्तान ने स्वास्थ्यलाभ किया। 1192 ई. में उसने गज़नी से पुनः रणप्रयाण किया तथा उसी मैदान में पुनः युद्ध हुआ जो प्रलय के सदृश सवेरे से शाम तक होता रहा—राजपूतों को थका देखकर गोरी ने बारह हजार घुड़सवारों के द्वारा ताज़ा और निर्णायक प्रहार किया जिसने राजपूतों को हक्क-बक्का कर दिया तथा उनका सर्वनाश कर डाला। मिनहाज सिराज के अनुसार पृथ्वीराज बच तो निकले किन्तु सिरसूती (हरियाणा) में पकड़े और मारे डाले गए (मतांध इतिहासकार ने ‘भागने’ और ‘नरक में भेजे जाने’ की शब्दावली का प्रयोग किया है)। किन्तु कंधार (प्राचीन गांधार) में पृथ्वीराज की समाधि (जो इस प्रकार बनी है कि पथिक उस पर से होकर गुजरे—जूते उस पर पड़ते रहें) चन्द्र के पृथ्वीराज द्वारा गोरी के वध पर ध्यान दिलाती है। उनके वंशजों ने रणथम्भौर (राजस्थान) में राज्य स्थापित किया, जिनमें हम्मीर विश्वविख्यात हुए। बलिदान के कारण पृथ्वीराज अमर हैं। 7 जून 2002 को उनके 836वें जन्मदिवस पर नई दिल्ली के क़िला राय पिथौरा परिसर में उनकी भव्य प्रतिमा का उद्घाटन गृहमन्त्री लालकृष्ण आड़वाणी द्वारा किया गया।

यद्यपि प्रामाणिक इतिहास-वृत्त पृथ्वीराज और गोरी के बीच दो युद्धों को ही स्वीकार करता है तथापि डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने दो में गोरी की हार तथा तीसरे में पृथ्वीराज के पतन की सम्भावना को महत्त्व दिया है, पृथ्वीराजरासो में अनेक का वर्णन प्राप्त होता है, हिन्दू-मुसलमान सभी सत्रह या इक्कीस मानते हैं। पृथ्वीराज के पतन का एक बड़ा कारण उनकी जयचन्द्र से शत्रुता तथा दूसरा परमाल से हठपूर्वक बारम्बार युद्ध करके अपनी शक्ति को नष्ट करना रहा, तीसरा कारण गोरी की कुशल रणनीति सिद्ध हुई। यदि जयचन्द्र ने तराइपन की दूसरी लड़ाई में पृथ्वीराज-याचित सहायता प्रदान की होती तो गोरी पुनः परास्त हो जाता क्योंकि न तो वह बर्बर लुटेरे महमूद गज़नवी (मृत्यु 1031 ई.) के सदृश दुर्दान्त योद्धा था और उसके सदृश ‘जिहाद’ के नाम पर मोहम्मदीयत का शोषणकर्ता। उसने अपने सिक्के पर लक्ष्मी की मूर्ति उत्कीर्ण कराई थी तथा देवनागरी लिपि का प्रयोग किया था। दिल्ली इत्यादि में देवनागरी के आरम्भिक प्रयोग पृथ्वीराज ने कराए थे। गोरी ने अनुकरण किया। वैसे, देवनागरी लिपि के ताम्र एवं प्रस्तर प्रयोग दसवीं सदी ई. से मिलते आ रहे हैं।

जयचन्द्र (राज्यकाल 1170-94 ई.) दोआब के धनी एवं शक्तिशाली राजा थे जिनकी दो राजधानियाँ कन्नौज और बनारस में थी। जयचन्द्र के प्राचीन, प्रसिद्ध एवं सम्पन्न क्षेत्रों के नरेश होने के कारण पृथ्वीराज उनसे द्वेष रखते थे। अतः पृथ्वीराज के चारणों ने उनका बड़ा ग़लत चित्रण किया है। जयचन्द्र के गोरी को पृथ्वीराज विरुद्ध आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित करने की बात एकदम कपोल-कल्पित हैं, भट्ट-भणंत्र मात्र है। संयोगिता-कथा भी कल्पित है, यद्यपि इतनी प्रसिद्ध कि इतिहासकार डॉ. ईश्वरीप्रसाद तक उल्लेख कर डालते हैं। डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि पृथ्वीराज के पतन पर जयचन्द्र ने कन्नौज में घी के दिए जलवाए किन्तु उन्होंने इसका कोई आधार नहीं बतलाया। इतना अवश्य सत्य है कि जयचन्द्र ने तराइन की दूसरी लड़ाई में पृथ्वीराज की सहायता न करके अदूरदर्शिता का वह परिचय दिया जिसका परिणाम 1194 ई. में इटावा-चन्दावर के मैदान में हुआ गोरी के साथ वह निर्णायक युद्ध था जिसमें एक बाण से वे आहत एवं धराशायी हुए¹ तथा राठौर परास्त। पृथ्वीराज की पराजय ने राजपूतों के हौंसले पस्त कर दिए थे क्योंकि वह चौहान वीर अपने युग का सर्वश्रेष्ठ योद्धा थे। यदि जयचन्द्र ने गोरी को पृथ्वीराज के विरुद्ध बुलाया होता तो मुस्लिम इतिहासकार इसका उल्लेख अवश्य करते, जयचन्द्र और गोरी के सम्बन्ध अच्छे होते तथा दोनों के मध्य युद्ध असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता। जयचन्द्र वीरतापूर्वक लड़े और शहीद हुए। जो लोग उनकी तुलना मीर जाफ़र से करते हैं, वे इतिहास के ज्ञान की सूचना नहीं देते। जयचन्द्र के वंशज भी दुर्गम राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में जाकर राज्य-संस्थापन में सफल हुए। कालान्तर में जोधपुर के संस्थापक जोधाजी (जिनके पुत्र दूदाजी थे तथा पौत्र रजनजी जो मीराँ के पिता थे), बीकानेर के संस्थापक बीकाजी, मीराँ के चचेरे भाई जयमल, वीर दुर्गादास इत्यादि जैसे जयचन्द्र-वंशधरों ने इतिहास में गौरव प्राप्त किया। मालदेव, जसवन्तसिंह, अजीतसिंह इत्यादि जोधपुर-नरेश जयचन्द्र के ही वंशज थे। आज के विश्वनाथ प्रताप सिंह भी जयचन्द्र-वंशज हैं। जयचन्द्र के पितामह

1. इटावा इत्यादि में परास्त जयचन्द्र के यमुना में डूबकर आत्महत्या करने की कथा प्रचलित है। कथानक पर प्रसाद ने ‘प्रायश्चित’ नाटक लिखा है। इटावा में यमुना-तट पर जयचन्द्र के दुर्ग के ध्वंसावशेष आज भी देखे जा सकते हैं। यहाँ तुर्कों ने भी ‘वारादरी’ बनाई थी।

महाराज गोविन्दचन्द्र (राज्यकाल 1114-60 ई.) ने बंगाल के नरेश से सफल युद्ध लड़ा था, तुर्कों को परास्त कर बनारस से खदेड़ा था, सुदूर दक्षिण के चोल-नरेशों तक से मैत्री स्थापित की थी। उनका राज्य पश्चिमी विहार तक प्रसरित था। गोविन्दचन्द्र राठौर-इतिहास के सर्वश्रेष्ठ योद्धा भी हैं, राजा भी। लुटेरे महमूद गज़नवी के भांजे सालार मसऊद ग़ाज़ी (जो बहराइच के पास पयागपुर में श्रावस्ती के राजा सुहदेव या सुहेलदेव या सुहलदेव के नेतृत्व में लड़े गए भीषण युद्ध में 14 जून, 1033 को अपने सैफुद्दीन जैसे सहयोगियों तथा अपनी सारी सेना के साथ मारा गया) से लड़नेवाले इसी वंश के प्रतापी राजा गोविन्दचन्द्र (जिन्होंने 'तुरुष्क-दण्ड'¹ लगाकर 'जाज़िया' का करारा जवाब दिया था) इन गोविन्दचन्द्र से भिन्न लगते हैं। इनके पुत्र विजयचन्द्र (राज्यकाल 1160-70 ई.) भी एक सफल राजा थे।

1192 ई. में तराइन की दूसरी लड़ाई में पृथ्वीराज को सहयोग न देना जयचन्द्र की ऐसी भारी भूल थी जिसके कारण चौहान राजाओं एवं उनके चारणों द्वारा जयचन्द्र को देशद्रोही घोषित किया जाना जनता को ग्रहणयोग्य लग सका। किन्तु जयचन्द्र की इस भूल का कारण हिन्दुओं में एकता का वह दुर्भाग्यपूर्ण अभाव है जो आज भी देखा जा सकता है। इसे देशद्रोह कहना इतिहास-बोध की अवहेलना करना होगा। जिस समय (1000-26 ई. के बीच) बर्बर लुटेरा महमूद गज़नवी उत्तर भारत के अनेक अंचलों एवं गुजरात को रौंद-रौंद कर लूट रहा था उस समय मालवा के प्रतापी राजा भोज (राज्यकाल 997-1052 ई.) एवं दक्षिण के प्रतापी सम्राट् राजाराज महान्² (राज्यकाल 985-1014 ई.) एवं इनके पितृवत्-प्रतापी पुत्र सम्राट् राजेन्द्र प्रथम³ (राज्यकाल 1014-44 ई.) क्या कर रहे थे? भोज अपने राज्य-प्रस्तार में व्यस्त थे। राजाराज महान् ने लंका जीती, राजेन्द्र प्रथम ने ब्रह्मा (बमी) तथा स्वर्णद्वीप (सुमात्रा) पर चोल-ध्वजा फहराई। किन्तु उन्हें महमूद गज़नवी के आक्रमणों की तनिक भी चिन्ता न थी। केवल भोज का सहयोग मिल जाता तो राजा जयपाल भी भीमदेव तो महमूद गज़नवी को हरा ही लेते। इतिहास साक्षी है कि महमूद गज़नवी को चन्देल राजा से सन्धि करनी पड़ी थी जिसने उसे 'बुत-फ़रोख्त' बना डाला था : खजुराहो साक्षी है! तथा भीमदेव ने उसके छक्के छुड़ा दिए थे—सोमनाथ-ध्वंस के बाद उसने भारत पर नए आक्रमण का साहस न जुटा पाया था। महान् गुजराती उपन्यासकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने 'जय सोमनाथ' में इतिहास-बोध का प्रभावी परिचय दिया है, जिसे हिन्दी-उपन्यासकार चतुरसेन शास्त्री ने अपने 'जय सोमनाथ' में अतिरंजित कर डाला है। भोज ने तो महमूद गज़नवी के हिन्दूनाश की उपेक्षा ही की, राजेन्द्र प्रथम की सेनाओं ने उसके द्वारा रौंदी और लूटे कुछ क्षेत्रों को अपना आखेट तक बनाया—मरे को मारें शाह मदार! अतः जयचन्द्र की एक व्यक्तिबद्ध निन्दा अनुचित भी है, निराधार भी। यह भारत का दुर्भाग्य रहा है कि यहाँ राष्ट्रीय एकता प्रायः कभी नहीं रही। आंधी (आंधीक) ने यवन सिकन्दर और बौद्धों ने म्लेच्छ मोहम्मद बिन-क़ासिम को सहयोग दिया। यदि तिलक लुटेरे महमूद गज़नवी का सेवक बना तो जयसिंह और जसवन्तसिंह मतान्ध औरंगज़ेब के, मीर जाफ़र अंग्रेज़ों से जा मिला, निज़ाम ने टीपू के पतन में अंग्रेज़ों का साथ दिया, 1857 ई. में सिखों-गोरखों-दक्षिणात्यों ने अपने ही देशवासियों के हत्याकाण्डों में भाग लिया, 1962 ई. में साम्यवादियों ने चीन की वकालत की, 1988 ई. में दिल्ली की जामा मस्जिद के पिछले और वर्तमान इमाम अब्दुला बुखारी और 'अहमद बुखारी' पाकिस्तान के पक्षधर बनकर कश्मीर में भाषण देते रहे—ये तो थोड़े से उदाहरण मात्र हैं। जयचन्द्र इन सबसे भिन्न थे। उन्होंने गोरी से लड़कर वीरगति प्राप्त की। उनको देशद्रोही कहना उचित नहीं।

महोबा के राजा परमाल (परमार, परमर्दिन्, परमर्दिदेव) का रासो-साहित्य में एक निश्चित स्थान है। वे चन्देल थे। इस वंश के प्रथम प्रतापी राजा यशोवर्मन्⁴ (दसवीं सदी का पूर्वार्द्ध) थे जिनके प्रतापी पुत्र धंग (950-1000 ई.) ने चन्देल-राज्य को एक ओर नर्मदा तक प्रसरित किया, दूसरी ओर यमुना तक तथा बनारस भी जीत लिया। वे सुबुक्ताग्रीन के विरुद्ध जयपाल के पक्ष में लड़ने सुदूर पश्चिमोत्तर क्षेत्रों तक गए, यद्यपि सफल न हुए। खजुराहो (खजुराहो) के समग्र विश्व में अद्वितीय मन्दिरों के एक निर्माणकर्ता वे भी थे जिनके अनेक पूर्वज-विकसित कार्य को उनके पुत्र गंड ने भी आगे बढ़ाया। 1022 ई. में गंड ने महमूद गज़नवी से सन्धि करके कालिंजर (सम्प्रति ज़िला बाँदा, उ. प्र. में) तो समर्पित किया किन्तु उसे 'बुत-फ़रोख्त' बनाके खजुराहो को बचाया भी। कीर्तिवर्मन् (1065-1100 ई.) ने चन्देल-गौरव को गतिशील बनाए रखा। मदनवर्मन् (1128-1165 ई.) इस वंश के एक अन्य प्रतापी राजा हुए। परमाल (1965-1205 ई.) चन्देल-वंश के अन्तिम प्रभावी राजा थे, यद्यपि यह उनके बाद भी चलता रहा तथा अब भी सोनभद्र, बाँदा,

1. 'क्या कहती सरयू-धारा?' (प्रतापनारायण मिश्र, 1987 ई.) पृष्ठ 40-41। संघवादी दृष्टिकोण के बावजूद उल्लेख्य।

2. राजाराज द ग्रेट।

3. राजेन्द्र चोल।

4. कान्यकुब्जधीश्वर सम्राट् यशोवर्मन् (आठवीं सदी का पूर्वार्द्ध) से स्पष्टतः भिन्न।

जालौन, कानपुर इत्यादि जनपदों में वंशज विद्यमान हैं; धुर पूर्वोत्तर के चन्देल और सेनापति जैसे जनपद चन्देलों और उनकी वीरता के स्मारक हैं, जिन पर शोध अपेक्षित है। ठाकुर गदाधर सिंह, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, डॉ. भानुप्रताप सिंह, युवा कवि विद्वान् श्री जितेन्द्र कुमार सिंह जैसे साहित्यकार चन्देल ही हैं। परमाल पर पृथ्वीराज ने लगातार आक्रमण किए तथा 1182 ई. में वे बुरी तरह हारे। इस युद्ध में प्रसिद्ध वीर ऊदल खेत रहे। किन्तु परमाल वच निकले तथा कुछ समय बाद पुनः राज्य-संस्थापन कर लिया। 1205 ई. में मोहम्मद गोरी के गुलाम और निस्सन्तान गोरी के मारे जाने पर गुलाम-वंश के संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक ने चन्देल-राज्य जीत लिया। सम्भवतः परमाल भी इस युद्ध में मारे गए।

परमाल के सामन्तों में बनावर-राजपूत आल्हा-ऊदल एवं उनके पितृव्य-पुत्र मलखान की ख्याति अब तक बरकरार है जिसका प्रमुख कारण परमाल के योद्धा-राजकवि जगनिक (जगनायक) कृत वह वीरकाव्य है जो आल्हाखण्ड या आल्हा कहलाता है तथा आ. श्यामसुन्दरदास ने जिसे परमालरासो का उचित अभिधान प्रदान किया है। बनावर-राजपूत अब भी बाँदा, महोबा, जालौन इत्यादि अंचलों में विद्यमान हैं। ऐसा लगता है कि 'वनफल'-आश्रित आदिवासी वीरता के कारण ठाकुर (राजपूत) माने गए (आल्हाखण्ड में इन्हें 'ओछी जाति' कहा गया है)। 'परमालरासो' का मूल रूप अप्राप्त है किन्तु जिन-जिन प्रक्षिप्त-अंश बहुल रूपों में इसका गायन होता है उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमाल स्वयं बहुत बड़े योद्धा या नायक न होकर एक शान्तिप्रिय एवं कुशल राजनीतिज्ञ थे, जिनकी कीर्ति का आधार उनके सामन्त आल्हा, ऊदल, मलखान और राजकवि जगनिक (जगनायक) रहे। ऐसा लगता है कि कन्नौज के राजा जयचन्द्र से परमाल के अच्छे सम्बन्ध थे। ऊदल के मित्र लाखन पृथ्वीराज के विरुद्ध युद्ध में वीरगति पाने वालों में प्रमुख थे। परमालरासो के अनुसार लाखन बेन चक्कवै (वेणु चक्रवर्ती राजा) के पौत्र तथा रतीभान (रतिभानु) के पुत्र थे जिन्हें जयचन्द्र ने गोद ले लिया था।¹ पृथ्वीराज के हठपूर्वक परमाल के पीछे पड़ने का एक कारण परमाल की जयचन्द्र से मैत्री भी थी। इस हठ के कारण पृथ्वीराज ने अपनी शक्ति नाहक ही क्षीण की। 1182 ई. के युद्ध में परमाल हारे तो किन्तु यह युद्ध निर्णायक सिद्ध न हो सका, क्योंकि परमाल ने पुनः राजपद ग्रहण किया तथा उनकी अन्तिम एवं निर्णायक पराजय कुतुबुद्दीन ऐबक से हुए युद्ध (1205 ई.) में ही हो पाई। 'पृथ्वीराजरासो' में महोबा (महुब्या) की विजय का वर्णन प्राप्त होता है जो अंशतः प्रात्ययिक ही है। परमालरासो के अन्त में भी इसका संकेत स्पष्ट है। यद्यपि उसकी अतिरंजना के अनुसार एक पक्ष आल्हा और उनके पुत्र इंदल तथा दूसरे में पिरथी (पृथ्वीराज) और चन्द भाट (चन्द्रवरदायी) मात्र शेष बचे—सम्प्रति यह वर्णन इस दृष्टि से अधिक सार्थक है कि पराजय के बावजूद भविष्य में परमाल ने पुनः राज्य स्थापित कर लिया।

रासो-साहित्य के इतिहास-पुरुषों में हमीर को एक महान् स्थान प्राप्त है। 1299 ई. में हमीर ने सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी के सेनापति उलूखाखान एवं नुसरतखान को परास्त किया। इस युद्ध में नुसरतखान मारा गया और उलूखाखान जान बचाकर भाग निकला। यह एक बहुत बड़ी विजय थी। इससे उत्तेजित होकर अलाउद्दीन खुद रणथम्भौर पर चढ़ आया। लम्बी घेरेबन्दी के बाद जुलाई, 1301 ई. में हमीर ने वीरगति पाई। हमीर के एक मंगोल सेनापति मीर मोहम्मद शाह को अलाउद्दीन ने मोहम्मदीयत के नाम पर जीवनदान देना चाहा किन्तु उसके यह कहने पर कि यदि मैं घावों से उबरकर बच गया तो अपने स्वामी हमीरदेव के पुत्र को सिंहासनारूढ़ करूँगा, हाथी के पैरों तले कुचलवा मारा। बाद में इसका हृदय पिघला और उसने सम्मानपूर्ण अन्त्येष्टि की व्यवस्था कराई। अमीर-खुसरो ने 'तारीखे-अलाई' में इस युद्ध के अन्त में भयानक नैश 'जौहर'- एवं तदन्तर अवशिष्ट राजपूतों के अल्पसंख्या में होने पर भी प्रचण्ड बलिदान का वर्णन किया है। रणथम्भौर में आज भी हमीर एवं अलाउद्दीन के भवन-निर्माण-ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। जज्जल कृत हमीर के शौर्यानु रूप छन्द अमर हैं। शार्ङ्गधर कृत अनुपलब्ध 'हमीररासो' की चर्चा भी हुई है। आ. शुक्ल ने लक्ष्मीधर सम्पादित 'प्राकृत-पैंगलम्' में प्राप्त जज्जल कृत छन्दों को भ्रमवश हमीररासो से सम्बद्ध कर दिया है। कालान्तर (सम्भवतः पन्द्रहवीं सदी) में नयचन्द्र सूरि ने संस्कृत में हमीर-महाकाव्य रचा। नीलकण्ठ जनार्दन कीर्तने ने इसका सम्पादन किया जो सम्भवतः 1880 ई. में प्रकाशित हुआ। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जून 1924 में 'हमीर-महाकाव्य' शीर्षक एक सुन्दर एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित कराया जो उनके 'साहित्य-सन्दर्भ' ग्रन्थ में संगृहीत है। चतुर्दशसर्गीय हमीर-महाकाव्य में चाहमान से हमीर तक अड़तीस चौहान-नरेशों का वर्णन है, जिनमें पृथ्वीराज भी सम्मिलित हैं। दसवें-ग्यारहवें-बारहवें सर्गों में क्रमशः उलूखाखान से युद्ध, निसुरतखाँ (नुसरतखान)—वध एवं

1. "बेन चक्कवै को नाती हौं बेटा रतीभान को लाल", "जयचन्द्र ने लिया गोद बिठाल", "लाखन राना गढ़ कनउज को नाती बेन चक्कवै क्यार" इत्यादि से स्पष्ट। लाखन को 'कनउजी' और 'कनउजीराय' भी कहा गया है।

अलादउद्दीन से द्विदिवसीय युद्ध के वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। इस महाकाव्य में मंगोल सरदार महिमाशाह को शरण देना युद्ध का कारण बतलाया गया है। महिमाशाह का चित्रण अतीव मर्मस्पर्शी है। महाकाव्य में श्लेष-चमत्कार की कीर्तने महाशय ने प्रत्यालोचना की है, जिसका अत्यन्त सतर्क खण्डन संस्कृत के गम्भीर विद्वान् आ. द्विवेदी ने ठीक ही किया है। ब्रजभाषा में जोधराज कृत 'हम्मीररासो', ग्वाल कवि कृत 'हम्मीरहठ' एवं चन्द्रशेखर वाजपेयी कृत 'हम्मीरहठ' नामक तीन उत्कृष्ट काव्य प्राप्त होते हैं। इस प्रकार, अपनी अद्वितीय शरणागतवत्सलता, श्लेच्छ-पराभवकारी वीरता, अन्ततः वीरगति इत्यादि के कारण इतिहास-पुरुष हम्मीर साहित्य के एक महान् धीरोदात्त नायक के रूप में भी अजर-अमर हैं।

मोहम्मदीयत और मोहम्मदी हमले

अरब शब्द का अर्थ है, गाँव या गाँवार। जब अरब—दबदबा घटा और तुर्क छा गए तब अरब-जन मज़हबी-गौरव से लाभ उठाते हुए भिक्षाटन में प्रवृत्त हुए; तेलुगू में अरब शब्द का एक अर्थ भिखारी होता है, दिल्ली में उनके लिए 'अरब की सराय' थी। मिस्त्र, इस्माइल, जॉर्डन इत्यादि की तुलना में प्राचीन अरब वेहद पिछड़ा था। विदेशी आक्रांता यहाँ न ज़र पाते न ज़न न ज़मीन। जलवायु भी मारक। ओखली में सर कौन डालता? किन्तु मोहम्मद ने अरब को एक शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया। उमर ने अरबों को तब का विश्वविजेता बनाया। भारत कैसे बचता?

632 ई. में मोहम्मद के मरने के बाद ही अरब जलदस्युओं ने भारत पर आक्रमण किया किन्तु प्रतापी पुलकेशिन् द्वितीय ने उन्हें थाणे के समीप हराकर समुद्र में धकेल दिया, 712 ई. में सिन्ध पर मोहम्मद बिन-कासिम¹ ने वहाँ के ब्राह्मण राजा दाहिर को परास्त कर अरब-सत्ता स्थापित की, जो खलीफ़ा द्वारा उसे मृत्युदण्ड दिए जाने के कारण अल्पप्रभावी सिद्ध हुई किन्तु जिसके परिणाम दूरगामी हुए 1000-26 ई. के बीच गुलाम से सुल्तान बने तुर्क सुबुक्तगीन के बड़े बेटे सुल्तान महमूद गज़नवी² ने उत्तर-पश्चिम भारत पर लूट-भरे आक्रमण किए तथा लाहौर तक के क्षेत्र अपने साम्राज्य में मिला लिए³ किन्तु उसका दुष्प्रभाव राजनैतिक दृष्टि से विशेष प्रभावी सिद्ध न हो पाया, तथापि इन सबसे भारत क्रमशः मोहम्मदीयत के सम्पर्क में आता गया तथा मुईनुद्दीन चिश्ती (1141-1236 ई.) जैसे मोहम्मदीयत-प्रचारक एवं धर्मपरिवर्तनकर्ता 1192 ई. मोहम्मद गोरी के दिल्ली पर आधिपत्य⁴ से पूर्व ही अजमेर जैसे देश के अंदरूनी भागों में आ जमे थे जिनकी परम्परा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी (मृत्यु 1236 ई.), निज़ामुद्दीन औलिया (1238-1325 ई.) इत्यादि-इत्यादि तक दृग्गत होती है—अभिप्राय यह है कि दिल्ली पर मुसलमानी क़ब्ज़े से पहले ही मोहम्मदीयत हमलावरों की तलवार और फ़कीरों के प्रचार के दोहरे माध्यमों से भारत में आ चुकी थी।

भारत और मोहम्मदी राज्य

भारत पर मुसलमानों का पहला सफल आक्रमण 712 ई. में मोहम्मद बिन-कासिम के नेतृत्व में सिन्ध पर हुआ, जिसमें देवल (कराची) के युद्ध में ब्राह्मण राजा दाहिर शहीद हुआ। अली अल-कूपी द्वारा 1216 ई. में प्रस्तुत फ़ारसी-ग्रन्थ 'चाचनामा' (चचनामा) एवं पूर्ववर्ती यहिया अल-बलंधरी द्वारा 892 ई. में प्रस्तुत अरबी-ग्रन्थ 'फुतूहअल-बुल्दान' में इस आक्रमण का वृत्त प्राप्त होता है। एक

1. प्रख्यात इतिहासकार डॉ. आशीर्वादिलाल श्रीवास्तव ने 712 ई. के मोहम्मद बिन-कासिम के सिन्ध पर आक्रमण को पाकिस्तान का मूल कारण ठीक ही माना है। रामशरण शर्मा जैसे प्रतिबद्ध साम्यवादी इतिहासकारों का इस पर खेद भी स्वाभाविक है। यह भी संयोग से अधिक सत्य है कि पाकिस्तान के निर्माता मोहम्मदअली जिन्ना, कश्मीर के लिए भारत से 1000 साल तक युद्ध का प्रण करनेवाले जुलिफ़्कारअली भुट्टो और उनकी पुत्री बेनज़ीर भुट्टो तीनों ही जन्मना सिन्धी रहे।
2. फ़िरदौसी (932-1020 ई.) ने महमूद गज़नवी के निम्नकुलोद्भव-निम्नरुचिमय होने तथा उसकी निम्नस्तरीय माता पर व्यंग्य किए थे। (हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, डॉ. ईश्वरीप्रसाद, पृष्ठ 222)।
3. लगभग हजार साल बाद 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान की सीमा यहीं तक बनी।
4. लगभग 635 ई. से आरम्भ असफल एवं अर्द्धसफल आक्रमणों की परिणति 1192 ई. के सफल आक्रमण में हुई, जब दिल्ली पर मोहम्मद गोरी का क़ब्ज़ा हुआ—मोहम्मदीयत को भारत पर वस्तुतः प्रभावी होने में लगभग 8 शताब्दियाँ लगीं; और यह प्रभाव सदैव अपूर्ण ही रहा क्योंकि कोई वंश पूरे भारत पर कभी आधिपत्य स्थापित नहीं कर सका। (पूर्णतः स्वतन्त्र हिन्दू-राज्य भी सदैव रहे, अंशतः स्वतन्त्र हिन्दू-राज्य भी सदैव रहे) लगभग 6 शताब्दियों के अनवरत संघर्ष के बाद, पाकिस्तान बनने में 6 शताब्दियों से भी अधिक समय लगा।

धारणा यह भी है कि राजकुमारियों को दमिश्क के खलीफ़ा के भोगविलास के लिए वहाँ भेजा, हिन्दुओं का क़त्ले-आम किया, भारी संख्या में बन्दी गुलाम बनाए और रावर नगर को धरा-ध्वस्त कर दिया। मोहम्मद बिन-क़ासिम को 'किशोर महमूद ग़ज़नवी' कहा जा सकता है—वह सचमुच अठारह साल का लड़का था। आक्रांता ने ब्राह्मणाबाद, मुल्तान इत्यादि भी जीते। 'चाचनामा' के अनुसार, जिन्होंने मोहम्मदीयत स्वीकार की वे करमुक्त रखे गए, शेष को आर्थिक स्थिति के अनुरूप 48, 24 और 12 दिरहम की मात्रा में चाँदी की 'जज़िया' देनी पड़ी। बलात् धर्मपरिवर्तन नहीं किया गया। हिन्दुओं को जज़िया देने पर धार्मिक स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया गया। ब्राह्मणों का आदर किया गया। अनेक हिन्दू-जनवर्गों के अश्वारोहण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। बौद्ध-प्रवर्तित अस्पृश्यता में नया जातिवाद इस्लाम ने जोड़ा। तीन दिनों और तीन रातों तक किसी भी मुसलमान का अतिथि-सत्कार हिन्दुओं का वैधानिक दायित्व बना दिया गया। इस अवधि में अतिथि कुकर्मों के लिए स्वतन्त्र था। फिर भी, परवर्ती तुर्क-आक्रमणों को देखते हुए अरबों का यह व्यवहार कुछ नरम ही था। किन्तु एक तो मोहम्मद बिन-क़ासिम को उसके इस आक्रमण में यौन तथा अन्य अपराधों के कारण स्वयं खलीफ़ा ने बैल के कच्चे चमड़े में सिलवा दिया जिसमें (मीर मासूम के शब्दों में) तीन दिन तड़फने के बाद उसके प्राण-पक्षी अनन्त में उड़ गए, दूसरे सिन्ध के अलाभकर मरुस्थल होने के कारण इधर ध्यान न दिया गया; अतः यह विजय, लेन-पूल के शब्दों में "परिणामहीन उत्कर्ष" (ए ट्रांफ़ विदोउट रिजल्ट्स) सिद्ध हुई। इस स्थिति में पाकिस्तान के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मरहूम जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो की पुस्तिका 'द ग्रेट ट्रेजेडी' (सितम्बर 1971) में मोहम्मद बिन-क़ासिम को पाकिस्तान के आरम्भ से सम्पृक्त करने की स्थापना तथा भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्व. राजीव गांधी की जून, 1988 की दमिश्क-यात्रा पर मोहम्मद बिन-क़ासिम को 'भारत में इस्लाम का अग्रदूत' (हार्बिजर ऑफ़ इस्लाम इन इण्डिया)¹ कहने की श्रद्धा-सुमनांजलि विशेष युक्तियुक्त नहीं लगती। किन्तु इससे भारत-अरब सांस्कृतिक सम्बन्धों को नए आयाम प्राप्त हुए। अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) 'नुह सिपहर' में अरब ज्योतिषी अबू माशर के भारत में दस वर्ष रहने तथा यहाँ के विद्यानगर काशी में विद्यालाभ करने, हिन्दी के आसा नामक ब्राह्मण द्वारा अंकगणित (अरिथेमेटिक) को अरब ले जाने तथा कृतज्ञ अरबों द्वारा इस विद्या के हिन्दुस² (हिन्द के 'आसा' द्वारा लाई गई विद्या) नामकरण इत्यादि की चर्चा की है। 'हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया' में डॉ. ईश्वरीप्रसाद (1888-1986 ई.) ने अरब जिज्ञासुओं के ब्राह्मण एवं बौद्ध विद्वानों के चरणों में बैठ ज्ञानार्जन करने, 771 ई. में खलीफ़ा मंसूर के शासनकाल में अंकगणित-बीजगणित-रेखागणित (मैथेमैटिक्स) के संवहन, खलीफ़ा हारून अल रशीद (खिलाफ़त काल 786-803 ई.) के भारतीय आयुर्विज्ञानवेत्ता माणिक्य द्वारा रोगमुक्त किए जाने, अरबों को भारतीयों से शतरंज सीखने³, कुरान के संस्कृत में अनूदित किए जाने इत्यादि की चर्चा की है। डॉ. मांतीचन्द्र ने 'पंचतन्त्र' की अरब-यात्रा का उल्लेख किया है। अरबों ने स्थापत्यकला, चित्रकला, संगीतकला, तर्कशास्त्र, रसायनशास्त्र इत्यादि हिन्दुओं से सीखा। हैवेल तक ने स्वीकार किया है कि अरबों को अत्यन्त प्राचीन काल में प्रथम प्रेरणा भारत से मिली-यूनान से भी पहले वे भारत से प्रभावित हुए। तत्कालीन व्यापकतम विजेता अरबों ने तत्कालीन पोपलीला-ध्वस्त पश्चिम को भारत-गृहीत गणितत्रयी, रसायनशास्त्र, ज्योतिष, शतरंज इत्यादि से परिचित कराके परोक्ष रूप से भारत का गौरव बढ़ाया।

अरब ने मोहम्मदीयत का उद्भव एवं विकास किया था। वे अपने समय के व्यापकतम विजेता थे। तुर्कों ने उनकी गुलामी की थी। अरबों के पतन के बाद तुर्क बलवतर हो गए। गुलामी से सुल्तानी तक के अनुभवों से दग्ध सुबुक्तागीन (सत्ताकाल 976-997 ई.) भारत पर प्रथम तुर्क आक्रांता था जिसने सरहिन्द से लमगान तथा कश्मीर से मुल्तान तक के अधिपति शाही-वंश के राजा जयपाल को परास्त कर अपार धनलाभ तो प्राप्त किया ही, उसके अनेक नगर भी अपने राज्य में मिला लिए। उसका पुत्र महमूद ग़ज़नवी (भारत पर आक्रमण-काल 1000-1026 ई.) अपने-आप को 'जिहाद' का प्रतीक गाज़ी मानता था। उसने मोहम्मदीयत के नाम पर भारत पर सत्ताईस वर्षों में सत्रह लूट-भरे आक्रमण किए, मथुरा और सोमनाथ समेत शत-शत मन्दिर ध्वस्त किए, लाखों मूर्तियाँ तोड़ीं, लाखों लोगों को गुलाम बनाकर ग़ज़नी ले गया (जो बाद में जिप्सी या रोमा कहलाए) और 'तुर्क' शब्द को आतंक एवं घृणा का प्रतीक बना

1. द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया (न्यू डेहली), 14-6-1988, पृष्ठ 4 (मेट्रो वन) राजीव की 'ईसाई पृष्ठभूमि' (क्रिश्चियन बैकग्राउंड) को इसका कारण माना गया है। इसी समाचारपत्र के 20 जून अंक में श्री जयंत पटेल के पत्र (पृष्ठ 6) में राजनीति के "इतने निम्न स्तर तक गिरने" (स्टूप सो लो) की भर्त्सना छपी है। यह भी सत्य है कि मरहूम जी.ए. सईद और उनके 'जिए सिन्ध' आन्दोलन के समर्थक दाहिर को अपना राजा और मोहम्मद बिन-क़ासिम को विदेशी-आक्रांता मानते रहे हैं।

2. खुसरो के अनुसार, यूनानियों ने भी यह विद्या भारत के ब्राह्मणों से ही सीखी थी।

3. फ़िरदौसी ने 'शाहनामा' में लिखा है कि शतरंज भारत से ईरान नौशेरवान-ए-आदिल के ज़माने में पहुँचा।

दिया। “तुरुक से भुरुक तो होंगे नहीं”! ‘अलबेरूनी का भारत’ (सम्पादित-अनूदित) से मोहम्मद हबीब के ‘सुल्तान महमूद ऑफ़ गज़नी’ ग्रन्थों में महमूद गज़नवी का भारत-सम्बन्धी वृत्त उपलब्ध है। अलबेरूनी (जन्म 973 ई.) का असली नाम अबू रिहान था जो आज के खीवा क्षेत्र का निवासी था। 1017 ई. में महमूद गज़नवी ने खीवा जीता और इसे गुलाम बना लिया। वह महमूद गज़नवी के साथ भारत आया और कुछ समय यहाँ रुका। उसने कश्मीर, सिन्ध, मालवा, गुजरात, कन्नौज और बंगाल के महत्त्वपूर्ण राज्यों का उल्लेख किया है। उसने बाल-विवाह, विधवा-अविवाह, सती-प्रथा, अतिसम्पन्न मन्दिरों (जो मुस्लिम विजेताओं को लूट के लिए आकृष्ट करते थे), ब्राह्मण-सम्मान, न्याय-व्यवस्था, कराधान, हिन्दुओं की कूपमण्डूकता (अपने अतिरिक्त किसी को भी सभ्य या सम्पन्न न मानना) इत्यादि का प्रात्ययिक वर्णन किया है तथा उपनिषद् के अद्वैतवाद की प्रशंसा की है। आश्चर्य है कि ग्यारहवीं सदी का अलबेरूनी वस्तुपरक है तथा बीसवीं सदी के मोहम्मद हबीब साम्प्रदायिक¹ जो महमूद गज़नवी को भारत का उद्धारकर्ता मानते हैं। मोहम्मद हबीब सोमनाथ के पुजारियों के महमूद गज़नवी से मूर्ति न तोड़ने पर अपार धन देने के आग्रह तथा आक्रांता के “मूर्तिवेचक नहीं अपितु मूर्तिभंजक” गौरव की परवर्ती कल्पना को बहुत महत्त्व देते हैं, जिसका उल्लेख अलबेरूनी ने नहीं किया, किसी समसामयिक इतिहासकार ने नहीं किया। डॉ. ईश्वरीप्रसाद इस कथा को कथा ही मानते हैं अल बेरूनी के अनुसार, सोमनाथ का लिंगम् ठोस सोने का था, अतः परवर्ती इतिहासकार फ़िरिश्ता (सोलहवीं सदी—अहमदनगर के निज़ामशाह का आश्रित) का उसे पोला एवं रत्नभरित मानना ग़लत है। कालिंजर में खजुराहो-सन्दर्भी वृत्तफ़रोख़ा (मुझे कालिंजर में आधिपत्य का एक लक्षण भी नहीं मिला) और सोमनाथ वृत्तशिकन दोनों ही महमूद गज़नवी ने भारत को लूटा ही नहीं, उसके लाहौर तक के क्षेत्र भी गज़नी के साम्राज्य में मिला दिए। 1173 ई. में गौर के आक्रांताओं ने गज़नी पर अधिकार कर लिया। अतएव, गज़नवी का प्रभाव भी व्यापक एवं स्थायी न हो सका। किन्तु संस्कृत का जादू इसके सर पर भी चढ़ा, क्योंकि इसने सिक्के पर कलमा संस्कृत में उत्कीर्ण कराया था।

भारत में मुसलमान-सत्ता की व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्थापना करने का श्रेय मुइज्जुद्दीन साम को है जिसे सभी मोहम्मद गोरी (हत्या मार्च, 1206 ई. में) के नाम से जानते हैं तथा पृथ्वीराजरासो में जिसका नाम शहाबुद्दीन दिया है। महमूद गज़नवी की समता का योद्धा न होते हुए भी² मोहम्मद गोरी एक दृढ़निश्चयी वीर था। 1192 ई. में इसने दिल्ली पर मुस्लिम झण्डा लहराया जो इस या उस रूप में 1857 ई. तक लहराता रहा।

सारा भारत कभी परतन्त्र नहीं हुआ। कभी उसके कुछ भाग परतन्त्र हुए, कभी बहुत, किन्तु अनेक भाग फिर भी स्वतन्त्र रहे। सिकन्दर को थोड़े भारत पर ही विजय मिली (जो अब पाकिस्तान में है), महमूद गज़नवी को कुछ अधिक, मोहम्मद गोरी को उससे अधिक पर प्रायः कश्मीर-रहित बंगाल तक। अलाउद्दीन खिल्जी दक्षिण में घुसा, मोहम्मद तुग़लक़ ने भी दक्षिण के कुछ भागों पर क़ब्ज़ा जमाएँ रखा, यही हाल अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का रहा। इससे सिद्ध है कि भारत का इतिहास संघर्षों का इतिहास है, पराजयों का नहीं। मिस्र, ईराक, ईरान, इन्डोनेसिया इत्यादि एक-एक झिटके में ही ढह गए किन्तु भारत ने शत-शत आघात सहे और खड़ा रहा।

महमूद गज़नवी की ताण्डवलीला अकेली न थी। मोहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज के मूलस्थान अजमेर में हजारों हिन्दुओं का क़त्लेआम कराया, बनारस में मन्दिरों को गिरवाकर उन्हीं जगहों पर मस्जिदें बनावाईं। गोरी के कुरूप किन्तु निष्ठावान गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक़ (मृत्यु 1210 ई.) ने दिल्ली (महरोली) के सत्ताइस हिन्दू-जैन मन्दिर ध्वस्त करके उन्हीं के स्थानों पर उन्हीं की सामग्री से जामा मस्जिद (कुव्वत-उल्-इस्लाम मस्जिद) बनवाई। गोरी के एक सेनापति, ऐबक़-अधीनस्थ मोहम्मद बिन बख़्तियार खिल्जी (मृत्यु 1205 ई. या 1206 ई.) ने विश्वविख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय को ध्वस्त किया—नालन्दा छह महीने जलता रहा—और उसके बिहार-बंगाल अभियान में एक लाख तो सिर्फ़ ब्राह्मण मारे गए! ऐबक़ के खूबसूरत गुलाम इल्तुमिश (राज्यकाल 1210-35 ई.) ने ‘ताबकाते-नासिरी’³ के समसामयिक

1. इधर इरफ़ान हबीब महमूद गज़नवी और शिवाजी में कोई मूलभूत अन्तर न मानकर साम्यवाद का परिचय देते हैं। गज़नवी मन्दिर-विध्वंसक एवं मूर्तिभंजक, शिवाजी मस्जिद-सम्मानक एवं कुरान-रक्षक! जीवन शुक्ल जैसे किसी समय के साम्यवादी कवियों के ‘सिंहद्वार’ जैसे खण्डकाव्य या अन्य रचनाओं में गज़नवी के प्रति बड़ी श्रद्धा व्यक्त की है। दूरदर्शन द्वारा 1988 ई. में प्रस्तुत ‘अमीर खुसरो’ धारावाहिक के एक अंश में औरंगज़ेब एवं शिवाजी को एक ही तराजू में तौलकर इसी वृत्ति का परिचय दिया गया है। शायद हबीब-द्वय तथा इस वर्ग के अन्य इतिहासकार (रोमिला थापर, विपिनचन्द्र, सतीशचन्द्र, रामशरण शर्मा इत्यादि) हत्या, मन्दिरध्वंस, मूर्तिभंजन इत्यादि को ‘धर्मनिरपेक्ष’ एवं ‘प्रगतिशील’ मानते हैं।
2. युद्ध तो यह नहरवाला के राजा भीमदेव से हारा, दिल्ली के महाराज पृथ्वीराज से हारा, अन्यत्र भी हारा, पर दिल नहीं हारा, अतः अन्ततः जीता जिसका परिणाम इतिहास में उच्चस्थानप्राप्ति है। गज़नवी लुटेरा था, गोरी संस्थापक।
3. नासिरुद्दीन इल्तुमिश को ही समर्पित।

इतिहासकार मिनहाज सिराज के अनुसार तीन सौ वर्षों में बने तथा एक सौ पाँच गज¹ ऊँचे भिलसा (विदिशा) के मन्दिर को ध्वस्त किया, उज्जैन के विश्वविख्यात महाकाल-मन्दिर को ध्वस्त किया तथा वहाँ से महाराज शकारि विक्रमादित्य (राज्यारोहण 57 ई. पूर्व) की मूर्ति ले आया जो दिल्ली की ऐबक-निर्मित जामा मस्जिद (महरोली) की सीढ़ियों पर डाल दी गई जिससे नमाज़ी उस पर पैर रखकर प्रवेश करने का शबाब लूटें! ऐबक, इल्तुमिश और बलबन (राज्यकाल 1266-86 ई.) जैसे बाजारों में बिके गुलामों के वंश के बाद खिल्जी वंश आया। सत्तर वर्ष के जलालुद्दीन खिल्जी (राज्यकाल 1290-96 ई.) सुल्तान बने। 'मिफ़ताहुल फ़तूह' में अमीर खुसरो ने जलालुद्दीन खिल्जी की ज़ायन-विजय का वर्णन किया है जिसमें मूर्तिभंजन-सन्दर्भ में उन्हें 'दूसरा महमूद' माना है। पीतल की भारी मूर्तियों के टुकड़े दिल्ली की मस्जिदों के द्वारों पर मुसलमानों के पददलनार्थ वितरित किए गए, जबकि स्वर्ण-प्रतिमाएँ सुल्तान के खज़ाने में पहुँचा दी गई। पहले दिन सुल्तान प्रतिमाएँ देखकर चकित रह गया लेकिन दूसरे दिन ईमान जोर मार गया। इसी ग्रन्थ के अनुसार भोजपुर (बिहार) जाते हुए एक पड़ाव में युद्धबन्धियों के साथ व्यवहार का वर्णन है—मुसलमान छोड़ दिए गए, हिन्दुओं को हाथियों के पैरों तले कुचलवा दिया गया! 'तारीख़े-फ़ीरोज़शाही' में ज़ियाउद्दीन बरनी (चौदहवीं सदी का उत्तरार्द्ध, मामूली-सी क़द्र दिल्ली में निज़ामुद्दीन औलिया के दरगाह-परिसर में अमीर खुसरो की खूबसूरत दरगाह के सामने के बरामदे से चिपकी-सी है) ने जलालुद्दीन खिल्जी की अहमद वप से हुई वार्ता में सुल्तान की हिन्दुओं की सम्पन्नता तथा उनके कुफ़ (मूर्तिपूजा) पर निरीहतामयी-विवशतामयी व्यथा व्यक्त की है जो परास्त हिन्दुओं के गौरव का द्योतन करती है। कई भोले-भाले हिन्दू-मुसलमान सुल्तानों और बादशाहों की उदारता का प्रमाण हिन्दुओं का सर्वनाश न होना मानते हैं। उन्हें यह ज्ञात नहीं कि हिन्दू परास्त तो हुआ है किन्तु अभिभूत नहीं और वह अनेकानेक युद्धों में विजेता भी रहा है यदि वे मध्यकालीन इतिहासकारों के ग्रन्थ पढ़ें तो भ्रम का निवारण हो सकता है। जलालुद्दीन खिल्जी का क़त्ल करानेवाला उसका भतीजा और दामाद निरक्षर अलाउद्दीन खिल्जी (राज्यकाल 1296-1316 ई.) था, जिसने 26 अगस्त² 1303 ई. को चित्तौड़ में तीस हजार हिन्दुओं का क़त्ल आम कराया, उसके मर्दाने हरम के गुलाम मलिक काफ़ूर ने रामेश्वरम् के महान् मन्दिर की लूट कराई और मूर्तियाँ खण्डित कराई, उसने दोआवे में पचास-प्रतिशत कर लगाया और हिन्दुओं को अश्वारोहण-निषेध इत्यादि के द्वारा दुर्बल एवं अपमानित किया। यह थीं भयानकतम संक्रान्तिकालीन परिस्थितियाँ, जिनसे हिन्दू लगातार जूझा और मोहम्मदीयत के अन्यत्र सर्वनाशी प्रहारों को झेलता हुआ भी बचने में सफल हो सका। कालान्तर में भी उसने तैमूर, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे आक्रांताओं, फ़ीरोज़ तुग़लक़ (राज्यकाल 1351-88 ई.), सिकन्दर लोदी (राज्यकाल 1488-1517 ई.) और औरंगज़ेब (राज्यकाल 1658-1707 ई.) जैसे दिल्ली-शासकों तथा काला पहाड़ (बंगाल इत्यादि), सिकन्दर बुतशिकन (कश्मीर), हैदरअली और उसके बेटे टीपू सुल्तान (मैसूर) जैसे प्रादेशिक शासकों, मोपलों (केरल), जिन्ना, लियाक़तअली, सुहरावर्दी, दाऊद इब्राहिम (तस्कर अपराधी) जैसे के ग़हार झेलकर मृत्युंजय होने का परिचय दिया है। अमर अनुसूचित जाति नेता अम्बेदकर ने मुस्लिम-हिंसावाद का जो वस्तुपरक निरूपण किया है, वह सर्वथा युक्तियुक्त है। सऊदी अरब में हिन्दुओं के साथ व्यवहार का एक निदर्शन प्रस्तुत है—30 मार्च, 1984 को एक 'क्वैनीशियन सुनील वढेरा एक यूनानी नागरिक की असावधानी के कारण दुर्घटनाग्रस्त हो गया, जिसके कारण सऊदी सरकार ने एक लाख रियाल (लगभग चार लाख रुपये) रक्तधन के रूप में वसूले, किन्तु भारतीय राजदूतावास के यत्नों के बावजूद मृत के पिता को देए नहीं। पिता ने विभिन्न प्रमाणपत्रादि पर हज़ारों व्यय किए, बेहद दौड़-धूप की। 6 जून, 1990 का शरीयत अदालत में केवल 6666.66 रियाल दिए। कारण बताया गया, "मृत व्यक्ति एक हिन्दू था!" (द हिन्दुस्तान टाइम्स, 21-7-1990, पृष्ठ 11)।

मृत्युंजय हिन्दू का संक्रान्तिकाल

पृथ्वीराज, जयचन्द्र, परमाल, हम्पीर इत्यादि पर रचित काव्य संक्रान्तिकाल के मृत्युंजय हिन्दू का संक्रान्तिकाल है, जिसमें तत्कालीन समाज की दुर्बलताओं, नायकों की कमियों इत्यादि के दर्शन भी होते हैं, हिन्दू की अपराजेयता के भी। वीरता मनुष्य का महान् गुण

1. गज आज के मीटर से कम था। तीन फुट के बराबर। फिर भी, लगभग 300 फुट ऊँचा। महानतम मन्दिर अयोध्या, मथुरा, काशी इत्यादि में थे जो बचे नहीं। किन्तु कांची, रामेश्वरम्, आबू, पुरी इत्यादि के मन्दिर उनकी कल्पना करा सकते हैं—खजुराहो और कोणार्क की कला तो विश्व भर में अतुलनीय है ही। 1150 ई. के आसपास बना पुरी का जगन्नाथ मन्दिर 198 फुट ऊँचा है जिसके गर्भगृह की दीवारों की मोटाई बत्तीस फुट है।
2. सैयद अतहर अब्बास रिज़वी द्वारा अन्यों की सहायता से प्रस्तुत 'आदि तुर्ककालीन भारत' (मिनहाज सिराज, ज़ियाउद्दीन बरनी और अमीर खुसरो के ग्रन्थों के अनुवाद) में 25 अगस्त लिखा है।

है। पृथ्वीराज, जयचन्द्र, हम्मीर इत्यादि वीर नायक थे जो शहीद भी हुए। इनका नेतृत्व इनके पतन पर भी ऊर्जादायी-प्रेरणादायी था। इनके पतन का कारण राष्ट्रीय चेतना का अभाव एवं पारस्परिक वैमनस्य था जिसके दर्शन संक्रान्तिकाव्य में स्पष्ट रूप से किए जा सकते हैं। कवि अपने नायक की प्रशस्ति में राष्ट्र के अन्य नरेशों का अपमान करने से नहीं चूके जो नायकों के अहं को परितुष्ट करने के कारण व्यापक दोष माना जाएगा। नीचे पृथ्वीराज एवं जयचन्द्र के ऐश्वर्य एवं शौर्य के अतिरंजित वर्णन राष्ट्रीय सौमनस्य के अभाव की सूचना देते हैं :

जिनैं बार-बारं सुरत्तान साह्यो। जिनैं भीज के भीम चालुक्य गाह्यो।।
जिनैं भंजि मैवात द्वै बार बंध्यो। जिनैं नाहरं राइ गिरनार संध्यो।।
जिनैं भंजि थट्टा सुकढ्यो निकदं। जिनैं भंजि महिपाल रिन थंभ दंडं।।
जिनैं जीति जह्यो ससीब्रत्त आनी। जिनैं भंजि कमधज्ज रक्खो जु पानी।।
जिनैं दौरि कनवज्ज साहाय कीयो। जिनैं कंगुरा लेय हम्मीर दीयो।।
जिनैं बीलि द्वज बालुका घेत ढाह्यो। जिनैं गाहिरा पंग संजोग लायो।।

(जल्हण : पृथ्वीराजरसो)

भउ भज्जिय बंगा भंगु कलिंगा तेलंगा रण मुत्ति चले।
मरहट्ठा थिट्ठा लगिय कट्ठा सोरट्ठा भउ पाउ चले।।
चंपारण कंपा पब्बअ झंपा उत्थी उत्थी जीव हरे।
कासीसर राणा किअउ पआणा विज्जाहर भण मंतिवरे।।¹

(विद्याधर : प्राकृतपैंगलम् में प्राप्त)

‘पृथ्वीराजरसो’ में गुजरात के भीम चालुक्य (भोराजीमंग, भीमंग) के वध, मंडोवर के नाहराय की कन्या-प्राप्ति, जियाउद्दीन मुद्गलराय मेवाती के युद्ध एवं कर-ग्रहण, कुमाऊँ-नरेश कुमोदिन की कन्या पद्मावती की प्राप्ति, देवगिरि-नरेश यादवराज की कन्या शशिव्रता की प्राप्ति, कन्नौज-नरेश जयचन्द्र की कन्या संयोगिता की प्राप्ति, नाना अनंगपाल तक से युद्ध, कर्णाटक-युद्ध एवं कर्णाटकी वेश्या की प्राप्ति, गज्जरराय से युद्ध, उज्जैन नरेश भीम से युद्ध, काँगड़ा-नरेश भान से युद्ध, चन्देरी-नरेश पंचाइन से युद्ध, बालुकाराय से दो युद्ध एवं उसका वध, महोबा-नरेश परमाल से युद्ध तथा शिहाबुद्दीन गोरी को सात बार हराने के वर्णनों में ऐतिहासिकता बहुत थोड़ी हो सकती है किन्तु इससे पृथ्वीराज की अदूरदर्शितापूर्ण युद्धलिप्ता (जिससे शक्ति का हास हुआ) एवं कामुकता स्पष्ट है। उन्होंने बीसेक युद्ध लड़े, दस विवाह किए और एक वेश्या रखी। महान् मिश्रबन्धु ने अमर ‘हिन्दी-नवरत्न’ में ठीक ही लिखा है, ‘पृथ्वीराज जितने पराक्रमी, शूर तथा उदार थे, उतने ही अदूरदर्शी और हठी भी।’ पृथ्वीराजरसो में नायक की कामुकता को उसके पतन का कारण स्पष्ट शब्दों में बतलाया गया है :

भरि अनंग अत्थिअ महल, रति वडिढ्य घटि सार।
बिपरित दिन ढिल्लिय सहर, नृपति अरुज्जिय मार।।²

जयचन्द्र पर भट्ट केदार ने ‘जयचन्द्रप्रकाश’ महाकाव्य रचा था तथा मधुकर कवि ने ‘जयमयंक-जसचन्द्रिका’ जिसका उल्लेख सिंघायच दयालदास कृत ‘रादौड़ाँ री ख्यात’ में प्राप्त होता है। किन्तु ये महाकाव्य उपलब्ध नहीं हैं। विद्याधर के ‘प्राकृतपैंगलम्’ में प्राप्त छन्द जयचन्द्र पर माने तो जा सकते हैं किन्तु निश्चित रूप से नहीं। पृथ्वीराजरसो में जयचन्द्र का उल्लेख प्रासंगिक मात्र है। जयचन्द्र ने तराइन की दूसरी लड़ाई में पृथ्वीराज को अनुरोध के बावजूद सहयोग न देने की जो राष्ट्रीय भूल की थी, काल ने उन्हें उसका कठोरतम दण्ड दिया है।

1. काशीश्वर राणा ने (रण)-प्रयाण किया, मन्त्रिवर विद्याधर कहते हैं। जयचन्द्र की राजधानी बनारस या वाराणसी में थी जिसका क्षेत्र काशी कहलाता है। कान्यकुब्ज या कन्नौज भी उनकी राजधानी थी जैसाकि श्रीहर्ष के कथन से स्पष्ट है। गुप्त-सम्राट् भी पाटलिपुत्र (कुसुमपुर) एवं अयोध्या को राजधानियाँ बना चुके थे। स्वयं पृथ्वीराज की राजधानी अजमेर ही थी किन्तु दिल्ली या दिल्ली (दिल्ली) को भी वैसा ही महत्त्व प्राप्त था।
2. इस दोहे में ‘महल’ और ‘शहर’ शब्द परवर्तितासूचक लग सकते हैं। किन्तु महमूद गज़नवी के आक्रमणों तथा लाहौर तक के गज़नी-साम्राज्य में चले जाने के कारण फ़ारसी शब्दों का भारतागमन स्वाभाविक है—संयोगात् चन्द्र लाहौर में जन्मे भी थे।

रासोकारों ने उत्कृष्ट देशप्रेम, प्रचण्ड वीरत्व, इत्यादि के वर्णन भी उत्साहपूर्वक किए हैं जो इतिहास-बोध की दृष्टि से अमूल्य हैं। 'हिन्दू' और 'हिन्दूस्थान' शब्दों का प्रथम प्रयोग 'पृथ्वीराजरासो' में ही प्राप्त होता है :

हिंदुवानथान उत्तम सुदेस । तहँ उदित दुग्ग ढिल्लिय सुवेस ॥

संभरिनरेस चहुवान थान । प्रथिराज तहाँ राजंत भान ॥

संक्रान्तिकालीन युद्धोन्माद की पराकाष्ठा 'परमालरासो' की इन पंक्तियों में प्राप्त होती है (जो मानव को श्वान एवं शृंगाल से सम्पृक्त करने के कारण निन्दनीय तथा अठारह वर्ष के वीर-आयुष्य-निर्धारण के कारण निराशाजनक भी है) :

बारह बरिस लौ कूकर जीवै औ तेरह लौ जीवै स्यार ।

बरिस अठारह छत्री जीवै आगे जीवै तो धिरकार ॥

आशान्वित-अनुभूति का उद्गार

संक्रान्तिकालीन रासोकाव्य हिन्दू-जाति आशान्वित अनुभूति के उद्गारों से सम्पन्न होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अमूल्य भी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी महत्ता हिन्दुओं की मानसिक अजेयता की विवृति से स्पष्ट है तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनकी अमूल्यता म्लेच्छों के गढ़ पर विजय-वैजयन्ती फहराने की स्पृहा के उद्गार से। यह स्पृहा भूषण प्रभृति परवर्ती महाकवियों के उद्गारों तक प्रसरित है। युद्ध में पृथ्वीराज मारे गए, किन्तु हिन्दूहृदय में उन्होंने शब्दवेध द्वारा गोरी को मार डाला (वैसे भी वह बलात् हिन्दू से मुसलमान बनाए गए वीरों द्वारा ही मारा गया था)। पृथ्वीराज ने गोरी के शब्द पर उसका वेध किया हो या न किया हो, किन्तु चन्द्र ने अपने 'शब्द' से गोरी को अवश्य 'वेध' डाला है। अतः 'शब्दवेध' की कथा तत्त्वतः सत्य है! युद्ध में म्लेच्छ भारी पड़े किन्तु हिन्दूहृदय में उन्हें ढहाया गया। युद्ध में हम्मीर शहीद हुए किन्तु हिन्दूहृदय में उन्होंने दिल्ली पर नगाड़ा बजाकर हमला किया और म्लेच्छों को मूर्च्छित कर डाला। अमर है पृथ्वीराज और हम्मीर का बलिदानपूर्ण नेतृत्व जिसने पतन में भी जिजीविषा के आगे बढ़कर विजिगीषा का उद्घोष कराया (कायर एवं पाखण्डी नेतृत्व में इसका विपर्यय ही दृग्गत हो सकता है) :

1. नयन बिना नरघात कहौ ऐसी कहूँ किछ्ही ।
हिंदू तुरुक अनेक भए पै सिद्धि न सिद्धी ॥
धनि साहस धनि हत्य धन्य जस बासनि पायो ।
ज्यों तरु छुटै पत्र उड़त अप सतियो आयो ॥
दिक्खैं सुसथ्य यौ साह कौ मनु नछित्र नभ तें दूरयो ।
गोरी नरिंद कवि चंद कहि आय धरप्पर धम पर्यो ॥
2. धपी सेन सुरतान मुट्ठि छुट्टिअ चावहिसि ।
मनु कषाट उद्धर्यो कूह फुट्टिअ दिसि विहिसि ॥
मार मार मुष किन्न लिन्न चावंड उपारे ।
परे सेन सुरतान जाम इक्कह परिधारे ॥
गल वत्थ धत्त गाढो ग्रहो जानि सनेही भिंट्यौ ।
चामंडराय करिवर कहर गोरी दल बल कुट्ट्यौ ॥
3. ढोल्ला मारिय ढिल्लि महँ मुच्छिय मेच्छ सरीर ।
पुर जज्जल्ला मतिवर चलिय बीर हम्मीर ॥
चलिय बीर हम्मीर पाअमर मेइणि कंपइ ।
दिग-मग गह अंधार धूलि सूरह रण झंपइ ॥
दिगमग गह अंधार आनु खुरसाणक ओल्ला ।
दरमरि दमसि विपक्खि मारअ ढिल्लि महँ ढोल्ला ॥

4.

पअ भर दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिय झंपिअ ।
 कमठ पिट्ठ टरपरिअ मेरु मंदर सिर कंपिअ ॥
 कोह चलिअ हम्पीर बीर गअ-जूह सँजुते ।
 किअउ कठ्ठ आकंद मुच्छि म्लेच्छह के पुत्ते ।¹....

हम्पीर कज्जु जज्जल भणह कोहाणल मह मइ जलेउ ।
 सुलतान सीस करवाल दइ तज्जि कलेवर दिअ चलेउ ॥

सम्पन्न परम्परा

संक्रान्तिकालीन वीर-परम्परा को परवर्ती कवियों ने सोत्साह ग्रहण किया। 1397 ई. में रचित 'रणमल्ल छन्द' काव्य में श्रीधर ने ईडर के राठौर राजा रणमल्ल की पाटन के सूबेदार जफ़र ख़ाँ पर विजय का प्रभावी वर्णन किया है :

ढमढमइ ढमढमकार ढंकर ढोल ढोली जंगिया ।
 सुर करहि रण सहणाइ समुहरि सरस रसि समरंगिया ॥
 कलकलहि काहल कोडि कलरिव कुमल कायर थरहरइ ।
 संचरइ शक सुरताण साहण साहसी सवि संगरइ ॥

आ. शुक्ल ने दलपति विजय कृत 'खुमानरासो' को 'रासो' काव्यों में प्रथम स्थान प्रदान किया है जो एकदम ग़लत है, क्योंकि यह रचना अठारहवीं सदी की है, ब्रजभाषा में है, शृंगाररसप्रधान है।

इस विजयदर्पवाद के सन्दर्भ में नल्लसिंह भाट सिरोहिया रचित भट्टभणंत के विकट उदाहरण 'विजयपालरासो' का उल्लेख समीचीन होगा, जिसमें विजयपाल-यादवराय के युद्ध का समय 1000 वि.² (943 ई.) दिया है किन्तु मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में रचनाकाल 1358 वि. (1301 ई.) माना है—वस्तुतः यह रचना आद्यंत जाली है और कम-से-कम अठारहवीं सदी में लिखी गई, क्योंकि इसमें फिरंगी इत्यादि के उल्लेख प्राप्त हैं :

दशशत वर्ष निरान मास फागुन गुरु ग्यारसि । पाय सिद्ध बरदान तेग जहव कर धारसि ॥
 जीति सर्व तुरकान बलख खुरसान सु गजनिय । रूम स्याम असफहाँ फ़ंग हबसान सु भजजिय ॥
 ईराण तोरि तूराण असि खौसिर बंग खँधार सब । बलबंड पिंड हिंदुवान हद चढ़िअ बीर बिजपाल तब ॥

संक्रान्तिकालीन वीरकाव्य ने तुलसी, केशव, भूषण, सुखदेव, सूदन, जोधराज, चन्द्रशेखर वाजपेयी, सूर्यमल्ल मिश्रण, केशवदेव शुक्ल 'केशव', श्यामनाराण पाण्डेय इत्यादि शत-शत कवियों को कहीं शैली-शिल्प में प्रभावित किया है, कहीं आशान्वित अनुभूति में, कहीं विजिगीषा में। वह अतीतगत नहीं, जीवन्त काव्य है। यह सत्य है कि पृथ्वीराजरासो एवं वीसलदेवरासो का प्रधान रस शृंगार है, जयचन्द्रप्रकाश एवं जयमयंकजसचन्द्रिका सर्वतः अनुपलब्ध हैं, परमालरासो मूल रूप में एवं हम्पीररासो वस्तुतः उपलब्ध नहीं हैं, खुमानरासो नितान्त ब्रजभाषा-शृंगारकाव्य है, विजयपालरासो सर्वाधिक परवर्ती जाली रचना है, अतः इस काल को चारणकल या रासोकाल या वीरगाथाकाल कहना निराधार है किन्तु जो भी वीरकाव्य उपलब्ध हैं वह ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अतीव महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उनमें हिन्दू-जाति की आशान्वित अनुभूति एवं विजिगीषा को प्रभावी अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

1. म्लेच्छों के बच्चे।

2. मिश्रबन्धु ने 1093 वि. (1036 ई.) लिखा है।

प्रमुख रासोकार एवं अन्य कवि

नरपति नाल्ह

‘वीसलदेवरासो’ शीर्षक प्रधानतः शृंगारिक-विरहकाव्य के प्रणेता नरपति नाल्ह (रचनाकाल 1155 ई.¹) अन्तर्साक्ष्य² के आधार पर विग्रहराज चतुर्थ³ या वीसलदेव के समकालीन थे। सम्भवतः इनका नाम नाल्ह था, जिन्हें नरपति की पदवी प्राप्त हुई थी। इनका सोलहवीं शताब्दी के गुजराती जैन-कवि नरपति से कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। किन्तु इनके काव्य को प्रक्षिप्त अंशों ने विवादास्पद अवश्य बना दिया है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, अगरचन्द नाहटा, माताप्रसाद गुप्त, मोतीलाल मेनारिया इत्यादि विद्वानों के इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश भी डाला है, उसे जटिल भी बनाया है। वीसलदेवरासो का कथानक, स्नेच्छ-विजेता महान् नायक के युद्धों से दूर रहता हुआ, रानी राजमती के कठोर वचनों से रुष्ट होकर, कल्पित उड़ीसा-गमन एवं उसके विरह में रानी की द्वादशवर्षीय विरह-वेदना पर आधृत है, जिसमें नारी-वैवश्य, विरहिणी-वैकल्य, बारहमासा इत्यादि का ललित आयोजन मर्म-स्पर्शी है। राजा की वापसी पर रानी का रूठना बहुत ही प्रभावी है, ललित पारिवारिकता से निष्पन्न है। ऐसा लगता है कि नरपति नाल्ह ने वीसलदेव के युद्धाभियानों पर रानी के विरह का वर्णन गीतिकाव्य की लोकप्रचलित बारहमासा-शैली पर किया, जिसे परवर्ती प्रक्षेपों ने बड़ा रूप भी प्रदान किया, मटियामेट भी। कहीं डिंगल, कहीं पिंगल, कहीं पुरानी कहीं परवर्ती अनेक शैलियाँ इस तथ्य की सूचक हैं। नरपति एवं नाल्ह दो कवि भी हो सकते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कड़वा बोल न बोलिस नारि। तू मो मेलहसी चित्त बिसारि॥
जीभ न जीभ बिगोयनो। दव का दाधा कुपली मेलहइ॥
जीभ का दाधा न पाँगरइ। नाल्ह कहइ सुणीजइ सब कोइ॥
2. अस्त्रीय जनम कत दीधअ महेस। अवर जनम थारइ घणा रे नरेस॥
रानि ने सिरजीय रोझड़ी। घणह न सिरजीय धउलीय गाय॥
बनखंड काली कोइली। हउँ बसती अंबा तइ चंपा की डाल॥
3. मुलकइ हँसइ आलिंगन देइ। पलिंग न बइसइ अइन पान न लेइ॥
ऊभिय देइ उलभंडा। आँगुली तौडइ छइ मरोडँड बाँह॥
नाइ भरोसउ काँइ कराउ। तइँ तउ बारह बरस किउँ मेलहीय नाह॥
4. जब लगि महिपल उगगइ सूर। जब लगि गंग बहइ जल पूरि॥
जब लगि प्रीथिमी नइ जगन्नाथ। जाणी राजा सिर दीधौ हाँथ॥

1. बारहसै-बहोत्तरौँ मैंझारि। जेठ बदी बुधवारि॥

नाल्ह रसायण आरंभइ। सारदा तूठी ब्रह्मकुमारि॥

(बहोत्तरौँ = द्वादशोत्तर या 12, 72 नहीं। अभिप्रायः बुधवार, ज्येष्ठ कृष्ण 9, 1212 वि.)।

किन्तु 1272 वि. माना जाए तो गुजरात के राजा वीसलदेव एवं कवि नाल्ह का सम्बन्ध जुड़ता है। राजा वीसलदेव (तेरहवीं सदी ई.) का एक शिलालेख मैंने सोमनाथ के अनमोल संग्रहालय में देखा है जो देवनागरी लिपि में है। ‘सोमनाथ’ तो शिव का नाम है, नगर का नाम पाटन था जहाँ राजधानी रही। यहाँ प्राचीनता के अनेक प्रमाण विद्यमान हैं।

2. रास पहुँतो राव को बाजै पड़ह पखावज भेर।

कर जोरे नरपति कहई अवीचल राज कीजो अजमेर॥

3. इन पर राजकवि सोमदेव ने संस्कृत में ‘ललित-विग्रहराज’ नाटक रचा।

चन्द्रवरदायी

हिन्दी के प्रथम महाकवि चन्द्रवरदायी (1148-92 ई.)¹ का प्रामाणिक जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं है, क्योंकि प्रमुखतः उनके द्वारा रचित महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' सोलहवीं शताब्दी तक आते-आते प्रक्षिप्त-अंश-बहुल एवं अप्रामाणिक रूप ग्रहण कर चुका था जिसके अधिकांश वर्णन इतिहास के शास्त्रीय निकष पर शुद्ध नहीं प्रमाणित होते। हिन्दी-आलोचकों में चन्द्रवरदायी (या चन्द्रवरदायी या चन्द या आल्हखण्ड अथवा परमालरासो के चन्द भाट) पर सर्वाधिक परिश्रम करने वाले 'हिन्दी-नवरत्न' के प्रणेता मिश्रबन्धु उनका जन्म 1183 वि. (1126 ई.) अनुमानते हैं तो उनकी सामग्री के विकासक 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के प्रणेता रामचन्द्र शुक्ल 1225 वि. (1168 ई.), जबकि निधन-वर्ष 1249 वि. (1192 ई.) सर्वमान्य है, क्योंकि यही पृथ्वीराज का निधन-वर्ष है और उन्हीं के साथ इनका निधन कथासिद्ध है, जिसे इतिहास-सिद्ध यों माना जा सकता है कि तराइन की दूसरी लड़ाई में अपने महाराज के साथ मरने वालों में यह भी थे। मिश्रबन्धु का जन्मवर्ष ठीक माना जाए तो चन्द्रवरदायी निधन के समय 66 वर्ष के थे किन्तु एक तो यह आयु उनके पृथ्वीराज के जन्म के समय जन्म या मृत्यु के समय मृत्यु की उस विख्यात कथा से मेल नहीं खाती जो पृथ्वीराजरासो-वर्णनसिद्ध भी है तथा स्वयं मिश्रबन्धु-उल्लिखित, दूसरे यह उस कवि के वीरदर्पपूर्ण रूप एवं रंग के अनुरूप भी नहीं है जिसने पृथ्वीराज को प्रभावी ढंग से संस्फुरित किया हो। शुक्ल वाला जन्मवर्ष ठीक माना जाए तो चन्द्रवरदायी निधन के समय केवल 24 वर्ष के थे, किन्तु एक तो यह आयु उनके पृथ्वीराज (1148-92 ई.) के जन्म-जीवन-मरण-संगी होने के उस विख्यात वृत्त से मेल नहीं खाती जिसे शुक्ल स्वयं स्वीकार करते हैं, दूसरे यह उस कवि के बहुआयामी जीवन के देखते अत्यल्प लगती है, तीसरे यह अपूर्ण काव्य को पूर्ण करने का दायित्व पुत्र जल्हण को सौंपने के प्रसिद्ध एवं बहुवर्णित वृत्त के अनुरूप भी नहीं है जिसे स्वयं शुक्ल उद्धृत ही नहीं करते अपितु "जैसे कादम्बरी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उसका पिछला भाग बाण के पुत्र ने पूरा किया है" के उदाहरण से पुष्ट भी करते हैं :

1. पुस्तक जल्हन हथ्य दै चलि गज्जन² नृप-काज।
2. रघुनाथचरित हनुमंतकृत भूप भोज उद्धरिय जिमि।³
पृथिराज-सुजस कवि चंद कृत चंदनंद उद्धरिय तिमि।।

चौबीस वर्ष के नवयुवक के इतना बड़ा और सक्षम पुत्र सम्भव नहीं कि वह महाकाव्य-समापन-दायित्व वहन कर सके! अतः शुक्ल वाला जन्मवर्ष मिश्रबन्धु वाले जन्मवर्ष से भी अधिक, वस्तुतः समग्ररूपेण, अस्वीकरणीय है।

चन्द्रवरदायी का जन्म लाहौर में हुआ, जिसका प्राचीन नाम लवपुर माना जाता है तथा जिसे राम के ज्येष्ठ पुत्र लव ने बसाया था—जिनके नाम पर सुदूर देश लावोस का नामकरण भी प्राप्त होता है, जैसाकि स्वयं उस देश के अनेक लोग भी मानते हैं। लव के अनुज (या अग्रज) कुश का बसाया कुशपुर (वर्तमान कसूर) वहाँ से बहुत दूर नहीं है (पाकिस्तान के संस्थापक, साम्प्रदायिकता-मूर्ति, 'क्रायदे आजम' मिस्टर मोहम्मद अली जिन्ना या जिन्नाह की मृत्यु 1948 ई. के तीन दशकों बाद, उनकी दैनन्दिनी पर आधृत शोध के अनुसार, जिन्ना को गर्व था कि उनके पूर्वज कुशपुर या कसूर के निवासी क्षत्रिय या खत्री थे और वे राम के वंशज हैं)। चन्द्रवरदायी जगत् अथवा जगात गोत्र के भट्ट थे। भट्ट जाति में बाण, लोल्लट, नायक, मम्मट, जगद्धर, चन्द्र, नरहरि, गंग, पद्माकर, बालकृष्ण, उदयशंकर, मुंशीराम शर्मा, 'सोम', रामविलास शर्मा इत्यादि यशस्वी साहित्यकार उत्पन्न हुए हैं। भारत के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक आर्य भट्ट इसी जाति की विश्व-विभूति थे जिनका प्रभाव गैलीलियो, न्यूटन इत्यादि तक प्रसरित है। उनके पिता का नाम राव बेनू था। कुख्यात लुटेरे एवं हिन्दूघाती महमूद गज़नवी (जिसने 1000-30 ई. के बीच के वर्षों में भारत पर 17 भयानक आक्रमण किए) के समय से ही लाहौर तुर्कों के अधीन था। उनकी भाषा में अरबी, फ़ारसी और तुर्की के शब्दों के प्रयोग का कारण उनका जन्मस्थान ही था। भाग्योदय के हेतु महत्वाकांक्षी चन्द्र के लिए लाहौर का वातावरण अनुकूल न था। चन्द्रवरदायी हिन्दी के प्रथम देशभक्त कवि हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम हिन्दुत्व-बोध के उद्गार भी व्यक्त किए हैं। अतः उनका पृथ्वीराज के दरबार में आना सर्वाधिक स्वाभाविक था :

1. मेरी समझ में कथा एवं परम्परा से पुष्ट 1148 ई. उचित है, न कि 1126 ई. या 1168 ई.।
2. एक मान्यता के अनुसार पृथ्वीराज चौहान की समाधि गज़नी (अफ़ग़ानिस्तान) में है।
3. संस्कृत का प्रसिद्ध 'हनुमन्नाटक' वस्तुतः रामकथात्मक है, जिसके रचयिता स्वयं हनुमान् माने जाते हैं (जैसे शिवताण्डवस्तोत्रम् के रचयिता रावण माने जाते हैं)। कहते हैं, समुद्र से प्राप्त इस ग्रन्थ का 'उद्धार' प्रसिद्ध राजा भोज ने किया। पुनरुत्थानकाल में हृदयराम ने इसका स्वतन्त्रता-निष्पन्न प्रशस्य हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया। वस्तुतः हनुमन्नाटक के प्रणेता दामोदर मिश्र भोज के समसामयिक थे।

हिंदुवान¹-थान उत्तम सुदेस²। तहँ उदित दुगग दिल्लीय सुबेस³।।
 संभरि⁴-नरेस चहुआन थान। प्रिथिराज तहाँ राजंत भान।।
 संभरि-नरेस सोमेस⁴ पूत। देवदत्त-रूप अवतार-धूत⁵।।

हिन्दी-साहित्य में हिन्दू एवं हिन्दुत्व का ही नहीं अपितु दिल्लीय या दिल्ली (जज्जल) या ढीलरी (मुल्ला दाऊद) या दिल्ली (जायसी) का प्रथम उल्लेख भी चन्द्रवरदायी ने ही किया है :

भरि अनंग, अत्थिय महल, रति बड़िढ्य, घटि सार।

बिपरित दिन दिल्लीय सहर, नृपति अलुडिझय मार।।

उक्त दोहा वीर-योद्धा किन्तु अदूरदर्शी-विलासी पृथ्वीराज चौहान की समीक्षा प्रस्तुत करता है : अनंग (काम) भरकर, महल में स्थिर, रति की वृद्धि, सार (बल) की घटत, दिल्ली शहर के विपरीत दिन (किन्तु) राजा मार (काम) में उलझा हुआ! उस पर मार क्यों न पड़ती! जो मार से उलझा उसने मार खाई, जो मार से सुलझा उसने मार बचाई।

उक्त तथा अन्य अनेक उद्धरण 'पृथ्वीराजरासो' को इतिहास-बोध का अप्रतिम महाकाव्य सिद्ध करते हैं।

हिन्दी के विश्व-स्तरीय विद्वान् रायबहादुर महामहोपाध्याय डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने पृथ्वीराजरासो में अरबी-फ़ारसी-शब्दों के प्रायः दस प्रतिशत प्रयोग को देखकर भाषापरक काल-शंका व्यक्त की है, किन्तु पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, रायबहादुर डॉ. श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु इत्यादि ने इस दिशा में 712 ई. के सिन्ध पर मोहम्मद बिन-क़ासिम एवं 1000-30 ई. के मध्य भारत के अनेक भागों पर महमूद गज़नवी के आक्रमणों तथा लाहौर तक तुर्क-साम्राज्य-प्रसार, स्वयं चन्द्रवरदायी के लाहौर में जन्म इत्यादि के सर्वथा समीचीन तर्कों के द्वारा इस बिन्दु का प्रभावी खण्डन किया है। भारत-इराक, भारत-ईरान, भारत-यूनान सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन हैं। कालिदास ने 'दिनार' शब्द का प्रयोग किया है (चीनांशुक का भी), फिरदौसी ने बारम्बार भारत का उल्लेख किया है, हेरोडोटस से एरिअन, स्ट्राबो, प्लिनी इत्यादि इतिहासकारों तक ने भारत के उल्लेख किए हैं, ऐनीड (एनिअड) में वर्जिल ने भारत के उल्लेख किए हैं और यवन शब्द तो संस्कृत से हिन्दी साहित्य तक लगातार भरा पड़ा है। फिर पृथ्वीराजरासो में प्रक्षेप अकबर के काल तक जुड़ते रहे। अतः अरबी-फ़ारसी शब्दों के आधार पर कोई निर्णय करना उचित नहीं है।

चन्द्रवरदायी के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाना कठिन है क्योंकि जनकथा एवं जनविश्वास ही नहीं, 'पृथ्वीराजरासो' महाकाव्य ही नहीं, प्रत्युत 'आल्हखण्ड' या 'परमालरासो' में भी वे विद्यमान हैं। ऐसा लगता है कि जोधपुर⁶ के महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदान ने पारम्परिक चौहान-राठौर-विद्वेष को ध्यान में रखते हुए, अपने राठौर राजा को प्रसन्न करने के लिए, पृथ्वीराजरासो की अप्रामाणिकता को भारी तूल देना लाभदायक समझा और नएपन की झोंक में आकर महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास, बूलर, मॉरिसन, मुंशी देवीप्रसाद एवं सबसे बढ़कर ओझा ने उसे एकदम जाली सिद्ध करके नाम कमाना ठीक समझा। डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. मोतीलाल मेनारिया इत्यादि ने आतंकित होकर ओझा का अनुकरण किया। दूसरी ओर, पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, डॉ. श्यामसुन्दरदास एवं सबसे बढ़कर मिश्रबन्धु ने इसे प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए आवश्यकता से अधिक उत्साह दिखा डाला, यद्यपि वह ध्वंसात्मक या नकारात्मक नहीं है। कवि-सम्राट् पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पं. मथुराप्रसाद दीक्षित, मुनि जिनविजय, डॉ. दशरथ शर्मा इत्यादि ने मिश्रबन्धु का अनुकरण किया। डॉ. दशरथ शर्मा ने पृथ्वीराजरासो की बीकानेर में प्राप्त एक ऐसी प्रति का उल्लेख किया है जो

1. "राखी हिंदुवानी" (भूषण)।
2. "भली भारत भूमि" (तुलसी)।
3. सॉमर झील और पास का क्षेत्र—शाकंभरी। कालान्तर में अजयपाल द्वारा बसाए गए अजयमेरु में राजधानी बनी। (जिसे अजमेर कहा गया) किन्तु पूर्व-विशेषण दिल्ली (दिल्ली) के राजधानी बनाने तक चलता रहा। मूलस्थानपरक ऐसे विशेषण सार्वभौम हैं।
4. सोमेश्वर।
5. देवता-स्वरूप जिसने अवतार धारण कर पृथिवी की शोभा बढ़ाई।
6. काशी एवं कन्नौज के नरेश जयचन्द्र के 1194 ई. में मोहम्मद गोरी द्वारा परास्त होने (मारे जाने या आत्महत्या करने) के बाद महान्ताकाशी राठौरों का एक दल सुरक्षित मरुभूमि की ओर निकल गया, जहाँ राज्य स्थापित किया। कालान्तर में इसी वंश के जोधाजी ने जोधपुर एवं बीकाजी ने बीकानेर बसाया। विश्वपूज्य मीरों (मीरा) जोधाजी के पुत्र दूदाजी के पुत्र रतनजी की पुत्री थीं जो मंडता के पास कुड़की नामक ग्राम में पैदा हुई थीं। जयचन्द्र आज भी जोधपुर-राजवंश में विद्यमान हैं। कन्नौज के आसपास भी राठौर मिलते हैं। राठौरों में मीरों (मीरा), जयमल, मालदेव, अमरसिंह, दुर्गादास, जैसे ऐतिहासिक व्यक्ति हुए हैं। जसवन्तसिंह (महाराज एवं आचार्य-कवि) भी राठौर थे। पूर्व प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रताप सिंह भी जयचन्द्र के वंशजों में हैं।

प्रक्षिप्त अंशों से मुक्त है तथा जिसके संवत् पृथ्वीराज के राजकवि जयानक कृत प्रामाणिक किन्तु अपूर्ण 'पृथ्वीराज विजयम्' नामक संस्कृत-काव्य से मेल खाते हैं। आ. रामचन्द्र शुक्ल ओझा एवं मिश्रबन्धु की सामग्री का उपयोग करते हुए किसी भी निश्चय पर नहीं पहुँच सके, यद्यपि मिश्रबन्धु के प्रति व्यक्तिगत विरोध के कारण वे ओझा की ओर अधिक झुकते लगते हैं। वस्तुतः यह उनका क्षेत्र ही नहीं है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी शुक्-शुकी-सम्वाद वाले अंशों को प्रामाणिक मानते हैं तथा इस सम्वाद पर इतना अधिक जोर दे डालते हैं कि आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र इसका परिहास करते दृष्टिगोचर होते हैं। पण्ड्या का विक्रम-सम्वात् से 90 वर्ष घटाकर (क्योंकि इतने वर्ष निन्द्य नन्द-वंश ने राज्य किया) आनन्द-सम्वात् (नन्दवंशरहित सम्वात्) का प्रतिपादन एवं हजारीप्रसाद का शुक्-शुकी-सम्वाद की वरीयता पृथ्वीराजरासो-ऊहापोह के दो मनोरंजक या हास्यास्पद बिन्दु हैं, जो विश्वातिदायक होने के कारण उल्लेख्य हैं। वास्तविक तथ्य यह है कि कश्मीर के विद्वान् ब्राह्मण एवं देववाणी संस्कृत के कवि जयानक के कारण उनके कश्मीर चले जाने तक तुर्क-सल्तनत लाहौर में जन्मे भट्ट एवं डिंगल के कवि चन्द्रवरदायी को साहित्यिक महत्त्व नहीं मिल सका, सम्भवतः चन्द्र के समग्रतः समवयस्क एवं योद्धा होने के कारणों से पृथ्वीराज पर बढ़ते प्रभाव से शुब्ध जयानक 'पृथ्वीराज-विजयम्' को अपूर्ण छोड़कर कश्मीर लौट गए, तब चन्द्रवरदायी केवल एक योद्धा एवं पृथ्वीराज-मित्र ही नहीं अपितु एक श्रेष्ठ कवि के रूप में भी मान्य हुए, किन्तु कुछ ही समय बाद पहले युद्धव्यस्तता एवं अन्ततः पराजय के कारण अपने नायक के साथ हुतात्मा हो गए। उनके अपूर्ण पृथ्वीराजरासो के कुछ अंश जल्हण ने लिखे किन्तु लगता है कि वे भी विशेष योगदान न कर पाए। अनेक चारण एवं अन्य कवि पृथ्वीराज के समय में ही उन पर काव्यरचना कर रहे थे, जैसे मलयसिंह या मलैसिंह :

जीति महब्बा¹ लीय बर, ढिलिय आनि सुपथ ।

जं-जं कित्तिकला बढी, मलैसिंह जस कथ ॥

पृथ्वीराज के पुत्र-पौत्रादि ने दिल्ली से हटकर दुर्गम रणथम्भगैर इत्यादि में राज्य स्थापित किए। उन्होंने चन्द्र, जल्हण, मलैसिंह इत्यादि के वृत्त एकत्र कराए तथा उनके रुख पर अन्याय, सम्भवतः चन्द्र-वंशज चारणों ने अखण्डनीय तुर्क-विजय में सहाय शब्द-वेध-प्रकरण में मोहम्मद गोरी² का पृथ्वीराज द्वारा वध जोड़कर चौहान-गौरव तो प्रतिष्ठापित किया ही, चन्द्र-गौरव भी अक्षुण्ण कर दिया। पृथ्वीराजरासो की रचना बारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से सोलहवीं सदी के अन्त तक होती रही। महाभारत, इलिअड, शाहनामा इत्यादि के सदृश ही इसका वर्तमान-रूप कविपरम्परा-प्रसृत है। तुर्क-इतिहास, पठान-इतिहास, मुगल-इतिहास, कांग्रेस-इतिहास, कॉम्युनिस्ट-इतिहास (एंबेसी-ब्रैंड हिस्टोरियंस द्वारा कल्पना एवं तर्क के विलक्षण समन्वय से निर्मित), सब निजता के पक्षपात से ग्रस्त हैं। फिर, पृथ्वीराजरासो की ऐतिहासिकता पर भारी बावेला क्यों?

पृथ्वीराजरासो

'पृथ्वीराजरासो' निस्सन्देह ('शाहनामा' के सदृश) चन्द्र, जल्हण, मलैसिंह तथा अन्य अनेक परवर्ती कवियों की कृति है, किन्तु चन्द्र के नाना उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि जैसे अनेककविकृत शाहनामा³ प्रधानता के कारण फ़िरदौसी का महाकाव्य है वैसे ही अनेककविकृत पृथ्वीराजरासो प्रधानता के कारण चन्द्रवरदायी का महाकाव्य है। पृथ्वीराजरासो हिन्दी का शाहनामा है। दोनों महाकाव्य अनेककविकृत भी हैं, अतिस्फीत भी। शाहनामा, जैसाकि शीर्षक से ही स्पष्ट है, महाकवि कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' के सदृश अनेक शासकों के वृत्तों का समाहार है। शाहनामा मोहम्मदीयत-पूर्व ईरान के अग्निपूजक पारसीक सम्राटों, सम्राज्ञियों, वीरों, योद्धाओं, विजेताओं के इत्यादि का महान् विश्वकोश है। इस विश्वस्तरीय महाकाव्य का स्तर महाभारत, रामायण, इलिअड एवं रामचरितमानस का है। फ़िरदौसी ईरान के व्यास थे। फ़िरदौसी ईरान के होमर थे। पृथ्वीराजरासो, जैसाकि शीर्षक से ही स्पष्ट है, महाकवि बाण भट्ट कृत गद्य-महाकाव्य 'हर्षचरितम्' के सदृश, एकनायकप्रधान पद्य-महाकाव्य है। शाहनामा की अनेकमुखी विविधता पृथ्वीराजरासो में नहीं मिलती

1. महोबा ।

2. मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार मुइज्जुद्दीन साम, रासो के अनुसार शाहाबुद्दीन गोरी और जनता के अनुसार मोहम्मद गोरी 1206 ई. में उन खोखरों या गोखरों या गकखरों द्वारा एक छापे में मारा गया जो बलात् मुसलमान बनाए गए थे। गोरी का वध झेलम जनपद के धर्मियाक स्थान पर किया गया। गोरी सहज मृत्यु नहीं मरा, भले ही रासो में स्वपक्षगत कल्पना कर ली गई हो। जिस पर कंधार में पृथ्वीराज की समाधि और उसके अनवरत अपमान के आलोक में भी विचार किया जा सकता है।

3. दे. मेरे ग्रन्थ 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' में निबन्ध 'शाहनामा' ।

है। उसके धीरोदात्त खुसरू (जो चरम सफलता के उपरान्त धीरशान्त कै खुसरू भी हुए तथा खुसरू जो खुसरू या खुसरो नामकरणों में अजर-अमर हैं) जैसा कोई महान् चरित्र पृथ्वीराजरासो में नहीं है। उसके रुस्तम, अस्फंदयार, बहराम जैसे यौद्धा पृथ्वीराजरासो में नहीं मिलते। उसका अफ़ासियाब जैसा प्रतिभट पृथ्वीराजरासो में नहीं दिखता। बहुरसनिष्पत्ति एवं बहुविचारवैभव में भी शाहनामा पृथ्वीराजरासो से श्रेष्ठतर है। किन्तु पृथ्वीराजरासो अपने विराट् आकार एवं विशद प्रकार में इतिहास एवं काव्य दोनों दृष्टियों से हिन्दुओं का राष्ट्रीय महाकाव्य अवश्य है। अंग्रेज़ी के अमर ग्रन्थ 'राजस्थान' के विश्वविख्यात इतिहासकार टॉड ने इसे "रचनाकाल का वैश्विक इतिहास"¹ माना है तथा 'विनोद' के अमर प्रणेता मिश्रबन्धु ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है²। निस्सन्देह, यह गौरवशाली महाकाव्य है, केवलमात्र प्रथम महाकाव्य नहीं। यदि यह केवल एक कवि का कृतित्व होता तो पदमावत, रामचन्द्रिका एवं कामायनी तक इसकी समता न कर पाते, भले ही रामचरितमानस से अब भी तुलनीय न हो सकता। आ. श्यामसुन्दरदास ने इस काव्य पर उच्चस्तरीय प्रकाश डाला है, यद्यपि इसे महाकाव्य नहीं माना—केवल विशालकाय-प्रबन्धकाव्य घोषित किया है। किन्तु मिश्रबन्धु, आ. रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त इत्यादि प्रायः सभी विद्वानों ने इसे महाकाव्य, प्रथम महाकाव्य, उच्चकोटि का महाकाव्य माना है, जो समीचीन है। हिन्दी-आलोचकों से मिश्रबन्धु एवं श्यामसुन्दरदास रासो के अग्रणी विवेचक हैं। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने विद्वत्तापूर्वक अनुमानपरक एवं रामकुमार वर्मा ने अध्यवसायपूर्वक वस्तुपरक सामग्री प्रस्तुत की है।

'रासो' शब्द रसमूलक है, जिसका अर्थ है, रस काव्य, जिसकी ध्वनि शृंगारपरक रही है। रासो, रासउ, रसायन, रसिक, रासक, रसिया, रासा इत्यादि सारे शब्द रसमूलक हैं, अधिकतर शृंगार-व्यंजक। यद्यपि महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री 'रासा' का अर्थ 'युद्ध' मानते हुए पृथ्वीराजरासो प्रभृति काव्यों को युद्धप्रधान घोषित करते हैं, जिनके अनुकरण में आ. रामचन्द्र शुक्ल वीरगाथा-काल शीर्षक सर्वथा विवादास्पद नामकरण कर चुके हैं, तथापि सन्देशरासक (अब्दुल रहमान), वीसलदेवरासो (नरपति नाल्ह), पृथ्वीराजरासो (चन्द्र), रासपंचाध्यायी (नन्ददास) इत्यादि ग्रन्थ अपनी शृंगारपरकता के कारण उनकी मान्यता का खण्डन करते हैं। मयराष्ट्र (मेरठ), इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) इत्यादि में 'रासा' शब्द युद्ध के अर्थ में आज तक प्रचलित है, किन्तु 'पृथ्वीराजरासो' 'पृथ्वीराजरासा' नहीं है। इतिहासकार डॉ. ईश्वरीप्रसाद (1888-1986 ई.) एवं सम्भवतः उनके अनुकरण में साहित्यकार डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 'पृथ्वीराजरासउ' अथवा डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने 'वीसलदेवरास' जैसे प्रयोग नाहक ही किए हैं क्योंकि रासउ हो या रास हो या रासो, सबका मूल 'रस' है, सबकी ध्वनि प्रथम रस या महत्तम रस या रसरज शृंगार से सम्पृक्त है। पृथ्वीराजरासो के सर्वोत्तम अंश शृंगाररस के हैं। गुण ही नहीं अपितु परिमाण की दृष्टि से भी पृथ्वीराजरासो का अंगीरस शृंगार है। निस्सन्देह, पृथ्वीराजरासो में वीररस की महान् निष्पत्ति प्रायशः दृग्गत होती है, किन्तु उसका प्रधान रस शृंगार ही है। गार्सा द तासी के द्वारा 'रासो' का सम्बन्ध राजसूय-यज्ञ से जोड़ना तो निराधार एवं अविचारणीय ही है। वैसे भी, तासी के ग्रन्थ का कोई विशेष महत्त्व कभी नहीं रहा—वह बस 'प्रथम' विदेशी-प्रयास के रूप में ही उल्लेखनीय है।

'पृथ्वीराजरासो' की रचना डिंगल (डिं-डिं-नाद सा करती हुई प्राणवान अपभ्रंश-मिश्रित राजस्थानी), पिंगल (छन्दःशास्त्र के जनक पिंगलाचार्य से सम्पृक्त करके आदरणीय ब्रजभाषा के लिए विशेषणमूलक अभिधान) एवं संस्कृत में हुई है, जिसमें अरबी-फ़ारसी-तुर्की के लगभग दस-प्रति-शत शब्द ऐतिहासिक संक्रान्ति के सशक्त प्रतीक हैं। मेरी समझ में सिद्धों की प्रतीकात्मक सन्ध्याभाषा, नाथों की जनवादी मिश्र-भाषा एवं जैनों की साहित्यिक सेतुभाषा में प्राकृत या अपभ्रंश का पर्याप्त प्रयोग विद्यमान है किन्तु वह ऐसा नहीं है कि उसे 'पुरानी-हिन्दी' ने कहा जा सके। इस दिशा में सुविख्यात भाषाविद् चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'देन' सदाबहार है। रासो-भाषा तो निर्विवादरूपेण 'पुरानी-हिन्दी'³ है। पृथ्वीराजरासो को 'पुरानी-हिन्दी' में रचित महाकाव्य कहकर इतिहासकार स्व. डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने इतिहास और साहित्य के अन्योन्य सम्बन्ध को उजागर कर दिया है। स्व. डॉ. भोलानाथ तिवारी इत्यादि भाषावैज्ञानिक का यह कथन कि संक्रान्तिकालीन भाषा हिन्दी नहीं है, निराधार है क्योंकि उसका रूप हिन्दी के संक्रान्तिकालीन उद्भव के सर्वथा अनुरूप है, तत्त्वतः प्राकृत या अपभ्रंश का नहीं है। साहित्य भाषाविज्ञान का लग्गू-भग्गू नहीं हो सकता।

'पृथ्वीराजरासो' प्रायः 2500 पृष्ठों का विश्व-साहित्य में एक विशालतम महाकाव्य है। हिन्दी-साहित्य के महान् आचार्य श्यामसुन्दरदास इसके प्रधान प्रस्तोता भी हैं और मिश्रबन्धु के साथ-साथ प्रधान आलोचक भी, जिनके प्रस्थान-कार्य में आ. रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि ने समय-समय पर अच्छा योगदान किया है। पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या

1. इट वाज़ दि यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ़ द टाइम ही रोट।

2. यह ग्रन्थ मानो उस काल का सार्वभौम इतिहास है।

3. ओल्ड हिन्दी।

एवं बाबू राधाकृष्णदास के साथ आ. श्यामसुन्दरदास ने महान् सम्पादन का श्रीगणेश किया, किन्तु दो भागों के अनन्तर राधाकृष्णदास की अकाल मृत्यु एवं कालान्तर में पण्ड्या के विना ही उन्होंने यह ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न किया। यह महाकाव्य 69 समयों¹ में निबद्ध है, जिनके प्रधान छन्द छप्पय, दोहा, तोमर, त्रोटक, गाथा और आर्या हैं। इसमें चौहान इत्यादि क्षत्रिय-वंशों की उत्पत्ति की दैवी कथाओं से लेकर पृथ्वीराज के पतन एवं निधन तक का वृत्त विस्तार के साथ वर्णित है। पृथ्वीराजरासो के अनुसार गोरी सात आक्रमणों में हारा, डॉ. आशीर्वादलाल श्रीवास्तव के अनुसार दो में, किन्तु अधिकांशतः यह माना जाता है कि 1191 ई. में तराइन² की पहली लड़ाई में वुरी तरह हारा तथा पृथ्वीराज या पिथौराया के भाई गोविन्दराय के हाथों वेत्रह घायल होकर भागा। गोरी 1192 ई. में ही वहीं हुई दूसरी लड़ाई में विजयी हुआ और युद्धस्थल से हटकर बच निकलने वाले पृथ्वीराज को सिरसुती या सरसुती (प्राचीन सरसवती नदी के तट पर स्थित नगर, सम्भवतः सिरसा) के पास पकड़ा और तलवार के घाट उतार दिया गया। भारत के करोड़ों हिन्दू-मुसलमान जनता के अनुसार गोरी 17 या 21 युद्धों में हारा किन्तु अन्ततोगत्वा जीता। अतः इतिहास की दुहाई देते हुए पृथ्वीराज की हत्या तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि इतिहास उतना निर्विवाद नहीं है जितना कतिपय पल्लवग्राही महानुभाव समझते हैं।

शृंगार एवं युद्ध प्रधान वर्णनों से ओतप्रोत पृथ्वीराजरासो में आखेट के वर्णन भी अच्छे हुए हैं। हिंस्र वन्य प्राणियों से भरे प्राचीन-मध्य-कालीन वातावरण में आखेट राजा एवं वीरों का एक कठिन दायित्व भी था। यह सम्पन्नतम वर्गों के लोगों का खेल भी था। स्फीत मंगलाचरण में आदिदेव, गुरु, धर्म, कर्म, मुक्ति तथा व्यास, शुकदेव, श्रीहर्ष³, कालिदास, डंडमाली⁴ और जयदेव⁵ की स्तुति की गई है। इसके बाद पत्नी के प्रश्न के उत्तर में चन्द्र को निर्गुणब्रह्म-निरूपण करते प्रस्तुत किया गया है, ब्रह्म-उत्पत्ति-वर्णन करते भी, जिससे स्पष्ट होता है कि प्रस्तोता निर्गुण-सगुण का स्थूल विवाद निस्सार समझता है। तब अष्टादशपुराणचर्चा आती है। इसके बाद कवि अपना लाघव-वर्णन, खल-वर्ण, सरस्वती-शिव-गणेश-स्तुति करता है। स्फीत मंगलाचरण में दशावतारकथा भी समाविष्ट है। परीक्षित, वसिष्ठ एवं अर्बुदगिरि (आबू) कर उत्पत्ति, ऋषि-यज्ञ, चाहुवान-उत्पत्ति, 36 क्षत्रिय वंशों की उत्पत्ति तथा चाहुवान-वंश-वर्णन तक ढाईसौ से अधिक पृष्ठ भर जाते हैं। तब बहुत विस्तार के साथ पृथ्वीराज के अनेक विवाहों, तज्जन्य युद्धों, अन्य अनेक युद्धों एवं आखेटों के वर्णन हैं। भोरा भीमंग (गुजरात-नरेश), नाहराव (मंडोवर-नरेश), जियाउद्दीन मुदगलराय मेवाती (मेवात-नरेश), कुमोदिन (कुमाऊँ-नरेश), जयचन्द्र (कन्नौज-नरेश), अनंगपाल (दिल्ली-नरेश), कर्णाटक-युद्ध गुज्जरराय (भीम-मित्र), भीम (उज्जैन-नरेश), भान (काँगड़ा-नरेश), पंचाइन (चदेरी-नरेश), बालुकराय (जयचन्द्र-मित्र) इत्यादि के वर्णन कल्पित हैं। भोरा भीम के प्रकरण में दोनों की प्रेमपात्रा इछिनी से विवाह, नाहरराय के प्रकरण में उसकी पुत्री से विवाह, कुमोदिन के प्रकरण में उसे परास्त कर यादवराज विजयपाल की पुत्री पद्मिनी से विवाह, जयचन्द्र के प्रकरण में पहले उसके भतीजे की मैंगेतर देवगिरि-नरेश यादवराज की पुत्री शशिप्रता का हरण तथा बाद में स्वयं उसकी पुत्री संयोगिता का हरण-विवाहादि, कर्णाटक-युद्ध में कर्णाटकी देश्या की उपलब्धि, भीम के प्रकरण में उसकी पुत्री इन्द्रावती से विवाह, भान के प्रकरण में उसकी पुत्री से विवाह, पंचाइन के प्रकरण में रणथम्भौर-नरेश भान की पुत्री हंसावती से विवाह के वृत्त यह अवश्य सिद्ध करते हैं कि बारहवीं शताब्दी में राजपूत विवाहयुद्ध-रोग से ग्रस्त थे, जिसका परिणाम उनका मरण अर्थात् तुर्क-सत्ता-स्थापन ही हो सकता था। 'आल्हा' की बावन लड़ाइयों में भी अधिकांश विवाहबद्ध हैं। "आधे आँगन भीरी परि रहि आधे चलै छपक तरवार" एक युगसत्य था, जिसका अवशेष आज भी पंजाब-हरियाणा-दिल्ली में वर की घोड़ी पर सवार 'सखड़ग-छवि' में देखा जा सकता है। चलचित्र भी अधिकतर इसी रूढ़ि पर चल रहा है। इन वर्णनों का इतिहासपरक महत्त्व बस इतना ही है। अनंगपाल का पृथ्वीराज का मातामह होना इत्यादि विवादास्पद है। जयचन्द्र भी अनंगपाल के दूसरी कन्या से उत्पन्न दौहित्र थे तथा अनंगपाल के द्वारा पृथ्वीराज को गोद लेने के कारण पृथ्वीराज से द्वेष रखते थे, यह वृत्त भी विवादास्पद है। यह सत्य है कि पृथ्वीराज और जयचन्द्र में अनबन थी। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को याचित सहयोग नहीं दिया था। यदि पृथ्वीराज और जयचन्द्र में सहयोग होता तो मोहम्मद गोरी कभी सफल न हो सकता था; ठीक वैसे ही जैसे यदि चोल-सम्राट् एवं मालवा-नरेश

1. समय = सर्ग या अध्याय या प्रकरण। डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में प्रत्येक समय का उल्लेखादि किया है।
2. धानेसर (प्राचीन स्थाण्वीश्वर या स्थानेश्वर जहाँ प्रभाकरवर्द्धन का उत्कर्ष हुआ था, जिनके पुत्र हर्षवर्द्धन राज्यकाल 606-47 ई. विश्वविख्यात हैं, यद्यपि उनकी राजधानी कान्यकुब्ज या कन्नौज थी) से 14 मील दूर। लेन-पूल इत्यादि इतिहासकार गलती से नारइन लिख गए हैं।
3. 'पृथ्वीराजरासो' का आरम्भ भी प्रक्षेपणमुक्त नहीं है। चन्द्र अपने नायक से द्वेष रखनेवाले जयचन्द्र के राजकवि नैषधीयचरितम् के संस्कृत-महाकवि श्रीहर्ष की स्तुति कैसे करते? जयचन्द्र के दरबारी कवि भट्ट केदार से उनका वादविवाद रासोसिद्ध है ही।
4. दण्डी ('दण्डिनः पदलालित्य')।
5. यह भी प्रक्षेपण है, क्योंकि गीतगोविन्दकार जयदेव हों या अनर्घराघवकार जयदेव या प्रसन्नराघवकार जयदेव, तीनों परवर्ती हैं।

सामने आते तो महमूद गज़नवी सफल न हो सकता था। महमूद कश्मीर में हारा था, उसका भांजा सालार मसऊद बहराइच में (जहाँ के वीर जैन राजा सुहृदेव या सुहेलदेव ने उसे मार भी डाला था)। एकता का अभाव भारत के पतन का प्रधान कारण रहा है। डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार, पृथ्वीराज के पतन पर जयचन्द्र ने कन्नौज में घी के दिए जलवाए थे। किन्तु वे भी या तो तलवार के घाट उतारे गए या स्वयं यमुना में उतर गए।

‘पृथ्वीराजरासो’ में शाहाबुद्दीन गोरी का वृत्त भी मनमानी कल्पनाओं से आच्छन्न है। चित्ररेखा नामक वेश्या पर गोरी और उसके भाई हुसैन की आसक्ति, हुसैन के पृथ्वीराज की शरण में आने के कारण बारम्बार युद्ध, पृथ्वीराज का चन्द्र की प्रेरणा से शब्द-वेध इत्यादि सारा-कुछ कल्पित लगता है। शरणागत-रक्षा का शिल्प हम्मीर पर रचित काव्यों में भी प्रयुक्त हुआ है (जो उस सन्दर्भ में ऐतिहासिक हो सकता है)—संयोगात् हम्मीर पृथ्वीराज-वंशधर थे। इस घटना-लोक में अतीतरस इतना है कि तीनों (पृथ्वीराज, चन्द्र, गोरी) मरे नहीं, मारे गए।

पृथ्वीराजरासो में परमाल का प्रकरण ऐतिहासिक है। परमाल चन्देल थे; खजुराहो-निर्माताओं से सम्बद्ध। पूर्वोत्तर-भारत के चन्देल और सेनापति जैसे जनपद चन्देल राजपूतों की दूरगामी विजयों के सूचक हैं, जिन पर व्यापक ऊहापोह अपेक्षित है। महोबा-नरेश परमाल या परिमाल या परिमर्देव या परमर्दिन, वीर-सामन्त आल्हा-ऊदल द्विबन्धु एवं उनके पितृव्यपुत्रद्वय मलखान-सुलिखान (मलखान-सुलखान या मलखे-सुलखे) का वृत्त ‘आल्हा’ में भी मिलता है। इतिहाससिद्ध है कि 1182 ई. में अन्ततः पृथ्वीराज ने महोबा-ध्वंस के अनन्तर विजय प्राप्त की थी। इस व्यर्थ-परिणामी (क्योंकि परमाल पुनः महोबा-नरेश बने) युद्ध-शृंखला में राजपूत-शक्ति का भयावह हास हुआ, जिससे पृथ्वीराज की अदूरदर्शिता प्रमाणित होती है। उन्होंने इससे भी बढ़कर अदूरदर्शिता का प्रदर्शन तब किया जब 1191 ई. में मोहम्मद गोरी के हारने और घायल होकर भागने के बावजूद उसे और तुर्कों की शक्ति को पूरी तरह नष्ट नहीं किया। दण्ड वही मिला जिसके वे पात्र थे किन्तु अनवरत दण्ड हिन्दूजाति को भोगना पड़ा।

उत्कृष्ट शृंगार-काव्य

‘पृथ्वीराजरासो’ की अधिकतर श्रेष्ठ कविता शृंगाररस में निबद्ध है। चाहे उसका बृहत्तम-रूप हो या बृहत्-रूप या मध्यम-रूप या लघु-रूप, सब शृंगारप्रधान हैं। शशिघ्नता, पद्मावती इत्यादि के प्रकरणों में नायिकाभेद, नखशिख, ऋतुवर्णन इत्यादि की अच्छी कविता प्राप्त होती है। ‘पद्मावती’ समय पृथ्वीराजरासो का सर्वोत्तम अंश है।¹ ऐसे सारे ‘समय’ सुन्दरीप्राप्ति-युद्धवर्णनों से भी सम्पन्न हैं। महाकाव्य अपने ‘रासो’ विशेषण के साथ पूरा न्याय करता है। नाना शैलियों में निबद्ध कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. मनहु कला ससभान कला सोलह सो बन्निय। बाल वैस ससि ता समीप अप्रितरस पिन्निय ॥
विगसि कमल स्निग, भमर, बेनु, खंजन, मृग लुटिय। हीर, कीर अरु बिम्ब मोनि नखसिख अहिघुटिय ॥
2. हरित कनककांति कापि चम्पेव गोरी। रसित पदुमगंधा फुल्ल राजीवनेत्रा ॥
उरज-जलज शोभा नाभिकोशं सरोजं। चरणकमल हस्ती लीलया राजहंसी ॥
3. चंद बदन, चख कमल, भौंह जनु भ्रमर गंधरत। कीर नास, बिंबोष्ठ, दसन दामिनी दमकत ॥
भुज मृनाल, कुच कोक, सिंह लंकी, गति बारुन। कनक कांति-दुति देह, जंघ कदली-दल आरुन ॥
अलसंग नयन मयनं मुदित, उदित अनंगह अंग तिहि। आनी सुमंत्र-आरंभ बर, देखत भूतल देव जिहि ॥
4. षट रिति बारह मास गय, फिर आयो रु बसंत। सो रिति चंद बताउ मुहि, तिया न भावै कंत ॥
जौ नलिनी नीरहि तजै, सेस तजै सुरतंत। जौ सुबास मधुकर तजै, तौ तिय तजै सु कंत ॥
रोस भरे उर कामिनी, होय मिलिन सिर अंग। उह रिति तिया न भावई, सुनि चुहान चतुरंग ॥

शृंगार-वर्णन में चन्द्र एवं परवर्ती जल्हण, मलैसिंह इत्यादि ने पिंगल (ब्रजभाषा) एवं संस्कृत का प्रयोग अधिक किया है, वीररस-वर्णन में डिंगल (अपभ्रंश-मिश्रित राजस्थानी) का और इससे इनका वर्णानुकूल अभिव्यक्ति-सामर्थ्य स्पष्ट हुआ है। छन्दयोजना में भी कवि-कौशल के दर्शन होते हैं। चन्द्र की पिंगल को देखकर चौकना व्यर्थ है, क्योंकि उनके निधन के कुल साठेक साल बाद

1. ‘पृथ्वीराजरासो’ चार रूपों में प्राप्त है—संयोगात् बृहत्तम-रूप में अन्य रूपों की कविता प्राप्त हो जाती है। लघुतम-रूप विशेष प्रात्ययिक बताया जाता है।
2. शुक्लजी ने ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में प्रायः इसी के उद्धरण दिए हैं।

पैदा हुए अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) की पिंगल (व्रजभाषा) उनकी व्रजभाषा से भी अधिक साफ-सुथरी है। यही नहीं, खुसरो की खड़ीबोली तो आज की खड़ीबोली जैसी ही है।

उच्चस्तरीय वीरकाव्य

चन्द्रवरदायी वीररस के महाकवि के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं, यद्यपि उनका गुणपरिमाणगत शृंगाररस के महाकवि का रूप निस्सन्देह श्रेष्ठतर है, इसका कारण शृंगाररस में उनका संस्कृत-अनुकरण है, जबकि वीररस में स्वयं उनका अनुकरण किया गया है। चन्द्र की दीर्घ, घर्षणयुक्त, नादपूर्ण एवं सशक्त डिङ्गल का अनुकरण जल्हण, मलैसिंह, जज्जल, जटमल, तुलसी, भूषण, सूदन, जोधराज इत्यादि तक में दृग्गत होता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. वज्जिय घोर निसान रान चौहान चहों दिस। सकल सूर सामन्त समरि बल जंत्र मंत्र तिस।।
उठे राज प्रिथिराज बाग मनो लग्न वीर नट। कद्वत तेग मनवेग लगत मनो बीजु झट घट।।
थकि रहे सूर कौतिक गगन, रँगन मगन भइ शोन धर।
हदि¹ हरिष वीर जगो हुलसि, हुरेउ रंग नव रत्त वर।।
2. भयो जनम प्रिथिराज दुग्ग खरहरिय सिखर गुर²। भयो भूमि भुवचाल धमकि धसमसिय अरिप पुर।।
गढ़न कोट सेलोट नीर सरितन बहु बडिड्य। भौचक भय भूमिया चमक चक्रित चित चडिड्य।।
खुरसान³ थान खलभल परिय, ग्रंभपात भय ग्रंभनिय। बैताल बीर बिकसे मनहु हुंकारत खह देव निय।।
3. गजपति चलििय जलध हल्लिय गरज नभ घन भुल्लिय। हलहलन घटन घोर घंघर नाग दुंभर डुल्लिय।।
गत लगि गिरिवर पुरहि तरवर हलहि धरवर धावही। झलकंत दंत कि पंत बग धन धाम कल सति गावही।।
गज वहत मद मद मनहु घन मद छुट्टि छिंछन उम्भरै। पग जोरि-जोरि मरोरि मुर जनु दिष्ष सुरपति छुम्भरै।।
4. धपी सेन सुरतान मुडि छुट्टिय चावहिसि। मनु कपाट उद्धरयो कूह फुट्टिय दिसि-बिहिसि।।
मार-मार मुष किन्न लिन्न चावंड उपारे। परे सेन सुरतान जाम इक्कह परिधारे।।
गल वत्थ घत्त गाढ़ो ग्रहो जानि सनेही भिंटयौ। चामंडराय करिवर कहर गोरी दलबल कुट्टयौ।।

जगनिक⁴

उत्तर भारत, विशेषतः बुन्देलखण्ड⁵ और बैसवाड़ा⁶ (बैसवारा) के अत्यन्त ओजपूर्ण एवं लोकप्रिय वीरकाव्य 'आल्हा' या आल्हखण्ड (जिसे आ. श्यामसुन्दरदास ने 'परमालरासो'⁷ का उपयुक्त अभिधान प्रदान किया) के वीर-कवि जगनायक या जगनिक (देहान्त 1182 ई.)⁸ महोबा⁹ के राजा परमर्दिदेव या परमर्दिन् या परमाल (1165-1205 ई.)¹⁰ के राजकवि थे। परमाल महान् चन्देल-वंश

1. हृदय में (हदि)।
2. आवू का गुरु शिखर जो हिमालय एवं निलिगिरि के बीच सर्वोच्च शिखर है। श्लेष से 'उच्च शिखर' या 'महान् शिखर' भी।
3. खुरसान जो मध्यकाल का विख्यात नगर था, जिसका उल्लेख खुसरो इत्यादि इतिहासकारों, नानक इत्यादि सन्तों ने भी किया है।
4. मैंने बहुत परिश्रम करके जगनिक पर एक शोधनिबन्ध लिखा और सम्मेलन-पत्रिका (प्रयाग) के सम्पादक स्व. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल से पत्र-व्यवहार करके प्रेषित कर दिया। उसका क्या हुआ? पता नहीं! हाँ, भाग 73 संख्या 1-2, पौष-ज्येष्ठ, शक 1910 के अंक में स्व. डॉ. भगीरथ मिश्र का 'पृथ्वीराजरासो का महोबाखण्ड, परमालरासो और आल्हखण्ड पर एक तुलनात्मक दृष्टि' लेख अवश्य देखा! 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जन्मशती विशेषांक' में निबन्ध पर प्रति-पारिश्रमिक कुछ न मिला था, किन्तु इस सन्दर्भ में निबन्ध ही गायब हो गया!! मूल-प्रेषण (पत्र में लिखा भी) के कारण दोबारा लिखना पड़ रहा है! 'संयोगात्' उक्त अंक में ही 'डॉ. रामप्रसाद मिश्र की मान्यताप्राप्त कविताएँ' (सं. डॉ. पवनकुमार) की 'समीक्षा' छपी है जो मेरा अपमान भी करती है! यह है महामना एवं राजर्षि के सम्मेलन की दशा।
5. बाँदा, हमीरपुर, जालौन, झाँसी इत्यादि (उत्तर प्रदेश) से मध्य प्रदेश के सम्पृक्त अंचलों तक फैला महान् भूखण्ड।
6. उन्नाव-रायवरेली के अंचलों की असि-मसि-उर्वरा भूमि।
7. डॉ. भगीरथ मिश्र परमालरासो एवं आल्हखण्ड को दो ग्रन्थ 'मानते' हैं (कोई प्रमाण नहीं देते)।
8. 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' (डॉ. ईश्वरी प्रसाद), पृष्ठ 155 के ऐतिहासिक आधार पर।
9. 'करुवा पानी है महुबे का' (आल्हा)।
10. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (डॉ. ईश्वरी प्रसाद), पृष्ठ 155।

के अन्तिम राजा थे। चन्देलों ने विश्व-कला के वास्तविक आश्चर्य खजुराहो का निर्माण किया। सुदूर मणिपुर-नागालैण्ड क्षेत्रों में चन्देल एवं सेनापति जिलों का इतिहास ज्ञात हो तो इनका प्रताप स्पष्ट है। प्राचीन यहूदियों के मिजोरम-प्रवेश का इतिहास तो अब भारत से इसाइल तक ज्ञात हो चुका है, किन्तु जनमेजय के विकट नाग-सत्र से जान बचाकर भागे नाग-जाति का उल्लेख नहीं मिलता। नागालैण्ड, नागपुर, नागदा, नागौर इत्यादि से लेकर नागर, नागा, नाग, नागपाल, नगाइच इत्यादि तक नाग-जाति का प्रसार उपेक्षणीय नहीं है। परमाल के महोबे में जगनिक का वही रुतबा था जो पृथ्वीराज की दिल्ली में चन्द्रवरदायी या चन्द्र या चन्द का और जयचन्द्र के कन्नौज में भट्ट केदार का। परमाल के सदृश जगनिक एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। यह सत्य है कि उनकी मूल वाणी परवर्ती एवं अनेकस्थानीय प्रक्षेपों में खो गई है, किन्तु उसका खोया रूप भी उनसे सम्पृक्त होने के कारण अमर है। बुन्देलखण्ड, बैसवाड़े (बैसवारा) इत्यादि की वीररसिक जनता वर्षा में आल्हा का आनन्द लेती है। आल्हा या आल्हखण्ड की 52 लड़ाइयाँ सारी-की-सारी जगनिक की हों, यह कठिन है। जगनिक कहीं-कहीं वर्ण्य हैं, वर्णनकर्ता नहीं। परवर्ती रण-सामग्री तोपों, गोलों, बन्दूकों की चर्चा स्पष्टतः प्रक्षिप्त है। अतिरंजनाएँ जगनिक की नहीं लगती। :

1. एक को मारे, दुइ मरि जावैं, तिसरा खौफ खाय मरि जाय।
2. बड़े-बड़े चमचा हैं महुबे माँ जिनमाँ नौ मन दालि अमाय।
बड़े खवइया महुबे वारे नौ-नौ चमचा जाइँ उड़ाय।।
3. इती हकीकत करिकै रूपन लै घोड़ा उड़ि गयो सड़ाक।

भाषा-रूप अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग है। रचना बस लोककाव्य है। किन्तु उसमें इतिहास के वृत्त विद्यमान हैं : पृथ्वीराज, जयचन्द्र, परमाल इत्यादि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं तथा पृथ्वीराज की महोबे पर विजय पृथ्वीराजरासो एवं इतिहास दोनों में स्पष्ट है। पृथ्वीराजरासो का यह दोहा प्रस्तुत है (जो मलैसिंह या मलयसिंह रचित है) :

जीति महुब्बा लीय बर ढिलिय आनि सुपत्थ।
जंजं किति-कला बढी मलैसिंह जस कत्थ।।

राजा परमाल एक कुशल राजनीतिज्ञ थे, जो पृथ्वीराज और जयचन्द्र जैसे दो प्रतापी महाराजाओं के मध्य हत या आहत नहीं हुए। 1182 ई. में पृथ्वीराज से परास्त होकर भी वे जमे रहे। यही नहीं, 1202 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक से परास्त होने के बाद भी वे जीवित रहे। उनके वंशजों ने सोलहवीं सदी तक इस या उस रूप में राज्य किया। आज भी बुन्देलखण्ड से कानपुर इत्यादि तक चन्देलों का अच्छा रुतबा है। जगनिक परमाल के राजकवि तो थे, किन्तु उनके आश्रित वीर-चतुष्टय देशराज या यशराज या जस्सरज के पुत्र आल्हा-ऊदल तथा इन दोनों के चाचा वत्सराज या बच्छराज के पुत्र मलखान-सुलखान (मलखे-सुलखे), विशेषतः ऊदल और मलखान, का विशद गान उनकी वीरपूजा या गुणग्राहकता का द्योतक है। प्रसिद्ध है कि आल्हा-ऊदल के परमाल से रूठकर कन्नौज चले जाने पर रानी मल्हना ने जगनिक को ही, पृथ्वीराज के आक्रमण पर, मनाने के लिए भेजा था। ज्ञानी कवि ने आल्हा-परम्परा के काव्य 'वीरविलास' (1701 ई.-1758 वि.) में 'आल्हा-मनौआ' एवं 'नदिया बेतवा की लड़ाई' का बहुत अच्छा वर्णन किया है। शत-शत जनकवि जगनिक से प्रेरित हुए हैं—इतने कि जगनिक उनकी भीड़ में खो गए हैं। जगनिक सच्चे वीर-कवि थे। पृथ्वीराज के भी प्रशंसक हैं। कुछ उद्गार (परिवर्तित हों या प्रक्षिप्त पर लगते उनके हैं) देखें :

1. जा दिन जनम भयो ऊदल को धरती धँसी अढ़ाई हाथ।
2. कहि कै पलटत ऊदल नाहीं कलहा देसराज को लाल।
3. रारि बढ़ावै माँ ऊदल हैं मोहरा लेवे मा मलखान।
4. आधी मनसई है दुनिया माँ आधी बाँटि लीन्ह मलखान।
5. गज भर छाती प्रिथिराज की साढ़े-सात हाथ का ज्वान।

मुझे समग्र आल्हखण्ड पढ़ते और उस पर विचार करने से यह लगा है कि आल्हा-ऊदल इत्यादि आदिवासी-वनवासी (बनाफर) मूल के थे जो वीरत्व के कारण क्षत्रिय मान लिए गए थे।

जगनिक कोरे-कवि न थे, समरभूमि में युद्ध करनेवाले शूर-वीर भी थे। 'बेला सती' (अन्तिम लड़ाई) में वे युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त कर अमर हुए थे :

चँवड़ा बाँभन औ ढेवा का परिगा समर बरोवरि आय ।
 विकट लड़ाई भइ दुनहुन माँ, ढेवा जूझि गए मैदान ।
 घोड़ा वढ़ायो जगनायक ने करिकै भूतपती को ध्यान ।।
 बड़े लड़इया दुहँ बीर हैं मानी नहीं किसी ने हार ।
 जगनिक जूझे समरभूमि मैं चँवड़ा गरु दीन ललकार ।।

मेरी समझ में, चँवड़ा या चौड़ा का नाम चामुंडराय या चामुंडाराय था तथा दिल्ली में यमुना-पार स्थित चौड़ा गाँव उसका स्मरण कराता है (भले ही आज यह अज्ञात तथ्य बन गया हो)। इसी ब्राह्मण योद्धा ने ऊदल का वध किया था। सम्भवतः अत्याधिक युद्धश्रान्त होने पर यह आल्हा द्वारा मारा गया। पृथ्वीराजरासो में सम्भवतः चामुंडराय का गज-रूपक-अलंकृत वर्णन प्राप्त होता है :

धपी सेन सुरतान मुट्टि छुट्टिय चावहिसि । मनु कपाट उद्धर्यो कूह फूट्टिय दिसि-बिहिसि ।।
 मार-मार मुष किन्न लिन्न चावंड उपारे । परे सेन सुरतान जाम इक्कह परिधारे ।।
 गल वत्थ घत गाढ़ो ग्रहो जानि सनेही भिंटयौ । चामुंडराय कविवर कहर गोरी दलवल कुंड्यौ ।।

चौड़ा जैसे भारी जुझारू से भरपूर लोहा लेनेवाले जगनिक निस्सन्देह एक यशस्वी योद्धा रहे होंगे, क्योंकि ऐरा-गैरा-नल्लू-खैरा¹ ऊदल को मार सकनेवाले और स्वयं आल्हा द्वारा मारे जाने वाले वीररत्न से योग्यता में साथ नहीं लड़ सकता था।

जैसे पृथ्वीराजरासो में अहं की विकृति में प्रियमाण राजपूत-शक्ति के नकारात्मक रूप का बारम्बार दर्शन अनावश्यक पारस्परिक युद्धों, कुरुचिकर युद्धमूल विवाहों, दिल्ली-पतन की सम्भावना के बावजूद पृथ्वीराज की कामुकता इत्यादि इतिहास के मूल बिन्दुओं से सम्पृक्त रूप में होता है, वैसे ही आल्हा में भी। सामान्य-जन द्वारा बारम्बार प्रशंसित तथा आ. शुक्ल एवं अनुकरणवादियों द्वारा लगातार उद्धृत निम्न पंक्तियाँ तत्कालीन राष्ट्र के पतन की द्योतक हैं, क्योंकि उनमें वीर का आदर्श कुत्ता और सियार बताया गया है, अल्पमृत्यु का मण्डन किया गया है—इनमें व्यक्त विराट् इतिहास-सत्य-चिर-मननीय है :

बारह वरिस लै कूकर जीऐ औ तेरह लै जिऐ सियार ।
 वरिस अठारह छत्री जिऐ, आगे जीवन कौ धिक्कार ।।²

इन पंक्तियों में कवि ने तत्कालीन मिथ्या वीरदर्प की विवृति की है। अतीतरस से इतिहास-बोध तक इन पंक्तियों का अपार महत्त्व है। राष्ट्र का पतन कैसे न होता?

आल्हा या आल्हखण्ड के स्फीत वीर-स्तवन में एक विराट् मानवतावाद विद्यमान है, जिसके तेज में यौन-दर्प, स्वपक्ष-मण्डन, वैशिष्ट्य-राग-आलाप, साम्प्रदायिकता, जातीयता, प्रांतीयता इत्यादि क्षुद्रताएँ एवं संकीर्णताएँ भस्म एवं लुप्त हो गई हैं। पृथ्वीराज, जयचन्द्र, परमाल इत्यादि महाराज हैं, दिल्ली के ताहर, कन्नौज के लाखन (“लाखन राना गढ़ कनउज के नाती बेन चक्कवै क्यार”, “बेन चक्कवै को नाती हों बेटा रतीभान का लाल ।.... जयचँद ने लिया गोद बिठाल”), महोबा के ब्रह्मा इत्यादि राजकुमार, आल्हा, ऊदल, मलखे, सुलखे इत्यादि नीचकुलोद्भव (बनाफर) राजपूत (क्षत्रिय), रूपन नाई, धनुवाँ तेली, लला तमोली, देवल (आल्हा-ऊदल की जननी), मल्हना (परमाल या चँदले या चँदेलाराय की रानी), गजमोतिन (मलखान या मलखे की पत्नी) इत्यादि स्त्रियाँ, ताला सैयद (“बनारस के सरदार”), भूरा मुगलिया (काबुलवाला) इत्यादि मुसलमान, किन्तु सबमें भूमिभक्ति का रूप एकरस है, वीरत्व एकरस है। ऐसा विराट्, सार्वभौम एवं स्तुत्य वीरत्व संसार की किसी अन्य वीरगाथा में शायद ही मिले। खरी-धर्मनिरपेक्षता की कसौटी पर आल्हा या आल्हखण्ड एकदम खरा उतरता है। उत्तर भारत का ग्रामसमाज अपनी बरसात आल्हा, ऊदल और मलखान के साथ काटता है। परकीयता-भ्रमित नगरों तक में आल्हा की गूँज सुनाई पड़ जाती है। ऐसे अवसरों पर आल्हा के ओजस्वी गायक वीररस की जो सशक्त वर्षा करते हैं वह मेघों की वर्षा से भी अधिक प्रभावी होती है।

1. संयोगात् आल्हा में वर्णित चार अश्व जिन्हें जनता द्वारा मुहावरा बनाकर मूलार्थ-भिन्न किया गया है। आल्हा में ऊदल के घोड़े बेंदुला, मलखान की घोड़ी कवुतरी और आल्हा के हाथी पचसावद का वर्णन भी प्राप्त होता है।
2. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 49; किन्तु मैंने नवयौवनकाल में बावनों लड़ाइयाँ पढ़ते समय कई में इन पंक्तियों का यह रूप देखा था :
 बारा बरस तक कूकर जीऐ औ सोरा तक जिऐ सियार ।
 वरस अठारा छत्री जीऐ, आगे जीऐ तौ धिक्कार ।।

युद्धवर्णनों की अधिकता तथा एकरूपता, युद्धजन्म विवाहों का अभिन्न रूप, सीमित शब्दयोजना से उत्पन्न पुनरुक्ति, अत्युक्ति के अतिरेक इत्यादि के साथ भी आल्हा एक जीवन्त वीरकाव्य है, अमर वीरकाव्य है, महान् लोककाव्य है।

दिल्ली, कन्नौज, महोबा के अतिरिक्त, माँझी भी ऐतिहासिक स्थल लगता है। 'माँझी की लड़ाई' पहली है (कम-से-कम जो विशाल आल्हखण्ड मैंने पढ़ा था उसमें)। मेरी समझ में, माँझी माण्डवगढ़ या मांझू ही है ('अस्सी नदी, नवासी नारे, माँझी बसे नरबदा पार' की अतिरंजना पूर्वधुनिक मार्गकष्टों की सूचना भी देती है)। माँझी के राजा जम्बे (जाम्बवान् या जामवंत) का पुत्र करिया (कलिंगराय) ने महोबे की लूट की थी, जस्सरज-बच्छराज बन्धुद्वय का वध किया था (दोनों के सिर माँझी के वृक्ष पर टंगे थे), लाखा पातुर (पतुरिया या नर्तकी या वेश्या), पँचसावद हाथी तथा अपार सम्पत्ति लूट ले गया था। यह वृत्त ज्ञात होने पर अल्पवयस्क ऊदल प्रतिशोध पर अड़ जाता है। टोह लेने, माँझी की राजकुमारी फुलवा से प्रेम, परवर्ती भीषण युद्ध एवं विवाह, वर-वधू का महोबा-आगमन (मुँह दिखलाई मल्लना रानी फुलवै दीन्ह नौलखा हार) इत्यादि का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। आल्हखण्ड के प्रधान रस वीर एवं शृंगार हैं, किन्तु अंगीरस वीर ही माना जा सकता है।

आल्हा में यह ऐतिहासिक सत्य भी व्यक्त है कि मुसलमान दिल्ली-सल्तनत से पूर्व भी विभिन्न भारतीय नरेशों का आश्रय प्राप्त करते थे। उनमें अनेक वीर होते थे। युद्धकाल में वे कर्तव्य को मज़हब से पृथक् रखते थे :

भूरा मुगलिया काबुलवाला नामी सूर-वीर सरदार। आगे बढ़न लग्यो खेतन में गरुई हाँक देत ललकार।।

लाखन बोले तब सैयद ते मैं चाचा की लेउँ बलाय। बड़ी लड़इया यहु भूरा है याको सीस लेहु कटवाय।।

भूरा पृथ्वीराज-पक्ष का वीर था, ताला सैयद लाखन-पक्ष (आल्हा-ऊदल) का। दोनों ने इसी युद्ध में वीरगति प्राप्त की। हवलदार अब्दुल हमीद की कथा नई नहीं है!

निस्सन्देह, अनेक अपहरणों की कथाएँ प्रक्षिप्त हैं किन्तु वे भी सम्बद्ध-युगबोध की दृष्टि से निस्सार नहीं लगतीं।

जागनिक पर प्रात्ययिक वृत्त का अभाव रहा है। 'विनोद' में मिश्रबन्धु ने जागनिक को कुछ पंक्तियों में ही चलता किया है। आ. शुक्ल ने जागनिक के संक्षिप्त विवरण में सं. 1230 (1173 ई.) का समय दिया है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि यह समय जन्म का है या रचना का या मृत्यु का—वैसे, ऐतिहासिक दृष्टि से यह समय तीनों में से किसी का नहीं हो सकता। डॉ. भगीरथ मिश्र का लेख अनेकग्रन्थविशृंखल है, जिससे न जागनिक पर ठोस प्रकाश पड़ता है, न आल्हखण्ड पर; वह प्रायः उद्धरणविहीन भी है। ऐसा तब है जब सुस्पष्ट पृथ्वीराज-परमाल इतिहास उपलब्ध है, पृथ्वीराजरासो में काव्यबिन्दु उपलब्ध हैं, 1865 ई. में फ़रूखाबाद के ज़िलाधीश पर चार्ल्स एलिअट¹ द्वारा सम्पादित एवं लिपिबद्ध प्रति² उपलब्ध हैं, वाटरफील्ड द्वारा अंग्रेज़ी में अनूदित अंश (जो उनके असमय निधन पर सर जॉर्ज ग्रीअर्सन ने प्रकाशित कराए) उपलब्ध हैं और आ. श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित 'परमालरासो' तो प्रसिद्ध भी है। मुझे आशा है, जागनिक पर विशेष शोध एवं आल्हखण्ड की विशद समालोचना की जाएगी।

जज्जल

'प्रस्थान'—ग्रन्थकार मिश्रबन्धु के अनुसार जज्जल (सं. 1357 अर्थात् 1300 ई.) "रणथम्भौर-नरेश के मन्त्री थे" किन्तु इतिहास में महाराज हम्मीर के गद्दार मन्त्री का नाम रणमल³ मिलता है जिसे अलाउद्दीन खिलजी ने कुत्ते की मौत का माकूल तोहफ़ा दिया था। वस्तुतः जज्जल (चन्द्रवरदायी के सदृश) समसामयिक योद्धा-कवि थे जिन्होंने हम्मीर के शौर्य का वर्णन तो किया ही था, स्वयं युद्ध भी किया था—सम्भवतः बलिदान भी (जैसा कि उनके सृजन में संकेतित है)। उनके स्वतन्त्र कवि-रूप के तथ्य को मिश्रबन्धु ने स्वीकार किया है। किन्तु लक्ष्मीधर सम्पादित 'प्राकृत-पैंगलम्' के आधार पर शार्ङ्गधर को भी छन्दकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया है। शार्ङ्गधर राजवैद्य एवं 'शार्ङ्गधर-पद्धति' के प्रख्यात आयुर्वेद-ग्रन्थकार तो थे किन्तु उनका हम्मीररासो काव्य अनुपलब्ध है तथा एतद्विषयक छन्द जज्जल के ही हैं जैसाकि नामोल्लेख से ही स्पष्ट है जो आ. शुक्ल की "मुझे पूरा निश्चय है कि पद्य असली

1. 'इलियट' का ग़लत रूप प्रचलित है ('इलिअट' होता तो भी ग़नीमत थी)।

2. बावन लड़ाइयाँ तेइस खण्डों में।

3. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (डॉ. ईश्वरीप्रसाद), पृष्ठ 264।

‘हम्मीररासो’ के ही हैं” स्थापना को कल्पना सिद्ध कर देता है। इतिहास विश्वास का विषय नहीं है, तथ्य का विषय है। व्यस्त आचार्य ने स्थापना-त्वर में “जज्जल भणइ” के शतशः निर्विवाद तथ्य की भी उपेक्षा कर डाली है। राहुल सांकृत्यायन ने इन छन्दों को जज्जल कृत माना है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का हम्मीर को अमीर का पर्यायवाची मानते हुए हम्मीर के व्यक्तित्व को ही प्रश्नचिह्नित करना इतिहास-विरुद्ध एवं निराधार होने के कारण शतशः उपेक्षणीय है। वे कहीं-कहीं शोध-अश्विनी को वल्गाविहीन कर देने की लत से लाचार हो जाते थे।

हम्मीर (बलिदान-वर्ष 1301 ई.) पृथ्वीराज के वंशज चौहान राजपूत थे, जिन्होंने मीर मोहम्मद शाह नामक मंगोल सेनापति की सेवाएँ स्वीकार कर व्यापक धार्मिक उदारता का परिचय भी दिया था, 1299 ई. अलाउद्दीन खिल्जी के एक सेनापति नुसरत खान के वध एवं उलूग खान को खुले रणप्रांगण में सम्पूर्णतः परास्त कर भगा देने के अमर योद्धा होने का श्रेय भी प्राप्त किया था, लगभग तीन वर्षों (1299-1301 ई.) तक लगातार जूझने के बाद हुतात्मा के रूप में अमर हुए थे—उनके कारण रणथम्भौर दूसरा चित्तौड़ बन सका, वीरता का तीर्थ बन सका। मैं इस विकट दुर्ग में इतिहास का प्रचण्ड साक्षात्कार कर चुका हूँ। रणथम्भौर कालिंजर और चित्तौड़ के साथ-साथ वीरता का एक पावनतम तीर्थ है, जिसकी समता तराइन और पानीपत तक नहीं कर सकते। उन पर संस्कृत, डिंगल एवं ब्रजभाषा में गौरवशाली काव्यसृजन प्राप्त होता है। जयचन्द्र सूरि कृत ‘हम्मीर-महाकाव्य’, भाण कवि कृत ‘हम्मीर दे चउपई’, शार्ङ्गधर कृत ‘हम्मीररासो’ (अनुपलब्ध), जज्जल कृत मुक्तक, जोधराज कृत ‘हम्मीररासो’, चन्द्रशेखर वाजपेयी कृत ‘हम्मीरहठ’ इत्यादि हम्मीर को एक महान् एवं अमर नायक सिद्ध करते हैं। ‘हम्मीर पर रचित वीरकाव्य’ शोधप्रबन्ध का उत्तम विषय है। जज्जल को उत्तम चरितनायक प्राप्त था जिस पर उत्तम काव्यसृजन अपेक्षाकृत सरल होता है। जज्जल के अतीव प्रभावी भाषा में उच्चकोटि के वीरकाव्य की सृष्टि की है :

1. ढोला मारिय दिल्ली¹ महँ, मुच्छिय मेच्छ² सरीर।
पुर जज्जला³ मंतिबर, चलिअ बीर हम्मीर॥
चलिअ बीर हम्मीर, पाअभर मेइणि कंपई।
दिग-मग णह अंधार, धूलि सुररह अच्छाहिइ॥
दिग-मग णह अंधार, आण खुरसाणुक ओल्ला।
दरमरि दमसि बिपक्ख मार दिल्लीय महँ ढोल्ला॥
2. पिंथउ दिइ सन्नाह, बाह उप्परि पक्खर दइ।
बंधु समदि, रण धँसेउ साह हम्मीर वअण लइ॥
उड्डुउ णह-पह भमउँ, खग रिपु-सीसहिं झलउँ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पब्बह अप्फालउँ॥
हम्मीर कज्ज जज्जल भणइ कोहाणल मह मइ जलउँ।
सुलितान-सीस करवाल दइ तज्जि कलेवर दिअ चलैउ॥
3. पअ-भर दरमरु धरणि, तरणि-रह धुलिय झंपिअ।
कमठ-पिट्ठ टरपरिअ, मेरु-मंदर-सिर कंपिअ॥
कोह चलिअ हम्मीद बीर गज-जूह सँजुत्ते।
किअउ कट्ठ, आ कंद! मुच्छि मेच्छिय के पुत्ते⁴॥

1. दिल्ली = दिल्ली, दिल्लीय, ढीली, दीली, दिल्ली। (दिहली, देहली भी)।

2. मेच्छ = मलिच्छ, म्लेच्छ, मुसलमान।

3. कविनाम, मन्त्रिनाम नहीं, जैसा कि शुक्ल मानते हैं। शुक्ल ने ‘पुर’ का अर्थ ‘आगे’ माना है, जब कि यह स्पष्ट अर्थ है कि पुर (रणथम्भौर) को मन्त्री की व्यवस्था में करके हम्मीर ने रण-प्रस्थान किया।

4. म्लेच्छों के पुत्रों को मूर्च्छित कर दिया (मार डाला या चेतनाशून्य कर दिया)।

अन्य कवि

मुंज

विश्वविख्यात महाराज भोज¹ (राज्यकाल 997-1052 ई.) के चाचा महाराज मुंज² (राज्यकाल 970-90 ई.) एक सफल योद्धा थे जिन्होंने कलचुरि-नरेश युवराज द्वितीय को परास्त किया था तथा मालवा की विजय-वैजयन्ती गुजरात और मारवाड़ तक फहराई थी, किन्तु जो दक्षिण (तेलंगाना) के राजा तैलप से परास्त हुए, बंदी बनाए गए, बंदी जीवन में तैलप की विधवा बहन मृणालवती से प्रेम के कारण भिक्षुक के रूप में द्वार-द्वार याचना करने के लिए विवश किए गए तथा अन्ततोगत्वा हाथी के पैरों से कुचलवा डाले गए—उनका जीवन ऐश्वर्य एवं भिक्षावृत्ति, विजय एवं पराजय, प्रेम एवं प्रवंचना के विरोधों से ऐसा परिपूर्ण था कि “न भूतो न भविष्यति” तक कहने को प्रेरित कर सकता है। गुजराती के महान् उपन्यासकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने उन पर ‘पृथ्वी-वल्लभ’ शीर्षक विख्यात उपन्यास रचा। हिन्दी-चलचित्र-निर्माता सोहराब मोदी ने ‘पृथ्वी वल्लभ’ शीर्षक विख्यात चलचित्र बनाया। जैनाचार्य मेरुतुंग कृत ‘प्रबन्धचिन्तामणि’ (संस्कृत) में सिद्धराज, कुमारपाल, हेमचन्द्र इत्यादि के जीवनवृत्तों के साथ मुंज की करुण-कथा एवं उनकी मार्मिक हिन्दी-कविता के दर्शन भी होते हैं :

1. मुंज भणइ, मृणालवइ! जुब्बण गयुं न झूरि।
जइ सकर सय खंड थिय तो इसी मीठी चूरि।।
2. जा मति पच्छइ संपजइ सा मति पहिली होइ।
मुंज भणइ मृणालवइ! विघन न बेढ़इ कोइ।।
3. बाँह बिछोड़वि जिह तुहं, हउँ — तेवई वा दोसु।
हिययट्टिय जइ नीसरहि, जाणउँ मुंज सरोसु।।³
4. झाली तुट्टी किं न मुउ किं हुएउ छरपुंज।
हिंदइ दारी बँधीयउ जिम मंकड़ तिम मुंज।।

1. मालवा-नरेश, जिनकी राजधानी धारा-नगरी (धार) थी, जिन्होंने भोजपाल (भोपाल) एवं भोजपुर (म. प्र.) इत्यादि बसाए, जो संस्कृत के आचार्य एवं कवि थे। अन्ततः राजा भीम (गुजरात) एवं राण कर्ण (त्रिपुरी) की सम्मिलित सेनाओं से युद्ध में वीरगति प्राप्त की। भोज परमार थे। उनके तथा परवर्ती परमार-काल में स्थापत्य एवं मूर्तिकलाओं की महान् उन्नति हुई। उनके नाम तथा उन पर नामकरणजन्य राजाओं पर अनेक भोजपुर मिल जाएंगे। जनकल्पना ने उन्हें कालिदास का आश्रयदाता तक बना डाला है! भोज महमूद गज़नवी, फ़िरदौसी इत्यादि के समकालीन थे। सोमनाथ ध्वस्त किए जाने पर इनकी धर्मभावना एवं राष्ट्रचेतना जागी (1026 ई.) और इन्होंने महमूद की वापसी पर युद्ध की तैयारी की, किन्तु करोड़ों के माल के लोभी लुटारे ने सिन्ध से होकर जाने का निर्णय कर लिया। सोमनाथ के युद्ध में महमूद को एक बार परास्त होकर पीछे हटना पड़ा था और दूसरी बार पराजय पर ‘अल्लाह’ और ‘जिहाद’ के बल पर ही विजय मिल पाई थी (जनश्रुति है कि गौएँ आगे करने पर)। 1026 ई. में सोमनाथ का ‘बुतशिकन’ 1022 में कालिंजर का ‘बुतफ़रोख्त’ भी था! खजुराहो के मन्दिर प्रमाण हैं!! सफल राजा गंड ने महमूद के पहले के सारे मन्दिर तो बचाए ही, उसके जाने के बाद एक मन्दिर और बनवाया। महमूद का एकमात्र लक्ष्य धन था। उसके सिक्कों पर संस्कृत, लक्ष्मी और ग़ज़नी (अफ़ग़ानिस्तान) में उसके एक सेनापति तिलक की वाजे-गाजे से हिन्दू-पूजा इत्यादि अन्य प्रमाण भी हैं।

2. इनका वास्तविक नाम वाक्पतिराज द्वितीय था। यह परमार राजपूत थे। सोमनाथ संग्रहालय में केवल इनके नाम (मुंज) का एक प्रस्तर-खण्ड मैंने देखा है, जो सम्भवतः इन्होंने ही उत्कीर्ण कराके कहीं पर अधिष्ठित किया था। लिपि देवनागरी है, किन्तु ‘ज’ गुजराती का लगता है।

3. यह दोहा मृणालवती का लगता है। किसी कथावर्णनकर्ता का भी हो सकता है। सूर के इस दोहे का प्रेरक लगता है :

बाँह छुड़ाए जात ही निबल जानि के मोहिं।

हिरदै सौं जब जाहुगे, मरद बदैगो तोहिं।।

5.

एहु जम्मु नग्गुहं गिउ, भइसिरि खग्गु न भग्गु।
तिक्खाँ तुरियँ न माणियाँ, गोरी गली न लग्गु।।

मुंज की आत्मपरक कविता अपनी मार्मिक प्रेमानुभूति, अपने क्षोभ एवं अपने नैराश्य की मार्मिक अभिव्यक्ति के कारण अत्यल्प होते हुए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, ऐतिहासिक महत्त्व की है। ज़फ़र का स्मरण आता है। हिन्दी में उन पर मौलिक खण्डकाव्य या नाटक या उपन्यास लिखा जाना चाहिए।

बादरबेणा¹

बादरबेणा नाम का अर्थ हुआ, बादल का सा बोलने वाला या मेघनाद²। मिश्रबन्धु ने एक अन्य बादरबेणा की चर्चा की है। यह बादरबेणा पृथ्वीचन्द नामक किसी राजा के सिद्ध या योगी टाइप व्यक्ति लगते हैं जो स्थायित्व एवं प्रभाव हेतु उपदेश को कविता का रूप देते रहे हैं। मिश्रबन्धु ने पृथ्वीचन्द राजा का समय 1168 ई. के आसपास माना है, जिन पर अनन्यदास नामक कवि ने लिखा था। इन बादरबेणा का समय यही हो सकता है। यद्यपि 'इलाज' जैसे शब्दों का प्रयोग समय पर शंका उत्पन्न कर सकते हैं तथापि 712 ई. के सिन्ध पर मोहम्मद बिन-क़ासिम एवं प्रायः 1000-1030 ई. के बीच महमूद गज़नवी के आक्रमणों तथा लाहौर (लवपुर), मुल्तान (मूलस्थान) इत्यादि तक साम्राज्य-प्रसार के कारण विदेशी (अरबी-फ़ारसी-तुर्की) शब्दों का प्रचलन समाधान कर सकता है। वैसे, भाषा लगभग 200 वर्ष बाद की लगती है। 'विनोद' से उदाहरण अवतरित है :

का होत मुड़ाए मूड़ बार। का होत रखाए जटा भार।।
का होत भमिनी तजे भोग। जौ लौं न चित्त थिर जुँ जोग।।
थिर चित्त करै सुमिरन मँझार। ऊपर साथै सब लोकचार।।
सुखमारग यह पृथिचंदराज। यदि सम न आन तम है इलाज।।

उपसंहार

सिद्धों की साधना, नाथों का योग, जैनों का अनेकमुख सृजन एवं चारणों का प्रशंसागान सभी संक्रान्ति-सूचक हैं क्योंकि उसमें सामान्यता एवं व्यापकता, स्थायित्व एवं सत्य का स्वाभाविक एवं प्रशान्त रूप अभिव्यक्त नहीं है, क्योंकि उसकी भाषा संक्रान्ति की स्पष्ट सूचना देती है, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से यह विकटतम संक्रान्तिकाल था। मिश्रबन्धु ने लिखा है, "भारतवर्ष में वह क्रान्ति का समय था।" ऐसी सर्वमुखी क्रान्ति ने पहले हुई थी, न बाद में हो सकी।

साहित्य-सृष्टि की दृष्टि से संक्रान्तिकाल परिस्थितियों को देखते सन्तोषजनक है। रामकाव्य की दृष्टि से स्वयंभू तथा चन्द्र, जल्हण (प्रकीर्णतः) इत्यादि, कृष्णकाव्य की दृष्टि से पुष्पदन्त, चन्द्र (प्रकीर्णतः) इत्यादि, बुद्धकाव्य की दृष्टि से सरहपा, शान्तिपा इत्यादि, योगकाव्य की दृष्टि से गोरखनाथ, चर्पटनाथ इत्यादि, शृंगारकाव्य की दृष्टि से सामान्यतः अब्दुल रहमान, मुंज इत्यादि तथा विशेषतः चन्द्र, नरपति नाल्ह इत्यादि, वीरकाव्य की दृष्टि से चन्द्र, जल्हण, जगनिक, जज्जल इत्यादि, नीतिकाव्य की दृष्टि से देवसेन इत्यादि ने ऐसा सृजन किया जो आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रतिपादित वीजवपनकाल नामकरण को सार्थक सिद्ध करता है (भले ही इससे प्रवृत्ति की कोई सूचना न मिलती हो) तथा जिसकी परम्पराएँ अद्यावधि दृग्गत हैं। गोरखनाथ जैसे अमर योगी और चन्द्रवरदायी जैसे अमर कवि इस काल की ही नहीं प्रत्युत सारे कालों तथा हिन्दी ही नहीं प्रत्युत सारी भारतीय भाषाओं के रत्न हैं। यह काल महान् पुनरुत्थानकाल का उर्वरककाल भी था। संक्रान्तिकाल के साहित्य-दर्पण में भारत के तत्कालीन धर्म, दर्शन, इतिहास और हिन्दू-जिजीविषा-विजिगीषा को स्पष्टतया बिम्बित देखा जा सकता है।

1. 'इस नाम का एक भाट कवि महाराज जयचन्द्र के पुत्र शिव जी के साथ था, पर उसकी भी कविता हस्तगत नहीं होती।' (विनोद)

2. रावणपुत्र मेघनाद से वैज्ञानिक-मेघनाद साहा तक प्रसरित नाम। बांग्ला के पाठ्यक्रम-पुस्तक-पुस्तिका लेखक राम-विरोधी भी होते हैं। वैसे, साम्यवादी रामविरोध में एकमत हैं। इन वाद-वृद्ध पुस्तिका-लेखकों को 'इतिहासकार' कहा जाता है! विडम्बना!

2. पुनरुत्थानकाल¹ (1300-1600 ई.)

सूफ़ी-काव्य	संत-काव्य	राम-काव्य	कृष्ण-काव्य	नीति-काव्य	युग-काव्य	शास्त्रीय-काव्य
हिन्दी के सूफ़ी-परम्परा के आदिकवि खुसरो, हिन्दी प्रेमाख्यान-परम्परा के आदिकवि दाऊद कुत्बन जायसी मंझन उस्मान।	रामानन्द नामदेव कबीर रैदास नानक दादू इत्यादि।	रामानन्द विष्णुदास पुरुषोत्तम तुलसीदास केशवदास ² नाभादास हृदयराम इत्यादि।	विद्यापति मीरों सूरदास नन्ददास रसखान हित हरिवंश इत्यादि।	कबीर नानक तुलसी रहीम।	कबीर नानक तुलसी नरहरि मनोहर कवि होलराय ब्रह्मभट्ट इत्यादि।	कृपाराम मोहनलाल करनेस वलभद्र मिश्र केशवदास रहीम तुलसीदास।
प्रवृत्तियाँ : इश्क़हक़ीकी प्रतीकवाद मोहम्मदीयत- प्रचार।	प्रवृत्तियाँ : अद्वैतवाद सूफ़ी-प्रभाव रहस्यवाद मानवतावाद।	प्रवृत्तियाँ : सगुणवाद साकारवाद आशावाद शक्तिवाद मानवतावाद।	प्रवृत्तियाँ : सगुणवाद साकारवाद लीलावाद ललित- मानवतावाद।	प्रवृत्तियाँ : समाज- सुधार चरित्रसुधार।	प्रवृत्तियाँ : युग- चित्रण युगसुधार प्रशस्तिवाद।	प्रवृत्तियाँ : रस एवं अलंकार का निरूपण।
भाषा : (1) खुसरो-मुख्यतः खड़ीबोली यवन-तन्त्र व्रज। (2) दाऊद इत्यादि- अवधी।	भाषा: नामदेव- खड़ीबोली। अन्य-मिश्रित।	भाषा: तुलसीदास- अवधी, व्रज, संस्कृत। अन्य-व्रज।	भाषा: विद्यापति- मैथिली अन्य-व्रज।	भाषा: कबीर, नानक-मिश्रित तुलसी-अवधी। रहीम-व्रज।	भाषा: मिश्रित, अवधी-व्रज।	भाषा: मुख्यतः व्रज।
प्रभाव: सूफ़ी-सीमित किन्तु सन्तों पर यत्किंचित्।	प्रभाव: समग्र समाज पर अद्यावधि।	प्रभाव: समग्र समाज पर अत्यन्त व्यापक एवं अद्यावधि।	प्रभाव: समग्र समाज पर अत्यन्त व्यापक एवं अद्यावधि।	प्रभाव: अद्यावधि समाजव्यापी।	प्रभाव: मानवतावाद एवं समन्ययवाद की गति।	प्रभाव: शास्त्रीयकाल की स्थापना-पृष्ठभूमि।

1. प्रचलित नाम भक्तिकाल, जो एकांगी है।

2. समय की दृष्टि से ही (अन्यथा वे शास्त्रीयकाल के उद्घाटनकर्ता हैं)।

2. पुनरुत्थानकाल

(1300-1600 ई.)

प्रस्तावना

विश्व-इतिहास का विकटतम संक्रान्तिकाल झेलनेवाला भारतवर्ष पुनरुत्थानकाल कैसे न देखता? यदि मिस्र, इराक, ईरान, हिन्देसिया, मलेसिया इत्यादि के सदृश भारत भी आक्रान्ताओं की लम्बी पिशाचलीला के परिणामस्वरूप अस्मिता खो बैठता तो यहाँ भी एक खिसियाहट से भरा और हीनभावनापूर्ण 'नवप्रकाशकाल' अस्तित्व में आ जाता जिसमें सारे पूर्वज नरकगामी हो जाते, सारे नाम बदल जाते, सारी जीवन-पद्धति मिट जाती और तब भारत उक्त देशों के सदृश ही विश्व को कुछ न दे पाता—रामानुज और वल्लभ, तुलसी और सूर, हरिदास और तानसेन, पुरंदरदास और त्यागराज, और शिवाजी, दुर्गावती और लक्ष्मीबाई, तिलक और रवीन्द्र और-तो-और गांधी और नेहरू तक नहीं, क्योंकि अहिंसा और पंचशील को मोहम्मदीयत में कोई स्थान नहीं है। विदेशी आक्रमण कहाँ नहीं हुए? विदेशी सत्ता कहाँ नहीं रही? किन्तु विदेशियों में वह हीनभावमूलक सर्वनाशवृत्ति कहीं नहीं मिलती जो भारत में प्रदर्शित की गई। कारण था : हमारे पास उच्चस्तरीय स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला तथा संगीतकला नहीं है अतः हम इनका सर्वनाश कर अपनी सत्तामूलक सर्वश्रेष्ठता स्थापित करेंगे! यह वन्य-प्रण शताब्दियों तक मानव-इतिहास में सभ्यता-संस्कृति का सर्वनाश करने के लिए कटिबद्ध रहा। यूरोप में वह परास्त कर बाहर धकेला गया, चीन-जापान इत्यादि में उसकी दाल न गल सकी, भारत में वह आंशिक सफलता मात्र प्राप्त कर सका। भारत में मुसलमान जीता भी, हारा भी। कई शताब्दियों तक सर्वनाश-यत्न करते-कराते वह थक गया। उसे स्पष्ट अनुभव होने लगा कि वह हिन्दूधर्म को मिटा नहीं सकता, क्योंकि सरस-गंगाधर्मी नीरस-मरुधर्मी बनने पर मृत्यु को वरीयता दे रहा था और मार भी रहा था। मोहम्मद बिन-कासिम, महमूद गज़नवी, मोहम्मद गोरी, गुलाम से सुल्तान बनने वाले कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, बलबन इत्यादि का विराट् भारत के एक या कुछेक भागों पर ही अधिकार स्थापित हो पाया और वह भी भीषण संघर्षों से आपूर्ण रहा। देश में व्यापकतर भागों पर सत्ता स्थापित करने वाला अलाउद्दीन खिल्जी जब नया मज़हब चलाने की सोच रहा था तब दिल्ली के मोटे कोतवाल अलाउलमुल्क (जो मतान्ध इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी का चाचा था) ने सावधान किया कि इससे मुसलमान बँटेंगे और उनके कमजोर होने की घात लगाए बैठे हिन्दू टूट पड़ेंगे (इससे कुछ वर्ष पूर्व ही जलालुद्दीन खिल्जी ने अहमद चप से वार्ता में हिन्दुओं की सम्पन्नता एवं कुफ़्र न मिटा पाने पर निरीहतामयी विवशता प्रकट की थी)। गुलाम-वंश, खिल्जी-वंश, तुगलक-वंश, सैयद-वंश और लोदी-वंश 1206-1526 ई. के बीच जमते-उखड़ते रहे, क्योंकि उन्हें हिन्दुओं का सहयोग नहीं मिला। भारत पर पाँच आक्रमण करने वाला बर्बर लुटेरा बाबर (जिसके आदेश पर 1528 ई. में मीर बाँकी द्वारा अयोध्या का रामजन्मस्थान-मन्दिर गिराया गया) तक हुमायूँ को हिन्दुओं से मिलकर रहने का परामर्श दे गया था। इन कुछेक उदाहरणों से हिन्दू-अजेयता सिद्ध होती है। हिन्दू संक्रान्तिकाल को झेल गया और पुनरुत्थानकाल में शान के साथ उठ खड़ा हुआ। दूरदर्शी अकबर ने हिन्दू-अजेयता को समझा और हिन्दुओं से अच्छे सम्बन्ध स्थापित किए जिसका परिणाम यह हुआ कि मुगल-वंश सारे मुसलमान-वंशों में सर्वश्रेष्ठ एवं अतुलनीय सिद्ध हुआ, जिसके शासनकाल में स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत एवं साहित्य का प्रशस्य उत्कर्ष हुआ। पुनः जब औरंगज़ेब ने मोहम्मदीयत-उन्माद दिखलाया तब मुगल-वंश भी समाप्त हो गया तथा मराठा भारत का प्रमुख शासक बन गया। मध्यकालीन भारत का इतिहास अनवरत संघर्ष का इतिहास है, केवल पराजयों का इतिहास नहीं।

हिन्दू-मुसलमान लड़ते-लड़ते थक चुके थे। हिन्दू ने स्वीकार किया कि म्लेच्छ अब यहाँ से हटाया नहीं जा सकता। मुसलमान ने स्वीकार किया कि काफ़िर नेस्तनाबूद नहीं किया जा सकता। वैश्य सन्धि का जनक है। मजबूरी समझौता करा देती है। अतः दोनों को निकट आना पड़ा। और यहीं से पुनरुत्थानकाल का आरम्भ हुआ, जिसके प्रथम दर्शन अमीर खुसरो (देहान्त 1325 ई.) में होते हैं जिन्होंने भारत की स्तुति की, उसे स्वर्गतुल्य माना, अपनी जन्मभूमि कहकर पूज्य घोषित किया—यही नहीं, उन्होंने ब्राह्मण

की सर्वश्रेष्ठता बखानी, उसके जगद्गुरुत्व को सराहा, हिन्दुओं को ईसाइयों और पारसियों और अनात्मवादियों से श्रेष्ठ बताया¹। “हिन्द मेरा मौलिनन्द-आमादा-आवतन”² के उद्घोषक खुसरो ने हिन्दवी को फ़ारसी (जिसके वे एक सर्वश्रेष्ठ कवि थे और हैं) से श्रेष्ठतर मानने³ की परम्परा का श्रीगणेश किया, खड़ीबोली और ब्रजभाषा में उत्कृष्ट कविता की। कालान्तर में समझदार शासकों एवं कवियों ने “फ़ारसी को ताक” में रखने का आह्वान किया, क्योंकि वे जानते थे कि हिन्द में “हिन्दवी का रिवाज़” चल पड़ा है।⁴ उनके कुछ ही बाद मुल्ला दाऊद ने ‘चन्दायन’ के अवधी में सूफ़ी-काव्यपरम्परा का प्रवर्तन किया, संस्कृत की प्रशस्ति की। आगे चलकर दाक्षिणात्य बुरहानुद्दीन ने ‘हिन्दी’ की तारीफ़ की :

यह सब बोलूँ हिन्दी बोल। पन तू अनुभव सेती खोल।।

ऐब न राखें हिन्दी बोल। मानो तो चख देखें खोल।।

हिन्दी बोली किया बखान। जिसके प्रसाद था गुजै ज्ञान।।

उधर विद्यापति ने ‘कीर्तिलता’ में मिथिला-नरेश कीर्तिसिंह द्वारा जौनपुर के सुल्तान के समक्ष नत होने के वर्णन के माध्यम से (“छोटउ तुरुका भभकी मार” के सत्य-प्रकटीकरण के साथ-साथ) मुस्लिम वर्चस्व स्वीकार किया। शेरशाह ने सिक्कों में देवनागरी को स्थान दिया, अकबर ने राम-जानकी सिक्का चलाया। हिन्दू-मुसलमान निकट आए और एक विराट् मिली-जुली संस्कृति एवं भाषा का पथ प्रशस्त हो गया। यह महान् पुनरुत्थानकाल यदि एक ओर अमीर खुसरो, मुल्ला दाऊद, विद्यापति, कबीर, नानक, नरहरि, बीरबल, रहीम इत्यादि की वाणी में विवृत हुआ तो दूसरी ओर हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा इत्यादि के संगीत में, तो तीसरी ओर शेरशाह और अकबर महान् इत्यादि की राजनीति में, तो चौथी ओर प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल इत्यादि के शौर्य में, तो पाँचवी ओर फ़तेहपुर सीकरी, कृष्णजन्मस्थान-मन्दिर (वीरसिंह देव बुन्देला द्वारा निर्मित जिसे औरंगज़ेब ने धरा-ध्वस्त) इत्यादि के स्थापत्य में; अर्थात् यह सर्वमुख था—जिसकी पराकाष्ठा के दर्शन तुलसी के (समूचे मध्यकाल में सृजित सर्वश्रेष्ठ) साहित्य में होते हैं इस सर्वांगीण महान् पुनरुत्थानकाल को भक्तिकाल की एकांगिता में विवृत नहीं किया जा सकता। भक्तिकाल कहना एक सर्वजीवनव्याप्त-उन्नतिकाल का अवमूल्यन करना मात्र है।

यह सुस्पष्ट पुनरुत्थान था क्योंकि यदि कबीर, नानक इत्यादि औपनिषदिक अद्वैतवाद पर आधृत थे, तो सूर, नन्ददास इत्यादि भागवत पर, तुलसी, केशव इत्यादि रामायण पर, हरिदास, तानसेन इत्यादि शास्त्रीय संगीत पर—यहाँ तक कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के स्थापत्य-निर्दर्शन भी प्राचीन स्थापत्यकला पर। शताब्दियों के विकास की अस्मिता स्वाभाविक थी, किन्तु आधार प्राचीन था। अतः यह नवोत्थान कम था, पुनरुत्थान अधिकाधिक। तुलसी बारम्बार ‘श्रुति’ का हवाला देते हैं, सूर बारम्बार भागवत का। काव्य के आधार अद्वैतवाद, राम और कृष्ण ही थे। किन्तु वह भक्ति मात्र में बद्ध न था, वह सर्वरसनिष्पन्न था, जिसे भक्तिकाल में बाँधना संकीर्णता को प्रश्रय देना होगा।

सुधारवाद, एकतावाद, मानवतावाद के स्वर तो पुनरुत्थान-सूचक थे ही, भाषा भी उसी की प्रतीक थी। संक्रान्तिकालीन भाषा का रूप स्वभावतः अधिक स्थिर न रह सकता था। उसका पर्यवसान पुनरुत्थानकालीन व्यापक भाषा में हुआ जिसकी सार्वभौमता अद्यावधि जीवन्त है।

विकासवाद और पुनरुत्थानवाद

डार्विन ने घोर व्यक्तिवादी और मार्क्स ने घोर समाजवादी आत्मपरकता से उद्धेलित होकर अपने-अपने ढंगों से विकासवाद का जो प्रतिपादन किया है, वह भौतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टियों से उल्लेखनीय होते हुए भी अलम् नहीं है अन्यथा इन दोनों से भली भाँति परिचित होते हुए भी “चक्रनेमि क्रमः” अथवा “कालक्रमेण जगतः परिवर्तमानः चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः” के भारतीय दर्शन से प्रभावित आर्नोल्ड टॉयन्बी ‘समय की साइकिल’ का सिद्धान्त क्यों प्रतिपादित करते? विकासवाद एक विराट् सत्य है किन्तु पुनरुत्थानवाद की सन्दर्भगत सत्यता का खण्डन नहीं किया जा सकता। सर जदुनाथ सरकार जैसे गम्भीर इतिहासकार तक ने पूर्वमध्यकालीन भारतीय इतिहास को ‘अंधकार-काल’ माना है, डॉ. ईश्वरीप्रसाद जैसे गम्भीर इतिहासकार तक ने अकबर प्रभृति के

1. विशेष द्रष्टव्य ‘नूह सिपहर’।

2. हिन्द मेरी जन्मभूमि, मेरी माता और मेरा देश है।

3. नूह सिपहर।

4. मसहफ़ी फ़ारसी को ताक पे रख, अब है अशआर हिन्दवी का रिवाज। (इब्राहिम आदिलशाह)

मिस्र महान् सभ्यता का देश था जिसे मोहम्मदी आक्रमण ने सामान्य देश बना डाला। यही हाल इराक एवं ईरान का हुआ। यहाँ विकासवाद का सिद्धान्त कैसे लागू होगा? यहाँ तो समयचक्र-सिद्धान्त ही लागू हो सकता है—ऊपर की तीली नीचे! भारत में भी ऊपर की तीली नीचे आई—संक्रान्तिकाल आया। किन्तु भारत अपने प्राचीन मूल्यों की रक्षा में बर्बर मोहम्मदीयत से जुझा और अनभिभूत रहा। अतः यहाँ पुनरुत्थानकाल आया जो पराभूत मिस्र, इराक, ईरान इत्यादि में नहीं आ सका। मिस्र, ईराक, ईरान इत्यादि में तुलसी, अकबर, तानसेन, ताजमहल, त्यागराज इत्यादि कहीं?

खुसरो, दाऊद, विद्यापति, कबीर, नानक, जायसी, मीराँ, सूर, तुलसी, केशव, रहीम, रसखान इत्यादि महान् कवियों ने विराट् राष्ट्रीय पुनरुत्थान को वाणी प्रदान की है, अतः इनका काव्य जनकाव्य है—विदेशी बाप के बेटे खुसरों ने भारतीय ‘बाबुल-गीत’ रचे, दाऊद ने संस्कृत की प्रशंसा की तथा ‘भाषा’ (अवधूँ) में अहीरों की जनकथा को प्रबन्धकाव्य का रूप दिया, विद्यापति ने “देसिल बअना सब जन मिट्ठा” की घोषणा की तथा जौनपुर के सुल्तान को सराहा, परम्परा परिवार एवं जन्म से मुसलमान कबीर ने हिन्दू रामानन्द को गुरु बनाया और हिन्दू-मुस्लिम एकता के गीत गाए, हिन्दू नानक ने बाबा फरीद की स्तुति और हिन्दू बाला तथा मुसलमान मर्दाना को प्रधान शिष्य (सिख) बनाया, बहुत दूर तक (पूर्णतः नहीं) साम्प्रदायिक जायसी तक ने “बिधना के मारग.... सरग नखत तन रोवँ जैसे” असंख्य माने और गोरखनाथ तथा सती की स्तुति की, राणा साँगा की बहू मीराँ ने मुसलमानों की निन्दा नहीं की अपने वैष्णव ढंग के इश्कहकीकी से मुसलमानों में ताज बेगम जैसी अनेक उदारमना नारियों को आकृष्ट किया, सूर ने मियाँ तानसेन से मिताई की, तुलसी की रहीम से दोस्ती हुई और उन्होंने भक्तिपथ को ‘यवनों’ के लिए प्रशस्त किया, केशव ने ‘जहाँगीरजसचन्द्रिका’ रची, रहीम ने राम पर श्लोक और दोहे बनाए, रसखान (जो सचमुच रसमय-खान थे) ने “था लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौ” का प्रण किया! अकबर स्वयं हिन्दी-कवि था। उसके दरबार में राठौड़राज प्रिथीराज के अतिरिक्त रहीम, नरहरि, गंग, बीरबल,

2. 'अमीर खुसरो' शीर्षक सत्यहन्ता दूरदर्शन- धारावाहिक (1988 ई.) में 'धर्मनिरपेक्ष' भी! इस धारावाहिक के पूर्वाग्रह ने महान् खुसरो के साथ भारी अन्याय किया। न लोकप्रिय हुआ, न जीवित रह सका।

टोडरमल जैसे कवि-रत्न" विद्यमान थे तथा अन्य अनेक कवि आते-जाते रहते थे। मध्य एवं विलासी जहाँगीर तक 'तुलुके-जहाँगीरी' (जहाँगीरनामा) में अद्वैतवादी गोसाईं जदरूप का भक्त लगता दीखता है। घोर कामुक शाहजहाँ के दरबार में चिन्तामणि जैसे कवि विद्यमान थे। लगता था, प्राचीन काल के आर्य, गन्धर्व, किन्नर, नाग, यक्ष, द्रविड़, शबर, राक्षस, वानर, गृध्र, कोल, किरात, खस, आभीर, शान इत्यादि के सम्मिलन में अरब, तुर्क, पठान, मुगल¹ इत्यादि भी समाहित हो जाएँगे! इस काल के कवि जनता के कवि थे, जनता के कवि हैं। इनकी लोकप्रियता में कभी कमी नहीं आई। इन कवियों ने भारतीय नारी की वेदना, भारतीय जनता की निर्धनता, हिन्दू-मुस्लिम-धार्मिक पाखण्ड, हिन्दू-निरीहता, हिन्दू-आशावाद इत्यादि के जनवादी सत्तों को जनवादी भाषा में अकृत्रिमतापूर्वक व्यक्त किया—इन सबमें सर्वश्रेष्ठ तुलसी ने तो बेरोजगारी, महामारी, सामन्तवादी शोषण इत्यादि के हृदयविदारक वर्णन भी किए हैं! कबीर ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को सुधारा। अकबर ने मोहम्मद की सहास-समीक्षा तक की, कभी-कभार मुल्लाओं की मरम्मत तक कराई। कबीर और अकबर की तुलना में आधुनिक नेताओं की एकतरफ़ा तुष्टीकरण-नीति (जिसका परिणाम भारत का वह दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों का अहित हुआ—अभूतपूर्व हिंसा हुई, अनेक युद्ध हुए) पाखण्डपूर्ण लगती है। कबीर और अकबर की तुलना में सारे आधुनिक नेता बौने लगते हैं। तुलसी के “बड़े भाग मानुस तन पावा” ने सशक्त आशावाद को प्रश्रय दिया, आधुनिक नेताओं से जनता को निराशावाद ही मिल पाया। “प्राकृत जन गुनगान” के विरोधी तुलसी की तुलना में ‘प्रिंस ऑफ वेल्स’ के स्वागत में “जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्यविधाता” गीत रचनेवाले सर रवीन्द्रनाथ टैगोर² एक चारण दिखते हैं। इस महान् पुनरुत्थानकाल के आदिवाहक अमीर खुसरो कट्टर मुसलमान होने के बावजूद कट्टर हिन्दुभक्त, कट्टर हिन्दीभक्त, कट्टर हिन्दुस्तानी संगीतभक्त थे, जिनकी तुलना में कभी “सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तौं हमारा” का तराना गाने वाले और कभी पाकिस्तान के देवपिता बनने वाले डॉ. सर मोहम्मद इक़बाल एक अवसरवादी मात्र लगते हैं। खेद है कि आधुनिक भारतीय पुनरुत्थान³ का समारम्भ तो ठीक-ठाक हुआ (यद्यपि उसके नेता महान् मध्यकालीन पुनरुत्थान के नेताओं के समकक्ष न थे और स्वभावतः उनका प्रभाव ही तद्वत् व्यापक एवं स्थायी सिद्ध न हो सका) किन्तु उसका विशुद्ध व्यक्तिगत—महत्वाकांक्षावादी नेताओं, कवियों इत्यादि ने ऐसा शोषण किया कि न एकता सशक्त हो सकी, न वास्तविक जनोत्थान ही हो सका। आधुनिक काव्य के जनकाव्य न बन सकने का कारण यह रहा कि इसके प्रणेता कबीर, मीराँ, तुलसी इत्यादि के सदृश जनजीवन नहीं जिए, वैसे विकट संघर्ष नहीं किए। ए.जी. वारान्निकोव (जिन्होंने रामचरितमानस का रूसी-अनुवाद किया था) के पुत्र पी.जी. वारान्निकोव ने तुलसी को जनकवि माना है, जो ठीक है, क्योंकि उनकी कविता में भारतीय जनजीवन का जैसा यथार्थ चित्रण प्राप्त होता है वैसा किसी कवि की कविता में नहीं। डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. शिवमंगलसिंह ‘सुमन’, डॉ. रणजीत इत्यादि साम्यवादी, तुलसी के प्रति सम्मान में प्रायः एक हैं, क्योंकि तुलसी की स्थापनाएँ थीं :

1. कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहूँ हित होई॥
2. परहित सरिस धरमु नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥
3. का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहियु सौँच।
4. मोरे न जाति पाँति न चहाँ काहू की जाति पाँति।

दूसरी ओर तुलसी की निराधार निन्दा करने वाले न घर के रहे न घाट के! व्यापक सत्य को असत्य या एकांगी सत्य से आच्छन्न करने वाले व्यक्ति सदा मुँह की खाते हैं।

दार्शनिक पुनरुत्थान का प्रभाव

जिन देशों के पास प्राचीन इतिहास की विभूति नहीं होती उनमें पुनरुत्थान कैसा? जहाँ पहले कभी उत्थान ही नहीं हुआ वहाँ पुनरुत्थान की कल्पना कैसी? अतः रूस और जर्मनी, अमेरिका और फ्रांस, केनेडा और जापान इत्यादि आज के सम्पन्न देश पुनरुत्थान

1. तुर्क-मंगोल-मिश्रित आक्रान्ता।
2. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (जो ब्राह्मण थे किन्तु सम्पन्नता के कारण ठाकुर कहे जाते थे)।
3. आधुनिककाल के बाहक राममोहनराय वेदान्ती थे। आधुनिककाल के महान् सुधारक दयानन्द वेदवादी थे। विवेकानन्द वेदान्ती थे। तिलक गीतामूलक निष्काम-कर्मयोगी थे। अतः इनसे प्रेरित युगान्तर भी पुनरुत्थानवादी ही था।

क्या जानें? वे आज अपने उत्थान की सर्वोच्च स्थिति में हैं। इसीलिए, विकासवाद एकांगी रह गया है। डार्विन, मार्क्स इत्यादि प्राचीन इतिहास से अनभिज्ञ भी थे, श्रेष्ठता-ग्रन्थ के आखेट भी। पुनरुत्थान भारत जैसे अतीत के महान् एवं प्राचीन देश में ही सम्भव है। विश्व के अनेक वैज्ञानिक शिवालिक पर्वतमाला के क्षेत्र में मानव की प्रथम उत्पत्ति पर अनुसन्धान कर चुके हैं, भले ही अभी किसी निश्चित मत पर न पहुँच पाए हों। सर विलिअम जोन्स इत्यादि की आर्यों के मध्य एशिया से आने की कल्पना को कोई नृवंशशास्त्रीय या अन्य वैज्ञानिक आधार प्राप्त नहीं है, इसीलिए तिब्बत (दयानन्द), उत्तरी ध्रुव (तिलक), रूस (राहुल) इत्यादि की अनेक कल्पनाएँ भी की जा सकी हैं। किसी आर्य-ग्रन्थ में आर्यों के विदेशी होने का वर्णन नहीं है। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, मिश्रबन्धु, प्रसाद इत्यादि ने ही नहीं प्रत्युत विश्वविख्यात पशुचिकित्सक से पुरातत्ववेत्ता बने डॉ. के. आर. आलूद ने पशु-अस्थि-अनुशीलन के प्रबल आधार पर आर्यों के मध्य एशिया से आने के सिद्धान्त को सांप्राज्यवादपरक तथा राजनीति-प्रेरित सिद्ध किया है।¹ जिस देश के पास गहन आध्यात्मिकता नहीं होती वह नवागत आध्यात्मिकता का अधिक परीक्षण नहीं कर सकता। चीन, जापान इत्यादि में बौद्धधर्म, यूनान, इटली इत्यादि में ईसाई मज़हब, मिस्र, इराक, ईरान इत्यादि में मोहम्मदी मज़हब, रूस, चीन इत्यादि में मार्क्सवाद के फैलने का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। भारत के पास वह गहनतम आध्यात्मिकता विद्यमान थी, जिसकी क्रिया ने उन परमेष्ठी प्रजापति और नारायण, याज्ञवल्क्य और उद्दालक, जैमिनी और बादरायण, गौतम और पतंजलि, शंकराचार्य और रामानुजाचार्य इत्यादि तथा प्रतिक्रिया ने कपिल और कणाद, बुद्ध और महावीर, नागार्जुन और वसुबन्धु इत्यादि को उत्पन्न किया था जिनकी तुलना में टी.एस. इलिअट (एलिअट) को अपने दार्शनिक पीठों पर बस्ते लटकाए स्कूल की ओर भागते स्कूली बच्चे लगे थे! ऋग्वेद के नासदीय-सूक्त का अनुवाद बाइबिल के 'ओल्ड टेस्टामेंट' के 'जिनेसिस' में देखा जा सकता है, छान्दोग्योपनिषद् के 'तत्त्वमसि' इत्यादि का 'न्यू टेस्टामेंट' में। ऋग्वेद के "एकं सद विप्रा बहुधा वदन्ति" एवं "एकं संतं बहुधा कल्पयन्ति" इत्यादि का जो विकास उपनिषद् के "एकमाद्वितीयम्" में हुआ उसका अनुवाद कुरान के "ला इलाहा इल्लल्लाह" एवं "अलहम्दु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन्" इत्यादि में प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य (बृहदारण्यकोपनिषद्) का "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः" का अनुवाद सुकरात ने "निज को जानो" के रूप में किया है, प्लेटो का 'विश्वात्मा' शत-प्रति-शत औपनिषदिक ब्रह्म है और वे भारत आए थे², अरस्तू का सिकन्दर के साथ भारत आना प्रसिद्ध है। इसीलिए मैक्समूलर जैसे कट्टर ईसाई तक ने भारत की स्तुति की है, एनी बेसेंट ने हिन्दू धर्म की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की है, रोमा रोलाँ ने भारत में मानवोत्कर्ष का गरिमागान किया है। हक्सले ने गीता की सर्वश्रेष्ठता स्वीकार की है—यही नहीं, गोर्बाच्योव और स्व. ग्रीमीको ने गीता की प्रशंसा की है! वैचारिक गरिमा एवं दार्शनिक गहनता में भारत को संसार का कोई देश, कोई महाद्वीप, कोई धर्म, कोई मज़हब, कोई वाद आकृष्ट नहीं कर सकता, क्योंकि कोई उसके समतुल्य नहीं। ईसा का 'ईश्वर का एकमात्र पुत्र' होना ईश्वर के लिए भी अपमानजनक है, मानवता के लिए भी। उनका केवल अपने अनुयायियों के लिए पिता से अनुशंसा करने³ का कथन मानवतावादी नहीं है। मोहम्मद ने कुरान में ईसा को ईश्वर का एक पुत्र नहीं माना, इस कथन को कुफ़्र कहा है, ऐसा मानने वालों को नरकगामी घोषित किया है। 'शाहनामा' के महाकवि फ़िरदौसी ने ईसा की निन्दा यह कहकर की कि जो व्यक्ति खुद को सलीब पर लटका कर मारे जाने से नहीं बचा सका, वह दुनिया को क्या बचाएगा? परिणाम यह हुआ कि 'डिवाइन कॉमेडी' के महाकवि दान्ते ने मोहम्मद और अली को इन्फ़ार्नो में देखा (जिनमें अली रो रहे थे)। 'ईश्वर का एकमात्र पुत्र' और 'खातिमुन्नबी' (आखिरी पैगम्बर) सिद्धान्त परमात्मा से न्याय नहीं करते, क्योंकि वह सारे मनुष्यों का ही नहीं अपितु सारे प्राणियों, सारी जड़-चेतन वस्तुओं का पिता है, जिसकी कृपा सर्वकालिक है, सार्वभौम है। ईसाई और मोहम्मदी मज़हब सार्वभौम नहीं हैं। वे तर्क की कसौटी पर खरे नहीं उतर सकते। इसीलिए, ईसाई मिशनरी शिक्षा एवं सेवा की राजनीति के बहाने और मोहम्मदी प्रचारक पैसा देकर एवं नरक का भय दिखाकर निरक्षर व्यक्तियों को धर्म परिवर्तन के लिए विवश (चिकित्सा, शिक्षा से नौकरी-चाकरी तक) करते रहे हैं—तलवार के अचूक प्रयोग में दोनों एक-से⁴ रहे हैं। सेवा के पाखण्ड, नरक के भय, प्रलोभन एवं हिंसा के बल पर भारत के प्राचीन, गौरवशाली, उदार एवं आध्यात्मिकता में अतुलनीय हिन्दूधर्म को मिटाने का प्रयोग सफल कैसे हो सकता था? यहाँ मौर्यकाल के बाद शुंगकाल एवं गुप्तकाल में नास्तिक एवं

1. द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया, 22-4-1990, पृष्ठ 5।

2. देखें विल ड्यूयॉ कृत 'द स्टोरी ऑफ़ फिलॉसॉफी' में प्लेटो का जीवन-परिचय।

3. शेष नरकगामी होंगे।

4. अफ्रीका, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड में ईसाइयों ने खून की नदियाँ बहाई, अफ़्रीकी, गोवा इत्यादि में वास्कोडिगामा, सेंट फ्रांसिस इत्यादि ने अपनी सीमा में जो पिशाचलीला की वह तैमूर, नादिरशाह आदि की पिशाचलीला से कम नहीं रही।

व्यक्तिवादी बौद्धधर्म को संयमित करने का पुनरुत्थान हो चुका था। यहाँ मोहम्मदी हिंसा एवं ध्वंस को संयमित करने का विराट् पुनरुत्थान हुआ। इसके बाद भी, यहाँ ईसाई वर्चस्व को संयमित करने का तृतीय पुनरुत्थान भी हुआ। जितने पतन एवं उत्थान भारत ने देखे हैं उतने संसार के किसी देश ने नहीं। निस्सन्देह विकटतम संक्रान्तिकाल के अनन्तर हुआ पुनरुत्थान विशदतम सिद्ध हुआ।

वेद

वेद¹ भारतीय धर्मसाधना का मेरुदण्ड है, जिसमें प्रकृति के नाना उपादानों में देवत्व की प्रतिष्ठा मैक्समूलर जैसे स्थूल अध्येताओं को स्थूल बहुदेववाद लग सकती है किन्तु जो तत्त्वतः सूक्ष्म प्रतीकवाद से निष्पन्न है जैसा कि अरविन्द जैसे सूक्ष्म अध्येताओं ने प्रतिपादित किया है। विश्व का प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद 'एक' का मर्म समझाता है, सृष्टि का आदितत्त्व जल बतलाता है (जिसका अनुकरण बाइबिल जैसे ग्रन्थ एवं थेलीज़ जैसे दार्शनिक करते हैं), पुरुष की विराट् कल्पना द्वारा भावी अद्वैतवाद एवं अवतारवाद का पथ प्रशस्त करता है। ऋग्वेद के घन, वन, नदी, अश्व, गौ प्रभृति देवता द्रष्टा मनीषियों के गहन प्रकृतिप्रेम, वनरक्षण, नदीसम्मान, पशु-समवेदन प्रभृति उच्चतम मानव-मूल्यों के प्रतीक हैं जिनका महत्त्व आज का प्रकृति-प्रदूषित एवं पशु-हिंस विश्व अधिक समझ सकता है। मैं ऋग्वेद को प्रकृति का महाकाव्य² मानता हूँ, ऋग्वेद के दर्शन को देवसान्निध्यवाद³ मानता हूँ, उसके महर्षि परमेश्वो प्रजापति प्रणीत नासदीय-सूक्त को शून्य-समाधि (बुद्ध नागार्जुन इत्यादि) एवं निर्बीज-समाधि (पतंजलि) का उत्स मानता हूँ, उसके महर्षि नारायण प्रणीत पुरुष-सूक्त को उपनिषद् के पुरुष तथा गीता के विराट् रूप तथा अवतारवाद का आदिस्त्रोत मानता हूँ। मैं ऋग्वेद को एक गहन दार्शनिक ग्रन्थ भी मानता हूँ तथा इसको न मानने वाले मैक्समूलर, राधाकृष्णन् इत्यादि को वेदों का सतही जानकार समझता हूँ। वेद पर हिन्दी में डॉ. उमेश मिश्र⁴ एवं डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम'⁵ तथा अंग्रेज़ी में अरविन्द⁶ ही ठीक प्रकाश डाल सके हैं। 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' शीर्षक विशाल द्वि-खण्डीय ग्रन्थ में डॉ. किरणकुमारी ने विषय पर व्यापक प्रकाश डाला है, भले ही इतिहास के स्थूल उपादानों का ऊहापोह न किया हो—पूर्ववर्तियों के सदृश। हीनभावग्रस्त पाश्चात्य विद्वान् वेद को पशुचारणगान, भयमूलक-यजनज्ञान इत्यादि कहकर बाइबिल में संकेतित-वर्णित नग्नतापूर्ण मदिरापान (नूह), नरबलि (इब्राहिम), पितृ-सम्भोग (लूत की दो पुत्रियों द्वारा), हिंसा (मूसा), दुरभिसन्धिपूर्ण-हत्यापूर्ण-व्यभिचार (दाऊद), पितृपत्नीभोग (सुलेमान), टिड्डी-भक्षण (यूहन्ना), अंधविश्वास-कथाकथन (ईसा), गर्दभ-परिवहन (इब्राहिम ईसा इत्यादि), छल-भ्रवचन (पतरस, पौलुत इत्यादि)⁷ को छिपाना चाहते हैं। उच्च हिममण्डित शिखर (जो नदियों का जनक है) पहले या सातवें आसमान के पक्षपाती 'पिता' या 'अल्लाह' से सुन्दरतर-प्रियतर है। सरस नदी, सघन वन, घुमड़ते घन, झूमते बिरछे, सुरभित पुष्प की कल्पित फरिश्तों से क्या तुलना? ऋग्वेद के सहज-व्यक्त सुन्दर धर्म की तुलना में बाइबिल (तौरात, जबूर इंजील का समाहार) और कुरान के मज़हब कहीं-अधिक भयाधृत लगते हैं। मोहम्मद ईसा को ईश्वरपुत्र नहीं मानते और बाइबिल को जाली ग्रन्थ बताते हैं, दान्ते मोहम्मद के पैगम्बर होने के दावे को धोखाधड़ी घोषित करते हुए उन्हें इन्फ़र्नो में देखते हैं। कृष्ण का "मैं भगवान् हूँ" या सिद्धार्थ का "मैं बुद्ध हूँ" या वर्द्धमान का "मैं महावीर या जिन या जितेन्द्रिय हूँ" या ईसा का "मैं ईश्वर का पुत्र हूँ" या मोहम्मद का "मैं अल्लाह का पैगम्बर हूँ" कहना अहं का गौरवशाली उद्गार मात्र है। इसलिए आत्मप्रतिष्ठापकों ने सदैव वेद की आलोचना की है। उपनिषद् में वेद के कर्मकाण्ड पर ज्ञान की वरीयता तत्त्वतः वेदविरोधिनी नहीं है क्योंकि उसका उद्देश्य वेद के ही 'एक' की सर्वव्याप्ति प्रतिपादित करना है। किन्तु कृष्ण की वेद-निन्दा निराधार एवं स्वप्रतिष्ठापनमूलक है। डॉ. सम्पूर्णानन्द ने वेद का सम्मान करते हुए गीता पर जो प्रहार किया है, वह इसी की प्रतिक्रिया है अन्यथा गीता पर ऋग्वेद (यजुर्वेद में भी) का 'पुरुष-सूक्त'

1. ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद।

2. द्रष्टव्य है मेरे ग्रन्थ 'साहित्यिक निबन्धः नए आयाम' का 'ऋग्वेद में काव्य-तत्त्व' निबन्ध।

3. द्रष्टव्य है मेरे ग्रन्थ 'हिन्दूधर्म' में 'वेदकाल' प्रकरण।

4. 'हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन फिलॉसॉफी' एवं 'भारतीय दर्शन' में।

5. डॉ. हज़ारिप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'वेदमूर्ति'—द्विवेदी जो सदैव 'सोम' जी को चरणस्पर्श—सम्मानित करते थे। 'सोम' जी के 'वैदिकी' एवं 'चतुर्वेद-मीमांसा' जैसे ग्रन्थ अंग्रेज़ी में दुर्लभ हैं।

6. 'लाइफ़ डिवाइन' में, अन्य ग्रन्थों में।

7. अंग्रेज़ी में इब्राहिम को एब्राहम, लूत को लॉट, मूसा को मोज़ेज़, दाऊद को डेविड, सुलेमान को सॉलोमन, यूहन्ना या यूहन्ना को जॉन, ईसा को जीसस, पतरस को पीटर, पौलुत को पॉल के रूपों में अभिहित किया जाता है।

(‘विराट् रूप’ में) एवं यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय (‘ईशावास्योपनिषद्’ के रूप में भी) छाया हुआ है। बुद्ध का वेदालोचन शुद्ध अहंप्रतिष्ठापन के उद्गार है। कबीर के वेदालोचन का कारण उनका निरक्षर एवं वेदज्ञानहीन होना है। पुनरुत्थान-कालीन प्रतिभाओं में कबीर, नानक इत्यादि वेदालोचकों का प्रभाव सर्वथा सीमित रहा, जबकि सूर, तुलसी इत्यादि वेदप्रशंसकों का प्रभाव सार्वभौम सिद्ध हुआ। सूर बारम्बार वेद का सादर उल्लेख करते हैं, “वेद पुरान भागवत गीता” की व्याप्ति का सम्मान करते हैं, “सूर कही भागवत अनुसार” का सत्य व्यक्त करते हैं। तुलसी “नानापुराणनिगमागम” से अभिज्ञ थे, वे वेद की वन्दना करते हैं, वेद-निन्दक बुद्ध की निन्दा करते हैं, वेदविरोधी अहंव्यामोहवश पंथ-प्रवर्तन करने पर प्रहार करते हैं :

बंदउँ चारिउ वेद, भव-चारिधि वोहित-सरिस।

जिन्हहि न सपनेहुँ खेद, वरनत रघुवर विमल जस॥

(रामचरितमानस)

अतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार।

जे निंदत निंदित भयहु बिदित बुद्ध अवतार॥

(दोहावली)

सुतिसम्मत हरिभक्तिपथ संजुत विरति विवेक।

तेहि न चलहिं नर मोहवस कल्पहिं पंथ अनेक॥

(रामचरितमानस, दोहावली)

कलि मल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ।

दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट बहु पंथ॥

(रामचरितमानस)

सकल धरम बिपरीत कलि, कल्पित कोटि कुपंथ।

पुन्य पराय पहार, बन, दुरे पुरान सुग्रंथ॥

(दोहावली)

साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।

भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान।

(दोहावली)

बाइबिल, कुरान और भागवत तीनों इस बिन्दु पर ठीक ही एकमत हैं कि आरम्भ में मानव मात्र का धर्म एक ही था। तुलसी ने व्यक्तिगत धर्मप्रवर्तकों-पंथप्रवर्तकों को दम्भी घोषित करते हुए महान् सत्य का जैसा साहसपूर्ण उद्घाटन किया है वैसा संसार का कोई महाकवि नहीं कर सका। इन मोहवशोद्भूत धर्मों, मज़हबों एवं पंथों ने मानव-जाति को बुरी तरह बाँट कर अधर्म, हिंसा छल, प्रवचन इत्यादि का ऐसा ताण्डव किया कि प्रतिक्रिया से अभिभूत मार्क्स, लेनिन इत्यादि नए स्वपूजावादियों को धर्म को अफ़ीम कहना पड़ा। तुलसी में पुनरुत्थान का सर्वोच्च रूप दृग्गत होता है। इसीलिए, उनका प्रभाव व्यापकतम एवं गहनतम सिद्ध हुआ। इतिहासकार वी. ए. स्मिथ ने प्रभाव के स्थायित्व के कारण ही उनको अकबर महान् से भी महानतर माना है, बहुभाषाविद् सर जॉर्ज ग्रीअर्सन ने प्रभाव की गरिमा के कारण ही उनको “भारत के सर्वश्रेष्ठ कवियों एवं सर्वश्रेष्ठ सुधारकों में एक” माना है तथा उनकी दम्भयुक्त-मोहयुक्त पन्थप्रवर्तनहीन विनम्रता की प्रशस्ति की है। जयप्रकाश नारायण के अनुसार, अकबर तुलसी-काल में उत्पन्न हुए थे, तुलसी अकबर-काल में नहीं। मालवीय, गांधी, विनोबा, जगजीवनराम इत्यादि की तुलसी-प्रशस्ति का कारण उनका अहंमुक्त पावन भक्तिपथ-प्रतिपादन ही है।

उपनिषद्

पुनरुत्थानकालीन साहित्य पर उपनिषद् का व्यापक प्रभाव एक स्वयंसिद्ध तथ्य है। कबीर, दादू इत्यादि मुसलमान सन्तों एवं जायसी, मंझन इत्यादि मुसलमान सूफ़ियों पर औपनिषदिक सर्ववाद छाया हुआ है, क्योंकि वह मोहम्मदीयत की नज़र में बहुदेववाद एवं मुर्तिपूजा के कुकुर से रहित है। मिश्रबन्धु ने कबीर को “उपनिषद् की सन्तान” ठीक ही कहा है। नानक इत्यादि पर उपनिषद् के ब्रह्म एवं सर्ववाद का प्रभाव एक निर्विवाद सत्य है। किन्तु सूर इत्यादि ने “बूझत स्याम कौन तू गोरी” तथा लीला से “मोहन माँग्यो अपना

रूप" इत्यादि तक गहन अद्वैतवाद का ऐसा सौन्दर्यवादी निरूपण किया है कि 'भक्ति का विकास' शीर्षक अमर डी. लिट्. —प्रबन्ध में स्व. डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने कबीर को 'सहिता', जायसी को 'ब्राह्मण', सूर को उपनिषद् और तुलसी को पुराण के रूपक में समायोजित कर डाला है। किन्तु इस रूपक का सत्य आंशिक ही है क्योंकि सर्ववाद को सभी ने अपनाया है—विनयपत्रिका के तुलसीदास कबीर, जायसी, सूर इत्यादि से भी बड़े अद्वैतवादी हैं :

जल में कुंभ, कुंभ में जल है,
बाहिर भीतर पानी ।

फूटा कुंभ जल जलहि समाना

इह तथ कहैं गियानी ।।

(कबीर)

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर ।

हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नग हीर ।।

(जायसी)

मैया, मैं नाहीं दधि खायो ।

ख्याल परै यह सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ।।¹

(सूर)

मोहन माँग्यो अपनो रूप ।

या ब्रज बसत अँचै तुम बैठी ता बिनु तहाँ निरूप ।।² (सूर)

जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो ।

तब तें देह गेह निज जान्यों ।।

मायाबस स्वरूप बिसरायो ।

तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो ।।

(तुलसी)

आनन्द सिंधु मध्य तव बासा ।

बिनु जाने कस मरसि पियासा ।।

(तुलसी)

जौ निज मन परिहरै बिकारा ।

तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख संसय सोक अपारा ।। (तुलसी)

स्थूल अध्येताओं में यह मिथ्या धारणा प्रचलित है कि सूर, तुलसी इत्यादि वैष्णव कवि उपनिषद् के सर्ववाद या अद्वैतवाद से प्रेरित नहीं हुए जबकि वस्तुतः इन कवियों का मूल दर्शन सर्ववाद या अद्वैतवाद ही है, जिसका शंकराचार्य ने पुनरुत्थान किया, जिसे रामानुजाचार्य ने भक्तिप्रधान रूप प्रदान किया, जिसे वल्लभाचार्य ने 'पुष्ट' लीलासम्पृक्त किया। सूर वल्लभाचार्य के शिष्य थे, तुलसी रामानुजाचार्य की परम्परा से जुड़े थे। अतः यह भेद-दृष्टि वरेण्य नहीं है। आचार्य शुक्ल ने निर्गुण और सगुण धाराएँ अलग-अलग बहाकर भेदवाद को प्रश्रय दिया है। मेरे विचार से कबीर इत्यादि निर्गुणप्रधान थे, तुलसी इत्यादि सगुणप्रधान, किन्तु इनमें से कोई संकीर्ण भेदवादी न था। इसीलिए व्यापक जनजीवन ने इसका सम्मान किया।

पुराण

पुनरुत्थानकालीन साहित्य पुराण के प्रभाव से ओतप्रोत है। कबीर, जायसी, रहीम, रसखान इत्यादि मुसलमान कवियों ने पुराण-सन्दर्भों का भरपूर प्रयोग किया है जबकि सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, हित हरिवंश इत्यादि का आधार ही पुराण (विशेषतः भागवत) है और तुलसीदास तो मध्यकाल में पुराण के सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठापक हैं ही। कबीर में अम्बरीष, राम-सीता, कृष्ण, पाण्डव इत्यादि के सन्दर्भ मिल जाते हैं; जायसी में वामन, इन्द्र, कर्ण इत्यादि के; सूर का सागर तो पौराणिक आख्यानों के मोतियों से भरा ही है, तुलसी ने अनेकानेक पौराणिक सन्दर्भ प्रस्तुत किए हैं। वेद बीज है, पुराण वृक्ष। सूर, तुलसी इत्यादि ने इस गहन सत्य को समझा और लाभ

1. आत्मा निर्लिप्त है, माया उसे लिप्त करने में लगी रहती है।

2. सैमद समाण बूँद में सो कत हेर्या जाय। (कबीर)

उठाया। विरजानन्द, दयानन्द इत्यादि की स्थूल दृष्टि पुराणों का सार न समझ सकी। अतः उसका प्रभाव सीमित रहा, उससे भ्रम भी उत्पन्न हुए। गांधी ने पुराणों का महत्त्व ठीक समझा और लाभ में रहे। महान् गुजराती उपन्यासकार, महान् विद्वान् कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने पुराणों को सराहा है। पुराण वेद के विष्णु, रुद्र (शिव), इन्द्र इत्यादि देवताओं, अदिति, सरस्वती, नदी (विशेषतः गंगा) इत्यादि देवियों, वसिष्ठ, विश्वमित्र, अगस्त्य, अत्रि, पराशर, भारद्वाज इत्यादि ऋषियों, मनु, मान्धाता, पुरूरवा इत्यादि राजाओं के वृत्त प्रस्तुत करते हैं, परवर्ती राम, कृष्ण, बुद्ध इत्यादि को अवतारों के रूपों में प्रस्तुत कर उपनिषद् के अहंब्रह्मास्मिवाद अथवा तत्त्वमसिवाद का विराट् निरूपण करते हैं। अतः उन्हें वेदविरोधी या उपनिषदविरोधी मानना भ्रमपूर्ण है, स्थूल दृष्टि का परिणाम है। पुराणों में वेद एवं उपनिषद् की प्रशस्ति भी इस सत्य का एक प्रमाण है। सृष्टि से प्रलय तक, दर्शनों से काव्याशास्त्र तक, इतिहास से कविता तक, कथा से कला तक, सबकुछ पुराणों में इतना और ऐसा भरा पड़ा है कि वे भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीय जीवन के विश्वकोष बन गए हैं। साहित्यकारों के लिए पुराण कामधेनु सिद्ध हुए हैं। इतिहासकारों ने उनसे भारी लाभ उठाया है। जो पुराण नहीं जानता वह भारत को नहीं जान सकता। कॉम्प्युनिस्ट प्रमाण हैं।

दार्शनिक पृष्ठभूमि : शंकर तथा अन्य आचार्य

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में पुनरुत्थानकाल के आरम्भ से पर्याप्त पूर्व ही भारतीय दर्शन के इतिहास में पुनरुत्थानकाल का आगमन एवं विकास हो चुका था, जिसके उद्घाटन का श्रेय विश्व के अद्वितीय दार्शनिक शंकराचार्य (788-820 ई.)¹ को है, जिन पर माधवाचार्य के 'शंकर-दिग्विजय' तथा आनन्दगिरि, चिद्विलास यति तथा व्यासगिरि के पृथक्-पृथक् 'शंकर-विजय', गोविन्दनाथ के 'शंकराचार्य-चरित', विद्यारण्य के 'शंकर-विलास' प्रभृति अनेकानेक ग्रन्थों² से लेकर अंग्रेजी, हिन्दी, बांग्ला इत्यादि में शत-शत ग्रन्थ उपलब्ध हैं। शंकराचार्य परमेश्वरी प्रजापति, नारायण, याज्ञवल्क्य, उद्दालक, श्वेताश्वतर, कपिल, कणाद, पतंजलि, गौतम, जैमिनि, बादरायण, नागार्जुन प्रभृति महान् पूर्ववर्ती दार्शनिकों के ऐसे उत्तराधिकारी तथा रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, तुलसीदास, दयानन्द, रामप्रसाद³, रामकृष्ण परमहंस, तिलक, रवीन्द्र, अरविन्द, रमण महर्षि, विवेकानन्द, भगवानदास, राधाकृष्णन् इत्यादि दार्शनिकों के ऐसे पूर्वज हैं जिनको भारत का सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक तक माना गया है तथा जिनके अपरिशीम प्रभाव के कारण अद्वैतवाद विश्व का सर्वश्रेष्ठ दर्शन बन गया, भारत पर छा गया, और संस्कृत का महान् पुनरुत्थान हुआ। गहन प्रभाव की दृष्टि से शंकराचार्य की समता विश्व का कोई दार्शनिक नहीं कर सकता। अद्वैतवाद के सार्वभौम दर्शन एवं संस्कृत की सार्वभौम पुनर्प्रतिष्ठा के कारण भारत पर शंकराचार्य का प्रभाव बुद्ध और तुलसीदास के प्रभावों से भी गहनतर है। बत्तीस वर्ष की अल्प आयु में उन्होंने अखण्ड परित्रजन कर नास्तिक बौद्ध, जैन, सांख्य, वैशेषिक इत्यादि तथा वाममार्गी पाशुपात, कापालिक, शाक्त इत्यादि दर्शनों का खण्डन कर वेदान्त को तत्त्वतः विश्व-दर्शन ही बना डाला—बदरीनाथ, द्वारिका-पुरी एवं शृंगेरी में मठ स्थापित कर राष्ट्रीय एकता का राम-कृष्णोत्तर इतिहास में सर्वोपरि नेतृत्व किया—उनका जन्म कालटी (केरल) में हुआ, अवसान केदारनाथ (उत्तरप्रदेश) में! उन्होंने इतनी ही आयु प्राप्त करने वाले सिकन्दर से बहुत अधिक स्थायी दर्शन-साम्राज्य की नींव डाली तथा ईसा की एकव्यक्तिवादी दृष्टि की तुलना में विशद जीवन-दृष्टि प्रदान की। पूर्ववर्ती दार्शनिकों में याज्ञवल्क्य, उद्दालक, श्वेताश्वर एवं बादरायण ही उनके समतुल्य हैं तथा परवर्ती दार्शनिकों में कोई उनके निकट नहीं पहुँच सका। उनकी बहुमुखी प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए डॉ. बलदेव उपाध्याय ने ठीक लिखा है, “आचार्य शंकर उच्चकोटि के प्रौढ़ दार्शनिक थे, जगत् से ममता छोड़ देने वाले संन्यासी थे, लोक के निर्वाह के लिए नितान्त व्यवहार-कुशल पंडित थे, कविता के द्वारा रसिकों के हृदय में आनन्द-स्रोत बहाने वाले भावुक कवि थे, भगवती ललिता के परम उपासक सिद्ध जन थे—एक शब्द में हम कह सकते हैं, वे युगान्तरकारी सिद्ध पुरुष थे।”⁴ शंकराचार्य के अद्वैतवाद की तुलना में बुद्ध, महावीर और मार्क्स के ईश्वरहीन धर्म अमनोवैज्ञानिक एवं स्थूल तथा ईसा और मोहम्मद के भेदवादी मज़हब आदिम प्रतीत होते हैं। वे विश्व-इतिहास के सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों में एक थे—गुरुडम के कारण नहीं, प्रतिभ के कारण।

1. 'भारतीय दर्शन' (डॉ. जमेश मिश्र), पृष्ठ 349-50। कांची कामकोटि पीठ इत्यादि की मान्यता के अनुसार जन्म 509 ई. पू.। 26 जून 2001 को नयी दिल्ली में 2510वीं अन्तरराष्ट्रीय जयन्ती मनाई गई।

2. श्री शंकराचार्य (डॉ. बलदेव उपाध्याय), पृष्ठ 29-31।

3. बंगाल के महान् समन्वयवादी देवीभक्त, जिनका रामकृष्ण परमहंस इत्यादि पर भारी प्रभाव पड़ा।

4. श्री शंकराचार्य, पृष्ठ 288।

शंकराचार्य के दर्शन का सार है कि ब्रह्म ही सत्य है, क्योंकि उसी की सत्ता शाश्वत, अखण्ड एवं अछेद्य-अभेद्य है तथा जगत् मिथ्या है क्योंकि उसकी स्थिति मायाजन्य, अध्यासजन्य, विवर्तजन्य, विकारजन्य है—वह न शाश्वत है, न अखण्ड-अछेद्य-अभेद्य। “ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः”। मेरे मत से, मिथ्या का अर्थ है जो सत्यतः (सत्य वह जिसकी सत्ता हो, जिसमें सातत्य हो)। विद्यमान न हो पर लगे कि है। मिथ्या शब्द पश्चिम में मिथ, मिथिकल, माइथोलॉजी इत्यादि का मूल है। जगत् मिथ्या अर्थात् सत्य लगता है वह नहीं है, वह सातत्यविहीन है, उसकी सत्ता स्थिर नहीं। जिन लोगों (या केवल डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी) ने मिथक शब्द प्रचलित किया वे मिथ्या से मिथ (पाश्चात्य) के सम्बन्ध से अभिभूत थे या अनभिज्ञ, पता नहीं; किन्तु शब्द प्राणवान है, मूलतः दर्शन-सम्पन्न है। ब्रह्म ने सृष्टि निर्लिप्त लीला के हेतु की है। जगत् की स्थिति ‘प्रातिभासिकी’ है, न कि ब्रह्म के सदृश ‘पारमार्थिकी’। उन्होंने माया को नागार्जुन के शून्य के सदृश सदसदविलक्षण अथवा अनिवर्चनीय माना है। उनका जगत्-निरूपण उपनिषद् के

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

की ब्रह्म-जगत्-अन्योन्यता तथा सार्वभौम आनन्दवाद से यत्किंचित् भिन्न लगता है जिस पर बुद्ध के दुःखवाद का परोक्ष प्रभाव भी आरोपित किया जा सकता है। अतः उन पर ‘प्रच्छन्न बौद्ध’ होने का आक्षेप किया गया है जो समीचीन नहीं लगता, क्योंकि वे विशद समन्वयवादी होने के कारण उपनिषद्-परवर्ती विचारधाराओं का सात्त्विक समाहार करना चाहते थे। उनके विलक्षण मायावाद ने बौद्धों के ही अखाड़े में कूदकर उन्हीं के दौंव से उन्हें ही चित्त किया। यदि कबीर में शंकराचार्य का ज्ञान होता तो वे अधिक प्रभावी हो सकते थे। यदि दयानन्द में शंकराचार्य की धृति-मति-समन्वयवृत्ति होती तो वे अधिक सफल हो सकते थे। उनके तत्त्वविचार पर डॉ. उमेश मिश्र के विचार माननीय हैं: “पारमार्थिक दृष्टि से एकमात्र तत्त्व है ब्रह्म या आत्मा जिसका स्वरूप है आनन्द। इसके अतिरिक्त जो कुछ देख पड़ता है वह अतत्त्व है जिसे अवस्तु, अज्ञान, माया आदि भी कहते हैं। अतत्त्व को जानना इसलिए आवश्यक है कि वस्तु या तत्त्व या आत्मा अवस्तु से पृथक् किया जा सके। अवस्तु के ज्ञान के बिना अवाङ्मनसगोचर वस्तु का ज्ञान साधारण लोगों को नहीं हो सकता।”

गोरखनाथ इत्यादि हठयोगियों के योगानन्दवाद, कबीर तथा नानक इत्यादि के रहस्यवाद, सूर तथा नन्ददास इत्यादि के लीलावाद, तुलसीवाद के रामव्याप्तिवाद, आधुनिक कवियों के रहस्यवाद, अधुनातन कवियों के नवरहस्यवाद इत्यादि तक प्रसरित शंकराचार्य का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव बृहत् ग्रन्थ का विषय है। शंकराचार्य क्रिया हैं, रामानुजाचार्य (जन्म 1017 ई.), निम्बार्काचार्य (देहान्त 1162 ई.), मध्वाचार्य (1199 ई.) तथा वल्लभाचार्य (1479-1530 ई.) इत्यादि प्रतिक्रियाएँ हैं जिन्होंने अपने-अपने युगों के अनुसार राष्ट्र की महान् सेवाएँ कीं, भारतीय दर्शन के आयाम व्यापकतर किए। सारे अवतार उत्तर में हुए, सारे आचार्य दक्षिण में।¹ इन आचार्यों में रामानुजाचार्य भक्ति-दर्शन के पुनर्प्रतिष्ठापक के रूप में विशेष महत्त्व रखते हैं जिनका विशिष्टाद्वैतवाद हिन्दी-साहित्येतिहास में भी विशेष प्रभावी सिद्ध हुआ जबकि निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद तथा मध्वाचार्य का द्वैतवाद विशेष प्रभावी नहीं सिद्ध हो सका—हाँ, वल्लभाचार्य² का शुद्धाद्वैतवाद उनके वल्लभ-सम्प्रदाय और सूरदास प्रभृति शिष्यों के कारण जीवन पर छा-सा गया। चैतन्य महाप्रभु (जन्म 1485 ई.—नोदिया या नादिया या नदिया, बंगाल में) के भक्तिवेदान्त में कीर्तन को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया। अधुनातन सभ्य विश्व पर ‘हरे राम, हरे कृष्ण’ की छाप छोड़नेवाले भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद चैतन्य महाप्रभु के गौडीय-सम्प्रदाय के ही उत्तराधिकारी थे।

शंकराचार्य का गहन दर्शन ज्ञानप्रधान था, योगप्रधान था। यद्यपि वे किसी सम्प्रदाय में बद्ध न थे तथापि शैवों ने उन्हें विशेष अपनाया, यद्यपि काश्मीरीय शैव दर्शन में कौलाचार-प्रभाववश कर्मप्रधान कामतत्त्व का विशिष्ट समावेश किया गया जिससे प्रसाद, मुक्तानन्द परमहंस इत्यादि आधुनिक कवि, योगी इत्यादि प्रभावित हुए। रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य एवं वल्लभाचार्य ने भक्तिप्रधान वैष्णव दर्शन को विकसित किया जिसका कोटि-कोटि जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा क्योंकि इसमें आकर्षक ‘लीला’ की दार्शनिक वीरयता प्रदान की गई, विश्व को भी सत्य माना गया, आशावाद का उन्मेष किया गया। विष्णु एवं उनके अवतारों को वेदों एवं पुराणों का आधार प्राप्त था। गुप्तकाल चौथी-पाँचवीं शताब्दियों में विशेषतः, परवर्ती शताब्दियों में यत्र-तत्र तथा सामान्यतः) में वैष्णव सम्प्रदायों का महान् उत्कर्ष हो चुका था। शंकराचार्य ने प्रस्थान-त्रयी में उपनिषद्, गीता एवं ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) के भाष्य

1. शंकराचार्य केरल के थे, रामानुजाचार्य तमिलनाडु के, निम्बार्काचार्य एवं वल्लभाचार्य आन्ध्र के, मध्वाचार्य कर्णाटक के। महान् दक्षिण के सारे राज्य दर्शन-सम्पन्न हैं।

2. ‘वनयात्रा’ शीर्षक हिन्दी-काव्यग्रन्थ के प्रणेता वल्लभाचार्य अन्य व्यक्ति थे।

किए थे, वैष्णव आचार्यों ने भागवत को जोड़कर प्रस्थान-चतुष्टयी विकसित की। भागवत वैष्णवों का वेद है। किन्तु वैष्णव सम्प्रदायों ने वेद, उपनिषद्, अन्य पुराण इत्यादि का सम्मान किया, विशाल समन्वयवादिता का परिचय दिया। अतः इनके योगदान का अपना महत्त्व अवश्य है तथा डॉ. उमेश मिश्र के ये शब्द बहुत युक्तियुक्त नहीं लगते, “इन वैष्णव-दर्शनों के तत्त्वों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इनकी खोज प्रधान रूप से न्याय, वैशेषिक एवं सांख्य दर्शन के आधार पर ही आश्रित है। वेदान्त के आध्यात्मिक तत्त्वों का विशेष विचार इनमें नहीं देख पड़ता। भगवान् के सम्बन्ध में भी जो बहुत-सी बातें कही गई हैं वे सभी उनके बहिरंग स्वरूप ही को लेकर हैं। अतएव, ये ऊँचे स्तर के दार्शनिक शास्त्र नहीं मालूम होते”। ऐसे कथन भारतीय दर्शन पर ग्रन्थ लिखने वाले अनेक प्राच्य-पाश्चात्य विद्वानों ने किए हैं जिसका मूल कारण पश्चिम के ईसाई विद्वानों का अवतारवाद तथा मूर्तिपूजा का विरोध है—आश्चर्य है कि स्वयं को ‘ईश्वर का पुत्र’ (परवर्तियों ने ‘एकमात्र पुत्र’ का रूप दे दिया) और ‘ईश्वर का वार्तावह’ (परवर्तियों ने ‘अन्तिम वार्तावह’ का रूप दे दिया) कहने वाले ईसा और मोहम्मद के मजहबों के मानने वालों ने अवतारवाद की विगर्हणा की है, मरियम और ईसा की मूर्तियों तथा संगे-असवद को पूजनेवालों में मूर्तिभजन को पुण्य घोषित किया है। और उनके अनुवर्ती अन्य लोगों ने उक्त घोषणाओं को अप्तवाक्य मान लिया है! ईसाई और मुसलमान हिन्दूधर्म, जैनधर्म, बौद्धधर्म एवं सिखपंथ में एकरूपेण स्वीकृत कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद की विगर्हणा बड़े उत्साह से करते हैं क्योंकि इनका कोई ठोस प्रमाण नहीं है—तो क्या ईसा के ईश्वर-पुत्र या मोहम्मद के रसूलुल्लाह होने का कोई ठोस प्रमाण है? क्या ऐसी धारणाएँ मिथ्या एवं अंधविश्वासपूर्ण नहीं हैं? क्या स्वर्ग-लोभ एवं नरक-भय प्रवंचन नहीं है? कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद सत्कर्म की प्रेरणा देते हैं, ईशपुत्रवाद या पैगम्बरवाद में केवल ईसा या मोहम्मद का अतर्क्य अनुयायी बनना ही जरूरी है—सारे अन्य सीधे नरक में फेंक दिए जाएँगे जहाँ अनन्त यातनाएँ भोगेंगे! यह कैसा ईश्वर है जो अपनी आँखों से नहीं देखता, अपने कानों से नहीं सुनता! सुमित्रानन्दन पन्त ने इस मध्ययुगीन ईश्वर की भर्त्सना ठीक ही की है। मुक्तानन्द परमहंस ने कहा है कि धर्मपरिवर्तन में रुचि लेने वाला ईश्वर यदि उनके आश्रय में आए तो वे उसे झाड़ू लगाने का काम भी न देंगे! यदि ईसाई और मोहम्मदी मजहब सच्चे हैं तो प्रलोभन और प्रचार और हिंसा के सहारे ही इन्हें क्यों बढ़ाया जा सका है? अतः भारतीय दर्शन के विद्वानों को वैष्णव दर्शनों का स्वतन्त्र एवं सम्यक् आकलन करना ही शोभा देता है निस्सन्देह शंकराचार्य की समता कोई वैष्णव दार्शनिक नहीं कर सकता। निस्सन्देह अद्वैतवाद विश्व का सर्वश्रेष्ठ दर्शन है। किन्तु निस्सन्देह वैष्णव दर्शनों के जीवनवाद, कलावाद, सौन्दर्यवाद एवं आशावाद ने राष्ट्र एवं विश्व को प्रभावित एवं आनन्दित किया है। आचार्य शुक्ल की इस प्रतिक्रिया का अपना मूल्य है, “रामानुज से लेकर वल्लभाचार्य तक जितने भक्त दार्शनिक या आचार्य हुए हैं, सबका लक्ष्य शंकराचार्य के मायावाद और विवर्तवाद से पीछा छुड़ाना था जिनके अनुसार भक्ति अविद्या या भ्रान्ति ही ठहरती थी। शंकर ने केवल निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की है।”¹ यह कथन आंशिक रूप से ही सत्य है क्योंकि शंकराचार्य ने “भज गोविन्दम्” का आदेश दिया है, ‘गंगालहरी’ लिखी है तथा उनके सम्प्रदाय के ही एक धुरन्धर विद्वान् मधुसूदन सरस्वती ने अनेक भक्तिपरक ग्रन्थ रचे हैं और वे रामचरितमानस के आदि-प्रतिष्ठापक थे। तुलसीदास और मधुसूदन सरस्वती की मित्रता ने तुलसीदास को ‘विनयपत्रिका’ में अद्वैतवाद का महाकवि बनाया है, मधुसूदन सरस्वती की ‘अद्वैतसिद्धि’, ‘वेदान्तकल्पलतिका’ एवं ‘गूढार्थदीपिका’ (गीता-टीका) प्रभृति में भक्ति से सम्पृक्त किया है। डॉ. उमेश मिश्र के अनुसार, ‘मधुसूदन के वेदान्त मत में ‘भक्ति’ का सम्मिश्रण है।”²

भक्तिमार्ग

भक्तिमार्ग एक सहज सुगम प्राचीन मार्ग है जिसके बीज वेद के देवसान्निध्यवाद में हैं, जिसकी ‘पराभक्ति’—रूप में स्पष्ट चर्चा उपनिषद् में है, जो ‘ईश्वरप्रणिधानाद्वा’ के रूप में पतंजलि के योगदर्शन में समावृत्त है तथा पुराण जिसके प्राचीन प्रतीक हैं। ‘नारद-भक्तिसूत्र’ तथा ‘शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र’ में पाराशर्य (व्यास), गर्ग, शाण्डिल्य, नारद, कुमार, शुक, विष्णु, कौण्डिल्य, शेष, अरुणि, बलि, हनुमान्, विभिषण, कश्यप तथा बादरायण का भक्ति के आचार्यों के रूप में उल्लेख है। श्री³—सम्प्रदाय (रामानुज-सम्प्रदाय अथवा रामानन्दी—सम्प्रदाय अथवा विशिष्टाद्वैतवादी सम्प्रदाय), हंस-सम्प्रदाय (सनकादि-प्रवर्तित एवं निम्बार्क-प्रेरित द्वैताद्वैतवादी या भेदाभेदवादी

1. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 143।

2. भारतीय दर्शन, पृष्ठ 352।

3. सम्मानसूचक, जैसे श्री-भाष्य (रामानुज कृत ब्रह्मसूत्र या वेदान्त दर्शन की टीका), श्री-वैष्णव इत्यादि—लक्ष्मीसूचक नहीं।

सम्प्रदाय), ब्रह्म-सम्प्रदाय (ब्रह्मा-प्रवर्तित एवं मध्वाचार्य-प्रेरित तथा गौडस्वामी चैतन्य महाप्रभु द्वारा विकसित मध्व-सम्प्रदाय या गौड़िया-सम्प्रदाय या द्वैतवादी सम्प्रदाय) एवं रुद्र-सम्प्रदाय (रुद्र-प्रवर्तित, विष्णुगोस्वामी संस्थापित, वल्लभाचार्य-प्रचारित विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय या वल्लभ-सम्प्रदाय या शुद्धाद्वैतवादी सम्प्रदाय) भक्ति के प्रधान सम्प्रदाय माने जा सकते हैं, यद्यपि वैखानस¹-सम्प्रदाय, राधावल्लभ-सम्प्रदाय (हितहरिवंश प्रवर्तित), गोकुलेश-सम्प्रदाय (कृष्ण एवं शक्ति के गानप्रेमी उपासक), वृन्दावनी-सम्प्रदाय, पाँचरात्र, वीरवैष्णव इत्यादि अन्यान्य वर्ग भी विद्यमान हैं।

भक्तिमार्ग का व्यापक प्रचार-प्रसार तमिलनाडु से आरम्भ हुआ जहाँ सरोयोगिन्, भूतयोगिन्, महद्योगिन् या भ्रान्तयोगिन्, भक्तिसार, शठकोप, मधुरकवि, कुलशेखर, विष्णुचित्त, गोदा (आंडाल), भक्ताङ्घ्रिरेणु, योगिवाहन, एवं परकाल नामक पूर्ववर्ती तथा नाथमुनि, यामुनाचार्य, मध्यवीथि भट्ट, कृष्णपाद इत्यादि परवर्ती आचार्यों ने भक्ति को एक विशद जीवन-दर्शन का रूप प्रदान किया। रामानुज (मूल नाम लक्ष्मण—जन्म 1017 ई.) यामुनाचार्य के पट्ट शिष्य थे जिनके विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार चित्, अचित् और ईश्वर मूल तत्त्व हैं जिनमें ईश्वर प्रधान अथवा अंगी है तथा जीव अंग। अंग-अंगी-भाव अथवा अंश-अंशी-भाव के कारण रामानुज का अद्वैतवाद शंकर के अद्वैतवाद से विशिष्ट अथवा भिन्न है। जीव और ईश्वर में सेवक-सेव्य का सम्बन्ध है, वह सर्वत्र ईश्वर-प्रेरित है। 'बद्ध' जीव भक्ति एवं प्रपत्ति के द्वारा 'मुक्त' हो सकता है। 'प्रपत्ति' (शरणागति) के प्रतिपादन के कारण रामानुज की भक्ति दास्यभाव-सम्पृक्त हो गई है। ईश्वर की लीला ही सृष्टि एवं प्रलय इत्यादि का कारण है। रामानुज ने नारायण (विष्णु) एवं श्री (लक्ष्मी) की पूजा का प्रतिपादन किया। उनके अनुयायियों में लोकाचार्य, वेदान्तदेशिक एवं श्रीनिवासाचार्य विशेष प्रसिद्ध हुए। हिन्दी की दृष्टि से रामानन्द (कबीर, रैदास, सेन, धना, पीपा इत्यादि के गुरु) और उनके परवर्ती अनुयायी नरहरदास या नरहरिदास और उनके शिष्य विश्वविख्यात तुलसीदास का सम्बन्ध इसी सम्प्रदाय से था।

निम्बार्क² (निधन 1163 ई.) ने अद्वैतवाद एवं द्वैतवाद में समन्वय का महान् दर्शन प्रतिपादित किया जिसे ठीक ही द्वैताद्वैतवाद अथवा भेदाभेदवाद कहा गया। द्वैताद्वैतवाद में परमात्मा, जीवात्मा एवं प्रकृति के तीन भिन्न-भिन्न तत्त्व माने गए हैं। जीवात्मा एवं प्रकृति को परमात्मा के अधीन बताया गया है। यह द्वैतवाद के अनुरूप है—इसे स्थूलतः त्रैतवाद³ भी कहा जा सकता है। किन्तु परमात्मा जीवात्मा एवं प्रकृति में ओतप्रोत है—यदि परमात्मा समुद्र है तो जीवात्मा तरंग, यदि परमात्मा समुद्र है तो प्रकृति के असंख्य अवयव उसकी तरंगें हैं। द्वैत अथवा भेद तथा अद्वैत अथवा अभेद दोनों में समावेश के कारण निम्बार्क का दर्शन उदार तो है किन्तु सुनिर्दिष्ट नहीं। निम्बार्क के अनुसार, सृष्टि से प्रलय तक सब ब्रह्मस्वरूप हैं और ब्रह्म इच्छानुसार आकार ग्रहण कर सकता है। रामानुज ने लक्ष्मी-नारायण की भक्ति का प्रतिपादन किया था, निम्बार्क ने राधा-कृष्ण की भक्ति का प्रतिपादन किया तथा वृन्दावन में आकर बस गए जिससे परवर्ती वल्लभाचार्य जैसे आचार्य तक उनसे प्रभावित हुए। हरिदास, श्रीभट्ट, घनआनन्द इत्यादि हिन्दी-कवि निम्बार्क के अनुयायी थे। मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में लिखा है, "हिन्दू-मत के पुनःस्थापन में स्वामी रामानुजाचार्य का प्रभाव भारी है किन्तु हिन्दी-साहित्य पर निम्बार्क स्वामी का अधिक प्रभाव है। राम-सम्बन्धी साहित्य पर रामानन्द के द्वारा रामानुजाचार्य का प्रभाव है तथा शृंगारिक रचना पर निम्बार्क स्वामी का। संख्या में यह रामकाव्य से बहुत अधिक है। स्वयं निम्बार्क स्वामी ने कृष्ण के साथ राधाजी का वर्णन तो किया किन्तु राधा की विशेष महत्ता न की। फिर भी पीछे से यह वाममार्गीय विचार परिवर्द्धित होकर चैतन्य महाप्रभु तथा रूपसनातन के प्रभाव से गौड़ीय तथा अन्य सम्प्रदायों में भी बहुत व्यापक रूप से फैला।" स्पष्ट है कि किसी समय गौड़ीय सम्प्रदाय से सम्बद्ध हरिवंश तथा चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाने वाले गदाधर भट्ट तथा हित हरिवंश के शिष्य हरिराम व्यास इत्यादि पर भी निम्बार्क का प्रभाव पड़ा। वैसे चैतन्य महाप्रभु का सम्बन्ध ब्रह्म-सम्प्रदाय या मध्व-सम्प्रदाय या द्वैतवादी-सम्प्रदाय से था किन्तु कृष्णभक्ति-प्रतिपादन में स्वयं मध्वाचार्य निम्बार्क से प्रभावित हुए थे—दोनों ने कृष्ण को पूर्णावतार माना है—अतः मिश्रबन्धु का कथन विशेष विवादास्पद नहीं कहा जा सकता।

मध्वाचार्य (जन्म 1199 ई.) के द्वैतवाद में परमात्मा एकराट् एवं अनन्तगुणसम्पन्न है जो सृष्टि, स्थिति, संहार, नियम, अज्ञान, बोधन, बंध तथा मोक्ष के कार्यों को निरन्तर करता रहता है। परमात्मा या विष्णु विशेष है। लक्ष्मी में भी प्रायः ये सभी गुण हैं किन्तु

1. एक प्राचीन मुनि।

2. निंब (या निंबापुर या नैर्दूपत्तन) में जन्म। निंब के सूर्य! एक संन्यासी को सूर्यास्त के बाद भी निंब वृक्ष पर अर्क (सूर्य) का दर्शन कराने की कथा प्रचलित है।

3. मोहम्मद इत्यादि त्रैतावादी थे—दयानन्द भी।

वे विशेष नहीं हैं। जीव के प्रत्येक रूप में परमात्मा परिपूर्ण-रूप में विद्यमान है, अतः सभी अवतार परमात्मापूर्ण हैं। लक्ष्मी ही श्री, भू दुर्गा, नृणी, ही, महालक्ष्मी, दक्षिणा, सीता, जयन्ती, सत्या, रुक्मिणी हैं। विष्णु के उरःस्थल में रहने के कारण ये 'यज्ञ' नाम धारण करती हैं। मध्वाचार्य ने कृष्ण को पूर्णावतार घोषित किया जिसका चैतन्य महाप्रभु प्रभृति पर भारी प्रभाव पड़ा। द्वैतवाद में जीव का महत्त्व है अवश्य किन्तु वह ब्रह्म नहीं है। मध्वाचार्य ने शंकराचार्य के प्रतिबिम्बवाद से भिन्न प्रतिबिम्बवाद-प्रतिपादन किया है। इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. उमेश मिश्र लिखते हैं, 'बिम्ब से अलग न रहनेवाला और उसके सदृश ही तत्त्व प्रतिबिम्ब है। बिम्ब ही के अधीन इसकी सत्ता और क्रिया होने से वह क्रियावान कहलाता है। स्वयं प्रतिबिम्ब में क्रिया नहीं है। बिम्ब और प्रतिबिम्ब में कहीं ज्ञान, आनन्द आदि गुणों से तथा कहीं चैतन्य, हाथ, पैर आदि के होने से सादृश्य है। इसीलिए परमात्मा का प्रतिबिम्ब दैत्यों में भी है।'¹ जटिल होते हुए भी मध्वाचार्य का द्वैतवाद मननीय दर्शन है जिसका प्रभाव कतिपय विद्वानों द्वारा तुलसीदास पर भी दिखाया गया है, यद्यपि वह नितान्त प्रासंगिक सन्दर्भों पर आधृत है।

हिन्दी-साहित्य पर शंकराचार्य (788-820 ई.) के सार्वभौम अद्वैतवाद के अनन्तर सर्वाधिक व्यापक प्रभाव वल्लभाचार्य (1479-1530 ई.) के शुद्धाद्वैतवाद का पड़ा जिसके अनुसार ब्रह्म ही एककमात्र तत्त्व है तथा सृष्टि की सारी वस्तुएँ ब्रह्म से अभिन्न अतः शाश्वत हैं। जगत् अक्षय अथवा नित्य है किन्तु विष्णु की माया इसका आविर्भाव-तिरोभाव अथवा उत्पत्ति अथवा उत्पत्ति-विनाश करती रहती है। माया ब्रह्म की शक्ति है जो सत्-अंश में क्रियारूपा तथा चित्-अंश में व्यामोहरूपा है।² त्रिगुणात्मिका माया कर्तृरूपा अथवा जगत् की उत्पत्ति में आनन्दरूप कारण भी है। किन्तु वह ब्रह्म के अधीन है। वल्लभाचार्य ने शंकराचार्य के जगन्मिथ्यावाद का सम्पूर्ण खण्डन किया, निम्बार्काचार्य के द्विमुख भेदोभेदवाद के स्थान पर एकरूप अभेदवाद का प्रतिपादन किया, मध्वाचार्य के द्वैतवाद का विरोध किया तथा कृष्ण की सर्वोपरिता से परिपूर्ण लीला की चिरन्तनता का आशावादी-सौन्दर्यवादी-कलावादी जीवन-दर्शन प्रस्तुत कर हिन्दू जाति की रक्षा में भारी योगदान किया, मुसलमानों को आकृष्ट किया तथा एक राष्ट्रीय दार्शनिक अथवा राष्ट्रीय नेता का गौरव प्राप्त किया। उनका वल्लभ-सम्प्रदाय दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और गुजरात में आज भी प्रभावी है। नाथद्वारा (राजस्थान) वल्लभमार्गियों का प्रधान तीर्थ है। वल्लभाचार्य के पुत्र विठ्ठलनाथ तथा पौत्र गोकुलनाथ भी सफल नेता थे। सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, नन्ददास³, रसखान, बीरबल, ताज बेगम, भारतेन्दु, रत्नाकर इत्यादि प्रख्यात कवियों पर वल्लभाचार्य के लीलाप्रधान आशावाद-आनन्दवाद का भारी प्रभाव पड़ा है। शंकराचार्य का हिन्दी-साहित्य पर विराट् प्रभाव परोक्ष है (जो जगन्मिथ्यावाद तथा रहस्यावाद के रूपों में पड़ा है), जबकि वल्लभाचार्य का प्रत्यक्ष (जो लीलावाद तथा आशावाद के रूपों में पड़ा है)। मिश्रबन्धु ने अपने ग्रन्थ 'विनोद' में लिखा है, 'यह वल्लभय सम्प्रदाय के संस्थापक एवं महान् ऋषि हो गए हैं। यह संस्कृत के बड़े धुरंधर पंडित और सुकवि थे। आप वल्लभीय वैष्णव-सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के अवतार माने जाते हैं और आपकी पूजा देवताओं के समान अब तक होती है। कृष्णभक्तिसम्बन्धी वैष्णव-सम्प्रदायों में दो ही अधिकता से चले, अर्थात् उत्तर⁴ में वल्लभाचार्य का और बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का।मध्यकालीन भाषा-कविता-भण्डार आपके शिष्यों की रचना से बहुत भरा है। उसकी उत्तेजना देने वाले यही महापुरुष थे। ...यदि भाषा-काव्य को आपके सम्प्रदाय द्वारा इतना सहारा न मिला होता तो आज शायद व्रजभाषा की कविता इतनी परिपक्व न होती।' रामचन्द्र शुक्ल ने अपने महान् 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में लिखा है, 'वल्लभ ने ब्रह्म में सब धर्म माने। सारी सृष्टि को उन्होंने लीला के लिए ब्रह्म की आत्मस्वीकृति कहा। अपने को अंश रूप जीवों में बिखराना ब्रह्म की लीला मात्र है। अक्षर ब्रह्म अपनी आविर्भाव-तिरोभाव की अचिन्त्य शक्ति से जगत् के रूप में परिणत भी होता है और उसके परे भी रहता है। वह अपने सत्-चित् और आनन्द इन तीनों स्वरूपों का आविर्भाव और तिरोभाव करता रहता है। जीव में सत् और चित् का आविर्भाव रहता है, चित् और आनन्द दोनों का तिरोभाव। माया कोई वस्तु नहीं। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं जो सब दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर 'पुरुषोत्तम' कहलाते हैं। आनन्द का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम-रूप में रहता है। अतः यही श्रेष्ठ रूप है।पुरुषोत्तम कृष्ण की सब लीलाएँ नित्य हैं।भगवान् की इस 'नित्यलीलासृष्टि' में प्रवेश करना ही जीवन की सबसे उत्तम गति है।' वल्लभाचार्य और उनके शुद्धाद्वैतवाद पर सुरेन्द्रनाथदास, राधाकृष्णन्, उमेश मिश्र इत्यादि ने अंग्रेजी तथा बलदेव उपाध्याय, उमेश मिश्र, दीनदयाल गुप्त, डॉ. मुशीराम शर्मा 'सोम' इत्यादि ने

1. भारतीय दर्शन, पृष्ठ 439।

2. तुलसी ने विद्यामाया एवं अविद्यामाया का प्रतिपादन किया है।

3. अष्टछाप (आठ कवियों की संख्या)।

4. वस्तुतः उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात।

हिन्दी-ग्रन्थों में पर्याप्त प्रकाश डाला है। यदि डॉ. दीनदयालु गुप्त कृत डी. लिट्. प्रबन्ध 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' अपने विषय का मानक ग्रन्थ है, तो 'सोम' का ऐसा ही प्रबन्ध 'भक्ति का विकास' अद्वितीय उपलब्धि।

भक्ति और अवतारवाद

परमात्मा के प्रति अनुराग का नाम भक्ति है। यह अनुराग भौतिक न होने के कारण परानुराग होता है। उपनिषद् में पराविद्या ब्रह्मविद्या की पर्यायवाची है। उपनिषद् पराभक्ति का विधिवत् उल्लेख करता है। अतः शाण्डिल्य कृत 'भक्तिसूक्त' में भक्ति की परिभाषा "सा परानुरक्तिरीश्वरे" (भक्ति ईश्वर के प्रति परानुरक्ति है) के रूप में ठीक ही की गई है। छान्दोग्य उपनिषद् के "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" को आधार बना कर भक्तिसूत्र "तत्संस्थस्यामृतत्वोपदेशात्" की घोषणा करता है। ज्ञान को भक्ति से भिन्न बताते हुए भक्तिसूक्तकार कहता है कि भक्तिभावना ज्ञानक्षय करती है—“तयोपक्षयाच्च”। इस सूत्र का तलस्पर्शी भाव यह है कि भक्ति के उदय होने पर तर्कादि का अन्त एवं भावुकता का उदय होता है, जो उपनिषद् के “नैषा तर्केण मतिरापनेया” से अनुरूप है। तर्क जब आवश्यकता से अधिक ऊँचाई तक पहुँच जाता है तब उसको वाग्जाल कहते हैं—वह शून्य के निकट पहुँच जाता है। अधिक ऊँचाई में प्राणवायु कहाँ? बाइबिल में आदम ज्ञानतरु का फल खाकर स्वर्ग-च्युत हुए हैं—यह आदिम-कथा उपनिषद् के “नैषा तर्केण मतिरापनेया” की व्याख्या है। सुकरात कहते हैं कि वह जो सारा-का-सारा जानते हैं वह यह है कि वे कुछ नहीं जानते—यह प्रतीक-कथन उपनिषद् के “विज्ञातारम् अरे केन विजानीयात्” की व्याख्या है। ज्ञानातिरेक विक्षिप्तता की सृष्टि करता है। तत्त्वतः ज्ञान एवं भक्ति अभिन्न हैं :

ज्ञानहि भगतिहि नहिं कलु भेदा ।

उभय हरहिं भवसंभव खेदा ।। (तुलसी)

किन्तु वस्तुतः भक्ति सुगम है। अतः भक्तिसूत्रकार शाण्डिल्य भक्ति को ज्ञान, योग एवं कर्म पर वरीयता प्रदान करते हैं—“तदेव कर्मिज्ञानियोगिभ्य आधिक्यशब्दात्”। उनकी इस घोषणा को गीता की इस घोषणा के अनुरूप माना जाएगा :

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन ।।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मा ।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।।

भक्ति वेद में देवसान्निध्यवाद के रूप में विद्यमान है। देवता का आह्वान, आमन्त्रण, इन्द्र या अग्नि या मरुत् या सूर्य या उषा या अन्य का सुन्दर नासिकवाले युवा, रोहित नामक अश्व पर आरुढ़, मृगवाहन पर आरुढ़, रथारुढ़, अटनकर्ता, सूर्यप्रेमिका प्रभृति 'रूपों' में चित्रण भक्ति को ही नहीं अपितु साकारवाद को भी विवृत करते हैं। ऋग्वेद के परम-देवता इन्द्र युद्ध करते हैं, शत्रुसंहार करते हैं, शत्रु-पुरदहन करने के कारण पुरहूत का गौरव प्राप्त करते हैं। अतः ऋग्वेद आदि को न तो भक्तिरहित कहा जा सकता है, न साकाररहित। ऋग्वेद (यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय में भी) का महर्षि नारायण¹ प्रणीत 'पुरुष-सूक्त' साकारवाद-अवतारवाद का बीजसूक्तक है :

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं सवर्तः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहुः राजन्यः कृतः ।

उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।

वेद का परमात्मा 'पुरुष' है, भूमि-सम्पृक्त या जीवनसम्पृक्त है, सारे समाज का स्रष्टा और उससे ओतप्रोत है—पहले या दूसरे या सातवें आसमान पर बैठा अपने पुत्रों या पैगम्बरों के माध्यम से नरंकभय दिखानेवाला निरंकुश एवं निर्मम शासक नहीं! वेद, विशेषतः पुरुष-सूक्त, का आधार लेकर उपनिषद् ने ब्रह्म को सृष्टि से ओतप्रोत दिखलाया—“सर्वं खल्विदं ब्रह्म” (छान्दोग्य), “तत्त्वमसि” (छान्दोग्य) एवं “अहं ब्रह्मास्मि” (बृहदारण्यक) जैसी घोषणाएँ कीं। गीता में कृष्ण का विराट्-रूप ऋग्वेद के 'पुरुष' का ही विकास

1. नारायण (विष्णु) ही अवतारवाद के प्रेरक बने—ऋषिनाम प्रतीकनाम भी है।

है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के महर्षि श्वेताश्वतर इस 'पुरुष' या 'ब्रह्म' या 'विराज' या 'विराट्' को अभ्यन्तर-बाह्य—सर्वत्रव्याप्त रूप में प्रस्तुत करते हैं :

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः, सर्वव्यापी, सर्वभूतान्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः, सर्वभूताधिवासः, साक्षी, चेता, केवलो निर्गुणश्च ।।

भारत में परमात्मा सर्वव्याप्त रहा है—आभ्यन्तरबद्ध नहीं, बाह्यबद्ध नहीं¹। अतः उसे 'एकमात्र पुत्र' या 'अन्तिम पैगम्बर' वगैरह की अपरिहार्यता नहीं अनुभूत हुई। भारत ने परमात्मा को एकपुत्रपक्षपाती या एकपैगम्बरपक्षपाती कहकर उसको संकीर्ण तथा मानव-जाति को विभक्त नहीं किया। भारत ने स्वयं परमात्मा को भूतल पर उतारा है, उसे एक मात्र पुत्र या अन्तिमपैगम्बर के बल पर चलाकर उसकी तात्त्विक अवहेलना नहीं की।

वेद में सगुण-साकार² के बीज तो विद्यमान हैं ही, 'युगलता' के बीज भी स्पष्टतः दृग्गत होते हैं :

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रेपाश्वरे ।

नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्याप्तम् ।।

ईसाई मज़हब में 'पिता' तो अलौकिक है पर माता मरियम (मेरी) लौकिक जो अन्य परिवारजन के सदृश ही 'पुत्र' को मनसा-अस्यस्थ समझती है। मोहम्मदीयत में एक कबीले के देवता 'अल्लाह' को तो समादृत किया किन्तु अल्लाह को अन्य कबीलों के देवी-देवताओं के साथ तुड़वाकर नष्ट करा दिया गया : अल्लाह को विधुर कर दिया गया! हिन्दूधर्म में परमात्मा के साथ ऐसे व्यवहार नहीं किए गए। संकीर्ण विचारों ने विराट् परमात्मा के साथ बहुत अन्याय किया है। संकीर्ण मतों ने पावन मानव को निराधारतः पाप-प्रतीक बताकर, कल्पित नरकभयाक्रान्त कर, मिथ्यास्वर्गलोभी बनाकर उसके साथ भारी अत्याचार किया है।

आलम्बनहीन भक्ति सम्भव नहीं। बौद्धों और जैनों में बुद्ध और महावीर भक्त्यालम्बन हैं, क्योंकि उनमें ईश्वर है ही नहीं। ईसाइयों और मोहम्मदियों में ईश्वर अस्पष्ट और ईसा तथा मोहम्मद पर आश्रित मात्र है (जैसा कि 'डिवाइन कॉमेडी' से 'पैराडाइज लॉस्ट' तक तथा 'कुरान' से स्पष्ट है)। अतः इन मज़हबों में ईश्वर बस हाशिए में है और बोलबाला ईसा और मोहम्मद का है, जिन में एक-दूसरे की दिव्यता को विवादास्पद माना गया है (जैसा कि 'कुरान' और 'शाहनामा' तथा 'डिवाइन कॉमेडी' से स्पष्ट है)। हिन्दूधर्म में निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार में अभेदता के कारण कोई संकीर्णता या विरोधाभास नहीं दिखता। हिन्दूधर्म का भगवान् स्पष्टतः पारिभाषित भी है (अनिर्वचनीय तो वह है ही) :

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य भूतानामगति गतम् ।

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाचो भगवानिति ।।

पुराणों ने वेद के देवसान्निध्यवाद, उपनिषद् के अहंब्रह्मास्मिवाद या तत्त्वमसिवाद या सर्वखल्विदंब्रह्मवाद एवं वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र) के अरूप-सरूप समतावाद³ को अवतारवाद के रूप में विकसित कर सामान्यतः अन्य तथा विशेषतः राम एवं कृष्ण की ऐसी विशद कल्पनासम्पन्न झाँकी दिखाई कि इन दो पूर्ववर्ती एवं बौद्ध-जैन समादृत क्षत्रिय राजकुमारों ने बुद्ध और महावीर (ये दोनों भी इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय राजकुमार ही थे) को आत्मसात् कर डाला। बुद्ध और महावीर की कल्पनाएँ उन्हें पलायनवादिता से असम्पृक्त नहीं कर सकी थीं, यद्यपि उनमें भी राज्यत्याग एवं शौर्य-प्रदर्शन इत्यादि का रामवृत्तानुकरण किया गया था। राम एवं कृष्ण की समग्र जीवनसम्पन्नता के अभाव में बुद्ध एवं महावीर के प्रभाव नगण्य या नगण्यवत् हो गए। इन्हीं राम एवं कृष्ण की पावन पूर्णता के कारण हिन्दू ने मरुधमों को भी नहीं अपनाया। संसार में मानवोच्चता की जैसी सम्पूर्ण एवं महत्तम कल्पना राम एवं कृष्ण में की गई है वैसी तो दूर उससे चौथाई भी किसी अन्य व्यक्ति की नहीं—यही कारण है कि इन दोनों पर जितना और जैसा साहित्य रचा गया है उतना और वैसा किसी अन्य पर नहीं। राम एवं कृष्ण राष्ट्रीय एकता के मेरुदण्ड तो हैं ही, हिन्दू-मुसलमान-एकता के प्रधान आधार भी हैं। रहीम (अर्बुदरहीम खानेखानों) से 'राना' (इफ्तिखार अहमद खॉं) और जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर (जिसने राम-जानकी सिक्का चलाया) से मिर्ज़ा हसन नासिर (जिन्होंने 'देख रहा मैं राम को' लिखा) तक मुसलमानों ने राम को समादृत किया। भारत के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश मोहम्मद हिदायतुल्ला ने रामकथा को "मानवीय मूल्यों की आचार-संहिता" बताते हुए लिखा है, "रामायण ने न केवल हिन्दुओं को

1. पुरुष-सूक्त में ही।

2. अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्।

3. श्रीरामजन्मभूमि सन्देश (अयोध्या), अगस्त 1989, 'रामकथा' पृष्ठ 4।

वरन जैनियों और बौद्धों को भी प्रभावित किया। रामायण मुसलमानों को भी प्रिय थी। उर्दू में रामायण-खुशतार, रामायण-मंजुम और रामायण-वहार तथा फ़ैज़ी और बदायूनी कृत रामायण का फ़ारसी-अनुवाद इसके अच्छे उदाहरण हैं। मसीही-रामायण इस बात का प्रमाण है कि इसने मसीहियों को भी प्रभावित किया। कृष्ण पर तो रसखान, ताज बेगम, नज़ीर, सागर इत्यादि का स्फीत सृजन विख्यात है ही। रामजन्मभूमि-मुक्ति-आन्दोलन के एक नेता मुख्तार अब्बास नक़वी हैं।

वेदाधृत, उपनिषद्प्रतिपादित एवं पुराणपल्लवित अवतारवाद को संकीर्णता-बन्दी पाश्चात्य विद्वान् कभी नहीं समझ सके। उनसे प्रेरित भारतीय भी तोतारंटत करते रहे। गीता तथा पुराण इत्यादि बारम्बार सगुण-साकार को श्रुतिसम्मत बताते हैं, वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र) दोनों का अभेद प्रतिपादित करता है। तुलसी इत्यादि तदनु रूप भक्ति को 'श्रुतिसम्मत' घोषित करते हैं, तो पाश्चात्य विद्वानों एवं उनके भारतीय अनुकरणवादियों की एतद्विरुद्ध मान्यताओं को कोटि-कोटि भारतीय जनता कैसे न ठुकराती? भक्ति एवं अवतारवाद के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक एवं कवि तुलसीदास घोषणा करते हैं :

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनुपा।।

एकु दारुगत, देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू।।

'निर्गुण' एक कल्पना है। प्रत्येक निर्गुणवादी परमात्मा में सर्वशक्तिमान्, स्रष्टा, रक्षा, संहर्ता, दयालु, कृपालु इत्यादि गुणों का आरोप कर अपना खण्डन स्वयं कर देता है। 'निराकार' परमात्मा भी किसी कथित-निराकारवादी मज़हब में नहीं सिद्ध होता—मूसा ने झाड़ी में जेहोवा को अग्नि-रूप में प्रत्यक्ष देखा तथा वे प्रायः उससे मंत्रणा करने पर्वत पर जाया करते थे, ईसा परमात्मा के एकमात्र पुत्र हैं तो उनका तत्त्वसूत आकार स्वयं परमात्मा के आकार का द्योतक है, मोहम्मद अपनी किताब 'कुरान' में कहते हैं कि सृष्टिनिर्माण के अनन्तर अल्लाह ने अर्श पर विश्राम किया तथा परवर्ती कथाओं में उनके अल्लाह से बारम्बार परामर्श बताए गए हैं—बाइबिल और कुरान के अनुसार परमात्मा ने मानव को अपनी आकृति के अनुरूप बनाया। अतः तुलसीदास ने ठीक ही निर्गुण-सगुण अथवा निराकार-साकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया। सूर ने निर्गुण-निराकार की अव्यावहारिकता स्पष्ट की है:

अबिगत गति कछु कहत न आवै।

ज्यों गूँगेहि मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै।।

परम स्वाद सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।

मन बानी को अगम अगोचर सो जानै जो पावै।।

रूप, रेख, गुन, जाति, जुगुति बिनु निरालंब मन चकृत धावै।

सब बिधि अगम बिचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावै।।

सम्पूर्ण जीवन-साहित्य

पुनरुत्थानकालीन साहित्य सम्पूर्ण जीवन-साहित्य है, कोरा भक्ति-साहित्य नहीं। अमीर खुसरो के बाबुलगीत (जिनका अनुकरण कबीर ने किया है), कव्यालियाँ इत्यादि तथा मुल्ला दाऊद, कुल्बन, जायसी, मंझन इत्यादि के प्रेमाख्यान, केशवदास तथा सेनापति का उच्चस्तरीय अलंकृतकाव्य, कृपाराम तथा केशवदास इत्यादि का प्रभावी शास्त्रीयकाव्य, राठौड़राज प्रिथीराज, रहीम तथा अकबर इत्यादि का शृंगारकाव्य, केशवदास का चरितकाव्य, तथा केशवदास, गंग होलराय इत्यादि का प्रशस्तिकाव्य भक्तिकाव्य नहीं है— निस्सन्देह केशवदास शास्त्रीयकाल के उद्घाटनकर्ता महाकवि हैं किन्तु समय की दृष्टि से वे पुनरुत्थानकाल को भी अलंकृत करते हैं और यही बात सेनापति, रहीम प्रभृति कतिपय अन्य कवियों पर भी लागू होती है। आचार्य शुक्ल को अपनी संकीर्ण एवं एकांगी भक्तिकाल नामकरण के कारण ही केशवदास, सेनापति, रहीम जैसे उत्कृष्ट कवियों को 'फुटकल' खाते में डालना पड़ा है। आचार्य शुक्ल का 'फुटकल' खाता उनके इतिहास का एक प्रमुख दौर्बल्य है। 'भक्तिकाल' में ही छीहल, लालचदास, कृपाराम, महापात्र नरहरि बंदीजन, नरोत्तमदास, आलम¹, महाराज टोडरमल, महाराज बीरबल, गंग, मनोहर कवि, बलभद्र मिश्र, जमाल, केशवदास, होलराय, रहीम (अर्बुरहीम खानखाना), कादिर, मुबारक, बनारसीदास, सेनापति, पुहकर कवि, सुन्दर² और लालचन्द या लक्षोदय³ नामक बाइस कवि 'फुटकल'

1. 'माधवानल-कामकंदला' के प्रेमाख्यानकार जो अकबर के समकालीन थे। औरंगज़ेब के समकालीन प्रेमी-कवि आलम से स्पष्टतः भिन्न।

2. शाहजहाँ के दरबारी 'महाकवि' जिन्होंने 'सुन्दर-शृंगार' लिखा। दादू शिष्य सुन्दरदास से भिन्न।

3. 'लक्षोदय' ग़लत है, 'लब्धोदय' ठीक।

खाते में विद्यमान हैं। यही नहीं, राठौड़राज प्रिथ्वीराज कृत 'बेलि क्रिशन रुकमणि री', लोककाव्य 'ढोला मारू रा दूहा', दामो कवि कृत 'लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा', ईश्वरदास कृत 'सत्यवती कथा', काशीराम कृत 'कनकमंजरी' इस 'फुटकल' खाते के भी अन्त में हैं। उनके भक्तिकाल की निर्गुणधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा में कबीर, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरु नानक, दादूदयाल, सुन्दरदास, मल्लूकदास और अक्षर अनन्य अर्थात् कुल आठ कवि ही हैं तथा प्रेमाश्रयी शाखा में कुल्बन, मंझन¹, मलिक मोहम्मद जायसी, उसमान, शेख नबी, क़ासिमशाह और नूर मोहम्मद अर्थात् कुल सात ही। उनकी सगुणधारा की रामाश्रयी शाखा में (पृष्ठभूमिगत रामानन्द को छोड़ते हुए) गोस्वामी तुलसीदास जी, स्वामी अग्रदास, नाभादासजी, प्राणचन्द चौहान और हृदयराम अर्थात् कुल पाँच कवि ही हैं तथा कृष्णाश्रयी शाखा में (पृष्ठभूमिगत वल्लभाचार्य को छोड़ते हुए) सूरदासजी, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, हित हरिवंश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, स्वामी, हरिदास, सूरदास मदनमोहन, श्रीभट्ट, व्यासजी², रसखान और ध्रुवदास अर्थात् कुल सत्रह ही। स्पष्टतः 'फुटकल' खाता उनकी किसी भी एक शाखा से काफी बड़ा है। कृष्णाश्रयी शाखा की सत्रह संख्या में भी कृष्णदास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, हरिदास, सूरदास, मदनमोहन, श्रीभट्ट और ध्रुवदास तो एकदम नामनिहाल हैं, सूरदास, नन्ददास, मीराबाई और रसखान ये चार कवि ही विशिष्ट हैं। अतः आ. शुक्ल का 'फुटकल' खाता ही उनके संकीर्ण एवं एकांगी भक्तिकाल नामकरण की विसंगति स्पष्ट कर देता है। इतना ही नहीं, सूफ़ी-काव्य को भक्ति में समाहित करना भी धक्काशाही ही है। डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने सूफ़ी-काव्य को भक्ति-काव्य न मानकर प्रशस्य कार्य किया है। जायसी या मंझन की तुलना में रहीम या नरोत्तमदास ही भक्त लगेंगे। संकीर्ण एवं कालातीत भक्तिवादबद्धता के कारण ही आचार्य शुक्ल ने केशव, सेनापति इत्यादि को रामकाव्य से बहिष्कृत कर दिया है। भक्ति जीवन की एक पृवृत्ति है, समग्र जीवन नहीं। अतः भक्तिकाल नामकरण एकांगी एवं अक्षम है। यह वीरगाथाकाल नामकरण के सदृश ही ग्राह्य नहीं हो सकता।

तुलसीदास का मार्मिक महामारी-वर्णन, दरिद्रता और बेरोजगारी का चित्रण, नानारसनिरूपण इत्यादि, नाभादास का परिचयात्मक भक्तिकाव्य, सूरदास का मनोहारी गोचारणकाव्य, अधिकांशतः अतुलनीय वात्सल्यकाव्य इत्यादि, हृदयराम अनूदित हनुमन्नाटक के शृंगारादि प्रकरण, हरिराम व्यास के हित हरिवंश स्मरण प्रभृति को भक्तिकाव्य मानना कविता की नानाआयामिता के साथ अन्याय करना है। राठौड़राज प्रिथ्वीराज का मनोहरी शृंगार-वर्णन, नरोत्तमदास का प्रभावी दारिद्र्य-चित्रण, रहीम का सरस नायिकाभेद-निरूपण अधिकांश भक्तिकाव्य से श्रेष्ठतर है। फिर, कबीर और नानक इत्यादि, तुलसी और सूर इत्यादि ने राशि-राशि निर्वेद-स्थायीभाव-परक शांतरसकाव्य भी रचा है जिसकी निवृत्तिप्रधानता उसे शास्त्रीय दृष्टि से प्रवृत्तिप्रधान भक्तिकाव्य से भिन्न सिद्ध करती है। पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने अमर ग्रन्थ 'रस-गंगाधर' में शान्तरस एवं भक्तिरस का जो विश्लेषण किया है वह हिन्दी-भक्तिकाव्य पर भी लागू होता है। भक्तिरस को ही प्रधान या अंगीरस मानना तथा दास्य, सख्य, शृंगार, वात्सल्य, शान्त में वर्गीकृत करना महत्त्वपूर्ण अवश्य है किन्तु वह भवभूति के करुण तथा भोज के शृंगार को अंगीरस मानने का विकास है—आगे चलकर भूषण ने वीर को अंगीरस माना—सार्वभौम स्थापना नहीं। मनोभाव इतने अन्योन्य हैं कि तर्क किसी को भी अंगी सिद्ध कर सकता है। भक्तिकाव्य माना जानेवाला अमरसृजन वस्तुतः नानारसनिष्पन्न सृजन है, जिसमें विशुद्ध भक्ति अल्पांश में ही उपलब्ध होती है। कवियों ने पुनरुत्थानकालीन मानवतावाद, समतावाद, प्रेम, विरह, शोषण, दारिद्र्य इत्यादि से लेकर नगर-ऐश्वर्य, भवन-वैभव, आभूषण-सज्जा, मिलन, सुख-विलास इत्यादि के जो वर्णन किए हैं, वे भक्ति से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं—वस्तुतः वे गुण में भी अधिक हैं, परिमाण में भी। तुलसी या सूर को कौरा भक्त कहना उनके विराट् जीवनकाव्य-स्रष्टा होने के साथ अन्याय करना है क्योंकि जीवनरस से सराबोर उनका काव्य पुनरुत्थान एवं नवविकास का उद्गार है, पलायनवाद या नकारात्मकता का प्रतिफलन नहीं। कबीर या रैदास या नानक कोरे भक्त न थे, समाज-सुधारक और युग-नेता भी थे। मीराँ कोरी भक्त न थीं, जीवन से जूझनेवाली वीरांगना भी थीं जिन्होंने अत्याचारी चित्तौड़-नरेश विक्रमादित्य (बिक्रमाजित) से लोहा लिया था—वैसे भी, उनका सृजन प्रेमकाव्य अधिक है, भक्तिकाव्य कम। अतः यह महान् काल पुनरुत्थानकाल था, भक्तिकाल नहीं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्णकाल

पुनरुत्थानकाल हिन्दी-साहित्य के इतिहास का स्वर्णकाल था क्योंकि इसमें विश्वकवि तुलसीदास, सहज-महाकवि सूरदास और आचार्य-महाकवि केशवदास (समय की दृष्टि से) की बृहत्त्रयी तो हुई ही, विश्व की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री मीराँ, हिन्दी के

1. शुक्ल ने मंझन को जायसी का पूर्ववर्ती माना है, जो ग़लत है।

2. हरिराम व्यास।

सर्वश्रेष्ठ सूफ़ी कवि जायसी, हिन्दी-नीतिकाव्य के एक सीमान्त रहीम और एक शीर्षस्थ कृष्णकाव्यकार रस की खान रसखान ने भी वाणी का ऐसा शृंगार किया जो हमीर और वस्तुवादी अध्येता से “न भूतो न भविष्यति” ही कहला सकता है। तुलसी की सर्वरसनिष्पत्ति, काव्यकला एवं प्रभावशीलता विश्व-साहित्य में भी अप्रतिम है, जिन्हें राजबहादुर लमनाड़ा जैसे आलोचक एवं दिनकर जैसे कवि संसार का सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध कर गए हैं। तुलसी का प्रभाव विश्व-व्यापी है। नाभादास, रहीम, बेनी प्रवीन, हरिऔध, मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला इत्यादि शत-शत हिन्दी-कवियों ने तो उन पर स्फीत सृजन किया ही है, मराठी के मोरो पंत ‘मयूर कवि’ एवं दक्षिण के संगीत-सम्राट् एवं तेलुगू-महाकवि त्यागराज¹ ने भी उनकी स्तुति की है। समर्थ गुरु रामदास, त्यागराज, सन्त निहालसिंह इत्यादि उनसे प्रभावित हुए। टेसीटरी, कॉपेन्टर, ग्रॉउज़, ग्रीअर्सन, वारान्निकोव, एट्किन्स इत्यादि ने उन्हें विश्वकवि के रूप में सम्मानित किया तथा कामिल बुल्के उनके भक्त बने। शृंगार एवं वात्सल्य रसों के सम्राट् सूरदास संसार के एक सर्वश्रेष्ठ गीतकार हैं, जिन्हें स्व. डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’ ‘सूर-सूर’ उद्धृत करते हुए हिन्दी का “सर्वश्रेष्ठ कवि” घोषित करते हैं, और डॉ. नगेन्द्र उनका अनुकरण-सा करते हुए ‘मूर्द्धन्य कवि’, भले ही स्थापना आत्मपरक हो। महाकवि केशवदास रामचन्द्रिका के महाकाव्यकार, कविप्रिया—रसिकप्रिया के शास्त्रीय-काव्यकार अथवा आचार्य अथवा कविगुरु, वीरसिंहदेवचरित—रतनबावनी—जहाँगीरजसचन्द्रिका के चरितकाव्यकार तथा विज्ञानगीता के अध्यात्मकाव्यकार को बहुधारात्मक प्रतिभा के कारण तुलसी और सूर के अनन्तर हिन्दी के शीर्षस्थ कवि रहे हैं, जिनके नवकालप्रवर्तक होने को श्यामसुन्दरदास जैसे आचार्य से लेकर भगीरथ मिश्र जैसे लेखक तक ठीक ही प्रतिपादित करते आए हैं, जिन्होंने बुन्देलखण्ड को वह सृजन-प्रेरणा प्रदान की जो उनके समय से आज तक ज्यों-की-त्यों गतिशील है, जो मिश्रबन्धु के देव-पक्षपात और आचार्य शुक्ल के जायसी-प्रतिष्ठापन तथा आत्मपरक असन्वेदन के वावजूद कोटि-कोटि हिन्दभाषियों के हिन्दी-साहित्याकाश के ‘उड्डगन’ ही बने हुए हैं। मीरों का अद्वितीय प्रेमकाव्य, सशक्त आत्मकाव्य एवं प्रेरक प्रभाव सैफो, आंङाल (गोदा), लल्लेश्वरी, राबिया, टेरेसा इत्यादि तक को पीछे छोड़ देता है—क्रिश्चीना रॉसेटी, एलिज़ाबेथ बैरेट ब्राउनिंग, सरोजिनी नायडू इत्यादि अंग्रेज़ी तथा महादेवी, सुभद्रा इत्यादि हिन्दी की कवयित्रियाँ तो उनके निकट भी नहीं पहुँच पातीं। जायसी विश्वस्तरीय सूफ़ी-कवि हैं और डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने उनकी जो एतद्विषयक स्तुति की है, वह निरी अतिरंजित मात्र नहीं है। रहीम एवं रसखान की ललित जोड़ी हिन्दी की अजर-अमर निधि है। सेनापति की शिल्प काव्यकला का अपना पृथक् महत्त्व है, जिन्हें मिश्रबन्धु ने अपने ‘अलंकृत काल’ में ‘प्रथम’ प्रतिष्ठा प्रदान की है। यहाँ तक कि पुनरुत्थानकाल के उद्घाटनकर्ता अमीर खुसरो हिन्दी-कवि के रूप में बहुत असाधारण न होते हुए भी अपने फ़ारसी-महाकवि, भारतीय-संगीतकार, भारतीय-इतिहासकार, सैफ़ी-सन्त इत्यादि की नितान्त असाधारण गरिमा में एक अत्यन्त महान् व्यक्ति हैं—समूचे मुसलमान इतिहास की सर्वोपरि बहुमुखी प्रतिभा का नाम अमीर खुसरो है! कबीर, रैदास, नानक इत्यादि पुनरुत्थानवाहक-नायक इतिहास के रत्न हैं ही! हिन्दी के ही नहीं, संसार के किसी भी साहित्य के इतिहास के किसी एक काल में ऐसी विलक्षण प्रतिभाओं का ऐसा व्यापक, विलक्षण, धर्मनिरपेक्ष, जनवादी समाहार दृष्टिगोचर नहीं होता। सारे उक्त कवि जनकवि थे और हैं—यही नहीं, नरोत्तमदास इत्यादि भी हैं। तुलसी, कबीर, नानक इत्यादि भारतीय जनजागरण के नेता भी हैं, कोरे कवि नहीं। पता नहीं, किस आधार पर डॉ. नगेन्द्र ‘छायावाद’ के बाद ‘भक्ति’ को स्थान ‘प्रदान’ करते हैं? महान् पुनरुत्थान काल तीन सौ वर्ष चला और आज भी प्रभावी है, जबकि स्वच्छन्दतावादी युग तीन दशक भी न चल पाया—उसी के जीवित नेताद्वय पंत और निराला ने उसका ‘अन्त’ घोषित किया। स्वच्छन्दतावादी कविता अत्यन्त सुन्दर एवं कलापूर्ण है किन्तु वह न तो सार्वभौम है, न जनवादी। रामचरितमानस, विनयपत्रिका, सूरसागर, रामचन्द्रिका, पद्मावत, बीजक, मीरों-पदावली, कवित्त-रत्नाकर, ‘बेलि’, सुदामाचरित इत्यादि का गुण—परिमाण सर्वथा अतुलनीय है। स्वच्छन्दतावादी युग में ‘कामायनी’ महाकाव्य, ‘राम की शक्ति-पूजा’ महाकविता, ‘तुलसीदास’ खण्डकाव्य एवं ‘परिवर्तन’ महाकविता ही ‘महान्’ विशेषण सम्हाल सकती हैं किन्तु इनमें रामचरितमानस की व्योमवत् व्याप्ति एवं सूरसागर की सागरवत् गहराई कहाँ है? अपनी विराटता, विशदता, गहनता एवं प्रभावशालिता में पुनरुत्थानकालीन कविता अनायास ही अपने काल को स्वर्णकाल सिद्ध कर देती है।

1. ‘श्रीरामजन्मभूमि-सन्देश’ (अयोध्या, सं. डॉ. वीरेन्द्रकुमार मिश्र) अगस्त, 1989 अंक में डॉ. राममूर्ति ‘रेणु’ का लेख ‘राम ने त्यागराज को तुलसी से परिचित कराया’ जिसके अनुसार काशी के गणेशगिरि भावे नामक प्रसिद्ध रामभक्त-संगीतज्ञ ने दक्षिण जाकर त्यागराज को तुलसी से जोड़ा—त्यागराज ने अपने ‘प्रह्लादभक्त-विजय’ में “तुलसीदास का चरण-वन्दन किया है।” उत्तर-दक्षिण सेतु तुलसी भारत के प्रमुख राष्ट्रकवि हैं।

1. सूफी काव्य

भारत और सूफी-मत

भारतवर्ष विश्व के मूलधर्म का जन्मस्थान है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण मैक्समूलर का “ऋग्वेद मानव-जाति के पुस्तकालय का प्रथम ग्रन्थ है” कथन है, जिसका एक अन्य प्रमाण वाइबिल (‘ओल्ड टेस्टामेंट’ या तौरात) के आरम्भ¹ में जलराशि पर ईश्वर की आत्मा के तैरने का ऋग्वेद के ‘नासदीय-सूक्त’ का अनुवादवत् वर्णन है, जिसके अन्य प्रमाण ऋग्वेद के द्यौषितृ के यूनानी ‘ज़िअस’ एवं लैटिन ‘जूपिटर’ अनुवाद, ‘हदीस’ में मोहम्मद के भारत की ओर से सुगन्ध का अनुभव इत्यादि हैं। वाइबिल (‘न्यू टेस्टामेंट’ या इंजील) एवं कुरान के आत्मवाद एवं एकेश्वरवाद सम्बन्धी अनेक सूत्र उपनिषद् के अनेक सूत्रों के अनुवाद लगते हैं। वाइबिल, भागवत और कुरान में आरम्भ में मानव-जाति के जिस एक धर्म का संकेत है, वह वैदिक धर्म ही है जो प्रकृति की शक्तियों की प्रतीक-पूजा भी करता है तथा “एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति”, “एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति” अथवा “मरुदेवानामसुरत्वमेकम्” की स्थापना भी, जिसकी व्याख्या ‘निरुक्त’ में महर्षि यास्क “तासां महाभाग्यात् एकैकस्यापि बहूनि नामधेयानि भवन्ति” एवं “एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति” तथा भाष्यकार सायण “तस्मात् सर्वेऽपि परमेश्वर एवं ह्यते” रूपों में करते हैं तथा जिसका विराट् निरूपण उपनिषद् के अद्वैतवाद में प्राप्त होता है। विश्व में परमात्मा की एकता का प्रथम प्रतिपादन ऋग्वेद में प्राप्त होता है जो उस अणोरणीयान् एवं महतोमहीयान् को उसके सूर्य एवं अग्नि प्रभृति रूपों में भी बंध मानता है, जिससे सूर्य-पूजक अखनातन, जेहोवा को अग्नि-रूप में देखनेवाले मूसा, अग्नि-पूजक ज़रथुश्त्र तथा उनके अनुयायी पारसी प्रभावित हुए थे। मोहम्मद निरक्षर थे जैसाकि ‘कुरान’ के ‘सूरे आराफ़’ की आयत 158 में रसूल या नबी के “बिना पढ़े” होने के स्पष्ट शब्दों में व्यक्त है। अन्यत्र भी ऐसे उद्गार प्राप्त हैं। फिर भी, वे आरम्भ में सबके “एक ही दीन”² को स्वीकारते हैं तथा “पैगम्बरों में से किसी एक को जुदा नहीं समझते।”³ सारे धर्म वेदप्रसूत हैं, जिसे मनुस्मृति के अमर प्रस्तोता मनु ने “वेदोऽखिलो धर्ममूलम्” में उद्घोषित भी किया है तथा भारतीय अग्रजन्मा ऋषियों द्वारा “शिक्षेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः” द्वारा स्पष्ट भी। यही कारण है कि हिन्दू सब धर्मों को दुलार देता है! हिन्दू का हृदय पिता का हृदय है। जब ईसाई अपने वतन में पिटे तब 52 ई. में सेंट टॉमस इत्यादि भाग कर भारत आए। जब यहूदी अपने वतन में पिटे तब उन्होंने भी यही किया। जब पारसी अपने वतन में पिटे तब उन्होंने भी यही किया। और, बीसवीं सदी (1949 ई.) में अपने वतन में पिटे तिब्बती बौद्ध दलाई लामा के नेतृत्व में यही आए—वे बौद्ध देशों जापान या बर्मा या लंका या थाईलैण्ड नहीं गए। भारतवर्ष सारे धर्मों का पालना है। हिन्दू सारे अन्य धर्मों के अनुयायियों का पिता है। पुत्र पितृहन्ता हो सकता है, किन्तु पिता पुत्रहन्ता नहीं हो सकता। इस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति से हिन्दू की क्षति भी हुई है किन्तु वह इससे उबर नहीं पाया।

अत्यन्त प्राचीन अरब भारत द्वारा सर्वविध प्रभावित हुआ था तथा उस पर यूनानी प्रभाव भी परवर्ती है। भारत के अनेक प्रबुद्ध व्यक्ति इस तथ्य को समझते हैं। केरल के दानव राजा बलि से रुष्ट होकर शुक्र (आचार्य) का जाना, उनके पुत्र औरव के नाम पर अरब का नामकरण, उनके कवि के पुत्र अथवा काव्य होने के कारण काबा का नामकरण, वहाँ दानव-प्रणाली पर अनेक देवी-देवताओं विशेषतः ‘शिव’ (संगे-अवसाद या मक्केश्वर) की पूजा तथा ‘शुक्रिया’ शब्द आज भी इस सत्य की घोषणा करते हैं। आज भी शुक्र ‘जुमा’ अर्थात् महान् हैं! कुरान में वर्णित ‘आद’ तथा ‘समूद’ जातियाँ ‘आदि’ तथा ‘समुद्र’ की द्योतक हैं जो वहाँ के इतिहास के आदिकाल में गईं। ‘आदम’ स्वयं ‘आदि’ के सूचक हैं। क्या आश्चर्य यदि मलेशिया की रामायण में ‘हज़रत राम’ को आदम के प्रपौत्र दशरथ का पुत्र माना गया है! सम्प्रति अनेक प्राचीन अरब कथाएँ तथा परम्पराएँ कष्टरवादिता से मुक्त मुस्लिम-प्रधान देशों में अरब की अपेक्षा अधिक सत्य रूपों में विद्यमान हैं। अरब-जगत् का ‘रामदान’⁴ महीना, रामठा, रामअल्लाह प्रभृति स्थान आज भी ‘हज़रत राम’ का प्रभाव बताते हैं। “अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन” जैसे कुरान-सूत्र “एकमेवाद्वितीयम्”⁵ से उपनिषद्-सूत्रों के स्पष्ट अनुवाद हैं मोहम्मदीयत के बहुत पूर्व भी भारत अरब के धर्म, शिल्प, संगीत इत्यादि को प्रभावित कर चुका था, मोहम्मदीयत के अनन्तर भी भारत

1. द जेनेसिस (जनन या सृष्टि)।

2. कुरान, सूरे वक्रर, आयत 213।

3. वही, आयत 285।

4. भारत में ‘रमजान’ के गलत उच्चारण में प्रचलित।

ने अरब के धर्म, दर्शन, ज्योतिष, शिल्प इत्यादि को प्रभावित किया, जैसाकि अमीर खुसरो कृत 'जुह सपहर' ग्रन्थ में आसा नामक ब्राह्मण के अंकगणित (हिंदसा) को अरब ले जाने, ज्योतिषी अबू माशर के काशी में शिक्षा प्राप्त करने इत्यादि के वृत्त से स्पष्ट है, खलीफा मंसूर एवं खलीफा हारून अल-रशीद के जमानों में भारतीय विद्वानों एवं वैद्यों के बगदाद पर छा जाने से स्पष्ट है—यहाँ तक कि अरब मुसलमानों द्वारा कुरान के संस्कृत-अनुवाद से स्पष्ट है। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में, “अनेक अरब मनीषी, विशेषतः वैज्ञानिक, हिन्दू और बौद्ध विद्वानों के चरणों में बैठे....। चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, विषण्ण-औषधि-विज्ञान, युद्धकला, रसायन, तर्क तथा इन्द्रजाल—ये सब अरबों ने हिन्दुओं से सीखे।”¹ विंटरनिज़ (विंतरनिज) इत्यादि पाश्चात्य तथा स्व. प्रो. शारदाप्रसाद सक्सेना, डॉ. मोतीचन्द्र इत्यादि भारतीयों ने कथा का आदिदेश भारत को ही माना है। भारतीय कथा ने अरबी कथा को प्रेरणा दी। अब्बासी खिलाफत के मंगोल हलाकू (हलाकू) द्वारा विनाश के समय तक भारत का अरब पर अप्रतिहत प्रभाव पड़ता रहा। 712 ई. में सिन्ध पर मोहम्मद बिन-कासिम की विजय से इस प्रभाव में वृद्धि सागरमन्थन-रूपक का स्मरण कराती है! भारत के अरब पर सर्वव्यापी प्रभाव का एक सुन्दर परिणाम 'तसव्वुफ़'² है। छान्दोग्य उपनिषद् का “आत्मरति, आत्ममिथुन आत्मक्रीडा” अरब-जगत् की आंड़ाल³ राबिया (बसरा) के अद्वैतमय प्रेमगीतों में विवृत हुआ, बृहदारण्यक उपनिषद् का “अहं ब्रह्मास्मि” का अनुवाद अरब याज्ञवल्क्य मंसूर (बगदाद) के ‘अनहलक’ के उद्घोष में। ‘सूफी मतः साधना और साहित्य’ के लेखक डॉ. रामपूजन तिवारी के शब्दों में, सर्वप्रथम ‘सूफी’ शब्द का प्रयोग करनेवाला अबू हाशिम सूफ़ियान (मृत्यु सन् 777 ई. के लगभग) था।⁴ किन्तु सूफ़िया, सफ़यान इत्यादि नामकरण पहले से चले आ रहे थे। अबू सुफ़ियाँ मोहम्मद के भारी विरोधी थे। आयशा पर लफट सफ़यान नामक ऊँटवाले से जोड़ा गया था। यही समय था जब भारत का अरब जगत् पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ रहा था। मेरे विचार से ‘श्वेत’ या सुपेत या सफ़ेद या सुफ़ेद कहा गया तथा सफ़, साफ़ इत्यादि से सूफ़ या सूफी शब्द निकले। अर्थ हुआ, उज्ज्वल अन्तर्करण के व्यक्ति या साधु या फ़कीर। सफ़ेद ऊनी चोंगा पहनने से भी सूफी कहलाए। ‘सूफ़’ (ऊन) के चोंगे पहनने वाले विरक्त स्पष्टतः ‘सूफी’ थे किन्तु उनमें इश्कहकीकी का रंग भारतीय अद्वैतवाद लाया और वे नूरेइलाही के दीवाने हो गए। यूनानी का ‘सोफ़िआ’⁵ (ज्ञान) शब्द उन पर अनायास लागू हो गया, अरबी का ‘सफ़’ (निर्मल) शब्द उनसे स्वयं जा जुड़ा। सूफ़ियों के दो प्रमुख वर्गों ‘वुजूदिया’ और ‘शुहूदिया’ में ठीक उतना ही अन्तर है जितना अद्वैतवादियों एवं विशिष्टताद्वैतवादियों में। यदि ‘वहदतुलवुजूद’ के प्रवर्तक का सूत्र “हमावुस्त” एकदम “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” का अनुवाद है तो ‘वहदतुशुहूद’ के प्रवर्तक शेख करीमे जली का दर्पणवाद औपनिषदिक प्रतिबिम्बवाद का रूपान्तर। शापेनहॉएर एवं आचार्य शुक्ल, चन्द्रबली पाण्डेय, परशुराम चतुर्वेदी इत्यादि दार्शनिकों एवं विद्वानों ने ‘तसव्वुफ़’ पर भारतीय प्रभाव ठीक ही स्वीकार किया है।

भौषण संक्रान्तिकाल के अनन्तर संगतिपूर्ण पुनरुत्थानकाल का श्रीगणेश सूफी साहित्य के साथ होना स्वाभाविक था, क्योंकि उसका अद्वैतवाद हिन्दुओं को अपना लगा जो ठीक ही था तथा उसके विशक अद्वैतवाद के स्थूल इस्लामी एकेश्वरवाद के निकट होने के कारण सामान्यतः मुसलमानों ने भी उसे अपनाने में कुफ़ का अनुभव नहीं किया। यह सत्य है कि एक व्यक्तिरूपईश्वर (वन पर्सनल गॉड), जगत् एवं जीव (रूह) को पृथक् मानने वाले स्थूल त्रैतवादी कट्टर मुसलमानों ने अरब-जगत् में अद्वैतवादी हल्लाज मंसूर जैसे सूफ़ियों को शूली पर चढ़ा दिया था, उनका व्यापक संहार किया था जो कट्टरपंथियों द्वारा बीच-बीच अन्यत्र भी चलता रहा था—मतान्ध औरंगजेब ने शर्मद को दिल्ली की जामा मस्जिद के किले की ओर फाटकवाली सीढ़ियों पर ‘शहीद’ करा डाला था जिसके ठीक सामने उनकी लालो-लाल कब्र आज भी मौजूद है—किन्तु यह भी सत्य है कि मुईनुद्दीन चिश्ती (1141-1236 ई.), कुत्बुद्दीन बख्तियार काकी (मृत्यु 1236 ई.), निजामुद्दीन औलिया (1238-1325 ई.) इत्यादि सूफी फ़कीरों का क्रमशः अकबर, शाहजहाँ इत्यादि परवर्ती बादशाह और बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मोहम्मद तुगलक इत्यादि प्रायः अधवा पूर्णतः समसामयिक सुल्तान सम्मान करते थे, जिसका “यथा राजा तथा प्रजा” के अनुरूप व्यापक प्रभाव भी पड़ा था। सूफी मुसलमान होने के कारण मुसलमानों तथा अद्वैतवादी होने के कारण हिन्दुओं को जोड़नेवाली कड़ी बन गए।

1. हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया (डॉ. ईश्वरीप्रसाद), पृष्ठ 212।

2. सूफी दर्शन।

3. गोदा।

4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृष्ठ 936।

5. ‘फ़िलॉसॉफी’ शब्द ‘फ़िलास’ (प्रेम) एवं ‘सोफ़िआ’ (ज्ञान) के योग से बना है। अल बेरूनी ने सूफी को सोफ़िआ से ही जोड़ा है।

6. ‘साफ़’ ‘सफ़ाई’ ‘सफ़ेद’ इत्यादि शब्दों से सम्पृक्त।

7. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृष्ठ 936 में जन्मवर्ष 1142 ई. दिया गया है।

सूफी दर्शन

मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में लिखा है, "सूफी-मत मनुष्य में नफ़स (इन्द्रिय), रूह (आत्मा), क़ल्ब (हृदय) और अक्ल (बुद्धि) मानता है। नफ़स का दमन श्रेय है। क़ल्ब और रूह द्वारा साधन का कार्य किया जाता है। क़ल्ब पर सभी वस्तुओं का प्रतिबिम्ब पड़कर उनका ज्ञान होता है। बुद्धि ज्ञान का मुख्य साधन करने वाली है। सूफी लोग चार जगत् भी मानते हैं, अर्थात् आलमे-नासूत (भौतिक जगत्), आलमे-मलकूत या अरवाह (चिद् जगत्), आलमे-जबरूत (आनन्दलोक), आलमे-लाहूत (सत्संसार या ब्रह्मलोक)²। क़ल्ब वाला सिद्धान्त हमारे यहाँ के बिम्ब-प्रतिबिम्ब से मिलता है।" आचार्य शुक्ल ने 'जायसी-ग्रन्थावली' की अमूल्य भूमिका के 'मत और सिद्धान्त' उपशीर्षक के अन्तर्गत उक्त सूफी दर्शनतत्त्वों का विस्तृत निरूपण किया है। उनके अनुसार, "मुहम्मद बिन-क़ासिम³ के साथ आए हुए कुछ अरब सिन्ध रह गए थे। इतिहासों में लिखा है कि वे और उनकी सन्तति ब्राह्मणों के साथ बहुत मेल-जोल से रही। इन अरबों में कुछ सूफी भी थे जिन्होंने हिन्दुओं के अद्वैतवाद का ज्ञान प्राप्त किया और साधना की बातें भी सीखीं। सिन्ध में अबूअली प्राणायाम की विधि (पस-ए-अनफ़ास) जानते थे। बायज़ीद को 'फ़ना' (गुज़र जाना अर्थात् अहंभाव का सर्वथा त्याग और विषय-वासना की निवृत्ति) का सिद्धान्त बताया। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह 'फ़ना' बौद्धों के निर्वाण की प्रतिध्वनि थी।"

वस्तुतः अद्वैतवादी सूफ़ियों को मोहम्मदी तलवार की नोक के नीचे समझौता करते हुए 'शरीयत' (विधि-निषेध जो क़ुरान को महत्त्व देता है), 'तरीक़त' (साधना-प्रणाली), 'हक़ीक़त' या हक़ीक़त (सत्य-साक्षात्कार) एवं 'मारफ़त' या 'मार्फ़त' (सिद्धि जो आत्मा-परमात्मा के प्रेमलय का पर्याय है) के साधना-सोपानों का प्रतिपादन करना पड़ा किन्तु तत्त्वतः वे मोहम्मदी त्रैतवाद एवं 'एक स्थूल ईश्वर' के विरोधी रहे हैं। इस विरोध के ही कारण सूफी-वेद 'किताबे-तवासीफ़' के प्रणेता हल्लाज मंसूर तक को शूली पर चढ़ना पड़ा था तथा सहस्रों अन्य सूफी बर्बरतापूर्वक क़त्ल कर दिए गए थे। वास्तव में सूफी परमात्मा के प्रति आत्मा के प्रेम (इश्क़हकीकी) एवं तज्जन्ब्य विरह को ही तप मानते हैं। परमात्मा को नूर और जलाल का केन्द्र मानने के कारण सूफी-साहित्य में सौन्दर्य-वर्णन की प्रधानता रही। यह सौन्दर्य प्रकृति एवं व्यक्ति दोनों में प्रतिबिम्बित है। रहस्यपुष्ट सौन्दर्य, रहस्यपूर्ण प्रेम और रहस्यसिक्त विरह सूफी-साहित्य के तीन लोक हैं। दिव्य सौन्दर्य-प्रेम-विरह की त्रिवेणी में विहल-विस्मृत स्थिति को 'हाल' कहते हैं जो 'फ़ना' ('मम' से रहित), 'फ़क़द' (अहं का नाश), 'बका' (अद्वयस्थिति), वज्द (परमात्मा में लीनता) एवं शह (पूर्णानन्द या पूर्णशान्ति) तक ले जाती है। 'हाल', 'फ़ना', 'बका' इत्यादि का सूफी शे'रों, ग़ज़लों और कव्वालियों में अच्छा वर्णन मिलता है। हिन्दी के सूफी कवियों में जायसी ने इनका हठयोग-सम्पृक्त वर्णन उच्चकोटि का किया है। मंज़न ने विरह-तत्त्व की अच्छी मीमांसा की है। नूर मोहम्मद की 'अनुराग-बाँसुरी' तो सूफीतत्त्व निरूपण की कविता है ही (यद्यपि कवि की संकीर्ण मतान्धता ने बड़ी क्षति की है)।

भारत के सूफी सम्प्रदाय

अहं मानव की एक व्यापकतम एवं बलवत्तम प्रवृत्ति है। स्वसंस्थापन ही सारे धर्मों, मज़हबों, पंथों,वादों एवं विचारों का मूल कारण है। अतः सूफ़ियों में भी अनेक सम्प्रदाय हो गए। भारत में चिश्ती, क़ादिरि, सुहरवर्दी और नक्शबन्दी सम्प्रदाय प्रमुख हैं। चिश्ती, क़ादिरि और सुहरवर्दी सम्प्रदाय हसन अल बसरी को प्रवर्तक मानते हैं, नक्शबन्दी अबू बक्र को। चिश्ती सम्प्रदाय का जोर ज़्यादा रहा है क्योंकि इससे ख्वाज़ा मुइनुद्दीन चिश्ती⁴, ख्वाज़ा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी, फ़रीदुद्दीन, शकरगंज (बाबा फ़रीद) एवं निज़ामुद्दीन औलिया जैसे बड़े फ़कीरों का सम्बन्ध रहा है। यह सम्प्रदाय अल्लाह-मोहम्मद-अली को समभाव से पूजता है। संगीत (कव्वाली) से ऊँचचूम है। निज़ामी एवं साबरी इसके उपसम्प्रदाय हैं। अब्दुल क़ादिर अल-जीलानी (1078-1166 ई.)⁵ के कारण नामित क़ादिरि सूफी भी मोहम्मद ग़ौस, मियाँ मीर और उनके शिष्य दारा शिकोह जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों से जुड़े हैं। सुहरवर्दी एवं नक्शबन्दी सम्प्रदायों का प्रभाव सीमित रहा है।

1. मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की भारतीय मान्यता का अनुवाद।

2. सत्-चित्-आनन्द एवं अपवर्ग का अनुवाद।

3. मोहम्मद बिन-क़ासिम जिसने 712 ई. में सिन्ध जीता।

4. जन्म संजर (अफ़ग़ानिस्तान) में, मृत्यु अजमेर में।

5. जीलान (ईरान) के निवासी।

भारत पर सूफ़ी प्रभाव

मोहम्मदीयत की तलवार ही उसकी रूह रही है अन्यथा उसमें ऐसा बहुत कम है जो प्राचीन हिन्दू धर्म तथा यहूदी मज़हब में न हो। एक ओर अल्लाह को निराकार बताता जाता है और दूसरी ओर स्वयं 'कुरान' में सृष्टिरचना के अनन्तर उसके अर्श (आकाश) पर विश्राम की आयत को सर झुकाता जाता है, मोहम्मद के अल्लाह से मशविरों की कथाएँ सुनकर विह्वल हुआ जाता है। एक ओर बुतपरस्ती को कुफ़्र माना जाता है, दूसरी ओर मक्का जाकर 'संगे असवद' की पूजा की जाती है। एक ओर बहुदेववाद की निन्दा की जाती है, दूसरी ओर एक लाख चौबीस हजार (ज़ियाउद्दीन बरनी को 'तारीखे-फ़ीरोज़शाही' के अनुसार) या सवा-लाख (जायसी कृत 'अखरावट' के अनुसार) या पौने-दो लाख (अन्य मान्यता) या दो लाख (चौथी मान्यता) फ़रिश्तों का अस्तित्व शिरसा स्वीकार किया जाता है। एक ओर कुरान के "तुमको तुम्हारा दीन हमको हमारा दीन" आयत का पाठ किया जाता है दूसरी ओर मन्दिरध्वंस तथा मूर्तिभंजन को शबाब माना जाता है। (इलाहादाद कृत 'अकबरनामा' के अनुसार अकबर जैसे उदारतम बादशाह के शासनकाल तक में मूर्तियाँ टूटी थीं)।¹ हिन्दू-अद्वैतवाद और मोहम्मदी-त्रैतवाद के तात्त्विक अन्तर के कारण तसव्वुफ़ भी साम्प्रदायिकता से मुक्त नहीं रहा। आज तक मुइनुद्दीन चिश्ती से सम्बद्ध क़व्वालियों में अजमेर के तत्कालीन राजा का साम्प्रदायिक अपमान हिन्दुओं के हृदयों को दुखाता है। कहते हैं उन्होंने पृथ्वीराज (मूलतः अजमेर-नरेश) के गुरु को मुसलमान बना लिया था। उनके भारी रुतबे का कारण यह तथा अन्य धर्मान्तरण ही हैं। निज़ामुद्दीन औलिया हिन्दुओं को मुसलमान बनाने में रुचि लेते थे। किन्तु अधिकतर हिन्दू शासकीय लाभों या जज़िया से नज़ात या अस्पृश्यता से मुक्ति या मुसलमान-सम्पर्कजन्य हिन्दू-बहिष्कार के कारण मुसलमान बनते थे और ऐसों को विदेशी या खालिस मुसलमान हिक़ारत की नज़र से देखते थे जैसाकि गुलाम वंश के इल्तुतमिश एवं बलबन के वृत्त स्पष्ट करते हैं तथा स्वयं औलिया द्वारा हिन्दू से मुसलमान बने एक हिन्दू का वीथस्त वृत्त भी—निज़ामुद्दीन अहमद (मृत्यु 1594 ई.) कृत 'तबक़ाते-अकबरी' के अनुसार एक ऐसे मुरीद को औलिया ने दो दातूनें दीं तो उसने उबैद नामक दूसरे खालिस मुसलमान मुरीद से दो के प्रयोग का रहस्य पूछा (क्योंकि उबैद शायर था), जिसने एक मुख एवं दूसरी नीचे के लिए बताई।² तुर्क और पठान कालों में तो भारतीय मुसलमान हिक़ारत की नज़र से देखे ही जाते थे, मुग़लकाल में भी उनका सम्मान न था। सारे उच्च पद विदेशी मुसलमानों को ही दिए जाते थे। अंग्रेज़ एवं कांग्रेस शासनकालों में भी प्रायः सारे उच्च पद विदेशमूलक मुसलमानों को ही मिले। भारतीय मुसलमानों में जातिप्रथा सदा प्रचलित रही है। कबीर, क़ासिमशाह इत्यादि ने इसे उजागर किया है। आज भी शेख़, सैयद, खान वगैरह जुलाहों, तेलियों, कसाइयों वगैरह को ईदों पर नमाज़ को छोड़कर समान नहीं मानते। मैं अपने काव्य 'मुहम्मद' के प्रकाशन-सन्दर्भ में दिल्ली में मौलाना नसीम ग़ाज़ी नामक मित्र से मिलने गया तो रास्ता पूछना पड़ा। कई मुसलमान-भाइयों में तहज़ीब और नफ़ासत होती ही है अतः एक सज्जन साथ हो लिए। उन्होंने रास्ते में बताया: यह पहले बनिया थे! आन्तरिक द्वन्द्व प्रकट हो ही गया। फिल्मी संगीतकार रहमान पहले दिलीप कुमार नामक हिन्दू था; उस पर भी ऐसा ही दृष्टिकोण व्यक्त किया जाता है। ऐतमादुद्दौला, नूरजहाँ, आसफ़ ख़ाँ, मुमताज़ महल, महाबत ख़ाँ, सफ़दरजंग, निज़ामुलमुल्क, सर सैयद अहमद ख़ाँ, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, जाकिर हुसैन, फ़ख़रुद्दीन अली अहमद इत्यादि सारे विदेश-मूलक खालिस-मुसलमान थे, मोहम्मद ग़ौस ने तन्नू मिश्र को जीभ से जीभ लगाकर मियाँ तानसेन बना डाला था (दोनों की क़ब्रें ग्वालियर में हैं तथा कथा आज तक प्रचलित है)। जायसी ने राम-लक्ष्मण, कौरव-पाण्डव, नारद इत्यादि का घोर अपमान किया है और मोहम्मद पंथ को ही 'बड़पंथ' घोषित किया है। नूर मोहम्मद तो यत्र-तत्र-सर्वत्र भयावह साम्प्रदायिक है ही :

हिंदू मग पर पाँय न राखेउँ। का जो बहुतै हिंदी भाखेउँ।।

मन इसलाम भिरिकलै माँजेउँ। दीन जेवरी करकस भाँजेउँ।।

जहाँ रसूल अल्लाह 6^गपियारा। उम्मत को मुक्तावनहारा।।

तहाँ दूसरी कैसे भावै। जच्छ असुर सुर काज न आवै।।

(अनुराग-बाँसुरी)

1. कश्मीर-घाटी का 1985 ई. और बाद का इतिहास इस तथ्य का नया प्रमाण है।

2. कथा के अनुसार जब कष्टत्रस्त मुरीद ने औलिया को बताया तब उनके मुख से निकला, "हे उबैद, लकड़ी से खेल करता है!" लोग जान गए कि उबैद शूली पर चढ़ाया जाएगा। सुल्तान ग़यासुद्दीन तुग़लक़ के 'तिलंग' पर आक्रमण के समय उबैद ने उसके मारे जाने की बात फैलाई। उबैद को शूली पर चढ़ा दिया गया।

यह बाँसुरी सुनै जो कोई । हिरदय स्रोत खुला जेहि होई ।।
 निसरत नाद वारुनी साथा । सुनि सुधि चेत रहै केहि हाथा ।।
 सुनतै जौ यह सबद मनोहर । होत अचेत कृष्ण मुरलीधर ।।
 बहुत देवता को चित धरै । बहु मूरति औंधी होइ परै ।।
 बहुत देवहरा ढाहि गिरावै । संखनाद की रीति मिटावै ।।

जहाँ इसलामी मुख सो निसरी बात ।

तहाँ सकल सुख मंगल, कष्ट नसात ।। (अनुराग-बाँसुरी)

मिश्रवन्धु के शब्द मननीय हैं, “यद्यपि सूफ़ी सन्त मुसलमानीपन को देखते हुए हिन्दू देवी-देवताओं का उचित से कुछ अधिक ही मान करते हैं, तथापि सूफ़ी-वाद भी प्रेमपूर्ण रीति से ही सही, किन्तु भारत में, मुसलमानी मत चलाने के प्रयत्न में, था अवश्य, और यह अवश्य चाहता था कि हिन्दू मुसलमान बनें। प्रेमगर्भित वचनों के भीतर यह भाव बहुत दिन तक छिपा नहीं रह सकता था, इसी से अन्ततोगत्वा हिन्दुओं ने इससे मुख मोड़ लिया। मुसलमान सहिष्णुता के आधिक्य के कारण इसे पसन्द न कर सके। अब यह थोड़े-से विद्वानों में केवल साहित्य के नाते पूज्य दृष्टि से देखा जाता है, धार्मिक शिक्षा के रूप में नहीं।”

सूफ़ियों ने नानक इत्यादि पर प्रभाव डाला जैसाकि गुरुग्रन्थसाहब में उनकी फ़रीद-स्तुति से स्पष्ट है, सूफ़ियों ने तानसेन जैसे अनेक प्रतिभाशाली कलाकारों को मुसलमान बनाया जैसाकि मोहम्मद ग़ौस की कथा से स्पष्ट है, शायद ही कोई बड़ा सूफ़ी फ़कीर हुआ हो जिसने हिन्दुओं को मुसलमान न बनाया हो। अतः हिन्दुओं पर सूफ़ी-मत का प्रभाव अधिक दिनों तक पड़ना सम्भव न था। आक्रान्ता एवं शासक हिन्दू पर तलवार का वार करते थे, सूफ़ी फ़कीर एवं कवि कलम का। आज तक चिश्ती, औलिया एवं खुसरो से सम्बद्ध उत्सव आयोजन-धारावाहिक इत्यादि इस तथ्य को स्पष्ट कर सकते हैं। तन-मन-परतन्त्र हिन्दू-तत्त्व अवश्य अभिभूत रहे। खफ़ी खान ने लिखा है कि ‘दर्शनी’ (हिन्दू जो यमुना-स्नान पर तिलक-चन्दन से युक्त हो बादशाह के पवित्र दर्शन करने के उपरान्त अन्न-जल-ग्रहण करते थे) मतान्ध औरंगज़ेब के सामने तब बहुत गिड़गिड़ाए थे जब उसने दर्शन देने को ग़ैर-मोहम्मदी घोषित कर यह ‘प्रथा’ वन्द कर दी थी। हिन्दू-बलिप्रथा के भयंकर आलोचक भी बकरीद की नरबलिमूलक विराट् पशुबलिप्रथा के विरोध में चीं भी नहीं करते! दासता के संस्कार सरलता से नहीं मिटते।

हिन्दी की सूफ़ी-कविता

हिन्दी की सूफ़ी-कविता दो रूपों में प्राप्त होती है :

1. मीर खुसरो द्वारा प्रवर्तित मुक्तक-परम्परा जो रहीम, दादू, आलम, घनआनन्द, बोधा, सीतल, भारतेन्दु, प्रसाद, बच्चन, नीरज इत्यादि में कहीं प्रधानतः तो कहीं अंशतः दृग्गत होती है, जिसका माध्यम कहीं खड़ीबोली तो कहीं खड़ीबोली से थोड़ा-बहुत जुड़ी ब्रजभाषा है तथा जिसका कलेवर कव्याली, बरवै, दोहा, कवित्त, सवैया, पद, गीत, ग़ज़ल की छटाओं में प्राप्त होता है—अभी तक इसकी अस्मिता उजागर नहीं हुई।

2. मुल्ला दाऊद द्वारा प्रवर्तित प्रबन्ध-परम्परा जिस पर ही विवेचन-विश्लेषण उपलब्ध होता है, जिसका श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अतुलित प्रभावी ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ को है, जिसका तत्त्व-निरूपण भी प्रधानतः आचार्य शुक्ल सम्पादित ‘जायसी-ग्रन्थावली’ की भूमिका पर आधृत रहा है, यद्यपि आचार्य का सूफ़ी-प्रेमकथाओं को भक्ति में समाहित करना औचित्यपूर्ण नहीं है। हिन्दी की प्रमुख सूफ़ी-प्रेमकथाएँ ये हैं :

- | | |
|--|---|
| 1. चंदायन (1379 ई.) : मुल्ला दाऊद | 2. मृगावती (1503 ई.) : शेख कुत्बन |
| 3. पदमावत (1540 ई.) : मलिक मोहम्मद जायसी | 4. मधुमालती (1545 ई.) : मंज़न |
| 5. चित्रावली (1613 ई.) : उस्मान | 6. ज्ञानदीप (1619 ई.) : शेख नबी |
| 7. हंस-जवाहिर (1736 ई.) : कासिमशाह | 8. इन्द्रावती (1744 ई.) : नूरमोहम्मद |
| 9. अनुराग-बाँसुरी (1764 ई.) : नूरमोहम्मद | 10. यूसुफ़-जुलेखा (1790 ई.) : शेख निसार |
| 11. नूरजहाँ (1909 ई.) : ख्वाजा अहमद | 12. भाषा-प्रेमरस (?) : शेख रहीम |
| 13. प्रेमदर्पण (1917 ई.) : कवि नसीर | |

हिन्दी के सूफ़ी-प्रेमकाव्य अवधी विभाषा एवं दोहा-चौपाई छन्दों में रचित हैं। प्रायः नायिका परमात्मा तथा नायक आत्मा का प्रतीक है। शुक या अप्सरा या अन्य माध्यम गुरु का प्रतीक है जिसके कारण नायक को नायिका का परिचय या दर्शन प्राप्त होता है। मुल्ला दाऊद में प्रतीक-पद्धति प्रायः नहीं दृग्गत होती और नायक नायिका को स्वयं देखता है, किन्तु दर्शन-संकेत 'चंदायन' में भी प्राप्त होते हैं। वियोग-व्यथा एवं मिलन-चेष्टा साधना की प्रतीक हैं। मिलन 'बका' प्रभृति उच्चस्थितियों का प्रतीक है। चंदायन (उपलब्ध रूप में), मधुमालती, चित्रावली इत्यादि के सुखान्त रूपों में प्रतीक-निर्वाह बुद्धिगम्य है, जबकि पदमावत, मृगावती इत्यादि के दुखान्त रूपों में कथातत्त्व प्रतीक पर हावी हो गया है। यह सत्य है कि सूफ़ी-प्रेमकथाओं में प्रतीक का कामायनी जैसा सजग निर्वाह कम ही प्राप्त होता है, किन्तु यह भी सत्य है कि दर्शन-संकेत सर्वत्र प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु इन्हें कोरी 'निजंधरी कथाएँ' या आजकल के छिछले 'उपन्यासों' के वर्ग में डालना आचार्य शुक्ल की सूफ़ी-कविता को भक्ति-कविता मानने की भूल की प्रतिक्रिया की भूल करना होगा—ऐसी भूल डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी कर गए हैं।

डॉ. नगेन्द्र-सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने सूफ़ी-प्रेमकथाओं पर आचार्य शुक्ल प्रतिपादित तथा सर्वानुकृत ईरानी-मसनवी के प्रभाव को अस्वीकार करते हुए उन्हें पूर्णतः और पूर्णतः भारतीय माना है, "यह परम्परा महाभारत के प्रेमाख्यानों से लंकर अपभ्रंश के कवियों तक अनेक रूपों, तत्त्वों और प्रवृत्तियों को ग्रहण करती हुई तथा गुजरात, राजस्थान एवं अवध-प्रदेश में होती हुई आधुनिक भाषाओं में पहुँची। ध्यान रहे, अवधी से पूर्व गुजराती व राजस्थानी में इस परम्परा का प्रचलन हो गया था तथा अवधी के अनन्तर बंगला भाषा में भी इसका प्रसाद हुआ।यह भारतीय साहित्य की एक सर्वाधिक सशक्त, दीर्घ एवं व्यापक परम्परा है जिसका प्रसार उत्तर भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में हुआ है। इतना ही नहीं, वेनफी, कीलर और हर्टेल प्रभृति यूरोपिय विद्वानों ने तो अपने अनुसन्धान से यह भी प्रमाणित किया है कि भारतीय प्रेमाख्यानों की ही एक शाखा सिकन्दर के साथ यूनान में पहुँची थी जो क्रमशः रोम, इटली¹, जर्मनी, स्पेन एवं इंग्लैण्ड की विभिन्न भाषाओं में विकसित होती हुई समस्त यूरोप में फैल गई—इसी शाखा या परम्परा को विश्व-साहित्य में 'रोमांस-काव्य की धारा' कहा जाता है। अतः भले ही कुछ विद्वान् भ्रान्तिवश इस परम्परा को विदेशी घोषित करें किन्तु हमारे विचार से यह शुद्ध भारतीय परम्परा है जिसमें भारतीय संस्कृति के विकास-क्रम की रूपरेखा यथार्थ रूप में निहित है।" डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने यहाँ विश्व-प्रेमकथा पर भारत के प्रभाव का निरूपण प्रमाणपुष्ट एवं तर्कसंगत रूप में किया है। भारत साहित्य का आदिदेश है जहाँ ऋग्वेद रचा गया। स्वयं ऋग्वेद में पुरुषा-उर्वशी की रहस्यात्मक अथवा प्रतीकात्मक प्रेमकथा के बीज विद्यमान हैं। विंटरनिट्ज़ (विंटरनिट्ज़) प्रभृति अधिकारी विद्वानों ने ठीक ही कथा का आदिदेश भारत को माना है। ईसप की कथाएँ भारतमूलक हैं क्योंकि उनमें विशुद्ध भारतीय पशु-पक्षियों का उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु हिन्दी के सूफ़ी-प्रेमकाव्य शतशः भारतीय नहीं हैं, भले ही उन पर भारतीय आदर्श, रस-निरूपण इत्यादि का भारी प्रभाव स्पष्टतः दृग्गत होता हो। निस्सन्देह अल्लाह, पैगम्बर, चार खलीफ़ों, शाहेवक्त इत्यादि की स्तुति तथा विदेशी सन् (हिजरी) के प्रयोग से मोहम्मदीयत के प्रचार तक हिन्दी के सूफ़ी-प्रेमकाव्य ईरान की मसनवी-शैली से प्रभावित हैं—उनका कथानक भारतीय है किन्तु प्रस्तुति एवं ध्येय विदेशी। भारत में तीन लोक हैं, जबकि सूफ़ियों में 'दुइ जग' या 'दो जहाँ'। अतः डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त आचार्य शुक्ल के खण्डन में ज्यादा दूरी तक चले गए हैं। नल-दमयन्ती, उषा-अनिरुद्ध इत्यादि से मुंज-मृणालवती, ढोला-मारू इत्यादि तक की प्रेमकथाएँ शैली एवं उद्देश्य में 'पदमावत' या 'मधुमालती' 'चित्रावली' या 'इन्द्रावती' से पर्याप्त भिन्न हैं।

प्रमुख प्रवृत्तियाँ

सौन्दर्य, प्रेम एवं विरह सूफ़ी-कविता के तीन प्रधान तत्त्व हैं, जो लौकिकता के माध्यम से पारलौकिकता के लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं—“कभी ऐ हकीकते मुंतज़र नज़र आ लिबासे मज़ाज में!” सामान्यतः अलौकिक के प्रत्यक्ष सौन्दर्य का अवलोकन सम्भव नहीं, अतः उससे जीवन्त एवं ऊर्जस्वित् प्रेम भी कठिन है, तद्वत विरह कठिन है; अतः सूफ़ियों को लौकिक कथानक की शरण लेनी पड़ी। सगुण-साकार के सौन्दर्य, प्रेम एवं विरह के मीरोंवत् वर्णन सूफ़ियों के यहाँ सम्भव नहीं क्योंकि इस्लाम² नाम विपरीत

1. रोम इटली का ही एक नगर है।

2. सलाम- शान्ति। इस्लाम-शान्तिधर्म।

खड्गधर्मिता से ऊभ-चूभ है। इसीलिए, रसखान के इश्कहक्रीकी को कृष्ण भाए। इसीलिए, ताज बेगम को ‘हिन्दुवानी है रहूँगी मैं’ की घोषणा करनी पड़ी। फिर भी, सूफ़ियों ने सौन्दर्य, तत्प्रभावित प्रेम एवं तज्जन्य विरह के मार्मिक वर्णन किए हैं जो रहस्य-सम्पृक्त होने के कारण गम्भीर भी हैं।

सौन्दर्यवाद

सौन्दर्य अपनी शारीरिक सम्पन्नता में पृथिवी एवं स्वर्ग का सेतु है। सौन्दर्य के माध्यम से अलौकिक की प्रतीति सरल हो जाती है। अतः सूफ़ी सौन्दर्य-वर्णन में बहुत रुचि लेते रहे हैं। खिल्कत नूरे-इलाही से परिपूर्ण है। उस आसमानी माशूक का हुस्नोजमाल ही हसीना पर छाया है, कुदरत पर छाया है :

जेहि दिन चाँद! गइउँ जेवनारा। देखि बिमोहेउँ रूप तुम्हारा।।
तुम्हरी जोति जु भा उजियारा। परिउँ पतँग होइ मई न सँभारा।।
सो रँग रहा, न चित हुत जाई। चितहु माँझ रँग कुरिया छाई।।
जेहि दिन चाँद! दइय हउँ गढ़ा। तेहि दिन हुँते तोर रँग चढ़ा।।
विसरा लोक, कुटुँब, घर-बारू। बिसरा अरथु, दरबु, व्यवहारू।।
तहँ तोरइ बिरवा हिरदई लागेउ आइ।
कोंप सरग जरि धरती जिय बरु जाइ तउ जाइ।।

—मुल्ला दाऊद

विगसा कुमुद देखि ससि-रेखा। भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा।।
पावा रूप रूप जस चहा। ससि मुख जनु दरपन होइ रहा।।
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा, हंस भा, दसन-जोति नग हीर।।
उन बानन्ह अस को जो न मारा? बेधि रहा सगरौ संसारा।।
गगन नखत जो जाहिं न गने। वे सब बान ओहि के हने।।
धरती बान बेधि सब राखी। साखा ठाढ़ देहिं सब साखी।।
रोवँ-रोवँ मानुष-तन काढ़े। सूतहि-सूत बेध अस गाढ़े।।
बरुनि-बान अस ओपहँ बेधे रन-बन-ढाँख।
सौजहिं सब तन रोवाँ, पंखिहिं सब तन-पाँख।।
जेहि दिन दसन-जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई।।
रबि, ससि, नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन, पदारथ, मानिक, मोती।।
जहँ-जहँ बिहँसि सुभावहिं हँसी। तहँ-तहँ छिटकि जोति परगसी।।

—मलिक मोहम्मद जायसी

देखत ही पहिचानेउ तोही। इहै रूप जेहि छँदरा मोही।।
इहै रूप वुत अहै छपाना। इहै रूप रब सृष्टि समाना।।
इहै रूप सकती औ सीऊ। इहै रूप त्रिभुवन कर जीऊ।।
इहै रूप प्रगटे बहुभेसा¹। इहै रूप जग रंक, नरेसा।।

—मंझन

यह सत्य है कि प्राचीन नख-शिख-परम्परा का पिष्टपेषण एवं पारम्परिक अलंकरण का चर्वित-चर्वण यत्र-तत्र उबाऊ लगने लगता है, ईरानी-परम्परा पर नायिका की कोमलता का अतिरेक यत्र-तत्र हास्यास्पद हो गया है तथा परवर्ती कवियों की अनुकरणवृत्ति में बासीपन का अनुभव होता है; फिर भी, सूफी-कविता का सौन्दर्य-चित्रण अपनी मांसलता में आकर्षक एवं अपने रहस्य-संकेतों में प्रभावी अवश्य है। सूफी-नखशिखचित्रण में तत्कालीन आभूषणों, वस्त्रों, सौन्दर्य-प्रसाधनों इत्यादि का वर्णन सामाजिक इतिहास के एक पक्ष की विवृति करता है। आज पान और मिस्सी से रंगे दांतों का वर्णन विचित्र लग सकता है किन्तु उस समय वे मानक थे! सौन्दर्य अनन्त है, अनन्त-प्रभावी है; किन्तु उसके प्रसाधनों में समयानुसार परिवर्तन होता रहता है। कल की सज्जा आज की कुरुचि तक बन जाती है। इस दृष्टि से भी यह वर्णन महत्त्वपूर्ण है। तुलसी ने रामचरितमानस के बालकाण्ड में पुष्पवाटिका-वर्णन के अन्तर्गत जो सूक्ष्म एवं उदात्त सौन्दर्यचित्रण किया है उसकी समता हिन्दी में तो कोई कर ही नहीं सकता, संसार में भी कठिन ही है। कामायनी के श्रद्धा सर्ग में नायिका का भव्य सौन्दर्यचित्रण भी विश्वस्तरीय है। सूफी सौन्दर्यचित्रण इनके स्तर के नहीं हैं। किन्तु वे सूर इत्यादि के सौन्दर्यचित्रण की समता अवश्य कर सकते हैं। 'सूफी सौन्दर्यचित्रण का पारम्परिक, ऐतिहासिक एवं रहस्यात्मक आकलन' शोध का सुन्दर विषय है।

प्रेमवाद

सूफी-साधना प्रेम-साधना है। सूफी-दर्शन प्रेम-दर्शन है। प्रेम मानव की प्रथम प्रवृत्ति है। प्रेम मानव की सबसे बड़ी भूख है। प्रेम मानव की सबसे बड़ी प्यास है। मानव प्रेममय है। मानव का परमात्मा प्रेममय है। सूफी-प्रेम मानव में परमात्मा की प्रतीति उत्पन्न करता है। सूफी-कविता का रस प्रेमरस है, उसका परम प्रतिपाद्य प्रेम है—इश्कहक्कीकी। इश्कहक्कीकी गूढ़ एवं सूक्ष्म है। अतः उसकी प्रतीति-सोपान के हेतु इश्कमज्जाजी का सहयोग भी ले लिया जाता है। सूफी कवियों ने प्रेम-निरूपण उच्चकोटि का किया है :

रस के कुण्ड परा मरहिं मुनिवर गहन गहीरु।

रस के बूड घर वाहई, चाँद! लावहि तीरु।।

जनम न छूट पिरम कर बाँधा। पिरम खाँड आहइ विष साँधा।।

जेहि एहि चोट लागि सो जानी। कइ लोरिक कइ चाँदा रानी।।

सुखी न जानइ दुख किहु केरा! सोई जान परइ जेहिं बेरा।।

पिरम झार जेहि हिरदय लागइ। नींदि न जान, तपत निसि जागइ।।

सात सरग जउ बरिसहिं आई। पिरम आगि कइसेहुँ न बुझाई।।

चिनगि एक जउ बाहेर मारइ एहिं पिरम कर झार।

भसम होइ जरि धरती खिन एक सरग पतार।।

—मुल्ला दाऊद

भलेहि प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा प्रेम जेइ खेला।।

दुख भीतर जो प्रेम मधु राखा। जग नहिं मरन सहै जो चाखा।।

जो नहिं सीस प्रेम पथ लावा। सो प्रिथिमी मैंह काहे के आवा।।

प्रेम-घाव-दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई।।

परा जो प्रेम-समुद्र अपारा। लहरहिं लहर होत विसँभारा।।

बिरह भौर होइ भाँवरि देई। खिन-खिन जीव हिलोरा लेई।।

खिनहिं उसास बूड़ि जिउ जाई। खिनहिं उठे निसरै बौराई।।

खिनहिं पीत, खिन होइ मुख सेता। खिनहिं चेत, खिन होइ अचेता।।

कठिन मरन तें प्रेम-बेवस्था। ना जिउ जियै न दसवैं अवस्था।।

—मलिक मोहम्मद जायसी

जिस प्रकार सूफी नूर-इलाही के वर्णन में व्यष्टि से समष्टि अथवा प्रकृति से परमात्मा का समाहार करते हैं, उसी प्रकार इश्कहक्कीकी के वर्णन में भी। सौन्दर्य की अनन्त व्याप्ति के सदृश ही प्रेम ही अनन्त व्याप्ति का चित्रण सूफी-कविता की एक सबसे

बड़ी विशेषता है। 'उस' माशूक का आशिक सारा जड़-चेतन जगत् है—इसके सुन्दर चित्रण में सर्ववाद कला का रूप धारण कर लेता है। क्या आश्चर्य यदि इस प्रेमसाधना ने कबीर, नानक, दादू इत्यादि सन्तों को भी प्रभावित किया—यही नहीं, तुलसी तक से गवाया :

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ! निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम¹ ।।

विरहवाद

विरह प्रेम का तपपक्ष है, संयोग फलपक्ष है, सूफ़ी साधना का आधार आत्मा की ईश्वर के लिए विरह-व्यथा ही है जिसका तात्त्विक महत्त्व मिलन से भी गहनतर है। सारी जड़-चेतन सृष्टि उस प्रियतम के विरह में तप रही है। सूफ़ी विरह-भावना के उद्गार मुक्तक रूप में खुसरो, कबीर, नानक, दादू, आलम, धनआनन्द, बोधा, भारतेन्दु, महादेवी, बच्चन, नीरज इत्यादि तथा प्रबन्ध रूप में दाऊद, कुतूबन, जायसी, मंझन, उस्मान, नबी, निसार, नूर मोहम्मद इत्यादि के सुजन में प्राप्त होते हैं। 'सूफ़ी-विरहभावना और हिन्दी-कविता' शोध का विषय है। विरह के बिना जीवन व्यर्थ है। विरह के बिना प्रेम तप कर बना कुन्दन नहीं हो सकता। विरह की गरिमा अप्रतिम है :

पानु भएउ, चाँदा! तोहि जोगू। सिर देइ खेलेउँ चित धरि भोगू ।।

गाए किएउँ अस जइसि सुपारी। खाँडि पीसि दुइ कीतेउ नारी ।।

अवन स काढ़ि कीन्ह दुइ आधा। अइस, चाँद! मई आपुहिं साधा ।।

विरह दगध हउँ चूना कीन्हौं। जरत नीरु तेहि ऊपर दीन्हौं ।।

अनु छोड़ेउँ विरहई कइ झारा। पानी के हउँ रहिउँ अधारा ।।

कहिउँ निरति सब आपनि अब जउ पूछहि बात ।

अधर धरत गई पियरई तेहि रंग तोरें रात ।।

—मुल्ला दाऊद

अस परजरा बिरह कर गठा। मेघ साम भए धूम जो उड़ा ।।

दाढ़ा राहु, केतु गा दाधा। सूरुज जरा, चाँद जरि आधा ।।

औ सब नखत तराई जरहीं। टूटहिं लूक, धरति महीं परहीं ।।

जैरे सो धरती ठावहिं ठाऊँ। दहकि पलास जैरे तेहि दाऊँ ।।

रोवै-रोवै वै बान जो फूटे। सूतहि सूत रुहिर मुख छूटे ।।

नैनहिं चली रक्त कै धारा। कंथा भीजि भएउ रतनारा ।।

सूरुज बूढ़ि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता ।।

भा बसंत राती बनसपती। औ राते सब जोगी-जती ।।

भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते तहँ पंखि-पखेरू ।।

राती सती, अग्नि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया ।।

ईगुर भा पहार जौ भीजा ।.....

—मलिक मोहम्मद जायसी

बिरह अवधि अवगाह अपारा। कोटि माहिं यक परै त पारा ।।

बिरह कि जगत आँबिरथा जाही। बिरह रूप यह सृष्टि सबाही ।।

नैन बिरह-अंजन जिन सारा। बिरह-रूप दरपन-संसारा ।।

कोटि माहिं बिरला जग कोई। जाहि सरीर बिरह-दुख होई ।।

रतन की सागर-सागरहि, गजमोती गज कोइ ।

चाँदन कि बन-बन उपजै, बिरह के तन-तन होइ ।।

—मंझन

1. रमणीय। श्लेष। 'रघुनाथ' से अभिप्राय 'सोइ दसरथसुत' से है, क्योंकि 'राम' का रमणशील निर्गुणवाची अर्थ भी विवृत होता है। 'रघुनाथ' एवं 'राम' से पुनरुक्तवदाभास अलंकार भी आ गया है।

प्रचारवाद

सूफियों का उद्देश्य मोहम्मदीयत का वर्चस्व-प्रतिपादन, मोहम्मदीयत का प्रसार-प्रसार था, जैसाकि मुइनुद्दीन, निजामुद्दीन इत्यादि के जीवनों से ही स्पष्ट है। सूफी कवियों ने परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से मोहम्मदीयत का उन्नयन किया है। जायसी जैसे अल्प-उदार एवं नूरमोहम्मद जैसे मतान्ध सूफी कवियों ने तो काफ़िर (जिसका सामयिक अर्थ हिन्दू था) के लिए नरक का निर्धारण स्पष्ट किया ही है, क्रमशः राम-लक्ष्मण, कौरव-पाण्डव, नारद एवं कृष्ण इत्यादि का अपमान किया ही है, खुसरो जैसे परम भारतप्रेमी, परम ब्राह्मणप्रशंसक, परम हिन्दीभक्त सूफी कवियों ने भी निजामुद्दीन के प्रेम में छापा-तिलक तजने तथा दाऊद जैसे उदार एवं संस्कृतभक्त सूफी कवियों ने भी मोहम्मद से दूर रहने पर विनाश तथा हिन्दू राजाओं की दयनीयता की घोषणा करने में चूक नहीं की:

छापा तिलक तज दीन्हीं रे तोसे नैना मिला के ।¹

प्रेम-बटी का मदवा पिला के

मतवारी कर दीन्हीं रे मोसे नैना मिला के ।

खुसरो निजाम पे बलि-बलि जइए

मोहे सुहागन कीन्हीं रे मोसे नैना मिला के ।

—अमीर खुसरो

पुरुषि एक सिरजसि उजियारा । नाउ महंमदु जगतु-पियारा ।।

जिहि लगि सबै पिरथिमी सिरी । औ तिहि नाउ मोनदी फिरी ।।

बिधना मारि देस महँ आनी । भागहिँ राइ छाड़ि निसु रानी ।।

चहुँ जग परा भगाना, छाँडि देस नृप भाग ।

कइ रे दीन्ह सरब डँड, कइ ते पायनु लाग ।।²

—मुल्ला दाऊद

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । नाम मुहम्मद पूनौ-करा ।।

जौ न होत अस पुरुष उजारा । सूझि न परत पंथ अँधियारा ।।

जेहि नहिँ लीन्ह जनम भरि नाऊँ । ता कहँ कीन्ह नरक महँ ठाऊँ ।।

मदद अयूब सीस चढ़ि कोपे । राम-लखन जेइ नावँ अलोपे ।।

औ ताया सालार³ सो आए । जेइ कौरव-पांडव बँदि पाए ।।

आयसु इबलीसहु जौ टारा । नारद होइ नरक महँ पारा ।।

धूत एक मारत गनि गुना । कपट-रूप नारद करि चुना ।।

—मलिक मोहम्मद जायसी

मन इसलमा मिरिकलै माँजेउँ । दीन जेवरी करकस भाँजेउँ ।।

जहँ रसूल-अल्लाह पियारा । उम्मत को मुक्तावनहारा ।।

तहाँ दूसरी कैसे भावै । जच्छ, असुर⁴, सुर काज न आवै ।।

1. “दाढ़ी-मूँछ चट कीन्हीं रे तोसे नैना मिला के” या “मक्का-मदीना तज दीन्हीं रे तोसे नैना मिला के” कहीं नहीं लिखा। खुसरो पहले भयानक सांप्रदायिक थे। कट्टर मुसलमान अंत तक रहे। किन्तु उन्होंने राष्ट्रीय सत्य को समझा था।
2. “मालिकुल उमरा मुबारक इब्न मलिक बयौ मक़त असतू डलमऊ” द्वारा हिन्दू राजाओं को आतंकित करने का अतिरंजित वर्णन। मलिक मुबारक कोई विशिष्ट ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है।
3. महमूद गज़नवी का भांजा सालार मसऊद ग़ाज़ जो श्रावस्ती के राजा सुहदेव (सुहेलदेव) के हाथों मारा गया (अतः ‘गाज़ी’ विशेषण गलत है)—बहराइच में इस विदेशी आक्रान्ता की ‘दरगाह’ है जिसकी ‘ज़ियारत’ करनेवालों पर तुलसी ने ‘दोहावली’ में व्यंग्य किया है।
4. प्राचीन ईरानी-इराक़ी अंचलों में ‘असुर’ का आदर था, ‘सुर’ या ‘दीव’ (देव) का अनादर। ‘असुर’ एक विशेषण भी था, जैसाकि ‘असुर बनीपाल’ (सम्राट्) से स्पष्ट है। फ़िरदौसी कृत ‘शाहनामा’ असुर-गौरव के सन्दर्भों से निष्पन्न है। मेरे मत से, कोई आश्चर्य नहीं यदि पारसियों के ‘आहुरा-माज़दा’ (परमाराध्य) में ‘आहुरा’ शब्द असुर-मूलक हो! सिन्ध का हिन्दु इत्यादि में भी ‘स’ का ‘ह’ हो जाता है। सोम का आहोम रूप प्रसिद्ध है ही।

सुनतै जौ यह सबद मनोहर, होत अचेत कृष्ण मुरलीधर॥
 बहुत देवता को चित धरै। बहु मूरति आँधी हाइ परै॥
 बहुत देवरहा ढाहि गिरावै संखनाद की रीति मिटावै॥

—नूरमोहम्मद

उपसंहार

यद्यपि हिन्दी की सूफ़ी कविता को सम्मान आचार्य शुक्ल सम्पादित 'जायसी-ग्रन्थावली' के परिणामस्वरूप प्राप्त हुआ तथापि इसका वस्तुपरक आकलन करने वाले शुक्ल-पूर्ववर्ती मिश्रबन्धु ही थे, क्योंकि आचार्य शुक्ल का विवेचन उनकी उमंग पर आधृत है—तत्त्वतः आचार्य शुक्ल घोर प्रभाववादी आलोचक थे जैसा कि उनके सिद्ध-नाथ-जैन-काव्यबहिष्कार, कबीर इत्यादि पर अभिजातवादी विचार, केशव-बिहारी-देव-प्रसाद इत्यादि पर अत्याचार से तो निर्विवादतः स्पष्ट हो ही चुका है, उनकी घनघोर वस्तुविरोधी जायसी-स्तुति, अपरिसीमतः एकांगी घनआनन्द-प्रशस्ति, अनियन्त्रित गुलेरी-प्रतिष्ठापन इत्यादि से भी स्पष्ट हो सकता है। सन्तुलन का अभाव आचार्य शुक्ल की आलोचना को प्रात्ययिक नहीं बनने देता। खेद है कि उनके प्रति अंधश्रद्धा के कारण भी तक पूर्ण सत्यान्वेषण नहीं हो पाया। हिन्दी की सूफ़ी-कविता अपने रहस्यगर्भित सौन्दर्य, प्रेम एवं विरह वर्णनों के लिए सदैव समावृत्त की जाएगी, उसका 'पदमावत' हिन्दी में इस्लाम प्रचार अथवा हिन्दुत्व के निन्दन एक ऐसा सत्य है जिसकी अनदेखी करना इतिहास से अत्याचार करना होगा। विवाह-अवहेलना, प्रेमिका को पत्नी पर वरीयता, उल्लंग कामुकता इत्यादि के अ भारतीय तत्त्वों के कारण सूफ़ी-प्रेमाख्यान कभी जनादर प्राप्त नहीं कर सके तथा शुक्ल की जायसी-एकांतस्तुति के बावजूद विश्वविद्यालयों के बाहर आज भी उपेक्षित हैं।

प्रमुख कवि

खुसरो¹

'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' के लेखक डॉ. ईश्वरीप्रसाद (1888-1986 ई.) के शब्दों में "अत्यन्त सरलतापूर्वक भारत के सर्वश्रेष्ठ मुसलमान कवि" (बाई फार द ग्रेटेस्ट मुस्लिम पोएट ऑफ इण्डिया), फ़ारसी-कविता के अमर स्तम्भ, हिन्दी-कविता के एक अमर अभिधान, उर्दू-कविता के 'आरोपित जनक', संस्कृत-अरबी-फ़ारसी-तुर्की-हिन्दवी इत्यादि अनेक भाषाओं के अपूर्व ज्ञान के कारण मध्यकालीन भारत के अप्रतिम भाषाविद्, हिन्दुस्तानी संगीत के एक महान् आचार्य, कव्वाली के प्रथम भारतीय उन्नायक, अनेक इतिहासग्रन्थों के प्रणेता, दरबारी, योद्धा, और सूफ़ी अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) बहुमुखी प्रतिभा की दृष्टि से संसार के एक विलक्षण व्यक्ति माने जा सकते हैं—संसार के मोहम्मदी इतिहास में इतना प्रतिभाशाली व्यक्ति कोई नहीं हुआ। बहुमुखी प्रतिभा में महाकवि, नाट्यकार, उपन्यासकार, कहानीकार, संस्मरणकार, आलोचक, संगीतकार, चित्रकार, दार्शनिक एवं शिक्षाविद् रवीन्द्र (1861-1941 ई.) उनसे आगे लगते हैं। भारत के इतिहास में खुसरो का गौरवशाली एवं उच्च स्थान पुनरुत्थान के वाहक एवं उन्नायक के रूप में अजर-अमर है।

खुसरो का जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जिले में स्थित पटियाली में हुआ था। पटियाली को मोमिनपुर या मोमिनाबाद भी कहते हैं। हुमायूँ (देहान्त 24 जनवरी, 1556 ई.) के समकालीन इतिहासकार हामिद बिन-फ़ज़लुल्लाह जमाली कृत 'तज़किरा सैरुल आफ़रीन' में पटियाली का एतद्विषयक सर्वप्रथम उल्लेख, ए.जी. आर्बरी कृत 'क्लासिकल पर्शियन लिटरेचर', 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका', डॉ. ईश्वरीप्रसाद जैसे इतिहासकारों तथा प्रायः सभी के द्वारा मान्य है। एकाध स्रोत काबुल के पास गोरबन्द, बुखारा तथा दिल्ली² का उल्लेख भी करते हैं। साम्प्रदायिकता के कारण खुसरो को उर्दू से लपेटना भी ऐसी कल्पना है।³ हर्ष है कि फ़िराक़ ने अपने उर्दू-साहित्य के इतिहास में ऐसी कल्पना नहीं की।

1. द्रष्टव्य है मेरे 'दिल्लीनामा' ग्रन्थ का 'गोरी सोवै सेज पर' शीर्षक निबन्ध।

2. डॉ. भोलानाथ तिवारी कृत ग्रन्थ 'अमीर खुसरो' विद्वत्तापूर्ण भी है, शोधपूर्ण भी। किन्तु दिल्ली में जन्म मानना कठिन है।

3. प्राचीनता-व्यामोहवश। उर्दू-कविता का जन्म अठारहवीं सदी (ई.) में हुआ था और वली इसके आदिकवि थे। प्रो. मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने माना है कि "हमारी जुबान ब्रजभाषा से निकली है"।

खुसरो के पूर्वजों का स्थान तुर्की का कश था, जहाँ से बलख में आब्रजन हुआ। ये लोग हज़ारा तुर्क थे, जिनका कबीला 'लाचीन' था जिसका अर्थ 'गुलाम' होता है। स्पष्टतः ये किसी गुलाम शाखा से सम्बद्ध थे। बलख से इनके पिता भारत आए थे। इनका वास्तविक नाम अबुल हसन था तथा 'खुसरो' तखल्लुस (उपनाम)। जलालुद्दीन खिल्जी (राज्यकाल 1290-1296 ई.) द्वारा अमीर का खिताब अता किए जाने के कारण इनको अमीर खुसरो कहा जाने लगा। गुलाम-वंश के सुल्तान बल्बन (राज्यकाल 1266-1286 ई.) के समय में ये शाही खिदमत में आए, गुलाम-वंश का पतन (1290 ई.) देखा, खिल्जी-वंश (1290-1320 ई.) देखा, तुगलक-वंश का उद्भव (1320 ई.) देखा तथा इसके संस्थापक गयासुद्दीन तुगलक (राज्यकाल 1320-1325 ई.) का निधन देखा तथा उसके एवं उसके परम विरोधी अपने आध्यात्मिक गुरु निज़ामुद्दीन औलिया के निधन वर्ष 1325 ई. में ही दिल्ली में ही मरे। 1325 ई. उस युग का असामान्य मरणवर्ष था : गयासुद्दीन तुगलक, निज़ामुद्दीन औलिया, अमरी खुसरो (सुल्तान, फ़कीर, शायर) मरे, दिल्ली में ही मरे, दिल्ली में ही तीनों की समाधियाँ (मकबरा, दरगाह, मज़ार) हैं! निस्सन्देह, अमीर खुसरो इनमें सर्वश्रेष्ठ थे क्योंकि उनकी प्रतिभा अतीव विलक्षण थी, जबकि सुल्तानों और फ़कीरों से तो इतिहास के पोथे भरे ही पड़े थे! निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह के परिसर में ही इनका मज़ार भी है, जहाँ हर साल शानदार उर्स मनाया जाता है।

व्यक्ति के रूप में खुसरो सत्तावादी थे, अर्थात् जो भी सत्ताधारी हो उसकी अतर्क्य प्रशंसा करते थे, भले ही वह पिछले प्रशस्तिपात्र का हंता ही क्यों न हो! इस दृष्टि से पद्माकर की याद आना स्वाभाविक है जो नोने अर्जुनसिंह की यशगाथा भी गाते हैं, हिम्मतबहादुर की भी! 'तुगलकनामा' में वे निस्संकोच भाव से गयासुद्दीन तुगलक की प्रशंसा करते हैं, जो उनके गुरु निज़ामुद्दीन औलिया का विरोधी था (जिनकी उन्होंने ईश्वर के प्रतीक रूप में अपरिशीम स्तुति की है)! जब गयासुद्दीन बंगाल-अभियान में व्यस्त था तब उसने निज़ामुद्दीन के सन्दर्भ में कुछ ऐसा सुना कि सन्देश भिजवाया कि दिल्ली आने पर दण्ड देगा। मोहम्मद तुगलक (निज़ामुद्दीन के मुरीद पागल¹ सुल्तान ने शहाबुद्दीन नामक फ़कीर को जो यातनाएँ दीं, वे लोमहर्षक हैं—उनको बलात् मानव-मल खिलाना तक) शामिल था—जिनका उल्लेख इब्नेबतूता ने 'अजाइबुल-असफ़ार' में किया है। उस जमाने में बर्बर सुल्तान ऐसी यातनाएँ दिया ही करते थे। अतः निज़ामुद्दीन के चले बहुत घबराए। इस पर निज़ामुद्दीन ने प्रसिद्ध "हनूज़ देहली दूर अस्त" (अभी दिल्ली दूर है) भविष्यवाणी की थी। गयासुद्दीन तुगलक अपने पुत्र मोहम्मद तुगलक (राज्यकाल 1325-1351 ई.) के षड्यन्त्र के परिणामस्वरूप मारा गया। मोहम्मद तुगलक (पूर्वनाम उलुग ख़ाँ²—पदवी जूना³ ख़ाँ) ने पिता के स्वागतार्थ दिल्ली के निकट अफ़ग़ानपुर में काष्ठप्रासाद बनवाया, जिसके विजित गत-प्रदर्शन सन्दर्भ में ढह जाने से गयासुद्दीन मर गया। 1333 ई. में भारत आने वाले यात्री इब्नेबतूता ने इस षड्यन्त्र का विस्तृत वर्णन किया है। स्वागत-भवन दोपहर में ढहाया-ढहवाया गया किन्तु मलबा हटाने के लिए रस्सियाँ और फावड़े सूर्यास्त के बाद लाए गए। गयासुद्दीन अपने अन्य पुत्र महमूद पर ढाल बना मिला। एक पक्ष के अनुसार, दोनों मर चुके थे। दूसरे के अनुसार, गयासुद्दीन जिन्दा था जिसकी अँधेरे में हत्या की गई तथा लाश को रातों-रात दफ़ना दिया गया। स्वागत के लिए अनावश्यक है अस्थायी काष्ठ-प्रासाद का निर्माण तथा इस विजय में प्राप्त हाथियों के प्रदर्शन की कूट-योजना सुयोग्य विश्वकर्मा⁴ अहमद बिन-अयाज़ या मलिकज़ादा ने बनाई थी, जिसे ख्वाज़ा-ए-जहाँ का रुतबा बख़्शा गया। इब्नेबतूता के आगमन के समय इस पितृघात को हुए लगभग आठ वर्ष ही हुए थे। दूसरे, वह मोहम्मद तुगलक का अत्यधिक सम्मानित कृपापात्र भी था। अतएव, उसका विवरण सत्य ही हो सकता है। एसामी एवं निज़ामुद्दीन अहमद इत्यादि इतिहासकारों के द्वारा इब्नेबतूता को समर्थन प्राप्त होता है। इतिहासकार फ़रिश्ता द्विधाग्रस्त है। 'तारीखे-मुबारकशाही' का इतिहासकार यहिया बिन-अहमद बिन-अब्दुला सरहिन्दी (जो सैयद-वंशीय सुल्तान मुबारकशाह⁵ राज्यकाल 1421-1434 ई. का आश्रित था) निज़ामुद्दीन के शाप को गयासुद्दीन की अकाल मृत्यु का कारण बताता है जो अंधविश्वासपूर्ण एवं अनैतिहासिक है। ज़ियाउद्दीन बरनी ने 'तारीखे-फ़ीरोज़शाही' में जान-बूझकर इस घटना का उल्लेख नहीं किया क्योंकि इस मतान्ध इतिहासकार की ठीक इसी जैसे मतान्ध सुल्तान फ़रोज़ तुगलक (राज्यकाल 1351-1388 ई.) के प्रति बड़ी श्रद्धा थी (अर्थलाभ का लोभ भी था) और फ़ीरोज़ अपने चचाज़ात भाई मोहम्मद का सम्मान करता था (जिसके निस्सन्तान होने के कारण ही तख़्तनशीन हो सका था)। निज़ामुद्दीन औलिया

1. सुल्तान मोहम्मद तुगलक पागल था या नहीं? इस विषय पर इतिहासकारों में विवाद है। वह पढ़ा-लिखा था। फ़्रांस के सम्राट लुई चतुर्दश ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट जेम्स प्रथम को 'प्रबुद्धतम मूर्ख' (द वाइजेस्ट फ़ूल) कहते थे। मेरी समझ में, मोहम्मद तुगलक पागल न होकर 'प्रबुद्धतम मूर्ख' ही था जो परिणाम सोचे बिना बहुत बड़ी योजनाएँ बना डालता था। वह तरंगी था।

2. उल्लू ख़ाँ नहीं।

3. जौनपुर इसके नाम पर बसा या अन्य जूना ख़ाँ के? विवादास्पद-सा है।

4. एजिनीअर।

5. कोटला मुबारकपुर (दिल्ली) इसी की यादगार है।

और मोहम्मद तुगलक में गाढ़ी मित्रता थी। सम्भवतः गयासुद्दीन तुगलक की हत्या के षड्यन्त्र में औलिया भी सम्मिलित थे और “हनूज देहली दूर अस्त” उसी का उद्गार था, जिसे कई विश्वासियों ने भविष्यवाणी मान लिया! अमीर खुसरो ने एकरस तारीफ़ के अभ्यास के अनुसार गयासुद्दीन और निजामुद्दीन दोनों पर ही लिखा: उनका वस्तुवाद धन्य है!

अप्रतिम देशभक्ति

‘नुह सिपहर’ में खुसरो ने भारत¹ और ब्राह्मण की जो प्रशंसा की है, वह अतुलनीय है। खुसरो के अनुसार, “हिन्दुस्तान स्वर्ग-तुल्य है, यहाँ की जलवायु खुरासान से बेहतर है! कहीं रसराज आम की प्रशंसा, कहीं खगराज मोर की, कहीं मधुवर्षी मैना की, कहीं खेलों के सुल्तान शतरंज की—उन्होंने इस देश की प्रशंसा दिल खोलकर की है! उनके शब्दों में, भारत के संगीत की समता संसार के किसी भाग में नहीं की जा सकती।² खुसरो संसार के इतिहास में ब्राह्मण के महानतम प्रशंसक हैं। उनके अनुसार, “यहाँ का ब्राह्मण विद्वत्ता में अरस्तू के समान होता है। प्रत्येक दिशा से कलाकार एवं विद्वान् कला एवं विद्या की खोज में भारत आते रहते हैं, किन्तु यहाँ से कोई ब्राह्मण इस उद्देश्य से कहीं नहीं गया। सभी को ज्ञात है कि अबू माशर, जो ज्योतिष में अतीव दक्ष था, भारत में दस वर्ष रहा और काशी (वाराणसी-तब बनारस) में विद्या प्राप्त करता रहा।” हिंदसा³ शब्द भारत के अरब पर प्रभाव का सूचक है। खुसरो के अनुसार, आसा नामक ब्राह्मण ने इस विद्या का आविष्कार किया (अरब के लिए)। यूनानियों ने भी यह ज्ञान ब्राह्मणों से ही प्राप्त किया। समस्त दार्शनिक ब्राह्मण के शिष्य हैं, किन्तु वह किसी का नहीं। वैसे तो ब्राह्मण-प्रशंसा बुद्ध, अशोक, मेगस्थनीज़, फ्राह्यान, ह्वेन्त्सांग, इत्यादि ने भी की है, किन्तु खुसरो ने सर्वाधिक की है, तर्कसंगत की है, सप्रमाण की है।

भारत अरब देशों पर अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रभाव डालता रहा है। प्रसिद्ध है कि राजा बलि से रुष्ट शुक्र या शुक्राचार्य पुत्र और्य के देश (अरब) चले गए जो बहुत दूर न था—आज तक केरल-अरब-सम्बन्ध व्यापकतर हैं। कवि के पुत्र होने के कारण शुक्र को काव्य भी कहा जाता है। काबा उन्हीं ने बनाया-बसाया। अरबवासियों ने शुक्र को जुमा (महान्) माना। प्रशंसात्मक शब्द ‘शुक्रिया’ आज भी आ. शुक्र का स्मरण कराता है। दानव शिव-पूजक थे। आ. काव्य ने काबा में शिव-मन्दिर स्थापित किया—संगे-असवद (जिसे कॉम्युनिस्ट विद्वान् वाममार्ग-शिरोमणि राहुल तक ‘हज़रत मोहम्मद और इस्लाम’ में ‘मक्केश्वर’ मानते हैं) आज तक प्रमाण बना हुआ है। और्य से अरब एवं काव्य से काबा, शुक्र से जुमा, शुक्रिया, मक्केश्वर या संगे-असवद, हज़ में गैरसिले श्वेत-परिधान एवं स्नानादि-प्रावधान एवं परिक्रमा भारत के अरब पर प्रभूत प्रभाव के अद्यावधि विद्यमान तत्त्व हैं। हैवेल जैसे हिन्दी-हिन्दू-विरोधी विद्वान् तक ने स्वीकार किया है कि प्राचीनतम काल में, यूनान से भी पहले, भारत ने अरब के समग्र जीवन को प्रभावित किया था। मोहम्मद के समय लात (अल्लात जो अल्लाह⁴ की संगिनी थी—यूनानी लाते अथवा लैटो और मूलतः भारतीय मातृशक्ति), उज्ज़ा (उज्ज्वला, ज्वाला), मनात (मनेच्छा या मनौती पूरी करने वाली भाग्यदेवी काली) के मन्दिरों के प्रधान अबू सिम्बल (शिव एवं बल के योग से बना शब्द) की पत्नी का नाम ही हिन्द था, तत्कालीन देवप्रशस्तिकारों (चारणों) में बाल (शुद्ध भारतीय शब्द) का बड़ा नाम था और हिन्द उस पर आसक्त थी (बाल ने मोहम्मद के विरोध में कविताएँ लिखी थीं)। काबा में उत्सव पर संगीत, काव्यपाठ, नृत्यादि के जो आयोजन होते थे वे शुद्ध भारतीय थे। सल्मान रश्दी ने ‘द सैटेनिक वर्सेज़’ उपन्यास के द्वितीय अध्याय में तत्कालीन धर्म का रोचक चित्रण किया है, जो इस प्राचीन-नवीन की बेमेल-खिचड़ी और “कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा” छाप साधारण एवं प्रायः अश्लील उपन्यास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग है। खुसरो ने ‘नुह सिपहर’ में मोहम्मदी युगों में भारत के अरब पर प्रभाव का वर्णन कर एतद्विषयक अगला अध्याय रचा है।

1. ‘फुतुहुससालातीन’ (सुल्तानों की विजयों) के इतिहासकार एसामी भारत-प्रशंसा की दृष्टि से खुसरो के उत्तराधिकारी थे: “भारत बहुत सुन्दर देश है। स्वर्ग उससे इर्ष्या करता है। पग-पग पर यहाँ नदियाँ बहती हैं जिनका जल अमृत के तुल्य है। उसकी पतझड़ से बहार का जन्म होता है। यहाँ की औंधी भी पुरवा के सदृश है।.... जो भी यहाँ ईराक, अरब इत्यादि से आ जाता है, अपनी जन्मभूमि कभी नहीं याद करता।”
2. जुबीन मेहता जैसे विश्व के अग्रणी संगीतकार ने खुसरो के साढ़े छह सौ वर्ष बाद कहा है कि पाश्चात्य संगीत को भारतीय संगीत से प्रेरणा की आवश्यकता है, भारतीय संगीत को पाश्चात्य संगीत से नहीं।
3. हिन्द + आसा = हिन्द के आसा नामक ब्राह्मण द्वारा अरब में लाई गई विद्या या गणित।
4. अल्लाह का अर्थ ‘देवता’ है, अल्लात का ‘देवी’। काबा की 360 मूर्तियों में एक अनुमान के अनुसार मोहम्मद ने अल्लाह की मूर्ति (प्रतीक) संगे-असवद को छोड़कर शेष सब को नष्ट करा दिया। किन्तु अल्लाह से अल्लात को छीनकर विधुर बना दिया गया।

खुसरो संस्कृत के प्रशंसक थे तथा इसे फ़ारसी और तुर्की से बढ़कर मानते थे जबकि वे स्वयं तुर्क थे और फ़ारसी के एक श्रेष्ठतम कवि भी। हिन्दी की सूफ़ी-प्रेमाख्यान-परम्परा के आदिकवि दाऊद ने भी संस्कृत को 'मनोहर' भाषा माना है। निस्सन्देह, उन पर खुसरो का प्रभाव पड़ा है। खुसरो ने सिन्धी, लाहौरी, कश्मीरी, कुबरी, धीर (धुर) समुद्री, तिलंगी, गूजरी, माबरी, गौरी, बंगाली और अवधी का भी उल्लेख किया है।

कट्टर मुसलमान एवं आरम्भ में मतान्ध ('दिवलरानी-खिज़्रख़ाँ' में विशेषतः) होते हुए भी खुसरो हिन्दुओं के मूल एकेश्वरवाद से परिचित थे तथा मोहम्मदीयत के अनन्तर हिन्दूधर्म को श्रेष्ठतम मानते थे। उनके अनुसार, ब्राह्मण तथा अन्य हिन्दू नास्तिकों, ईसाइयों, पारसियों तथा अनात्मवादियों आदि से बहुत ऊँचे हैं (स्पष्ट है कि वे बौद्ध एवं जैन धर्मों से परिचित थे)। खुसरो का ज्ञान अपार था; वे अपने समय के विश्वकोश थे।

खुसरो ने दिल्ली की दिल खोलकर तारीफ़ की है। उनके अनुसार, खिता, खुरासान, त्रिमिज़, तबरेज़, बुखारा, ख्वारज़्म, कोई भी दिल्ली का मुकाबला नहीं कर सकता। निस्सन्देह, खुसरो दिल्ली के आदि-प्रशंसक थे, जिनका अनुकरण उर्दू के आदिकवि वली (मोहम्मदशाह रँगिले, राज्यकाल 1719-1748 ई. के समकालीन एवं प्रेमी-प्रशंसक), मीर तक़ी 'मीर, जौक़ जैसे शायरों ने किया है।

खुसरो फ़ारसी के सर्वश्रेष्ठ शायरों में एक तो हैं ही (जिनकी तुलना फ़िरदौसी, सादी, उनके समकालीन हाफ़िज़ इत्यादि से की जा सकती है), भारत के सर्वश्रेष्ठ इतिहासकारों में भी हैं (जिनकी तुलना मिनहाज़ सिराज, ज़ियाउद्दीन वरनी, बदायूनी, अबुल फ़ज़ल इत्यादि से की जा सकती है)। उनकी फ़ारसी शायरी मोहम्मदी-मतान्धता से मुक्त नहीं है, संकीर्ण है। उनके इतिहास-ग्रन्थों में एकाध ही मोहम्मदी-मतान्धता या संकीर्णता से मुक्त हो पाए हैं। किन्तु जहाँ वे उदार या धर्मनिरपेक्ष हैं वहाँ एक महामानव से लगते हैं। तुर्क-पठान-कालीन भारत (1192-1526 ई.) के अतुलनीयतः सर्वश्रेष्ठ मुसलमान अमीर खुसरो ही थे; और, उन्हें यह स्थान बहुमुखी प्रतिभा के बल पर प्राप्त हुआ है, सत्ता के कारण नहीं। मुग़ल-कालीन भारत में भी केवल अकबर ही उनसे श्रेष्ठतर है, क्योंकि उसने राष्ट्रीय इतिहास को द्वितीय सहस्राब्दि (1000-2000 ई.) में सर्वाधिक प्रभावित किया है : लुटेरे महमूद ग़ज़नवी एवं तैमूर लंग, सल्तनत-संस्थापक मोहम्मद गोरी इत्यादि, बर्बर बाबर एवं मतान्ध औरंगज़ेब, मुस्लिम-साम्प्रदायिकता में भयावह वृद्धि करने वाले आधुनिक नेता, कोई अकबर के समकक्ष नहीं क्योंकि उसने वस्तुतः साम्राज्य-स्थापन भी किया, साम्राज्य-विस्तार भी किया, संगीत एवं वास्तु कलाओं का उत्कर्ष भी किया, हिन्दी-कविता का उन्नयन भी किया; और सबसे बढ़कर राष्ट्रीय एकता स्थापित की (वह प्रचण्ड कामुक था, चित्तौड़ में हजारों हिन्दुओं का कातिल था, शाहजादियों के विवाह पर प्रतिबन्ध लगाने वाला मनोविज्ञान-अल्पज्ञ, सर्वश्रेष्ठतावादी था, भारत में अपने समय में ही प्रेस न आने देने का उत्तरदायी होने के कारण इस दिशा में अदूरदर्शी भी था—किन्तु वह मानवतावादी होने के कारण आदरणीय मानव था, एकता का प्रतीक होने के कारण महान् नेता था)। अकबर और खुसरो की समता करने वाले मुसलमान इतिहास में कहीं और कभी नहीं हुए। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने खुसरो के पैतालीस ग्रन्थों¹ का उल्लेख किया है, यद्यपि इनमें अन्तर्संक्रमण बहुत हुआ है। वैसे, 'सीरुल औलिया' में जामी ने ग्रन्थसंख्या निन्यानबे तथा 'नफ़हातुलउन्स' में अमीन राज़ी ने एक सौ निन्यानबे तक कह डाली है।

प्रभाव

हिन्दी की खड़ीबोली एवं व्रजभाषा विभाषाओं के कवियों में भी खुसरो को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है। दाऊद, कबीर, कुत्बन (क़ुतबन), जायसी इत्यादि पर उनका प्रभाव स्पष्ट है। अयोध्याप्रसाद खत्री, व्रजरत्नदास, रामनरेश त्रिपाठी इत्यादि संकीर्ण भाषा-चिन्तकों (जो खड़ीबोली को ही हिन्दी मानते हैं—मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का भी यही 'विचार' था) के लिए तो खुसरो हिन्दी के आदिकवि ही हैं। उर्दू को पुरानी भाषा सिद्ध करनेवाले साम्प्रदायिक तत्त्व तो खुसरो को उर्दू का आदिकवि भी कहते हैं, जबकि उन्होंने हिन्दवी शब्द का प्रयोग किया है, अरबी-फ़ारसी-तुर्की से अपनी हिन्दवी को लादा नहीं है और 'आबेहयात' के लेखक प्रो. मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' (मो. 'आज़ाद' से भिन्न वस्तुवादी विद्वान्) ने स्पष्ट माना है कि "हमारी जुबान व्रजभाषा से निकली है"—उर्दू के आदिकवि वली, आबरू, आरज़ू, ताबौं, नज़ीर अकबराबादी इत्यादि की शायरी इस कथन को ही प्रमाणित करती है।

हिन्दी अपनी विभाषाओं के साथ प्राचीन भाषा है, भले ही बीम्स जैसे विद्वानों की यह मान्यता कि हिन्दी आर्य-पूर्व-भाषा है, विवादास्पद हो। वाण भट्ट (हर्ष राज्यकाल 606-647 ई. के राजकवि एवं संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ गद्यकार—‘कादम्बरी’¹ के कारण विश्व के प्रथम उपन्यासकार) ने जनता की जिस भाषा का उल्लेख किया है, वह हिन्दी ही है (तुलसी, केशव इत्यादि तक हिन्दी को ‘भाषा’ कहते थे जिसका कारण हिन्दी की व्यापकता² हो है)। हेमचन्द्र के कतिपय उद्धरण हिन्दी की प्राचीनता के स्मारक हैं।

अतः किसी एक व्यक्ति को खड़ीबोली का आदिकवि कहना अनुचित होगा। ‘हिन्दी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास’ में डॉ. सूर्यकान्त शास्त्री खुसरो की सहज-प्रसन्न भाषा की बड़ी तारीफ़ की है, किन्तु उनका सूर इत्यादि की भाषा की आलोचना विभाषा-न्याय न कर सकने के कारण अग्राह्य है। स्फीत एवं वैविध्यपूर्ण हिन्दी पर कुछ कहना स्फीत एवं वैविध्यपूर्ण अध्ययन के ही बूते की चीज़ है।

‘तज़किरे अरफ़ात’ में औहदी साहब ने लिखा है कि खुसरो ने जितना फ़ारसी में लिखा है उतना ही ब्रजभाषा में, किन्तु संप्रति डॉ. भोलानाथ तिवारी के शब्दों में “उनके हिन्दी-छन्दों की संख्या चार सौ से ऊपर नहीं है।” औहदी साहब ने ब्रजभाषा शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु खुसरो की अधिकांश, प्रायः सभी, कविता खड़ीबोली में है। चार सौ के लगभग छन्दों में भी हुक्के, चिलम, बन्दूक, चूड़ी इत्यादि से सम्बद्ध पहेलियाँ और मुकरियाँ स्पष्टतः प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि ये खुसरो-परवर्ती वस्तुएँ हैं। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में इस बिन्दु पर अच्छा प्रकाश डाला है। खुसरो की पहेली-मुकरी-परम्परा खगनिया एवं भारतेन्दु इत्यादि तक प्रसरित है। साहित्यिक दृष्टि से खुसरो की महत्त्वपूर्ण हिन्दी-कविता गीतों, विशेषतः बाबुलगीतों, कव्वालियों, गज़लों, फ़ारसी-हिन्दी-मिश्रित छन्दों एवं सूफ़ियाना दोहों में ही प्राप्त होती है, जिसके इश्क़हक़ीकी का प्रभाव दाऊद, कबीर, कुत्बन (कुतबन), जायसी इत्यादि परवर्ती मुसलमान कवियों पर पड़ा, मिश्रित-छन्दों का रहीम पर। उनकी कव्वालियाँ आज तक प्रचलित हैं, जिन्हें मशहूर कव्वाल बड़ी लगन से गाते हैं। जवाहरलाल नेहरू (1889-1964 ई.) खुसरो के गीतों और कव्वालियों के मुरीद थे। मरहूम कव्वाल हबीब पेंटर खुसरो की कव्वालियों में काफी जोड़तोड़ करके उन्हें बहुत अच्छी तरह गाते थे। चलचित्रों में भी उनकी नाना रचनाएँ गाई गई हैं। खुसरो कृत कविता में प्रस्तुत फ़ारसी-हिन्दी-शब्दकोश ‘खालिकबारी’ भी एक उल्लेखनीय कृति है। खुसरो हिन्दी को फ़ारसी से कम नहीं मानते थे, जैसाकि उनके “न लफ़्जे हिन्दवीस्त अज़ फ़ारसी कम” उद्गार से स्पष्ट है।

ललित रहस्यवाद

इश्क़हक़ीकी की कठिन साधना के प्रथम प्रतीकवादी हिन्दी-कवि खुसरो ही थे जिनका दार्शनिक प्रभाव दाऊद, कबीर, नानक, जायसी, दादू इत्यादि पर पड़ा और आज तक जीवन्त है:

बहुत कठिन है डगर पनघट की। कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी
मेरे अच्छे निज़ाम पिया! कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी
ज़रा बोलो निज़ाम पिया! पनिया भरन को मैं जो गई थी
दौड़ झपट मोरी मटकी पटकी। बहुत कठिन है डगर पनघट की।
खुसरो निज़ाम के बल-बल जइए लाज राखे मेरे घूँघट पट की।
कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी बहुत कठिन है डगर पनघट की!³

मार्मिक बाबुलगीत

खुसरो का सूफ़ियाना अन्दाज़े-बयौं उनके अतीव मार्मिक एवं प्रतीक-सम्पन्न बाबुल-गीतोप में बहुत सफल हुआ है, जिससे कबीर सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। मोहम्मदीयत में लड़की खरीदी-सी जाती है (‘मेहर’ क्रयमूल्य-द्योतक है), उसकी स्थिति ‘माल’ की सी होती है जो अपनी-जैसी कई बीवियों के साथ रखी जा सकती है तथा तीन बार तलाक़ कहकर अकारण त्यागी भी जा सकती है, दो औरतों की गवाहियाँ एक मर्द की गवाही के बराबर होती हैं, बलात्कार पर उसे चार गवाहियाँ पेश करनी पड़ती हैं। हिन्दू दहेज के शिकार

1. मराठी में ‘उपन्यास’ के लिए ‘कादम्बरी’ शब्द का प्रचलन अतीव सांस्कृतिक एवं साधारण है। काश, हिन्दी में ऐसा ही होता!
2. ‘लिंगुआ फ़्रैंका’ का शाब्दिक अर्थ है ‘फ़्रांस की भाषा’ किन्तु वास्तविक अर्थ है ‘व्यापकभाषा’ या ‘जनभाषा’।
3. अमीर खुसरो, सं. सुदर्शन चोपड़ा, पृष्ठ 47 (निज़ामुद्दीन औलिया से सम्बद्ध)।

हैं। उनमें कन्या की विदाई अश्रुपूर्ण होती है। मोहम्मदी नारी-करुणा, हिन्दुई कन्या-सम्बेदन एवं व्यथापूर्ण अवसान का त्रित् बाबुलगीतों को अत्यन्त मार्मिक बना देता है :

बहुत रही बाबुल घर दुलहिन, चल तेरे पी ने वुलाई।
 बहुत खेल खेली सखियन सों, अंत करी लरिकाई॥
 न्हाय धोय के बस्तर पहिरे, सबही सिंगार बनाई।
 बिदा करन को कुटुंब सब आए, सिंगरे लोग-लुगाई॥
 चार कहारन डोली उठाई, संग पुरोहित नाई।
 चले ही बनेगी, होत कहा है नैनन नीर बहाई॥
 अंत बिदा हवै चलिहै दुलहिन, काहू की कछु न वसाई॥
 मौज-खुसी सब देखत रह गए माता पिता और भाई।
 मोरि कौन सँग लगन धराई, धन धन तेरि है खुदाई॥
 बिन माँगे मेरी मँगनी जो दीन्हा परघर की जो ठहराई॥
 अँगुरी पकरि मोरा पहुँचा भी पकरे, काँगना अँगुठी पहिराई।
 नौशा के सँग मोहि कर दीन्ही लाज-सँकोच मिटाई॥
 सोना भी दीन्हा, रूपा भी दीन्हा, बाबुल दिल दरियाई।
 गहेल गहेला डोलति आँगन में, पकरि अचानक बैठाई॥
 बैठत महीन कपरे पहनाए, केसर तिलक लगाई।
 खुसरो चली ससुरारी सजनी, सँग नहीं कोई जाई॥¹

खुसरो के बाबुलगीत दार्शनिक अवसानगीत हैं जिनको बहुत कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। कबीर में इनका विकास तो हुआ है किन्तु दार्शनिक दबाव अधिक आ गया है। दोनों के बाबुलगीत आज तक लोकप्रिय हैं। लोकगीतों से दोनों ने ही प्रेरणा प्राप्त की है। खुसरो का यह बाबुलगीत लोकगीत-प्रेरित ही है :

काहे को बियाहे विदेस
 सुन बाबुल मोरे।
 हम तो बाबुल तोरे बागों की कोयल
 कुहकत घर-घर जाऊँ
 सुन बाबुल मोरे।
 हम तो बाबुल तोरे खेतों की चिड़ियाँ
 चुगगा चुगत उड़ि जाऊँ
 सुन बाबुल मोरे।
 हम तो बाबुल तोरे बेले की कलियाँ
 जो माँगे चली जाऊँ
 सुन बाबुल मोरे।
 हम तो बाबुल तोरे खूँटे की गइयाँ
 जित हाँको हँक जाऊँ
 सुन बाबुल मोरे।
 लाख की बाबुल गुड़िया जो छोड़ी
 छोड़ा सहेलिन का साथ

1. अमीर खुसरो, सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ 121-22।

सुन बाबुल मोरे ।
 महल तले से डोलिया जो निकली
 भाई ने खाई पछाड़
 सुन बाबुल मोरे ।
 आम तले से डोलिया जो निकली
 कोयल ने की है पुकार
 सुन बाबुल मोरे ।
 तू क्यों रोवै है हमरी कोयलिया
 हम तो चले परदेस
 सुन बाबुल मोरे ।
 नंगे पाँव बाबुल भागत आवै
 साजन डोला लिए जायँ
 सुन बाबुल मोरे ।¹

खुसरो के बाबुलगीतों में केवल अवसानगत परमात्म-मिलन अथवा जगत्-वियोग का प्रतीकात्मक दर्शन ही नहीं विवृत होता, तत्कालीन सामाजिक स्थिति एवं प्रथाओं का ज्ञान भी होता है। सौभाग्यवती के अवसान पर उसके शरीर को वस्त्राभरणों से सजाए जाने की प्रथा आज भी प्रचलित है, यद्यपि अब प्रायशः आभूषण उतार लिए जाते हैं। विवाह का निर्णय आज तक पिता करता आ रहा है, यद्यपि अब प्रायशः कन्या को भी महत्त्व प्रदान किया जाता है। डोली तो अब कहीं-कहीं ही चलती है, किन्तु तब वही चलती थी। विदाई में रोना-धोना आज तक चलता आ रहा है, यद्यपि अब कम हो गया है। तब प्रचलित बालविवाह अब नगण्य हो गया है। अतः अब खुसरो के बाबुलगीतों का तत्कालीन समाज-चित्रण की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। कबीर के बाबुलगीत उनके समय का इतना व्यापक चित्र नहीं प्रस्तुत कर पाते, यद्यपि उनमें दार्शनिक वेदना अधिक है।

कव्वाली

खुसरो की इस्लाम-प्रसारक कव्वालियाँ भी आज तक लोकप्रिय हैं। इनका प्रभाव भी कबीर इत्यादि पर पड़ा है। एक उदाहरण:

छापा तिलक तज दीन्हीं रे तोसे नैना मिला के
 प्रेम बटी का मदवा पिला के
 मतवारी कर दीन्हीं रे मोसे नैना मिला के ।
 खुसरो निजाम पे बलि-बलि जइए
 मोहे सुहागन कीन्हीं रे मोसे नैना मिला के ।²

कोई मुसलमान भाई कभी “मक्का मदीना तज दीन्हीं रे तोसे नैना मिला के” या “दाढ़ी सफ़ाचट कीन्हीं रे तोसे नैना मिला के” या “सारी ज़ियारत त्यागी रे तोसे नैना मिला के” तो कह नहीं सकता। दूसरों की कर्मकाण्ड-रूढ़ि-मुक्ति का आह्वान सरल है। 1905 ई. में इकबाल का ‘नया शिवाला’ भी मूर्तियों की व्यर्थता ही बताता है, संगे-असवद की नहीं। खुसरो का उद्देश्य भी हिन्दुओं को मुसलमान बनाना था, जिसके लिए उन्होंने निज़ामुद्दीन की शरण का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रतिपादन किया है। किन्तु वे हिन्दुओं को नरकभय दिखाने वाले जायसी इत्यादि से उदार थे। वस्तुतः वे कबीर से भी अधिक उदार थे क्योंकि उन्होंने राम-कृष्णादि की निन्दा तथा मोहम्मद की ब्रह्मवर्ग प्रतिष्ठा नहीं की। आज भी जायसी, नूरमोहम्मद, अहमद ख़ाँ जैसे कट्टरपंथियों के उत्तराधिकारी विद्यमान हैं; आज भी अमीर खुसरो, अकबर इत्यादि उदारतावादियों के उत्तराधिकारी विद्यमान हैं।

1. अमीर खुसरो, सं. सुदर्शन चोपड़ा, पृष्ठ 49-50।

2. अमीर खुसरो, सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ 126।

निजामुद्दीन इत्यादि औलिया हों या भारत में मोहम्मदीयत के प्रथम सुनियोजित प्रचारक मुईनुद्दीन चिश्ती, कव्वालियों में उनका गुणगान दीन की ओर आकृष्ट करने के लिए ही किया जाता है। खुसरो ने “हज़रत निजामुद्दीन जरज़री-बख्श पीर” से “मन की मुराद पूरी करो अमीर” तक की प्रार्थना इसी दृष्टि से की है। आज के चिश्ती-प्रशंसक कव्वाल उनकी आलौकिक शक्तियों के वर्णन में हिन्दू-राजा को गालियाँ देते हैं। खुसरो ने ऐसा नहीं किया। जड़वादिता एवं कट्टरता के युग में खुसरो की उदारता आज भी असाधारण लगती है। इस दृष्टि से रहीम, रसखान, ताज बेगम, नज़ीर अकबराबादी, सागर निज़ामी इत्यादि उनके उत्तराधिकारी माने जा सकते हैं।

दोहे

खुसरो ने संक्रान्तिकालीन कवियों के दोहा छन्द को तराश कर जो चमक दी है, उसकी मिसाल नहीं। उनके दोहे कबीर, नानक इत्यादि के दोहों से कहीं-अधिक सफल हैं। खुसरो के सूफ़ियाना इश्क़हक़ीकी के रंग से सराबोर दोहों ने कबीर इत्यादि को बहुत प्रभावित किया है। किन्तु अनुभूति की जो ताज़गी और अभिव्यक्ति की जो सफ़ाई खुसरो के दोहों में है वह कबीर इत्यादि के दोहों में नहीं, यद्यपि परिमाण में उनके दोहे बहुत अधिक हैं तथा उनके अद्वैत-दर्शन की गहराई भी बहुत अधिक है :

गोरी सोवै सेज पर मुख पर डारे केस। चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस।।

खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग। तन मेरो मन पीउ को दोउ भए एकरंग।।

चकवा-चकवी दो जने उन्हें न मारे कोय। ओह मारे करतार के रैनबिछोही होय।।

खुसरो और कबीर

खुसरो की गम्भीर हिन्दी-कविता का मुख्य वर्ण्यविषय अवसान है, किन्तु वे निवृत्तिवादी न होकर हैं प्रवृत्तिवादी ही। कबीर की कविता में भी अवसान मुख्य वर्ण्यविषय है, किन्तु वे निवृत्तिवादी अधिकाधिक हैं। अतः कबीर की कविता में ज़िन्दगी की वह ताज़गी नहीं मिलती जो खुसरो की कविता में। कबीर खुसरो से प्रभावित तो हैं किन्तु गहन अद्वैतवादी होने के कारण दार्शनिक अधिक हैं, कवि कम; जबकि खुसरो कवि अधिकाधिक हैं, दार्शनिक कम-से-कम। हिन्दी-कविता की दृष्टि से, गुण एवं परिमाण, प्रेरणा एवं प्रभाव, सभी में कबीर का स्थान खुसरो से उच्चतर है। किन्तु फ़ारसी एवं हिन्दी कविता के समाहार में खुसरो कबीर से बड़े कवि हैं। व्यक्तित्व की दृष्टि से स्वनिर्मित, साहसी, विद्रोही एवं क्रान्तिकारी कबीर परिस्थितिनिर्मित, प्रशस्तिप्रधान, शान्तिप्रिय एवं यथास्थितिवादी खुसरो से श्रेष्ठतर हैं। कृतित्व की दृष्टि से महाकवि-संगीतकार-इतिहासकार इत्यादि खुसरो कबीर से श्रेष्ठतर हैं। मध्यकालीन पुनरुत्थान के उद्घाटक खुसरो थे, विकासक कबीर। दोनों उदार मुसलमान किन्तु खुसरो पहले, कबीर बाद में।

आकलन

हिन्दी-साहित्य के संश्लिष्ट इतिहास की दृष्टि से खुसरो ने अभिव्यक्ति-पक्ष संक्रान्तिकालीन सिद्धों, नाथों, जैनों के काव्यों एवं लोकगीतों से सँवारा तथा अनुभूति-पक्ष सूफ़ी-दर्शन से। सिद्धों की अन्तस्साधना, धर्मचिहनादि-खण्डन प्रभृति से वे कुछ-न-कुछ प्रभावित अवश्य हुए हैं। कविता के अन्त में नाम (छाप) रखने की परिपाटी भी उन्होंने सिद्धों एवं नाथों से ली है। किन्तु अपनी निर्विवाद एवं सरस अनुभूति तथा सरल एवं प्रांजल अभिव्यक्ति में वे भविष्य को प्रभावित करने में अप्रतिम सिद्ध होते हैं। भारतीय संस्कृति, विशेषतः संगीत एवं भारतीय-साहित्य में खुसरो सदैव अजर-अमर रहेंगे। उनकी गणना विश्व की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाशाली विभूतियों में की जाती रहेगी। भारत में सर्वाधिक प्रतिभाशाली मुसलमान के रूप में उनका स्थान विलक्षण है।

दाऊद

हिन्दी-प्रेमाख्यान-परम्परा के आदिकवि दाऊद (1343-1418 ई.) को साहित्येतिहास में एक ऊँचा स्थान प्राप्त है, क्योंकि उनका अवधी विभाषा एवं दोहा-चौपाई छन्दों में रचित प्रबन्धकाव्य ‘चन्दायन’ या ‘लोरिका-चन्दा’ या ‘नूरक-चन्दा’ का कुत्बन (कुतबन),

जायसी, मंझन, उस्मान, नबी, निसार, नूरमोहम्मद इत्यादि सारे सूफ़ी कवियों पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव पड़ा है तथा वे भारतीय पुनरुत्थान के एक प्रतीक भी हैं। यह सत्य है कि तरंगी सुल्तान मोहम्मद बिन-तुग़लक़ (राज्यकाल 1325-1351 ई.) के द्वारा राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद (देवगिरि) ले जाने के कारण विशेषतः दिल्ली-मेरठ इत्यादि की भाषा (जिसे खड़ीबोली कहा जाता रहा है) आन्ध्र, कर्णाटक, महाराष्ट्र इत्यादि में विशेष रूप से फैली तथा इसी सदी (14वीं) में खुसरो ने इसे लोकप्रिय बनाया, वस्तुतः पहले से चलते ढर्रे पर¹ ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, नामदेव इत्यादि ने इसमें काव्यरचना की, किन्तु दाऊद के कारण अवधी-परम्परा विशेष गृहीत हो पाई। डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त ने 'चन्दायन' की भाषा के भोजपुरी बताया है। किन्तु यह वैसा ही है जैसा बाबू जगजीवनराम का रामचरितमानस की भाषा को भोजपुरी मानना था। एकाध विद्वान् इसे राजस्थानी की कृति मानते हैं (यह नहीं बताते कि मेवाती या मारवाड़ी या मेवाड़ी?) किन्तु चन्दायन अवधी-कृति है, जिसे डॉ. माताप्रसाद गुप्त इत्यादि विद्वान् भी मानते हैं तथा जो परम्परा-पुष्ट भी है। स्व. श्री मदनमोहन मिश्र इत्यादि सम्पादित 'भूला जनपद बिखरा इतिहास', अमरबहादुरसिंह 'अमरेश' कृत 'बैसवारे का इतिहास' ग्रन्थ ('रायबरेली के प्रमुख स्थान' लेख भी), डॉ. सूरजप्रसाद शुक्ल कृत 'बैसवारे के हिन्दी-कवि', डॉ. वासुदेवसिंह (हिन्दी-वीर स्व. प्रो. वासुदेवसिंह से भिन्न—यह नेता, मन्त्री इत्यादि रहे) कृत 'बैसवारे का प्राचीन राजनीतिक इतिहास' से 'डिस्ट्रिक्ट गैज़ेटीअर रायबरेली' इत्यादि तक दाऊद को डलमऊ-वासी अवधी-कवि सिद्ध करते हैं। खड़ीबोली-काव्यरचना का इतिहास निस्सन्देह अवधी एवं ब्रजभाषा की काव्यरचना से भी प्राचीन है। खुसरो, नामदेव इत्यादि प्रमाण हैं। बीसवीं सदी में आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने खड़ीबोली को सार्वभौम काव्य-भाषा का रूप दिया।

मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में 'चन्दायन' का उल्लेख मात्र प्राप्त होता है, किन्तु रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में वह भी नदारद है। इस प्रबन्धकाव्य के समुचित अनुसन्धान एवं सम्पादन की दिशाओं में डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. विश्वनाथप्रसाद, डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त, श्री रावत सारस्वत, डॉ. श्यामनोहर पाण्डेय, डॉ. भुवनेश्वरी तिवारी इत्यादि ने प्रशस्य कार्य किया है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'चन्दायन' में कवि-परिचय, भाषा-विवेचन, काव्य-प्रस्तुति, टीका, शब्दकोश इत्यादि सारे अवयव सर्वथा सन्तोषजनक हैं, यद्यपि स्वसम्पादित 'पृथ्वीराजरासउ' एवं 'वीसलदेवरास' की तर्ज़ पर शीर्षक में थोड़ा-सा फेरबदल (चन्दायन) मिलता है जिसके बिना भी काम बखूबी चल सकता है। 'चन्दायन' शुद्ध है : चन्दा का या चन्दा से सम्बद्ध वृत्त। किन्तु 'चन्दायन' प्रचलित है। मैं प्रचलन के आधार पर वीसलदेवरासो, पृथ्वीराजरासो, चन्दायन इत्यादि का विरोध करना व्यर्थ समझता हूँ। जब तक कोई विशेष कारण न हो तब तक प्रचलन से छेड़छाड़ ठीक नहीं। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने कवि के लिए प्रचलित 'मुल्ला' विशेषण के स्थान पर 'मौलाना' का प्रतिपादन किया है जो उचित है किन्तु जिसके बिना भी काम चल सकता है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने दाऊद कृत 'चन्दायन', कुत्बन कृत 'मृगावती', 'जायसी-ग्रन्थावली' ('पदमावत' पृथक् रूप से भी) तथा मंझन कृत 'मधुमालती' के सम्पादनों के कारण सूफ़ी-प्रेमाख्यानकों के सर्वोपरि प्रस्तोता का गौरव प्राप्त कर लिया है। 'प्रस्थान' कहीं नहीं, किन्तु अध्यवसाय धन्य!

डॉ. ज्ञानचन्द्र शर्मा कृत 'चन्दायन का सांस्कृतिक परिवेश', डॉ. श्रीमती शकुन्तला शर्मा कृत 'चान्दायन का लोकतात्त्विक अध्ययन', डॉ. रौशन सईद रिज़वी कृत 'चान्दायन में चित्रित समाज', डॉ. शिवकुमार शांडिल्य कृत 'मौलाना दाऊद कृत चान्दायन की भाषा और बिम्बात्मक संचेतना', डॉ. भुवनेश्वरी तिवारी कृत 'चान्दायन में बैसवारी लोकसंस्कृति' इत्यादि ग्रन्थों ने दाऊद एवं उनकी कृति का महत्त्व स्पष्ट कर दिया है।

डलमऊ-निवास

दाऊद उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद में स्थित डलमऊ (मूलतः दालभ्य ऋषि एवं राजा दल से सम्बद्ध दलमऊ या दलमौ) कस्बे के निवासी थे। 'चन्दायन' में स्पष्ट लिखा है :

दलमौ नयरु बसै नवरंगा । ऊपरि कोटु तले बहै गंगा ।।

धरमी लोगु बसहिं भगवंता । गुनगाहक नागर जसवंता ।।

'दलमौ' अधिक ठीक है क्योंकि राजा दल इसे बसानेवाले माने जाते हैं, किन्तु 'डलमौ' पाठ भी मिलता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि डलमऊ नाम भी पुराना है और दाऊद के समय भी प्रचलित था। 'कोटु' (कोट, किला, गढ़) के स्थान पर 'खोट' पाठ

1. हेमचन्द्र कृत 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के उद्धरण प्रमाण हैं।

भी मिलता है जो ग़लत है किन्तु आज तक कोई-कोई बोल बैठता है। डलमऊ में अनेक कवि हुए हैं। यहाँ निराला की ससुराल थी। 'कुली भाट' यहीं के थे। मैंने यहाँ की सुन्दरता देखी है नौकाविहार या स्नान करते ऊँचाई पर लघुदुर्ग का ध्वंसावशेष दाऊद का स्मरण करा देता है! यहाँ तथा आसपास का वातावरण सदैव काव्यमय रहा है। रायबरेली जनपद में ही जायस भी है जहाँ (सम्भवतः गाज़ीपुर से) आकर मलिक मोहम्मद 'जायसी' बने थे :

जायस नगर धरम अस्थानू।

तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।।

जायस में जायसी के घर का खण्डहर विद्यमान है। यहाँ के लोगों की अटल धारणा है कि नूरमोहम्मद ('इन्द्रावती' एवं 'अनुराग बाँसुरी' के साम्प्रदायिक—वस्तुतः मतान्ध—कवि) भी यहीं के थे। 'भूला जनपद विखरा इतिहास' (प्रधान सम्पादक स्व. मनमोहन मिश्र तथा सम्पादक साहित्यमहोपाध्याय चक्रधर 'नलिन' इत्यादि) शीर्षक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ में नूरमोहम्मद को जायस का ही माना गया है। मेरी समझ में, नूरमोहम्मद की भाषा-शैली इस मान्यता के निकटतर है।

शाहेवक़्त

दाऊद ने शाहेवक़्त के रूप में सुल्तान फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ (राज्यकाल 1351-1388 ई.) का उल्लेख किया है। निस्सन्तान तरंगी सुल्तान मोहम्मद तुग़लक़ के इस चचाज़ात भाई ने प्रतापी या सफल न होने पर भी अपनी मतान्धता के कारण कठमुल्लों में लोकप्रियता प्राप्त की थी : अत्यधिक मतान्ध ज़ियाउद्दीन बरनी (बरन जनपद अलीगढ़ का निवासी होने के कारण—आज भी 'बरनी' मिल जाएँगे) की प्रसिद्ध 'तारीखे-फ़ीरोज़शाही' एवं सामान्य मतान्ध शम्स सिराज़ अफ़्रीक की 'तारीखे-फ़ीरोज़शाही' प्रमाण हैं! दाऊद ने फ़ीरोज़ी और उसके वज़ीर खानजहाँ की भारी प्रशंति करते हुए, खानजहाँ के आश्रित होने के संकेत किए हैं (यद्यपि काव्यारम्भ 781 हिजरी या 1379 ई. में होने से यह स्पष्ट है कि तब तक वह मर चुका था तथा उसका पुत्र जूनाशाह या जौनाशाह पिता के पद पर नियुक्त था जिसका भी उल्लेख विद्यमान है) :

बरस सातसै होए इक्यासी। तिही याह कवि सरस उभासी।।

साहि पिरोज ढीली सुलतानू। जौनासाह इजीरु बखानू।।

दाऊद ने 'चन्दायन' में दिल्ली या देहली या दिहली के लिए 'ढिली' एवं 'ढीलरी' शब्दों के प्रयोग किए हैं, जो पृथ्वीराजरासो के 'ढिल्लिय'¹ एवं जज्जल-कृत हम्मीर-छन्दों (हम्मीररासो?) के 'ढिल्लि'² से मिलते-जुलते हैं तथा उनके काव्य की प्राचीनता के द्योतक हैं। जायसी ने 'पदमावत' (सं. रामचन्द्र शुक्ल) में 'दिल्ली'³ लिखा है। सबलसिंह चौहान ने अपने महाभारत में 'दिली' (नौरंगसाह दिलीपति भारी) का प्रयोग किया है जो मात्राओं की समस्या न होने पर 'दिल्ली' ही होता। सुखदेव मिश्र ने 'फ़ाज़िलअली-प्रकाश' में ऐसा ही किया है (औरंगज़ेब दिलीस)। भूषण ने सर्वत्र 'दिल्ली' का प्रयोग किया है (डूबति है दिल्ली सो बचावै क्यों न दिल्लीपति धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को)। स्पष्ट है, 'दिल्ली' प्रयोग अधिक प्रचलित रहा है किन्तु मुग़लकाल से ही; इसके पूर्व के प्रयोग रासो, चन्दायन इत्यादि में स्पष्टतः प्राप्त होते हैं। उर्दू-शायरों वली, मीर, जौक वगैरह ने 'दिल्ली' का ही प्रयोग किया है। इसी प्रकार दाऊद ने 'हिन्दी' के लिए 'हिन्दुकी' का प्रयोग किया है, जबकि उनके पूर्ववर्ती खुसरो ने 'हिन्दवी' तथा परवर्ती जायसी ने 'हिन्दुई' का। इन सब से बहुत पूर्व काज़ी महमूद बहरी ने 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया था जो 'हिन्द' को देखते ठीक था। परवर्तियों में बाबर ने 'हिन्दुस्तानी' और नूरमोहम्मद ने 'हिन्दी' शब्दों के प्रयोग किए हैं। ये अनेक (पर अर्थ में एक) शब्द हिन्दी की प्राचीनता एवं महत्ता के द्योतक हैं। सुखद-आश्चर्य यह है कि 'हिन्दी' का प्रथम उपलब्ध प्रयोग तमिलनाडु में किया गया और एक मुसलमान द्वारा! आज तमिलनाडु हिन्दी-विरोधी राज्यों में प्रथम है तथा अनेक साम्प्रदायिक मुसलमान भी हिन्दी का विरोध करते हैं! यह भी सर्वथा विलक्षण सत्य है कि कबीर, तुलसी, केशव इत्यादि ने 'हिन्दी' या मिलता-जुलता शब्द कहीं नहीं प्रयुक्त किया—वे केवल 'भाषा' कहते हैं और यह भी हिन्दी की सार्वभौमता का ही द्योतक है! दाऊद ने संस्कृत के लिए 'मनोहर' शब्द का प्रयोग किया है :

1. बिपरित दिन ढिल्लिय सहर....।

2. ढोल्ला मारिय ढिल्लि महँ....।

3. सो दिल्ली अस निबहुर देसू।....

देखी पिरथमी रूप भुलानी ।

मानु मनोहर संकिरित बानी ।।¹

इससे उनकी उदारता तो सिद्ध होती ही है, संस्कृत-ज्ञान की सूचना भी प्राप्त हो जाती है क्योंकि पुनरुत्थानकाल के दाऊद परवर्ती मुसलमान कवि कबीर ने संस्कृत को 'कूप-जल' कहा था जिसका कारण उनकी अनुदारता एवं निरक्षरता रही होगी—आज भी संस्कृत से अनभिज्ञ कई पश्चिमदास संस्कृत को बड़ी ठसक के साथ 'मृतभाषा' (डेड लैंग्वेज) कहकर हीनभाव से ऊपर उठने का आयास करते मिल जाते हैं, जबकि संस्कारों, स्तोत्रों, पाठों, जप-तप, सर्वत्र संस्कृत की विद्यमानता नितान्त स्पष्ट है, भले ही वह प्रचलित लोकभाषा न हो। संस्कृत मृतभाषा नहीं है; हाँ, वह लोकभाषा भी नहीं है।

हिन्दी के सूफ़ी कवियों में दाऊद ने वेद, पुराण, सूर्य, चन्द्र, हनुमान्, कामदेव (मदन), मेरु, वासुकि, विधाता, कर्ण, वररुचि, इत्यादि हिन्दू-तत्त्वों का प्रयोग सर्वाधिक भी किया है, सटीक भी। फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ के साथ उन्होंने हनुमान् को सम्मृक्त कर दिया है जो सुल्तान की महत्वाकाँक्षा-ज्वाला को नियन्त्रित करते हैं, विश्व का कल्याण करते हैं, क्योंकि सन्दर्भ लंका-विजय का लगाया है जिसकी व्यञ्जना राम से तुलना करने की है, जायसी की तरह ग़लती से हनुमान् को शिव के साथ लगा देने की नहीं:

खरग झार लंका लहु जाई ।

हनुवहु संगुसि रहै बुझाई ।।

पृथ्वीराजरासो में पृथ्वीराज के लंका तक जा धमकने और विभीषण से उलझ पड़ने का वर्णन अनायास याद आ जाता है! सम्भव है, दाऊद पर पृथ्वीराजरासो का प्रभाव पड़ा हो? माओ से-तुंग की हनुमान्-पूजा का स्मरण आ जाता है (कवि माओ की 'महाकपिराज' जैसी सुन्दर प्रतीकात्मक कविताओं का स्मरण आ जाता है)! दाऊद ने हिन्दू-पौराणिकता को मुस्लिम-सम्मृक्त कर दिया है।

जन्मतः हिन्दू

अन्तर्साक्ष्य के आधार पर मेरा मत है कि दाऊद जन्म से मुसलमान न थे तथा फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ के समय में जब हिन्दुओं को व्यापक रूप से मुसलमान बनाने का अभियान चला, जिसे जज़िया तथा हिंसा से त्राण के कारण बहुत सफलता प्राप्त हुई, तब मोहम्मदीयत के मिशनरी सूफ़ी शेख जैनुद्दीन द्वारा मुसलमान बनाए गए थे :

सेख जैनदी हौं पथि लावा । धरमु पंथ जेहि पापु गवावा ।।

पापु दीन्ह मैं गौंग बहाई ।² धरमु नाव हौं लीन्ह चढ़ाई ।।

उघरे नैन हिए उजियारे । पायो लिखि नौ अक्खर कारे ।।

जैनुद्दीन ने काले नवाक्षरों "ला इल्लाह इल्लल्लाह मोहम्मदर्सूल अल्लाह" (कलमा) के द्वारा आभ्यन्तर उज्ज्वल कर दिया! डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने नौ का अर्थ संख्यागत लिया है : ल, इ, ह, अ, म, द, उ, र, स—किन्तु नौ से अभिप्राय नव या नवा या नवल भी हो सकता है। जैनुद्दीन भी मुईनुद्दीन चिश्ती (अजमेर), कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी एवं निजामुद्दीन औलिया (दिल्ली) की तरह के कई हिन्दुओं को मुसलमान बनानेवाले प्रचारक-प्रसारक लगते हैं। मुसलमान सूफ़ी फ़कीरों का उद्देश्य हिन्दुओं को चमत्कार-कथाओं इत्यादि के हिन्दुओं के अन्धविश्वास के सहारे मुसलमान बनाना ही रहा है। महमूद गज़नवी, फ़ीरोज़ तुग़लक़, सिकन्दर लोदी, औरंगज़ेब इत्यादि हिन्दुओं के प्रमुख मुसलमान बनानेवाले आततायियों के माध्यम क्रल और जज़िया थे जबकि चिश्ती, काकी, औलिया, ग़ौस³ इत्यादि के माध्यम चमत्कार और मूढ़ताशोषण। दोनों वर्गों का साध्य एक था, साधन भिन्न। मिल्टन ने अपने पूर्वजों को ईसाई न होने के लिए पानी पी-पी कर गालियाँ दी हैं। (उनके दादागुरु दान्ते ने ईसा-पूर्व उत्पन्न या गैरईसाइयों को नरकगामी चित्रित किया है), दाऊद इतने अन्धविश्वासी और जड़बुद्धि तो नहीं हैं किन्तु यह तो मानते ही हैं :

1. नायिका चन्दा का रूप देखकर पृथिवी स्वयं को भूल गई जैसे मनोहर संस्कृत वाणी सुनकर सुधी श्रोता स्वयं को भूल जाता है। उल्लेख विलक्षण है; सम्भवतः उलझी-सी।

2. कुफ़्र त्याग दिया।

3. मंज़न का गुरु मोहम्मद ग़ौस जिसकी क़ब्र ग्वालियर में है। मुझे लगता है जैसे तानसेन की जीभ में जीभ लगाकर ग़ौस ने उन्हें मुसलमान बनाया था (तानसेन की क़ब्र भी ग्वालियर में है) वैसे ही मंज़न को भी। मंज़न हिन्दी के सूफ़ी कवियों में सर्वाधिक उदार हैं। ब्रजरत्नदास ने तो उन्हें हिन्दू ही मान लिया था।

पुरिषु एकु सिरजसि उजियारा। नाउ महंमदु जगतु पियारा।।
जिहि लग सबै पिरथिमी सिरी। औ तिहि नाउ मोनदी फिरी।।
जिहि जिहवा वहु नाउ न लीजा। बरु सिर काटि अग्नि मुख कीजा।।

नरक का भय दिखाकर धर्मपरिवर्तन के हथकण्डे का प्रयोग आज तक होता आ रहा है। एक बार मेरे घर कई अमेरिकी अतिथि आए; एक गोरा, शेष गुजराती। गुजराती माँ ने अपने साथ आए युवा पुत्र की कथा सुनाई—एक गोरी औरत ने उसके बचपन में यह दिमागी फ़ितूर भर दिया कि यदि वह ईसा की शरण में न गया तो मरने के बाद सदा-सर्वथा नरक में पड़ा जलता रहेगा! कोमल बाल-मस्तिष्क में यह बात ऐसी जमी कि वह बार-बार, सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते माँ से पूछता रहता, “माँ, मैं नरक में पड़ा रहूँगा?” माँ ने बहुत समझाया। किन्तु पापियों एवं मूढ़मतियों पर कभी-कभी प्रभाव पड़ जाता है। साम्प्रदायिक जायसी कहते हैं :

जेहि नहिं लीन्ह जनम महँ नाऊँ।

तेहि कहँ कीन्ह नरक महँ ठाऊँ।।

कथावस्तु

वैसे तो खुसरो के अतिरिक्त हिन्दी के सारे मुसलमान सूफ़ी कवि संस्कार, भाषा, शैली इत्यादि सभी दृष्टियों से हिन्दूमूलक लगते हैं, किन्तु दाऊद परवर्ती तानसेन, मंझन, आलम इत्यादि के सदृश स्वयं धर्मान्तरित प्रतीत होते हैं। उन्होंने अहीरों (आभीर नामक पुरानी कठोरकर्मा एवं पशुपालक-पशुपूजक जाति) में आज तक प्रचलित लोरिक¹ और चन्दा की प्रेमकथा को एक सुन्दर प्रबन्धकाव्य में ढाला है। ‘चन्दायन’ में ईरानी मसनवी-शैली एवं भारतीय प्रबन्ध-शैली का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसमें मसनवी के हम्द (अल्लाह-वन्दना), नात (मोहम्मद-स्तुति), मेरात (अबू बक्र, उमर, उस्मान, अली की प्रशस्ति), शाहेवक्त (सामयिक शासक-यशगान), पीर (धर्मगुरु-महिमा), स्वपरिचय इत्यादि तत्त्व भी प्राप्त हैं तथा भारतीय प्रबन्ध के छन्दप्रवाह, कथा-एकतानता इत्यादि भी। इस काव्य में नायिका चन्दा विवाहित है तथा उसका अयोग्य-असमर्थ पति वामन भी विद्यमान है, यद्यपि चन्दा को मातृगृह में रहना पड़ रहा है। बाजुर नाम भिक्षुक के द्वारा चन्दा की रूप-प्रशंसा सुनकर राजपुर-नरेश रूपचन्द गोवर (चन्दा का मूलस्थान : नाम और अहीर-जाति के सर्वथा उपयुक्त) पर आक्रमण कर देता है किन्तु लोरिक या लोर के पराक्रम के कारण चन्दा को प्राप्त करने में असफल होकर भाग खड़ा होता है। विजयोत्सव में लोरिक की गजारूढ़ शोभायात्रा निकाली जाती है, जिसे चन्दा भी देखती है। यहीं से चन्दा के मन में लोरिक के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। उसकी परिचारिका बृहस्पति, इस अनुराग के अनुरूप, उसके पिता से प्रीतिभोज का आयोजन करने को कहती है। प्रीतिभोज में, मैना नामक सुन्दरी का पति होते हुए भी, लोरिक चन्दा को देखकर अभिभूत हो जाता है। बृहस्पति के उभयपक्षीय यत्नों से, अनेक कठिनाइयों के अनन्तर, दोनों मिलते हैं। किन्तु मर्यादा की विवशता के कारण कुछ समय बाद ही दोनों को भागना पड़ता है। इससे पूर्व चन्दा और मैना में विकट द्वन्द्व होता है जिसमें चन्दा निर्वसन कर दी जाती है—भागने का यह कारण तात्कालिक था। रास्ते में वामन से युद्ध होता है। हारने पर वामन शाप देता है कि लोरिक की मृत्यु होगी तथा चन्दा को साँप डसेगा। कलिंग पहुँचने पर वहाँ भी कराधिकारी से युद्ध हुआ जिसमें चन्दा ने भी भाग लिया। यहाँ चन्दा को साँप ने डसा तथा लोरिक ने भी प्राणत्याग का निश्चय किया किन्तु दाह से पूर्व एक गुणी ने आकर बचा लिया। यात्रा हुई। चन्दा पुनः साँप द्वारा डसी और गुणी द्वारा बचाई गई। दोनों हरदी-पाटन पहुँचे तथा वहाँ के राजा द्वारा सम्मानित होकर रहने लगे। इधर, सततरोदित मैना ने सुरजन नामक हरदी-पाटन जाने वाले व्यक्ति से विरह-सन्देश भेजा, जिसके परिणामस्वरूप दोनों गोवर लौटे। चन्दा और मैना में कलह हुई, जिसे लोरिक ने शान्त किया। रात्रि मैना के साथ व्यतीत की। तत्पश्चात् सब घर पहुँचे। लोरिक की माता ने दोनों बहुओं का आदर किया, गीत हुए, बधाये बजे। माता ने लोरिक और चन्दा के जाने के बाद वामन एवं उसके साथियों की भयावह हिंसा का वृत्त सुनाया। और, यहीं काव्य समाप्त हो जाता है। इस प्रकार, उपलब्ध रूप में काव्य, मधुमालती (मंझन) के सदृश, सुखान्त है। किन्तु लोककथा लोरिक के द्वारा प्रतिशेध तक प्रसरित है, जिसके एक क्षेत्रीय रूप में विजयी, दूसरे में मृत तथा तीसरे में विरक्त होकर काशी जाने तथा चारों ओर अग्नि में प्राणत्याग का वर्णन किया गया है। दाऊद ने चन्दायन को सुखान्त रखा है, जैसाकि उपलब्ध रूप से स्पष्ट है। अनेक कथाएँ अनेक ग्रामीण कथाकारों द्वारा प्रचलित की गई लगती हैं।

1. ‘लोरिक’ नामक एक मगही-कवि का उल्लेख ग्रीअर्सन ने ‘द लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया’ में किया है, जिसकी चर्चा मिश्रबन्धु ने ‘विनोद’ में की है।

नायक का बहुविवाह तो पदमावत इत्यादि में भी वर्णित है, किन्तु विवाहित नायिका का पुनर्प्रेम चन्दायन की विशिष्टता है, जो दाऊद ने पूरे औचित्य के साथ प्रस्तुत की है। प्रसाद कृत 'ध्रुवस्वामिनी' का स्मरण आता है। नायिका का नायक की पत्नी से दो बार युद्ध चन्दायन की दूसरी विशिष्टता है। इनमें से प्रथम में वह निर्वसन तक कर दी जाती है। चन्दा की स्थिति में व्यापक मानवीय दृष्टि से भी पुनर्लग्न सर्वथा समीचीन है, प्रगतिशील है।

रहस्य-संकेत

'चन्दायन' में यथार्थ का निर्वाह 'पदमावत', 'मधुमालती' इत्यादि की तुलना में बहुत अधिक सफल है। दाऊद ने स्वाभाविक कथा को बरीयता प्रदान की है, जबकि जायसी इत्यादि ने कुतूहल एवं रहस्य को। चन्दायन में रहस्य-संकेत प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु यह रहस्यवादी कृति नहीं प्रतीत होती। इसके रहस्य-संकेतों के आधार पर इतिहासकार बदायूनी ने 'मुंताखिबुत्तवारीख' में मखदूम शेख तक्रीउद्दीन वाइज़ रब्बानी के द्वारा इसमें ईश्वरीय सत्य एवं संकेत इत्यादि का प्रतिपादन उद्धृत किया है। लोरिक के बारम्बार 'फ़ना' होने में रहस्य-संकेत प्राप्त अवश्य होते हैं :

जउ लहि जीव घट महँहि होई । तउ लहि सरग न आवत कोई ।।
 पिरथिमि मानुस जीउ गँवावइ । तउ पाछें चढ़ि सरगइँ आवइ ।।
 मरि कइ चाँद सरगि हउँ आवा । जउ जिउ होइ डराइ डरावा ।।
 हउँ तउँ मरेउँ जउहिँ तूँ देखी । तोहि देखि धनि भएउँ बिसेखी ।।
 मुएँ जो मारइ सो कस आहा । चाँ! मुएँ कर मारब काहा ।।
 देखि रूप जिउ दीन्हा तउँ आएउँ तोहि पास ।
 रहे नैन जेहिँ देखउँ रहइ जियहूँ लइ सौँस ।।

यह प्रेमतत्त्व कुत्बन, जायसी, मंझन इत्यादि में विरह, दुःख इत्यादि के रूपों में प्राप्त होता है। चन्दा के इस कथन में भी प्रेम के सत्य (हक या हक़ या ईश्वर) का रहस्य-दर्शन होता है जिसका चरम उत्कर्ष जायसी में प्राप्त है, एक भव्य रूप मंझन में, ऐसा ही सामान्य रूप अन्य सूफ़ी कवियों में, और नूरमोहम्मद कृत 'अनुराग-बाँसुरी' तो स्पष्टतः सूफ़ी-दर्शनकाव्य है ही :

सत हि तिरइ सायर महि नावा । बिनु सत बूडइ थाह न पावा ।।
 जेहि सतु होइ सा लागइ तीरा । सत कर हीन बूड मझि नीरा ।।
 सत गुन खँचि तीर लइ आवा । सत छँडे गुन तोरि बहावा ।।
 सत सँभार तउ पावइ थाहा । बिनु सत थाह होइ अवगाहा ।।

इश्क़हक़ीकी के सूफ़ी संकेत 'चन्दायन' में माने जा सकते हैं, किन्तु इसमें इश्क़मज़ाजी की प्रधानता स्पष्ट है। दाऊद ने दिव्यप्रेम, दिव्यविरह, दिव्यमिलन इत्यादि के वैसे वर्णन नहीं किए जैसे सामान्यतः मंझन एवं विशेषतः जायसी ने किए हैं। जायसी ने सूफ़ी-दर्शन को हठयोग से सम्भूक्त कर रहस्यवादी कविता की प्रतीकसम्पन्न एवं कलात्मक सृष्टि की है। दाऊद जायसी के स्तर के महाकवि नहीं हैं। वे मंझन के स्तर के भावुकतर रहस्यसम्पन्न कवि भी नहीं हैं। वे एक सीधे-सादे सूफ़ी कवि हैं जिन्होंने कथा गाई है, जिसमें रहस्य-संकेत अनायास आ गए हैं। 'प्रस्थान' — ग्रन्थकार होने के कारण उन्हें हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक विशेष महत्त्व प्राप्त है।

कुत्बन¹

मुल्ला दाऊद के अनन्तर, सूफ़ी प्रेमाख्यानकारों में शेख कुत्बन (रचनाकाल 1503 ई.)² का विशेष महत्त्व साहित्येतिहास-सिद्ध है, जिसका प्रधान कारण रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में अपनी निर्गुण-धारा की प्रेममार्गी शाखा (सूफ़ी शाखा)

1. कुत्ब का अर्थ है ध्रुव। कुत्बन वैसा ही नाम है जैसा ध्रुवकुमार।

2. मिश्रवन्धु ने विनोद में 'मृगावती' का रचनाकाल 1558 वि. दिया है जिसका अनुकरण करते हुए शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 909 हिजरी का उल्लेख भी कर दिया है किन्तु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामपूजन तिवारी तथा डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने 1503 ई. में लिखा है, जो ठीक लगता है।

के आरम्भ में उन्हें प्रतिष्ठित करना भी है (1929 ई. में प्रकाशित इस इतिहास में दाऊद और 'चन्दायन' का उल्लेख नहीं है, जबकि 1913 ई. में प्रकाशित मिश्रबन्धु के विनोद में, नामनिहाल ही सही, है अवश्य), अन्यथा मिश्रबन्धु ने कुत्बन को 'साधारण श्रेणी' का कवि ठीक ही माना है। 'मृगावती' में, चन्दायन के सदृश ही, नायक राजकुमार नायिका पर प्रत्यक्ष दर्शन के कारण मोहित होता है तथा अनेक संघर्षों (जिसमें उड़ड़यन-विद्या-निष्णात् नायिका का प्रवचन एवं रुक्मिणी से विवाह भी समाहित है) के बाद सफल होता है, पितृसन्देश पर अपने नगर (चन्द्रगिरि) जाता है, दोनों रानियों के साथ सुखपूर्वक रहता है, कालान्तर में आखेट-अभियान में गज-पतित हो दिवंगत होता है तथा दोनों पत्नियाँ सती हो जाती हैं। दाऊद ने चन्दायन को सुखान्त रखा है (यद्यपि प्रक्षेपों ने स्थिति विवादास्पद कर दी है), मंझन ने 'मधुमालती' को सुखान्त रखा है, किन्तु कुत्बन ने मृगावती को दुखान्त रूप प्रदान किया है, जायसी ने पदमावत को दुखान्त रखा है। कुत्बन ने सौन्दर्य-वर्णन एवं रहस्य-संकेत अच्छे किए हैं।

प्रायः सारे सूफ़ी कवियों के सदृश, कुत्बन का उद्देश्य भी हिन्दू-कथामाध्यम से मोहम्मदीयत का प्रचार था, यद्यपि वे जायसी से कम साम्प्रदायिक थे तथा नूरमोहम्मद के सदृश मतान्ध न थे। इस सन्दर्भ में हिन्दी के 'प्रथम' महान् आलोचक मिश्रबन्धु के विनोद में व्यक्त विचार मननीय हैं, "यद्यपि सूफ़ी सन्त मुसलमानीपन को देखते हुए हिन्दू-देवी-देवताओं का उचित से कुछ अधिक ही मान करते हैं; तथापि सूफ़ी-वाद भी, प्रेमपूर्ण रीति से ही सही, भारत में, मुसलमानी मत चलाने के प्रयत्न में, था अवश्य, और यह अवश्य चाहता था कि हिन्दू मुसलमान बनें। प्रेम-गर्भित वचनों के भीतर यह भाव बहुत दिन तक छिपा नहीं रह सकता था, इसी से अन्ततोगत्या हिन्दुओं ने इससे मुख मोड़ लिया। मुसलमान सहिष्णुता के आधिक्य के कारण इसे पसंद न कर सके। अब यह थोड़े-से विद्वानों में केवल साहित्य के नाते पूज्य दृष्टि से देखा जाता है, धार्मिक शिक्षा के रूप में नहीं।"

कुत्बन तत्कालीन प्रसिद्ध सूफ़ी फ़कीर शेख बुरहान चिश्ती के शिष्य थे तथा जौनपुर के इतिहास-विख्यात सुल्तान हुसैनशाह के आश्रित (जैसाकि मिश्रबन्धु एवं, उनके अनुकरण में शुक्ल ने ठीक ही माना है) :

साह हुसैन अहै बड़ राजा। छत्र सिंघासन ताकहँ छाजा।।

पंडित औ बुधिमंत सयाना। पढ़ै पुरान¹ अरथ सब जाना।।

धरम दुदिस्ति² ताकहँ छाजा। हम सिर छाहँ, जियौ जग राजा।।

दान देइ और गनत न आवै। बलि और करन न सरबरि पावै।।³

मिश्रबन्धु ने कुत्बन को "शेरशाह सूर के पिता हुसैनशाह" से जोड़ा है जो ग़लत है, क्योंकि शेरशाह (बाल्यकालीन नाम फ़रीद, सिंह-युद्ध-साफल्यगत यौवनकालीन नाम शेर ख़ाँ तथा सुल्तान बनने पर शेरशाह) बिहार के सासाराम के जागीरदार हसन का पुत्र सूरी जाति का पठान था (जो अन्य पठानों के सदृश हिन्दुओं से मुसलमान बनने पर विवश किए थे जैसाकि ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान की आत्मकथा से स्पष्ट है)⁴, जबकि जौनपुर का सुल्तान हुसैनशाह शर्की पूर्ववर्ती था जो पहले बहलोल लोदी⁵ (मृत्यु 1488 ई.) एवं बाद में उसके बेटे सिकन्दर लोदी (राज्यकाल 1488-1517 ई.) से लड़ा एवं परास्त हुआ था (ऐसा लोदी-आश्रित इतिहासकारों ने लिखा है)। यह भी सम्भव है कि हुसैनशाह पूरी तरह परास्त ही न हुआ हो या फिर उसने फिर-से जौनपुर पर क़ब्ज़ा कर लिया हो। मानसिंह तोमर की अनेक युद्धों के बाद पराजय का जो वृत्त लिखा है, वह भी प्रात्ययिक नहीं है। अधिकांश मुसलमान इतिहासकारों (मिनहाज सिराज, हसन निज़ामी, ज़ियाउद्दीन बरनी, निज़ामुद्दीन, शम्स सिराज, अफ़्रीफ़, एसामी, जानी, बदायूनी, ख़फ़ी ख़ान, अमीर अली, मोहम्मद हबीब, इरफ़ान हबीब—बाबर, अबुल फ़ज़ल, जहाँगीर, मोतामिद ख़ान इत्यादि अपेक्षाकृत अधिक प्रात्ययिक हैं) इत्यादि के विवरण शतशः प्रात्ययिक नहीं हैं, उन्हें वेदकाव्य मानना मूर्खतापूर्ण है यदि अंग्रेज़ एवं भारतीय इतिहासकारों ने हिन्दी-कवियों द्वारा व्यक्त इतिहास का अनशीलन किया होता तो वे पाते कि विद्यापति (कीर्तिलता), तुलसी (कवितावली), भूषण (शिवराजभूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक), लाल कवि (छत्रप्रकाश), सूदन (सुजान चरित्र) इत्यादि अपेक्षाकृत-अधिक वस्तुपरक हैं, जबकि दाऊद (चन्दायन), जायसी (पदमावत

1. जैसे आजकल ईसाई मज़हब के प्रचारक 'बाइबिल' को 'धर्मशास्त्र' का शीर्षक देकर प्रचारित करते हैं वैसे ही मध्यकालीन मोहम्मदी मज़हब प्रचारक सूफ़ी कुरान को पुराण, जन्मत को कैलास (कविलास) इत्यादि कह-लिख कर करते थे।

2. यूधिष्ठिर। सुल्तानों को बढ़ावा देने के लिए धर्मपुरुषों के उदाहरण दिए जाते थे।

3. सुल्तानों के महत्त्व बढ़ाने के लिए पुराणपुरुषों का अवभूत्यन किया जाता था।

4. सूरी हिन्दू-खत्री आज तक विद्यमान हैं। सूर वैदिक-संस्कृत में सूर्य का पर्यायवाची है। सूरी का अर्थ है, सूर्यवंशी।

5. 'लोधी' ज्यादा ठीक होगा। किन्तु अंग्रेज़ों ने लोदी बना दिया। ये 'लोघ' हिन्दू थे जो मुसलमान बनाए गए। लोघ हिन्दू अब भी हैं।

एवं 'आखिरी-कलाम'), मंज़न (मधुमालती), उस्मान (चित्रावली), नूरमोहम्मद (इन्द्रावती) इत्यादि दाऊद ने शाहेवक्त स्तुति में इतिहास का कोई ध्यान नहीं रखा। 'हिन्दी-साहित्य में प्राप्त भारतीय इतिहास' शोध का विषय है।

भारतीय नारी के चरित्र से मुसलमान बहुत प्रभावित हुए थे, क्योंकि उनके सामाजिक संव्यूहन में पतिव्रत के दर्शन दुर्लभ थे। मोहम्मदी कविता में पतिव्रत, एकपत्नीव्रत इत्यादि के वर्णन नहीं मिलते। जहाँगीर ने 'तुजुके-जहाँगीरी' में साफ़-साफ़ लिखा है कि मुसलमान औरतों के चरित्र हिन्दू औरतों के जैसे नहीं होते। सती ने इब्नेबतूता, जायसी इत्यादि के सदृश ही कुत्बन को बहुत प्रभावित किया था¹ :

रुक्मिणि पुनि वैसहि मरि गई। कुलवंती सत सों सति भई ।।

बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर को रहै न जोई ।।

बिधि कर चरित न जानै आनू। जो सिरजा सो जाहि निआनू ।।

कोई ज़बर्दस्ती न ढूँढ़े तो, सती-प्रथा का विशेष उल्लेख वैदिककाल (चाहे पूर्ववैदिककाल हो या उत्तरवैदिककाल जिसे महाकाव्यकाल या रामायण-महाभारत-काल भी कहा जाता है), बौद्धकाल, मौर्यकाल, शुंगकाल, गुप्तकाल इत्यादि में नहीं मिलेगा। वर्द्धनकाल में भी राज्यश्री का उदाहरण पराजय एवं निराशा से पूर्ण है, सती-प्रथा का निदर्शन नहीं (राज्यश्री का विधवा-जीवन ही प्रमाण है)। सती-प्रथा एवं जौहर-प्रथा राजपूतकाल एवं मुसलमान-काल में इसलिए चल पड़ीं कि ये दोनों शासक-वर्ग नारी-लोभी एवं नारी-अनाचारकारी थे; राजपूत नारी को बलात् ब्याहते ही थे पर मुसलमान उसे लूटते और दासी बनाते थे—उसको धर्म त्यागकर मज़हब अपनाने पर विवश करते थे (गोमांस खिलाने की प्रथा आज तक प्रचलित है)। सती-प्रथा भयानक है। सती-प्रथा का दुरुपयोग नारी-दाह के रूप में भी होने लगा। जहाँगीर ने इसका निषेध किया, लॉर्ड विलिअम वेंटिक ने इसे मिटा-सा दिया, राजीव ने इसके निर्मूल हेतु कड़ा कानून बनाया—यह सब ठीक है, क्योंकि अकारणप्राय आत्महत्या उचित नहीं तथा हत्या अपराध है। किन्तु अतीत पर आधुनिकता को लादना अनुचित है।

जायसी

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ सूफ़ी कवि मलिक मोहम्मद जायसी (1492-1542 ई.)² को जायस (रायबरेली जनपद) के निवासी जायस में ही जन्मा मानते हैं किन्तु "जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।।" (पदमावत) एवं "तहाँ दिवस दस पहुने आएँ।" (आखिरी कलाम) के सुस्पष्ट अन्तर्साक्ष्य जायस को उनका काव्यरचनास्थान एवं वासस्थान ही सिद्ध करते हैं। महाकवियों एवं सन्तों इत्यादि के जन्मस्थानों पर अनेक दावे लोकेषणा की दृष्टि से स्वाभाविक हैं। तुलसी इत्यादि के अनेक जन्मस्थान इस तथ्य के ही प्रतीक हैं। पर निश्चित नहीं कि जायसी का जन्मस्थान कहाँ है, किन्तु गाज़ीपुर माननेवाले भी कम नहीं हैं। यदि कोई कहे कि जायसी शब्द जन्मस्थान-सूचक है तो अमीर खुसरो देहलवी का जन्मस्थान भी दिल्ली होना चाहिए (कई विद्वानों ने ऐसा माना भी है) जबकि प्रायः सर्वमान्य रूप से यह गौरव पटियाली (एटा जनपद) को प्राप्त है। निस्सन्देह, जायसी जायस के निवासी थे किन्तु वह उनका जन्मस्थान न था। दौलतपुर (रायबरेली जनपद) के निवासी पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र (जन्मस्थान कम्पिला, वर्तमान, फ़र्रुखाबाद जनपद) के सदृश जायस (रायबरेली जनपद ही) के निवासी मलिक मोहम्मद (जन्मस्थान गाज़ीपुर जनपद प्रवासी विभूति ही थे। ऐसा लगता है कि काले चेचक-दागवाले एकश्रवण-एकनयन ("मुहम्मद बाई दिसि तजा यक सरवन यक आँखि") फ़क़ीर के रूप में मोहम्मद नामक अल्पशिक्षित कवि जायस में आ बसे, क्योंकि वहाँ मुसलमानों की आबादी अच्छी-खासी थी (अब भी है)। सम्भवतः यहाँ उन्होंने विवाह भी किया, यद्यपि परिवार घरगिरी में जाता रहा। फ़क़ीर और सूफ़ी (ग्रीअर्सन और शुक्ल इत्यादि भी मानते हैं) कवि के रूप में उनकी ख्याति से परम्परा से ही गुणग्राहक अमेठी के राजवंश के तत्कालीन राजा रामसिंह प्रभावित हुए। जायसी अमेठी के दुर्ग के निकट ही रहने लगे जहाँ सम्भवतः किसी लक्ष्यभ्रष्ट आखेटक के कारण अकालमृत्यु के ग्रास बने। अमेठी-राजपरिवार से परिचित तथा पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र के समकालीन अमेठी-नरेश हिम्मतसिंह के गुरु होने के कारण उभय-वंशज-परम्परा

1. यह तथ्य भी विलक्षण है कि हिन्दुओं ने सती-प्रथा-स्तुति नहीं की। प्रेमचन्द की 'सती' कहानी जैसे एकाध साधारण निदर्शन मात्र हैं।

1. (क) भा औतार मोर नौ सदी ।" (अन्तर्साक्ष्य)

(ख) नवाब शुजाउद्दौला द्वारा सम्मानित क्राज़ी मसरुद्दीन हुसैन जायसी के पुराने प्रमाण के आधार पर 4 रजब 949 हिजरी। सुपुष्ट बहिसाक्ष्य।

में समादृत लखनऊ के प्राचार्य डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र (अनेकानेक उपयोगी ग्रन्थों के प्रस्तोता डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र से भिन्न) ने मुझे बताया था कि जायसी की हत्या की गई थी क्योंकि वे बहुत कट्टर मुसलमान थे तथा संयोगात् राजा रामसिंह उनकी दुवा से पुत्रवान होने के अंधविश्वास के अभिभूत हो गए थे जिसके परिणामस्वरूप परिवार की धर्मरक्षा के हेतु किसी राजपुरुष ने ही उन्हें मार दिया था। कबीर के सदृश ही, जायसी भी दीर्घजीवी नहीं थे। 'पदमावत' के उपसंहार में बुढ़ापे के वर्णन को उनका बुढ़ापा मानना निराधार है क्योंकि एक तो यह स्पष्टतः प्रक्षिप्त¹ है जैसाकि भाषा से स्पष्ट है, दूसरे शंकराचार्य ("अंगं गलितं पलितं मुण्डं" इत्यादि) तक अनेक अवृद्धों ने वृद्धावस्था के वर्णन किए हैं। उनकी कब्र अमेठी से कोई एक किलोमीटर की दूरी पर अब भी विद्यमान है। जायसी औलिया-सम्प्रदाय के सूफी थे। "सैयद असरफ पी पियारा" के अन्तर्साक्ष के अनुसार वे दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया (देहान्त 1325 ई.) की मानिकपुर-कालपी वाली शिष्य-परम्परा के उत्तराधिकारी सैयद अशरफ जहाँगीर के मुरीद थे। किन्तु उन पर अद्वैतवाद एवं हठयोग का भारी प्रभाव भी पड़ा था, जैसाकि पदमावत में पद-पद पर दृष्टिगोचर होता है। सूफी-दर्शन अद्वैतवाद का ही प्रतिफलन है जैसाकि याज्ञवल्क्य के "अहं ब्रह्मास्मि" के मंसूर द्वारा "अनलहक" शब्दानुवाद से ही स्पष्ट है। मिश्रबन्धु ने लिखा है, "जायसी की कथा में सूफी-रहस्यवाद के अद्वैत सिद्धान्त भी मिले हुए हैं।" यद्यपि जायसी के लिखे अनेक ग्रन्थों की चर्चा की जाती है, जिनमें 'आखिरी कलाम', 'अखरावट', 'कान्हावत', 'मसलानामा', 'कहरानामा' या 'कहरनामा' एवं 'चित्ररेखा' को उल्लेखनीय माना जा सकता है, तथापि उनकी उत्कृष्ट कृति एकमात्र 'पदमावत' ही है, जिसकी रचना का आरम्भ उन्होंने 1520 ई. ("सन् नौ सै सताइस अहा") में किया तथा समापन 1540 ई. ("सेरसाह दिल्ली सुलतानू") के आसपास। फ़कीरी ज़िन्दगी के आरम्भ में उन्होंने साम्प्रदायिक 'अखरावट' एवं 'आखिरी कलाम' इत्यादि रचनाएँ पूरी कीं किन्तु 'पदमावत' में भी जोड़-तोड़ करते रहे जिसे अमेठी के सुविधापूर्ण आवासकाल में पूर्ण कर सकना स्वाभाविक था। 'पदमावत' से उन्हें ख्याति प्राप्त हुई। सुदूर पूर्व में अराकान राज्य के मन्त्री मगन ठाकुर ने 'आलो-उजालो' शीर्षक से 1650 ई. के लगभग इसका बांग्ला-अनुवाद किया। जायसी पर चमत्कारों की कथाएँ प्रचलित हो गईं। (वैसे, शिरेफ़, विजयदेवनारायण साही, डॉ. विजयशंकर मिश्र उन्हें सूफी फ़कीर नहीं मानते) उनका विग्रह-परिवर्तन (सिंहादि-रूपान्तर, जिसमें वे आखेट बने) तक विश्वसनीय माना गया। शेरशाह से उनके परिचय की कल्पना की गई। किन्तु हिन्दी-काव्यरसिकों ने उनकी गल्पवृत्ति पर कोई विशेष ध्यान न दिया। मुद्रण-सुविधा के अनन्तर, 'पदमावत' की प्रस्तुति का आरम्भ पहले नवलकिशोर प्रेस, तब पण्डित रामजसन मिश्र एवं तब पण्डित सुधाकर द्विवेदी के द्वारा हुआ, यद्यपि वह नितान्त असन्तोषजनक था। मिश्रबन्धु ने अपने 'विनोद' में सूफी-दर्शन एवं सूफी-कवियों एवं जायसी पर पर्याप्त प्रकाश डाला, जिसके आधार पर पल्लवन-पुष्पन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के द्वारा हुआ, जिनकी 'जायसी-ग्रन्थावली' में 'पदमावत', 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' की विद्वत्तापूर्ण एवं स्फीत भूमिका-निष्पन्न प्रस्तुति ने वस्तुतः एवं तत्त्वतः 'प्रस्थान' का कार्य सम्पादित किया। आचार्य शुक्ल जायसी के प्रतिष्ठापक-आलोचक हैं। जायसी की आलोचना को आधुनिक रूप विजयदेवनारायण साही ने दिया, किन्तु आचार्य शुक्ल का आतंक इतना विराट् रहा है कि स्तुति से वे भी नहीं बच पाए। डॉ. विजयशंकर मिश्र ने 'जायसी के अभिप्रेत आशय' में वस्तुपरक एवं मौलिक आलोचना करते हुए उनके शत-प्रति-शत मध्यकालीन दृष्टिकोण में बद्ध होने के सत्य को विदग्धतापूर्वक उजागर किया है। लगभग पौने चार-सौ वर्षों की साहित्यिक उपेक्षा के अनन्तर जायसी को न्याय प्रदान करके आचार्य शुक्ल ने अपनी अमरता में 'प्रस्थान'—श्रीवृद्धि भी की! अब तो जायसी के कतिपय अन्य काव्य भी उपलब्ध हैं। आचार्य शुक्ल की त्रुटियों का परिहार करते हुए 'पदमावत' की सटीक प्रस्तुति करने वाले सुविख्यात् विद्वान् स्वर्गीय वासुदेवशरण अग्रवाल का नाम भी जायसी एवं शुक्ल के साथ "वागर्थविव सम्पृक्त" हो चुका है।

पदमावत

'पदमावत' महाकाव्य में चित्तौड़ के राणा रत्नसेन (रतनसेन, रतनसी, रतनसिंह) की रूपवती रानी पद्मिनी या पद्मावती एवं रूपलुब्ध सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी की कल्पित लोककथा को सूफी-प्रतीकपद्धति एवं हठयोग-संकेतशैली से सम्पृक्त कर इतने सरल

1. "मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा" के आरम्भिक शब्द ही इस उपसंहार को प्रक्षिप्त सिद्ध करते हैं क्योंकि कवि अपनी रचना का अर्थ विद्वानों से पूछे, यह सम्भव नहीं—दूसरे ही कवि से उसकी कविता का अर्थ पूछते हैं। यह 'उपसंहार' किसी सुयोग्य अनुकृतिकर्ता ने जोड़ा है, यह आदि से अन्त तक स्पष्ट है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त जैसे गम्भीर शोध-पंडित एवं 'जायसी' ग्रन्थ के प्रणेता विजयदेवनारायण साही प्रभृति भी इसे प्रक्षिप्त मानते हैं। 'जायसी' के अभिप्रेत आशय (1996 ई.) में डॉ. विजयशंकर मिश्र ने इस बिन्दु पर व्यापक प्रकाश डाला है (जबलपुर विश्वविद्यालय के डॉ. राजकुमार के अनुसार डॉ. मिश्र की स्थापनाएँ 'मौलिक' हैं)।

एवं मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है कि जायसी पंजाबी की प्रसिद्ध प्रेमकथा 'हीर-राँझा' के प्रस्तोता वारिसशाह इत्यादि से आगे बढ़कर फ़ारसी के खमी हाफ़िज़, खुसरो जन्म 1208 ई. इत्यादि के स्तर के महाकवि प्रमाणित हो जाते हैं। हिन्दी के प्रमुख सूफ़ी कवि मुल्ला दाऊद, कुतबन, मंज़न, उस्मान एवं नूरमोहम्मद जायसी की समता कथा-शिल्प, भाषा, अलंकरण इत्यादि से लेकर प्रतीक, प्रतिपाद्य (दर्शन), रस इत्यादि को किसी भी दृष्टि से नहीं कर पाते। जायसी विश्व के श्रेष्ठतम सूफ़ी कवियों में एक हैं।

सोमवार, 26 अगस्त, 1303 ई. में एक लम्बे घेरे और संघर्ष के बाद अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ जीता और उसको अपने बड़े बेटे खिज़्रख़ाँ के नाम पर खिज़्राबाद बनाया। यह चित्तौड़ का प्रथम पतन था। कालान्तर में गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने 1532 ई. तथा अकबर ने 1568 ई. में चित्तौड़ को पुनः ध्वस्त किया। तीन-तीन पतनों के बावजूद चित्तौड़ अजेय ही रहा :

आज भी चित्तौड़ का सुन नाम कुछ जादू भरा,
चमक जाती चंचला-सी चित्त में करके त्वरा।¹

अमीर खुसरो ने 'नुह सिपहर' में लिखा है कि वे ("सुल्तान का गुलाम") अलाउद्दीन के साथ थे। उन्होंने इस युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है। इसमें तीस हजार हिन्दुओं का नृशंस संहार किया गया। किन्तु खुसरो (जिन्होंने 'दिवलरानी खिज़्रख़ाँ' शीर्षक फ़ारसी-मसनवी भी लिखी है तथा जो 'शीरी-खुसरू' जैसे अन्य फ़ारसी-मसनवियों के महाकवि भी हैं) कहीं भी पद्मिनी-प्रकरण का उल्लेख तक नहीं करते। यदि पद्मिनी-प्रकरण सत्य होता तो वे मसनवी ज़रूर लिखते। इतिहास के शास्त्रीय निष्कर्ष पर पद्मिनी-प्रकरण खरा नहीं उतरता। प्रो. कानूनगो जैसे इतिहासकार तथा स्व. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, स्व. विजयदेवनारायण साही, डॉ. विजयशंकर मिश्र जैसे साहित्यकार एवं शोधविद्वान् पद्मिनी-प्रकरण को ठीक ही कपोल-कल्पित मानते हैं। डॉ. ईश्वरीप्रसाद जैसे इतिहासकार पद्मिनी-अलाउद्दीन-प्रकरण को विवादास्पद बताते हैं किन्तु यह सिद्ध न करते हुए कि विवादास्पद क्यों और कैसे? अतः यह द्विविधा निराधार है। भारतीय इतिहास के सर्वश्रेष्ठ, स्फ़ीत एवं समादृत ग्रन्थ 'एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया' (प्रो. रमेशचन्द्र मजूमदार एवं अन्य) में अलाउद्दीन खिलजी के पद्मिनी के प्रति आसक्त होने के वृत्त की किसी समसामयिक ग्रन्थ या अभिलेख में न होने की स्पष्ट उल्लेख भी इसे निराधार सिद्ध करता है। साम्यवादी इतिहास-पाठ्यपुस्तक-प्रस्तोता (रोमिला थापर इत्यादि) तक इन्हीं आधारों पर पद्मिनी-प्रकरण को अनैतिहासिक बताते हैं। व्यक्तिगत रूप से मैं भी पद्मिनी-प्रकरण को कथा मात्र मानता रहा हूँ, ऐतिहासिक घटना नहीं। किन्तु यह कथा इतनी प्रसिद्ध है कि फ़रिश्ता और टॉड जैसे इतिहासकारों ने इसे इतिहासगत रूप प्रदान किया। हिन्दी के आचार्य शुक्ल इत्यादि ने भी इसे ऐतिहासिक माना है। चित्तौड़ के दुर्ग में पद्मिनी-महल आज भी विद्यमान है, जिसे एक छोटा-सा जलमहल भी कहा जा सकता है। महल की जलसीमा पर ऐन सामने एक ऐसा कक्ष है जिसमें बड़े-बड़े दर्पण लगे हैं। कहते हैं, पद्मिनी ने अपने महल की एक जलाशय-सम्बद्ध सीढ़ी पर पैरा रखा, जिससे अलाउद्दीन खिलजी की पारवाले कक्ष में दर्पण पर देखने की माँग पूरी हो सके तथा वह लौट जाए²। मैंने भी यह-सब देखा है। किन्तु महल सात सौ साल पुराना नहीं लगता। उसका पलस्तर तो मध्यकालीन तक नहीं प्रतीत होता। दर्पण इत्यादि भी पुराने नहीं हैं। दर्पण या आदर्श पहले धातुनिर्मित होते थे। शीशा परवर्ती आविष्कार है, जो भारत में, मेरी समझ में, जहाँगीर के समय आया। दूसरे, पद्मिनी उस समय आठ सन्तानों की माता एवं लगभग प्रौढ़ भी थीं। वैसे, जहाँगीर ने पैंतीस साल की सन्तानोवाली प्रौढ़ा नूरजहाँ को हड़पा था। किन्तु वह कामुक उस पर पूर्वानुरक्त था। ऐसा प्रतीत होता है कि पद्मिनी की रूपकथा को चारणों इत्यादि ने युद्ध से सम्बद्ध कर दिया तथा जायसी ने 'प्रेम एवं युद्ध' की लोकप्रिय 'वस्तु' को 'रस' का रूप दे डाला, जिसे फ़रिश्ता ने ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया। तब से यह 'कथा' ही 'इतिहास' बन गई। शताब्दियों का 'पृथ्वीराजरासो' की 'कथा' भी 'इतिहास' बनी रही थी—जनता में आज तक बनी हुई है! मुसलमान इतिहासकारों के अधिकांश वृत्त एकांगी हैं, अनेक निराधार। फिर, ज़ियाउद्दीन बरनी इत्यादि धर्मान्ध इतिहासकारों के सदृश फ़रिश्ता जैसे गप्पी इतिहासकार तो न्यूनतम प्रात्ययिक ही हैं। अलाउद्दीन खिलजी ने खिज़्राबाद को खिज़्रख़ाँ के हवाले किया। किन्तु 1311 ई. में ही राजपूतों ने उसे वहाँ से पलायन के लिए विवश किया। सुल्तान ने मालदेव³ नामक एक राजपूत सरदार को शासक बनाया किन्तु राणा हम्पीर⁴ ने छल-बल से इसे मुक्त करा लिया।

1. मैथिलीशरण गुप्त।

2. अलाउद्दीन खिलजी अतिकामुक था, जिसकी अनेक नर-नारी पत्नियाँ थीं (जिनमें एक दक्षिण-विजेता मलिक काफ़ूर भी था) तथा हरम में हिन्दू रानियों को बेगम बनाना उसी ने आरम्भ किया था (गुजरात के कर्णदेव की रानी कमलावती प्रसिद्ध हैं ही)।

3. परवर्ती जोधपुर-नरेश मालदेव से स्पष्टतः भिन्न (जिन्हें शेरशाह ने छल से 1544 ई. में हराया)।

4. रणथम्भीर के हम्पीर से स्पष्टतः भिन्न (जिन्होंने 1301 ई. में अलाउद्दीन खिलजी से हुए युद्ध में वीरगति प्राप्त की)।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य कोश' (भाग 2) में सन्तकाव्य एवं सूफ़ीकाव्य के अधिकारी विद्वान् आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का एतद्विषयक विवरण पठनीय है, "....राणा रत्नसिंह की कोई रानी वास्तव में पद्मावती नाम की थी या नहीं तथा उसकी कोई छाया दर्पण में देखकर अलाउद्दीन उस पर विशेष रूप से आसक्त हुआ, उसने राणा रत्नसिंह को बन्दी बनाया और उसे छुड़ाने के लिए डोलियाँ भेजी गईं या नहीं, जैसे प्रश्नों के उत्तर विशुद्ध इतिहास देता हुआ नहीं दीख पड़ता और इसके लिए केवल अनुश्रुतियों का ही सहारा लेना पड़ता है।इसमें सन्देह नहीं कि इसकी मूल कथा का कोई-न-कोई अंश, चाहे वह जिस किसी भी रूप में रहा हो, जायसी के पहले से विद्यमान था और उसके द्वारा भारतीय वीरों के आत्मत्याग एवं क्षत्राणियों की सतीत्व-रक्षा जैसे महान् आदर्शों को उदाहृत करने वाले साहित्य का सृजन भी होता आ रहा था। जायसी ने उसका 'पद्मावत' के लिए उपयोग करते समय स्वभावतः अपने सूफ़ी मन्त्रव्यों तथा 'मज़हबे-इस्लाम' की प्रतिष्ठा की ओर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक समझा और तदनुसार इसमें अनेक ऐसी बातों का भी समावेश कर दिया, जो काव्योचित कल्पना की दृष्टि से अस्वीकार्य नहीं हैं। कम-से-कम इसके कथानक को लेकर तथा इसके अनेक अंशों को न्यूनाधिक महत्त्व देते हुए जायसी के अनन्तर कई कवियों ने रचनाएँ प्रस्तुत कीं तथा बहुतों ने 'पद्मावत' से प्रभावित होकर इसके अन्य भाषाओं में सुन्दर अनुवाद कर डाले। ऐसे अनुवादकों अथवा इसकी कथा के आधार पर प्रायः स्वतन्त्र ढंग से लिखने वालों में कई नाम लिए जा सकते हैं, जैसे फ़ारसी-पद्य में 'पद्मावत' (1028 हि.-1618 ई.) का रचयिता अब्दुशकूर 'बज़्मी' और 'शमा-परवाना' (1069 हि.-1658 ई.) का कवि आक़िल ख़ाँ 'राज़ी' तथा फ़ारसी-गद्य में इस विषय पर सन् 1595 ई. में लिखनेवाला राय गोविन्द मुंशी, पश्तो कवि इब्राहिम, उर्दू 'पद्मावत' (1091 हि.-1679 ई.) का कवि गुलाम अली और 'रतन-पदम' का रचयिता अली वेल्लोरी तथा बंगला में 'पद्मावती' उपाख्यान (सन् 1858 ई.) का रचयिता रंगलाल वंद्योपाध्याय आदि। इस अन्तिम रचना के अन्तर्गत उक्त कथा के गोरा-बादल वाले युद्ध के प्रकरण को ही विशेष महत्त्व देते हुए उसमें राष्ट्रीयता के भाव भरने की चेष्टा की गई है। हिन्दी के हेमरतन, लब्धोदय एवं जटमल नाहर जैसे कई कवियों ने भी विशेषकर इस अंश को अधिक महत्त्व दिया है और उनकी रचनाओं पर विचार करने पर हमें ऐसा लगता है कि ये सभी लोग सम्भवतः किसी लोकप्रिय अनुश्रुति का अनुसरण करते आ रहे हैं किन्तु जायसी ने इसके साथ ही पद्मावती वाले प्रसंग का चित्रण ऐसे ढंग से कर दिया है, जिसके अनुसार वह प्रचलित लोकगाथाओं वाली सिंहल की पदमिनी भी बन जाती हैं और उसके लिए हीरामन तोता, अपार समुद्र और विकट यात्रादि तक को भी लाना पड़ जाता है।"

सृजनोद्देश्य : मोहम्मदीयत² का उत्कर्ष

मोहम्मदीयत का आधार शक्ति रही है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसने अन्य चार-माध्यमों का प्रयोग ही नहीं किया—'जज़िया' करोड़ों व्यक्तियों को मुसलमान बनने के लिए विवश कर चुका है, लाखों नर-नारी 'शादी' के बहाने मुसलमान बनाए गए हैं, और सूफ़ी तथा अन्य फ़कीरों ने तन्त्र-मन्त्र के बल पर लाखों को (जन्त का लालच देकर) मुसलमान बनाया है। अजमेर के मुईनुद्दीन ने बहुत-से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था। इनसे सम्बन्धित कव्यालियों में यत्र-तत्र हिन्दू, स्थानीय राजा एवं हिन्दू धर्म का विरोध स्पष्टतः श्रुतिगोचर होता रहता है। चिश्ती से सम्बद्ध कव्यालियों में अजमेर के हिन्दू-राजा का अपमान एक विशेष तथ्य है। दिल्ली के निज़ामुद्दीन औलिया बाक़ायदा मुसलमान बनाते थे जो उन पर रचित पुराने ग्रन्थों में उल्लिखित है। जायसी औलिया की शिष्य-परम्परा में कालपी वाली गद्दी से जुड़े हुए थे जैसा कि "आखिरी कलाम" में लिखा भी है तथा परम्परा से भी प्रसिद्ध है। जायसी की काव्यरचना का उद्देश्य मोहम्मदीयत का प्रचार-प्रसार एवं उत्कर्ष था जो उसकी कृतियों में वारम्बार स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी की उदारता की जो चर्चा की है, वह वस्तुपरक नहीं है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने जायसी के 'पद्मावत' में स्वमत उन्नयन का उद्देश्य स्वीकार किया है। मिश्रबन्धु ने कुत्बन के सन्दर्भ में निखते हुए स्पष्ट किया है कि सारी सूफ़ी-काव्य-रचना का उद्देश्य मोहम्मदीयत का प्रसार था। इसका यह अर्थ नहीं कि सारे सूफ़ी कवि कट्टर मुसलमान ही थे। मुल्ला दाऊद, मंझन, उस्मान इत्यादि इस्लाम में जितनी उदारता सम्भव है, उतने उदार अवश्य हैं—मंझन तो उदारता के एक मानवीकरण ही हैं। जायसी न मंझन के सदृश विशेष उदार थे, न नूरमोहम्मद के सदृश घोर धर्मान्ध। आचार्य शुक्ल की जायसी-प्रशंसा उस सहस्राब्दि-प्रसरित भावना की उद्भूति है जिसके कारण किसी मुसलमान द्वारा हिन्दुस्तान की प्रशंसा या हिन्दी में ग्रन्थरचना या भारतीय कथानक का प्रयोग ही अभिभूतकारी बन जाता है। 712 ई. में मोहम्मद बिन-कासिम की सिन्ध-विजय, 1000 ई. के असापास सुबुक्तगीन एवं महमूद गज़नवी

1. इस समय उर्दू का अस्तित्व न था। उर्दू अठारहवीं सदी (ई.) में जन्मी।

2. प्रबुद्ध पश्चिम वस्तुपरक आधार पर मोहम्मदनिज़ाम कहता है, शान्ति या सलाम का मज़हब (इस्लाम) नहीं।

की विजयों का तौता, 1192 ई. में मोहम्मद गोरी के दिल्ली पर अधिकार इत्यादि से लेकर 1947 ई. में अंग्रेजों द्वारा दी गई 'विभक्त स्वतन्त्रता' तक का इतिहास इसी भावना को स्वाभाविक भी सिद्ध कर सकता है। सत्ता एवं शक्ति का प्रभाव गहनतम होता है—भय, सेवा, पुरस्कार, सम्मान इत्यादि के असंख्य तत्त्व उसे नस-नस तक फैला देते हैं। कई लोग "नमक तुम्हारे हमने खाये सो हाड़न में गयो समाय" के समर्थक होते हैं। उदारता तथा 'महारानी' (विक्टोरिया) की तारीफ़ बहुतांश को प्रशंस्य नहीं लगती किन्तु शासक-स्तुति की प्रवृत्ति की सूचक अवश्य है। आज भी अतीत-प्रभाव के अनेक 'प्रतीक' फ़ारसी की चर्चा होते ही गद्गद् हो जाते हैं और उर्दू की तारीफ़ करते समय विह्वल। "यथा राजा तथा प्रजा" का उदाहरण महाराजा प्रतापसिंह के समय कश्मीर के मुसलमानों द्वारा सामूहिक रूप से हिन्दू बनने के आग्रह¹ में भी प्राप्त होता है (काशी के पोंगा पण्डितों ने इन बिछुड़े भाइयों को मिलने न देकर मानवता के साथ अन्याय किया, हिन्दूधर्म के साथ विश्वासघात किया)। जब अपनी राष्ट्रीय विपत्ति पर रोमन्स आज के ग्रेट ब्रिटेन से स्वदेश जाने लगे तब द्वीपवासियों ने प्रार्थना की थी कि वे ऐसा करके उन्हें अनाथ न बनाएँ।

सूफ़ी कवि हिन्दू-वृत्तों के माध्यम से मोहम्मदीयत का प्रचार-प्रसार एवं वर्चस्व-प्रतिपादन किया करते थे, जिनमें जायसी भी एक थे; कुछ उद्धरणों से यह बिन्दु निर्विवादतः स्पष्ट हो जाएगा :

1. सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू²। कीन्हेसि तेहि पिरीति कैलासू³॥
2. कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनौ-करा॥
प्रथम जोति विधि ताकर साजी। औ तेहि प्रीति सिहिरि उपराजी॥
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा। भा निरमल जग, मारग चीन्हा॥
जौ न होत अस पुरुष उजारा। सूझि न परत पंथ अंधियारा॥
दूसरे ठाँवँ दैव वै लिखे। भए धरमी जे पाढ़त सिखे॥
जेहि नहिं लीन्ह जनम भरि नाऊँ। ता कहँ कीन्ह नरक मँह ठाऊँ॥⁴
3. हिन्दू देव काह बर खौंचा? सरगहु अब न सूर सौं बाँचा॥
एहि जग आगि जो भरि मुख लीन्हा। सो सँग आगि दुहूँ जग कीन्हाँ॥⁵
4. हिन्दुन्ह केर पतँग कै लेखा। दौरि परहिं आगिनी जहँ देखा॥....
दीन्ह साह हँसि बीरा और तीन दिन बीचु।
तिन्ह सीतल को राखै जिनहिं अगिनि मँह मीचु⁶॥
5. अबहूँ हिये समुझ रे राजा! बादसाह सौ जूझ न छाजा॥
जेहि कै देहरी पृथिवी सेई। चहै तौ मारै औ जिउ लेई॥
6. बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा। ऐ जगसूर⁷! सीउ मोहि लागा॥
ऐगुन-भरा काँप यह जीऊ। जहाँ भानु तहँ रहै न सीऊ॥
सुनि बिनती बिहँसा सुलतानू। सहसौ करा दिपा जस भानू॥
ऐ राजा! तुइ साँच जुड़ावा। भइ सुदिष्टि अब, सीउ छुड़ावा॥
7. राघव सुनत सीस भुइ धरा। जुग-जुग राज भानु कै करा॥⁸

1. देखें, प्रो. बलराज मधोक की आत्मकथा 'जिन्दगी का सफ़र'।

2. अल्लाह ने सर्वप्रथम मोहम्मद (570-632 ई.) का नूर उत्पन्न किया तथा उन्हीं के प्रेम के कारण स्वर्ग बनाया।

3. जन्नत।

4. ईसाई मजहब के अनुसार जो ईसा का अनुयायी नहीं, वह नरकगामी होगा। धर्माग्र्य दान्ते ने अपनी 'डिवाइन कॉमेडी' में तो मोहम्मद और अली तक को नहीं बख़्शा! मोहम्मदीयत में भी गैर-मुसलमानों को नरकगामी बना दिया है, जिसकी घोषणा जायसी बारम्बार करते हैं (जिससे हिन्दू श्रोता या पाठक मोहम्मदी-मजहब स्वीकार कर जन्नत पा सकें)।

5. हिन्दू देवताओं की निन्दा; हिन्दू को काफ़िर होने के कारण इस संसार में दाहकर्म की आग तथा 'आखिरत' में 'दोज़ख' (नरक) की आग!

6. नरकाग्नि, दाहाग्नि = सर्वाग्नि।

7. विश्व के सूर्य। राजा रत्नसेन द्वारा सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी का चरण-वन्दन नितान्त अनैतिहासिक है। सोदेश्य (क्षत्रिय) अवमानना।

8. कल्पित पात्र राघव चेतन ब्राह्मण बताया गया है। ब्राह्मण सुल्तान या राजा का चरणवन्दन न करते थे। सोदेश्य ब्राह्मण-अवमानना। आज भी मुस्लिम-पटकथाकार चलचित्रों में ब्राह्मण को परिहासपात्र या अपराधी रूपों में चित्रित करते हैं और अनुकरणकारी हिन्दू भी कम नहीं हैं।

8. जस अपने मुँह काढ़े धूँवाँ। मेलेसि आनि नरक के कूवाँ॥
9. नेजा उठे डरै मन इंदू। आइ न बाज जानिकै हिंदू॥
10. मदद अयूब सीस चढ़ि कोपे। राम-लखन जेई नाँव अलोपे॥¹
- औ ताया सालार सो आए। जेइ कौरव-पंडव पिंड पाए॥²
11. जौहर भइ सब इस्तरी, पुरुष भए संग्राम।
बादसाह गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम॥³

रामायण में समादृत, महाभारत में अत्यधिक एवं बारम्बार प्रशंसित, पुराणों के पूज्य देवर्षि, स्वयं नारद-पुराण के प्रस्तोता के लिए 'अखरावट' एवं 'आखिरी कलाम' में जायसी ने जिस शब्दावली का प्रयोग किया है वह नितान्त अशोभनीय एवं नग्न साम्प्रदायिक है। वे लगातार नारद को ईसाई एवं मोहम्मदी मज़हबों में पाप-प्रतीक रूप में कल्पित शैतान के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसका उद्देश्य उनका हिन्दू संस्कृति-विकृतीकरण का पूर्वाग्रह है। उन्होंने नारद को कबीर से हारा सिद्ध किया है।⁴ ऊटपटांग गर्प्पे हाँकना, ऊलझलूल बकवास करना, हिन्दूधर्म के अज्ञान के बावजूद बार-बार टँगड़ी लगाना जायसी के साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के सुनियोजित तत्त्व हैं। इन दो पुस्तकों में मोहम्मदी मज़हब के प्रचार के अन्य प्रचार तत्त्व भी अपनाए गए हैं :

1. माथ ऊँच मक्का बन ठाऊँ। हिया मदीना नबी के जाऊँ।
2. बिधिना के मारग हैं ते-ते। सरग-नखत, तन-रोयाँ जेते।....
तेहि महाँ पंथ कहाँ भल गाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कबिलास बसेरा॥
(अखरावट)
3. रतन एक बिधनै अवतारा। नावँ मुहम्मद जजग उजियारा।।....
जेइ नहिं लीन्ह जनम महाँ नाऊँ। तेहि कहँ कीन्ह नरक महाँ ठाऊँ॥
4. उठिहैं पंडित, वेद पुराना। दत्त, सत्त दोउ करिहिं पयाना॥
5. पुनि रसूल जैहैं होइ आगे। उम्मत⁵ चलि सब पाछे लागै॥
6. उमत रसूल केर बहिराउब। कै असवार बिस्ति⁶ पहुँचाउब॥
7. तहाँ न मीचु, न नींद, दुख, रह न देह महाँ रोग।
सदा अनंद मुहम्मद, सब सुख मानै भोग॥
(आखिरी कलाम)

अमेठी के राजा रामसिंह का जायसी से प्रभावित होना कोई आश्चर्यजनक बिन्दु नहीं है क्योंकि हिन्दू सालार मसऊद गाज़ी⁷ की क़ब्र पूज⁸ सकते हैं, औरंगज़ेब के दर्शन के अनन्तर ही अन्न-जल ग्रहण कर हठ कर सकते हैं⁹। फिर, जायसी कम-से-कम फ़कीर तो थे ही—जब मुईनुद्दीन चिश्ती एवं निज़ामुद्दीन औलिया पूज्य हो सकते हैं, तब जायसी क्यों नहीं?

1. मतान्ध जायसी यहाँ राम-लक्ष्मण का मूर्खतापूर्ण अपमान कर रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी-ग्रन्थावली' में 'राम-लखन' के स्थान पर भ्रमवश या नुटिवश 'महामाल' शब्द दिया है जो निरर्थक है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने पदमावत की पाठसम्पृक्त टीका में 'राम-लखन' ठीक ही दिया है।
2. सालार मसऊद गाज़ी महमूद गज़नवी का भांजा था, जो 1019 ई. में मजमूद के कन्नौज पर आक्रमण की सफलता तक अत्युत्साहित होकर लूटपाट करता बहराइच जा पहुँचा जहाँ के जैन राजा सुहदेव (सुहेलदेव) के हाथों मारा गया। मतान्ध जायसी उसके द्वारा कौरव-पाण्डव को बन्दी बना रहे हैं :
3. जायसी चित्तौड़ में मोहम्मदीयत के वर्चस्व की चर्चा कर रहे हैं, जबकि 1303 ई. में परास्त राजपूतों ने 1311 ई. में ही खिज़्रख़ाँ को भगाकर वहाँ अधिकार कर लिया था। धर्मान्ध जायसी यहीं, विजय-पर्व के साथ, पदमावत समाप्त कर देते हैं। उपसंहार प्रक्षिप्त है।
4. ना—नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहै सौं मैं हारा।
5. पदमावत में भी यही कहा है।
6. मुसलमान-समूह।
7. झूठा विशेषण क्योंकि गाज़ी 'काफ़िर'—हंता को कहते हैं जबकि मसऊद 'काफ़िर'—हंतु था। 'शहीद' कहते तो भी ग़नीमत थी।
8. बहराइच में इसकी क़ब्र को दरगाह कहते हैं (जबकि यह शब्द फ़कीरों कर क़ब्र के लिए चलता है—शासक एवं आक्रान्ता इत्यादि की क़ब्र को मक़बरा कहा जाता है) जहाँ हर साल मेला लगता है।
9. खफ़ीख़ान के अनुसार जब औरंगज़ेब ने 'दर्शन' की प्रथा बन्द की तब 'दर्शनी' (जो हिन्दू होते थे तथा दिल्ली में यमुना-स्नान के बाद बादशाह-दर्शन करके ही अन्न-जल-ग्रहण करते थे) बहुत विकल हुए। उन्होंने पवित्र परम्परा को समाप्त न करने की प्रार्थना की। किन्तु औरंगज़ेब ने उसे ठुकरा दिया।

रहस्यवाद

सूक्ष्म एवं गहन आध्यात्मिक ऊहापोह रहस्यवाद का जनक है, जिसका उद्भव ऋग्वेद, विकास उपनिषद् एवं प्रभाव मूसा, सुकरात, प्लेटो, ईसा, मंसूर इत्यादि में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद में इन्द्र, अग्नि, मरुत, उषा इत्यादि के छवि-अंकन, आह्वान, सान्निध्य इत्यादि में रहस्यवाद का उन्नत रूप विद्यमान है। शुनःशेष के उषा से प्रश्न “कौन पुरुष जो तुम्हारा आलिंगन करेगा?” मधुर रहस्यवाद का उद्गम है। छान्दोग्य उपनिषद् में इसका निरूपण “आत्मरति, आत्ममिथुन, आत्मक्रीड” के रूप में प्राप्त होता है। सुकरात, प्लेटो, मंसूर इत्यादि ने आत्मरति आथा आण्डाल (गोदा या गो = स्वर्ग + दा = देनेवाली), राबिया, टेरेसा इत्यादि में आत्ममिथुन तथा जयदेव, चैतन्य, वल्लभ इत्यादि ने आत्मक्रीड तत्त्व अपनाकर दर्शन एवं काव्य में अमरता प्राप्त की। मूसा का ‘जेहोवा (अग्निरूप)—दर्शन’ ऋग्वेदमूलक है तथा सुकरात का “निज को जानो”, प्लेटो का ‘विश्वात्मा’, ईसा का “स्वर्ग का राज्य तेरे अन्दर” एवं मंसूर का “अनहलक” (“अहं ब्रह्मास्मि” का शब्दानुवाद) उपनिषदमूलक। सूफी-रहस्यवाद में “सर्व खल्विदं ब्रह्म” (छान्दोग्य उपनिषद्) दो रूपों में विकृत हुआ है : एक में परमात्मा एवं प्रकृति का तादात्म्य-निरूपण है, दूसरे में परमात्मा एवं आत्मा का। सूफी इश्कहक्रीकी के साध्य की प्राप्ति में साधन के रूप में इश्कमज़ाजी का प्रयोग करते आए हैं। उनकी दृष्टि में सृष्टि नूरेइलाही से ऊभचूभ है। सारा नूर, सारा जलाल, सारा कमाल उस ‘माशूक’ का ही है। उसका आशिक ही सच्चा साधक है। उसका विरह (दुःख) ही सच्ची साधना है। अरब, ईरान, तुर्किस्तान इत्यादि में माशूक एवं आशिक दोनों पुरुषवर्गीय होते थे, जिसका कारण इन देशों में अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित समकामुकता है, जो तौरात (ओल्ड टेस्टामेंट) के लूत (लॉट)—प्रकरण, इंजील (न्यू टेस्टामेंट) में ईसा-वक्शशायीशिष्य प्रकरण, कुरान के जन्नत में इमरद (या गिलमान) के गौरव इत्यादि से भी प्रमाणित है। भारत में सूफियों ने यहाँ की संस्कृति से प्रभावित होकर माशूक का स्थान नायिका को दिया।

सूफी प्रेमाख्यानों में नायिका परमात्मा की प्रतीक है तथा नायक आत्मा का। प्रत्यक्ष दर्शन (जैसे मृगावती में), किसी (गुरु-प्रतीक) के वर्णन (जैसे पदमावत में), अतिप्राकृतिक तत्त्वों (अप्सरा, देवता इत्यादि) से प्रेरित मिलन (जैसे मधुमालती में) या चित्रदर्शन (जैसे चित्रावली में) के माध्यम से नूरेइलाही का बोध होता है, जिससे विरह या दुःख की साधना आरम्भ होती है जिसके फलस्वरूप दोनों का मिलन होता है जो ध्येय है। इसके बाद कथानक सुखान्त (मधुमालती, चित्रलेखा इत्यादि) भी हो सकता है, दुखान्त (मृगावती, पदमावत इत्यादि) भी। कथानक का सम्मान करने के कारण प्रायः रहस्यविवृति का आद्यन्त-निर्वाह नहीं हो पाता। किन्तु रहस्य की प्रतीति प्रत्येक प्रेमाख्यान में होती रहती है।

जायसी के पदमावत में नायिका के आवास (सिंहलद्वीप—जो लंका से भिन्न¹ है), नायिका के रूप-सौन्दर्य, नायक की साधना एवं दोनों के परिणय का वृत्त रहस्यवाद से ओतप्रोत है। पदमावत में सूफी-रहस्यवाद का जैसा परिपुष्ट रूप दृग्गत होता है वैसा पूर्ववर्ती चन्दायन एवं मृगावती तथा परवर्ती मधुमालती, चित्रावली, इन्द्रावती में नहीं। दिव्य-सौन्दर्य, उसका बोध, उसका विरह (दुःख) एवं उसकी प्राप्ति सूफी-रहस्यवाद के चार आधारभूत तत्त्व हैं। पदमावत में इन चारों को ही सफल निरूपण प्राप्त हो जाता है :

1.

सिंघलदीप² कथा अब गावौं। औ सो पदमिनि³ वरनि सुनावौं।।

निरमल दरपन भाँति बिसेखा। जो जेहि रूप सो तैसइ देखा।।

धनि सो दीप जहँ दीपक बारी। और पदमिनि जो दई सँवारी⁴।।

सात दीप बरनै सब लोगू। एकौ दीप न ओहि सरि जोगू।।

दियादीप⁵ नहिँ तस उजियारा। सरनदीप सर होइ न पारा।।

1. लंका सुना जो रावन राजू। तेहु चाहि बड़ ताकर साजू।।

2. आचार्य शुक्ल की लंकानिवासियों के ‘काले-कलुटे’ होने की चर्चा निराधार है : वैसे भी लंका में दो प्रकार के लोग अधिक हैं—आर्यनृवंशी सिंहली जो गौर या प्रायः गौर वर्ण के हैं तथा द्रविड़नृवंशी तमिल जो श्याम वर्ण के हैं तथा ऐतिहासिक कारणों से अरब एवं पाश्चात्य नृवंशों के प्रभाव का भी दर्शन होता ही है।

3. स्वर्ग-प्रतीक।

4. परमात्मा-प्रतीक।

5. दिव्यज्योति-प्रतीक (पाश्चात्य ‘एल डोरडो’)।

जंबूदीप कहौं तस नार्हीं। लंकदीप सरि पुज न छाहीं¹॥
 दीप गभस्थल आरन परा। दीप महुस्थल² मानुस-हरा॥
 सब संसार परथमैं आए सातौं दीप।
 एक दीप नहिं उत्तिम सिंघलदीप समीप³।....

जबहिं दीप नियराता जाई। जनु कबिलास⁴ नियर भा आई॥....
 जेइ वह पाई छाँह अनूपा। फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा॥⁵
 नग अमोल तेहि तालहिं निदहिं बरहिं जस दीप।
 जो मरजिया होइ तहँ सो पावै वह सीप⁶॥....
 पुनि देखी सिंघल कै हाटा। नवो सिद्धि लछिमी सब बाटा॥....
 जिन्ह एहि बाट न लीन्ह बेसाहा। तिन्ह कहँ आन हाट कित लाहा?⁷
 कोई करै बेसाहिनी, काहू केर बिकाइ!
 कोई चलै लाभ सन, कोई मूर गँवाइ।....

पुनि आए सिंघलगढ़ पासा। का बरनौं जनु लाग अकासा॥
 तरहिं करिन्ह⁸ बासुकि कै पीठी। ऊपर इन्द्रलोक पर दीठी॥
 नव पौरी बाँकी, नवखंडा। नवौ जौ चढ़ै जाइ बरम्हंडा⁹॥
 फिरहिं पाँच कोतवार सुभौरी। काँपै पाँव चपत वह पौरी॥....
 नवौं खंड नव पौरी औ तहँ बज्र केवार।
 चाहि बसेरे¹⁰ सौ चढ़ै सत सौं उतरै पार॥

2. कहा मानसर चाह सो पाई। पारस-रूप¹¹ इहाँ लगि आई॥
 बिगसा कुमुद देखि ससि-रेखा। भे तहँ ओप जहाँ जोइ देखा॥
 पावा रूप रूप जस चहा। ससिमुख जनु दरपन होइ रहा॥
 नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
 हँसत जो देखा हंस भा, दसन-जोति नग-हीर॥

3. जेहि दिन दसन-जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई॥
 रबि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
 जहँ-जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ-तहँ छिटकि जोति परगसी॥
 दामिनि दमक न सरवरि पूजी। पुनि ओहि जोति और को दूजी?
 हँसत दसन अस चमके पाहन उठे झरविक।
 दारिउँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरविक॥

1. जायसी के अनुसार, सिंहलद्वीप लंकाद्वीप से भिन्न है।

2. मरुस्थल।

3. दिव्यप्रतीक सर्वोपारिता।

4. कैलास (कैलाश) या स्वर्ग।

5. "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्गाम परमं मम" (गीता)।

6. "जौ मरजीवा होय" (कबीर)।

7. लाभ।

8. करि = गज। दिग्गजों की।

9. सहस्रार चक्र।

10. शरीरगत, तरीकत, हकीकत, माफ़त (सूफ़ी साधना-सोपान जो अष्टांगयोग से छूँटे गए हैं)। इन्हें शास्त्राभ्यास, साधना-प्रणाली, तत्त्वबोध एवं कैवल्यानुभूति माना जा सकता है।

11. पद्मिनी।

4. गजपति! यह मन सकती-सीऊ¹। पै जेहि पेम कहाँ तेहि जीऊ।
जो पहिले सिर दै पगु धरई।। मूए केर मीचु का करई।।....
5. देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा।
गा अंधियारा, रैन-मसि छूटी। भा भिनसार किरन-रवि फूटी।।
'अस्ति-अस्ति' सब साथी बोले। अंध जो अहै नैन बिधि खोले।।
कवँल बिगस तस बिहँसी देही। भौर दसन होइ कै रस लेहीं।।
हँसहिं हंस औ करहिं किरीरा²। चुनहिं रतन मुकुताहल हीरा।।³
जो अस आव साधि तप जोगू। पूजै⁴ आस, मान रस भोगू।।
6. गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया⁵। पुरुष देखु ओही कै छाया।।
पाइअ नाहिं जूझ हठि कीन्हें। जेइ पावा तेहि आपुहि चीन्हें।।⁶
नौ पोरी तेहिं गढ़ मझियारा। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।।
दसवँ दुआर गुप्त एक ताका। आगम चढ़ाव, बाट सुठि बाँका।।⁷

यद्यपि याज्ञवल्क्य एवं उद्दालक के यशस्वी वंशज कबीर हिन्दी (वस्तुतः विश्व) के गम्भीरतम एवं श्रेष्ठतम रहस्यावादी कवि हैं जिनका प्रभाव नानक, जायसी, दादू, रवीन्द्र, इत्यादि तक प्रसरित है तथापि जायसी के रहस्यवाद की भावुकता एवं मार्मिकता का अपना महत्त्व है—उसके अद्वैतवाद-प्रेरित एवं हठयोग-पुष्ट सूफी-रहस्यवाद कबीर का उत्तराधिकार ग्रहण करते हुए भी विशिष्ट अवश्य है जैसाकि इश्कहक्रीकी से ऊभचूभ प्रस्तुत विश्वस्तरीय निदर्शन स्पष्ट करता है :

सूरज बूढ़ि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता।।
भा बसंत, राती बनसपती। औ राते सब जोगी जती।।
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते सब पंखि-पखेरू।।
राती सती, अग्नि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया।।

निस्सन्देह, कबीर के अनन्तर जायसी हिन्दी के प्रमुख रहस्यवादी कवि हैं। कबीर साधनासम्पन्न हैं, जायसी भावनासम्पन्न। कबीर में गहनता एवं तन्मयता अधिक है, जायसी में व्यापकता एवं भावुकता अधिक है। कबीर का रहस्यवाद आत्मा का स्पर्श करता है, जायसी का रहस्यवाद चेतना का स्पर्श करता है। अन्य कवियों में, प्रसाद का रहस्यवाद प्रायः कोमल-सौन्दर्यबद्ध मात्र है, निराला का बिखरा-बिखरा, पन्त का अतिशय-अरविन्दवादी, महादेवी का एकांगी (केवल-पीड़ावादी), अज्ञेय का घोर-व्यक्तिवादी। ये कवि उच्चस्तरीय हैं—प्रसाद, निराला एवं पन्त तो जायसी के स्तर के कवि हैं ही (प्रसाद अपनी बहुमुखी प्रतिभा में जायसी से श्रेष्ठतर भी हैं) किन्तु रहस्यवाद की दिशा में जायसी इनसे आगे हैं : परिमाण में भी, गुण (तन्मयता एवं व्यापकता) में भी। विजयदेव नारायण साही और डॉ. विजयशंकर मिश्र ने जायसी के रहस्यवाद पर यथार्थवादी प्रकाश डालकर सत्य की साधना तो की है, किन्तु कहीं-कहीं पूर्णतः वस्तुपरक नहीं रह पाए। शुक्ल की अतिप्रशस्ति, साही की द्विधा एवं विजयशंकर मिश्र के सुपुष्ट प्रहार तीनों में से सत्यांश प्राप्त करना ही समीचीन लगता है।

विरह-वर्णन

हिन्दी के विरहकाव्यकारों में जायसी का स्थान बहुत ऊँचा है। यद्यपि वे शृंगार-वात्सल्य उभय-विरहकाव्य के स्फीत प्रस्तोता सूर की समता नहीं कर सकते तथापि केवल शृंगार-विरह में उनके समकक्ष माने जा सकते हैं। पद्मावत में तीन उत्कृष्ट विरह-वर्णन प्राप्त

1. शक्ति-शिव।
2. क्रीड़ा। स्वर।
3. हीरा खान से निकलता है, सागर (मानसरोवर जल-प्रतीक मात्र) से नहीं।
4. पूर्ण होती है।
5. यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे।
6. आत्मा वा अरे दृष्टव्यः! (याज्ञवल्क्य)
7. हठयोग-प्रभाव।

होते हैं—1. पत्नी-उपेक्षक रत्नसेन का पद्मावती के प्रति जो वास्तविक परिचय के अभाव में लचर है, 2. पद्मावती का रत्नसेन के प्रति जिसमें कामुकता ने बाधा डाली है, तथा 3. नागमती का स्वकीय पति रत्नसेन के प्रति जो सर्वोत्तम है। तृतीय गुण में भी श्रेष्ठतम है, परिमाण में भी। व्यापक यथार्थ एवं व्यावहारिक दार्शनिकता से लेकर भावपक्ष एवं कलापक्ष तक जायसी कहीं भी सूर के स्तर के कवि नहीं सिद्ध होते, किन्तु शृंगारविरह में अतिभावुकता के बावजूद वे सूर से टक्कर लेने लगते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी-ग्रन्थावली' की भूमिका में जायसी की गलदश्रु भावुकता पर मुग्ध होकर जो स्वरुचिबद्ध प्रशस्ति की है उसका खण्डन ऐसी ही स्वच्छन्दतावादी (छायावादी) भावुकता पर उनका प्रहार ही कर देता है; अतः उसे विशेष महत्त्व देना परप्रत्ययजन्य अन्धश्रद्धा के लिए ही सम्भव है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जायसी ने लोकगीत-परम्परा से भरपूर सहायता लेते हुए जिस मार्मिक विरहकाव्य की सृष्टि की है वह साहित्य की अमूल्य निधि है। समयक्रम से जायसी, मीराँ, सूर, घनआनन्द, हरिऔध, मैथिलीशरण, प्रसाद, महादेवी एवं बच्चन हिन्दी-साहित्य में विरह के प्रमुख कवि हैं जिनमें सूर, हरिऔध एवं मैथिलीशरण के जीवन-आयाम स्फीत हैं तथा जायसी, मीराँ, घनआनन्द, प्रसाद, महादेवी एवं बच्चन के संकीर्ण।

जायसी की विरहगत अतिरंजना भावुकता से सम्पृक्त होने के कारण बिहारी, मतिराम इत्यादि की चमत्कारबद्ध अतिरंजना से अधिक प्रभावी है। जायसी अपने विरहवर्णन के सारे गुणों में भी मार्मिक हैं, सारे दोषों में भी। मार्मिकता जायसी के विरहकाव्य की आत्मा है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है, "जायसी का विरह-वर्णन कहीं-कहीं अत्यन्त¹ अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुँचने पाया है, उसमें गाम्भीर्य बना हुआ है। यत्र-तत्र जायसी की विरह-अत्युक्तियाँ सूफी-दार्शनिकता से सम्बद्ध होने के कारण भी गम्भीर हो गई हैं।" जायसी की कुछ विरह-अत्युक्तियाँ प्रस्तुत हैं :

1. आखर जरहिं न काहू छुआ। तब दुख देखि चला लेइ सूआ।।
2. जेहि पंखी के नियर होइ, कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होहिं निपात।।
3. जनहूँ अग्नि के उठहिं पहारा। औ सब लागहिं अंग अँगारा।।
4. अस परजरा बिरह कर गठा। मेघ साम भए घूम जो उठा।।
दाढ़ा राहु, केतु गा दाधा। सूरज जरा, चाँद जरि आधा।।
औ सब नखत-तराई जरहीं। टूटहिं लूक, धरति महीं परहीं।।
जैरै सो धरती ठावहिं ठाऊँ। दहकि पलास जैरै तेहिं दाऊँ।।
5. रोवै-रोवै वै बान जो फूटे। सूतहि-सूत रुहिर मुख छूटे।
नैनहिं चली रक्त कै धारा। कंथा भीजि भएउ रतनारा।।
सूरज बूड़ि उठा होइ ताता। औ मँजीठ टेसू बन राता।।
भा बसत राती बनसपती। औ राते सब जोगी जती।।
भूमि जो भीजि, भएउ सब गेरू। औ राते तहँ पंखि-पखेरू।।
राती सती, अग्नि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया।।
ईगुर भा पहार जौ भीजा। पै तुम्हार नहिं रोवै पसीजा।।
6. कुहुकि-कुहुकि जस कोइल रोई। रक्त-आँसु घुँघुची बन बोई।।
जहँ-जहँ ठाढ़ि होइ बनवासी। तहँ-तहँ होइ घुँघुचि कै रासी।।
बूँद-बूँद मँह जानहूँ जीऊ। गूँजा गूँजि करै पिउ-पिऊ।।
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते।।
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ।।

1. 'अत्यन्त' का प्रयोग निरर्थक है, क्योंकि 'अत्युक्ति' में 'अति' अन्तर्प्रयुक्त है। अत्युक्ति अतिशयोक्ति से भी बढ़कर की जाती है।

आचार्य शुक्ल लिखते हैं, “आधिक्य या न्यूनता सूचित करने के लिए ऊहात्मक या वस्तु-व्यंजनात्मक शैली का विधान कवियों में तीन प्रकार का देखा जाता है—(1) ऊहा की आधारभूत वस्तु असत्य, अर्थात् कवि-प्रौढोक्ति-सिद्ध है। (2) ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप सत्य या स्वतःसम्भवी है और किसी प्रकार की कल्पना नहीं की गई है। (3) ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप तो सत्य है पर उसके हेतु की कल्पना की गई।” प्रथम के उदाहरण बिहारी के कोरे अत्युक्तिपूर्ण वर्णन हैं, द्वितीय के स्वयं जायसी का “आइ साह अमराव जो लाए। फरे-झरे पै गढ़ नहि पाए।।”, तृतीय में जायसी की उक्त-वत् अधिकांश वर्णन जिनमें प्रकृति-तथ्य तो सत्य हैं किन्तु उनके ऐसे होने का कारण विरह कल्पित। आचार्यत्व की लपेट से मुक्त शैली में कहा जा सकता है कि एक प्रकार के वर्णन में कविकल्पना मात्र का अतिरेक दृग्गत होता है, दूसरे में तथ्य की प्रधानता रहती है, तीसरे में प्रकृति के सहज रूपों पर भाव-सादृश्य की कल्पना आरोपित कर दी जाती है। जायसी ने तीसरे प्रकार के वर्णन अधिक किए हैं।

लोकगीतमूलक मार्मिकता एवं सूफीदर्शनमूलक आध्यात्मिकता से ऊभचूभ जायसी के विरहवर्णन अपने उपमान स्वयं हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. प्रेम-धाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोइ।
परा सो प्रेम-समुद्र अपारा। लहरसिंह लहर होइ बिसँभरा।।
विरह-भौर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीव हिलोरा लेई।।
खिनहि उसास बूड़ि जिउ जाई। खिनहि उठै, निसरै बौराई।।
2. चढ़ा असाढ़ गगन धन गाजा। साजा बिरह-दुंद दल बाजा।।
धूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग-पाँति देखाए।।
खड़क-बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घन घोरा।।
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हौं घेरी।।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ।।
चकई निसि बिछुरै, दिन मिला। हौं दिन-राति बिरह-कोकिला।।
करहिं बनस्पति हिए हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू।।
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहि तन लाइ¹ दीन्ह जस होरी।।
जो पै पीउ जरत अस पावा। जरत-मरत मोहि रोस न आवा।।
राति-दिवस अब यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत! अब तोरे।।
यह तन जारौं छार कै, कहौं कि, “पवन! उड़ाव”।
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँ पाव²।।
3. नहिं पावस ओहि देसरा, नहिं हेवंत-बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत।।
4. मोहिं भोग सौं काज न बारी। सौंह दीठि कै चाहनहारी।।

जायसी के विरहवर्णन कामस्पृहा से यत्र-तत्र-सर्वत्र इतने अधिक आपूर्ण हैं कि शालीनता को आघात लगता रहता है। इसका कारण व्यापक मनोविज्ञान में ढूँढ़ना होगा। डॉ. विजयशंकर मिश्र ने जायसी की बहुपत्नीवाद-मण्डनकारी, अभिजातवादी एवं अनियन्त्रित कामुकता पर सतर्क प्रहार कर ‘आलोचक’ शब्द के साथ प्रशस्य न्याय किया है, जिसका आकलन डॉ. राजकुमार ने “सँकरे अभिजात्यवादी सोच के कवि” शब्दों द्वारा ठीक-ठीक कर दिया है। बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों (विशेषतः वज्रयानी-सहजयानी

1. आग।

2. महान् समर्पण भाव। विदेशी आक्रान्ता भारतीय नारी के एकान्त समर्पणभाव पर विस्मयाविष्ट एवं श्रद्धानत हो गए थे। ‘अजाइबुल असफ़र’ में इब्नेबतूता एक सती की दहनपूर्व प्रसन्नता का वर्णन करता है, ‘तुजुकेजहाँगीरी’ में मध्य-विलासी जहाँगीर भारतीय नारी की प्रशंसा करते हुए स्वीकार करता है कि मुसलमान औरतों के चरित्र वैसे उच्च नहीं हैं।

योगियों) की कामुकता कुख्यात है। ईसाई बिशप-नन कितने दुराचारों को प्रश्रय देते चले आ रहे हैं, यह किसी से नहीं छिपा। बौद्ध-भिक्षुणियों से प्रेरित ईसाई-नन्स तथा इनसे प्रेरित हिन्दू-देवदासियाँ काम के दबाव से नहीं बच सकी, तो स्वाभाविक ही है। हठयोगी इतने कामुक थे कि स्वयं चर्पटनाथ ने स्पष्ट प्रत्याख्यान करना उचित समझा। वस्तुतः विरक्ति आरोपित है, अनुरक्ति सहज। अतः विरक्त आत्मपरक कामुकता को वस्तुपरक शैली में विवृत करने को विवश रहता है। सूफ़ी फ़कीरों एवं शायरों की कामुकता-समकामुकता इत्यादि के अनेक वृत्त अनैसर्गिक निवृत्ति की व्यर्थता एवं नैसर्गिक प्रवृत्ति की सार्थकता के द्योतक हैं। ऐसे वर्णन इस या उस रूप में कबीर, सूर, तुलसी तक ने किए हैं।

वर्णन-सामर्थ्य

यद्यपि जायसी का प्रधान रस शृंगार है तथापि वीररस के वर्णन में भी उन्हें अच्छी सफलता मिली है। उनके गौरा-बादल-प्रकरण में वीररस की उत्कृष्ट निष्पत्ति के दर्शन होते हैं जिससे जटमल प्रभृति कवि प्रभावित हुए हैं। इसके अतिरिक्त भी, जायसी ने इतिवृत्त से सर्वत्र प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है। उनका सिंहलद्वीप-वर्णन-खण्ड एवं सिंहलद्वीप-खण्ड नगर एवं दुर्ग के वर्णनों की दृष्टि से विश्वस्तरीय है, जो रहस्य-संकेतों से सम्पन्न होने के कारण वस्तुतः अद्वितीय ही हो गया है। रामायण, इलिअड, शाहनामा, रामचरितमानस प्रभृति श्रेष्ठतर विश्व-महाकाव्यों में भी नगर एवं दुर्ग का वर्णन नहीं प्राप्त होता। महाभारत के युधिष्ठिर-सभा (सभा-पर्व) का वर्णन ही इसकी समता कर सकता है। नगर, दुर्ग, अस्त्र-शस्त्र, सुस्वादु-व्यंजन इत्यादि के स्फीत एवं साधिकार वर्णन जायसी के व्यापक अनुभव की सूचना देते हैं। जायसी का वर्णन-सामर्थ्य पद्मावत को उच्चकोटि का महाकाव्य बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। रूपक या प्रतीक के सहारे सफल काव्य रचना उतना कठिन नहीं जितना वस्तु या कथानक के सहारे क्योंकि प्रथम में शिल्प की आड़ मिल जाती है जबकि द्वितीय में वर्णन-प्रतिभा अपरिहार्य होती है। यही कारण है कि अधिकांश इतिवृत्तात्मक महाकाव्य असफल सिद्ध होते हैं। वर्णन में रस भरना बहुत बड़े कवि के बलबूते का काम ही है, जैसा कि रामायण, महाभारत, इलिअड, ओडिसी, रामचरितमानस इत्यादि से ही स्पष्ट है। जायसी प्रत्येक वर्णन में रस भर सकने में सफल हुए हैं। निःसन्देह वे महाकवि हैं। क्या हीरामन के द्वारा स्वातन्त्र्य-गौरव-वर्णन, क्या रतनसेन-गजपति-सम्वाद में 'दिया' का श्लिष्ट वर्णन, क्या 'सात-समुद्र-खण्ड' में विस्मयाविष्टकारी सागर-वर्णन, क्या राघवचेतन-दिल्लीगमन पर सुल्तान-गौरव-वर्णन, क्या बादल और गौरा का शौर्यवर्णन, सभी उनकी उत्कृष्ट वर्णनात्मक-प्रतिभा की सूचना देते हैं।

विविध

जायसी का महाकाव्य भक्तिकाव्य न होकर सूफ़ीदर्शन-सम्पृक्त शृंगारकाव्य है। पद्मावत का अंगीरस शृंगार है। आचार्य शुक्ल द्वारा सूफ़ी-प्रेमाख्यानों को भक्तिकाव्य में अन्तर्भूत करना निराधार है। डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का सूफ़ीकाव्य-अवमूल्यन आचार्य शुक्ल के सूफ़ीकाव्य संस्तवन की प्रतिक्रिया से प्रसूत बिन्दु हो सकता है, किन्तु उनका सूफ़ीकाव्य को भक्तिकाव्य न मानना सर्वथा समीचीन है। सारे प्रेमाख्यानों में कहीं न भक्तिनिरूपण दृग्गत होता है, न भक्तिप्रतिपादन। नारद-जैसे भक्ति-प्रतीक देवर्षि की घोर अवमानना किसी भक्त से कैसे सम्भव है? इसमें सन्देह नहीं कि जायसी रहस्यवाद में बहुत रुचि रखते हैं, किन्तु भक्ति एवं रहस्यवाद की भिन्नता तो स्वयं आचार्य शुक्ल भी स्वीकार करते हैं। मुल्ला दाऊद से नूर मोहम्मद तक सूफ़ीकाव्य कहीं भी भक्तिकाव्य नहीं है। 'भक्ति' पुनरुत्थानकाल के जन-आन्दोलन का अंग थी, जबकि जायसी "साधारण-सामान्य मनुष्यों को 'नीच' घोषित करके संगयोग्य नहीं माननेवाले थे : ऊँचे ठाँव जो बैठे करें न नीचे हैं संग।

जायसी की भाषा में 'ठेठ अवधी' के जिस 'मिठास' की प्रशंसा शुक्ल ने की है, वह एकदम उचित है। किसी सूफ़ी-कवि की भाषा में जायसी की अवधी की मिठास नहीं। पद्मावत में स्थान-स्थान पर रूपक, उपमा, उपेक्षा, अर्थान्तरन्यास इत्यादि अलंकारों का प्रयोग भी सफल रूप में प्राप्त होता है। यत्र-तत्र परिकरांकुर, असंगति इत्यादि सूक्ष्म अलंकारों का भी भव्य प्रयोग दृग्गत होता चलता है।

यह सत्य है कि जायसी का उद्देश्य मोहम्मदीयत का प्रचार-प्रसार था, किन्तु यह भी सत्य है कि वे भारतीय जीवन-पद्धति के विरोधी नहीं थे। भारतीय पुरुष की बलिदानवृत्ति एवं भारतीय नारी के पतिव्रत का चित्रण करने में वे किसी भी हिन्दू-कवि से उन्नीस नहीं ठहरते।

जायसी परम्परावादी कवि हैं। निरंकुश राजतन्त्र, मोहम्मदी-सर्वश्रेष्ठता, नारी-निन्दा, जाति-प्रथा, अन्धविश्वास इत्यादि के वर्णन इसके प्रमाण हैं। सारे सूफी-कवि इस दृष्टि से भी मिलते-जुलते हैं। कबीर, दादू, रज्जब इत्यादि मुसलमान कवि जैसा प्रगतिशील मानवतावादी सन्देश देते हैं वैसा दाऊद, जायसी, मंझन इत्यादि नहीं।

आकलन

तुलसी के महान् विश्वस्तर एवं सूर के महान् राष्ट्रस्तर की समता हिन्दी का कोई कवि नहीं कर सकता। किन्तु इसके अनन्तर जो प्रथम श्रेणी के कवि हैं उनमें केशव एवं कबीर अग्रणी हैं। कालनिर्माता केशव ने महाकाव्य, शास्त्रीयकाव्य, चरितकाव्य एवं अध्यात्मकाव्य में बहुआयामी सृजन-सामर्थ्य का परिचय दिया है, समूचे शास्त्रीयकाल को प्रभावित किया है, रामचन्द्रिका के माध्यम से रामलीलाओं पर अद्यावधि-प्रसरित छाप छोड़ी है और यह सब उन्हें शताब्दियों से तुलसी एवं सूर से अनन्तर तृतीय स्थान पर ठीक ही प्रतिष्ठित किए रहा है। आज भी कोटि-कोटि हिन्दीभाषी जनता उनके पुराण-चरित्र से भली-भाँति परिचित हैं। मिश्रबन्धु के देव-पक्षपात एवं शुक्ल के केशव-हननयल का व्यापक जनजीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सका। जायसी न तो केशव के सदृश कालोद्घाटक हैं, न बहुआयामी ग्रन्थकार, न जनप्रिय कवि-नायक। कुल मिलाकर पदमावत को रामचन्द्रिका से श्रेष्ठतर महाकाव्य वही परोपजीवी व्यक्ति मान सकता है जिस पर शुक्ल हावी हों—वैसे, अपनी सारी जायसी-स्तुति के बावजूद शुक्ल ने उनकी तुलना किसी से नहीं की। यदि 'पदमावत' भावुकता में उत्कृष्ट है तो 'रामचन्द्रिका' चमत्कार में। यदि पदमावत में रहस्यवाद का वैभव व्याप्त है तो रामचन्द्रिका में पाण्डित्य का। यदि पदमावत की भाषा में मिठास भरी है तो रामचन्द्रिका में छन्दवैभव-अलंकारगौरव की चमक विद्यमान है। दोनों उच्चस्तरीय महाकाव्य हैं। किन्तु जायसी के अन्य ग्रन्थ साधारण हैं जो सब मिलकर भी कविप्रिया या रसिकप्रिया में किसी एक की भी समता नहीं कर सकते। फिर, केशव ने वीरसिंहदेवचरित, जहाँगीरजसचन्द्रिका एवं रतनबावनी के रूपों में तीन सफल चरितकाव्य भी रचे हैं, विज्ञानगीता के रूप में एक सफल अध्यात्मकाव्य भी रचा है। कुल मिलाकर केशव रसनिष्पत्ति में भी व्यापकतर हैं। अतः जायसी केशव के समकक्ष कवि नहीं सिद्ध होते। कबीर को महापुरुष-महाकवि का लगभग तुलसी एवं सूर का-सा द्विविध गौरव प्राप्त है, जबकि जायसी केवल ऐसे महाकवि हैं जिस पर कबीर का भारी प्रभाव पड़ा है। जायसी, कबीर, सूर और तुलसी के जनवाद से भिन्न अभिजातवाद के गायक हैं। डॉ. विजयशंकर मिश्र के अनुसार, "उनकी संवेदनाओं का धरातल कबीर, सूर और तुलसी जैसे युगनिर्माता कवियों से पूर्णरूपेण भिन्न है"¹। जायसी का रहस्यवाद कोमल एवं मधुर है, जबकि कबीर का सशक्त एवं साधनात्मक। निस्सन्देह एक रहस्यवादी कवि के रूप में जायसी कबीर की समता नहीं कर सकते, भले ही रसदृष्टि एवं कला की दृष्टियों से सफलतर कवि हो। गुणदृष्टि से देव, बिहारी एवं भूषण जायसी से कम महत्त्वपूर्ण कवि नहीं हैं। परिमाणदृष्टि से मैथिलीशरण इन सबकी टक्कर लेते हैं। अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण प्रसाद का स्थान तुलसी, सूर और केशव के अनन्तर अन्यतम कहा जा सकता है। किन्तु केवल कवि के रूप में भी वे जायसी, देव, बिहारी, भूषण एवं मैथिलीशरण की समता करने में सक्षम हैं। 'पदमावत एवं कामायनी' तुलनात्मक शोध का उत्कृष्ट विषय है। दोनों महाकाव्य प्रतीक-निष्पन्न हैं। दोनों में कोमल कविता के दर्शन होते हैं। दोनों के आयाम स्फीत नहीं हैं। दोनों में काम-तत्त्व को प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। यदि जायसी वस्तुवर्णन में सफलतर हैं तो प्रसाद जीवनदर्शनविवृति में। भाषा के दोनों ही धनी हैं।

अंग्रेजी-कवियों में इम्मानुएल स्पेन्सर एवं जायसी की तुलना सफलतापूर्वक की जा सकती है। 'फ्रेअरी-क्वीन' में महारानी एलिजाबेथ (प्रथम) की दिव्यता प्रतिपादित है, 'पदमावत' में पद्मिनी या पद्मावती की। दोनों काव्य कल्पना पर आधृत हैं। दोनों अधिकतर सुकुमार महाकाव्य हैं। दोनों कवि भी लगभग समकालीन थे। दोनों अपने-अपने महान् साहित्यों के पुनरुत्थानकाल के महाकवि थे। दोनों के साहित्य अपने-अपने स्वर्ण-युग से जगमग-जगमग थे। 'स्पेन्सर और जायसी' शोध का अच्छा विषय है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी जैसे प्रथम श्रेणी के महाकवि को हिन्दी में गौरवशाली स्थान प्रदान कराके अमर प्रस्थान-कार्य किया है। यद्यपि उनकी आलोचना बोझिल एवं स्तुतिपरक हो गई है जिससे वस्तुवादी अध्येता को परितोष प्राप्त नहीं हो पाता तथापि वह प्रायः स्वीगीण एवं उच्चस्तरीय है। जायसी तुलसी-सूर-केशव, कबीर-रैदास-नानक, देव-बिहारी-भूषण, मैथिलीशरण-प्रसाद-निराला की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित अमर महाकवि हैं, जिनका शृंगाररससफल-रहस्यवादसफल-मधुभाषासफल पदमावत रामचरितमानस के अनन्तर एक ऐसा सफल महाकाव्य है जिसकी तुलना केवल पृथ्वीराजरासो, रामचन्द्रिका एवं कामायनी से ही की जा सकती है।

मंझन

हिन्दी के सूफ़ी कवियों में जायसी के अनन्तर श्रेष्ठतम स्थान के अधिकारी मंझन (रचनाकाल 1545 ई.) अपने विशद प्रेम-निरूपण¹, विशिष्ट प्रबन्ध-कौशल² (उपनायक-उपनायिका के चित्रण के माध्यम से मानवीय मूल्यों की विशेष प्रतिष्ठा) एवं अपनी अप्रतिम उदारता³ के कारण सर्वथा स्मरणीय हैं। इनके नाम की व्युत्पत्ति सरल नहीं। मधुमालती की लोककथा प्राचीन है जिस पर संस्कृत से हिन्दी तक अनेक काव्य रचे गए जिनके कारण जायसी ने भी उल्लेख किया और आ. शुक्ल को भ्रम हुआ कि मंझन जायसी के पूर्ववर्ती थे। शुक्ल की मंझन को जायसी के पूर्ववर्ती समझने की गलती हो या ब्रजरत्नदास की मंझन को हिन्दू समझने की गलती, कारण मधुमालती की पूर्ण प्रति का अभाव था, जिसकी पूर्ति वैज्ञानिक-साहित्यकार डॉ. शिवगोपाल मिश्र ने 1975 ई. में एकडला (जिला फतेहपुर) की पूर्ण प्रति प्रस्तुत करके की, जिसके आरम्भ में मसनवी-शैली की स्तुतियाँ कवि के मज़हब, रचनाकाल इत्यादि का प्रायः पूर्ण परिचय दे देती हैं। बाद में डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने मधुमालती का सुन्दर-सटीक संस्करण निकाला। मंझन का अल्लाह, मोहम्मद, खलीफ़ा-चतुष्टय (अबू बक्र, उमर, उस्मान, अली), शाहेवक्रत इस्लामशाह सूरी ("साह सलेम जगत भा भारी" इस्लामशाह को सलीमशाह या सलेमशाह ही कहा जाता है जैसाकि दिल्ली के सलीमगढ़ से भी जाहिर होता है; ऐसे ही औरंगज़ेब को 'नौरंग' कहा जाता था जैसाकि भूषण एवं सबलसिंह चौहान इत्यादि की रचनाएँ स्पष्ट करती हैं), गुरु मोहम्मद ग़ौस (जिसकी दरगाह ग्वालियर में है), निजस्थान ("गढ़ अनूप बस नगर चनाढ़ी"—चरणाद्रि या चुनार जिला मिर्जापुर : 'सूफ़ी काव्यसंग्रह' में आ. परशुराम चतुर्वेदी ने अनूपगढ़ की कल्पना ग़लत की है, क्योंकि मंझन का वर्णन चुनार के पक्ष में ही जाता है और चतुर्वेदी ने यह नहीं बताया कि उनका यह अनूपगढ़⁴ है कहाँ?), 'दुइ जग' (तीन लोक नहीं) इत्यादि के स्पष्ट वर्णन पूर्वभ्रान्तियों का निराकरण कर देते हैं। हाँ, 'हिन्दी सूफ़ी-काव्य की भूमिका' के लेखक डॉ. रामपूजन तिवारी ने 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में

तब हम भा दोसर जग बासा।

जब रे पितै छाँड़ा कबिलासा।।

के आधार पर मंझन के निजस्थान छोड़कर दूसरे स्थान में रहने की जो बहुत ही ग़लत कल्पना की है उसका कारण बाइबिल⁵ (तौरात या यहूदी-बाइबिल जो समग्र विराट् ग्रन्थ के आरम्भ में है—समग्र बाइबिल तौरात, जबूर और इंजील के तीन ग्रन्थों का समाहार है) एवं उसके अनुकरण में कुरान⁶ की उस आदिम कथा पर ध्यान न देना है जिसमें ईश्वराज्ञा (तौरात में ज्ञानतरुफल और कुरान में गहूँ न खाने) का पालन न करने के कारण आदम (एडम) को हव्वा (ईव) के साथ स्वर्ग से निकाल दिया गया था। 'हम' का अर्थ आदम की औलाद या आदमी मात्र से है, मंझन से नहीं। 'कबिलासा' या कैलास⁷ से अभिप्राय उस स्वर्ग से है जिससे आदम-हब्बा

1. मंझन का प्रेमनिरूपण जायसी के प्रेमनिरूपण से श्रेष्ठतर है : स्पष्ट, सरल, मार्मिक।
2. कवि ने नायक और नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका की भी योजना करके कथा को तो विस्तृत किया ही है, साथ ही प्रेमा और ताराचन्द के चरित्र द्वारा सच्ची सहानुभूति, अपूर्व संयम और निःस्वार्थ भाव का चित्र दिखाया है। —आ. शुक्ल
3. ब्रजरत्नदास ने हिन्दू मान लिया। यह भूल गए कि हिन्दू तीन लोक मानते हैं। मुसलमान दो।
4. अनूपशहर (जहाँ के महाकवि सेनापति थे) तो प्रसिद्ध है, पर अनूपगढ़ नहीं। मंझन का अभिप्राय अनुपम चुनार क़िल्ले से है। वैसे प्रयाग-चरणाद्रि निकट-निकट हैं तथा मंझनपुर गाँव भी विद्यमान है। सम्भव है, इस ग्राम का नामकरण इन्हीं पर किया गया हो। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे यहाँ पैदा हुए थे। वैसे, मंझनपुर इलाहाबाद जिले में है।
5. यूनानी के बाइबिल शब्द का अर्थ किताब या पुस्तक या ग्रन्थ होता है। मोहम्मद ने बाइबिल को जाली माना है।
6. कुरान में बाइबिल की कथाएँ मोहम्मद ने अपने ढंग से कही हैं।
7. कैल (स्वर्ग) + आस (रखा जाना, प्रस्तुत, स्थान इत्यादि) को 'कैलाश' लिखना ग़लत है। वैसे, कौशल्या, (कौसल्या) वशिष्ठ (वसिष्ठ) इत्यादि ग़लत प्रयोगों के सदृश 'कैलाश' भी चल निकला है।

ईश्वर-अवज्ञा के पाप के कारण निकाल बाहर किए गए थे। मिल्टन ने 'पैराडाइज़ लॉस्ट' इसी आधार पर लिखा है। "उत्पत्ति दोष देव हम लावा" में भी मंझन ठीक ऐसा ही प्रयोग करते हैं।

मंझन ने 'मधुमालती' में यत्किंचित् पूर्ववर्ती जायसी का अनुकरण नहीं किया है। पदमावत दुखान्त है, मधुमालती सुखान्त। पूर्ववर्ती उस्मान ने 'चित्रावली' में जायसी का अनुकरण अत्यधिक किया है। किन्तु दुखान्तता का नहीं। लगता है, मंझन ने जायसी का अध्ययन नहीं किया था और उस्मान के समय तक पदमावत चल निकला था। मंझन की भाषा जायसी की ठेठ अवधी न होकर उनकी अपनी साहित्यिक अवधी है। उन्होंने जायसी के पदमावत का सात अर्द्धालियों के अनन्तर दोहा वाला क्रम न अपनाकर कुत्वन की मृगावती का पाँच अर्द्धालियों के अनन्तर दोहे का क्रम अपनाया है। मंझन की 'मधुमालती' सूफ़ी रहस्यवाद से सम्पन्न है किन्तु वे पद-पद पर हठयोग एवं सूफ़ी-दर्शन से सम्पृक्त वर्णन नहीं करते। प्रायः अन्य सूफ़ी काव्यों के नायकों के सदृश जायसी का रतनसेन बहुपत्नीवादी है, जबकि मंझन का मनोहर एकपत्नीवादी- एकप्रेमव्रती। मंझन निष्ठावान मुसलमान है किन्तु जायसी के सदृश साम्प्रदायिक नहीं। उनकी सहज उदारता अन्य किसी सूफ़ी कवि में नहीं दीखती। उनके नखशिख-वर्णन में सौन्दर्य-चित्रण अतीव प्रभावी है, यद्यपि वह जायसी के नखशिख-वर्णन की समता नहीं कर सकता। उनका प्रेमनिरूपण (वस्तुतः विरहनिरूपण) सर्वोत्तम है! जायसी महाकवि हैं, मंझन कवि। पदमावत महाकाव्य है, मधुमालती बस प्रबन्धकाव्य (विशेष आकार-प्रकार के कारण खण्डकाव्य नहीं)। जायसी फ़कीर भी हैं, मंझन केवल कवि। किन्तु उनकी अस्मिता का महत्त्व नकारा नहीं जा सकता। मंझन दाऊद एवं कुत्वन से अधिक मार्मिक हैं, उस्मान से अधिक कलात्मक हैं, नूरमोहम्मद से अधिक निबद्ध हैं। मंझन की मधुमालती में नायिका मधुमालती और नायक मनोहर तथा उपनायिका प्रेमा और उपनायक ताराचन्द में मानव-मूल्यों की जैसी प्रतिष्ठा चित्रित की गई है, वैसी किसी अन्य सूफ़ी काव्य में नहीं। मंझन सूफ़ी कवियों में सर्वाधिक सरल हैं। वे प्रसाद एवं माधुर्य गुणों के स्मरणीय कवि हैं। बटलोई के दो दाने देखिए :

1. देखत ही पहिचाना तोही। इहै रूप जेहि छँदरा मोही॥
इहै रूप बुत अहै छपाना। इहै रूप सब सृष्टि समाना॥
इहै रूप सकती औ सीऊ। इहै रूप त्रिभुवन कर जीऊ॥
एही रूप प्रगटे बहु भेसा। एही रूप जग रंक नरेसा॥
2. विरह उदधि अवगाह अपारा। कोटि माहिं यक परै त पारा॥
विरह कि जगत अबिरथा जाही। विरह रूप यह सृष्टि सबाही॥
नैन विरह अंजन जिन सारा। विरह रूप दरपन संसारा॥
कोटि माहिं बिरला जग कोई। जाहि सरीर विरह दुख होई॥
रतन कि सागर-सागरहि, गजमोती गज कोई।
चँदन कि बन-बन उपजै, विरह कि तन-तन होइ॥

मंझन का नायक मनोहर नायिका मधुमालती के 'दुख' (विरह) को सर्वस्व समर्पित करके बेसाहता (खरीदता) है, वह "ठग लाडू खाएँ" की सुस्पष्ट घोषणा करता है। उसका अटल एवं एकनिष्ठ प्रेम सूफ़ी-कविता की निधि है। नारी पर सर्वग्रासी (चिकट पर्दा, भयावह तलाक़, संत्रासकारी बहुपत्नीवाद, असमतापूर्ण एक पुरुष के बदले दो स्त्रियों की गवाही, सर्वथा आलोच्य बलात्कार पर चार साक्षी लाने पर ही बलात्कारी को दण्ड दिया जाना अन्यथा स्त्री को दण्ड इत्यादि) अत्याचार करने वाले मज़हब के मंझन द्वारा नायक का एकनिष्ठ प्रेमचित्रण उन पर भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल प्रभाव की सूचना देता है।

मंझन ने भी नायक के अभियान का विस्मयकारी वर्णन किया है किन्तु वह उस्मान की तुलना में कहीं नियन्त्रित है।¹ मंझन कहीं भी अतिरेक के कवि नहीं है। उन्होंने सर्वत्र 'मध्यता प्रतिपदा' पर गमन किया है, जिससे वे अतीव प्रिय कवि प्रतीत होते हैं।

1. मध्यकालीन साहित्य में पाश्चात्य कवियों एवं लेखकों ने विस्मयकारी यात्राओं एवं रोमांचकारी अभियानों के वर्णन किए हैं, हिन्दी के सूफ़ी कवि भी पीछे नहीं रहे किन्तु पाश्चात्यों के वर्णन नितान्त कल्पित न होने के कारण इस दृष्टि से विशेष प्रभावी हैं (डैनीअल डीफ्रो वृत्त ग्रन्थ विशेष प्रमाण है)। विस्मयपूर्ण यात्रा-वर्णन रामायण, महाभारत, इलिअड, ओडिसी इत्यादि महत्तम एवं प्राचीनतम काव्यों में भी प्राप्त होते हैं—इस दृष्टि से ओडिसी सर्वथा विलक्षण है।

2. सन्त-काव्य

सन्त-पुनरुत्थान के प्रतीक

सन्त शब्द भारतमूलक है जो 'सं' (सम्यक्) + 'त' (तरण) के योग से बना है, जिसका अर्थ है—वह श्रेष्ठ व्यक्ति जो संसार-सागर को "सम्यक् रूप से तर ले" अर्थात् लोक-परलोक सँवार सके। ऋग्वेद में "एकं संतं बहुधा कल्पयन्ति" जैसे सूत्र प्राप्त होते हैं जो सन्त शब्द को द्रष्टा, ऋषि, विद्वान् प्रभृति का पर्याय घोषित करते हैं। 'सन्तरण' शब्द में 'सन्त' समाहित है। ईसा पर अद्वैतवाद एवं बौद्धधर्म के व्यापक प्रभावों के साथ, 'सन्त' आज के इस्राइल, उर्दुन (जॉर्डन), साम (सीरिया) इत्यादि देशों में पहुँचा, वहाँ से ईसाई मज़हब के कारण पश्चिम, जहाँ इसे 'सेंट' कहा गया। साधु शब्द साधनासूचक है, सन्त शब्द भवसागरतरणसूचक। साधना से ही तरण सम्भव है, अतः 'साधु-सन्त' शब्दों का सम्मिलित प्रयोग भी प्रचलित है, जो ठीक ही है। सामी मज़हबों (यहूदी तथा उससे निकले ईसाई एवं मोहम्मदी-तीन) के भारत से परिचय का इतिहास बहुत पुराना है। 52 ई. में सेंट टॉमस केरल में आया तथा ईसा से सम्बन्धित अन्धविश्वासपूर्ण कथाएँ सुना-सुना कर ईसाई बनाने के धन्धे में जुट गया। विशेष सफलता न प्राप्त होने पर वह तमिलनाडु की ओर बढ़ा, जहाँ मद्रास में मार डाला गया। यहूदी भी मारकाट से बचते भारत आए थे, जिनके वंशजों में से अनेक 1948 ई. में इस्राइल के यहूदी-राष्ट्र बनने पर वहाँ चले गए किन्तु कुछेक अब भी हैं। अरबों के साथ भारतीयों के व्यावसायिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध भी प्राचीन हैं तथा मोहम्मदीयत से पूर्व एवं पश्चात् उनमें से अनेक सहजधर्मी एवं मुसलमान यहाँ आया-जाया करते थे। अतः सन्त शब्द का व्यापक प्रचार-प्रसार अनेक देशों एवं धर्मों में हो गया। भारत में मोहम्मदीयत के आने पर "यथा राजा तथा प्रजा" के अनुरूप मूर्तिपूजा-विरोध को अनायास ही एक विशेष गरिमा प्राप्त हो गई और बहती गंगा में हाथ धोनेवालों के ठट्ठ-कें-ठट्ठ निकल पड़े। ये सन्त कहलाए। ये भारतीय थे अतः इन पर अद्वैतवाद तथा तदनुरूप "एकं संतं बहुधा कल्पयन्ति" की उदारता के प्रतीक विष्णु, शिव, विष्णु के केशव प्रभृति नामों या राम-कृष्णादि अवतारों का भी प्रभाव पड़ा। महान् शंकराचार्य ने भारत के इतिहास में उपनिषद्-प्रभाव एवं संस्कृत-प्रसार का जो नूतन अध्याय खोला था, उससे भी ये अनुप्राणित थे। चूँकि मोहम्मद साहब अनाथ एवं निरक्षर थे, जिनका चलाया मज़हब सुल्तान, अमीर, उमरा, सिपहसालार, सरदार वगैरह अपनाए थे; अतः अनेक अनाथ, निरक्षर एवं तथाकथित निम्नवर्गीय व्यक्तियों को 'साहब' बनने की प्रेरणा प्राप्त हुई। किन्तु उन्हें आध्यात्मिक, दार्शनिक या नैतिक प्रेरणा हेतु उपनिषद् की शरण में जाना पड़ा—और, यह उन्हें अनायास प्राप्त भी थी। औपनिषदिक अद्वैतवाद, शांकर मायावाद एवं संस्कृत-प्रभाव, मोहम्मद का जीवन इत्यादि के प्राचीन एवं समसामयिक तत्त्व सन्तों में एकाकार हो गए—अतः उन्हें हिन्दुओं ने भी आदर दिया, मुसलमानों ने भी।

भारतीय पुनरुत्थान के इस दौर का गहनतर रूप सन्त-साहित्य में दृग्गत होता है। इस समय तक हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं संगति व्यावहारिक एवं भावात्मक रूप ग्रहण कर चुकी थी, जिसमें नामदेव ने 'पांडे' का मज़ाक उड़ाने में भय का अनुभव नहीं किया, कीर्तिलता के कवि विद्यापति मिथिला-नरेश कीर्तिसिंह के जौनपुर-सुल्तान इब्राहीमशाह के समक्ष नत होने के वर्णन से नहीं कतराए, मुसलमान जुलाहे कबीर को शिष्य बनाने में ब्राह्मण रामानन्द नहीं विदके (या मोमिन कबीर काफ़िर रामानन्द के शिष्य बनने को उत्सुक हुए), खत्री नानक ने 'म्लेच्छ' मर्दाना को पट्टशिष्य का गौरव प्रदान किया (या मर्दाना क़ाबिले-क़त्ल ग़ैर-मुसलमान के क़दमों में जा पहुँचा), शेरशाह ने शासन में देवनागरी लिपि को प्रवेश प्रदान किया, अकबर ने सूर्य ओ पूजा और गंगाजल पीने का नियम बनाया और राम-जानकी सिक्का चलाया, भगवानदास ने लाहौर में मस्जिद बनवाई। कबीर और जानकी इत्यादि खुसरो और नामदेव इत्यादि के सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुए। निस्सन्देह, नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि मोहम्मदीयत से प्रभावित थे (कबीर तो आनुवांशिक दृष्टि से मुसलमान थे ही), किन्तु अनुप्राणित ये हिन्दू-अद्वैतवाद से ही हुए। मोहम्मदीयत ने इन्हें सूफ़ीवादी, समझौतावादी तथा अद्वैतवाद ने इन्हें गहन सर्ववादी, विशद रहस्यवादी और सार्वभौम मानवतावादी बनाया। पुनरुत्थानके पहले दौर में मोहम्मदीयत की आलोचना सम्भव न थी जैसा कि खुसरो, दाऊद, जायसी इत्यादि के सूफ़ी-साहित्य में दृग्गत होता है। पुनरुत्थान के दूसरे दौर में कबीर ने अप्राकृतिक सुन्नत, मस्जिद पर चढ़कर मुल्ले के बाँग देने, रोज़े के बाद गोहिंसा करने, पीरों-औलियों के मुर्गी-मुर्गा खाने, खाला की बेटी ब्याहने इत्यादि का मज़ाक उड़ाया, प्रत्याख्यान किया तथा नानक ने दफ़नाने की प्रथा पर प्रहार किए।¹ प्रायः मुसलमान, विशेषतः भारतीय मुसलमान, रूढ़िवादी

1. भूमि-दुरुपयोग, स्वास्थ्य-व्यवधान, अपव्यय इत्यादि सभी दृष्टियों से शवदाह प्रगतिशील एवं वैज्ञानिक है। इसीलिए, एलन ऑक्टेविअन ह्यूम (1885 ई. में इण्डियन नेशनल कांग्रेस के संस्थापक), बर्ट्रान्ड रसेल (दार्शनिक) जैसे ईसाइयों तथा मोहम्मदअली करीम छागला (विधिवेत्ता एवं राजनीतिज्ञ), फ़ीरोज गांधी (नेता) इत्यादि भारतीय मुसलमान एवं पारसी महानुभावों ने इसे ही प्रश्रय दिया था।

एवं प्रतिक्रियावादी होते हैं, जो आज तक एकपत्नीवाद एवं परिवार-नियोजन जैसे विश्व-स्वीकृत गुणों से भी भिन्नकते हैं, किन्तु उन्होंने भी कबीर, नानक इत्यादि को सुना, क्योंकि ये सन्त हिन्दू-रूढ़ियों (मूर्तिपूजा, अस्पृश्यता, तीर्यटन इत्यादि) को कहीं-अधिक बढ़-चढ़कर आलोचना कर रहे थे, जिसका एक कारण प्रहार का निरापद होना भी था—आज भी घोर कर्मकाण्डवादी बौद्ध, मुखपट्टिकावादी एवं आत्महत्यावाद-मण्डनकर्ता जैन, अस्वच्छ शवपक्षिभक्षणवादी पारसी, विलक्षण ग्रन्थपूजनवादी सिख, नरकभयवादी-अन्धविश्वासवादी ईसाई, सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी मुसलमान इत्यादि धड़ल्ले से “खुदरा फ़ज़ीहत दीगरा नसीहत” के सुगम पथ पर चलते हुए हिन्दूधर्म पर प्रहार करके ‘प्रगति’ का तमगा लगाने से बाज़ नहीं आते। पैगम्बर बनकर खुद को खुदा बनाकर पुजवाने का लक्ष्य हो या येन-केन-प्रकारेण नाम कमाने का (लोकेषणा एक सार्वभौम वृत्ति है), सन्तों के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा समता के पथ प्रशस्त हुए। मुसलमान जुलाहा कबीर और धुनियाँ दादू हों या हिन्दू दर्जी नामदेव, चर्मकार रैदास, नाई सेन—सभी को सारे समाज ने मस्तक झुकाया। सदन (सधना, सदना) जैसे कसाई भी ‘तर’ गए (महाभारत के ‘व्याध’ का स्मरण आता है जिसकी व्याधगीता कर्मैक्यगरिमा की प्रतीक है)! नानक, रज्जव, सुन्दरदास, जगजीवन साहब, यारी साहब, दरिया साहब इत्यादि की परम्परा शताब्दियों तक जीवन्त रही, अब भी जीवन्त है। कबीर इत्यादि सन्त भारतीय पुनरुत्थान के महान् नेता थे जिन्होंने आधुनिक नेताओं के सदृश एक वर्ग के तुष्टीकरण की भयावह दुर्बलता से ऊपर उठकर सहज एवं स्वच्छ मानवतावाद का उद्घोष किया। इसीलिए उनका प्रभाव आज तक ज्यों-का-त्यों है। जिन ब्राह्मणों की उन्होंने पाखण्ड-उच्छेद से लेकर अशिक्षामूलक-हीनभावना तक से प्रेरित होकर साधार या निराधार आलोचना की, उन्होंने भी उन्हें आदर प्रदान किया क्योंकि उनमें दुर्बलताएँ कम थीं और सबलताएँ अधिक। निस्सन्देह, शुद्धसमतावादी रामानन्द, रैदास, कबीर, नानक इत्यादि ईसाइयत-प्रेरित राममोहन राय, सर्वखण्डक दयानन्द, पश्चिमभक्त रवीन्द्र, तुष्टीकरणवादी गांधी इत्यादि से श्रेष्ठतर नेता थे, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनका व्यापकतर एवं स्थायी प्रभाव है।

निर्गुणधारा एवं ज्ञानाश्रयीशाखा की निराधारता

आचार्य शुक्ल का इतिहास विरोधाभासों का पुंज है। एक ओर वे सिद्धों इत्यादि के कोरे सैद्धान्तिक अथवा साहित्येतर होने का आदेश देते हुए अपने आदिकाल का वीरगाथाकाल नामकरण करते हैं, उसका आरम्भ 1050 वि. (993 ई.) से करते हैं और दूसरी ओर सिद्धों, नाथों एवं जैनों के साहित्य पर प्रकाश भी डालते हैं। एक ओर पृथ्वीराजरासो को जाली घोषित करते हैं और दूसरी ओर वस्तुतः उसी के आधार पर (उसके अधिकतर एवं श्रेष्ठतर शृंगार-काव्य की एकान्त अवहेलना करते हुए) एक समूचे काल को वीरगाथाकाल कह डालते हैं। वीसलदेवरासो शृंगारप्रधान है, हम्मीररासो अनुपलब्ध है तथा जिन छन्दों को वे शार्ङ्गधर कृत मानते हैं वे स्पष्टतः जज्जल के हैं, परमालरासो या आल्हखण्ड अपने मूल रूप में अनुपलब्ध है, जयमयंकजसचन्द्रिका एवं जयचन्द्रप्रकाश समग्रतः अनुपलब्ध रहे हैं, और हैं, खुमानरासो जिसे वे प्राचीनतम मानते हैं वस्तुतः अठारहवीं सदी में रचित ब्रजभाषा-शृंगारकाव्य है; अतः वीरगाथाकाल नामकरण निराधार है। उनका भक्तिकाल नामकरण नितान्त एकांगी एवं प्रतिक्रियावादी है जो महान् ऐतिहासिक पुनरुत्थान की सूचना तक नहीं दे पाता तथा एक महान् काल के अनेक महान् कवियों को फुटकल खाते में डालने की मनमानी करता है। उनका निर्गुण-धारा का वर्गीकरण नितान्त संकीर्ण है क्योंकि कबीर इत्यादि मोहम्मदी प्रभाव के कारण सिद्धान्ततः निराकारवादी होते हुए भी “निरगुन की सेवा करो सरगुन का करि ध्यान” के व्यवहारवाद से अपरिचित न थे, गुरु अर्जुन तो स्पष्टतः “निरगुन अपि सरगुन भी ओही” तथा “ईधै निरगुन ऊधै सरगुन केलि करत बिच सुआमी मेरा” के विराटवादी उद्घोषक थे, तथा कबीर, रैदास, नानक, अंगद इत्यादि ने विष्णु एवं उनके अनेक नामों, राम एवं उनके अनेक नामों, कृष्ण एवं उनके अनेक नामों, अन्य देवी-देवताओं, पौराणिक पुण्यात्माओं इत्यादि का सादर उल्लेख भी किया है। एक ओर भक्तिकाल कहना तथा दूसरी ओर ज्ञानाश्रयी शाखा का खूँटा ठोकना विरोधपूर्ण है क्योंकि ज्ञान तथा भक्ति में अन्तर भी है—“ग्यानहिं भगतिहि नहिं कछु भेदा” के आगे “मुनीस कहहिं कछु अंतर” भी विद्यमान है, भले ही वह “एक दारुगत देखिय एकू” का ही हो। सम्पूर्णानन्द एवं प्रसाद ने बीसवीं सदी में भी इस अन्तर को स्पष्ट किया है तथा आवेश में आकर भक्ति का निरादर तक कर डाला है जो अनुचित है। “अहं ब्रह्मास्मि” या “तत्त्वमसि” या “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” के सत्य का साक्षात्कार ज्ञान है, “संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः” पर आधृत कैवल्य की अनुभूति योग है, “परानुरक्तिरीश्वरे” भक्ति है। यही कारण है कि सूर एवं तुलसी जैसे हिन्दी-सीमान्तों ने ज्ञान तथा योग से भक्ति का अनन्तर प्रतिपादित किया है। आचार्य शुक्ल का भक्तिकाल पर ज्ञानाश्रयी शाखा थोपना भ्रामक एवं निराधार है, क्योंकि अनुरक्तिपरक भक्ति एवं

विरक्तिपरक ज्ञान में सुस्पष्ट तात्त्विक अन्तर विद्यमान है तथा कबीर इत्यादि ने ज्ञान, शिक्षा, पोथी (वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान) इत्यादि का डट कर विरोध भी किया है। उनकी सूफी प्रेमकथाओं की भक्ति की ओर ठेलाठाली तो खैर नितान्त निराधार है ही। वास्तव में आचार्य शुक्ल को 'हिन्दी-शब्दसागर' की सम्पादक-मण्डल प्रणीत भूमिका को हिन्दी के विश्वविद्यालय-प्रवेश पर पाठ्यक्रम-आग्रहवश 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' का रूप अत्यधिक त्वरा में देना पड़ा था। अतः वह सुनियोजित एवं सुचिन्तित नहीं बन सका। हिन्दी-क्षेत्रों के पिछड़ेपन, हिन्दी-विद्वानों की परोपजीविता, राष्ट्रीय रुढ़िवाद एवं 'वीरपूजा' प्रभृति कारणों से उस पर सम्यक् पुनर्विचार नहीं हो सका। फिर भी सामान्यतः आचार्य श्यामसुन्दरदास, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त इत्यादि तथा विशेषतः डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आंशिक पुनर्विचार के यत्न किए हैं। मैंने आमूलचूल पुनर्विचार किया तो राजयक्ष्मा एवं परिहास इत्यादि के उपहार प्राप्त किए! यह है 'भारतीय विकासवाद'! यह सत्य है कि एक विराट् ब्रह्म अपने महतोमहीयान् एवं अणोरणीयान् सार्वभौम वैविध्य में निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार, ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म, सबको समेटे हुए है, किन्तु जब वर्गीकरण किया ही जा रहा हो तब उसमें तात्त्विक सूक्ष्मता को वरीयता देना ही सत्य के साक्षात्कार में सहायक सिद्ध हो सकता है। मैं बौद्धिक-अद्वैतवादी हूँ, अतः मुझे 'अन्तर' बहुत ही कम प्रभावित कर पाते हैं और 'निरन्तर' ही प्रिय लगता है। किन्तु वर्गीकरण में मैं अपने 'मैं' का नहीं अपितु तर्क एवं ग्राह्यता का ही सम्मान करता हूँ। आचार्य शुक्ल एक महान् आलोचक थे और मैं तो उनकी शिष्य-परम्परा में भी समाविष्ट हूँ, क्योंकि पं. कृष्णशंकर शुक्ल मेरे शिक्षकों में थे। किन्तु ज्ञान का विकास तब होता है जब सत्य को ही वरीयता प्रदान की जाए। प्लेटो (अफ़लातून) और एरिस्टॉटल (अरस्तू) के गुरुशिष्य विचारद्वन्द्व ने विश्व को आगे बढ़ाया है। हेगेल (हीगेल) और मार्क्स के गुरु शिष्य विचार-द्वन्द्व ने विश्व को आगे बढ़ाया है। अतः हम हिन्दीप्रेमियों को पोंगापंथी बने रहने से बचकर आगे बढ़ाना चाहिए, जिससे हम परिहासपात्र मात्र न बने रहें। मैंने सूफी-काव्य, सन्त-काव्य, राम-काव्य, कृष्ण-काव्य, प्रभृति सुस्पष्ट एवं व्यापक वर्गीकरण इसी दृष्टि से किए हैं जो न भारी-भरकम हैं, न जटिल।

अद्वैतवाद एवं तत्प्रेरित रहस्यवाद

सन्त उपनिषद् की सन्तान थे। वे उपनिषद् के 'सोऽहं' से अनुप्राणित थे। उनका अन्तस्साधनावाद सिद्धों एवं नाथों की परम्परा का विकास होते हुए भी उपनिषद्-प्रेरित था, क्योंकि उसमें न पंचमकार था और न जाटिल्य। सन्तों ने अद्वैतवाद का सरलीकरण किया, उसे अपने रहस्यवाद की कोमल-कान्त भावनाओं से सजाया। सन्त ज्ञानेश्वर या ज्ञानदेव, सन्त नामदेव, परमगुरु रामानन्द, सन्त रैदास, सन्त कबीर, गुरु नानक एवं परवर्ती सन्त स्थूल मोहम्मदी एकेश्वरवाद के अनुयायी न थे, सूक्ष्म "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" में मूलबद्ध औपनिषदिक अद्वैतवाद के अनुयायी थे :

नेरे नाहीं दूरि¹। निज आतमै रहिआ भरपूरि॥

जहँ अनहत सूर उज्यारा। तहँ दीपक जलै छँछारा॥

(नामदेव)

कत जाइए? रे! घर लागो रंगु। मेरा चितु न चलै मनु भइयो पंगु॥

एक दिवस मन भई उमंग। घसि चंदन, चोआ, बहु सुगंध॥

पूजन चाली ब्रह्म ठाइ। सो ब्रह्म बताइओ गुरु मन ही माहि॥

जहाँ जाइए तहँ जल, पखान। तू पूरि रहिओ है सभ समान॥

(रामानन्द)

जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा। जउ तुम चंद तउ हम भए हैं चकोरा॥

जउ तुम दीवरा तउ हम बाती। जउ तुम तीरथ तउ हम जाती॥

साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी। तुम सिउ जोरि अवर सँगि तोरी॥

(रैदास)

मोको कहाँ ढूँढ़ता बंदे! मैं तो तेरे पास में।

ना मैं छगरी, ना मैं भेंड़ी, ना मैं छुरी गँडास में॥

1. सातवें आसमान या तीर्थ-विशेष या मूर्ति-विशेष की दूरी पर नहीं प्रत्युत निकट ही (आत्मा में ही)।

नहीं खाल में, नहीं पूँछ में, ना हड्डी, ना माँस में।
 ना मैं देवालय, ना मैं मसजिद, ना कावे-कैलास में॥
 ना मैं कौनो क्रिया-क्रम में, नाहीं जोग-उदास¹ में।
 खोजी होय तौ तुरतै मिलता पल भर की तालास में॥
 मैं तो रहों सहर में बाहर, मेरी पुरी मवास में।
 कहै कबीर सुनो भइ साधो! सब साँसों की साँस में॥ (कबीर)
 तत्त्वमसी² इनके उपदेसा। ई उपनिषत कहै संदेसा॥ (कबीर)
 सहस³ तव नैन, न न नैन है तेहि कउ, सहस मूरति न ना एक तोही।
 सहस पद विमल, न न एक पद; गंध बिनु, सहस तव गंध, इव चलत मोही॥
 सभ मइ जोति जोति है सोइ।
 तिसकै चाणनि सभ महि चाणनि होइ॥ (नानक)
 धीव दूध में रमि रसा, ब्यापक सब ही ठौर।
 दादू बकता बहुत हैं, मथि काढहिं ते और॥ (दादू)
 सबहिन के हम सबै हमारे। जीव जंतु मोहि लगैं पियारे॥
 तीनों लोक हमारी माया। अंत कतहुँ से कोइ नहिं पाया॥
 छतिस पवन हमारी जाति। हमहीं दिन औ हमहीं राति॥
 हमहीं तरवर कीट पतंगा। हमहीं दुर्गा हमहीं गंगा॥
 हमहीं मुल्ला हमहीं काजी। तीरथ बरत हमारी बाजी॥ (मलूकदास)
 लगी सोहंगम² की डोरि। (कबीर)
 सो ब्रह्मांडि पिंडि सो जानु।
 मानसरोवरि करु असनानु॥
 सोऽहं सो जा कउ है जाप।
 सो कउ लिपत न होइ पुन अरु पाप॥ (कबीर)
 सोहं आपु पछाणीए सबदि भेदि पतीआइ। (नानक)
 नानक सोहं हंसा जापु जापहु त्रिभवण तिसै समाहि। (नानक)
 जोग जुक्ति अभ्यास करि सोऽहं सबद समाय। (भीखा)
 अजपा सोहं जाप है परम गम्य निज सार। (दयाबाई)
 सोहं सोहं सोहं हंसो। सोहं सोहं सोहं अंसो॥
 स्वासो सोहं सोहं जापं। सोहं सोहं आपै आपं॥ (सुन्दरदास)
 सोहं हंसा लागलि डोर। सुरति निरति चटु मनुवाँ मोर॥ (बुल्ला साहब)
 तुमही सोहं सुरत हौ, तुम ही मन औ पौन।
 इनमें दूसर कौन है, आवै जाय सो कौन॥ (गरीबदास)

सन्तों का रहस्याद उपनिषदमूलक होते हुए भी औपनिषदिक साधना के विभिन्न विकासों, विशेषतः सूफियों के प्रेमवाद एवं नाथों के हठयोग, से भी समन्वित है। ज्ञानेश्वर या ज्ञानदेव, रामानन्द, रैदास, कबीर, भीखा, धर्मदास, नानक, अर्जुन, दादू, रज्जब, सुन्दरदास,

1. उत् (ऊपर) + आस (अधिष्ठित) = उदासीन। सांसारिकता से ऊपर उठा साधक। यहाँ अभिप्राय उदासीनता से है।
2. "तत्त्वमसि"। —छान्दोग्य उपनिषद्।
3. 'पुरुष-सूक्त' (ऋग्वेद एवं यजुर्वेद) के "सहस्रशीर्षाः....सहस्राक्षः" इत्यादि का प्रभाव।
4. विशुद्ध अवतारवादी तुलसी भी लिखते हैं: सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीपसिखा सोइ परम प्रचंडा।

जगजीवन साहब, यारी साहब, दरिया साहब, चरणदास, सहजोबाई, दयाबाई, मलूकदास, अक्षर अनन्य, प्राणनाथ इत्यादि सन्त उच्चस्तरीय रहस्यवादी भी हैं। सन्तों का रहस्यवाद उनके विशद समन्वयवाद का विशद उद्गार है, किसी संकीर्ण साधना की एकांगी उद्भूति नहीं :

जब देखा तब गावा। तउ जन धीरजु पावा।।
 नदि समाइलो रे! सतिगुरु भेटिले देवा।।
 जहँ झिलमिलकारु दिसंता। तह अनहद सबद बजंता।।
 जोति जोति समानी। मैं गुरु-परसादी जानी।।
 रतन कमल कोठरी। चमकार बीजुल तही।।¹ (नामदेव)
 बेगमपुरा सहर को नाउ। दूखु अँदोह नही तिहि ठाउ।।
 न तसवीस, खिराजु न मालु। खउफु न खता, न तरसु-जवालु।।
 अब मोहि खूब वतन गह पाई। ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई।।
 काइमु दाइमु सदा पातिसाही। दोम न सोम एक सो आही।।² (रिदास)
 सह की सार सुहागिनि जानै। तजि अभिमानु सुख-रलिआ मानै।।
 तनु-मनु देइ न अंतर राखै। अवरा देखि न सुनै न भाखै।।³ (रिदास)
 हेरत-हेरत है सखी! रह्या कबीर हिराइ।
 बूँद समानी समैंद मैं, सो कत हेरी जाइ।।
 हेरत-हेरत हे सखी! रह्या कबीर हिराइ।
 समैंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्या जाइ।।⁴ (कबीर)
 जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहरि-भीतरि पानी।
 फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।।
 आदैं गगनों, अतैं गगनों, मध्ये गगनों भाई।
 कहै कबीर करम किस लागै? झूठी संक उपाई।।⁵ (कबीर)
 काहे रे नलिनी! तू कुमिलानी? तेरे ही नालि सरोवर पानी।।
 जल में उतपति, जल में वास। जल में नलिनी! तोर बिकास।।
 ना तलि तपति, न ऊपरि आगि। तोर हेतु कहु, कासनि लागि?
 कह कबीर जे उदिक समान। ते नहिं मुए हमारे जान।।⁶ (कबीर)
 अनहदो अनहदु बाजै रुण झुण कारे राम।
 मेरा मनो मेरा मनु राता लाला पियारे राम।।
 अनदिनु राता मन बैरागी सुनिमंडलु⁷ घरु पाइया।
 आदि पुरखु अपरंपर पिआरा सतिगुर अलख लखाइया।। (नानक)
 सावणि सरस मना घण बरसहि रुति आए।
 मैं मनि तनि सु भावै पिर परदेसि सिधाए।।
 पिरु घरि नहिं आवै मरीए हावै दामिनि चमक डराए।
 सेज इकेली परी दुहेली मरण भइया दुखु माए।।
 हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापडु तनि सुखावए।
 नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अकि समावए।।⁸ (नानक)

1. हठयोग का प्रभाव। नामदेव के गुरु ज्ञानदेव या ज्ञानेश्वर हठयोगी थे। 2. “.... तद्ग्राम परमं मम!” —गीता।

3. सूफ़ी-प्रभाव।

4. अद्वैतवाद का अद्वितीय निरूपण।

5. “पूर्णमदः पूर्णमिदः.....”।

6. आनन्द-सिन्धु मध्य तब बासा। बिनु जाने केस मरसि पियासा।। —तुलसी (विनयपत्रिका)

7. शून्य-मण्डल या सहस्रार-चक्र। हठयोग-प्रभाव।

8. सूफ़ी-प्रभाव। लोकगीतों की बारहमासा-शैली जिसमें प्रिय का हरि कहा जाता है।

सखी! काजल हार तम्बोल सभै किछु साजिआ।
 सोलह कीए सिंगारु कि अंजल पाजिआ।।
 जे घरि आवै कंतु न सभ किछु पाइए।
 हरि हां कंतै बाझु सींगार सभ बिरथा जाइए।।
 ऊपरि बनै अकास, तलै धर सोहती।
 दह दिसि चमकै बीजल मुख कउ जोहती।।
 खोजत फिरउ विदेसि पीउ कत पाइए।
 हरि हां जै मसतकि हौवे भाग त दरस समाइए।।
 सुपनै ऊभी भई गहिओ कि न अंचला।
 सुंदर पुरख विराजत पेखि मन वंचला।।
 खोजउ ताके चरण कहउ कत पाइए।
 हरि हां सोई जतनु बताइ सखी! प्रिउ पाइए।।

(गुरु अर्जुन)

वैष्णव प्रभाव

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विभाजनवादी अथवा वर्गीकरणमोही मस्तिष्क ने निर्गुण एवं सगुण के पार्थक्य का ऐसा रमरसरा छेड़ा कि नामदेव, रैदास, कबीर, नानक इत्यादि के सन्दर्भ में उन पर वैष्णवता के भारी प्रभाव का अमूल्य बिन्दु ही लुप्त-सा हो गया। आचार्य श्यामसुन्दरदास ने 'कवीर-ग्रन्थावली' की उच्चस्तरीय भूमिका में आचार्य शुक्ल के द्वारा प्रचलित किए गए भ्रम का प्रशस्त्य निराकरण किया है किन्तु वह एक व्यक्ति से सम्बद्ध है तथा दब-दबा सा है। वास्तव में आचार्य शुक्ल के ब्राह्मणवाद (और उसमें भी सरयूपारीणवाद) ने हिन्दी के आलोचना-आकाश को समग्रतः आच्छादित कर लिया था—अब तक उनका आतन्क व्याप्त है—अतः अन्धश्रद्धा में बहता भारत का सबसे अधिक पिछड़ा हिन्दी-क्षेत्र तथ्य सुनने तक को प्रस्तुत न था। अब भी स्थिति लगभग वैसी ही है। किन्तु सत्य का उद्घाटन साहित्येतिहासिकार का प्रधान दायित्व है। अतः मैं सन्तों पर वैष्णवता के विराट् प्रभाव पर प्रकाश अदृश्य डालूँगा। यह सत्य है कि नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि सन्तों पर मोहम्मदीयत, विशेषतः सूफी-दर्शन, का भारी प्रभाव पड़ा था जो मूर्तिपूजा-खण्डन, यत्र-तत्र राम-कृष्ण-आलोचन, यत्र-तत्र वेद-शास्त्र-पुराण-निन्दन इत्यादि में दृग्गत होता है, किन्तु इससे उन पर उपनिषद् के अद्वैतवाद के सर्वोपरि प्रभाव, हठयोग के अधिक भारी प्रभाव, वैष्णवता के सात्त्विक जीवनवाद (विशेषतः अहिंसक भोजनादि) के विशद व्यावहारिक प्रभाव का महत्त्व कम नहीं हो जाता—कृष्ण एवं बुद्ध की वेद-आलोचना, राममोहन राय एवं रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर ईसाई-प्रभाव, विरजानन्द एवं दयानन्द की पुराण-विगर्हणा इत्यादि के कारण उनका भेदवादी आकलन विध्वंसवादी मात्र माना जाएगा। सन्तों पर व्यापक वैष्णव (विष्णु एवं उनके अवतारों की प्रशस्ति, जीवन-दर्शन इत्यादि) प्रभाव उन पर मोहम्मदीयत के या निर्गुण के प्रभाव से कम व्यापक या कम महत्त्वपूर्ण नहीं है :

हरि-हरि करत मिटे सभि भरमा। हरि को नाम लै ऊतम धरना।।
 हरि-हरि करत जाति-कुल हरी। सो हरि अँधुले की लाकरी।।
 हरिए नमसते हरिए नमह। हरि-हरि करत नहीं दुखु जमह।।
 हरि हरनाकस हरे परान। अजैमिल कीओ बैकुंठहिं थान।।
 सुआ पड़ावत गनिका तरी। सो हरि नैनहु की पूतरी।।
 हरि-हर करत पूतना तरी। बालघातनी कपटहिं भरी।।
 सिमरत द्रोपदसुत उधरी। गउतम सती सिला निसतरी।।
 केसी कंथ मथनु जिनि कीआ। जीअ दान काली कउ दीआ।।
 प्रणवै नामा ऐसो हरी। जासु जपत भै-आपदा तरी।।¹

(नामदेव)

1. "हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ" (सूर) से तुलनीय।

दसरथराय-नन्द राजा मेरा रामचन्द्र । प्रणवै नामा तत्त्व रस अमृत पीजै ॥ (नामदेव)

धनि-धनि स्याम बेनु बाजै । मधुर-मधुर धुनि अनहत गाजै ॥

धनि-धनि मेघा रोमावली । धनि-धनि क्रिसन ओढ़े काली कामली ॥

धनि-धनि तू माता देवकी । जिह ग्रिह रमईआ कवलापती ॥

धनि-धनि बनखंड ब्रिंदाबना । जह खेलै श्री नाराइना ॥

बेनु बजावै गोधुन चरै । नामे का सुआमी आनन्द करै ॥ (नामदेव)

जिह कुल साध बैसनौ¹ होइ ।

बरन-अबरन, रंक नहीं, ईसुरु-वासु जानिए जगु सोइ ॥

ब्रह्मन, बैस, सूद अरु खत्री², डोम, चंडाल, मलेछ³ मन सोइ ।

होइ पुनीत भगवन्त भजन ते, आपु तारि, तारे कुल दोइ ॥

धनि सो गाउ, धनि सो ठाउ, धनि पुनीत कुटंब सभ लोइ ।

जिनि पिआ सार-रसु, तजे आन-रस, होइ रस-मगन डारे बिनु खोइ ॥

पंडित, सूर, छत्रपति, राजा, भगत बराबरि अउरु न कोइ ।

जैसे पुरैन-पात रहै जल समीप भनि रविदास जनमे जगि सोइ ॥⁴

....रे चित! चेति चेति अचेत, काहे न बालमीकहि देख ।

किसु जाति⁵ ते किह पदहि अमरिओ रामभगति बिसेख ॥⁶

सुआनसत्रु⁷ अजात सभ ते क्रिसन लावै हेतु ।....

अजामलु पिंगुला लुभतु कुचरु गए हरि के पास ।⁸

ऐसे दुरमति निसतरे, तू किउ न तरहि रविदास ॥ (रिदास)

बैरनों की छपरी भली, ना साकत का बड़ गाँव । (कबीर)

है हरि भजन कौ प्रवान ।

नीच पावै ऊँच पदवी, बाजते नींसान ॥

भजन को परताप ऐसा तरे जल पाषान ।⁹

अधम भील¹⁰ अजाति गनिका चढ़े जात बिवांन ॥

नवलख तारा चलै मंडल, चलै ससिहर, भान ।

दास धू¹¹ कौ अटल पदवी राम को दीवांन ॥

निगम जाकी साखि बोलैं, कहै संत सुजांन ।

जन कबीर तेरी सरन आयौ, राखिए भगवान ॥

(कबीर)

1. वैष्णव ।

2. क्षत्रिय ।

3. मलेछ (मुसलमान) ।

4. "वैष्णव जन ते तेणे कहिए" (नरसी) से तुलनीय ।

5. वाल्मीकि शूद्र थे ।

6. "उलटा नाम जपत जग जाना । बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥" (तुलसी)

7. श्वपच (श्वानमांसभक्षी—मणिपुर इत्यादि में अब भी हैं), ऋषि का कृष्ण ने सम्मान किया था ।

8. अजामिल, पिंगला (वेश्या), कुंजर (गज) इत्यादि प्रभु के पास (वैकुण्ठ) गए ।

9. वानर जाति के नल-नील ने रामभक्तिप्रताप से सेतुबंध बना डाला । "श्री रघुबरी प्रताप ते सिंधु तरे पाषान" (तुलसी) से तुलनीय ।

10. शबरी ।

11. ध्रुव ।

नहीं छाड़ौ बाबा! राम नाम। मोहि और पढ़न सूं कौन काम?
 प्रहलाद पधारे पढ़न साल। संग सखा लीनें बहुत बाल॥
 मोहि कहा पढ़ावै आल-जाल। मेरी पाटी मैं लिखि दे श्री गोपाल॥ (कबीर)
 दुरमति हरणाखसु दुराचारी। प्रभु नारायणु गरब प्रहारी॥
 प्रहलाद उधारे किरपाधारी॥
 भूलो रावण मुगध अचेति। लूटी लंका सीस समेति॥
 गरबि गइया बिनु सतिगुर हेति॥
 सहसबाहु, मधुकीट¹, महिखासा²। हरणाखसु ले लखहु विधासा॥
 दैत संघारे बिनु भगति अभिआसा॥
 जरासंध, कालजमुन संघारे। रक्तबीजु कालुनेमु बिदारे॥
 दैत संघारि संत निसतारे॥ (नानक)

एक कृस्नं त सरबदेवा देव देवात आतमह।....
 आतमं सी बास्देवस्य जे कोई जानसि भेव।
 नानक³ तासो दासु है सोई निरंजन देव॥ (गुरु अंगद)
 बैसनो सो जिसु ऊपरि सुप्रसन्न। बिसन की माया ते होइ भिन्न॥
 कम करत होवहि निहकर्म। तिन बैसनो का निरमल धर्म॥
 काहू फल की इच्छा नहिं बाछै। केवल भगति कीर्तन संगि राचै॥ (गुरु अर्जुन)
 बेद-परान-समृति के मत सुनि निमष न हिए बसावै।
 परधन-परदारा सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै॥ (गुरु तेगबहादुर)
 मन रे प्रभु की सरनि बिचारो।
 जिह सिमरत गनका सी उधरी ताको जसु उर धारो॥
 अटल भइयो ध्रुव जा कै सिमरिन अरु निरभै पद पाइया।
 दुखहरता इह विधि को स्वामी? तै काहे बिसराइया॥
 जबही सरनि गही किरपानिधि गज गराह ते दूटा।
 महिमा नाम कहँ लउ बरनउ, राम कहत बंध छूटा॥
 अजामीलु पापी जगु जाने, निमष मांहि निसतारा।
 नानक कहत चेत चिंतामनि तैं भी उतरहि पारा। (गुरु तेगबहादुर)

सिख-गुरुओं में सभी ने वैष्णव-पद्धति एवं वैष्णव-कथाओं का सम्मान भी किया है। जहाँ तक उनकी भाषा का सम्बन्ध है, वह सार्वभौम ब्रजभाषा ही है। गुरु गोविन्दसिंह ने रामावतार, कृष्णावतार, चंडीचरित इत्यादि काव्य तो प्रचलित ब्रजभाषा में रचे थे। उन्होंने कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई इत्यादि अनेक छन्दों का प्रयोग किया है।

मानवतावाद एवं रुढ़िखण्डनवाद

सूफियों ने उदारता का यत्किंचित् प्रदर्शन किया तो, किन्तु मोहम्मदीयत के वर्चस्व के साथ। खुसरो ने हिन्दुत्व-प्रदर्शनचिह्नों "छापा-तिलक" के त्याग का वर्णन किया, किन्तु इस्लामी-प्रदर्शनचिह्नों (दाढ़ी-मूँछ वगैरह) का नहीं। मुल्ला दाऊद, जायसी इत्यादि "मोहम्मद-भक्ति या नरक" की संकीर्णता से ऊपर नहीं उठ सके। नूरमोहम्मद तो कट्टर मतान्ध था ही। आचार्य शुक्ल द्वारा

1. मधुकेटभ।

2. महिषासुर।

3. अंगद, अमर, रामदास, अर्जुन, तेगबहादुर, गोविन्दसिंह इत्यादि गुरुओं ने अपने स्थान पर नानक का नाम ही लिखा या कहा है। कविता अपनी, छाप नानक की।

सूफ़ी-उदारता का उल्लेख न तो वस्तु-स्पष्ट है न इतिहास-पुष्ट और उनकी एतद्विषयक जायसी-स्तुति तो भ्रामक भी है। इसीलिए, सूफ़ियों का विशेष प्रभाव न पड़ सका। सन्तों ने पक्षपातहीनता का अधिक साहसपूर्ण एवं अधिक यथातथ्यवादी परिचय दिया, क्योंकि वे हिन्दू के कर्मकाण्ड, तीर्थाटन, नदीस्नान, उच्च-निम्न (जातिप्रथ, अस्पृश्यता) इत्यादि का प्रत्याख्यान ही नहीं करते, मुसलमान के कर्मकाण्ड, अजान, हज, पैशाचिक बलिप्रथा, अप्राकृतिक एवं क्रूर खतना (जिसके कारण हिन्दू व्यंग्य करते थे), अन्धविश्वासमूलक दफ़नाने, असंस्कृत विवाह-प्रणाली इत्यादि का परिहास भी करते हैं। सन्तों का मानवतावाद समग्रतः धर्मनिरपेक्ष एवं अधिकाधिक प्रगतिशील है। ईसा अपने अनुयायियों की ही स्वर्ग-प्रवेश-अनुशंसा करने (अर्थात् अन्य धर्मानुयायियों के नरक-प्रवेश) की संकीर्णता से मुक्त नहीं। मोहम्मद अन्यो के लिए नरक की शत-शत घोषणाएँ करते नहीं थकते और उन पर जज़िया थोपते हैं। मोहम्मद का जीवन विवादास्पद रहा। इसीलिए मोहम्मदी देशों में उन पर आलोचना का एक शब्द भी निषिद्ध है। पाकिस्तान इत्यादि में मोहम्मद की आलोचना पर मृत्युदण्ड का कानून बनाया गया है और वह भी मृत्युदण्ड-उन्मूलन के विकसित युग में! कबीर इत्यादि सन्त ईसा एवं मोहम्मद के सदृश क्रमशः संकीर्ण एवं हिंस्र नहीं हैं। सन्तों ने इस्लामी रूढ़ियों का भी खुलकर परिहास किया है। मतान्ध सिकन्दर लोदी (मृत्यु 1517 ई.) ने बोधन पण्डित को “हिन्दूधर्म भी सच्चा, मोहम्मदीयत भी सच्ची” कहने मात्र पर आग में जलवा दिया था। अतः कबीर, नानक इत्यादि के मोहम्मदी पाखण्ड पर प्रहार उनके साहस के सूचक अवश्य हैं। सन्तों के निष्ठापूर्ण एकतावाद-मण्डन एवं सार्वभौम हिन्दुत्व-मोहम्मदीयत-रूढ़िवाद-खण्डन में विशद मानवतावाद के उज्ज्वल दर्शन होते हैं :

हिंदू अन्हा, तुरकू (ग़काणा) दुहा ते गिआनी सिआणा ।।

हिंदू पूजै देहुरा, मुसलमान मसीति ।

नामें सोई सेविआ जह देहुरा न मसीति ।।

(नामदेव)

ब्रह्मन, बैस, सूद, अरु, खत्री, डोम, चांडाल, मलेछ मन सोई ।

होइ पुनीत भगवंत भजन ते, आपु तारि, तारे कुल दोइ ।।

(रैदास)

अरे! इन दोउन राह न पाई ।।

हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई ।

बेस्या के पाँयन तर सोवै, यह देखौ हिंदुवाई ।।

मुसलमान के पीर-औलिया मुर्गी-मुर्गा खाई ।

खाला केरी बेटी ब्याहैं, घरहि में करैं सगाई ।। (कबीर)

महजिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहिब तेरा बहिरा है?

चींटी के पग नेवर बाजै सो भी साहिब सुनता है ।।

साँच कहौ तो मारन धावैं, झूठे जग पतियाना ।।

आतम मारि पखानहिं पूजैं, उनमें कछू न ग्याना ।।

बहुतै देखे पीर औलिया पढ़ैं किताब-कुराना ।

कह हिंदू मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना ।।

हिंदू-तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई ।

कहैं कबीर सनौ हो संतों! राम न कहेउ खुदाई ।। (कबीर)

जिन दुनिया में रची मसीद । झूठा रोजा, झूठी ईद ।

साँच एक अल्ला का नाम । ताको नय-नय करौ सलाम ।।

कहूँ धौ भिस्त? कहाँ ते आई? किसके हित तुम छुरी चलाई?

करता किरतिम बाजी लाई । हिंदू-तुरुक दुइ राह चलाई ।। (कबीर)

मिटी¹ मुसलमान की पैड़े पई कुम्हियार ।

घड़ि भाड़े इटा कीआ जलदी¹ करे पुकार ॥
जलि-जलि रौवै बपुड़ी झड़ि-झड़ि पवहि अँगियार ।

(नानक)²

कोई बोले राम-राम, कोई खुदाइ । कोई सेवै गुसइआ, कोई अलाहि ॥
कोई पढ़े वेद, कोई कतेब । कोई ओढ़ै नील, कोई सपेद ॥
कोई कहै तुरुक, कोई कहै हिंदू । कोई वाछे भिसत, कोई सुरगिंदु ॥
कह नानक जिन हुकुम पछाना । प्रभु साहिब का तिन भेद जाना ॥

(गुरु अर्जुन)

बरत न रहउ, न यह रमदाना ।³ तिसु सेवी जो रखै निदाना ॥
एक गुसाई अलहु मेरा । हिंदू-तुरुक दुहाँ नैबेरा ॥
हज काबै जाउ न तीरथ पूजा । एको सेवी अवरु न दूजा ॥
पूजा करउ न निवाज गुजारउ । निरंकार ते हिंदै नमस्कारउ ॥
न हम हिंदू न मुसलमान । अलह राम के पिंड परान ॥

(गुरु अर्जुन⁴)

जो कुछ कहा कतेब में सोई कहा बेद ।
दोऊ बंदे एक साहब के पर लड़त बिना पाए भेद ॥
बोली सबन जुदा परी, नाम जुदै धरे सबन ।
चलन जुदा कर दिया, ताथे समझ न परी किन ॥
ताथे हुई बड़ी उरझन, सो सुरझाऊँ दोग ।
नाम-निशान जाहिर करूँ ज्यों समझे सब कोय ॥

(प्राणनाथ)

....लोक चौदा कहे वेद ने, सोई कतेब चौदे तबक ।
वेद कहे ब्रह्म एक है⁵, अरवाह सबों में एक ॥
दोऊ कहें वजूद एक है, अरवाह सबों में एक ।
वेद-कतेब एक बतावहीं पर पावे न कोई विवेक ॥

(प्राणनाथ)

अपने राजनीतिमुक्त एवं निष्ठापूर्ण, धर्मनिरपेक्ष एवं समतापूर्ण मानवतावाद में सन्त नामदेव, सन्त कबीर, गुरु रैदास, गुरु नानक, गुरु अर्जुन, योगी प्राणनाथ इत्यादि स्वभावतः अधिक प्रभावी एवं प्रेरक सिद्ध हुए । इनके द्वारा स्थापित विराट् एकता को आधुनिक हिन्दू, मुसलमान, सिख बौद्ध तथा अन्य नेताओं ने अवसरवादी राजनैतिक स्वार्थों के कारण छिन्न-भिन्न कर दिया, जिसके भयानक परिणाम विभाजन-पर-विभाजन, खण्ड-पर-खण्ड, आरक्षण-पर-आरक्षण, हत्या-पर-हत्या इत्यादि के रूपों में दृष्टिगोचर हो रहे हैं । काश, हमने नामदेव, रैदास, कबीर, नानक, प्राणनाथ इत्यादि सच्चे महापुरुषों एवं वास्तविक मानवतावादियों का पथ ही अपनाया होता ।

1. जलदी = जलती हुई । कुम्हार के आँवे में ।

2. नानक का प्रगतिशील एवं वैज्ञानिक शब्दाहवद-मण्डन । सम्प्रति जागरूक ईसाई और मुसलमान भी इसे अपना रहे हैं । नानक सच्चे धर्मनिरपेक्ष महापुरुष थे, जिन्होंने बाबा फरीद की स्तुति की ।

3. रामदान (गलत उच्चारण 'रमजान' प्रचलित है, किन्तु भारत-पाकिस्तान इत्यादि में ही) का मास जिसमें मुसलमान रोजे रखते हैं ।

4. सच्चे महापुरुष धर्मनिरपेक्ष महापुरुष गुरु अर्जुन ने अमृतसर दरबार का शिलान्यास मियों मीर से कराया था ।

5. प्राणनाथ वेद-वेदान्त के मर्मों थे तथा वेद को एकब्रह्मवादी ग्रन्थ ठीक ही मानते थे जो "एक सद विप्रा बहुधा वदन्ति" इत्यादि अनेक प्रमाणों से पुष्ट है । खेद है पल्लवग्राही पाश्चात्य पण्डितमन्यों का मिथ्या वेद-बहुदेववाद-प्रतिपादन अथवा भारतीय अन्धानुकरणवादी-दासतावादी विद्वानों का तद्वत् विचार प्रभावी हो गया है ।

भाषा-शैली

सन्तों की भाषा को कबीर से सम्बद्ध आचार्य श्यामसुन्दरदास के 'मिश्रित' एवं आचार्य शुक्ल के 'सधुक्कड़ी' शब्दों से परखना कालातीत है। उनकी भाषाओं के रूप भिन्न-भिन्न हैं। स्वयं कबीर की भाषा आचार्य श्यामसुन्दरदास-सम्पादित 'कबीर-ग्रन्थावली' के आधार पर निधा'रित करना उपयुक्त न होगा क्योंकि वह पंजाब में मिली प्रति के कारण पंजाबीपन से कृत्रिम हो गई है, जिसमें स्वयं कबीर द्वारा घोषित 'बनारसी' का नाम-निशान नहीं मिलता। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'कबीर' ग्रन्थ की परिशिष्ट-रूप पदावली में परवर्ती से आधुनिकता तक का प्रक्षेप स्पष्टतः दृग्गत होता है। कबीर के निरक्षर होने के कारण उनकी वाणी पर निश्चित रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं। फिर भी, कबीर की वाणी का जो रूप मिश्रबन्धु कृत 'हिन्दी-नवरत्न' में उपलब्ध है, वह अन्तर्साक्ष्य-बहिर्साक्ष्य आधारों पर अपेक्षाकृत अधिक प्रात्ययिक है। कबीर की भाषा वस्तुतः अवधी-व्रज-भोजपुरी के स्पर्शों से पुलकित खड़ीबोली है। खड़ीबोली का प्रयोग खुसरो एवं नामदेव इत्यादि पूर्ववर्ती तथा दादू, प्राणनाथ इत्यादि परवर्ती कवियों एवं सन्तों ने भी किया है। नानक ने पंजाबी-व्रज-स्पर्शित खड़ीबोली का प्रयोग किया है। (व्रजी का रंग इतना प्रभावी है कि उसे व्रजी भी कहा जा सकता है)। यदि शब्द में सन्तों की भाषा का परिचय कराना हो तो वह है 'खड़ीबोली'। सन्तों ने प्रधानतः पद-रचना की है, किन्तु दोहे का भी प्रयाप्त प्रयोग किया है तथा यत्र-तत्र चौपाई के नाना रूपों को भी अपनाया है। सन्तकाव्य अधिकांशतः गीतिकाव्य है, जिसका सर्वाधिक भव्य एवं विराट् रूप गुरु अर्जुन सम्पादित 'गुरुग्रन्थसाहब' में दृष्टिगोचर होता है।

प्रभाव

सन्तों की मानवतावादी-एकतावादी वाणी का प्रभाव प्रायः सारे देश पर पड़ा, क्योंकि विराट् हिन्दी-क्षेत्र, महाराष्ट्र एवं पंजाब तो नामदेव, रैदास, कबीर, नानक इत्यादि से प्रेरित हुआ ही, प्रायः प्रत्येक अन्य भाषा में भी सन्त-सृजन प्राप्त होता है, जिसे 'निर्गुण' या 'ज्ञानश्रयी-प्रेमाश्रयी' तथा 'सगुण' या 'रामाश्रयी-कृष्णाश्रयी' जैसी संकीर्ण शृंखलाओं में बद्ध करके नहीं देखा जा सकता। अराम के महान् सुधारक महापुरुष शंकरदेव हिन्दू-मुस्लिम-एकता की स्थापना, अस्पृश्यता-उन्मूलन, नारी-जागरण अथवा व्यापक समाज-सुधारक में सर्वाधिक सफल सिद्ध हुए किन्तु वे मुख्यतः कृष्णकाव्यकार थे, जिनके शिष्य महाकवि माधवदेव असमिया के सूर हैं। शंकरदेव एवं माधवदेव ने मिलकर पूर्ववर्ती माधवकंदलि की रामायण को भी पूर्ण किया। बांग्ला के रामायणकार कृत्तिवास तत्त्वतः शाक्त थे, उड़िया के रामायणकार बलरामदास तत्त्वतः कृष्णभक्त थे, तेलुगू के सूर महाकवि पोतन (पोतन्ना) तत्त्वतः रामभक्त थे, गुजराती के सूर सन्त नरसी (नरसिंह मेहता) राम-कृष्ण-अन्योन्यता के कवि थे। अतः सन्तों का संकीर्ण-वर्गीकरणवादी अध्ययन वस्तुवादी दृष्टि से अनुचित भी है, भ्रामक भी। स्वयं सूर ने रामकथागान किया है, यत्र-तत्र-सर्वत्र राम-कृष्ण-अन्योन्यता को उद्गीरित किया है। तुलसी ने विनयपत्रिका में बारम्बार कृष्ण का समग्रभक्तिभावपूर्ण स्मरण किया है, श्रीकृष्णगीतावली लिखी है,—रामचरितमानस तक में रामावतार के ही कृष्णावतार में अवतरण का संकेत किया है। तथाकथित निर्गुण-सन्त हों या तथाकथित सगुण-सन्त—वे विराट् मानवतावाद के प्रतिपादक थे, संकीर्ण सूफ़ी-कवियों से नितान्त भिन्न थे। अतः राष्ट्र पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यदि कबीर संकीर्ण होते तो उनका प्रभाव केवल मुसलमानों पर पड़ता, जो नहीं के बराबर पड़ा क्योंकि वे प्रायः कट्टर होते हैं। यदि नानक संकीर्ण होते तो हिन्दू उन्हें कदापि न पूजते। यदि तुलसी संकीर्ण होते तो डोम नाभादास और मुसलमान रहीम उनकी स्तुति न करते।

सन्तों की मानवतावादी विचारों एवं भक्तिवादी भावों का सारे राष्ट्र पर भारी प्रभाव पड़ा। हिन्दू-मुस्लिम-एकता, चतुर्वर्ण-समता, कर्मकाण्ड-समीक्षा इत्यादि जीवन के व्यापक सत्य बन गए। सन्तों का प्रभाव आज तक विद्यमान है। किन्तु प्रत्येक प्रभाव की सीमा अवश्य होती है। सन्तों ने वेद-शास्त्र-पुराण, पण्डित-पुजारी-मुल्ला-मौलवी, तीर्थटन-हज, ध्यान-नमाज़, गान-अजान, संस्कार (षोडश)—तरीकत, संक्षेप में, अपने अतिरिक्त सब का खण्डन कर डाला, जिसे स्वप्रतिष्ठापनवाद (पैगम्बर-ग्रन्थ से उत्पन्न) ही कहा जा सकता है। धर्म मनुष्य की प्रवृत्ति है, जैसा कि जुग इत्यादि मनोविज्ञानवेत्ता तक स्वीकार कर चुके हैं, रूस के मार्क्सधर्मी एवं लेनिनशवपूजावादी स्वीकार कर चुके हैं (गोर्बाच्योव का उदारतावाद इसी का परिणाम था) तथा कट्टर साम्यवादी चीन का स्वीकार कर रहा है। अन्धविश्वास मानव-मनोविज्ञान के अंग हैं क्योंकि वह शत-प्रति-शत प्रत्यक्षवादी नहीं है। सम्प्रति कबीर-पंथ, नानक पंथ इत्यादि के अपने अन्धविश्वास एवं रूढ़िवादी आचार-विचार पारम्परिक हिन्दुओं को भी मात करते हैं। कबीर-कथाएँ, नानक कथाएँ, ग्रन्थ का एकदम 'साहब'—रूप (जिसमें सोना-जागना-सवारी-जुलूस इत्यादि सारी कर्मकाण्ड-क्रियाएँ सम्मिलित हैं), अनेकानेक पर्व इत्यादि सर्वथा मनोविज्ञानसम्मत हैं।

साम्यवादी त्योहार 1 मई की अपनी रूढ़ियाँ हैं, प्रत्येक देश के क्रान्ति-पर्व की अपनी रूढ़ियाँ हैं, रूस की लेनिन-शवपूजा की अपनी रूढ़ियाँ हैं, कांग्रेसी त्योहारों (26 जनवरी, 15 अगस्त, 2 अक्टूबर) की अपनी रूढ़ियाँ हैं और इन सब पर्वों या त्योहारों पर मानव-जाति प्रति वर्ष खरबों रुपया व्यय करती है। फिर, जन्म-विवाह-मृत्यु इत्यादि की रूढ़ियों पर एकांगी प्रहार व्यर्थ है—हाँ उनमें सुधार का यत्न अवश्य प्रशस्य है। साधारण स्वख्याति-व्यामोही क्रान्तिकारी नेताओं के स्वागत में जयजयकार करती है, पक्ष-प्रतिपक्ष में बँटकर लड़ती-कटती है, और पुनः 'वही ढाक के तीन पात' के सत्य पर आ टिकती है। सन्तों ने एक 'रिक्त' की सृष्टि तो कर दी किन्तु उसकी 'पूर्ति' पर प्रकाश न डाल सके। साधारण जनता ने 'पूर्ति' के एक अंश के सन्दर्भ में उनकी पूजा करनी शुरू कर दी और शेषांशों के सन्दर्भ में प्रायः 'वही-की-वही' बनी रही। मानव का 'सहज' असीम है, उसकी 'क्रान्ति' सीमा है। अतः क्रान्ति के प्रतीक कबीर, नानक इत्यादि का प्रभाव भी असीम ही रह सकता था। 'सहज' के प्रतीक तुलसी, सूर इत्यादि का प्रभाव असीम सिद्ध हुआ क्योंकि उन्होंने गुरुडम या पाखण्ड का प्रत्याख्यान एवं परिहास करते हुए स्वयं को स्वपूजाव्यामोह से मुक्त रखा। लोमश, उद्धव इत्यादि जीवन की शुष्कता के प्रतीकों के रूप में तुलसी, सूर इत्यादि ने कबीर, नानक इत्यादि सन्तों को ही चित्रित किया है। नाट्य, नृत्य, संगीत, गीत, प्रीति-रीति प्रभृति से आपूर्ण सम्पूर्ण जीवन का सुसंस्कृत ग्रहण एवं प्रतिपादन करते हुए तुलसी, सूर, अकबर, रहीम इत्यादि ने पुनरुत्थान को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। यदि क्षुद्र औरंगजेब ने उदार-मानवतावादी दारा को परास्त करने के उद्देश्य से हिन्दुत्व-नाश के मूर्ख-यत्न न किए होते तो भयानक विभाजनवादी अंग्रेज भारत में सत्ता-स्थापन न कर सकते थे जैसा कि शाहजहाँ एवं स्वयं औरंगजेब के शासनकालों में उनकी पिटाई से स्पष्ट है; और भारत का इतिहास कुछ-और ही होता। औरंगजेब की मतान्धता ने मज़हबी जुनून का राजनैतिक उद्देश्यपूर्ति के माध्यम के रूप में दुरुपयोग किया, जिससे उसके दीर्घ अर्द्धशताब्दिगत शासनकाल में ही नहीं अपितु कालान्तर में भी हिन्दू-मुसलमानों में पारस्परिक घृणा के एक विघातक वातावरण की सृष्टि हुई और अंग्रेजों से लेकर जिन्ना तक ने उससे भरपूर लाभ उठाया। मतान्धता स्वयं औरंगजेब को तोड़कर-झुकाकर मुगल-वंश निगल गई, छोटे-मोटे मतान्धों सिराजुद्दौला, टीपू सुल्तान इत्यादि को अपनी फूँकों से उड़ाकर इतिहास के कूड़ेदानों में फेंक गई, किन्तु उससे विभिन्न प्रकार के लाभ उठानेवाले भी कम नहीं हुए; और आज इन तुच्छ लाभवादियों के नन्हें-नन्हें रूप असंख्य हो गए हैं! औरंगजेब, अंग्रेज-शासक, काँग्रेस एवं जिन्ना इत्यादि ने सन्तों की साधना का प्रभाव सीमित कर दिया, तुलसी और अकबर, सूर और रसखान के पावन स्वप्न चकनाचूर कर दिए। किन्तु भारत, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश में सच्चे प्रगतिशील व्यक्ति उपमहाद्वीप की विशाल सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक एकता से अनभिज्ञ नहीं हैं। वे सन्तों की सदाशयता स्वीकार करते हैं, मानवतावाद एवं एकता के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। अतः आज भी उनका प्रभाव नकारा नहीं जा सकता।

प्रमुख कवि

नामदेव

कबीर, रैदास, नानक, दादू इत्यादि के प्रेरक सन्त नामदेव (1271-1351 ई.) समग्र राष्ट्र में विख्यात हैं। वे गुरुग्रन्थसाहब में वाणी-समावेश के कारण सिखों में समादृत हैं और इस वाणी के हिन्दी में होने के कारण हिन्दी के आदि-सन्तकवि हैं जिनका सश्रद्ध उल्लेख कबीर तक ने किया है। नामदेव की हिन्दी-कविता सन्तभाषा में भी है (जो व्रजभाषा के निकट मान भी ली जाए तो विशेष हर्ज नहीं), खड़ीबोली में भी। नामदेव महाराष्ट्र के सतारा जिले के नरसी बमनी नामक ग्राम के एक दर्जी थे, जो पहले विष्णु एवं उनके नृसिंह, राम, कृष्ण प्रभृति अवतारों के उपासक थे, पंढरपुर के विख्यात बिठोबा जी के मन्दिर से दूर हटना तक न पसन्द करते थे, किन्तु कालान्तर में गोरखपन्थी ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वर) एवं तद्वत् हठयोगी खेचरनाथ (विसोवा खेचर) के प्रभाव के कारण निर्गुण-निराकारवादी तथा ब्राह्मण-आलोचक इत्यादि हो गए थे। इनके चमत्कारों की कथाएँ अब तक प्रचलित हैं, जो सदा से सारे पैगम्बरों, पीरों, फकीरों, सन्तों, भक्तों, योगियों, यहाँ तक कि नेताओं इत्यादि पर चेलों, प्रशंसकों इत्यादि के द्वारा प्रचलित की ही जाती रही हैं, जिन्हें धार्मिक प्रचारवाद कहा जा सकता है। अंग्रेजी कवि जॉन कीट्स की बाइबिल-सन्दर्भी ईसा-कथाओं के लिए प्रयुक्त 'पावन प्रवचन' (पायस फ़ोंड) भी कहा जा सकता है। ऐसी कथाएँ राम, कृष्ण, मूसा, बुद्ध, महावीर, ईसा, मोहम्मद, मुईनुद्दीन, कबीर, नानक इत्यादि से लेकर आधुनिक भगवानों या योगियों या गुरुओं तक पर लगातार गढ़ी जाती रही हैं, क्योंकि पुरुष इनके बिना अपना कठोर मस्तक झुकाने

को तैयार नहीं होता। अनाम सुल्तान, काजी, मुल्लाओं¹ द्वारा अत्याचारों² पर चमत्कारों द्वारा विजय, तत्परिणामस्वरूप हिन्दू-स्तवन³ इत्यादि के वृत्त इनकी महिमा के व्यंजक तो हैं ही। इनकी महानता के कारण तत्कालीन समाज में शूद्र माने जाने वाली जातियों में आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ। मध्यकालीन भक्तिकाव्य मानवतावाद की विजय का काव्य है, नामदेव दर्जो थे, सदन (साधना) कसाई, कबीर मुसलमान जुलाहा, रैदास चमान, सेन नाई, धना जाट, दादू मुसलमान धुनियाँ। महाराष्ट्र में कुम्हार एका और गोरा, माली साँवता, सोनार नरहरि, तेली जोगा, चुड़िहार शामा, महार बाँका और चोखा, वेश्या कान्होंपात्रा इत्यादि भी आदरणीय माने गए। प्राचीन तमिलनाडु के तिरुवल्लुवर तो विख्यात हैं ही। वहाँ आलवारों, शैवों, शास्त्रों में भी सर्वजातियता विद्यमान रही। सम्पूर्णतः अवतारवादी भक्तों में भी नाभादास डोम थे, अष्टछाप के कृष्णदास भी शूद्र थे। इस मानवतावाद का उज्ज्वल पक्ष यह रहा कि इन सन्तों एवं भक्तों में प्रायः सभी के गुरु ब्राह्मण थे। आज के शूद्र न्यस्तस्वार्थग्रस्त जातिवाद की तुलना में मध्यकालीन हिन्दू-समाज अधिक सुशृंखलित भी था, अधिक संगठित भी, अधिक उदार भी। इसका कारण निष्ठावान नेतृत्व था, जिसका सामान्यतः आधुनिक भारत तथा विशेषतः स्वतन्त्र भारत में अभाव रहा है। मध्यकाल में धर्मनिरपेक्षता का रूप आज से सुदृढ़तर भी था, व्यापकतर भी।

आचार्य श्यामसुन्दरदास ने 'कबीर-ग्रन्थावली' की अमूल्य भूमिका में लिखा है कि सर्वव्यापी पतन, ध्वंस एवं पराजय का वह काल "अनीश्वरवाद के लिए बहुत ही अनुकूल" था जिसे कबीर ने "बड़े ही कौशल" से टाल दिया, किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि "पुरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?" डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी-साहित्य' इत्यादि में प्राचीन आलवार भक्तों का सन्दर्भ देकर शुक्ल का खण्डन किया है। वास्तविक तथ्य यह है कि भक्ति मानव की एक चिरन्तन वृत्ति है जो वेदों एवं पुराणों में भी क्रमशः विद्यमान एवं व्याप्त है, जिसके जड़े स्थूल-सूक्ष्म सुख-दुःख से अधिक गहरी हैं। मध्यकाल में "यथा राजा तथा प्रजा" के अनुसार उसमें हिंस्र मोहम्मदीयत के लिए सद्यः निर्गुणवाद-निराकारवाद का जुड़ना स्वाभाविक था। नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि शाश्वत मनोविज्ञान एवं युगगत इतिहास के समाहार के उद्गार थे। इनमें से कोई निर्गुण-सगुण अथवा निराकार-साकार के द्वन्द्व से मुक्त न था। न ये शतशः निर्गुणवादी-निराकारवादी थे, न शतशः सगुणवादी-साकारवादी (अवतारवादी)। तभी इनका आदर सभी ने किया। यह अवश्य है कि इनकी परकीयताबद्ध द्विधा में वह शक्ति विद्यमान न थी जो शतशः सगुणवादी-साकारवादी (अवतारवादी) कम्बन् (कम्बर) या कुमार व्यास, पुरन्दरदास या एडुतच्छन्, गोन्बुद्ध या त्यागराज एकनाथ या रामदास, नरसी या गिरिधर, माधव कंदलि या शंकरदेव या माधवदेव, कृत्तिवास या रामप्रसाद, सारलादास या बलरामदास, विद्यापति या मीराँ, सूर, गोविन्दसिंह और सबसे बड़कर तुलसीदास की स्वकीयतामयी एकधारा में व्याप्त थी, अतः भारत की कोटि-कोटि जनता पर इनका सीमित प्रभाव ही पड़ सका। कालान्तर में कठोर समस्याएँ भी उभरी मिलती हैं।

अवतारवाद

नामदेव की वाणी में सगुण-साकार-भक्ति की भारी व्याप्ति⁴ स्पष्टतः दृग्गत होती है, क्योंकि जन्म एवं संस्कार से वे साकारोपासक ही थे :

1. हरि-हरि करत मिटे सभि भरमा। हरि को नाम लै ऊतम धरमा॥
हरि-हरि करत जाति कुल हरी⁵। सो हरि अँधुले की लाकरी॥
हरिए नमसते हरिए नमह। हरि-हरि करत नहीं दुखु जमह॥
हरि हरनाकस हरे परान। अजैमल कीओ बैकुंठहिं थान॥

1. गंग-नुमन जउ उलटी बहै। तउ नामा हरि करता रहै॥

2. सकल कलेस निंदक भइआ खेदु। नामे नाराइन नाहीं भेदु॥

3. नामदेव सभ रइआ समाए। मिलि हिन्दू सभ नामे पहि जाए॥

स्पष्टतः ऐसे अंश एवं एतत्सम्बद्ध कथाएँ परवर्ती अपनुयायियों द्वारा रचित हैं। प्रक्षिप्त अंशों से मुक्त सन्तकाव्य की उपलब्धि सम्भव नहीं। कहावत है: "कुछ बढ़ाया सन्तों ने, कुछ बढ़ाया भक्तों ने"।

4. जह-जह देखउ तह-तह रामा।

5. समतावाद का सुन्दर निष्पण। परिकरांकुर अलंकार का सुन्दर दर्शन (चतुर्थ चरण में भी)।

2. सूआ पड़ावत गनिका तरी। सो हरि नैनहु की पूतरी।।
हरि-हरिकरत पूतना तरी। बालघातनी, कपटहि भरी।।
सिमरत द्रोपत सुत उधरी। गऊतम सती सिला निसतरी।।
केसी, कंस मथनु जिनि कीआ। जीअ-दान काली कउ दीआ।।
प्रणवै नामा ऐसो हरी। जासु जपत भै-आपदा टरी।।
धनि-धनि स्याम! बेनु बाजै मधुर-मधुर धुनि अनहत गाजै।।
धनि-धनि मेघा रोमावली। धनि-धनि किसन ओढ़ै कामली।।
धनि-धनि तू माता देवकी। जिह ग्रिह रमईआ कवलापती।।
धनि-धनि बनखण्ड बिंदावना। जह खेलैं स्त्री नाराइना।।
बेनु बजावै गोधनु चरै। नामे का सुआपी आनन्द करै।।
3. मेरो वापु माधउ! तू धनि, केसी, साँवलीओ, वीठुलाइ।।
कर धरे चक्र बैकुण्ठ ते आए गज हसती के प्रान उधारी अले।
दुहसासन की सभा, द्रोपती अंबर देत उबारीअले।।
गोतम-नारि अहलिआ तारी, पावन केतक तारीअले।
ऐसा अधमु अजाति नामदेउ तउ सरनागति आईअले।।
4. दसरथराय-नन्द राजा मेरा रामचन्द। प्रणवै नामा तत्त्व रस-अमृत पीजै।।

मोहम्मदीयत का प्रभाव

संसार में निर्गुणवाद-निराकारवाद के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ उपनिषद् हैं। किन्तु मध्यकालीन निर्गुणवाद-निराकारवाद में जो हल्का-फुल्का व्यंग्य-विद्रूप है वह औपनिषदिक उद्गम से सम्पृक्त होते हुए भी मोहम्मदी प्रभाव से मुक्त नहीं है। कोरा एकेश्वरवाद अद्वैतवाद से भिन्न है। अध्यात्म-चिन्तन में व्यंग्य-विद्रूप को क्या स्थान? कर्मकाण्ड, तीर्थाटन इत्यादि से मुक्त धर्म की कल्पना व्यर्थ है। कोई धर्म या मज़हब इससे मुक्त नहीं है। अतः हिन्दूधर्म को ग़रीब की जोरू बनाना स्वयं में एक पाखण्ड है। यही कारण है कि तुलसी ने निर्गुणवाद-निराकारवाद पर सगुणवाद-साकारवाद को सतर्क-सशक्त वरीयता प्रदान की, तो सूर ने उसके ठूँठ-छाप व्यंग्य-विद्रूप का उत्तर सरस-कलात्मक व्यंग्य-विद्रूप से देकर उसे उसके ही अखाड़े में पछाड़ा। भारत ऋग्वेद-काल से ही “एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति” या “एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति” का उदार दर्शन मानता आया है। नामदेव पर कुछ शुष्क हठयोग तो कुछ मोहम्मदी राजधर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा था, जिसे अभिव्यक्ति देकर वे मुसलमान कबीर और हिन्दू नानक जैसे नवपन्थप्रवर्तकों के पूर्व-पुरुष बन गए :

1. असुमेध जगना¹, तुला पुरख दाना, प्राग इसनाना।
तउ न पुजहि हरि कीरति नामा।।
अपुने रामहि भजु रे मन आलसीआ।।
गइआ पिंडु, भरता बनारसि असि बसता, मुखि बेद चतुरि पड़ता।
सगल धरम अछिता, गुरुगिआन-इन्द्रीद्रिड़ता, खटु करमु सहित रहता।।
सिवा सकति संबादं, मन छोड़ि-छोड़ि सगल भेदं, सिमरि सिमरि गोविन्दं।
भजु नामा तरसि भव सिंधं।।
2. आजु नामे बीठलु देखिआ, मुख को समझाऊ रे।।
पांडे! तुमरी गाइत्री लोधे का खेतु खाती थी।
लै करि ठेगा टगरी तोरी, लौंगत-लौंगत जाती थीं।।

1. मराठी में 'ज्ञ' को 'ज' बोलते हैं, हिन्दी में 'यौं', संस्कृत में 'जू ज्'।

पांडे! तुमरा महादेउ धउले बलद चड़िया आवतु देखिआ था।
 मोदी के घर खाणा पाका, वाका लड़का मारिआ था।।
 पांडे! तुमरा रामचंदु सो भी आवतु देखिआ था।
 रावन सोती सरबर होई घर की जोड़ गवाइ थी।।
 हिन्दू अन्हा, तुरकू काणा! दुहाँ ते गिआनी सिआणा।।
 हिन्दू पूजै देहुरा, मुसलमाणु मसीति।
 नामे सोई सेविआ जह देहुरा न मसीति।।

हठयोग का प्रभाव

ज्ञानदेव एवं खेचरनाथ, विशेषतः खेचरनाथ, के प्रभाव के कारण नामदेव ने हठयोग में भी रुचि ली तथा इस दृष्टि से भी कबीर इत्यादि को प्रभावित किया। उनकी गुरुभक्ति से भी परवर्ती सन्त प्रभावित हुए :

1. मन मेरी सुई, तन मेरा धागा। खेचरजी के चरण पर नामा सिंपी लागा।।
2. सुफल जनम मोको गुरु कीना। दुख बिसार, सुख अन्तर दीना।।
 ज्ञानदान मोको गुरु दीना। राम नाम बिन जीवन हीना।।

नामदेव की हठयोग-आनन्दानुभूतियाँ कबीर की हठयोग-आनन्दानुभूतियों की प्रेरक हैं तथा उनका सूक्ष्म ज्ञानलोक भी कबीर इत्यादि के सूक्ष्म ज्ञानलोक का पूर्ववर्ती है :

1. जब देखा तब गावा। तउ जन धीरजु पावा।।
 नादि समाइलो रे सतिगुरु भेटिले देवा।।
 जअ झिलिमिलिकारु दिसंता। तह अनहद सबद बजंता।।
 जोति जोति समानी। मैं गुरु-परसादी जानी।।
 रतन कमल कोठारी। चमकार बीजुल तही।।
 नैरे, नाही दूरि। निज आतमै रहिआ भरपूरि।।¹
 जह अनहत सूर अज्यारा। तह दीपक जलै छँछारा।।
 गुरु-परसादी जानिआ। जनु नामा सहज समानिआ।।
2. अणमड़िया मंदलु बाजै। बिनु सावण घनहरु गाजै।।
 बादल बिनु बरखा होई। जउ ततु बिचारै कोई।।
 मो कउ मिलिओ रामु सनेही। जिहि मिलिए देह सुदेही।।
 मिलि पारस कंचनु होइआ। मुख मनसा रतन परोइआ।।
 निज भाउ भइआ भ्रमु भागा। गुरु पूछे मनु पतीआगा।।
 जल भीतरि कुंभ समानिआ²। सभ रामु एकु करि जानिआ।।
 गुरु चले है मनु मानिआ। जन नामै ततु पछानिआ।।

जयदेव

‘गुरुग्रन्थसाहब’ में जयदेव नामक सन्त-कवि की वाणी प्राप्त होती है, जिन्हें ‘वाणी गुरु अर्जुनदेव’ के सम्पादक प्यारासिंह ‘पद्म’ ने सम्भवतः उनकी संस्कृतिनिष्ठ शैली तथा राम, चक्रधर, गोविन्द इत्यादि शब्दों के प्रयोग (ऐसे प्रयोग कबीर, नानक इत्यादि ने भी किए हैं) के कारण भ्रमवश बंगाल का मानते हुए 1180 ई. में जन्मा समझ लिया है, किन्तु जो ‘गीतगोविन्द’ के महान् कवि जयदेव

1. तिन महि रामु रहिआ भरपूर। (नानक)
 2. ‘जल मैं कुम्भ कुम्भ मैं जल है।’ (कबीर)

(जिनका उल्लेख राठौड़राज प्रिथ्वीराज ने 'बेलि किसन रुक्मणी री' में किया है : "सुकेदव, व्यास, जयदेव सारिखा सुकवि"..), 'अनर्थ-राघव' के नाट्यकार जयदेव तथा 'प्रसन्न-राघव' के विख्यात नाट्यकार जयदेव से भिन्न हैं जैसाकि उनके निर्गुण-प्रधान-हठयोगप्रधान दृष्टिकोण एवं सामान्यस्तरीय अभिव्यक्ति-पक्ष से भी स्पष्ट है तथा कबीर द्वारा नामदेव के अनन्तर (नामों जयदेव) संस्तवन से भी¹। यह कबीर-प्रशंसित एवं गुरुग्रन्थसाहब-प्रतिष्ठित जयदेव 1300 ई. के आसपास के लगते हैं, जिन्होंने नामदेव के साथ या कुछ बाद किन्तु निश्चित रूप से कबीर से पहले निर्गुणप्रधान आन्दोलन के उद्घाटन में योगदान किया। इनके विषय में वस्तुपरक एवं विद्वत्पूर्ण शोध अपेक्षित है। अभी तक इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर कोई वैज्ञानिक कार्य नहीं हुआ। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. चंद सत भेदिआ, नाद सत पूरिआ, सूर सत, खोड़सा दतु कीआ।
अबल वलु तोड़िआ, अचल चलु थापिआ, अघडु घड़िआ, तहा अमिउ पीआ।।
मन आदि गुण आदि बखाणिआ। तेरी दुविधा द्रसटि संमानिआ।
अरधि कउ अरधिआ, सरधि कउ सरधिआ, सजल कउ सलल संमानि आइआ।
बदति जैदेव जैदेव मउ रंमिआ ब्रह्मु निरबाणु लिव लीणु पाइआ।।
2. परमादिपुरखमनोपियं सति आदि भाव रतं।
पदमदभुतं परकृति परं जदिचिंति सरव गतं।।
केवल राम नाम मनोरमं, बदि अग्रित तत मइअं।
न दनोति जसमरणेन जनम जराधि मरण भइअं।।
इछसि जमादि पराभय जसु स्वसति सुकृति कृतं।
भव भूल भाव समब्यिअं परमं प्रसंनमिदं।।
लो भादि द्रसटि पर ग्रिहं जदिबिधि आचरणं।
तजि सकल दुहकृत दुरमती! भजु चक्रधर सरणं।।
हरि भगत निज निहकेवला रिद करमणा बचसा।
जोगेन किं? जगेन किं? दानेन किं? तपसा?
गोविन्द गोविन्देति जपि नर! सकल सिधि पदं
जैदेव आइउ तस सफुटं, भव भूत सरब गतं।।

जयदेव ने सगुण-साकार नामों का महत्त्व शिरसा स्वीकार किया है। कबीर, नानक इत्यादि ने भी ऐसा ही किया है। गुरुग्रन्थसाहब में राम का नाम जितनी बार आया है उतनी बार रामचरितमानस में भी नहीं (जिसका कारण ग्रन्थ का विराट् आकार भी है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसमें सन्तों एवं भक्तों की वाणी प्राप्त है। वे उदारचेता महापुरुष थे, संकीर्ण सम्प्रदायवादी नहीं।)

रैदास

पुनरुत्थानकालीन राष्ट्रीय महापुरुषों में सन्त रैदास (रविदास) का स्थान बहुत ऊँचा है। वे रामानन्द के शिष्य एवं कबीर इत्यादि के गुरुभाई थे। उनका जन्म 1398 ई. में कबीर के जन्म (1399 ई.) से चार मास पूर्व माघ पूर्णिमा को काशी में ही हुआ था। उनका स्वर्गवास भी वहीं हुआ। वहाँ उनकी पवित्र स्मृति में महान् मन्दिर बनाया जा रहा है। रैदास ने कबीर इत्यादि के अवसान का संकेत किया है। सन्त रैदास में सन्त कबीर का आक्रोश एवं कुंठाभाव दृग्गत नहीं होता। वे सर्वखण्डनवादी भी नहीं हैं। वे समाज-खण्डक भी नहीं हैं। उनको ब्राह्मण-समेत सारे वर्णों की श्रद्धा प्राप्त हुई थी, जैसाकि उनकी वाणी से ही स्पष्ट है। उनके नाम-महात्म्य, भक्तिप्रपत्ति-महात्म्य, मानव-समता इत्यादि का प्रभाव तुलसीदास जैसे विश्वकवि तक पर पड़ा था। वे ऊर्ध्वग्रावा एवं ज्ञानश्रुति जैसे ऋग्वैदिक ऋषियों, सत्यकाम-जाबाल जैसे औपनिषदि ऋषियों, वाल्मीकि जैसे रामायणकालीन ऋषियों एवं विदुर, व्याध, श्वपच जैसे

1. बीसवीं सदी में भी एक जयदेव (वेदालंकार) हुए हैं; जिन्हें मैंने 1956 ई. में वनस्थली (जयपुर) में देखा था। इन्होंने आर्यसमाजी-पद्धति पर वेदों का हिन्दी-अनुवाद किया है, जो पं. रामगोविन्द त्रिवेदी के अपूर्ण एवं वस्तुपरक 'हिन्दी-ऋग्वेद' के स्तर का नहीं है। यशपाल के श्रेष्ठतम (किन्तु दाने कम भूसा ज्यादा) उपन्यास 'झूठा सच' नामक पात्र का स्मरण भी आता है।

महाभारतकालीन ऋषियों की परम्परा के शूद्र-गौरवदाता सर्वव्यापक महापुरुष थे। महापद्मनन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार, अशोक इत्यादि सम्राट्, तिरुवल्लुवर, सदन, नाभादास, कृष्णदास (अष्ट-छाप) इत्यादि सन्त-महात्मा इस बिन्दु के प्रमाण हैं कि शूद्र (स्पृश्य एवं हरिजन दोनों) ने सारी हिन्दू-जाति का सम्मान प्राप्त किया है।

रैदास की वाणी में पारम्परिक भक्ति-प्रपत्ति की प्रधानता है और वे सगुण-निर्गुण में तात्त्विक अन्तर नहीं मानते, जिसमें दाशरथि राम-भक्ति को भी स्थान प्राप्त हुआ है, यद्यपि यत्र-तत्र औपनिषदिक या अद्वैतगत रंग भी काफ़ी गहरा है तथा एकाध उद्गारों में हठयोग एवं सूफ़ी प्रभाव भी दृष्टिगोचर हो जाता है। उनकी वाणी सरल किन्तु संस्कृतनिष्ठ व्रज-पूर्वी-मिश्रित भाषा में प्राप्त होती है। उन्होंने रूपक के सुन्दर प्रयोग किए हैं। गुरुग्रन्थसाहब में उनकी वाणी प्राप्त होती है, किन्तु पदावली में उनकी भाषा का सहज रूप विवृत नहीं हुआ—ऐसा लगभग सभी सन्तों की पदावली पर घटित हुआ है (जिसका कारण प्रतिलिपिकार भी हो सकते हैं, मौखिक रूप से गृहीत पदावली भी)। परवर्ती प्रक्षेप भी हुए हैं। स्फीत सृजन न करके भी अपने गुण-परिमाण में सन्त रैदास एक श्रेष्ठ कवि भी सिद्ध होते हैं।

पारम्परिक भक्ति-प्रपत्ति

रैदास की भक्ति प्रायः दास्यभाव की है, जिसमें प्रपत्तिवाद (शरणागतिवाद) का समावेश स्वाभाविक है। उन्होंने छुआछूत, ऊँचनीच, मोहम्मदी हिंसा इत्यादि का खण्डन तथा एक-अखण्ड मानवतावाद का प्रशस्य मण्डन किया है। उनको चमार होने का गर्व था, कुण्ठाभाव नहीं :

1. नागरजनाँ! मेरी जाति बिखिआत चमारं।
हदै राम-गोविन्द गुन-सारं।।
सुरसरी सलल कित बारुनी रे! संतजन करत नहिं पानं।
सुरा अपवित्र नत अवर जल रे! सुरसरी मिलत नहिं होत आनं।।
तर तारि अपवित्र करि मानिए रे! जैसे कागरा करत विचारं।
भगति भागतउ लिखिए, तिह ऊपरे पूजिए करि नमस्कारं।।
मेरी जाति कुट बाँडला ढोर ढोवंता नितहि वारानसी¹ आसपासा।
अब बिप्र परधान तिहि करहि डंडउति तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा।।
2. हरि जपत तेऊ जना पदम कवलासपति तास समतुलि नहीं आन कोऊ।
एक ही एक अनेक होइ बिसथरियों आन रे आन भरपूरि सोऊ।।
जाकै भागवतु लेखिए, अवरु नहिं पेखिए, तास की जाति आक्षोप छीपा।
बियास यहि लेखिए, सनक नहिं पेखिए, नाम की नामना सपत-दीपा।।
जाकै ईदि-बकरीदि कुल, गरु रे बधु करहि, मानिअहि सेख सहीद पीरा।
जाकै बाप वैसी करी, पूत ऐसी सरी, तिहू रे लोक परसिध कबीरा।।²
जाकै कुटंब के ढेढ सभ ढोर ढोवंत फिरहि अजहु बारानसी आसपासा।
आचार-सहित बिप्र करहि डंडउति तिन तनै रविदास दासानदासा।।

1. काशी प्राचीन राजा काश या काश्य का राज्यक्षेत्र था, जिसकी राजधानी वरुणा-असी नदियों के मध्य बसी वाराणसी नगरी थी। वाराणसी का प्रयोग प्राचीन हिन्दू, बौद्ध, जैन साहित्यों में मिलता है। हिन्दी-कवियों ने काशी का प्रयोग ही अधिक किया है, किन्तु रैदास एवं तुलसीदास ने वाराणसी का प्रयोग भी किया है।

2. रैदास का अकाट्य प्रमाण कबीर के माता-पिता को कहर मुसलमान सिद्ध करता है, उनको मुसलमान सिद्ध करता है। (कुमारी) ब्राह्मकन्या से जन्म की कथा विशुद्ध कल्पना है और केवल विशुद्ध कल्पना ही हो भी सकती है। कबीर निस्सन्देह मुसलमान थे, यद्यपि उन्होंने गोवध, मांस-भक्षण, खाला-बेटी ब्याह, सुन्नत इत्यादि की निन्दा की है तथा प्रायः वे मानवतावादी महापुरुष थे। उनकी यत्र-तत्र राम-कृष्ण-अवहेलना तथा सर्वत्र मोहम्मद की ब्रह्मवर्गप्रतिष्ठा भी उन्हें मुसलमान ही सिद्ध करती है।

3. जिह कुल साध बैसनौ होइ ।
 बरन-अबरन, रंग नहीं, ईसरु बासु जानिए जगु सोइ ॥
 ब्रह्मन, बैस, सूद अरु खत्री, डोम, चंडाल, मलेछ मन सोइ ॥
 होइ पुनीत भगवंत भजन ते, आपु तारि, तारे कुल दोइ ॥
 धनि सो गाउ, धनि सो ठाउ, धनि पुनीत कुटुंब सभ लोइ ॥
 जिनि पिआ सार-रस तजे आन रस, होइ रस-मगन डारे बिनु खोइ ॥
 पंडित, सूर, छत्रपति, राजा, भगत बराबरि अउरु न कोइ ॥
 जैसे पुरैन-पात रहै जल समीप भनि रविदास जनमें जगि ओइ ॥
4. सतजुगि सतु, तेता जगी¹, दुआपर पूजाचार ।
 तीनों जुग तीनों दिड़े कलि केवल नाम आधार ॥²
 पारु कइसे पाइबो रे! मो सउ कोउ न कहै समझाइ ।

साकारोपासना : रामभक्ति

रैदास ने निर्गुण-निराकार एवं सगुण-साकार में मोहम्मदीयत-प्रेरित अन्तर को विशेष महत्त्व नहीं प्रदान किया। उन्होंने राम इत्यादि अवतारों के प्रति भक्तिभावना को स्पष्टतः व्यक्ति किया है। नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि तक सगुण-साकार से शतशः विमुक्त नहीं हैं, किन्तु रैदास इस दृष्टि से कहीं-अधिक उदार हैं। रैदास निर्गुणप्रधान कबीर इत्यादि एवं सगुणप्रधान तुलसी इत्यादि के मध्य सेतु प्रतीत होते हैं और यही कारण है कि उनका आदर सभी ने किया है। उनके स्पष्टतः सगुणवादी-साकारवादी-अवतारवादी उद्गार द्रष्टव्य हैं :

1. नाथ! कछुअ न जानउ। मनु माया कै हाथ बिकानउ ॥
 तुम कहीअत हम जगतगुरु, सुआमी। हम कहीअत कलजुग के कामी ॥
 इन पंचन³ मेरो मनु जु बिगारिओ। पलु-पलु हरिजी से अंतरु पारिओ ॥
 जत देखउ तत दुख की रासी। अजौ न पत्याइ निगम भए साखी ॥
 गोतम-नारि, उमापति-स्वामी। सीसु धरन सहस्र भग गामी ॥
 इते दूतन खलु बधु करि मारिओ। बड़ो निलाजु अजहु नहि हारिओ ॥
 कह रविदास कहा कैसे कीजै। बिनु रघुनाथ सरनि का की लीजै ॥
2. खटुकरम-कुल-संजुगनु है, हरिभरति हिरदै नाहि।
 चरनारविन्द न कथा भावैं, सुपच तुलि-सम आहि ॥
 रे चित! चेति-चेत अचेत, काहे न बालमीकहि देख।
 किसु जाति⁴ ते किह पदहि अमरिओ, रामभगति बिसेख ॥⁵
 सुआनसत्रु अजातु सभ ते क्रिस्न लावै हेतु⁶
 लोगुं बपुरा किआ सराहै तीन लोग प्रवेस ॥
 अजामलु पिंगुला लुभतु कुंजरु गए हरि कै पास⁷
 ऐसे दुरमति निसतरे तू किउ न तरहि रविदास ॥

1. यज्ञ।

2. कलजुग केवल नाम अधार। (तुलसीदास)

3. पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। पाँच कर्मेन्द्रियाँ।

4. वाल्मीकि शूद्र थे।

5. उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भे ब्रह्म-समाना ॥ (तुलसी)

6. श्वपच (श्वान को भी पचा जाने वाला) का सम्मान कृष्ण ने किया था। मणिपुर में श्वपच अब भी हैं।

7. अजामिल, गणिका, पिंगला, लुब्धक (व्याध), गज हरि के पास गए : वे पतितपावन हैं।

औपनिषदिक प्रभाव: रहस्यवाद

उपनिषद् के प्रभाव से नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि सभी अभिभूत दीखते हैं। वस्तुतः उपनिषद् का सर्ववाद बुद्ध के शून्यवाद, महावीर के कैवल्यवाद तथा जैन-दर्शन-व्याप्त स्याद्वाद, शंकराचार्य के अद्वैतवाद तथा मायावाद, रामनुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद तथा प्रपत्तिवाद, मध्वाचार्य के द्वैतवाद, निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैतवाद, वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद तथा पुष्टिवाद इत्यादि का प्रेरकतत्त्व रहा है। रैदास पर भी उपनिषद् के सर्ववाद या अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा है। उनके “प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी” या “प्रभुजी तुम मोती हम धागा” जैसे उद्गारों वाला पद तो अन्य सन्तों के नाम से भी मिलता है, किन्तु अन्य अनेक पद भी उपलब्ध हैं :

1. जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा। जउ तुम चंद तउ हम भए हैं चकोरा।।
माधव! तुम न तोरहु तउ हम नहि तोरहि। तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि।।
जउ तुम दीवरा तउ हम बाती। जउ तुम तीरथ तउ हम जाती।।
साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी। तुम सिउ जोरि अवर सँगि तोरी।।
जह-जह जाउ तहाँ तेरी सेवा। तुम सो ठाकुरु अउरु न देवा।।
तुमरे भजन कटहि जम फाँसा। भगति हेत गावै रविदासा।।
2. बेगमपुरा सहर को नाउ। दूखु अंदोह नही तिहि ठाउ।
ना तवसीस खिराजु न मालु। खउफु न खता न तरसु जवालु।।
अब मोहि खूब वतन गइ पाई। ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई।।
काइमु दाइमु सदा पतिसाही। दोम न सेम एक सो आही।।
आबादानु सदा मसहूर। ऊहाँ गनी बसहि मामूर।।
तिउ तिउ करहि जिउ भावै। महरम महल न को अटकावै।।
कहि रविदास खलास चमारा। जो हम सहरी सू मीतु हमारा।।¹
3. तोही-मोही, मोही-तोही अंतरु कैसा? कनक-कटिक, जल-तरंग जैसा।
जउ पै हम न पाप करता अहे अनंता! पतितपावन नाम कैसे हुंता।।²
तुम्ह जो नाइक आछहु अंतरजामी। प्रभु ते जनु जानीजै, जन ते सुआमी।।
सरीरु आराधै मो कउ बिचारु देऊ। रविदास सम दल समझावै केऊ।।

हठयोग का प्रभाव

नामदेव, कबीर एवं नानक की तुलना में रैदास पर हठयोग का प्रभाव बहुत कम पड़ा है। किन्तु उनका युग हठयोग के भारी प्रभाव का युग था, अतः कुछ-न-कुछ रुचि वे भी लेते हैं:

सुखसागरु सुरतरु चिंतामनि कामधेनु बसि जाके।
चारि पदारथ असट-दसा सिधि नव निधि करतल ताके।।
हरि-हरि-हरि न जपति रसना। अवर सब तियागि बचन रचना।।
नाना खियान³ पुरान बेद बिधि चउतीस अखर माँही।
बिआस⁴ बिचारि कहिओ परमारथु राम नाम सम नाही।।

1. अरवी-फ़ारसी शब्दों से भरपूर, तुर्क-पठान-काल के शासकीय अत्याचारों की संकेतक, प्रस्तुत पंक्तियों में रविदास का स्वर्ग चित्रित मिलता है जो मोहम्मदी स्वर्ग से भिन्न है।
2. देखीं तेरी रहमत तो ख्याल आया। कुछ गुनाह और किए होते! (ताबों)
3. आख्यान। कथा।
4. व्यास।

सहज-समाधि उपाधि-रहित पुनि बड़े भागि लिव लागी।
कह रविदास प्रगासु रिदै धरि जनम-जनम भै भागी॥

सूफियाना अन्दाज

रैदास गम्भीर सन्त थे तथा “कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानुमती ने कुनवा जोड़ा।” में रुचि न रखते थे। किन्तु जैसे उन्होंने हठयोग के युगप्रभाव की शत-प्रति-शत उपेक्षा नहीं की वैसे ही सूफी-दर्शन की भी। उन्होंने दिव्य-विरह के वर्णन किए अवश्य हैं। उनकी वाणी सूफियाना अन्दाजे-बयाँ भी शामिल है, यद्यपि कबीर और नानक की तुलना में वह नहीं के बराबर ही है:

सह की सार सुहागिनि जानै। तजि अभिमानु सुख-रलिया मानै॥
तनु मनु देइ न अंतर राखै। अवरा देखि न सुनै न भाखै॥
सो कत जानै पीर पराई। जा कै अंतरि दरदु न भाई।¹
दुखी दुहागिनि दुह पख हीनी। जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी॥
पुर सलात का पंथु दुहेला। संगि न साथी गवनु इकेला॥
दुखिया दरदवंदु घर आइया। बहुतु पिआस जबाबु न पाइया॥
कह रविदास सरन प्रभु तेरी। जिउ जानहु तिउ करु गति मोरी॥

आकलन

सन्त रैदास का व्यक्तित्व कबीर एवं नानक के स्तर का है। वे विशेष अहंग्रस्त नहीं लगते और अधिक उदार हैं। कबीर एवं नानक के अनेक उद्गार राम, कृष्ण, बुद्ध के उपासकों तथा जैनों, मुसलमानों को क्लेश भी दे सकते हैं, जबकि रैदास के नहीं (यद्यपि हिंस्र होने के कारण वे म्लेच्छ-आलोचना करते हैं)। परिणाम में परिसीमित होते हुए भी, रैदास का कृतित्व गुणवत्ता में अनमोल है। सन्त-साहित्य पर उनका भारी प्रभाव पड़ा है। तुलसीदास जैसे महान् कवि भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उनकी महानता के कारण सारे चमार-भाई रैदास कहे जाने लगे तथा रैदास-भाई खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल इत्यादि में आदर्श का ध्यान रखने लगे। अनुसूचित भाइयों में रैदास-भाइयों की विशिष्टता उनकी प्रेरणा का ही परिणाम है। माघ-पूर्णिमा को उनकी जयन्ती धूम-धाम से मनाई जाती है। वे भारत के महापुरुषों की अग्रिम पंक्ति को सुशोभित करते हैं। अपनी पूर्व-स्थिति एवं महत्ता पर उन्होंने प्रकाश डाला है :

दारिदु देखि सभ कोइ हसै, ऐसी दसा हमारी।
असट-दसा सिधि करतलै, सभ कृपा तुम्हारी॥

कबीर

भक्ति-विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो।
जोग, जग्य, व्रत, दान, भजन-बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिन्दू-तुरुक प्रमान रमैनी, सबदी, साखी।
पच्छपात नहिं, बचन सर्वाहि के हित की भाखी॥
आरूढ़ दसा है जगत पर मुख-देखी नाहिं भनी।
कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम-षट्दर्शनी॥

—नाभादास (भक्तमाल)

1. जाके पाँव न फटी बेवाई।
सो का जानै पीर पराई॥

मध्यकालीन इतिहास के पुनर्जागरण-दूतों में खुसरो (1253-1325 ई.), नामदेव (1271-1351 ई.) और रामानन्द (1368-1468 ई.) के बाद स्वयं रामानन्द के प्रधान शिष्य कबीर (1399-1448 ई.)¹ का नाम ही लिया जा सकता है, जिनकी अटपटी बानी का समसामयिक रैदास इत्यादि, परवर्ती नानक इत्यादि और आधुनिक रवीन्द्र इत्यादि महापुरुष-महाकवियों पर भारी प्रभाव पड़ा। कबीर नामक बांग्ला-भक्तकवि एवं कबीर शेख नामक दूसरे बांग्ला-भक्तकवि समनामी थे, किन्तु वे चैतन्य महाप्रभु को लीला-लास-मयी प्रेमाभक्ति से सम्पृक्त थे। शरीर से मुसलमान और जीवन से हिन्दू कबीर एक विशद मानवतावादी चिन्तक थे, जिनका प्रभाव सब पर पड़ा। आज भी हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी उनका आदर करते हैं। उनकी विलक्षण प्रतिभा ने उपनिषद् का आधार लेकर हठयोग, सूफीदर्शन, वैष्णव-जीवनपद्धति इत्यादि का ऐसा समन्वित भक्ति-पथ प्रशस्त किया कि ज्ञानी, योगी, कर्मी और भक्त सभी उन्हें समादृत कर सके। कबीर विश्व के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं। मिश्रबन्धु ने ठीक लिखा है, “आप योगी, सिद्ध ब्रह्मानन्दी और समाधिस्थ थे। आपकी गणना पैगम्बरों और मिस्टिक महापुरुषों में हो सकती है। फिर भी आपने किसी से अपने ऊपर अनुचित विश्वास करने का उपदेश नहीं दिया और सारी चितावनियाँ तथा विचार बुद्धिग्राह्य लिखे।” कबीर इतिहास के सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों में एक हैं।

कबीर का जन्म काशी में हुआ। जिस प्रकार ईसा के क्वॉरी माँ के पुत्र होने की कथा प्रचलित है उसी प्रकार कबीर के विधवा ब्राह्मणी के पुत्र होने की (जो रामानन्द के आशीर्वाद से गर्भवती हो गई थी)। जन्म से ही नहीं, वंश से भी कबीर मुसलमान थे।² यदि कबीर को पीटर एवं पॉल जैसे चतुर चले तथा, सबसे बढ़कर कॉन्स्टेन्टाइन महान् जैसा साधनसम्पन्न (परवर्ती) सम्राट्-सहायक मिल जाता तो वे ईसा हो जाते! यदि कबीर को सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन जैसे विद्वान् वक्तृत्वसम्पन्न शिष्य तथा, सबसे बढ़कर, अशोक महान् जैसा साधनसम्पन्न (परवर्ती) सम्राट्-सहायक मिल जाता तो वे बुद्ध हो जाते! मोहम्मद को भी पहली पत्नी ख्दीजा, शिष्य अबू बक्र तथा भक्त उमर का सहयोग मिला था। हिन्दूधर्म भी यदि जीवित है तो पुष्यमित्र शुंग एवं शुंग-वंश, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एवं गुप्त-वंश, पुलकेशिन, सुहदेव, नरसिंहदेव, प्रताप, शिवाजी इत्यादि सम्राटों एवं राजाओं के बलों एवं रण-साफल्यों के कारण। कबीर की लोई नामक पत्नी थी, कमाल नामक पुत्र था, कमाली नामक पुत्री थी। यह सत्य है कि बाह्यतः वे मुसलमान थे : अपने निर्गुण-निराकार-प्रतिपादन में, अपने राम-कृष्ण-व्यंग्य में, अपनी मोहम्मद की अतर्क्य स्तुति में। यह भी सत्य है कि कबीर मुईनुद्दीन चिश्ती, कुत्बुद्दीन बख्तियार काकी, शेख फ़रीद, निजामुद्दीन औलिया वगैरह की तरह मोहम्मदीयत के प्रचारक मात्र न होकर स्वयं पन्थप्रवर्तक बनना चाहते थे, क्योंकि वे इन सबसे बहुत अधिक प्रतिभाशाली थे। अलाउद्दीन जैसे सुल्तान या अकबर—जैसे बादशाह भी मज़हब चलाने की प्रबल इच्छा रखते थे ऐसा लगता है कि काशी में विरोध से बचने के लिए कबीर मगहर चले गए थे, जहाँ उनका

1. (क) चौदह सौ-पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाठ भए।

जेठ सुदी वर सायत को, पूरनभासी तिथि प्रगट भए।।

(आचार्य श्यामसुन्दरदास की ‘कबीर-ग्रन्थावली’ की अमूल्य प्रस्तावना के अनुसार ‘भए’ का ‘अभिप्राय’ व्यतीत होने से है : 1456 वि. मानना उचित है क्योंकि 1455 वि. की ज्येष्ठ पूर्णिमा को सोमवार नहीं था, जबकि 1456 वि. वाली को था। मिश्रबन्धु ने ‘हिन्दी-नवरत्न’ में 1455 वि. माना है, जो युक्तियुक्त नहीं है। अन्य अनेक जन्मवर्ष माने गए हैं, जो चिन्त्य नहीं।)

(ख) संवत पंद्रह सौ औ पाँच भौ मगहर कियौ गमन।

अगहन सुदी एकादसी, मिले पवन में पवन।।

किन्तु ऐसा ही कथन 1575 वि. का भी है जो अधिक प्रचलित है क्योंकि मिश्रबन्धु, श्यामसुन्दरदास इत्यादि ने इसे ही ठीक माना। इसके अनुसार कबीर 120 वर्ष जिए। यह अप्रात्ययिक लगता है। सर्वप्रथम तो कबीर की वाणी में जोश-खरोश है, वह प्रौढ़युगत नहीं लगता। दूसरे, 120 वर्ष का जीवन किसी भी इतिहास-पुरुष को नहीं प्राप्त हुआ। कबीर की समाधि किसी विजली खाँ नामक व्यक्ति ने 1450 ई. में बनवाई थी। इससे भी 1448 ई. में मृत्यु की पुष्टि होती है। सम्प्रति जब वैज्ञानिक प्रगति तथा आर्थिक उत्कर्ष के कारण आयुष्य में विशाल वृद्धि हुई तब भी 120 वर्ष कोई नहीं जीता। 100 से अधिक तो माना जा सकता है। महाकवि भूषण 102 वर्ष जिए। श्री सन्तराम बी.ए. 101 वर्ष जिए। वेदमूर्ति सातवलेकर 101वें वर्ष में दिवन्गत हुए थे और इतिहासकार डॉ. ईश्वरीप्रसाद 98वें वर्ष में। किन्तु 120 का वर्ष का जीवन असम्भववाय है। उनके समवयी, समकालीन एवं गुरुभाई रैदास के द्वारा उनके अवसान का उल्लेख है (परम्परा के अनुसार रैदास चार मास वड़े थे) :

नामदेव, कबीर, तिलोचन, सुधना, सेन तरै।

कह रविदास सुनौ रे संतहु! हरिजी से सबहि सरै।।

2. कबीर के समावासी-समकालीन-गुरुभाई रैदास ने उन्हें वंशतः एवं जन्मतः मुसलमान माना है; अतः विधवाब्राह्मणीपुत्र-कथा की निराधारता निर्विवाद है :

जाकै ईदि-बकरीदि कुल, गऊ रे वधु करहि, मानिआहि सेख-सहीद-पीरा।

जाकै वाप वैसी करी, पूत ऐसर सरी, तिहू रे लोक परसिधु कबीरा।।

देहान्त हुआ। मोहम्मद ने जान बचाने के लिए मक्का से मदीना की हिजरत की थी। कबीर की मृत्युकथा ईसा की मृत्युकथा से कम चमत्कारपूर्ण नहीं। निस्सन्देह, इस क्रान्तिकारी महापुरुष को जन्म से मृत्यु तक संघर्ष झेलने पड़े। कथाएँ प्रतीक हैं। निर्धन जुलाहा होने के व्यंग्य, “काला अक्षर भैंस बरावर” के व्यंग्य, हिन्दुओं द्वारा मुसलमान और मुसलमानों द्वारा हिन्दू समझे जाने के व्यंग्य: व्यंग्य ही व्यंग्य—आज भी होली से ‘कबीर’ (अश्लील गीत) तक फैले हुए! व्यंग्यों की दृष्टि से भी कबीर का जीवन न ईसा से कम था, न मोहम्मद से। उनके बुद्धिगम्य मानवतावादी उपदेश सत्कर्म-सद्भक्ति-आधृत हैं, नरकभयमूलक नहीं। अतः वे हिन्दुओं के भी पूज्य हैं। उनकी विलक्षण प्रतिभा ने सबको ललकारा और सबने उनको पूजा। जन्म में, जीवन में, उपदेश में, कविता में, भाषा में, सभी में उनकी अचूक अस्मिता उन्हें सर्वथा विलक्षण ही सिद्ध करती है।

ग्रन्थ

कबीर के 75 ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं किन्तु उनका गड्डमगड्ड ऐसा है जो संख्या से डरने नहीं देता तथा प्रक्षिप्तता भी सर्वव्यापक ही है। देव के 72 ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं और 52 भी, किन्तु उनका गड्डमगड्ड भी ऐसा ही है। तुलसी के 25 ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं और मिलते भी हैं (रामचरितमानस के नाना प्रक्षिप्त अंश अलग) किन्तु प्रामाणिक 12 ही माने जाते हैं (जिनमें भी रामललानहछू और वैराग्य-संदीपिनी पर विवाद है), अन्य साहित्य भी इस संख्या-समस्या से मुक्त नहीं हैं। कालिदास के 39 ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें 7 ही प्रामाणिक माने जाते हैं और इनमें भी कुमारसम्भवम् में आठवें के बाद के सर्ग प्रक्षिप्त माने जाते हैं। कबीर निरक्षर थे। जो कहते वह दूसरे लिखते। उनके द्वारा त्रुटियाँ सहज सम्भाव्य हैं। प्रक्षेपण भी सहज सम्भाव्य है। कबीरपंथ की श्रुतगोपाल, भगूदास, नारायणदास, चूड़ामणिदास, जगूदास, जीवनदास, कमालदास, टाकसाली, ज्ञानी, साहबदास, नित्यानन्द और कमलानन्द के नेतृत्व में बारह शाखाएँ हो गईं और हर शाखा ने प्रक्षेप किए। उक्त बारह नेताओं में एक भगवानदास बीजक लेकर भाग गए और भगूदास कहे गए। अन्य धर्मों एवं मज़हबों के सदृश कबीरपंथ भी मठवाद से न बच पाया। मोहम्मदीयत की कट्टरता के कारण कबीरपंथ हिन्दू चेलों के कारण हिन्दुओं में ही चल पाया, जिस पर हिन्दू धर्म की छाप पड़ती भी गई और बढ़ती भी। कबीर की परिष्कृत रुचि, अहिंसावृत्ति, क्रांतदर्शिता इत्यादि हिन्दूधर्म से ही अनुप्राणित थीं। अतः मुसलमानों में कबीरपंथ नाममात्र को चल पाया। सम्प्रति कबीरपंथी प्रायः हिन्दू ही हैं। इस स्थिति में, कबीर के प्रामाणिक सृजन पर निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, यद्यपि ‘बीजक’ अन्य ग्रन्थों की तुलना में अधिक विश्वसनीय माना जा सकता है। ‘पन्थों’ में गुरुभक्ति अलम् है। जैसे अन्य सिख-गुरु अपनी वाणी को नानक शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं वैसे ही कबीरपंथियों ने भी किया है। ‘छाप’ में कबीर, नानक शत-शत रचनाओं में प्राप्त हैं। (प्लेटो ‘डॉयलॉग्स’ में सारा ज्ञान सॉक्रेटीज (सुकरात) से सम्पृक्त करते थे।) गुरुग्रन्थसाहब में प्राप्त कबीर की वाणी इस ग्रन्थ के गुरु अर्जुन (देहान्त 1606 ई.) द्वारा सम्पादित किए जाने के कारण अपेक्षाकृत अधिक प्रात्ययिक मानी जा सकती है; किन्तु इस समय तक भी पर्याप्त प्रक्षेपण हो गया था, इसमें सन्देह नहीं। डॉ. श्यामसुन्दरदास द्वारा प्रस्तुत अमूल्य कबीर-ग्रन्थावली (809 साखियाँ या दोहे, 40 सबद या पद, 7 रमैनी या चौपाई-दोहा-मिश्रित तथा परिशिष्ट 192 साखी और 222 सबद जो इसमें नहीं पर गुरुग्रन्थसाहब में हैं) में अधिकतर पृष्ठों में पंजाबी भाषा का प्रभाव इतना अधिक है कि उसे बनारसी कबीर का कृतित्व कानना कठिन लगता है यद्यपि उसमें कबीर की वाणी का मूल रूप भी विद्यमान अवश्य है। इसके गुरुग्रन्थसाहब में प्राप्त अंश में कबीरपन कहीं अधिक है। इसका आधार 1504 ई. (1561 वि) की प्रति मानना गलत है, क्योंकि “सम्बत् 1561” अन्य लेख में है जो परवर्तीकालसूचक है, जैसा कि डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही इंगित किया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ ‘कबीर’ में विवेचलनादिके अन्त में वाणी भी प्रस्तुत की है, किन्तु इसके भी अनेक सबद और साखी भाषा-शैली की दृष्टि से पर्याप्त परवर्ती लगते हैं। रवीन्द्र ने अपने प्रेरक एवं पूज्य कबीर के सौ सबद (पद) अंग्रेज़ी में अनूदित¹ किए हैं, किन्तु उनकी प्रात्ययिकता भी संदिग्ध है। कोई धर्मग्रन्थ मूलरूप में उपलब्ध नहीं है। ऋग्वेद की वर्तमान शाकल-संहिता सम्भवतः प्राचीनकाल में शाकल (स्यालकोट) में अष्ट प्रति पर आधृत होगी। पुष्यमित्र शुंग ने शाकल को हिन्दूधर्म का एक दुर्ग बना दिया था। यह प्रति बर्बर एवं असभ्य आक्रान्ताओं की प्रलयलीला के बावजूद इसलिए बची रह गई कि विजयनगर साम्राज्य के प्रधानमन्त्री सायण एवं उनकी अध्यक्षता में विद्वन्मंडल ने इसकी टीका प्रस्तुत कर दी थी जिसकी अनेक प्रतियाँ कीं, पढ़ी और समझी जा सकीं। इनमें एक ‘डोली’ भेजते रहने के कारण मुगल-सुरक्षित जयपुर-राजघराने में विद्यमान थी। अंग्रेजों ने इसी के

1. वन हंड्रेड पोएम्स ऑफ़ कबीर।

आधार पर ऋग्वेद का पुनरुद्धार किया। विल्सन, मैक्समूलर इत्यादि की अंग्रेजी टीकाओं से यह विश्वव्यापी महत्त्व का ग्रन्थ प्रमाणित हुआ।¹ इसमें लौहल्लेख इत्यादि के अंश प्रक्षिप्त लगते हैं। बाइबिल की प्रक्षिप्तता तो मोहम्मद (570-632 ई.) ने कुरान में ही स्पष्ट कर दी थी। मूल बाइबिल कभी और कहीं मिली नहीं, जैसा कि यूनानी शीर्षक से ही स्पष्ट है, जिसका अर्थ है पुस्तक। धर्मप्रचारकों ने प्रायः हजार साल में रचे गए हिब्रू के किस्से-कहानी सुने-सुनाए और यूनानी में लिख दिए। ईसाई बाइबिल में उल्लिखित यूनानी नरेश तक अनैतिहासिक है। उसकी कथाएँ बस कथाएँ हैं। कुरान मोहम्मद की मृत्यु के अनेक वर्षों के अनन्तर चौथे खलीफ़ा उस्मान के समय ज़ैद के द्वारा सम्मानित कराया गया था। गुरुग्रन्थसाहब पर भी यह बात और भी अधिक लागू होती है, क्योंकि इसमें नानाकालिक एवं नानास्थानिक 37 व्यक्तियों की वाणी संकलित है। फिर भी, कबीर के ग्रन्थों पर हिन्दी के 'प्रथम' महान् आलोचक, वास्तविक साहित्येतिहास-उद्घाटनकर्ता एवं तत्त्वतः कविगत-समीक्षा-वाहक मिश्रबन्धु के 'हिन्दी-नवरत्न' में प्राप्त इस विवरण को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा, "जो 75 ग्रन्थ अब तक खोज से प्राप्त हुए हैं, उनके नाम यहाँ लिखे जाते हैं—(1) अमरमूल, (2) अनुरागसागर, (3) उग्रज्ञानमूलसिद्धान्त, (4) ब्रह्मनिरूपण, (5) हंसमुक्तावली, (6) कबीर-परिचय की साखी, (7) शब्दावली, (8) पद, (9) साखियाँ, (10) दोहे, (11) सुखनिधान, (12) गोरखनाथ की गोष्ठी, (13) कबीरपंजी, (14) बलक की रमैनी, (15) विवेकसागर, (16) विचारमाला, (17) कायापंजी, (18) रामरक्षा, (19) अठपहरा, (20) निर्भयज्ञान², (21) कबीर और धर्मदास की गोष्ठी, (22) रामानन्द की गोष्ठी, (23) आनन्दराम, (24) सागरमंगल, (25) अनाथमंगल, (26) अक्षरभेद की रमैनी, (27) अक्षरखण्ड, (28) अलिफ़नामा, (29) अर्जनामा, (30) आरती, (31) भक्ति का अंग, (32) छप्पय, (33) चौकाघर की रमैनी, (34) ज्ञान-गूदड़ी, (35) ज्ञानसागर, (36) ज्ञान-सरोदय, (37) कबीराष्टक, (38) करमखण्ड की रमैनी, (39) मुहम्मदबोधनाममाहात्म्य, (40) पिया पहिचानिबो को अंग, (41) पुकार कबीरकृत, (42) शब्द अहलटुक, (43) साधु को अंग, (44) सतसंग को अंग, (45) स्वाँस-गुंजार, (46) तीसा-जन्त्र, (47) जन्मबोध, (48) ज्ञानसम्बोध, (49) मखमोह, (50) निर्भयज्ञान, (51) सतनाम या सतकबीर, (52) बानी, (53) ज्ञानस्तोत्र, (54) सतकबीर बन्दीछोरो, (55) शब्द-वंशावली, (56) उग्रगीता, (57) वसन्त, (58) होली, (59) रेखता, (60) झूलना, (61) खसरा, (62) हिण्डोला, (63) बारहमासा, (64) चौंचरा, (65) चौंतीसा, (66) रमैनी, (67) बीजक, (68) आगम, (69) रामसागर, (70) सोरठा, (71) कबीरजी को कृत, (72) शब्दपारखा, (73) आदिग्रन्थ, (74) ज्ञानबत्तीसी और, (75) ज्ञानतिलक। उपर्युक्त ग्रन्थों में बहुत-से संदिग्ध भी हैं। कई ऐसे भी नाम हैं जो अन्य ग्रन्थों के भाग मात्र समझ पड़ते हैं।....आपके मुख्य ग्रन्थ बीजक और आदिग्रन्थ हैं।.... बीजक में 84 रमैनी, 115 शब्द, 353 दोहों की साखी तथा ज्ञानचौंतीसा³, विप्रबत्तीसी⁴, ककहरा⁵, वसंत, चौंचरा, बेलि बिरहुली और हिण्डोल सम्मिलित हैं।.... सबका विषय एक-सा ही है।.... विचार सैकड़ों बार दुहराकर आए हैं।.... इन सबका पढ़ना बड़े धैर्य का काम होगा।" यह संख्या स्पष्ट करती है कि कई ग्रन्थ कबीर को प्रस्तुत करते हैं, न कि कबीर उन्हें (जैसे 'गोरखनाथ की गोष्ठी', 'रामानन्द की गोष्ठी', 'कबीर-परिचय की साखी', 'कबीराष्टक', 'सतकबीर बन्दीछोरो', 'कबीरजी को कृत'); आलिफ़नामा, 'अर्जनामा', 'मुहम्मदबोधनाममाहात्म्य' इत्यादि किसी अरबी-फ़ारसी के जानकार चेले ने क्षिप्त किए हैं, क्योंकि कबीर निरक्षर थे और स्वयं अपनी बोली 'बनारसी' बोलता था जो सरलतापूर्वक समझी भी जा सकती है क्योंकि वे बनारस में ही पैदा हुए, अधिकतर रहे; 'जन्मबोध', 'ज्ञानसम्बोध', 'मखमोह' इत्यादि किसी बुद्ध एवं बौद्धधर्म को जानने वाले चेले ने क्षिप्त किए हैं; 'ज्ञानस्तोत्र' इत्यादि किसी संस्कृत जानने वाले चेले ने क्षिप्त किए हैं 'होली', 'झूलना', 'हिण्डोला', 'बारहमासा' इत्यादि राम-कृष्ण के रसिक सम्प्रदायों से प्रभावित चेलों ने क्षिप्त किए हैं। 'रेखता' (उर्दू का आरम्भिक नाम) तो अठारहवीं सदी (ई.) की कृति लगती है।

मानवतावाद

कबीर मानव-मात्र के पैगम्बर हैं। वे सबके मसीहा हैं। वे सबके नबी हैं। मूसा केवल यहूदियों के पैगम्बर हैं। ईसा केवल ईसाइयों के मसीहा हैं। मोहम्मद केवल मुसलमानों के नबी हैं। कबीर ने धार्मिक पार्थक्यवाद, जात-पाँत, छुवाछूत, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, नमाज़, हज,

1. पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी ने सायणभाष्य को (भूमिका-पुष्प) 'हिन्दी-ऋग्वेद' के रूप में प्रस्तुत कर हिन्दी की भारी सेवा की है। यह अनुवाद आर्यसमाजियों की निजदृष्टिबद्धता से मुक्त है।
2. 'निर्भयज्ञान' (20 और 50) दो बार आ गया है।
3. 65वाँ?
4. सम्भवतः 74वाँ?
5. ककहरा—26 या 27?

गोहत्या इत्यादि की व्यापक विगर्हणा कर बुद्धिगम्य अन्तस्साधना का औपनिषदिक पथ पुनर्प्रशस्त किया और इस पथ-प्रशस्तीकरण के सन्दर्भ में पण्डित हो या क्राजी, मठाधीश हो या मौलवी, पंडा हो या मुल्ला, सबको ही ललकारा। उनका एकवाद (एक ईश्वर, एक मानव, एक धर्म) आज भी उतना ही पवित्र एवं धारणीय है जितना उनके समय में था—सम्भवतः वह सदैव पवित्र एवं धारणीय ही रहेगा :

1. लोका जानि न भूलौ भाई!
खालिक खलक, खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई।।
अल्ला एकै नूर उपाया, ताकी कैसी निन्दा?
एक नूर हैं सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा।।
ता अल्ला की गति नहीं जानी, गुरु गुड़ दीया मीठा।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा।।
माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कूँ गरबाना?
निरभै भया कछू नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवाना।।
काजी! कौन कतेब बखानै?
2. पढ़त-पढ़त केते दिन बीते एकै नहीं जानै।।
सकति से नेह, पकरि करि सुन्नति¹ यहु न बढूँ रे भाई।
जौ रे! खुदाइ तुरक मोहि करता तो आपै कटि किन जाई?
हैं तो तुरुक किया करि सुन्नति, औरति सौं का कहिए?
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिन्दू रहिए।।
छाड़ि कतेब राम कहि क्राजी! खून करत हौ भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहे अख मारी।।
अरे! इन दोउन राह न पाई।।
3. हिन्दू अग्नी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
बेस्या के पाँयन तर सोवै, यह देखौ हिन्दुवाई।
मुसलमान के पीर-औलिया मुरगी-मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी व्याहैं, घरहि में करै सगाई।।
बाहर से यक मुरदा लाए, धोए-धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिलि जेवन बैठीं, घर भर करै बड़ाई।।
हिंदुन की हिंदुवाई देखी, तुरुकन की तुरुकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो! कौन राह है जाई?
अल्ला, राम, करिम, केसव, हरि, हजरत नाम धराया।।
4. गहना एक कनक ते गहना, तामें भाव न दूजा।
कहत-सुनन को दुइ करि राखे, यक नेवाज, यक पूजा।।
वही महादेव, वही मुहम्मद, ब्रह्मा, आदम कहिए।
कोइ हिन्दू, कोई तुरुक कहावै, एक जमी पर रहिए।।
वेद-किताब पढ़ैं, वे कुतूब, वै मुलना, वै पांडे।
बिगत-बिगत कै नाम धरायो, यक माटी के भाँड़े।।
कह कबीर वे दोनों भूले, रामहिं किनहुँ न पाया।
वे खसिया, वे गाय कटावैं, बादै जनम गँवाया।।

1. सुन्नत का विरोध। हिंसा की निन्दा। बलात् धर्मपरिवर्तन की निन्दा।

रहस्यवाद¹

परा की विवृति ही रहस्यवाद है। रहस्यवाद में 'परा' ही 'अपरा' बन जाती है। 'परा' विद्या या पारलौकिक रहस्य को विवृत करने वाली कविता रहस्यवादी कविता कही जाती है। यह साधनामूलक भी हो सकती है। चिन्तामूलक भी हो सकती है, भावनामूलक भी हो सकती है, कल्पनामूलक भी हो सकती है। याज्ञवल्क्य, उद्दालक, श्वेताश्वतर इत्यादि साधनामूलक रहस्यवादी हैं। व्यास, पतंजलि, अरविन्द इत्यादि चिन्तनमूलक रहस्यवादी हैं। जायसी, रामकृष्ण परमहंस, मुक्तानन्द परमहंस इत्यादि भावनामूलक रहस्यवादी हैं। रवीन्द्र, इकबाल, महादेवी इत्यादि कल्पनामूलक रहस्यवादी हैं। कबीर याज्ञवल्क्य इत्यादि के सदृश द्रष्टा नहीं हैं, किन्तु द्रष्टापथगामी अवश्य हैं। वे पतंजलि के सदृश दार्शनिक नहीं हैं, किन्तु दार्शनिकपथगामी अवश्य हैं। वे गोरखनाथ के सदृश योगी नहीं हैं, किन्तु योगीपथगामी अवश्य हैं।

कबीर विश्व के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं। कबीर की काव्य-प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ रूप उनकी रहस्यवादी कविता में ही प्रकट हुआ है, क्योंकि अन्यत्र वे नेता या प्रचारक ही अधिक लगते हैं और कवि कम। रहस्यानुभूतिजन्य आनन्द की जैसी महान् अभिव्यक्ति कबीर में प्राप्त होती है, वैसी किसी अन्य कवि में नहीं। उनकी तुलना में मंसूर और लल्लेश्वरी इत्यादि सैद्धान्तिक मात्र हैं, राबिया और टेरेसा इत्यादि मधुरभावबद्ध मात्र, रवीन्द्र और महादेवी इत्यादि अध्ययनमूलक मात्र। उनके विराट् योगानन्द की तुलना में अरविन्द का बौद्धिक-रहस्यवाद परिसीमित लगने लगता है। कबीर तथा काली के माध्यम से विशद अद्वैतवाद का प्रतिपादन करने वाले बंगाल के सन्त रामप्रसाद से प्रभावित स्वामी रामकृष्ण परमहंस में कबीर की प्रतिभा कहाँ? कबीर प्रतिभा के कारण रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविन्द इत्यादि से श्रेष्ठतर हैं तथा गहन योगसाधना के कारण जायसी, रवीन्द्र, महादेवी इत्यादि से और ऐसा तब है जबकि विद्वत्ता में वे अरविन्द से बहुत पीछे हैं तथा प्रतिभा में रवीन्द्र की समता नहीं कर सकते। लोकनायक के रूप में भी कबीर की तुलना में आधुनिक तुष्टीकरणवादी राजनीति-स्वार्थग्रस्त नेता नहीं खड़े हो पाते क्योंकि कबीर ने न हिन्दुओं से पक्षपात किया न मुसलमानों से। इस दृष्टि से केवल अकबर महान् ही उनके समकक्ष सिद्ध होता है। तुलसी, कबीर और अकबर की गम्भीर और व्यापक सफलता का कारण उनका अकृत्रिम मानवतावाद है। रहस्यवाद के मूल में भी उनका सहज, अकृत्रिम एवं विशद मानवतावाद विद्यमान है। कबीर का महान् रहस्यवादी सृजन तीन रूपों में प्राप्त होता है :

- (क) औपनिषदिक रहस्यवाद (सैद्धान्तिक रहस्यवाद),
- (ख) हठयोगपरक रहस्यवाद (साधनात्मक रहस्यवाद), तथा
- (ग) मधुरभावगत रहस्यवाद (प्रेमात्मक रहस्यवाद)।

कबीर को महान् आलोचक मिश्रबन्धु ने 'उपनिषद् की सन्तान' कहा है। उन्होंने सर्ववाद या अद्वैतवाद को आत्मसात् कर लिया था। उनके सिद्ध-रूप एवं कवि-रूप दोनों का चरम विकास उनके औपनिषदिक रहस्यवाद में ही विवृत हुआ है :

1. हेरत-हेरत हे सखी! रह्या कबीर हिराइ।
बूँद समानी समँद मैं, सो कत हेरी जाइ।।
हेरत-हेरत हे सखी! रह्या कबीर हिराइ।
समँद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्या जाइ।।
पाणीं ही तैं हिम भया, हिम है गया बिलाइ।
जोई था सोई भया, अब किछु कहा न जाइ।।
2. हम न मरैं, मरिहैं संसारा। हम कूँ मिल्या जियावनहारा।।
अब न मरौं, मरनैं मन माना। तेइ मुए जिन राम न जाना।।
साकत² मरे, संतजन जीवै। भरि-भरि राम-रसाइन पीवै।।
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं। हरि न मेरे, हम काहे कूँ मरिहैं।।
कह कबीर मन मनहि मिलावा। अमर भए सुख सागर पावा।।

1. इस विषय पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य श्यामसुन्दरदास, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी इत्यादि ने प्रकाश डाला है। डॉ. रामकुमार वर्मा कृत 'कबीर का रहस्यवाद' एवं डॉ. पवनकुमार कृत 'नव-रहस्यवाद और नयी कविता' ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं।

2. शाक्त (हिंस्र साधना में रत वाममार्गी)।

3.जल मैं कुंभ, कुंभ मैं जल है; बाहरि-भीतरि पानी ।।
फूटा कुंभ, जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी ।।
आदैँ गगनाँ, अतैं गगनाँ, मध्ये गगनाँ भाई ।।
कहै कबीर करम किस लागै? झूठी संक उपाई ।।
4. काहे री नलिनी! तू कुमिलानी? तेरे ही नालि सरोवर पानी ।।
जल मैं उतपति, जल मैं बास । जल में नलिनी! तोर निवास ।।
ना तलि तपति, न ऊपरि आगि । तोर हेतु कहु कासनि लागि? ।।
कह कबीर जे उदिक समान । ते नहिं मुए हमारे जान ।।
5. मो को कहाँ ढूँढ़ता बंदे! मैं तो तेरे पास में?
ना मैं छगरी, ना मैं भेंड़ी, ना मैं छुरी-गँडास में ।।
नहीं खाल में, नहीं पूँछ में, ना हड्डी, ना माँस में ।¹
ना मैं देवालय, ना मैं महजिद, ना काबे कैलास में ।।
ना तौ कौनो क्रिया-कर्म में, नहीं जोग-बैराग में ।
खेजी होय तौ तुरतै मिलिहैं, पल भर की तालाश में ।।
मैं तो रहैं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में ।
कहै कबीर सुनौ भाई साधो! सब साँसों की साँस में ।।
6. कहूँ उस देस की बतियाँ । जहाँ नहिं होत दिन-रतियाँ ।।
नहीं रवि, चंद औ तारा । नहिं उजियारा-अँधियारा ।।
नहीं तहँ पौन औ पानी । गए वहि देस जिन जानी ।।
नहीं तहँ धरनि-आकासा । करे कोइ संत तहँ बासा ।।
वहाँ गम² काल की नाहीं । तहाँ नहिं धूप औ छाहीं ।।
न जोगी जोग से ध्यावै । न तपसी देह जरवावै ।।
सहज में ध्यान से पावै । सुरत का खेल जेहि आवै ।।
सुरंग नाद नहिं भाई । न बाजै संख-सहनाई ।।
निहद्धर जाप तहँ जापे । उठत धुन सुन्न से आपै ।।
मंदिर में दीप बहु बारी । नयन बिन भई अँधियारी ।।
कंबीरा देस है न्यारा । लखै कोइ नाम का प्यारा ।।
7. जल बिच मीन पियासी । मोहि सुनि-सुनि आवति हाँसी ।।
घर में रहत, धरी नहिं सूझै; बाहिर खोजन जासी ।....
आतमज्ञान बिना सब सूना क्या मथुरा, क्या कासी ।।

हठयोग (ह + ठ + योग या सूर्य + चन्द्र + योग या इँगला (इड़ा) + पिंगला + योग अर्थात् सम्पूर्ण श्वास-प्रश्वास-नियन्त्रण या प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी को जागृत कर ऊर्ध्वमुख प्रगति द्वारा सहस्रार से मिलाना) में कबीर की गहरी रुचि थी । हठयोग-साधना के सुमेरु गोरखनाथ के प्रति उनका सम्मान भी कई बार व्यक्त हुआ है । वैसे, कबीर में राजयोग (पातंजल योग या अष्टांग योग) तथा सिद्धयोग (गुरुकृपा से कुण्डलिनी का उद्बुद्ध होना इत्यादि) की झलकियाँ भी मिल जाती हैं किन्तु वस्तुतः वे हठयोगी हैं । कबीर की योगसाधना के अनाहत नाद, अमृतबिन्दुस्राव, चन्द्रामृतज्योति इत्यादि की आनन्दपूर्ण अनुभूति की बड़ी ही प्रभावी अभिव्यक्ति विश्व-साहित्य की निधि है :

1. द्वितीय-तृतीय पंक्ति में बलि-प्रथा का विरोध ।

2. गमन, शोक (गम) । श्लेष ।

1. झीनी-झीनी खीनी चदरिया ।
काहे का ताना, काहे कि भरनी, कौन तार से हीनी चदरिया ?
इंगला-पिंगला ताना-भरनी, सुखमन¹ तार से बीनी चदरिया ।।
आठ² कँवल, दस चरखा डोलें, पाँच तत्त, गुन तीनी चदरिया ।
साई को सिंयत मास दस लागै, ठोंकि-ठोंकि कै लीनी चदरिया ।।
सो चादर सुर-नर-मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों-की-त्यों धरि दीनी चदरिया ।।
2. हिंडोलना तहाँ झूलै आतम राम ।
प्रेम-भगति हिंडोलना, सब संतनि कौ विश्राम ।।
चंद-सूर दोइ खँभवा, वंक नालि की डोरि ।
झूलें पंच पियारियाँ, तहाँ झूलै जीय मोरि ।।
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत को ग्रास ।
जिन यह अमृत चाखिया, सो ठाकुर हम दास ।।
सहज सुन्नि कौ नेहरौ, गगनमँडल सिरिमोर ।
दोऊ कुल हम आगरी जौ हम झूलें हिंडोल ।।
अरध-उरध की गंगा-जमुना मूल कँवल कौ घाट ।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट ।।
नाद-व्यद³ की नाव री, राम-नाम कनिहार ।
कह कबीर गुण गाइ ले, गुरु गंमि उतरौ पार ।।

मधुरभागवत रहस्यवाद की दृष्टि से कबीर का सृजन महान् एवं रैदास, नानक, मीराँ, दादू, रवीन्द्र इत्यादि का प्रेरक रहा है । निस्सन्देह इसमें वे सूफी-प्रेमदर्शन से प्रभावित हैं, किन्तु उनका अद्वय-बोध एवं हठयोग-साफल्य इसे जायसी इत्यादि के रहस्यवादी सृजन से उच्चतर सिद्ध कर देता है :

1. दुलहिनि! गाओ मंगलचार । हमारे घर आए राजा राम भरतार ।।
तन-रत करि मैं मन-रत करिहौं, पाँचों तत्त बराती ।।
रामदेव मोहिं ब्याहन आए, मैं जौवन-मद-माती ।।
सरिर सरोवर बेदी करिहौं, ब्रह्मा वेद उचारा ।
रामदेव संग भाँवरि लैहौं, धन-धन भाग हमारा ।।
सुर तैंतीसौ⁴ कौतुक आए, मुनिवर सहस अठासी ।
कह कबीर मोहि ब्याहि चले हैं पुरुख एक अबिनासी ।।
2. हमन हैं इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या ?
रहैं आज़ाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या ।।
जो बिछड़े हैं पियारे से, भटकते दर-ब-दर फिरते ।
हमारा यार है हममें, हमन को इंतजारी क्या ।।
खलक सब नाम अपने को बहुत कर सर पटकती है ।
हमन गुरुनाम साँचा है, हमन लोगों से तारी⁵ क्या ?

1. सुषुम्ना ।

2. मूलाधार से सहस्रार तक आठ चक्र जो कमल की पंखुड़ियों के होते हैं ।

3. विन्दु ।

4. तैंतीस करोड़ देवता । वैसे, ऋग्वेद में 33 देवता ही हैं ।

5. ताड़ी, लगन, प्रेम ।

3.

न पल बिछड़े पिया हमसे, न हम बिछड़े पियारे से।
 उन्हीं से नेह लगा है, हमन को बेकरारी क्या।।
 कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर का दिल से।
 जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या।।¹
 अकथ कहाणी प्रेम की, कछू कही न जाई।
 गूँगे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई।।
 भूमि बिना अरु बीज बिन तरवर एक भाई।
 अनन्त फल प्रकासिया, गुरु दीया बताई।।
 मन थिर बैसि बिचारिया रामहिं ल्यौ लाई।
 झूठी अनभै बिस्तरी, सब थोथी बाई।।
 कहै कबीर सकति कछु नाहीं, गुरु भया सहाई।
 आवण-जाणी मिटि गई, मन मनहिं समाई।।

वैष्णव प्रभाव

1.

वैस्नों की छपरी भली, ना साकत का वड़गाँव।

2.

साकत ब्राभण मति मिलै, वैस्नों मिलै चंडाल।

अंक भाल दे भेंटिए मनौ मिले गोपाल।।

एक ओर तो कबीर पर उपनिषद् का भारी प्रभाव पड़ा था, दूसरी ओर हठयोग का, तीसरी ओर सूफीदर्शन का, चौथी ओर वैष्णवमत का। वैष्णव शाकाहार एवं अहिंसा पर बहुत जोर देते हैं। कबीर ने भी शाकाहार एवं अहिंसा पर बहुत जोर दिया है। हिंसा से उन्हें घृणा थी जिसे उन्होंने बारम्बार (“दिन भरि रोजा रखत हैं राति हनत हैं गाय” तथा “मुसलमान के पीर-औलिया मुरगी-मुरगा खाई” इत्यादि) व्यक्त किया है। यदि कबीर के प्रथम महान् आलोचक मिश्रबन्धु ने ‘हिन्दी-नवरत्न’ में उन पर उपनिषद् के प्रभाव का संकेत किया है तो ‘कबीर ग्रंथावली’ के प्रथम विशद प्रस्तोता श्यामसुन्दरदास ने वैष्णव प्रभाव का। ‘कबीर’ शीर्षक प्रसिद्ध ग्रन्थ में हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने उन पर हठयोग के प्रभाव का अच्छा निरूपण किया है, यद्यपि वे इस बिन्दु पर आवश्यकता से अधिक जोर देते प्रतीत होते हैं। ‘कबीर की विचारधारा’ ग्रन्थ में डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने अपने विषय पर अच्छा शोध किया है।

कबीर ही नहीं प्रत्युत नामदेव, नानक, नरसी, मीराँ इत्यादि सभी सन्तों एवं भक्तों ने अहिंसा एवं शाकाहार का प्रतिपादन किया है। हिंस्र शाक्तों की निन्दा इसी प्रतिपादन का एक अंग है।

कबीर पर वैष्णव प्रभाव तो पड़ा है, जो उनकी सुस्पष्ट वैष्णव-प्रशस्ति से ही स्पष्ट है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे वैष्णव थे अर्थात् विष्णु तथा उनके नाना अवतारों पर आस्था रखते थे या उनके राम दशरथनन्दन हैं। भले ही गुरु रामानन्द द्वारा ‘राम’ का मन्त्र मिलने के कारण वे इसी नाम का प्रयोग करते थे किन्तु उनके राम का अर्थ प्रायः “सर्वत्र रमणशील ब्रह्म” भी है। रामानन्द निर्गुणमार्गियों को भी राम का मन्त्र देते थे, सगुणमार्गियों की भी—वे राम के रंकारमूलक ब्रह्मतत्त्व या दाशरथि साकारत्व में तात्त्विक अन्तर न मानते थे। कबीर पर रामानन्द का प्रभाव पड़ा है, किन्तु मुसलमान होने के कारण वे अवतारवाद को नहीं अपना सके (हालाँकि ‘मोहम्मद’ या ‘हज़रत’ को ब्रह्मवर्ग में भी प्रयुक्त किया है तथा ‘राम’ शब्द के विश्लेषण के सदृश ‘मोहम्मद’ या ‘हज़रत’ शब्दों का कोई विश्लेषण भी नहीं प्रस्तुत किया) :

1.

तेहि साहब कै लागौ साथ। दुई कुल मेटिके होहु सनाथा।।

दसरथ-कुल अवतरि नहिं आया। नहीं लंक के राय सताया।।

नहिं देवकी के गर्भहि आया। नहीं जसोदा गोद खेलाया।।

पृथिवी रमन, दमन नहिं करिया। पैठि पताल नहिं बलि छलिया।।

1. गज़ल। भाषा-शैली प्रक्षिप्त होने का इंगित करती हैं।

- नहिं बलिराय सौ मौड़ी रारी । ना हरिनाकुस बधल पछारी ।।
 रूप बराह धरनि नहिं धरिया । छत्री मारि निछत्र न करिया ।।
 गंडक सालग्राम न सीला । मच्छ-कच्छ है नहिं जल हीला ॥
 द्वारावती सरीर न छाँड़ा । लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा ।।
 2. दसरथ-सुत तिहुँ लोकहि जाना । राम नाम का मर्म है आना ।।
 अब सुनि लेहु जवाहिर मोदी खरा-खोट नहिं बूझा ।
 सिव गोरख¹ अस जोगी नाहीं, उनहूँ को नहिं सूझा ।।
 बड़-बड़ साधू बाँधे-छोरे, राम भाग दुइ कीन्हा ।
 'रा-रा' अछर पाखर लीन्हा, 'मा' हि मरम तजि दीन्हा ।।....
 राम के नाम ते पिंड-ब्रह्मंड सब, राम के नाम का मर्मबानी ।
 निर्गुन-निरंकार के पार परब्रह्म है, तासु को नाम रंकार जानी ।।

कबीर खण्डनवादी² लगते हैं । दयानन्द भी खण्डनवादी हैं । खण्डनवादियों का प्रभाव सीमित ही रहता है । इनका भी है ।

विरोधाभासों के पुंज

जीवन विरोधाभासों की कलहस्थली है । प्रायः प्रत्येक मनुष्य विरोधाभासों का आखेट होता है । व्यक्तिधर्मों के प्रवर्तक बुद्ध, महावीर, ईसा, मोहम्मद, मार्क्स³ इत्यादि भी विरोधाभासों से मुक्त नहीं हैं ।

वैसे कबीर वेदनिन्दा करते नहीं थकते (यद्यपि कभी वेद पढ़े नहीं थे), किन्तु अवसर देखकर उसका स्वलाभार्थ प्रयोग भी कर लेते हैं ।

वेद पुरान कहत जाकी साखी । तीरथ-व्रत न छूटे जम की फाँसी ।।

वैसे, कबीर ब्राह्मण-निन्दा⁴ में अग्रणी हैं (यद्यपि ब्राह्मण रामानन्द के ही शिष्य थे), किन्तु स्वयं को पूर्वजन्म का ब्राह्मण और चूक के कारण इस जन्म में जुलाहा बनाए जाने की भी घोषणा करते हैं :

तू बाम्हन मैं कासी का जुलाहा ! बूझी मोर गियाना ।
 तैं सब माँगे भूपति राजा, मोरे राम धियाना ।।
 पूरब-जन्म हम बाम्हन होते, ओछे करम तपहीना⁵ ।
 रामदेव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कीन्हा ।।

1. नाथ मछंदर नहिं बचे, गोरख, दत्त औ ब्यास ।

कहै कबीर पुकारि सब परे काल की फाँस ।।

(दत्त = दत्तात्रेय जो महायोगी माने गए ।)

1. कबीर ने षट्दर्शन, जैनदर्शन, बौद्धदर्शन, शाक्तदर्शन तथा चार्वाकदर्शन का भी प्रत्याख्यान किया है:

(क) अरु भूले षट्दरसन भाई । पाखैंड भेष रहे लपटाई ।।

जैन, बौध औ साकत सैना । चारबाक चतुरंग विहैना ।।

जैन जीवन की सुधिहु न जानै । पाती तोरी देहुरे आनै ।।

(ख) जैन जीव का करहु उबारा । कौन जीव का करहु उधारा ?

3. मार्क्स भारतनिन्दक भी थे । उनके अनुसार, भारत में कभी कोई स्वर्ण-युग न हुआ था । वस्तुतः उनका भारत-विषय अज्ञान निर्विवाद है ।

4. (क) बाम्हन-रूप छल्यो बलि राजा । बाम्हन कीन कीन का काजा ।।

बाम्हन ही सब कीन्हीं चोरी । बाम्हन ही को लागल होरी ।।

अंध सो दर्पन वेद-पुराना । दरबी कहा महारस जाना ।।

(ख) संतौ ! पंडि निपुन कसाई ।

(ग) कहै कबीर सुनो हो संतो ! कलि माँ बाम्हन खोटे ।

(घ) फूटी आँखि विवेक की, लखै न संत-असंत । जाके सँग दस-बीस हैं ताको नाम महंत ।।

5. "नाम मेरी परबीना" पाठ भी मिलता है, जिसका अर्थ हुआ "मेरा नाम प्रवीण था" (ध्वनि है कि इस जन्म के सदृश मैं निरक्षर न होकर विद्वान् था) ।

वैसे, कबीर विष्णु तथा उनके नृसिंह, राम, परशुराम, कृष्ण इत्यादि की अवतारों की निन्दा करते नहीं थकते, किन्तु कभी-कभी टकसाली वैष्णव बनते दृष्टिगोचर हो जाते हैं :

है हरिभजन को परमान ।
नीच पावै ऊँच पदवी, बाजते नीसान¹ ।।
भजन को परताप ऐसी तिरे जल पाषान ।
अधम भील², अजाति गनिका चढ़े जात बिमान ।।
नौलख तारा चलै मंडल, चलै ससिहर-भान ।
दास धूँ³ कौं अटल पदवी, राम को दीवान⁴ ।।
निगम जाकी साखि बोलैं, कहैं संत सुजान ।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ राखि लेहु भगवान ।।

ध्वंसवाद

कबीर एक सर्वांगीण ध्वंसवादी थे। अपने-आप को जमाने के लिए कृष्ण, बुद्ध, महावीर इत्यादि धर्मनेताओं ने वेदनिन्दा की थी, लाभ उठाया था, अतः उन्होंने शास्त्र, पुराण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, परशुराम, कृष्ण, ऋषि, मुनि, विद्वान्, पण्डित, गंगा, काशी, प्रयाग, गोरखनाथ इत्यादि से लेकर कुरान, मुल्ला, क्राजी, काबा इत्यादि (मोहम्मद को छोड़कर) तक किसी को नहीं बख्शा और अहंरोग के अतिरेक में शिक्षा तक पर प्रहार कर डाला। कबीर अपने अतिरिक्त सब को उच्छिन्न करना चाहते हैं : केवल वे महान्, शेष सब तुच्छ! स्वयं अशिक्षित, अतः शिक्षा व्यर्थ! यह सत्य है कि शिक्षा महानता का अंश नहीं है। मोहम्मद, कबीर इत्यादि निरक्षर थे; अलाउद्दीन, शार्लमैन इत्यादि निरक्षर थे; अकबर, रणजीतसिंह इत्यादि बस साक्षर मात्र थे। किन्तु व्यापक मानवता शिक्षा से सदैव लाभान्वित हुई है। कबीर का शिक्षा-विरोध प्रतिक्रियावादी है। कबीर की अश्लील एवं अनुद्धरणीय स्फीत नारी-निन्दा विश्व-इतिहास में “न भूतो न भविष्यति” ही है।

आश्चर्य यह है कि कबीर के ध्वंसवाद पर किसी ने एक शब्द भी नहीं लिखा। श्यामसुन्दरदास एवं गुलाबराय ने उनके अज्ञान एवं उनकी कुंठा की ओर दबा-दबा-सा संकेत मात्र किया। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तो बस भाषण-छाप तारीफ़ से ही आलोचक के कर्तव्य की इतिश्री समझ ली। डॉ. ताराचन्द्र के अनुसार, कबीर प्रगति एवं तुलसी प्रतिक्रिया के सूचक हैं, जबकि दोनों का साहित्य यह प्रमाणित नहीं करता। डॉ. नीहारंजन राय भी तुलसी पर बेतरह टूट पड़े हैं। कबीर एवं तुलसी को प्रगति एवं प्रतिक्रिया की लपेट में लेना उस निष्ठावान व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है जिसने दोनों के साहित्य का सम्यक् अनुशीलन किया हो। कबीर का मानवतावाद-सुधारवाद प्रगतिपरक है, नारीनिन्दातिरेक-शिक्षाविरोध प्रतिगामी। तुलसी का मानवतावाद-समन्वयवाद प्रगतिपरक है, शूद्रालोचन-नारीनिन्दन प्रतिगामी (यद्यपि तुलसी ने ब्राह्मणनिन्दन-सर्वाधिक किया है तथा उनका नारी-सम्बेदन उच्चतम कोटि का है)।

कबीर का सर्वांगीण ध्वंसवाद विकल्पहीन भी है, अमनोवैज्ञानिक भी। विकल्पहीन इसलिए कि वह वेद-पुराण, कुरान-हदीस इत्यादि का स्थान नहीं ले पाया (स्थान लेना तो दूर इन ग्रन्थों के महत्त्व पर किञ्चिन्मात्र प्रभाव नहीं डाल सका), अमनोवैज्ञानिक इसलिए कि कर्मकाण्ड-तीर्थार्थन इत्यादि मानव को स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्रदान करते हैं (जन्म-विवाह-मरणादि को भव्यता प्रदान करते हैं, उसे इतिहासबोध-संस्कृतिबोध से सम्पन्न बनाते हैं) : स्वयं कबीरपंथ, नानकपंथ इत्यादि में भी भारी कर्मकाण्ड विद्यमान है। दूसरी ओर, तुलसी का सृजनवाद सर्वथा प्रभावी सिद्ध हुआ है क्योंकि उसने ‘रामचरितमानस’ के रूप में वेद-पुराण आदि का विकल्प प्रस्तुत किया है, मानव-पूजा की नव्यता प्रदान की है, अयोध्या (तुलसी-चबूतरा) तथा काशी (मानस-मन्दिर एवं तुलसी-घाट) में तीर्थ-वृद्धि की है, राजापुर एवं सोरों में नवतीर्थ-प्रतिष्ठापन किया है।

1. निशान। नगाड़े।

2. भीलनी। शबरी।

3. धुव।

4. दीवाना।

भाषा-शैली एवं आकलन

कबीर की भाषा को समन्वित-भाषा कहा जाना चाहिए क्योंकि उसमें ब्रज-अवधी-भोजपुरी का त्रित् तो प्रभावी है ही, खड़ीबोली का रंग भी स्पष्ट है तथा अरबी-फ़ारसी के शब्द भी प्राप्त हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को 'साधुक्कड़ी' कहकर सत्य के साथ न्याय नहीं किया क्योंकि कबीर, रैदास, नानक, दादू इत्यादि की भाषा साहित्यिक मूल्यों से रहित नहीं है—गोरखनाथ, चर्पटनाथ, प्राणनाथ इत्यादि की भाषा ही साधुक्कड़ी कही जा सकती है। उनकी भाषा में शक्ति भी है और प्रवाह भी। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहकर एक प्रभावी विशेषण प्रदान किया है। उन्होंने लोकगीतों, कहावतों और मुहावरों से भरपूर लाभ उठाया है। शैली की दृष्टि से कबीर जायसी इत्यादि से अधिक प्रभावी हैं क्योंकि उन्होंने नाना रागनिबद्ध पदावली, दोहा और चौपाई में एकरस सफलता प्राप्त की है, यद्यपि उनकी अभिव्यक्ति जायसी इत्यादि के सदृश ही नितान्त सुश्रुंखलित नहीं है। उन्होंने रूपक, उपमा, दृष्टान्त, उदाहरण, अर्थान्तरन्यास इत्यादि अलंकारों का सफल प्रयोग भी किया है। महात्मा-रूप में कबीर की तुलना केवल तुलसी, सूर एवं मीराँ कर सकते हैं, किन्तु कवि-रूप में भी वे उच्चकोटि के हैं। उनकी रचनाओं में लालित्य नहीं है, किन्तु पावित्र्य विद्यमान है। उनकी रचनाएँ अपनी सहज कला से प्रभावित अवश्य करती हैं। वे महात्मा भी थे, महाकवि भी। वे बुद्ध, महावीर, नानक इत्यादि 'लीक से हटकर चलने वाले' भारतीय तथा मूसा, ईसा, मोहम्मद इत्यादि विदेशी महापुरुषों के सर्वथा समकक्ष हैं। वे मानवता की विभूति थे, भारत की विभूति थे। हिन्दी-साहित्य उन पर सदा गर्व करता रहेगा।

अन्ततः मेरी काव्यांजलि :

एक था फ़कीर
एकदम हकीर
हियरा में पीर
सबका दिलगीर।

श्लील-अश्लील
अपशब्द कील
दी नहीं ढील
वेधक अपील।

रंक पर मीर
जोश पर धीर
सबका ज्यों नीर
वह था कबीर।

सदन (सदना, सधना)

सदन या सदना या सधना कसाई प्रसिद्ध भक्तों में माने जाते हैं। कबीर के सदृश यह भी मुसलमान थे। इनका समय 1400 ई. के आसपास माना जा सकता है। स्थान सेहवान (सिन्ध, अब पाकिस्तान) बताया जाता है। ग्रन्थ 'पद' है। पौराणिक व्याध, गणिका, अजामिल इत्यादि भक्ति के प्रताप से भवसागर तरते बताए जाते हैं। ऐसे ही नामदेव दर्जी, रैदास चमार¹, कबीर जुलाहा (मुसलमान), सदन कसाई (मुसलमान), सेन नाई इत्यादि भक्त भी तर गए माने जाते हैं। पौराणिक व्याध एवं महाभारत के व्याध के अनन्तर यह तीसरे मांसविक्रेता हैं जो प्रेरक एवं अमर हैं। गुरुग्रन्थसाहब में प्राप्त इन अमर सन्त का एक पद प्रस्तुत है :

नृप कविया के कारने इकु भइया वेष धारी।
कामारथी सुआरथी बाकी पेंच सँवारी।।
एक बूँद जल कारने चातिक दुष पावै।
प्राण गए सागर मिलै पुनि काम न आवै।।
तब गुन कहा जागत गुरा जल करमु न वासै।
सिंह सरन कत जाइए जउ जंबुक ग्रासै।।
प्राण जो थाके थिर नहीं कैसे बिरमावउँ।
बूड़ि मुवै नउका मिलै कहूँ काहि चढ़ावउँ।।
मैं नाहीं कह हउँ नहीं किछु आहि न मोरा।
अउसर लज्जा राखि लउ सधना जनु तोरा²।।

1. रैदास ने 'चमार' या 'चमारा' शब्द का बारम्बार प्रयोग किया है। उन्हें इसका गर्व था।

2. पद के अर्थ एवं अंत्यानुप्रास (तुक) को संगत कर वर्तमान रूप में प्रदान किया है।

वैदिक ऋषि ऊर्ध्वग्रावा एवं ज्ञानश्रुति, औपनिषदिक ऋषि सत्यकाम जाबाल, रामयणकालीन शूद्रा-माता एवं वैश्य-पिता के पुत्र श्रवणकुमार, गुह, शबरी, स्वयं वाल्मीकि, महाभारतकालीन शूद्रा-माता-पुत्र व्यास एवं विदुर तथा श्वपच, परवर्ती नन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य, विन्दुसार, अशोक, मध्यकालीन नामदेव, रैदास, कबीर, सदन (सधना), सेन इत्यादि सन्त तथा रामभक्त नाभादास, कृष्णभक्त कृष्णदास इत्यादि से लेकर आधुनिक सुधारक नारायण गुरु तथा नेता भीमराव अम्बेडकर, जगजीवनराम इत्यादि भारतीय समाज में मानवतावाद अथवा समतावाद के जाज्वल्यमान् रत्न हैं।

सिन्धी मुसलमान कसाई सदन (सधना) हिन्दी के मध्यकालीन राष्ट्रभाषा-रूप के एक प्रकाशवान प्रतीक हैं। आज भी मोतीलाल जोतवाणी, निर्मला आसमणी (आज के श्यामलदास कॉलेज भावनगर की प्राध्यापिका जिसमें किसी समय गांधी पढ़ते थे), नारी आच्छवानी इत्यादि हिन्दीसेवी विद्यमान हैं। आ. जीवनराम भगवानदास कृपलानी, जयरामदास दौलतराम, चोडथराम गिडवाणी, राम जेठमलानी इत्यादि नेता तथा अमर शहीद हेमू कलानी ऐतिहासिक महत्त्व के व्यक्ति हैं। अमर ऋग्वेद मन्त्र-द्रष्टा ऋषि सिन्धुक्षित् तथा 712 ई. के हुतात्मा महाराज दाहिर तो पुण्यश्लोक वर्ग में समाविष्ट हैं।

सेन

नामदेव, कबीर, तिलोचन, सधना, सेन तैरे।

कहउ रविदास सुनहु रे संतहु! हरि जिउ तैं सबहि सैरे।।

(रैदास)

बाँधवगढ़ पूरब जो गायो। सेन नाम नापित तहँ आयो।।

ताकी रही सदा यह रीती। करत रहै साधुन सों प्रीती।।

(महाराज रघुराजसिंह : भक्तमाल-रामरिसकावली)

मध्यकालीन महान् सन्तगुरु, निर्गुण-निराकार तथा सगुणन-साकार एवं ज्ञान-योग तथा भक्ति-कर्म के अभदेवादी द्रष्टा रामानन्द के एक प्रमुख शिष्य सेन (1400 ई. के लगभग) समता एवं मानव-गरिमा के प्रतिपादक थे। बाँधवगढ़ (रीवाँ) के राजा इनके शिष्य थे यह एक नाई से गुरु बने थे तथा भारत के एपिक्टेटस¹ कहे जा सकते हैं। (नाई जाति में चन्द्रगुप्त मौर्य, विन्दुसार, अशोक से लेकर कर्पूरी ठाकुर तक अनेक विभूतियाँ उत्पन्न की हैं—वे 'ठाकुर' या स्वामी या प्रभु कहे गए) इनका व्यक्तित्व महान्² था, कृतित्व साधारण :

धूप, दीप, घृत साजि आरती, वारने जाऊँ कमलापती।

मंगला हरि मंगला नितमंगल राजा राम राय को।

उत्तम दियरा, निरमल बानी, तुही निरंजन कमलापती।

राम भगति रामानंद जानै, पूरन परमानन्द बखानै।

मदन मुरति भय तारि गुनिदे, सेन भणै भजु परमानन्दे।।

धना

मध्यकालीन पुनरुत्थान के परम-गुरु रामानन्द के शिष्यों में धन्ना जाट (जन्म 1400 ई. के लगभग) भी बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके विषय में भी अनेक कथाएँ उपलब्ध रही हैं। डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल ने गुप्त-वंश के सम्राटों को जाट माना है, किन्तु वे स्पष्टतः वैश्य थे, जैसाकि 'गुप्त'³ शब्द से आज तक प्रचलित है। वस्तुतः नन्द एवं मौर्य वंश-द्वय शूद्रों शूंग वंश ब्राह्मणों तथा गुप्त एवं वर्द्धन वंश-द्वय वैश्यों के थे। जाट एक खेतिहर जाति है जो सशक्त होते हुए भी प्रशांत है। शाकाहारी होते हुए भी जाटों में बल की कमी नहीं रही। धना निर्विवाद रूप से प्रथम जाट महापुरुष थे, जिन्होंने जाति को गौरव प्रदान किया! कालान्तर में गोकुल, राजाराम इत्यादि वीर हुए। जाट-शिरोमणि एवं नेता-नायक सूरजमल (सुजानसिंह) ने राष्ट्रीय योद्धा का गौरव प्राप्त किया। आधुनिककाल में हरियाणा

1. प्राचीन रोमन दार्शनिक, जो अश्वेत दास थे तथा स्वामी की सेवा के समय भी चिन्तन एवं वार्तादि के कारण प्रताड़ित भी किए जाते थे।
2. वाराणसी का सेनपुरा इनकी स्मृति से जुड़ा लगता है।
3. वैश्वे, विष्णुगुप्त (चाणक्य), चन्द्रगुप्त मौर्य, ब्रह्मगुप्त (वैज्ञानिक) इत्यादि अपवाद भी मिलते हैं।

के सर छोटूराम, वंशीलाल, देवीलाल इत्यादि, उत्तर प्रदेश के चरणसिंह (जो कृषिशाला विद्वान् थे तथा भारत के प्रधानमन्त्री तक बने), उनके पुत्र अजितसिंह, किसान नेता महेन्द्रसिंह टिकैत इत्यादि, राजस्थान के नाथूराम मिर्धा, रामनिवास मिर्धा, कुम्भाराम आर्य इत्यादि को अच्छी ख्याति मिली। आधुनिक सन्तों में गंगादास जाट थे। जाट-सिखों में प्रतापसिंह कैरो, सिमरनजितसिंह मान, प्रकाशसिंह बादल, सुरजीतसिंह बरनाला इत्यादि उल्लेखनीय हैं। डॉ. सरूपसिंह (अंग्रेजी विद्वान एवं शिक्षाविद्), प्रो. जगदीश कुमार (हिन्दी विद्वान्) इत्यादि भी उल्लेखनीय हैं। धना की वाणी की बानगी पेश है :

भ्रमत फिरत बहु जनम तनु मनु धनु नहिं धीरे।
लाजब काम लुब्ध बिखुराता मन बिसरे प्रभु हीरे।।
बिखुफल मीठ लगै मन बउरे चार बिचार न जाना।
गुनते प्रीति बढ़ी मन भाँती जनमु मरनु फिरि ताना।।
जोति समाय सामने जाके अछली प्रभु पहिचाना।
धनै धन पाया धरनीधर मिलि जन संत समाना।।

पीपा

मध्यकालीन पुनरुत्थान के मानवतावादी नेता रामानन्द के बारह¹ शिष्य प्रसिद्ध हैं : अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, भावानन्द, पीपा, कबीर, सेन, धना, रैदास, पद्मावती, सुरसुरी (सुरसुरी या गंगा, अथवा सुरस्वर-देवी सरस्वती?) इनमें पीपा (जन्म 1400 ई. के आसपास) गौंगरौनगढ़ के राजा थे जो रामानन्द के प्रभाव से विरक्त एवं सन्त हो गए। 'सरब गोटिका' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। 'भक्तमाल' (नाभादास) के टीकाकार प्रियादास ने 'पीपाजी की कथा' लिखी। यह चौहान² थे।

पीपा की हठयोगप्रवण वाणी मानवगौरवमयी एवं आशावादमयी है, जिसमें अस्मिता के दर्शन होते हैं। इनकी साफ-सुथरी सन्तभाषा या मिश्रभाषा अन्य सन्तों से अधिक स्पष्ट तथा सुगम है :

काया देवा काया देवल काया जंगम जाती।
काया धूप दीप नैवेद्या काया पूजा पाती।।
काया बहु खँड खोजत खोजत नवनिछ्छी धरि पाई।
न कछु आइबो न कछु जाइबो रामहि केरि दोहाई।।
जो ब्रह्माण्डै सोई पिण्डै जो खोजै सो पावै।
पीपा प्रणवै परम तत्त्व है सतगुर होय लखावै।।

धरमदास

कबीरपंथ के अन्यतम उन्नायक, 'कबीर-बानी' (1464 ई.)³ के प्रथम संग्रहकार तथा उनकी वाणी में अपनी वाणी को मिला-से देने वाले सन्त धरमदास⁴ (प्रायः 1443-1543 ई., बांधवगढ़, बघेलखण्ड, मध्य-प्रदेश, निवास एवं अवसान काशी) को कबीरपंथ में कबीर के बाद सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इनका प्रमुख ग्रन्थ 'सुखनिधान' है। इनके सम्पादन एवं सर्जन का गड्ढमगड्ढ करते हुए मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में लिखा है, "इन्होंने कबीर के 'द्वादश-पंथ', 'निर्भय-ज्ञान' और 'कबीर-बानी' नामक तीन ग्रन्थ बनाए।" तुलसी साहब हाथरसवाले ने 'घट-रामायण' में इनके सगुणसाकारवाद का त्याग कर निर्गुणनिराकारवाद को अपनाते का भड़कीला वर्णन किया है। यह धनी कसौंधन वैश्य आरम्भ में राम-कृष्णादि के भक्त थे और कबीर के प्रभाव से सारा धन लुटाकर निर्गुणनिराकारवादी बने थे, जैसाकि गरीबदास की 'बानी' में भी वर्णित है :

1. ईसा के भी पतरस (पीटर) इत्यादि द्वादश-शिष्य प्रसिद्ध हैं।
2. पीपा, प्राणचन्द चौहान, सबलसिंह चौहान, सुभद्राकुमारी चौहान, शिवदानसिंह चौहान, डॉ. मेघसिंह चौहान, कुँवर विश्वदेवसिंह चौहान, चिरंजीत इत्यादि चौहानों ने छह सौ वर्षों में उल्लेख्य हिन्दीसेवी की है।
3. प्रात्ययिकतः अनुपलब्ध किन्तु परोक्षतः प्रेरक।
4. 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (शुक्ल) एवं 'हिन्दी-साहित्य कोश' भाग 2 (सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि) के राजेन्द्रकुमार वर्मा ने तत्सम धर्मदास लिखा है जो ठीक ही हैं, पर वे स्वयं धरमदास लिखते थे।

बांधोगढ़ है ग्राम, नाम धरमदास कहीजै ।
 बैस्य कुली¹ कुल जाति, सूड नहिं बात सुनीजै ।।
 सर्गुन ग्यान सरूप, ध्यान सालिग² की सेवा ।।
 मलागीर³ छिरकंत, संत सब पूजैं देवा ।।
 अढसठि तीरथ न्हान ध्यान करि-करि हम आए ।
 पूजै सालिगराम तिलक गलिमाल चढ़ाए ।।
 धूप दीप अधिकार, आरती करैं हमेसा ।
 राम कृष्ण का जाप, रटत है संकर सेवा ।।
 नियम धरम सैं नेहु, सनेह दुनी सैं नाहीं ।
 आरूढ़ वैराग्य, और की मानौ नाहीं ।।

यह सब 'सुखनिधान' में स्वयं इनके द्वारा उल्लिखित भी हैं:

धरमदास बंधो के बासी । प्रेम प्रीति औ भक्ति उपासी ।।
 सालिगराम की सेवा करई । दया-धरम बहुते चित छरई ।।
 साधु भक्त के चरन पखारै । भोजन कराइ अस्तुति निस्तारै ।।
 भागवत, गीता बहुत कहाई । प्रेम-भक्ति-रस पियै अघाई ।।
 मनसा-वाचा भजै गुपाला । तिलक देइ, तुलसी की माला ।
 द्वारिका, जगन्नाथ होइ आए । गया, बनारस गंग नहाए ।।

यह भी सम्भव है कि धरमदास ने स्वयं तथा अनुवर्ती गरीबदास एवं परवर्ती तुलसी साहब ने स्वमतप्रचारार्थ मतपरिवर्तन की कथा गढ़ ली हो । कोई धर्म या मज़हब या पंथ पाखण्ड एवं प्रचारवाद से मुक्त नहीं है । यह भी विडम्बना ही है कि सनातन धर्म के कर्मकाण्ड से तथाकथित अन्तस्साधनामूलक कबीरपंथ में आए धरमदास ने ही कबीर-पूजा, कबीर-आरती इत्यादि का प्रचलन किया ! कोई पंथ या मज़हब कर्मकाण्डमुक्त नहीं है । अतः विवेचन सिद्धान्तों के आधार पर ही होना वरेण्य है; डॉ. ताराचन्द इत्यादि के सदृश प्रतिक्रिया और प्रगति की चर्चा निराधार भी है, कालातीत भी । धरमदास का महत्त्व इस बात से नहीं कि वे पहले सनातनी थे, बाद में कबीरपंथी बने (यद्यपि यह सम्भव है), उनका महत्त्व इस ऐतिहासिक सत्य के कारण है कि उन्होंने अपनी संतता, शालीनता और सम्भवतः सम्पदा से भी कबीरपंथ को प्रतिष्ठा एवं शक्ति प्रदान की । धरमदास प्रहारवादी न थे, खण्डनवादी न थे; कबीर-प्रेरित परवर्ती वैश्य-सन्त भीतादास के सदृश राम-कृष्णादि को गरियाते न थे । यदि कबीर मोहम्मद थे, तो धरमदास अबू बक्र ।

धरमदास की वाणी में जन्मादि के कारण बघेलखण्डी और काशीवास के कारण भोजपुरी की रंगत भी दिखाई देती है, यद्यपि उनकी भाषा कुल मिलाकर सन्तभाषा या मिश्रभाषा ही कही जाएगी । उनके हठयोग से प्रेरित अन्तर्ज्योतिपरक वर्णन बहुत अच्छे हैं । उदाहरण देखें :

1.

हमें यक अचरज जानि परै ।
 जल भीतर यक बिरछा उपजै तामैं आगिनि जरै
 ठाढ़ी साखा पवन झकोरै दीपक-जोति बरै ।¹
 माथे पै तिरबेनि² बहत है चढ़ि असनान करै ।
 लरजै गरजै दामिनी दमकै, कामिनि कलस भरै ।।
 माटी का गढ़ कोट बना है जामैं फौज लरै ।
 सूर बीर कोउ नजरि न आवै नाहक रारि धरै ।।

1. कुलीन ।

2. शालिग्राम ।

3. चन्दन ।

4. सुन्दर विरोधाभास ।

5. त्रिकुटि । आज्ञाचक्र । द्विदल कमल । एक महान् योग-केन्द्र ।

साहब अमर मरै ना कवहूँ नाहक सोच करै।

धरमदास यहि पद को पावै, फिरि कबहूँ न टरै॥

2. झरि लागी महलिया गगन घहराय।
खन गरजै खन बिजुली चमकै लहरि उठै सोभा बरनि न जाय।
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम अनंद हवै साधु नहाय।
खुली केवरिया मिटी अँधियरिया धनि सतगुरु जिन दिया लखाय।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय॥
3. मितरु मड़ेया सूनी करि गैलो।
अपना बलम परदेस निकरि गैलो, हमरा के किछुवो न गुन दै गैलो।
जोगिनि होइके मैं बन-बन ढूँढ़ौं, हमरा के विरह बैराग दै गैलो॥
संग की सखी सब पार उतरि गइलीं, हम धनि ठाढ़ि अकेली रहि गैलों।
धरमदास यह अरज करतु है, सार सबद सुमिरन दै गैलो॥
4. सूतल रहलीं मैं सखियाँ¹ तौ विष कर आगर हो।
सतगुरु दिहलैं जगाइ पायौ सुखसागर हो॥

कमाल

कबीर के पुत्र कमाल (प्रभावकाल 1450 ई. के आसपास) की तुलना में नानक के पुत्र श्रीचन्द² से इस बिन्दु पर की जा सकती है कि दोनों पिताओं के निर्गुणप्रधान दृष्टिकोण के विरोधी थे, सगुण-साकार अथवा मूर्तिपूजा के प्रत्याख्यान की “यथा राजा तथा प्रजा” की द्योतक नीति में रुचि न रखते थे। कबीर पर मोहम्मदी प्रभाव भी बहुत है। वे मोहम्मद को पैगम्बर नहीं अपितु ब्रह्म या ईश्वर के वर्ग में प्रतिष्ठित करते हैं। किन्तु कमाल तत्त्वतः पारम्परिक-हिन्दू हैं। प्रासेद्ध है, कबीर ने कमाल की निन्दा की, क्योंकि वे विरक्त के साथ परिवार के प्रति भी जागरूक थे:

बूड़ा बंस कबीर का उपजा पूत कमाल।³

हरि की सुमिरन छोड़के घर ले आया माल॥

किन्तु कमाल ने कबीर की स्पष्ट निन्दा नहीं की। संकेत अवश्य किए। कबीरपंथ की बारह शाखाओं में एक के प्रवर्तक कमाल माने जाते हैं। वाणी का उदाहरण देखें:

राम के नाम सों काम पूरन भयो, लच्छिमेन नाम ते लच्छि पायो।

कृष्ण के नाम सों बारि⁴ सों पार भे, विष्णु के नाम विश्राम पायो॥

आइ जग बीच भगवंत की भक्ति की और सब छाँड़ि जंजाल छायो।

कहत कमाल कब्बीर का बालक निरखि नरसिंह पहलाद गायो॥⁵

मोहम्मदी कट्टरता ने कबीरपंथ को टुकरा दिया, किन्तु हिन्दू-उदारता ने उसे भी दुलार दिया क्योंकि अक्खड़पन और सर्वखण्डनवाद के बावजूद उसके स्वर मानवतावादी थे और अहं की प्रवृत्ति कबीर में ही हो ऐसा भी नहीं है—अहं का रोग सारे व्यक्ति—प्रवर्तित धर्मों, मज़हबों, पंथों, वादों इत्यादि को दुर्बल किए है, जिसके परिणामस्वरूप मानवता खण्डित हुई है, हिंसा के ताण्डव हुए हैं।

1. इंदियाँ। प्रवृत्तियाँ।

2. दूसरे पुत्र लक्ष्मीचन्द से भी। गांधी का ज्येष्ठ पुत्र हरिलाल भी जो मुसलमान हो गया था।

3. विरोधाभास अलंकार अनायास ही आ गया है; ‘कमाल’ में श्लेष भी है।

4. (भव)-जल। भवसागर।

5. हिरण्यकश्यपु-प्रह्लाद एवं कबीर-कमाल के विरोध की व्यंजना? पिता-पुत्र में संघर्ष एक सर्वस्वीकृत सत्य है।

नानक

सिख-पंथ के प्रवर्तक एवं मध्यकालीन भारत के नामदेव, कबीर, रैदास इत्यादि की परम्परा के प्रसिद्ध धार्मिक एवं सामाजिक सुधारक नानक¹ (1469-1539 ई.) का जन्म लाहौर अंचल के तलवंडी (सम्प्रति नानकाना साहब²) नामक स्थान में हुआ था। वे वेदी (बेदी) खत्री थे। गुरु गोविन्दसिंह ने आत्मपरक 'विचित्र नाटक' में उन्हें कुश एवं स्वयं को लव का वंशज बतलाया है। राष्ट्रपति गियानी जैलसिंह इसे प्रायः उद्धृत किया करते थे। नानक के पिता का नाम कालूचन्द था, माता का तृप्ता, अग्रजा का नानकी तथा बहनोई का जयराम। पिता मध्यमवर्गीय व्यापारी थे। नानक ने सात वर्ष की आयु में गोपाल नामक शिक्षक से पढ़ाई आरम्भ की। नौ वर्ष की अवस्था में हरदयाल नामक पुरोहित ने यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कराया। 1485 ई. में बटाला निवासी मूला की पुत्री सुलक्खनी से विवाह हुआ। इनके श्रीचन्द एवं लक्ष्मीचन्द (लक्ष्मीदास) नामक दो पुत्र थे। नानक को पहले घोड़ों के व्यापार में लगाया गया। किन्तु विरक्तिभावप्रधानता के कारण जम न पाए। तब बहनोई जयराम के यत्न से सुल्तानपुर (पंजाब) के सूबेदार दौलत खाँ लोदी के मोदी नियुक्त किए गए। 1504-1507 ई. का समय इस कार्य में बिताया। बाल्यकाल से ही रुचि भक्ति एवं सत्संग की थी। एक बार पिता ने चालीस रुपए की उस समय को देखते हुए भारी राशि देकर 'खरा सौदा' करने भेजा। बाला नामक सेवक साथ था। नानक ने सारी राशि साधु-सन्तों को खिलाने-पिलाने में व्यय कर दी तथा एकदम 'खरा सौदा' करके लौटे। बाला के अतिरिक्त तलवंडी का मर्दाना इनका पक्का साथी और सिख (शिष्य) था। मर्दाना मुसलमान था। नानक की आध्यात्मिक उपलब्धियों से अनेक व्यक्ति प्रभावित हुए। विरक्तिभाव बढ़ता गया। देश-विदेश की तीन यात्राएँ (उदासियाँ) कीं। नानक एक अथक यात्री थे—अपने युग में शंकराचार्य। उन्होंने हरिद्वार, काशी, जगन्नाथ पुरी इत्यादि तीर्थों की यात्राएँ की ही थीं, सुदूर पूर्वांचल तक पहुँचे थे जैसाकि अरुणाचल प्रदेश में प्रचलित किंवदंतियों से स्पष्ट है। उनके ईरान, इराक तथा अरब तक जाने की कथाएँ प्राप्त होती हैं। जहाँ तक उनकी मक्का यात्रा-कथा का सम्बन्ध है, वह प्रात्ययिक नहीं लगती क्योंकि मोहम्मद (570-632 ई.) ने गैरमुसलमानों के लिए इस तीर्थ की यात्रा का निषेध कर दिया था जो उनकी, कालान्तर में जैद द्वारा सम्पादित पुस्तक, कुरान में बाकायदा दर्ज है। आज भी कोई यहूदी (जिनसे मोहम्मद पूर्णतः प्रभावित थे) और ईसाई (ईसा को प्रभुपुत्र न मानते हुए भी मोहम्मद ने एक पूज्य पैगम्बर माना है) तक मक्का में प्रवेश नहीं कर सकता, यद्यपि मोहम्मद ने यहूदियों की किताब तौरात एवं जबूर तथा ईसाइयों की किताब इंजील को अपनी कुरान के साथ 'आसमानी किताबें' माना है—कुरान वस्तुतः आदम, नूह, लूत, इब्राहीम, इशहाक, याकूब या इसाइल (इज्राएल), यूसुफ़, विनयामीन, मूसा, हारून, ईसा इत्यादि यहूदी मज़हब के नेताओं की कथाओं का संकलन है, जिसमें मोहम्मद ने अपने आदेश, पारिवारिक समस्याओं इत्यादि का समावेश भी कर दिया है। मिस्र का एक प्रख्यात राष्ट्रपति नासर इसाइल के यहूदियों से युद्ध के बावजूद स्वीकार करता था, "हम यहूदी हैं"। जब मोहम्मदी मक्का में यहूदी और ईसाई नहीं जा सकते, तब बुतपरस्त हिन्दू, जैन, बौद्ध तथा आतिशपरस्त पारसी क्या जा पाएँगे? नानक का जीवनवृत्त भी कथाओं से वैसे ही परिपूर्ण है जैसे राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद इत्यादि का। 1521 ई. में नानक ने अंगद (1504-1552 ई.) या बाबा लहना को गुरु पद पर प्रतिष्ठित किया तथा करतारपुर में रहने लगे। इस समय तक पंथ चल निकला था तथा कई गुरुद्वारे बन चुके थे। करतारपुर में ही 1539 ई. में नानक का देहान्त हुआ। जीवनकाल में ही उत्तराधिकारी की प्रतिष्ठा, और वह भी दो में से किसी पुत्र या किसी वरिष्ठ शिष्य की नहीं कनिष्ठ की, विस्मय उत्पन्न करती है। नानक के ज्येष्ठ पुत्र श्रीचन्द सिख न थे। उन्होंने उदासीन सम्प्रदाय³ का प्रवर्तन किया था, जिसमें मूर्तिपूजा, वेद-शास्त्र, तीर्थाटन इत्यादि का विरोध न था। नानक के कनिष्ठ पुत्र लक्ष्मीचन्द (लक्ष्मीदास) भी सिख न थे। अंगद ने कृष्ण को परमदेवता माना है। (श्रीचन्द-लक्ष्मीचन्द कबीर-पुत्र कमाल की याद कराते हैं)

नानक वेदी (बेदी) खत्री थे। अंगद त्रेहन खत्री थे। उन्होंने बहुत छोटी आयु में गुरु पद प्राप्त किया था। उन्होंने मानवतावादी सामूहिक भोज (लंगर) को व्यापक रूप प्रदान किया, गुरु नानक के जीवनवृत्त एवं साहित्य को संकलित कराया तथा पुरानी शारदा-लिपि को पुनरुज्जीवित किया जिसे गुरुमुखी कहा जाता है। अंगद ने वयोवृद्ध शिष्य अमर (1479-1574 ई.) को उत्तराधिकारी नियुक्त किया,

1. द्रष्टव्य है 'नानक-वाणी', प्रस्तुतकर्ता डॉ. जयराम मिश्र, सं. श्रीकृष्णदास। डॉ. सुदेश भाटिया का शोधप्रबन्ध 'सन्त कवि नानक: एक अनुशीलन' भी पठनीय है। यद्यपि दोनों ग्रन्थ पारम्परिक मात्र होने के कारण अधुनातन आलोचना से रहित हैं तथा विद्वत्तापूर्ण भी नहीं हैं, तथापि सामग्री-प्रस्तुति की दृष्टि से अच्छे हैं।

2. सम्प्रति पाकिस्तान में।

3. दिल्ली में रामलीला-मैदान के निकट भव्य मन्दिर है। शास्त्री बलदेवराज 'शान्त' के अनुसार, इस युग में स्वामी निगमानन्द सरस्वती उदासीन संप्रदाय के एक प्रसिद्ध सन्त एवं साहित्यकार थे, जिन्होंने अनेक रचनाएँ कीं।

जिन्होंने श्राद्धकर्म को अपव्यय एवं अन्धविश्वास से मुक्त किया तथा अस्पृश्यता-उन्मूलनार्थ कार्य किया। उन्होंने अपने दामाद रामदास (जेठाजी) को गुरुगद्दी प्रदान की, जिन्होंने अमृतसर की स्थापना की (जिसे रामदासपुर भी कहते हैं)। रामदास सोढ़ी खत्री थे। यहीं से गुरुगद्दी का रूप आनुवांशिक हो गया। वैसे, सारे गुरु खत्री थे। रामदास (1534-1581 ई.) के पुत्र अर्जुन (1563-1606 ई.) ने अमृतसर में हरिमन्दिर (हरमंदिर साहब) की स्थापना की तथा शिलान्यास मियाँ मीर नामक फ़कीर से कराया। इन्होंने आदिग्रन्थ (गुरुग्रन्थसाहब¹) का सम्पादन किया, जिसमें इनकी वाणी का सर्वाधिक परिमाण में प्राप्त होती है, क्योंकि यह एक श्रेष्ठ कवि भी थे। ये पंचम गुरु बड़े प्रतापी थे तथा हिन्दू-मुसलमान दोनों ही इनके सिख बनकर प्रसन्न होते थे। अकबर महान् ने गोइंदवाल में इनके दर्शन किए थे। किन्तु इन्होंने जब जहाँगीर (राज्यकाल 24 अक्टूबर 1605-1628 अक्टूबर 1627 ई.) के सुयोग्य पुत्र खुसरो (जिसे अकबर महान् बादशाह बनाना चाहते हुए भी बादशाह न बना सका, क्योंकि संग्रहिणी ने ध्वस्त किया तथा समाप्त भी) के विद्रोह पर उसे आशीर्वाद दिया तब क्रूर बादशाह बहुत रुष्ट हुआ तथा इनकी निर्मम हत्या करा दी। 'तुजुके-जहाँगीरी' (जहाँगीरनामा) में जहाँगीर ने अर्जुन की बहुत निन्दा की है। यहीं से सिख एक योद्धा सम्प्रदाय के रूप में उभरे क्योंकि अर्जुन के पुत्र हरगोविन्द (1594-1645 ई.) ने धर्म एवं राजनीति का सशक्त समन्वय स्थापित किया। वे नाना क्रीड़ाओं, व्यायाम एवं अनुशासन के द्वारा सिखों को प्रबल बनानेवाले पहले नेता थे। हरगोविन्द ने अनेक पुत्रादि के होते हुए भी सातवें गुरु का पद पौत्र हरराय (1630-1661 ई.) को प्रदान किया, जिनका काल बड़ी कठिनाइयों में बीता। अगले गुरु हरराय के पुत्र हरकिशन (1556-1564 ई.) को अत्यन्त अल्प काल प्राप्त हो प्राया, क्योंकि वे वाल्यकाल में ही चेचक के शिकार हुए। नवें गुरु का पद हरगोविन्द के पुत्र तेगबहादुर (1621-1675 ई.) को प्राप्त हुआ जो एक श्रेष्ठ कवि एवं महान् बलिदानी थे। उन्होंने हिन्दू-जाति एवं उसके शिखा-सूत्र की रक्षा के लिए "सर दिया पर सार न दिया" कहते हुए शहादत पाई थी। औरंगजेब (राज्यकाल 1658-1707 ई.) ने 1675 ई. में उन्हें तथा उनके तीन महान् शिष्यों भाई मतीदास, भाई सतीदास एवं भाई दयालदास को पैशाचिकता को लज्जित करनेवाले ढंगों से मरवा डाला। तेगबहादुर के पुत्र गोविन्दराय या गोविन्दसिंह दशम तथा अन्तिम गुरु हुए। गोविन्दसिंह (1666-1708 ई.) एक महान् संगठनकर्ता, वीर नेता एवं उत्कृष्ट कवि थे, जिन्होंने 30 मार्च 1699 को वैसाखी (वैशाखी, बुद्ध-पूर्णिमा से भिन्न; मूर्खतावश कई समाचारपत्र, विशेषतः अंग्रेजी के चटकमटकदार समाचारपत्र दोनों को एक लिख बैठते हैं) के अवसर पर आनन्दपुर में 'खालसा' (विशुद्ध) की स्थापना की तथा सिख-पंथ का सैनिकीकरण किया, गुरुग्रन्थसाहब का पुनर्सम्पादन करके उसे वर्तमान रूप प्रदान किया। भीषण युद्धों में उनके अनेक सिख मारे गए। उनके दो किशोर पुत्र अजीतसिंह और जुझारसिंह युद्ध में बलिदानी हुए तथा बालक पुत्र जोरावरसिंह और फतेहसिंह बन्दी बनाए जाने के बाद मोहम्मदीयत न स्वीकार करने के कारण ज़िन्दा ही दीवारों में चुनवा दिए गए। सम्भवतः विश्व-इतिहास में चार शहीद पुत्रों के पिता गुरु गोविन्दसिंह ही हुए हैं; जिनके पिता भी शहीद थे तथा जो स्वयं नादेड़ (महाराष्ट्र) में एक पठान से लड़ते हुए शहीद हुए। किसी सन्तान के जीवित न होने के कारण, सैनिक-उत्तराधिकारी के रूप में वीर बंदा वैरागी को मनोनीत करते हुए भी², गोविन्दसिंह ने "गुरु मानियो ग्रन्थ" का प्रचलन किया, क्योंकि गुरु-गद्दी के लिए बड़े संघर्ष होते आ रहे थे। गोविन्दसिंह ने सिखों को सैनिक-जाति बना दिया। उनकी हत्या के बाद भी सिख-शक्ति लगातार बढ़ती रही। रणजीतसिंह ने बड़ा राज्य स्थापित किया। तब उन्नति पराकाष्ठा पर पहुँची। नानक से गोविन्दसिंह तक सारे गुरु खत्री थे।

सिख-पंथ का उद्देश्य

सिख-पंथ का आरम्भ हिन्दूधर्म की एक शाखा के रूप में हुआ था। इसके उद्भव से पूर्व गोरख-पंथ, कबीर-पंथ इत्यादि विद्यमान थे ही। इन दोनों का नानक पर भारी प्रभाव पड़ा है। कबीर मुसलमान थे, इसलिए उन्होंने मोहम्मद की कहीं आलोचना नहीं की प्रत्युत उन्हें ब्रह्म के साथ प्रतिष्ठित किया है। वे राम, कृष्ण इत्यादि पर बारम्बार प्रहार करते हैं। फिर भी, मुसलमानों ने उन्हें नहीं अपनाया। नानक का भी मुसलमानों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। मोहम्मदीयत में उदारता एवं सुधार के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। नानक पर बाबर ने जुल्म किए, अर्जुन को जहाँगीर ने भयानक यातनाएँ देकर मरवा डाला, तेगबहादुर को औरंगजेब ने उनके साथियों के साथ

1. सारी सन्तानों के बलिदान के कारण, गुरु गोविन्दसिंह का कोई उत्तराधिकारी न बचा था, अतः उन्होंने आदिग्रन्थ को ही गुरु मानने का आदेश दिया। इस समय तक आदिग्रन्थ अन्य गुरुओं में से जो कवि भी थे उनके वाणी से भी सम्पन्नतर हो चुका था तब इसे गुरुग्रन्थसाहब कहा जाने लगा। 'गुरुग्रन्थसाहब' में 'साहब' शब्द गुरु का प्रतीक है।
2. अमृतधारी सिख न होते हुए भी बंदा का गुरु गोविन्दसिंह से शिष्य-सम्बन्ध दोनों की उदारता की सूचना देता है। यह हिन्दू-सिख एकता का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

पाशविकतापूर्वक समाप्त करा दिया। गुरु गोविन्दसिंह ने खालसा-पंथ की स्थापना हिन्दूधर्म की रक्षा के लिए की थी, जैसाकि 'चण्डीचरित्र' (चण्डीचरित) के प्रस्तुत उद्गार से स्पष्ट है :

सकल जगत महँ खालसा पंथ गाजे ।

जगै धर्म हिंदू सकल भंड भाजै ॥

अंग्रेजी शासन ने सिखों को भी प्रभावित किया। स्वयं रणजीतसिंह के पुत्र दिलीपसिंह ने विक्टोरिया को हीरा कोहेनूर अर्पित किया तथा ईसाई हो गए। पंजाब के कई राजघराने ईसाई हो गए तथा आज भी हैं। विभाजक आंग्ल-नीति हिन्दू-सिख-पार्थक्य प्रतिपादन में भी वैसी ही सचेष्ट रही जैसी आर्य-द्रविड़-पार्थक्य, सवर्ण-हरिजन-पार्थक्य (यदि गांधी आमरण अनशन न करते तो अंग्रेज सवर्णों और हरिजनों को पृथक् करा देते) में थी। अंग्रेजों के पृथक्तावादी राजनैतिक षड्यन्त्र का एक खलनायक मैकालिफ़ था, जो स्वयं सिख बन गया तथा जिसने गुरुग्रन्थसाहब के अंग्रेजी-अनुवाद की आड़ में दो धर्मों का प्रतिपादन किया, हिन्दू-सिख-फूट के बीज बोए। बीसवीं सदी तक हरिमन्दिर (नाम स्वयं हिन्दुत्व का प्रतीक है) में मूर्तियाँ प्रतिष्ठित थीं। वे हटा दी गईं। गुरुग्रन्थसाहब की विचित्र व्याख्याएँ की गईं। किन्तु सत्य सत्य ही है। सिख-पंथ अद्वैतवाद में विश्वास रखता है। गुरुग्रन्थसाहब पौराणिक सन्दर्भों तक से भरा पड़ा है। सिख-दर्शन मोहम्मदी एकेश्वरवाद में आस्था नहीं रखता; वह आत्मवादी है, पुनर्जन्मवादी है। अद्वैतवाद "अहं ब्रह्मास्मि" (बृहदारण्यक उपनिषद्) से "तत्त्वमसि" (छान्दोग्य उपनिषद्) होता हुआ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छान्दोग्य उपनिषद्) का चरम दर्शन प्रतिपादित करता है। जबकि सामी मज़हब (यहूदी, ईसाई एवं मोहम्मदी) जीव, जगत् एवं ईश्वर (जेहोवा या पिता या अल्लाह) को तीन पृथक्-पृथक् तत्त्व मानते हैं, जैसाकि वाइविल (तौरात, जबूर, इंजील का समाहार) एवं कुरान से निर्विवादतः स्पष्ट है। अद्वैतवाद का एकेश्वरवाद दर्शन है, सामी मज़हबों का एकेश्वरवाद विश्वास। अद्वैतवाद का ईश्वर महतोमहीयान् तत्त्व है, सामी मज़हबों का जेहोवा या पिता या अल्लाह सर्वशक्तिमान 'व्यक्ति'। शेली (शेले) ने 'व्यक्तिगत ईश्वर' (पर्सनल गॉड) का विरोध किया, क्योंकि उनके अनुसार वह स्वेच्छाचारी एवं अत्याचारी है। बर्ट्राण्ड रसेल ने 'क्वाइ आइ ऐम् नॉट ए क्रिश्चियन' (मैं ईसाई क्यों नहीं हूँ) ग्रन्थ लिखा था। सिख-पंथ संकीर्णतावादी न होकर विशुद्ध मानवतावादी है—नानक ने बाबा फ़रीद की प्रशस्ति की है, अर्जुन ने हरिमन्दिर का शिलान्यास मियाँ मीर से कराया था, गुरुग्रन्थसाहब में ब्राह्मण-खत्री-शूद्र-मुसलमान सबकी वाणी विद्यमान है, यहाँ जाति-पाँति को कोई स्थान नहीं, यहाँ स्वर्ग-प्रवेश पर संकीर्णतावादी प्रतिबन्ध नहीं। मोहम्मदीयत केवल द्विलोक (इहलोक-स्वर्लोक) मानती है, सिख-पंथ त्रिलोक (इहलोक-स्वर्लोक-पाताललोक) मानता है। सामी मज़हबों में पैगम्बर की शरण स्वर्ग-प्राप्ति का एकमात्र उपादान है, जबकि सिख-पंथ सत्कर्म को महत्त्व प्रदान करता है। मोहम्मदीयत इत्यादि में पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं है, जबकि सिख-पंथ में है। मोहम्मदीयत इत्यादि में बहुदेववाद को कोई स्थान नहीं है, जबकि सिख-पंथ के सारे गुरु विविध देवी-देवताओं (नृसिंह इत्यादि अवतारों, चण्डी इत्यादि देवियों) की चर्चा करते हैं—राम, कृष्ण को तो विशेष स्थान प्राप्त है ही। जहाँ तक मूर्तिपूजा का सम्बन्ध है, वह न ऋग्वेद में है, न उपनिषद् में; वह बौद्ध-जैन प्रभावोत्पन्न परवर्ती प्रक्रिया-प्रतिक्रिया है। अतः सिख-पंथ पर मोहम्मदीयत के प्रभाव की अधिक चर्चा निराधार है। यत्र-तत्र वेदालोचना तो कृष्ण ने भी की है। कर्मकाण्ड की आलोचना उपनिषद् तक करते हैं। अस्पृश्यता इत्यादि का प्रत्याख्यान बुद्ध ने भी किया था, जिन्हें भागवत में विष्णु का अवतार मानकर पूज्य घोषित किया गया है। अतः द्रुप, मैकालिफ़ एवं खुशवंतसिंह इत्यादि का पृथक्तावादी दृष्टिकोण स्थूल राजनीति से प्रेरित सिद्ध होता है, सूक्ष्म दर्शन से प्रमाणित नहीं।

सम्प्रति हिन्दी और पंजाबी का द्वैत-प्रतिपादन जोरों पर है। पंजाब में हिन्दी को न्याय नहीं मिल रहा है। किन्तु सारे गुरुओं की वाणी हिन्दी में है। पंजाब के प्रथम अकाली मुख्यमन्त्री गुरनामसिंह के शब्दों में, हिन्दी के बिना गुरुवाणी नहीं समझी जा सकती। नानक मुख्यतः हिन्दी-कवि हैं, भले ही उन्हें हिन्दी-पंजाबी का सेतु माना जाए।

नानक का धर्म-दर्शन कर्म¹ खण्ड (भगवत्कृपा-खण्ड), धर्मखण्ड, गियानखण्ड, शरमखण्ड (मर्यादाखण्ड), कर्मखण्ड² एवं सचखण्ड में विभक्त है जो ज्ञान, योग, भक्ति एवं कर्म के चिरन्तन भारतीय दर्शन-पथ से भिन्न नहीं है। भगवत्कृपा (कर्म) प्रपत्ति का साधारणीकरण मात्र है। नानक प्राणव³ या ॐ को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान करते हैं :

ओअंकारि ब्रह्मा उत्पति ।

ओअंकारि किया जिनि चिति ॥

1. कर्म नहीं, कृपा। अरबी में अल्लाह 'करीम' भी है। अरबी-प्रभाव।

2. कर्मखण्ड।

3. "तस्य वाचकः प्रणवः ।" (योगशास्त्र-पतंजलि)।

जिन्होंने श्राद्धकर्म को अपव्यय एवं अन्धविश्वास से मुक्त किया तथा अस्पृश्यता-उन्मूलनार्थ कार्य किया। उन्होंने अपने दामाद रामदास (जेठाजी) को गुरुगद्दी प्रदान की, जिन्होंने अमृतसर की स्थापना की (जिसे रामदासपुर भी कहते हैं)। रामदास सोढ़ी खत्री थे। यहीं से गुरुगद्दी का रूप आनुवांशिक हो गया। वैसे, सारे गुरु खत्री थे। रामदास (1534-1581 ई.) के पुत्र अर्जुन (1563-1606 ई.) ने अमृतसर में हरिमन्दिर (हरमंदिर साहब) की स्थापना की तथा शिलान्यास मियाँ मीर नामक फ़कीर से कराया। इन्होंने आदिग्रन्थ (गुरुग्रन्थसाहब¹) का सम्पादन किया, जिसमें इनकी वाणी का सर्वाधिक परिमाण में प्राप्त होती है, क्योंकि यह एक श्रेष्ठ कवि भी थे। ये पंचम गुरु बड़े प्रतापी थे तथा हिन्दू-मुसलमान दोनों ही इनके सिख बनकर प्रसन्न होते थे। अकबर महान् ने गोइंदवाल में इनके दर्शन किए थे। किन्तु इन्होंने जब जहाँगीर (राज्यकाल 21 अक्टूबर 1605-1628 अक्टूबर 1627 ई.) के सुयोग्य पुत्र खुसरो (जिसे अकबर महान् बादशाह बनाना चाहते हुए भी बादशाह न बना सका, क्योंकि संग्रहिणी ने ध्वस्त किया तथा समाप्त भी) के विद्रोह पर उसे आशीर्वाद दिया तब क्रूर बादशाह बहुत रुष्ट हुआ तथा इनकी निर्मम हत्या करा दी। 'तुजुके-जहाँगीरी' (जहाँगीरनामा) में जहाँगीर ने अर्जुन की बहुत निन्दा की है। यहीं से सिख एक योद्धा सम्प्रदाय के रूप में उभरे क्योंकि अर्जुन के पुत्र हरगोविन्द (1594-1645 ई.) ने धर्म एवं राजनीति का सशक्त समन्वय स्थापित किया। वे नाना क्रीड़ाओं, व्यायाम एवं अनुशासन के द्वारा सिखों को प्रबल बनानेवाले पहले नेता थे। हरगोविन्द ने अनेक पुत्रादि के होते हुए भी सातवें गुरु का पद पौत्र हरराय (1630-1661 ई.) को प्रदान किया, जिनका काल बड़ी कठिनाइयों में बीता। अगले गुरु हरराय के पुत्र हरकिशन (1556-1564 ई.) को अत्यन्त अल्प काल प्राप्त हो प्राया, क्योंकि वे वाल्यकाल में ही चेचक के शिकार हुए। नवें गुरु का पद हरगोविन्द के पुत्र तेगबहादुर (1621-1675 ई.) को प्राप्त हुआ जो एक श्रेष्ठ कवि एवं महान् बलिदानी थे। उन्होंने हिन्दू-जाति एवं उसके शिखा-सूत्र की रक्षा के लिए "सर दिया पर सार न दिया" कहते हुए शहादत पाई थी। औरंगजेब (राज्यकाल 1658-1707 ई.) ने 1675 ई. में उन्हें तथा उनके तीन महान् शिष्यों भाई मतीदास, भाई सतीदास एवं भाई दयालदास को पैशाचिकता को लज्जित करनेवाले ढंगों से मरवा डाला। तेगबहादुर के पुत्र गोविन्दराय या गोविन्दसिंह दशम तथा अन्तिम गुरु हुए। गोविन्दसिंह (1666-1708 ई.) एक महान् संगठनकर्ता, वीर नेता एवं उत्कृष्ट कवि थे, जिन्होंने 30 मार्च 1699 को वैसाखी (वैशाखी, बुद्ध-पूर्णिमा से भिन्न; मूर्खतावश कई समाचारपत्र, विशेषतः अंग्रेजी के चटकमटकदार समाचारपत्र दोनों को एक लिख बैठते हैं) के अवसर पर आनन्दपुर में 'खालसा' (विशुद्ध) की स्थापना की तथा सिख-पंथ का सैनिकीकरण किया, गुरुग्रन्थसाहब का पुनर्सम्पादन करके उसे वर्तमान रूप प्रदान किया। भीषण युद्धों में उनके अनेक सिख मारे गए। उनके दो किशोर पुत्र अजीतसिंह और जुझारसिंह युद्ध में बलिदानी हुए तथा बालक पुत्र जोरावरसिंह और फतेहसिंह बन्दी बनाए जाने के बाद मोहम्मदीयत न स्वीकार करने के कारण जिन्दा ही दीवारों में चुनवा दिए गए। सम्भवतः विश्व-इतिहास में चार शहीद पुत्रों के पिता गुरु गोविन्दसिंह ही हुए हैं; जिनके पिता भी शहीद थे तथा जो स्वयं नांदेड़ (महाराष्ट्र) में एक पठान से लड़ते हुए शहीद हुए। किसी सन्तान के जीवित न होने के कारण, सैनिक-उत्तराधिकारी के रूप में वीर वंदा वैरागी को मनोनीत करते हुए भी², गोविन्दसिंह ने "गुरु मानियो ग्रन्थ" का प्रचलन किया, क्योंकि गुरु-गद्दी के लिए बड़े संघर्ष होते आ रहे थे। गोविन्दसिंह ने सिखों को सैनिक-जाति बना दिया। उनकी हत्या के बाद भी सिख-शक्ति लगातार बढ़ती रही। रणजीतसिंह ने बड़ा राज्य स्थापित किया। तब उन्नति पराकाष्ठा पर पहुँची। नानक से गोविन्दसिंह तक सारे गुरु खत्री थे।

सिख-पंथ का उद्देश्य

सिख-पंथ का आरम्भ हिन्दूधर्म की एक शाखा के रूप में हुआ था। इसके उद्भव से पूर्व गोरख-पंथ, कबीर-पंथ इत्यादि विद्यमान थे ही। इन दोनों का नानक पर भारी प्रभाव पड़ा है। कबीर मुसलमान थे, इसलिए उन्होंने मोहम्मद की कहीं आलोचना नहीं की प्रत्युत उन्हें ब्रह्म के साथ प्रतिष्ठित किया है। वे राम, कृष्ण इत्यादि पर बारम्बार प्रहार करते हैं। फिर भी, मुसलमानों ने उन्हें नहीं अपनाया। नानक का भी मुसलमानों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। मोहम्मदीयत में उदारता एवं सुधार के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। नानक पर बाबर ने जुल्म किए, अर्जुन को जहाँगीर ने भयानक यातनाएँ देकर मरवा डाला, तेगबहादुर को औरंगजेब ने उनके साथियों के साथ

1. सारी सन्तानों के बलिदान के कारण, गुरु गोविन्दसिंह का कोई उत्तराधिकारी न बचा था, अतः उन्होंने आदिग्रन्थ को ही गुरु मानने का आदेश दिया। इस समय तक आदिग्रन्थ अन्य गुरुओं में से जो कवि भी थे उनके वाणी से भी सम्पन्नतर हो चुका था तब इसे गुरुग्रन्थसाहब कहा जाने लगा। 'गुरुग्रन्थसाहब' में 'साहब' शब्द गुरु का प्रतीक है।

2. अमृतधारी सिख न होते हुए भी वंदा का गुरु गोविन्दसिंह से शिष्य-सम्बन्ध दोनों की उदारता की सूचना देता है। यह हिन्दू-सिख एकता का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

पाशविकतापूर्वक समाप्त करा दिया। गुरु गोविन्दसिंह ने खालसा-पंथ की स्थापना हिन्दूधर्म की रक्षा के लिए की थी, जैसाकि 'चण्डीचरित्र' (चण्डीचरित) के प्रस्तुत उद्गार से स्पष्ट है :

सकल जगत महँ खालसा पंथ गाजे ।

जगै धर्म हिंदू सकल भंड भाजै ॥

अंग्रेजी शासन ने सिखों को भी प्रभावित किया। स्वयं रणजीतसिंह के पुत्र दिलीपसिंह ने विक्टोरिया को हीरा कोहेनूर अर्पित किया तथा ईसाई हो गए। पंजाब के कई राजघराने ईसाई हो गए तथा आज भी हैं। विभाजक आंग्ल-नीति हिन्दू-सिख-पार्थक्य प्रतिपादन में भी वैसी ही सचेष्ट रही जैसी आर्य-द्रविड़-पार्थक्य, सवर्ण-हरिजन-पार्थक्य (यदि गांधी आमरण अनशन न करते तो अंग्रेज सवर्णों और हरिजनों को पृथक् करा देते) में थी। अंग्रेजों के पृथक्तावादी राजनैतिक षड्यन्त्र का एक खलनायक मैकालिफ था, जो स्वयं सिख बन गया तथा जिसने गुरुग्रन्थसाहब के अंग्रेजी-अनुवाद की आड़ में दो धर्मों का प्रतिपादन किया, हिन्दू-सिख-फूट के बीज बोए। बीसवीं सदी तक हरिमन्दिर (नाम स्वयं हिन्दुत्व का प्रतीक है) में मूर्तियाँ प्रतिष्ठित थीं। वे हटा दी गईं। गुरुग्रन्थसाहब की विचित्र व्याख्याएँ की गईं। किन्तु सत्य सत्य ही है। सिख-पंथ अद्वैतवाद में विश्वास रखता है। गुरुग्रन्थसाहब पौराणिक सन्दर्भों तक से भरा पड़ा है। सिख-दर्शन मोहम्मदी एकेश्वरवाद में आस्था नहीं रखता; वह आत्मवादी है, पुनर्जन्मवादी है। अद्वैतवाद "अहं ब्रह्मास्मि" (बृहदारण्यक उपनिषद्) से "तत्त्वमसि" (छान्दोग्य उपनिषद्) होता हुआ "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छान्दोग्य उपनिषद्) का चरम दर्शन प्रतिपादित करता है। जबकि सामी मजहब (यहूदी, ईसाई एवं मोहम्मदी) जीव, जगत् एवं ईश्वर (जेहोवा या पिता या अल्लाह) को तीन पृथक्-पृथक् तत्त्व मानते हैं, जैसाकि बाइबिल (तौरात, जबूर, इंजील का समाहार) एवं कुरान से निर्विवादतः स्पष्ट है। अद्वैतवाद का एकेश्वरवाद दर्शन है, सामी मजहबों का एकेश्वरवाद विश्वास। अद्वैतवाद का ईश्वर महतोमहीयान् तत्त्व है, सामी मजहबों का जेहोवा या पिता या अल्लाह सर्वशक्तिमान 'व्यक्ति'। शेरी (शेले) ने 'व्यक्तिगत ईश्वर' (पर्सनल गॉड) का विरोध किया, क्योंकि उनके अनुसार वह स्वेच्छाचारी एवं अत्याचारी है। बर्ट्रान्ड रसेल ने 'क्वाइ आइ ऐम् नॉट ए क्रिश्चियन' (मैं ईसाई क्यों नहीं हूँ) ग्रन्थ लिखा था। सिख-पंथ संकीर्णतावादी न होकर विशुद्ध मानवतावादी है—नानक ने बाबा फरीद की प्रशस्ति की है, अर्जुन ने हरिमन्दिर का शिलान्यास मियों मीर से कराया था, गुरुग्रन्थसाहब में ब्राह्मण-खत्री-शूद्र-मुसलमान सबकी वाणी विद्यमान है, यहाँ जाति-पाँति को कोई स्थान नहीं, यहाँ स्वर्ग-प्रवेश पर संकीर्णतावादी प्रतिबन्ध नहीं। मोहम्मदीयत केवल द्विलोक (इहलोक-स्वलोक) मानती है, सिख-पंथ त्रिलोक (इहलोक-स्वलोक-पाताललोक) मानता है। सामी मजहबों में पैगम्बर की शरण स्वर्ग-प्राप्ति का एकमात्र उपादान है, जबकि सिख-पंथ सत्कर्म को महत्त्व प्रदान करता है। मोहम्मदीयत इत्यादि में पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं है, जबकि सिख-पंथ में है। मोहम्मदीयत इत्यादि में बहुदेववाद को कोई स्थान नहीं है, जबकि सिख-पंथ के सारे गुरु विविध देवी-देवताओं (नृसिंह इत्यादि अवतारों, चण्डी इत्यादि देवियों) की चर्चा करते हैं—राम, कृष्ण को तो विशेष स्थान प्राप्त है ही। जहाँ तक मूर्तिपूजा का सम्बन्ध है, वह न ऋग्वेद में है, न उपनिषद् में; वह बौद्ध-जैन प्रभावोत्पन्न परवर्ती प्रक्रिया-प्रतिक्रिया है। अतः सिख-पंथ पर मोहम्मदीयत के प्रभाव की अधिक चर्चा निराधार है। यत्र-तत्र वेदालोचना तो कृष्ण ने भी की है। कर्मकाण्ड की आलोचना उपनिषद् तक करते हैं। अस्पृश्यता इत्यादि का प्रत्याख्यान बुद्ध ने भी किया था, जिन्हें भागवत में विष्णु का अवतार मानकर पूज्य घोषित किया गया है! अतः द्रुप, मैकालिफ एवं खुशवंतसिंह इत्यादि का पृथक्तावादी दृष्टिकोण स्थूल राजनीति से प्रेरित सिद्ध होता है, सूक्ष्म दर्शन से प्रमाणित नहीं।

सम्प्रति हिन्दी और पंजाबी का द्वैत-प्रतिपादन ज़ोरों पर है। पंजाब में हिन्दी को न्याय नहीं मिल रहा है। किन्तु सारे गुरुओं की वाणी हिन्दी में है। पंजाब के प्रथम अकाली मुख्यमन्त्री गुरनामसिंह के शब्दों में, हिन्दी के बिना गुरुवाणी नहीं समझी जा सकती। नानक मुख्यतः हिन्दी-कवि हैं, भले ही उन्हें हिन्दी-पंजाबी का सेतु माना जाए।

नानक का धर्म-दर्शन कर्म¹ खण्ड (भगवत्कृपा-खण्ड), धर्मखण्ड, गियानखण्ड, शरमखण्ड (मर्यादाखण्ड), कर्मखण्ड² एवं सचखण्ड में विभक्त है जो ज्ञान, योग, भक्ति एवं कर्म के चिरन्तन भारतीय दर्शन-पथ से भिन्न नहीं है। भगवत्कृपा (कर्म) प्रपत्ति का साधारणीकरण मात्र है। नानक प्राणव³ या ॐ को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान करते हैं :

ओअंकारि ब्रह्मा उतपति ।

ओअंकारि किया जिनि चिति ॥

1. कर्म नहीं, कृपा। अरबी में अल्लाह 'करीम' भी है। अरबी-प्रभाव।

2. कर्मखण्ड।

3. "तस्य वाचकः प्राणवः ।" (योगशास्त्र-पतंजलि)।

समन्वय

यद्यपि कहीं-कहीं नानक ने, सम्भवतः कबीर के अनुकरण में, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, बुद्ध, वेद, पुराण इत्यादि के प्रति आलोचनात्मक कथन किए हैं, जिनसे हिन्दु या बौद्ध के मन को क्लेश हो सकता है, तथापि वे सामान्यतः हरि, नारायण, दामोदर, शलिग्राम, माधव, गोविन्द, मधुसूदन, वासुदेव, वनमाली, मुरारी इत्यादि तथा विशेषतः राम शब्दों को ब्रह्मवादी प्रयोग यत्र-तत्र-सर्वत्र करते हैं तथा पौराणिक सन्दर्भों का ऐसा ही उपयोग भी :

दुरमति हरणाखसु दुराचारी । प्रभु नाराइणु गरब प्रहारी ।।
 प्रहलाद उधारे किरपाधारी ।। भूलो रावण मुगध अचेति ।
 लूटी लंका सीस समेति ।। गरब गइआ विनु सतिगुरु हेति ।।
 सहसबाहु मधुकीट महिखासा । हरणाखसु ले नखहु बिधासा ।।
 दैत संधारे विनु भगति अभिआसा । जरासंध कालजमुन संधारे ।
 रक्तबीजु कालुनेमु बिदारे ।। दैत संधारि संत निसतारे ।।

उपर्युक्त पंक्तियों में नृसिंह, राम, परशुराम, कृष्ण, हनुमान इत्यादि की दुष्टसंहारक ब्रह्मरूप में वन्दना की गई है। यह सत्य है कि नानक ने निर्गुण-निराकार का विशेष प्रतिपादन किया है जो उपनिषद्सम्मत है, योगसम्मत है, सर्वसम्मत है, किन्तु वे सगुण-साकार का नितान्त विरोध भी नहीं करते। यदि ऐसा करते तो हिन्दू अब तक उनका आदन न करते। उनके मूर्तिपूजा-विरोध तक का विरोध स्वयं उनके पुत्रद्वय ने किया, क्योंकि श्रीचन्द प्रवर्तित उदासीन सम्प्रदाय में वैष्णव सगुणसाकारवादी मूर्तिपूजा विद्यमान है (दिल्ली के अजमेरी दरवाजा क्षेत्र में विशाल मन्दिर प्रमाण है)। विभाजनवादी तत्त्वों का स्पष्ट खण्डन 'गुरुग्रन्थसाहब' (महला दूजा—प्रकरण द्वितीय गुरु का) में ही गुरु अंगद ने स्वयं कर दिया है :

एक कृष्णं त सरबदेवा देव देवात आतमह ।
 आतमं श्री वासदेवस्य जे कोई जानसि भेव ।
 नानक ताको दासु है सोई निरंजन देव ।

निस्सन्देह, प्रस्तुत शब्दावली "कृष्णास्तु भगवान् स्वयं" से भी अधिक सशक्त एवं अधिक स्पष्ट है तथा राम-सन्दर्भ में तुलसी के "सोइ दसरथसुत" से भी अधिक प्रभावी लगती है।

अंगद, अर्जुन, तेगबहादुर इत्यादि जिन गुरुओं ने काव्यरचना की है, नानक की छाप देकर की है जो अनन्यता की असामान्य प्रतीक है। सिख-पंथ में गुरुभक्ति के चरम उत्कर्ष के दर्शन होते हैं।

वेद प्रेरणा

नानक का ईश्वर-वर्णन ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में प्राप्त महर्षि नारायण प्रणीत 'पुरुष-सूक्त' के "सहस्रशीर्षा पुरुषः" इत्यादि से अनुप्राणित है तथा शुक्ल-यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय, जो प्रसिद्ध ईशावास्योपनिषद् के रूप में भी प्राप्त होता है, के "तदेजति तन्नैजति" इत्यादि का स्मरण भी कराता चलता है :

सहस तव नैन, नन नैन है तेइ कउ ।
 सहस मूरति, नना एक तोही ।
 सहस पद बिमल, नन एक पद; गंध बिनु,
 सहस तव गंध, इव चलत मोही ।।
 सभ महि जोति जोति है सोइ ।
 तिसकै चानणि सभ महि चानणि होइ ।।

ऋग्वेद के महर्षि परमेष्ठी प्रजापति द्वारा प्रणीत 'नासदीय-सूक्त' (जिसे तिलक ने विश्व का सर्वश्रेष्ठ दर्शन माना है) बौद्धों की शून्य समाधि, पतंजलि की निर्बीज समाधि तथा परवर्ती योगियों की चरम सिद्धि का प्रेरक रहा है। यह प्रेरणा कृष्ण ("न तत्र सूयो

भाति" इत्यादि), सरहपा ("जहँ मन पवन न संचरइ" इत्यादि), कबीर ("कहूँ उस देश की बतियाँ इत्यादि), प्रसाद ("सूरज का हो न उजाला" इत्यादि) इत्यादि तक प्रसरित है। नासदीय-सूक्त (ऋग्वेद, 10/129) प्रस्तुत है :

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं । नासीद्व्रजो नो व्योमा परो यत् ॥
 किमावरीवः कुह कुस्य शर्मन्नम्भः । किमासीद् गहनं गभीरम् ॥ 1
 न मृत्युरासीद् अमृतं न तर्हि । न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ॥
 आनीदवातं स्वधया तदेकं । तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥ 2
 तम आसीत्तमसा गूलहमग्रे । अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ॥
 तुच्छ्येनाभ्यपिहितं यदासीत् । तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ 3
 कामस्तग्रे समवर्तताधि । मनसोरेतः प्रथमं यदासीत् ॥
 सतो बन्धुमसति निरविन्दन् । हृदि प्रतीप्या कवयो मनीषा ॥ 4
 तिरश्चीनो विततो रम्भिरेषामधः । स्विदासीदुपरि स्विदासीत् ॥
 रेतोधा असान्महिमान आसन्स्वधा । अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ 5
 को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् । कृत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ॥
 अर्वाङ्ग देवा अस्य विसर्जनेन । अथा को वेद यत आवभूव ॥ 6
 इयं विसृष्टिर्यत आ वभूव । यदि वादधे यदि वा न ॥
 यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो । अंगवेद यदिवा न वेद ॥ 7

उस समय (सृष्टि के पूर्व) न सत् था न असत् था । न अन्तरिक्ष (वायुलोक), न दूर स्थित आकाश था । किस वस्तु ने विश्व को ढक रखा था? वह कहाँ था? किसके आश्रय में? क्या अथाह गम्भीर जलराशि थी? 1 । उस समय मृत्यु नहीं थी, (अतः) अमरत्व भी नहीं था । रात्रि अथवा दिन की पहिचान न थी । परन्तु वह (परमात्मा) अपनी शक्ति से बिना वायु के साँस ले रहा था । (अर्थात् विद्यमान था ।) उसको छोड़कर और-कुछ नहीं था 2 । उस आदिकाल में अंधकार अंधकार से ढका था । सम्पूर्ण जगत् अज्ञात, जलस्वरूप था । जन्म लेनेवाला संसार अनिर्वचनीय दशा में जब ढका हुआ था । (तब) अपनी महिमा से 'एक' उत्पन्न हुआ 3 । उस 'एक' से उस समय कामना निकल आई । जिसके कारण मन में सृष्टि की सबसे पहले उत्पन्न हुई । ज्ञानियों ने अपनी बोधशक्ति के द्वारा अपने अन्दर ढूँढकर असत् (अविद्यमान) और सत् (विद्यमान) का सम्बन्ध समझ लिया 4 । इन तीन्हीं (अविद्या, संकल्प एवं सृष्टिकारण) का सूर्यकिरण के समान, निमिषमात्र में व्याप्त होनेवाला सूर्यवर्ग विस्तृत था; वह कार्यवर्ग सबसे पहले क्या मध्य में वर्तमान था? क्या नीचे वर्तमान था? क्या ऊपर वर्तमान था? (एकदम उत्पन्न कार्य से मध्य-अध-ऊर्ध्व नहीं जाना जा सकता) । इस प्रकार उत्पन्न हुए जगत् में कुछ पदार्थ बीज-रूपी कर्म के बनानेवाले जीव रूप में ये कुछ पदार्थ आकाशादि महान् रूप में थे, इस भोक्ता और योग्य रूप सृष्टि में योग्य पदार्थ निकृष्ट माना जाता है, प्रकर्ण रूप में नियम करनेवाला भोक्ता उत्कृष्ट माना जाता है 5 । कौन निश्चयपूर्वक जानता है, कौन बतलाएगा, यह सृष्टि कहाँ से हुई? देवता जानते हों, परन्तु वे तो जगत् की सृष्टि के पश्चात् उत्पन्न हुए । अब कौन जानता है, वह कहाँ से आया 6 । यह सृष्टि कहाँ से आई? किसी ने इसका विश्वास किया या नहीं? इन प्रश्नों का उत्तर वही दे सकता है जो उच्चतम स्वर्ग में स्थित होकर इस जगत् का संचालन कर रहा है । या फिर, वह भी इस रहस्य को नहीं जानता 7 ।

नानक पर नासदीय-सूक्त का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों प्रकार का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है :

1. अरबद² नरबद³ धुंधूकारा । धरणि न गगना हुकमु अपारा ॥
 ना दिनु रैनि न चंदु न सूरजु, सुन समाधि लगाइदा⁴ ॥
 खाणी⁵ न बाणी पउणु न पाणी । ओपति खपति न आवणजाणी ॥

1. नासदीय-सूक्त का छान्दोग्य, तैत्तिरीय, कठ इत्यादि उपनिषदों, गीता, शंकराचार्य इत्यादि पर भारी प्रभाव पड़ा । सर एस. राधाकृष्णन् कृत 'इंडियन फिलॉसफी' (भाग 1) में नासदीय-सूक्त का बहुत सुन्दर अंग्रेजी-अनुवाद प्राप्त होता है ।
 नासदीय-सूक्त के जल से सृष्टि के सिद्धान्त का बाइबिल (जिनेसिस), थेलीज, कुरान इत्यादि पर भी प्रभाव पड़ा है—कहीं प्रत्यक्ष, कहीं परोक्ष ।

2. अरवों अब्द (वर्ष) ।

3. अरवों शब्दों से अधिक ।

4. प्रभु शून्यसमाधिलोन था ।

5. अण्डज-स्वेदज-उद्भिज-जरायुज जीवखानियाँ ।

2.

खंड पताल सपत नही सागर नदी न नीरु बहाइदा ॥
 ना तदि सुरगु मधु पइताला । दोजखु भिसतु¹ नहीं खै काला ॥
 नरकु सुरगु नहि जंमणु मरणा ना को आइ न जाइदा ॥
 ब्रह्मा बिसनु महेसु न कोई । अवरु न दीसै एको सोई ॥
 नारि पुरखु नहीं जाति न जनमा ना को दुखु सुखु पाइदा ॥
 सुन कला अपरंपरि धारी । आपि निरालमु अपर अपारी ॥
 आपे कुदरति करि करि देखै, सुंनहु सुंन उपाइदा² ॥
 पउणु पाणी सुनै ते साजे । सृसटि उपाइ काइया गड़ राजे ॥³
 अगणि पाणी जीउ जोति तुमारी सुंन कला रहाइदा ॥

कायागढ़ के मनराजा का वर्णन नानक ने भी उतने ही उत्साह से किया है जितने से कबीर, सूर, तुलसी, मिल्टन इत्यादि ने ।
 मन मनु है, मननशील है, प्राणिधन है :

मनु राजा, मनु मन ते मानिआ, मनसा मनहि समाई ॥
 मनु जोगी, मनु बिनसि बियोगी, मनु समझै गुण गाई ॥

शवपूजा-प्रत्याख्यान

नानक मध्यकालीन जन-जागरण के एक महान् नेता थे । उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम-एकता, अस्पृश्यता-उन्मूलन, कर्मकाण्ड-खण्डन इत्यादि की वह सन्त-परम्परा ऊर्जस्वित् बनाए रखी जिसका उद्घाटन खुसरो ने किया था, उन्नयन नामदेव, कबीर, रैदास इत्यादि ने । अभूतपूर्व साहस दिखाते हुए उन्होंने शवरेक्षण-विगर्हणा की थी :

मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुम्हियार ।
 घड़ि भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ॥
 जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अँगियार ।

जब मताण्ठ औरंगजेब ने आठवें गुरु हरिराय को दिल्ली आने का आदेश दिया तब वे स्वयं तो नहीं गए किन्तु कलह-निवारणार्थ अपने पुत्र रामराय को भेज दिया, जिसने उनसे उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ पूछा । रामराय घबरा गए । उन्होंने कहा कि पाठ में 'मुसलमान' नहीं 'बेईमान' शब्द आता है । इस पर सत्यव्रती हरिराय ने उनको त्याग दिया था । सिखों की महान् परम्परा सत्य एवं शौर्य की रही है, असत्य एवं कायरता की नहीं ।

रहस्यवाद

नानक एक सन्त, एक सुधारक, एक गुरु ही नहीं प्रत्युत एक महान् साधनात्मक रहस्यवादी भी थे । इस दृष्टि से वे कबीर के अनुगामी थे । कबीर के सदृश नानक का रहस्यवाद भी हठयोग-सम्बन्धित है, जबकि विद्यापति का साकार-सम्पुष्ट एवं खुसरो का संसार-सम्पुष्ट । उन्होंने रहस्यात्मक मिलन एवं विरह, विशेषतः विरह, के अनेक उत्कृष्ट गान गाए हैं, जिनमें बारहमासा-शैली का मार्मिक समावेश भी प्राप्त होता है । ऐसे रहस्यगीत उन्हें एक श्रेष्ठ एवं भावुक कवि प्रमाणित करते हैं:

1.

अनहदो अनहदु बाजै रुण झुण कारे राम ।
 मेरा मनो मेरा मनु राता लाला पिआरे राम ॥
 अनदिनु राता मन वैरागी सुनि-मंडलु घर पाइया ।
 आदि पुरखु अपरंपर पिआरा सतिगुर अलख लखाइया ॥
 आसणि वैसणि थिरु नारायणु तितु मन राता वीचारे ।
 नानक नामि रते वैरागी अनहद रुण झुण कारे ॥

1. वहिश्त, फ़िरदौस । स्वर्ग ।

2. पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमिवावशिष्यते ।

3. काया रूपी गढ़, मन रूपी राजा ।

2.

सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए।
 मैं मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए।।
 पिरु घरि नहि आवै मरीए हावै दामनि चमकि डराए।
 सेज अकेली परी दुहेली मरणु भइया दुखु माए।।
 हरि बिनु नीद भूख कहु कैसी कापडु तनि सूखावए।
 नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अकि समावए।।

हृदयविदारक युगचित्रण

नानक ने बाबर (1483-1530 ई.) के 1521 ई. में ऐमनाबाद (सैदपुर) पर किए गए आक्रमण एवं तुर्कों (मुगलों) की भयानक हिंसा का बड़ा ही प्रभावी वर्णन किया है। बाबर ने 1526 ई. में दिल्ली¹ पर आधिपत्य स्थापित करने से पूर्व भी चार सीमित आक्रमण किए थे, जिनका उद्देश्य लूटपाट था, क्योंकि यह दुर्दान्त खड्गजीवी दारिद्र्यपीडित होने पर ऐसा किया करता था।

‘तुजुके-बाबरी’ शीर्षक आत्मकथा में इसने अपनी दरिद्रता (नंगे पैर तक), कामुकता (बाबुरी नामक युवक से भी), व्यसन (घोर मद्यप तो था ही—अन्तिम वर्षों में अफीम भी जोड़ ली) इत्यादि का स्पष्ट वर्णन किया है। खेद है कि इस अमूल्य आत्मकथा का उत्तरांश इसके जड़बुद्धि एवं अन्धसाम्प्रदायिक अनुचर ने लिखा है, जिसका विशेष मूल्य नहीं, क्योंकि यह हिन्दुओं के लिए गालियों से भरा पड़ा है। नानक ने पाप की बारात का रूपक बाँधकर इसका वर्णन किया है जो लालो नामक शिष्य को सम्बोधित है :

पाप की जंत्र² लै काबलहु³ धाइया जोरी⁴ मगै दानु वै लालो।

सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूडु⁵ फिरे परधानु वै लालो।।

नानक ने इसी बर्बर आक्रान्ता से खुरासान की रक्षा करने तथा हिन्दुस्तान पर यमराज-रूप मुगलों की विनाश-लीला पर कृपालु न होने के कारण ईश्वर को उपालम्भ दिया है :

खुरासान खसमाना कीआ⁶ हिन्दुसतानु डराइआ।

आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चढ़ाइया।।

एती मार पई करणालै तैं की दरदु न आइया।

करता तू सभना का सोई।

जो सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई।।

सकता सीहु मारे पै वगे खसमै सा पुरसाई।

रतन बिगाड़ि बिगोए कुर्ती मुइआ सार न काई।⁷

नानक ने युद्ध में नारी-दुर्दशा का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, जो कवित्व की दृष्टि से उच्च कोटि का है :

जिन सिरि सोहनि पटीआ माँगी पाइ संधूर।

ते सिर काती⁸ मुंनीअन्हि गल बिचि आवै धूड़ि।।

महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलन्ह हदूरि।

1. वस्तुतः आगरा, क्योंकि 1507-1648 ई. के बीच राजधानी आगरा में रही। विदेशी तुर्क-पठान-मुगल (मुगल भी तुर्क ही थे) शासनकाल में 1192-1507 ई. तथा 1648-1857 ई. के मध्य राजधानी दिल्ली रही। किन्तु दिल्ली एक प्रतीक भी है।

2. बारात।

3. काबुल से। तुर्क आक्रान्ता बाबर ने काबुल पर कब्जा कर लिया था। पठान आज भी इस विदेशी को आदर नहीं देते।

4. जोर-जबर्दस्ती से।

5. कूड़ा, झूठा।

6. पतिवत्, स्वामिवत् रक्षा की।

7. लोदी-पठान हिन्दुस्तान की रक्षा न कर सके। रत्न भारत लुटा।

8. कैची।

जंदहु सीआ वीआंहीआ लाड़े सोहनि पासि ।।
 हीडोली चड़ि आईआ दंड खंड कीति रासि ।।
 उपरहु पाणी वारीए झले झिमकनि¹ पासि ।।
 इकु लखु लहन्हि² बहिठीआ लखु लहन्हि खड़ीआ ।
 गरी छुहारे खांदीआ माणन्हि सेजीआ ।।
 तिन्ह गलि सिलका³ पाईआ तुटन्हि मोतसरीआ ।।
 अगो जे दे चेतीए तां काइतु मिलै सजाइ ।
 साहाँ सुरति गवाईआ रंगि तमासै चाइ ।।
 बाबरवाणी फिरि गई कुडरु न रोटी खाइ ।।

बाबार की विजय का कारण तोपखाना था, यह इतिहाससिद्ध तथ्य है। नानक की वाणी इस इतिहास-तथ्य को प्रशस्यतः विवृत करती है :

मुगल पठाना भई लड़ाई रण महि तेग वगाई ।
 ओन्ही तुपक⁴ ताणि चलाई ओन्ही हसति⁵ चिड़ाई ।।

विद्यापति के वर्णन में युद्ध से उत्पन्न परिस्थिति का व्यापक एवं प्रभावी चित्रण प्राप्त होता है, नानक के वर्णन में नारियों की दुर्दशा का मार्मिक एवं काव्यात्मक चित्रण प्राप्त होता है; चन्द्र, जगनिक, जज्जल, तुलसी, केशव, भूषण, श्यामनाराण पाण्डेय इत्यादि के युद्धवर्णन यथार्थ की दृष्टि से विद्यापति एवं नानक के वर्णनों की समता नहीं कर पाते, क्योंकि वे वीररस के स्थायीभाव उत्साह मात्र को निष्पन्न करते हैं तथा सैन्य-प्रयाण एवं युद्ध इत्यादि का अतिरंजित वर्णन मात्र करते हैं। इस दृष्टि से लाल कवि के वर्णन बेहतर हैं। 'हिन्दी-कविता में युद्ध-वर्णन' एक श्रेष्ठ शोध-विषय है।

नानक-वाणी में निम्नलिखित 'शब्द' (शब्द या पद) बाबर के प्रति कहा गया माना जाता है, यद्यपि शब्दावली ईश्वरोन्मुख भी कही जा सकती है। यदि यह बाबर के प्रति है तो पूर्व-निन्दित प्रकरण से विरोध स्पष्ट है :

भउ तेरा भाँग खलड़ी मेरा चीतु ।
 मैं देवाना भइआ अतीतु ।।
 कर कासा दरसन की भूख ।
 मैं दरि मागउ नीतानीत ।।
 तब दरसन की करउ समाइ ।
 मैं दर मागतु भीखिआ पाइ ।।
 केसरि कुसम मिरगैमै हरणा सरब सरीरी चढ़ना ।
 चंदन भगता जोति इनेही सरबे परमलु करणा ।।
 धिअ पट भांडा⁶ कहै न कोइ ।
 एता भगतु वरन महि होइ ।।
 तेरे नामि निबे रहे लिव लाइ ।
 नानक तिन दरि भीखिआ पाइ ।।

मध्यकाल में विजेता शासक परमात्मा का प्रतिनिधि माना जाता था। सत्ता में अपार प्रभाव होता है। विद्यापति ने कीर्तिसिंह के द्वारा इब्राहीमशाह के समक्ष बारम्बार अतिनत प्रार्थना का वर्णन किया है; कालिदास त्रिवेदी, सुखदेव मिश्र, सबलसिंह चौहान इत्यादि ने औरंगज़ेब का सादर वर्णन या उल्लेख किया है; रवीन्द्र ने ब्रिटिश-युवराज को 'भारत-भाग्य-विधाता' कहकर उसका भारी स्तवन किया है, मैथिलीशरण ने पंचम जॉर्ज का जयजयकारगान गाया है। विक्टोरिया पर तो अनेक कविताएँ प्राप्त होती ही हैं। उन पर

1. झलमलाते पंखे ।
 2. हाथी ।

3. निछावर ।
 4. निन्दनीय ।

5. रस्सी ।

6. तोप ।

भारतेन्दु एवं रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा था। अतः नानक का उक्त 'शब्द' युगप्रवृत्ति में अन्तर्भूत किया जा सकता है, शक्तिपूजाप्रवृत्ति में अन्तर्भूत किया जा सकता है। ईशु (ईसा) ने भी सीज़र की आलोचना समीचीन न समझी थी! किन्तु यह तुलसी के 'प्राकृत जन गुन गान' के विरोध एवं कुम्भनदास को "संतन कौ कहा सीकरी सौं काम?" के प्रश्न (जो स्वयं में ही उत्तर भी है) दोनों से भिन्न अवश्य है।

आकलन

एक कवि के रूप में नानक का स्थान कवीर के साथ-साथ निर्गुण-प्रधान सन्तों में सर्वोपरि है क्योंकि रैदास ने इतना अधिक सृजन नहीं किया, दादू में विविधता नहीं है, सुन्दरदास में कला का आग्रह विद्यमान है (जो सन्तों की धज से अलग-थलग पड़ जाता है—जटाओं की जगह अलकावली नहीं फ़ब सकती)! नानक के गहन-गम्भीर ब्रह्म-निरूपण, सूक्ष्म-अनुभूत योगादान-वर्णन, उत्कृष्ट-सरस रहस्यात्मक विरह-चित्रण एवं मार्मिक-करुण युद्ध-प्रतिक्रियांकन उन्हें एक व्यापक-आयामी एवं प्रेरक सुकवि सिद्ध करते हैं। निस्सन्देह, वे कवीर से प्रभावित हैं किन्तु उन्होंने परवर्ती गुरुओं को प्रभावित भी किया है, जिनमें अर्जुन का स्थान बहुत ऊँचा है।

दादू¹

रज्जब, अकबरकालीन इतिहासकार मुहसन फ़नी, विल्सन तथा जनविश्वास के अनुसार धुनिया, कतिपय दादूपंथियों के अनुसार लोदीराम नागर के पालित पुत्र (ब्राह्मण), क्षितिमोहन सेन के अनुसार दाऊद (मुसलमान), सन्त दादू (1544-1603 ई.) का जन्म अहमदाबाद तथा निधन नराने में हुआ। इनका कार्यक्षेत्र राजस्थान रहा। अकबर और उसके दीनइलाही पर इनके 'ब्रह्म-सम्प्रदाय' (दादू-पंथ) का प्रभाव बताया जाता है। रज्जब, सुन्दरदास, जनगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, खेमदास इत्यादि इनके शिष्य थे। यह एक महान् मानवतावादी गुरु थे जिन पर उपनिषद्, कवीर एवं सूफ़ी-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी ने इन्हें कवीर-पुत्र कमाल का शिष्य तक बतलाया है, जो निर्विवाद नहीं क्योंकि समयान्तर भी है तथा यह कवीर के सदृश अक्खड़ और अश्लील नहीं हैं। इनकी उदारता और शालीनता पंथव्यामोही सन्तों में कम ही मिलती है। 'अनभैवानी' में इनके 'सबद' (पद) एवं इनकी साखियाँ (दोहे) संगृहीत हैं। इनकी सन्तभाषा खड़ीबोली के पर्याप्त निकट है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. भाई रे! ऐसा पंथ हमारा ।
 द्वे पख रहित पंथ गह पूरा, अबरन एक अधारा ॥
 बादबिबाद काहू सौं नाहीं, मैं हूँ जग ते न्यारा ॥
 समदृष्टी सँ भाई! सहज मैं आपहि-आप विचारा ॥
 "मैं-तैं" मेरी यह मति नाहीं, निरबैरी निविकारा ॥
 काम-कल्पना कदे न कीजे, पूरन ब्रह्म पियारा ॥
 यहि पथ पहुँचि पार गहि दादू, सो तब सहज सँभारा ॥
2. केते पारखि पचि मुए, कीमति कही न जाइ ।
 दादू सब हैरान हैं गूँगे का गुड़ खाइ ॥
3. जब मन जागे राम सँ, अनक काहे को जाए ।
 दादू पाणी लूण ज्यों ऐसैं रहै समाइ ॥

बावरी साहिबा

बावरी-सम्प्रदाय की प्रवर्तक बावरी साहिबा अकबर (राज्यकाल 1556-1605 ई.) की प्रायः समकालीन थीं। 'बावरी' इनका उपनाम या सन्तनाम लगता है। इनके गुरु मायानन्द रामानन्द-सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। बीरू साहब इनके शिष्य तथा यारी साहब एवं

1. 'विचारसागर' के प्रस्ताता दादू पिंजारा (रचनाकाल 1606 ई.) इनसे भिन्न महाराष्ट्र के मुसलमान-सन्त थे, जिन्होंने मराठी में भी रचना की।

जगजीवन साहब (बाराबंकी) प्रशिष्य बताए जाते हैं।¹ बावरी साहिबा की कविता में निर्गुण-निराकार एवं सगुण-साकार में स्थूल द्वैत की प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते। एक ओर वे उमाबाई², मुक्ताबाई इत्यादि के सदृश हठयोग के आनन्द को व्यक्त करती हैं, दूसरी ओर मीरों (मीरा), ताज बेगम इत्यादि के सदृश मधुरकृष्णप्रेम के आनन्द को। इन्हें ललित-व्रजभाषा की कवयित्री माना जा सकता है, मिश्रित-सन्तभाषा की नहीं। अनुप्रास, यमक प्रभृति अलंकार इन्हें कलाकार सिद्ध करते हैं। इनके केवल दो उद्गार प्राप्त होते हैं :

1. बावरी रावरी का कहिए मन हवै कै पतंग भरे नित भाँवरी।
भाँवरी जानहिं संत सुजान जिन्हें हरि रूप हिए दरसावरी।।
साँवरी सूरत मोहनी मूरत देकर ज्ञान अनंत लखावरी।
साँवरी सौंह तिहारी प्रभू गति रावरी देखि भई मति वावरी।।
2. अजपा जाप सकल घट बरतै जो जानै सो पेष्वा³।
गुरु गम जोति आगम घर वासा जो पावै सो देष्वा।।
मैं बाँदी हूँ परम तत्तु की जग जानत किसु भोरी।⁴
कहत बावरी सुनो हो बीरू⁵! सुरति कमल पर डोरी।।

वाजिद (बाजिंद)

दादू⁶-शिष्य पठान वाजिद (1600 ई. से पूर्व) ने सगुणसाकारवादी भक्ति में भी रुचि दिखलाई है तथा निर्गुणनिराकारवादी रहस्यात्मक विरह में भी। इन्होंने प्रायः साहित्यिक व्रजभाषा में पद, दोहे, अरिल्ल इत्यादि रचे हैं :

1. साधन संग सदा रहूँ सुनो सयाने लोइ। मन-क्रम⁷-बच मोकूँ भजै तौ गँजि सकै न कोइ।।⁸
षंभ माँह नरसिंह हवै प्रगट्यो जन के काज। हरनकसिप कूँ लै गयो ज्यूँ तीतर कूँ बाज।।
2. पत्नी हूँ हम पास न आई रावरी। दृगन वहै बहु नीर कहैं सब बावरी।।
कौन जिए में जिए हानि है नेह में। निसदिन तलफै प्रान रहै क्यूँ देह में।।

वषना जी

दादू के शिष्य वषना जी (रचनाकाल 1583-1613 ई. नरेना⁹, राजस्थान) के गायन ने गुरु को आकृष्ट किया था। वषना जी के हिन्दू या मुसलमान होने पर विवाद है, किन्तु वे सम्भवतः थे मुसलमान ही। सम्भव है, इनका मूलनाम वख्तावर रहा हो? अधिकांश निर्गुणप्रधान सन्तों के सदृश ही, वषना जी की वाणी में कोई नवीनता या विशेषता नहीं है। पारम्परिक-गुरुभक्ति, अद्वय-स्थिति, रहस्यात्मक-विरह इत्यादि पर इन्होंने राजस्थानी-मिश्रित व्रजभाषा में ठीक-ठाक लिखा है :

1. मध्ययुगीन हिन्दी के सूफ़ी-इतर मुसलमान कवि (डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव), पृष्ठ 106।
2. उमावा।
3. पेखा। देखा।
4. ईसा तक को उनके स्वजन ही ऐसा समझते थे। मीरों को भी।
5. शिष्य बीरू साहब के प्रति।
6. दादू का वास्तविक नाम दाऊद माना जाता है। यह मुसलमान-धुनियाँ थे। जैसे जन्मना मुसलमान अब्दुल कबीर कबीरदास हो गए, जैसे जन्मना मुसलमान रहीम रहीमदास माने गए, वैसे जन्मना मुसलमान दाऊद दादू बन गए। महानता बुद्ध नहीं, मुक्त होती है।
7. कर्म। वैसे, 'क्रम' का अर्थ बल भी होता है, जैसा कि 'पराक्रम' 'विक्रम' इत्यादि शब्दों से स्पष्ट है; किन्तु मध्यकाल में इसका प्रयोग 'कर्म' के लिए होता था (न 'बल' के लिए, न 'सिलसिले' के लिए)।
8. ईश्वर का कथन भक्त के प्रति।
9. एक नरेना या नैना या नारायणा दिल्ली में भी है, जो अब नगर में आ गया है।

1. गुरु को सिष बूझे सदा जे गुरु करै सहाइ।
जहाँ हमारा हरि बसै सो दादू देस बताइ।।
2. दूध मिल्यौ ज्यू नीर में, जल मिसरी एक रूप।
सेवग स्वामी नाम द्वै, 'वषना' एक सरूप।।
3. बार लगाई बालमा रे बिरहिन करैं विलाप।
कोइ इक आडौ हवै रह्यौ, म्हारौ पूरब जनम कौ पाप।
4. बालपना थै बाटड़ी बूढ़ापा लग दीठ।
कहि 'वषना' आवौ हरी म्हारा बलता बुझै अँगीठ।।

वियोगीहरि द्वारा प्रस्तुत 'सन्तसुधासार' में इनकी वाणी भी प्राप्त होती है।¹

अर्जुन

सिख-पंथ के पाँचवें गुरु अर्जुन² (जन्म 24 अप्रैल 1563, बलिदान 30 मई 1606 ई., गुरुगद्दीकाल 1581-1606 ई.) को विशेष ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है क्योंकि आठ-दस वर्ष लगकर उन्होंने 'आदिग्रन्थ'³ का सम्पादन किया तथा मध्य जहाँगीर के द्वेष एवं उसकी मतान्धता के कारण शहादत प्राप्त थी। उन्होंने 1588 ई. में दरबार-साहब की नींव एवं अमृतसर नगर के निर्माण के कार्य किए, 1590 ई. में तरनतारन बसाया और 1598 ई. में करतारपुर। वे एक बहुत ही सक्षम गुरु थे, जिनके बलिदान ने सिखों को योद्धा बनाने में अप्रतिम योगदान किया। उनका जन्म अमृतसर जनपद के गोइंदवाल में हुआ था। उनके पिता अमृतसर के संस्थापक चतुर्थ गुरु रामदास थे, जिनका सम्मान करते हुए अकबर ने भूमि दान में दी थी, जैसा कि अकबरनामा में स्वयं अबुल फ़ज़ल के द्वारा प्रमाणित है। 24 नवम्बर 1598 ई. को अकबर ने गोइंदवाल में अर्जुन से सत्संग किया था। अर्जुन एक विशालहृदय एवं धर्मनिरपेक्ष महापुरुष थे जिन्होंने दरबार-साहब की नींव का पत्थर मियाँ मीर नामक फ़कीर से रखवाया था। तीसरे गुरु अमर उनके नाना थे जिनकी पुत्री भानी से यह उत्पन्न हुए थे। छठे गुरु हरगोविन्द इनके पुत्र थे जिन्होंने सिखों को सैनिक-जाति के रूप में ढालने के श्रीगणेश किया था। प्रसिद्ध भाई गुरदास एवं बाबा बुड्ढा इनके प्रमुख शिष्य थे। 'ट्रान्सफ़ॉर्मेशन ऑफ़ सिखिज़्म'⁴ में डॉ. गोकुलचन्द नारंग ने इन्हें "एक जन्मजात कवि, एक व्यावहारिक दार्शनिक, एक सशक्त संगठनकर्ता एवं एक महान् राजनेता" माना है। इन्होंने मध्य (प्रमाण स्वयं 'तुजुकेजहाँगीरी' या 'जहाँगीरनामा' है) जहाँगीर (बादशाह बनने से पहले सलीम⁵) के सुन्दर, सुयोग्य एवं उदार पुत्र खुसरो⁶ या खुसरू को आशीर्वाद दिया था, जो अपने पितामह अकबर की इच्छा के अनुरूप बादशाह बनना चाहता था। हारने पर उसे अंधा करके बंधुघाती खुर्रम (बाद में शाहजहाँ) के हवाले कर दिया गया! आशीर्वाद के कारण अर्जुन को मरवा डाला गया!

आदिग्रन्थ एवं सिख-पंथ

आदिग्रन्थ को गुरुग्रन्थसाहब का रूप गोविन्दसिंह ने दिया। आज तक दोनों नाम प्रचलित हैं, यद्यपि यत्किंचित् अन्तर है। गुरुग्रन्थसाहब सिखों की वाइबिल है, कुरान हैं इसमें 37 (सैंतीस) व्यक्तियों की वाणी संगृहीत है जिनमें 18 ब्राह्मण (राय-भट्ट एवं भट्ट समेत), 9 खत्री (7 गुरु एवं 2 सन्त), 5 मुसलमान (सधना समेत) तथा 1-1 दर्जी, चमार, जाट, नाई एवं डोम हैं, जो अनेक क्षेत्रों के थे। गुरुग्रन्थसाहब संसार-साहित्य में जाति-वर्ण-क्षेत्रादि की सीमाओं से मुक्त एकमात्र विशद मानवतावादी धर्मग्रन्थ है :

1. वियोगीहरि ने प्रख्यात 'ब्रजमाधुरीसार' में सगुण-साकारवादी कृष्ण-कवियों की प्रशंसा प्रस्तुत की ही है।
2. दृष्टव्य है 'वाणी गुरु अर्जुनदेव' सं. प्यारासिंह 'पद्म'। सम्पादन अच्छा नहीं, पर अर्जुन की वाणी का ग्रन्थावली-रूप अमोल है।
3. सन्तानों के शहीद हो जाने के कारण, अन्तिम एवं दशम गुरु गोविन्दसिंह ने ग्रन्थ को ही गुरु मानने का आदेश दिया, 'आदिग्रन्थ' का यत्किंचित् पुनर्सम्पादन कर उसे गुरु-प्रतीक 'गुरुग्रन्थसाहब' का नाम दिया।
4. इधर 'आई एस एम' को 'इज़्म' के बजाय 'इज़्म' कहने का फ़ैशन है किन्तु "आई एस टी" को 'इसट' नहीं कहते बल्कि पूर्ववत् 'इस्ट' ही चल रहा है।
5. शेख सलीम चिश्ती (फ़तहपुर सीकरी में क़ब्र है) पर नामकरण हुआ था।
6. क़ब्र प्रयाग (इलाहाबाद) के खुसरो बाग में।

1. नानक (1469-1539 ई.)	खत्री	पंजाब
2. अंगद (1504-1552 ई.)	खत्री	पंजाब
3. अमर (1479-1574 ई.)	खत्री	पंजाब
4. रामदास (1534-1581 ई.)	खत्री	पंजाब
5. अर्जुन (1563-1606 ई.)	खत्री	पंजाब
6. कवीर (जन्म 1399 ई.)	मुसलमान जुलाहा	उत्तर प्रदेश
7. नामदेव (1270-1350 ई.)	दर्जी	महाराष्ट्र
8. रविदास या रैदास (कवीर-गुरुभाई)	चमार	उत्तर प्रदेश
9. फ़रीद (1173-1265 ई.)	मुसलमान	पंजाब
10. त्रिलोचन (जन्म 1267 ई.)	ब्राह्मण	महाराष्ट्र
11. वेणी (समय अज्ञात)	ब्राह्मण	विहार
12. धना (जन्म 1416 ई.)	जाट	राजस्थान
13. जयदेव (जन्म 1180?)	ब्राह्मण?	बंगाल?
14. भीखन (निधन 1574 ई.)	मुसलमान?	उत्तर प्रदेश
15. सैण या सेन (कवीर-गुरुभाई)	नाई	मध्य प्रदेश
16. पीपा (जन्म 1426 ई.)	ब्राह्मण	गुजरात
17. साधना या सधना या सदन (समय अज्ञात)	मुसलमान (कसाई)	सिंध
18. रामानन्द (1368-1468 ई.)	ब्राह्मण	उत्तर प्रदेश
19. परमानन्द (समय अज्ञात)	ब्राह्मण	महाराष्ट्र
20. सूरदास (1483-1563 ई.)	ब्राह्मण	पंजाब?
21. सुन्दरदास (सोलहवीं सदी)	खत्री	पंजाब?
22. मर्दाना (सोलहवीं सदी)	मुसलमान	पंजाब
23. सत्त (सोलहवीं सदी)	डोम	पंजाब
24. राय बलवण्ड (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (राय भट्ट)	पंजाब
25. कल्ह सहार (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
26. जाल्प (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
27. कीरत (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
28. सल्ल (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
29. भल्ल (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
30. नल्ल (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
31. भिक्खा (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
32. गयंद (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
33. बल्ल (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
34. हरिबंस (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
35. मथुरा (सोलहवीं सदी)	ब्राह्मण (भट्ट)	पंजाब
36. तेगबहादुर (1621-1675 ई.)	खत्री	पंजाब
37. गोविन्दसिंह (1666-1708 ई.)	खत्री	पंजाब

5894 में 4956 पद गुरुओं के हैं, शेष 938 अन्यो के। सम्पूर्ण ग्रन्थ 31 रागों में क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी की नाना विभाषाओं में रचित इस ग्रन्थ का भाषा वैज्ञानिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। ट्रम्प ने इस ग्रन्थरत्न के “पुरानी हिन्दी बोलियों का खजाना” (ट्रेजरी ऑफ़ दि ओल्ड हिन्दी डायलेक्ट्स) होने की विशेषता को प्रमुख माना है। गुरुग्रन्थसाहब हिन्दी की मध्यकालीन सार्वदेशिकता का भव्यतम प्रतीक है। गुरुग्रन्थसाहब ‘हिन्दी’ (चौदहवीं सदी में काज़ी महमूद वहरी और अठारहवीं सदी में नूरमोहम्मद) या ‘हिंदुई’ (तेरहवीं-चौदहवीं सदी में खुसरो) या ‘हिंदुकी’ अथवा ‘हिंदुगी’ (चौदहवीं सदी में दाऊद) या ‘हिंदुई’ (सोलहवीं सदी में जायसी) या ‘हिन्दुस्तानी’ (सोलहवीं सदी में बाबर) की प्राचीनता एवं सार्वभौमता का सर्वाधिक जाण्वल्यमान् द्योतक है। क्या आश्चर्य कि शताब्दियों तक ‘हिन्दी’ को विराट् शब्द ‘भाषा’ के अभिधान से अभिहित किया जाता रहा, जैसाकि कबीर, तुलसी, केशव इत्यादि से गिल्काइस्ट, अहमद ख़ाँ इत्यादि तक से स्पष्ट होता है।

‘गुरुग्रन्थसाहब’ एक सार्वभौम एवं धर्मनिरपेक्ष ग्रन्थ है जिसमें नानाधर्मी, नानाजातीय एवं नानाप्रांतीय सन्तों, कवियों एवं विद्वानों की मानवतावादी वाणी प्राप्त होती है। ‘हिन्दी-काव्य’ में निर्गुण-सम्प्रदाय¹ शीर्षक आरम्भिक किन्तु मूल्यवान् ग्रन्थ में डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थवाल ने लिखा है, “यद्यपि सिखधर्म भी अन्य धर्मों की भाँति सम्प्रदाय न गया है फिर भी आदिग्रन्थ साम्प्रदायिक विचारों से नितान्त शून्य है।” यहाँ ‘सिखधर्म’ का प्रयोग सामयिकता-सूचक है, मूलसत्यसूचक नहीं। डॉ. बड़थवाल का अभिप्राय है कि जैसे बौद्धधर्म एवं जैनधर्म “स हि धम्मो सनन्तनो” के अनुरूप भारतीय धर्मसाधना के अंग थे, पृथक् सम्प्रदाय नहीं, वैसे ही ‘सिखधर्म’ भी पृथक् न था और उसे राजनीति ने पृथक् करने का यत्न किया है। इसी दृष्टि से, ‘उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा’ शीर्षक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में आ. परशुराम चतुर्वेदी के विचार वैयर्थ्यमूलक हैं, तथ्यमूलक नहीं, “वास्तव में गुरु नानक देव को एक ऐतिहासिक व्यक्ति, उनके मत को एक व्यवस्थित व सुसंगठित सम्प्रदाय का सिद्धान्त तथा उनके अनुयायियों को ऐतिहासिक परिस्थिति के अनुसार विकसित एवं धार्मिक समाज हमें मान लेना चाहिए।” जब अंग्रेज़ों ने सिखों को हिन्दुओं से पृथक् माना तथा परवर्ती सत्ताधारियों द्वारा इसका अनुकरण किया गया, तब अन्य पथ ही क्या है? किन्तु इतिहास इस विवशता के अनुकूल नहीं है। किसी गुरु ने सिख-पंथ को पृथक् धर्म नहीं वतलाया तथा सवने औपनिषदिक अद्वैतवाद से पौराणिक अवतारवारतक के सन्दर्भों का सम्मान किया है, सारे मुगल बादशाहों ने सिखों को हिन्दू माना है, पश्चिम में आज भी सिखों को “एक सैन्यप्रधान हिन्दू पंथ” (ए मिलिटेंट हिन्दू सेक्ट) माना जाता है, संविधान में बौद्धों, जैनों एवं सिखों को विराट् ‘हिन्दू’ शब्द में समाहित किया है जो मौलिक दृष्टि से ठीक भी है क्योंकि तीनों में दाहकर्म प्रचलित है, कर्मवाद का आदर है, पुनर्जन्मवाद को मान्यता प्राप्त है, तीनों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध होते हैं, जैन तो प्रायः हिन्दू हैं ही, बौद्ध भी बुद्ध के “स हि धम्मो सनन्तनो” के आदेश के अनुसार सनातनधर्मी या हिन्दू ही हैं, सिख ‘पंथ’ है जो हिन्दू ‘धर्म’ का अंग है जैसाकि चण्डीचरित में गुरु गोविन्दसिंह स्पष्ट करते हैं :

सकल जगत महुँ खालसा पंथ गाजे।

जगै धर्म हिंदू सकल भंड भाजे।।

जब गोरखपंथी हिन्दू हैं, कबीरपंथी हिन्दू हैं, रैदासपंथी हिन्दू हैं, उदासीन¹ हिन्दू हैं, नामधारी हिन्दू हैं, निरंकारी हिन्दू हैं, राधास्वामी-मतानुयायी हिन्दू हैं—तब नानकपंथी हिन्दू कैसे नहीं हैं?² सिख-गुरु हिन्दू थे, जिनकी वाणी मुसलमान कबीर की तुलना में, हिन्दूधर्म के प्रति शालीन एवं शिष्ट है; यही कारण है कि उनका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक पड़ा। ‘हिन्दी साहित्य’ में ‘कबीर’ के विद्वान् लेखक डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी में लिखा है कि सिख-गुरुओं में “कबीर का अक्खड़पन और खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति न थी”। गुरुग्रन्थसाहब इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसमें गुरु अर्जुन की वाणी सर्वाधिक है।

नानाआयामी काव्य

गुरु अर्जुन के स्फीत काव्य-सृजन में विषय के व्याख्यात्मक निरूपण, प्रकृतिचित्रण, आलंकारिकता, साहित्यिक भाषा एवं प्रभावी शैली के दर्शन होते हैं। उनकी रचनाओं में ‘सुखमनी’ श्रेष्ठतम मानी जाती है जिसे सिखों की गीता कहा जा सकता है। जो स्थान

1. नानक-पुत्र श्रीचन्द्र (श्रीचन्द) ने मूर्तिपूजा अथवा साकारोपासना का त्याग नहीं किया था नानक-पुत्र लक्ष्मीचन्द्र (लखमीचन्द) भी नानक-मतानुयायी न थे। नानक के जीवन-काल में ही गुरुगद्दी पर प्रतिष्ठित द्वितीय गुरु अंगद ने कृष्ण को सर्वोपरि अथवा ‘एकदेव’ अथवा ब्रह्म माना है।

2. नामधारी, निरंकारी, राधास्वामी सम्प्रदायत्रय में हिन्दू-सिख-भेद नहीं है। मजहबी सिख भी उदार हैं।

नानक की रचनाओं में 'जप जी' का है, वही अर्जुन की रचनाओं में 'सुखमनी' का। अर्जुन पर उपनिषद्, सूफ़ी दर्शन एवं नानक का भारी प्रभाव है जो यत्र-तत्र-सर्वत्र देखा जा सकता है।

गुरु अर्जुन तन से कर्मी, मन से भक्त तथा जीवन से ज्ञानी थे। वे पूर्णजीवनवादी गुरु हैं, एकांगी उपदेशक नहीं। उन्होंने उद्यम या कर्म को बहुत महत्त्व दिया है तथा उसी से सुख, ध्यान निश्चितता को सम्भाव्य माना है :

उद्यम करेंदिया जीव तू, कमावदिया सुख भुंत।

ध्यानदिया तू प्रभु मिल, नानक¹ उतरी चित॥

फिर भी, कबीर, चैतन्य, तुलसी इत्यादि के सदृश, अर्जुन भी कलियुग में भक्ति की उपयोगिता स्वीकार करते हैं :

कलि जुग महि कीर्तन प्रधाना।

गुरुमुखि जपिए लाइ धियाना॥

कबीर के "निरगुन की सेवा करो सरगुन का करि ध्यान" एवं तुलसी के "हिय निरगुन नैनन्ह सगुन", "निगुनहि सगुनहि नहिं कछु भेदा" जैसे समन्वयवादी उद्गार अर्जुन ने भी व्यक्त किए हैं। वस्तुतः कबीर, नानक, अर्जुन इत्यादि निर्गुणप्रधान तो कहे जा सकते हैं किन्तु सगुणविरोधी नहीं :

1. निरगुन अपि सरगुन भी ओही। कला धारि जिन सगलो मोही॥

2. मैं नाहीं प्रभु सभ कछु तेरा। ईधै निरगुन ऊधै सरगुन केलि करत बिच सुआमी मेरा॥

निस्सन्देह, अर्जुन नानक के सदृश सर्वात्मवादी हैं तथा समग्र जगत् में एक पराशक्ति के दर्शन करते हैं; वैसे ही जैसे कबीर, रैदास, जायसी, तुलसी ने किए हैं :

सगल बनस्पति महि बैसंतर, सगल दूध महिं घीउ।

ऊँच-नीच महिं जोति समाणी, घट-घट माधउ जीउ॥

जो सर्वात्मवादी है उसका सर्वहिन्दुत्वादी अथवा मानवतावादी होना स्वाभाविक ही है :

1. खत्री² ब्राह्मण सूद वैस, उपदेस चहु वर्णा कउ साँझा।

2. कोई बोलै राम-राम, कोई खुदाइ।

कोई सेवै गुसइया, कोई अलाहि॥

कोई पढ़े बेद, कोई कतेब³।

कोई ओढ़े नील, कोई सपेद॥

कोई कहै तुरक, कोई कहै हिंदु।

कोई पाछे भिसत, कोई सुरगिंदु॥

कह नानक जिन हुकुम पछाता।

प्रभु साहिव का तिन भेद जाता॥

3. बरत न रहउ, न मह रमदाना⁴। तिसु सेवी जो रखै निदाना॥

एक गुसाई अलहु मेरा। हिंदु तुरक दुहाँ नैवेरा॥

हज काबै जाउ न तीरथ पूजा। एको सेवी अवरु न दूजा॥

पूजा करउ न निवाज गुजारउ। निरंकार लै हिंदै नमस्कारउ॥

न हम हिंदू न मुसलमान। अलह राम के पिंड परान॥

1. सिख-गुरुओं ने छाप 'नानक' की ही दी है। "त्वदीयं वस्तु गुरुदेव! तुभ्यमेव समर्पये!!"

2. सारे गुरु खत्री थे।

3. वेद की तर्ज पर कुरान को कतेब (किताब) कबीर इत्यादि ने भी कहा है।

4. 'रामदान' महीना, जिसका श्रुत उच्चारण रमजान प्रचलित है।

गुरु अर्जुन ने पंडित, वैष्णव, शाक्त, सब को एक रंग में रंगा देखना चाहा है, सबको अन्तस्साधनामय देखना चाहा है। उन पर चैतन्य महाप्रभु, नरसी मेहता एवं तुलसी का भी प्रभाव पड़ा है। सिख गुरुओं में अर्जुन एवं गोविन्दसिंह सबसे बड़े समन्यवादी हैं। उन्होंने कबीर के सदृश सब की निन्द्रा नहीं की :

1. सो पंडित जो मन प्रबोधै। राम नाम आतम महँ सोधै॥
राम नाम सारु रस पीवै। उस पंडित के उपदेस जग जीवै॥
चउ बरना को दे उपदेस। नानक उस पंडित कउ सदा आदेस॥
2. बैसनो¹ सो जिसु ऊपरि सुप्रसन्। विसन की माया ते होइ भिन्न॥
कर्म करत होवहि निहकर्म। तिन बैसनो का निरमल धर्म॥
काहू फल की इच्छा नहि बाछै। केवल भगति कीर्तन सँगि राचै॥²
3. भगउती भगवंत भगति का रंग। सगल तियागै दुसट का संग॥
मन ते बिनसै सगला भरमु। करि पूजै सगल पारब्रह्मु॥
हरि के चरन हिरदै बसावै। नानक ऐसा भगउती भगवन्त कउ पावै॥³

अर्जुन ने अपने उपदेशों को कला से सजाया भी है क्योंकि वे जितने बड़े सन्त हैं, उतने बड़े कवि भी :

चाँदना चाँदन आँगनि प्रभु जीव अंतरि चाँदना।
आराधना आराधनु नीका हरि हरि नामु आराधना॥
तिआगन तिआगन नीका काम क्रोध लोग तियागना।
माँगना माँगना नीका हरि जस गुरु⁴ ते माँगना॥
जागना जागनु नीका हरि कीरतन महि जागना।

यद्यपि गुरु अर्जुन की कविता में ज्ञान, योग, भक्ति एवं कर्म को पूर्णजीवनवादी महत्त्व प्राप्त है तथा वे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के पूर्णपुरुषार्थवादी कवि हैं तथापि उसका सर्वोत्तम रूप मधुर-रहस्यवाद में व्यक्त होता है, जहाँ वे कबीर, नानक एवं मीराँ (मीरा) के सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध होते हैं। उनके समय तक सखी-भाव की भक्ति प्रचलित हो चली थी और एक सजग कवि के सदृश उन्होंने उसका समावेश भी कर लिया है :

1. एका पुरखु सवाई नारि।
2. एका प्रिउ सखीआ सभ, प्रिअ को जो भावै पिर सा भली।⁵
3. हम तेरी धर सुआमीया मेरे, तू क्यों मनहि बिसारे।
इस्त्री रूप चेरी की निआई सोभ नहीं बिन भरतारे॥
4. सखी, काजल हार तम्बोल सभै किछु साजिआ॥
सोलह कीए सींगारु कि अंजन पाजिआ॥
जे घरि आवै कंतु त सभ किछु पाइए।
हरि हां कतै बाझु सींगार सभ बिरथा जाइए॥

1. गुजराती के नरसी मेहता का "वैष्णवजन तो तेणे कहिए" शीर्षक गीत याद आता है।
2. गीता का प्रभाव, चैतन्य का प्रभाव।
3. 'भगउती' से अभिप्राय भागवतधर्मानुयायी से है।
4. यथा देवे तथा गुरौ। (श्वेताश्वतर उपनिषद्)।
5. "प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।" (कुमारसम्भवम्: कालिदास)।

गुरु अंगद ने कृष्ण में पूर्ण आस्था प्रदर्शित की है, गुरु अर्जुन ने पूर्ण प्रेम प्रदर्शित किया है :

1. मू लालन सिउ प्रीति बनी ।
तोरी न तूटै छोरी न छूटै ऐसी माधउ खिंच तनी ।।
दिनसु रैन मन माहि बसत है तू करि किरपा प्रभु अपनी ।
बलि बलि जाउँ सियामसुंदर कउ अकथ जाकी बात सुनी ।।
जन नानक दासनदास कहियात है मोहि करि कृपा ठाकुर प्रभु अपनी ।।
2. प्रीति प्रीति गुरीआ मोहन लालना ।
जपि मन गोबिन्द एकै अवरु नहीं को लेखै ।
संत लागु मनहि छाडु दुबिधा का कुरीआ ।।
निरगुन हरीया सरगुन धरीया अनेक कोठरीया ।
भिंन भिंन भिंन भिंन करीआ ।

यद्यपि गुरु अर्जुन की कविता में संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, तुर्की, रेखता, लहंदा, पंजाबी इत्यादि भाषाओं के प्रयोग पूरे-पूरे छन्दों तक में प्राप्त हो जाते हैं, जिससे उनका नानाभाषाविभाषाज्ञान प्रमाणित होता है, किन्तु प्रमुखतः ब्रजभाषा का प्रयोग निर्विवाद तथ्य है। सारे गुरुओं में उनका भाषा-ललित एवं अलंकरण अन्यतम है। कहीं-कहीं उनकी कविता अतीव नवीन प्रतीत होती है। प्रायः उनकी भाषाओं में ताज़गी मिलती है। उनके उपदेश 'काव्यप्रकाश' के अमर प्रणेता मम्मट के शब्दों में 'कान्तासम्मित' हैं, जिससे उनका कलात्मक महत्त्व बढ़ जाता है क्योंकि कोरे उपदेश तो बहुत हो चुके हैं :

1. ब्रह्मगियानी सदा निरलेप । जैसे जल महि कमल अलेप ।।
ब्रह्मगियानी सदा निरदोष । जैसे सूरु सरब कउ सोख ।।....
ब्रह्मगियानी के मित्र सत्रु समानि । ब्रह्मगियानी कै नाही अभिमान ।।
ब्रह्मगियानी ऊच ते ऊचा । मनि आपने है सभ ते नीचा ।।
2. तू मेरा पिता है, तू मेरा माता । तू मेरे जीअ, प्रान सुखदाता ।।
तू मेरा ठाकुर, हउ दासु तेरा । तुझ बिन अवरु नहीं को मेरा ।।
करि किरपा करहु प्रभु दाति । तुम्हरी उसतति करउ दिन राति ।।
हम तेरे जन, तू बनावनहारा । हम तेरे भिखारी, दानु देहि दातारा ।।

3. राम-काव्य

राम की अतुलनीयता

राम विश्व-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नायक हैं, जिन पर जापान, चीन, कोरिया, थाईलैण्ड, वियतनाम, कम्बोडिया, लाओस, वर्मा, इण्डोनेसिया, मलेशिया, लंका इत्यादि से लेकर मिस्र¹ मेक्सिको, पेरू, अर्जेन्टीना इत्यादि तक नाना प्रकार की कथाएँ प्रचलित रही हैं; जिन पर रामदान (रमजान) जैसे मास-नाम, रामसर, रामादि (इराक या आर्यक—प्राचीन सुमेर या सुमेरिया जिसे यूनानियों ने 'दो नदियों का देश' या 'दजल-फ़रात का देश' कहा—में धनुर्धारी राम-लक्ष्मण की मूर्तियाँ विद्यमान थीं), रामठा, रामअल्लाह, रॉमा (रोम) जैसे स्थान-नाम आज तक विद्यमान हैं। उनके नाम की छाप बाइबिल के अब्राम (अभिराम—इब्राहीम) तक प्रसरित है (ईसा के एक अन्य पूर्वज का नाम भी राम था), मिस्र के रामसीस, इटली के रॉमुलस तक व्याप्त है। आज भी रामीज, रामदान, अहराम, रामसे, राम्सफ़्रील्ड जैसे नाम अरब देशों से पाश्चात्य देशों तक व्याप्त हैं। उन पर बौद्धों (दशरथ-जातक) एवं जैनों (विमल सूरि कृत प्राकृत 'पउम-चरिउ' एवं स्वयंभू कृत अपभ्रंश 'पउम-चरिउ' विशेष उल्लेखनीय) ने रामायण रची हैं, उन पर गुरु गोविन्दसिंह ने 'रामावतार' रचा है²। उन पर भारत की प्रत्येक साहित्यिक भाषा में काव्यरचना उपलब्ध है। उनसे सम्बद्ध रामलीला हिन्दू-भारत एवं मुस्लिम हिन्देसिया तक लोकप्रिय है। उनसे सम्बन्ध जोड़कर थाई-नरेश, नेपाल नरेश, मेवाड़-नरेश, जयपुर-नरेश, यहाँ तक कि जिन्ना तक गर्वान्वित होते रहे हैं। उन पर 'सामान्यता-प्रतीक' दूरदर्शन के 'रामायण' शीर्षक लोकप्रिय धारावाहिक तक को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हो चुकी है वे धर्म प्रवर्तक के अहं से मुक्त होने पर भी 'स्वयं भगवान्' भगवान के रूप में पूजे जाते हैं। केवल नेपाल, भारत, मॉरीशस, फिजी, गुयाना, सूरीनाम इत्यादि के हिन्दुओं ही नहीं, मोहम्मदी धर्मान्धता के प्रतीक पाकिस्तान, बांग्लादेश इत्यादि के हिन्दुओं द्वारा भी, सभ्य एवं लोकतान्त्रिक पश्चिम के "हरे राम हरे कृष्ण" के कीर्तनवादियों द्वारा भी, रूस के तद्वत् साम्यवादियों द्वारा भी। राम सच्चे विश्वपुरुष हैं, क्योंकि उन्हें संसार के कोटि-कोटि हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई इत्यादि तथा पूँजीवादी-साम्यवादी इत्यादि विना चमत्कारपूर्ण आदिम-कथाओं के प्रचार, नरक-भय, स्वर्ग-लोभ, स्कूल, अस्पताल इत्यादि के आदर प्रदान करते हैं। संसार में राम के सदृश पूर्ण व्यक्तित्व कोई नहीं हुआ। वेद-निन्दा एवं इन्द्र-पूजा-परित्याग इत्यादि विन्दु कृष्ण को राम के मर्यादापुरुषत्व तक नहीं उठने देते। "त्रैगुण्यविषया वेदाः" इत्यादि शब्द निराधार भी हैं। त्रिगुण एवं त्रिगुणात्मिका प्रकृति इत्यादि पर बहुत वाद कपिल ने व्यवस्थित विचार किया था। कृष्ण के इन्द्रपूजात्याग के पीछे स्वपूजाप्रतिष्ठापन की वह प्रवृत्ति सर्वप्रथम दृग्गत होती है जो कालान्तर में बुद्ध महावीर, ईसा, मोहम्मद इत्यादि में मानव की एकता खण्डित करती चली गई। डॉ. लोहिया ने ठीक कहा था कि राम जैसा कोई नहीं हुआ न कल्पना में न इतिहास में। राम पर जितने और जैसे महाकाव्य रचे गए उतने और वैसे किसी पर नहीं। क्या आश्चर्य यदि अनेक पूर्वाग्रह-जर्जर मोहम्मदी, ईसाई, साम्यवादी राम के अतिस्तित्व को ही नकार देते हैं। राम की अयोध्या कोई हरियाणा, कोई मध्यप्रदेश तो कोई आज के अफ़ग़ानिस्तान³ तक में बतलाकर साधारण पाठकों का मनोरंजन करते हैं। वाल्मीकि-रामायण के प्राचीन अंश ईसा-पूर्व 11वीं सदी के हैं। महाभारत राम प्राचीन-पुरुष के रूप में प्राप्त होते हैं। विकृत रूप में ही सही 'दशरथ-जातक' राम की प्राचीनता का द्योतक है जिसमें वे बुद्ध-पूर्ववर्ती हैं ही। डॉक्टर बी.बी. लाल के निर्देशन में अयोध्या के उत्खनन इस नगरी के ईसा-पूर्व 7-8वीं सदी तक का अस्तित्व सिद्ध कर चुके हैं। डॉ. कृष्णनारायण पाण्डेय ने 'रामकथा की ऐतिहासिकता' पुस्तक में विविध बिन्दुओं को प्रस्तुत किया है। रामायण, महाभारत, दशरथ-जातक, रघुवंशम्, पुराण इत्यादि राम और उनके समग्र वंश की स्फीत वृत्त प्रस्तुत करते हैं। किन्तु कई पूर्वाग्रहग्रस्त तत्त्व इस सबको एक ही झटके में नकार जाते हैं। वे नकार के झटके से अयोध्या, शृंगवेरपुर, प्रयाग, चित्रकूट, पंचवटी, ऋष्यमूक, रामेश्वरम्, सबको तोड़कर रख देते हैं तथा रामनवमी, विजयादशमी, दीपावली, होली (पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार इत्यादि

1. मिस्र के फ़िराऊन अपने को सूर्य से सम्पृक्त मानते थे, अखनातन (देहान्त 1334 ईसा पूर्व) परम एवं एकनिष्ठ सूर्योपासक थे जिनके उत्तराधिकारी तूतनखामन (राज्यकाल 1334-25 ईसा-पूर्व) तो सागर के अवशिष्ट जल के सरोवर से निःसृत कमल पर सूर्यवत् उद्भूत-मूर्तितक हैं (दृष्टव्य है 'ट्रेज़र्स ऑफ़ तूतनखामन' ग्रन्थ एवं उसके चित्र)।

2. 'विचित्र नाटक' में गुरु गोविन्दसिंह ने स्वयं को लव एवं नानक को कुश का वंशज बतलाया है।

3. 'वाक़ रामाज़ अयोध्या एक्युअली इन अफ़ग़ानिस्तान?' (क्या राम की अयोध्या वस्तुतः अफ़ग़ानिस्तान में थी?)—'द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया', 27 मार्च 1990, पृष्ठ 9, वेदांग ज्योतिष के द्वारा प्रतिपादित दीर्घतम दिवस के 18 तथा लघुतम दिवस के 12 मुहूर्त (30 मुहूर्त = 1 दिन) के आधार पर डॉ. मेघनाद साहा के गणन, बलूचिस्तान के राना घुंडई एवं मुडीगाक-4 के उत्खनन (2500 ईसा-पूर्व में नगर) इत्यादि के आधारों पर कल्पित।

में रामरंगमयी), सबको विलुप्त कर डालते हैं—और वाल्मीकि (रामायण), व्यास (महाभारत में रामोपाख्यानपर्व में तथा अन्यत्र भी), भास (अभिषेकनाटक, प्रतिमानाटक), कालिदास (रघुवंशम्), भवभूति (उत्तरामचरितम्), दामोदर मिश्र (हनुमन्नाटक), जयदेव (प्रसन्न-राघव), जयदेव मिश्र (अनर्घ-राघव) तथा तुलसीदास, केशवदास, मैथिलीशरण, निराला प्रभृति हिन्दी-कवियों तथा कंवन् (कंबर), गोनुबुद्ध, कुमारवाल्मीकि, एडुत्तच्छन्, गिरिधर, एकनाथ, बलरामदास, कृत्तिवास, माधव कंदलि तथा भानुभक्त, रामलोचनशरण, प्रकाश 'प्रेमी', रामेश्वरदयाल शास्त्री प्रभृति तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम्, गुजराती, मराठी, उड़िया, बांग्ला, असमिया, नेपाली, मैथिली, डोगरी (सीताप्रधान-महाकाव्य 'बेद्न धरती दी'), हरियाणवी (हरियाणवी-रामायण) प्रभृति के रामकाव्यकारों को एकबारगी धता बता देते हैं! ऐसे पण्डितमन्य जातक, बाइबिल और कुरान की कथाओं पर ऐतिहासिक गारिमा का ठप्पा लगाने तथा पुराणों की कथाओं को कपोल-कल्पनाएँ मानकर स्वयंभू-प्रगतिशील बनने के रोगी रूपों में भी देखे जा सकते हैं। ऐसे व्यक्ति यह भूल जाते हैं कि वालि-वध के सन्दर्भ में "राम को भगवान् तो दूर, एक आदर्श मनुष्य भी न मानने" का मूर्खतापूर्ण अहिंसा-अतिरेक प्रदर्शित करने वाले राजनीतिज्ञ गाँधी तक रामराज्य का ध्येय प्रतिपादित करते हुए "रघुपति राघव राजा राम" का कीर्तन गाने-गवाने के लिए विवश हो जाते थे। नेहरू तक दिल्ली के रामलीला मैदान में दशहरे के अवसर पर राम का तिलक करने दौड़े जाते थे और उन्होंने तुलसी की तारीफ भी की है। साम्प्रदायिक इकबाल तक "है राम के वजूद पर हिन्दोस्तों का नाज" गाते हैं। परम राष्ट्रीय सागर निज़ामी तो उनकी हुकूमत पर गर्व करते ही हैं। राम व्यक्ति नहीं, अतिव्यक्ति हैं। राम कोरे व्यक्ति नहीं, तत्त्व हैं। अतः कल पैदा किए गए 'इतिहास' का हाँवा दिखाकर उनका हत या आहत करने का हौंसला रखने वाले विशुद्ध मूर्ख मात्र हैं। यह सत्य है कि राम का जीवन कथा से आच्छन्न है जिसका कारण प्राचीनता है। कृष्ण, मूसा, ईसा इत्यादि के जीवन भी कथा से आच्छन्न हैं। बुद्ध, महावीर, मोहम्मद इत्यादि के जीवन भी कथा से मुक्त नहीं हैं। स्वयं को बुद्ध कहने का अर्थ कोटि-कोटि मानवों को अबोध बताना है, स्वयं को 'ईश्वर-पुत्र' (एकमात्र) कहना सर्वव्यापी ईश्वर का सम्मान करना नहीं है, स्वयं को 'वार्तावह' कहना अन्यो को तुच्छ समझना है। प्रत्येक धर्म की अपनी खूबियाँ हैं, प्रत्येक धर्म की अपनी खामियाँ हैं। राम का त्यागपूर्ण-शौर्य, कृष्ण का शौर्यपूर्ण-जीवनदर्शन, बुद्ध का क्षमादया-मण्डन, ईसा का आशावादमय-प्रेमदर्शन, मोहम्मद का सादा-जीवनयापन इत्यादि प्रशस्य हैं और यही पर्याप्त है।

जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है, राम-साहित्य का सृजन प्रत्येक काल में उपलब्ध है। संक्रान्तिकाल का स्वयंभू कृत पउम-चरित एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। पुनरुत्थानकाल में सन्तों के निर्गुणपरक एवं सगुणपरक रामोल्लेख, रामानन्द का राम प्रतिपादन, विष्णुदास, पुरुषोत्तम इत्यादि का रामकथावर्णन, तुलसीदास का सर्वकाव्य-प्रणयन¹, हृदयराम, नाभादास, रहीम इत्यादि का बहुविध सृजन तो अद्वितीय ही है। शास्त्रीयकाल में केशवदास का महाकाव्य-प्रणयन, सेनापति का मुक्तककाव्य-प्रणयन, भगवन्तराय खींची, ललकदास, नेवाज, पद्माकर इत्यादि की बहुरूपबद्ध कविता गुण एवं परिमाण दोनों में उल्लेखनीय है। बौद्धिककाल में हरिऔध, मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला, पंत जैसे समर्थ कवियों से लेकर 'नवीन', बलदेवप्रसाद मिश्र, रामकुमार वर्मा, नरेश मेहता, लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' इत्यादि प्रभावी कवियों तक प्रभूत रामकाव्य-सृष्टि सर्वथा प्रशस्य है। हिन्दी में जितना और जैसा रामकाव्य रचा गया है उतना और वैसा संस्कृत-समेत किसी भी भाषा में नहीं। मराठी में पूर्वाधुनिक रामायणें सर्वाधिक हैं किन्तु आधुनिक रामकाव्य विशेष नहीं हैं। रामचरितमानस और रामचन्द्रिका, विनयपत्रिका और कवितावली, साकेत और 'ऊर्मिला', 'साकेत-सन्त' और 'ओ अहल्या' 'राम की शक्तिपूजा' और 'लोकायतन' इत्यादि का रामकाव्य स्फीति और गुणवत्ता दोनों में ही विश्व में अतुलनीय है। फिर भी, पुनरुत्थानकाल रामसाहित्य का भी स्वर्णकाल था, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि महानतम राम-मन्त्र-दाता आचार्य रामानन्द एवं महानतम रामकाव्यकार तुलसीदास इसी काल में हुए थे, निर्गुण और सगुण दोनों राम-रूपों का महानतम मण्डन इसी काल में हुआ था, प्रेरणा के शत-शत स्वर इसी काल में गूँजे थे, जिनकी गूँज आज भी बलवत्तम है, पावनतम है। तुच्छ बनाई गई राजनीति तक राम से प्रेरित है।

महान् मानवतावाद

1. रामचरितमानस महाकाव्य है, विनयपत्रिका एवं गीतावली गीतिकाव्य हैं; कवितावली मुक्तककाव्य है, दोहावली नीतिकाव्य है। जानकीमंगल एवं पार्वतीमंगल खण्डकाव्य हैं, बरवै-रामायण अलंकृतकाव्य है, वैराग्य-संदीपिनी निर्वेदकाव्य है, रामलालानहखू लोककाव्य है, रामाज्ञा-प्रश्न शकुनकाव्य है—और ये सब राम पर हैं।

मानव तत्त्वतः एक एवं अखण्ड है; अतः नर-नारी, उच्च-निम्न, सुन्दर-असुन्दर, सबल-निर्बल, धनिक-निर्धन इत्यादि के अन्तर स्थूल एवं बाह्य हैं—इस विशद विचारभूमि को मानवतावाद कहते हैं।

संसार के समस्त ग्रन्थों में वेद द्वारा प्रतिपादित मानवतावाद सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि वह समानता पर आधृत है जबकि परवर्ती व्यक्ति-प्रवर्तित धर्म और मजहब व्यक्तिपूजा और संकीर्णता पर आधृत हैं जिनके कारण संसार भीषण कलहस्थल बन गया है। सबसे नया मार्क्सधर्म भी घृणा पर आधृत है जिससे स्वयं रूस और चीन तक ऊब चुके हैं। मानवतावाद का मेरुदण्ड है समतावाद अथवा सर्वमित्रतावाद जो वेद में ही प्राप्त हो पाता है :

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः ।

समानस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ (ऋग्वेद 10/191/4)

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ (यजुर्वेद 36/18)

अन्यो अन्यम् अभिहर्यत ।

(अथर्ववेद 3/30/1)

वैदिक मानवतावाद में शरण, स्वर्ग, नरक इत्यादि की संकीर्णता तथा हिंसा या जज़िया के अन्याय के दर्शन नहीं होते। वह अपने मानवतावाद में सर्वजीवदयावाद, सर्वप्राणिसमवाद से लेकर ईश्वर-प्राणि-ऐक्यवाद तक को समाहित किए हुए है :

त्वमस्माकं तवस्मसि ।

(ऋग्वेद 8/92/32)

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

(यजुर्वेद 40/1)

मा जीवेभ्यः प्रमदः ।

(अथर्ववेद 8/1/7)

“आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः”, “समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेधाम”, “सह नाववतु सह नौ भुनक्तु” की वैदिकता से “सर्वे भवन्तु सुखिनः” की कला तक सर्वत्र प्रसरित मानवतावाद भारतेतर-विश्व में आज भी दुर्लभ है। यही कारण है कि भारत में जितने महामानव हुए हैं उतने अन्यत्र नहीं। और, राम विश्वमानवतावाद के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक हैं। वे वैदिक संस्कृति, वैदिक दर्शन, वैदिक पराक्रम एवं वैदिक कला के समाहार हैं। राम संसार के सर्वश्रेष्ठ मानवतावादी हैं जिन्होंने कोल, किरात, भील, श्वपच, शबर, खस, आभीर, गृद्ध, वानर, भल्ल, निशाचर इत्यादि वनवासियों, गिरिवासियों, पशुपालकों, आपराधिकों इत्यादि को समाहित कर भारतीय राष्ट्र के निर्माण में सर्वश्रेष्ठ योगदान किया। नाग, यक्ष, किन्नर, गंधर्व इत्यादि वर्गों के साथ एकता-प्रक्रिया भी उनके काल में ही विशेष गतिशील हुई। द्रविड़ वर्ग से एकता-प्रक्रिया का समारम्भ अगस्त्य कर चुके थे, पुलस्त्य एवं परशुराम ने उसे विकसित रूप प्रदान किया था, राम ने उसे पूर्णता प्रदान की। प्राचीन काल में पशुओं एवं पक्षियों से अपना उद्भव बतलाने वाली अनेक जातियाँ थीं, जिनमें राम के समय में गृद्ध¹ (जटायु एवं सम्पाति की वीर-जाति), भल्ल (जांबवान् या जामवंत की पराक्रमी जाति), वानर (वालि, सुग्रीव, अंगद, हनुमान्, नल, नील प्रभृति वीरों की जाति) इत्यादि की विद्यमानता एवं राम द्वारा उनको राष्ट्रांग बनाने का वृत्त स्पष्ट है। आर्य-जाति संसार की महान् जातियों में सर्वाधिक व्यापक एवं सर्वाधिक उदार मानी जा सकती है, जो आज भी भारत, नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, (‘इर’ या “रलयोरभेदः” से इल का देश), तूरान (तुर्की—तुर या तूर्य-प्रतीक द्वारा स्थापित देश नाम), ईराक़ (आर्यक), समग्र यूरोप (जिसका ‘आयरलैण्ड’ तो स्पष्टतः आर्यदेशनामी ही है), अमेरिका-महाद्वीपद्वय इत्यादि तक प्रसरित है तथा जिसने सारे संसार की सारी जातियों को मिलाया-खपाया भी है, प्रभावित भी किया है। आर्यों के आदिग्रन्थ में ‘एक’ के ‘तैत्तीस’ या अनेक देवता-रूप विद्यमान हैं जो नाना जातियों के भवी सम्पर्क से ‘तैत्तीस करोड़’ हो गए! गंधर्वों के कन्दर्प या मदन देवता तथा मदनोत्सव या होली त्योहार, यक्षों के कुबेर देवता, नागों के नाग देवता, द्रविड़ों के शिव देवता, नाना आदिवासियों की काली, भैरव, भैरवी, दुर्गा प्रभृति देव-देवियाँ तथा सिंह, वृषभ, महिष, श्वान, रासभ, मूषक प्रभृति वाहन आज के विराट् हिन्दूधर्म की अद्वितीय समन्वय-साधना या उदारता के प्रतीक हैं। मत्स्य, कच्छप, वराह प्रभृति अवतार आदिवासियों के प्रति आर्य-सम्मान के पावन प्रतीक हैं तथा सार्वभौम अद्वैतवाद की गरिमा बढ़ाते हैं, जिन्हें संकीर्ण एवं अज्ञान-जर्जर व्यक्ति समझ तक नहीं पाते। मछुओं, पासियों (शूकरपालकों), मणिपुर इत्यादि के कतिपय तत्त्वों (श्वान-भक्षियों), आज के मिज़ोरम इत्यादि के कतिपय तत्त्वों (मूषक-भक्षियों) इत्यादि

1. प्राचीन विश्व में चील, गीघ, बाज़ इत्यादि शक्ति के प्रतीक माने जाते थे जिसके प्रमाण आज भी मिस्र, यूनान, हिंदिसिआ इत्यादि में विद्यमान हैं। भारत में ‘भास’ का आदरणीय प्रयोग गृद्ध-जाति के गौरव का प्रतीक है।

के प्रति सम्मान के प्रतीक अवतार एवं देव-वाहन हमारे राष्ट्र की उदारता के अद्वितीय प्रतीक हैं। इसे हीनभावमूलक सर्वध्वांतकारी और घोर अंधविश्वासी तत्त्व कभी नहीं समझ पाए।

सूफ़ी साहित्य में मोहम्मदीयत के आतंक के कारण मानवतावाद का शुद्ध रूप सम्भव नहीं है, क्योंकि वहाँ “सो वड़ पंथ पंथ मुहम्मद केरा” आड़े आ जाता है। सन्तों ने कविता को भाषण का माध्यम बना लिया था। उनके समय मुद्रण, टंकण, यन्त्रप्रति, चित्रप्रति इत्यादि का अभाव था अन्यथा वे सीधे नेता होते। सन्त तत्त्वतः भारतीय पुनरुत्थान के नायक एवं वस्तुतः भारतीय जन-जागरण के नेता थे। रामानन्द, कबीर, नानक इत्यादि की यह परम्परा दयानन्द, विवेकानन्द, विनोबा इत्यादि तक प्रसरित रही है। राम-साहित्य में मानवतावाद का सूक्ष्म-भावात्मक एवं सहज-अकृत्रिम रूप प्राप्त होता है।

निगुणप्रधान सन्त-साहित्य में मानवतावाद पैगम्बर-ग्रन्थि से आहत हुआ है—वेद, शास्त्र, पुराण, ऋषि, मुनि, अवतार, कुरान, हदीस, मुल्ला, मौलवी, क़ाज़ी सब झूठे अतः सच्चे केवल हमः हमें पूजो, हमे ध्याओ, हमारी आँखों दखो, हमारे कानों सुनो! कबीर मोहम्मद को अल्लाह इत्यादि के साथ पंक्तिबद्ध करते हैं किन्तु राम, कृष्ण इत्यादि पर प्रहार करने से नहीं कतराते। ब्राह्मणनिन्दा भी मानवतावाद को खण्डित करती है। वह शूद्रनिन्दा के सदृश ही है।

मानवतावाद का यह दुर्भाग्य रहा है कि पाखण्डियों ने उसको अपनी सुविधाओं का लगू-भगू बनाकर उसे मनमाने ढंग से नचाया है। बीसवीं सदी में अमेरिका अपने को मानवतावाद की नाक सिद्ध करते नहीं थकता किन्तु वहाँ गोरों के स्कूल, क्लब, यहाँ तक कि बस्तियाँ तक, अलग हैं, अनेक संस्थाओं में केवल गोरों ही प्रवेश पा सकते हैं (डॉ. राममनोहर लोहिया ने इस अमानवतावाद के विरोध में गिरफ्तारी दी थी), समूचे अमेरिकी इतिहास में राष्ट्र के दस प्रतिशत से अधिक अंग हल्की-वर्ग में से एक भी राष्ट्रपति नहीं बन सका; कहने को कोई भी नागरिक राष्ट्रपति के निर्वाचन में प्रत्याशी बन सकता है किन्तु कोई भी अश्वेत (लाला लाजपतराय समेत) कभी सफल नहीं हुआ! साम्यवादी सोवियत संघ अपने यहूदी-अपमान के लिए कुख्यात रहा है और इस्राइल के अधिसंख्यक यहूदी वहीं से भागकर आए। यूरोप के गोरों तो खैर पूँजीवाद-साम्राज्यवाद-विषमतावाद के लिए कुख्यात ही रहे हैं। 19 नवम्बर, 1988 ई. को नई दिल्ली में सोवियत संघ के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाचोव ने साम्यवाद के स्थान पर मानवतावाद के प्रतिपादन का जो साहस दिखलाया वह उन्हें इतिहास-पुरुष सिद्ध कर सकता है क्योंकि उसके पीछे सुनिश्चित शान्ति-कार्य, सोवियत संघ में विशद उदारता का प्रतिष्ठापन (जिसमें ‘हरे राम हरे कृष्ण’ के कीर्तनवादियों पर से प्रतिबन्ध हटाना भी शामिल है) इत्यादि विद्यमान थे। 1955 ई. के आसपास रूसी नेता निकिता ख्रुश्चेव ने भी उदारता की नीति अपनाई थी किन्तु वे विफल रहे। सोवियत संघ के विघटन के बाद, आज साम्यवाद के विकसित देशों के निर्वाचन के मूल में गोर्बाचोव के ही दर्शन होते हैं

रामकाव्य का मानवतावाद कृत्रिम नहीं रहा। राम की निषाद-मैत्री (तथा तुलसी-प्रतिष्ठापित अतिमार्मिक केवट-प्रसंग) तथा उनका स्वयं चलकर शबरी के कुटीर तक जाना मानवतावाद के महान् निदर्शन हैं। उनका अहल्या एवं शबरी के पास स्वयं जाकर किया गया सम्मान उनके पतितपावन एवं भक्तवत्सल रूपों के पावन निदर्शन हैं।¹ राम नारी-जागरण के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक हैं। गृद्धजातीय वृद्ध-योद्धा जटायु एवं वानर, भल्ल, निशाचर प्रभृति जातियों से उनकी मैत्री विश्वविज्ञात है। राम-साहित्य के प्रणेताओं, विशेषरूपतः राम-साहित्य के सूर्य तुलसीदास, ने उनके चरित्र एवं चरित के चित्रण में उनके अतुलनीय मानवतावाद का मार्मिक चित्रण किया है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में वाल्मीकि-रामायण के प्रक्षिप्त उत्तरकाण्ड का पूर्ण बहिष्कार करते हुए न सीतात्याग का वर्णन किया है, न शंबूक-वध का, क्योंकि दोनों निराधार हैं—यदि राम को सीतात्याग करना होता तो वे भीषण युद्ध क्यों करते और यदि राम शूद्रविरोधी होते तो शूद्र वाल्मीकि उन पर महाकाव्य क्यों रचते? सीतात्याग एवं शंबूक-वध उत्तर-वैदिककाल के इतिहास के अनुरूप भी नहीं हैं।

यह सत्य है कि राम-साहित्य के सूर्य तुलसीदास ने यत्र-तत्र नारी-निन्दा की है। तथा वे दो स्थलों पर शूद्र-निन्दा भी कर गए हैं, जो उनके स्तर के महर्षि को शोभा नहीं देती किन्तु उनका कारण युगप्रभाव एवं बाह्यनिन्दा-प्रतिक्रिया माने जा सकते हैं। तुलसी के हाथ की लिखी रामचरितमानस की कोई प्रति नहीं मिली, अतः अंशों के प्रक्षिप्त होने का डॉ. रामविलास शर्मा का प्रतिपादन भी माननीय है। उन्होंने जात-पाँत, ऊँच-नीच का स्पष्ट खण्डन किया है :

1. मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति। (कवितावली)

1. डॉ. रामकुमार वर्मा ने ‘ओ अहल्या’ एवं कवि वचनेश मिश्र ने ‘शबरी’ में क्रमशः मार्मिक खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा काव्यसृष्टि की है।

2. तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार । (दोहावली)
3. तुलसी भगत सुपच भलो, भजै रैन-दिन राम ।
ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि का नाम ।।
अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान ।
तुलसी अति नीचें सुखद ऊख, अन्न अरु पान ।। (वैराग्य-संदीपिनी)

मैं एकपतिवाद-एकपत्नीवाद को मानवतावाद का प्रथम एवं प्रधान बिन्दु मानता हूँ क्योंकि इसका सम्बन्ध शासक-शासित, सवल-निर्बल, धनिक-निर्धन, सुन्दर-असुन्दर, उच्च-निम्न, प्रायः सबके जीवन से है तथा मानवता के अर्द्धांश नारी के साथ केवल यही न्याय कर सकता है। राम अपने एकपत्नीवाद के कारण भी बहुपत्नीवाद कृष्ण, मूसा, मोहम्मद इत्यादि, विवाहोपरान्त नारी के प्रति पलायन का अव्यावहारिक एवं अस्वस्थ दृष्टिकोण रखनेवाले बुद्ध, महावीर इत्यादि तथा माता-भगिनी-परिवार की उपेक्षामूलक अवमानना की दायित्वहीनता दिखानेवाले ईसा इत्यादि से विलक्षण प्रमाणित होते हैं, अनुकरणीय सिद्ध होते हैं। तुलसी के विशद मानवतावाद में एकपतिवाद-एकपत्नीवाद को विशेष सार्वजनिक गरिमा प्राप्त है और इस दृष्टि से वे नारी-सम्बन्धन के सर्वश्रेष्ठ महाकवि, वस्तुतः अकेले महाकवि, सिद्ध होते हैं :

एकनारि ब्रत रन सब झगि ।

ते मन-वच-कम पति-हितकारी ।।

मानवतावाद एवं विषमता परस्पर-विरोधी तत्त्व है ! पूँजीवाद से निःसृत व्यक्तिवाद व्यक्ति-पहिमा का कीर्ति-गान करते हुए भी क्षमता-अक्षमता की विभाजन-रेखा खींचता है तथा पूँजीवाद की प्रतिक्रिया का विग्रह साम्यवाद 'साम्य' का राग अलापते हुए भी हिंस शोषक-शोषित-भेद का प्रतिपादन करता है; अतः इन दोनों में विशुद्ध मानवतावाद के दर्शन नहीं हो पाते। राम-साहित्य के सूर्य तुलसीदास निर्वैर-विषमताहीनता अर्थात् शत्रुभावरहित-समाजवाद का वह अप्रतिम प्रतिपादन करते हैं जिसकी समता डार्विन, एडम स्मिथ, मिल, स्पेंसर इत्यादि का व्यक्तिवाद या मार्क्स, लेनिन, स्टालिन, माओ इत्यादि का साम्यवाद नहीं कर सकता क्योंकि व्यक्तिवाद का आधार शोषण है और साम्यवाद का घृणा :

बयरु न कर काहू सन कोई ।

राम प्रताप विषमता खोई ।।

यहाँ 'राम-प्रताप' राज्य-शक्ति का प्रतीक है। गांधी रामराज्य की प्रतिपादन इसी आधार पर करते हैं। सतयुग में "नैव राज्यं न राजासीत् न दंडो न च दंडिकः" की स्थिति से कालान्तर में अराजकता एवं विशृंखलता का वर्णन महाभारत में प्राप्त होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह वर्णन ठीक है क्योंकि आरम्भ में समाज राजा या राज्य या दण्ड या दण्डिक से मुक्त था किन्तु कालान्तर में विकास के साथ न्यस्त-स्वार्थ आ खड़े हुए और विशृंखलता उत्पन्न हुई जिसके परिणामस्वरूप व्यवस्था-स्थापनार्थ नेता या राज का उद्भव हुआ। राजा कार्य रंजन है : "रंजयति इति राजा"। प्रजा-सुख ही उसका जीवन है :

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।

सो नृप अवसि नरक-अधिकारी ।।

राजा की नीति (राजनीति) में साम (शान्ति या गान या वार्ता) का स्थान सर्वोच्च है किन्तु मानव के जटिल अहं को देखते दान (ले-देकर साम-प्रतिष्ठा या शान्ति-स्थापन) को भी महत्त्व प्रदान करना ही पड़ता है और यदि अहं उन्माद का स्वरूप धारण करे तो दण्ड का अवलम्ब अपरिहार्य हो जाता है; यदि इनसे भी कार्य-सिद्ध न हो तो भेद (फूट डालना, तोड़फोड़ करना) की नितान्त अधम नीति का दामन थामना पड़ता है। किन्तु दण्ड का अधिकर तटस्थ पक्ष, (यही नहीं, निःस्वार्थ-निःस्पृह पक्ष) के हाथ में होने से ही न्याय सम्भव है। अधुनातन सत्ता-त्रिवर्ग (विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका) इसी उच्चस्तरीय राजनीति के प्रतीक हैं। तुलसीदास ने साम एवं दान को ही महत्त्व देते हुए उच्चतम मानवतावाद का मण्डन किया है किन्तु दण्ड एवं भेद को नकारा नहीं है (यदि ऐसा करते तो प्रतिपादन अव्यावहारिक हो जाता) और साथ ही उन्हें उदात्त रूप भी प्रदान किया है :

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।

जोतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ।।

'राज' शब्द का आदर्श स्वयं राम के शब्दों में दर्शनीय है क्योंकि यह शब्द भोग-विलास, षड्यन्त्र-दुरभिसन्धि, हिंसा-आतंक इत्यादि

का प्रतीक बना हुआ है :

नहिं अनीति, नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ।।

जौ अनीति कछु भाषों भाई। तो मोहि बरजहु भय बिसराई ।।

‘भय बिसराई’ में मानवतावाद का सुमेरु दृग्गत होता है। ‘भय’ अर्थात् मानव से मानव को अकारण भय मानवतावाद का परम विपर्यय है। जब तक मानव अपने औचित्यपूर्ण जीवनयापन में पूर्णतः निर्भय नहीं हो जाता तब तक मानवतावाद की प्रतिष्ठा सम्भव नहीं है। यह सत्य है कि मानव का अहं जटिल है, उनका काम स्फीत है, किन्तु वह प्रकृत्या अधोगामी नहीं है, हिंस्र नहीं है और इसका कारण भी मनोवैज्ञानिक है क्योंकि अधोगामी समाज, हिंस्र समाज में प्रत्येक का अहं अपरितुष्ट रहता है, प्रत्येक का काम रुग्ण हो जाता है। महाकवि केशवदास ने परिसंख्या के भव्य माध्यम से इसका सुन्दर वर्णन किया है :

मूलन ही की जहाँ अधोगति केसव गाइय।

होम-हुतासन-धूम नगर एकै मलिनाइय ।।

दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही मैं।

श्री फल को अभिलाष प्रकट कविकुल के जी मैं ।।

महाकवि केशवदास ने यथार्थ की अवहेलना न करते हुए भी उसे उदात्त मानवतावादी गरिमा से सम्पृक्त किया है। राम का अतुलनीय व्यक्तित्व मानवतावाद का पावनतम-प्रेरकतम विग्रह है। इसीलिए हीनभावग्रस्त तत्त्व उनके चरित्र एवं चरित को विकृत करने में पर्याप्त रुचि लेते रहे हैं। किन्तु उनका कोई गहरा प्रभाव नहीं पड़ सका। विपर्ययग्रस्त महाकवि सत्यनारायण तक तेलुगू-जनता में पिट गए, भले ही उन्हें ज्ञानपीठ (ज्ञान की ओर पीठ) पुरस्कार मिल गया हो! अनुकूलतानिष्पन्न मैथिलीशरण प्रसाद, निराला, पंत इत्यादि ही पूजे गए! न्यस्त-स्वार्थ मानवतावाद का भारी शत्रु हैं।

अद्वितीय आशावाद

राम-साहित्य परम आशावादी साहित्य है। उसके उद्भव का कारण निराशा को विदीर्ण कर आशा का संचार करना ही रहा है। वाल्मीकि ने “यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः” तथा व्यास ने कृष्ण के “संभवामि युगे-युगे” की घोषणाओं के द्वारा इस सनातन आशावाद की प्रतिष्ठा की थी जिसे पुराणों ने व्यवस्थित अवतारवाद के द्वारा पराकाष्ठा तक पहुँचाया। सर्वशक्तिमान् परमात्मा से अवतार का अधिकार छीनता नास्तिकता है। ईसाइयत और मोहम्मदीयत जैसे मज़हब तक स्वीकार करते हैं कि मनुष्य का आकार ईश्वरानुरूप है। ईश्वर-पुत्र या ईश्वर वार्तावह ईश्वर के अनुरूप ही हो सकता है। किन्तु पापमूलकता पर आधृत होने के कारण ये मज़हब मानव की उदात्त कल्पना नहीं कर सके। अवतारवाद मानव की सर्वोच्चता का परम आशावादी दर्शन है :

जब-जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।

तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभित धरा अकुलानी ।।

जनि डरपहु मुनि! सिद्ध! सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहँउ नर बेसा ।।

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुरदुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ।। (तुलसीदास)

देव अरूप अमेय है कहे निरीह प्रकास। सर्वजीवमंडित कहौ कैसे केसवदास ।।

ज्यों अकास घट-घटनि मैं पूरन लीन न होइ। यों पूरन सब देह मैं रहै कहैं मुनि लोइ ।। (केशवदास)

पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान परिपूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति को।

दरसन देत जिन्हें दरसन समुझै न, नेति-नेति कहैं वेद छाँड़ि भेद जुक्ति को ।।

जानि यह केसौदास अनुदित राम-राम रटत रहत, न डरत पुनरुक्ति को ।।

रूप देहि अनिमाहि, गुन देहि गनिमाहि, भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को ।।

(केशवदास)

बोली न बोल्यो बोल, दयो फिरि ताहि न दीन्हों। मारि न मार्यो सत्रु, क्रोध मन बृथा न कीन्हों ।

जुरि न मुरे संग्राम, लोक की लीक न लोपी । दान, सत्य, सनमान, सुजस दिसि-विदिसा ओपी ।।

मन लोभ, मोह, मद, काम बस भयो न कंसवदास भनि ।

सोइ परब्रह्म श्री राम हैं, अवतारी, अवतार-मनि ।।

(केशवदास)

रामराज्य आशावाद का चरम निदर्शन है। बर्बर एवं विदेशी आक्रान्ताओं के द्वारा ध्वस्त देवालयों एवं खण्डित मूर्तियों से आपूर्ण देश में राष्ट्र की जीवन्तता का सर्वोपरि प्रतीक रामराज्य ही है। विदेशी आक्रान्ता बाबर ने 1628 ई. में जिस राम-जन्मभूमि के विक्रमादित्य¹ द्वारा निर्मित मन्दिर का ध्वंस किया था, वहाँ मस्जिद खड़ी की थी, उसी की छाया तले विन्सेन्ट ए. स्मिथ जैसे विदेशी इतिहासकार के शब्दों में मुगलकालीन भारत के सर्वश्रेष्ठ मानव (बाबर तो क्या, अकबर महान् से भी महानतर मानव) तुलसीदास ने 1574 ई. में रामचरितमानस की रचना का समारम्भ किया था, जिसका रामराज्य-वर्णन आशावाद का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक बन चुका है :

1. राम राज्य बैठे, त्रयलोका । हर्षित भए, गए सब सोका ।।
2. रामराज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत बिजयी है ।
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब, सुकृत-सेन हारन विजयी है ।।

और बर्बर बाबर के पौत्र महान् अकबर ने रामजन्मभूमि पर उदार नीति ही नहीं अपनाई, गोवध-निषेध ही नहीं किया, 1605 ई. में अपने मरण से पूर्व राम-जानकी-सिक्का (वनपथ पर सीताराम) भी चला गया! “राजा राम जगत बिजयी” सत्य सिद्ध हुआ! राम की चिरविजय अतुलनीय आशावाद से ऊँच-चूँच कैसे न होती?

अतुलनीय जीवनकाव्य

निर्गुणप्रधान साहित्य बटूल है, सगुणप्रधान साहित्य आम। ऋक्ष वगैरह प्रकृति को भी रोते-रोते देख पाते हैं, तुलसी वगैरह संग्रामभूमि में भी राम की शोभा का वर्णन करते हैं। सूफ़ी साहित्य की जीवन्तता प्रेम-विरह-एकगिता में बद्ध है। जो व्यापक जीवन को प्रभावित करने में सर्वथा अक्षम रही है। कृष्ण-साहित्य में जीवन्तता तो भरपूर है किन्तु वाललीला-रासलीला में परिसीमित। राम-साहित्य पूर्ण-परिस्फुट जीवनकाव्य है जो न तो सन्त-साहित्य के सदृश शुष्क है, न सूफ़ी-साहित्य के सदृश संकीर्ण एवं प्रभावहीन, न कृष्ण साहित्य के सदृश वाललीला-रासलीला-परिसीमित। इसका एक कारण राम का अतुलनीयतः महान् व्यक्तित्व है, किन्तु दूसरा कारण राम-साहित्य-सीमान्त तुलसीदास का विराट् जीवनवादी होना भी है जिन्होंने शिशु राम, बालक राम, किशोर राम, तरुण राम, योद्धा राम, राजा राम, दार्शनिक राम प्रभृति सुस्पष्ट प्रतीकों द्वारा समग्र जीवन की अतुलनीय एवं उदात्त विवृति की है। राम की जितनी और जैसी झोंकियाँ तुलसीदास ने दिखाई हैं उतनी और वैसी वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, स्वयंभू, कंबन, कृत्तिवास, माधव कंदलि, एकनाथ, केशवदास इत्यादि में से भी कोई नहीं दिखा सका, अन्य कार्यों की तो बात ही क्या।

रामकाव्य में जन्म, विविध संस्कारों (विशेषतः दिवाह जो जीवन-शरीर का मेरुदण्ड है), विविध संघर्षों, विविध दर्शनों (अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद एवं द्वैतवाद विशेष रूप से) का अद्वितीय चित्रण प्राप्त होता है। तुलसीदास की एक अखण्ड एवं विराट् सर्ववादी दृष्टि में सगुण-निर्गुण, निराकार-साकार, ज्ञान-भक्ति, योग-प्रेम, युद्ध-शान्ति, राजनीति-दण्डनीति (विशेषतः रावण की मंत्रणा-रहित स्वेच्छाचारी एवं राम की मंत्रणा-सहित सर्वेच्छाचारी राजनीति के माध्यमों से व्यक्त), सबका संगत समाहार प्राप्त होता है, जबकि केशवदास तक की खण्डित दृष्टि में अद्वैतवाद एवं अवतारवाद में श्रेय के निदर्शन भी मिल जाते हैं, इससे इतर श्रेणी के सेनापति तो मूर्तिपूजा-खण्डन के स्थूल मोहम्मदीप्रभाव के आखेट तक बनते दृष्टिगोचर होते हैं। तुलसीदास की महतोपहोयानता के कारण विष्णुदास, पुरुषोत्तम, अग्रदास, नाभादास, हृदयराम, प्राणचन्द चौहान इत्यादि का रामसाहित्य प्रासंगिक मात्र लगता है। किन्तु इन सबका सामूहिक सृजन राम-साहित्य की दिश्व भर में विराटतम आयामों का साहित्य सिद्ध करने में सहायक अवश्य सिद्ध होता है। उत्सव और उत्साह,

1. प्रायः शंकर विक्रमादित्य (अवंती या उज्जयिनी के प्रख्यात सम्राट्) को माना जाता है जिनके राज्यारोहण का प्रतीक विक्रम-संवत् प्रचलित है। किन्तु यह चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (राज्यकाल 372-413 ई.) भी हो सकते हैं जो ‘परम-भागवत’ थे, जिन्होंने मधुरा (मथुरा) में कृष्ण-मन्दिर भी बनवाया था (जिसे लुटेरे महमूद गज़नवी ने तोड़ा), दिल्ली में विष्णु-अर्पित लौह-स्तम्भ स्थापित कराया था। महान् गुप्तकाल हिन्दूधर्म का स्वर्णकाल भी था। इस वंश के ‘परम भागवत’ सम्राटों ने पाटलिपुत्र या कुसुमपुर के अतिरिक्त अयोध्या को भी राजधानी बनाया था।

जिजीविषा, ऐश्वर्य और अश्रु, स्वार्थ और परमार्थ से ऊभचूभ राम-साहित्य निस्सन्देह संसार का अतुलनीय जीवनकाव्य है।

अप्रतिम काव्यसृजन

हिन्दी का राम-साहित्य संसार का अप्रतिम धन है। पउम-चरित (स्वयंभू), रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, (तुलसीदास), रामचन्द्रिका (केशवदास), साकेत (मैथिलीशरण), 'राम की शक्तिपूजा' (निराला), उर्मिला (नवीन) एवं 'ओ अहल्या' (रामकुमार वर्मा) का विश्वस्तरीय सृजन संस्कृत के राम-साहित्य तक में नहीं है, अन्य किसी भाषा की तो बात ही क्या! और, हिन्दी के राम-साहित्य का स्वर्णकाल पुनरुत्थानकाल ही है जिसमें रामानन्द, विष्णुदास, पुरुषोत्तम, तुलसीदास, केशवदास हृदयराम, नाभादास, प्राणचन्द चौहान, सेनापति इत्यादि ने अल्प या अधिक रचनाएँ की। केशवदास, सेनापति प्रभृति प्रवृत्ति की दृष्टि से शास्त्रीयकाल के रत्न हैं किन्तु समय की दृष्टि से वे भी पुनरुत्थानकाल में ही आते हैं। रामचन्द्रिका को शास्त्रीयकालीन रामकाव्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य एवं सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाएगा, किन्तु कालावधि-दृष्टि से वह पुनरुत्थानकाल की राम-मणि है।

रस की परिपूर्णता एवं अलंकार की समग्रता में रामचरितमानस अद्वितीय है, तो छन्द की परिपूर्णता एवं चमत्कार की समग्रता में रामचन्द्रिका। यदि आत्मपरक कविता में विनयपत्रिका अद्वितीय है तो काव्यकला में कवितावली एवं कवित्तरत्नाकर (सेनापति)। गीतावली की गीतशैली भी उच्चस्तरीय है। धर्माश्वमेध (पुरुषोत्तम) भी एक उत्कृष्ट रचना है। अन्य कवियों की कृतियाँ साधारण हो सकती हैं किन्तु वे भी आयामों की स्फीति की सूचक हैं। कृष्ण-साहित्य तक गुणवत्ता में राम-साहित्य की समता नहीं कर सकता। सूफी-साहित्य एवं सन्त-साहित्य तो कृष्ण-साहित्य के समकक्ष भी नहीं है। रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली एवं रामचन्द्रिका की समता करनेवाला ग्रन्थ कृष्ण-साहित्य में केवल एक सूरसागर है, सूफी-साहित्य में केवल एक पदमावत है, समूचे संक्रान्तिकाल में केवल एक पृथ्वीराजरासो है और समूचे बौद्धिककाल में केवल एक कामायनी है—और रामचरितमानस की हिन्दी ही नहीं प्रत्युत समग्र संस्कृतेतर भारतीय साहित्य में सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद है। विनयपत्रिका के स्तर की आत्मपरक कविता हिन्दी में नहीं मिलती—उसकी समता शेक्सपीयर के 154 सॉनेट्स (चतुर्दशपदियों) की आत्मपरक कविता एवं वर्डस्वर्थ के आत्मा-महाकाव्य 'प्रिल्यूड' से ही सम्भव है। विनयपत्रिका का गहन भक्तिपरक-अद्वैतवाद गीतांजलि की भावुकता मात्र से ऊभचूभ रहस्यवादिता तथा कामायनी की पलायनवादी समरसता में कहाँ? रामचन्द्रिका की कला एवं चमत्कारसम्पन्नता केशवदास को हिन्दी का भारवि तथा हिन्दी का मिल्टन सिद्ध करती है। राम-साहित्य की अप्रतिमता विश्व-साहित्य एवं हिन्दी-साहित्य के किसी भी स्फीत वस्तुपरक अध्येता को केवल निर्विवाद ही लग सकती है।

अभूतपूर्व प्रभाव

प्रभाव की दृष्टि से पुनरुत्थानकालीन हिन्दी-कविता संसार भर में अतुलनीय है। वह साक्षरता की सीमा तोड़कर जनमानस की तरंगमाला बन गई है। तुलसीदास तो संसार के सर्वाधिक लोकप्रिय जनकवि हैं ही, केशवदास की 'रामचन्द्रिका' के अनूठे समवाद भी रामलीला के माध्यम से जनमानस-सम्पृक्त हो चुके हैं, नाभादास का 'भक्तमाल' भी कवि-कोविदों का कण्ठाभरण बन चुका है, रहीम के राम-दोहे भी सर्वथा जीवन्त बने हुए हैं। तुलसीदास ने राष्ट्रपुरुष समर्थ गुरु रामदास, सन्त जनजसवन्त, महाकवि केशवदास, समग्र शास्त्रीयकालीन रामाकाव्यकारों तथा अनेक कृष्णकाव्यकारों, मराठी के मयूर-कवि (मोरो पंत), महान् दाक्षिणात्य संगीत-सम्राट् त्यागराज, युगनेता गांधी, युगसंत विनोबा भावे, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, महाकवि निराला, महान् मिश्रबन्धु, आ. शुक्ल इत्यादि भारतीय तथा कार्पेन्टर, कीए, कीथ, ग्रीअर्सन, रॉब्लिंसन, ग्रीउस, टेसीटरी, बुल्के, एट्किंस, वारान्निकोव इत्यादि विदेशियों को बहुत प्रभावित किया है तथा इस दृष्टि से वे वाल्मीकि, व्यास एवं होमर के अतिरिक्त अतुलनीय विश्वकवि भी हैं। कोटि-कोटि जनता से लेकर सर्वोच्चस्तरीय कवियों, विद्वानों, नेताओं इत्यादि तक को तुलसीदास ने जितना और जैसा प्रभावित किया है उतना और वैसा संसार के अन्य किसी कवि ने नहीं। गुणवत्ता के साथ लोकप्रियता का जैसा माणिकांचनयोग तुलसी-साहित्य में दृष्टिगोचर होता है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। पुनरुत्थानकालीन राम-साहित्य की लोकप्रियता अभूतपूर्व ही सिद्ध हुई है।

प्रमुख कवि

रामानन्द

मध्यकालीन भारत के सर्वश्रेष्ठ मानवतावादी नेता, राष्ट्रीय पुनरुत्थान के सर्वश्रेष्ठ वाहक, सर्वश्रेष्ठ गुरु, वस्तुतः “गुरुनां गुरुः”, उदारता-मूर्ति स्वामी रामानन्द (1368-1468 ई.) का जन्म प्रयाग के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था।¹ प्रयाग अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति एवं तीर्थराज होने के कारण पुरूरवा, राम, भरत, लक्ष्मण, सीता, बुद्ध (कौशाम्बी-सन्दर्भ), अशोक (लाट से प्रमाणित), समुद्रगुप्त (अशोक की लाट में ही उत्कीर्ण लेख), हर्ष (हवेन्त्सांग के विवरण से पुष्ट), तुलसीदास (रामचरितमानस में सुन्दर रूपक-अलंकृत वर्णन से भी प्रमाणित), अकबर (किला), जहाँगीर (तुजुके-जहाँगीरी या जहाँगीरनामा में अंकित) इत्यादि अनेक जीवन-दिशाओं के व्यक्तियों से सम्पृक्त रहा है, किन्तु राम के अनन्तर रामानन्द ने ही इसे सर्वाधिक प्रभावी ज्योति प्रदान की है। महामना मदनमोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, हुतात्मा गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे महापुरुष, जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गांधी जैसे नेता, बालकृष्ण भट्ट, सुभद्राकुमारी चौहान, वच्चन जैसे साहित्यकार प्रयाग में ही उत्पन्न हुए; और, लालबहादुर शास्त्री जैसे विख्यात प्रधानमन्त्री तथा निराला, पंत, महादेवी, रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ ‘अश्व’ इत्यादि हिन्दी-साहित्यकारों के अतिरिक्त अकबर इलाहाबादी, फ़िराक़ गोरखपुरी, बिस्मिल इलाहाबादी इत्यादि उर्दू-शायरों, डॉ. अमरनाथ झा, शिवाधार पाण्डेय जैसे अंग्रेज़ी विद्वानों ने इसे अपना नीड़ बनाया, हिन्दी में उच्चतम विज्ञान-शिक्षा हेतु अथक यत्न करनेवाले प्रो. रामचरण मेहरोत्रा भी यहाँ उपकुलपति रहे, असाधारण अंग्रेज़ी-ज्ञानी किन्तु उत्कट हिन्दीप्रेमी-न्यायमूर्ति महेशनारायण शुक्ल तथा हिन्दी में निर्णय सुनानेवाले इलाहाबाद उच्च-न्यायालय के एक अन्य पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री प्रेमशंकर गुप्त (अपने इटावा-प्रेमातिरेक के बावजूद) यहीं बसे। उच्च न्यायालय में हिन्दी! इन दोनों ने सहज सिद्ध कर दिया। वैसे, आ. शिवपूजन सहाय कृत लेख ‘हिन्दी में लिखा गया सबसे पहला फैसला’ के अनुसार बुलंदशहर के सिविल और असिस्टेंट सेशन जज श्री मोहनशंकर सक्सेना को यह गौरव प्राप्त है (‘हिमालय’, पटना, दिसम्बर, 1946)। रामानन्द के साथ-साथ महानतम साहित्य-गुरु महावीरप्रसाद द्विवेदी भी इससे सम्बद्ध रहे। किन्तु प्रयाग में जन्म लेनेवालों में रामानन्द की सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद है, जिन्होंने अपने समय के कारण अपेक्षाकृत अनुदार दार्शनिक रामानुजाचार्य की वैष्णव-परम्परा का नेतृत्व करते हुए स्त्रियों, मुसलमानों शूद्रों इत्यादि को उन्नति-पथ पर अग्रसर करने की उदार क्रान्तिदर्शिता के द्वारा इतिहास में विराट् एवं पावन परिवर्तन कर दिखाया। उनके द्वादश शिष्य² अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, भावानन्द, पीपा, कबीर, रैदास, सेन, धना, पद्मावती और सुरसरि (सुरसरी) भारत के आकार एवं भारतीय जनता की विराटता के अभूतपूर्व प्रतिनिधि सिद्ध होते हैं। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों ने राष्ट्र को अनेक महापुरुष (चैतन्य, दयानन्द इत्यादि), हुतात्मा (चन्द्रशेखर ‘आज्ञाद’ इत्यादि), महाकवि (भूषण मतिराम, सुखदेव, निराला इत्यादि), निबन्धकार (प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि), आलोचक (मिश्रबन्धु, कृष्णशंकर शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी इत्यादि), उपन्यासकार (भगवतीप्रसाद वाजपेयी इत्यादि), नेता (द्वारकाप्रसाद मिश्र, उमाशंकर दीक्षित, अटलबिहारी वाजपेयी इत्यादि) प्रदान किए हैं तथा बंगाल के राममोहन राय, बंकिम, रवीन्द्र, शरद, ताराशंकर इत्यादि भी मूलतः कान्यकुब्ज ब्राह्मण ही हैं, किन्तु विराट् एवं दूरगामी प्रभावों में रामानन्द की कोई समता नहीं। रामानन्द मानवतावाद के अवतार थे। वस्तुतः वे रामानुजाचार्य के प्रभाव से मुक्तप्राय स्वतन्त्र चिन्तक एवं प्रगतिशील राष्ट्रनिर्माता थे—उनके एक उत्कट अनुयायी हिन्दीसेवी श्री पुष्पेन्द्र वर्णवाल (मुरादाबाद) का उनको विशेष महत्त्व प्रदान करना निराधार नहीं है।

1. ‘भक्तमाल’ के वर्तमान टीकाकार श्री सियारामशरण प्रसाद के अनुसार, रामानन्द का जन्म 4409 कलिदुर्गीय अर्थात् सं. 1356 वि. (1300 ई.) में हुआ। पिता का नाम पूर्णसदन, माता का नाम सुशीला और गुरु का नाम राघवानन्द था। यह वाजपेयी थे तथा केवल पायस् का भोजन करते थे। ‘भविष्य पुराण’ के तृतीय सर्ग के सातवें अध्याय में इस विषय में श्लोक द्रष्टव्य है:

समुत्पाद्य कृतं काश्यां रामानन्दस्ततोऽभवत् ।

देवतस्य च विप्रस्य कान्यकुब्जस्य वै सुतः ॥

(जैमासिक ‘कान्यकुब्ज मंच’ कानपुर, सं. बालकृष्ण पाण्डेय, मार्च 1990, पृष्ठ 17)

किन्तु 1368-1468 ई. का जीवन-काल एवं प्रयाग में जन्म अधिक मान्य है।

2. संयोगात् ईसा के भी ‘द्वादश शिष्य’ थे, किन्तु उनमें से एक ने उन्हें मृत्युदण्ड दिलानेवालों को बेचा तथा शेष उनके बन्दी बनाए जाते समय भाग निकले। उन्हें ‘संत’ (सन्त) कहा जाता है।

रामानन्द के संस्कृत-ग्रन्थद्वय वैष्णवमताब्जभास्कर एवं श्रीरामार्चनपद्धति ने समाज पर गम्भीर प्रभाव डाला है। के. के. कृष्णन् नम्बूतिरी ने डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी को उद्धृत करते इन्हें अनुपलब्ध बताया है। केरल के राघवानन्द और महाकवि एडुत्तच्छन् से सम्बद्ध करते हुए उन्होंने रामानन्द को केरलवासी सिद्ध करने का यत्न तो किया है किन्तु प्रश्नचिह्न के कारण सारा कुछ अनुमान बनकर रह गया है, जैसे उनके अद्वैतमूलक तर्क मुझे माननीय लगते हैं, तथा कबीर, रैदास इत्यादि शिष्यों के कारण माननीय तक हो जाते हैं। गुरुग्रन्थ साहब के पद भी इसी के अनुरूप हैं। उन्होंने गहन अनुशीलन के अनन्तर विष्णु के अवतारों में राम के वैश्विक प्रभाव एवं आदर्श चरित्र के कारण उन्हें प्रधानता प्रदान की। कबीर-जैसे मुसलमानों को भी उन्होंने 'राम' का ही मन्त्र दिया जो ब्रह्माण्डरमणकारी का पर्याय है; रैदास-जैसे निर्गुणप्रधान रुचि वाले हिन्दू शिष्यों को भी यही मन्त्र प्रियतर लगा। किन्तु उनकी पारम्परिक शिष्य-मण्डली एवं शिष्य-परम्परा में अनन्तानन्द, नरहर्यानन्द इत्यादि एवं कृष्णदास पयहारी, तुलसीदास इत्यादि ने राम को सगुण-साकार दाशरथि राम के रूप में ही ग्रहण किया तथा राष्ट्र को राममय बना दिया। आज भी रामानन्दी-सम्प्रदाय, रामानन्द-तिलक इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इन सगुणोपासकों ने निर्गुण पर प्रहार नहीं किए, क्योंकि गुरु एवं गुरुनां-गुरु ने निर्गुण एवं सगुण में भेद नहीं माना था। रामानन्द के प्रभाव के कारण सगुणोपासकों में नाभादास जैसे डोम भी समावृत्त हुए और तुलसीदास ने "मेरे जाति-पाँति न" की घोषणा की। 'जाति-पाँति पूछे नहीं कोई' के प्रचारक रामानन्द ही थे उनके सम्प्रदाय के यगुचार्यगण भी उत्कट भारतप्रेमी तथा भारतीप्रेमी रहे हैं; सम्प्रति (2005 ई.) श्री रामनरेशाचार्य जी प्रमाण हैं। कृष्णोपासकों ने जातिपाँतिहीन सार्वभौम भक्ति की स्थापना में शूद्र कृष्णदास (अष्टछाप वाले) को समावृत्त किया, मुसलमान रसखान को भी। रामानन्द राष्ट्रीय एकता के महान् नायक थे। रामानन्द संसार के इतिहास के सर्वश्रेष्ठ धार्मिक नेताओं एवं मानवतावादी महापुरुषों में प्रतिष्ठित किए जाने योग्य हैं।

निर्गुण-निराकार आन्दोलन का नेतृत्व

रामानन्द के स्थूल जीवनवृत्त पर सूक्ष्म जीवनसाधना को वरीयता प्रदान करने के कारण उन पर प्रात्ययिक विवरण उपलब्ध नहीं है। उनके भारी प्रभाव को देखते हुए शेख तक्की से सम्बद्ध गप्पें उछाली गईं, जनता ने सिकन्दर लोदी (राज्यकाल 1488-1517 ई.)¹ से जोड़ डाला, निजरचनाप्रतिष्ठार्थ अनेक गद्दीपाखण्डवादियों ने अनेक जाली पुस्तकों पर उनका नाम चस्पाँ कर दिया, जिसकी एकान्त उपेक्षा उनको समझने के लिए अप्रतिवार्य है। निस्सन्देह, रामानन्द न कोरे निर्गुणवादी थे, और न कोरे सगुणवादी—वे विराटवादी थे; अतः वे पुनरुत्थानकाल की निर्गुणप्रधान भक्ति के भी नेता सिद्ध हुए, सगुणप्रधान भक्ति के भी। रामानन्द प्रधानतः कवि न थे, कवियों के आचार्य थे। फिर भी कुछ कविताएँ उनकी एतद्देशीय उमंग सूचित कर देती हैं। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थवाल ने रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ सम्पादित की हैं। गुरुग्रन्थसाहब में उनके निर्गुणप्रधान नेतृत्व का एक प्रमाण द्रष्टव्य है :

कत जाइए? रे! घर लागो रंगु। मेरा चितु न चलै, मनु भइओ पंगु।।
 एक दिवस मन भई उमंग। घसि चंदन, चोआ, बहु सुगंध।।
 पूजन चाली ब्रह्म ठाइ। सो ब्रह्म बताइयो गुरु मन ही माहि।।
 जहाँ जाइए तहाँ जल, पखान। तू पूरि रहिओ हैं सभ समान।।
 बेद-पुरान सभ देखे जोइ। उहाँ तउ जाइए जउ इहाँ न होइ।।
 सतिगुरु मैं बलिहारी तोर, जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर।।
 रामानन्द स्वामी रमत ब्रह्म। गुरु का सबदु काटै कोटि करम।।²

सगुण-साकार आन्दोलन का नेतृत्व

प्राचीनकाल से ही भारतीय साधना निर्गुण-निराकार ब्रह्म की सैद्धान्तिकता एवं सगुण-साकार ब्रह्म की व्यावहारिकता का समन्वय करती चली आ रही है। जैसाकि वेद के देवसान्निध्यवाद, उपनिषद् के अहंब्रह्मास्विमवाद अथवा तत्त्वमसिवाद अथवा सर्वखल्विदंब्रह्मवाद,

1. आ. श्यामसुन्दरदास ने 'कबीर-ग्रन्थावली' की भूमिका में इसका राज्यकाल 1517-1526 ई. गलत लिखा है। यह राज्यकाल इसके बेटे इब्राहीम लोदी ल. 5 गका है जिसे बाबर ने पानीपत की पहली लड़ाई (1526 ई.) में हराया था। इब्राहीम लोदी लड़ाई में मारा गया—पानीपत में इसकी क़ब्र खुद बाबर ने बनवा दी थी।
2. स्थानीयता के कारण गुरुग्रन्थसाहब में हिन्दी का सहज रूप प्रायः परिवर्तित हो गया है।

पुराण के अवतारवाद इत्यादि से स्पष्ट है। वस्तुतः सिद्धार्थ द्वारा स्वयं को बुद्ध तथा वर्द्धमान द्वारा स्वयं को महावीर घोषित करना याज्ञवल्क्य के “अहं ब्रह्मास्मि” घोषित करने का परोक्षानुवाद मात्र है, भले ही बुद्ध तथा महावीर ने ईश्वर को न माना हो, क्योंकि ईश्वर पर उपनिषद् से आगे बढ़कर कुछ नहीं किया जा सकता था। (न पहले कहा गया था और न अब तक कहा जा सका है) और ये दोनों नवीनता के साथ अपनी परमप्रतिष्ठा चाहते थे जो मानव-प्रकृति को देखते मनोवैज्ञानिक तो है ही। किन्तु मध्यकालीन हिंसा के खड्ग ने “यथा राजा तथा प्रजा” की ऐसी स्थिति बना दी कि निर्गुण-निराकार को वरीयता प्रदान करनेवाला विशाल वर्ग खड़ा हो ही गया। महान् नेता रामानन्द ने उदार हिन्दूधर्म में इस वर्ग को खपा लिया। किन्तु उन्होंने सगुण-साकार को प्रधानता प्रदान करनेवाले वर्ग का महत्व भी समझा क्योंकि यह वर्ग भारतीय संस्कृति के साहित्य, संगीत, नृत्य, मूर्तिकला, शिल्पकला (स्थापत्यकला) प्रभृति तत्त्वों का ललित स्रष्टा रहा है तथा इसने भारतीय धर्मसाधना, दर्शन इत्यादि को भी अत्यधिक प्रभावित किया। परम्परा से वे स्वयं इसी से जुड़े हुए थे। अतः उन्होंने दाशरथि राम की भक्ति का पथ भी प्रशस्त किया जिससे हिन्दू-जाति को शक्ति एवं शील का संबल प्राप्त हो गया था। गम्भीर विद्वान् आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ‘उत्तर भारत की सन्त-परम्परा’ में इस बिन्दु पर प्रशस्त्य प्रकाश डाला है। शक्ति-सन्देश को व्यापक रूप प्रदान करने के लिए रामानन्द ने हनुमान्-पूजा का प्रचलन किया जिसे उनकी शिष्य-परम्परा से संपृक्त महान् तुलसीदास ने वह विराट् रूप प्रदान किया जो आज सर्वविज्ञात है : जितने मन्दिर हनुमान् के हैं उतने राम के भी नहीं (राम अधिक राम कर दासा)!¹ रामानन्द धुरन्धर संस्कृताचार्य एवं संस्कृत के गहन ग्रन्थकार थे किन्तु हिन्दी का सम्मान करते हुए उन्होंने एकाध निर्गुण-पद भी रचे तथा शक्तिवाद-प्रचारार्थ एवं जनहितार्थ इस अत्यन्त लोकप्रिय हनुमान्-आरती की रचना भी की :

आरति कीजै हनुमान लला की। दुष्टदलन रघुनाथ कला की॥
जाके बल ते गिरिवर काँपें। रोग-दोष जाके निकट न झाँकें॥
अंजनिपुत्र महाबलदायी। संतन के प्रभु सदा सहायी॥
वाएं भुजा सब असुर सँहारे। दाएं भुजा सब संत उबारे॥
आनि सजीवनि लखन उवारे। अहिरावन के भुजा उपारे॥
गाढ़ परे कपि! सुमिरौं तोही। होहु दयाल देहु जस मोही॥
लंका-सा कोट, समुद्र-सी खाई। जात पवनसुत बार न लाई॥
लंका जारि, असुर सब मारे। रामचंद्र के कागज सँवारे॥
लंक बिधंस कियो रघुराई। रामानंद आरती गाई॥²
घंटा ताल झाँझरी बाजै। जगमग जोति अवधपुर छाजै॥
जो हनुमानजी की आरती गावै। बसि बैकुंठ परमपद पावै॥
सुर-नर-मुनि सब आरती करहीं। जय-जय-जय हनुमत उच्चरहीं॥

कबीर, रज्जब जैसे निर्गुणप्रधान मुसलमान संत हों या नाभादास, हितहरिवंश-शिष्य व्यास जैसे सगुण प्रधान हिन्दू-सन्त, रामानन्द के प्रति श्रद्धालु हैं; यह उनके सार्वभौम महत्व के अनुरूप ही है।

पुरुषोत्तम³

हिन्दी के रामकाव्यकारों में ‘धर्माश्वमेध’ महाकाव्य (रचनाकाल-1501 ई.) के प्रणेता कविवर पुरुषोत्तम (अयोध्या अंचल के दादरनगर के निवासी) का स्थान अनेक दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि विष्णुदास मुख्यतः कृष्णकाव्यकार थे जिनकी सारी कविता (जिसमें रामाकाव्य भी समाहित है) साधारण श्रेणी की है जबकि यह स्फीत रामकाव्य-स्रष्टा हैं तथा इनकी कविता उत्कृष्ट

1. माओ त्से-तुंग हनुमान् के उपासक थे। कवि भी होने के कारण माओ ने ‘महाकपिराज’ जैसी सुन्दर प्रतीकात्मक कविताएँ लिखी हैं। एसिआ के दूसरे महान् साम्यवादी नेता हो ची मिन्ह भी कवि थे। इन्दिरा गांधी हनुमान् की भक्त थीं। तुलसी-प्रतिष्ठापित संकटमोचन (काशी) की पूजा प्रायः किया करती थीं। मार्गरेट थैचर भी हनुमान्-भक्त बताई जाती थीं।
2. मेरी समझ में रामानन्द ने आरती यहीं समाप्त कर दी है। किन्तु तीन पंक्तियाँ और मिलती हैं।
3. एक अन्य पुरुषोत्तम (बुन्देलखंडी) भी हुए हैं जिन्होंने 1558 ई. के आसपास ‘राजविवेक’ ग्रन्थ लिखा।

है जिसका अनुभूति एवं अभिव्यक्ति उभय-पक्षीय प्रभाव रामचरितमानस (तुलसीदास) से रामाश्वमेध (मधुसूदनदास) तक सुस्पष्टतः प्रसरित है। 'धर्माश्वमेध का रामचरितमानस और रामाश्वमेध पर प्रभाव' शोध का स्तरीय विषय है। पुरुषोत्तम की भाषा तुलसी की भाषा की प्रेरक संस्कृतनिष्ठ अवधी है। मिश्रबन्धु ने पुरुषोत्तम को मधुसूदनदास-श्रेणी में स्थान प्रदान किया है किन्तु पूर्वोत्तरता के न्याय के अनुसार मधुसूदनदास को पुरुषोत्तम-श्रेणी प्रदान की जानी चाहिए। इनकी कविता वर्णनात्मक होते हुए भी स्तरीय तथा विष्णुदास, सबलसिंह चौहान, साहबदास भटनागर इत्यादि की वर्णनात्मक कविता से श्रेष्ठतर है, मधुसूदनदास की कविता के समान है :

गननायक, गिरिपति¹, गवार तुम्हहिं कहौं कर जोरि।
हरि गुन गन बरनौं कछू, बिमल करौ मति मोरि।।
संकर स्वामी करौं प्रनाभा। मति म्वहि देहु जपौं गुन ग्रामा।
वृषभध्वज ससि तिलक लिलारा। कसे सेस सहस्र फनवारा।।
महाबिभूति चढ़ाए अंगा। पारबती संतत अरधंगा।।
सुरसरि जटा सीस निसिदेवा। सुर, नर नाग करैं तव सेवा।।
भोरानाथ अभयपरदाता। राम नाम संतत मन राता।।
हवै प्रसन्न देवन के देवा। देवहिं भक्ति करौं जेहि सेवा।।

वाल्मीकि-रामायण का उत्तरकांड अकाट्यतः प्रक्षिप्त है, क्योंकि वह अव्यवस्थित-वर्ण्यविषयविहीन अनेकानेक अनुरूप-अनुरूप-विरूप कथाओं का विशृंखल पुंज मात्र है तथा, सबसे बढ़कर, युद्धकांड में काव्य का समापन सुस्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है, जिसमें राम इत्यादि के अयोध्या लौटने तथा रामराज्य का वर्णन भी किया गया है। मूल 'जय' (महाभारत) के सदृश मूल 'रामायण' भी सुखान्त महाकाव्य था, जो हमारे काव्यशास्त्र के सुखान्त-दर्शन का प्रेरक भी है। पश्चिम में भी होमर कृत 'इलिअड' एवं 'ओडिसी' के कारण ही क्रमशः दुखान्त एवं सुखान्त नाट्यरचना इत्यादि हुई तथा प्रथम महाकाव्य के श्रेष्ठतर होने के कारण दुखान्त को वरीयता प्राप्त हुई।² अरस्तू के काव्यशास्त्र का आधार होमर³-प्रणीत महाकाव्य ही हैं। अरस्तू का शिष्य सिकन्दर होमर, विशेषतः इलिअड, का भारी भक्त था। जातिप्रथावादियों द्वारा शम्बूक-कथा और नारीत्यागवादियों द्वारा सीता-वनवास की निराधार कल्पनाएँ गुप्तकाल में की गईं; जो अवैदिक भी हैं; अनैतिहासिक भी, रामचरितविरोधी भी। इधर, हिन्दी में इनकी बड़ी धूम रही। हरिऔध से लेकर ब्रह्मदेव त्रिपाठी 'ब्रह्मा' ('रामाश्वमेध' शीर्षक 33 सर्गों के महाकाव्य के प्रस्तोता) तक अनेकानेक कवियों ने सीता-वनवासादि पर लिखा है। शम्बूक पर जगदीश गुप्त, विनीत विक्रम बौद्ध इत्यादि ने हाथ आजमाया है। सारी रचनाएँ साधारण ही हो सकती हैं, क्योंकि निराधार एवं मानवता-विरोधी हैं। द्रष्टा तुलसीदास के मानस ने दोनों को टुकरा दिया था।

जनजसवन्त

गोस्वामी तुलसीदास के प्रमुख शिष्य एवं महान् सन्त जन-जसवन्त (देहान्त 16 17 ई.) महाराष्ट्र के नासिक जनपद से सम्बद्ध थे। बहुत सम्भव है कि तुलसीदास से समर्थ गुरु रामदास के ऐतिहासिक सम्पर्क का कारण यही रहे हों। इनके चमत्कारों की कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें एक गुजरात के वन में दृष्णकल साधु-मंडली की जीवनरक्षा हेतु तपबल से कूपनिर्माण तथा परिणामस्वरूप जलजसवन्त कहे जाने वाली भी है किन्तु उसका नाम से कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसाकि मिश्रबन्धु ने लिखा है कि क्योंकि 'जन'-संपृक्त अनेक नाम प्राप्त होते हैं। जनगिरिधारी साधु अन्तर्देदी जिन्होंने 1468 ई. में 'भक्त-माहात्म्य' रचा, दादू शिष्य जनगोपाल जिन्होंने 1600 ई. के

1. 'देवतात्मा' (कुमारसम्भवम् में कालिदास) हिमालय की वन्दना, जिसका प्रभाव पार्वतीमंगल (खंडकाव्य) के प्रणेता तुलसीदास पर पड़ा है : "विनइ गुरुहि, गुनिगहि, गिरिहि, गननाथहि"।
2. द. है मेरा 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' ग्रन्थ जिसमें महाकाव्य के नव्य विवेचन के अतिरिक्त, रामायण, महाभारत, इलिअड, ओडिसी, ऐनीड (ऐनिअड), शाहनामा एवं रामचरितमानस का विवेचन-विश्लेषण-संश्लेषण किया गया है।
3. द. है मेरा 'विश्वकवि होमर और उनके काव्य' ग्रन्थ।
4. अनाद्यदास दादूपंथी यही हैं।

आसपास 'ध्रुवचरित्र' एवं 'भरथरीचरित्र' रचे, जनमुकुन्द जिन्होंने 1630 ई. के आसपास सम्भवतः नन्ददास की समनामी कृतियों से प्रेरित होकर 'भंवरगीत' एवं 'ध्रुवगीत' की रचना की, जनअनाथ¹ जिन्होंने 1669 ई. के लगभग 'सर्वसार' एवं 'प्रबोधचन्द्रोदय-नाटक' जैसी वेदान्तपरक पुस्तकें प्रस्तुत कीं, जनभोला जिन्होंने 1705 ई. के लगभग भगवद्गीता-अनुवाद किया, जनप्रवीण जिन्होंने 1775 ई. में 'रुक्मिणी-स्वयंवर' रचा, जनमोहन जिन्होंने 1816 ई. में 'सनेहलीला' रची, स्वयं 'विनोद' में विद्यमान हैं (भले ही ग़लती से जनगोपाल दो बार आ गए हों)।

जनजसवन्त की अनन्य एवं तेजस्वितापूर्ण रामभक्ति भी उन्हें तुलसी का शिष्य सिद्ध करती है (यद्यपि भाषा महाराष्ट्र के अन्य हिन्दी-सन्तकवियों के सदृश खड़ीबोली के निकट है) :

1. नर-गुन गाई जो खर-मुख होई।
तू भूपति जैसा करे तैसा होई॥
पुरब भान पछम जो करै।
तौहू जसवंत और नहिं डरै॥
हरि सों बिमुख भया क्यों राजा।
हाथी-घोड़े, देस, दास, सब कामिनी काजा॥
कहत जसवंत दुःख मत मानो।
हरि से बिमुख भया क्यों जानो॥¹
2. कोई बंदौ, कोई निंदौ कोई कैसा कहो रे।
रघुपति साथे प्रीति बाँधी होई जैसा होई रे॥
केवल को भइसाथी बाँधा नीर था भरपूर रे।
रामचंद्र ने कूर्म बनकर राख लीनी बात रे॥
चंद, सूरज जिनी जोत बिन, स्थंभ बिना आकास रे।
जल उपर पाषाण तारे, क्यों नहीं तारे दास रे॥²
जपते सिव सनकादिक मुनि जन नारदादिक संत रे।
जन्म-जन्म के स्वामी रघुपति दास जनजसवंत रे॥

अग्रदास³

उत्तर भारत के धार्मिक नेता रामानन्द ने 'राम' का सार्वभौम मन्त्र प्रदान किया। मुसलमान (जुलाहे) शिष्य कबीर को उन्होंने सर्वत्र रमनेवाले निर्गुण-राम का मन्त्र दिया क्योंकि एकांगी एवं 'एक व्यक्तिगत ईश्वर' (अल्लाह जो सातवें आसमान में रहता है तथा प्राचीन अरब-क्रवीला-सरदार की तरह शासन करता है) से अन्धास्थाबद्ध मोहम्मदीयत में सगुण-साकार का निषेध-सा है। रैदास (रविदास) को उन्होंने सम्भवतः शिष्य की रुचि के अनुरूप निर्गुण-निराकार एवं सगुण-साकार के उभय रूपों वाले राम का मन्त्र दिया। यही नहीं, उन्होंने योगमार्गी (विशेषतः हठयोगी) शिष्यों के हेतु "यत्पिण्डे तत्त्वद्वाण्डे" के अनुरूप कुंडलिनी-शक्ति-परक पथ भी अनवरुद्ध रखा, जैसाकि 'भक्तमाल' (नाभादास) में उनकी द्वादशशिष्य-नामावली (अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द,⁴ भावानन्द, पीपा, कबीर, सेन⁵, धना, रैदास, पद्मावती एवं सुरसुरी) में वरीयता-क्रम से भी ध्वनित होता है (जिसमें परवर्तियों को पहले गिनाया गया है)। अनन्तानन्द के शिष्य कृष्णदास पयहारी विख्यात सन्त थे जिन्होंने वर्तमान जयपुर एवं तत्कालीन आमेर के निकट 'गलताजी' में

1. वालवान (सम्प्रति नासिक क्षेत्र)-नरेश प्रतापशाह (जो जनजसवन्त के पिता जनार्दन के आश्रयदाता थे) के प्रशस्तिकाव्य-रचना के अनुरोध पर प्रतिक्रिया।
2. जिसने जल पर पाषाण तारे वह भक्त को क्यों न तारेगा।
3. सगकालीन शान्तरस-कवि अगर से भिन्न। अग्रदास 'अगरदास' छाप का प्रयोग भी करते हैं।
4. तुलसी-गुरु नरहरदास या नरहरिदास का संन्यस्त अधिधान?
5. काशी में कबीरचौरा है, तो सेनपुरा भी है। एक सेन सवैयाकार भी हुए हैं।

हठयोगियों को अभिभूत करके अपना प्रख्यात आश्रम स्थापित किया। निस्सन्देह कृष्णदास पयहारी ने रामानन्द की परम्परा पर ही चलते हुए शिष्य-चयन में प्रतिभा की परख की तथा अपने दो प्रमुख शिष्यों अग्रदास एवं कीलहदास को क्रमशः सरस-रामभक्ति एवं हठयोग के पथों पर गतिशील किया। यदि अग्रदास के अतिविख्यात शिष्य नाभादास रामभक्त हुए, तो कीलहदास के प्रमुख शिष्य द्वारकादास ने रामानन्द की योगप्रधान 'तपसी-शाखा' का उन्नयन किया। महान् रामानन्द की अखंड अद्वैतदृष्टि ने भक्ति एवं योग के मध्य लौह-प्राचीर नहीं खड़ी की। आधुनिककाल के एक महान् सिद्ध-योगी स्वामी मुक्तानन्द परमहंस (1908-82 ई.) ने योग एवं भक्ति में इसी संगति का पल्लवन किया। मुक्तानन्द परमहंस के गुरु अवधूत नित्यानन्द शिष्य-प्रतिभानुरूप विविध मन्त्रदान करते थे। रामानन्द की विराट् समन्वयवादी दृष्टि ने शिष्य-परम्परा (अनन्तानन्द, कृष्णदास पयहारी, अग्रदास, नाभादास, कीलहदास, द्वारकादास इत्यादि से नरहरदास या नरहरिदास या नरहर्यानन्द, तुलसीदास, जनजसवन्त इत्यादि तक) को तो प्रभावित किया ही, परवर्ती योगियों, भक्तों (उदाहरणार्थ विख्यात कथावाचक रामकिंकर उपाध्याय जो मानस-कथा का प्रतीकपरक विवेचन करते हैं) इत्यादि को भी प्रभावित करते आ रहे हैं।

रामानन्द, अनन्तानन्द एवं कृष्णदास पयहारी की महान् परम्परा के सक्षम उत्तराधिकारी अग्रदास (रचनाकाल 1575 ई.¹ के आसपास) ने राम की मधुर भक्ति का प्रवर्तन किया, जिसके कारण वे जनकलली की अग्रसहचरी² एवं अग्रअली³ माने गए। रामरासलीला के प्रवर्तक के रूप में भी यह अमर रहेंगे। 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' शीर्षक विद्वत्पूर्ण किन्तु तिथि-असजग तथा अध्येसायपूर्ण किन्तु वैज्ञानिकता-असजग उत्कृष्ट ग्रन्थ (वस्तुतः शोधप्रबन्ध जो महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज की पांडित्यपूर्ण भूमिका से सम्पन्न है) के लेखक विद्वद् डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह के अनुसार "रसिक-साहित्य के निर्माता" निम्नलिखित 68 महानुभाव हैं : 1. अग्रदास 'अग्रअली', 2. नाभादास 'नाभाअली', 3. बालकृष्ण 'बालअली', 4. बालानन्द, 5. छत्रसाल, 6. रामप्रियाशरण 'प्रेमकली', 7. जानकीरसिकशरण 'रसमाला', 8. रूपलाल 'रूपसखी', 9. रामप्रपन्न 'मधुराचार्य', 10. सूरकिशोर, 11. मामा प्रयागदास, 12. रामसखे, 13. प्रेमसखी, 14. हर्याचार्य, 15. कृपानिवास, 16. 'सियासखी', 17. रामप्रसाद 'विन्दुकाचार्य', 18. रामदास तपसी, 19. मनभावन, 20. रामचरणदास, 21. शिवलाल पाठक, 22. शंकरदास, 23. बलदेवदास 'चन्द्रअली', 24. पं. रामगुलाम द्विवेदी, 25. महाराज विश्वनाथसिंह, 26. मनीराम, 27. हरिदास, 28. जीवामा 'युगलप्रिया', 29. जनकराजकिशोरीशरण 'रसिकअली', 30. लक्ष्मीनारायणदास पैहारी, 31. प्रतापकुँवरि बाई, 32. काष्ठजिह्वास्वामी 'देव', 33. पतितदास, 34. पं. उमादत्त त्रिपाठी 'कोविद', 35. रामशरण, 36. रघुनाथदास, 37. युगलानन्यशरण 'हेमलता', 38. महाराज रघुराजसिंह, 39. हनुमानशरण 'मधुरअली', 40. बैजनाथ, 41. जानकीप्रसाद 'रसिकविहारी', 42. रघुनाथदास रामसनेही, 43. बनादास, 44. अवधशरण, 45. रामानुजदास 'रूपसरस', 46. शीलमणि, 47. बलदूदास, 48. जानकीवरशरण 'प्रीतिलता', 49. सरयूदास 'सुधामुखी', 50. परमहंस सीताशरण, 51. पं. सीताप्रसाद, 52. वृषभानु कुँवरि 'रामप्रिया', 53. पं. रामवल्लभाशरण 'प्रेमनिधि', 54. स्वामी रामवल्लभाशरण 'युगलविहारिणी', 55. कामदेन्द्रमणि, 56. सीतारामशरण 'रामसरंगमणि', 57. सीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला', 58. गोमतीदास 'माधुर्यलता', 59. सियाशरण मधुरकरिया 'प्रेमअली', 60. जानकीप्रसाद, 61. कामदमणि, 62. सीतारामशरण 'शुभशीला', 63. सियाराम शरण 'तपसी', 64. जनकदुलारी शरण बावन जी, 65. सियालाल शरण 'प्रेमलता', 66. रामाजी, 67. सद्गुरुप्रसाद शरण, 68. कांचन कुँवरि। इसमें बहुत-से नाम सिद्धों और नाथों की सूचियों की याद कराने वाले हैं अर्थात् जोड़ाजाड़ी वाले हैं, किन्तु एकदम निराधार भी नहीं हैं। परवर्ती राम-मधुरोपासकों पर तो अग्रदास या अग्रअली का भारी प्रभाव पड़ा ही, जो आज तक विद्यमान हैं; कृष्ण-मधुरोपासक भी इनके प्रभाव से अछूते न रह सके। अग्रदास एक प्रभावी गुरु भी थे जिनके नाभादास, प्रयागदास, नरसिंहदास, भगवानदास, जगतदास, जगन्नाथदास खेमदास खींची, धर्मदास, लघुऊधो इत्यादि अनेक शिष्य थे। इनके प्रमुख ग्रन्थ 'हितोपदेश उपाखाणों बाधनी', ध्यानमंजरी या रामध्यानमंजरी एवं शृंगाररससागर या अग्रसागर हैं तथा इन्होंने संस्कृत में 'अष्टयाम' भी प्रस्तुत किया था (जिसका परवर्ती ब्रजभाषा-कवियों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा)। 'विनोद' के अनुसार इनका 'रामचरित के पद' ग्रन्थ भी मिला है।

अग्रदास की शृंगार-वलित भक्ति का प्रभाव मीरों, सूर, नन्ददास इत्यादि तक पर दृग्गत हो जाता है। तुलसी के रामसौन्दर्य चित्रण

1. 'विनोद' (मिश्रबन्धु) एवं 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (शुक्ल) के अनुसार (1632 वि.)।

2. 'हिन्दी साहित्य कोश' (सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि), भाग 2, पृ. 8 (बदरीनारायण श्रीवास्तव-प्रस्तुत विवरण)।

3. 'रामभक्ति' में रसिक-सम्प्रदाय' (डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह), पृ. 379

पर उनका प्रभाव स्पष्टतः दृग्गत होता है। उन्होंने पुष्पवाटिका-लीला पर विशेष रुचि दिखलाई थी। सुन्दर पुष्पवाटिका में वे प्रिय-दर्शन की तीव्र स्पृहा से सम्प्रेरित होते थे। वे तुलसी के महान् पुष्पवाटिका-वर्णन के प्रेरक थे, इसमें सन्देह नहीं। उनका सौन्दर्यचित्रण, प्रेमवर्णन, मिलनवर्णन इत्यादि मनोहारी हैं जो स्वच्छ ब्रजभाषा में अभिव्यक्त हुआ है :

1. कुंडल ललित कपोल जुगुल अस परम सुदेसा।
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस-दिनेसा।।
मेचक कुटिल बिसाल सरोरुह नैन सोहाए।
मुख-पंकज के निकट मनो अलि-छौना छाए।।
2. पहरै राम तुम्हारे सोवत।
मैं मतिमंद अंध नहिं जोवत।।
अपमारग मारग महि जान्यो।
इंद्रि पोषि पुरुषारथ मान्यो।।
औरनि के बल अनत प्रकार।
अगरदास के राम अधार।।
3. षोडश बरस किशोर राम नित सुंदर राजैं।
रामरूप को निरखि विभाकर कोटिक लाजैं।।
अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानंद वामदिशि जनककुमारी।।
नगन जरे छवि भरे विविध भूषण अस सोहैं।
सुंदर अंग उदार विदित चामीकर कोहैं।।
4. सहज चलौंगी आपनी, अनखि मरैंगे लोग।
अनखि मरैंगे लोग, वेद कुल कानि न करिहैं।।
भली बुरी सिरधारि अनन मारग अनुसरिहैं।।
देव पितर विधि अविधि, लोक परलोक न सूसो।।
सरवसु सीताराम कोऊ, रूसो कोउ तूसो।
'अग्र' सुमतिपथ हरि बरौं करिहैं दृढ़ संयोग।।
सहज चलौंगी आपनी अनखि मरैंगे लोग।
5. देखो झूलत राघो डोल।
जनक सुता लीने सँग सोभित गौर स्याम तन लोल।
हीरा पन्ना लाल पिरोजा रतन खचित बेमोल।
क्रीडत राम जानकी दोऊ बजै दुन्दभी डोल।।
हँसत परसपर प्रीतम प्यारी आनँद बढ़यो सचोल।
श्री 'अग्रअली' सुनि सुनि सुख पावति बोलहिं मीठे बोल।।

नाभादास

376 छन्दों में लगभग 200 भक्तों का जीवनवृत्तसम्पृक्त- गुणगान करने वाले 'भक्तमाल' के अजर-अमर प्रस्तोता नाभादास (रचनाकाल 1600 ई. के इधर-उधर) पर राधाकृष्णदास कृत 'ध्रुवदास की भक्त-नामावली' एवं मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में समुचित प्रकाश डाला गया है। शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 'विनोद' के विवरण को ही संक्षिप्त रूप दिया है। हाँ, इन और तुलसी के सम्बन्ध में प्रचलित एक गल्प अवश्य जोड़ दी है (जो कालातीत एवं व्यर्थ है)। अन्य शोध इत्यादि बस लीपापोती है!

यत्रतत्र-गद्ययुक्त रामसम्बद्ध 'अष्टयाम' इनकी अन्य प्रसिद्ध कृति है। यह गलता जी (जयपुर) के स्वामी अग्रदास के शिष्य थे तथा अमर भक्तमाल-टीकाकार प्रियादास¹ के गुरु। भक्तमाल की अनेक टीकाएँ एवं अद्यावधि विस्तार-प्रक्रियाएँ इसे हिन्दी-साहित्येतिहास की निधि प्रमाणित करती हैं।² नाभादास की ब्रजभाषा संस्कृतनिष्ठ एवं प्रवाहपूर्ण है। डोम होते हुए भी नाभादास सबके श्रद्धाभजन बने। एक महान् भक्त, भक्तवृत्तकार एवं रामकाव्यकार के रूपों में उनका स्मरण सदा-सर्वदा किया जाएगा :

1. मधुरभाव-सम्मिलित ललित लीला सुबलित छवि।
निरखत हरषत हृदय प्रेम बरसत सुकलित कवि।।
भवनिस्तारन हेत देत दृढ़ भक्ति सबन नित।
जासु सुजन-ससि उदै हरत अति तमभ्रमस्रम चित।।
आनंदकंद श्रीनंदसुत श्रीवृषभानुसुता भजन।
श्रीभट्ट सुघट प्रगट्यो अघट रसरसिकन मनमोद धन।
2. अवधपुरी की सोभा जैसी। कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी।।
रचित कोट कलधौत सोहावन। विविध रंग मनि अति मनभावन।।
चहुँदिसि विपिन प्रमोद अनूपा। चतुर बीस जोजन रस-रूपा।।
सुदिसि नगर सरजू अति पावनि। मनिमय तीरथ परम सोहावनि।।
बिकसे जलज भृंग रस भूले। गुंजत जल समूह दोउ फूले।।
बरसत त्रिविध सुधा सम वारी। बिकसे विविध कंज मनहारी।।

लतीफ़शाह

मोरो पंत कृत 'सन्मणिमाला' एवं सिद्ध चैतन्य तथा स्वामी रंगनाथ निगड़ीकर कृत 'सन्तमालिका' में प्रशंसित एवं एकनाथ के कृपापात्र³ महाराष्ट्र के सन्त लतीफ़शाही (16वीं शताब्दी) प्रख्यात गमभक्त थे तथा राम, कृष्ण, विट्ठल की एकता के प्रतिपादक थे। तुलसीदास एवं एकनाथ के समकालीन सन्त लतीफ़शाह अकबर, रहीम, रसखान जैसे महान् व्यक्तियों की रंगत-पंगत के व्यक्ति ही थे जिन्हें दूसरा रहीम भी कहा जा सकता है, दूसरा रसखान भी। उनको पुनरुत्थानकालीन रामकाव्यकार के रूप में समादृत किया जाना चाहिए :

1. राम नाम नौबत बजाई।
पहिली नौबत नारद तुंवर दुसरी नामा कबीर सुनाई।
तिसरी नौबत सुदामा की प्रहलाद की जिन्ने राखी बडाई।
कहत लतीफ़ सुन मेरे भाई धन्ना जाट और मीराबाई।।⁴
2. जे सर प्राणी हरि के उपासक आप तरे तारे औरन कु।
कहे लतीफ़ मैं पूजूं उनकु सुमरत मुरलीधर कु।।
3. साधु की निन्दा।
बड़ा गुनहगार बंदा।।

1. 'भक्तिरसबोधिनी टीका' : "मूल से टीका अधिक उपयोगी है।" (मिश्रबन्धु)

2. प्रियादास, ध्रुवदास, लालचन्द्रदास, वैष्णवदास (तुलसी-पूर्ववर्ती रामकाव्यकार विष्णुदास से भिन्न), खुराजसिंह, भारतेन्दु, प्रतापसिंह (राजा ईश्वरीप्रतापनारायण राम 'प्रताप'), ज्वालाप्रसाद मिश्र इत्यादि भक्तमालकार नाभादास से प्रेरित ही हैं।

3. 'राष्ट्रधर्म' (लखनऊ) के अगस्त, 1991 अंक में कवनेश त्रिपाठी का 'ऐसे थे भक्त लतीफ़शाह' लेख, पृष्ठ 59।

4. भारत की एकता का एक प्रतीक पद—प्राचीन एवं नवीन, पुराण एवं इतिहास, अनेक राज्य, अनेक जातियाँ, हिन्दू-मुसलमान, सब एकाकार! यदि भारत को भिन्नतावादी एवं साम्यवादी इतिहासकार भारतीय साहित्य पढ़ते तो परकीयतावाद के दयनीय आखेट न बनते।

विश्वकवि तुलसी

तुलसी जिसने रामचरित-नवरूप सजाया
 तुलसी जिसने पुरुषोत्तम को ब्रह्म बनाया
 तुलसी जिसने रामचन्द्र दरबार रचाया
 तुलसी जिसने हनुमत्-पूजा को फैलाया।
 नहीं राम-दरबार संग्रहालय में मिलता
 यह तुलसी-अवदान, हृदय श्रद्धा से खिलता
 पग-पग हनुमत्-मूर्ति देख दुर्जन-मन हिलता
 तुलसी ने प्रचलित कर दी हनुमान्-अखिलता।
 तुलसी जिसके राम अहल्या के घर जाते
 शबरी को आश्रम में जाकर अमर बनाते
 नारी-संवेदन की सीमा को दिखलाते
 “कत बिधि सृजि नारि जग माहीं” तुलसी गाते।
 नई चरित-टकसालः सभी प्रेरक और पावन
 नहीं भरत दशरथ-निंदक, लक्ष्मण सुहावन
 सीता लक्ष्मण से ना कहतीं शब्द अशोभन
 रामण कामुक नहीं, महामानव, संयतमन!
 मानस ने सीता-वनवास नहीं स्वीकारा
 परवर्ती शंबूक-कथा को तजा, नकारा
 कोल, किरात, शबर, वानर से काव्य सँवारा
 दे मानवतावाद सभी को प्राण निखारा।
 मुक्तक, गीति, प्रबन्ध, सभी में भरी रवानी
 अवधी, ब्रजी, संस्कृत व्यापकता लासानी
 शासक-महिमागान नहीं, जनहृदय-कहानी
 “सुरंसरि सम सब कहूँ हित” सृजनप्रेरणा ठानी।
 मालवोय को भक्तिभावना ने सरसाया
 रामराज्य को गांधी ने जी भर अपनाया
 चित्रण आदिवासियों का भावे को भाया
 संस्कृति-गरिमा-लुब्ध निराला काव्य रचाया।
 भारत या नेपाल, फिजी, ट्रिनिडाड, गुयाना
 सूरीनाम और मॉरीशस, सबने माना
 कथावाचकों ने यश का वितान जग ताना
 हुआ ‘विश्वकवि’ शब्द सत्य, सार्थक, सुहाना।

—रामप्रसाद मिश्र

तुलसीदास (1532-1623 ई.)¹ संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में भी प्रतिष्ठित हैं, संसार के सर्वश्रेष्ठ धर्मपुरुषों की पंक्ति

1. सं. 1581 वि. में जन्म रामगुलाम द्विवेदी द्वारा प्रतिपादित था जिसे ग्रीअर्सन, मिश्रवन्धु इत्यादि प्रायः सभी विद्वानों ने प्रामाणिक माना है। ‘तुलसीचरित’ एवं ‘गोसाईचरित’ का 1554 वि. एवं ‘सरोज’ का 1583 वि. दोनों ही स्वीकृत नहीं हो पाए। निधन 1680 वि. में निर्विवाद है, यद्यपि “सावन स्यामा तीज सनि” के रूप में, न कि “सावन सुक्ला सप्तमी” के रूप में जो जन्मतिथि मानी जाती है।

में भी; और ऐसा द्विविध गौरव इतिहास के किसी अन्य महापुरुष को प्राप्त नहीं हो सका।¹ कवि के रूप में भारत के वाल्मीकि, व्यास एवं कालिदास, फ़ारस (ईरान) के फ़िरदौसी तथा यूरोप के होमर (यूनान²), दान्ते (इटली) एवं शेक्सपीयर (ग्रेट ब्रिटेन) ही उनकी समता कर सकते हैं। धर्मपुरुषों में बुद्ध, ईसा एवं मोहम्मद ही उनकी समता कर सकते हैं, क्योंकि मूसा, महावीर, जर्थुस्त्र (जोरॉस्टर), नानक इत्यादि के अनुयायियों की संख्या कम है, यद्यपि उन्होंने स्वपूजा-विरोधी अथवा सनातनसंस्कृति प्रेमी होने के कारण नया धर्म या पंथ नहीं चलाया, जो प्रशंस्य भी है, क्योंकि आवश्यकता से बहुत अधिक धर्मों और मजहबों ने मानवता की भयावह क्षति की है तथा कर रहे हैं, जिसके कारण मार्क्स, लेनिन इत्यादि चिन्तकों को वे अफ़्रीम लगे हैं तथा स्टालिन, माओ (ज्झाओ) इत्यादि ने उनके मानवघाती अस्तित्व का विरोध किया है। बाइबिल, कुरान एवं भागवत में आदि-धर्म की एकता का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि परवर्ती व्यक्तिवादी धर्म और मजहब प्रवर्तकों के अहं के उद्गार हैं, सहज या नैसर्गिक नहीं। ग्रीअर्सन ने तुलसी के द्वारा पंथ-प्रवर्तन न करने के लिए उनकी जो प्रशंसा की है, वह एकदम ठीक है। बिना किसी धर्म-प्रवर्तन के ही तुलसी ने उत्तर भारत के अधिकांश हिन्दुओं को तुलसी-धर्म का अनुयायी बना दिया है। सम्प्रति तुलसी राम-सीता-लक्ष्मण एवं हनुमान्-पूजा के आधार हैं। राम-रामलीला-तुलसी के विवेचक डॉ. भानुशंकर मेहता के शब्दों में, “तुलसी लीला का रहस्य समझे थे और उन्होंने कमाल किया—एक तो अद्भुत लीला-मंच की सृष्टि की, नाटक के ऐसे सूत्र दिए जो स्टैनिस्लावास्की ने 300 वर्ष बाद दिए। सबसे मजेदार बात यह कि गोस्वामीजी ने भूतभावना की नगरी में, शंकर के धाम में रामराज्य स्थापित कर लीला आरम्भ की (पहली लीला अस्सी पर ‘राज्याभिषेक’ की लीला)। आज भी चित्रकूट के भरत-मिलाप में वैष्णव, शैव और रामानन्दी का अद्भुत मिलाप देखा जा सकता है। धर्मों और सम्प्रदायों का मधुर समन्वय कोई ‘मसीत को सोइबो’ कहनेवाले तुलसी ते सीखे। गोस्वामीजी ने भारत भ्रमण किया था और वे सर्वत्र से ‘लीला’ के लिए कुछ-न-कुछ लाए। अस्तु बनारस की रामलीला में सारे भारत का अंशदान है।” (21-2-1990 के मेरे पत्र में।) उनकी प्रतिष्ठा नेपाल, मॉरीशस³, फिजी, सूरीनाम, टोबैगो ट्रिनिडाड इत्यादि तक है; भारत के गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब इत्यादि अहिन्दी-क्षेत्रों में तो है ही। निःसन्देह वे विश्वकवि भी हैं, विश्व-धर्म-पुरुष भी। ग्रीअर्सन एवं विनोवा ने उन्हें क्रमशः “भारत के सर्वश्रेष्ठ कवियों एवं सुधारकों में एक” एवं “बुद्ध के बाद उत्तर भारत की जनता का सबसे बड़ा सेवक” माना है, विंसेंट ए. स्मिथ ने मुगलकालीन भारत का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष; अकबर से भी बड़ा क्योंकि उसका साम्राज्य अतीतलीन हो चुका है, जबकि इनका सतत-वर्द्धमान है⁴, गांधी एवं एट्किंस ने रामचरितमानस को “भक्ति मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ” माना है। ग्रीअर्सन, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, माताप्रसाद गुप्त इत्यादि प्रायः सभी आलोचकों ने उन्हें हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि माना है। वस्तुतः तुलसीदास के लिए ऐसी मान्यता विशिष्ट नहीं है क्योंकि हिन्दी में उनके समकक्ष न किसी का व्यक्तित्व ही है, न कृतित्व ही। दिनकर जैसे श्रेष्ठ एवं कवि एवं राजबहादुर लमगोड़ा जैसे श्रेष्ठ आलोचक ने तुलसी को विश्व का सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध किया है। प्रिंसिपल ग्रिफिथ का कथन है : “रामायण न केवल साहित्य का सर्वश्रेष्ठ अंग है बल्कि हर देश तथा हर आयु के व्यक्ति के लिए उपादेय है। किसी भी देश की कोई भी अन्य पुस्तक राम और सीता के समान सम्पूर्ण चरित्र के उद्घाटन की श्रेणी नहीं बधा सकती। कहीं भी इतनी आकर्षक नैतिकता और पद्य-रचना नहीं है।”

1. द्रष्टव्य हैं मेरे ‘विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य’ (1773 ई.) एवं प्रायः इसी के कुछ संक्षिप्त रूप ‘विश्वकवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य’ (1985 ई.), ‘तुलसी के अध्ययन की नई दिशाएँ’ (1987 ई.) एवं ‘तुलसी-साहित्य के सर्वोत्तम अंश’ (1988 ई.) ग्रन्थ। ‘विश्वकवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य’ को ‘आलोचना-सागर’ (1988 ई.) के द्वितीय खण्ड के रूप में भी देखा जा सकता है। 2001 ई. में ‘तुलसी-सर्वेक्षण’ सार-संग्रह प्रकाशित।
2. होमर (ईसा पूर्व 9वीं सदी) के बाद के नाम ग्रीस एवं यूनान हैं, होमर ने अकाइआ या अशाइमा का प्रयोग किया है।
3. मॉरीशस के हिन्दी-लेखक एवं ‘लाल पसीना’, ‘गांधी जी बोले थे’, ‘और पसीना बहता रहा’ प्रभृति उपन्यासों के प्रणेता श्री अभिमन्यु ‘अनंत’ ने भारत एवं भारतीयों की उपेक्षा के कारण उनके देश में पिछड़ती हिन्दी, अट्ठावन प्रतिशत हिन्दी-भाषियों के देश में पिछड़ती हिन्दी, फ्रेंच से पिछड़ती हिन्दी के वातावरण में भी ‘मॉरीशस रामायण’ से बेहद प्रभावित है—रामानन्द सागर का 1988-89 ई. का दूरदर्शन-धारावाहिक ‘रामायण’ वहाँ बहुत लोकप्रिय हुआ है—का सत्य स्वीकार किया है (‘जनसत्ता’ 8 जनवरी, 1989, पृष्ठ 6)। भारत की उपेक्षा के कारण ही फिजी में भी भारत-मूल के बहुमत की दशा दयनीय है किन्तु तुलसी की लोकप्रियता ज्यों-की-त्यों है—मैं फिजी के एक हिन्दी-उच्चअत्र से वार्ता करके यह जान सका जिसका भाषण मार्मिक था। यहाँ ‘रामायण’ से तुलसीकृत रामचरितमानस का अभिप्राय ही है।
4. जयप्रकाश नारायण ने कहा था : यह कहना गलत है कि तुलसीदास अकबर के समय में हुए थे, यह कहना ठीक है कि अकबर तुलसीदास के समय हुआ। रोमन सिसरो न तो अकबर ‘रंच मात्र भी नहीं’ तक कहा है (राष्ट्रधर्म, अगस्त 1991, पृष्ठ 45)।

‘रामचरितमानस’ के अनेक गद्य-पद्य-अनुवाद अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, पोलिश, चीनी, उर्दू¹, फ़ारसी, नेपाली हरियाणवी, मैथिली, तेलुगू² मलयालम इत्यादि में उपलब्ध हैं तथा अनुवादकों में ग्रॉउस, एट्किंस, वारान्निकोव, प्रो. जिन डिंग हान् (चीनी), रामलोचनशरण³ (मैथिली), रामेश्वरदयाल शास्त्री⁴ (हरियाणवी), डॉ. रामनिरंजन पांडेय (खड़ीबोली), डॉ. शंकर कुरुप् (मलयालम) इत्यादि का विशिष्ट स्थान है। कश्मीरी रामायणों⁵ पर भी तुलसी का प्रभाव पड़ा है। विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली के भी नानाभाषागत अनुवाद उपलब्ध हैं। इस दिशा में सर्वोपरि कार्य श्री एस.पी. वहादुर का अंग्रेजी-छन्दबद्ध-अनुवाद करने का है जिन्होंने छह खंडों में तुलसीदास के समग्र काव्यों को प्रस्तुत करने का विश्व-स्तरीय कीर्तिमान स्थापित किया है। ‘तुलसी-साहित्य के नाना अनुवाद’ बहुखंडीय शोध के विषय हैं। भारत के इतिहास में राम, कृष्ण, व्यास, बुद्ध एवं शंकराचार्य के अतिरिक्त तुलसी के समकक्ष व्यक्ति के दर्शन नहीं होते : न सर्वायामी विराट् प्रतिभा में, न सर्वसमन्वयकारी विराट् प्रभाव में। संसार के इतिहास में किसी महाकवि ने जनजीवन को इतना अधिक प्रभावित नहीं किया जितना तुलसीदास ने—

ओ महाकवे! क्या कहें तुम्हें : ऋषि? स्रष्टा? द्रष्टा? महाप्राण?
अपनी पावनतम वाणी से तुम करते संस्कृति-परित्राण।
मानवता की सीमाओं को दिखलाया अपने पात्रों में,
ब्रह्मत्व भर दिया महाकवे! तुमने मानव के गात्रों में!

प्रचलित जीवनवृत्त की अप्रामाणिकता

तुलसीदास का जन्म उत्तर प्रदेश के बाँदा ज़िले में यमुना के तट पर स्थित राजापुर नामक कस्बे में हुआ था, जहाँ बहुत पहले ही उनकी स्मृति में एक मूर्ति प्रतिष्ठित की गई थी। मिश्रबन्धु, शुक्ल, माताप्रसाद इत्यादि विद्वानों ने राजापुर को ही उनका जन्म-स्थान माना है। स्वतन्त्र भारत में वहाँ उनका भव्य स्मारक बनाया गया है। राजापुर (बाँदा), सोरों (एटा), तुलसीपुर (गोंडा), अयोध्या (तुलसी-उद्यान में दो मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं), चित्रकूट (उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के अंचलों में प्रसरित—एक चित्रकूट या चित्रकोट कश्मीर में भी है), कानपुर (मोती झील स्थित भव्य तुलसी-उद्यान), वाराणसी (जहाँ का मानस-मन्दिर अतिविख्यात है—जहाँ तुलसी घाट है, तुलसी-प्रतिष्ठापित संकट-मोचन तीर्थ है) इत्यादि तुलसी को देव-वर्ग में अधिष्ठित कर चुके हैं। किन्तु जन्मस्थान राजापुर ही है। तुलसी की भाषा इसे प्रमाणित करती है। डॉ. अम्बाप्रसाद ‘सुमन’ का कथन ठीक है कि “कवितावली के क्रियापद और कुछ संज्ञापद सिद्ध करते हैं कि तुलसीदास जी ने अपना वचन कहीं कन्नौजी या बुन्देली के क्षेत्र में अवश्य बिताया होगा।” जन्म राजापुर के बुन्देली-अंचल में, शैशव सोरों के कन्नौजी-अंचल में। ‘ये मेरा बैसवारा’ संग्रह के कवि स्व. मधुकर खरे ने तुलसी की भाषा ‘बैसवारी’ (बैसवाड़ी) मानी, क्योंकि उनके अनुसार मानस की भाषा लखनऊ-अयोध्या (अवध-प्रदेश) की न होकर ‘बैसवारी’ के निकट है। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने यह मान्यता बहुत पहले व्यक्त की थी। रामनरेश त्रिपाठी ने उनके जन्म-स्थान के रूप में उत्तर प्रदेश के एटा जिले में गंगा तट पर स्थित सोरों की कल्पना की थी, जिस पर डॉ. रामदत्त भारद्वाज ने बहुत शोध-कार्य किया, किन्तु यह कल्पना परवर्ती एवं प्रमाण-रहित है। इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी ने शैशव

1. बॉकेबिहारीलाल कृत ‘रामायन-बहार’, शंकरदयाल ‘फ़रहत’ कृत ‘फ़रहत-रामायन’ इत्यादि के द्वारा सफ़्दरशाह कृत ‘तुलसीदास और रामचरितमानस’ ग्रन्थ पठनीय है।
2. पंडित शिष्ट कृष्णामूर्ति शास्त्री एवं मंडा नरहरि शास्त्री कृत, 1860 ई. के आसपास का, रामचरितमानस का तेलुगू-अनुवाद दोहा-चौपाई इत्यादि छन्दों की तेलुगू-रूपों में प्रस्तुति के कारण भी विशिष्ट है। वारान्निकोव (रूसी) एवं एट्किंस (अंग्रेजी) में भी ऐसा ही किया गया है।
3. अक्षयकुमार (1843-1901 ई., बाघी, जनपद वैशाली) ने तुलसी-पद्धति पर ‘रसिकविलास-रामायण’ रची थी जिसकी कविता साधारण है। रामलोचनशरण का मैथिली-अनुवाद एक विशिष्ट प्रयास है।
4. ‘हरियाणवी रामायण’ का विमोचन 3 अक्टूबर, 1988 को नई दिल्ली में हुआ।
5. पं. प्रकाशराम कृत ‘रामावतार-चरित’, पं. विष्णु कौल कृत ‘विष्णुप्रताप रामायण’, नीलकंठ शर्मा कृत ‘शर्मा-रामायण’, आनन्दराम राजदान कृत ‘आनन्द-रामावतार-चरित’, पं. ताराचन्द कृत ‘ताराचन्द-रामायण’, पं. अमरनाथ कृत ‘अमर-रामायण’ इत्यादि। सुश्री शरदसिंह (मकसोनिया, सागर) ने ‘कश्मीरी रामकाव्य: रामावतार-चरित’ में इनमें से प्रथम पर प्रकाश डाला है। महन्त बाबा हार्थाराम पजावा रामलीला कमेटी इलाहाबाद की ‘स्मारिका’ (1991 ई.) पृष्ठ 22-24।

में सोरों (शूकर क्षेत्र) में अपने गुरु नरहरदास से रामकथा सुनी थी (मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत १)¹, यद्यपि शुक्ल इस 'सूकर खेत' को गोंडा जिले में सरयू के तट पर स्थित वराह क्षेत्र मानते हैं तथापि यह सोरों ही लगता है क्योंकि 'सूकर खेत' का सुस्पष्ट प्रयोग किया गया है तथा यहाँ उनकी विद्यमानता सर्वस्वीकृत रही है, जबकि न तो 'वराह खेत' का प्रयोग ही किया गया है तथा न वहाँ कभी किसी ने ऐसा दावा ही किया है। चन्द्रबली पांडेय ने तुलसी का जन्म-स्थान अयोध्या के पास माना है। सम्भवतः इसी से प्रेरित होकर डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने अयोध्या के पास माने गए सरयू-घाघरा-संगमस्थल पसका की कल्पना कर डाली है। डॉ. वच्चन पाठक 'सलिल' आरा-वक्सर के मध्य रघुनाथपुर² को तुलसी-जन्म-स्थान मानते हैं तथा वहाँ सैकड़ों साल पुराने तुलसी-चबूतरे का उल्लेख करते हुए कई अन्य प्रमाण देते हैं। ये मान्यताएँ निराधार प्रतीत होती हैं। उनके जन्म-स्थान के रूपों में हाजीपुर, हस्तिनापुर, तारी, काशी, रामपुर इत्यादि की चर्चाएँ भी हुई थीं, जिन पर विचार करना व्यर्थ है।

उनके पिता का नाम आत्माराम दुबे भी बताया जाता है, मुरारि मिश्र भी, आत्माराम शुक्ल भी। 'सुकुल जनम' (विनयपत्रिका) के शब्द-प्रयोग के कारण शुक्ल-कल्पना अधिक साधार प्रतीत होती है। किन्तु यहाँ शुक्ल का अर्थ गौर है जिससे यह प्रमाणित होता है कि वे उज्ज्वल-कुलीन गौर-वर्ण सुन्दर व्यक्ति थे। मिश्रबन्धु इत्यादि ने आत्माराम दुबे, इन्द्रदेवनारायण एवं केशवचन्द्र शुक्ल³ (आ. रामचन्द्र शुक्ल के पुत्र) इत्यादि ने मुरारि मिश्र एवं रामदत्त भारद्वाज इत्यादि ने आत्माराम शुक्ल का प्रतिपादन किया है। उनकी माँ का नाम हुलसी बताया जाता है। यद्यपि चन्द्रबली पांडेय ने हुलसी को उनकी पत्नी सिद्ध किया है, किन्तु यह सब भी प्रमाणहीन है। पहले नरहरदास या नरहरिदास या (सम्भवतः संन्यास लेने के बाद) नरहर्यानन्द का शिष्य तो प्रमाणिक प्रतीत होता है, किन्तु कालान्तर में शेष सनातन से विद्या-लाभ नहीं। तुलसीदास को सन्त तुलसी साहब, राजा प्रतापसिंह, मिश्रबन्धु इत्यादि ने कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना है, रामगुलाम द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि ने सरयूपारीण। कालान्तर में मिश्रबन्धु भी सरयूपारीण-पक्षधरों से सहमत प्रायः हो गए थे। दस्तुतः यह विवाद अप्रात्ययिक है, क्योंकि इसे अन्तर्साक्ष्य या विश्वसनीयता का अवलम्ब प्राप्त नहीं है।

तुलसी अविवाहित थे

तुलसीदास के रत्नावली या भारती से विवाह एवं तारक नामक अल्पजीवी पुत्र के जन्म की परवर्ती कल्पनाएँ निराधार हैं, क्योंकि उन्होंने कहीं इनका उल्लेख नहीं किया। नाभादास, रहीम, रामू द्विवेदी इत्यादि उनके किसी प्रशंसक या शिष्य ने भी इनकी कोई चर्चा नहीं की। वेणीमाधवदास एवं रघुवरदास तथा इनके द्वारा रचित गोसाई-चरित एवं तुलसी-चरित की कल्पना तो ईसा की बीसवीं सदी में की गई है। दोनों ग्रन्थ न तो पूर्णतः उपलब्ध ही हैं, न अपने उपलब्ध अंशों में इतिहास-सम्मत ही। इन जाली ग्रन्थों के आधार पर तुलसी को विवाहित मानना सर्वथा निराधार एवं पूर्णतः अनुचित है। तुलसी अविवाहित थे जैसाकि उनके विनयपत्रिका, कवितावली एवं दोहावली के उद्गार स्वयं प्रमाणित करते हैं। सूर से सम्बद्ध विल्वमंगल-कथा के सदृश, तुलसी से सम्बद्ध रत्नावली-कथा शतशः निराधार है। यदि अमृतलाल नागर जैसे उपन्यासकार 'मानस का हंस' में इससे भी आगे बढ़कर कल्पनाएँ करते हैं तो आश्चर्य नहीं होता किन्तु यदि रामदत्त भारद्वाज जैसे विद्वान् रत्नावली को प्रमाणित ही नहीं करते प्रत्युत उनकी कविताएँ भी ढूँढ़ लाते हैं तो आश्चर्य हुआ बिना नहीं रहता। आत्माराम दुबे, मुरारि दुबे, आत्माराम शुक्ल, रत्नावली⁴, तारक या तारापति ('मानस का हंस' में), चुनियाँ (या मुनियाँ) इत्यादि कल्पित व्यक्ति हैं। रामनरेश त्रिपाठी की तुलसी के व्यापार की कल्पना सर्वाधिक विचित्र है। सत्य यह है कि तुलसीदास

1. प्रयाग-स्थिति वंशज नरहरदास ही कहते हैं, नरहरिदास नहीं; वे भट्ट हैं। एक वरिष्ठ सज्जन से वार्ता कर चुका हूँ। रामनरेश त्रिपाठी ने एदत्विषयक दोहा स्व-सम्पादित एवं सटीक रामचरितमानस में ठोक दिया है, जिसमें 'हरि' का 'निकर' के साथ तुक-दोष भी नहीं है—
बंदउँ गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हर।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर।।

'वदि बोधमयं नित्यं गुरु शंकरूपिणम्' से भी नरहरदास ही सिद्ध होता है। हर ही शंकर हैं। हरि तो विष्णु हैं।

2. महन्त बाबा हाथीराम पंजावा रामलीला कमेटी इलाहाबाद की 'स्मारिका' (1991 ई.) में 'गोस्वामी तुलसीदास का जन्मस्थान रघुनाथपुर' लेख, पृ. 15।

3. सम्मेलन पत्रिका : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विशेषांक, पृष्ठ 3।

4. 'क्या मलें क्या चाट कलैं?', 'नीह का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर' एवं 'दशद्वार से सोपान तक' चार ग्रन्थों में आत्मकथा लिखनेवाले कविवर बच्चन ने भी इस कल्पित कथा की सत्यता स्वीकार की है, यद्यपि यथार्थमूलक रत्नावली-प्रत्याख्यान के साथ।

माता-पिता द्वारा परिव्यक्त शिशु थे, शैशव में उन्हें अपार संघर्ष झेलते हुए भिक्षाटन तक करना पड़ा था, बाल्यकाल में उन्हें कृपालु एवं प्रभावी रामभक्त गुरु प्राप्त हो गया था, उन्होंने साहित्य, धर्म, दर्शन इत्यादि का अगाध अध्ययन किया था, तथा बहुत सोच-विचार कर रामभक्ति को जीवन, सृजन एवं प्रतिपादन का आधार बनाया था—

सेइ साधु-गुरु, समुझि, सिखि, रामभगति थिरताइ ।

लरिकाई को पैरिबो तुलसी विसरि न जाई ।।

(दोहावली 140)¹

रामभक्ति की प्रेरणा उन्हें किसी अन्य व्यक्ति से नहीं अपितु बाल-संस्कारों से प्राप्त हुई थी, जिसे उन्होंने नानाविध साधना से परिपुष्ट किया था। कवि एवं रामभक्ति-प्रतिपादक के रूप में भी उन्हें अपार संघर्ष करने पड़े थे। संसार के इतिहास में तुलसीदास के जीवन-संघर्ष की मिसाल नहीं मिलती। किन्तु अन्ततोगत्वा वे 'महामुनि' के रूप में वंदित हुए थे। नाभादास जैसे सन्त उनके प्रति "कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भए" की श्रद्धा व्यक्त करते हैं, रहीम जैसे खानेखानान "गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय" की शुभाशा व्यक्त करते हैं, वीर मानसिंह² जैसे राजा उनके चरण-वन्दनार्थ आते हैं, समर्थ रामदास जैसे गुरु उनसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं—वे इतिहास-पुरुष बन जाते हैं! उन्होंने जीवन से सन्तुष्ट होकर धैर्य से शरीर त्यागा था। अपनी साधना पर उन्हें 'रामचरितमानस' की रचना के समय, 1631 वि. (1574 ई.) में, अपने निधन से अर्द्धशताब्दि-पूर्व ही, पूर्ण प्रत्यय हो गया था, जैसाकि महाकाव्य की दिश्व-साहित्य की विशदतम प्रस्तावना से ही स्पष्ट हो जाता है। रॉक्सन की यह कल्पना कि तुलसीदास अपने कृतित्व के भावी माहात्म्य से अपरिचित थे, निराधार है। स्वयं तुलसी का कृतित्व ही इसे निराधार सिद्ध कर देता है। साधना कभी प्रत्यय-विपन्न नहीं हो सकती। जो प्रत्यय-विपन्न हो वह साधना नहीं। जब कीट्स को जीवन में मान्यता न प्राप्त होने पर भी अपने 'कवि' के भविष्य का प्रत्यय था, तब तुलसीदास को जीवन में भरपूर मान्यता प्राप्त होने पर ऐसा प्रत्यय कैसे नहीं रहा होगा?

1984 ई. प्रकाशित 'तुलसी और तुलसी' शीर्षक ग्रन्थ में प्रसिद्ध अनुसन्धानकार डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने तुलसी-नामधारी सात व्यक्तियों का उल्लेख किया है। विश्वविख्यात गोस्वामी तुलसीदास, सतसई—कार तुलसीदास, तुलसीदास निरंजनी, आचार्य तुलसी, तुलसी साहब, ज्योतिषी तुलसी, ब्रजवासी तुलसीदास। इस दृष्टि से 1654 ई. के आसपास रचित 'रसकल्लोल' एवं 'रसभूषण' के शास्त्रीय-कवि तुलसीदास का उल्लेख भी होना चाहिए। महाराष्ट्र में भी एक तुलसीदास हुए हैं, जो छत्रपति शिवाजी एवं महाकवि भूषण के समकालीन थे, जिन्होंने पँवाड़ों में सिंहगढ़-विजय का वर्णन किया है। इन नौ के अतिरिक्त जैनों के आचार्य तुलसी (देहान्त 1997 ई.) का 'अग्नि-परीक्षा' शीर्षक अत्यन्त साधारण स्तर का खंड-काव्य खड़ीबोली-रामकाव्य से सम्बद्ध है। पंजाबी-कवि स्व. इन्द्रजीत सिंह 'तुलसी' ने भी कुछ हिन्दी-गीत रचे थे।

विशद मानवतावाद

तुलसीदास का विशद मानवतावाद सहज एवं अकृत्रिम है। वे दीनों, दरिद्रों एवं पतितों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील थे। धर्मप्रवर्तनवाद या पैगम्बरवाद या गुरुडम में समता का प्रतिपादन वस्तुतः प्रचारवाद का हथकंडा होता है जिसके सहारे धर्मप्रवर्तक या पैगम्बर या गुरु अपनी प्रतिष्ठा करता है।

'मॉडर्न वर्नक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' में सर जॉर्ज ग्रीअर्सन ने तुलसी के पंथप्रवर्तनमोह से मुक्त होने की प्रशंसा की है। तुलसीदास उच्च-निम्न, धनिक-निर्धन, हिन्दू-मुसलमान इत्यादि की विषमता से मुक्त तो थे ही, दीन-दलितों, निर्धन-निष्किंचनों, लघु साधनहीनों के प्रति संवेदनशील भी थे—

1. तुलसी-ग्रन्थावली (सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास)। मानसेतर-ग्रन्थों के उद्धरण इसी से लिए गए हैं।

2. अकबर ने वीर मानसिंह के तीन शब्दों पर वीरभूमि, मानभूमि एवं सिंहभूमि तीन जनपद-नामकरण किए थे। "माई एहा पूत जण जेहा राणा प्रताप" मेवाड़ में प्रचलित है तो "माई एहा पूत जण जेहा दुर्गादास" मारवाड़ में—जयपुर-राज्य में यह दोहा प्रसिद्ध रहा है—

माई! ऐहा पूत जण जेहा मान मरद।

समैदर खाँड़ पछालिया, काबल पाड़ी हद।

तुलसी भगत सुपच भलो भजै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम॥
अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद ऊख अन्न अरु पान॥

(वैराग्य-संदीपनी 40-41)¹

तेहि तें कहहिं सन्त श्रुति टेरें।
परम अकिंचन प्रिय हरि करें॥

(रामचरितमानस 1-160-3)²

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं।
गिरि निज सिरनि सदा तुन धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू।
सन्तत धरनि धरत सिर रेनू॥

(रामचरितमानस 1-166-7-8)

तुलसी ने स्वयं को अलौकिक घोषित कर मानव-मानव के मध्य अन्तर स्थापित करने वाले या विद्वेष का प्रचार-प्रसार करने वाले पन्थ प्रशस्त नहीं किए प्रत्युत सर्वपूजावाद का आत्मदर्शन प्रतिपादित किया है—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बन्दउँ सबके पदकमल सदा जोरि जुग पानि॥
देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गन्धर्व।
बन्दउँ किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व॥
आकर चारि³, लाख चौरासी⁴।
जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीयराममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रामचरितमानस 1-7 ग-घ 1-2)

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(रामचरितमानस 7-112ख)

उन्होंने “पर दुख द्रवै सुसन्त पुनीता”, “पर पीड़ा सम नहिं अधमाई”, “परम धरम जग बिदित अहिंसा” प्रभृति उद्गारों द्वारा सेवा, संवेदन एवं स्नेह का यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रतिपादन किया है। वे स्मार्त वैष्णव थे किन्तु अपनी विशद मानवतादिता में अप्रतिम। रामानुजाचार्य ने अपनी समय की सीमा के कारण नारी एवं शूद्र को भक्ति-मार्ग का अधिकारी नहीं माना था। मनु, शंकराचार्य इत्यादि भी शूद्र-सन्दर्भ में उदार नहीं हैं, जबकि स्वयं ऋग्वेद से द्रष्टा ऋषियों में ऊर्ध्वग्रावा एवं ज्ञानश्रुति⁵ शूद्र हैं, उपनिषद के सत्यकाम जाबाल शूद्र हैं, रामायण के राम-सखा निषादराज गुह शूद्र हैं, महाभारत के कृष्णप्रिय विदुर शूद्र हैं। शबरी, सत्यवती इत्यादि स्त्रियाँ शूद्राएँ हैं। वानर, भल्ल, निशाचर, मय इत्यादि अंत्यज हैं। श्रवण-माता एवं व्यास-माता (उक्त सत्यवती ही) शूद्राएँ हैं। ऐसे शत-शत उदाहरण

1. श्री अवधेशदयालु (लखनऊ) ने इस लघुतर कृति का विशालतर, वस्तुतः विश्वकोशीय, भाष्य प्रस्तुत किया है, जो विलक्षण है। शीर्षक ‘वैराग्य-संदीपनी’ रखा है।
2. रामचरितमानस (मूल), गीता प्रेस, गोरखपुर। मानस के उद्धरण इसी से लिए गए हैं।
3. स्वेटज, अण्डज, उद्भिज्ज, जरायुज।
4. चौरासी लाख योनियाँ।
5. द्रष्टव्य है ‘हिन्दी-ऋग्वेद’ (पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी)।

प्राप्त हैं। ईसाइयत में आदम को ईश्वर-वर्जित ज्ञान-तरु का फल खाने के लिए प्रेरित करने वाली ईव (हव्वा) ने उन्हें स्वर्ग से च्युत कराया था; अतः नारी हेय एवं तुच्छ है। यूरोप के कुछ 'सभ्य' एवं 'विकसित' देशों में नारी को मताधिकार बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही प्राप्त हो पाया है। संयुक्त राज्य एवं सोविएट संघ में एक भी नारी राष्ट्राध्यक्ष या शासनाध्यक्ष नहीं बन सकी। मोहम्मदीयत में तो नारी पुरुष की सम्पत्ति है। उसे पुरुष के साथ नमाज़ तक का अधिकार नहीं है। उसे तलाक़ का पुरुष-वत् अधिकार नहीं है। परित्यक्ता होने पर पति की सम्पत्ति पर उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। एक पुरुष की गवाही के मुकाबले में दो नारियों की गवाही नारी की हीनता एवं अवमानना की स्पष्ट सूचक है। और तो और, जन्मत में भी उसके लिए सुख-सुविधा का कोई प्रावधान नहीं है, जबकि पुरुष के लिए नीचे नहर और ऊपर बाग़, पूर्णवक्ष एवं पूर्णचषकवाहिनी हूँ, 'रेख' से शोभित एवं चषकवाहक गिलमान इत्यादि 'सभी' उपलब्ध हैं! ईसाइयत एवं मोहम्मदीयत में गैर-ईसाई एवं गैर-मुसलमान के लिए तो केवल चिरज्वलित नरक में चिरज्वलनयातना का ही 'प्रावधान' है। तुलसी ने नारी एवं शूद्र को भक्ति का अधिकारी तो माना ही है—अहल्या, शबरी, तारा इत्यादि एवं गुह, केवट, जटायु इत्यादि के प्रसंगों में विराट् एवं उदात्त समता एवं संवेदना का चित्रण भी किया है। सम्प्रति अहल्या पर रामकुमार वर्मा, प्रभा खेतान, रमेश चन्द्र मिश्र इत्यादि की अनेक रचनाएँ विद्यमान हैं, जटायु पर भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' का जो 'जय गीधराज' स्वर गुंजरित है, उसके आदि-प्रेरक तुलसी ही हैं—वचनेश मिश्र की 'शबरी' (ब्रजभाषा) तो उनका प्रसाद है ही! जिस 'वैष्णव' की प्रशस्ति कबीर, मीराँ इत्यादि ने की है, जिस 'वैष्णव' के शुभ लक्षण सिखों के पाँचवें गुरु अर्जुन ने गिनाए हैं, जिसकी विख्यात परिभाषा नरसी ने की है, उस 'वैष्णव' के रूप में तुलसीदास को इंगित किया जा सकता है। नरसी का यह गीत गांधी को ठीक ही बहुत प्रिय था—

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे।

परदुःखे उपकार करे तोए मन अभिमान न आणे रे।।

सकल लोक माँ सहुने बन्दे निन्दा न करे केनी करे।

वाच काछ मन निश्चल राखे धन जननी तेनी रे।।

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी परस्त्री जेने मात रे।

जिह्वा थकी असत्य न बोले परधन झाले न हाथ रे।।

मोह माया व्यापे नहि जेने दृढ़ वैराग्य जेना मन मा रे।

राम नाम सूँ ताली¹ लागी सकल तीरथ तेना तन मा रे।।

वणलोभी ने मपटरहित छे काम क्रोध निर्वार्या रे।

भगै नरसैयो² तेनै दरसन करता कुल एकोतरे तार्या रे।।

गांधी का यह प्रिय भजन तुलसी की वाणी से दूर नहीं है। यही कारण है कि गांधी अपनी पत्नी कस्तूरबा के रामचरितमानस-पाठ से प्रेरित हो तुलसी-प्रशंसक बने थे। 'सत्य के प्रयोग' शीर्षक आत्मकथा में उन्होंने इसे "भक्ति-मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ" माना है, 'साकेत' में वे मानस का रंग देखना चाहते थे। पत्नी के मानस-पाठ से प्रेरित होने वाले दूसरे महापुरुष निराला थे, जिन्होंने 'तुलसीदास' शीर्षक महान् शतछन्दीय कविता रची है—निराला ने 'गीतिका' का समर्पण 'प्रकृति प्रिया' मनोहरादेवी को किया है। स्वर्गता पत्नी के लिए यह समर्पण अतीव मार्मिक है। तुलसी के राम-मारुति-शक्ति सन्देश से समर्थ गुरु रामदास एवं दाक्षिणात्य संगीत-सम्राट् त्यागराज भी प्रभावित हुए हैं। मराठी के मयूर कवि (मोरो पन्त) ने तुलसी-प्रशस्ति की है।

यह राजनैतिक विभ्राट् ही है कि तुलसीदास जैसे उदार मानवतावादी को कुछ पंक्तियों के आधार पर शूद्र-विरोधी बताया जाता है। यहाँ एक विचारणीय तथ्य यह भी है कि कोदोराम द्वारा प्रस्तुत प्रति में पाठ 'ढोल गँवार छुद्र पसु नारी' है। 'ताड़न' के सन्दर्भ में नारी के साथ किसी समय के सरकारी योग-गुरु धीरेन्द्र ब्रह्मचारी कामशास्त्र के अर्थ (ताड़न-विधि) का औचित्य-प्रतिपादन करते थे। ताड़ना का एक अर्थ देखना या निरीक्षण भी है। विशेष ध्यातव्य तथ्य यह है कि कुछ पंक्तियों की शृद्दालोचना की तुलना से बहुत पंक्तियों की ब्राह्मणालोचना के 'आधार' पर तुलसी को ब्राह्मण-विरोधी तो बहुत व्यापक स्तर पर कहा जा सकता है, जैसाकि उनके जीवनकाल में कहा भी गया था—

1. ताल्डी (ल लगभग चुप) = लगन। 'तिलक' (लोकमान्य) एवं 'तमिल' में ल की ध्वनि ऐसी ही है। यह वैदिक ध्वनि हिन्दी में नहीं आ पाई।

2. नरसिंह मेहता नरसी का पूरा नाम था। सिंह के लिए सी का प्रयोग गुजरात से राजस्थान तक प्रचलित रहा है।

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
 काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।।
 तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
 माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ।।

जाति के संकीर्ण आधार पर शिव को ब्राह्मण-वर्ग में डालने वाले अब तक विद्यमान हैं। ब्रह्मा तो ब्राह्मण-वर्ग के देवता हैं ही। विष्णु क्षत्रिय-वर्ग के देवता हैं जिनके राम, कृष्ण, बुद्ध, प्रभृति कई अवतार भी क्षत्रिय हैं। तुलसी ने विष्णु, राम, कृष्ण को स्पष्ट वरीयता प्रदान की है। उन्होंने ब्राह्मण परशुराम (जो अवतार भी हैं) की लक्ष्मण द्वारा खिल्ली भी उड़वाई है, जिसका वाल्मीकि-रामायण में संकेत तक नहीं है। अतः अनेक ब्राह्मण-तत्त्व उन्हें धूर्त, अवधूत¹, कबीर-पन्थी, ब्राह्मण-निन्दक जुलाहा इत्यादि कहा करते थे। उन्होंने 'रामचरितमानस' की प्रति की चोरी का यत्न भी किया था, जिसके परिणामस्वरूप इसे टोडरमल के घर पर रखना पड़ा था। यह टोडरमल काशी-क्षेत्र के एक जमींदार थे, अकबर के प्रसिद्ध कृषि एवं राजस्व मन्त्री नहीं, जैसा कि कई अधिकचरे प्राच्य-पाश्चात्य शोधार्थियों एवं लेखकों ने लिख मारा है। इन्हीं के वंशज श्रावण कृष्णा तृतीया को पूर्वज के गुरु की वर्षी पर 'सीधा' देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप निधन-तिथि निर्धारित की गई है, जो ज्योतिषीय गणित के निकष पर भी खरी उतरी है, क्योंकि उस दिन शनिवार था—

सम्बत सोरहसै-असी, असी-गंग के तीर।

सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यो सरीर।।

“मसीत को सोइबो” के आधार पर, कई साम्यवादी मोहम्मदीयत की उदारता का बखान करते हैं, जो ग़लत है क्योंकि मस्जिद में नमाज़ के मौक़े पर किसी काफ़िर की उपस्थिति भी कुफ़्र, उसका वहाँ ठहरना या सोना तो दूर की बात है! काबा (मक्का) हो या मदीना, काफ़िर का प्रवेश वर्जित है। यहाँ ‘मस्जिद में सोना’ मुहावरे का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है कि मैं फ़कीर हूँ जिसको घर, द्वार या सम्बन्ध-मैत्री से कोई सरोकार नहीं है। ‘लेना एक न देना दो’ मुहावरे का प्रयोग भी इसी के साथ ही प्राप्त होता है। मोहम्मदीयत से लम्बे सम्पर्क के कारण ‘दो जहाँ’, ‘मस्जिद में सोना’, ‘गरीब-निवाज’, ‘साहब’ इत्यादि शब्दों का प्रयोग हिन्दू भी धड़ल्ले से करते थे और करते हैं। इनकी साम्यवादी व्याख्या से धर्मनिरपेक्षता को बल नहीं मिल सकता।

जाति-प्रथा एक कटु सत्य है, जैसा कि बुद्ध से स्पष्ट है, कबीर से स्पष्ट है, तुलसी से स्पष्ट है, गांधी से स्पष्ट है, और सबसे अधिक निर्वाचनों से स्पष्ट है। तुलसी ने यथास्थान अनेक जातियों की आलोचना की है। कहीं ‘गोंड-गँवार’ की, कहीं शूद्र की, कहीं “स्वपच-किरात-कोल² कलवारा” की, तो सबसे अधिक ब्राह्मणों की, क्योंकि वे समाज के नेता रहे हैं, जिनका गौरव-च्युत होना विशेष घातक था। आश्चर्य यह है कि बुद्ध, कबीर, प्रेमचन्द इत्यादि की ब्राह्मण-निन्दा, ईसा की स्वानुयायियों के अतिरिक्त किसी स्वर्गानुशंसा न करने, मोहम्मद की ग़ैर-मुसलमानों के नरक-गामी होने की स्थापना इत्यादि को ‘प्रगतिशील’ मानने वाले तुलसी की सर्वालोचना को ‘प्रतिक्रियावादी’ बताते नहीं थकते! विरोध विरोध है, चाहे वह ब्राह्मण का हो या शूद्र का, ग़ैर-ईसाई का हो या ग़ैर-मुसलमान का। बौद्धधर्म के कौण्डिन्य इत्यादि पंचवर्गीय भिक्षु ब्राह्मण थे, प्रमुख प्रचारक सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन ब्राह्मण थे, महायान के प्रवर्तक नागार्जुन ब्राह्मण थे, वज्रयान-सहजयान के नायक सरहपा ब्राह्मण थे, आधुनिक विद्वान् धर्मानन्द कोसंबी ब्राह्मण थे, बाममार्गी (मांस-मत्स्य-मैथुनवादी) राहुल ब्राह्मण थे—तो क्या बुद्ध ब्राह्मणवादी थे? बौद्धधर्म ब्राह्मणादी है? ब्राह्मणों ने सदैव रूढ़िवाद-संकीर्णतावाद का विरोध किया है। वेदवाद के प्रथम आलोचक उपनिषद् के ऋषि थे, प्रथम विराट् आलोचक व्यास थे जिनके ‘जय’ अथवा महाभारत (विशेषतः उसके भीष्मपर्व के 25 से 42 तक 18 अध्याय, जिनमें 700 श्लोक हैं जिन्हें श्रीमद्भगवद्गीता या गीता का अभिधान प्राप्त है) में कृष्ण तो वेद-विरोधी तक लगने लगते हैं। स्वयं कबीर, रैदास, सेन इत्यादि के गुरु रामानन्द ब्राह्मण थे। गुरुग्रन्थसाहब में जिन 37 व्यक्तियों की वाणी संकलित है उनमें राय भट्ट एवं भट्ट समेत 18 ब्राह्मण हैं—तो क्या गुरुग्रन्थसाहब ब्राह्मणवादी ग्रन्थ है? अतः ब्राह्मणवाद का हीवा खड़ा करना नितान्त पाखंडपूर्ण है। तुलसी की प्रतिक्रियावादमूलक या ब्राह्मणवादमूलक आलोचना न्यस्तस्वार्थ से आच्छन्न है, वस्तुपरक नहीं, चाहे वह सरकारी-इतिहासकार डॉ. ताराचन्द ने की हो या सरकारी-विद्वान् डॉ. नीहारंजन राय ने परमेष्ठी प्रजापति¹,

1. वधूहीन विरक्त—इससे भी तुलसी के अविवाहित होने की सूचना मिलती है।

2. “स्वपच किरात कौल कलवारा” पाठ भी मिलता है। वाममार्गी शाक्तों (साकट) की वैष्णवों (मीरों इत्यादि) ने ही नहीं प्रत्युत कबीर इत्यादि मुसलमानों ने भी निन्दा की है और ‘कौल’ (कश्मीरी पंडित) घोर वाममार्गी शाक्त रहे हैं—‘कुल’ का अर्थ ही शक्ति या देवी है।

नारायण², शुनःशेष³, अथर्व⁴, याज्ञवल्क्य, उद्दालक, वरुण⁵, श्वेताश्वतर, कपिल, कणाद, गौतम⁶, पतंजलि, जैमिनि, बादरायण, नारद, मार्कण्डेय, सूत, शौनक जैसे विश्व के सर्वश्रेष्ठ एवं प्राचीनतम द्रष्टा ऋषि ब्राह्मण हैं। पाणिनि एवं पतंजलि जैसे विश्व के सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण ब्राह्मण हैं। सुश्रुत, कात्यायन, चरक, धन्वन्तरि जैसे विश्व के प्राचीनतम आयुर्विज्ञानवेत्ता ब्राह्मण हैं। अगिरा, अश्विनीकुमार-बन्धुद्वय, ऋभु-बन्धुत्रय, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, सुय्य, चन्द्रशेखर वेंटरमण जैसे अमर वैज्ञानिक ब्राह्मण हैं। भारत से विज्ञानों की रानी अंकगणित को अरब ले जाने वाले आसा ब्राह्मण हैं (जिनका नाम हिन्दसा = हिन्द + आसा में समाहित है)। व्यास, भास, कालिदास, वाण भट्ट, भवभूति, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, जयदेव, कंबन, विद्यापति, तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, भारती, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अधुनातन हिन्दी के निर्माता महद्गुरु महावीरप्रसाद द्विवेदी (जो हीरा डोम की दलित-कविता के 'सरस्वती'-प्रकाशक होने के कारण अधुनातन दलित-साहित्य के प्रतिष्ठापक हैं) इत्यादि साहित्य-सीमान्त ब्राह्मण हैं। विश्व-राजनीति-कूटनीति-दण्डनीति-सीमान्त चाणक्य ब्राह्मण थे! महान्तम विधि-शास्त्री मनु⁷ ब्राह्मण थे। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, समर्थ गुरु रामदास, रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि, राधाकृष्णनन, भक्तिवेदान्त स्वामी इत्यादि महान् दार्शनिक ब्राह्मण हैं। रामानन्द, राममोहन राय, दयानन्द, कर्वे इत्यादि समाज-सुधारक ब्राह्मण हैं। दाहिर, हरपाल, चन्द्रवरदायी, बोधन पंडित, मंगल पांडे, लक्ष्मीबाई, चाफेकर-बन्धुत्रय, चन्द्रशेखर आज़ाद इत्यादि शहीद ब्राह्मण हैं। तिलक, गोखले, मालवीय, सावरकर, हेडगेवार, गोलवलकर, विनोबा भावे इत्यादि नेता ब्राह्मण हैं। कई राष्ट्रपति, कई प्रधानमन्त्री, विभिन्न छापों के कई साम्यवादी इत्यादि, राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ के कई प्रधान भारतीय जनता पार्टी के कई नेता भी ब्राह्मण ही हैं। पुरंदरदास, हरिदास, तानसेन (रामतनु मिश्र या तन्नू या तानसेन जो बाद में मुसलमान हो गए थे), त्यागराज, पलुस्कर, भातखण्डे, ओंकारनाथ ठाकुर, सिद्धेश्वरीदेवी, सुब्बालक्ष्मी, रविशंकर, भीमसेन जोशी, कुमारगन्धर्व, पंडित जसराज जैसे संगीत-सम्राट् ब्राह्मण हैं—यहाँ तक कि महान्तम चलचित्र-पार्श्वगायिका लता मंगेशकर एवं महान्तम चलचित्र-पार्श्वगायक किशोर कुमार भी ब्राह्मण हैं। रविशंकर जैसे अमर वादक ब्राह्मण हैं। महान् नर्तक उदय शंकर, बिरजू महाराज एवं नर्तकी रुक्मिणीदेवी अरुंडेल इत्यादि भी ब्राह्मण हैं। अतः ब्राह्मणवाद-चर्चा पाखंड के अतिरिक्त कुछ नहीं। ब्राह्मण सदैव जीवन की प्रत्येक धारा में नव्यता एवं भव्यता के वाहक रहे हैं। यही कारण है कि राम, कृष्ण, युधिष्ठिर इत्यादि से शिवाजी, गांधी, शास्त्री इत्यादि तक वसिष्ठ, सांदीपन, धौम्य, समर्थ रामदास, गोखले, मालवीय, रामनारायण⁸ इत्यादि के चरणों के स्पर्श से पुलकित होते रहे हैं। अमीर खुसरो ने 'नुह सिपहर' में संसार के सारे दार्शनिकों के ब्राह्मण के चरणों में आकर ज्ञान अर्जित करने की जो प्रशंसा की है, वह सर्वथा वस्तुपरक है। जहाँ तक भारतीय साहित्य का सम्बन्ध है, ब्राह्मण के बिना उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।⁹

तुलसीदास के विशद मानवतावाद धर्मपथ पर नारी, शूद्र, आभीर-यवन-किरात-खास, सबका स्वागत करता है। सबको स्वर्गाशा से पुलकित करता है। उन्होंने निषाद, केवट, कोल, किरात, भील, गृद्ध, शबर, वानर, भल्ल, निशाचर सबको मिलाकर विशद मानवतावाद को मानवीकृत किया है। उनकी साधना जनम पर नहीं, कर्म पर आधृत है। इसीलिए, उन्होंने रामचरितमानस में शंबूक-प्रकरण को स्थान नहीं दिया। रामायण के प्रक्षिप्त उत्तरकांड का यह प्रकरण परवर्ती जातिवादियों ने इसलिए जोड़ा कि उनकी धिनौनी मनोवृत्ति राम से संपृक्त होकर धर्म का अंग बन जाए, क्योंकि वैदिक वर्ण-व्यवस्था में अस्पृश्यता या साधना-वर्जन को कोई स्थान नहीं प्राप्त था। ऐसे प्रक्षेपकारों ने भारतीय संस्कृति की बड़ी क्षति की है। उन्होंने राम के साथ भी अन्याय किया है, वाल्मीकि के साथ अन्याय किया है, राम के उत्तरवैदिककाल (महाकाव्यकाल) के साथ अन्याय किया है, ब्राह्मण-जाति के साथ अन्याय किया है, मानवता के साथ अन्याय किया है। किन्तु यह सब समझ-बूझ कर भी जो लोग राम या तुलसी की आलोचना करते हैं, वे भी तो अन्याय ही करते हैं। यदि राम शूद्र-विरोधी होते तो शूद्र वाल्मीकि उन पर महाकाव्य क्यों रचते? यदि तुलसी शूद्र-विरोधी होते तो शूद्र नाभादास, कोदोराम,

1. ऋग्वेद के अद्वितीय 'नासदीय-सूक्त' के द्रष्टा महर्षि।

2. ऋग्वेद के महान् 'पुरुष-सूक्त' के द्रष्टा महर्षि।

3. ऋग्वेद के महान् रहस्यवादी उषा-काव्यकार महर्षि।

4. अथर्ववेद के प्रमुख प्रस्तोता महर्षि।

5. भृगु के पुत्र ऋषि, वरुण देवता नहीं।

6. न्याय-शास्त्र के दार्शनिक, अहल्या-पति, गौतम ऋषि एवं गौतम बुद्ध से भिन्न।

7. मानव-पिता मनु से भिन्न, 'मनुस्मृति' वाले।

8. काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के एक संस्थापक पं. रामनारायण मिश्र से भिन्न, लालबहादुर शास्त्री के विद्या-गुरु, जिनके दर्शन करने वे प्रधानमन्त्री के रूप में भी काशी की सैंकरी गलियाँ पार करते हुए पैदल ही गए थे।

9. डॉ. भगवन्तप्रसाद पांडेय (सं. साप्ताहिक 'चरित्र विकास', लखनऊ) ने 8 सगों का 'विश्व का गौरव ब्राह्मण' काव्य रचा है।

बैजनाथ, जगजीवनराम उनके प्रशंसक कैसे होते? तुलसी की धार्मिक उदारता से प्रेरित होकर ही नवाब अब्दुरहीम खानेखानों ने उनकी प्रशस्ति की थी—भारत को अमीर खुसरो, अकबर, रहीम, रसखान, ताज वेगम, नजीर अकबरवादी, शोयबुल्ला खान, सागर निज़ामी, मोहम्मदअली करीम चागला, अब्दुल हमीद, हमीद दलवाई, सफ़दर हाशमी, मुख्तार अब्बास नक़वी जैसे सपूतों की परम्परा पर गर्व है। तुलसी की प्रशंसा शत-शत मुसलमान-कवियों ने की है—‘मुसलमान-कवियों का तुलसी-प्रशस्ति-काव्य’ लघुप्रबन्ध का विषय है। महाराज रणजीतसिंह के प्रासाद में यदि ग्रन्थी का पाठ होता था तो रामायणी का भी। सन्त निहालसिंह अपने प्रवचनों, विशेषतः नाम-माहात्म्य के सन्दर्भ, में तुलसी की वाणी का प्रयोग आप्तवाक्य के रूप में किया करते थे। तुलसी सारी हिन्दू-जाति के तो रहे ही हैं; मुसलमानों एवं सिखों इत्यादि के भी रहे हैं; यही नहीं, ग्रीअर्सन, ग्रॉउस, कार्पेन्टर, ग्रीबज़, एटकिंस इत्यादि ईसाइयों के भी हैं, ए. वारान्निकोव, पी. वारान्निकोव, चेलीशेव, स्मेकल जैसे गोरे और रामविलास शर्मा, शिर्मंगलसिंह ‘सुमन’, जैसे भारतीय साम्यवादियों के भी हैं। राजनैतिक क्षुद्रता एवं अज्ञान के कारणों से तुलसी पर जो प्रहार हुए हैं वे खेदजनक हैं। इन्दिरा गांधी का यह कथन एकदम ठीक था कि तुलसी मानव-एकता के विरोधी न थे। यह कैसे हो सकता है कि कबीर की ब्राह्मण-निन्दा प्रगतिशीलता की प्रतीक हो और तुलसी की प्रतिक्रियावादिता की? मेरे मत से, कबीर की एकपक्षीय ब्राह्मण-निन्दा तुलसी की यथास्थान सर्ववर्णसमीक्षा की तुलना में अधिक आलोच्य एवं चिंत्य है, क्योंकि वह शतशः आत्मपरक अथवा पूर्वाग्रहग्रस्त है। ब्राह्मणों द्वारा शूद्रों पर अत्याचार के कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। आज भी हरिजनों पर अत्याचार करने वालों में ब्राह्मण नहीं मिलते—या तो तथाकथित पिछड़ी जातियों के लोग या मुसलमान ही उन पर अत्याचार करते हैं। पाकिस्तान में हरिजनों के साथ पशुवत् व्यवहार किया जाता है, बांग्लादेश में उनकी कोई अस्मिता नहीं है, भारत के मेरठ जनपद के अनेक हरिजनों को मुसलमानों के अत्याचार के कारण सिख बनना पड़ा, क्योंकि सिखों के पराक्रम से वे अपने को रक्षित समझ सके। सिख भी अल्पसंख्यक हैं। अल्पसंख्यकों को भारत में विशिष्ट स्तर प्राप्त है ही।

धार्मिक नारी-संवेदन

प्राचीन भारत में नारी को उच्च गौरव प्राप्त था, जैसाकि विश्व-इतिहास की आदि-वीरांगना विश्वला एवं विश्व इतिहास की अप्रतिम ऋषिकाओं विश्वावारा, घोषा, अपाला, सूर्या, श्रद्धा, इन्द्राणी¹ के ऋग्वेदोल्लेख से ही स्पष्ट है। वसिष्ठ-पत्नी अरुन्धती, अगस्त्य-पत्नी लोपामुद्रा, अत्रि-पत्नी अनसूया इत्यादि की ख्याति अब तक है। याज्ञवल्क्य-पत्नी मैत्रेयी एवं याज्ञवल्क्य—निरुत्तरकर्त्री गार्गी आज भी प्रेरित करती हैं। सीता, द्रौपदी इत्यादि जीवन की ज्वाला से खेलने वाली अनेयांगनाएँ तो अजर-अमर हैं ही। किन्तु बुद्ध एवं महावीर के पत्नी-पलायन एवं सन्तति-पलायन ने अविवाहवाद की उस नैसर्गिक एवं अनैतिक परम्परा का उद्भव एवं विकास किया जिसकी प्रतिक्रिया वज्रयान-सहजयान एवं जैन मन्दिर-कामांकन के रूपों में प्रकट हुई, किन्तु अपने विकृत क्रियाकाल में नारी का भयावह एवं विघातक अवमूल्यन कर गई। ‘अरब’ शब्द का अर्थ गाँव या गाँवार होता है, जहाँ नारी को पुरुष की सम्पत्ति² से अधिक मानना सम्भव ही न था। नारी लूट के माल के रूप में हथियाई जाती थी। “यथा राजा तथा प्रजा” के अनुरूप मध्यकालीन भारत में नारी का भीषण अवमूल्यन हुआ³। तुलसीदास भी युगीन नारी-अवमूल्यन की लपेट से बच नहीं सके, यद्यपि वे नारी-निन्दा की इस दूरी तक नहीं गए जिस तक कबीर, जायसी इत्यादि मुसलमान गए थे—

1.

कांमणिं काली नागणीं तीन्युँ लोक मँझारि ।
राम सनेही ऊबरे, बिषयी खाए झारि ।।...
कबीर भग की प्रीतड़ी केते गए गइंत ।
केते अजहूँ जाइसी नरकि हसंत-हसंत ।।
नारी कुँड नरक्क का बिरला थंमै बाग ।
काई साधू जन ऊबैरे, सब जग मूवा लाग ।।⁴

1. ऋषिका, इन्द्र-पत्नी शची नहीं।

2. ‘ज्ञार-ज्ञमीन-ज्ञान’ का त्रित् मुसलमानों में आज तक मुहावरे के रूप में प्रचलित है।

4. द्रष्टव्य है, डॉ. विजयशंकर मिश्र कृत पी-एच.डी. प्रबन्ध (दिल्ली विश्वविद्यालय) ‘तुलसी-काव्य में इतिहास-बोध’।

4. कबीर-ग्रन्थावली (सम्पादक डॉ. श्यामसुन्दरदास), कामी नर कौ अंग 1, 8, 10-13, 15।

2.

तुम तिरिया मति हीन तुम्हारी। मूरुख सो जो मतै घर नारी।।
 राधव जो सीता सँग लाई। रावन हरी, कवन सिधि पाई।।
 यह संसार सपन कर लेखा। बिछुरि गए जानौं नहिं देखा।।
 राजा भरथरि सुना जो ज्ञानी। जेहि के घर सोरहसै रानी।।
 कुच लीन्हे तरवा सहराई। भा जोगी, कोउ संग न जाई।।¹

कवीर एवं जायसी (कुच लीन्हें तरवा सहराई।...) की नारी-निन्दा अश्लील एवं अशोभनीय है। तुलसी की नारी-निन्दा अश्लील तो नहीं है, किन्तु अशोभनीय तो है ही। कवीर एवं जायसी मुसलमान थे। मुसलमानों में नारी सदा हीन मानी जाती रही है। किन्तु तुलसी तो उस मनु के वंशज थे जिन्होंने अपनी 'स्मृति' में "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" की घोषणा की है, उन कालिदास के उत्तराधिकारी थे जिन्होंने 'रघुवंशम्' में अज के द्वारा इन्दुमती की करुण स्मृति "गृहिणी, सचिवः, सखी मिथः, प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ" शब्दों में कराई है और उन्होंने ऐसा भारत के आदि-नाट्यकार भास (जिनका उन्होंने 'मालविकाग्निमित्रम्' में सौमिल्ल एवं कविपुत्र के साथ सादर प्रथमोल्लेख किया है) के 'स्वप्नवासवदत्तम्' में उदयन के वासवदत्ता की करुण स्मृति में व्यक्त "महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया" से उद्गार से प्रभावित होकर किया है। वाल्मीकि-रामायण के "काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्" का अद्वितीय संवेदन तुलसी को अवश्य ज्ञात रहा होगा। निस्सन्देह, अपनी नारी-निन्दा में तुलसी युग-कवि मात्र रह गए हैं, चिर-कवि के स्थान से च्युत हो गए हैं। उन जैसे महतोमहीयान् चिरकवि का ऐसा च्युत होना दुःखदायी है! युग बड़ी-से-बड़ी प्रतिभा को भी यत्र-तत्र आच्छन्न अवश्य करता है।

मध्यकालीन कविता में नारी-निन्दा भरी पड़ी है जो "जिसकी लाठी उसकी भैंस" के उस काल में "साहित्य समाज का दर्पण है" सत्य को विवृत करती है। नारी के प्रति सम्मान उच्च सभ्यता एवं संस्कृति का पर्यायवाची है। किन्तु विषम परिस्थितियों में भी यदि किसी कवि ने महान् एवं व्यापक नारी-संवेदन को अभिव्यक्ति प्रदान की है तो वह तुलसीदास ही हैं, जिनकी-सी मार्मिक अनुभूति नरपति नाल्ह कृत 'दीसलदेवरासो' एवं मैथिलीशरण कृत 'यशोधरा' में भी नहीं प्राप्त हो पाती—

कत विधि सृजौं नारि जग माहीं।

पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।।

(रामचरितमानस 1/101/5)

उमा मातु मुख निरखि नयन जल मोचहिं।

"नारि जनमु जग जाय" सखी कहिं सोचहिं।।

(पार्वती-मंगल 159)

अंग्रेजों के विरुद्ध स्वातन्त्र्य-संग्राम में जनता में तुलसीदास की उक्त अर्द्धाली का निम्नलिखित रूप अतीव लोकप्रिय एवं प्रेरक बन गया था (स्वातन्त्र्य-संग्राम में भी तुलसी का महान् योगदान रहा है)—

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।

करि विचारि देखहु मन माहीं।।

नरपति नाल्ह का पूर्ववर्ती एवं मैथिलीशरण गुप्त का परवर्ती नारी-संवेदन भी इस वर्ग का है—

1.

अस्त्रीय जनम कत दीधउ महेस।

अवर जनम थारइ घणा रे नरेस।

रानि न सिरजीय रोझड़ी।

घणह न सिरजीय धउलीय गाय।।

बनखण्ड काली कोइली।

हउँ बइसती अम्बा तइ चम्पा की डाल।

1. जायसी-ग्रन्थावली (सं. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल), पदमावत, जोगी-खण्ड, 6, 1-5।

2.

अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में दूध है और आँखों में पानी।

समूची मध्यकालीन कविता में पत्नी के प्रति प्रेम का वैसा भव्य एवं सर्वांगीण चित्र कहीं नहीं प्राप्त होता जैसा तुलसीदास के इस सवैये में—

‘जल को गए लक्खन, हैं लरिका, परिखौ, पिय! छौह घरीक है ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।’
तुलसी रघुबीर प्रिया सम जानिकै बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु, वारि बिलोचन बाढ़े।

(कवितावली 2/12)

विकट अटवी के अनवरत अटन से कोमलांगी सीता, राजकुमारी-राजवधू सीता श्रमित हो गई हैं। वे विश्राम की अप्रतिवाय आवश्यकता से अनुभूत कर रही हैं। किन्तु वे अपने श्रांतिजयी वीर प्रियतम से अपनी श्रांति का उल्लेख करना उपयुक्त नहीं समझतीं, क्योंकि हठ करके वन आई हैं। अतः अनुरोध करती हैं, “हे प्रियतम, लक्ष्मण अभी सुकुमार बालक ही तो हैं—वे जल लाने के लिए कहीं दूर कोई जलाशय खोज रहे होंगे, अतः यदि हम दोनों चलते रहे तो उन्हें बहुत दौड़-धूप करनी पड़ेगी। अतः एक घड़ी रुककर उनकी प्रतीक्षा कर ली जाए। इस बीच मैं अपने आँचल से आपका पसीना पोंछ लूँगी, व्यजन से पवन-शीतलता दे दूँगी और जब लक्ष्मण जल लेकर आ जाएँगे तब गर्म धूल से जले पैर धो दूँगी—तब तक पैर भी कुछ शीतल अर्थात् धोने के अनुकूल हो जाएँगे।” इस निगूढ़ व्यंजना में सहयोग, स्नेह, सेवा एवं संवेदन का जो विश्व-साहित्य में अतुलनीय वैभव प्राप्त होता है वह भावशबलता के लिए भी अकल्पनीय है। यह तो हुआ एक पक्ष। नारी तो समर्पण, सेवा एवं सहानुभूति की मूर्ति होती है। यद्यपि इस उच्चता तक संसार की कोई नारी नहीं पहुँचती दीखती तथापि यहाँ तक एक पक्ष की महानता चित्रित है। दूसरे पक्ष के सहयोग, स्नेह, सेवा एवं संवेदन इससे भी सर्वतः विलक्षण हैं। राम जान गए कि सीता थक गई हैं। वे तुरन्त बैठ गए और बड़ी देर तक उनके पैरों के काँटों को निकालने के बहाने उन्हें पर्याप्त से अधिक विश्राम प्रदान करते रहे। एक तो अपार स्नेह, अपार सहयोग और दूसरे प्रियतम का दिव्य स्पर्श, दिव्य संवेदन—सीता के लोचनों से स्नेहाश्रु प्रवाहित हो चले! यदि तुलसी महान् नारी-संवेदन के महान् कवि न होते तो ऐसा “न भूतो न भविष्यति” का प्रतीक छन्द कैसे लिख सकते? यह एक छन्द अपनी अतुलनीयता के द्वारा राम एवं सीता की अतुलनीयता को उजागर करने में सर्वथा सक्षम सिद्ध होता है। इस महान् नारी-संवेदन के समक्ष सामान्य युगोद्गारों का क्या महत्व है? कतिपय पोंगापन्थी या कालातीत-मर्यादावादी “बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े” का सम्बन्ध स्वयं राम से जोड़ते हैं। किन्तु यह अस्वाभाविक है। जब दो व्यक्ति हैं तब एक अपने पैर के काँटे स्वयं क्यों निकालेगा? सीता ऐसा कैसे होने देती? अपने काँटे स्वयं निकालने से असुविधा होती है। कालातीत-मर्यादावादी यह भूल जाते हैं कि कवितकुलगुरु कालिदास¹ के महाकाव्य ‘कुमारसम्भवम्’ में शिव पार्वती से स्वयं को उनका ‘तपःक्रीत दास’ (...तवास्मि दासः क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौली) कहते हैं—और कालिदास एक निष्ठावान शैव थे! वे यह भूल जाते हैं कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के महाकाव्य ‘साकेत’ में लक्ष्मण ऊर्मिला से स्वयं को उनका ‘दास’ कहते हैं—और मैथिलीशरण उत्कृष्ट रामभक्त एवं उत्कृष्ट रामकाव्यकार थे! प्रेम की दासता जीवन की सर्वोपरि मुक्ति है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस, कवितावली एवं गीतावली में राम-सीता के महान् प्रेम के जो चित्र खींचे हैं, वे अपनी अप्रतिम संवेदनशीलता में उनके नारी-दर्शन के प्रतीक माने जा सकते हैं। वाल्मीकि की रामायण के युद्धकांड में हनुमान् द्वारा सीता के अशोकवन से लाए जाने पर राम बहुत कठोर वचन बोलते हैं, तुलसी ने ऐसा कोई प्रकरण ही नहीं रखा। रामायण का उत्तरकांड प्रक्षिप्त है, यह

1. ‘कालिदास की लालित्य-योजना’ में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने महाकवि के महाकाल-भक्त होने के आधार पर कालदास नाम की जो कल्पना की है तथा उनके ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ उपन्यास के अनुकरण में डॉ. जयशंकर द्विवेदी ने ‘महाकवि कालिदास की आत्मकथा’ उपन्यास में महाकवि को जो कलादास बना डाला है, वह नितान्त अनुत्तरदायित्वपूर्ण है, क्योंकि कालदास एवं कलादास दोनों अप्रचलित, अवमानतापूर्ण एवं प्रमाणहीन नाम हैं। महाकाल एवं काल को एक मानना तथा कलापति को कलादास कहना अनुचित है, भले ही कई छुटभैये इन नामों पर झूम-झूम उठते हों। उज्जैन की विख्यात काली या कालिका पर आधृत कालिदास नाम प्राचीनता-मुष्ट एवं निर्विवाद है। आज भी यह नामकरण प्रचलित है, जबकि कालदास या कलादास नामकरण न अतीत में प्राप्त है, न आज। काली शिव-प्रिया हैं अतः कालिदास का शैव होना नामानुकूल भी है।

तुलसीदास भी जानते थे। उन्होंने सीता-त्याग के प्रकरण की उपेक्षा करते हुए रामचरितमानस को सर्वथा सुखान्त ही रखा है। युद्धकांड में समाप्ति-सूचना से युक्त रामायण भी वस्तुतः सुखान्त महाकाव्य है (किन्तु प्रक्षेपकारों ने उत्तरकांड जोड़कर उसे भानमती के कुनवे की कहानी बना डाला है)। व्यास कृत 'जय' (महाभारत) तो नाम से ही सुखान्त है (किन्तु प्रक्षेपकारों ने उसे अतिस्फीत रूप प्रदान कर डाला है, भले ही इसकी प्रतिक्षप्तता गरिमामयी भी हो, काव्यमयी थी)। भारतीय साहित्य के तीनों सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य रामायण, महाभारत एवं रामचरितमानस मूलतः सुखान्त-महाकाव्य हैं। मैंने 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' ग्रन्थ में इन तीनों के प्रकरणों में इस दिशा में शोध-पूर्ण प्रकाश डाला है। तुलसी से शताब्दियों पूर्व भवभूति ने 'उत्तररामचरितम्' में सीता-त्याग का त्याग नहीं किया। भवभूति से भी शताब्दियों पूर्व कालिदास ने रघुवंशम् में सीता-त्याग का त्याग नहीं किया। किन्तु तुलसीदास ने इस अप्रामाणिक, अप्रात्ययिक एवं अस्वाभाविक प्रकरण को रामचरितमानस में कोई स्थान प्रदान करने के योग्य न मानकर अपने अद्वितीय नारी-संवेदन का अकाट्य प्रमाण दिया है। स्पष्ट है कि तुलसी नारी-विरोधी कदापि नहीं थे। इसके विपरीत, वे पारस्परिक प्रेम एवं संवेदन से ओत-प्रोत नर-नारी-जीवन के गहन प्रतिपादक थे। उनके स्फीत साहित्य में युगप्रभाववश यत्र-तत्र प्राप्त नारी अवहेलना उनके सहज नारी-संवेदन एवं नारी-सम्मान को देखते हुए सर्वथा उपेक्षणीय है। उनके राम का एकनिष्ठ एकविवाहवाद एवं द्विसन्तानवाद¹ आज भी अनुकरणीय आदर्श है।²

उदात्त जीवन-मूल्यों के विश्वकवि

जहाँ तक उदात्त जीवन-मूल्यों का सम्बन्ध है, तुलसीदास संसार-साहित्य के अन्यतम कवि हैं। वाल्मीकि, होमर, वर्जिल और फ़िरदौसी वर्णनप्रधान हैं, व्यास दर्शनप्रधान, दान्ते और मिल्टन संकीर्ण-ईसाइयतप्रधान, कालिदास शृंगाग्रधान, शेक्सपीयर चित्रणप्रधान, किन्तु तुलसीदास का प्रधान लक्ष्य उदात्त जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा है जो उनके अधिकांश सृजन में व्याप्त हैं। "धरमु न दूसर सत्य समाना", "परम धरमु जग बिदित अहिंसा", "परहित सरिस धरमु नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई", "परदुख द्रवै सु संत पुनीता" इत्यादि सूत्र सार्वभौम निदर्शन हैं। किन्तु तुलसीदास ने विकट संकट एवं भयावह संघर्ष के बीच विकसित उदात्त मानवता का यह चित्रण किया है जो संसार-साहित्य में सर्वथा दुर्लभ है। जिस दिन राम का युवराज पद पर अभिषेक होना था, उस दिन वनवासी तपस्वी बनने का आदेश हुआ। विषमता का ऐसा कुयोग विश्व-इतिहास में अन्यत्र दृग्गत नहीं होता। बड़ा से बड़ा व्यक्ति विचलित हो जाता। कोई भी हतप्रभ हुए बिना न रहता। एक विकल्प वह भी था जो राजनीति में प्रायः चलता रहा है। इसमें दशरथ की हत्या, कैकेयी का वन्दीकरण इत्यादि होता। वाल्मीकि की रामायण में लक्ष्मण इसका स्पष्ट संकेत करते हैं। विशाल धनुष और दो तूणीर धारण करनेवाले खड्गधारी³ "लोहिताक्ष महाबाहु रक्तोष्ठं दुंदुभिस्वनम्" अजेय योद्धा ("यत्र रामो भयं नात्र, नास्ति तत्र पराभवः") राम का विरोध कौन करता? और, वह भी तब जब वह अपूर्व लोकप्रिय थे! और, लक्ष्मण जैसा प्रतिभरहित वीर उनके साथ था! कोई सत्ता-व्यवधान था ही नहीं—न लोकगत, न शौर्यगत, न नीतिगत (लक्ष्मण ने ही नहीं प्रत्युत भरत ने भी दशरथ एवं कैकेयी की विगर्हणा की है—रामायण के वनगमन से पूर्व और चित्रकूट के प्रकरण साक्षी हैं, और, 'अधिकार' के लिए कृष्ण ने महाभारत कराया था)। किन्तु राम इसका प्रत्याख्यान करते हैं, लक्ष्मण तक को फटकारते हैं। तुलसीदास ने संसार-साहित्य में मानव-मूल्यों के इस सवेष्ट्र वर्णन में "मन मुसुकाइ" शब्दों का अप्रतिम प्रयोग किया है क्योंकि यदि राम प्रकट रूप से मुस्कराते तो कैकेयी के प्रति परिहास व्यंजित हो सकता था या स्वयं उनकी महतोमहीयानता की अभिव्यक्ति स्वयं उनके द्वारा ही प्रदान की जा सकती थी, "मेरे लिए राज्य या सुख या ऐश्वर्य का क्या महत्व!" ऐसा वर्णन संसार-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है—

मन मुसुकाइ भानुकुलभानू। राम सकल आनंदनिधानू॥

बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग-विभूषन⁴॥

1. "दुइ सुत सुन्दर सीता जाए।" (रामचरितमानस 7/24/6/1)

2. अधुनातन लेखिकाओं (डॉ. यासमीन सुल्ताना नरुवी, विद्योत्तमा, पाण्डेय, मीरा झा, आभा मेहरोत्रा, कोमल मेहरोत्रा, सारिका रानी, सुनीता कौर, आशाकुमारी इत्यादि) की तुलसी-श्रद्धा एवं तुलसी-रुचि विश्वकवि की नारीसमूह में लोकप्रियता सिद्ध करती है।

3. तुलसीदास ने राम-लक्ष्मण से खड्ग छीन लिए—केवल अस्त्र पर्याप्त, शस्त्र अनावश्यक! किन्तु वाल्मीकि ने उन्हें खड्गधारी भी बनाए रखा है। विरोध का वध खड्ग द्वारा किया गया था।

4. गीता का 'वाङ्मयतप' बुद्ध के अष्टांगिकपथ से संपृक्त 'सम्यक् वाक्'।

सुनु जननी, सोइ सुत बड़भागी। जो पितु-मातु बचन अनुरागी॥
 तनय मातु-पितुतोषनिहारा। दुर्लभ, जननि, सकल संसारा॥
 मुनिगन-मिलन बहोरिर बन, सबहि भाँति हित मोर।
 तेहि महँ पितु-आयसु बहुरि सम्मत जननी तोर॥
 भरत प्रानप्रिय पावहि राजू। विधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
 जौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥

(रामचरितमानस 2/40/5-8/41, 1-2)

यह महाभियान था, जो कृष्ण के कंसादेशमूलक व्रज-त्याग, बुद्ध के पलायन¹, महावीर के पलायन, ईसा के अटन, मोहम्मद का अबू बक्र के साथ प्राण बचाने के भय से दो दिनों तक गुफा में छिपे रहने के बाद मदीना-पलायन वगैरह की तरह स्वकीयता में निबद्ध न होकर सामाजिकता से संपृक्त था। जो वनगमन सबकी दृष्टि में अनुचित, अन्यायपूर्ण एवं अभूतपूर्वतः असहनीय था वह राम को, केवल राम को, लाभकारी प्रतीत हुआ और उन्होंने तपस्वी जीवन में ऋषि-मुनि-सत्संग, वंशगौरव-मूलक पितृआदेश-पालन, कैकेयी-इच्छापूर्ति एवं प्राणप्रिय भरत-राज्यलाभ के चार ठोस प्रमाण तत्काल प्रस्तुत कर दिए।² महतोमहीयानता का विलक्षण निदर्शन और सर्वथा सतर्क जो कल्पना नहीं प्रत्युत सत्य सिद्ध हुआ—राम वन न जाते तो मानव-जाति के इतिहास की सबसे महान् घटना न घटती, संसार शत-शत प्रेरणाओं से वंचित रह जाता, दर्शन एवं धर्म दोनों के रूप बहुत भिन्न होते, रामनवमी-विजयादशमी-दीपावली के पर्व न होते, अयोध्या-चित्रकूट-पंचवटी-ऋष्यमूक-रामेश्वरम् इत्यादि तीर्थ न होते, बुद्ध और महावीर को भिन्नसन्दर्भी गृह त्याग-प्रेरणा न प्राप्त हो जाती।

तुलसी के अतुलनीय मर्यादावाद एवं स्फीत नैतिकतावाद पर अत्यधिक प्रकाश पड़ चुका है किन्तु वह पारम्परिक एवं रूढ़ है। मूसा के दशादेश, बुद्ध के धम्मपदम्, ईसा के शिखरोपदेश, मनु के दशलक्षण, राम के ललित एवं वनगमनलाभ-निरूपण के समक्ष रूक्ष एवं रूढ़ ही लग सकते हैं। लगभग ऐसा ही एक अन्य निदर्शन अपरिहार्य प्रतीत होता है—

राजकुमारि! बिनय हम करहीं। तियँ सुभायँ कछु पूँछत डरही॥
 स्वामिनि! अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानबि जानि गवाँरी॥
 राजकुँअर दोउ सहज सलोने। इन्ह तैं लही दुति मरकत सोने॥
 स्यामल गौर किसोर बर, सुन्दर, सुषमा ऐन।
 सरद सर्बरीनाथ मुखु, सरद सरोरुह नैन॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि! कहहु को आहिं तुम्हारे॥
 सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी॥
 तिन्हहि बिलोकि, बिलोकति धरनी। दुहुँ सचोच सकुचति बरबरनी॥
 सकुचि सप्रेम बालमृगनयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥
 सहज सुभाय, सुभग, तन गोरे। नामु लखनु लघु-देवर³ मोरे॥
 बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। प्रिय तन चितइ भौह करि बाँकी॥
 खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि॥

(रामचरितमानस 2/115/6-8, 116, 1-7)

1. खेद है कि इस पत्नी-विरोधी एवं पुत्र-विरोधी पलायन को 'महाभिनिष्क्रमण' कहा जाता है।
2. तेलुगू की गोनबुद्ध कृत रंगनाथ-रामायण में राम के शैशवं में खेलते हुए मंथरा ने गेंद न दिया तो राम ने डंडा मारकर टाँग तोड़ दी—किन्तु तुलसी के राम! अमर तेलुगू-रामायण का स्व. डॉ. भीमसेन 'निर्मल' ने उत्कृष्ट हिन्दी-अनुवाद किया है।
3. राम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न के क्रम में भरत सीता के बड़े देवर हैं, लक्ष्मण छोटे, शत्रुघ्न सबसे छोटे।

लज्जा (जो सामान्यतः मानव-मात्र तथा विशेषतः नारी की महान् शक्ति¹ है), मर्यादा एवं शालीनता का इतना अधिक उत्कृष्ट, इतना अधिक कलात्मक एवं इतना अधिक बिम्बधर्मी वर्णन संसार-साहित्य में दुर्लभ है, क्या आश्चर्य यदि राजबहादुर लमगोड़ा, दिनकर, लल्लनप्रसाद व्यास जैसे आलोचक, कवि एवं संयोजक तुलसी को संसार का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं! इस वर्णन की आत्मा 'तुहूँ संकोच' शब्दद्वय हैं। महिमामयी सीता में सहज लज्जावश ग्रामवधुओं के स्नेह, हास एवं कुतूहल से निष्पन्न 'आपके पति दो में कौन?' प्रश्न का उत्तर देने में संकोच भी विद्यमान है, "यदि मैं कुछ न बोलूंगी तो ये भोली-भाली ग्रामीणाएँ सोचेंगी कि मैं राजकुमारी एवं राजवधू उनको तुच्छ समझती हूँ और इसीलिए उनसे बात नहीं करना चाहती।" साम्यवाद पर एक लम्बा भाषण इतना गहन प्रभाव नहीं डाल सकता। क्या आश्चर्य यदि स्थूलधर्मी, स्थूलमर्मी एवं स्थूलकर्म या विभाजक, विघातक एवं विषाक्त राजनीतिजीवी राम, सीता, लक्ष्मण प्रभृति धीरोदात्त, भरत प्रभृति धीरशान्त, दशरथ प्रभृति धीरललित, रावण, मेघनाद प्रभृति धीरोद्धत महाकाव्य-नायकवर्गीय अजर-अमर चरित्रों से अद्वितीयतः निष्पन्न रामायण को कल्पित घोषित करते हैं—यदि ऐसे व्यक्ति ऐसा न करें तो आश्चर्य ही होगा! राम इत्यादि के विरुद्ध लिखिए, कृष्ण एवं पांडवों के विरुद्ध लिखिए और पाश्चात्य ईसाई मिशनरियों या रूसी कॉम्युनिस्टों या अरबदेशीय एजेंटों या पाक-गुप्तचरों से लाभ उठाइए, दुर्दर्शन (दूरदर्शन) और आभासवानी (आकाशवाणी) के हीरो बन जाइए! टॉयन्वी ने मोहम्मदीयत के सहयोग से ईसाइयत-प्रधान आदर्शभावीविश्व की कल्पना की है, ग्राहम कहता था कि जब तक भारत में हिन्दूधर्म है तब तक ईसाइयत का भविष्य उज्ज्वल नहीं। हिन्दू एक ओर गोरे पूँजीवादियों के आखेट हैं, दूसरी ओर गोरे साम्यवादियों के, तीसरी ओर अरब के पेट्रो-डॉलर के, चौथी ओर पाकिस्तान-बांग्लादेश के षड्यन्त्रों के, पाँचवीं ओर (और सबसे बढ़कर) भारत के हिन्दू-मुस्लिम हिन्दूधर्मियों के। क्यों? बौद्धधर्म के ईश्वरहीन-आत्माहीन रूप के लगातार पतन के कारण मूर्तिविरोधी ईसाइयों के हौसले बुलन्द हो गए हैं, और वे सोचने लगे हैं कि हिन्दूधर्म को भी ढहाने का उपयुक्त समय आ गया है। बहुविवाह एवं परिवार-नियोजन-अवहेलना के सुनियोजित पथ पर चलकर भयावह जनसंख्या-वृद्धि एवं पाकिस्तान-बांग्लादेश के लाखों मुसलमानों की प्रतिवर्ष भारत में सुनियोजित घुसपैठ की प्रगति के पचास वर्ष इस देश की मुस्लिम-बहुल बना देंगे, यह एक व्यापक सत्य है। ज्यों ही मुस्लिम बहुमत बना, ईसाई-सहयोग से यहाँ मलेसिया का आलम हो जाएगा। इस नीति पर पिछले पच्चीस वर्षों से चलते हुए हिन्दूधर्मियों ने जो सफलता प्राप्त की है वह इतनी भयावह है कि 1981 ई. की जनगणना के आँकड़े तक छिपाए गए। 1991 ई. में तो स्थिति की जटिलता अधिक बढ़ गई है। जो ईसाई हैं, मुसलमान हैं, वे इसे प्रसन्न हैं। पत्रकारों, दुर्दर्शनजीवियों, आभासवानी-जीवियों, लेखकों, कवियों इत्यादि की खरीद चल रही है। लोकेषणा-वितेषणा का विकट शोषण हो रहा है। साहित्य अकादेमी (राहित्य टकादेमी), ज्ञानपीठ (ज्ञान की ओर पीठ वाली पूँजीपति-संस्था), राजकमल (गाजसमल) इत्यादि मोटे और 'सरिता' (क्षरिता) इत्यादि छोटे रूपों से लाभ उठाने वाले मसिजीवी जाने या अनजाने रूपों में राम, कृष्ण, पाण्डव, तुलसी, हिन्दू-जाति को उखाड़ने में जुटे पड़े हैं। इस सबसे राहुल, मुक्तिबोध, यशपाल, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, नामवर सिंह इत्यादि साम्यवादियों को भारी लाभ पहुँचा है। व्यक्तिवादियों में अज्ञेय, धर्मवीर भारती, 'सरिता' वाले विश्वनाथ इत्यादि के निदर्शन विद्यमान हैं, यद्यपि अज्ञेय बुढ़ापे में बदल गए थे। किन्तु निराला, पन्त, महादेवी, दिनकर, बच्चन, जैनेन्द्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र, अमृतलाल नागर इत्यादि ने भारतवाद-मंडल करते हुए जो अत्यन्त श्रेष्ठ गौरव प्राप्त किया है, वह सिद्ध करता है कि अभी भारत एकदम बिकाऊ नहीं हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', गौरव प्राप्त किया है, वह सिद्ध करता है कि अभी भारत एकदम बिकाऊ नहीं हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', कृष्ण सोबती, डॉ. रामदरश मिश्र जैसे साम्यवादी भी भारत-तुलसी इत्यादि के बिन्दुओं पर सुसंस्कृत ही रहे हैं। रामानन्द सागर के धारावाहिक 'रामायण' से लेकर त्वरित-लेखक नरेन्द्र कोहली के 'युद्ध' (उपन्यास) तथा युगेश्वर के ढेरों ग्रन्थ तक के प्रयास भी प्रशंस्य रहे हैं। अतः नितान्त निराशा के स्थान पर भारतीयता-रक्षा का दायित्व-निर्वाह ही वरेण्य प्रतीत होता है। उक्त उद्धरण की सीता भारतीयता-रक्षकों की शक्ति हैं—षड्यन्त्रकारी ऐसा उद्धरण कहाँ से लाएँगे? सीता ने अपने गौरव एवं अपनी संवेदनशीलता के अनुरूप 'दोनों संकोचों' का आदर किया। ग्राम-वधुओं को सन्तोष कैसे न मिलता?

1. या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

(मार्कण्डेय-पुराण अथवा तदंश दुर्गासप्तशती)

चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली।

मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ जो बनती कानों की लाली!

(कामायनी, लज्जा सर्ग)

वस्तुपरक काव्य में उदात्त मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा रामकाव्य की गौरवशालिता एवं विशालता में कठिन नहीं है और उसके दर्शन रामायण से साकेत और रघुवंशम् से 'राम की शक्ति पूजा' तक अनेक रूपों में हो सकते हैं। किन्तु तुलसी ने इस दिशा में जो सफलता प्राप्त की है वह उनकी अपनी है। उनके राम, सीता, लक्ष्मण इत्यादि भी नहीं, कौसाल्य¹ इत्यादि भी उनके अपने चरित्र हैं। जब हजारीप्रसाद द्विवेदी शान्ति निकेतन में अध्यापक नियुक्त हुए तब कतिपय प्रान्तवादियों को ईर्ष्या हुई। बंगाल और तमिलनाडु प्रान्तवादी संकीर्णता में अग्रणी हैं ही। हिन्दी-भाषी क्षेत्रों जैसी उदारता उनमें कहाँ? हमारी धर्मनिरपेक्षता इतनी गिरगिटिया है कि बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र में मुसलमान मुख्यमन्त्री बन सकते हैं, जम्मू-कश्मीर में हिन्दू नहीं। तो, बंगाली बाबुओं ने रवीन्द्र के कान भरने शुरू कर दिए, क्योंकि उन्हें तो नियुक्ति ही बर्दाश्त न थी, फिर यह 'पुरबिया' गुरुदेव एवं क्षितिमोहन सेन के निकट आए! गुरुदेव ने उन्हें समझाया कि यह "तुलसी की टकसाल" का गढ़ा सिक्का है। 'वन हंड्रेड पोएम्स ऑफ़ कबीर' के विश्वविख्यात अनुवादक ने सूर पर कविता भी लिखी है। रवीन्द्र ने हिन्दी के कबीर की आत्मा को हिन्दी के ही विद्यापति के शरीर में ढाला है उनकी 'भानुसिंहेर पदावली' हिन्दी में है। रवीन्द्र तत्त्वतः हिन्दी के हैं, वस्तुतः बांग्ला के! वैसे भी, हिन्दी-बांग्ला भूसुकपा से समय से ही सगी बहनें हैं! 'वन हंड्रेड पोएम्स ऑफ़ कबीर' के अनुवादक ने कालान्तर में 'कबीर' के लेखक का असली परिचय कबीर-सन्दर्भ में न देकर तुलसी-सन्दर्भ में दिया क्योंकि कबीर में 'ना' प्रधान है और तुलसी में 'हाँ' तथा जीवन 'ना' से अधिक 'हाँ' की साँसों में जीता है। 'नाथ-सम्प्रदाय' और 'कबीर' के विद्वान् लेखक हजारीप्रसाद द्विवेदी जीवन-सन्ध्या में 'विनयपत्रिका' पढ़कर विश्राम करते थे, क्योंकि हठयोग सिद्धान्त है, रहस्यवाद ईप्सित-कोमना, जबकि तुलसी की भक्ति व्यवहार भी है, सार भी। आत्मपरक कविता में भी तुलसीदास ने, अपनी सहज नम्रता के साथ ही, उदात्त मानव-मूल्यों की भव्य प्रतिष्ठा की है, जिसमें ईसा के सदृश श्रोताओं को 'साँपों' के बच्चों या कबीर के सदृश जग को 'अँधेरा' कहने का अपराधपूर्ण मानवापमानकारी अहं तो दूर, मोहम्मद के सदृश स्वर्ग का लोभ या नरक का भय भी कहीं नहीं दृग्गत होता—

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं।

रामकृपा भवनिसा सिरानी, जागे फिर न दसैहौं॥

पायो नाम चारु चिन्तामनि, उर-कर तैं न खसैहौं।

स्याम-रूप सुचि रुचिर कसौटी चित-कंचनहिं कसैहौं॥

परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस है न हँसैहौं।

मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति पदकमल बसैहौं॥

(विनयपत्रिका 105)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।

श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तैं सन्त सुभाव गहौंगो॥

यथालाभ सन्तोष सदा काहू सौं कछु न चहौंगो।

परिहितनिरत निन्तर मन क्रम² बचन नेम निबाहौंगो॥

परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।

बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन नहि दोष कहौंगो॥

परिहरि देहजनिंत चिन्ता, दुखसुख समबुद्धि सहौंगो॥

तुलसीदास, प्रभु! यहि पथ रहि अबिचल हरिभक्ति लहौंगो॥

(विनयपत्रिका 172)

1. रामायण में कौसल्या है। कोसल में संपृक्त। कोशल का प्रयोग परवर्ती है। दुर्भाग्यवश कई लोग तो कोसल को कोशल से भी अधिक गलत एवं भिन्नार्थी कोशल (चातुर्य) तक बना बैठे हैं। परमानन्द जड़िया ने तो अपने एक महाकाव्य का नाम ही 'कौशलेन्दु भरत' रख मारा है, जिसका कोई अर्थ ही नहीं निकल पाता। वशिष्ठ (ऋग्वेद, रामायण) को वशिष्ठ लिखना भी गलत है। कैलास भी गलत कैलाश लिखा जाता है।
2. क्रम = कर्म। क्रम का अर्थ बल या शक्ति भी होता है। स्कन्दगुप्त ने 'क्रमादित्य' की पदवी धारण की थी। 'वि' उपसर्ग लगाने पर 'विक्रमादित्य' बनता है। प्रसाद का 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' (नाटक) इस दृष्टि से ठीक-सा ही है। क्रम का अर्थ तारतम्य या सिलसिला तो प्रचलित भी है। तुलसी ने क्रम का कर्म के अर्थ में प्रयोग कई बार किया है।

तुलसीदास ने अपने उदात्त मानव-मूल्यों के प्रतिष्ठापन में जो साफल्य प्राप्त किया है वह “न भूतो न भविष्यति” कहला लेता है, क्योंकि जितनी अधिक संख्या में जनता उनसे प्रभावित हुई है उतनी अधिक किसी मध्यकालीन व्यक्ति से नहीं। हिन्दू-जाति पर उनका प्रभाव व्यास एवं शंकराचार्य का स्मरण कराता है। उनके जीवन-काल से अब तक हरिजनों ने उनका आदर किया है। मुसलमान और ईसाई भी उनसे प्रभावित हुए हैं। नाभादास और जगजीवनराम हरिजन थे, रहीम मुसलमान, ग्रीअर्सन, बुल्के, एट्किंस ईसाई, वारान्निकोव साम्यवादी, महाराज रणजीत सिंह और सन्त कृपालसिंह सिख, किन्तु सबने तुलसी का सम्मान किया है। उनके शक्ति, धर्म, सौन्दर्य से अतुलनीयतः “पूर्ण” राम को भारत, नेपाल, मॉरीशस, फिजी, गुयाना, सूरीनाम इत्यादि के कोटि-कोटि साधारणजन ने पूजा है और उन्हें विश्व का सर्वश्रेष्ठ जन-कवि बना दिया है। उन्होंने फिर से रामलीला को लोकप्रिय बनाया, फिर से कृष्णलीला आरम्भ की, हनुमानपूजा के आज के व्यापक रूप का श्रीगणेश किया—उनका ‘संकटमोचन’ तीर्थ बन चुका है। काशी का मानस-मन्दिर नवीन तुलसी-तीर्थ ही है! राजापुर, सोरों, अयोध्या, चित्रकूट जैसे तीर्थ नवीन-प्राचीन के अद्वय बन गए हैं—“जो तुलसी राम के तो राम तुलसी के” की लोकोक्ति ने भी उनका राम से अद्वय स्थापित कर दिया है। क्या आश्चर्य यदि कतिपय स्रोत हिन्दूधर्म को तुलसीधर्म कहते हैं! तुलसीधर्म के करोड़ों अनुयायी विद्यमान हैं।

तुलसीदास का विराटवाद दो महान् रूपों में प्राप्त होता है जिसमें एक समन्वय है और दूसरा युगचित्रण। तुलसीदास की अप्रतिम समन्वय-साधना पर मिश्रबन्धु, शुक्ल, हजारीप्रसाद इत्यादि सामान्य और व्योहार राजेन्द्रसिंह विशेष प्रकाश डाल चुके हैं। इस विश्वकवि ने इतने व्यापक आयामों तक प्रसरित सृजन किया है कि वैष्णव, शैव, शाक्त, सभी सन्तुष्ट हो सकते हैं। विष्णु, शिव, शक्ति, ब्रह्मा, सरस्वती, गणेश, सूर्य, राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, कृष्ण, हिमालय, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, रामेश्वरम् इत्यादि तक प्रसरित विराटतम श्रद्धा-भक्ति प्रत्येक हिन्दू को वरेण्य प्रतीत होती है। वैसे व्यास और शंकराचार्य से लेकर रामप्रसाद और रामकृष्ण परमहंस तक शत-शत समन्वयवादियों ने भारतीय धर्मसाधना का विकास किया है किन्तु तुलसी इस दिशा में अन्यतम हैं। एक ईश्वर की प्रथम उद्भावना ऋग्वेद के “एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति”, “एको विश्वस्य भुवनस्य राजा” एवं “एकं संतं बहुधा कल्पयन्ति” प्रभृति सूत्रों में प्राप्त होती है, जिसका परम विकास उपनिषद् (विशेषतः बृहदारण्यक, छान्दोग्य एवं ईशावास्य) में दृष्टिगोचर होता है। किन्तु भारतीय एकेश्वरवाद तत्त्वतः सूक्ष्म सर्ववाद अथवा अद्वैतवाद है जो मूसाई, ईसाई तथा मोहम्मदी मज़हबों के आदिम ‘एक व्यक्तिगत ईश्वर’ पर आधृत स्थूल एकेश्वरवाद से नितान्त भिन्न है क्योंकि ये तीनों, ‘व्यक्तिगत ईश्वर’ (क्रमशः ‘जेहोवा’, ‘पिता’ और ‘अल्लाह’) क्रमशः अपनी ‘मनोनीत जाति’ (यहूदी), ‘एकमात्रपुत्रानुयायियों’ (ईसाई) तथा खतिमुन्नबीभक्तों (मुसलमानों) पर ही कृपालु हैं, अन्य सब नरकगामी होंगे चाहे वे उत्तमोत्तम कर्म कर चुके हों। सामी मज़हब धर्म नहीं हैं जो धारणीय गुणों को वरीयता प्रदान कर सकें। इन मज़हबों में परवर्ती विकास की गुंजाइश नहीं है। वहावियों एवं अहमदियों की ईरान एवं पाकिस्तान में भयानक दुर्दशा हुई है। किन्तु मुक्त एवं उदार हिन्दू-धर्म में एकब्रह्म के साथ-साथ नाना देवी-देवताओं की ललित एवं कलात्मक पूजा भी विद्यमान है जिसने संगीत, नृत्य, शिल्प इत्यादि कलाओं का महान् विकास किया है। तुलसी ने एक और एक के अनेक रूपों का भव्य आकलन किया है। उनकी कृतियाँ जीवनरस से सराबोर हैं। जीवन का कोई संस्कार या पर्व उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होने पाया और सामाजिक व्यवस्था के मेरुदण्ड विवाह पर तो वे इतना अधिक रीझे हैं कि संसार के विवाह-काव्य में सर्वथा अतुलनीय महाकवि सिद्ध होते हैं। रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली इत्यादि में अद्वितीय विवाह-वर्णन प्राप्त होते हैं। ‘जानकी-मंगल’ एवं ‘पार्वती-मंगल’ विशुद्ध विवाह-काव्य हैं। मंगल का एक अर्थ ही विवाह है। ‘तुलसी का विवाह-दर्शन एवं विवाह-वर्णन’ शोध का विषय है। तुलसीदास महान्तम धार्मिक समन्वयवादी होने के साथ-साथ महान्तम दार्शनिक समन्वयवादी भी हैं। यह स्पष्ट है कि वे अद्वैतवादी थे। इसके प्रारम्भिक दर्शन वैराग्य-संदीपिनी एवं रामचरितमानस में होते हैं, विकसित दर्शन विनयपत्रिका में। दार्शनिक दृष्टि से तुलसीदास ने अद्वैतवाद एवं दास्यभक्ति के समन्वय का महान् कार्य सम्पादित किया है! किन्तु सारे वाद अपरिसीम जीवन के अंग हैं तथा अपरिसीम जीवन के द्रष्टा के सृजन में उन सबको स्थान प्राप्त हो जाता है। सारे दर्शन वेदमूलक अथवा उपनिषदमूलक हैं क्योंकि वेद और उपनिषद् द्रष्टा ऋषियों के सृजन हैं, संकीर्णतावादी या स्वप्रतिष्ठावादी या अहंवादी व्यक्तियों की कृतियाँ नहीं। तुलसीदास में वैदिक एवं औपनिषदिक ऋषियों की विराटतम दार्शनिकता अनायास परिलक्षित हो जाती है क्योंकि यदि डॉ. नगेन्द्रनाथ वसु, महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा, पंडित विजयानन्द त्रिपाठी, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी इत्यादि उन्हें अद्वैतवादी मानते हैं, तो डॉ. श्यामसुन्दरदास, डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थवाल, श्री जयरामदास जी, श्री वियोगीहरि, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि विशिष्टाद्वैतवादी, तो श्री काष्ठजिह्वा स्वामी, आचार्य केशवप्रसाद मिश्र, डॉ. राजपति दीक्षित इत्यादि द्वैतवादी, तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र इत्यादि सिद्धान्ततः अद्वैतवादी तथा

व्यवहारतः द्वैतभावयुक्त। दर्शन की जैसी विराटता तुलसीदास में दृग्गत होती है वैसी संसार के किसी कवि में नहीं, यद्यपि दर्शन की दृष्टि से व्यास उनसे भी श्रेष्ठतर हैं—साहित्य में श्रेष्ठतम हैं—जिनके महाभारत में श्रीमद्भगवद्गीता, व्याधगीता, भीष्मगीता, विदुरगीता इत्यादि नाना गीताओं में विशदतम दर्शन-निरूपण प्राप्त होता है। तुलसीदास की महान् समन्वय-साधना का दूसरा रूप युगचित्रण में प्राप्त होता है जो समग्रजीवनवाद का भव्यतम प्रतीक है क्योंकि समन्वय जीवन का एक महान् पक्ष है जिससे धर्म, दर्शन, कला, साहित्य इत्यादि का विशद विकास होता है। भारतीय संस्कृति जड़-संस्कृति न होकर चेतन-संस्कृति है जो सतत-विकसनशीलता की अतुलनीय प्रतीक बन चुकी है। ऋग्वेद के इन्द्र, अग्नि, विष्णु इत्यादि, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के पशुपति, स्वास्तिक इत्यादि, गन्धर्वों के कन्दर्प, यक्षों के कुबेर, नागों के नाग, अनेक आदिवासियों की कामाख्या, काली, मीनाक्षी, दुर्गा इत्यादि मातृ-शक्तियाँ, सबका समाहा केवल भारत में ही दृग्गत हो पाता है। अन्य देशों में सबल जनसमूह निर्वल जनसमूह के प्रतीकों का विनाश कर अपने प्रतीकों को उन पर बलात् थोपता रहा है। निरीह मिश्र, इराक, ईरान, हिन्देसिया, मलेसिया इत्यादि से निरुपाय यूनान, इटली, मेक्सिको, पेरू, अर्जेंटीना इत्यादि तक इस दुर्वह विनाशवाद के प्रतीक देश हैं। तुलसी का युगचित्रण स्फुट न होकर समन्वित या समग्र है जिसमें धर्म, दर्शन इत्यादि से लेकर महामारी, बेरोज़गारी इत्यादि तन्त्र के चित्र प्राप्त हो जाते हैं। तुलसी का साहित्य अपने समय का सार्वभौम इतिहास भी है। डॉ. राजपति दीक्षित एवं डॉ. विजयशंकर मिश्र ने इस दिशा में प्रशस्य विवेचन किया है। डॉ. युगेश्वर ने आधुनिकता के साथ उनके युग-चिर-संयोजक बिन्दुओं को स्पष्ट किया है। तुलसीदास का युगबोध जितना तलस्पर्शी है, चिरबोध उतना ही गहन। चिरबोध में धर्म एवं दर्शन समाहित हैं, युगबोध में समसामयिकता एवं दिशानिर्देश। उनके तलस्पर्शी प्रभाव के कारण व्यक्तिगत प्रतिष्ठा एवं न्यस्त-स्वार्थ में निहित पंथ भारतवर्ष के हृदय-भागों में नहीं पनप सके। पन्थों ने भारतवर्ष की विराट् एवं सनातन धर्मसाधना को आहत किया है, इस तथ्य को या तो संकीर्णता अस्वीकृत कर सकती है या राजनीतिवादिता। उन्होंने स्वपूजावादियों तथा शासकों पर निर्मम प्रहार कर हिन्दूधर्म को बचा दलया। अपने युगचित्रण में तुलसीदास जितने प्रगतिशील हैं उतना हिन्दी का कोई कवि नहीं और सम्भवतः इसी कारण से महाप्राण निराला, डॉ. रामविलास शर्मा, वारान्निकोव, चेलीशेव, डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' जैसे प्रगतिशील साहित्यकारों ने उनकी स्तुति की है। उनको प्रतिक्रियावादी या रूढ़िवादी सिद्ध करने वाले डॉ. ताराचन्द जैसे सरकारी-इतिहासकारों, डॉ. नीहारंजन राय जैसे सरकारी विद्वानों को किसी ने घास नहीं डाली। जनबोध सर्वश्रेष्ठ आलोचक है।

अनौचित्य एवं अन्याय किस विकट संत्रास की सृष्टि कर सकता है, इस सत्य का महान् बिम्बालेखन मननीय है ('हैमलेट' का प्रसिद्ध 'प्रेत-दृश्य'-'घोस्ट सीन'—याद आता है)।

लागति अवध भयानक भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी।।

घोर जन्तु सम पुर नर नारी। डरपहिँ एकहि एक निहारी।।

घर मसान, परिजन जनु भूता। सुत, हित, मीत मनहुँ जमदूता।। (रामचरितमानस 2/85/5-7)

जब पिता युवराज को वनवासी बना दे, माता सम्भाव्य नरेश को निर्वासित कर दे, तब किसका प्रत्यय किया जा सकता है? एक-एक को देखकर डरने में अविश्वास एवं दुरभिसन्धि के दर्शन हो जाते हैं। किन्तु यह चित्रण जितना चिरबोध का परिणाम है, उससे भी अधिक युग-बोध का। हुमायूँ के भाइयों की नीचता, सलीम (बाद में जहाँगीर) का विद्रोह, खूसरू का विद्रोह, इन सब का दौर था! इससे पूर्व की कथा पशुलज्जितकारी ही है। मुइज्जुद्दीन साम या शहाबुद्दीन गोरी या मोहम्मद गोरी के गुलाम कुत्बुद्दीन ऐबक की सन्तति उसके ज़रखरीद खूबसूरत गुलाम इल्तुमिश (अल्तमश) द्वारा समाप्त की गई और इसके बेटे-बेटियों में सब इसी घाट के यात्री बने। अल्लाह के नाम पर अपनी खरीद की इल्तजा करने वाले बदसूरत गुलाम बलबन ने खरीदार इल्तुमिश के बेटे और अपने दामाद नसीरुद्दीन को ख़त्म किया, क्योंकि वह मर न रहा था और यह बूढ़ा हो रहा था—कहाँ तक सब्र करता! अलाउद्दीन खिल्जी ने चाचा और ससुर जलालुद्दीन को तलवार के घाट उतरवाया तो, बकौल इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी, उसे हिजड़े-गुलाम मलिक काफ़ूर ने। कुत्बुद्दीन मुबारकशाह को अपने भाइयों की फाँकदार आँखें देखने का बड़ा शौक था—वाजिदअली शाह का यह लकड़वादा गुलाम मानिक खूसरू द्वारा मारा गया जो नसीरुद्दीन खूसरू शाह के रूप में कुछ दिन सुल्तान रहा। इसे ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने मारा, तो वह स्वयं अपने बेटे मोहम्मद तुग़लक़ और सूफ़ी फ़क़ीर निज़ामुद्दीन औलिया के षड्यन्त्र का आखेट बना। इब्राहीम लोदी का पतन उसके चाचा दौलत ख़ाँ लोदी से भी सम्बद्ध है। तुलसी के बाद भी यह मोहम्मदी परम्परा ज्यों-की-त्यों रही। पितृद्रोही शाहजहाँ! पुत्र औरंगज़ेब की क़ैद

1. उसने शाहज़ादा ख़ुर्रम के रूप में जहाँगीर के विरुद्ध बगावत की थी। 'तुलुके-जहाँगीरी' (जहाँगीरनामा) में इसे 'बेदौलत' कहा गया है।

में बड़ी जिल्लत और बेमुरौवती के आलम में मरा। औरंगजेब के बड़े बेटे अकबर ने विद्रोह किया। इसका जीवन सदैव सन्देह एवं घुटन से भरा रहा। और, मुगल वंश का पतन तो हत्याओं, षड्यन्त्रों, दयनीयताओं और पराजयों से ऊभचूष त्रासदी है ही! स्वयं मोहम्मद सत्तर युद्ध लड़ रहे थे। पहले खलीफ़ा अबू बक्र दो वर्ष ही जिए, दूसरे खलीफ़ा उमर ईरानी-गुलाम फ़ीरोज़ के खंज़र के शिकार हुए, तीसरे खलीफ़ा उस्मान को अली ने मरवा डाला, तो चौथे खलीफ़ा अली और उनके हसन और हुसैन नामक बेटे प्रतिक्रिया में मारे गए। मोहम्मदी इतिहास में तलवार ही निर्णायिका रही है। भारत में मोहम्मदी इतिहास मन्दिरध्वंस, मूर्तिखंडन, अग्निकांड, बलात्कार, बलात्-धर्मपरिवर्तन एवं विषमता से भरा रहा है, जिसमें महामारी हो या अकाल, सूखा या बाढ़, शासक कभी 'कृपालु' नहीं हुए या सत्ताव्यस्ततावश होने नहीं पाए। महान् विपत्ति (महामारी) का एक महान् यथार्थवादी चित्र देखिए—

संकर सहर सर नर नारि बारिचर, बिकल सकल महामारी माँजा भई है।

उछरत, उतरात, हहरात, मरि जात, भभरि भजत, जल-थल मीचमयी है।।

देव न दयालु, महिपालु न कृपालुचित, वारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।

(कवितावली 7/176/1-3)

इधर भयानक महामारी (प्लेग या ताऊन) में कोटि-कोटि जनता, विशेषतः हिन्दू¹, थोक के भाव मर रहे थे, उधर जहाँगीर प्रौढ़ मेहरुन्निसा को उसके पति शेर अफ़ग़ान की हत्या कराने के बाद नूरजहाँ बना रहा था, इस ईरानी प्रव्रजक को सिक्कों पर अंकित करा रहा था, दनादन कश्मीर² की विलासयात्राएँ कर रहा था, गा रहा था—

हो एक सेर शराब मुझको आध सेर क़वाब हो,

है सल्तनत नूरेजहाँ की खूब हो या ख़राब हो।

आश्चर्य तो यह है कि ऐसे निकम्मे बादशाह को वड़ा न्यायी और उदार बताया जाता है! जहाँगीर के न्याय की घण्टी कल्हण-कृत 'रजतरंगिणी' के निकम्मे राजा जयसिंह की नक़ल में लटकाई गई पाखण्ड-लीला मात्र थी, जिसे कभी किसी ने नहीं खींचा।

जहाँगीर जैसे ऐयाश और शराबी की बादशाहत में भुखमरी और बेरोज़गारी का बोलबाला होना ही था—

किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी, भाँट,

चाकर, चपल नट, चोर-चोर, चेटकी।

पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,

अटत गहन बन अहन अखेट की।।

ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,

पेट ही को पचत, बेंचत बेटा बेटकी।...

(कवितावली 7/96/1-3)

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,

बनिक को बनज न चाकर को चाकरी।

जीविकाबिहीन लोग सीधमान सोचबस,

कहैं एक एकन सों, "कहाँ जाई? का करी?"...

(कवितावली 7/97/1-2)

राम संसार-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति एवं अतुलनीय नायक हैं तथा यह तथ्य उन पर रचित अपार साहित्य से ही स्पष्ट है—कोरियाई रामायण, चीनी रामायण, जापानी रामायण (एक 'होबुत्सुशू' भी), कम्बोडिआई रामायण, थाई रामायण, हिन्देसिआई रामायण, मलेसिआई रामायण, बर्मी रामायण, सिंहली रामायण इत्यादि के अतिरिक्त राम-कथा का प्रसार मिस्र, मेक्सिको इत्यादि तक है और भारत में भी नाना पुराणों के अतिरिक्त, वाल्मीकि, व्यास, (रामोपाख्यान-पर्व), भास, कालिदास, भवभूति, जयदेव (प्रसन्नराघव), जयदेव मिश्र (अनर्घ-राघव), दामोदर मिश्र (हनुमन्नाटक) इत्यादि से लेकर स्वयंभू (पुरानी हिन्दी या अपभ्रंश), कम्बन् या कम्बर (तमिल), गोणबुद्ध

1. मुतामिद खान कृत 'इक्रबालनामाए-जहाँगीरी' से स्पष्ट।

2. कश्मीरियों को 'पशुतुल्य' भी मानता था, जैसा कि 'तुलुकेजहाँगीरी' (जहाँगीरनामा) से जाहिर है।

(तेलुगू), कुमार-वाल्मीकि (कन्नड़), एडुत्तच्छन् (मलयालम्), एकनाथ (मराठी—इस महान् भाषा में लगभग बीस रामायणें प्राप्त हैं जो किसी एक भाषा की दृष्टि से विलक्षण हैं), गिरिधर (गुजराती), केशवदास (हिन्दी), गुरु गोविन्दसिंह (रामावतार—हिन्दी), रामलुभाया 'दिलशाद' (पंजाबी), कृत्तिवास (बांग्ला), बलरामदास (उड़िया), माधव कन्दलि (असमिया—इसका बालकांड महाकवि माधवदेव एवं उत्तरकांड उनके गुरु महापुरुष शंकरदेव ने कालान्तर में लिखा) तक ने महाकाव्यों, नाटकों, काव्यों इत्यादि के द्वारा इसे मानव-जाति के समग्र साहित्य में सर्वोपरि गौरव प्रदान किया है, किन्तु कथा, कल्पना, कला, दर्शन और धर्म का जैसा युगबोध-चिरबोध-निष्पन्न सृजन तुलसी ने किया है वैसा कहीं नहीं किया जा सका, किसी के द्वारा नहीं किया जा सका। युग एवं चिर का समन्वय सर्वोपरि समन्वय है और वह जैसा तुलसी ने किया है वैसा किसी ने नहीं।

उदात्त तत्त्व¹

जिस तत्त्व के कारण हम किसी असाधारण वर्णन से विस्मित एवं अभिभूत होते हैं वह उदात्त कहलाता है। अद्भुतरस और उदात्त का घनिष्ठ सम्बन्ध है किन्तु उसमें विस्मय ही एकमात्र अथवा प्रधान तत्त्व है जबकि उदात्त में प्रायः वर्णन के अनुकूल एक अनिर्वचनीय लोकोत्तरता विस्मय से संपृक्त रहती है। उदात्त एक उच्चकोटि का अलंकार भी है जो लोकोत्तर गौरव के वर्णनों में माना जाता है तथा उदात्त तत्त्व से मिलता-जुलता है, यद्यपि उदात्त तत्त्व लोकोत्तरता में बद्ध नहीं है। उदात्त अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत है—

दसमुख सभा दीख कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥
कर जोरें सुर, दिसिप बिनीता। भ्रुकुटि बिलोकत सकल सभीता ॥

(रामचरितमानस 5/19/6-7)

महाकवि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' में अंगद के रावण-दरबार में पहुँचने पर नागराज प्रतिहार के कथन में जो दृश्यांकन है, उसमें उदात्त अलंकार श्रेष्ठतर है—

पढौ बिरंचि! मौन बेद! जीव! सोर छंडि रे।
कुबेर! बेर कै कही, न यक्ष भीर भण्डि रे ॥
दिनेस! जाय दूरि बैठु नारदादि संग ही।
न बोलु चन्द! मन्दबुद्धि, इन्द्र की सभा नहीं ॥

यद्यपि अद्भुतरस एवं उदात्त अलंकार उदात्त तत्त्व से मिलते-जुलते हैं तथापि उदात्त विस्मित एवं अभिभूत (दोनों) करने के कारण भिन्न अवश्य है। उदात्त अलंकार के रामचरितमानस एवं रामचन्द्रिका के उदाहरणों में हनुमान् एवं अंगद अभिभूत नहीं होते—वे विस्मित तक नहीं होते। अपने अधुनातन रूप में 'उदात्त' पश्चिम के 'सब्लाइम' का अनुवाद है। आधुनिक कवियों में महाकवि रत्नाकर कृत महाकाव्य 'गंगावतरण' एवं महाकवि निराला कृत महाकविता 'राम की शक्ति-पूजा' में उदात्त तत्त्व के महान् दर्शन होते हैं। महाकवि पन्त कृत महाकविता 'परिवर्तन' में भी उदात्त का स्तर उच्चकोटि का है। उदात्त में बिम्बधर्मिता या अलंकरण का स्तर सर्वोच्चकोटि का हो जाता है—

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले पवन उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढि लाग अकास ॥
देह बिसाल, परम हरुआई। मन्दिर तें मन्दिर चढि जाई ॥
जरइ नगर भा लोग बेहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला ॥

(रामचरितमानस 5/25/1-2)

हरित गम्भीर वानीर दुहुँ तीर वर, मध्य धारा विशद विश्व-अभिरामिनी।
नील-पर्यंक कृत शयन सर्पेश जनु सहससीसावली स्रोत सुरस्वामिनी ॥

(विनयपत्रिका 18/7-8)

1. द्रष्टव्य है मेरे ग्रन्थ 'विश्वकवि होमर और उनके काव्य' का 'होमर की कविता में उदात्त तत्त्व' निबन्ध।

सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमँगे सृंगनि ।
 मनहुँ आदि-अम्भोज बिराजत सेवित सूर मुनि भृंगनि ।।
 सिखर परसि घन घटहि मिलत बगपौँति सो छबि कबि बरनी ।
 आदि-बराह बिहरि बारिधि मानो उठ्यो है दसन धरि धरनी ।।
 जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन-प्रतिबिम्ब तरंग ।
 मानहुँ जग-रचना बिचित्र झलकति बिराट अंग-अंग ।।

(गीतावली 2/50/5-10)

रामचरितमानस में हनुमान् का लंकादहन भयानकरस-निष्पन्न है, विनयपत्रिका का गंगावर्णन प्रकृतिचित्रणगत है, गीतावली का चित्रकूटवर्णन भी प्रकृतिचित्रणगत है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि उदात्त तत्त्व की अद्भुतरस एवं उदात्त-अलंकार से भिन्न अपनी निजी सत्ता है। तुलसी उदात्त तत्त्व की दृष्टि से भी बहुत सफल महाकवि हैं, यद्यपि होमर, दांते, मिल्टन, रत्नाकर, निराला प्रभृति के सदृश प्रतीक-स्रष्टा नहीं, क्योंकि वे इसमें बहुत नहीं रमे। 'तुलसी-काव्य में उदात्त तत्त्व', 'गंगावतरण में उदात्ततत्त्व', 'निराला-काव्य में उदात्त तत्त्व' लघुप्रबन्धों के विषय हैं।

बिम्ब

जब कुशल स्रष्टा का सफल वर्णन वर्ण्य को स्थूल या सूक्ष्म विग्रह का रूप दे देता है तब बिम्ब निष्पन्न होता है। बिम्ब अधुनातन अर्थ में पाश्चात्य 'इमेज' का अनुवाद है। भारतीय काव्यशास्त्र में चित्रकाव्य बिम्ब का स्मरण करा सकता है किन्तु चित्रकाव्य भावप्रधान न होकर शिल्प-प्रधान है अतः उसे उच्चस्तर नहीं प्रदान किया गया। चित्रकाव्य चित्रकला या आज की यंत्रचित्र-कला (फोटोग्रेफी) के निकट है जबकि बिम्ब स्थूलता पर नहीं अपितु सूक्ष्मता पर रीझता है। बिम्ब में स्थूल भी सूक्ष्मसंपृक्त रहता है। अतः बिम्ब के दो भेद किए जा सकते हैं: वस्तु-बिम्ब एवं भाव-बिम्ब। सम्प्रति बिम्बधर्मिता काव्य में अतीव उच्चस्थान प्राप्त कर रही है। विराट् से लघु एवं लघु से विराट् बिम्बों की क्रिया-प्रतिक्रिया-संगति बैठाई जा रही है, जो प्रायः विसंगत तक हो जाती है। निस्सन्देह, बिम्ब में भाव एवं शिल्प का अर्द्धनारीश्वर-रूप दृग्गत हो जाता है।

हिन्दी-कविता में तुलसीदास बिम्ब-सम्राट् हैं। उनका काव्य अनेक वस्तु-बिम्बों एवं भाव-बिम्बों से निष्पन्न है। वस्तु-बिम्ब का नानारूपात्मक वैभव द्रष्टव्य है—

कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवन अधिकाई ।।
 घुरघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ ।।
 तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना ।।

(रामचरितमानस 1/155/7-8, 156/2)

वस्तु-बिम्ब की एक छवि ध्वनि-बिम्ब में विवृत होती है और तुलसीदास ध्वनि-बिम्ब के अनूठे शिल्पी हैं—

चातक, कोकिल, कीर, चकोरा। कूजत बिहग, नटत कल मोरा ।।
 बिमल सलिलु सरसिज बहु रंगा। जल-खग कूजत, गुंजत भृंगा ।। (रामचरितमानस 1/226/6-8)
 कंकन-किकिनि-नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदयँ गुनि ।।
 मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्हीं ।। (रामचरितमानस 1/229/1-2)
 घन घमंड नभ गरजत घोरा ।
 प्रियाहीन डरपत मन मोरा ।।

(रामचरितमानस 4/13/1)

जहाँ तक प्रस्तुत विराटायामी भाव-बिम्ब का सम्बन्ध है, यह विश्व-काव्य का एक विलक्षण उदाहरण है—

दीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
 पँवरि पगार प्रति, वानर बिलोकिए ।

अध-ऊर्ध्व बानर, बिदिसि-दिस बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकि॥
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो...

(कवितावली 5/17/1-5)

इस उच्चतमस्तरीय भाव-बिम्ब के ठीक विपरीत प्रस्तुत उच्चतमस्तरीय विरह-बिम्ब सर्वथा उल्लेख्य है जिसकी गागर में सागर समा गया है—

भूषन-बसन बिलोकत सिय के।

प्रेम-बिबस मन, कम्प-पुलक तन, नीरज-नयन नीर भरे पिय के॥

सकुचत कहत, समुझि उर उमगत सील, सनेह, सुगुनगन तिय के॥ (गीतावली 4/1/1-3)

रामचरितमानस, कवितावली और गीतावली में रामवनग्रमन प्रकरण में अनेकानेक उच्चस्तरीय बिम्बों का आलेखन प्राप्त होता है। गीतावली में राम की शिशु, बाल, युवा, वनवासी, राजा प्रभृति छवियों के आकलन में बिम्बों की छटा प्रायः आदि से प्रायः अन्त तक छाई मिलती है। शब्द-बिम्ब का अपना महत्व है। रूठना, ऐँठना, मुरझाना इत्यादि शब्द नहीं है, शब्द-बिम्ब है। तुलसीदास चपरि, सुटुकि, कूजत, नटत, गुंजत, लपेटे, गरजत, डरपत इत्यादि शब्दों-बिम्बों का अतुलनीय प्रयोग करते हैं। शब्द-बिम्ब के वैभव में तुलसी के बाद पन्त अग्रणी हैं। 'तुलसी के रूप-बिम्ब', 'तुलसी के शब्द-बिम्ब', 'तुलसी के भाव-बिम्ब', 'तुलसी के ध्वनि-बिम्ब', इत्यादि मिलकर 'तुलसी का बिम्बाल्लेखन' शीर्षक स्फीत शोध-प्रबन्ध बन सकते हैं। 'पन्त का बिम्बाल्लेखन' लघु-प्रबन्ध का सुन्दर विषय है।

प्रकृतिचित्रण

तुलसी का प्रकृतिचित्रण उन्हें हिन्दी के सारे कवियों में उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करता है। उन्होंने आलम्बनात्मक, उद्दीपनात्मक, उपदेशात्मक, अलंकृत, रहस्यात्मक, सभी प्रकार के प्रकृतिचित्रण किए हैं, जबकि कबीर का प्रकृति-चित्रण या तो उपदेशात्मक है या रहस्यात्मक, जायसी का या तो उद्दीपनात्मक या रहस्यात्मक, सूर का उद्दीपनात्मक, केशव का अलंकृत, देव इत्यादि का या तो उद्दीपनात्मक या अलंकृत, पन्त का या तो आलम्बनात्मक या रहस्यात्मक। यह सत्य है कि तुलसी हिन्दी में प्रकृति के सर्वोत्तम कवि पन्त तथा अन्य प्रकृति-प्रधान कवियों जगमोहन सिंह, श्रीधर पाठक, लोचनप्रसाद पांडेय इत्यादि के सदृश प्रकृति के प्रति प्रायः एकनिष्ठ नहीं हैं, क्योंकि विराट् जीवन के विराट्वादी विश्वकवि हैं किन्तु उनका प्रकृतिकाव्य गुण एवं परिमाण में प्रथम श्रेणी का है, इतना कि पन्त और निराला को छोड़कर अन्य कोई कवि उनसे आगे नहीं जा सकता और उनकी-सी सर्वांगीणता तो दुर्लभ ही है।

वस्तुपरक काव्य में सारे प्रकृतिचित्रण को आँख मूँदकर उद्दीपनात्मक कह मारना घोंघावाद है। जहाँ कवि का मनोल्लास या भावालोक प्रकृति का अंकन और आकलन स्वतन्त्र और स्वच्छन्द होकर करता हो वहाँ वस्तुपरक काव्य में भी आलम्बनात्मक प्रकृतिचित्रण माना जा सकता है। जहाँ तक गीतिकाव्य का सम्बन्ध है, उसकी वर्णनात्मकता तो प्रासंगिक ही हो सकती है। आलम्बनात्मक प्रकृतिचित्रण की अत्यधिक प्रशस्ति तलस्पर्शी विवेचन की सूचक नहीं मानी जा सकती क्योंकि जीवनरहित प्रकृति भयावह हो जाती है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जो वर्णन प्रकृति को वरीयता तथा अन्य तत्त्वों को गौणता प्रदान करते हैं उनमें प्रकृति विशेष रूप से खिलती है। 'गीतावली' में तुलसी ने बहुत ही सुन्दर आलम्बनात्मक प्रकृतिचित्रण किए हैं, जिनमें उदात्त एवं बिम्ब का उच्चकोटि का वैभव विद्यमान है—

फटिक सिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरु तमाल,
ललित लता जाल, हरति छबि बितान की।
मन्दाकिनि तटिनि तीर, मंजुल मृग बिहग भीर,
धीर मुनिगिरा गभीर सामगान की॥
मधुकर, पिक, बरहि मुखर, सुन्दर गिरि-निर्झर झर,
जल-कन घन छाँह, छन प्रभा न भान की।

सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, सन्तत वह त्रिबिध बाउ,
जनु बिहार-बाटिका नृप पंचवान की॥

(गीतावली 2/44/1-2)

नचहिं मोर, पिक गावहिं, सुर बर राग बैधान।
निलज तरुन-तरुनी जनु खेलहिं समय समान॥
भरि-भरि सुंड करिनि-करि जहँ-तहँ डारहिं बारि।
भरत परस्पर पिचकनि मनहुँ मुदित नर-नारि॥
पीठि चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहिं-डार।
जनु मुँह लाइ गेरु मसि भए खरनि असवार॥
लिए पराग सुमर-रस डोलत मलय समीर।
मनहुँ अरगजा छिरकत, भरत गुलाल-अबीर॥

(गीतावली 2/47/13-16)

उद्दीपनात्मक प्रकृतिचित्रण की प्रत्यालोचना सहज एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जीवन-विरोधी होने के कारण प्रशस्य नहीं मानी जा सकती। मानव-दृष्टि प्रकृति को जीवन-निरपेक्ष होकर नहीं देख सकती। ऐसा देखना आवश्यक भी नहीं है। हिन्दी-साहित्य के अधिकांश प्रकृतिचित्रण उद्दीपनात्मक हैं जिनमें प्रकृतिसौन्दर्य जीवनसौन्दर्य से संपृक्त होने के कारण सर्वविध मनोहारी लगता है। तुलसी के नानारसगत उद्दीपनात्मक प्रकृतिचित्रण अद्वितीय हैं—

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सोहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥
निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥

(रामचरितमानस 1/124 ख। 1-3)

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसन्त रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन-बरन बर बेलि बिताना॥
नव-पल्लव फल सुमन सोहाए। निज सम्पत्ति सुर-रूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥
मध्य बाग सर सोह सुहावा। मनि सोपान विचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जल-खग कूजत गूँजत भृंगा॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरता पूजन जननि पठाई॥

(रामचरितमानस 1/226/3-8, 227/2)

उपदेशात्मक प्रकृतिचित्रण काव्य की एक नैसर्गिक प्रवृत्ति रही है क्योंकि प्रकृति महान् प्रेरणा एवं सन्देश अनायास ही दे देती है। संस्कृत-साहित्य में उपदेशात्मक प्रकृतिचित्रण उच्चकोटि का है। तुलसी, वर्दस्वर्थ इत्यादि ने श्रेष्ठ उपदेशात्मक प्रकृतिचित्रणों से साहित्य शृंगार किया है। 'रामचरितमानस' के अरण्यकाण्ड में भी ऐसा उत्कृष्ट वर्णन प्राप्त होता है। यत्र-तत्र बालकाण्ड इत्यादि में भी उसकी झलकियाँ मिल जाती हैं। किन्तु किष्किन्धाकाण्ड का उपदेशात्मक प्रकृतिचित्रण अतीव विख्यात है—

दामिनि दमकि रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा सिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि नियराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसैं। खल के बचन सन्त सह जैसैं॥
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरैहुँ धन खल बौराई¹॥

अलंकृत प्रकृतिचित्रण कवि की प्रतिभा में चमत्कार-तत्त्व के द्योतक होते हैं। संस्कृत-साहित्य में ऐसे प्रकृतिचित्रण अनेक कवियों ने किए हैं—विशेषतः महाकवि माघ ने। हिन्दी में महाकवि केशवदास ने उच्चकोटि के अलंकृत प्रकृतिचित्रण किए हैं, जिन पर संस्कृत के कवियों का प्रभाव भी पड़ा है। खेद है कि कुछ अहंवादी आलोचकों और परप्रत्ययनेयबुद्धि लग्गुओं-भग्गुओं ने अलंकृत प्रकृतिचित्रण की विशिष्ट शैली को पाश्चात्य आलम्बनात्मक प्रकृतिचित्रण से दासता-संस्कारवश अभिभूत होने के कारण अथवा निजी रुचि की एकांगिता से वशीभूत होकर अन्याय का आखेट बना डाला है। स्वयं ऋग्वेद में अलंकृत प्रकृतिचित्रण विद्यमान है¹—

रयिर्न चित्रा सूरौ न संदृग् आयुर्न प्राणौ नित्यो न सूनः।

तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥ (1/66/1)

“अग्नि धन की भाँति विलक्षण, सूर्य की भाँति सर्वपदार्थदर्शक, प्राणवायु की भाँति जीवन-रक्षक एवं पुत्र की भाँति हितकारी हैं। अग्नि अश्व की भाँति लोक को वहन करते और दुग्धदात्री गौ की भाँति उपकारी हैं। दीप्त एवं आलोकयुक्त अग्नि वन दग्ध करते हैं।” मालोपना का सुन्दर उदाहरण यह मन्त्र अलंकृत प्रकृतिचित्रण का एक प्रतीक मात्र है। ऋग्वेद में शत-शत अलंकृत प्रकृतिचित्रण अनायास प्राप्त होते रहते हैं।

भारवि, माघ, श्रीहर्ष इत्यादि महाकवियों ने सुन्दर अलंकृत प्रकृतिचित्रण किए हैं। ऐसे वर्णन एक विशिष्ट शैली के परिचायक हैं। आलोचना में आलोचक की अस्मिता का महत्व है अवश्य, किन्तु आलोच्य के सत्य का उद्घाटन सर्वोपरि है। अतः ऐसे आलोचकों ने केशव देव, पद्माकर इत्यादि के अलंकृत प्रकृतिचित्रण का जो प्रत्याख्यान किया है, वह वस्तुपरक न होने तथा तरंगवादी होने के कारण महत्वहीन ही नहीं प्रत्युत भ्रामक भी है। तुलसी ने विनयपत्रिका एवं गीतावली में अनेक स्थलों पर आकर्षक अलंकृत प्रकृतिचित्रण किए हैं—

देखो-देखो बन बन्यो आजु उपाकान्त । मनो देखन तुमहि आई ऋतु बसन्त ॥

जनु तनु-दुति चम्पक-कुसुममाल । बर बसन नील नूतन तमाल ॥

कल कदलि जंघ, पद कमल लाल । सूचत कटि केहरि, गति मराल ॥

भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग । नूपुर किंकिनि कलरव-बिहंग ॥

कर नवल बकुल-पल्लव रसाल । श्रीफल कुच, कंचुकि लता-जाल ॥

आनन सरोज, कच मधुप-पुंज । लोचन बिसाल नव नील-कंज ॥

पिक बचन चरित बर बरहि कीर । सित सुमन हास, लीला समीर ॥...

(विनयपत्रिका 14/1-7)

आजु बन्यो है बिपिन देखो, राम धीर । मानो खेलत फागु मुद मदन वीर ॥

बट बकुल कदम्ब पनस रसाल । कुसुमित तरु-निकर कुरव तमाल ॥

मानो बिबिध बेध धरे छैल-जूथ । बिच-बीच लता ललना बरूथ ॥

पनवानक निर्झर, अलि उपंग । बोलत पारावत मनो डफ मृदंग ॥

गायक सुक कोकिल, झिल्लि ताल । नाचत बहु भाँति बरहि मराल ॥

मलयानिल सीतल सुरभि मन्द । बह सहित सुमन रस रेनु बृन्द ॥

(गीतावली 2/48/1-6)

रहस्यवादी प्रकृतिचित्रण की प्राचीनता स्वाभाविक एवं अप्रयत्नज है क्योंकि प्रकृति परमात्मा की महत्तम परिचायिका है जिसने कमल का सौन्दर्य नहीं देखा, वह परमात्मा का सौन्दर्य क्या देख पाएगा? जो खिले हुए गुलाब पर मोहित नहीं हुआ, वह परमात्मा पर क्या मोहित हो पाएगा? जिसे उषा का परिचय नहीं प्राप्त, उसे परमात्मा का परिचय कैसे प्राप्त होगा? जिसे विशाल पर्वत, गहन सरिता, चंचल निर्जर में रमना नहीं आता, वह परमात्मा में कैसे रमेगा? इसीलिए, प्राचीनतम काल से ही काव्य में प्रकृतिचित्रण होते आ रहे हैं। ऋग्वेद प्रकृति का महाकाव्य है। इसीलिए, ऋग्वेद परमात्मा का महाकाव्य है। ऋग्वेद के द्रष्टा ऋषि घनदेवता इन्द्र, तेजदेवता अग्नि, रसदेवता सोम, गतिदेवता मरुतु, सागरदेवता वरुण, प्रकटदेवता सूर्य, प्रत्यक्ष देवी उषा तथा वन, सरिता, गो, अश्व इत्यादि देवताओं

1. द्रष्टव्य है मेरे ‘साहित्यिक निबन्ध: नए आयाम’ का ‘ऋग्वेद में काव्य-तत्त्व’ निबन्ध जिसमें एतद्विषयक अनेक मन्त्र उद्धृत एवं विवेचित हैं।

के माध्यम से परमात्मा का दर्शन करते हैं—“एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति” एवं “एकं संतं बहुधा कल्पयन्ति” की घोषणा करते हैं। सारा ऋग्वेद रहस्यवादी महाकाव्य है। आधुनिक भारत के गहन चिन्तक एवं प्रखर दार्शनिक अरविन्द ने ठीक ही ऋग्वेद को प्रतीकवादी ग्रन्थ बतलाया है। भारत रहस्यवाद की जन्मस्थली है। हिन्दी में कवीर, रैदास, नानक, जायसी इत्यादि ने मनोहारी रहस्यवादी काव्यसृष्टि की है। निस्सन्देह कवीर हिन्दी के ही नहीं प्रत्युत विश्व के श्रेष्ठतम रहस्यवादी कवि हैं, जिन्होंने रैदास, नानक, जायसी, रवीन्द्र इत्यादि को प्रभावित किया है। तुलसी की मूल रुचि रहस्य में न थी; वे “सूधो मन सूधो बचन सूधी सब करतूति” चाहते थे। फिर भी, एकाध स्थल ऐसे हैं जिनमें रहस्यवादी कविता के दर्शन हो ही जाते हैं—

जल विच बिमल सिलनि झलकत नभ वन प्रतिबिम्ब तरंग।

मानहुँ जग रचना विचित्र विलसति बिराट अंग-अंग॥

(गीतावली 2/50/5)

सौन्दर्यचित्रण

तुलसीदास संसार-साहित्य में सौन्दर्यचित्रण के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, भले ही कालिदास के सदृश प्रेम एवं सौन्दर्य के विश्वकवि अथवा कीट्स के सदृश सौन्दर्य के कवि एवं वार्तावह न माने जाते हों, क्योंकि उन्हें पहले महान् सन्त एवं भक्त माना जाता है और उसके बाद महान् कवि एवं कलाकार, जबकि वास्तव में वे जितने महान् सन्त एवं भक्त हैं उतने ही महान् कवि एवं कलाकार। व्यक्तिगत रूप से मुझे तुलसीदास महान् सन्त एवं महान् भक्त से भी महान्तर कवि एवं कलाकार लगते हैं। उनका स्फीत एवं उदात्त सौन्दर्यचित्रण कालिदास के नारीप्रधान सौन्दर्यचित्रण एवं कीट्स के सिद्धान्तप्रधान सौन्दर्यचित्रण से व्यापकतर एवं रम्यतर है। उन्होंने नारी, नर, पशु, पक्षी, सभी के सौन्दर्य का विराट् चित्रण किया है। उनके राम के शिशु, बालक, किशोर, तरुण, वर, वनवासी, आखेटगत, युद्धगत, सिंहासनगत, हिन्दोलगत प्रभृति सर्वजीवन-व्यापी शत-शत सौन्दर्यचित्र उन्हें संसार-साहित्य में सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध करते हैं। उनके शारीरिक सौन्दर्य में मानसिक सौन्दर्य का अतुलनीय समन्वय प्राप्त होता है। सौन्दर्य को जो व्यापकता, विशदता, गरिमा एवं उदात्तता तुलसी ने प्रदान की है, वह किसी कवि ने नहीं, किसी कलाकार ने नहीं—कालिदास, कीट्स, विंची, अजन्ता-शिल्पियों, कोणार्क-शिल्पियों, खजुराहो-शिल्पियों, किसी ने नहीं। ‘तुलसी का सौन्दर्यचित्रण’ एकाधिक गम्भीर शोध या पर्यालोचन का व्यापक एवं गम्भीर विषय है। कुछ उद्धरण मात्र यह स्पष्ट कर देते हैं—

तन की दुति स्याम मरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।

अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥

दमकैं दतियाँ दुति दामिनि ज्यों किलकैं कल बाल विनोद करैं।

अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरैं॥

(कवितावली 1/3)

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु-ठुमुकु' प्रभु चलहिं पराई॥

धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति बिहँसि गोद बैठाए॥

(रामचरितमानस 1/202/7, 9)

सरजू बर तीरहि तीर फिरैं रघुबीर सख अरु बीर सवै।

धनुही कर तीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नबीन फबै॥

(कवितावली 1/7/1, 9)

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।

गावति गीत सवै मिलि सुन्दरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं॥

राम को रूप निहारति जानकी कंगन के नग की परछाहीं।

यातें सवै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥

(गीतावली 1/17)

1. महान् गायक विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का गाया ‘ठुमुकि चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ’ गीत तुलसी-ग्रन्थावली से न होने पर भी अनुभूति-अभिव्यक्ति दोनों में तुलसी का लगता है। इसे प्रसिद्ध पार्श्वगायिका लता मंगेशकर ने भी गाया है। उनके अनेक दोहे भी ग्रन्थावली में नहीं आ सके।

दुलह राम, सीय दुलही री।

घन दामिनि बर बरन, हरन मन, सुन्दरता नख-सिख निबही री॥

ब्याह बिभूषन बसन बिभूषित, सखि-अवली लखि ठगि सी रही री।

जीवन जनम लाहु, लोचन फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही री॥

सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही री।

मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहुँ मही री॥

तुलसिदास जोरी देखत सुख, सोभा अतुल न जात कही री।

रूप-रासि बिरची बिरचि मनो, सिला-लवनि रति-काम लही री॥ (गीतावली 1/104)

कागर कीर ज्यों भूषन चीर, सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई।

मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥

संग सुभामिनि, भाइ चलो, दिन द्वैज जनु औध हुते पहुनाई।

राजिव-लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई॥ (कवितावली 2/2)

देखि राम रिपु-दल चढ़ि आवा।

विहसि कठिन कोदण्ड चढ़ावा॥

कोदण्ड कठिन चढ़ाई, सिर जट-जूट बाँधत सोह क्यों।

मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥

कटि कसि, निषंग बिसाल भुज गहि, चाप बिसिख सुधारि कै।

चितवन मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज-घटा निहारि कै॥...

संग्रामभूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसलधनी।

श्रमबिन्दु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी॥

भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहुँ दिसि बने।

कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥ (रामचरितमानस 6/70/छन्द)

सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही।

संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥

सिर जटा-मुकुट, प्रसून बिच-बिच अति मनोहर राजहीं।

जनु नीलगिरि पर तड़ित पाटल सहित उडुगन भ्राजहीं॥

भुजदण्ड सर कोदण्ड फेरत रुधिर कन तन अति बने।

जनु राजमुनी तमाल पर बैठी बिपुल सुख आपने॥ (रामचरितमानस 6/105/छन्द, 3-4)

सोनित छींटे-छटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी।

मानौ मरकत सैल बिसाल ते फैलि चली बर बीरबहूटी। (कवितावली 6/51/3-4)

‘कवितावली’ का अयोध्याकांड और ‘गीतावली’ का उत्तरकांड तो तत्त्वतः और वस्तुतः रामसौन्दर्यकांड ही हैं।

तुलसीदास के अतुलनीय एवं स्फीततम सौन्दर्यचित्रण की अद्वितीय विशेषता उसकी सर्वांगपूर्णता है। शैशव, वाल्य, कैशोर्य, तारुण्य, यौवन एवं यौवनेतर अवस्थाएँ जीवनांग होने के कारण एकरस महत्वपूर्ण हैं¹ और तुलसी ने सबके सौन्दर्य का दर्शन भी किया है, चित्रण भी। इसी प्रकार, शिशु की दूध की दंतियाँ, तरुण की रूपान्धेरी दृष्टियाँ इत्यादि जितनी सत्य हैं, उतनी ही सत्य युवक की स्वेदस्नात् छवियाँ एवं योद्धा होने पर रक्तस्नात् शोभाएँ भी हैं। स्वेदसौन्दर्य एवं शोणितसौन्दर्य के द्रष्टा तुलसीदास अपनी अप्रतिमता

1. मैंने अपनी जीवनदर्शनपरक महाकविता ‘तव, अब और आगे’ में समग्र जीवन की संगति का निरूपण किया है। यह मेरे ‘सेतु’ (1980 ई.) एवं ‘डॉ. रामप्रसाद मिश्र की मान्यताप्राप्त कविताएँ (सं. डॉ. पवनकुमार, 1985 ई.) की अन्तिम रचना एवं पृथक् रूप से भी प्रकाशित (1988 ई.) हो चुकी है। ‘सार्वभौम’ संग्रह में भी है।

सहज ही सिद्ध कर देते हैं। स्वेद एवं शोणित ही शिशु एवं तरुण, युवक एवं वृद्ध, समाज एवं राष्ट्र की रक्षा करते हैं। इस दृष्टि से भी तुलसी के सौन्दर्यचित्रण की समता नहीं मिलती।

विवाह समाज-शरीर का मेरुदण्ड है। बौद्ध और जैन धर्मों और ईसाई मजहब के विवाह-पलायनवाद या शॉपेनहॉएर, बर्दाण्ड रसेल, बर्नार्ड शॉ इत्यादि के विवाह-विरोधवाद को कोई व्यावहारिक महत्व कभी या कहीं न प्राप्त हो सकता था, न है, न होगा—इससे भी यह कथन सिद्ध हो जाता है। संसार-साहित्य में तुलसीदास विवाह के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, बरवै-रामायण, रामाज्ञाप्रश्न, प्रायः सर्वत्र विवाह-गरिमा चित्रित मिलती है; और जानकीमंगल एवं पार्वतीमंगल तो विशुद्ध विवाहकाव्य ही हैं। रामलला-नहछू विवाह से दूर नहीं पड़ता और उसके सोहर विवाह में गाए जा सकते हैं। विनयपत्रिका, दोहावली, श्रीकृष्णगीतावली और वैराग्यसंदीपिनी के विषय विवाह-संपृक्त नहीं है।

तुलसी का सौन्दर्यचित्रण जीवनरस से सराबोर है। क्रीड़ा आमोद, प्रेम, संघर्ष, युद्ध, ऐश्वर्य, सभी जीवनतत्त्वों में सौन्दर्य का महान् चित्रण करनेवाले वे संसार के एकमात्र महाकवि हैं। तुलसी के सौन्दर्यचित्रण के प्रधान आधार राम हैं क्योंकि राम समग्र जीवन के समाहार हैं, किन्तु उन्होंने राम-सीता-लक्ष्मण के त्रित् का सौन्दर्यचित्रण तो पूरी तन्मयता से किया ही है, अन्य पात्रों का भी ध्यान रखा है। लक्ष्मण-ऊर्मिला की शोभा का यह वर्णन उच्चस्तरीय है—

जैसे ललित लखन लाल लोने।

तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखन¹ सुलोचन कोने।।

सुखसागर-सिंगारसार करि कनक रचे हैं तिहि सोने।

रूप प्रेम परिमिति न परत कहि, बिथकिरही मति मौने।।

सोभा सील सनेह सोहावने समउ केलिगृह गौने।

देखि तियन के नयन सफल भए, तुलसीदास हू के होने।। (गीतावली 105)

तुलसीदास नारी-सौन्दर्य के भी महान् कलाकार है। शॉपेनहॉएर यदि उनके राम के शत-शत सौन्दर्यचित्र देखते तो मुग्ध हो जाते किन्तु वे शॉपेनहॉएर के सदृश नारी-सौन्दर्य-विरोधी कही नहीं हैं। शॉपेनहॉएर ठिगनी एवं चौड़े कूल्हों वाली² नारी को शरीरतः भी कुरूप माननेवाले प्रखर नारी-विरोधी थे। तुलसीदास नारी-सौन्दर्य की सर्वोपरिता के गायक हैं, नारी के प्रति गहन-संवेदनशील हैं। उनका सीता के सौन्दर्य का चित्रण संसार-साहित्य में अद्वितीय है, जिसमें उदात्त एवं बिम्बालेखन भी सर्वोच्चस्तरीय हैं—

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।

भए विलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल।।

देखि सीय शोभ सुखु पावा। हृदयँ सराहत, बचनु न आवा।।

जनु बिरचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई।।

सुन्दरता कहूँ सुन्दर करई। छविगृहँ दीपसिखा जनु बरई।। (रामचरितमानस 1/229/3-7)

सीता सुन्दरता को सुन्दर करती हैं। यदि सीता न होती तो सुन्दरता सुन्दर न होती! सीता छवि के गृह को प्रकाशित करती हैं! सीता न होती तो छवि का गृह अन्धकारमय हो जाता! ऐसे वर्णनों की समता कहाँ? और भावुकता, कल्पनाशक्ति एवं उदात्त का ऐसा सौन्दर्य-प्रयाग भी अन्यत्र नहीं है।

सर्वरसनिष्पत्ति

यद्यपि मैंने 'विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य' (1973 ई.) ग्रन्थ में 'रामचरितमानस' में सर्वरसनिष्पत्ति³ एवं 'कवितावली' में महाकवि के अपार रससामर्थ्य का निरूपण किया है तथापि नवरस, वात्सल्यरस, भक्तिरस, बौद्धिकरस⁴ की द्वादशरसगत दृष्टि से

1. लखना = देखना। यमक।

2. शॉर्ट-स्टेचर्ड एण्ड ब्रोड-हिण्ड। द्रष्टव्य है विल इयूँ कृत 'द स्टोरी ऑफ़ फिलॉसॉफी' में सम्बन्ध प्रकरण।

3. द्रष्टव्य हैं मेरे 'बौद्धिकरस' (1964 ई.) कवितासंग्रह एवं 'काव्य में बौद्धिकरस और आलोचना में वस्तुवाद' (1985 ई.) ग्रन्थ।

इस विषय पर स्वतन्त्र ग्रन्थ की अपेक्षा है। सर्वरसनिष्पत्ति की दृष्टि से तुलसी का सृजन अद्वितीय है। संसार-साहित्य के प्रथम श्रेणी के महाकवियों में वाल्मीकि, व्यास, होमर और फ़िरदौसी में ही सर्वरस-निष्पत्ति के दर्शन होते हैं, क्योंकि ये पूर्ण जीवन के विराट् द्रष्टा थे। मैंने 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' (1986 ई.) एवं 'विश्वकवि होमर और उनके काव्य' (1976 ई.) में इस दृष्टि से पर्याप्त प्रकाश डाला है। तुलसी भक्तिरस के सीमान्त हैं, यह निर्विवाद है, जिसे गांधी जैसे राजनीतिज्ञ एवं एट्किंस जैसे ईसाइयत-प्रचारक तक स्वीकार करते हैं, किन्तु इससे उनकी सर्वरसनिष्पत्ति सर्वथा अव्याहत रही है और यह तथ्य सर्वथा विस्मयकारी है।

रसरस शृंगार के प्रति तुलसी-सूर जैसे विशद कलाकार की रुचि न होती तो आश्चर्य होता। यद्यपि हिन्दी-कविता में शृंगार-सम्राट् हैं तथापि तुलसी ने रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली इत्यादि में उभयपक्षीय शृंगार की उच्चस्तरीय निष्पत्ति की है। रामचरितमानस के पुष्पवाटिका-प्रकरण में राम एवं सीता दोनों पक्षों से शृंगार के पूर्वराम का जो चित्रण किया गया है, वह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ तथा संसार के सर्वश्रेष्ठों में एक है क्योंकि क्या अनुभूति की गहनता और क्या अभिव्यक्ति का सौन्दर्य सभी में वह उत्तमोत्तम ही है। एक वर्णन ही सत्य को प्रमाणित कर सकता है—

चितवति चकित चहँ दिसि सीता। कहँ गए नृप-किसोर मन चिन्ता¹॥
जहँ बिलोक मृगसावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित स्रेनी॥
लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरी निमेषें॥
अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचन-मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक-कपाट सयानी॥

(रामचरितमानस 1/231/1-7)

शृंगारस के वियोग-पक्ष में तुलसी ने संयोग-पक्ष की तुलना में अधिक रुचि दिखाई है तथा रामचरितमानस एवं गीतावली में विशद विरह-वर्णन किए हैं जिनके कारण हिन्दी के विरह-काव्य² में भी उनका एक स्थान अवश्य बन जाता है। निस्सन्देह, शृंगार विरहकाव्य में गुण-परिमाण की युगपत् दृष्टि से सूर एवं केवल गुण की दृष्टि से जायसी को प्रमुख स्थान प्राप्त है तथा अन्य प्रमुख कवि घनानन्द, हरिऔध, मैथिलीशरण, प्रसाद, महादेवी, नवीन (ऊर्मिला) एवं बच्चन ('निशा-निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत', 'आकुल अन्तर', 'व्याकुल विश्व') हैं, तथापि तुलसी का नाम इस दिशा में भी छोड़ा नहीं जा सकता और जहाँ तक गुणगरिमा का सम्बन्ध है, प्रस्तुत 'गागर में सागर' की समता करने वाला कोई वर्णन न सूर में प्राप्त होता है, न जायसी में, न अन्य किसी में—

भूषन बसन बिलोकत सिय के।

प्रेमबिबस मन, कंप पुलक तनु, नीरजनयन नीर भरे पिय के।

सकुचत कहत, समुझि उर उमगत, सील सनेह सुगुनगन तिय के॥ (गीतावली 4/1/1-3)

मैंने वाल्मीकि, व्यास, होमर, कालिदास, फ़िरदौसी इत्यादि विश्व के अन्य सर्वश्रेष्ठ कवियों के सृजन में विरह का इतने संक्षेप में इतना पूर्ण वर्णन नहीं देखा। निस्सन्देह, मेघदूतम्, खुवंशम् (अज-विलाप), कुमारसम्भवम् (रति-विलाप), विक्रमोर्वशीयम् (पुरूरवा-विरहव्यथा) इत्यादि के विरह-कवि कालिदास संसार के सर्वश्रेष्ठ विरहवर्णनकार हैं, जिनकी समता सूर, जायसी इत्यादि हिन्दी के प्रमुख विरहवर्णनकार मिलकर भी नहीं कर पाएँगे, तुलसी का तो यह प्रमुख क्षेत्र ही नहीं है, किन्तु इन तीन पंक्तियों की तुलना कालिदास-काव्य में भी नहीं दृग्गत हो पाती। ऐनीड (ऐनिअड)³ के महाकवि वर्जिल ने नायक एनिअस के सागर-संतरण के साथ-साथ रानी डीडो के विरह-दाह का जो हृदयविदारक चित्रण किया है, उस पर विश्व-साहित्य गर्व कर सकता है, किन्तु ढाई पंक्तियों में प्रेम के ढाई आखर जितने तुलसी ने सार्थक किए हैं उतने वर्जिल-काव्य में भी नहीं किए जा सके।

1. पाठान्तर 'मनचीता'।

2. द्रष्टव्य है मेरे प्रबन्ध 'खड़ीबोली-कविता' में विरह-वर्णन' (1964 ई.) का सम्बद्ध अंश।

3. द्रष्टव्य है मेरे 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' (1986 ई.) ग्रन्थ का निबन्ध।

शृंगाररस के अनन्तर महान् रस वीर है। वीरता में मानव के शारीरिक बल एवं मानसिक शौर्य की जैसी सर्वांगपूर्ण अभिव्यक्ति होती है वैसी अन्य किसी प्रवृत्ति में नहीं। वीररस का स्थायी भाव उत्साह है जो एक सहज एवम् महान् मानवीय प्रवृत्ति है, जिससे युद्धवीर, धर्मवीर, कर्मवीर, दयावीर, दानवीर इत्यादि विकसित होते हैं, जिनके प्रतीक चरित्र राम, हरिश्चन्द्र, तिलक, शिवि, कर्ण इत्यादि माने जा सकते हैं। “मैं अवतार हूँ” या “मैं ईश्वर-पुत्र हूँ” या “मैं मसीहा हूँ” या “मैं पैगम्बर हूँ” या “मैं गुरु हूँ” या “मैं नेता हूँ” या “मैं निर्माता हूँ” इत्यादि कह लेना कठिन नहीं है और यदि अन्ध-श्रद्धालु मिल जाएँ तो पूजा से दंगा-फसाद तक सब-कुछ चल सकता है, किन्तु किसी उद्देश्य के लिए संसार की सर्वाधिक प्रिय वस्तु प्राण की चिन्ता न करके काल के कराल गाल में प्रवेश करना तथा या तो उसको फाड़कर निकल आना या उसका ग्रास बनना दोनों ही महत्तर कार्य हैं। राम में वीरता का चरम उत्कर्ष दृग्गत होता है क्योंकि वे एक साथ ही युद्धवीर भी हैं, धर्मवीर भी हैं, कर्मवीर भी, दयावीर भी, दानवीर भी, क्योंकि उन्होंने निःस्वार्थ युद्ध किए, “धर्महित” युवराजपद त्याग किया, सदैव सत्कर्मरत रहे, विराध जैसे नर-पशुओं से लेकर रावण जैसे धीरोद्धतों तक पर दया की, हनुमान् को गौरवदान तथा सुग्रीव-विभीषण को राज्यदान किए। अतः रामकाव्य के महाकवि की वीरस-निष्पत्ति सर्वथा स्वाभाविक है। राम तो लीला कर रहे थे, अतः तुलसी ने उनके माध्यम से अल्प तथा लक्ष्मण एवं हनुमान्, मेघनाद एवं रावण के पक्षों से अधिक वीररस-निष्पत्ति की है। रामचरितमानस में वीररस के अनेक श्रेष्ठ वर्णन प्राप्त होते हैं। उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

राम काज लागि तव अवतारा। सुनतहि भयउ पर्वताकारा।।
कनक बरन तर तेज बिराजा। मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा।।
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा।।
सहित सहाय रावनहिं मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी।।

(रामचरितमानस 1/29/6-9)

मानव-जीवन जन्म-कष्ट, निर्धनता, छल, कपट, हिंसा, रोग इत्यादि से परिपूर्ण है तथा मृत्यु एक सार्वभौम सत्य है ही। अतः शोक स्थायीभाव वाले करुणरस की व्यापकता स्वयंसिद्ध है, भले ही वह उतनी महत्वपूर्ण न हो जितनी “एको रसः करुण एव” के उद्गाता करुणरसाचार्य महाकवि भवभूति मानते हैं। करुणा के प्रतिष्ठापक बुद्ध तक “सर्व अनित्यम्”, “सर्व अनात्मम्”, “दुःखम्” एवं “निर्वाणं शान्तम्” पर प्रवचन देने के अनन्तर राजगृह या श्रावस्ती या कौशाम्बी के राजप्रासादों की ओर गतिशील दृष्टिगोचर होते थे। जीवन चरम सत्य है और जीवन की प्रमुख प्रवृत्ति काम है। अतः शृंगार का रसराजत्व असन्दिग्ध है। उत्साह महानता का जनक है, जीवन का प्रेरक है। अतः वीररस का द्वितीय स्थान निश्चित है। किन्तु जीवन में व्याप्त अवसाद एवं अवसान करुण रस को तृतीय स्थान प्रदान करा ही देते हैं। संसार का साहित्य इसका साक्षी है। तुलसी जैसा द्रष्टा कवि करुण रस-पराङ् मुख नहीं हो सकता—

धरि धीरज उठि बैठ भुआलू। कहु सुमन्त्र कहँ राम कृपालू।।
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा।।
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिन जितत बहुत दिन बीते।।
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर।।

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।

तनु परिहरि रघुबर विरहँ राउ गयउ सुरधाम।।

(रामचरितमानस 2/154/1, 6-8, 155)

अन्य रसों की निष्पत्ति में भी तुलसीदास पूर्णतः सफल हुए हैं। क्रमशः हास्य, रौद्र, अद्भुत, भयानक, वीभत्स, शान्त¹, वात्सल्य², भक्ति³ एवं बौद्धिक⁴ रसों के उद्धरण प्रस्तुत हैं—

1. निवृत्तिपरक होने के कारण ‘शान्तोऽपि’ (शान्त भी) कहते हुए नाट्य-शास्त्र के प्रणेता एवं रस-सिद्धान्त के जनक आद्याचार्य भरत मुनि ने इसे नवम स्थान प्रदान किया है। वैसे, भरत, भोज, विश्वनाथ इत्यादि आचार्यों ने इस रस को गौरव भी प्रदान किया है।
2. ‘रस या भाव मात्र?’ के सदियों तक चले विवाद के अनन्तर ‘साहित्यदर्पण’ के प्रणेता आचार्य विश्वनाथ ने (आधे मन से ही सही) वात्सल्य को रस माना है।
4. ‘रस या भाव मात्र?’ के थोड़े-से विवाद के अनन्तर भक्ति का रसत्व स्वीकार कर लिया गया। रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी इत्यादि इसके प्रतिष्ठापक हैं। ‘रस-गंगाधर’ के प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ ने ‘शान्त’ में निवृत्ति तथा ‘भक्ति’ में प्रवृत्ति के विरोध के सशक्त आधार पर इसके रसत्व का परोक्ष मण्डन किया है।
4. भाव और विचार के द्वैत को अस्वीकार करते हुए मैंने ‘बौद्धिकरस’ (कवितासंग्रह) एवं ‘काव्य में बौद्धिकरस और आलोचना में वस्तुवाद’ ग्रन्थों में बौद्धिकरस का प्रतिपादन किया है।

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न विलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं।
(रामचरितमानस 1/134/1-2)

बिन्ध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी, तुलसी सो कथा सुनि मे मुनिबृन्द सुखारे॥
हैहैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥
(कवितावली 2/28)

जब तेहिं कीन्हि राम कै निन्दा। क्रोधवन्त अति भयउ कपिन्दा॥
हरि हर निन्दा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥
कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदण्ड तमकि माहि मारी॥
(रामचरितमानस 6/31 ख 1-3)

केसव! कहि न जाइ का कहिए?
देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग रहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न, मरै भीति, दुःख पाइय यदि तनु हेरे॥
रविकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं॥¹
(विनयपत्रिका 111/1-6)

सोच संकटनि सोच संकट परत, जर जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को।
बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात, होत देखि दाहिनो सुभाव बिधि बाम को॥
भागत अभाग, अनुरागत बिराग, भाग जागत, आलसि तुलसी हू से निकाम को।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति, आई मीचु मिटति जपत रामनाम को॥
(कवितावली 7/75)

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो।
आनि पर बाम बिधि बाम तेहि राम सों सकत संग्राम दसकंध काँध्यो॥
समुझि तुलसीस कपि कर्म घर घर घेरु बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लंक, लकेस नायक अछत, लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो॥
(कवितावली 6/4)

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे मूँड़ के कर्मण्डलु, खपर किए कोरि कै।
जोगिनी झुटंग झुंड झुंड बनी तापसी सी तीर तीर बैठीं सो समरसरि खोरि कै॥
सोनिन सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से, प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी वैताल भूत साथ लिए भूतनाथ हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै।
(कवितावली 6/50)

मन पछितैहै अवसर बीते।

दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम वचन अरु ही ते॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।

1. अद्भुतरस में तुलसी की अग्रतिम सफलता को देखते हुए दो विलक्षण उदाहरण दे दिए हैं।

हम हम करि धन धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते ।।
सुत वनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह सबहीं ते ।
अन्तहुँ तोहिं तजैगे पामर! तू न तजै अवही ते ।।

(विनयपत्रिका 198/1-6)

आँगन खेलत आनँदकंद । रघुकुल कुमुद सुखद चारु चन्द ।।...
कटि किंकिनि, पग पैजनि वाजैं । पंकज-पानि पहुँचियाँ राजैं ।।...
लटकन लसत ललाट लटूरीं । दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं ।।
मुनि-मन हरत मंजु मसिबुन्दा । ललित बदन वलि! बालमुकुन्दा ।।...
कुलही चित्र-विचित्र झँगूली । निरखत मातु मुदित मन फूली ।।
गहि मनि-खम्भ डिंभ डगि डोलत । कल बल बचन तोतररे बोलत ।।
किलकत झुकि झँकत प्रतिविम्बनि । देत परम सुख पितु अह अम्बनि ।।...

(गीतावली 1/28/1/1/1,2/1,3,4/1-3)

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई । हरषे जनु नवनिधि घर आई ।।
कन्द मूल फल भरि भरि दोना । चले रंक जनु लूटन सोना ।।...
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे । प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे ।।
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े । पुलक सरीर नयन जल बाढ़े ।।¹

(रामचरितमानस 2/134/1-2, 4-5)

सवरी सांइ उठी, फरकत वाम बिलोचन वाहु ।

सगुन सुहावने सूचत मुनि-मन-अग उछाहु । (गीतावली 3/17)

वैसे तो कबीर एवं सूर ने बौद्धिकरस में सफल सृजन किया है जैसा कि “अरे इन दोउन राह न पाई” जैसे स्थूल से लेकर “जल में कुम्भ कुम्भ में जल है” जैसे सूक्ष्म एवं “अबिगत गति कछु कहत न आवै” जैसे स्थूल से लेकर “मोहन माँग्यो अपनी रूप” जैसे सूक्ष्म पदों से ही स्पष्ट है, किन्तु तुलसी इस दिशा में विशिष्ट महत्व के अधिकारी हैं। बौद्धिकरस में आलम्बन कोई एक गहन जीवन-सत्य होता है, आश्रम स्वयं कवि या पात्र-विशेष, अनुभाव अकाट्य तर्क, संचारीभाव अन्य प्रतिपाद्य-विन्दु तथा इनके संयोग से स्थायीभाव चिन्तनबोध की सिद्धि होती है। तुलसी इस दृष्टि से सर्वथा सफल हैं—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी ।।...
देखियहि रूप नाम आधीना । रूपग्यान नहिं नामबिहीना ।।
रूपविसेष नाम विनु जाने । करतलगत न परहि पहिचाने ।।
सुमिरिअ नाम रूप विनु देखें । आवत हृदयँ सनेह विसेषें ।।...
अगुन सगुन विच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ।।²
कहाँ कहाँ लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।

(रामचरितमानस 1/20/2, 4-6, 8, 25/8)

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे?³

काको नाम पतितपावन जग? केहि अति दीन पियारे?

(विनयपत्रिका 101/1-2)

1. भक्तिरस में तुलसी की निर्विवाद सर्वश्रेष्ठता को देखते हुए दो प्रवृत्ति-रसांगपूर्ण एवं नूतन उद्धरण दे दिए हैं। यह और निम्नलिखित।
2. ‘राम’ नाम निर्गुणप्रधान कबीर, नानक इत्यादि में भी व्याप्त है, सगुण-प्रधान तुलसीदास, नाभादास इत्यादि में भी। परमगुरु रामानन्द रमने-वाले और दशरथसुत दोनों के प्रतिपादक थे। अनेक शिष्य उनके एक ‘राम’ से सन्तुष्ट थे तथा इसी गुरु-मन्त्र का जाप करते थे। कबीर उनके शिष्य थे, तुलसी उनकी स्मार्त वैष्णव-परम्परा के सूर्य।
3. ‘जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पर आवै।’ (सूर)

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै॥

(विनयपत्रिका 111/7-8)

प्रथम उद्धरण में नाम-अपरिहार्यता, द्वितीय में भक्ति-प्रपत्ति-सुगमता या ज्ञान-योग-निवृत्ति-दुर्गमता, तृतीय में आस्तिकता-मनोवैज्ञानिकता एवं चतुर्थ में आत्मपरिचय-वरीयता के चिन्तन-बोध सिद्ध होते हैं।

हास्य-व्यंग्य

हास, परिहास और व्यंग्य मानव की पहचान के तीन बिन्दु हैं। हास में हम दूसरों के साथ मिलकर हँसते हैं, परिहास में हम दूसरे पर हँसते हैं, व्यंग्य में हम दूसरे की न्यूनता पर गम्भीर शब्दक्षेप करते हैं। हास्य अभिधाप्रधान हो सकता है, परिहास लक्षणा-प्रधान, व्यंग्य व्यंजनाप्रधान। गाँधी ने कहा था कि यदि मुझमें हँसने का माहा न होता तो मैं कब का आत्महत्या कर चुका होता! नेहरू इतनी दूरी तक न जाकर भी हास-परिहास का महत्व मानते हैं। जब महत्वाकांक्षी राजनैतिक नेता हास-परिहास का महत्व मानते हैं। जब महत्वाकांक्षी राजनैतिक नेता हास-परिहास को आवश्यक मानते हैं तब भावनाशील साहित्यकार तो अपरिहार्य ही मानेगा! हिन्दी के सौभाग्य से उसके दोनों सीमान्त तुलसी और सूर हास-परिहास-व्यंग्य के बहुत गहरे कलाकार हैं। अन्य कवि इन दिशाओं में भी इनकी समता नहीं कर पाते। जहाँ तक तुलसी का सम्बन्ध है, वे उच्चतमस्तरीय हास्यनिष्पत्ति में भी सफल हैं, मर्यादित हास्य-व्यंग्य की गरही झलकियों में भी। ऐसी झलकियाँ शिवविवाह, प्रतापभानु-प्रकरण, कालनेमि प्रकरण इत्यादि में स्पष्टतः दृग्गत होती है। किन्तु यहाँ दो उच्चतमस्तरीय निदर्शन प्रस्तुत हैं—

लोचन-मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक-कपट सयानी॥
धरि धीरज यक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लोहू॥¹

(रामचरितमानस 231/7, 233/1-2)

पुष्पवाटिका में राम के प्रथम दर्शन पर प्रेमाभिभूत सीता नयनमीलन कर लेती हैं (जिससे राम-छवि हृदय-वर्दिनी हो जाए, ध्यान में स्थायी हो जाए)। सीता सखियों के साथ वाटिका-स्थित गिरिजागृह में पूजानार्थ गई हैं। अतः एक सखी हाथ पकड़कर गहरी चुटकी लेती है, 'गौरी का ध्यान पुनः कर लेना क्योंकि वह प्रत्येक समय पर सुलभ है; इस समय राजकुमार-दर्शन क्यों नहीं कर लेतीं क्योंकि यह प्रत्येक समय में सुलभ नहीं है!'

निम्नलिखित उद्धरणों में प्रतीप अलंकार की सहायता से उत्कृष्ट द्विपक्षीय व्यंग्य किया गया है। राम कहते हैं, "हे नवल सुन्दरी, मुख को अवगुंठन से क्यों छिपाती हो—आकाश में ऐसा ही चन्द्रमा सुशोभित है (जो अपने-आपको छिपाता नहीं)?" यहाँ व्याजस्तुति अलंकार भी जगमगा रहा है। इस पर सीता-पक्षधर सुन्दरी कहती है, "राम, अपने रूप पर गर्व न करो—अपनी मूर्ति सीता की छाया में देखो!" यहाँ सीता के गौर एवं राम के श्यामल (छाया श्यामल ही होती है) शरीरों की गहन व्यंजना है जो बिहारी की "जा तन की झाई परे स्याम हरित दुति होय" की प्रेरक है (तथा जीव-ब्रह्म-अद्वय की दार्शनिकता या रहस्यवादिता से ओतप्रोत तो है ही)—

का घूँघट मुख मूँदहु नबला² नारि। चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥

गरब करहु रघुनन्दन! जनि मन माँह। देखहु आपनि मूरति सिय कै छौं³॥

तुलसी की गहन प्रतिभा जीवनरस से सराबोर है। सूर में भी लगभग ऐसा ही जीवनरस विद्यमान है। किन्तु कबीर, केशव, देव, प्रसाद इत्यादि में ऐसा नहीं है। इसीलिए डॉ. राममनोहर लोहिया का अमूल्य कथन स्मरण आता है—कबीर में कोरा रस है, सूर में मधुर रस है, तुलसी में सात्विक रस है। समग्र जीवन सात्विक है, अतः सारे रस सात्विक या उदात्त हो सकते हैं—बस जीने की कला आनी चाहिए।

1. प्रतीकार्य भी है—आत्मा परमात्मा को ध्यानस्थायी कर रही है किन्तु साकार-मंडनार्थ प्रत्यक्ष-दर्शन का प्रतिपादन है—

भरि लोचन विलोकि अवधेसा।

तब सुनिहौं निरगुन उपदेसा॥

2. 'अबला' पाठ सार्थक नहीं है।

3. 'शक्त्या विरहितः शिव शिवः' से "आदिशक्ति जेहि जग उपजाया" तक की गूढ़ व्यंजना। गहन रहस्यवाद।

राजनीति

भारत का राजनीति-निरूपण विश्व में अतुलनीय है। महाभारत, शुक्रनीतिसार, अर्थशास्त्र इत्यादि में स्फीत विवेचन विद्यमान है, जबकि छान्दोग्य उपनिषद् में विश्व के प्रथम आदर्श-राज्य (यूटोपिआ) के दर्शन होते हैं। विश्व-इतिहास के महानतम राजनीतिज्ञ-कूटनीतिज्ञ चाणक्य (जिन पर भारत की राजधानी नई दिल्ली की ऐश्वर्यमयी राजनीतिज्ञ-कूटनीतिज्ञ बस्ती का चाणक्यपुरी का नामकरण नितान्त उपयुक्त है) की तुलना में 'प्रिंस' के प्रस्तोता मैकिआवेली बच्चे लगते हैं। ईषत्-विदेशी एवं ईषत् भारतीय नेहरू तक ने 'डिस्कवरी ऑफ़ इण्डिया' जैसे पश्चिम से अभिभूत उद्धरणाच्छादित तरुणोपयोगी ग्रन्थ में चाणक्य की जी भरकर प्रशस्ति की है, उन्हें चन्द्रगुप्त मौर्य तक पर ठीक ही वरीयता प्रदान की है। मोहम्मदीयत में लोकतन्त्र के लिए अवकाश कम ही है। संसार के किसी 'शुद्ध' मोहम्मदी देश में टिकाऊ लोकतन्त्र स्थापित नहीं हो पाया। रामचरितमानस भारतीय संस्कृति का सघन विश्वकोश है। अतः रामचरितमानस में राजनीति-निरूपण स्वाभाविक है। किन्तु दोहावली में भी यह पर्याप्त व्यापक रूप में दृग्गत होता है। कवितावली की युगालोचना में भी राजनीति के स्फुट बिन्दु विद्यमान हैं। हिन्दी-साहित्य में तुलसी का राजनीति-निरूपण अतुलनीय है। वह राजदायित्व-निरूपण एवं आदर्शराज्य-निरूपण के दो रूपों में प्राप्त होता है।

मध्यकाल समग्र विश्व में 'राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त' (डिवाइन राइट थ्योरी ऑफ़ किंग) का काल था। मोहम्मदीयत में तो अब तक का राजा का मध्यकालीन महत्व स्थिर है और जहाँ राजा नहीं है वहाँ तानाशाह इस महत्व का प्रतीक है। सऊदी अरब, कुवैत, ओमान, संयुक्त, अरब अमीरात, उर्दुन (जॉर्डन), मोरक्को इत्यादि अरब देशों में धर्मान्धतापूर्ण मध्यकालीन राजतन्त्र विद्यमान है, तो लीबिया, अल्जीरिया, ट्यूनीशिया, मिस्र, इराक़ इत्यादि में नामनिहाल जम्हूरियत की आड़ में तानाशाही का बोलबाला है। वैसे, मोहम्मदी मुल्कों में 'जम्हूरी निज़ाम' की तोतारटंत कॉम्युनिस्ट देशों से भी ज़्यादा सुनाई पड़ती रही है—अभाव में भाव की कल्पना का मनोविज्ञान इसे स्पष्ट कर देता है। जायसी इत्यादि रूढ़िवादी सूफ़ी कवियों ने "कीन्हेसि राजा भूँजहि राजू" में उसे ही पुनर्व्यक्त किया है। तुलसी ने भी "ईस अंस भव" कहकर राजा की दिव्यता का संकेत किया है क्योंकि समग्र प्राचीन एवं मध्य कालों में सर्वत्र इसी का बोलबाला था, किन्तु वे इस गौरव-दान से पूर्व "साधु, सुजान, सुसील" होने की तीन कड़ी शर्तें लगाते हैं जिससे अभिप्राय बनता है कि जो भोग नहीं अपितु साधना कता है, बुद्धिमान भी है तथा शील अर्थात् धर्म का पालन करता है, ऐसा राजा ईशांशोत्पन्न होता है तथा इसी कारण से वह "परम कृपालु" होता है।¹ स्पष्ट है कि अपने राजनिरूपण में तुलसी बहुत सजग है, जायसी इत्यादि सूफ़ियों के सदृश पिष्टपेषणवादी-चर्वितचर्वणवादी नहीं। प्रजा-हित उनके राजा का प्रधान कर्तव्य है, जिसके बिना वे उसे नरक का पात्र घोषित करते हैं—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।

सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥

(रामचरितमानस 2/70/6)

यह कथन स्वयं राम का है, जो राजा बनने पर 'परहित' को श्रेष्ठतम धर्म (धारणीय गुण—"धारणत् धर्ममिति आहुः धर्मो धारयते प्रजाः") घोषित करते हैं—

परहित सरिस धरमु नहिं भाई।

परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

(रामचरितमानस 7/40/1)

जनविरोधी होने पर समग्र लोकों का प्रतापी सम्राट् भी पतन से बच नहीं सकता—

चौदह भुवन एक पति होई।

भूतद्रोह तिष्ठइ नहिं सोई॥

(रामचरितमानस 5/37/7)

1. साधु सुजान सुसील नृपाला।

ईस अंस भव परम कृपाला॥ (रामचरितमानस 1/27/8)

तुलसी ने प्रतापभानु-प्रकरण में आदर्श-राजा एवं आदर्श-राज्य का जो निरूपण किया है, वह 'लघु-रामराज्य' का चित्र है। रावण-प्रकरण में वे मंत्री-विगर्हणा, अहं एवं अनाचार के विपर्यय-तत्त्व निरूपित करते हैं। तुलसी के अनुसार राजा को योग्य मंत्रियों पर सब-कुछ छोड़ देना चाहिए, स्वेच्छाचारिता से दूर रहना चाहिए तथा मंत्रियों को भय एवं स्वार्थ से मुक्त होकर सत्परापर्श ही देना चाहिए। सम्प्रति ग्रेट ब्रिटेन, जापान प्रभृति विकसित एवं सभ्य देशों में जो आदर्श लोकतन्त्र है वह राजतन्त्र-सम्पृक्त भी है। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन में प्रसिद्ध है कि यदि मंत्रिमंडल मृत्युदण्ड-लेख समक्ष रखे तो भी राजा उस पर हस्ताक्षर कर देगा! जापान के स्वर्गीय सम्राट् हिरोहितो ने भी राजतन्त्र के स्थान पर संवैधानिक-राजतन्त्र को वरीयता प्रदान कर दी थी। तुलसी कहते हैं—

रैयत, राज-समाज, घर, तन, धन, धरम, सुबाहु¹।

शान्त सुसचिवन सौपि सुख बिलसहि नित बरनाहु॥

(दोहावली 521)

लगता है ब्रिटेन, जापान, नीदरलैंड (हालैंड) इत्यादि सभ्य एवं विकसित देशों के राजतन्त्र-संपृक्त उन्नत लोकतन्त्र तुलसी के नियमों पर ही चल रहे हैं! कराधान पर तुलसी के विचार अत्यन्त उच्च हैं—

हरषत बरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।

तुलसी प्रजा-सुभाग ते भूप भानु सो होई॥

(दोहावली 508)

सूर्य सागर से लेकर छोटे-से-छोटे जलाशय तक से वाष्प ग्रहण करते हैं किन्तु इसका पता नहीं चलता अर्थात् कर ऐसे लिए जाएँ कि पता तक न चलने पाए—वे कष्टकर तो हो ही नहीं। किन्तु सूर्य यही संचित वाष्प जब वर्षा के रूप में संभरित करते हैं तब सब देखते भी हैं, प्रसन्न भी होते हैं, लाभान्वित भी होते हैं अर्थात् कर-राशि का सर्वजनसुखकारी सदुपयोग किया जाए। सूर्य सागर, महानद, महासरोवर इत्यादि से ही अधिकांश जलराशि ग्रहण करते हैं किन्तु वितरण सबमें। राजा कर समर्थों से ले तथा लाभ सबको पहुँचाए। जैसे मुख सब खाद्य एवं पेय ग्रहण करके भी अपने पास एक कण एवं एक बूँद भी नहीं रखता तथा सारे शरीर के सारे अंगों का पालन-पोषण करता है, वैसे ही राजा को करना चाहिए—

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक।

पालै पौषै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥

(दोहावली 522)

चाहे प्रतापभानु का आदर्श-राज्य हो या राम का, राजा सर्वत्र जन-विश्रामालय, जनोद्यान, जनकूप, जनवाटिका इत्यादि का निर्माण कराते हैं। तुलसी के राजा का यह अपरिहार्य दायित्व है कि वह जनहित में निर्माण करता रहे। केवल केवल यही नहीं, राजा सामान्य जनता पर अपने विचार नहीं थोप सकता, जैसा कि आजकल दुर्दर्शन (दूरदर्शन), आभासबानी (आकाशवाणी), अनाचार-पत्र (समाचार-पत्र), भर्तृका (पत्रिका) इत्यादि के माध्यमों से केन्द्र एवं राज्यों के नाना दलवादी छोटे-बड़े राजा सीधे या तिरछे, खुलकर या छिपकर कर रहे हैं और पूरी निर्लज्जता से कर रहे हैं। वह अपने विचार व्यक्त कर सकता है, जिन्हें स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार जनता का है जिसे वह स्वयं सादर प्रदान करता है—

नहिं अनीति, नहिं कछु प्रभुताई।

सुनहु, करहु जो तुम्हहि सोहाई॥ (रामचरितमानस 7/42/4)

निस्सन्देह, तुलसी का राजदायित्व-निरूपण अद्वितीय है तथा आज भी उतना ही उपयोगी एवं प्रेरक है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे कोरे आदर्शवादी हैं—

साम, दान² अरु दण्ड, विभेदा।

नृप-उर बसहिं, नाथ! कह बेदा॥ (रामचरितमानस 6, 37, 9)

तुलसी का आदर्शराज्य-निरूपण उन्हें उपनिषद्, महाभारत इत्यादि के उद्दालक, व्यास तथा पश्चिम के प्लेटो, अरस्तू, सर टॉमस मोर, बेकन, मार्क्स इत्यादि यूरोपीयों में एक गौरवशाली स्थान प्रदान करता है। उनके रामराज्य का गांधी पर भारी प्रभाव पड़ा

1. सेना।

2. साधारण जनता, गलती से, 'साम' के तुक में 'दाम' कह बैठती है।

था। वे विषमतारहित अर्थात् शोषणरहित सम-समाज¹ का प्रतिपादन करते हैं, जिसमें सारे नागरिक परस्पर प्रेम करते हों, कोई दरिद्र एवं रोगी न हो, सब एकपत्नीवादी² हों—

बयरु न कर काँडू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई ॥
सब नर करहि परसपर प्रीती। चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्द सब बिरुज सरीरा ॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहि कोउ अवुध, न लच्छनहीना ॥
एकनारिब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

(रामचरितमानस 7/19 ग। 8, 20/2, 5-6, 21/8)

लगता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के 41वें राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने 21 जनवरी, 1989 ई. को शपथ-ग्रहण पर जो सुखी-समुन्नत राष्ट्र को और अधिक विकसित करने का संकल्प लिया था, वह तुलसी की प्रेरणा से निष्पन्न था! निस्सन्देह, तुलसी का रामराज्य आज के विकसिततम सम-समाज की प्रतिष्ठा करता है। काश, भात के अभागे नेता उससे लाभ उठा पाते! सर्वश्रेष्ठ राजनीति साम³ (समपरक, शान्तिपरक, गानादिकला-परक) पर आधृत होती है, द्वितीय श्रेणी की राजनीति दान (लेना-देना) पर आधृत होती है, तृतीय श्रेणी की राजनीति भेद (फूट डालो और राज्य करो) पर आधृत होती है, अधम (निकृष्ट) राजनीति दण्ड (डण्डा, अत्याचार, अनाचार) पर। पिछली एक सहस्राब्दि से भारत की राजनीति या तो दण्डप्रधान (प्रायः समूचा मोहम्मदीकाल) रही है या भेदप्रधान (साम्प्रदायिकता-शोषक ब्रिटिश-काल, सर्वग्रासी कांग्रेस-काल जिसमें हिन्दू-मुस्लिम, हिन्दू-सिख, हिन्दू-ईसाई, सवर्ण-आदिवासी, सवर्ण-हरिजन, सवर्ण-पिछड़ावर्ग, पिछड़ावर्ग-हरिजन, पिछड़ावर्ग-आदिवासी इत्यादि का न्यस्तस्वार्थग्रस्त, अमानवतावादी, राष्ट्रघाती एवं दंशद्रोहपूर्ण भेद-तांडव दृग्गत होता है)। तुलसी ने समसामयिक (जहाँगीर-कालीन) दण्डप्रधान राजनीति एवं तत्सम्बद्ध अयोग्य शासक-वर्गों का परिहास किया है—

गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महामहिपाल।
साम न दान न भेद कलि, केवल दण्ड कराल ॥

(दोहावली 559)

जिन बन्धुओं ने तुलसी-साहित्य का सम्यक् अनुशीलन नहीं किया है, अथवा जो राजनैतिक लाभ उठाना चाहते हैं, अथवा जो परप्रत्ययवादी (अनुकरणवादी) हैं, वे उन पर ब्राह्मणवाद या शूद्रविरोध या आभिजात्यवाद का आरोप लगाते हैं, जो निराधार है, क्योंकि तुलसी ने सर्वाधिक निन्दा ब्राह्मणों की है तथा ये यथासन्दर्भ कहीं “स्वपच, किरात, कौल⁴, कलवारा” (आदिवासी, ब्राह्मण, वैश्य) की आलोचना करते हैं, कहीं ‘सूद्र’ की, कहीं ‘गोंड़ गँवार’ की, कहीं ‘यमन’ (यवन—यहाँ यूनानी नहीं प्रत्युत स्तेछ) की; और इस सबके पीछे कोई पूर्वाग्रह सिद्ध नहीं होता, क्योंकि वे स्वयं के “धूत, अवधूत, रजपूत, जोलहा” कहे जाने की चर्चा करते हैं, स्वयं को ‘मतिमन्द गँवार’ कहते हैं, “मेरे जाति-पाँति न चहाँ काहू की जाति-पाँति” की घोषणा करते हैं, निजनिन्दा-अग्रणी हैं। कबीर ने ब्राह्मणों की ही निन्दा की है तथा या तो मुसलमान होने के कारण या मोहम्मदी शासन के भय से वे मोहम्मद का प्रत्याख्यान तो दूर उनकी ब्रह्मवत् स्तुति करते हैं। प्रेमचन्द ने ब्राह्मणों की ही निन्दा की है, स्वयं कायस्थ होने के कारण कायस्थों की नहीं (जिनका कुख्यात शोषण कल्हण की ‘राज-तरंगिणी’ में सविस्तार निन्दा का कारण बना है)। निस्सन्देह, तुलसी अपनी विराट् युगालोचना में कबीर से भी अधिक प्रगतिशील

1. शत-शत रामायणों में वाल्मीकि-रामायण एवं रामचरितमानस के अनंतर अन्यतम कम्ब-रामायण (तमिल) का वर्णन याद आता है : “अयोध्या में कोई धनी नहीं था क्योंकि वहाँ कोई गरीब नहीं था, कोई बलवान नहीं था क्योंकि कोई दुर्बल नहीं था, सत्य की कोई आवश्यकता न थी क्योंकि कोई असत्यभाषी न था, कोई ज्ञानी नहीं था क्योंकि कोई अज्ञानी नहीं था।” कम्बन् की रामायण केशव की ‘रामचन्द्रिका’ के सदृश अतीव कलात्मक है। कहीं-कहीं, विशेषतः विवाह-प्रसंग में, अश्लीलता भी आ गई है। फिर भी, काव्य महान् है। तमिल-साहित्य का सर्वोत्तम ग्रन्थ! आधुनिक महाकवि भारती ने कम्बन् को तमिल का सर्वश्रेष्ठ कवि ठीक ही माना है। कम्बन् तमिल के तुलसी हैं, तिरुवल्लुवर तमिल के कबीर हैं।
2. आज के ‘समाजवादी’ भारत में ‘परिवार-नियोजन’ के सदृश एकपत्नीवाद भी केवल हिन्दुओं पर लागू होता है, जिसे सरकारी प्रचार-तन्त्र नित्य बीस बार गुहार लगाकर स्पष्ट करता है।
3. ‘अंकल साम’ का स्मरण अनायास ही हो जाता है! वे ‘जोन बुल’ या ‘बीअर’ से तो बेहतर है ही, तभी तो उनकी नक़ल दोनों कर रहे हैं।
4. ‘कौल’ की ‘कलवारा’ (मदिरा-व्यवसायी) से संगति नहीं बैठती, जबकि ‘कौल’ की एकदम फ़िट आती है।

हैं, प्रेमचन्द से भी; और यदि ब्राह्मणवाद का आरोप लगाना ही हो तो बुद्ध भी ब्राह्मणवादी थे जिन्होंने पंचवर्गीय भिक्षुओं (कौण्डिन्य इत्यादि) को प्रथम दीक्षा दी, सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को प्रधान प्रचारक नियुक्त किया। बौद्ध धर्म भी ब्राह्मणवादी हैं जिसमें पंचवर्गीय भिक्षु, सारिपुत्र, मौद्गल्यायन, अश्वघोष, नागार्जुन, सरहपा, राहुल, धर्मानन्द कोसम्बी इत्यादि ब्राह्मण भरे पड़े हैं। बौद्धधर्म में बुद्ध के अतिरिक्त सब-कुछ ब्राह्मणमय है। मेगस्थनीज़, फ़ाह्यान, हेनसाँग, इत्सिंग इत्यादि विदेशी भी ब्राह्मणवादी हैं क्योंकि इन्होंने ब्राह्मणों का गौरवगान किया है। अमीर खुसरो भी ब्राह्मणवादी थे जिन्होंने 'नुह सिपहर' में ब्राह्मणों की अतुलनीय एवं सर्वोपरि प्रशंसा की है। प्रसाद भी ब्राह्मणवादी थे जिन्होंने 'स्कन्दगुप्त' एवं 'चन्द्रगुप्त' नाटकों में ब्राह्मणों की महानता पर प्रकाश डाला है। चन्द्रगुप्त मौर्य ब्राह्मणवादी थे, क्योंकि उन्होंने ब्राह्मण को गुरु बनाया। अशोक ब्राह्मणवादी था क्योंकि तिष्यदक्षिणा ब्राह्मणी थी। अम्बेडकर, एम.जी.आर. रामचन्द्रन् इत्यादि भी ब्राह्मणवादी थे, क्योंकि इन्होंने ब्राह्मणियों से विवाह किए। ब्राह्मण सदैव नव्यता का वाहक रहा है। ब्राह्मण ने सदैव नव्यता का स्वागत किया है। अन्तर्जातीय, अन्तर्प्रान्तीय, अन्तर्धर्मी एवं अन्तर्महाद्वीपीय विवाह करने ब्राह्मणियाँ ही अग्रणी रही हैं। अस्पृश्यता-उन्मूलन में उद्दालक से दयानन्द, तिलक से मालवीय और हेडगेवार से विनोबा तक ब्राह्मण ही अग्रणी रहे हैं। नारी-जागरण में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से गहर्षि कर्वे तक ब्राह्मण ही नेता रहा है। अतः ब्राह्मण-निन्दा मिथ्या भी है, कृतघ्नतापूर्ण भी। वह प्रतिक्रियावाद एवं हीन-भाव की प्रतिक्रिया मात्र है। इसे कालातीत मानना उचित होगा। यदि कोई कहे कि तुलसी ने वर्ण-व्यवस्था पर बहुत जोर दिया है तो उत्तर है कि प्लेटो ने गणतन्त्र (द रिपब्लिक) में त्रिवर्ण-प्रतिपादन किया है ('द्विज' भी त्रिवर्णनगत ही हैं), गांधी ने वर्ण-व्यवस्था की प्रशंसा की है। नेहरू ने वर्ण-व्यवस्था की आरम्भिक 'खूबियों' की बात कही है। वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता को एक मानना गलत है। अस्पृश्यता अपराध है। वर्ण-व्यवस्था अनावश्यक है। किन्तु प्राचीन एवं मध्यकालों में ही नहीं प्रत्युत आधुनिक काल में भी यदि कहीं वर्ण-व्यवस्था की चर्चा आए तो उस पर प्रहार निराधार है। मूसा यहूदी को ही जेहोवा-मनोनीत मानते हैं, ईसा केवल स्वानुयायियों की ही स्वर्गानुशंसा की घोषणा करते हैं (तात्पर्य है कि शेष नरकगामी होंगे जैसा कि दान्ते ने 'डिवाइन कॉमेडी' महाकाव्य में चित्रित किया है—ईसा-पूर्ववर्ती भी शुद्ध हुए बिना स्वर्ग में नहीं घुस सकते जैसा कि दान्ते ने उन्हें नरकपथ पर विद्यमान चित्रित कर स्पष्ट किया है तथा मिल्टन ने अपने पूर्वजों को गरियाकर निर्विवाद किया है), मोहम्मद काफ़िर (गैर-मुसलमान) के क़त्ल का आह्वान करते हैं तथा उनकी नरकगामिता की भविष्यवाणी करते हैं। किन्तु हम इनका सम्मान करते हैं, यही नहीं, न्यस्तस्वार्थग्रस्त या अज्ञानी या अनुकरणवादी लोग तो ईसा और मोहम्मद को मानवतावादी-समतावादी इत्यादि कहने का कोरा झूठ भी बड़े धड़ल्ले से बोलते रहते हैं। ऐसी स्थितियों में तुलसी का प्रत्याख्यान राजनीति से प्रेरित मात्र लगता है।

तुलसी के राजनीति-निरूपण का सर्वोच्च एवं चिरंतन सुमेरु परिसंख्या से अलंकृत इस महान् दोहे में दृष्टिगोचर होता है जिसमें वे 'दण्ड' का 'अधिकार' केवल विरक्त एवं निःस्वार्थ तपस्वियों तथा 'भेद' का 'अस्तित्व' केवल ललित-कलाओं (अन्तर या अन्तरा इत्यादि) में प्रतिपादित करते हैं। अधुनातन राजनीति कार्यपालिका (एक्जीक्यूटिव), विधानपालिका (लेजिस्लेचर) एवं न्यायपालिका (जुडीशियरी या जुडिसप्रुडेन्स) के स्वतन्त्र अधिकार-वर्गीकरण का प्रतिपादन करती है जिससे सत्ता का केन्द्रीकरण न हो सके क्योंकि सत्ता भ्रष्ट करती है तथा केन्द्रीभूत-सत्ता नष्ट। राजनीति इससे आगे नहीं जा पाई—

दण्ड जतिन्ह कर, भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।

जीतहु मनहि, सुनिअ अस रामचन्द्र के राज।।

(रामचरितमानस 7/22)

शासक 'दण्ड' का अधिकार तटस्थ-निर्लिप्त उच्च-चरित व्यक्तियों को दे जिससे अन्याय न हो सके, 'भेद' जनता में नहीं अपितु कलाओं में हो जिससे सभ्यता-संस्कृति का विकास हो सके, 'विजय' विरोधियों या अन्य देशों की नहीं अपितु अपने मन पर की जाए जिससे विश्व अशान्ति की विकटस्थली न बन सके।

दर्शन

दर्शन की दृष्टि से भारत संसार का अतुलनीय राष्ट्र है जहाँ प्रतीकात्मक बहुदेववाद का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद रचा गया जो सूक्ष्म एकेश्वरवाद अथवा अद्वैतवाद का आदिग्रन्थ भी है¹, समग्र धर्मों का मूल भी क्योंकि सारे धर्म वेदमूलक² हैं तथा

1. मैक्स मूलर "ऋग्वेद मानवजाति के पुस्तकालय का प्रथम ग्रन्थ है" मानने पर विवश हुआ था।

2. "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" (मनुस्मृतिकार मनु)।

ऋग्वेद वेदों का वेद है। उपनिषद् का अद्वैतवाद अथवा सर्ववाद सारे रहस्यवाद का प्रेरक है, जिसमें यूनानी एवं सूफी दर्शन प्रेरित हुए हैं। सुकरात का “निज को जानो” याज्ञवल्क्य¹ के “आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः” का तथा “सारा जो मैं जानता हूँ यह है कि मैं कुछ नहीं जानता” याज्ञवल्क्य के ही “विज्ञातारं अरे केन विजानीयात्” का सीधा अनुवाद है। सुकरात यूनान के याज्ञवल्क्य थे। उनके शिष्य प्लेटो (अफ़लातून) का विश्वात्मा (‘द वर्ल्ड-सोल’ या ‘द यूनिवर्सल स्पिरिट’) उपनिषद् के ब्रह्म तथा अरब के रहस्यवादी दार्शनिक हल्लाज मंसूर का “अनलहक” याज्ञवल्क्य के “अहं ब्रह्मस्मि” का अनुवाद है। प्लेटो का भारत आना एक निर्विवाद तथ्य है जिसे ‘द स्टोरी ऑफ़ फ़िलॉसॉफी’ में विल ड्यूरो ने भी माना है। अरबों के भारत से भरपूर प्रभावित होने के प्रतिपादन में कट्टर मुसलमान अमीर खुसरो से लेकर कट्टर ईसाई (भारतविरोधी-भारतीविरोधी भी) हेवेल तक एकमत हैं। मक्का के संगे-असवद² को ‘हज़रत मोहम्मद और इस्लाम’ ग्रन्थ में राहुल जैसा कट्टर हिन्दूधर्म-विरोधी एवं घोर-नास्तिक वाम-मार्गी बौद्ध साम्यवादी तक ‘मक्केश्वर’ बताता है। मैंने ‘भारत की एकता’ पुस्तक में भारत के अरब पर प्राचीनतम प्रभाव पर प्रकाश डाला है। भारत परमेष्ठी प्रजापति, नारायण, याज्ञवल्क्य, उद्दालक, श्वतोश्वतर, कपिल, कणाद, गौतम, पतंजलि, बादरायण, व्यास, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, नागार्जुन, वसुबन्धु, शंकराचार्य, रामदास, रामप्रसाद, नारायण गुरु, रामकृष्ण परमहंस, रवीन्द्र, अरविन्द, भक्तिवेदान्त स्वामी इत्यादि संसार के महानतम दार्शनिकों का देश है। विवेकानन्द, भगवान्दास, सुरेन्द्रनाथदास गुप्त, राधाकृष्णन्, कृष्णमूर्ति, चिन्मयानन्द इत्यादि भारतीय दर्शन के व्याख्याताओं तथा रमण महर्षि, मुक्तानन्द परमहंस, महेश योगी—यहाँ तक कि साधनाभ्रष्ट विकृतकाम रजनीश तक—ने सारे सभ्य एवं गतिशील विश्व को प्रभावित किया है। मोहम्मदीयत के सहयोग से ईसाइयत के सारे संसार पर छा जाने तथा तब आदर्श-विश्व³ की कल्पना करने वाला मूर्तिपूजा-विद्वेषी तथा हिन्दू-बौद्ध-जैनादि-धर्म-शत्रु इतिहासकार आर्नोल्ड टॉयन्वी तक को पराभूत भारतीयों द्वारा विजेता पश्चिम को पराभूत करने की आशंका हुई थी! जहाँ तक बृहदारण्यक उपनिषद् के प्रणेता याज्ञवल्क्य का सम्बन्ध है, वे वैज्ञानिक-अद्वैतवाद के जनक माने जा सकते हैं तथा वे निर्विवाद रूप से मानवता के सर्वोपरि दार्शनिक हैं, जिनका प्रभाव शून्यवाद, स्याद्वाद इत्यादि से लेकर मानवतावाद, दिव्यजीवनवाद इत्यादि तक प्रसरित है। योगदर्शन (योगशास्त्र) के प्रणेता पतंजलि संसार के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में है। टॉमस स्टर्न इलिअट (एलिअट) ने भारतीय दार्शनिकों की तुलना में पाश्चात्य दार्शनिकों को पीठ पर बस्ता लादे स्कूली बच्चे माना था। शंकराचार्य तो खैर विश्व के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में प्रतिष्ठित हैं ही। किन्तु, खेद है कि सम्पूर्ण भारतीय दर्शन पर हीनतामुक्त एवं अधुनातन गौरव-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अस्मिताप्रधान सुरेन्द्रनाथदास गुप्त एवं पश्चिमानुवर्ती राधाकृष्णन् इत्यादि अंग्रेजी-ग्रन्थकार हों⁴ या उभयानुवर्ती बलदेव उपाध्याय एवं प्रायः तद्वत् उमेश मिश्र जैसे हिन्दी-ग्रन्थकार⁵ वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद पर आकर चुक जाते हैं। विल ड्यूरो एवं बर्द्गण्ड रसेल⁶ इत्यादि पाश्चात्य दर्शन के व्याख्याता कॉलरिज एवं बायरन इत्यादि कवियों को भी समाहित करते हैं तथा वॉल्टेअर, रूसो इत्यादि नाट्यकार, उपन्यासकार इत्यादि के रूपों में भी विवृत दार्शनिक तो विश्वविख्यात हैं ही, किन्तु हमारे अधिकचरे दर्शन-व्याख्याता कबीर, नानक, सूर, तुलसी, समर्थ रामदास, रामप्रसाद, नारायण गुरु, रवीन्द्र, इक़बाल, प्रसाद इत्यादि की पूर्ण अथवा आंशिक उपेक्षा करते नहीं लजाते, जबकि तथ्य यह है कि इन्हीं, विशेषतः कबीर, सूर, तुलसी, समर्थ रामदास, रामप्रसाद एवं नारायण गुरु का दर्शन आज के कोटि-कोटि भारतीय जी रहे हैं।

तुलसी जैसा समग्र जीवन का विराट् विश्लेषक दार्शनिक न होता तो आश्चर्य होता क्योंकि जहाँ जीवन का विराट् अंकन एवं आकलन होगा वहाँ अनायास समाहित हो जाएगा: ‘दृष्यते अनेन इति दर्शनः।’ डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र ने ‘तुलसी-दर्शन’ शीर्षक गम्भीर प्रस्थान-प्रबन्ध एवं डॉ. उदयभानु सिंह ने ‘तुलसी-दर्शन-मीमांसा’ शीर्षक अध्ययसायपूर्ण-प्रबन्ध लिखे हैं। दोनों पर डी.लिट्. मिला। दोनों पारम्परिक एवं रूढ़ शैली के ग्रन्थ हैं, जिनमें अधुनातन विवेचन-विश्लेषण-संश्लेषण तो नहीं है किन्तु पर्याप्त सामग्री विद्यमान है जिससे

1. बृहदारण्यक-उपनिषद् एवं शतपथ-ब्राह्मण के प्रणेता विश्व के श्रेष्ठ द्रष्टा, ऋषि, दार्शनिक। सम्भवतः ‘याज्ञवल्क्य-स्मृति’ के प्रणेता याज्ञवल्क्य से भिन्न। इन्हें ‘अरे’ शब्द प्रिय था।

2. अशब्द (वर्णनातीत)।

3. ‘हील ऑफ़ हिस्ट्री’ (डॉ. राममनोहर लोहिया), पृष्ठ 13 में प्रखरचित्तक ने उत्कृष्ट विवेचन किया है।

4. दोनों ने द्विखण्डीय बृहत् ‘इण्डियन फ़िलॉसॉफी’ ग्रन्थ प्रस्तुत किए हैं।

5. दोनों ने ‘भारतीय दर्शन’ शीर्षक ग्रन्थ लिखे हैं। महामहोपाध्याय डॉ. उमेश मिश्र ने अंग्रेजी में भी लिखा है।

6. क्रमशः ‘द स्टोरी ऑफ़ फ़िलॉसॉफी’ एवं ‘हिस्ट्री ऑफ़ वेस्टर्न फ़िलॉसॉफी’ के प्रख्यात् प्रस्तोता।

यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि तुलसी दार्शनिक थे। डॉ. रामदत्त भारद्वाज कृत 'फिलासॉफी ऑफ़ तुलसीदास' ग्रन्थ भी पठनीय है, जिसकी प्रशंसा राधाकृष्णन् ने भी की थी।

तुलसीदास एक उच्चकोटि के दार्शनिक हैं जिनके प्रमुख प्रतिपाद्य दो हैं: अवतारवाद एवं दास्याद्वैतवाद (यह शब्द मुझे वेद के देवसान्निध्यवाद, अपने दर्शन बौद्धिक-अद्वैतवाद, अपने साहित्यिक प्रतिपाद्य बौद्धिकरसवाद एवं सांस्कृतिक-प्रगतिवाद इत्यादि के सदृश विषय को एक शब्द में स्पष्ट करने के लिए गढ़ना पड़ा है)। दोनों तत्त्वतः अभिन्न हैं, क्योंकि अवतारवाद में अद्वैतवाद का साधारणीकरण किया गया है। ईश्वरपुत्रवाद (ईसाइयत) एवं पैगम्बरवाद (मोहम्मदीयत) मिथ्या-अवतारवाद के द्योतक हैं क्योंकि सर्वशक्तिमान् ब्रह्म को अपने विज्ञापन के लिए किसी क्षणभंगु उपादान की उपेक्षा नहीं। वल्लभाचार्य इत्यादि के द्वारा लीला की चिरन्तनता का प्रतिपादन शुद्धावतारवाद एवं मिथ्या-अवतारवाद के विश्लेषणार्थ ही किया गया है। अवतारवाद वैदिक एवं औपनिषदिक दर्शनों का विकास है, विपर्यय नहीं, जैसा कि कतिपय अध्ययनकृच्छ अथवा पूर्वाग्रहग्रस्त महानुभाव मान बैठते हैं। 'हिन्दी-साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' (जो 'हिन्दी-साहित्य का नवीन इतिहास' का स्पष्टतर रूप है तथा 'आलोचना-सागर' का प्रथम खण्ड भी), 'विश्वकवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य', 'तुलसी के अध्ययन की नई दिशाएँ', 'तुलसी-साहित्य के सर्वोत्तम अंश', 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य', 'साहित्यिक निबन्ध: नए आयाम', 'भारत की एकता', 'हिन्दू धर्म', 'हिन्दूधर्म: फ़ेथ ऑफ़ फ़्रीडम एंड वे ऑफ़ लाइफ़', 'ऑउटलाइन्स ऑफ़ हिन्दी लिटरेचर' जैसे अपने अनेक ग्रन्थों में मैंने वेद के दर्शन को 'देवसान्निध्यवाद' मानते हुए उसे उपनिषद् के अद्वैतवाद तथा उपनिषद् के अद्वैतवाद को पुराण के अवतारवाद से संश्लेषित किया है। वेद के देवसान्निध्यवाद में द्रष्टा ऋषि इन्द्र (इन्द्रियों के अधिष्ठाता, जीवन के जीवन्त देवता, प्रवृत्ति के सशक्त प्रतीक—खेद है कि इन देवराज के साथ कृष्ण, बुद्ध, महावीर, तुलसी इत्यादि सभी एवं सभी के अनुयायियों ने बड़ा अन्याय किया; कृष्ण का स्वप्रतिष्ठापनमूलक इन्द्र-प्रत्याख्यान, बुद्ध की प्रचारमूलक मार-विजय, जैनों का कुण्डमूलक इन्द्रों का जुलूस, तुलसी का "सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज" का अशोभनीय इन्द्रोल्लेख इत्यादि इस कथन के साक्षी हैं, किन्तु इन सबसे इन्द्र का महत्व भी उजागर होता है, क्योंकि उन्हें उखाड़ना सबको ज़रूरी लगा), अग्नि, मरुत्, उषा इत्यादि देवताओं अथवा प्रतीकों का भव्य मानवीकरण करता हुआ उन्हें सप्रेम आहूत करता है तथा उन सबके 'एक' होने से सर्वथा अभिन्न होने के कारण अनेकता में एकता का प्रत्यय करता है। बाइबिल और कुरान में ईश्वर नरबलि माँगता है। मोहम्मदीयता में ईदुज्जुहा नरबलिमूलक रक्ताक्त-पर्व है। वेद में नरबलि का स्पष्ट (बलिपशु-रूप में अजीगर्त द्वारा पुत्र शुनःशेष की विक्रय-कथा के अर्थ पर विवाद है) उल्लेख नहीं है, यद्यपि बलि का व्यापक विधान है जिसका बुद्ध ने विरोध किया था। ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में प्राप्त 'पुरुष-सूक्त' (जिसके द्रष्टा ऋषि नारायण हैं) अवतारवाद का बीज-सूक्त है जिसमें परमात्मा या विराट् या विराज या पुरुष का उदात्त मानवीकरण किया गया है, जो क्रमशः विष्णु से होता राम, कृष्ण इत्यादि में पर्यवसित हुआ। 'पुरुष' शब्द ही मनुष्य की दिव्यता का अद्वितीय प्रतीक है, जो भयानक 'जेहोवा', एकमात्रपुत्र-पक्षपाती 'पिता', 'खातिमुन्नबी'-'बुद्ध' 'अल्लाह', 'ज़रथुस्त्र (ज़रदुश्त या ज़ोरोस्टर) को दस भेड़ें देने का वायदा करके मुकर जाने वाले 'आहुरा माज़्दा'³ इत्यादि प्रतीकों से नितान्त भिन्न है। नारायण सगुणवाद, साकारवाद एवं अवतारवाद के जनक हैं, जिनका स्थान संसार के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों के मध्य सुरक्षित है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ।।

परमात्मा के इस विराट् रूपविधान (जो महाभारत की श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण के विराट् रूप का प्रेरक है) में परवर्ती विष्णु पत्नी श्री एवं लक्ष्मी (जो कालान्तर में एक कर दी गई) इस पुरुष की पत्नियों के रूपों में विद्यमान है—

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे,

नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तु ।

इष्णान्निषाणामु म इषाण,

सर्वलोक म इषाण ।।

1. मोहम्मद ने अल्लाह को उसकी प्रिया अल्लात छीनकर विधुर बना दिया। अल्लात, लात, मनात, उज्जा इत्यादि देवियों कावा के तीन सौ साठ देवी-देवताओं में थीं जिन्हें ध्वस्त कराके फिंकवा दिया था।

2. 'खुदा' शब्द पर 'पुरुष' की छाप स्पष्ट है जो भारत के पुराने भाई ईरान का है भी—शब्द फ़ारसी का है, अरबी का नहीं।

3. 'अवेस्ता' में स्पष्ट उपासना किया गया है।

उपनिषदों के ब्रह्मनिरूपण से लेकर बौद्ध-शून्यवाद एवं जैन-स्याद्वाद इत्यादि तक को किया अथवा प्रतिक्रिया से प्रेरित करता हुआ यह वैदिक रूपविधान पुराणों के अवतारवाद में पराकाष्ठा प्राप्त करता है। वोधिसत्त्वावतारवाद, तीर्थंकरवाद एवं अवतारवाद तत्त्वतः अभिन्न हैं (संयोगात् तीनों की संख्या चौबीस है) तथा इन सबका प्रेरक ऋग्वेद का 'पुरुष' ही है। अन्य देशों के मज़हब प्रभुपुत्र या प्रभुवार्तावह तक ही जा सके, भारत का धर्म स्वयं प्रभु तक पहुँचा। अवतारवाद औपनिषदिक अहंब्रह्मास्मिवाद अथवा तत्त्वमसिवाद का ही विकास है, "न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्" (महाभारत) की व्याख्या है, अपरिसीय आशावाद की उद्भूति है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।

एक दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू।।

(रामचरितमानस 1/22/1.4)

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।

जो गुनरहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल विलग नहिं जैसे।।

(रामचरितमानस 1/115/1-3)

वेद-उपनिषद्-सम्मत एवं पुराण-पुष्ट अवतारवाद की तुलसी ने जैसी सतक एवं विशद प्रतिष्ठा की है वैसी किसी अन्य दार्शनिक या सन्त या महात्मा ने नहीं। रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ प्रभृति ने प्रस्थान-त्रयी (उपनिषद्-गीता-ब्रह्मसूत्र¹) में भागवत को जोड़कर उसे प्रस्थान-चतुष्टय का रूप प्रदान करते हुए अवतारवाद को दार्शनिक गरिमा तो प्रदान की थी किन्तु उसकी सतक प्रस्तुति करके उसको कोटि-कोटि जनता का जीवन-दर्शन बनाने का श्रेय तुलसीदास को ही प्रदान किया जा सकता है। जिस समय अनेक भेदवादी एवं स्वप्रतिष्ठावादी व्यक्ति मोहम्मदीयत से प्रेरित होकर पंथ-प्रवर्तन द्वारा हिन्दू-धर्म को खंडित कर रहे थे, बिना पढ़े-पढ़ाए या समझे-बूझे ही वेद, शास्त्र, पुराण इत्यादि का "यथा राजा तथा प्रजा" पर आधृत प्रत्याख्यान कर रहे थे, उस समय अभेदवादी एवं चिरधर्मप्रतिष्ठावादी तुलसीदास ने मानव-इतिहास में मानव का चरम उत्कर्ष का दर्शन अवतारवाद प्रतिष्ठापित कर मानवता की महान् सेवा की। जो ईश्वर अपने अनुरूप मानव की सृष्टि कर सकता है, अपने 'एकमात्र पुत्र'² को अवैध रूप से कुमारी माता से उत्पन्न कर सकता है, असंख्य पैगम्बर या नबी भेज सकता है, अरब कबीलों के लिए 'खातिमुन्नवी' की व्यवस्था कर सकता है, वह क्यों नहीं अवतरित हो सकता? वह सर्व-शक्तिमान् है—फिर, उसे कौन रोक सकता है? अवतारवाद आस्तिकता की उज्ज्वलतम भंगिमा है। खेद है कि पाश्चात्य प्रभाव से अभिभूत होने या सम्यक् अध्ययन के अभाव के कारणों से अनेक हिन्दू-तत्व एवं हिन्दू-दर्शनग्रन्थकार अवतारवाद का आकलन नहीं कर सके।

अवतारवाद के अनन्तर दास्यद्वैतवाद तुलसी-दर्शन का सर्वाधिक प्रभावी एवं गहन तत्व है। अद्वैत की अहंमूलक विकृति का प्रत्याख्यान करनेवाले तुलसी द्वैत के परम-विरोधी हैं। वे स्थूल-अहं-मुक्त विशुद्ध अद्वैतवादी हैं किन्तु युग-कठिनता एवं युगानुरूपता के कारण उसे दास्यसंपृक्त रूप प्रदान करते हैं—

आकर-चारि³, लाख-चौरासी। जाति-जीव, जल-थल-नभ वासी।।

सीयराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

(रामचरितमानस 1/7घ/1-2)

उमा! जे रामचरनरत, बिगत काम-मद-क्रोध।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।।

(रामचरितमानस 7/112ख)

जनक, जननि, गुरु, बन्धु, सुहृद, पति सब प्रकार हितकारी।

द्वैत-रूप तम-कूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारी।।

(विनयपत्रिका 113/7-8)

1. वेदान्त-दर्शन।

2. प्रत्येक प्राणी ईश्वरपुत्र है, ईश्वर के 'एकमात्र पुत्र' की चर्चा करना ईश्वर का अपमान तो है ही, मानव का अपमान भी है। यह समतावाद के विरुद्ध भी है, शालीनतावाद के भी। "मैं बुद्ध हूँ, संसार अबोध", "मैं महावीर हूँ, संसार कायर", "मैं पैगम्बर हूँ, संसार पथभ्रष्ट करनेवाले अहंवादी मानवतावादी कदापि नहीं हो सकते। इन्होंने मानव को खण्ड-खण्ड किया है, संसार को रक्ताक्त।

3. स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जरायुज।

जौ निज मन परिहरै बिकारा ।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा ॥

(विनयपत्रिका 124/1-2)

सेवत साधु द्वैत-भय भागै ।
श्री रघुवीर चरन लय लागै ॥
द्वैत-मूल, भय-सूल, सोग-फल, भव-तरु टैर न टार्यो ।
रामभजन-तीछनकुठार लै सो नहिं कोटि निवार्यो ॥

(विनयपत्रिका 202/3-4)

यद्यपि तुलसीदास तत्त्वतः आद्यन्त अद्वैतवादी हैं तथापि वाराणसी के तत्कालीन अद्वैताचार्य मधुसूदन सरस्वती से प्रगाढ़ मैत्री के कारण अन्तिम एवं प्रौढ़तम तथा उद्देगरहित एवं आवेगरहित कृति विनयपत्रिका में वस्तुतः भी अद्वैतवादी हो गए हैं। दूसरी ओर, इसी मैत्री के परिणामस्वरूप मधुसूदन सरस्वती भक्तितत्त्वनिरूपक के रूप में भी अमर हो गए। वाराणसी के राज्यपाल-रूप में अब्दुरहीम खानेखानों द्वारा 'बरवै-नायिकाभेद' दिखाए जाने का परिणाम 'बरवै-रामायण' है। मथुरा-वृन्दावन-यात्रा तथा वयोवृद्ध सूर से सम्भावित मिलन का परिणाम गीतावली एवं श्रीकृष्णगीतावली हैं। महापुरुषों का पारस्परिक सम्पर्क महान् सृजन का कारण बन सकता है। कॉलरिज के साथ एक अटनवार्ता के परिणामस्वरूप कीट्स ने 'ग्रीशिअन अर्न' जैसी अमर कविता रच डाली थी।

तुलसी की दास्यभक्ति का अद्वैतवाद से कोई विरोध नहीं है, क्योंकि आत्मा-परमात्मा का अनन्य एवं अन्योन्य सम्बन्ध किसी भी रूप में वैध एवं वरेण्य है। जब सूफी परमात्मा को पुरुष (ईरान इत्यादि में) या स्त्री (भारत इत्यादि में) माशूक के रूप में प्रतिपादित कर सकते हैं (सूफी-प्रेमसाधना कामवासना से कहीं भी असंपृक्त नहीं लगती—अधिक-से-अधिक वह काम का उदात्तीकृत रूप है), तब तुलसी जैसे दास्यभक्त प्रभु के रूप में क्यों नहीं? दास्य, सख्य, शृंगार (माधुर्य), वात्सल्य एवं शान्त भक्ति-रूप सर्वस्वीकृत हैं ही। अद्वैततत्त्व दास्य भक्ति में पूरा-पूरा खिलता है—

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी। हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो। मो समान आरत नहिं, आरतिहर तो सो ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तही ठाकुर, हौं चेरो। तात-मात-गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो ॥
तोहि-मोहि नाते अनेक, मानिए जो भावै। ज्यों-त्यों तुलसी, कृपालु! चरन-सरन पावै ॥

(विनयपत्रिका/79)

मैं हरि पतिपावन सुने। मैं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने ॥

(विनयपत्रिका 160/1-2)

तुम सम दीनबन्धु न, दीन कोउ मो सम, सुनहु नृपति रघुराई¹!
मो सम कुटिल-मौलि-मलि नहिं जग, तुम सम हरि! न हरत कुटिलाई ॥
हौं मन-बचन-कर्म पातकरत, तुम कृपालु पतितनि-गतिदाई।
हौं अनाथ, प्रभु! तुम अनाथ-हित, चित यह सुरति कबहुं नहिं जाई।।...

(विनयपत्रिका 242)

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक, रघुपति पति मोरे ॥

(रामचरितमानस 3/10/स्तोत्रान्तर/5)

सो अनन्य जाके असि मति न टैर हनुमन्त। मैं सेवक, सचराचर-रूप स्वामि भगवन्त ॥

(रामचरितमानस 4/3)

दास्यभक्ति में दासता ही स्वामित्व है। फिरदौसी के शब्दों में² जो ईसा स्वयं को न बचा सके वह दूसरों को क्या बचाएँगे? उनको 'त्राता' (सेविअर) कहना अन्धास्था है। उनकी दासता पर गर्व करनेवालों के गुलाम जब तुलसी की दास्यभक्ति पर प्रहार करते

1. सन्दर्भ-सौन्दर्यग्रन्थ 'रघुराई' एवं द्वितीय पंक्ति में 'हरि' के प्रयोगों में उच्चतमस्तरीय परिकरांकुर अलंकार उल्लेख्य है।

2. 'शाहनामा' में कई बार। देखें मेरे ग्रन्थ 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' में 'शाहनामा' शीर्षक निबन्ध।

हैं तब उन पर तरस आता है। इसी प्रकार, जब ईसा के न्यायालयदत्त मृत्युदण्ड-दिवस (गुड-फ्राइडे) पर यरूसलेम (जेरूसलेम) में या अन्यत्र क्रॉस (सलीब) ढोनेवालों, धाड़ मार-मारकर रोनेवालों, छाती पर क्रॉस (क्रूस)¹ खोदनेवालों, कई क्रॉस पर चढ़ जाने वालों के प्रशंसक भारत में कुम्भ इत्यादि पर्वों के स्नान पर व्यंग्य करते हैं तथा उसे भारत के सड़े-गले अनाचारपत्र (समाचारपत्र)² बड़ी ठसक से छापते हैं तब श्रेष्ठताग्रन्थिबद्धों पर भी तरस आता है, हीनताग्रन्थिबद्धों पर भी। हुसैन की राजनैतिक हत्या के दिवस (मोहर्रम) पर छाती पीट-पीट कर लहलुहान होने वाले जब सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण इत्यादि पर व्यंग्य करते हैं तब हँसी आती है। ग्रन्थपूजा करनेवाले जब मूर्तिपूजा पर व्यंग्य करते हैं तब आश्चर्य होता है। लेनिन की लाश पूजनेवाले जब राम या कृष्ण की पूजा पर प्रहार करते हैं तब दया आती है—और अब मस्क्वा (मॉस्को) में 'हरे राम हरे कृष्ण' वाले मन्दिर बनाने जा रहे हैं, क्योंकि गोर्बाचोव ने साम्यवादी-कठमुल्लापन को धत्ता बता दिया था, क्योंकि साम्यवाद सोवियत संघ में ही समाप्त हो चुका है। अन्धविश्वास की मनोवैज्ञानिकता को जुग प्रभृति गहन मनोविज्ञानवेत्ताओं तक ने 'मार्डन मैन इन सर्व ऑफ ए सोल' जैसे अनमोल ग्रन्थों में शिरसा स्वीकार किया है। "आपन पूत पुतंधर। दूसरे कपूत धतिंगर" की मूर्खता अब कालातीत हो चुकी है।

तुलसी ने 'दास्यानन्यता' को 'अभिमान' की वस्तु माना है। वह कोरी दीनता नहीं है; और भक्ति या प्रेम में दीनता मीनता बन जाती है, पीनता बन जाती है, लीनता बन जाती है। यों, कई सेवागौरव-विरोधी अथवा क्षमा-विरोधी अथवा निर्धनता-विरोधी अहंवादी दास्यभक्ति को कालातीत एवं मध्ययुगीन दासता की प्रतीक इत्यादि कहकर स्वयं को कालखंडवादी सिद्ध करने में ही गर्व का अनुभव करते हैं।

अवतारवाद एवं दास्याद्वैतवाद तुलसी-दर्शन के प्रमुख तत्व हैं, जिनका तुलसी ने विशद निरूपण किया है। किन्तु उन्होंने ब्रह्म, जीव, माया, जगत् इत्यादि पारम्परिक भारतीय दर्शन-तत्त्वों का भी साधिकार विवेचन किया है। उनकी माया की महान् परिभाषा "मैं अरु मोर तोर तैं माया"³ तो समग्र साहित्य-जगत् में अद्वितीय ही है। आदर्शराज्य (यूटोपिआ), सदाचार, जीवन-गौरव इत्यादि पाश्चात्य दर्शनतत्व भी उनकी सार्वभौम दृष्टि⁴ से नहीं छूटे। निस्सन्देह, तुलसीदास एक उच्चकोटि के दार्शनिक थे तथा कोई भी दर्शन-ग्रन्थ उनके बिना अपूर्ण माना जाएगा, क्योंकि उनका दर्शन कोटि-कोटि मानवों का दर्शन है।

कला-पक्ष

कला-पक्ष की दृष्टि से तुलसीदास संसार के अग्रणी कवि हैं। भाषा-सामर्थ्य में उनकी समता कालिदास एवं शेक्सपीयर तक नहीं कर सकते। केवल रामचरितमानस की भाषा में अबुल कलाम आज़ाद जैसे ब्रजभाषा का पक्ष निकाल सकते हैं (भले ही वह मूर्खतापूर्ण हो), जगजीवनराम जैसे भोजपुरी पक्ष निकाल सकते हैं (भले ही वह विशेष साधार न हो), आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं स्व. मधुकर खरे जैसे वसवाड़ी (बैसवारी) पक्ष निकाल सकते हैं (भले ही वह सर्वांगीण न हो), और अवधी (वस्तुतः जायसी की ठेठ अवधी और द्वारकाप्रसाद⁵ मिश्र की तत्समनिष्ठ अवधी से अत्यधिक व्यापक 'सार्वभौम अवधी') में तो वह है ही। तुलसी ने अवधी को अपने युग की राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान करने में सफलता पाई थी। ऐसी सफलता भारत के किसी संस्कृतेतर कवि को नहीं मिली। आज भी रामचरितमानस समूचे हिन्दी-क्षेत्र से लेकर नेपाल, बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात इत्यादि तक पढ़ा-समझा जाता है। कस्तूरबा गुजराती लिपि में मानस का पाठ करती थीं। अनेक कोशों के प्रस्तोता डॉ. भोलानाथ तिवारी ने मुझे बताया था कि तुलसी ने लगभग सोलह-सहस्र शब्दों का प्रयोग किया है। किन्तु 'तुलसी-शब्दसागर' में 16000 शब्द स्व. हरगोविन्द तिवारी के ही हैं, जिनमें 6000 शब्द स्व. डॉ. भोलानाथ तिवारी ने जोड़े हैं; और दोनों की प्रेरणा के स्रोत 'रामायण-शब्दसूची' के प्रस्तोता डॉ. सूर्यकान्त हैं—22000 शब्दों पर भी मानसेतर ग्रन्थ छूटे-से हैं। विशाल एवं अभूतपूर्व बृहत् 'विश्व सूक्ति कोश' (तीन खण्ड) के सम्पादक-द्वय डॉ. श्यामसुन्दर वर्मा एवं डॉ. मधु वर्मा का अनुमान है कि तुलसी ने कुल प्रायः 30000 शब्दों का प्रयोग किया होगा। रामज्ञा द्विवेदी 'समीर' के 'अवधी कोष' से भी तुलसी को समझने में आंशिक सहायता मिल सकती है—'आंशिक यों कि वे ब्रज एवं संस्कृत के कवि भी हैं। डॉ. भगवतीप्रसाद

1. टाई इसी क्रॉस या क्रूस का ईसाइयत-प्रतीक है।

2. देखें 'जनसत्ता', 25 जनवरी 1989 ('जनसत्ता', 'विरोध का पत्ता', 'भाषा में लत्ता')।

3. रामचरितमानस 3/14/2/1।

4. "दृश्यते अनेन इति दर्शनः" या "दृश्यते इति दर्शनः"।

5. कोशकार एवं स्व. श्रीनारायण चतुर्वेदी (हिन्दी-वीर) के पिता चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा (जिनके त्रिखंडीय 'साहित्यिक ब्रजभाषा कोश' को पुनर्प्रस्तुति-निपुण स्व. डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने पुनर्प्रस्तुत किया है) उनके प्रेरक लगते हैं।

सिंह के पंच-खंडीय विराट् 'राधाकृष्ण भक्ति कोश' भी उनके अध्ययन में सहायक है। तुलसी रामचरितमानस, जानकीमंगल, पार्वतमंगल इत्यादि में अवधी के महाकवि हैं; विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली इत्यादि में ब्रजभाषा के रामचरितमानस के प्रत्येक काण्ड के आरम्भिक श्लोकों और इस महाकाव्य तथा विनयपत्रिका के कतिपय स्तोत्रों में संस्कृत¹ के। संसार-साहित्य में तुलसी जैसा विराट् भाषा-सामर्थ्य दृग्गत नहीं होता। उनकी संस्कृतपुष्ट अवधी एवं संस्कृतपुष्ट ब्रज जायसी की खालिस अवधी एवं सूर की खालिस ब्रज से संस्कृत की सार्वभौमता एवं अप्रतिम सम्प्रेषणशीलता के कारण, अधिक सार्वभौम एवं सम्प्रेषणशील है। छन्द-योजना में भी तुलसी का वैविध्य विस्मयकारी है। एक ओर वे संक्रान्तिकालीन दोहा, छप्पय इत्यादि का साधिकार प्रयोग करते हैं, दूसरी ओर पुनरुत्थानकालीन विद्यापति, सूर इत्यादि के गेय पदों का, तीसरी ओर इसी काल के जायसी इत्यादि की चौपाई का, चौथी ओर कवित्त, सवैया इत्यादि उन छन्दों का जो उनके कारण ही लोकप्रिय हुए क्योंकि केशवदास, सेनापति इत्यादि यत्किंचित् परवर्ती थे तथा ये शब्द आगामी शास्त्रीयकाल पर छा गए, पाँचवीं ओर वे रहीम के प्रिय छन्द बरवै का गुण की दृष्टि से रहीम से भी अधिक सफल प्रयोग करते हैं तथा जन-छन्द सोहर में भी निपुणता सिद्ध करते हैं। वे केशवदास की तरह छन्दों का अजायबघर नहीं बनाते (यद्यपि इसके लिए भी एक विशिष्ट प्रकार की प्रतिभा को नकारा नहीं जा सकता), उनके सहज सौन्दर्य को विवृत करते हैं। तुलसी का अलंकरण² भी सीमान्तक है। वे रूपक-सम्राट् तो हैं ही, उपमा-उत्प्रेक्षा-सन्देह-नरेश भी हैं। उनके अर्थांतरन्यास, दृष्टान्त, परिकर, परिकरांकुर, परिसंख्या, असंगति इत्यादि के प्रयोग भी उच्चतमस्तरीय हैं। 'तुलसी-भूषण' (1754 ई.) के प्रणेता रसरूप के अनुसार प्रभेदों को छोड़कर तुलसी ने 111 अलंकारों का प्रयोग किया है। 'तुलसी-भूषण' एक विलक्षण शास्त्रीयकाव्य है जिसमें अलंकार-परिभाषाएँ काव्यप्रकाश, कुवलयानन्द, चन्द्रालोक इत्यादि की हैं, उदाहरण तुलसी के। विधा-दृष्टि से तुलसी की प्रतिभा सर्वथा अतुलनीय है क्योंकि रामचरितमानस महाकाव्य है, जानकीमंगल एवं पार्वतीमंगल खण्डकाव्य हैं, कवितावली मुक्तककाव्य है, विनयपत्रिका आत्मपरक-गीतिकाव्य है तो गीतावली वस्तुपरक-गीतिकाव्य तो श्रीकृष्णगीतावली मुक्तगीतिकाव्य, दोहावली नीतिकाव्य है, बरवै-रामायण अलंकृतकाव्य है, रामाज्ञाप्रश्न शकुनकाव्य है, वैराग्य-संदीपिनी निर्वेदकाव्य है, रामललानहछू लोककाव्य है। यदि रामचरितमानस विश्व के सर्वोत्कृष्ट वस्तुपरक काव्यों में पवित्रबद्ध है तो विनयपत्रिका विश्व के सर्वोत्तम आत्मपरक काव्यों में—कवितावली के उत्तरकाण्ड के अनेक कवित्तों एवं दोहावली के अनेक दोहों में भी आत्मपरक काव्य के उच्चस्तरीय दर्शन होते हैं। विनयपत्रिका संसार-साहित्य में शेक्सपीयर के सॉनेट्स (154) एवं वर्डस्वर्थ के 'प्रिल्यूड' एवं 'टिटर्न एबी' के योग से भी अधिक गम्भीर, अधिक प्रेरक एवं अधिक कलात्मक आत्मपरक-काव्य है (क्योंकि इसमें व्यष्टि का समष्टि एवं कला का दर्शन से गहनतर समन्वय हुआ है जबकि उल्लिखित कृतित्व में व्यष्टि की प्रधानता है), जिसकी समता सूर की विनयावली, कबीर के बीजक, रवीन्द्र की गीतांजलि इत्यादि भी नहीं कर पाते (क्योंकि सूर में जीवनायाम विस्तीर्ण नहीं हैं; कबीर का अहं सन्तुलित नहीं है, रवीन्द्र की आभिजात्य संकीर्णता नितान्त काल्पनिक है)। शेक्सपीयर मार्मिक हैं किन्तु दार्शनिक नहीं, वर्डस्वर्थ दार्शनिक हैं किन्तु कलाकार नहीं, सूर प्रवाहसम्पन्न हैं किन्तु एकरसगहन नहीं, कबीर बहुआयामी हैं किन्तु अनुद्देगकर नहीं, रवीन्द्र प्रभावी हैं किन्तु सहज नहीं। निस्सन्देह, कुल मिलाकर शेक्सपीयर तुलसी के स्तर के विश्वकवि हैं और इन दोनों समकालीनों को मानवता के इतिहास के सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों में स्थान प्राप्त करने का अधिकार है (ये सारी मानवता के हैं जबकि बुद्ध या ईसा या मोहम्मद अपने-अपने अनुयायियों के ही) किन्तु पावनता या प्रेरणा में वे तुलसी की समता नहीं कर सकते। अन्य महाकवि तुलसी के स्तर के स्रष्टा-द्रष्टा नहीं हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि तुलसी और सूर की तुलना क्यों होती थी? सूरसागर केवल सूर का नहीं क्योंकि उसमें सूरश्याम, सूरज या सूरजदास या सूरजचन्द्र, सूरकल्याण, सूरश्रीगोपाल इत्यादि के पद भी संकलित हैं जिनमें अनेक उच्चस्तरीय भी हैं तथा सूर का वर्णनात्मक काव्य घनआनन्द के सम्प्रदायबद्ध वर्णनात्मक काव्य से भी अधिक असफल है, तीसरे उनकी पहुँच शृंगार, वात्सल्य एवं भक्ति के त्रिकोण में आबद्ध है, चौथे उनके यहाँ ज़िन्दगी के दुःख-दर्द, शोषण-प्रपीड़न, क्रान्ति-हाहाकार इत्यादि के दर्शन नहीं हो पाते। 'गोस्वामी तुलसीदास' ग्रन्थ में आ. रामचन्द्र शुक्ल ने इस सन्दर्भ में एतद्विषयक "सूर सूर तुलसी

1. यद्यपि तुलसी की संस्कृत-रचना में व्याकरणादि की त्रुटियों के कारण ग्रीअर्सन, मिश्रवन्धु, धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि ने उनके एतद्विषयक ज्ञान पर शंका प्रकट की है तथापि डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र इत्यादि ने इसका खण्डन किया है। तुलसी के संस्कृत-छन्द उच्चकोटि के हैं तथा, मेरी समझ में, व्याकरण की त्रुटियाँ "निरंकुशः कवयः" की द्योतक हैं। कालिदास में भी ऐसी त्रुटियाँ कम नहीं हैं। संस्कृत-ग्रन्थों की प्रेरणा से आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "कालिदास की निरंकुशता" ग्रन्थ प्रस्तुत किया था।
2. देखें डॉ. वचनदेव कुमार कृत प्रबन्ध 'रामचरितमानस के अलंकार-योजना' तथा मेरे 'विश्वकवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य' एवं 'तुलसी का अध्ययन की नई दिशाएँ' के सम्बद्ध प्रकरण। 'तुलसी-सर्वेक्षण' में मेरा तुलसी पर लिखित साहित्य एकत्र है।

ससी” को ‘यमक के लोभ’ में रचित माना है, जो ठीक है। भाषा, छन्द, विधा, आयाम, गौरव, प्रभाव इत्यादि के किसी भी बिन्दु पर हिन्दी का कोई महाकवि तुलसी के निकट भी नहीं आ पाता, तुलना का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आश्चर्य है कि डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’ ‘सूर-सौरभ’, ‘भारतीय साधना और सूर-साहित्य’, ‘भक्ति का विकास’, ‘तुलसी का मानस’ प्रभृति ग्रन्थों में “सूर सूर तुलसी ससी” की लकीर के फकीर क्यों बनते हैं! इस प्रकार तो “तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार” को भी मान्यता देनी होगी! डॉ. नगेन्द्र का सूर को हिन्दी का ‘मूर्खन्य’ कवि कहना विशेष विचारणीय नहीं है, क्योंकि उनका क्षेत्र छायावाद ही है। ‘सोम’ जी आगरा जनपद के गाँव में जन्मे, नगेन्द्र जी अलीगढ़ जनपद के गाँव में, अतः दोनों को मातृभाषावाद अभिभूत कर बैठा! यही बात, इतर स्तर पर, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक की सूर-वरीयता पर लागू होती है। किन्तु वस्तुपरक आलोचना इस प्रकार की संकीर्णताओं की विगर्हणा ही कर सकती है। आलोचक की वृत्तिसारूप्यता भयावह होती है, उसका ध्येय आलोच्य के सत्य का विश्लेषण ही है। ग्रीअर्सन, मिश्रबन्धु, आ. शुक्ल, डॉ. माताप्रसाद गुप्त इत्यादि ने तुलसी की जो सकारण सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की है, वही निर्विवादवत् स्वीकृत हुई है और ठीक हुई है। सोम, नगेन्द्र, स्नातक इत्यादि की सूर-वरीयता पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

आकलन

तुलसीदास हिन्दी के अतुलनीयतः सर्वश्रेष्ठ कवि तो हैं ही, वाल्मीकि-व्यास-कालिदास की त्रयी के साथ-साथ भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि भी हैं। वाल्मीकि वृत्त के कवि हैं, तुलसी व्रत के। वृत्त में वाल्मीकि आगे हैं, व्रत में तुलसी। व्यास वृत्त एवं व्रत दोनों के सीमान्त हैं, अतः तुलसी से आगे हैं। व्यास संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हैं¹, किन्तु कला में तुलसी उन तक को पीछे छोड़ देते हैं! कालिदास प्रेम एवं सौन्दर्य के अद्वितीय विश्वकवि हैं, किन्तु तुलसी समग्र जीवन के विश्वकवि हैं। यदि कालिदास मार्दव एवं माधुर्य में आगे हैं, तो तुलसी प्रस्तर एवं प्रेरणा में। भारतेतर एसिआई² कवियों में फ़ारसी के फ़िरदौसी मात्र तुलसी के समकक्ष हैं। फ़िरदौसी फ़सानानवीस हैं, तुलसी रहनुमा। पश्चिम के विश्वकवियों में होमर और शेक्सपीयर मात्र तुलसी के समकक्ष हैं क्योंकि विस्मयवृत्तकारी वर्जिल के आयाम स्फीत नहीं हैं, दांते संकीर्ण ईसाई-धर्मान्धता के दयनीय आखेट हो गए हैं (जो महाकवि होमर, महर्षि सुकरात, महादार्शनिक प्लेटो जैसे महत्तर व्यक्तियों को नरकपथ पर तथा मोहम्मद, अली इत्यादि की भयंकरतम नरक या इन्फ़र्नो में देखते हैं जिसमें अली रो रहे होते हैं—ऐसा घनघोर साम्प्रदायिक व्यक्ति विश्वकवि नहीं कहा जा सकता) तथा ईसाई न होने के कारण पूर्वजों को गाली बकनेवाले और ‘पैराडाइज़’ लॉस्ट में ईश्वर पर ईसा को वरीयता देने वाले द्विविधान्ध मिल्टन लघु-दान्ते मात्र हैं। होमर (ईसा-पूर्व नवीं सदी) का वर्ग वाल्मीकि, व्यास एवं फ़िरदौसी का है। यद्यपि होमर में वाल्मीकि का आदर्शवाद, व्यास या विराट्वाद एवं दर्शन, फ़िरदौसी का प्रस्तर नहीं है तथापि वृत्त-प्रस्तुति एवं शिल्प में वे अतुलनीय हैं। कथाशिल्प एवं जीवन-सत्य में होमर तुलसी से बहुत आगे है; दर्शन एवं जीवन-प्रस्तर में तुलसी होमर से बहुत आगे हैं। शेक्सपीयर मानवानुभूतियों के विश्वकोष हैं, किन्तु एकान्ततः वृत्तिप्रधान भी। शेक्सपीयर का अनुभूतिलोक अतुलनीय है, तुलसी का आदर्शलोक³ वाल्मीकि, व्यास, होमर, कालिदास, फ़िरदौसी, तुलसीदास एवं शेक्सपीयर मानव-इतिहास के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, जिनकी अपनी-अपनी गरिमाएँ प्रशस्य भी हैं, प्रणम्य भी। साहित्यालोचना को अब इनके आयामों तक प्रसरित होना पड़ेगा, तभी संकीर्णता-विमुक्त मानवता को समझा जा सकेगा।

व्यक्तित्व की दृष्टि से तुलसी की समता केवल व्यास से की जा सकती है जिनकी एक कृतज्ञ वंशज के रूप में तुलसी ने अतर्क्य वन्दना की है जो सर्वथा उचित है। व्यक्तित्व में व्यास एवं कृतित्व में वाल्मीकि, कालिदास, फ़िरदौसी, होमर एवं शेक्सपीयर के समकक्ष तुलसी शंकराचार्य के समकक्ष धर्मरक्षक एवं धर्मविवेचक भी हैं तथा हिन्दूधर्म के करोड़ों व्यक्तियों के लिए तुलसीधर्म होने के कारण बुद्ध, ईसा, मोहम्मद इत्यादि के समकक्ष भी। बुद्ध के नास्तिकतावाद-अनात्मवाद-पलायनवाद, ईसा के अव्यवहारवाद-संकीर्णतावाद तथा मोहम्मद के हिंसावाद-बहुपत्नीवाद के सदृश तुलसी की शूदालोचना तथा नारीनिन्दा आलोच्य-बिन्दु हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अपने विश्व कवि एवं धर्मपुरुष के समाहार में तुलसी संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुषों में एक हैं।

1. भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन का एक भाषण किशोरावस्था में पढ़ा था जिसमें ऐसा कुछ कहा गया था—आज सोचता हूँ, टण्डन जी की साहित्य में कितनी गहरी पैठ थी, ऐसी जैसी अन्य किसी नेता की नहीं।
2. एशिया (ए एस एच आई वाई ए) गलत है, ‘एसिआ’ (ए एस आई ए) ठीक। राहुल सांकृत्यायन कृत ‘मध्य एशिया का इतिहास’ अंशतः (‘या’ के कारण) ठीक शीर्षक है।
3. द्रष्टव्य है मेरे ‘विश्वकवि होमर और उनके काव्य’ या ‘विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य’ या ‘विश्वकवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य’ एवं ‘विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य’ ग्रन्थ।

4. कृष्ण-काव्य

कृष्ण की जीवन्तता

कृष्ण वसुदेव-पुत्र वासुदेव का रूपरंग पर आधृत अभिधान था जिनकी ऐतिहासिकता छान्दोग्य-उपनिषद् से भी सिद्ध है (जिसमें उनकी माता देवकी का स्पष्ट उल्लेख विद्यमान है तथा जिनका जिज्ञासु-रूप भी उल्लिखित है जो गीता के दर्शन से प्रमाणित होता है) तथा अधुनातन सागर-सर्वेक्षण से भी (जिसने महाभारत में वर्णित द्वारिकापुरी के सागर-लीन होने के वृत्त को वैज्ञानिक इतिहास के निकष पर भी वास्तविक प्रमाणित कर दिया है तथा उसके ईसा-पूर्व 14-15वीं सदी तक का अस्तित्व निर्विवाद बना दिया जो पुराणों द्वारा परीक्षित के निधन के 1015 (या 1050) वर्ष पश्चात् महापद्मनन्द के राज्यारोहण के समय से भी मेल खाता है)। द्वारिकापुरी आज से साढ़े तीन हजार साल पहले एक उन्नत नगरी थी, जिसका पत्तन (बन्दरगाह) भी प्रभावी था—यह अब विवादास्पद नहीं रहा। 1 दिसम्बर 1988 ई. को लोकसभा में मानव संसाधन विकास मन्त्री ने कहा था कि सरकार कृष्ण के ऐतिहासिक एवं भौगोलिक सन्दर्भों पर विस्तार से अनुसन्धान के हेतु आयोग के गठन पर विचार कर रही है। परम्परा से कृष्ण का समय आज से 5000 वर्ष पूर्व माना जाता है जैसा कि युधिष्ठिरी संवत् 5091 (ईसवी सन् 1989 के दिसम्बर में) से विवृत है। महान् वैज्ञानिक आर्यभट्ट के द्वारा स्थापित महाभारत-युद्ध की तिथि 3102 ईसा-पूर्व इससे मेल खाती है। यह तिथि गणित-ज्योतिष पर आधृत है। इसे अब और भी अधिक चिन्तन-योग्य माना जाएगा क्योंकि 3500 या 3600 वर्ष पूर्व की नगरी प्राचीनतर अवश्य रही होगी। सम्भवतः वसुदेव द्वारिका के राजा थे। कृष्ण जब कंस के श्वसुर मगध-सम्राट् जरासंध (जिनकी दो पुत्रियाँ कंस से ब्याही थीं) के प्रतिशोधात्मक आक्रमण-पर-आक्रमण से विवश होकर मधुरा या मधुपुर या मधुवन¹ (मधु दानव या असुर द्वारा स्थापित नगरी जिसे रामायण-काल में शत्रुघ्न ने लवण नामक असुर या दानव से मुक्त कराया था) त्यागने लगे तब उन्हें द्वारिका जाना ही था। ऐसा लगता है कि मधुरा के राजा कंस के पूर्वजों ने असुर या दानव जाति से सम्बन्ध स्थापित किए थे। अतः कृष्ण का वर्ण आर्यानुरूप न था। हस्तिनापुर का राजवंश तो श्यामवर्ण जातियों से संपृक्त था ही। सत्यवती के पुत्र व्यास कहे गए किन्तु उनका नाम भी वर्णानुरूप कृष्ण था। यह कृष्ण संयोगात् यमुना के एक द्वीप में जन्मे। अतः कृष्ण द्वैपायन कहे गए तथा अन्य कृष्ण (वासुदेव) से भिन्नता-स्पष्टीकरण-हेतु व्यास (विद्वान् सम्पादक, विद्वान् भाष्यकार, विद्वान्-कथाकार-कथावाचक) कहे गए। अर्जुन भी श्यामवर्ण थे। अयोध्या में भी ऐसा ही हुआ था। राम भी कृष्णवर्ण थे, भरत भी। अतः आर्य-द्रविड़-आदिवासी की भिन्नता सहस्राब्दियों-पूर्व ही मिट चुकी थी तथा इसकी चर्चा विभाजनवादी गौरांग, सत्तालिप्सु राजनैतिक दल, देशद्रोही-पंचमांगी और उनकी थैली के चट्टे-बट्टे ही कर सकते हैं। सर एस. राधाकृष्णनन् ने 'इंडियन फिलॉसॉफी' में ऋग्वेद के इन्द्र द्वारा वधप्राप्त कृष्ण नामक असुर ने वासुदेव कृष्ण की संगति मिलाने का आयास किया है। संयोगात् वासुदेव कृष्ण ने कैशोर्य में इन्द्र² तथा प्रौढत्व में वेद³ का विरोध भी किया था। यह तो कहा जा सकता है कि वासुदेव कृष्ण पर मधुरा के पारम्परिक इन्द्र तथा वेद के विरोध का संस्कार प्रभावी था जिसका प्रयोग उन्होंने आर्यतर तत्वों में लोकप्रियता अथवा स्वप्रतिष्ठापन हेतु भी किया था। बुद्ध के कृष्ण के वेदविरोध का अनुकरण करते हुए एक स्वाधृत धर्म ही चला दिया। महावीर ने भी यही किया। बुद्ध के अनुकरण में ईसा ने ईसाइयत चलाई, मोहम्मद ने मोहम्मदीयत। इन सबसे धर्मों और मज़हबों की प्रतिष्ठा हो गई और विश्व में हिंसा बढ़ी। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कृष्णासुर प्राचीनतर व्यक्ति था। केवल नाम से एकता की अटकल लगाना युक्तियुक्त नहीं है। वासुदेव कृष्ण ने पृथक् धर्म तो नहीं चलाया किन्तु वेद को दुर्बल अवश्य किया, देववाद को दुर्बल अवश्य किया। निस्सन्देह, कृष्ण औपनिषदिक अध्यात्मवाद के सुदृढ़कर्ता थे। वे विश्व के प्रथम क्रान्तिकारी विचारक थे। उनका अध्यात्मवाद मानव की सर्वोपरिता के औपनिषदिक दर्शन को लोकप्रिय बनाने में सफल सिद्ध हुआ। उनका निष्कामकर्मवाद पुरुषार्थ एवं ऊर्जा का संवर्द्धक सिद्ध हुआ। उनके अग्रज बलराम या बलभद्र परम्परावादी थे, जिनका विश्वास कृषि-संस्कृति में था, जैसाकि उनके हलधर होने से ही स्पष्ट है। दोनों में मतभेद⁴ था। बलराम-पूजा भी बहुत दिन प्रचलित

1. मधुरा।

2. गोवर्द्धन-कथा इन्द्रविरोध की प्रतीक है।

3. गीता के द्वितीय अध्याय में विशेष रूप से।

4. बुद्ध और उनके रिश्ते के भाई देवदत्त में मतभेद था, ईसा और उनके शिष्य जुदास इस्करियत में मतभेद था, मोहम्मद का उनके चाचा-द्वय अबू लहब तथा अबू जहल में मतभेद था, नानक और उनके पुत्र श्रीचन्द में मतभेद था (श्रीचन्द ने उदासीन-सम्प्रदाय चलाया, जिसमें मूर्तिपूजा का प्रचलन है)।

रही जैसा कि अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों के अतिरिक्त, भास के महान् नाटक 'स्वप्न-वासवदत्तम्' की श्लेष एवं मुद्रा अलंकारों से अप्रतिमतः सम्पन्न वन्दना से भी प्रमाणित है :

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।

पद्मावतीर्णपूर्णो वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥

वलराम कृषि-संभानक थे। व्यक्तिगत जीवन में वे आसव-प्रेमी थे। गौर-वर्ण के सुन्दर-सबल वलराम (बलयुक्त एवं अभिराम) अपने युग के अप्रतिम मल्ल, गदायोद्धा (भीम एवं दुर्योधन के गुरु) एवं निश्चिन्त महापुरुष थे जिनकी पूजा (कृष्ण एवं सुभद्रा के साथ) जगन्नाथपुरी में आज भी जीवन्त है। 'कृष्ण-बलदेव की जय' आज भी प्रचलित है। सूर ने श्याम के साथ वलराम की भक्ति भी की है :

स्याम वलराम कौं सदा गाऊँ ।

स्याम वलराम विनु दूसरे देव कौं स्वप्नहू माहिं हृदय ना लाऊँ ।।

यहै जप, यहै तप, यम-नियम-व्रत यहै, यहै मम प्रेमफल, यहै पाऊँ ।

यहै मम ध्यान, यह ज्ञान, सुमिरन यहै, सूर, प्रभु! देहु, हौं यहै पाऊँ ।।

कृष्ण सरस व्यक्ति थे। वे भी आसव का पान करते थे जैसाकि महाभारत में गंधमादन पर्वत पर अर्जुन के साथ विहार-वर्णन से ही स्पष्ट है। रुक्मिणी एवं सत्यभामा से विवाह तथा जावन्ती-परिणय उनके बहुपत्नीवादी होने के सूचक हैं। नरकासुर की षोडश-सहस्र विधवा पत्नियों का "जो राजा सो पति" की परम्परा का आग्रह भी उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया था। प्राचीन यहूदी-राजा सुलेमान (सोलोमन) का यहूदीयत, ईसाइयत और मोहम्मदीयत में बड़ा आदर है। बाइबिल के अनुसार उनके एक हजार रानियाँ थीं। मध्यकालीन बर्बरता का एक विलक्षण प्रतीक मांडू का सुल्तान गयासुद्दीन था, जिसने 1600 वेगमें बनाई। अतः व्यक्तिगत चरित्र की दृष्टि से मद्भक्त एकपत्नीवादी राम की समता कृष्ण कदापि नहीं कर पाते। कृष्ण ने राम के बालिवध के महान् युद्धादर्श¹ का अनुकरण जरासंध-वध कराने, भीष्म एवं द्रोण का अवसान कराने, दुर्योधन को धराशायी कराने इत्यादि में भी अत्यधिक ही किया है, भले ही वह नीतिसम्मत हो। वे "धनुर्धारियों में राम मैं ही हूँ" कहकर राम का सम्मान करते हैं; यह नहीं कहते कि "धनुर्धारियों में अर्जुन मैं ही हूँ"। राम का धनुष विशालतर था, अर्जुन का विशाल। राम संसार के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हैं। महाभारत पर रामायण का भारी प्रभाव पड़ा है : पाण्डु को ऋषिवध-शाप, द्रौपदी-स्वयंवर, पाण्डव-वनवास इत्यादि इसके प्रमाण हैं। राम का बुद्ध पर भी भारी प्रभाव पड़ा है: वे सूर्यवंशी या रामवंशी² थे, कपिल वस्तु के भूस्वामी परम्परा से श्रावस्ती के रामवंशीयों के करद थे, अश्वघोष ने 'बुद्धचरितम्' में रामायण के प्रभाव से ही सिद्धार्थ के ऐश्वर्य एवं यशोधरा-स्वयंवर की कल्पना की है, राम वनगमन करते हैं तो सिद्धार्थ महाभिनिष्क्रमण! महावीर का वंश भी इक्ष्वाकु से संपृक्त था।

राम और कृष्ण में अन्तर स्पष्ट है—राम वेदवादी हैं तो कृष्ण वेद-विरोधी, राम देववादी हैं तो कृष्ण देव-विरोधी (इन्द्र-विरोधी), राम संयमवादी हैं तो कृष्ण स्वच्छन्दतावादी, राम एकपत्नीवादी हैं तो कृष्ण बहुपत्नीवादी। किन्तु राम और कृष्ण में समानताएँ भी अनेक हैं—दोनों पलायनवादी न होकर पुरुषार्थवादी हैं, दोनों सत्य एवं न्याय के पक्षधर हैं, दोनों परम त्यागी हैं जो युद्धलाभ तक नहीं उठाते, दोनों मैत्री के अप्रतिम निर्वाहक हैं, दोनों लोकप्रिय राजा हैं। "यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः" तथा "यतो धर्मस्ततो कृष्णः यतो कृष्णस्ततो जयः" (यतो कृष्णः ततो धर्मः यतो धर्मः ततो जयः) राम-कृष्ण—साम्य के गहन व्यंजक हैं।

कृष्ण के महान् व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं : 1. महाभारत के योद्धा एवं दार्शनिक नायक कृष्ण जिनका चित्रण कन्नड़ एवं तेलुगू में क्रमशः पम्प तथा कुमारव्यास के महाभारतों एवं नन्नय-तिक्कन-एरन की भिन्नसामयिक त्रयी के स्फूर्त महाभारत में विशेष रूप से प्राप्त होता है और 2. भागवत के लीलाबिहारी एवं प्रेममूर्ति कृष्ण जो संस्कृत (जयदेव), तमिल (विष्णुचित्त, आंडाल या गोदा इत्यादि), असमिया (महापुरुष शंकरदेव एवं महाकवि माधवदेव इत्यादि), गुजराती (नरसी इत्यादि), हिन्दी (विद्यापति, सूर, मीराँ, रसखान, हितहरिवंश, ताज बेगम इत्यादि) प्रभृति पर छाए रहे हैं। ब्रज कृष्ण की लीलाभूमि रही है, अतः ब्रजभाषा-काव्य में लीलाबिहारी कृष्ण की धूम स्वाभाविक है।

1. शत्रु का किसी भी प्रकार पराभव—कम-से-कम हिंसा हो तो विशेष वरेण्य!

2. "हे राम! तुम्हारा वंशजात, सिद्धार्थ तुम्हारी भौति तात!" (मैथिलीशरण गुप्त: यशोधरा)।

गहन लीला-तत्त्व

सगुणवाद-साकारवाद लीला पर आधृत है, अतः चाहे रामसाहित्य हो या कृष्णसाहित्य सबमें लीला की प्रधानता स्वाभाविक है। भारत स्थूल एकेश्वरवाद (जिसे मूसाइयत, ईसाइयत एवं मोहम्मदीयत ने अपने-अपने ढंगों से ग्रहण किया) का आदिदेश है। भारत अद्वैतवाद (जिसे ईसाइयत ने मूसाइयत स्थूलता के साथ ग्रहण किया) का मूलदेश है। किन्तु भारतीय धर्मसाधना जड़ नहीं रही। यही कारण है कि वह एक व्यक्ति की दासी नहीं बनी, एक ग्रन्थ में बँधकर मानवीय विकास का विपर्यय नहीं बनी। संसार के सारे धर्म और मज़हब मिलकर भी हिन्दूधर्म की समता न तो साहित्य की दृष्टि से कर सकते हैं और न महापुरुष की दृष्टि से ही। सतत-विकसित भारतीय धर्मसाधना ने मानव की सर्वोच्चता का अतुलनीय प्रतिपादन अद्वैतवाद या सर्ववाद से प्रेरित अवतारवाद के द्वारा किया है, जो अपने कलात्मक लालित्य में भी अप्रतिम है, क्योंकि निर्गुण-निराकार ब्रह्म में सौन्दर्यबोध की अवतार के समकक्ष विवृति सम्भव नहीं है :

1. लीला सगुन जो कहउँ बखानी ।
सोइ स्वच्छता करै मलहानी ।।
2. भरि लोचन विलोकि अवधेसा ।
तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा ।। (तुलसी)
3. रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालंब मन चकृत धावै ।
सब बिधि अगम बिचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावै ।।
4. निरगुन कौन देस को बासी ।
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति, सौँच, न हासी ।। (सूर)
5. जौ उनके गुन नाहिं, और गुन भए कहाँ ते ?
बीज बिना तरु जमै मोहिं तुम कहौ कहाँ ते ?

(नन्ददास)

खेद है कि पाश्चात्य प्रभाव अथवा शताब्दियों के मोहम्मदीयत एवं ईसाइयत के वर्चस्व के अभिभूत होने के कारण राधाकृष्णन्, सुरेन्द्रनाथदास, उमेश मिश्र इत्यादि भारतीय दर्शन के अंग्रेजी-ग्रन्थकार तथा पाश्चात्य परम्परा की लीक पर ही चलने वाले बलदेव उपाध्याय, उमेश मिश्र इत्यादि भारतीय दर्शन के हिन्दी-ग्रन्थकार सगुणवाद-साकारवाद की सम्यक् व्याख्या नहीं कर पाए। दयानन्द इत्यादि स्थूल वेदवादी भी अद्वैत की विशदता से अन्याय ही करते रहे हैं। किन्तु रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, भक्तिवेदान्त स्वामी इत्यादि ने सगुणवाद-साकारवाद के साथ न्याय किया है तथा इसी कारण से संसार पर इनका व्यापकतर एवं गहनतर प्रभाव पड़ा है। आर्यमूलक पश्चिम का प्रबुद्ध नागरिक एकव्यक्तिदासता- एकग्रन्थदासता से ऊब चुका है। हिंसा एवं घृणा पर आधृत आस्था की वह शताब्दियों से खिल्ली उड़ाता रहा है। उसे केवल चिरविकसनशील सर्ववाद एवं सर्ववादमूलक अवतारवाद ही शान्ति प्रदान कर सकते हैं। मज़हबों में सार्वभौम सौन्दर्य, सार्वभौम कर्तृत्व एवं सार्वभौम दिव्यत्व से सम्पन्न भारतीय अवतारवाद की विशदता का नितान्त अभाव है। हिन्दूघातियों के लगभग एकसहस्र वर्षों के शासन के बावजूद भारतीय राष्ट्र का अवतारवाद-संपृक्त बना रहना अकारण नहीं है।

ब्रह्म विरतन है, अवतार चिरन्तन है, अतः लीला भी चिरन्तन है। अवतारवाद का दर्शन परमात्मा को लोकजीवन में अवतरित कर लोकरक्षण एवं लोकरंजन कराता है। भारत में परमात्मा पराश्रित एवं परानुशासदास न होकर स्वाश्रित एवं स्वशासी है। भारत में परमात्मा सक्रिय एवं समतावादी है। मज़हबों के ईश्वर का विकास नहीं हुआ, जबकि संसार का बहुत विकास हुआ; अतः वह कालातीत प्रतीत होने लगा है। भारतीय धर्म-साधना में परमात्म-चिन्तन का अनवरत विकास संसार के विकास के साथ-साथ चला है।

निम्बार्क, वल्लभ एवं चैतन्य के दर्शन की बहुमुखी प्रेरणाओं को प्राप्तकर, विद्यापति के सृजन की पृष्ठभूमि पर, लोकगीतों एवं लोककथाओं के आधार पर मीरों, सूर, सूरश्याम, सूरश्रीगोपाल, सूरस्वामी, सूरजदास या सूरजचन्द्र या सूरज, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, नन्ददास, रसखान, गदाधर भट्ट, श्रीभट्ट, हरिदास, हितहरिवंश, हरिराम व्यास, ध्रुवदास इत्यादि ने साज़ और आवाज़ का ऐसा समा बाँधा कि रामतनु मिश्र या तन्तू मिश्र से मियाँ तानसेन बने संगीत-सम्राट् कृष्णलीला गा उठे, सलीम चिश्ती की क़ब्र पर विशाल मस्जिद (जिसका 'बुलन्द दरवाज़ा' विश्वविख्यात है) बनवाने और मुईनुद्दीन चिश्ती की क़ब्र

की आगरा से अजमेर तक की पैदल ज़ियारत करने वाले सम्राट् अकबर जन्माष्टमी के पर्व पर जोधाबाई के महल में कृष्ण को झूलने लगे तथा 1605 ई. में अवसान से पूर्व राम-जानकी सिक्का चलाने लगे, शराबी जहाँगीर तक मथुरा के मन्दिर देखने जाने लगा, रहीम लिखने लगे :

यों रहीम चित आपनो कीन्हो चतुर चकोर।

निसि-बासर लागो रहै कृष्णचन्द्र की ओर।।

‘खान’ (पठान) से रसखान बने रसखान रसखान का उत्खनन करने लगे :

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर कौ तजि डारों।

आठहु सिद्धि नवौ निधि कौ सुख नंद की गाय चराय बिसारों।।

नैनन सों रसखान जवै ब्रज के बन-बाग-तड़ाग निहारों।

केतिक ही कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारों।।

मुग़लानी ताज वेशम ने कृष्ण से साफ़-साफ़ कहा : “हैं तो तुरकानी हिन्दुवानी हवै रहूंगी मैं” और नज़ीर अकबराबादी¹ ने ‘यारों’ को ‘कृष्ण कन्हैया का बालपन’ सुनाया। नज़रुल, सागर निज़ामी इत्यादि ने समन्वय को आगे बढ़ाया। आज भी भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश के अनेक मुसलमान कवि कृष्ण-कन्हैया पर कविता लिखते हैं। किन्तु साम्प्रदायिकता की आग को भी फूँक देनेवाली मताधृत राजनीति ने प्रतिक्रियावाद को भारी बढ़ावा भी दिया है। क्रमशः सहज एवं कृत्रिम नेतृत्व का अन्तर आ गया है पुनरुत्थानकालीन एवं बौद्धिकालीन भारत में! विकासवादी इतिहास के धज्जे उड़ा दिए सत्ता के कीटों ने! राष्ट्र को सवर्ण, पिछड़ी जातियाँ, हरिजन, गिरिजन इत्यादि में बाँटकर, हिन्दुओं-मुसलमानों को लगातार लड़ा कर, हिन्दुओं-सिखों तक को अलग-अलग करने की साज़िश पर, हिन्दू-ईसाई मतभेद बढ़ाकर, आर्य-द्रविड़ पार्थक्यवाद को फूँक देकर तोड़ना राजनीति का बीज-मन्त्र बन गया! और, इस मन्त्र पर तन्त्र खड़ा करनेवाले महापुरुष माने गए! इतिहास-चारणों, कविता-चारणों, संगीत-चारणों, चित्र-चारणों इत्यादि ने चरणचुंबनवाद पर सत्य की वलि सदैव ही चढ़ाई है! किन्तु यह सत्य झुठलाना कठिन है कि खुसरो और रामानन्द, कबीर और नानक, तुलसीदास और अकबर ने जैसा एकतावादी नेतृत्व प्रदान किया था वैसा आधुनिक नेतागण नहीं कर सके। 1001-2000 ई. की सहस्राब्दी में हिन्दू-मुस्लिम-एकता केवल अकबर स्थापित कर सका।

‘लीला’ का दर्शन जीवन की दिव्यता का दर्शन है। कृष्ण-साहित्य के कवियों ने इसके ललित तत्त्वों का मनोहारी चित्रण किया है। प्रसिद्ध है कि जब सूर की ख्याति सुनकर गुणग्राहक धर्मनेता एवं विशुद्धाद्वैतवाद-प्रवर्तक दार्शनिक धल्लभाचार्य उनसे मिलने गए तब उन्होंने

मो सम कौन कुटिल, खल, कामी।

जेहि तनु दियो ताहि विसरायो ऐसो नोनहरामी।।...

पद सुनाया! इस पर आचार्य ने कवि को रिरियाने के वजाय लीला के गान की प्रेरणा दी, जिसका परिणाम बाललीला, रासलीला, मुरलीमाधुरी एवं भ्रमरगीत का महान् सृजन एवं उनकी परम्परा के रूप में प्रकट हुआ। परम्परा अब भी जीवन्त है। ‘आचार्य’ शब्द ऐसे ही प्रसंगों में सार्थक होता है। बीसवीं सदी में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ‘कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता’ शीर्षक भावात्मक-निबन्ध लिखा जिसकी प्रेरणा से उपेक्षित-उपेक्षिताओं के प्रति रचना-परम्परा ही स्थापित हो गई तथा ‘साकेत’ (मैथिलीशरण गुप्त), ‘साकेत-संत’² (बलदेवप्रसाद मिश्र), ‘ऊर्मिला’ (नवीन), ‘कैकेयी’ (केदारनाथ मिश्र ‘प्रभात’), ‘ओ अहल्या’ (रामकुमार वर्मा) ‘अहल्या’ (शिवबालक शुक्ल) इत्यादि उत्कृष्ट तथा ‘समरप्रिय’³ (श्रीकृष्ण मिश्र), ‘माण्डवी एक उपेक्षिता’ (सरोज गैरिहर) ‘माण्डवी महाशया’ (ओउम्प्रेमी), ‘अहल्या’ (प्रभा खेतान), ‘कोशलेन्दु भरत’ (परमानन्द जड़िया) इत्यादि अन्य कृतियाँ प्रकाश में आईं।⁴ आचार्य कॉलरिज के साथ कवि कीट्स के एक सांघ्याटन का परिणाम ‘ओड ऑन ए ग्रीसिअन अर्न’, ‘ओड टु नाइटिंगेल’ जैसी अमर कविताएँ

1. शाहजहाँ ने आगरा का नाम अकबराबाद रखा था (जो चला नहीं)।

2. भरत एवं माण्डवी प्रधान चरित्र हैं।

3. कैकेयी।

4. लखनऊ के प्रसिद्ध कवि डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र ‘निशंक’ ने ‘सुमित्रा’ महाकाव्य लिखा है। (एक डॉ. रामकुमार शर्मा ‘निशंक’ भी हैं जिन्होंने रोमानी-काव्य ‘ताजमहल’ लिखा है।)

हैं! सूर की विनयावली उनके सागर की अमर मुक्तामाला है! उनकी दास्यभक्ति प्रशस्य भी है, प्रणम्य भी। गाँधी ने 'माइ एक्स्पेरिमेन्ट्स विद ट्रूथ' ('सत्य के प्रयोग') शीर्षक आत्मकथा की भूमिका में सूर के "मो सम कौन कुटिल, खल, कामी" पद का निदर्शन दिया है तथा इसकी दो आरम्भिक पंक्तियों का अनुवाद भी। विवेकानन्द ने "प्रभु जी! मोरे औगुन चित न धरो" पद से प्रभावित होते हुए इसका अंग्रेज़ी-अनुवाद किया है। रवीन्द्र ने तो सूर पर कविता ही लिखी है। अतः सूर को लीलागान-प्रेरणा देने में वल्लभ का अभिप्राय प्रपत्तिवाद¹ का खंडन न था, क्योंकि स्वयं उनका पुष्टिवाद² प्रपत्तिवाद का ही प्रसन्न-रूप एवं सक्रिय-विकास है, अपितु जीवन को नानाआयामी उल्लास से निष्पन्न करने की प्रेरणा प्रदान करना था, जिससे सूर को अपार लाभ हुआ, साहित्य को अपार लाभ हुआ, दर्शन को पर्याप्त लाभ हुआ, धर्म को पर्याप्त लाभ हुआ।

लीला जीवन-व्यापिनी है। शैशव, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवन, सब उसमें समाहित हैं। कृष्ण-साहित्य के कवियों ने लीला को प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था से मुक्त रखा है क्योंकि वे सुदीर्घ परतन्त्रता से ग्रस्त राष्ट्र को केवल ऊर्जा एवं उल्लास का सन्देश देना चाहते थे। तुलसी में लीला-तत्त्व की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं क्योंकि उन्होंने उसे जीवन के सर्वाधिक निर्णायक-स्थल समरभूमि³ (रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली) तथा जीवन के सर्वाधिक प्रभावी आसन सिंहासन (रामचरितमानस, गीतावली) तक प्रसरित किया है। तुलसी का लीलाचित्रण सर्वोत्तम भी है, गहनतम भी, क्योंकि वह अखिलजीवनव्यापी है, जनरंजक होने के साथ-साथ जनरक्षक भी है। तुलसी निखिलतावादी हैं, सूर निश्चिन्ततावादी। जीवन की सर्वव्यापी व्याख्या, सर्वसनिष्पत्ति, विभाषावैभव, अलंकरण, दर्शन, प्रभाव इत्यादि किसी भी दृष्टि से सूर तुलसी की समता नहीं कर सकते। वर्णनात्मक कविता लिखने में सूर नितान्त असफल हैं। सूरसागर वैसे भी सूर, सूरजदास या सूरजचन्द्र या सूरज, सूरश्याम, सूरश्रीगोपाल, सूरकल्याण, सूरस्वामी इत्यादि की सम्मिलित कृति है। किन्तु सूर का कृतित्व विनयावली, बाललीला, रासलीला, मुरलीमाधुरी एवं भ्रमरगीत में कृष्ण-साहित्य का सर्वोत्तम कृतित्व है, इसमें सन्देह नहीं। सूरसागर हिन्दी का भागवत है। तुलसी के अनन्तर वे हमारे सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। स्वयं उन्होंने तथा उनकी प्रेरणा से शत-शत कवियों ने बाललीला, रासलीला, भ्रमरगीत इत्यादि पर महान् सृजन किया है। परमानन्ददास, सूरश्याम, सूरजदास या सूरजचन्द्र या सूरज इत्यादि ने बाललीला, नन्ददास, हितहरिवंश इत्यादि ने रासलीला, नन्ददास, रत्नाकर इत्यादि ने भ्रमरगीत पर उच्चस्तरीय सृजन किया है। सारी परम्पराएँ अजस्र एवं अनन्त सिद्ध हुई हैं। बीसवीं सदी में कृष्णायन (द्वारकाप्रसाद मिश्र), श्रीकृष्णचरितमानस (प्रियदर्शी), जन-कृष्णायन (महेश अवस्थी) जैसे काव्य इस कथन के प्रमाण हैं। कृष्ण-साहित्य के गहन लीला-तत्त्व ने राष्ट्र को अपार उल्लास प्रदान किया है, तलस्पर्शी जिजीविषा का उन्नयन किया है।

ललित मानवतावाद

पुरुत्थानकाल के समग्र साहित्य की दृष्टि से सर्वोपरि प्रवृत्ति मानवतावाद ही सिद्ध होती है। सन्त-साहित्य स्पष्टतः मानवतावादी है क्योंकि रामानन्द, कबीर, रैदास इत्यादि भारतहृदय उत्तर प्रदेश के महामानव हों या नामदेव इत्यादि महाराष्ट्र के या नानक इत्यादि पंजाब के, सभी ने हिन्दू-मुस्लिम-एकता, अस्पृश्यता-उन्मूलन, जाति-पाँति खंडन इत्यादि के द्वारा इसी का प्रतिपादन किया है। किन्तु सन्त-साहित्य का मानवतावाद कोरा-मानवतावाद है—भाषणात्मक मानवतावाद जैसा कि आज के अधिकांश नेताओं तथा कवियों का है। मानव को एकता का प्रतिपादन यह कहने पर सफल नहीं हो सकता कि राम, ईसा और मोहम्मद एक हैं; वेद, बाइबिल और कुरान एक हैं, मन्दिर, गिरिजाघर और मस्जिद में एक ही परमात्मा का निवास है, क्योंकि यह गलत है। राम का मानवतावाद जाति-पाँति, गौर-श्याम, सबल-निर्बल, सबको एक मानता है, जबकि ईसा केवल अपने अनुयायियों के लिए ही 'पिता' से सिफ़ारिश करेंगे अर्थात् गौर-ईसाई नरकगामी होंगे, मोहम्मद भी ठीक ऐसा ही करेंगे। यह प्रचार कि मोहम्मदीयत समता का सन्देश देती है, एकदम मिथ्या एवं भ्रामक है, जिसका कोई गहरा प्रभाव नहीं पड़ सका। "सब धर्म एक ही शिक्षा देते हैं" का चालू नारा एकदम झूठा है, क्योंकि हिन्दू धर्म के अतिरिक्त सारे मत और मज़हब अपने प्रवर्तक की पूजा की वरीयता प्रदान करते हैं। बौद्ध धर्म में ईश्वर और आत्मा नहीं हैं, जैनधर्म में ईश्वर नहीं है और आत्मा भिन्नाकारी प्राणियों में भिन्नाकारी है, ईसाइयत में ईसा सर्वोपरि हैं तथा मोहम्मदीयत में मोहम्मद

1. दास्यभाव-प्रधान शरणागतिवाद जिसके अनुसार प्रपन्न ही आनन्द-लाभ करता है।

2. सद्धयभक्ति-प्रधान कृपावाद जिसके अनुसार आराध्य-कृपा से ही जीव 'पुष्ट' होता है।

3. उमा! करत रघुपति नर लीला। खेल गरुड़ जिमि अहिगन मीला।।

क्योंकि इन मज़हबों में रूह को क्रयामत या आखिर तक क़ब्रों में पड़े रहना तथा अन्त में ईसा या मोहम्मद की अनुशांसा पर स्वर्ग की प्रतीक्षा करनी है! शुद्ध मानवतावाद का आधार सर्वधर्मैक्य-प्रतिपादन नहीं हो सकता, क्योंकि धर्मों और मज़हबों के प्रवर्तकों या प्रमुखों का ऐक्य-प्रतिपादन नहीं हो सकता, क्योंकि वह निराधार और झूठा है—उसका आधार मानव ही हो सकता है क्योंकि वह शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टियों से तत्त्वतः एक है जिसे मतों और मज़हबों ने अनेक कर दिया है, तोड़ दिया है। मार्क्सवाद ऐसा प्रतिपादन करता है किन्तु उसका वर्गसंघर्षवाद असफल प्रमाणित हो चुका है, उसका घृणावाद कालातीत सिद्ध हो चुका है, उसका आत्मा-परमात्मा-विरोध सर्वतः अमनोवैज्ञानिक है। स्वयं को पुजवानेवालों का आदर सीमित करके, उन पर एक और अखंड मानव को वरीयता प्रदान करके, अतीत को भुलाकर वर्तमान एवं भविष्य के निर्माण को लक्ष्य बनाके ही सच्चे मानवतावाद की स्थापना की जा सकती है, जिसकी अपनी-अपनी डफली पर अपना-अपना राग अलापनेवाले संसार में कोई विशेष सम्भावना फिलहाल नज़र नहीं आ रही, क्योंकि ईसाई पश्चिम अस्पताल और स्कूल और पैसे के जोर से समग्र मानव-जाति को ईसाई बनाना चाहता है, मोहम्मदी-देश भी ठीक यही चाहते हैं और हिंसा का प्रयोग भी जोड़ रहे हैं। दरिद्र, फूटग्रस्त भारत में दोनों का ही अमानवतावादी कार्यकलाप जोरों पर है। निर्गुणप्रधान कवीर इत्यादि सन्तों का कोरा-मानवतावाद स्वपूजामूलकता के कारण विशेष प्रभावी नहीं हो सका। सूफ़ियों में मानवतावाद के प्रति अधिक उत्साह नहीं रहा क्योंकि मोहम्मद की पूजा न करनेवाले की नरकगामिता उनकी घोषित दृष्टि में निर्विवाद है। जो लोग मुर्दनुद्दीन चिश्ती, निज़ामुद्दीन औलिया, जायसी इत्यादि को उदार एवं मानवतावादी बताते हैं वे इनके जीवन और इनसे सम्बद्ध साहित्य से अनभिज्ञ हैं। अक्षर के आराधक को सत्य के उद्घाटन में वस्तुपरक होना ही चाहिए। राम-साहित्य में विशद मानवतावाद के दर्शन होते हैं। किन्तु वह मर्यादित-मानवतावाद है। कृष्ण-साहित्य का मानवतावाद विशद भी है, ललित भी:

1. खेलत में को काको गोसैयाँ?
2. जदपि अहीर जसोदानंदन तदपि न जात छड़े।
उहाँ बने जदुवंस महाकुल, हमैं न लगत वड़े।। (सूर)

कृष्ण से संपृक्त मानवतावाद शत-प्रति-शत निर्विवाद रहा है। गोपी-गवाल, श्वपच, विदुर, सुदामा इत्यादि के प्रकरण कृष्ण को जाति-पॉति, धनिक-निर्धन इत्यादि की सीमाओं से बहुत ऊपर उठा हुआ मानवतावादी प्रमाणित करते हैं।

महान् गीतिकाव्य

पुनरुत्थानकाल हिन्दी-महाकाव्य का स्वर्णकाल है, क्योंकि इसमें विश्वस्तरीय महाकाव्य रामचरितमानस, रामचन्द्रिका एवं पद्मावत रचे गए, जिनकी समता करनेवाले महाकाव्य हमारे महान् साहित्य में भी केवल दो पृथ्वीराजरासो एवं कामायनी मात्र हैं, जिनमें एक संक्रान्तिकाल की सर्वोत्कृष्ट कृति है, एक बौद्धिककाल की सर्वोत्कृष्ट कृति है। संस्कृत को छोड़कर भारत ही नहीं प्रत्युत संसार की किसी भी भाषा में रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, पद्मावत, पृथ्वीराजरासो एवं कामायनी के स्तर के पाँच महाकाव्य नहीं हैं। अंग्रेज़ी में प्रथम श्रेणी का महाकाव्य केवल एक 'पैराडाइज़ लॉस्ट' है किन्तु वह ईसाइयत-संकीर्णताबद्ध है। मानवतावाद अलंकरण, आकार इत्यादि में वह मानस के समकक्ष नहीं है। संस्कृत में अवश्य रामायण, महाभारत, रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, मेघदूतम् (कालिदास कृत महाकाव्य-लघुत्रयी), किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम् (भारवि-माघ-श्रीहर्ष कृत महाकाव्य-वृहत्त्रयी) का गुण-परिमाण सर्वतः अतुलनीय है। किन्तु पुनरुत्थानकाल हिन्दी-गीतिकाव्य का स्वर्णकाल भी है, जिसमें विश्व के एक सर्वश्रेष्ठ गीतकार सूरदास का अप्रतिम गीतिकाव्य-सागर (सूर-सागर) लहराया, विश्व की सर्वश्रेष्ठ गीतकरी मीराँ की हतंत्री ने मानवता को झंकृत किया, मधुरगीताचार्य विद्यापति (जिन्होंने रवीन्द्र को प्रेरित किया) ने गुणवत्ता में अद्वितीय सृजन किया तथा नन्ददास, परमानन्ददास, हितहरिवंश, हरिदास, तानसेन इत्यादि के समग्र स्वरों से मिलकर जो विराट् स्वर उभरा उसने उत्तर भारत को संगीत का निकेतन बना दिया, जो संसार के गीतिकाव्य के इतिहास में सर्वथा अतुलनीय प्रमाणित हुआ। गीतकार के रूप में विद्यापति, सूर एवं मीराँ की समता संक्रान्तिकाल, शास्त्रीयकाल एवं बौद्धिककाल का कोई कवि नहीं कर सकता। इनके समकक्ष गीतकार के रूप में तुलसी का नाम आता है जो इसी काल की विभूति थे। अंग्रेज़ी के सर्वश्रेष्ठ गीतकार शेली (शेले) तथा बांग्ला के सर्वश्रेष्ठ गीतकार रवीन्द्र भी सूर की तुलना में सुनियोजित विचारों के कवि-वक्ता मात्र लगते हैं क्योंकि इन दोनों के यहाँ वह सहज, अकृत्रिम एवं प्रसन्न अनुभूति कहाँ जो सूर में ऊँह-चूँह है? रवीन्द्र के गीतों में विद्यापति का प्रसन्न प्रवाह कहाँ? वैसे भी, विद्यापति प्रेरक हैं और रवीन्द्र प्रेरित! महादेवी में मीराँ की

कलारहित-कला कहाँ? विनयपत्रिका, गीतावली एवं श्रीकृष्णगीतावली के सक्षम गीतकार तुलसीदास भी (जिनके समग्र-कवि-व्यक्तित्व की समता सूरदास नहीं कर सकते) सहज-गीतकार सूरदास की तुलना में प्रयत्नज-गीतकार लगने लगते हैं। निस्सन्देह, विनयपत्रिका की गहनता सूर की विनयावली में नहीं है किन्तु सूर सहज-गीति में तुलसी से आगे हैं। मैं 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के विद्वान् लेखक रामकुमार वर्मा की इस सम्मति से सहमत नहीं हूँ कि गीतावली की वर्णनात्मकता गीतिकाव्य के अनुरूप नहीं है क्योंकि सूरसागर में भी वर्णनात्मकता प्रायः आद्यंत विद्यमान है, किन्तु, यह सत्य है कि सहज-गीति में सूर का सागर अप्रतिम है। श्रीकृष्णगीतावली तो सूरसागर का परिशिष्ट मात्र लग सकती है।

गीतिकाव्य एक व्यापक शब्द है क्योंकि मानव गीत का रचनाकार भी है, गायक भी। वह ऋग्वेद इत्यादि वेदों, वाइविल एवं कुरान¹ को भी गीतिकाव्य का रूप प्रदान करना जानता है। रामचरितमानस की नाना मनोहारी गायन-शैलियाँ उसे सूरसागर से बहुत अधिक लोकप्रिय 'गीतिकाव्य भी' सिद्ध कर सकती हैं। अतः डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की नई कविता में एक प्रकार के संगीत के अभाव की बात सतही है। मुंशी अजमेरी गद्य गाकर श्रोताओं को चमत्कृत कर देते थे। निराला अपनी मुक्त कविताएँ वाद्य पर भी बखूबी गाया करते थे। उनकी 'वर दे, वीणावादिनि, वर दे' कविता स्वतन्त्र भारत की सर्वाधिक गेय वन्दना बन चुकी है। साहित्य संगीत के पीछे नहीं चलता, संगीत साहित्य के पीछे चलता है। ललित-कलाओं में साहित्य की सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद है। संगीत के पीछे कुछ साधारण गीत ही चल सकते हैं। किन्तु प्रचलित अर्थों में गीत उसे कहते हैं जो प्रायः वर्णनात्मक न होकर भावात्मक हो, संक्षिप्त एवं एक कसी हुई भावना को बिम्बित या शाब्दित करता हो, संगीत की कसौटी पर भी खरा उतर सकता हो, सरल एवं प्रवाहपूर्ण भाषा-शैली में प्रस्तुत किया गया हो—और इस दृष्टि से सूर एवं मीराँ हिन्दी ही नहीं, भारत ही नहीं, प्रत्युत संसार के महान् गीतकारों में सम्मिलित हैं तथा विद्यापति एक सफल विश्वस्तरीय गीतकार हैं। दर्शन एवं रस से सरावोर कृष्ण-साहित्य के कुछ महान् गीत देखिए :

1.

अनुखन माधव माधव सुमिरइत सुंदरि भेलि मधाई।

ओ निज भाव सुभावहि विसरल अपने गुन लुबधाई।।...

भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि छल छल लोचन पानि।

अनुखन राधा राधा रटइत आधा आधा बानि।।

राधा सयँ जब पुनतहि माधव, माधव सयँ जब राधा।

दारुन प्रेम तवहि नहिं दूटत बाढ़त बिरह क बाधा।

दुहुँ दिसि दारु दहन जइसे दगधइ आकुल कीट परान।

ऐसन बल्लभ हेरि सुधामुखि कबि विद्यापति भान।।

(विद्यापति)

2.

देखि री! हरि के चंचल नैन।

खंजन, मीन, मृगज चपलाई नहिं पटतर इक सैन।।

राजिवदल, इंदीवर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति।

निसि मुद्रित, प्रातहि वै बिगसत, ये बिगसे दिन-राति।।

अरुन, असित, सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाय।

मनो सरस्वति, जमुन, गंग मिलि आगम कीन्हों आय।।

(सूर)

3.

बसो मेरे नैनन में नँदलाल!

मोहनि मूरति, साँवरि सूरति, नैना बने विसाल।।

मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, अरुन तिलक दिए भाल।

अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती माल।।

(मीराँ)

1. मोहम्मद के अनेक समकालीन उन्हें शायर मानते थे। उन्होंने उस मान्यता का खंडन किया है। इसी सन्दर्भ में कवियों की निन्दा भी की है।

4. जौ उनके गुन नाहिं, और गुन भए कहाँ तें?
 बीज बिना तरु जमै मोहिं तुम कहाँ कहाँ तें?
 वा गुन कौ परछाँह री! माया दरपन वीच।
 गुन ते गुन न्यारे भए, अमल वारि जल कीच।।
 सखा सुनु स्याम के!
 (नन्ददास)
5. रहो कोउ काहू मनहिं दिए।
 मेरे प्रान नाथ श्री श्यामा सपथ करौं तिन छिए।।
 जो अवतार-कदंब भजत हैं धरि दृढ़ ब्रज जु हिए।
 तेऊ उमगि तजत मर्यादा बन विहार रस पिए।।
 खोए रतन फिरत जे घर घर, कौन काज इमि जिए?
 हित हरिवंश अनत सचु नाहीं बिन या रसहिं पिए।।
 (हितहरिवंश)

आकलन

पुनरुत्थानकालीन कृष्ण-साहित्य का हिन्दी साहित्य के इतिहास में अत्यन्त उच्च स्थान है, क्योंकि गुणवत्ता में वह राम-साहित्य के अनन्तर अन्यतम है तथा परिमाण में अतुलनीय। छायावाद-प्रशंसक डॉ. नगेन्द्र स्वच्छन्दतावादी होने के कारण मर्यादावादी तुलसीदास की उपेक्षा करते हुए एक ओर सूर को हिन्दी का मूर्खन्य कवि मानते हैं और दूसरी ओर नितान्त आत्मवादी होने का परिचय देते हुए छायावादी कविता को हिन्दी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ महत्व प्रदान करते हैं—उनकी मान्यताओं में विरोध स्पष्ट है। विद्यापति, सूर, मीराँ, रसखान, नन्ददास, हितहरिवंश इत्यादि के कृष्ण-साहित्य की समता स्वच्छन्दतावादी कविता न गुण में कर सकती है, न परिमाण में। पुनरुत्थानकालीन कृष्ण-साहित्य की जीवन्तता बौद्धिककालीन स्वच्छन्दतावादी साहित्य में कहाँ? कहाँ नाचती-गाती श्रमनिष्पन्न जनकविता और कहाँ आँसुओं में डूबी पलायनग्रस्त विद्वज्जन-कविता! कामायनी का इड़ाविरोधी श्रद्धावाद सूर के ज्ञानयोग-विरोधी प्रेमवाद से प्रभावित है—तत्त्वतः एक है। सूरसागर की विराटता कामायनी की संकीर्णता में कहाँ? निस्सन्देह, प्रसाद-निराला-पन्त की वृहत्त्रयी हिन्दी-साहित्य में अमर है तथा महादेवी आधुनिक विश्व की अद्वितीय कवयित्री हैं, किन्तु सूर का विराट् विश्व-स्तर एवं मीराँ की विश्व-कवयित्रियों में निर्विवाद सर्वश्रेष्ठता, विद्यापति का अमर गीतिकाव्य, रसखान का ललित सृजन, नन्ददास का गहन दर्शन, हितहरिवंश की मार्मिक रससाधना इत्यादि मिलकर जो जीवनवादी-जनवादी कविता प्रस्तुत करती हैं उसकी समता इनसे वही व्यक्ति कर सकता है जो वस्तुवादी न हो, प्रभाववादी से अभिभूत हो। पुनरुत्थानकालीन कृष्ण-साहित्य जीवनरस से ऊँभ-चूभ है, जनजीवन से संपृक्त है, संगीतामृत से सराबोर है। उससे श्रेष्ठतर इन सब तत्वों से परिपूर्ण होने के साथ-साथ शक्तिसम्पन्न एवं आशावादी राम-साहित्य ही हो सकता है।

प्रमुख कवि

विद्यापति

हिन्दी के प्रथम महान् गीतकार एवं बहुमुखी काव्य प्रतिभा से सम्पन्न महाकवि विद्यापति (1360-1446 ई.) ने चैतन्य महाप्रभु जैसे कीर्तनप्रधान दार्शनिक-भक्तों, सूर जैसे प्रेमतत्त्वप्रधान महाकवियों एवं रवीन्द्र जैसे काव्यप्रधान कलाकारों को प्रभावित करते हुए भारतीय साहित्य में एक उच्च एवं अमर स्थान प्राप्त किया है। चैतन्य महाप्रभु उनके अपूर्व संगीतमय पद गा-गा कर नाचते थे तथा मूर्च्छित तक हो जाते थे। सूफियों में यह 'हाल' की स्थिति कही जाती है। चैतन्य महाप्रभु भारत के सर्वश्रेष्ठ धर्मपुरुषों में थे जिनकी नृत्य-कीर्तन भक्ति-पद्धति मध्यकाल पर बहुत प्रभावी रही। सैयद अकबर अली, उमर अली, बांग्ला-भक्त कबीर, बांग्ला-भक्त कबीर

शेख, लाल मामूद, सैयद मुर्तजा प्रभृति मुसलमान भी उनसे प्रेरित हुए। आधुनिक काल में 'रवीन्द्र कृत' भानुसिंहर पदावली' पर उनका प्रभाव दृग्गत होता है। अधुनातन पाश्चात्य कृष्ण-चेतना के कारण चैतन्य विश्व-पुरुष हो गए हैं। इस आन्दोलन के प्रवर्तक भक्तिवेदान्त स्वामी उन्हीं की परम्परा के महापुरुष थे। ऐसा महापुरुष विद्यापति के काव्य से आह्लादित होता था। सूर पर उनका प्रभाव थोड़ा श्रृंगारिक-कविताबद्ध है, किन्तु है अवश्य। रवीन्द्र पर उनका प्रभाव शैलीगत है। रवीन्द्र ने कबीर की आत्मा को विद्यापति के शरीर में प्रकट किया है। विद्यापति ने शताब्दियों तक बांग्ला के आदिकवि का गौरव प्राप्त किए रखा और चंडीदास इत्यादि को प्रभावित किया। रमेशचन्द्र दत्त जैसे विश्रुत विद्वान् के अनुसार, "चंडीदास की कविता विद्यापति की कविता से ही प्रबुद्ध हुई थी।" अपने जीवन-काल में ही उन्हें 'अभिनव-जयदेव', 'सुकवि-कंठहार', 'कविशेखर', 'नव-कविशेखर', 'कविवर', 'सरस-कवि' इत्यादि अनेक पदवियाँ प्राप्त हुई थीं तथा तब से अब तक वे मिथिला के जनजीवन पर सर्वविध व्याप्त रहे हैं। स्त्रियों में उनकी श्रृंगारिक-पदावली अत्यधिक लोकप्रिय ही है, पुरुषों में भक्तिपरक-पदावली। सम्भवतः उनकी अतिश्रृंगारिकता की प्रतिक्रिया 'विद्यापति' के रूप में वैसे ही व्यक्त हुई है जैसे कबीर की उच्छृंखलता 'कबीर'² के रूप में। उनकी लोकप्रियता आज भी ज्यों-की-त्यों है। मिथिला के सरस अंचल में उनके गीत गूँजते हैं। यह गूँज उड़ीसा, बंगला, असम तक सुनाई पड़ जाती है। मिथिला के सरस अंचल में उनकी कथाएँ बराबर सुनी-सुनाई जाती हैं। उनकी अमरता का प्रधान आधार 'पदावली' है, जिसकी अपूर्व-मधुर एवं अप्रतिम सरस मैथिली मागधी की मध्य-शाखा से उसी प्रकार उद्भूत हुई जिस प्रकार क्षेत्रगत परिस्थितियों के अनुरूप मगही एवं बांग्ला। मगही की पूर्व-दक्षिणीय शाखा से असमिया एवं पश्चिमी-शाखा से भोजपुरी का उद्भव हुआ। अपनी महान् एवं समन्वयशील प्रतिभा के कारण विद्यापति हिन्दी को बांग्ला, असमिया एवं उड़िया से जोड़ते हैं। निस्सन्देह, उनकी मैथिली हिन्दी की विभाषा है तथा उनका साहित्य हिन्दी-साहित्य। उनके अपभ्रंश (अवहट्ठ) काव्य 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका', जिनमें क्रमशः महाराज कीर्तिसिंह एवं महाराज शिवसिंह का कीर्तिगान हुआ है, साहित्यिक दृष्टि से 'पुरानी-हिन्दी' के अमर ग्रन्थ हैं। उन्होंने संस्कृत में प्रभूत रचना भी की है तथा उनकी अपभ्रंश एवं मैथिली विशेष संस्कृतनिष्ठ होने के कारण साधारणीकरण-सक्षम हैं। विद्यापति मैथिलकोकिल नहीं, भारतकोकिल थे।

विद्यापति हिन्दी को बांग्ला से जोड़ते हैं, खुसरो हिन्दी को उर्दू से जोड़ते हैं, गोरखनाथ हिन्दी को पंजाबी से जोड़ते हैं, मीरा (मीरा) हिन्दी को गुजराती से जोड़ती हैं। भाषाविज्ञान की स्थूल वर्गीकरण-शृंखलाओं को तोड़ते हुए यह साहित्यिक ऐक्य आज भी जीवन्त है। इसे ही वरीयता प्राप्त होनी चाहिए, क्योंकि जीवन सर्वोपरि सत्य है। खुसरो ने हिन्दी इत्यादि को 'हिन्दवी' कहा, दाऊद ने हिन्दुकी या हिन्दुगी, जायसी ने हिन्दुई, क्योंकि ये एकता को अधिक गहराई से समझते थे। विद्यापति का 'देसिल वअना' या 'देसिल वयना' इसी एकता से ऊभचूभ है।

महान् आनुवंशिकता

विद्यापति का जन्म एक महान् विद्वत्ता-परम्परा-सम्पन्न ब्राह्मण वंश में हुआ था। यह वंश लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों का कृपापात्र था। ठाकुर पदवी इसी की संकेतक है, जिसके दर्शन रवीन्द्र इत्यादि में भी होते हैं।³ इनके पूर्वजों ने अनेक उच्चस्तरीय संस्कृत-ग्रन्थ रचे थे। इनके 'बीजीपुरुष' विष्णु ठाकुर थे, जिनके पौत्र कर्मादित्य अपने ऋग्वेद-सामवेद-यजुर्वेद-पांडित्य के कारण 'त्रिपाठी' की उपाधि से सम्मानित हुए थे। विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर भी अच्छे विद्वान् थे। इनकी माता गंगोदेवी या गंगादेवी भी विद्वान् परिवार की थीं। विद्यापति के वाचस्पति ठाकुर, हरपति ठाकुर, नरपति ठाकुर नामक तीन पुत्र तथा सम्भवतः दुल्लहि नामक एक कन्या अर्थात् चार सन्तानें थीं, जिनमें 'दैवज्ञबान्धव' नामक ज्योतिष-ग्रन्थकार एवं मैथिली-कवि हरपति ठाकुर विशिष्ट थे। इनकी एक पुत्रवधू चन्द्रकला कवयित्री थीं। इनका जन्मस्थान विसपी, जो गढ़विसपी के नाम से भी विख्यात था, विहार के दरभंगा जिले में है। दरभंगा शताब्दियों तक ब्राह्मण राजाओं के शासन में रहा। यह क्षेत्र विद्वत्ता का असामान्य क्षेत्र रहा है। दरभंगा 'द्वारवंग' का जनकृत रूप है और विद्यापति ने इसी 'द्वार' से बांग्ला-साहित्य का उद्भव-प्रवेश कराया था। इनके गुरु हरि मिश्र एक

1. 'मैला आँचल' (फणीश्वरनाथ 'रेणु' कृत आंचलिक-उपन्यास) में इसका प्रचलित रूप चित्रित है।

2. होली के अश्लील-गीत।

3. रवीन्द्रनाथ इत्यादि की 'टैगोर' विशेषण ठाकुर का ही आंग्लदासताप्रतीक रूप मात्र है। ये सब भी ब्राह्मण थे। वैसे, विहार में 'ठाकुर' राजपूतों का भी विशेषण है, नाइयों का भी। चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार, अशोक इत्यादि प्रतापी मौर्यवंशीय सम्राटों के नाई होने के कारण इस जाति की अच्छी प्रतिष्ठा रही है।

उत्कृष्ट विद्वान् थे। मिश्र शब्द का एक अर्थ है सर्वोत्तम तथा व्यापक अर्थ है मिलाजुला। अपने दोनों ही अर्थों में यह पदवी व्यापक-आयामी रही है। मंडन मिश्र एवं उनकी युग-गार्गी पत्नी भारती से डॉ. उमेश मिश्र तक यह विद्वत्-परम्परा अक्षुण्ण रही है। 'वाणीभूषण' नामक छन्दशास्त्र-ग्रन्थ के प्रस्तोता दामोदर मिश्र¹ महाराज कीर्तिसिंह के आश्रय में थे। 'प्रसन्न-राघव' जैसे अमर-अमर नाटक के कलाकार जयदेव मिश्र विद्यापति के सहाध्यायी थे। जयदेव मिश्र का उपनाम पक्षधर मिश्र था। इनके भतीजे वासुदेव मिश्र ने 'न्यायसिद्धान्तसार' ग्रन्थ रचा था। श्रीदत्त मिश्र, मधुसूदन मिश्र, मुरारि मिश्र², वाचस्पति मिश्र³, भगवान मिश्र, शंकर मिश्र, मिसरू मिश्र, जगद्धर ठाकुर, अच्युत ठाकुर, रवि ठाकुर⁴, पद्मनाभदत्त, रुचिपति इत्यादि विद्यापति के समसामयिक विद्वान् अब तक प्रसिद्ध हैं। वाचस्पति मिश्र, दिवाकर मिश्र एवं प्रभाकर मिश्र की परम्परा मिथिला में सतत जीवन्त रही। गंगानाथ झा, अमरनाथ झा, आदित्यनाथ झा, भैरवनाथ झा, वेणीशंकर झा इत्यादि में इसका नानाआयामी आधुनिक रूप जाज्वल्यमान् हुआ! 'झा' शब्द 'उपाध्याय' से 'उपज्झाओ', 'उपज्झा', 'ओझा' की यात्राएँ करते हुए गुरु या विद्वान् या प्राध्यापक का पर्याय है। उपाध्याय गुरु, महोपाध्याय गुरु का गुरु तथा महामहोपाध्याय गुरु के गुरु का गुरु। स्वयं विद्यापति महामहोपाध्याय थे! कालान्तर में, अंग्रेजों ने महामहोपाध्याय को बहुत बड़े विद्वानों के लिए मान्य उपाधि का रूप प्रदान किया। अनेक राजाओं एवं रानियों का राज्यकाल देखते, अनेक उत्थान-पतन देखते, अपने मित्र महाराज शिवसिंह द्वारा प्रदत्त विसपी ग्राम के स्वामित्व के कारण सम्पन्नता का सुख प्राप्त करते, महाराज शिवसिंह के वीरगति प्राप्त करने पर उनकी स्मृति की व्यथा का अनवरत अनुभव करते, अपने परम सेवक उगना या उदना के अवसान पर अव्यवस्थित होते⁵, सुदीर्घ आयु में सामयिक परिस्थितिवश काशी न जा सकने के कारण किन्तु तथमपि गंगातट पर प्राणत्याग की स्पृहा से सिमिरिया⁶ की ओर जाते बरौनी के पास वाजितपुर में विद्यापति ने अमरत्वलाभ किया। उनके समाधिस्थल पर निर्मित विद्यापतिनाथ मन्दिर आज भी विद्यमान है। विद्यापति मिथिला के पुराण-पुरुष रहे हैं।

भक्ति

विद्यापति जन्म से शाक्त, जीवन से शैव, रुचि से वैष्णव एवं आत्मा से अद्वैतवादी थे। अद्वैतवाद का स्थूल रूप एकेश्वरवाद है, सूक्ष्म रूप सर्ववाद। उन्होंने दुर्गाभक्तिरंगिणी रची और मैथिल-ब्राह्मण शाक्त होते ही हैं, उन्होंने शैवसर्वस्वसार रचा और उनकी समाधि विद्यापतिनाथ मन्दिर के रूप में आज भी विद्यमान है, उन्होंने तन्त्रार्णव रचा और तन्त्र शाक्तों एवं शैवों का मिलनकेन्द्र है, उनकी राधाकृष्ण-प्रेम-पदावली गाकर चैतन्य महाप्रभु नृत्य करते थे और उनकी हस्तलिखित भागवत की प्रति उपलब्ध है—उनकी वैष्णवता सिद्ध है। ईसाई-और मोहम्मदी मान्यतावाले लोग रिलीजन या मज़हब जानते हैं, धर्म नहीं। वहाँ एक प्रभुपुत्र या पैगम्बर में क्रयामत तक दासवत् बद्ध रहना ही आस्था एवं पुण्य है। उनकी मानसिक दासता हममें से अनेक को अब तक अभिभूत किए है। इसीलिए, विद्यापति के सम्प्रदाय पर बड़े जोर-शोर से विवाद हुआ है। संसार के आदिग्रन्थ ऋग्वेद के "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" एवं "एकं सन्त बहुधा कल्पयन्ति" इत्यादि ने बहुदेववादी विश्व को एकेश्वरवाद का दर्शन प्रदान किया तथा अनीश्वरवादी तत्त्वों को भी प्रतिक्रियाप्रेरित किया जैसाकि मनुस्मृतिकार महर्षि मनु को "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" स्थापना से स्पष्ट है। किन्तु स्थूल एकेश्वरवादबद्धता

1. भोज के सभा-कवि हनुमन्नाटक-प्रणेता दामोदर मिश्र समनामी थे।
2. तुलसीचरित (रघुवरदास) के अनुसार, तुलसीदास के पिता का नाम मुरारि मिश्र था—इनसे स्पष्टतः भिन्न।
3. सुविख्यात दार्शनिक एवं 'भामती'—प्रणेता वाचस्पति मिश्र से भिन्न है।
4. काव्यप्रकाश से टीकाकार।
5. महाकवि विद्यापति का सेवक उगना वैसे ही अमर है जैसे दार्शनिक काँट का सेवक लाम्पे या लैम्पे : उगना भी प्रकाश-प्रतीक, लाम्पे या लैम्पे भी। प्रकाश-प्रतीक! द्रष्टव्य है :

उगना हे मोर! कतए गेला? कतए गेला? सिव कि दहु भेला?
भौंग नहिं बटुआ रुसि बैसलाह। जोहि हेरि आनि देल हसि उठलाह।।
जो मोर कहता उगना उदसे। ताहि देवओं पर कँगना वेस।।
नन्दनवन में भेटल महेस। गौरि मन हरखित भेटल कलेस।।
विद्यापति मन उगना सों काज। नहिं हितकर मोर त्रिभुवन-राज।।

6. जहाँ के दिनकर ने गाया है :

"ओ री उदास गंडकी! बता, विद्यापति कवि के गान कहाँ?"

के कारण यहूदी या मूसाई, ईसाई एवं मोहम्मदी मरुस्थलीय मज़हबों ने बहुत रक्तपात किया है। चूँकि विदेशी मुसलमानों एवं ईसाइयों का हम पर शताब्दियों तक वर्चस्व रहा, अतः हम भी “यथा राजा तथा प्रजा” की निरीहता एवं विवशता के आखेट वनते हुए, सम्प्रदायगत विवाद को तूल देते रहे। विद्यापति को ग्रीअर्सन, ब्रजनन्दनहसाय, विमनविहारी मजूमदार, श्यामसुन्दरदास इत्यादि के द्वारा वैष्णव, नगेन्द्रनाथ वसु, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवनन्दनसहाय, रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि द्वारा शैव, हरप्रसाद शास्त्री, जनार्दन मिश्र इत्यादि द्वारा एकेश्वरवादी मानना किसी गहन सत्य को विवृत नहीं करता। वे एक महान् समन्वयवादी थे—हिन्दी-साहित्य में तुलसीदास के अनन्तर सर्वश्रेष्ठ समन्वयवादी होने का गौरव विद्यापति को ही प्राप्त है, जिन्होंने शक्ति, शिव, गंगा, कृष्ण इत्यादि की अप्रतिहत श्रद्धा एवं गहन भावुकता के साथ महान् स्तुति की है :

1.

जय जय भैरवि असुर भयाउनि पशुपति-भामिनि माया।
सहज सुमति बर दिअओ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया।।
बासर रैनि सवासन सोभित चरन चंद्रमनि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारिर मुँह मेलल कतओ उगिल कैल कूड़ा।।
सामर¹ वरन नैन अनुरजित जलद जोग फुल कोका।
कट कट विकट ओठ पुट पांडरि लिधुर फेन उठ फोका।।
घन घन घनए घुघुर कल बाजए हन हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पदसेवक पुत्र बिसरु जानि माता।।

2.

जय जय संकर, जय त्रिपुरारि। जय अधपुरुष, जयति अधनारि²।।
आध धवल तन, आधा गोरा। आध सहज कुच, आध कटोरा।।
आध हड़माल, आध गजमोती। आध चनन सोहे, आध विभूती।।
आध चेतनमति, आधा भोरा। आध पटोर, आध मुँज डोरा।।
आध जोग, आध भोगविलासा। आध पिधान, आध नग बासा।।
आध चान, आध सिंदुर सोभा। आध विरूप आध जग लोभा।।
भेन कबिरतन बिधाता जाने। दुइ कए बाँटल एक पराने।।

3.

ब्रह्म कर्मंडलु वास सुवासिनि, सागर नागर गृहवाले।
पातक महिष विदारण कारण धृतकरवाल दीचिमाले।।
जय गंगे जय गंगे शरणागत भय भंगे।।
सुर मुनि मनुज रचित पूजोचित कुसुम विचित्रित तीरे।
त्रिनयन मौलि जटाचय चुंबित भूतिभूषित सित नीरे।।
हरिपदकमल गलित मधुसोदर पुण्य पुनित सुरलोके।
प्रविलसदमपुरी पद दान विधान विनाशित शोके।।
सहज दयालुतया पातकिजन नरकविनाशक निपूणे।।
रुद्रसिंह नरपति वरदायक विद्यापति कवि भणित गुणे।।

4.

बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे। छोड़इत निकट नयन बह नीरे।।
कर जोरि बिनमओ बिमल तरंगे। पुन दरसन होए पुनमति गंगे।।
एक अपराध छमव मोर जानी। परसल माए पाए तुअ पानी।।
कि करव जप जप जोग धियाने। जनम कृतारथ एकहि सनाने।
भनइ विद्यापति समदओं तोही। अंतकाल जनु बिसरह मोही।।

1. श्यामवर्ण विद्यापति को प्रिय था क्योंकि यह काली, विष्णु, राम, कृष्ण, अर्जुन, बाण भट्ट इत्यादि का वर्णन है—उनके परम मित्र महाराज शिवसिंह का भी! वैसे, अकबर, गांधी इत्यादि भी श्यामवर्ण थे। श्यामवर्ण भारत का राष्ट्रवर्ण है।

2. अर्द्धनारीश्वर-स्तुति।

5.

तातल सैकत बारिविन्दु सम सुत मित रमनि समाज ।
तोहे विसारि मन ताहे समरपिनु अव मझु होव कोन काज ।।
माधव! हम परिनाम निरासा!

तुहु जगतारन दीन दयामय अतए तोहर बिसवासा ।।
आध जनम हम नींद गमायनु जरा सिसुक्त दिन गेला ।
निधुवनरमनि रभस रँग मातुनु तोहे भजव कओन बेला ।।
कत चतुरानन मरि मरि जाओव न तुअ आदि अवसाना ।
तोहे जनमि पुनि तोहे समाओत सागर लहरि समाना ।।
भनइ विद्यापति सेष समन भय तुअ विनु गति नहिं आरा ।
आदि अनादि नाथ कहाओसि अब तारन भार तोहारा ।।

उपर्युक्त पदावली विद्यापति को एक समग्र समन्वयवादी के रूप में प्रस्तुत करती है। तुलसी (विनयपत्रिका) के सदृश उन्होंने भी हरिशंकर पद रचना की है। इसमें एक ही शब्दावली दोनों देवताओं की स्तुति करती है। अर्द्धनारीश्वर-स्तुति भी समन्वय की प्रतीक है।

उपर्युक्त पदावली विद्यापति के उपनिषद्, तन्त्र, पुराण इत्यादि के व्यापक ज्ञान की सूचना देती है। यह व्यापक ज्ञान तुलसी के अनन्तर अप्रतिम है।

रहस्यवाद

विद्यापति पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) के सम्पूर्ण गायक होने के कारण शृंगारी कवि भी हैं, रहस्यवादी कवि भी। वे न कौर कवि हैं, न कौरे रहस्यवादी, प्रत्युत एक सफल पुरुष हैं। उनको तुलसी या सूर के सदृश मुख्यतः भक्त नहीं कहा जा सकता, उनको केशव या देव के सदृश मुख्यतः कवि नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टि से, उनका व्यक्तित्व द्विविध गरिमा से निष्पन्न है। उनके शृंगारी या रहस्यवादी होने पर जो विवाद है, वह उनके पूर्णजीवनवाद को देखते बौना लगता है। यह खंडितजीवनवाद का सूचक है, अखंडजीवनवाद का सूचक नहीं। ग्रीअर्सन, नगेन्द्रनाथ गुप्त, जनार्दन मिश्र इत्यादि द्वारा उनको रहस्यवादी मानना समीचीन है। हरप्रसाद शास्त्री, शिवनन्दन ठाकुर, रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि का उनको रहस्यवादी न मानना उस कालातीत रूढ़ि का परिपालन मात्र है जिसके अनुसार रहस्यवादी केवल विरक्त ज्ञानी या योगी या भक्त ही हो सकता है। ब्रजनन्दन सहाय, श्यामसुन्दरदास इत्यादि का उनको रहस्यवादी न मानते हुए भी निम्बार्क, विष्णुस्वामी इत्यादि से प्रभावित भक्त मानना शिथिल समझौतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है। मैत्रेयी के पति, गौओं के लिए गार्गी से शास्त्रार्थ करनेवाले तथा जनक के सभासद परमर्षि याज्ञवल्क्य संसार के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी थे। परम दरबारी खुसरो रहस्यवादी थे। 'सर' की पदवी प्राप्त, ब्रिटिश युवराज (प्रिंस ऑफ वेल्स) के लिए "जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्यविधाता" शीर्षक चारणवादी गीत लिखनेवाले रवीन्द्र रहस्यवादी थे। तो फिर, अपनी रचनाओं से रहस्यवादी प्रमाणित होनेवाले विद्यापति रहस्यवादी क्यों नहीं हैं? केवल निम्नलिखित उदाहरण ही विद्यापति को उच्चकोटि का रहस्यवादी सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं :

1.

माधव कठिन हृदय परवासी ।

तुझ पेयसि मोयें देखल बियोगिनि अबहु पलटि घर जासी ।।

2.

सखि कि पुछसि अनुभव मोय ।

से हो पिरित अनुराग बखानिए तिल तिल नूतन होय ।।

जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल ।

सेहो मधु बोल स्रवनहि सुनह सुति पथ परस न भेल ।।...

3.

अनुखन माधव माधव सुमरइत सुंदरि भेलि मधाई ।
 ओ निज भाव सुभावहि विसरल अपने गुन लुवधाई ॥
 माधव अपरुव तोरुर सिनेह ।
 अपने विरह अपन तनु जरजर जिवइत भेलि संदेह ॥
 इन महान् पदों में
 जल बिच मीन पियासी ।
 मोहि सुनि-सुनि आवै हासी ॥

अथवा

अकथ कहाणीं प्रेम की कछू कही न जाई ।
 गूँगे केरी सरकरा बैठी मुसुकाई ॥

अथवा

पिउ हिरदै महँ, भेंट न होई ।
 को रे मिलाव, कहाँ केहि रोई ॥

अथवा

अबिगत गति कछु कहत न आवै ।
 ज्यों गूँगेहि मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै ॥

अथवा

दादू सव हैरान हैं गूँगे का गुड़ खाय ।

अथवा

सब घट साईं रमि रहा, सूनी सेज न कोय ।
 बलिहारी वा सेज की जामे परगट होय ॥

अथवा

पिय के ध्यान गही गही रही वही हवै नारि ।
 अपु आपु ही आररसी लखि रीझति रिझवारि ॥

अथवा

राधिका कान्ह को ध्यान धरै तब कान्ह हवै राधिका के गुन गावै ।...

इत्यादि अमर उद्गारों से अधिक मार्मिक एवं प्रभावी रहस्यवाद के दर्शन अनायास ही हो जाते हैं—इनका रहस्यवाद “यो यच्छृद्धः स एव सः” अथवा “ध्याने ध्याने स्वरूपता” अथवा “जानत तुमहिं तुमहि होइ जाई” का व्यंजक है। अपने मधुर रहस्यवाद में विद्यापति कबीर, जायसी, सूर, दादू इत्यादि सन्तों एवं सूफ़ियों तथा बिहारी, देव इत्यादि कवियों के पूर्वपुरुष सिद्ध होते हैं। “सुंदरि भेलि मधाई” में “मोहन माँग्यो अपनो रूप” की सी महानता विद्यमान है, “नयन न तिरपित भेल” में “क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति” की।

मधुर कोमलकांत शृंगार-पदावली

किन्तु विद्यापति की अमरता का प्रधान कारण उनकी मधुर कोमलकांत शृंगार-पदावली है, जो जयदेव के गीत-गोविन्द से प्रभावित होते हुए भी अस्मितानिष्पन्न है, विविधभावसंयुक्त है, मौलिक है। अपनी महान् पदावली में विद्यापति कहीं शृंगारी महाकवि हैं, कहीं भक्त, कहीं रहस्यवादी, क्योंकि वे पूर्ण जीवन जिए थे। उन्होंने शिवसिंह-स्मृति, उगना-वियोग, गंगा-प्रेम, आसन्न-अवसान इत्यादि के आत्मपरक-काव्य की भी स्मरणीय सर्जना की है। अपने विशद समन्वयवाद, विराट् जीवनवाद, बहुभाषासामर्थ्य एवं आत्मपरक सृजन इत्यादि के कारण विद्यापति बारम्बार तुलसी का स्मरण कराते हैं। अपने अप्रतिम गीतिकाव्य, अपने ललित

शृंगारकाव्य एवं अपने भक्तिभाव के कारण विद्यापति सूर का स्मरण कराते हैं। उनके कुछ रहस्यवादी पद कवीर, जायसी इत्यादि का स्मरण करा देते हैं। निस्सन्देह, विद्यापति तुलसी, सूर, केशव, कवीर, जायसी, खुसरो इत्यादि की पंक्ति में प्रतिष्ठित महाकवि हैं। तुलसी का उन्मुक्त एवं महत् व्यक्तित्व तथा उनका विराट् एवं लोकमंगलनिष्पन्न कृतित्व निर्विवादतः सर्वोपरि है। सूर के सन्दर्भ में भी लगभग ऐसा ही कहा जा सकता है। केशव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व विद्यापति के अत्यन्त निकट है, यद्यपि वे कलाकार पहले हैं और कवि तदनन्तर, जबकि विद्यापति कवि-ही-कवि हैं। कवीर व्यक्तित्व में महत्तर हैं, तो विद्यापति कृतित्व में। जायसी अपनी भावुकता एवं मार्मिकता में विद्यापति के समकक्ष हैं। खुसरो अपने समग्र में महत्तर हैं किन्तु हिन्दी-कवि के रूप में विद्यापति की समता नहीं कर सकते। माधुर्य में विद्यापति की समता न हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गीतकार सूर (जिनकी शृंगार-पदावली एवं दृष्टकूटों पर विद्यापति का प्रभाव प्रतीत होता है) कर सकते हैं, न अंग्रेजी के सर्वश्रेष्ठ गीतकार शेरी (शेले), न बांग्ला के सर्वश्रेष्ठ गीतकार रवीन्द्र (जो विद्यापति से स्पष्टतः प्रभावित हैं), यद्यपि इनके जीवन-आयाम एवं जीवन-दर्शन व्यापकतर एवं गहनतर हैं। विद्यापति विश्व-साहित्य के महानतम गीतकारों में हैं और जहाँ तक माधुर्य का सम्बन्ध है वे अतुलनीय हैं।

विद्यापति का सहज गीतकार-रूप उनकी शृंगार-पदावली में अनूठे रूप में व्यक्त हुआ है। उनका नायिकाभेद-वर्णन स्वच्छन्द होते हुए भी मनोवैज्ञानिक एवं शास्त्रीयतासम्पन्न है। वयःसन्धि का ऐसा अतिसजीव, मधुर एवं विम्बविलसित वर्णन संसार-साहित्य की निधि ही कहा जा सकता है :

खने-खने नयन-कोन अनुसरई। खने-खन वसन धूलि तनु भरई ॥
खने-खन दसन-छटा छूट हास। खने-खन अधर आगे गहु वास ॥
चउँकि चलै खने, खने चलु मंद। मनमथ पाठ पहिल अनुबंध ॥
हिरदय मुकुल हेरि-हरि थोर। खने आँचर दए, खने होय भोर ॥

वचनविदग्धा का यह उत्कृष्ट वर्णन शास्त्रीयकाल के सुखदेव मिश्र एवं मणिमंडन मिश्र (मंडन) का स्मरण कराते हुए भी मधुरतर है :

कर धरु करु मोहे पारे, देव मैं अपरुब हारे, कन्हैया।
सखि सब तजि गेली, न जानू कौन पथ भेली, कन्हैया ॥
हम न जाएब तुअ पासे, जाएब औघट घाटे, कन्हैया।
विद्यापति एहो भाने, गूजरि भजु भगवाने, कन्हैया ॥

सद्यःस्नाता का यह अद्वितीय वर्णन महान् उल्लेख से सम्पन्न है :

कामिनि करए सनाने। हेरतहि हृदय हनए पँचवाने ॥
चिकुर गरए जलधारा। जनि मुख ससि डर रोवए अँधारा ॥
कुच जुग चारि चकेवा। निज कुल आनि मिलअ कौन देवा ॥
ते संका भुज पासे। बाँधि धएल उड़ि जाबत अकासे ॥
तितल वसन तन लागू। मुनिहु क मानस मनसिज जागू ॥

नायिका का सौन्दर्यचित्रण, नायक का सौन्दर्यचित्रण, नायिका का वाग्वैदग्ध्य, नायक की मनुहार, दूती का कौशल, मिलन, विरह इत्यादि शृंगाररस के सारे अवयव विद्यापति की पदावली में अत्यन्त मनोहारी रूप में प्राप्त होते हैं। प्रकृति से उद्दीपन प्राप्त करते हुए स्वच्छन्द अनुराग के उल्लास का यह वर्णन गीतिप्रवाह एवं माधुर्य की उभय सम्पन्नताओं में अद्वितीय है, जिस पर हिन्दी के प्रथम महान् आलोचक मिश्रवन्धु ठीक ही मुग्ध थे :

सरस बसंत समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे।
सपनहुँ रूप बचन एक भाखिए मुख सों दूरि करु चीरे ॥
तोहर बदन सम चान होअथि नहिं जइओ जतन विहि देला ॥
कए बेरि काटि बनाओल नव कै तइओ तुलित नहिं भेला ॥

लोचन तूल कमल नहिं भए सक से जग के नहिं जाने ।
 से फेरि जाए लुकाएल जल-भए पंकज निज अपमाने ॥
 भनहि विद्यापति सुनु बर जौवति ई सभ लछमि समाने ।
 राजा सिबसिंध रूपनरायण लखिमादेइ पति भाने ॥

लोककाव्य की प्रेरणा से संसार के अनेक महाकवियों ने शत-शत मधुर गान गाए हैं। विद्यापति तो प्रकृत्या लोककवि भी हैं। हिन्दी-कविता में लोककाव्य का सर्वाधिक प्रभाव खुसरो, विद्यापति, कबीर, जायसी और मीरा (मीरा) पर पड़ा है, किन्तु इन सब में माधुर्य की दृष्टि से विद्यापति अद्वितीय हैं :

1. मोरा अँगनवा चनन केरि गछिया ताहि चढ़ि कुररय काग रे ।
 सोने चोंच वौंधि देव ताएं वायस जओं पिया आवत आज रे ॥
2. सुन रसिया, अब न बजाऊ विपिन बैसिया !
 वार बार चरणारविंद गहिं सदा रहव वनि दसिया ॥
 कि छलहुँ कि होएब से के जाने वृथा होएत कुलहसिया ॥
 अनुभव ऐसन मदन भुजंगम हृदय मोर गेल डसिया ।¹⁻²

संख्या-प्रयोग कविता का एक रोचक प्रकरण है। विद्यापति इसके प्रथम हिन्दी-कवि लगते हैं (तुलसी, विहारी, देव, सनेही इत्यादि ने भी इस प्रकार का सुन्दर सृजन किया है) :

पाँच पाँच गुन दस गुन चौगुन आठ दुगुन सखि माझे ।
 विद्यापति मन आकुल तुउ बिन बिसरि न पावसि लाफने ॥

संस्कृत-ग्रन्थ

संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी (मैथिली) में साधिकार कविता करनेवाले विद्यापति पूर्ववर्तियों में खुसरो एवं परवर्तियों में तुलसी एवं रहीम का स्मरण करा देते हैं, क्योंकि खुसरो ने फ़ारसी एवं हिन्दवी में कविता की है, तुलसी ने संस्कृत (अनेक श्लोक एवं स्तोत्र) तथा हिन्दी की अवधी एवं ब्रज दोनों दोनों प्रमुख विभाषाओं तथा भोजपुरी ("राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे" शीर्षक प्रख्यात विनयपत्रिका-पद) में, रहीम ने हिन्दी की ब्रज एवं अवधी विभाषाओं तथा संस्कृत³ (कुछ श्लोक) में, यद्यपि तीन भाषाओं में विद्यापति का सा गुण-परिमाण समग्र साहित्य में दुर्लभ है। विद्यापति के संस्कृत में भूपरिक्रमा, पुरुषपरीक्षा, लिखनावली, शैवसर्वस्वसार, शैवसर्वस्वसार-प्रमाणभूत-पुराणसंग्रह, गंगा-वाक्यावली, विभागसार, दानवाक्यावली, दुर्गाभक्ति-तरंगिणी, तन्त्रार्णव, गयापत्तलक एवं वर्षकृत्य शीर्षक द्वादश ग्रन्थ प्राप्त हैं तथा उन्होंने गोरक्षविजय शीर्षक संस्कृत-मैथिली-मिश्रित नाटक भी लिखा है। विद्यापति के संस्कृत-ग्रन्थ उनके शैव एवं शाक्त मतों के ज्ञान, राजनीति, धर्मनीति, व्यवहारनीति में गाँते तथा तीर्थबोध इत्यादि के विशद सूचक हैं, यद्यपि उनका कोई विशेष साहित्यिक महत्व सिद्ध नहीं होता। ये ग्रन्थ विभिन्न राजाओं एवं रानियों की आज्ञा से विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रस्तुत किए गए लगते हैं।

कीर्तिलता

अपभ्रंश में रचित 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका' क्रमशः मिथिला-नरेश कीर्तिसिंह एवं उनके उत्तराधिकारी (निस्सन्तान होने के कारण पितामह-भ्रातृपुत्र देवसिंह के पुत्र) महाराज शिवसिंह पर रचित चरितकाव्य हैं, जिनमें द्वितीय अपूर्ण रूप में ही प्राप्त है तथा प्रथम एक उत्कृष्ट कृति है, जिसका खड़ीबोली, बांग्ला एवं अंग्रेज़ी में अनुवाद भी हो चुका है। कीर्तिलता में महाराज कीर्तिसिंह के पिता

- 1-2 पुर्निमा निशीथे जवे दके दिशि परिपूरन हासी ।
 दूरस्मृति कोथा होशे? बाजे व्याकुल कार बाँसी ॥ झरे अश्रु-राशि ॥ (रवीन्द्र)
- ऊँचे-ऊँचे ठेहूँ हो, हो बंसरी बजाँदा हो बैरिया ।
 कीनो तरछाँदा हो, हो पाठिएँ दा जिया हो बैरिया ॥ (हिमाचली लोकगीत)
3. दृष्टव्य है 'रहीम-रत्नावली' (सं. मायाशंकर याज्ञिक)।

गणेश्वरसिंह की असलान नामक मुसलमान द्वारा हत्या करने, कीर्तिसिंह इत्यादि का अनेक कष्ट उठाते हुए जौनपुर के सुल्तान इब्राहीमशाह के दरबार में जाकर फरियाद करने, सुल्तान की सेना के प्रयाण, असलान के भाग निकलने तथा कीर्तिसिंह के राज्याभिषेक का बहुत ही सजीव, यथार्थ एवं चित्रमय वर्णन किया गया है। काव्य की अपभ्रंश ऐसी है जिस पर प्राकृत एवं पालि का भारी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भाषा इतनी सरल है कि इसे 'पुरानी हिन्दी' कहा जा सकता है। रचना सुखान्त है।

यथार्थ युगचित्रण

युगचित्रण की दृष्टि से कीर्तिलता की समता करनेवाला काव्य दुर्लभ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उन दिनों जौनपुर एक सम्पन्न एवं श्रेष्ठ नगर था। जौनापुर या जौनपुर का नामकरण जूनाखौं (जो मोहम्मद तुगलक के नाम से 1325-51 ई. में दिल्ली का सुल्तान रहा और पागल के रूप में कुख्यात है) पर किया गया लगता है। वैसे, जूनाशाह या जौनाशाह फ़ीरोज़शाह तुगलक (राज्यकाल 1351-88 ई.) के वज़ीर ख़ानजहाँ के पुत्र का नाम भी था जो 1379 ई. में पिता की मृत्यु पर वज़ीर बना था। इन बाप-बेटों का उल्लेख दाऊद ने 'चंदायन' में किया है। जौनपुर की अटाला मस्जिद आज भी विख्यात है। जौनपुर की सम्पन्नता का वर्णन इतिहाससम्मत है। तत्कालीन जीवनयापन का अनेकवस्तुसम्पन्न वर्णन बहुत ही महत्वपूर्ण है। हिन्दुओं की दुर्दशा का चित्रण सर्वाधिक हृदयग्राही है, किन्तु वह मिश्रित-संस्कृति का अंकन भी करता है :

1. कहीं कोटि गंदा कहीं बाँदि-बंदा ।
कहीं दूर निक्वारिए हिंदू गंदा ।।
2. हिंदू तुरके मिलल बास ।
एकक धम्मे अओका उपहास ।।
कतहुँ बाँग कतहु वेद ।
कतहु विस्मिल कतहु छेद ।।
कतहु ओझा कतहु खोजा ।
कतहु नकत कतहु रोज ।।
कतहु तम्बारु कतहु कूजा ।
कतहु निमाज कतहु पूजा ।।
कतहु तुरुक बरकर ।
बार जाएते बेगार धर ।।
धरि आनए बाभन बरुआ ।
मथा चढ़ावए गाइक चुरुआ ।।¹
हिंदू बोले दूरहि निकार ।
छोटउ तुरुका भभकी मार ।।²
फोट चोट जनेउ तोड़ ।
उपर चढ़ावए चाह छोड़ ।।

युद्धप्रभाव-चित्रण

युद्ध के अभियानों में जो हाहाकार मचता था, वस्तुएँ दुर्लभ हो जाती थीं, मूल्य आसमान पर चढ़ जाते थे, इन सब बिन्दुओं का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन 'कीर्तिलता' में प्राप्त होता है। व्यापक जनजीवन के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से कीर्तिलता एक महान् रचना

1. ब्राह्मण बटु को पकड़ लाया और बलि-गोमांस मस्तक पर चढ़ाया। बलात् गोमांस खिलानेवाला नरपिशाच टीपू सुल्तान याद आता है।

2. "एक औसत हिन्दू कायर और एक औसत मुसलमान घुड़कीबाज़ होता है।" (गांधी)

है। हिन्दी-साहित्य में युगचित्रण की दृष्टि से तुलसीदास की 'कवितावली' (उत्तरकाण्ड) के अतिरिक्त ऐसी कोई रचना नहीं प्राप्त होती। अंग्रेजी के आदिकवि चॉसर (1340-1400 ई.) के 'कैन्टरबरी टेल्स' में जैसे अमूल्य जीवन-चित्र प्राप्त होते हैं, वैसे ही 'कीर्तिलता' में। संयोगात् दोनों कवि समकालीन थे।

कीर्तिपताका

'कीर्तिलता' अपने खंडित-विखंडित रूप में भी एक महत्वपूर्ण कृति है। यह महाराज शिवसिंह की यशध्वजा है। इसमें गद्य का प्रयोग भी प्राप्त होता है। शिव के अर्द्धनारीश्वर-रूप के वर्णन एवं गणेश के स्तवन के अनन्तर कवि ने शिवसिंह का आचरण चित्रित किया है, जिसके बाद शृंगाररस के व्यापक दर्शन होते हैं, जिसमें रामावतार में सीताहरणजन्य रसपूर्ति के निमित्त कृष्णावतार का औचित्य भी प्रतिपादित है, अन्ततः शिवसिंह के सुल्तान की सेना से युद्ध का स्फीत वर्णन है, जिसमें उनकी विजय होती है। कीर्तिपताका भी सुखान्त कृति है (यद्यपि अन्य शुद्ध में शिवसिंह ने वीरगति प्राप्त की थी)। अपभ्रंश में ही, स्वतन्त्र रूप से भी, विद्यापति ने शिवसिंह की युद्धवीरता एवं उनके राज्यारोहण के उत्कृष्ट वर्णन किए हैं, जिनमें "रामरूप स्वधम्म रक्खिअ" जैसे शब्द भूषण के शिवाजी की प्रशस्ति में "राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान कौ तिलक राख्यो...धरा मैं धरम राख्यौ" जैसे शब्दों का स्मरण करा देते हैं। विद्यापति कोरे दरवारी-कवि न थे, राष्ट्रकवि भी थे।

आकलन

क्या शृंगारकाव्य, क्या भक्तिकाव्य, क्या रहस्यकाव्य, क्या शिवकाव्य, क्या शक्तिकाव्य, क्या चरितकाव्य (अपभ्रंश), क्या नीतिकाव्य अथवा व्यवहारकाव्य (संस्कृत), नाना आयामों तक प्रसरित विद्यापति की महान् प्रतिभा उन्हें एक अजर-अमर महाकवि सिद्ध करती है। वे आत्मपरक कविता के सर्जन भी हैं। वे एक युगसजग महाकवि हैं, जिन्होंने जीवन का यथार्थ चित्रण भी किया है। एक मधुर गीतकार के रूप में वे संसार-साहित्य की एक अविस्मरणीय विभूति हैं। उन्होंने सूर एवं रवीन्द्र जैसे शीर्षस्थ कवियों तक को प्रभावित किया है। हिन्दी विद्यापति जैसे महाकवि पर गर्व करती है।

विष्णुदास

महाभारत-कथा, स्वर्गारोहण, स्वर्गारोहण-पर्व, रुक्मिणी-मंगल, सनेहलीला, पद (विष्णुपद), रामायण-कथा तथा मकरध्वज-कथा के स्फीत वर्णनकर्ता कवि विष्णुदास (पन्द्रहवीं सदी)¹ को मुख्यतः महाभारत तथा गौणतः भागवत एवं रामायण की परम्पराओं को हिन्दी में सर्वप्रथम अवतरित करने का श्रेय प्रदान किया जा सकता है। विष्णुदास एक ओर सबलसिंह चौहान, गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव, मैथिलीशरण इत्यादि महाभारताधृत कवियों के पूर्वज हैं, दूसरी ओर सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, रसखान, आनन्ददास, जयराम, सबलश्याम, हितदास, कृष्णदास इत्यादि भागवताधृत कवियों के, तीसरी ओर तुलसीदास, हृदयराम, नाभादास, प्राणचन्द्र चौहान, केशवदास, मैथिलीशरण इत्यादि के। हिन्दी-साहित्येतिहास में उनको एक उल्लेख्य स्थान प्राप्त है। मिश्रबन्धु के 'विनोद' में इनका जन्मसंवत् 1492 वि. (1435 ई.) दिया है जो स्पष्टतः विवादास्पद है। 'विनोद' का विवण भी अपर्याप्त (किन्तु मूल्यवान) है : "गोपाचलगढ़ ग्वालियर में रहते थे जो उस समय पांडव-वंशी राजा डोंगरसिंह के अधिकार में था। ग्रन्थ इनके प्रथम त्रैवार्षिक खोज के अनुसार ये हैं—1. महाभारत-कथा, 2. स्वर्गारोहण और 3. रुक्मिणीमंगल।" गौरीशंकर द्विवेदी, हरिहरनिवास द्विवेदी, बलभद्र तिवारी, मोहनसिंह तोमर, भगीरथ मिश्र, शिवप्रसाद सिंह, कृष्णनारायणप्रसाद मागध प्रभृति विद्वानों ने विष्णुदास पर पर्याप्त प्रकाश डाला है, यद्यपि विष्णुदास, विष्णुनाथ तथा विष्णुदत्त के तीन नामों की समस्या सन्तोषजनक रूप से हल नहीं की जा सकी और ग्रन्थसंख्या भी निर्विवाद नहीं हो पाई।

1. गोपाद्विगढ़ (ग्वालियर) के तोमर-वंशी राजा डोंगरसिंह (डोंगरसिंह) का राज्यकाल 1425-54 ई. माना जाता है और विष्णुदास इन्हीं के राज्याधृत कवि थे। प्रचलित मान्यता के अनुसार विष्णुदास का जन्म भी ग्वालियर में ही हुआ था, यद्यपि 'रस-रत्नाकर' (1674 ई.) के कवि हृदयराम मिश्र (जो विष्णुदास के वंशज माने जाते हैं) के अनुसार जन्म धरौज (कुरुक्षेत्र, हरियाणा) में हुआ था। सम्भव है, वे ग्वालियर राज्याश्रय हेतु गए हों।

महाराष्ट्र के सन्तों ने ज्ञानेश्वर, उनकी बहन मुक्ताबाई एवं उनके शिष्य नामदेव के समय से ही हिन्द-प्रतीक हिन्दी (हिन्दवी, हिन्दुई, हिन्दुकी) में भी काव्यरचना आरम्भ कर दी थी और यह परम्परा सतत-गतिशील रही। इसी परम्परा में एकनाथ (जिन्होंने भी हिन्दी काव्यरचना की) के पितामह एवं प्रसिद्ध वैष्णव भक्त भानुदास (1500 ई. के इधर-उधर) का नाम भी सर्वथा उल्लेखनीय है। स्पष्टतः यह सन्त भानुदास 1788 ई. में रचित 'नरेन्द्र-भूषण' ('शिवराज-भूषण' के प्रभाव से ऊभ-चूभ उसी के सदृश अभिधान से ही अलंकार-ग्रन्थ) के भान कवि से सर्वथा भिन्न हैं। भानुदास मध्यकालीन महाराष्ट्र की सांस्कृतिक राजधानी पंढरपुर के प्राण श्री विट्ठल (विठोबा जी) के भक्त थे। विष्णु एवं उनके राम, कृष्ण प्रभृति अवतारों के प्रति उनकी आस्था स्वाभाविक थी। उनको उच्चकोटि का प्रभातीका माना जाता है। 'हिन्दी-कविता में प्रभाती' शोध का ललित विषय है। सूर, तुलसी इत्यादि से हरिऔध, मैथिलीशरण इत्यादि तक इससे किसी-न-किसी रूप में संपृक्त हैं। भानुदास हिन्दी के आदि प्रभातीकार लगते हैं। सूर-पूर्व के व्रजभाषा-कवियों में भी वे गण्यमान्य होने योग्य हैं। वैसे, चन्द्र, खुसरो, नानक इत्यादि से भी जुड़ी व्रजभाषा का इतिहास स्फूर्त है ही। वह 'व्रजवुलि' या 'व्रजवोलि' के रूप में माधव कंदलि, शंकरदेव एवं माधवदेव की असमिया तक से गले मिलता दीखता है। उद्धरण प्रस्तुत है :

उठहु तात! मात कहे, रजनी को तिमिर गयो,
मिलत सकल ग्वाल-बाल सुंदर कन्हई।
जागहु गोपाललाल, जागहु गोविंदलाल, जननी बलि जाई।।
संगी सब बोलत बैनु, तुम बिन नहिं छुटत धैनु,
तजहु शयन कमलनयन, सुंदर, सुखदायी।
जागहु गोपाललाल, जागहु गोविंदलाल, जननी बलि जाई।।
मुख ते पट दूर कीजो, जननी को दरस दीजो,
दधि, खीर माँगि लीजो, खॉड औ मिठाई।
जागहु गोपाललाल, जागहु गोविंदलाल, जननी बलि जाई।।
झमत-झमत श्याम, राम', सुंदर मुख, तन-ललाम,
थाली की छूट कछू भानुदास पाई।
जागहु गोपाललाल, जागहु गोविंदलाल, जननी बलि जाई।।

हरिदास²

सखी-सम्प्रदाय के अनन्य आचार्य (जो ललिता के अवतार माने जाते हैं) एवं विट्ठलविपुल, बिहारिनिदास, चौबे ललितकिशोरी, भक्त नागरीदास, महाराज नागरीदास और मौनीदास प्रभृति मधुर-भक्तों के गुरु अथवा आदिगुरु तथा ध्रुपद के सर्वश्रेष्ठ गायक एवं तानसेन और बैजू बावरा जैसे महानतम गायकों के गुरु, साधना एवं संगीत के प्रयाग गोस्वामी हरिदास (प्रसिद्धिकाल 1550 ई. के इधर-उधर) मध्यकालीन भारत के निर्माताओं में एक थे। ऐतिहासिकता के स्थूल प्रमाणों के आधार स्व. जगदीशचन्द्र दीक्षित (नेता एवं लेखक) ने उन्हें वृन्दावन का प्रतिष्ठापक माना है। उनके व्यक्तित्व की तुलना में उनका कृतित्व नगण्य लग सकता है क्योंकि उनकी पदावली कठिन संगीत की जटिल शास्त्रीयता में निबद्ध है जिसका साहित्यिक महत्व सिद्ध नहीं हो पाता। इनका जन्मस्थान अब हृदिदासपुर (अलीगढ़ जनपद) कहलाता है। यह सनाढ्य थे या सारस्वत, इस विषय में भी मतभेद है। किन्तु यह ब्राह्मण थे तथा सम्भवतः निम्बार्कमतानुयायी थे। यह पहले मधुवन एवं अनन्तर निधुवन में रहे। 108 पदों की 'केलिमाल' (केलिमाला) इनकी प्रात्ययिक रचना है, किन्तु इन्होंने अन्य अनेक पद भी रचे हैं। बिहारीशरण कृत 'निम्बार्कमाधुरी' एवं विश्वेश्वरशरण कृत 'सिद्धान्तरत्नाकर' में हरिदास पर भी प्रकाश डाला गया है। मिश्रवन्धु के अनुसार, इन्होंने 'बानी', 'साधारण सिद्धान्त', 'रस के पद', 'पद', 'भरथरी-चैराग्य' और

1. वलराम।

2. इनके एक वंशज डॉ. शरणबिहारी गोस्वामी ने 'कृष्णभक्तिकाव्य में सखीभाव' शीर्षक शोधप्रबन्ध लिखा है, जिसके निदेशक विद्वान् एवं कवि डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तव 'नन्दन' थे। (बालसाहित्यकार कन्हैयालाल 'नन्दन' समोपनामी हैं)।

‘हरिदासजू को ग्रन्थ’¹ नामक ग्रन्थ रचे।” शुक्ल जी के शब्दों में ‘इनके पदों के तीन-चार संग्रह ‘हरिदास जी के ग्रन्थ’², ‘स्वामी हरिदास जी के पद’, ‘हरिदास जी की बानी’ आदि नामों से मिलते हैं।” दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. गहौ मन सब रस को रस सार।
लोक बेद कुल करमै तजिए भजिए नित्य बिहार ॥
गृह कामिनि कंचन धन त्यागौ सुमिरौ श्याम उदार।
गहि हरिदास रीति संतन की गादी को अधिकार ॥
3. ज्यों ही ज्यों ही तुम राखत हो त्यों ही त्यों ही रहियत हों हे हरि!
और अपरचै पाप धरौ सुतौ कहौ कौन के पैड भरि।।
जदपि हों अपनो भायो कियो चहौं कैसे करि सकौं जौ तुम राखौ पकरि?
कहै हरिदास पिंजरा के जनावर लौं तरफराय रह्यो उड़ियो को कितोऊ करि।।

सूरदास

विश्व-कविता में वात्सल्यरस के सम्राट् एवं हिन्दी-साहित्य में कृष्णकाव्य के सीमान्त सूरदास (1483-1563 ई.) के जीवन एवं साहित्य पर प्रामाणिक वृत्त कबीर एवं तुलसी से भी कम प्राप्त हो पाता है जिसके प्रमुख कारण उनका सामान्य-प्रज्ञाचक्षुपरक अभिधान एवं वल्लभ-सम्प्रदाय के काल्पनिक ग्रन्थ हैं। प्रेमचन्द ने अपने महान् उपन्यास ‘रंगभूमि’ के नायक सूरदास के सन्दर्भ में जो कुछ लिखा है वह महाकवि एवं सन्त सूरदास पर भी लागू होता है, भले ही यह विशेष खेदजनक हो : “भारतवर्ष में अन्धे आदमियों के लिए न नाम की ज़रूरत होती है, न काम की। सूरदास उनका बना बनाया नाम है, और भीख माँगना बना-बनाया काम है।”

व्यक्ति और ग्रन्थ

1970 ई. में मथुरा से प्रकाशित, वल्लभ-सम्प्रदायवद्ध एवं कथा-प्रधान ‘सप्त-तरंगाम्बक सूरसागर’ के सम्पादक श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी ने नौ सूरदासों का इस क्रम से उल्लेख किया है : 1. दाक्षिणात्य भक्त विल्वमंगल सूरदास जो व्रजवासी हो गए थे तथा जिनसे सम्बद्ध चिन्तामणि-वेश्याकथा महाकवि सूरदास से बलात् संपृक्त कर दी गई है जिसका समय 23 ई. के आस-पास है। 2. संडीला (ज़िला हरदोई, उत्तर प्रदेश) के अमीर सूरदास-मदनमोहन जो अकबर (राज्यकाल 1556-1605 ई.) के समकालीन थे। 3. ग्वालियर वाले रामदास-पुत्र गायक सूरदास जिनका उल्लेख ‘आईने-अकबरी’ एवं ‘मुंतखिबुल-तवारीख’ में प्राप्त होता है तथा कई अधिकचरे लेखकों ने इन्हें भी महाकवि सूरदास से जोड़ने का अनर्थ किया है। 4. महाकवि सूरदास। 5. चन्द्रवरदायी-वंशज सूरजचन्द³ भाट जो 1298 ई. के आस-पास हुए थे तथा काशी के भाट सरदार कवि ने जिन्हें महाकवि सूरदास सिद्ध करना चाहा (मेरी समझ में, सम्भवतः भट्ट होने के कारण ही, आगरा जनपद में जन्मे, डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’ ने ‘सूर-सौरभ’ इत्यादि में इस निराधार दन्तकथा को प्रामाणिक सिद्ध करने का कष्ट किया)। 6. अयोध्या वाले सूर-किशोर, जिन्होंने 1762 ई. ‘मिथिला-माहात्म्य’ रचा। 7. प्रयाग वाले सूरदास (रचनाकाल 1862 ई. के आस-पास) जिन्होंने अर्जुनगीता, एकादशी-कथा, रामजन्म, रागमाला इत्यादि ग्रन्थ लिखे। 8. गुजरात वाले सूरभट्ट जिनके ‘सरगारोहण’ एवं रामजन्मपरक ‘सोहिलो’ ग्रन्थ उपलब्ध हैं। 9. नाथद्वारा (राजस्थान) वाले सूरदास (जीवन काल 1683 ई. के आस-पास) जिनके एकाध पद ही प्राप्त हैं। इन नौ के अतिरिक्त श्री चतुर्वेदी ने सूर-श्याम (श्यामदास या श्यामकुमार), सूरश्रीगोपाल, सूर-कल्याण एवं सूरसेन का भी उल्लेख किया है, जिनके पद ‘सूरसागर’ में आ गए हैं। वस्तुतः ‘सूरसागर’ एकव्यक्तिकृत न होकर अनेकचित संग्रह है। एक अन्य काशीवाले सूरदास भी हैं और यह भी अकबर के समकालीन थे जिनका प्रासंगिक उल्लेख मिश्रबन्धु ने ‘नवरत्न’ एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में किया है, जिसका आधार अबुल फ़ज़ल के पत्र-संग्रह ‘मुशियात अबुल फ़ज़ल’ का इनके नाम लिखा गया एक पत्र है। खेद है कि श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी मिश्रबन्धु एवं शुक्ल जैसे गम्भीर आलोचकों के विपरीत, इस पत्र को महाकवि सूरदास से सम्बद्ध करने का कथावाचक-छाप कष्ट करते हैं। उनके द्वारा सम्पादित

1. स्पष्टतः परसंपादित।

2. ‘हरिदासजू को ग्रन्थ’ ही?

3. सम्भवतः यही सूरसागर के अनेक पदों के रचयिता सूरजदास या सूरज हैं।

‘सूरसागर’ का कविवृत दन्तकथाओं को महत्व देने के कारण प्रात्ययिक नहीं रह सका। सूरसागर में सूरस्वामी नामक एक अन्य सूर भी मिलते हैं। एक अन्य पंजाबी सूरदास भी मिलते हैं जो शाहजहाँ (राज्यकाल 1627-1658 ई.) के समकालीन हिन्दू सूफी थे, जिनकी ‘नल-दमयन्ती कथा’ को आचार्य शुक्ल ने ‘अत्यन्त निकृष्ट’ बतलाया है। मिश्रबन्धु कृत अमर ‘विनोद’ (खंड 3) के ‘अज्ञातकालिक प्रकरण’ में ‘छप्पय’ के कवि सूरकिशोर एवं ‘भजन’ के कवि सूरसिंह को सूचीबद्ध किया है (संख्या 2105 ई. एवं 2106 ई.)। गुरुग्रन्थसाहब के रचनाकारों में भी एक सूरदास विद्यमान हैं, जिन पर शोध अपेक्षित है। सम्भव है, उनके कारण सूर-संख्या उन्नीस माननी पड़े।¹ प्रेमचन्द के सूरदास प्रभृति पात्र पृथक् लघु-प्रबन्ध की अपेक्षा करते हैं।

सूरदास के जीवनकाल पर भी पर्याप्त मतभेद दृग्गत होता है। तत्त्वतः हिन्दी के प्रथम साहित्येतिहासकार ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि. (1483 ई.) माना है, जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है। 1953 वि. (1896 ई.) में 4018 पदों के विशाल सूरसागर के प्रस्तोता (इस प्रकार जगन्नाथदास ‘रत्नाकर’, भगवानदान ‘दीन’ एवं मोहनबल्लभ पन्त, देवीप्रसाद, वालमुकुन्द चतुर्वेदी इत्यादि अपूर्ण, लघ्वाकार, वृहदाकार प्रभृति ‘सूरसागरों’ के सम्पादकों के अग्रज) अमर हिन्दी-सेवी बाबू राधाकृष्णदास के अनुसार सूरदास का जीवनकाल 80 वर्ष का रहा, जिसे आचार्य शुक्ल ने भी स्वीकार किया है। किन्तु मिश्रबन्धु ने सूरदास का जीवनकाल सं. 1535-1642 वि. (1478-1585 ई.) माना है जो 107 वर्ष का बनता है तथा कबीर के 120 एवं तुलसी के 126 वर्ष वाले जीवनकालों के सदृश काल्पनिक है। अधिकतर लोग मिश्रबन्धु स्थापित जीवनकाल को स्वीकार कर कल्पना को नमन करते हैं। श्री वालमुकुन्द चतुर्वेदी भी इन्हीं में एक हैं, यद्यपि मृत्युसंवत् 1640 वि. (1583 ई.) के नामनिहाल परिवर्तन के साथ। श्री चतुर्वेदी सूर-जन्म स्थान श्री मिश्रबन्धु के अनुकरण पर सीही (हरियाणा) मानते हैं, जबकि भाषा, स्वभाव, संस्कार इत्यादि की किसी भी दृष्टि से यह समीचीन प्रतीत नहीं होता। सूर का जन्मस्थान रुनकता (आगरा जनपद) या रेणुका-क्षेत्र शताब्दियों से कोटि-कोटि जनस्वीकृत रहा है, जहाँ उनका स्मारक भी विद्यमान है। यहीं गरुडाट में वे अधिकतर रहे, यहीं उन्होंने अधिकांश सृजन किया, यहीं उनका दार्शनिक एवं धर्म-नेता वल्लभाचार्य से परिचय हुआ। (प्रख्यात पौराणिक उपन्यासकार एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार डॉ. भगवतीशरण मिश्र में वल्लभाचार्य पर स्फीत द्विखण्डीय, ‘पावक’ एवं ‘अग्निपुरुष’, उपन्यास रचा है जो 2002 ई. में प्रकाशित हुआ है तथा सम्भवतः उनकी श्रेष्ठतम कृति है)। पारासोली की पावन व्रजभूमि में उनका शरीर-त्याग सर्वस्वीकृत है ही। सूर को सारस्वत ब्राह्मण माना जाता है, यद्यपि इसका कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। उनके पिता का नाम रामदास बतलाना प्रात्ययिक नहीं लगता, यद्यपि यह शिवसिंह से अब तक विद्वानों द्वारा मान्य रहा है। स्वयं ‘चौरासी वैष्णवन की वार्ता’ में चार रामदास विद्यमान हैं जिनमें एक ठाकुर थे, एक वीरबल के पुरोहित, शेष दो सारस्वत ब्राह्मण। गोकुलनाथ की कथित ‘चौरासी वैष्णवन की वार्ता’ एवं ‘दोसौ-बावन वैष्णवन की वार्ता’ सर्वथा अप्रामाणिक ग्रन्थ है। कहावत है, “कुछ बढ़ाई सन्तों ने, कुछ बढ़ाई भक्तों ने।” साहित्य-लहरी एवं सूर-सारावली सूरदास की कृतियाँ नहीं हैं, भले ही नकली सूरदासों ने नकली माल को असली बनाने के लिए महाकवि के कुछ प्रामाणिक पद इधर-उधर चर्या कर दिए हों। ब्याहलो और नल-दमयन्ती की चर्चा व्यर्थ है क्योंकि इनका उल्लेख गुजरात वाले सूर (भट्ट) के ‘सोहिलो’ और पंजाब वाले सूफी सूरदास के ‘नलदमयन्ती’ को महाकवि सूरदास कृत समझने के भ्रम का परिणाम मात्र है। स्वयं ‘सूरसागर’ के सूरज या सूरजदास, सूरश्याम, सूरश्रीगोपाल, सूरकल्याण, सूरसेन, सूरस्वामी इत्यादि की छापवाले पद महाकवि सूरदास के नहीं हैं—यहाँ तक कि ‘सूर’ या ‘सूरदास’ की छापवाले पदों में भी कुछ भाषा-शैली, प्रवाह-प्रभाव इत्यादि की दृष्टियों से विवादस्पद प्रतीत होने लगते हैं। सूर की जन्मांधता स्वयं उनकी वाणी द्वारा प्रामाणित है जिसे नाभादास कृत भक्तमाल एवं रघुराजसिंह कृत रामरसिकावली का सुपुष्ट अनुमोदन भी प्राप्त है तथा जिसे डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, स्व. डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’, स्व. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, स्व. डॉ. हरवंशलाल शर्मा, श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी इत्यादि ने ठीक ही स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल ने, दुलमुलपन के साथ ही सही, भक्तमाल की स्थापना ठीक मानी है। किन्तु मिश्रबन्धु को सूरदास की चित्रमय वर्णन-शक्ति देखकर “जन्मान्ध होने पर विश्वास नहीं” हुआ और आचार्य श्यामसुन्दरदास को भी ऐसा ही लगा। रूस इत्यादि के कतिपय सूर-पण्डितों ने भी ऐसा ही माना है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से, देखने का कार्य नेत्र नहीं करते, मस्तिष्क करता है। होमर के वर्णन सूर से भी अधिक चित्रमय एवं बिन्दु-प्रति-बिन्दु-मय हैं। मैंने चार प्रज्ञाचक्षु छात्रों को एम.ए. में पढ़ाया है तथा एक का पी-एच.डी. तथा पराशोधकार्यों में निर्देशन किया है, दिल्ली के बिड़ला मन्दिर में एक प्रज्ञाचक्षु को भगवत् दर्शन करते देखा है तथा लालकिले में एक गोरे प्रज्ञाचक्षु को दीवाने-खास की शिल्पकला का परीक्षण करते; इससे पूर्व ‘अन्धे का आत्मनिवेदन’ शीर्षक-कविता लिखी थी (अब ‘अन्धा’ न लिखता)

1. एक आधुनिक ‘सूर कवि’ (धूरलाल झा : 1890-15 नवम्बर 1948, सलेमपुर, जनपद मथुरा) भी स्मरणीय हैं। इन्होंने पारम्परिक एवं नवीन दोनों ही विषयों पर अच्छी व्रजभाषा-कविता की। ‘हिन्दी साहित्य और बीस सूर’ ग्रन्थ पर स्फीत शोध अपेक्षित है।

तथा ब्रेल-पत्रिका में 'बाह्य-दृष्टि का अभाव एक वरदान भी है' शीर्षक निबन्ध भी छपा था। प्रज्ञाचक्षु फ़िल्में देखते हैं, मैच देखते हैं, नौकायन (नौकाविहार नहीं—यह तो 'साधारण' है) करते हैं। होमर, बर्नलेफ़, बशशार, रूदागी (रौदगी), जुरअत, भीम भोई इत्यादि कवि तथा ब्रेल, हेलेन कीलर, तथा हुसैन इत्यादि विद्वान् प्रज्ञाचक्षु ही थे। अनेक संगीतकार, सांसद, वैज्ञानिक, प्राध्यापक इत्यादि प्रज्ञाचक्षु रहे हैं। मेरी मान्यता है कि यदि सूर जन्मान्ध न होते तो वे कृष्ण की बाललीला एवं रासलीला का ऐसा चित्रमय एवं स्वाभाविक वर्णन न कर पाते जैसा कर सके हैं। तब वे तुलसी इत्यादि नेत्रधारियों के सदृश आभूषणादि में उलझ जाते। यदि सूर मिल्टन के सदृश वाद में अन्धे हुए होते तो ईश्वर से शिकायत करते नज़र आते। संक्षेप में सूर का जीवनवृत्त यह है—“रुनकता के एक ब्राह्मण-परिवार में एक अन्धा बालक जन्मा, जिसने गा-गा कर जीवनयापन किया, महान् प्रतिभा के बल पर लगभग तीन हजार उच्चस्तरीय पद रचे, जनपूज्य एवं वल्लभ-विद्वत्लनाथ-सम्मानित हुआ, जीवन में ही कथा बन गया, अस्सी वर्ष जीकर पारासोली में स्वर्ग-प्रस्थान किया, पुराणपुरुष के रूप में अजर-अमर हो गया।” प्राणनाथ (अष्टसखा), सरयूदास (वल्लभकल्पद्रुम), गोकुलनाथ (कथित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एवं 'दो सौ-बावन वैष्णवन की वार्ता'), यदुनाथ (वल्लभदिग्विजय), ध्रुवदास (भक्त-नामावली), मिर्योसिंह चौहान (भक्तविनोद), रघुराजसिंह (रामरसिकावली) इत्यादि ने उन पर भक्तशैली में प्रकाश डाला है। नाभादास से रवीन्द्र तक अनेक कवियों ने उन पर कविताएँ रचीं, विवेकानन्द उनके “प्रभुजी मेरे औगुन चित न धरौ” शीर्षक पद को खेतड़ी (राजस्थान) के राजप्रासाद की वेश्या के मुख से सुनकर विह्वल हुए तथा अंग्रेज़ी-अनूदित किया, गांधी उनके “मो सम कौन कुटिल खल कामी” पद से अभिभूत हुए ('सत्य के प्रयोग' शीर्षक आत्मकथा में आरम्भिक दो पंक्तियों को उद्धृत एवं अंग्रेज़ी-अनूदित किया)।

अपार प्रशस्ति

सूर की कुतूहलपूर्ण जन्मांधता एवं असाधारण प्रतिभा के कारण डॉ. दीनदयालु गुप्त, डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. हरवंशलाल शर्मा, डॉ. प्रभुदयाल मीतल, डॉ. गोवर्द्धनलाल शुक्ल, डॉ. विश्वनाथ शुक्ल इत्यादि विद्वान् तक वस्तुवादी आलोचना नहीं कर सके। सम्मान, वल्लभ-सम्प्रदाय एवं अन्य सम्प्रदायगत कृष्णभक्तों में व्यापक मान्यता, मनोहारी गेयता एवं पुलककारी जीवनन्तता इत्यादि कारणों से सूर-काव्य की आलोचना कम हुई, विस्मयाविष्ट प्रशंसा अधिक। केवल प्रख्यात उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनमें कुछ ग्रन्थों के हैं, शेष जनश्रुतिमूलक—

1.

उचित, चोज, अनुप्रास, बरन-अस्थिति अतिभारी।
बचन प्रीति-निरवाह, अर्थ अद्भुत, तुकधारी।।
प्रतिबिंबित दिवि-दृष्टि, हृदय हरि-लीला भासी।
जनम-करम-गुन-रूप सवै रसना परकासी।।
बिमल बुद्धि गुन और की जो यह गुन स्रवननि धरै।
सूर कबित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै।।

(नाभादास)

2.

मतिराम, भूषण, बिहारी, नीलकंठ, गंग,
बेनी, सम्भु, तोष, चिन्तामनि, कालिदास की।
ठाकुर, नेवाज, सेनापति, सुखदेव, देव,
पजन¹, घनानन्द² घनस्यामदास की।।
सुन्दर, मुरारी, बोधा, श्रीपति हू, दयानिधि,
जुगल, कबिन्द³, ल्यों गोबिन्द⁴, केसोदास की।
रघुराज और कबिगन की अनूठी उक्ति
मोहि लागी झूठी जानि जूठी सूरदास की।।

(रघुराजसिंह)

1. पजनेस।

2. अरु = और।

3. कवीन्द्र उदयभानु।

4. गुरु गोविन्द सिंह?

3. उत्तम पद कवि गंग के, उपमा को बलवीर¹।
केसव अरथ-गंभीरता, सूर तीनि गुन धीर²।।
4. कविता-करता तीनि हैं तुलसी, केसव, सूर।
कविता-खेती इन लुनी, सीला विनत मजूर।।
5. तत्व-तत्व सूर कही, तुलसी कही अनूठी।
बची-खुची कविरा कही, और कही सब झूठी।।
6. किधौ सूर को सर लग्यो, किधौ सूर की पीर।
किधौ सूर को पद लग्यो, तन-मन धुनत सरीर।।

(तानसेन)³

7. सूरदास ने बिरच सूर-सागर अति भारी।
कृष्ण-भक्ति की ललित लहर जग में विस्तारी।।
लिया विषय जो हाथ दूर तक उसे नियाहा।
एक न छोड़ा भाव, शब्द सागर अवागाहा।।
कर अमित विषय वर्णन विशद सभी परम सुन्दर कहे।
अब कवियों के हित सकल इस कवि के जूठे रहे।।

(मिश्रबन्धु)

यह सत्य है कि कृष्णकाव्य-सूर्य सूरदास का तुलसीदास कृत (श्रीकृष्णगीतावली समेत) समग्र कृष्णकाव्य पर भारी प्रभाव पड़ा है, यह सत्य है कि सूरदास संसार के गीतिकाव्य⁴ के एक सीमान्त हैं, यह सत्य है कि सूरदास का वात्सल्य-वर्णन⁵ विश्व में बेजोड़ है, किन्तु तुलसीदास की सर्वसनिष्पत्ति, उनका वस्तुपरक-आत्मपरक-सर्वकाव्यसृजन, उनका सर्वयामी अलंकरण, उनका अतुलनीय भाषा-सामर्थ्य, उनका अप्रतिम भक्ति-निरूपण, उनका विराट् प्रभाव प्रभाव इत्यादि तत्व उनको सरलतापूर्वक सूरदास से श्रेष्ठतर महाकवि सिद्ध करते हैं, जिसे ग्रीअर्सन, मिश्रबन्धु, आचार्य शुक्ल, आचार्य श्यामसुन्दरदास, डॉ. माताप्रसाद गुप्त प्रभृति अनेक शीर्षस्थ आलोचकों ने स्वीकार भी किया है, जिसकी तुलना में डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' का "सूर-सूर तुलसी ससी" की लकीर पीटते हुए तथा डॉ. नगेन्द्र का बिना तुक-तरन्नुम अथवा तर्क-वितर्क के ही "हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य कवि"⁶ घोषित करना प्रभावहीन हो सकता है, जैसाकि हुआ भी है। आलोचना मन की तरंगों या पूर्वाग्रहों पर आधृत होने पर सत्य की क्षति तो करती ही है, आलोचक की क्षति भी करती है। डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' आगरा-जनपद में जन्मे तथा डॉ. नगेन्द्र अलीगढ़ जनपद में जन्मे ब्रजभाषी हैं। दोनों आर्यसमाजी भी हैं, भले ही 'जड़वर्गीय' न हों। अतः भावना की संकीर्णता विचार की व्यापकता पर हावी हो गई है।

सर्वसनिष्पत्ति में असफल

मेरा निश्चित मत है कि साहित्य-लहरी एवं सूर-सारावली में सूर-सागरेतर पद प्रक्षिप्त एवं मूल्यहीन हैं, अनुपलब्ध 'ब्याहलो' गुजरात-वाले सूर भट्ट के 'सोहिलो' एवं अनुपलब्ध 'नल-दमयन्ती' पंजाब वाले सूफी सूरदास के 'नल-दमयन्ती-कथा' के भ्रम में

1. वीरबल (ब्रह्म)।
2. उपमा कालिदासस्य, भारवेर्यगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं, माधे सन्ति त्रयो गुणाः।।
3. तानसेन की प्रशस्ति पर सूर का उत्तर—
विधना यह जिय जानिकै सेसहि दिए न कान।
धरा-मेरु सब डोलतो तानसेन की तान।।
4. सहज-गीतकार सूर की तुलना में सुचिन्तित गीतकार शैली (शेले) एवं सन्देशात्मक गीतकार रवीन्द्र तक भाषणकर्ता लगते हैं।
5. वात्सल्य रस की दृष्टि से विष्णुचित्त (तमिल) तक का सृजन अल्प एवं माधवदेव (असमिया) तक का अपेक्षाकृत-प्रयत्नज लगता है।
6. सप्त तरंगालक 'सूरसागर' (सम्पादक श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी) का 'मूल्यांकन' करते हुए, पृष्ठ 8।

उल्लिखित हुए हैं तथा स्वयं 'सूरसागर' के सूरज या सूरजचन्द या सूरजदास, सूरश्याम, सूरश्रीगोपाल, सूरकल्याण, सूरसेन, सूरस्वामी छापवाले पद महाकवि सूरदास द्वारा रचित नहीं हैं। सूर पर प्राप्त वल्लभ सम्प्रदायगत सामग्री कथात्मक एवं अप्रात्ययिक है। उन्होंने प्रायः तीन हजार पदादि रचे हैं, और यह संख्या भी महान् है। सूरदास विश्व-गीतिकाव्य के अतुलनीय कवियों में परिगणित होने योग्य हैं। प्रेरक जयदेव एवं विद्यापति का माधुर्य एवं प्रवाह उनमें नहीं है किन्तु प्रशस्य गुण एवं प्रभूत परिमाण में वे आगे हैं। नरसी एवं माधवदेव की तुलना में सूर का सृजन अधिकायामी है। रवीन्द्र ने छह हजार गीत रचे हैं किन्तु उनमें सूर की सहजता एवं जीवन्तता नहीं है। शेली (शेले) की भाषा-परिनिष्ठिता एवं प्रवाहशीलता, क्रान्तिकारिता एवं प्रगतिशीलता से सूर की अनगढ़ सरसता एवं निर्व्याज रसिकता, प्रभावी हास्यसम्पन्नता एवं मार्मिक विरहव्यथा जीवन की चिरन्तनता के निकटतर हैं। जयदेव के अतिरिक्त गीत-वैभव में सूर की समता करने वाला कोई कवि दृग्गत नहीं होता। किन्तु सूर को महान् सफलता केवल भक्ति, वात्सल्य एवं शृंगार रसों में ही प्राप्त हो पाई है। उनके वीर, अद्भुत, भयानक इत्यादि रसों के वर्णन असफल रह गए हैं। भयानक रस के दो उद्धरण प्रस्तुत हैं जिनमें रसनिष्पत्ति तो दूर, किसी एक वर्ण्य का निर्वाह तक नहीं दृग्गत हो पाता—

1. जसुदा मदनगुपाल सोवावै।
देखि सयन-गति त्रिभुवन कपै, ईस बिरंचि भ्रमावै॥
असित-अरुन-सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै।
जनु रवि गत संकुचित कमल जुग निसि अलि उड़न न पावै॥
स्वास उदर उससति यों मानौ दुग्धसिन्धु छवि छावै।
नाभि-सरोज प्रकट पदमासन उतरि नाल पछितावै॥
कर सिर-तर करि स्याम मनोहर अलक अधिक सो भावै।
सूरदास मानौ पन्नगपति प्रभु ऊपर फन छावै॥
2. भहरात-झहरात दावानल आयो।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर, अंदोर बन, धरनि-आकास चहुँ पास छायो॥
बरत बन-बाँस, घरहरत कुस-काँस, जरि उड़त बहु डाँस, अति प्रबल धायो।
झपटि झपटत लपट, फूल फूटत पटक, चटक लट लटति द्रुम फटि नवायो॥
अति अग्नि जार भंभार धुंधार करि उचटि अंगार झंझार छायो।
बरत बनपात, भहरात, झहरात, अररात तरु-महा धरनी गिरायो॥

“सूर कह्यौ भागवत अनुसार” वाले वर्णन हों या वर्णनात्मक पद, सूर की सारी वर्णनात्मक कविताएँ एकदम असफल हैं। तुलसी वर्णनात्मक, विचारात्मक एवं भावात्मक सभी काव्यरूपों में एकरस सफल हैं जबकि सूर वर्णनात्मक में असफल, विचारात्मक में ईषत्-सफल एवं भावात्मक में सफल। ऐसा लगता है, सूर ने वर्णनात्मक कविता अपने गुरु वल्लभाचार्य के भागवतप्रेम के कारण ही की है। उनके वर्णन बस कोरे वर्णन हैं।

सूरसागर के वर्णनात्मक अंश सूर के लगते ही नहीं। सम्भव है, वे सूरप्रभाव-लाभार्थ जोड़े गए हों। किन्तु विनयावली में भक्ति, बाललीला में वात्सल्य, रासलीला में संयोग-शृंगार, मुरली-माधुरी में प्रतीक-शृंगार एवं भ्रमरगीत में वियोग-शृंगार में सूरदास इतने अधिक सफल हैं कि उनकी तुलना में कबीर, नानक इत्यादि प्रायः कोरे उपदेशक लगते हैं तथा केशव, देव इत्यादि कोरे कवि। वे केवल तुलसीदास से ही तुलनीय हैं, यद्यपि वात्सल्य एवं शृंगार में उनसे भी आगे। सूर के उत्तम पद सौ से कम नहीं और यह संख्या उन्हें विश्व-स्तर प्रदान करने में सहज-सक्षम है।

सूरसागर : महाकाव्य या गीतिकाव्य?

विश्व-साहित्य के गम्भीर अध्येता एवं 'साहित्यालोचन' के प्रस्थान-ग्रन्थकार आचार्य श्यामसुन्दरदास ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य' ग्रन्थ में सूरसागर को गीतिकाव्य माना है, जो समीचीन है। यह महान् कृष्ण की बाल, रास एवं विरह लीलाओं को प्रधानता देता है तथा इन पर भावात्मक सर्जना प्रस्तुत करता है, प्रबन्धात्मक रचना नहीं। इसके आसावरी, सोरठ, नट, नटभैरव, केदार इत्यादि राग

इसे निर्विवादतः गीतिकाव्य सिद्ध करते हैं। पता नहीं क्यों और कैसे, स्वच्छन्दतावादी आलोचक डॉ. नगेन्द्र इसे महाकाव्य¹ लिखते हैं? यह ठीक है कि इसमें प्रसंगात् या भागवत-संपृक्तीकरण-चेष्टा के परिणामस्वरूप अनेक पौराणिक आख्यान वर्णित हैं तथा रामकथा तो नवम स्कन्ध का वर्ण्य ही है किन्तु केवल आख्यान-समावेश विधा-निर्णय का उपादान नहीं बन सकता, विशाल काव्य की मूल एवं मुख्य प्रकृति एवं प्रवृत्ति ही उसका निर्णय कर सकती है। आख्यान तो 'गीतावली' एवं 'उद्धवशतक' इत्यादि में भी विद्यमान है किन्तु ये गीतिकाव्य एवं मुक्तककाव्य ही माने जाते हैं क्योंकि क्रमशः रागनिबद्ध एवं भावप्रवण हैं। मेरे मत से, सूरसागर की गीतिकाव्य विधा अपनी सुस्पष्ट रागनिबद्ध एवं भावप्रवणता में विवादास्पद है ही नहीं। समय-समय पर महाकवि के कहे और गाए कृतित्व का समाहार विशृंखल रूप में ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह प्रज्ञाचक्षु था तथा दूसरे ही संकलन में प्रस्तुतिकरण करते थे। मोहम्मद के निरक्षर होने और उनके देहान्त के अनेक वर्षों के उपरान्त संकलित किए जाने के कारण उनकी पुस्तक कुरान में भी वर्ण्य-विशृंखलता व्याप्त है। गुरुग्रन्थसाहब का संकलन रागपरक है, जिससे रचनाकारों की रचना-राशि बिखर-बिखर कर रह गई है। वर्ण्य-विशृंखलता अन्य अनेक महान् ग्रन्थों में भी दृग्गत होती है। यह विन्दु भी सूरसागर को गीतिकाव्य सूचित करता है।

महान् भक्तिकाव्य

सूरसागर महान् भक्तिकाव्य है, जिसमें दास्यभाव, सख्यभाव, शृंगारभाव (माधुर्यभाव), वात्सल्यभाव एवं शान्तभाव सभी की सम्पूर्ण निष्पत्ति दृष्टिगोचर हो जाती है। संसार-साहित्य में भक्ति के सर्वश्रेष्ठ काव्य रामचरितमानस के अनन्तर श्रीमद्भागवत एवं सूरसागर की गणना की जा सकती है। विनयपत्रिका दास्य-भक्ति का सीमान्तक काव्य है, किन्तु उसमें सूरसागर जैसी समग्र भक्ति का विस्तार नहीं है। वीजक में सख्य-भक्ति-निरूपण अतीव गहन एवं प्रशस्य है, किन्तु उसमें समग्रभक्ति-विस्तार के अभाव के साथ कला-चारुत्व की अल्पता भी विद्यमान है। कवीर किसी भी दृष्टि से सूर के स्तर के कवि नहीं हैं। सन्त-रूप में अवश्य वे और सूर समान रूप से महान् हैं—यही नहीं, सुधारवादी नेता होने के कारण रैदास, नानक, दादू, रवीन्द्र इत्यादि पर पड़े भारी प्रभाव के कारण कवीर की अखिल भारतीय छवि व्यापकतर भी मानी जा सकती है (किन्तु यह विन्दु साहित्येतर-सा है)।

सूर ने विराट् भारतवर्ष के विशाल हृद्देश में हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य गोस्वामी तुलसीदास के सदृश कोरे-सैद्धान्तिक निर्गुण से सरस-व्यावहारिक सगुण, अस्पष्ट-दुरूह निराकार पर स्पष्ट-सुगम साकार, शाब्दिक-अहंवादी ज्ञान पर प्रत्यक्ष-पुष्टिवादी भक्ति एवं अटपटे-अनगढ़ योग पर सुलझे-सुघट प्रेम को वैसी ही वरीयता प्रदान की जैसी महापुरुष शंकरदेव² ने असम में, चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में, सारलादास ने उड़ीसा में, एकनाथ ने महाराष्ट्र में नरसी ने गुजरात में तथा आंडाल (गोदा), कम्बन, कुमारव्यास, पुरन्दरदास, पोतन, एडुत्तच्छन्, त्यागराज इत्यादि ने स्फूर्ति दक्षिण में की थी। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्द कवीरवादी डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पर प्रहार-पूर्वाग्रह के साथ भी मननीय हैं, "ज्ञान को कोरी वचनावली और योग की थोथी साधनावली का यदि साधारण लोगों में विशेष प्रचार हो तो अव्यवस्था फैलने लगती है। निर्गुणपन्थ ईश्वर की सर्वव्यापकता, भेदभाव की शून्यता, सब मतों की एकता आदि लेकर प्रचार हो तो अव्यवस्था फैलने लगती है। निर्गुणपन्थ ईश्वर की सर्वव्यापकता, भेदभाव की शून्यता, सब मतों की एकता आदि लेकर प्रचार हो तो अव्यवस्था फैलने लगती है।" आचार्य रामचन्द्र ने इस विचार के प्रेरक उद्गार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं, "राम और अहंकार आदि दुर्युक्तियों में उलझने लगी।" आचार्य रामचन्द्र ने इस विचार के प्रेरक उद्गार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं, "राम और रहीम को एक बताने वाली बानी मुरझाए मन को हरा न कर सकी, क्योंकि उसके भीतर उस कट्टर एकेश्वरवाद का सुर मिला हुआ था जिसका ध्वंसकारी स्वरूप लोग नित्य अपनी आँखों से देख रहे थे। सर्वस्व गाँवाकर भी हिन्दू-जाति अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाए रखने की वासना नहीं छोड़ सकी थी। इससे उसने अपनी सभ्यता, अपने चिर-संचित संस्कार आदि की रक्षा के लिए राम और कृष्ण का आश्रय लिया। और उनकी भक्ति का स्रोत देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया। जिस प्रकार बंग देश में कृष्ण चैतन्य ने उसी प्रकार उत्तर भारत में वल्लभाचार्यजी ने परम भाव की उस आनन्दविधायिनी कला का दर्शन कराकर जिसे प्रेम कहते हैं जीवन में सरसता का संचार किया। दिव्य प्रेम संगीत की धारा में इस लोक का सुखद पक्ष निखर आया और जमी हुई उदासी या खिन्नता बह गई। जयदेव की देववाणी-स्निग्ध पीयूष-धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोक-भाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल-कण्ठ से प्रकट हुई और आगे चलकर व्रज के करील कुंजों के बीच फैल

1. "आज हिन्दी में सैकड़ों ग्रन्थ इस महाकाव्य पर उपलब्ध हैं।" —सूरसागर (सं. श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी) : मूल्यांकन, पृ. 8

2. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने 'महापुरुष शंकरदेव ब्रजबुलि-ग्रन्थावली' प्रकाशित की है। शंकरदेव हिन्दी और असमिया के अमर साहित्य-सेतु हैं।

मुरझाए मनो को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी।" यहाँ "अन्धा" शब्द बहुत सटीक नहीं है। 'प्रज्ञाचक्षु' या 'दिव्यचक्षु' या 'कृष्णचक्षु' का प्रयोग ठीक रहता।

सगुणवाद का घोषणा-पत्र

यद्यपि भावमूर्ति सूर ने तुलसी एवं नन्ददास इत्यादि के सदृश सगुणवाद-मण्डन के निमित्त बौद्धिक तर्क का प्रयोग बहुत कम किया है, तथापि वे तर्कविपन्न भी नहीं हैं। उनका निम्नलिखित पद सगुणवाद का घोषणा-पत्र कहा जा सकता है, जिसका सैद्धान्तिक-तर्कवाद सर्वोच्च कोटि का है :

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगेहि मीठे फल कौ रस अन्तरगत ही भावै।
परम स्वाद सबही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी कौ अगम अगोचर सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति विनु निरालंब मन चक्रित धावै।
सब विधि अगम बिचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावै।।
वस्तुतः भ्रमरगीत सगुणवाद-साकारवाद की मीमांसा है।

महाकवि सूर के हास्य-व्यंग्य-सम्पन्न व्यावहारिक तर्क भी बहुत ही खरे और प्रभावी हैं। उस ईश्वर से हमें लेना एक न देना दो जो पहले या दूसरे या सातवें आसमान में रहता है तथा मरने के बाद अपने एजेंटों की सिफ़ारिश पर स्वर्ग बाँटता है। हमें तो उस ईश्वर से ही जुड़ना है जो प्रत्यक्ष है तथा अपनी बहुविधलीला से इस लोक को ही स्वर्ग के रम्यतर बनाता है। नीरस ईश्वर सरस राम या कृष्ण के सामने शून्य ही तो है। उससे हमें कोई सरोकार नहीं—

निरगुन कौन देस को बासी?
मधुकर! कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति, सौंच, न हौंस।।
को है जनक? कौन है जननी? कौन नारि? को दासी?
कैसो वरन? भेष है कैसो? केहि रस में अभिलाषी?

और फिर, जिसको जो भा गया—भा गया! जो जिस पथ पर चल पड़ा—चल पड़ा! मुण्डे-मुण्डे मतिभिन्ना। भिन्नरुचिर्हि लोकाः। अपनी-अपनी पसन्द—

उर में माखन-चोर गड़े।
अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो! तिरछे है जु अड़े।।

उपनिषद् से बढ़कर निगुण-निराकार-निरूपक ग्रन्थ कौन हो सकते हैं, जिन्होंने कृष्ण के आत्मवाद-निष्कामकर्मवाद, बुद्ध के शून्यवाद, बौद्ध विज्ञानवाद, लाओत्से के ताओवाद, सुकरात के आत्मवाद, प्लेटो (अफ़लातून) के विश्वात्सवाद, ईसा के आत्मवाद, मोहम्मद के एकेश्वरवाद, मंसूर के 'अनहलकवाद', कबीर-नानक-रवीन्द्रादि के रहस्यवाद, कांट-स्पेन्सर आदि के अज्ञेयवाद, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द के समन्वयवाद, अरविन्द के दिव्यजीवनवाद, राधाकृष्णन् के समग्रादर्शवाद इत्यादि-इत्यादि सबको प्रभावित भी किया और प्राचीनतम-के-प्राचीनतम, नवीनतम-के-नवीनतम, सर्वश्रेष्ठ-के-सर्वश्रेष्ठ भी बने-के-बने रह गए? याज्ञवल्क्य की समता संसार का कोई दार्शनिक नहीं कर सकता। उद्दालक, श्वेताश्वतर, पतंजलि, बादरायण इत्यादि को ध्यान में रखकर इलिअर्ट (एलिअर्ट) ने इनकी तुलना में पाश्चात्य दार्शनिकों को पीठ पर बस्ता लटकाए जाते स्कूली बच्चे कहा था। फिर, मोहम्मदीयत में तो दर्शन के लिए, तर्क के लिए, विचार के लिए, भाव के लिए, कला के लिए कोई अवकाश ही नहीं है। मोहम्मदीयत संसार को कोई बुद्ध या महावीर, प्लेटो या अरस्तू, ईसा या गांधी नहीं दे पायी, न दे सकती है क्योंकि वह मोहम्मद और उनके ग्रन्थ 'कुरान' में जकड़कर रह गयी है। ज्ञान-विज्ञान में मुसलमान भाई संसार में सबसे पीछे हैं। इस स्थिति में, कबीर और जायसी जैसे मुसलमानों का जनता

को केवल “यथा राजा तथा प्रजा” के बल पर सीधी-सादी कलाचेतनावादी भक्ति-पद्धति को छोड़कर टेढ़ी-मेढ़ी जड़ास्थावादी पद्धति पर चलाना समीचीन नहीं हो सकता—

1.

काहे को रोकत मारग सूधो?

सुनहु मधुप! निरगुन-कंटक ते राजपंथ क्यों रूँधो?...

निस्सन्देह सूर का सगुण-साकार-मण्डन तुलसी के सगुण-साकार-मण्डन से अधिक सौन्दर्यसम्पन्न, सरल एवं सहज है किन्तु उसमें तुलसी की प्रत्यक्ष प्रहारशक्ति एवं गहन तार्किकता कम ही मिलती है जिससे तीव्र-तीक्ष्ण प्रभाव निष्पन्न नहीं हो पाता। अपने बाललीला-वर्णन एवं भ्रमरगीत में सूर तुलसी से बड़े कवि लगते हैं किन्तु जीवन की समग्र व्याप्ति एवं प्रखर-प्रत्यक्ष प्रभाव में तुलसी का व्यक्तित्व भी महत्तर है, कृतित्व भी।

विनयावली : दास्यभक्ति-शान्तभक्ति की अमर कविता

विनय भक्ति की आत्मा है। विनय का शिखर दास्यभक्ति में ही दृग्गत होता है; इसीलिए भक्ति के पंचतत्त्व में उसको शीर्षस्थ स्थान प्राप्त है। ज्ञान, योग एवं कर्म अहंता से शतशः मुक्त नहीं हो सकते, जबकि भक्ति की अहंता (अभिमान) “मैं सेवक रघुपति पति मोरे” है। सूर जैसे भक्ति के एक सीमान्त में दास्यभक्ति का विनयतत्त्व अत्यन्त सशक्त एवं स्फीत रूप में विद्यमान है। यद्यपि दास्यभक्ति के सुमेरु तुलसी ही हैं, तथापि उनके अनन्तर इस दिशा में भी सूर की समता नहीं, क्योंकि कबीर की कुण्ठा उन्हें दास्यभक्ति में सर्वोच्चता की ओर प्रेरित नहीं होने देती। यदि तुलसी दास्यभक्ति में अग्रणी हैं, तो सूर सख्यभक्ति में, मीराँ (मीरा) शृंगार (माधुर्य) भक्ति में, कबीर शान्तभक्ति में; तथा वात्सल्यभक्ति में तुलसी को उच्च स्थान प्राप्त होने के बावजूद अग्रणी (विश्ववाग्रणी) सूर ही हैं। भक्ति की सर्वांगीणता में सूर की व्याप्ति असाधारण एवं अप्रतिम है, किन्तु प्रमुखतः दास्यभक्ति-सीमान्त एवं सामान्यतः समग्रभक्ति-निरूपक तुलसी का विश्व-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ भक्त-महाकवि होना विवादास्पद नहीं रह जाता। गाँधी, एट्किन्स इत्यादि ने इसे स्वीकार भी किया है।

सूर की ‘विनयावली’ अद्भुत विनम्रता से निष्पन्न है—

मो सम कौन कुटिल, खल कामी?

जेहि तनु दियौ ताहि विसरायौ, ऐसो नोनहरामी?¹

समझौतावाद दास्यभक्ति का एक प्रधान बिन्दु है जिसे भक्तिशास्त्र की शब्दावली में विरदवाद कहा जाता है। सूर अपनी विशद विनयावली में विरदवाद के वैसे ही सफल महाकवि हैं जैसे विनयपत्रिका में तुलसी—

प्रभुजी! मेरे औगुन चित न धरौ।

समदरसी है नाम तिहारौ, अब मोहि पार करौ॥

इक लोहा पूजा मैं राखत, इक घर बधिक परौ।

पारस गुन औगुन नहिं चितवै कंचन करत खरौ॥

इक नदिया इक नार कहावत, मैलोहि नीर भरौ।

जब दोऊ मिलि एक बरन भए सुरसरि नाम परौ॥

यह माया भ्रमजाल निवारौ, सूरदास सगरौ।

अबकी बेर मोहि पार उतारौ, नहिं प्रन जात टरौ॥²

कबीर, तुलसी इत्यादि के सदृश सूर ने भी “जाकी कृपा पंगु गिरि लखै” इत्यादि के संस्कृत से अनुवाद-शैली का प्रयोग किया है। किन्तु भक्ति-प्रपत्ति के पक्ष में अकाट्य तर्क देने में तुलसी के अतिरिक्त उनका समकक्ष नहीं मिलता—

1. इन पंक्तियों ने गाँधी को इतना प्रभावित किया था कि उन्होंने ‘सत्य के प्रयोग’ (माइ एक्स्पेरिमेंट्स विद ट्रूथ) शीर्षक आत्मकथा की भूमिका में इनका (अनुवाद करके) प्रयोग किया।

2. विवेकानन्द को अभिभूत करने वाला पद जिसका उन्होंने अंग्रेज़ी-अनुवाद भी किया था।

मेरो मन अनत कहाँ सचु¹ पावै।
 जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै॥
 कमलनैन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
 परमगंग कौ छाँड़ि पियासौ जड़मति कूप खनावै॥
 जिन मधुकर अंबुजरस चाख्यौ, क्यों करीलफल खावै।
 सूरदास प्रभु! कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥

यद्यपि सूर सम्प्रदाय की दृष्टि से पुष्टिमार्गी थे, तथापि प्रपत्तिमार्ग में उनकी आस्था कम न थी, क्योंकि विनयावली के अधिकांश पद दास्यभक्तिगत हैं जिनमें प्रपत्तिवाद आपूर्ण है। विनयावली के सूर प्रकृत्या दास्यभक्त हैं। सख्यभक्ति इत्यादि में उनकी रुचि बल्लभ के सम्पर्क में आने का परिणाम थी। किन्तु उनकी विलक्षण प्रतिभा ने सख्य-शृंगार-वात्सल्य-भक्तियों में भी विलक्षण सफलता ही प्राप्त की है। शान्तभक्ति में भी उनका सृजन प्रशस्य है। प्रपत्ति का एक उत्कृष्ट निदर्शन मननीय है—

जौ हम भले वुरे तौ तेरे।
 तुमहिं हमारी लाज बड़ाई, विनती सुन प्रभु! मेरे॥
 सब तजि सरनागति आयौ, निज कर चरन गहे रे।
 तव प्रताप बल बदत न काहू, निडर भए घर चरे॥
 और देव सब रंक भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे।
 सूरदास प्रभु! तुम्हारी कृपा तै पाये सुख जु घनेरे॥

सत्संग भक्ति का एक आधारभूत तत्व है। संस्कृत-साहित्य में सत्संग-महिमा पर प्रभावी सृजन विद्यमान है। हिन्दी में तुलसी सत्संग-वर्णन के अतुलनीय कवि हैं। किन्तु कवीर, सूर, रहीम, वृन्द इत्यादि ने भी सत्संगकाव्य की अच्छी रचना की है। सूर का प्रस्तुत पद सत्संग-काव्य की एक महान् रचना है—

छाँड़ि मन! हरि-विमुखन को संग।
 जिन संग कुबुधि उपजति है, परत भजन में भंग॥
 कहा भयौ पयपान कराएँ, विष नहिं तजत भुजंग।
 कागहिं कहा कपूर चुगाएँ, स्वान न्हावै गंग॥
 खर कौं कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग।
 गज कौं कहा न्हावै सरिता, धरै खेह पुनि छंग॥
 पाहन पतित वान नहिं बेधत, रीतो करत निषंग॥
 सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजौ रंग॥

निर्वेद-स्थायीभावमूलक शान्तरस निवृत्ति-प्रधान है। भक्ति प्रेम की प्रवृत्ति से ऊभ-चूभ है। शान्तरस एवं भक्तिरस में विरक्ति एवं अनुरक्ति का मूलभूत अनन्तर विद्यमान है। 'रस-गंगाधर' के प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ जैसे आचार्य ने हिन्दी-भक्तिकाव्य से प्रभावित होकर ही शान्तरस एवं भक्तिरस का विश्लेषण किया है। हिन्दी-भक्तिकाव्य ने शांकर-अद्वैतवादी आचार्य मधुसूदन सरस्वती को भी प्रभावित किया था। विनयपत्रिका के तुलसी मधुसूदन सरस्वती के अद्वैतवाद से प्रभावित हुए,² मधुसूदन सरस्वती तुलसी के मानस से³। दोनों की मैत्री निर्विवाद है ही। मधुसूदन सरस्वती ने शैवों द्वारा तुलसी पर प्रहार के कठिन समय में तुलसी की प्रशस्ति⁴ कर भविष्यद्रष्टा होने का परिचय दिया था। तुलसी और सूर वे महाकवि हैं, जिनसे अमरसंस्कृतग्रन्थकार, अद्वैत-सीमान्त एवं

1. "सचस्यान् स्वस्तये"। सचु (शान्ति या सुख) वैदिक शब्द है, जिसका प्रयोग कवीर (सचु पाया) एवं तुलसी (परम सचु पाए) इत्यादि ने भी किया है।
2. द्रष्टव्य हैं मेरे 'विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य' अथवा इसके लघुरूप 'विश्वकवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य' ग्रन्थ। 2001 ई. में 'तुलसी सर्वेक्षण' प्रकाशित हो चुका है।
3. "मधुसूदन के वेदान्त मत में भक्ति का सम्मिश्रण है।" (भारतीय दर्शन, डॉ. उमेश मिश्र, पृ. 352)
4. आनन्दकानने ह्यास्मिन् जगमस्तुलसीतरुः।
 कवितानञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता।।

काव्यशास्त्र-सीमान्त तक प्रेरित-प्रभावित हुए हैं। शान्तरस एवं भक्तिरसांतर्गत शान्तभाव में मूल सैद्धान्तिक अन्तर यह है कि शान्तरस शतशः निवृत्तिपरक है एवं भक्तिरसान्तर्गत शान्तभाव स्थूलवृत्ति-निवृत्तिपरक होते हुए भी आराध्य-अनुरक्तिपरक है। किन्तु सूर सन्त भी थे। मेरे मत से 'सम्यक्' एवं 'तप' मिलकर 'सन्त' बनता है। जिसका तप महान् हो, वह सन्त कहलाता है। सन्त के जीवन में निर्वेद का महत्व नकारा नहीं जा सकता। भक्तिरस-प्रतीक कबीर, सूर, तुलसी इत्यादि प्रमुखतः शान्तरस के कवि नहीं हैं, किन्तु इनकी वाणी इस रस से रहित भी नहीं है। सूर की विनयावली में दास्यभाव को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। किन्तु उसमें शान्तभाव की भी उपेक्षा नहीं की गई—

1.

अब मैं नाच्यों बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कण्ठ विषय की माल ॥
महामोह कौ नूपुर बाजत, निन्दा सब रसाल ।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत कुसंगत चाल ॥
तृष्णा नाद करति घट भीतर नाना बिधि दै ताल ।
माया कौ कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल ॥
कोटिक कला काँछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबे अविद्या दूर करौ नन्दलाल ॥

बाललीला : वात्सल्यरस-सुमेरुकाव्य

निर्विवाद रूप से सूर वात्सल्यरस के सम्राट् हैं। न केवल हिन्दी-काव्य में अपितु विश्व-साहित्य में उनका वात्सल्यकाव्य बेजोड़ है। तमिल के विष्णुचिंत की वात्सल्य-रचना गुण-परिमाण दोनों में अल्प है। असमिया के सूर माधवदेव का महान् सृजन भी सहजता एवं चित्रसौन्दर्य में पीछे पड़ जाता है। संस्कृत में वात्सल्य-काव्य अल्प है। पाश्चात्य भाषाओं में शिशु ईशु पर जो वात्सल्य-काव्य प्राप्त होता है, वह कुँवारी-माता के एकमात्र ईश्वरपुत्र की उस अन्धविश्वासमूलक वाइविल (न्यू टेस्टामेंट) कथा पर आधृत है जिसे मोहम्मद तक ने अपनी पुस्तक कुरान में जाली ठहराया है तथा जिसमें न जीवन का सहज-रस ही प्राप्त होता है, न लीला का चित्र-सौन्दर्य ही। समग्र पाश्चात्य कविता में सूर की समता करने वाला कोई वात्सल्य-कवि नहीं मिलता। वहाँ के महान् कवियों में प्रधान विषय युद्ध, प्रेम एवं ईसाई मजहब रहे हैं। होमर एवं वर्जिल युद्ध के महाकवि हैं, शेक्सपीयर वैसे तो समग्र जीवन-व्याप्ति के महाकवि हैं किन्तु किसी एक प्रवृत्ति के आधार पर अपने अनेक नाटकों से सॉनेट्स और काव्यों तक वे प्रेम से संपृक्त हैं, दान्ते एवं मिल्टन ईसाइयत के महाकवि हैं। हिन्दी में तुलसी एवं हरिऔध ने वात्सल्य-काव्य का उत्कृष्ट सृजन किया है, मैथिलीशरण का योगदान भी उल्लेख्य है, किन्तु इनमें से कोई सूर के समकक्ष नहीं। सूर का महान् वात्सल्य-काव्य सख्यभक्ति से भी निष्पन्न है। सहज बालचेष्टांकन एवं चित्रसम्पन्नता सूर के वात्सल्य-काव्य की अतुलनीय एवं महान् विशेषताएँ हैं। आचार्य शुक्ल के शब्द माननीय हैं, “यद्यपि तुलसी के समान सूर का काव्य क्षेत्र इतना व्यापक नहीं कि उसमें जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं का समावेश हो पर जिस परिमित पुण्यभूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया उसका कोई कोना अछूता न छूटा। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं। इन दोनों क्षेत्रों में तो इस महाकवि ने मानो औरों के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने गीतावली में बाललीला को इनकी देखा-देखी बहुत अधिक विस्तार दिया सही पर उसमें बालसुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आई, उसमें रूपवर्णन की ही प्रचुरता रही। बालचेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार और कहीं नहीं। दो-चार चित्र देखिए—

1.

काहे को आरि करत मेरे मोहना! यो तुम आँगन लोटी?
जो माँगहु सो देहुँ मनोहर, यहै बात तेरी खोटी ॥
सूरदास को ठाकुर ठाढ़े हाथ लकुट लिए छोटी ॥
सोभित कर नवनीत लिए ।
घुदुरुन चलत, रेनु तनु मंडित, मुख दधि लेप किए ॥

2.

3. सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैयाँ ।।
4. पाहुनि करि दै तनक मद्यौ
आरि करै मनमोहन मेरो, अंचल आनि गद्यौ ।
ब्याकुल मथत मथनियाँ रीती, दधि भैं ढरकि रद्यौ ।

बालकों के स्वाभाविक भावों की व्यंजना के न जाने कितने सुन्दर पद भरे पड़े हैं। 'स्पृष्टा' का कैसा सुन्दर भाव इस प्रसिद्ध पद में आया है—

मैया! कबहिं बढैगी चोटी?
कितिक बार मोहि दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी ।।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों हैहै लाँवी, मोटी ।।”

बलराम की लम्बी और मोटी चोटी देखकर कृष्ण के मन में बाल-ईर्ष्या उत्पन्न होती है। वे यशोदा से व्यथा-निवेदन करते हैं। यशोदा के मातृ-हृदय के समक्ष कृष्ण के दूध न पीने की समस्या थी, जिसका समाधान अनायास प्राप्त हो गया : यदि तू काली-कजरारी गाय का दूध पिएगा तो तेरी काली-कजरारी चोटी भी बढ़ जाएगी, “कजरारी कौ पय पियौ लाल! तोरी चोटी वाढ़े ।” बालक कृष्ण दूध पीने बैठे। थोड़ा-थोड़ा दूध पी-पीकर चोटी देखते जाते। वह न तो बड़ी और न मोटी ही हुई। तब यशोदा से निवेदन किया।

एक बार दही चुराते रंगे हाथ पकड़े जाने पर जो प्रतिक्रिया हुई, उसका बालहृदय-मातृहृदय-गागर-सागर दर्शनीय है। सूर बालहृदय के तो अनूठे पारखी थे ही, मातृहृदय का कोना-कोना भी ‘देख’ सकते थे—

मुख दधि पोंछि कहत नैदन्दन, दोना पीठि दुरायौ ।
डारि साँटि, मुसुकाय, तबहि गति सुत कौ कंठ लगायौ ।।

डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’ ने सूर के मातृहृदय के भी अप्रतिम पारखी होने की जो प्रशस्ति की है, वह सर्वथा समीचीन है। सूर की बाललीला में सख्यभक्ति का सुन्दर समावेश भी अतीव प्रभावी है। जिसे आचार्य शुक्ल “क्षोभ के वचन” समझते हैं, वे सख्यभक्ति-व्यंजक उद्गार हैं—

खेलत में कौ काको गोसैयाँ?
जाति-पाँति हमतें बड़ि नाही, नाही न बसत तुम्हारी छैयाँ ।
अति अधिकार जनावत यातें अधिक तुम्हारे हैं कछु गइयाँ ।।

यह “द्वा सुपर्णा सजुया सखाया” (श्वेताश्वतरोपनिषद्) में मूलबद्ध लीला-रूप है। डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’ ने “ख्याल परै यह सखा सवै मिलि मेरे मुख लपटायो” में ब्रह्म की निर्लिप्त स्थिति का प्रतिपादन कर सूर की बाललीला के वर्णन में दार्शनिक गहनता का निरूपण ठीक ही किया है। मिश्रवन्धु ने ‘नवरत्न’ में कबीर को “उपनिषद् की सन्तान” कहा है, जो कबीर पर अद्वैतवाद के स्पष्ट प्रभाव को देखते उचित ही है, किन्तु डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’ ने ‘भक्ति का विकास’ में सूर को उपनिषद् (कबीर ‘संहिता’, जायसी ‘ब्राह्मण’, तुलसी ‘पुराण’) सिद्ध करके अभूतपूर्वतः प्रशंस्य स्थापना की है। सूर की दार्शनिक गहनता अपने मनोहारी लालित्य में गुप्तप्राय रही है, कबीर की आवश्यकता से अधिक मुखर है, तुलसी की कलात्मक-प्रतिपादननिष्पन्न। सूर की दार्शनिक गहनता केवल भ्रमरगीत या विनयावली में ही विवृत नहीं हुई, वह बाललीला, रासलीला, एवं मुरलीमाधुरी तक प्रसरित है।

‘सूर की बाललीला में बाल-मनोविज्ञान’, ‘सूर की बाल-लीला में मातृमनोविज्ञान’, ‘सूर की बाललीला में चित्रालेखन’, ‘सूर की बाललीला में हास-परिहास और व्यंग्य’, ‘सूर की बाललीला में दर्शन’ इत्यादि प्रबन्ध अथवा लघुप्रबन्ध के विषय हैं। उनके वास्तव्य पर प्रभूत-ऊहापोह हो चुका है। विष्णुचित्त, माधवदेव इत्यादि के वास्तव्यकाव्य से उनके वास्तव्यकाव्य पर तुलनात्मक शोधकार्य भी हो चुके हैं। पोतन से उनका तुलनात्मक अध्ययन भी सम्पन्न हो चुका है। सूर के महान् चित्रांकन एवं उनकी अनूठी काव्य-कला से सम्पन्न अंश उद्धृत हैं जिनमें कहीं वेदान्त-दर्शन छिपा है, कहीं बाल-मनोविज्ञान प्रकट है, कहीं मातृ-मनोविज्ञान विवृत है—

1. किलकत कान्ह घुदुरुवन आवत ।
मनिमय कनक नन्द कै आँगन बिम्ब पकरिबैं धावत ।।
कवहुँ निरखि हरि आपु छौं कौं कर सौं पकरन चाहत ।

- किलकि हँसत, राजति द्वै दँतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ।।¹
2. वाल-विनोद खरौ जिय आवत ।
मुख-प्रतिबिंब पकरिबे कारन हुलसि घुटरुनि धावत ।।²
3. सिखवति चलन जसोदा भैया ।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमाइ धरनी धरैं पैयाँ ।।
कबहुँक सुन्दर बदन विलोकति उर आनँद भरि लेत वलैया ।
कबहुँक कुलदेवता मनावति, चिरजीवै मेरो कुँवर कन्हैया ।।
कबहुँक बल कौ टेरि बुलावति, इहि आँगन खेलौ दोउ भैया ।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप विलसत नन्दरैया ।।
4. सोभित कर नवनीत लिएँ ।
घुटरुन चलत रेनु तन मंडित मुख दधि-लेप किएँ ।।
चारु कपोल, लोल लोचन, गौरोचन-तिलक दिएँ ।
लट लटकन मनो मत्त मधुपगन मादक मदहि पिएँ ।।
कठुला कंठ, बज्र, केहरि-नख राजत रुचिर हिएँ ।
धन्य सूर एकौ पल या सुख! का सतकल्प किएँ ।।

x

x

x

x

हिन्दी-साहित्य के सीमान्त तुलसी एवं कृष्णकाव्य के सीमान्त सूर के वात्सल्य-वर्णन पर 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' के मनीषी ग्रन्थकार महाकवि प्रसाद के विचार प्रस्तुत हैं, "कहा जाता है कि वात्सल्य की अभिव्यक्ति में तुलसीदास, सूरदास से पिछड़ गए हैं, तो क्या यह मान लेना पड़ेगा कि तुलसीदास के पास वह कौशल या शब्द-विन्यास-पटुता नहीं थी जिसके अभाव के कारण ही वे वात्सल्य की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं कर सके? किन्तु यह बात तो नहीं है। सोलह मात्रा के छन्द में अन्तर्भावों को प्रकट करने की जो विदग्धता उन्होंने दिखाई है, वह कविता-संसार में विरली है। फिर क्या कारण है कि रामचन्द्र के वात्सल्यरस की अभिव्यंजना उतनी प्रभावशालिनी नहीं हुई जितनी सूरदास के श्याम की? मैं तो कहूँगा कि यही प्रमाण है कि आत्मानुभूति की प्रधानता का। सूरदास के वात्सल्य में संकल्पात्मक मौलिक अनुभूति की तीव्रता है, उस विषय की प्रधानता के कारण। श्रीकृष्ण की महाभारत के युद्धकाल की प्रेरणा सूरदास के हृदय के उतने समीप न थी, जितनी शिशु गोपाल की वृन्दावन की लीलाएँ। रामचन्द्र के वात्सल्यरस का उपयोग प्रबन्धकाव्य में तुलसीदास को करना था, उस कथानक की क्रम-परम्परा बनाने के लिए। तुलसीदास के हृदय में वास्तविक अनुभूति तो रामचन्द्र की भक्त-रक्षण-समर्थ दयालुता है, न्यायपूर्ण ईश्वरता है, जीव की शुद्धावस्था में पाप-पुण्य-निर्लिप्त कृष्णचन्द्र की शिशु-मूर्ति का शुद्धाद्वैतवाद नहीं।" आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' ग्रन्थ के ही स्फीत प्राक्कथन में "हिन्दी के दो सर्वश्रेष्ठ कवियों" पर प्रसाद के उक्त विचार का अनुमोद किया है। वास्तव में, सूर की प्रतिभा रंजक थी, तुलसी की रक्षक।

प्रेमलीला : संयोग-शृंगार एवं दर्शन का पावन संगम

हिन्दी-कविता में संयोग शृंगार का सर्वश्रेष्ठ वर्णन विश्वकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस के पुष्पवाटिका-प्रसंग में किया है, जिसमें उभयपक्षीय अथवा पूर्ण पूर्वाग की विश्वभर में अतुलनीय निष्पत्ति हुई है तथा जो "प्रीति पुरातन लखइ न कोई" के रहस्य से भी संपृक्त है। एक अन्य महान् वर्णन महाकवि प्रसाद की कामायनी के मन-श्रद्धा-प्रकरण में प्राप्त होता है। जायसी, मंजन, उस्मान इत्यादि के संयोगशृंगार-वर्णन उत्कृष्ट स्तर के नहीं हैं। उनमें यत्र-तत्र अश्लीलता तक दृग्गत हो जाती है। सूर ने संयोगशृंगार के वर्णन राधा-कृष्ण-मिलनों, वर्षा-वसन्त होली इत्यादि के नाना रागरंगों, रासलीला इत्यादि में किए हैं। बाललीला में 'सूरश्याम' के पद मिल जाते

1. वेदान्त के प्रतिविम्बवाद से संपृक्त प्रस्तुत पद दार्शनिक दृष्टि से भी गौरवशाली है।

2. प्रतिविम्बवाद का सफल प्रयोग इस पद में भी दर्शनीय है।

हैं, किन्तु प्रेमलीला में 'सूरज' या 'सूरजश्याम' इत्यादि भी आ जड़े हैं। यद्यपि सूर का कोई एक संयोगशृंगार-वर्णन तुलसी के पुष्पवाटिका-प्रसंग एवं प्रसाद के मनुश्रद्धा-प्रकरण की समता नहीं कर सकता, तथापि अपनी समग्रता में वे हिन्दी-कविता में संयोगशृंगार के सर्वोत्तम महाकवि हैं। उनका संयोगशृंगार-वर्णन प्रायः सर्वत्र दर्शनसंपृक्त भी है, जिसके उत्कृष्ट दर्शन "वृझत स्याम कौन तू गोरी?" जैसे पदों में अनायास ही किए जा सकते हैं। उल्लंगता एवं अश्लीलता के खोजी भी सूर से असन्तुष्ट न होंगे। उद्धरण प्रस्तुत हैं—

1. नीबी ललित गही हरिराई।
जबहि सरोज धरो श्रीफल पर तब जसुमति गइ आई।
ततछन रुदन करत मनमोहन मन में बुधि उपजाई ॥
देखौ ढीठ देति नहिं माता! राखौ गेंद चुराई।
काहे को झकझोरत नोखे, चलहु न, देउँ बताई ॥
देखि बिनोद बालसुत को तब महरि चली मुसुकाई।
सूरदास के प्रभु की लीला, को जानै इहि भाई ॥
2. यह रितु रूसिबे की नाहीं।
बरसत मेह नेह धरनी के, वोतल कुमर कन्हाहीं ॥
जे वेली ग्रीषम रितु दाहीं, ते तरुवर लिपटाहीं।
देखौ, नदी प्रेमरसमाँती मिलन समुद्रे धाहीं ॥
यह समयौ है दिवस चारि कौ, समुझ चतुर मन माँही।
सूरदास उठि चलीं राधिका दै प्रीतम गल वाहीं ॥

मुरली-माधुरी : दर्शन एवं व्यंग्य का अप्रतिम समन्वय

सूरकाव्य दर्शन से यत्र-तत्र-सर्वत्र इतना अधिक संपृक्त है कि "तत्त्व सूर कही" उक्ति सार्थक प्रतीत होती है। क्या बाललीला, क्या रासलीला, क्या मुरली-माधुरी, क्या भ्रमरगीत, सर्वत्र आनन्दमूलक-अद्वैतवाद (शुद्धाद्वैतवाद) की गहन व्याप्ति की तुलना में कबीर, नानक, दादू आदि का रहस्यवाद कोरा-रहस्यवाद उगने लगता है तथा जायसी, मंझन, उस्मान इत्यादि का रहस्यवाद तो खैर सीधा-सादा स्थूल-रहस्यवाद है ही। तुलसी में रहस्यवाद नहीं के बराबर है। केवल विनयावली में सूर तुलसी के निकट लगते हैं।

मुरली आह्लादिनी-शक्ति है जो आनन्दघन के निकट जाने की प्रेरणा भी देती है, मार्गबोध भी कराती है। सूर मुरली के अवतार हैं। स्थूलतः मुरली के प्रति कृष्ण का अत्यधिक लगाव देखकर गोपिकाएँ सपत्नीभावपरक व्यंग्य भी करती हैं। "मुरली तऊ गोपालहिं भावति" जैसे पद उच्चकोटि के हास्य-व्यंग्य-कोश में परिगणित किए जाने योग्य हैं। रसखान की गोपी और सब कर सकती है परन्तु मुरली से समझौता नहीं : "वा मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी!" गोपाल की गोपी या आराधना-प्रतीक राधा, शक्ति-प्रतीक राधा, पूर्णता-प्रतीक राधा का मुरली-व्यंग्य श्लिष्ट भी है। किन्तु सूक्ष्मतः मुरली की शक्ति तपमूलक है, उसे जो आराध्य-सान्निध्य-सम्मान प्राप्त हुआ है वह कठिनतम साधना के अनन्तर—

1. ग्वालिनि! मोहीं पर सतरानी।
जौ कुलीन अकुलीन भई हम, तुम तौ बड़ी सयानी ॥
नाना रूप बखान करति हौ, काहें वृथा रिसानी?
तुमहिं कहौ, का दोष हमारौ? खोटी क्यों पहिचानी?
जो स्रम मैं अपनै तन कीन्हौ सो सब कहौ बखानी।
सूरदास-प्रभु तब वन-भीतर तैं अपने घर आनी ॥
2. स्रम करिहौ जब मेरी-सी।
तब तुम अधर-सुधारस विलसहु, मैं है रहिहौं चेरी-सी ॥
बिना कष्ट यह फल न पाइहौ, जानति हौं अवडेरी-सी।

पडरितु सीत-तपनि तन गारौ, बाँस-बँसुरिया करी-सी।।
 कहा मौन है-है जु रही हौ? कहा कहति अवडैरी-सी?
 सुनहु सूर मैं न्यारी है हौं जब देखौ तुम मेरी-सी।।

कलानिलय कृष्ण को तो मुरली आहादित करती ही है, समग्र प्रकृति को नादविह्वल कर देती है। गोपिकाएँ स्वयं सारी मर्यादा त्यागकर दौड़ी चली जाती हैं! कवीर इत्यादि के अनहद-नाद (अनाहत-नाद) में सूर के मुरली-नाद का रस कहाँ, कला-वैभव कहाँ, कला-वैभव कहाँ, जीवन्त-सौन्दर्य कहाँ? सूरसागर के मुरली-सम्बद्ध अधिकांश पद सूरदास के न होकर सूरश्याम के हैं। सूरश्याम एक महाकवि हैं, जिन पर पृथक् प्रकाश पड़ना चाहिए। उनका स्तर अष्टछाप के कवियों में, सूरदास, परमानन्ददास एवं नन्ददास की छोड़ देने पर, उच्चतर लगता है। सूरसागर के सूरतर-रचनाकारों में वे निर्विवादरूपेण सर्वश्रेष्ठ हैं। सूर ने उन्हें प्रेरित किया था अन्यथा वे सूर में अपना विलय क्यों करते?

महाकवि सूर ने मुरली के व्यापक प्रभाव पर विलक्षण काव्यसृष्टि की है, जिसमें प्रायः गहरा व्यंग्य भी संपृक्त है—

1. जब हरि मुरली अधर लगावत।
 अंग-अंग रस भरि उमँगत हैं, जगत जीव अति भावत।।
 औरै दसा होति पलकन की, अगम प्रीति परकासत।
 तब चितवत काहू तन नाँही जबहि नाँद मुख भासत।।
 ग्रीव नवाइ देत रस मोहन, धुनि सब दसा विसारत।
 सूर मुरलि लटकत ताही पर, प्रानन रहस विचारत।।
2. मुरली कौ मन हरि सौं मान्यौ।
 हरि कौ मन मुरली सौं मिलि गयो जैसे पय अरु पान्यौ।
 जैसे चोर-चोर मिलि बैठें ठग-ठग इकई जान।
 कुटिल-कुटिल मिलि चलत एक-द्वै, दुहु-दुहुन पहिचान।।
 ये बन-वन नित धेनु चरावत, वह बन उपजी चाहि।
 सूर गढ़ी विधना जोड़ी कौं, जैसी-तैसी ताहि।।

भ्रमरगीत : निवृत्ति पर प्रवृत्ति का विजयकाव्य

सूर का भ्रमरगीत एक साथ ही दर्शनकाव्य भी है, विरहकाव्य भी, उपालंभकाव्य भी एवं व्यंग्यकाव्य भी, जिसकी गहनता, भावुकता, सहजता एवं सजीवता द्रष्टा महाकवि की मौलिक देन है, जिसने तुलसी जैसे विश्वकवि एवं परमानन्ददास, नन्ददास, देव, भारतेन्दु, रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न, हरिऔध, मैथिलीशरण, रसाल, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी इत्यादि अनेक कवियों को प्रभावित किया है। भ्रमरगीत में सूर की असाधारण प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ रूप दृग्गत होता है।

भारतीय साधना ने निर्गुण एवं सगुण तथा निराकार एवं साकार में तात्त्विक भेद ठीक ही नहीं स्वीकार किया, क्योंकि ब्रह्म (व्याप्त) या परमात्मा (मूलात्मा-निलयात्मा) या ईश्वर (ऐश्वर्यमय) अपने अभिधान से ही सगुण है तथा हमारा सूक्ष्म धर्म ही नहीं अन्य स्थूल मजहब तक उसकी मानव-रचना स्वानुरूप बताते हैं। स्थूल व्यक्तिवादी यहूदी मजहब और तत्प्राप्त ईसाई मजहब और मोहम्मदी मजहब के अनुसार ही ईश्वर ने मानव को अपने अनुरूप बनाया। उसके द्रष्टा मूसा, 'एकमात्र पुत्र'¹ ईशु, उसके अन्तिम-वार्तावह² (ख़ातिमुन्नवी) मोहम्मद इत्यादि के आकार-प्रकार उसे निराकार नहर्हीं सिद्ध करते। उसका मूसा से विशेष व्यवहार, उसका ईशु पर वात्सल्य, उसका मोहम्मद द्वारा 'रहीम-करीम' आदि घोषित किया जाना, उसे 'निर्गुण' नहीं सिद्ध करता। यह ठीक है कि ईश्वर का अज-अनन्त,

1. एकमात्रपुत्रवाद ईश्वर का भी अपमान है, मानवजाति का भी। क्या ईश्वर ईशु से पूर्व नपुंसक था? क्या वह उनके पश्चात् पुनः नपुंसक हो गया? क्या कोटि-कोटि मानव दीन-हीन ईशु-दया-भिक्षुक मात्र हैं? खेद है कि यह मूढ़तापूर्ण, तर्कहीन एवं ईश्वर-मानव-तिरस्कर्ता विचार अब तक प्रचलित है।
2. अन्तिम वार्तावहवाद विकासवाद-विरोधी भी है, मानवता-तिरस्कारी भी। खेद है कि यह आशावादहीन एवं अपमानजनक विचार भी प्रचलित है तथा कहीं वहावियों तो कहीं अहमदियों के साथ अत्याचार कर रहा है।

अदृश्य-अगोचर, निरंजन-निर्लेप तत्त्व-प्रतिपादन सैद्धान्तिक दृष्टि से निर्गुणवाद एवं निराकारवाद को महत्व प्रदान करता है। निर्गुणवाद एवं निराकारवाद की जैसी गहनतम मीमांसा उपनिषद् में प्राप्त है, वैसी अन्यत्र नहीं। सूक्ष्म सर्ववाद या अद्वैतवाद से लेकर स्थूल एकेश्वरवाद तक के सारे ईश्वर-विचार वेद-वेदान्त-मूलक ही हैं। किन्तु ईश्वर के सगुणवाद एवं साकारवाद का निषेध करना उस सर्वशक्तिमान् पर, महतोमहीयान् पर अपना विचार थोपना मात्र है। महात्मा-महाकवि सूरदास ने एक ओर निर्गुण पर सगुण, निराकार पर साकार तथा दूसरी ओर योग पर प्रेम, ज्ञान पर भक्ति को वरीयता प्रदान करने के महान् उद्देश्य से भ्रमरगीत की सृष्टि की है, जो बहुत ही गम्भीर, बहुत ही भावपूर्ण तथा बहुत ही कलात्मक है। 'भ्रमरगीत' शब्द भागवतमूलक हो सकता है, किन्तु वहाँ वह कथात्मक मात्र है। सूर का भ्रमरगीत उनकी मौलिक सृष्टि है जिसमें विरहकाव्य-उपालम्भकाव्य के वर्ण्य को सगुणवाद-साकारवाद-मण्डन के गहन दर्शन से संपृक्त कर दिया गया है। मोहम्मदी मजहब हिन्दूधर्म पर सर्वविध प्रहार कर रहा था। हत्या, अग्निकाण्ड, मन्दिर-ध्वंस, मूर्ति-खण्डन, मस्जिद-प्रतिष्ठा, गोवध, बलात् मोहम्मदीकरण, जज़िया, तीर्थरक इत्यादि उसके प्रत्यक्ष अस्त्र-शस्त्र थे तथा निर्गुण-प्रचार, निराकार-प्रतिपादन, विविधाभक्ति-प्रत्याख्यान, वेद-पुराण-गंगादि-तीर्थादि-निन्दन इत्यादि परोक्ष। कबीर, दादू इत्यादि मुसलमान सन्त इन दोनों का प्रयोग कर रहे थे। "यथा राजा, तथा प्रजा" के अनुरूप नानक इत्यादि भी इससे प्रभावित हुए, यद्यपि स्वयं उनके पुत्रद्वय श्रीचन्द्र-लक्ष्मीचन्द्र ने उनका विरोध करते हुए मूर्तिपूजा का सम्मान किया तथा नानक के जीवनकाल में ही अंगद का गुरुपदग्रहण यह स्पष्ट करता है कि वे पूर्ण वैराग्य के लिए विवश हुए थे। अभी पिछली सदी में दयानन्द तक ईसाइयत एवं मोहम्मदीयत के मूर्तिपूजा-खण्डन, पुराण-निन्दन एवं त्रैतवाद-प्रतिपादन से, अज्ञातरूपेण ही सही, बहुत प्रभावित हुए थे। निर्गुण-निराकार, योग इत्यादि की आड़ में मुसलमान सन्तों तथा सूफ़ियों के मोहम्मदीयत-प्रसार षड्यन्त्र से अनेक हिन्दू-सन्तों को प्रभावित होते देख भारतीय मनीषा ने राम-कृष्ण-मूलक सगुणोपासना, साकारोपासना, भक्ति या प्रेम इत्यादि का महान् मण्डन करना आवश्यक समझा। असम के माधव कन्दलि, शंकरदेव, बंगाल के कृत्तिवास एवं चैतन्य महाप्रभु, बिहार के विद्यापति, उड़ीसा के सारलादास एवं वलरामदास, आन्ध्र के नन्नय-तिक्कन-एरन (महाभारत-अनुवादकत्रय), गोनबुद्ध तथा पोतन (पोतन्ना), तमिलनाडु के कम्बन् (कम्बर), कर्नाटक के कुमारव्यास, कुमारवाल्मीकि तथा पुरन्दरदास, केरल के एडुत्तच्छन्, महाराष्ट्र के एकनाथ एवं रामदास, गुजरात के नरसी एवं गिरिधर, राजस्थान की मीराँ (मीरा), पंजाब के अंगद एवं गोविन्दसिंह तथा भारत-हृदय विराट् उत्तर प्रदेश के सूर एवं तुलसी ने मोहम्मदीयत के राम-कृष्ण-घाती षड्यन्त्र को विफल करते हुए हिन्दू-धर्म की रक्षा की। इन सन्तों का ही प्रताप है कि हिन्दूधर्म अपने सारे कलात्मक-बहुरंगेपन के साथ जीवित तो है ही, सारे सभ्य जगत् को भी आकृष्ट कर रहा है। आज भी सारा भारत तुलसी और सूर, मीराँ और नरसी, विद्यापति और चैतन्य, शंकरदेव और माधवदेव, पुरन्दरदास और त्यागराज के कंठ से ही गा रहा है।

'भ्रमरगीतसार' की भूमिका में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "कबीर, दादू आदि के लोकविरोधी स्वरूप" शब्दों का प्रयोग किया है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने आमुख "ज्ञान की कोरी वचनावली और योग की थोथी साधनावली" शब्दों में भले ही आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के नाथ-कबीर-स्तवन का आत्मपरक-प्रत्याख्यान कर डाला हो किन्तु व्यापक जनजीवन को देखते वे भी सत्य के निकटतर ही हैं। मोहम्मदीयत की सफलता का अर्थ होता, भारतीय शिल्प, मूर्ति, चित्र, संगीत प्रभृति कलाओं का सर्वनाश तथा वेद, शास्त्र, पुराण, बहुरंगे देवी-देवताओं, राम-कृष्ण प्रभृति का विस्मरण। तब भारत कितना दरिद्र होता? तब भारत संसार को क्या दे पाता? अरब देशों में दाह वर्जित है तथा शव या तो भारत, नेपाल इत्यादि ले जाए जाते हैं या समुद्र में फेंक दिए जाते हैं। कश्मीर विश्वविद्यालय के श्रीनगर छात्रावासादि में हिन्दू-छात्र अपने कमरों में भी देवी-देवताओं के चित्र नहीं लगा सकते थे।¹ जम्मू-कश्मीर राज्य में 1947 ई. के पाक-आक्रमण पर आज के पाक-अधिकृत कश्मीर से भागकर आए हिन्दू-शरणार्थी न मतदान का अधिकार रखते हैं और न सम्पत्ति-क्रय का (जबकि भारत में पाक एवं बांग्लादेशी घुसपैठिए मतदाता भी हैं, सम्पत्तिशाली भी)। जिन देशों में मुसलमानों का वर्चस्व तो नहीं है किन्तु संख्या अच्छी-खासी है, उनमें लेबनान का उदाहरण रोंगटे खड़ा कर देता है। 1986 ई. तक के मोहम्मदी सम्मेलनों में ग़ैर-मुसलमान 'काफ़िर' घोषित किए गए हैं जिनका वध मोहम्मद की पुस्तक 'कुरान' के अनुसार 'शवाब' (पुण्य) है। मक्का की मस्जिद का प्रधान अमेरिकी (ईसाइयों), इस्राइली (यहूदियों) और भारतीय (हिन्दुओं) लोगों को शत्रु घोषित कर चुका है (उधर, विकलांग-वृद्ध पोप ईसाइयत को सर्वश्रेष्ठ घोषित करता है)। अतः केवल हिन्दुओं को ही नहीं प्रत्युत विश्व भर के साहित्य-नृत्य-संगीत-कला-प्रेमियों को तुलसी-सूर जैसे महात्मा-महाकवियों का कृतज्ञ होना चाहिए। इन महात्माओं ने

मोमिन-काफिर के वर्गीकरण एवं कलाहत्यावाद से मानवता की रक्षा की। उन्होंने अपनी भक्ति एवं अपने प्रेम के कपाट-नर-नारी, उच्च-निम्न, धनी-निर्जन, नागर-आदिवासी, हिन्दू-मुसलमान, सारी मानवजाति, सबके लिए खुले रखे (वस्तुतः खोल दिए क्योंकि रामानुजाचार्य प्रभृति दार्शनिकों ने सीमाओं का अतिक्रमण नहीं किया था)।

भारत, भारतीय धर्मसाधना एवं भारतीय संस्कृति पर भयानक आघातकाल में निवृत्ति या योगसाधना का उपदेश आत्मघाती पलायनवाद के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो सकता था। मुसलमान फ़कीर निर्गुण-निराकार एवं योग की आंड़ में अपना प्रचार कर रहे थे तथा सूफी कवि इसी का परोक्ष प्रयोग गल्पों के माध्यम से। दूरदर्शी शंकरदेव, तुलसी, सूर, रामदास इत्यादि ने इस द्विविध पड़यन्त्र का मर्म समझते हुए विशद मानवतावाद का पथ प्रशस्त किया, हिन्दुओं को रक्षण एवं रंजन के सबल एवं स्वस्थ जीवनवाद या प्रवृत्तिवाद से सम्पन्न किया। मरुस्थल कोकिल क्या जाने? उसका चातक से क्या परिचय? निवृत्ति-प्रतीक योग की भस्म मरण-प्रतीक है। कोयल की कूक प्रवृत्ति की प्रतीक है। प्रवृत्ति का स्वर-संगीत ही वरेण्य है। जीवन्तता ही जीवन की निधि है। सूर ने विश्व-साहित्य के एक महानतम गीत के द्वारा जीवनवाद को अतर्क्य एवं अपार शक्ति प्रदान की है—

ऊधो! कोकिल कूजत कानन।

तुम हमको उपदेस करत हौ भसम लगावन आनन॥

औरौ सब तजि, सिंगी लै-लै टेरन, चढ़न पषानन।

पै नित आनि पपीहा के मिस मदन हनत निज बानन॥

हम तौ निपट अहीरि बावरी, जोग दीजिए ज्ञानिन।

कहा कहत मामी के आगे जानत नाना-नाननि॥

सुन्दर स्याम मनोहर मूरति भावति नीके गाननि।

सूर मुकुति जैसे पूजति¹ है वा मुरली की ताननि॥

बुद्ध और महावीर का अव्यावहारिक-निवृत्तिवाद हो या बुद्ध-प्रेरित ईश² एवं मूसा-प्रेरित मोहम्मद का अहंपूर्ण अन्धास्थावाद, सबमें वह कला, वह सौन्दर्य, वह सत्-चित्-आनन्द पौर्ण्य दृग्गत नहीं होता जो राम या कृष्ण में, जो अनायास ही मानव को रससिक्त कर देता है। अतएव, सूर ने कृष्ण की भव्य झाँकियाँ दिखाकर मानवता को रिझाया है, रससिक्त किया है, जीवन्त किया है; तुलसी ने राम के सन्दर्भ में ऐसा ही किया है। राम और कृष्ण की इन मनोहारी झाँकियों ने रहीम³ और रसखान जैसे लक्ष-लक्ष प्रगतिशील और उदार, कलामर्मी और सौन्दर्यधर्मी मुसलमान महानुभावों को भी प्रभावित किया। सूर के संकीर्ण मज़हबी जुनून को नाकाम करने वाले सर्वमानवोपयोगी कृष्ण एवं गोपिकाओं के उभयपक्षीय सौन्दर्य-चित्र सर्वथा मनोहारी हैं—

1.

ऐ अलि! कहा जोग मैं नीको?

तजि रसरीति नन्दनन्दन की, सिखवत निर्गुन फीको॥

देखत सुनत नाहि चख सवननि, ज्योति-ज्योति करि ध्यावत।

सुन्दर स्याम दयालु कृपानिधि कैसे हौ बिसरावत॥

सुनि रसाल मुरली-सुर की धुनि सोइ कौतुक-रस भूलैं।

अपनी भुजा ग्रीव पर मेलैं, गोपिन के सुख फूलैं॥

लोक-कानि, कुल कौ भ्रम तजि, मिलि-मिल कै घर बन खेली।

अव तुम सूर खवावन आए जोग-जहर की बेली॥

2.

हमरे कौन जोग-व्रत साधैं?

मृगतत्वच, भस्म, अधारि, जटा कौ, को इतनो अवराधैं?

जाकी कहूँ थाह नहिँ चैऐ, अगम-अपार अगाधैं।

1. पूजना=समता करना।

2. मैंने महात्मा ईशु पर 'मसीहा' शीर्षक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है, जो इस महापुरुष का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करता है।

3. 'रहीम-रत्नावली' में विद्वान् सम्पादक पण्डित मायाशंकर याज्ञिक ने अवधी एवं ब्रजभाषा के ही छन्द संकलित नहीं किए, संस्कृत-श्लोक भी प्रस्तुत किया है जिसमें राम की मनोहारी स्तुति है।

3.

गिरिधर लाल छवीले मुख पै इते बाँध को बाँधे?
आसन, पवन, भूति, मृगछाला, ध्याननि को अवरार्धे?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधे?
तौ हम मानै बात तुम्हारी।

अपनौ ब्रह्म दिखावहु ऊधो! मुकुट-पिताम्बरधारी॥
भजिहैं तब ताको सब गोपी, सहि रहिहैं बरु गारी।
भूत-समान बतावत हमकौ, जारहु स्याम बिसारी॥
जे मुख सदा सुधा अँचवत हैं ते विष क्यों अधिकारी?
सूरदास प्रभु-अंग-अंग पर रीझि रसीं ब्रजनारी॥

अपने अपार दार्शनिक एवं ऐतिहासिक महत्व के साथ ही, भ्रमरगीत महान् विरहकाव्य भी है। शृंगाररस-सम्राट सूर ने संयोग-साफल्य राधा-कृष्ण-प्रेमांकन, रासलीला एवं यत्र-तत्र मुरली-माधुरी में प्राप्त किया है तथा वियोग-साफल्य भ्रमरगीत में। सूर का विरहकाव्य भी प्रथम श्रेणी का है जिसने अपने काल के कवियों को तो प्रभावित किया ही, परवर्ती शास्त्रीयकाल एवं बौद्धिककाल के कवियों को भी प्रेरित किया—

1.

अखियाँ हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूपरसराँची ये बतियाँ सुनि रूखी॥
अवधि गनत, इकटक मग जोवत, तब एती नहिं झूखी।
अब इन जोग-सँदेसन ऊधो! अति अकुलानी, दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ, दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलाओ, ये सरिता है सूखी॥
नाहिंन रह्यो मन में ठौर।

2.

नन्दनन्दन अछत कैसे आनि ए उर और?
चलत, चितवत, दिवस जागत, सपन सोवत राति।
हृदय तें वह स्याम मूरति छन न इत-उत जाति॥
कहत कथा अनेक ऊधो! लोक-लाभ दिखाय।
ऊधो! विरहौ प्रेम करै।

3.

ज्यों विनु पुट पट गहैं न रंगहिं, पुट गहे रसहि परै॥
जौ आवौं घट रहत अनल तनु तौ पुनि अमिय भरै।
जौ धरि बीज देह अंकुर चिरि तौ सत फरनि फरै॥
जौ सर सहत सुभट सम्मुख रन तौ रबिरथहिं सरै।
सूर गोपाल प्रेमपथ-जल तें कोउ न दुखहिं डरै॥¹

सूर ने विरहवर्णन को प्रचुर उद्दीपन-सामग्री से सजाया है, जिसमें प्रभूत प्रकृतितत्वों का समावेश स्वाभाविक है। 'संक्षिप्त सूरसागर' के प्रस्तोता वेनीप्रसाद का पूर्वाधुनिक-प्रकृतिकाव्य में सूर की अद्वितीयता का प्रतिपादन भले ही युक्तियुक्त न हो क्योंकि रामचरितमानस एवं गीतावली में तुलसी का सर्वविध-प्रकृतिचित्रण की इस अद्वितीयता का वास्तविक अधिकारी है पर इसमें सन्देह नहीं कि सूर के वर्णन बहुत सफल हैं—

1.

मधुबन! तुम कहत रहत हरे?
विरह-वियोग स्यामसुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे॥
तुम हौ निलज, लाज नहिं तुमको, फिर सिर पुहुप धरे।

- ससा, स्यार औ बन के पखेरू धिक-धिक सवन करे ।।
 कौन काज ठाढ़े रहे वन में? काहे न उकठि परे ।...
2. विनु गोपाल बैरिन भई कुजै ।
 तब ये लता लगति अति सीतल, जब भई विषम ज्वाल की पुंजै ।।
 वृथा वहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलै, अलि गुंजै ।
 पवन, पानि, घनसार, सँजीवनि दधिसुत-किरन भानु भई भुंजै ।।
 ए ऊधो! कहियो माधव सों, विरह कदन¹ भारत करि लुंजै ।
 सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भई बरन ज्यों गुंजै ।
 देखियत कालिंदी अति कारी ।
3. कहियो पथिक! जाइ हरि सों त्यों भइ विरह-जुर-जारी ।।
 मनु पलंगा ते परी धरनि धँसि, तरँग तलफ तन भारी ।
 तट-बारू उपचार-चूर, मनो, स्वेद-प्रवाह पनारी ।।
 विगलित कच कुस-काँस पुलिन मनो, पंकजु कज्जल सारी ।
 भ्रमर मनो मति भ्रमत चहूँ दिसि, फिरति है अंग दुखारी ।
 निसिदिन चकई-ब्याज वकत मुख किन मानहुँ अनुहारी ।
 सूरदास प्रभु जो जमुना-गति सो गई भई हमारी ।।²
4. किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि?
 किधौं वहि इंद्र हठिहि हरि बरज्यौ, दादुर खाए सेसनि?
 किधौं वहि देस बकन मग छाड़्यौ, घर वूड़ति न प्रवेसनि?
 किधौं वहि देस मोर, चातक, पिक बधिकन बधे विसेषनि?
 किधौं वहि देस बाल³ नहिं झूलति गावति गीत सहेसनि ।।⁴
- सूर का महान् विरहवर्णन प्रिय शुभाशापूर्ण भी है । दुःखी गोपिकाएँ कृष्ण को सुखी देखना चाहती हैं और यही प्रेम की निष्ठा है—
 जहँ-जहँ राज करौ तहँ-तहँ लेव कोटि सिर भार ।
 यह असीत हम देतिं सूर सुनु न्हात खसै जनि बार ।।
 प्रेम की यह एकान्त-निष्ठा और अन्य कवियों के मार्मिक सृजन का स्मरण कराए विना नहीं रहती—
 मोहिं भोग सों काज न बारी ।
 सौंह-दीठि की चाहनहारी ।। (जायसी)
 हा स्वामी! कहना था क्या-क्या,
 कह न सकी, कर्मों का दोष;
 पर जिसमें संतोष तुम्हें हो,
 मुझे उसी में है संतोष! (मैथिलीशरण)
 आमी निज सुख-दुख किछु न जानी ।
 तोमार कुशले कुशल मानी । (चण्डीदास)

भावुक-सम्राट् सूर अपने विरहकाव्य में यशोदा को कैसे भूल सकते थे! वे शृंगार-सम्राट् के साथ-साथ वात्सल्य-सम्राट् भी तो हैं! मातृहृदय का यह दर्पण द्रष्टव्य है जिसने हरिऔध को प्रभावित भी किया, पल्लवित भी और वे यशोदा के श्रेष्ठतम चित्तेरे बन गए—

-
1. छुरी, चाकू ।
 2. उच्चकोटि का सांगरूपक ।
 3. बाला ।
 4. सहास-सहर्ष ।

सँदेसो देवकी सों कहियो ।
 हैं तो धाय तिहारे सुत की, मया करत नित रहियो ।।
 उबटन, तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते ।
 जोड़-जोड़ माँगत सोइ-सोइ देती करम-करम करि न्हाते ।।
 तुम तौ टेव जानतिहिं हैहो, तरु मोहि कहि आवै ।
 प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहि माखन-रोटी भावै ।।
 अब यह सूर मोहिं निसिबासर बड़ो रहत जिय सोच ।
 अब मेरे अलकलड़ैते लालन हैहैं करत संकोच ।।

उद्धव इस सर्वविध प्रेम के सागर में डूबने से कैसे बचते? जब विदेशी आक्रान्ताओं को प्रेमभूमि भारत ने विहल कर लिया तथा उनमें अमीर खुसरो जैसे महान् कलाकार एवं अकबर महान् जैसे सम्राट् उत्पन्न हो सके, तब उद्धव कैसे न बदलते? उनके उद्गार मननीय हैं—
 माधव जू! मैं अति सचु पायौ ।

अपनौ जानि, सँदेस-ब्याज करि ब्रजनन-मिलन पठायौ ।।
 छमा करौ तौ करौं विनती जो उत देखि हों आयौ ।
 श्रीमुख ज्ञानपंथ जौ उचर्यौ तिन पै कछु न सुहायौ ।।
 सकल निगम-सिद्धांत-जन्मस्रम स्यामा सहज सुनायौ ।
 नहिं सुति, सेष, महेस, प्रजापति जो रस गोपिन गायौ ।।
 कटुक तथा लागी मोहिं अपनी, वा रससिंधु समायौ ।
 उत तुम देखे और भाँति मैं, सकल तृषाहिं बुझायौ ।।
 तुम्हरी अकथ-कथा तुम जानौ, हम जन नाहिं बसायौ ।¹
 सूरदास सुन्दर पद निरखत नयनन नीर बहायौ ।।²

और, सर्वप्रेरक कृष्ण का यह उद्गार उक्त वर्णन सार्थक कर देता है (दोनों तरफ़ है आग बराबर लगी हुई), जिसमें शुद्धाद्वैतवादी दर्शन कलात्मक पराकाष्ठा प्राप्त करता है—

ऊधो! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
 हंससुता की सुन्दरी कगरी अरु कुंजन की छाहीं ।।
 वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
 ग्वालबाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि-गहि बाहीं ।।
 यह मथुरा कंचन की नगरी³ मनि-मुक्ताहल जाही ।
 जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत, तनु नाहीं ।।⁴
 अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा-नन्द निवाहीं ।
 सूरदास प्रभु रहे मौन है, यह कहि-कहि पछिताहीं ।।

भ्रमरगीत में जिस उच्चतम भावुकता का उन्मेष हुआ है, जिस गहनतम दर्शन की विवृति हुई है, जिस सहजता एवं जीवन्तता का समावेश हुआ है, वह हिन्दी के ही नहीं अपितु संसार के किसी भी साहित्य का शृंगार कर सकता है। संस्कृत, यूनानी और अंग्रेजी जैसे विश्व के महानतम साहित्यों में भी भावुकता, दर्शन और कला की ऐसी विलक्षण त्रिवेणी दुर्लभ है।

1. विज्ञातारमरे केन विजानीयात्? (याज्ञवल्क्य)

2. भरि लोचन बिलोकि अवधेसा ।

तब सुनिहैं निरगुन-उपदेसा ।। (तुलसी)

3. इयं स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण! रोचते ।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।। (अज्ञात)

यहाँ विलक्षणता यह है कि कृष्ण जननी-जन्मभूमि में विहल हैं!

4. नभभवनों में याद आ रहे, वे कच्चे घर-द्वार, सलोनी! (गिरिजाकुमार माथुर)

रहस्यवाद

यद्यपि सूर¹, तुलसी² के सदृश, सीधी-सादी एवं स्पष्ट भक्ति के प्रतिपादक हैं, तथापि उनमें रहस्यवाद के दर्शन भी अनायास ही हो जाते हैं, क्योंकि भक्ति एवं रहस्यवाद में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है। मैं तो रहस्यवाद को भक्ति की एक शैली मानता हूँ, जो यत्र-तत्र विद्यापति, सूर, तुलसी, देव इत्यादि में भी अप्रयत्न रूप में ही विवृत हो गई है। अतएव, भक्ति के गौरव-प्रतिष्ठापक आचार्य शुल्क³ का रहस्यवाद-प्रत्याख्यान हो या रहस्यवाद के गौरव-प्रतिष्ठापक महाकवि प्रसाद⁴ का भक्ति-प्रत्याख्यान, मुझे दोनों ही प्रत्याख्यान एकांगी एवं आत्मपरक प्रतीत होते हैं। सूर के रहस्यवाद के सन्दर्भ में 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका में आचार्य शुक्ल लिखते हैं, "रहस्यवादी कवियों के समान सूर की कल्पना भी कभी-कभी इस लोक का अतिक्रमण करके आदर्श लोक की ओर संकेत करने लगती है।" किन्तु उन्होंने "चकई री! चलि चरन सरोवर जहाँ न प्रेम बियोग" का जो सुन्दर किन्तु अन्तिम दो चरणों से रहित उदाहरण दिया है ("चल चकई! वा सर विषय जहँ नहिं रैन बिछोह") शीर्षक बाबा दीनदयाल गिरि के सुन्दर कुण्डलिया छन्द को 'समानार्थी उद्धरण' के रूप में भी प्रस्तुत किया है वह सूर का न होकर, सूरजदास का है। उसकी भाषा-शैली भी सूर से यत्किंचित् भिन्न है। आचार्य शुक्ल द्वारा सम्पादित 'भ्रमरगीतसार' सूरजदास, सूरश्याम इत्यादि अन्य कवियों के छन्दों से मुक्त न होने के कारण प्रामाणिक एवं प्रात्ययिक नहीं है। इस दृष्टि से सूरसागर का कोई पूर्ण, विशाल या संक्षिप्त या लघु संस्करण भी प्रामाणिक या प्रात्ययिक नहीं है। श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'सप्त तरंगात्मक सूरसागर' भी सूरज, सूरजदास, सूरजचन्द (सम्भवतः एक ही कवि), सूरश्याम, सूरश्रीगोपाल इत्यादि के राशि-राशि छन्दों से आपूर्ण है। शुक्ल द्वारा उद्धृत पद सूरजदास का है। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने अन्तिम दो पंक्तियाँ छोड़ दी हैं, क्योंकि उनमें सूरजदास का नामोल्लेख है। उस पर विचार समीचीन नहीं।

किन्तु सूरदास का रहस्यवाद अन्यत्र भी विवृत हुआ है :

आपुन यौ आपुन ही में पायौ॥
 सब्दहिं भयौ ह्रदै उजियारौ, सद्गुरु भेद बतायौ॥
 ज्यों कुरंग नाभी कस्तूरी ढूँढ़त फिरत भुलायौ॥
 फिरि चेत्यौ जब चेतन है कै आपुन ही तन छायौ॥
 राजकुमार कंठ मनि भूषन, भ्रम भयौ कहूँ गमायौ॥
 दियौ बताय कुसल सज्जन जब तन कौ ताप नसायौ॥
 सपुने माँहि नारि कौ भ्रम भयौ, बालक कहूँ हिरायौ॥
 जागि लख्यौ ज्यों कौ त्यों की है, ना कहूँ गयौ न आयौ॥
 सूरदास समुझे की ये गति, मन ही मन मुसकायौ॥
 कहि न जाइ या सुख की महिमा ज्यों गूँगी गुर खायौ।⁵

सूर का यह महान् पद भी रहस्यवादी ही है, क्योंकि इसमें मथुरा से कृष्ण ने ब्रज की राधा से अपना रूप माँगा है! "मोहन माँग्यौ अपनौ रूप" शीर्षक पद सूरदास के कुछ थोड़े-से सर्वश्रेष्ठ पदों में एक है। मुझे तो यह "ऊधौ! कोकिल कूजति कानन", "निरगुन कौन देस को बासी", "अबिगत गति कछु कहत न आवै" जैसे अन्य अद्वितीय पदों से श्री श्रेष्ठतर लगता है। जैसे मैं "केसव! कहि न जाइ, का कहिए?" को तुलसी, "जल में कुंभ कुंभ में जल है" को कबीर, "जनम अबधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल" को विद्यापति, "हैं ही ब्रज, बृन्दावन मोही मैं बसत सदा "को देव, "कहत, नटत, रीझत, खिझत" को बिहारी, "काम मंगल से मण्डित

1. काहे को रोकत मारग सूघो? (सूरसागर)
2. सूघो मन, सूघो बचन, सूघी सब करतूति। (दोहावली)
3. काव्य में रहस्यवाद (चिन्तामणि, भाग 2)।
4. रहस्यवाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध)।
5. (क) गूँगे केरी सरकरा बैठी मुसुकाई। (कबीर)
 (ख) दादू सब हैरान हैं गूँगे का गुड़ खाय।
 (ग) ज्यों गूँगेहि मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै॥
 परम स्वाद सबही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।... (सूर)

श्रेय” को प्रसाद को सर्वोत्कृष्ट कर्तृत्व मानता हूँ, वैसे ही “मोहन माँग्यौ अपनौ रूप” को सूर का। इस महान् पद में अद्वैतवाद को चरम अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। वल्लभ-सम्प्रदाय हो या राधावल्लभ-सम्प्रदाय, सभी के लिए यह ‘सूत्र’ बन सकता है—

मोहन माँग्यौ अपनौ रूप।
या ब्रज वसत अँचै तुम बैठी, ता विनु तहाँ निरूप॥¹
मेरो मन, मेरो अलि! लोचन, लै जो गये धूपधूप²।
हमसों बदलो लेने उठि धाए मनो धारि कर सूप॥
अपनो काज सँवारि सूर सुनु हमहिं बतावत कूप।
लेवा-देइ बराबर में है, कौन रंक को भूप॥

मैंने एक शब्द गढ़ा है—प्रेमाद्वैतवाद। इसका कारण है, अद्वैतवाद का अतिव्यापक होना तथा रहस्यवाद शब्द का अतिप्रचलित होना। सूर में “ध्याने-ध्याने स्वरूपता” के विद्यापति-प्रेरित प्रेमाद्वैतवाद के दर्शन भी प्राप्त हैं—

....दुहुँ दिसि की रति बिरह बिरहिनी कैसें कै जु सहे?
जब राधै, तब ही मुख माधौ-माधौ रटति रहे।
जब माधौ है जाति, सकल तन राधा बिरह दहै॥
उभय अग्र दव दारुकीट ज्यों, सीतलताइ चहै।...

प्रेमाद्वैतवादी सृजन विद्यापति, बिहारी, देव इत्यादि कई महाकवियों ने किया है, जिनमें देव गुण एवं परिमाण दोनों में अद्वितीय हैं—

अनुमुख माधव माधव सुमिरइत, सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपने गुन लुबधाई॥
अनुखन राधा-राधा रटइत, आधा-आधा वानि॥
राधा सयँ जब पनिहहि माधव, माधव सयँ जब राधा।
दारुन प्रेम तबहिं नहिं टूटत, बाढ़त बिरह क वाधा॥
दुहुँ दिसि दारु-दहन जइसे दगधई, आकुल कीट-परान। (विद्यापति)
पिय के ध्यान गही-गही, रही वही है नारि।
आपु-आपुही आरसी लखि रीझति रिझवारि॥ (बिहारी)
कान्हमयी वृषभानुसुता भई, प्रीति नई उनई जिय जैसी।
जानै को देव? बिकानी-सी डोलै! लगै गुरुलोगन देखे अनैसी॥
ज्यों-ज्यों सखी बहरावति बातनि त्यों-त्यों वकै वह बावरी-ऐसी।
राधिका प्यारी! हमारी सौं, तू कहि, काल्हि की वंसी बजाई मैं कैसी? (देव)

महाकवि देव ने “राधिका कान्ह को ध्यान धरै तब कान्ह है राधिका के गुन गावै” प्रभृति अन्य छन्दों में भी प्रेमाद्वैतवाद का भव्य चित्रण किया है।

समतावाद

सूरदास विशुद्ध समतावादी महाकवि हैं। उनका समतावाद कबीर, नानक इत्यादि के सदृश समता-प्रचार के माध्यम से पन्थप्रवर्तनजन्य स्ववैशिष्ट्य-प्रतिष्ठापन न था, विशुद्ध एवं अमिश्रित था। स्वपूजावादी व्यक्ति जब धर्मप्रवर्तन या मज़हब-प्रवर्तन या पन्थप्रवर्तन करने के अभियान पर निकलते हैं तब समता एवं प्रेम के प्रचार की ‘रणनीति’ को ज़रूर आजमाते हैं, क्योंकि इससे भीड़

1. अर्द्धनारीश्वर का स्पर्श। निर्गुणवाद-निराकारवाद पर चुटीला व्यंग्य भी।

2. धूप जैसा सर्वोच्चल। “धूपधुपन अइसो जोगिया हमारे घर आयो है रे!” (लोकगीत)

इकट्ठी हो जाती है, लोकप्रियता बढ़ जाती है तथा अन्ततोगत्वा अपनी सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन-लक्ष्य प्राप्त हो जाता है! सूर का समतावाद निर्विवाद एवं समग्र है—

1. जापर दीनानाथ ढरे ।
सोई कुलीन, बड़ौ सुन्दर सोइ जिन पर कृपा करे ॥
राजा कौन बड़ौ रावन ते? गर्वहि गर्व गरे ॥
रंक जु कौन सुदामा हू ते? आपु समान करे ॥
रूपम कौन अधिक सीता ते? जनम बियोग भरे ।
अधिक कुरूप कौन कुविजा ते? हरि पति पाइ बरे ॥
जोगी कौन बड़ौ संकर ते? ताकौ कामु छिरे ।
कौन विरक्त अधिक नारद ते? निसिदिन भ्रमत फिरे ॥
अधम सु कौन अजामिल हूँ ते? जम तहँ जात डरे ।
सूरदास भगवन्त भजन बिनु फिरि-फिरि जठर जरे ॥
2. कह्यौ सुक श्रीभागवत्-बिचार ।
जाति-पाँति कोऊ पूछत नाही श्रीपति के दरबार ॥
3. है हरिभजन कौ परमान ।
4. जाकौं काम-क्रोध नित व्यापै । लोभ-मोह, लिपट्यौ संतापै ।
ताहि असाधु कहत कवि जोई । साधुबेष धरि साधु न होई ॥

प्रकीर्णक

सूरदास की भक्ति के आयाम तुलसीदास की भक्ति के आयामों के सदृश ही अतीव विस्तीर्ण हैं जिसमें समग्र अवतारों (जिनमें परशुराम जैसे उग्र शस्त्र-शास्त्र-सीमान्त, कपिल जैसे नास्तिक-दार्शनिक, बुद्ध जैसे नास्तिक-धर्मप्रवर्तक, ऋषभदेव जैसे ऋग्वेद के ऋषि एवं जैनों के आदिनाथ इत्यादि समाहित हैं) को भी स्थान प्राप्त है, समय ऋषियों (ऋग्वेद-ऋषि, पुराणकार एवं पुराण-ऋषि शुक, नारद इत्यादि), नाना भक्तों (ध्रुव, प्रह्लाद, शबरी, हनुमान् इत्यादि), शिव, राम, बलराम, गंगा, यमुना इत्यादि सबको स्थान प्राप्त है। वसन्त, होली, गोवर्द्धन-पूजा इत्यादि पर्वों के वर्णन सूर को जनकवि भी घोषित करते हैं। रामकृष्णैक्य, बलरामपूजा¹ इत्यादि के बिन्दु उनके वर्ण्य-लोक की स्फीति के ही द्योतक हैं। रामचरितमानस के अनन्तर, यदि हिन्दी में भारतीय संस्कृति का कोई विश्वकोश है तो वह सूरसागर और 'केवल सूरसागर' ही है। यह सत्य है कि सूर-स्फीति प्रभावी नहीं हो सकी, किन्तु इससे यथातथ्यवाद विचलित नहीं हो सकता।

प्रायः समझा जाता है कि सूर ने जनहित काव्य नहीं रचा, केवल जनरंजककाव्य लिखा है। वस्तुतः सूर जनरंजक प्रतिभा एवं तुलसी जनरक्षक प्रतिभा के प्रतीक हैं। किन्तु सूर में जनरक्षावाद के वैसे ही दर्शन प्राप्त होते हैं जैसे तुलसी में जनरंजनवाद के—

का न कियौ जनहित जदुराई ।

प्रथम कह्यौ दे बचन दयारत, तेहि बस, ब्रज में गाय चराई ॥

भक्त बछल बपु धरि नरकेहरि दनुज दहन उर डर सुरसाई ।

बलि बल देखि अदिति-सुत कारन भूँइ दुपदन तिहुँपुर फिरि आई ॥

एहि थर बनि ब्रीडा गजमोचन और अनंत कथा श्रुति गाई ।

सूर दीन प्रभु प्रगट विरद सुनि, अजहुँ दयालु पतित सिर नाई ।²

1. प्राचीन भारत में बलरामपूजा का प्रचलन इतिहाससिद्ध है। भारतीय नाटक के जनक भास (षष्ठ शती ईसा-पूर्व) ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' के मंगलाचरण में बलराम-वन्दना की है। जगन्नाथपुरी में भी वे कृष्ण एवं सुभद्रा के साथ विद्यमान हैं।

2. प्रपत्तिवाद।

सूर ने भक्तिपथनिरूपण भी किया है। भक्ति सुमग पथ है किन्तु है तो साधना ही। निस्सन्देह सूर तुलसी के सदृश “कबहुँक हों यहि रहनि रहौंगो” या “अब लौं नसानी अब न नसैहौं” जैसे भक्ति-निकष नहीं प्रस्तुत कर सके, नरसी के “वैष्णवजन तो तेणे कहिए जे पीर परायी जाणे रे” जैसी विशुद्ध विशुद्ध लक्षणयोजना भी नहीं बना सके, किन्तु उन्होंने गुरु अर्जुन इत्यादि के सदृश सदाचारमूलक भक्ति की चर्चा भी की है तथा योगपुष्ट भक्ति का निरूपण भी किया है। सूर का भक्तिमार्ग विशद सेवा-मार्ग है। सूर का भक्तिनिरूपण प्रभावी है। सूरसागर में माया का नानाविध निरूपण ही प्राप्त होता है, किन्तु इसके अनेक पद सूरश्याम, सूरस्वामी, सूरकल्याण इत्यादि कवियों के हैं। फिर भी स्वयं सूर की वाणी में भी माया-निरूपण प्राप्त अवश्य होता है।

भाषा

यद्यपि सूर की ब्रजभाषा सहज-ब्रजभाषा है, विनयपत्रिका के तलुसी की गहन-ब्रजभाषा या कवितावली के तुलसी की ललित-ब्रजभाषा नहीं, केशव की रामचन्द्रिका की अलंकृत-ब्रजभाषा नहीं, रसखान की निखरी-साफ-सुथरी ब्रजभाषा नहीं, घनआनन्द की कलात्मक-ब्रजभाषा नहीं तथा बिहारी, मतिराम, सुखदेव, देव, पद्माकर, रत्नाकर की शास्त्रीय या सार्वभौम ब्रजभाषा नहीं, तथापि उसका मार्दव अद्भुत है। आश्चर्य तो यह है कि सूर ब्रजभाषा के प्रथम महाकवि हैं, क्योंकि उनसे पूर्व असम-बंगाल इत्यादि की ‘ब्रजवुलि’ तथा गुजरात-महाराष्ट्र इत्यादि का ब्रजभाषा-स्पर्श हो या खुसरो, नानक, रामानन्द, विष्णुदास इत्यादि का कुछ या बहुत अथवा एकाध पद या ग्रन्थविस्तार, उसका विशुद्ध एवं गम्भीर साहित्यिक महत्व सिद्ध नहीं हो पाता। आचार्य शुक्ल ने किसी लोककाव्य-परम्परा की चर्चा की है जो मननीय है, किन्तु उससे भी सूर के ब्रजभाषा के प्रथम महाकवि होने का तथ्य अप्रतिहत ही रहता है। ‘हिन्दी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास’ में डॉ. सूर्यकान्त शास्त्री ने खुसरो की भाषा की वेहद तारीफ़ कर डाली है, जो इस कारण से निराधार है कि सूर इत्यादि की ब्रजभाषा स्थानीयता-संपृक्त हैं, जबकि खुसरो ने उसके सार्वभौम रूप को ग्रहण किया है, सूर की ब्रजभाषा खालिस ब्रजभाषा है—अप्रयत्नज, स्फीत, कलारहित-कलामयी जिससे अन्य विभाषाओं के ही नहीं अरबी-फ़ारसी के शब्दों से भी कोई परहेज नहीं किया गया। उन्होंने अपनी ब्रजभाषा अलंकारों, विशेषतः उत्प्रेक्षा (जिसे वे तुलसी के सदृश ही ‘उपमा’ कहते हैं और जो तत्त्वतः ठीक भी है क्योंकि उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टान्त, प्रतीप इत्यादि मूलतः उपमा ही हैं—पाश्चात्य भाषाओं में अब तक यही दृग्गत होता है) से सजायी भी है। कहीं-कहीं उन्होंने बारहबानी-सोने जैसी साहित्यिक ब्रजभाषा का भव्य प्रयोग भी किया है—

1. देखि री! हरि के चंचल नैन।
खंजन, मीन, मृगज चपलाई नहिं पटतर इक सैन।।
राजिवदल, इन्दीवर, शतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहि वै बिगसत, ये बिगसे दिन-राति।।
अरुन-असित-सित¹ झलक पलक प्रति, को बरनै उपमाय।
मनौ सरस्वती-गंग-जमुन² मिलि आगम कीन्हीं आय।।
2. हरि परदेस बहुत दिन लाए।
काली घटा देखि बादर की नैन नीर भरि लाए।।
बीर बटाऊ पंथी! हौ तुम कौन देस से आए।
यह पाती हमरी लै दीजो जहाँ साँवरे छाए।।
दादुर, मोर, पपीहा बोलत, सोवत मैन जगाए।।
सूरदास गोकुल ते बिछुरे आपुन भए पराए।

1. अमी-हलाहल-मद भरे, सेत-स्याम-रतनार।

जियत-मरत-झुकि-झुकि परत, जेहि चितवन यक बार।। (गुलाम नबी ‘रसलीन’)

2. ‘अरुन-असित-सित’ एवं ‘सरस्वती-गंग-जमुन’ में अक्रमत्व-दोष।

आकलन

सूरदास संसार-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गीतकारों में प्रतिष्ठित होने का अधिकार रखते हैं। उनके गीत एकभावबद्धता, संक्षिप्तता, भावप्रवणता, गेयता इत्यादि के निकर्षों पर इनमें अधिक खरे उतरते हैं कि रवीन्द्र जैसा महान् बांग्ला-गीतकार तक भाषणकर्ता प्रतीत होने लगता है, शेली (शेले) जैसा महान् अंग्रेजी-गीतकार तक क्रान्ति-प्रचारक प्रतीत होने लगता है। महात्मा के रूप में कवीर, नानक, शंकरदेव, नरसी, पुरंदरदास, पोतन इत्यादि के सर्वथा समकक्ष होते हुए भी वे इन सबसे श्रेष्ठतर कवि सिद्ध होते हैं, क्योंकि वे सृजन करते हैं, प्रचार नहीं और कला के क्षेत्र में बहुत आगे हैं। जयदेव कृत 'गीतगोविन्दम्' एवं विद्यापति कृत 'पदावली' से प्रभावित होते हुए भी वे इन दोनों पूर्वजों से अधिक जीवनायामी भी हैं, अधिक स्फीत भी। भारतीय गीतिकाव्य में सूर को सर्वश्रेष्ठ स्थान का अधिकारी माना जा सकता है।

हिन्दी के महाकवियों में कवीर उनकी तुलना में कोरे-जीवनवादी लगते हैं, केशव निरे-कलावादी। देव में कला अधिक है, किन्तु जीवन-तत्त्व कम। मैथिलीशरण में विस्तार अधिक है, किन्तु कला कम। प्रसाद का सृजन अपनी मूल भाववादिता में सूर के भ्रमरगीत से परोक्षतः प्रेरित लगता है; उनका सारा साहित्य मिलकर भी उस गहन जीवन-रस से सराबोर नहीं है, जिससे सूर का है। सूर की समता करने वाले हिन्दी-महाकवि केवल तुलसी हैं, जो विराटवादी जीवन-चित्रण, वस्तुवादी युग-चित्रण, सर्वरसनिष्पत्ति, संस्कृति-विश्वकोशत्व, नाना-विभाषा-सृजन, संस्कृत-सृजन, अलंकरण एवं प्रभाव की सभी दृष्टियों से आगे, बहुत आगे हैं। किन्तु गीतिकाव्य के क्षेत्र में विनयपत्रिका, गीतावली एवं श्रीकृष्णगीतावली के महान् गीतकार तुलसीदास भी सूरदास की समता नहीं कर पाते और गीतावली एवं श्रीकृष्णगीतावली में तो वे सूर से पूरी तरह प्रभावित भी हुए हैं। जब तक हिन्दी में व्यवस्थित आलोचना का उद्भव न हुआ था तब तक गीतकार होने के कारण अधिक मार्मिक एवं प्रिय सूरदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि तक माने जाते रहे थे। किन्तु समालोचना ('तामलोचना' नहीं) या समीक्षा ('तमीक्षा' नहीं—'मेक्षा' में तर्ज-तरन्नुम कहाँ!) ने तुलसी का पक्ष लिया। यही सम्भव भी है, उचित भी। जैसे राम एवं कृष्ण भारत के नेत्र हैं, एक-दूसरे के पूरक हैं, वैसे ही तुलसी एवं सूर हिन्दी-साहित्य के नेत्र हैं, एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों पर ही संसार-साहित्य, भारतीय साहित्य एवं हिन्दी-साहित्य गर्व कर सकता है।

सूर-श्याम : लघु-सूर

महाकवि सूरदास में अस्मिता को लय करने वाले कवियों में सूर-श्याम (वास्तविक नाम श्यामदास या श्यामकुमार—प्रभावकाल 1550 ई. के लगभग) सर्वोपरि हैं, क्योंकि वे सूरजदास (सूरज), सूर-कल्याण, सूरश्रीगोपाल, सूरसेन (तानसेन का सूर में अस्मिता-लयकारी अभिधान?) प्रभृति की तुलना में निस्सन्देह गुण में भी श्रेष्ठतर हैं, परिमाण में भी। उनकी प्रतिभा उन्हें लघु-सूर बना देती है। उनका बाललीला-वर्णन तो उच्चकोटि का है ही, अन्याय लीलाओं तथा भ्रमरगीत में भी उन्होंने उत्कृष्ट सृजन किया है। सूरसागर का प्रायः दशमांश सूर-श्याम द्वारा रचित है, शेष सूरजदास (सूरजचन्द्र, सूरज), सूर-कल्याण, सूरश्रीगोपाल इत्यादि का है तथा इनमें से किसी भी छाप से रहित महाकवि सूरदास का (यद्यपि कुछ अन्य सूरों का अस्तित्व भी सम्भव है)। 'चौरासी चैष्णवन की वार्ता' में सूर-श्याम का वृत्त भी प्राप्त होता है। 'सप्ततरंगालक सूरसागर'² की भूमिका में पं. बालमुकुन्द चतुर्वेदी ने भी इनका उल्लेख किया है। सूर-श्याम कृष्ण-काव्य के एक अमर कवि हैं, जिनका स्थान सूर, मीराँ, रसखान, नन्ददास, हित हरिवंश प्रभृति शीर्षस्थ कवियों के अनन्तर अन्यतम है। मेरे विचार से, 'जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा' शीर्षक प्रख्यात एवं लोकप्रिय वंदना सूरश्याम द्वारा लिखित है (जैसा कि अन्त में 'छाप' से भी स्पष्ट है)। उन्होंने अनेक हृदयग्राही पद लिखे हैं, जिन्हें अब सूरसागर से पृथक् पर स्वतन्त्र रूप से संकलित, प्रकाशित एवं आकलित किया जाना चाहिए :

1.

खेलन जाउ ग्वाल सब टेरेत ।

यह सुनि कान्ह भए अति आतुर, द्वारे हवै फिरि-फिरि सब हेरत ॥

वेर-वेर हरि जननी बूझत, कहु चौगान³ कहाँ है?

1. बिना किसी छाप वाले प्रकरण अनाम सूरों या अन्यो के हो सकते हैं।

2. लाला भगवानदीन 'दीन' एवं प्रो. मोहनबल्लभ पन्त द्वारा सम्पादित 'सूरपंचरत्न' की तर्ज पर। स्फीत एवं प्रशस्य सम्पादन-संकलन।

3. लट्ठू। चौगान घुड़सवारी का एक खेल भी होता है (मोहम्मद गोरी का गुलाम कुतुबीन चौगान खेलते ही मरा था)।

- दधि-मधनी के पाछें देखौ, लै मैं धरी तहाँ है॥
 लै चौगान आपने कर प्रभु आए घर ते वाहर।
 सूर-श्याम बूझत सब ग्वालन खेलैगे को ठाँहर॥
 मेया! मोहि दाऊ बहुत खिजायौ।
2. मौसौं कहत मोल को लीयौ, तू जसुमति कब जायौ॥
 कहा करौ या रिस के मारैं खेलन हू नहिं जात।
 पुनि-पुनि कहत, कौन है माता? कौन है तेरो तात?
 गोरे नंद, जसोधा गोरी, तू कित स्यामल-गात?
 तारी दै-दै सखा हँसत सब, कूदत हैं किलकात॥
 तू मोही को मारन सीखी, दाउहिं कवहुँ न खीझी।
 मोहन कौ मुख रिस समेत लखि, बात सुनत मन रीझी॥
 सुनौ कान्ह! बलभद्र चबाऊ¹, जनमत ही कौ धूत।
 सूर-स्याम मोहि गोधन की सौ², हों माता तू पूत॥
 जुवती आवत देखी स्याम।
3. हुम की ओट रहे हरि आपुन, जमुना-तट गई बाम॥
 जल हिलोरि गागरि भरि नागरि जब ही सीस उठायौ।
 घर कौं चली, जाइ ता पाछें सिर ते घट ढरकायौ॥
 चतुर ग्वालि कर गह्वी स्याम कौ, कनक लकुटिया पाई।
 औरन सौं करि रहे अचगरी, मोसौहुँ वहै कन्हवाई॥
 गागरि लै हरि दई ताहि कर, रीतौ घट नहिं लैहुँ।
 सूर-श्याम यह आनि देहु भरि, तबहि लकुटिया दैहुँ॥
4. स्याम कमल-पद-नख की सोभा।
 जे नख-चंद्र इंद्र सिर परसे, सिव-बिराँचि मन लोभा॥
 जे नख-चंद्र सनक मुनि ध्यावत, नहिं पावत मरमाई।
 ते नख-चंद्र प्रगट ब्रज-जुवती निरखि-निरखि हरसाई॥
 जे नख-चंद्र फनीन्द्र हृदे तैं एक निमिस नहिं टारे।
 जे नख-चंद्र महामुनि पल भर हूँ न बिसारे॥
 जे नख-चंद्र भजत दुख नासत, रमा हृदे मैं परसति॥
 सूर-श्याम नख-चंद्र विमल छवि गोपीजन मिलि दरसति॥
5. देखि री! हरि के चंचल तारे।
 कमल, मीन की कहा इतनी छबि, खंजन हूँ न जात अनुहारे॥
 आली! निरखि नमित मुरली पै कर-मुख-नैन एक भए चारे।
 मनो सरोज बँचि विधु बैरी करत नाद बाहन चुचुकारे॥
 उपमाँ एक अनूपम उपजति कुंजित अलक मनोहर भारे।
 बिड़रत, बिझकि जात रथ तैं मृग जनु ससंक ससि लंगर सारे॥
 हरि प्रति अंग विलोकि मानि रुचि ब्रज-बनिस्तान प्राण-धन बारे।
 सूर-स्याम मुख निरखि मगन-मन, यह यह बिचार चित अनत न टारे॥

1. चबाई, गप्पी, चुगलखोर।

2. शपथ, क्रसम। ब्रज-क्षेत्र में क्रसम खाने का रिवाज बहुत रहा है।

6.

आवत बन तैं गोधन¹ साजैं।
 सामरे अंग गोरज तन छाई, सींगन के सुर गाजैं।
 गोप-ग्वाल नैचुकी अगारी, अलक रेनु अति राजैं।।
 पीतांबर छवि मोर-मुकुट की, नूपुर-किंकिन बाजैं।
 सूर-स्याम प्रभु अतिहि रसीले, मुसकावत छवि छाजैं।।

सूर-कल्याण²

वर्तमान 'सूरसागर' वस्तुतः एक संकलन है जिसमें महाकवि सूरदास, कविवर सूर-श्याम, कविवर सूरजदास या सूरजचन्द्र या सूरज, कविवर सूर-श्रीगोपाल, कवि सूरसेन इत्यादि अनेक कवियों द्वारा रचित पद एवं पौराणिक कथाएँ उपलब्ध हैं तथा इस सबके बावजूद अज्ञातकविगणरचित प्रक्षिप्त अंश भी विद्यमान हैं। खेद है कि महान् मिश्रबन्धु, आचार्य शुक्ल, डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. हरवंशलाल शर्मा, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इत्यादि आलोचकों से लेकर महान् साहित्यप्रेमी राधाकृष्णदास, महाकवि रत्नाकर, डॉ. बेनीप्रसाद, लाला भगवानदीन 'दीन' एवं प्रो. मोहनबल्लभ पन्त, आ. शुक्ल, पं. बालमुकुन्द चतुर्वेदी इत्यादि सम्पादकों तक ने सारा सूरसागर महाकवि सूरदास का ही मान डाला है (चतुर्वेदी जी ने अपने अनुसार अन्य सूरों का उल्लेख तो किया किन्तु संकलन में पार्थक्य-निर्वाह नहीं)। सूरसागर के कवियों में महाकवि सूरदास के पद सर्वोत्तम भी हैं, सर्वाधिक भी। द्वितीय स्थान कविवर सूर-श्याम का है, तृतीय कविवर सूरजदास या सूरजचन्द्र या सूरज का, चतुर्थ कविवर सूर-श्रीगोपाल का। अन्य सूरों का योगदान विशिष्ट नहीं है। फिर भी, खंभात (गुजरात) से आकर ब्रज में बसे सूर-कल्याण (प्रभावकाल 1550 ई. के लगभग) उल्लेख्य हैं, जिनका वृत्त 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' एवं पं. बालमुकुन्द चतुर्वेदी सम्पादित 'सप्ततरंगात्मक सूरसागर' में प्राप्त होता है :

बिनै कासौं करौं दीनबन्धो!

जन्मकृत अकृत चकृतचित्त, चरन सरन राखि दयासिंधो।।
 द्विज पतित मतिहीन, गनिका गुन लौलीन, करत अघ, खीन, पूतना प्रहार।
 सकृत निज हरिनाम जिन लियौ अवसि कर, दूरि करि, को को न तारे।।
 ध्रुव तेइ थापि थिर, प्रहलाद परतीति करि, हिरनकस्यप उर नख बिदारे।
 मानि गज भीर मैटि तन की पीर, दुपदकन्या धरन धीर लज्जा निवारे।।
 रावन मदअंध और नृप जरासंध किए निरबन्ध क्रोध वर तुल्य कारे।
 त्रैलोक जस रह्यौ, यहै सब सुति कह्यौ, सोही मैं दृष्टि गह्यौ सैलधारे।।
 अगनित विक्रम-सिव-विरंचि, भ्रमत सकल मुनि जन अगम लोकपारे।
 सूर-कल्याण प्रभु! राखि सनमान अब, देहि निज दान कलितापहारे।।³

सूर-श्रीगोपाल

सूरसागर के कवियों में महात्मा-महाकवि सूरदास, कविवर सूर-श्याम एवं कविवर सूरजदास (सूरजचन्द्र या सूरज) के अनन्तर कविवर सूर-श्रीगोपाल (प्रभावकाल 1520 ई. के लगभग, रीठौरा के ब्रजवासी) प्रमुख हैं, जो वल्लभचार्य के अनन्य भक्त एवं सूरदास के अनन्य मित्र थे। इनका वृत्त 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में प्राप्त होता है तथा 'सप्ततरंगात्मक सूरसागर' में सम्पादक पंडित बालमुकुन्द चतुर्वेदी ने भी उल्लेख किया है। इनका भक्तिपरक एवं लीलापरक सृजन अलंकृत, प्रभावी तथा उत्कृष्ट है :

1. प्राचीन काल में मुद्राएँ प्रचलित न थीं तथा धातुएँ सर्वत्र एवं सबको उपलब्ध न थीं अतः गो, वृषभ इत्यादि पशु विनिमय-माध्यम थे। पशुधन या गोधन, वाजिधन इत्यादि इसी वैश्विक सत्य के स्मारक शब्द हैं।
2. वास्तविक नाम कल्याण भट्ट था।
3. सोरठ (गुजरात के सोराष्ट्र या सोरठ क्षेत्र में मूलतः संबद्ध) राग में निबद्ध, गुजराती सूर-कल्याण का यह पद तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' के स्तोत्रों का स्मरण करा देता है। वही संस्कृतनिष्ठ-ब्रजभाषा, वही प्रवाह, वही निदर्शन।

1.

रे मन सुमिरि हरि हरि हरि!

यज्ञ शत नहीं नाम सम परतीति करि करि करि ।।
 हरि नाम हिरनाकुस बिसार्यौ उठ्यौ बरि बरि बरि ।
 प्रह्लाद हित जिन असुर मार्यौ ताहि डरि डरि डरि ।।
 गज, गृध्र, गनिका, व्याध के अघ गए गरि गरि गरि ।
 चरन-अंबुज बुद्धि-भाजन लेहु भरि भरि भरि ।।
 द्रौपदी की लाज कारन दाव परि परि परि ।
 पंडुसुत के विघ्न जेते गए टरि टरि टरि ।।
 कर्न, दुरजोधन, दुसाधन, सकुनि अरि अरि अरि ।
 सुत अजामिल नाम लीनौ गयौ तरि तरि तरि ।।
 चारि फल के दानि हैं प्रभु रहे फरि फरि फरि ।
 सूर श्रीगोपाल कौ गुन हृदय धरि धरि धरि ।।
 करि मन नंदनंदन ध्यान ।

2.

सेइ चरन-सरोज सीतल तजि विषय रस पान ।।
 जानु जंघ त्रिभंग सुंदर कलित कंचन दंड ।
 काछनी कटि पीत पट द्युति कमल केसर खंड ।।
 जनु मराल प्रबाल छौनां किंकिनी कलराव ।
 नाभि-हृद रोमावली अलि चारु सहज सुभाव ।।
 कंठ मुक्तामाल मलयज उर वनी बनमाल ।
 सुरसरी ससि तीर मानौ लता स्याम तमाल ।।
 बाहु पानि सरोज पल्लव धरे मृदु मुख वेनु ।
 अति बिराजति बदन बिधु पर सुरभिर्मंडित रेनु ।।
 अधर दसन कपोल नासा परम सुंदर नैन ।
 चलत कुंडल गंड¹ मंडल मनौ निरतन मैन ।।
 कुटिल कच ध्रुव तिलक रेखा सीस सिखी सिखंड ।
 चलत कुंडल गंड मंडल मनौ घन कोदंड ।।
 सूर श्रीगोपाल की छबि दृष्टि भरि भरि लेहिं ।
 प्रानपति की निरखि सोभा पलक परन न देहिं ।।
 जगियौ ब्रंजराज कुमार! कमल कोस फूले ।
 कुमुदिन जिय सकुच रही भृंग लतन झूले ।।
 तमचर खग करत रोर बोलत बनराई ।
 रौंभत गौ मधुर नौद बच्छ चपलताई ।।
 रवि प्रकास बिधु मलीन गावतिं ब्रजनारी ।
 सूर श्रीगोपाल उठे परम मँगलकारी ।।
 देख री देख राधारमन!

3.

4.

मदन मूरति स्यामघन तन बढ़त सोभा भवन ।।
 कुसुम कुंचित केस बिच बिच मंजरी बंधूक ।

नखत कहूँ कहूँ दिपत मानौं भई उपमा मूक।।
 स्रवन में नव झलक मानौं लसत कुंडल किरन।
 अँग-अँग छवि चलन मानौं गगन वादर वरन।।
 मुरलिका सुर बरसि चहुँ दिसि छुटी धुरवा धार।
 मनौं बूड़ि विनोद बिहरत बंधु निपुन विहार।।
 धनुष उर वनमाल राजत गिरा गरज गँभीर।
 सूर श्रीगोपाल बन ब्रज सदाँ पावस धीर।।

सूरजदास

सूरजदास अथवा सूरजचन्द्र अथवा सूरज¹ (प्रभावकाल 1500 ई. के लगभग) एक प्रभावी लीलावर्णनकार एवं उत्कृष्ट रहस्यवादी भक्त-कवि थे, जिनको 'सूरसागर' के रचनाकारों में महाकवि सूरदास एवं कविवर सूर-श्याम के अनन्तर अद्वितीय माना जा सकता है। 'चल चकई' का गहन एवं ललित रहस्यवादी पद (जो महाकवि सूरदास का माना जाता है) वस्तुतः इन्हीं का है, जिसके अनुकरण पर अन्योक्ति-सम्राट् कविवर बाबा दीनदयाल गिरि ने अपना अमर कुंडलिया बनाया है, प्रसाद ने 'ले चल वहाँ' शीर्षक प्रसिद्ध गीत लिखा है। यह गम्भीर अनुभूति के गम्भीर कवि हैं तथा कुल मिलाकर सूरश्याम, हित हरिवंश प्रभृति के स्तर के रचनाकार माने जा सकते हैं :

1.

चकई री! चलि चरन-सरोबर जहाँ न प्रेम-वियोग।
 जहाँ भ्रम-निसा होति नहिं कबहूँ वह सागर सुख जोग।।
 जहाँ सनक से मीन, हंस सिव, मुनिजनमख रवि प्रभा प्रकास।
 प्रफुलित कमल निमिष नहिं ससि डर, गुंजत निगम, सुबास।।
 जिहि सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमररस पीजै।
 सो सर छाँड़ि कुबुद्धि-विहंगम इहाँ कहा रहि कीजै।।
 लछमी-सहित होत नित क्रीड़ा सोभित सूरजदास।
 अब न सुहात विषय रत छीलर वा समुद्र की आस।।²

2.

भृंगी री! भजि चरन-कमल पद³ जहाँ नहिं निसि कौ त्रास।
 जहाँ विधि भानु समान प्रभानख सो वारिज सुखरास।।
 जिहि किंजल्क भक्ति-नव⁴ लछन याम ज्ञान रस एक।
 निगम, सनक, सुक, नारद, सारद, मुनिजन भृंग अनेक।।
 सिव-बिरंछि खंजन-मनरंजन छिन-छिन करत प्रवेस।
 अखिल कोस तहाँ बसत सुकृत जन, प्रगटत स्याम-दिनेस।।
 सुनु मधुकरी! भरम तजि निरभै राजिव रबि की आस।
 सूरज प्रेम-सिंधु में प्रफुलित तहाँ चलि करै निवास।।

1. भट्ट-जातीय कवि, डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' तथा कतिपय अन्य महानुभावों ने महाकवि चन्द्र के वंशधर सूरजचन्द्र (सूरजचन्द) भट्ट को महाकवि सूरदास सिद्ध करने के यत्न किए हैं, जो गलत है; किन्तु सूरजचन्द्र (सूरजचन्द) सूरजदास (सूरज) हो सकते हैं, जिनके पदों को 'सूरसागर' के संकलनकर्ताओं ने सूरसागर में समाहित कर लिया है। सूरजदास (सूरज) को सूरजचन्द्र (सूरजचन्द) इसलिए बनाया गया कि वे नाम से ही महाकवि चन्द्र (चन्द) या चन्द्रवरदायी (चन्दवरदायी) के वंशज लगें भी। यह वल्लभ-सम्प्रदाय से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध नहीं थे, किन्तु इन पर निम्बार्क और बल्लभ का प्रभाव अवश्य पड़ा है।

2. नासदीय-सूक्त (ऋग्वेद), गीता (महाभारत) इत्यादि से सरहपा, कवीर, दीनदयाल गिरि, बांग्ला के रवीन्द्र, प्रसाद इत्यादि के अनेक प्रसंग याद आते हैं। रूपक।

3. 'चरन-कमल पद' में पुनरुक्तवदाभास।

4. नवधाभक्ति।

3. वौरे मन! समुझि-समुझि कछु चेत।
इतनो जनम अकारथ खोयो, स्याम चिकुर भए सेत¹।।
तब लगि सेवा कर निस्चै करि जब लगि हरवा² खेत।
सूरजदास भरम जिन भूलौ करि विषय सें हेत।।
4. हरि! तेरी माया को न बिगोयौ?
सौ जोजन मरजाद सिंधु की पल मैं राम बिलोयौ।।
नारद मगन भए माया में ज्ञान बुद्धि बल खोयौ।
साठ पुत्र और द्वादस कन्या कंठ लगाए जोयौ।
संकर कौ चित हर्यो कामिनी सेज छोड़ि भुव सोयौ।
जारि मोहिनी आढ़ कियौ तब दुख नखसिख ते रोयौ।।
सौ भइया राजा दुरजोधन पल मौं गरद समोयौ।
सूरजदास काँच अरु कंचन एकहि धगा पिरोयौ।।³
5. माधौजू के वदन की सोभा।
कुटिल कुंतल कमल-मुख पर तनु मधुप रस-लोभा।।
भृकुटी मैन-धनुष पंकज पर, दृष्टि चंचल मीन।
मकर-कुंडल किरन रबि तैं निकसि बिकसित कीन।।
सुरभि रैनु-पराग रंजित, मुरलि-धुनि अलि-गुंज।
निरखि सुभग सरोज मुदित मराल सिसु सम पुंज।।
दसन दामिनि दमकि मानौं जलद गर्भ प्रकास।
निगम वानी नेति, कहि को सकै सूरजदास।।

कुंभनदास

सूरदास के समकालीन एवं अष्टछाप में प्रतिष्ठा-प्राप्त कुंभनदास (कविताकाल 1525 ई. के आसपास)⁴ का कवि-रूप साधारणतर हो सकता है (इनकी कोई व्यक्ति एवं प्रात्ययिक रचना भी प्राप्त नहीं), किन्तु ये एक महान् गायक एवं महान् भक्त होने के कारण चिरस्मरणीय हो गए हैं। मिश्रवन्धु ने इनके लिए 'पूरे ऋषि' विशेषण का प्रयोग किया है। प्रसिद्ध है कि इनके महान् विरक्त जीवन में महान् गायक की ख्याति से प्रभावित होकर अकबर ने सादर-सयत्न आमन्त्रित किया और मन की उमंग में आकर ये वृन्दावन के पास ही स्थित फ़तहपुर सीकरी के दरबार में पहुँचे भी, जहाँ इनका यथोचित आदर भी हुआ, किन्तु इसका खेद इन्हें सदा रहा जैसा कि इस प्रख्यात पद से स्पष्ट है :

संतन को कहा सीकरी सों काम?
आवत-जात पनहियाँ टूटीं, बिसरि गयो हरि-नाम।।
जिनको मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम।
कुंभनदास लाल गिरिधर विनु और सबै बेकाम।।

1. मार्मिक। शृंगाररसवर्ण के निस्तेज होने तथा कृष्णानुरागरहित रुग्णता के संकेत।

2. हल।

3. कबीर का "माया महाठगिनी हम जानी" पद का स्मरण आता है। यह पद क्लिष्ट सन्दर्भों के कारण प्रसन्न नहीं बन पाया।

4. 'विनोद' के अनुसार 1582 वि. के लगभग। 'हिन्दी साहित्य कोश' में डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने अनुमानित जीवनकाल 1468-1582 ई. दिया है जो प्रात्ययिक प्रतीत नहीं होता। तुलसी के 126 एवं कबीर के 120 वर्षीय जीवनकालों के सदृश कुंभनदास का 114 वर्षीय जीवनकाल भी कथात्मक है, तथात्मक नहीं।

इस एक पद के कारण कुंभनदास अमर हो गए! अन्य पदों में न कोई वस्तुपरक गौरव दृग्गत होता है, न (इस पद के सदृश) आत्मपरक गौरव ही! प्रस्तुत पद तुलसीदास का स्मरण करा देता है :

1. कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना ।
सिर धुनि गिरा लगति पछिताना ॥
2. हम चाकर रघुबीर के पटौ लिखौ दरबार ।
अब तुलसी का होहिंगे नर के मनसबदार ॥

कुंभनदास वल्लभाचार्य के शिष्य और अष्टछाप के ही अन्य कवि एवं विट्ठलनाथ के शिष्य चतुर्भुजदास के पिता के रूपों में भी स्मरणीय हैं। इनके विषय में गोकुलनाथ कृत कथित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', डॉ. दीनदयालु गुप्त कृत 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय', श्री प्रभुदयाल मीतल कृत 'अष्टछाप-परिचय' प्रभृति ग्रन्थों में अच्छा प्रकाश डाला गया है। 'राग-कल्पद्रुम', 'राग-रत्नाकर' एवं वल्लभ-सम्प्रदाय के कीर्तनसंग्रहों के आधार पर डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने इनके पदों की संख्या 500 बताई है। श्रीविद्या विभाग काँकरोली द्वारा 'कुंभनदास' ग्रन्थ में इनके अनेक पद संगृहीत हैं। इनका यह पद भी पर्याप्त प्रसिद्ध है :

तुम नीके दुहि जानत गैया ।
चलिए कुँवर रसिक मनमोहन लगौं तिहारे पैया ॥
तुमहि जानि करि कनक-दोहिनी घर ते पठई मैया ।
निकटहि है यह खरिह हमारो, नागर लेहुँ बलैया ॥
देखियत परम सुदेस लरिकई चित चुहँट्यो सुँदरैया ।
कुँभनदास प्रभु मानि लई रति गिरि गोबरधन रैया ॥

परमानन्ददास

सूर के समकालीन एवं अष्टछाप में प्रतिष्ठित परमानन्ददास (प्रभावकाल 1523 ई. के लगभग) ने अच्छी पदरचना की है, यद्यपि वैसी नहीं जैसी 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' के विद्वान् शोधकर्ता डॉ. दीनदयालु गुप्त ने लिखी है। मिश्रबन्धु के आधार पर आचार्य शुक्ल ने इन्हें कन्नौज-निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण बतलाया है। इनकी कृति 'परमानन्द-सागर' 835 पदों की एक विशिष्ट रचना है। मिश्रबन्धु ने 'ध्रुवचरित' नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है। महाकवि सूरदास एवं कविवर नन्ददास के अनन्तर अष्टछाप के कवियों में परमानन्ददास निस्सन्देह उत्तम कवि हैं। इनकी ब्रजभाषा संस्कृतनिष्ठ एवं अत्यन्त स्वच्छ है, जिसमें इनके तन्मय भक्तिभाव एवं तरल रसभाव को अभिव्यक्त करने का पूर्ण सामर्थ्य स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं इन्होंने खड़ीबोली का भी प्रयोग किया है :

1. देखो री! यह कैसा बालक रानी जमुमत जाया है ।
सुंदर बदन कमलदल-लोचन देखत चंद लजाया है ॥
पूरन ब्रह्म अलख अबिनासी प्रगटि नंद-घर आया है ।
परमानंद कृष्ण मनमोहन-चरनकमल चित लाया है ॥
2. कहा करौं बैकुंठहिं जाय ?
जहँ नहिं नंद, जहाँ न जसोदा, नहिं जहँ गोपी-ग्वाल न गाय ॥
जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल और नहीं कदमन की छाया ।
परमानंद प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय ॥
3. राधे जू हारावलि टूटी !
उरज कमलदल माल मरगजी, वाम कपोल अलक-लट फूटी ॥
वर उर उरज करज बिच अँकित, बाहु-युगल बलयावलि फूटी ॥

1. 'हिन्दी साहित्य कोश' में विद्वद्भर डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने काँकरोली की प्रति में 1101 पदों का होना बतलाया है।
2. राता-माता राम का, पीया प्रेम अशाय ।
मतवाला दीदार का, माँगै मुक्ति बलाय ॥ (कबीर)

कंचुकि चीर विविध रँग रंजित गिरिधर-अधर-माधुरी घूटी ।।
आलस-बलित नैन अनियारे अरुन उनींदे रजनी खूटी ।।
परमानंद प्रभु सुरति समय रस मदन-नृपति की सेना लूटी ।।

गोविन्दस्वामी

महावन के एक विरक्त गोविन्दस्वामी की प्रतिभा को पहचान कर विठ्ठलनाथ ने अष्टछाप में प्रतिष्ठित किया। इनकी कविता तो बस कहने भर की कविता है, किन्तु यह गायक इतने महान् थे कि तानसेन जैसा संगीत-सम्राट् तक चरणों में आता था।¹ वह समय हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा, कुंभनदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, गायक सूरदास, बाज़बहादुर इत्यादि शास्त्रीय संगीत के अद्वितीय गायकों का महान् समय था। गोविन्दस्वामी का डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा द्वारा अनुमानित जीवनकाल 1505-1585 ई. ठीक लगता है।² इनकी यशोदा-सन्दर्भी "लै दरपन देखे श्रीमुख को, गोविन्द प्रभु चरननि सिर नावति" पंक्ति में काव्य-मनोविज्ञान-भक्ति का अच्छा संगम हुआ दीखता है। काँकरोली से प्रकाशित 'गोविन्दस्वामी' पुस्तक में इनके पद संकलित हैं। इनका यह पद बहुत प्रसिद्ध है :

प्रातः समय उठि जसुमति जननी गिरिधर सुत को उवटि न्हावति ।
करि सिंगार बसन-भूखन सजि फूलन रचि-रचि पाग बनावति ।।
छुटे बंद बागे अति सोभित बिच-बिय चोब अरगजा लावति ।
सूथन लाल फूँदना सोभित आजु कि कबि कछु कहत न आवति ।।³
विविध कुसुम की माला, उर धरि श्रीकर मुरली देत गहावति ।
लै दरपन देखे श्रीमुख को गोविंद प्रभु चरननि सिर नावति ।।

छीतस्वामी

छीतस्वामी (1510-1585 ई.) मथुरा के नामी पंडा थे, जिनके पास अपार शक्ति और सम्पदा थी। स्वयं भारी पहलवान भी थे। गायक ऐसे कि अकबर तक आकृष्ट! वीरबल जैसे विख्यात प्रशासक एवं अकबर-रत्न इनके यजमान थे। लोग थर-थर काँपते थे। किन्तु विठ्ठलनाथ ने इनको शिष्य ही नहीं बनाया अपितु इनका एक सुशील भक्त के रूप में कायाकल्प ही कर दिया। जैसे ज़वर्दस्त पहलवान और तलवारबाज़ उमर से मोहम्मद को लाभ पहुँचा था, वैसे ही विठ्ठलनाथ को छीतस्वामी से। कुंभनदास के सदृश इनकी भी कोई कृति उपलब्ध नहीं है किन्तु कुछेक पद श्रुतिगोचर हो जाते हैं। प्रस्थान-आलोचक एवं साहित्येतिहासकार मिश्रबन्धु ने इनके 43 पदों का उल्लेख किया है। काँकरोली में 'छीतस्वामी' पुस्तक भी निकली है। इनका ब्रज-प्रेम विख्यात भी है, रचनापुष्ट भी :

1. हे बिधना! तो सों अँचला पसारि माँगौ,
जनम-जनम दीजो याही ब्रज बसिबो ।
2. भोर भए नव कुंज सदन ते आवत लाल गोवर्द्धनधारी ।
लटपट पाग मरगजी माला सिथिल अंग डगमग गति प्यारी ।।
बिनु गुन माल बिराजत उर पर नख-छत द्वैज-चंद अनुहारी ।
छीतस्वामि जब चितए मो तन तब हौं निरखि गई वलिहारी ।

1. 'आईने-अकबरी' में इस महान् गायक का नाम अंकित है। बाज़बहादुर का भी, जो मांडू का सुल्तान रह चुका था तथा जिसकी रूपमती से प्रेमकथा प्रसिद्ध है।
2. हिन्दी साहित्य कोश। मिश्रबन्धु ने "अभ्युदय का समय" 1624 वि. (1567 ई.) बताया है।
3. राम या कृष्ण को सिले कपड़े पहनाने का कालदोष तुलसी, सूर इत्यादि तक में विद्यमान है, अन्यो की तो बात ही क्या! तुलसी "मेरु सिखर बट छाया" लिखते हैं तो प्रसाद "बँधी महावट से नौका" और वह भी रामचरितमानस जैसे महत्तमस्तरम एवं कामायनी जैसे उच्चस्तरीय महाकाव्य में (जबकि उच्चतर पर्वत-शिखरों पर बट तो बहुत-बहुत दूर, तृणगुल्म तक नहीं उगते)! कामायनी का तो शीर्षक ही कालदोषग्रस्त एवं भ्रामक है क्योंकि मनु-पत्नी श्रद्धा कामगोत्रजा ऋग्वेद-ऋषिका श्रद्धा से शतशः भिन्न हैं। साकेत का शीर्षक भी अयोध्या के राम-परवर्ती बौद्धकालीन साकेत अभिधान के कारण कालदोषग्रस्त है। ऐसे शत-शत उद्धरण विद्यमान हैं। 'हिन्दी-कविता में काल-दोष' उच्चस्तरीय शोध का विषय है।

कृष्णदास

भक्ति-आन्दोलन मानव-समता एवं सर्वजीव-प्रेम पर आधृत था, जैसाकि इस आन्दोलन के नायक एवं उन्नायक रामानन्द द्वारा कवीर जैसे मुसलमान-जुलाहे, रैदास जैसे हिन्दू-चर्मशिल्पी, घना जैसे जाट, सेन जैसे नाई को शिष्ट बनाने से स्पष्ट होता है तथा सरस-भक्ति के दार्शनिक वल्लभाचार्य द्वारा कृष्णदास—जैसे शूद्र को शिष्य एवं विट्ठलनाथ द्वारा मन्दिर-प्रधान बनाने से। कृष्णदास (1513 ई. के लगभग)¹ ने एक बार वल्लभाचार्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी विट्ठलनाथ (जिन्होंने छीतस्वामी जैसे नामी-गरामी) पंडे-गुंडे को प्रसिद्ध भक्त एवं कवि बनाया, वणिकपुत्रासक्त पठान को रसखान बनाया, अष्टछाप की स्थापना की—वीरवल जिनके शिष्य एवं भक्त थे) की इयोढ़ी बन्द करा दी थी! वीरवल के द्वारा बन्दी बनाए जाने पर इन्हें स्वयं विट्ठलनाथ ने ही मुक्त कराया तथा पुनः मन्दिर-प्रधान नियुक्त किया। यह स्वभाव से उग्र थे। सूर से भी लाग-डॉट चलाते थे। इन्होंने भी भ्रमरगीत रचा है। इनके अन्य ग्रन्थ प्रेमतत्वनिरूपण एवं जुगल-मान-चरित्र हैं। कृष्णदास नाम के कई कवि हुए हैं। मिश्रबन्धु ने ही कृष्ण-गिरिधरजी, कृष्णदास दतियावाले, कृष्णदास मिर्जापुरवाले, कृष्णदास (समयप्रबन्ध के रचयिता) एवं कृष्णदास (वृन्दावनाष्टक के रचयिता) का उल्लेख किया है—कृष्णदास पयहारी तो प्रसिद्ध हैं ही। अतः रचनाओं में गड़मगड़ सम्भव है। स्वयं मिश्रबन्धु ने इन कृष्णदास (अष्टछाप वाले) के जिस श्रीभागवत-अनुवाद की चर्चा की है वह इनका न होकर कृष्णदास मिर्जापुरवाले का है। साधारणतर कवि होते हुए भी इन्होंने यत्र-तत्र शैलीगत नवीनता प्रदर्शित की है :

1. तरनि-तनया तट आवत है प्रात-समय, कंदुक खेलत देख्यो आनंद को कंदवा।
नूपुर पद कुनित², पीताम्बर कटि बाँधे, लाल उपरना, सिर मोरन को चँदवा।।
2. मोमन गिरिधर छबि पै अटक्यो
ललित त्रिभंग चाल पै चलिकै चिबुक चारु गड़ि ठटक्यो।।
सजल स्याम घन बरन लीन हवै फिरि चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास किय प्राण निछावर यह तन जग सिर पटक्यो।।³
3. रास रस गोविंद करत विहार।
सूरसुता के पुलिन रम्य मह फूले कुंद मँदार।।
अद्भुत सतदल विकसित कोमल मुकुलित कुमुद कल्हार।
मलय पवन बह सारद पूरन चंद मधुप झंकार।।
सुघर राय संगीत कलानिधि मोहन नंदकुमार।
ब्रजभामिनि सँग प्रमुदित नाचत तन चरचित घनसार।।
उभै स्वरूप सुभागत सीवाँ कोक कला सुख सार।
कृष्णदास स्वामी गिरिधर पिय पहिरे रसमै हार।।

चतुर्भुजदास

चतुर्भुजदास (1530-1585 ई.)⁴ कुंभनदास के पुत्र और गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य थे। यह भी अष्टछाप के कवियों में प्रतिष्ठित हैं। मिश्रबन्धु के अनुकरण में आ. शुक्ल ने लिखा है, “इनके बनाए तीन ग्रन्थ मिले हैं—‘द्वादशयश’, ‘भक्तिप्रताप’ तथा

1. मिश्रबन्धु के शब्दों में विक्रम-संवत् “1570 के लगभग”। अग्रदास (रचनाकाल 1575 ई.) के गुरु कृष्णदास पयहारी, ‘दानलीला’ के कवि कृष्णदास (रचनाकाल 1673 ई.), दतिया वाले ‘समयप्रबन्ध’ (1693 ई.) के रचयिता कृष्णदास, ‘माधुर्यलहरी’ (रचनाकाल 1795-96 ई.) के प्रसिद्ध कवि कृष्णदास मिर्जापुर वाले एवं ‘वृन्दावनाष्टक’ के प्रस्तोता कृष्णदास से भिन्न अष्टछाप के कृष्णदास की अमरता का आधार उनका विश्रुत सम्प्रदाय ही है। आधुनिक कहानीकार, संवादकार एवं गद्यगीतकार कलामर्मी राय कृष्णदास सारे कृष्णदासों में सबसे बड़े साहित्यसेवी थे।

2. क्यणित।

3. प्रसिद्ध है कि इस पद को गाकर उन्होंने शरीर छोड़ा था।

4. ‘हिन्दी साहित्य कोश’ में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार। ‘विनोद’ में मिश्रबन्धु ने ‘पूर्णअभ्युदय का समय 1615 वि.’ (1558 ई.) लिखा है, जो ठीक लगता है।

‘हितजू को मंगल’।” किन्तु ये तीनों ग्रन्थ चतुर्भुजदास (राधावल्लभीय) कृत हैं, जिनका जन्म 1528 ई.¹ में हुआ था। ‘हितजू’ से तो स्पष्ट भी है कि ग्रन्थ हितहरिवंश से संपृक्त है। इन चतुर्भुजदास (अष्टछाप वाले) के पद ‘चतुर्भुज-कीर्तनसंग्रह’, ‘कीर्तनावली’ एवं ‘दानलीला’ शीर्षक काँकरोली से प्रकाशित संकलनों में प्राप्त होते हैं। मिश्रबन्धु ने ‘मधुमालती की कथा’ को भी इनकी रचना माना है जो एकदम गलत है—यह मधुमालती चतुर्भुजदास कायस्थ (रचनाकाल 1780 ई. के आसपास) की कृति है। एक चतुर्भुज कवि ओरछा के वीरसिंहदेव चुन्देला के आश्रित थे, जिनका रचनाकाल 1590 ई. के लगभग है। इन चार चतुर्भुजों के अतिरिक्त अन्य चतुर्भुज साधारणतर कवि हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध तीर्थ श्रीनाथद्वारा (नाथद्वारा—हल्दीघाटी के निकट) के विख्यात साहित्य-मण्डल ने अष्टछाप के कवियों पर अच्छे और बड़े ग्रन्थ निकाले हैं। मण्डल के प्राण तथा प्रख्यात हिन्दीसेवी भगवतीप्रसाद देवपुरा ने ‘चतुर्भुजदास’ ग्रन्थ का भी प्रशस्त्य सम्पादन किया है। अष्टछाप के शेष सात कवियों पर सूर इस प्रकार छापे हुए हैं कि मैं उन्हें ‘सूर की सप्तछाया’ कहने को विवश हो रहा हूँ। इन कवियों ने सूर के भावों को ही दुहराया या विकसित किया है। परमानन्ददास इत्यादि ने दुहराया है, नन्ददास ने विकसित किया है (इसीलिए सूर के अनन्तर, निस्सन्देह बहुत-बहुत अन्तर के साथ, नन्ददास अष्टछाप के अन्यतम कवि हैं)। चतुर्भुजदास का कवि-स्तर सामान्यतर ही है किन्तु उनका शब्दचयन आकर्षक है :

जसोदा! कहा कहाँ हौं वात?

तुम्हरे सुत के करतब मो पै कहत कहें नहिं जात ॥

भाजन फोरि, ढारि सब गोरस, लै माखन-दधि खात ।

जौ बरजौं तो आँखि दिखावै, रंचहु नाहिं सकात ।

दास-चतुर्भुज गिरिधर-गुन हौं कहति-कहति सकुचात ॥

नन्ददास

अष्टछाप के कवियों में सूर के अनन्तर नन्ददास (1533-86 ई.)² को सर्वश्रेष्ठ मानने में किसी मतभेद की सम्भावना नहीं होनी चाहिए। नन्ददास की ख्याति के कई प्रमाण उपलब्ध हैं : नाभादास कृत : ‘भक्तमाल’ में प्रशस्ति (‘चन्द्रहास-अग्रज’ के प्रयोग से लगता है कि इनके अनुज चन्द्रहास भी अपने समय में प्रसिद्ध रहे होंगे), वल्लभाचार्य पौत्र एवं विट्ठलनाथ-पुत्र गोकुलनाथ की तथाकथित ‘दो सौ-बावन वैष्णवन की वार्ता’ (जिसमें इन्हें तुलसीदास का भाई कह मारा गया है जिसे मिश्रबन्धु ‘किसी तुलसीदासजी’ ठीक ही मानते हैं तथा खत्राणी-आसक्ति के विट्ठलनाथ-प्रभाववश भक्ति में परिणत होने की ‘कथा’ भी दी हुई है), ध्रुवदास कृत ‘भक्त-नामावली’ में प्रशस्ति, “और कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया” की लोकोक्ति (जो इनके विशिष्ट शब्दचयन की सम्यक् प्रशस्ति करती है)। ‘अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय’ (डॉ. दीनदयालु गुप्त), ‘नन्ददास’ (पं. उमाशंकर शुक्ल) एवं ‘नन्ददास-ग्रन्थावली’ (ब्रजराजदास) प्रभृति ग्रन्थ भी उन पर उपयुक्त प्रकाश डालते हैं। यद्यपि इनके विशिष्ट ग्रन्थ भ्रमरगीत एवं रास-पंचाध्यायी ही हैं, तथापि भागवत-दशमस्कन्ध, सिद्धान्त-पंचाध्यायी, ज्ञानमंजरी, नामचिन्तामणिमाला, अनेकार्थमाला³, अनेकार्थमंजरी⁴, जो इनके भक्त एवं विद्वान् रूपों की सूचक हैं तथा रुक्मिणी-मंगल, श्याम-सगाई, सुदामाचरित, दानलीला, मानलीला, रूपमंजरी, रसमंजरी, मानसमंजरी, विरहमंजरी जो इनको स्फीत कृष्णकाव्यकार एवं कृपाराम, करन कवि (कर्ण कवि), मोहनलाल, बलभद्र मिश्र, केशवदास, रहीम इत्यादि के साथ शास्त्रीयकाल के अग्रदूतों में प्रतिष्ठित करती हैं, की चर्चा भी की जाती है। कहा जाता है कि इन्होंने हितोपदेश एवं नासिकेतपुराण (नासिकेतपुराण) शीर्षक गद्य-ग्रन्थ भी प्रस्तुत किए थे। निस्सन्देह, नन्ददास एक विचारशील भक्त, एक गम्भीर विद्वान् एवं एक उत्कृष्ट कवि के त्रित्व में हिन्दी-साहित्य-कोष के जाज्वल्यमान् रत्नों में हैं।

सूरदास की अद्वितीय प्रतिभा से नन्ददास भी प्रभावित हुए हैं, किन्तु प्रकरणवक्रता या मौलिकता के साथ, क्योंकि अपने भ्रमरगीत में उन्होंने सूर के भावप्रधान पथ के स्थान पर विचारप्रधान पथ अपनाया है, अपनी रासपंचाध्यायी में स्वतन्त्र चित्रण का परिचय दिया

1. मिश्रबन्धु ने 1684 वि. (1627 ई. जो परवर्ती मासद्वय में 1628 ई. हो सकता है) दिया है।

2. ‘हिन्दी साहित्य कोश’ के प्रात्ययिक एवं प्रशस्त्य विवरण में डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा के अनुसार।

3. शब्दकोश। इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण, प्रकाशित भी।

4. तद्वत्।

है, सर्वत्र सूर की सहज ब्रजभाषा से भिन्न संस्कृतनिष्ठ एवं परिनिष्ठित ब्रजभाषा के प्रयोग का अनूठा सामर्थ्य प्रदर्शित किया है। नन्ददास को सूर, मीराँ एवं रसखान के साथ हिन्दी-कृष्णकाव्य का एक सीमान्त माना जा सकता है :

1. जौ उनके गुन नाहिं, और-गुन भए कहाँ तें?
बीज बिना तरु जमैं, मोहि तुम कहौ, कहाँ तें?
वा गुन को परछाँह री माया दरपन बीच।
गुन ते गुन न्यारे भए, अमल-वारि जल-कीच॥
सखा सुनु श्याम के!
(भ्रमरगीत)
2. ताही छिन उदुराज उदित रस-रास-सहायक।
कुंकुम-मंडित-वदन प्रिया जनु नागरि-नायक॥
कोमल किरन अरुन मानो बन व्यापि रही यों।
मनसिज खेल्यो फागु घुमड़ि घुरि रह गुलाल ज्यों॥
फटिक-छटा-सी किरन-कुंज-रंघन जव छाई।
मानहुँ बितत बितान सुदेस तनाव तनाई॥
तब लीनो कर-कमल योगमाया-सी मुरली।
अघटित-घटना-चतुर व्हुरि अधरन सुर जुरली॥
3. परम दुसह श्रीकृष्ण-विरह-दुख व्याप्यो तिन में।
कोटि वरस लागि नरक-भोग-दुख भुगते छिन में॥
सुभग सरित के तीर धीर बलवीर गए तहँ।
कोमल मलय-समीर छविन की महाभीर जहँ॥
कुसुम-धूरि-धूँधरी कुंज छविपुंजनि छाई।
गुंजत मंजु मलिन वेनु जनु बजाति सोहाई॥
इत महकति मालती चारु चंपक चित चोरत।
उत घनसारु तुसारु मलय मंदारु झकोरत॥
नव-मटकत-मनि स्याम कनक-मनि-मय ब्रजवाला।
वृंदावन गुन रीझि मनहु पहिराई माला॥

गदाधर भट्ट¹

चैतन्य महाप्रभु (1485-1527 ई.)² द्वारा प्रवर्तित गौड़ीय सम्प्रदाय के संस्कृत-ग्रन्थकार एवं हिन्दी-कवि श्री गदाधर भट्ट को महाप्रभु का शिष्य एवं जीव गोस्वामी का सुहृद् माना जाता है। इनका काल-निर्धारण कठिन है। मिश्रबन्धु “इनका ठीक समय सं. 1632” (1575 ई.) बताते हैं तथा शुक्ल “सं. 1584 ई. के भीतर ही आपने महाप्रभु से दीक्षा ली होगी” अनुमान करते हैं। यह प्रसिद्ध है कि श्री गदाधर भट्ट चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे। मिश्रबन्धु ने इन्हें “ऊँची योग्यता का कवि” माना है, शुक्ल के अनुसार, “इनका पद विन्यास बहुत ही सुन्दर” है। इन्होंने पदों में प्रचलित-ब्रजभाषा का प्रयोग किया है तथा छन्दों एवं स्तोत्रों में

1. एक गदाधर भट्ट (1818-1898 ई. — निधन दतिया में) महाकवि पद्माकर के पौत्र थे, जिन्होंने ‘अलंकार-चन्द्रोदय’, ‘ठन्दांमंजरी’ इत्यादि ग्रन्थ रचे। तीसरे बाबू गदाधर सिंह (1848-1898 ई.) सुधारवादी युग के उपन्यासकार एवं काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय के प्राण थे। चौथे ठाकुर गदाधर सिंह (1869-1918 ई.) ‘चीन में तेरह मास’ एवं ‘हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा’ के चिरस्मरणीय यात्रावृत्तकार हैं।

2. 1512-1584 वि.।

संस्कृतनिष्ठ-ब्रजभाषा का। इनकी संस्कृतनिष्ठ-ब्रजभाषा कविता उच्चकोटि की है तथा प्रचलित-ब्रजभाषा पदरचना साधारण। दो उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत हैं:

1. जयति श्री राधिके, सकलसुखसाधिके, तरुनिमनि, नित्यनवतनकिसोरी।
कृष्णतनलीनमन, रूप की चातकी, कृष्णमुखहिमकिरन की चकोरी।।
कृष्णदृगभृंग विश्राम हित पद्मिनी, कृष्णदृगमृगज बंधन सुडोरी।
कृष्ण-अनुराग-मकरंद की मधुकरी, कृष्णगुनगानरसिंधु वोरी।।
विमुख पर चित्त तें चित्त जाको सदा, करति नित नाह की चित्त चोरी।
प्रकृति यह गदाधर कहत कैसे वनै, अमित महिमा इतै बुद्धि थोरी।।
2. रक्त पीत सित असित लसत अंबुज वन सोभा।
टोल-टोल मद लोल भ्रमत मधुकर मधु लोभा।।
सारस अरु कलहंस कोक कोलाहलकारी।
पुलिन पवित्र विचित्र रचित सुंदर मनहारी।।

हित हरिवंश

राधा-वरीयतामय राधावल्लभ-सम्प्रदाय के प्रवर्तक, व्यास (हरिराम)¹ जैसे प्रख्यात भक्तों के गुरु, 'राधासुधानिधि' के संस्कृत-कवि एवं 'हित-चौरासी'² के हिन्दी-कवि गोस्वामी हित हरिवंश (1502-52 ई.) का जन्म वादगाँव (मथुरा के निकट) में हुआ था, जहाँ उनकी स्मृति सुरक्षित है। उनके पिता का नाम केशवदास मिश्र था, माता का तारावती। उनका पुत्रादियुक्त बहुपत्नीमय जीवन सुखपूर्ण था। बहुविवाह तो कृष्ण, दाऊद, सुलेमान, मूसा, मोहम्मद, गोविन्दसिंह इत्यादि अनेक धर्मावतारों ने भी किए (पत्नी सन्ततित्यागी बुद्धि एवं महावीर तक शिष्या-मुक्त नहीं रहे, 'अखंड ब्रह्मचर्यमय' ईसा एकान्त-नारी-सम्भाषण एवं पतिता-पावनकारी-प्रयत्नों से ऊभचूभ रहे) किन्तु हित हरिवंश ने विरक्तियात्रा में राधा की प्रेरणा से जो विवाह किए वे निस्सन्देह विशिष्ट थे। धर्मावतारों के जीवन सचमुच विलक्षण हैं!

हित हरिवंश का कवि-रूप चौरासी रासपरक एवं कतिपय मुक्त पदों मात्र में परिसीमित होते हुए भी अतीत प्रौढ़ एवं पुष्ट तथा गदाधर (गौडीय-सम्प्रदाय), श्रीभट्ट, हरिदास (निम्बार्क सम्प्रदाय) इत्यादि की तुलना में विलक्षण है। रासदर्शन, राससज्जा, सौन्दर्यचित्रण, भाषाप्रवाह एवं माधुर्य में हित हरिवंश की पदावली बेजोड़ है जो उन्हें कुल मिलाकर रसखान एवं नन्ददास के स्तर का कवि सिद्ध करती है:

1. ब्रज-नव-तरुनि-कदंब-मुकुट-मनि स्यामा आजु बनी।
नख-सिख लौं अँग-अँग माधुरी मोहे स्याम धनी।।
यों राजत कवरी गूँथित कच कनक-कंज-बदनी।
चिकुर चंद्रिकनि बीच अरध बिधु मानहुँ ग्रसत फनी।।
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि! साँवल बिन्दु-कनी।
पीतम प्रानरतन-संपुट कुच कंचुकि कसित तनी।।
भुज मृनाल बल हरत बलय-जुत परस परस स्रवनी।
स्याम सीस तरु मनु भिड़वारी रची रुधिर रवनी।।
नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन को हृदनी।
कृस कटि पृथु नितंब किंकिनि व्रत कदलि-खंभ जघनी।।
पद-अंबुज जावक-जुत भूषण प्रीतम उर अवनी।
नव-नव भाय विलोभ भाम इभ बिहरत बर करनी।।

1. व्यास जी ओरछा-नरेश मधुकरशाह के गुरु थे।

2. 'प्रेमलता' शीर्षक अन्य नाम का उल्लेख 'विनोद' में मिलता है। 'राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य' शीर्षक मानव-शाोधन-ग्रंथ में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने इस ग्रन्थरत्न की 'लाभग दो दर्जन' टीकाओं का होना लिखा है, जिसे इसका माहात्म्य स्पष्ट होता है।

2.

आजु बन नीको रास बनायो ।
 पुलिन पवित्र सुभग जमुना-तट मोहन बेनु वजायो ।।
 कल कंकन-किंकिन-नूपुर धुनि खग-मृग सचु¹ पायो ।
 जुवतिनु-मंडल मध्य स्यामघन सारँग राग जमायो ।।
 विविध बिसद वृषभानुनंदिनी अंग सुगंध दिखायो ।
 अभिनय-निपुन, लटक लोचन-भृकुटि अनंग नचायो ।।
 ताताथेइ ताथेइ धारि नवगति ब्रजराज रिझायो ।।
 सकल उदार नृपति-चूड़ामनि सुख-बारिद बरखायो ।

3.

विपिन बन कुंज, रति केलि भुज मेलि, रुचि । स्याम-स्यामा मिले सरद की जामिनी ।
 हृदय अति फूल, रसमूल पिय नागरी कर निकट मत्त मनु विविध गुन रागिनी ।।
 सरस गति परिहास आवेस बस दलित दल मदन बल कोक रस जामिनी ।
 हित हरिवंस सुनि लाल लावन्य मिदे प्रिया अति सूर सुख-सुरत संग्रामिनी ।।

हरिराम व्यास, सेवक, ध्रुवदास, विहारी, देव, चाचा हित वृन्दावनदास, भारतेन्दु इत्यादि पर गोस्वामी हित हरिवंश की मधुर-साधना एवं राधा-दर्शन का भारी प्रभाव पड़ा, जो सम्प्रदायगत संकीर्णता से मुक्त अर्थात् विशद है। उनके निधन पर व्यास जी ने यह मार्मिक पद लिखा था :

हुतो रस रसिकन को आधार ।
 बिनु हरिवंसहि सरस रीति को कापै चलिहै भार ?
 को राधा दुलरावै गावै, बचन सुनावै चार ?
 बृन्दावन की सहज माधुरी कहिहै कौन उदार ?
 पदरचना अब कापै है है ? निरस भयो संसार ।
 बड़ो अभाग, अनन्य सभा को उठिगो ठाट सिंगार !
 जिन बिन दिन छिन जुग सम बीतत सहज रूप-आगार ।
 व्यास एक कुल-कुमुद चंद बिनु उड्डयन जूठी धार ।।

ध्रुवदास

हितहरिवंश के महान् शिष्य, लीलाकाव्य एवं राधावल्लभय मधुरभाव के अन्यतम उद्गाता, भक्तितत्त्व के एक प्रमुख विवेचक ध्रुवदास (रचनाकाल 1595 ई. के आसपास, जन्मस्थान देवबन्द, जनपद सहारनपुर, उ.प्र.) में उच्चस्तरीय भक्त एवं उच्चस्तरीय कवि के युगपत् दर्शन होते हैं। वे कायस्थ-कुलरत्न थे। भगवत मुदित कृत 'रसिक अनन्य माल', राधाकृष्णदास सम्पादित ध्रुवदास कृत 'भक्तनामावली', मिश्रबन्धु कृत 'विनोद', वियोगीहरि सम्पादित 'ब्रजमाधुरीसार', रामकृष्ण वर्मा सम्पादित 'ध्रुव-सर्वस्व', रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', रामकुमार वर्मा कृत 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', ललिताचरण गोस्वामी कृत 'गोस्वामी हितहरिवंश और उनका सम्प्रदाय' तथा विजयेन्द्र स्नातक कृत 'राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य' में इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। डॉ. स्नातक ने 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग-2 में भी इन पर प्रात्ययिक एवं स्तरीय सामग्री प्रस्तुत की है। ध्रुवदास कृत 'भक्तनामावली' नाभादास कृत 'भक्तमाल' से प्रेरित लघुतर कृति है जिसे डॉ. स्नातक ने 'सूत्रात्मक भक्तमाल' कहा है। 'सिद्धान्त-विचार' में स्फीत गद्यप्रयोग ऐतिहासिक महत्व रखता है तथा इसका रूपसनातन गोस्वामी के संस्कृत-ग्रन्थों पर भारी प्रभाव माना जाता है। अपने शृंगारवर्णन में ध्रुवदास देव एवं पद्माकर जैसे परवर्ती महाकवियों के पूर्वपुरुष प्रतीत होते हैं। निस्सन्देह, ध्रुवदास हिन्दी-कृष्णकाव्यकारों में एक उच्चस्थान के अधिकारी हैं। उनके बयालीस ग्रन्थ 'बयालीस-लीला' के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। अधिकांश ग्रन्थ बहुत छोटे हैं।

1. सुख-शांति । "भैरो मन अनत कहाँ सचु पावै"—सूर । "सचस्वान् स्वस्तये"—वेद ।

ध्रुवदास के स्फीत काव्यसृजन में गुरुभक्ति, वैराग्य, प्रेमाभक्ति, शृंगारभक्ति इत्यादि का बहुत ही सुन्दर निरूपण प्राप्त होता है, जिसकी ब्रजभाषा अतीव मनोहारी भी है, यत्र-तत्र अलंकृत¹ भी, जो उन्हें शास्त्रीयकाल के अग्रदूतों की परम्परा से भी संपृक्त कर देती है :

1. हितहरिबंसहि कहत ध्रुव वाढ़त आनँदवेलि ।
प्रेमरंग उर जगमगै जुगुल नवलरस-केलि ॥
निगम ब्रह्म परसत नहीं, जो रस सबते दूरि ।
कियो प्रगट हरिबंसजू रसिकन जीवन-मूरि ॥
पति-कुटुंब देखत सबनि घूँघट पट दिय डारि ।
देह-गेह बिसर्यो तिन्हें मोहन-रूप निहारि ।
2. जीवदसा कछुयक सुनि भाई । हरि जस अमृत तजि विष खाई ।
दिनभंगुर यह देह न जानी । उलटी समुझि अमर ही मानी ॥
घर-घरनी के रंग यों राच्यो । छिन-छिन में नट-कापि ज्यों नाच्यो ॥
बय गै वीति जात नाहें जानी । जिमि सावन सरिता को पानी ॥
माया-पुख में इमि लपटान्यो । विषय-स्वाद ही सरबस जान्यो ॥
काल समय जब आइ तुलानो । तन-मन की सुधि तबें भुलानो ॥
3. प्रेम-वात कछु कहि नहिं जाई । उलटी चाल तहाँ सब भाई ॥
प्रेम-बात सुनि चौरो होई । तहाँ सयान रहै नहि कोई ॥
तन-मन-प्राण तिही छिन हारै । भली-बुरी कछुवै न बिचारै ॥
ऐसो प्रेम उपजिहै जबहीं । हित ध्रुव बात बनैगी तबहीं ॥
4. रूप जल, उठत तरंग हैं कटाछन के,
अंग-अंग भौरन की अति गहराई है ।
नैनन को प्रतिबिंब पर्यो है कपोलन में,
तेई भए मीन तहाँ ऐसी उर आई है ॥
अरुन कमल मुसुकान मानो फबि रही,
थिरकन बेसरि के मोती की सुहाई है ।
भयो है मुदित सखी, लाल को मराल मन,
जीवन-जुगल ध्रुव एक ठाँव पाई है ॥

हरिराम 'व्यास'

हितहरिवंश के शिष्य श्री हरिराम व्यास (रचनाकाल 1558 ई. के लगभग) ओरछा-नरेश मधुकरशाह के गुरु एवं संस्कृत-साहित्य के प्रखर पंडित थे, जिनके 'रास के पद', 'मंगलाचार के पद', 'रागमाला', 'बानी', 'पद', 'साखी' प्रभृति अनेक ग्रन्थों में आयामों की व्यापकता के वे दर्शन होते हैं जो कृष्णकाव्य में दुर्लभ कहे जा सकते हैं। इनके प्रेमतत्त्वनिरूपण, लीलावर्णन, प्रकृतिचित्रण, गुरुमहिमा, गुरुवियोग, खलनिंदा इत्यादि के वर्णन संस्कृत-कवियों एवं कवीर, मीराँ, सूर इत्यादि से प्रभावित होते हुए भी अच्छे हैं। मिश्रवन्धु ने इनकी कविता के लिए 'उत्कृष्ट' शब्द का प्रयोग ठीक ही किया है :

आज कछु कुंजन में बरषा सी ।
बादल-दल में देखि सखी री! चमकति है चपला सी ॥
नान्हीं-नान्हीं बूँदन कछु धुरवा से पवन वहे सुखरासी ।

1. ध्रुवदास ने साग-रूपक के अच्छे प्रयोग किए हैं ।

मंद-मंद गरजनि सी सुनियतु नाचति मोर-सभा सी।
 इंद्रधनुष वगपंगति डोलति बोलति कोक-कला सी।
 इंद्रवधू छनि छाड़ रही मनु गिरि पर अरुन-घटा सी।।
 उमगि महीरुह स्यों नहि फूली भूली मृगमाला सी।
 रटति प्यास चातक ज्यों रसना दस पीवत हू प्यासी। (मीराँ)
 सदरिस गोपिन प्रेम प्रगट कलिजुगहि दिखायो।
 निरअंकुस अति निडर, रसिकजन रसना गायो।।
 दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्दिम कीनो।
 बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीनो।।
 भक्ति-निसान कजाय के, काहू ते नाहिं लजी।
 लोकलाज-कुल-शृंखला तजि मीराँ गिरिधर भजी।। (नाभादास)
 एक राणी गढ़ चित्तौड़ा की।

मेड़तणी निज भगति कुमावै, भोजराइ जी का जोड़ा की।।
 हियरू मिसरू साल दुसाला, बैठण गादी मोड़ा की।
 असा सुख छाड़ि भई बैरागिणि सादी नरपति जोड़ा की।
 साइण पाइण रथा पालकी, कमी न हसती घोड़ा की।
 सब सुख छाड़ि छनक में चाली, लाली लगाई रणछोड़ा की।।
 ताल बजावै, गोविन्द-गुण गावै, लाज तजी नइल्योड़ा की।
 निरति करै, नीका होइ नाचै, भगति कुमावै भाई चोड़ा की।।
 नवा-नवा भोजन भाँति-भाँति का करिहै सार रसोड़ा की।
 करि भोजन साधौ जीमावै, भाजी करत गिदोड़ा की।।
 मन धन सिर साधौ कै अरपण, प्रीति नहीं मन थोड़ा की।

हरीदास मीराँ बड़भागणि, सब राणा सिर मोड़ा की।। —हरिदास¹

सैफो (यूनानी), राविया (अरबी), टेरेसा या टेरीसा (स्पेनी) एवं आंडाल या गोदा (तमिल), लल्लेश्वरी (कश्मीरी) प्रभृति से तुलनीय किन्तु हिन्दी-गुजराती-मराठी साहित्यों में समान रूप से गृहीत एवं पूज्य होने के कारण विश्व की सर्वाधिक लोकप्रिय कवयित्री एवं भक्त मीराँ (1505²-1543³ ई.) मानव-इतिहास की एक महान् विभूति हैं। टॉड, टेसीटरी, ग्रीअर्सन, निवेदिता, एनी वेसेंट प्रभृति विदेशियों एवं मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ, महामहोपाध्याय डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, नरोत्तमदास स्वामी, वज्ररत्नदास, परशुराम चतुर्वेदी इत्यादि हिन्दी-साहित्यविदों ने उन पर नाना शैलियों में विशद प्रकाश डाला है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का 'मीराँबाई की पदावली' ग्रन्थ विद्वत्तापूर्ण सम्पादन एवं साधिकार प्रतिपादन की दृष्टियों से सर्वोत्तम है। आवश्यक-अनावश्यक रूप से हिन्दूधर्म एवं हिन्दी-साहित्य पर निराधार प्रहार करनेवाले जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्ति तक मीराँ से प्रभावित हुए हैं।⁴ परमेश्वर 'द्विरेफ' एवं परमानन्द जड़िया ने मीराँ पर महाकाव्य रचे हैं तथा प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने उन पर 'पीताम्बरा' शीर्षक उपन्यास का सृजन किया है (उन्होंने मीराँ के चरितनायक कृष्ण पर 'प्रथम पुरुष' एवं 'पुरुषोत्तम' उपन्यासद्वय की रचना भी की है)। विशेषतः गुजराती एवं सामान्यतः मराठी के कतिपय विद्वानों ने भी उन पर ग्रन्थ रचे हैं। विराट् लोकप्रियता में मीराँ तुलसी, सूर एवं कबीर की त्रयी के साथ हैं। यद्यपि उनका कृतित्व इनमें से किसी के भी कृतित्व की समता किसी भी दृष्टि से नहीं कर सकता, तथापि उनका

1. तानसेन और बैजू बावरा के गुरु महान् गायक-सन्त हरिदास (हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक) से भिन्न कोई राजस्थानी भक्त। आधुनिककाल में भी एक सन्त हरिदास या हरीदास (रायवरेली जनपद) हुए हैं।
2. कुछ स्रोत 1498 ई. मानते हैं।
3. कुछ स्रोत 1563 ई. मानते हैं।
4. द्रष्टव्य है लालसिंह शक्तावत सम्पादित 'मीराँ भजनमाला' का आरम्भ।

व्यक्तित्व इनके साथ पंक्तिबद्ध है। राजपरिवार में जन्म, महाराज-परिवार में विवाह, किशोरावस्था में वैधव्य, दुष्ट राणा विक्रमादित्य (बिक्रमाजीत) से संघर्ष, वैभव-त्याग, नृत्य-संगीत-समन्वित सम्पूर्ण प्रेमाभक्ति इत्यादि की विविधता ने उन्हें संसार की सर्वश्रेष्ठ नारियों में तो प्रतिष्ठित किया ही है, विषपान-सर्पघड्यन्त्र-रणछोड़मूर्तिलीनता इत्यादि-इत्यादि कथाओं से भी जोड़ दिया है¹, रैदास-तुलसीदास इत्यादि से कल्पना-संपृक्त भी कर दिया है। “कुछ बढ़ाया भक्तों ने, कुछ बढ़ाया सन्तों ने”! इस बढ़ाने को बढ़ाते-बढ़ाते मीराँ की विराट् व्यक्तित्व-संस्थापना एक सत्य को तो विवृत करती ही है : उनका कृतित्व महान् है, उनका व्यक्तित्व महानतमवर्गीय है।

जीवनवृत्त एवं ‘आत्मकाव्य’ में उसकी विवृति

मीराँ का जन्म 1503 ई. में जोधपुर के संस्थापक जोधाजी के पुत्र दूदाजी के पुत्र रतनजी (रत्नसिंह) के घर कुड़की नामक ग्राम में हुआ, जो मेड़ता के पास है। जोधाजी (1453-1489 ई.) ने राज्यकाल के कुछ ही वर्षों पश्चात् 1459 ई. में जोधपुर बसाया, जिसे मेहरानगढ़ कहा गया (जिस पर बलि-कथा प्रचलित है)। जयचन्द्र के 1993 या 1994 ई. में चन्दावर (इटावा के पास) के मोहम्मद गोरी से युद्ध बलिदान के अनन्तर अनेक राठौर वीर सुदूर मरुदेश (मारवाड़) की ओर चले गए जहाँ राव सीहाजी ने 1273 ई. के लगभग राज्य स्थापित किया। राठौरों में जोधाजी, मीराँ, जयमल, अमरसिंह, दुर्गादास जैसे अमर व्यक्ति हुए। मालवदेव (1532-1560 ई.) भी प्रख्यात सिद्ध हुए, जबकि प्रिथ्वीराज अकबर के दरबार के कविरत्न बने, जसवन्त सिंह ने औरंगजेब की सेवा भी की और साहित्य का सृजन भी किया। मीराँ प्रभावी राठौरों (मारवाड़) में उत्पन्न हुई और प्रतापी सीसोदियों (मेवाड़) में व्याही गई; किन्तु अपने तप एवं सृजन से विश्व की एक सर्वश्रेष्ठ नारी का स्थान प्राप्त किया। कुंभा, साँगा, प्रताप समेत कोई उनसे महत्तर नहीं। मीराँ और प्रताप राजस्थान में सर्वोपरि व्यक्ति हैं। नितान्त अल्पायु में ही वे कृष्ण के प्रति आकृष्ट हुई तथा एक सन्त-मंडली के उनके घर पर ठहरने, उसके प्रधान के मूर्तिपूजन-अर्चन इत्यादि से प्रेरित उस मूर्ति की प्राप्ति के लिए हठ करने तथा प्राप्त करने इत्यादि से आकर्षण गहरे प्रेम में बदल गया तथा जैसा ईसा ने ‘प्रभु’ को पिता माना था, वैसे ही मीराँ ने कृष्ण को पति मान लिया। शीघ्र ही माता के निधन के कारण इनके चाचा वीरमदेव ने इन्हें मेड़ता बुला लिया जहाँ अपने चचेरे भाई जयमल के साथ इनका शैशव एवं बाल्यकाल बीता। किशोरावस्था का आरम्भ होते ही (लगभग तेरह वर्ष की आयु में) इनका विवाह मेवाड़ के विश्वविख्यात महाराणा साँगा (संग्रामसिंह) के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हो गया किन्तु चार-पाँच वर्ष में ही वे विधवा हो गईं। शैशव में माता एवं कैशोर्य में पति के निधन ने उनके सहज एवं संस्कारगत कृष्णप्रेम को अत्यधिक स्फीत कर दिया। 1527 ई. में खानवा (कानवा) के युद्ध में इनके विख्यात श्वसुर साँगा वावर से हारे। इस युद्ध में इनके पिता रतन जी शहीद हुए। 1528 ई. में साँगा का देहान्त हो गया। साँगा के बाद उनके द्वितीय पुत्र रत्नसिंह महाराणा हुए जो शीघ्र ही बूँदीवालों से हुए एक संघर्ष में मारे गए। तब ‘बूँदी के भाणेज’ बीस वर्षीय उहड़ विक्रमादित्य राणा बने, जिनके अत्याचारों ने मीराँ को प्रशान्त व्यक्तित्व को संघर्ष की ज्वाला से जाज्वल्यमान् कर दिया। राणा के विरोध के बावजूद वे पदरचना-पदगान, साधु-सत्संग, नृत्य-कीर्तनादि में लीन रहीं तथा उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई, जिसने क्षुद्र विक्रमादित्य में हीनभावनावृद्धि ही की। उसने अनेक कष्ट दिए जो विषकथा, सर्प-कथा इत्यादि के प्रतीकों में विवृत हुए हैं “पग घुँघरू बाँधि मीरा नाची रे” शीर्षक पद में ‘जहर का प्याला’ वर्णित है, किन्तु इस पद की प्रक्षिप्तता मीराँ के स्थान पर मीरा लिखे होने से भी बढ़कर उन पर वर्णन से ही स्पष्ट है; इसमें वे वर्णनकार नहीं, वर्ण्य हैं। ऐसे सारे वर्णन प्रक्षिप्त हैं। यह सब सुनकर वीरमदेव ने मीराँ को मेड़ता बुला लिया जहाँ के विख्यात चारभुजा-मन्दिर में पूजा-अर्चना करती रहीं। उनके दर्शन एवं सत्संग के लिए आनेवालों की भारी भीड़ लगी रहती। किन्तु 1538 ई. में वीरमदेव के हाथों से मेड़ता का निकल जाना मीराँ के वैराग्य में सहायक सिद्ध हुआ तथा वे एक विख्यात भक्ति-प्रसारक जीव गोस्वामी से मिलने गईं। उन्होंने कहलवाया कि वे नियमानुसार किसी स्त्री से नहीं मिलते। मीराँ ने उन तक यह उत्तर पहुँचाया, “मैं समझती थी कि ब्रजभूमि में पुरुष केवल एक”² है, किन्तु आज पता चला कि नहीं, अन्य भी विद्यमान हैं।” इस उत्तर से अभिभूत होकर जीव गोस्वामी ने उनसे मिलकर सत्संग-लाभ उठाया। वहाँ से मीराँ-मंडली, नृत्य-कीर्तन करती द्वारिकापुरी के लिए निकली। द्वारिका में भी मीराँ की ख्याति व्याप्त हो गई। इधर मेवाड़ में विक्रमादित्य, वनवीर इत्यादि खलनायकों का समय बीत चुकने पर साँगा के जीवित बचे कनिष्ठ पुत्र उदयसिंह महाराणा बने। उन्होंने

1. मीराँ ने प्रतीकतः वैधव्य के अनन्तर जीवन-विष-पान किया, प्रवाद-नाग के दंश सहे, रणछोर-लीनता (तन्मय-प्रेम) प्राप्त की। उनके सन्दर्भ में यह सब ‘सत्य’ है।

2. कृष्ण।

कुछ पंडितों को मीराँ को द्वारिका से मेवाड़ लिवा जाने के लिए भेजा। ब्राह्मण द्वारिका के रणछोड़¹ मन्दिर पहुँचे जहाँ मीराँ की साधना चल रही थी। किन्तु वे मेवाड़ लौट न सकीं। 1543 ई. में 4 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया। कथा प्रचलित है कि वे रणछोड़-मूर्ति ही में समा गई जो अपने प्रतीकार्थ में सर्वतः सत्य भी है, सार्थक भी : मीराँ कृष्ण में लीन हो गई! कालान्तर में रणछोड़ की यह मूर्ति डाकोरजी के मन्दिर में प्रतिष्ठित हो गई, जिसके कारण डाकोरजी गुजरात का एक विख्यात तीर्थ बन गया। मेवाड़ के ब्राह्मण मीराँ की शैशव से ही आराध्य गिरिधर गोपाल की मूर्ति लेकर वापस उदयपुर लौटे, जिसे महाराणा ने पीताम्बरराय जी के मन्दिर में प्रतिष्ठित करा दिया। मीराँ की महान् स्मृति कुड़की, मेड़ता, चित्तौड़, उदयपुर, द्वारिका एवं डाकोरजी में तीर्थसृष्टि कर चुकी है : “राम नाम सँ ताड़ी लागी सकल तिरथ तिन्ह तन माँ रे” के नरसी “पायो जी मैंने राम-रतन-धन पायो” की गायिका पर पूर्णतः सत्य प्रमाणित हुए हैं।

मीराँ का जन्म राठौड़ (राठौर) राजपूतों के उस घराने में हुआ था, जिनका इतिहास काफ़ी पुराना है। 1193 या 1194 ई. में मोहम्मद गोरी (मुइज्जुद्दीन साम या शहाबुद्दीन गोरी) से युद्ध में जयचन्द्र की पराजय तथा तज्जन्य वीरगति (या आत्मघात) के अनन्तर राठौड़ों का एक बड़ा दल सुरक्षार्थ सुदूर मरुभूमि में जा पहुँचा जहाँ उसने राज्यस्थापना भी की। जोधाजी, वीकाजी, मालदेव, वीरमदेव, जयमल², दुर्गादास इत्यादि वीर एवं मीराँ, प्रिथ्वीराज, जसवन्तसिंह इत्यादि कवि राठौरवंश में ही जन्मे थे। जोधपुर का घराना अब तक राठौरों को जीवन्त किए हैं। किन्तु मीराँ का प्रतिपक्ष तो अतुलनीयतः महान् था। मेवाड़ के सीसोदिया राजपूत सूर्यवंशी राम-परम्परा के रत्न रहे हैं, जिनमें बाप्पा रावल, राणा कुम्भा, राणा साँगा, राणा प्रताप जैसे इतिहास-पुरुष उत्पन्न हुए। आज भी मेवाड़ के सीसोदिया राजपूतों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। हूणों के आक्रमण की प्रतिक्रिया में महान् गुप्त-वंश के कुछ वीर इस क्षेत्र में आ गए, जहाँ राज्यस्थापन किया। उनकी परम्परा अन्यतत्त्वसम्पृक्त होते हुए सीसोदियों में ज्योतिर्मय हुई। मीराँ अमर हुतात्मा जयमल की चचेरी बहन और देशभक्ति-प्रतीक महान् राणा प्रताप की ताई थीं। स्वयं उनका व्यक्तित्व साहस से ओतप्रोत था, जैसाकि नाभादास जैसे सन्त की प्रात्यक्षिक वाणी से भी व्यक्त हुआ है और स्वयं उनकी आत्मपरक कविता से भी। मीराँ और प्रताप राजस्थान के इतिहास के सर्वश्रेष्ठ ‘व्यक्ति’ हैं। संयोगात् दोनों समकालीन एवं सम्बन्धी थे।

‘मीरा की आत्मपरक कविता’ लघुप्रबन्ध का उत्कृष्ट विषय है, जिसका एक छोर उनके महान् संघर्षपूर्ण जीवन से जुड़ा है तो दूसरा विक्रमादित्य के दुष्टवृत्त से। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1.

हे मेरी माँ!

थे मत बरजो माई री! साधौं दरसण जावौं।

श्याम रूप हिरदे बस म्हारे, और ना भावौं।

सब सोवे सुख नींदड़ी, म्हारे रैन जगावौं।।

ग्यान नसे जग बावरा ज्याकूँ स्याम न भावौं।

माँ हिरदे बसा साँवरा, म्हारे नींद न आवौं।।

चौमासा री बावड़ी ज्याको नीर न पावौं।

हरि-निर्झर अमृत झर्याँ म्हारी प्यास बुझावा।।

2.

राणा जी! थाँरो देसलड़लो रँगरूढो।

थारे मुलक में भक्ति नहीं छे, लोग बसें सब कूड़ो।³

पाट-पटम्बर सबही मैं त्यागा, सिर बाँधूली जूड़ो।।

1. कंस-श्वसुर जरासंध के अनवरत आक्रमणों के कारण रण छोड़कर मथुरा से मथुरा से द्वारिका भागने वाले कृष्ण। यह भी रणनीति ही थी।
2. वीर जयमल ने चित्तौड़ पर आक्रमण के समय अकबर से लोहा लिया तथा शहीद हुए (1668 ई.)। चित्तौड़ के गढ़ में उनकी स्मृति सुरक्षित है। उनकी तथा पत्ता (फत्ता) की वीरता से अभिभूत अकबर ने दोनों वीरों की मूर्तियाँ आगरे के किले के दरवाजे पर लगावा दी थीं (हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया : डॉ. ईश्वरीप्रसाद, पृ. 451)।
3. सारे मेवाड़ियों को कूड़ा कहना न उचित है, न शालीन (विशेषतः तब जबकि मेवाड़ वीरता का तीर्थ रहा है—भले ही तब प्रताप और हल्दीघाटी प्रतापित और घटित न हुए हों); किन्तु यह ईसा के केवल अनुयायियों की स्वर्गानुशंसा (पिता या ईश्वर से), मोहम्मद की काफ़िर-वधानुशंसा, कवीर की अश्लील नारीनिन्दा और वेदशास्त्रनिन्दा, तुलसी की नारी-शूद्र-निन्दा इत्यादि को देखते कुछ नहीं है। आखिर, प्रत्यक्ष मानव की अपनी सीमाएँ होती हैं! यह मीराँ का तात्कालिक आक्रोश है, जो संयम-नियम पार कर ही जाता है। यों, इसका भावात्मक मूल्य भी आँका जा सकता है।

माणिक-मोती सबही मैं त्यागा, तज दियो कर को चूड़ो ।
मेवा-मिसरी सबही मैं त्यागा, त्यागा छै सक्कर-बूरी ।।
तन की आस कबहुँ नहिं कीनी ज्यूँ रण माहीं सूरों ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो मैं पूरों ।।

3. राणा जी! म्हाने या बदनामी लगे मीठी ।
कोई निन्दो, कोई बिन्दो, मैं चलूँगी चाल अनूठी ।।¹
साँकड़ली सेर्याँ जन मिलिया, क्यों कर फिरूँ अपूठी ।
संतसंगति माँ ग्यान सुणैछी, दुरजन लोगों न दीठी ।।
मीराँ रो प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अँगीठी ।।²

4. राणाजी! थे क्याँने राखो म्हासूँ बैर?
थे तो राणाजी! म्हाने इसड़ा लागो ज्यों ब्रच्छन में कैर ।।³
महल अटारी हम सब त्यागा, त्यागो थारो स्हैर ।।⁴
काजल टीकी हम सब त्यागा, भगवी चादर फ़ैर ।।⁵
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर अमृत कर दियो ज़ैर ।।⁶

5. सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरी काँई कर लेसी?⁷
म्हें तो गुण गोविन्द का गास्याँ हो माई!
राणोजी रूठ्यो बाँरो देस रखासी,
हरि रूठ्यो कुम्हलास्याँ हो माई ।
लोकलाज की काण न मानूँ,
निरभै निसान घुरास्याँ हो भाई!
मीराँ सरण सँवल गिरधर की,
चरण-कमल लपटास्याँ हो माई!

जात-पाँत, ऊँच-नीच, विद्वान्-मूर्ख इत्यादि के सारे द्वैत से मुक्त मीराँ से माता, पिता, राणा, सबके विरोध के बावजूद कृष्ण के प्रति पतिभाव का परित्याग नहीं किया। लगातार तप करके 'वारहवानी'⁸ बन गई। उन्होंने सामान्य वर्जन का तर्कसंगत विरोध किया, दुष्टतापूर्ण वर्जन पर प्रहार किया। उनके त्याग एवं तप ने सबको ग़लत और उन्हें ही ठीक सिद्ध किया। संसार की नारी-प्रतिभाओं में जितना बड़ा संघर्षजयी व्यक्तित्व मीराँ का है उतना झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त किसी का नहीं और यही कारण है कि इन रानियों की तुलना में एलिजाबेथ (प्रथम) और कैथेराइन जैसी महारानियाँ तथा इन्दिरा और थैचर जैसी शासिकाएँ तक बहुत साधारण सिद्ध होती हैं। संघर्ष एवं त्याग सर्वोपरि महत्-तत्त्व हैं। महानता से अनभिज्ञ एवं स्वकीय क्षुद्रता के तुच्छ दर्पण में विराट् को भी देखने के अहं रोग से ग्रस्त नेत्रों ने मीराँ के समय में भी अपना परचिय स्वयं ही आगे बढ़कर दिया था, आज तक दे रहे हैं। सुश्री पद्मावती

1. कोई निन्दा करे, कोई वन्दना करे, किन्तु मैं अपने नवपथ पर ही चलूँगी।
2. दुष्ट अँगीठी कह अरण में जल मँरे!
3. करील, बबूल, कँटीला-वृक्ष। राणा के अत्याचार भक्ति के उद्दीपक बन गए! प्रतीक।
4. शहर, नगर।
5. पहनकर।
6. जहर, विष।
7. सीसोदिया-वंश का राणा रूठ कर मेरा क्या कर लेगा?
8. एकदम खरा सांना (आज की चलती भाषा में '21 कैरट' वाला)।

‘शबनम’ ने ‘मीराँ : एक अध्ययन’ ग्रन्थ में लिखा है, “सम्भव है...प्राप्त सामग्री की मनोवैज्ञानिक विवेचना तथाकथित मीराँ के पदों’ में प्रायः सर्वत्र प्राप्त किसी जोगी विशेष के प्रति गहरे व्यक्तिगत दाम्पत्य-सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले अन्तःस्रोत का स्पष्टीकरण कर सके।” मनमौजी विद्वान् श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने तो चैतन्य महाप्रभु को ही प्रेमालम्बन बना डाला था। मनोविज्ञान का फ्रायड के चश्मे से ही देख सकने वाले भूल जाते हैं कि स्वयं फ्रायड वार्डक्य-ज्ञान-सम्पन्न होने पर अपने ही आलोचक बन गए थे तथा उनके मित्र-शिष्य जुंग (युंग) ने अध्यात्म को मानव की मूल प्रवृत्ति प्रमाणित किया है। नवयौवनकाल में ऐसे विद्वानों से अभिभूत स्वयं में मीराँ के योगी-प्रेमी को नागर जाति को गिरधर नामक व्यक्ति प्रतिपादित करने के लिए बेताब हो उठा था। कालान्तर में जब मैंने कृष्ण, मूसा, बुद्ध, महावीर, ईसा, मोहम्मद का स्फीत मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया, ‘विराट् रूप’, ‘बोध’, ‘महावीरत्व’, ‘ईश्वरपुत्रत्व’, ‘पैगम्बरत्व’ इत्यादि पर मनन किया, तब वह बेताबी की वेवकूपी दूर चली गई। मीराँ ने लोककाव्य-पद्धति पर पदरचना की थी, जिसमें योगी प्रतीक होता है। कवीर ने भी जोगी-सम्बन्धी पद लिखे हैं—‘शबनम’, चन्द्रबली पाण्डेय जी इत्यादि का ध्यान इन पर नहीं गया। जाता तो क्या लिखा जाता? दूसरे, कुछ रैदासपंथियों एवं हठयोगियों ने मीराँ पर अपने प्रभाव-प्रतिपादनार्थ प्रक्षिप्त अंश भी जोड़े हैं जिनके कारण ‘मध्यकालीन हिन्दी-कवयित्रियाँ’ की शोधकर्त्री डॉ. सावित्री सिन्हा को ‘निर्गुण साधना तथा माधुर्यभक्ति’ के ‘समानुपात’ का भ्रम हुआ था। कुड़की से द्वारिका तक प्रसरित मीराँ के ऐतिहासिक स्तर, उनका इतिहासपुष्ट जीवनवृत्त, उनके प्रायः सभी पद, लोकमान्यता, लोकप्रभाव इत्यादि तत्त्व शतशः निर्विवाद रूप से उन्हें कृष्ण की राधाभावमयी प्रेमिका ही प्रमाणित करते हैं। संसार में कृष्ण की दो ‘पत्नियाँ’ या ‘प्रेमिकाएँ’ सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं : एक राधा दूसरी मीराँ!

नाम-विवेचन

मीराँ या मीरा के नाम पर कई मत प्रचलित हैं। ‘मीराँबाई : नाम’ शीर्षक निबन्ध में डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल ने ‘मीर’ अर्थात् स्वामी या ईश्वर की ‘बाई’ अर्थात् पत्नी सिद्ध करना चाहा जो एकदम गलत है, क्योंकि न तो मीर ईश्वरवाचक शब्द है और न बाई पत्नीवाचक। राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र इत्यादि में कन्याओं के बाई-संपृक्त नाम रखे जाते हैं जो पत्नी बाद में बनती हैं या नहीं भी बनतीं। जीजाबाई (शिवाजी-जननी), अहल्याबाई (होल्करवंशीय धर्मात्मा रानी), पुतलीबाई (गांधी-माता), रमाबाई (पंडिता) इत्यादि प्रख्यात अभिधानों में ‘पत्नी’ अर्थ एक में भी नहीं विवृत होता। पुरोहित हरिनारायण ने कल्पना की है कि मीराँ के शाह फ़कीर के आशीर्वाद से जन्म के कारण मीराँ नाम रखा गया, किन्तु एक तो किसी भी अन्तर्साक्ष्य या बहिर्साक्ष्य से इस कल्पना को आधार नहीं प्राप्त होता, दूसरे समकालीन मालदेव-पुत्री का मीराँ नाम स्पष्ट करता है कि यह नाम ‘सामान्यतः’ भी रखा जाता था। संस्कृत में और समुद्र को कहते हैं; मीराँ का अर्थ लक्ष्मी का बनता है। संस्कृत एवं उसकी प्राचीन यूनानी, लैटिन, फ़ारसी प्रभृति पुत्रियों (आधुनिकता के अत्याग्रह पर ‘बहनों’ सही!) में मीर का अर्थ ‘महान्’ होता है, जैसा ग़ालिब की इस शिल्प मीर²-प्रशस्ति से स्पष्ट है :

रेख्ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब,

कहते हैं कि पिछले ज़माने में कोई मीर भी था!

इस अर्थ से मीराँ का अर्थ ‘महादेवी’ बनता है, जो क्लिष्ट-कल्पना ही होगा। भाषिक दृष्टि से मीराँ का मीरा शब्द मिहिरा (सूर्य³) का लघुरूप है। अतः पुरोहित हरिनारायण का यह कथन है कि ‘मीरा’ का प्रयोग अपमानजनक है, उचित नहीं प्रतीत होता। साथ ही जब वे स्वयं मीराँ लिखती या कहती हैं तब डॉ. बड़धवाल का यह कथन भी उचित नहीं कि ‘मीरा’ का प्रयोग अधिक ठीक है। दोनों चल सकते हैं, पर वे थीं मीराँ! श्री लालसिंह शक्तावत (राणा प्रताप के आरम्भतः द्विधाग्रस्त किन्तु अन्ततः वीर अनुज शक्तिसिंह के वंशज) का विस्तार समीचीन प्रतीत होता है, “मीराँ शब्द संस्कृत के मिहिर से बना जिसका अर्थ सूर्य है। मिहिर स्त्रीलिंग में मिहिरा हो गया और राजस्थानी भाषा के तरीके पर ‘ह’ का लोप होकर पहले का स्वर दीर्घ हो गया, जिससे मिहिर के वजाय मीरा हो गया और आदर के लिए बहुवचन तथा बोलने की सुविधा को लेकर मीराँ बन गया जैसे साध का साधों, सन्त का सन्तों, तुलसीबाई का

1. ‘मीराँ के तथाकथित पदों’ में लिखती तो हिन्दी पर विशेष कृपा होती! यह प्रयोग तो ‘दुर्दर्शन’ एवं ‘आभसवानी’ (आकाशवाणी) के प्रसारण में ही फ़व्व सकता है।
2. मीर तत्की ‘मीर’। एक मीर ‘दरद’ भी हुए हैं। पहले बड़े (निस्सन्देह ग़ालिब-स्तरीय) शायर थे, दूसरे ठीक-ठाक (जिन्हें बड़े मीर ने ‘आधा शायर’ माना था)।
3. ऋग्वेद की एक ऋषिका भी।

तुलसाबाई, गैदाबाई का गैदीबाई, फुलीबाई का फुलौबाई, लालबाई का लालौबाई, लूंगबाई का लूंगाबाई आदि। 'ह' के लोप के उदाहरण जैसे सोलह का सोला, पहला का पेला, महल का मेल (या) मेलों, दुहनि का दूणी, नरसिंह मेहता का नरसी मेता, पीहर का पीर, अरिसिंह का अरसी आदि। बाई शब्द स्त्रीवाचक है जैसे राधाबाई, गंगाबाई। राजपूत स्त्रियों को ससुराल में नाम न लेकर 'खाँप', 'गोत' के नाम पर जी लगाकर पुकारने का रिवाज है। इसीलिए मीराबाई को मेड़तणीजी¹ भी कहते थे। परन्तु साधु-सन्तों में तथा देश में बहुत प्रसिद्ध होने के खाँप के बजाय नाम का ही प्रचार हो गया।² वस्तुतः मीराँ ने स्वयं पद-पद पर मीराँ लिखा है, अतः इस नाम के प्रचार की चर्चा निराधार है; यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि चित्तौड़ के राजवंशीय लोग उन्हें मेड़तणी ही कहते थे, जैसा कि रिवाज था।

भाषा

मीराँ की भाषा न कोरी राजधानी है, न कोरी ब्रज; वस्तुतः वह राजधानी-मिश्रित ब्रजभाषा है, जो उनके समय की डिंगल का व्यापक रूप थी। शताब्दियों तक ब्रजभाषा राष्ट्रीय कविता की रानी रही है, जिसका सम्मान खुसरो से वली तक दृग्गत होता है, शंकरदेव से कुतुबशाह तक दृग्गत होता है। राजस्थान में पिंगल के रूप में ब्रज का सम्मान मीराँ से शताब्दियों पूर्व भी विद्यमान था। पिंगल भाषा वस्तुतः राजस्थानी-मिश्रित ब्रजभाषा ही है, जिसके दर्शन पृथ्वीराजरासो, वीसलदेवरासो इत्यादि में होते हैं। बहुत बाद में रचा गया खुमानरासो तो ब्रजभाषा-काव्य है ही। मीराँ के ब्रज एवं द्वारिका में रचे गए पद ब्रजभाषा में ही हैं। मीराँ का समय टुच्चे राजनीतिज्ञों एवं टकाक्लास साहित्यकारों के भाषाभेदवाद से मुक्त था अन्यथा वे सारे भारत की कवयित्री न बन पातीं, गुजराती की 'अपनी' निधि न मानी जातीं। उनकी भाषा की मिठास अद्भुत है तथा प्रवाह अप्रतिम।

शैली की दृष्टि से, उन्होंने गेय पदरचना की है जिसमें झिंझोरी, रामकली, कान्हारा, सारंग, कामोद, टोड़ी, हमीर, विहाग, जैजैवन्ती, भैरवी, पहाड़ी, सूहा, काफी, तिलक, प्रभाती, सोरठ, सोहनी, देस, मांड, त्रिवेनी, कल्याण, नीलाम्वरी, पीलू, आनन्द-भैरो, विलावल, आसावरी, दरवारी, मल्हार, मारू, कालिंगड़ा, छायानट, तिलक, पूरबी, जौनपुरी, मालकोस, धानी, गूजरी, कजरी, प्रभावती, खम्माच, ललित, सिन्ध भैरवी, धनाश्री, होली इत्यादि रागों का महान् वैभव दृग्गत होता है। निस्सन्देह, मीराँ संगीत की मर्मज्ञ थीं। वे एक सम्पूर्ण गीत-देवी हैं।

प्रेम की पीर

मीराँ की कविता की सर्वोपरि विशेषता उनकी प्रेम की पीर है जो संसार-साहित्य की एक अप्रतिम निधि है, क्योंकि सैफो² की उपलब्ध अल्प पदावली में अफ्रोडाइटी के प्रति तथा अपनी बिछुड़ी सखियों के प्रति तीव्रानुराग में सहजस्वस्थ प्रवृत्ति नहीं विवृत हुई, राबिया एवं टेरेसा के "रूप-रेख-गुन-जाति"—हीन प्रिय में नटवर-नागर की प्रकट शोभा से उद्दीप्त प्रात्ययिकता सम्भव नहीं, लल्लेश्वरी के निर्गुण-योग में सगुण-भोग का लालित्य नहीं (निवृत्ति को प्रवृत्ति बना सकन सरल नहीं)—केवल आँडाल या गोदा (गो = स्वर्ग या मोक्ष + दा = दात्री या देनेवाली : गोदावरी में 'वरी' या श्रेष्ठ से संपृक्त) में मीराँ के उदात्त-प्रवृत्तिनिष्पन्न प्रेम के दर्शन होते हैं किन्तु उनमें भी मीराँ के जीवन की ज्वाला का संघर्ष-प्रकाश कहाँ! मीराँ का 'दरदे दीवाणी' होना कभी और कहीं विवादास्पद या अप्रात्ययिक या सैद्धान्तिक नहीं लगता : उनकी सहज प्रात्ययिकता³ ही उसका धन है जो जीवन की ज्वाला से ज्योतिर्मय होने के कारण उन्हें संसार की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री का गौरव प्रदान कर सकता है :

1. हेरी! म्हाँ दरदे दीवाणीं, म्हाँ दरद न जाण्यौ कोय।
घाइल री गति घाइल जाण्यौ हिवड़ो अगण सँजोय।
जौहर⁴ की गति जौहरी जाणै, क्या जाण्यौ जिण खोय।।
दरद की मार्या दर-दर डोल्याँ, वैद मिला नहिँ कोय।
मीराँ री प्रभु पीर मिटाँगौ जद बैद सँवरिया होय।।

1. मेड़ता से सम्बद्ध होने के कारण।

2. सैफो लिज्वेन के अफ्रोडाइटी (देवी) के मन्दिर में देवदासी थी जिसका समलिंगी-तीव्रानुराग 'लिज्वेनिज़म' (नारी-नारी-सम्भोग) शब्द का मूल है।

3. मूसा का 'जहोवा' से साक्षात्कार, ईसा का 'पिता' से लगाव, मोहम्मद का 'अल्लाह' से सम्बन्ध-विश्वास तक 'कथा' लगने लगता है, किन्तु मीराँ का 'दरद' एकदम 'सच्चा' ही लगता है। अपने व्यक्तित्व-गौरव में मीराँ ईसा या मोहम्मद, सूर या तुलसी इत्यादि के स्तर का स्पर्श करती हैं।

4. जौहर = रत्न की परख। जौहरी = रत्न का पारखी। राजस्थान की वीरगानाएँ नारीत्व-रत्न की परख (जौहर) करना खूब जानती थीं।

2. आली री! म्हारे गेणों बाण¹ पड़ी।
चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, हिवड़ा अणी गड़ी।²
कब री³ ठाढ़ी पंथ निहारों अपने भवण खड़ी।।
अटक्यो प्राण साँवरो प्यारो जीवन मूर जड़ी।
मीरों गिरधर हाथ विकारों, लोग कहे विगड़ी।।
3. म्हों गिरधर आगे नाचों री!
नाच-नाच म्हों रसिक रिझावों, प्रीत पुरातन⁴ जाँचा री।
स्याम प्रीत री बाँध धूँधर्यो, मोहन म्हारा साँचा री।।
लोकलाज, कुल री मरजादा जग माँ नेक न राखों री।
प्रीतम पल-छिन ना बिसरावों, मीरों हरि रँग राचों री।।
4. म्हारा री! गिरधर गोपाल दूसरा दूसरा ना कोई।
दूसरा ना कोई साधों! सकल लोक जोई।।
भाई छाँड़्या, बंधु छाँड़्या, छाँड़्या सखा सोई।
साधों सँग बैठ-वैठ लोकलाज खोई।।
भगत देख्यो राजी⁵ हुई, जगत देख्यो रोई।
अँसुवा जल सींच-सींच प्रेम-वेल बोई।⁶
दधि मधि धृत काढ़ लियो, डार दई छोई।
राणा विष रो प्यारो भेज्यो, पीय मगन होई।।
अव तो बात फैल पड़ी, जाण्या सब कोई।
मीरों री लगन लागी, होणा हो जो होई।।

प्रिय-शोभा

मीरों की प्रेम की पीर सकारण है, सैद्धान्तिक मात्र नहीं। उनके उद्गार राविया एवं लल्लेश्वरी के उद्गारों के सदृश 'शून्य' के प्रति नहीं हैं, 'शोभाशाली प्रियतम' के प्रति हैं। सौन्दर्य स्वर्ग एवं पृथ्वी का सेतु है। सौन्दर्य स्वर्ग का परिचायक है। मीरों की प्रेम की पीर साधार है :

1. निपट वंकट⁷ छबि अटके, म्हारे गेणों निपट बंकट छबि अटके।
देख्यो रूप मदनमोहन रो पियत पियूत न मटके।
बारिज मुख अलकों मतवारी, गेण रूप-रस-अटके।।
टेढ़ी कटि, टेढ़े कर मुरली, टेढ़ी पागपर लटके।
मीरों प्रभु रे रूप लुभाणीं गिरिधर नागर नट के।।

1. वान = आदत, स्वभाव।

2. "उर में माखन-चोर गड़े।" (सूर)

3. री = की। रे = के। रा = का।

4. रहस्यवाद। "प्रीति पुरातन लखइ न कोई"। (तुलसी)

5. प्रसन्न।

6. "गाढ़ प्रीति नैनन्ह जल भेई।" (जायसी?)

7. चंकिम, बाँकी, अनूठी।

2.

बस्या म्हारे णेणन में नँदलाल ।
 मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, अरुण तिलक सोहे भाल ।
 मोहन सूरत, साँवरी सूरत, णेणों बण्या विसाल ।।
 अधर सुधारस मुरली राजे, उर बैजन्ती-माल ।
 मीराँ प्रभु संताँ सुखदाई, भगत-बछल गोपाल ।।

विरह-व्यथा

मीराँ हिन्दी-विरहकाव्य की एक अजर-अमर विभूति हैं। यद्यपि उनके विरह काव्य में सूर, जायसी, घनानन्द प्रभृति के विरहकाव्य की स्फीति नहीं है, तथापि अपनी मार्मिकता में वह अमूल्य है। पारम्परिक षड्भुज-वर्णन अथवा वारहमासा, चातक, होली इत्यादि तत्त्वों से युक्त किन्तु विशृंखल प्रयोग ने मीराँ के विरह-वर्णन को कलात्मक रूप भी प्रदान कर दिया है। उनका विरह कोरा रहस्यवादी विरह नहीं है, उनका विरह कोरा पार्थिव विरह नहीं है : उसमें कृष्ण की अलौकिकता¹ एवं कृष्ण की लौकिकता² का संगम दृग्गत होता है:

1.

घड़ी चेन ना आवड़े थाँ दरसन विन मोय ।
 धान³ न भावे, नींद न आवे, विरह सतावे मोय ।
 घायल ज्यूँ घुमाँ फिराँ, म्हारो दरद ण जाणे कोय ।
 प्राण गुमाया झूरताँ रे, नेण गुमायाँ रोय ।
 पंथ निहारों, डगर बुहारों, ऊभी मारग जोय ।
 मीराँ रे प्रभु! कबरे मिलोगे? थाँ मिलिया सुख होय ।।

2.

पपीहा! म्हारो कवरो बैर चिंतार्याँ?
 मे सोऊँरी अपने भवन में पियु-पियु करत पुकार्याँ ।
 दाध्याँ ऊपर लूण लगावे, हिवड़े करवत⁴ सार्याँ ।।
 उड़ बैठ्या बिरछा री डाली, बोलों कंठ निसार्याँ ।
 मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर हरि-चरणों चित धार्याँ ।।
 बरसी री बदरियाँ सावण री, सावण री मनभावण री ।
 सावण में उमग्यो म्हारो मन भनक सुणी हरि आवण री ।
 उमड़-घुमड़ घण मेघों आया दामण घन झर लावण री ।
 बीजाँ वूँदा मेहा वरशे, शीतल पवण सुहायण री ।।
 मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, वेला मंगल गावण री ।।

4.

होली पिया बिन म्हाणे ना भावे, घर-आँगण ना सुहावे ।
 दीपाँ जोवाँ, चोक पुरावाँ, होली पिया परदेस सजावे ।
 सूनी सेजाँ ब्याज बुझावाँ⁵, जागाँ रेणाँ बितावाँ, नींद णेणाँ न आवे ।।
 कबरी ठाढ़ी म्हाँ मग जोवाँ निश-दिन विरह जगावाँ ।
 क्या शूँ मन री विधा बतावाँ, हिवड़े म्हाँ अकुलावाँ, पिया कव दरस दिखावे ।
 दीख्याँ ना कोई परम सनेही म्हारो सनेशो लावे ।
 वो विरयाँ कब होसी म्हारो हँस पिय कंठ लगावे, मीराँ होली गावे ।।

1. (क) कृष्णस्तु भगवान् स्वयं ।

(ख) कृष्णात् परम् किमपि तत्त्वमहं न जाने ।

2. साकार पति-रूप ।

3. धान्य, अन्न, भोजन ।

4. (आरे से) चीरना । काशी में 'करवत' क्रिया भी होती थी । जायसी, सूर, मीराँ इत्यादि ने उल्लेख किए हैं । काशी-करवट माहल्ला अब तक कथा कहता है ।

5. "सेज-नागिनी फिरि-फिरि डसा ।" (जायसी)

5.

होली पिया विन लागे री खारी।
 शूनो गाँव, देश सब शूनो, शूनी सेज अटारी।
 शूनी बिरहन पिव विन डोले तज गया पीव पियारी, बिरहा दुख भारी।
 देश-विदेशों ना जावों री म्हारे अणेशो भारी।
 गणतों-गणतों घिस गई रेखाँ आँगिरियाँ री शारी, आया ना री मुरारी।।
 बाजै झाँझ, मिरदिंग, मुरलियाँ, बाजै कर इकतारी।
 आया बसंत पिया घर ना री, म्हारी पीड़ा भारी, श्याम मने क्यों री बिसारी।।
 ठाढ़ी अरज कराँ गिरधारी, राखो लाज हमारी।
 मीराँ रे प्रभु मिलश्यो माधो जनम-जनम री क्वारी, मन लागी दरसण तारी।।

उमंग

मीराँ के प्रेम निराशावाद को स्थान नहीं। उनका विरह मिलन-दरिद्र नहीं। जब कवीर जैसे ढूँठ-सन्त का विरह मिलन-विपन्न नहीं है, तब मीराँ जैसी तरल प्रेमिका का कैसे हो सकता है? विश्व की रहस्यवादी कविता के जनक ऋग्वेद के ऋषि-कवि शुनःशेफ (शुनःशेफ) ने उषा से प्रश्न किया था कि कौन-सा पुरुष है, जो उसका अलिंगन करेगा? कवीर, नानक इत्यादि 'प्रियाओं' को 'प्रियतम' का संयोग प्राप्त हुआ था। मीराँ ने भी संयोग के मधुर रसामृत का पान किया था :

1.

आज सुणी हरि आवा री, आवा री मन भावा री।
 हरि ना आवे, गैल लखावे, बाण परी ललचावा री।
 नेणाँ म्हारो कछौ न माने, नीर झर्याँ निशि जावा री।।
 कोई करूँ कछु ना बस म्हारो, ना म्हारे पंख उड़ावा री।
 मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जावों री।।

2.

णेणाँ वणज बसावों री, म्हारा साँवरो आवो।
 णेणाँ म्हारे साँवरो राजै, डरतों पलक ना लावों री।
 म्हारे हिरदे वश्या मुरारी, पल-पल दरसण पावों री।।
 श्याम मिलन सिंगार सजावों, सुख री सेज विछावों री।
 मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जावों री।।

3.

रंगभरी, रागभरी, राग सँ भरी री।
 होली खेल्या श्याम संग रंग सँ भरी थी।।
 उड़त गुलाल लाल, बदरा रो रंग लाल री।
 पिंचका उड़ावों रंग, रंग री झरी री।
 चोवा, चंदन अरगजा माँ केसर नी गागर भरी री।
 मीराँ दासी गिरधर नागर चेरी चरण धरी री।।

भक्ति-प्रतिपादन

मीराँ एक महान् भक्त थीं। उनका भक्ति-प्रतिपादन भक्ति-सीमान्त तुलसी, भक्ति-रसराज सूर एवं भक्ति-करील कवीर का स्मरण कराता चलता है जो स्वाभाविक भी है, क्योंकि व्यक्तित्व-गरिमा में वे इनके साथ-साथ चलती ही हैं। मीराँ की भक्ति में मनुष्य-जीवन-गौरव, भक्ति-गौरव, सत्संग, तप, त्याग, प्रपत्ति इत्यादि के प्रभावी तत्त्व विद्यमान हैं :

1. ताड़ी = लगन। "राम राम सँ ताड़ी लागी।" (नरसी)

1. नौई ऐसी जनम बारंबार ।
 पुरवलाँ काँई पुन्न प्रगट्याँ माणशा अवतार ।।
 वट्या छिन-छिन, घट्या पल-पल, जात ना कछु बार ।
 बिरछ रा जो पात टूट्याँ लग्याँ ना फिर डार ।।
 भौ-समुंद अपार देखाँ अगम ओखी धार ।
 लाल गिरधर तरण-तारण वेग करश्यो पार ।।
2. मैने राम-रतन-धन पायौ ।
 वसतु अमोलक दी मेरे सतगुरु, कर किरपा अपनायौ ।।
 जनम-जनम की पूँजी पाई, जग में सबै खोवायौ ।
 खरचै नहिं, कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बधत सवायौ ।।
 सत की नाव, खेवटिया सतगुरु, भव-सागर तरि आयौ ।
 मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायौ ।।

महान् गीतिकाव्य

मीराँ गीतिकाव्य की एक सम्पूर्ण देवी हैं। गेयता, भावप्रवणता, एकरसता, संक्षिप्तता एवं सरलता गीतिकाव्य के पंचतत्व हैं। मीराँ की पदावली में इनका जैसा वैभव दृग्गत होता है वैसा विद्यापति के अतिरिक्त किसी कवि में नहीं। सूर-जैसे महतोमहीयान् गीतकार तक में वर्णनात्मकता एवं तार्किकता विद्यमान है। तुलसी एक महान् गीतकार 'भी' हैं—'ही' नहीं—किन्तु उनके गीतों में कहीं वर्णनात्मकता दृष्टिगोचर होती है, कहीं प्रतिपादन। यह सत्य है कि मीराँ का सृजन अल्प है। उनके प्रात्ययिक पद प्रायः 200 हैं। विद्यापति के लगभग तिगुने होंगे। तुलसी के इससे भी अधिक। सूर तो विराट् गीतकार हैं ही। किन्तु गीत की आत्मा के जैसे दर्शन मीराँ में होते हैं, वैसे अन्यत्र नहीं। यदि विद्यापति में माधुर्य अधिक हैं, तो मीराँ में प्रवाह अधिक हैं। मीराँ की तुलना में शेली (शेले) और रवीन्द्र जैसे महान् गीतकार तक गद्यकार लगने लगते हैं। मीराँ के गीत सहजगीत हैं, महादेवी के गीत कलागीत हैं। मीराँ संसार के सर्वश्रेष्ठ गीतकारों की पंक्ति में प्रतिष्ठित होने का अधिकार रखती हैं, भले ही अपनी समग्रता में सूर और तुलसी, शेली (शेले) और रवीन्द्र, जयदेव और विद्यापति श्रेष्ठतर कवि सिद्ध होते हों।

आकलन

मीराँ संसार की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री हैं, क्योंकि सैफो का अत्यल्प सृजन भी उपलब्ध है (शेष सब ईसाई मज़हब की विनाशलीला का आखेट हो गया) तथा जो वह काव्यगौरव एवं प्रेरणा में मीराँ के सृजन की समता नहीं कर पाता तथा राविया, लल्लेश्वरी एवं टेंरसा¹ के अशरीरी प्रियतम में मीराँ के प्रियतम कलासागर कृष्ण का आत्मसंस्फूर्तकारी सौन्दर्य एवं प्रभाव नहीं दृग्गत हो पाता। आंडाल (गोदा) के सृजन में मीराँ के सृजन की संघर्ष की जीवन्त ज्वाला की ऊष्मा नहीं है। एलिज़ावेथ बैरेट ब्रॉउनिंग में मीराँ की प्रेरणा नहीं प्राप्त हो पाती, महादेवी की कविता में मीराँ की अकृत्रिमता एवं बलवत्ता नहीं है। मीराँ की तुलना में अमृता प्रीतम (31 अगस्त 1919-1931 अक्टूबर 2005, जन्म गुजरानवाला, निधन दिल्ली) का सूफियाना अन्दाज़ ऊपर से ओढ़ा लगता है। आशापूणदेवी और महाश्वेता देवी (बांग्ला) एवं डॉ. इन्दिरा गोस्वामी (असमिया) शुद्ध निस्संग साहित्यिक प्रश्रय में समाजशास्त्रीय प्रतिभाएँ लगने लगती हैं। शाश्वत गरिमा में मीराँ की समता नहीं। जहाँ तक व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, संसार की कोई कवयित्री मीराँ के निकट नहीं आती दीखती। किन्तु कृतित्व में भी वे सर्वश्रेष्ठ हैं।

1. मध्यकालीन स्पेनिश कवयित्री; मदर टेंरसा से भिन्न।

हिन्दी के ही नहीं प्रत्युत भारतीय एवं वैश्विक गीतिकाव्य में मीराँ को एक उच्च स्थान प्राप्त है, क्योंकि उनके गीत अनुभूति की तीव्रता एवं अभिव्यक्ति की सफलता में एकदम अनूठे हैं। मानव-जाति मीराँ पर गर्व कर सकती है, क्योंकि उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व उसे चिरकाल तक प्रेरणा देता रहेगा।

अन्ततः कविवर शिशुपाल सिंह 'शिशु' की प्रौढ़तम कविता देखिए; शिशु की मातृ-वन्दना:

तन्मय हो काली पुतली की भी तली में बैठ अखिलेश अलख ललाम देख लेती थी
द्वितीया के चन्द्र से अमा का आवरण चीर अद्वितीयता का द्युति धाम देख लेती थी।
राई में सुमेरु का विराम जानकर 'शिशु' रोम-रोम में रमा राम देख लेती थी
जाने कौन-सा ममीरा मीरा थी लगाए हुए नैन मूँद के भी घनश्याम देख लेती थी।
मैंने कहा, मीरे! जब व्योम विश्व-नयनों में श्याम-रंग की निखिल निधि भरता ही है
फिर क्यों तू एक उसी साँवले की गोपी बनी सीमाबद्ध रूप कभी कष्ट करता ही है।
बोली, निराकार में निरा सर न मारो 'शिशु' अगुन सगुन वन देह धरता ही है
खाँड़ और खाँड़ के खिलौने में न भेद कुछ किन्तु फिर भी खिलौना मन हरता ही है।
जिसके कारण थे रसातल की सीमा तक व्योम तक अलक-समूह लहराया था
जिसके असंख्य श्वास वायु के विधायक थे उदधि उदर में असीम घहराया था।
जिसकी शिराएँ सरिताओं में बही थीं 'शिशु' अस्थियों ने शैल-श्रेणियों का रूप पाया था
वही लीलाधाम श्याम मीरा की पुतलियों के तिल भर ठौर में सदैव को समाया था।

राजस्थान में ही दूसरी मीराँ गवरीबाई (बड़नगरा, डूंगरपुर, देहान्त 1956 ई.—वाराणसी) भी हुई, जो नागर (नाग-जातिमूलक ब्राह्मण) थीं। उनके पदों की संख्या 650 बताई जाती है। गवरीबाई ने निर्गुण-सगुण का भव्य समन्वय किया है (शून्य शिखर पर शोभे सामलियो)। उनकी कविता में सैद्धान्तिकता अधिक है, विचारपक्ष प्रधान है; फलतः मीराँ की मार्मिकता के दर्शन नहीं हो पाते। किन्तु वे एक स्मरणीय एवं सम्माननीय सन्त-कवयित्री थीं, इसमें सन्देह नहीं। वे एक छोटी-सी मीराँ मानी जा सकती हैं।

लालचदास¹

'भागवत दशम-स्कन्ध भाषा' एवं 'हरि-चरित' के कवि लालचदास (रचनाकाल 1530 के आसपास) की कविता साधारण-वर्णनात्मक है किन्तु तुलसी-पूर्व अवधी-कवि के रूप में उनका उल्लेख किया जा सकता है। निस्सन्देह, वे विष्णुदास से तुलनीय हैं। आ. शुक्ल के अनुसार, "दशम स्कन्ध भाषा का उल्लेख हिन्दुस्तानी के फरासीसी विद्वान् गार्सा द तासी ने किया है और लिखा है कि इसका अनुवाद फरासीसी भाषा में हुआ है।" स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण माना जाता है। लालचदास रायबरेली के हलवाई थे। महाकवि प्रसाद एवं कवि-चित्रकार जगदीश गुप्त भी हलवाई जाति के ही रत्न हैं। हिन्दी-साहित्येतिहास में अवधी-कृष्णकाव्यकार के रूप में लालचदास को विशिष्ट स्थान प्राप्त करने का अधिकार है, क्योंकि हिन्दी-कृष्णकाव्य अधिकतर ब्रजभाषा में ही प्राप्त होता है। उनके परवर्तियों में 'कृष्णायन' के कवि स्वर्गीय द्वारकाप्रसाद² मिश्र उल्लेखनीय हैं। उद्धरण प्रस्तुत है :

पंद्रह सौ सत्तासी जहिया। समय बिलंबित बरनौ तहिया।।
मास असाढ़ कथा अनुसारी। हरिबासर रजनी उजियारी।।
सकल संत कहँ नावौ माथा। बलि-बलि जैहाँ जादवनाथा।।
रायबरेली बरनि अवासा। लालच नाम राम कै आसा।।

(भागवत दशम-स्कन्ध भाषा)

निस्सन्देह, लालचदास का सबलसिंह चौहान, ललकदास इत्यादि पर भावगत न सही तो शैलीगत प्रभाव पड़ा है। रायबरेली जनपद ने हिन्दी को दारुद एवं जायसी जैसे सूफ़ी ही नहीं प्रदान किए, लालचदास, हरीदास एवं धीरदास (बौद्धिककालीन कवि) जैसे सन्त

1. मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में लालदास गलत लिखा है जैसाकि उन्हीं द्वारा प्रस्तुत उद्धरण से ही स्पष्ट है। आ. शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में नाम भी ठीक लिखा है तथा विवरण भी कुछ बढ़ा दिया है, यद्यपि उद्धरण 'विनोद' वाला ही दिया है।
2. वे 'द्वारका' ही पसन्द करते थे (सम्भवतः श्रीनारायण चतुर्वेदी के पिता कोंशकार चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा से प्रभावित थे)।

भी प्रदान किए हैं, और सुखदेव जैसे कवि एवं महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे आचार्य भी (जो उसके एक ही गाँव—दौलतपुर—से जुड़े हैं)! मुल्ला दाऊद के अनन्तर तथा जायसी से यत्किंचित् पूर्व होने के कारण भी लालचदास को रायबरेली के कवियों में एक विशेष महत्व प्राप्त है। रायबरेली का पुराना नगर-भाग अब ऊबड़-खाबड़ हो चला है। लालचदास के घर-द्वार का अता-पता नहीं! किन्तु जो परिचय वे स्वयं लिख गए हैं, वह तो 'अमर' है ही। तुलसी-पूर्व रामकाव्यकारों में पुरुषोत्तम एवं विष्णुदास के साथ लालचदास को स्मरणीय एवं सम्मानीय ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है, यद्यपि उनका तुलसी पर प्रभाव विष्णुदास के तुलसी पर प्रभाव के सदृश शोध का विषय है—पुरुषोत्तम के तुलसी पर प्रभाव को प्रायः निर्विवाद माना जा सकता है।

नरोत्तमदास¹

हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय खंडकाव्य 'सुदामा-चरित' (1525 ई. ?) के रचयिता कविवर नरोत्तमदास (1545 ई. में विद्यमान²) का जीवनवृत्त उपलब्ध नहीं है, यद्यपि यह निर्विवाद है कि वे सीतापुर (उत्तरप्रदेश) जिले के बाड़ी नामक कस्बे के निवासी थे। उनका ब्राह्मण-चित्रण देखकर लगता है कि वे स्वयं ब्राह्मण ही थे। सीतापुर और बाड़ी के लोग उन पर गर्व करते हैं। 'सुदामा-चरित' के कई संस्करण उपलब्ध हैं। किसी में 139 छन्द (दोहे, सवैये, कवित्त या घनाक्षरी) हैं, किसी में 120, तो किसी में न्यूनाधिक। लाला भगवानदीन 'दीन', पं. हरिशंकर शर्मा, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र जैसे विद्वानों ने इस मनोहारी खंडकाव्य के प्रशस्त्य सम्पादन किए हैं। इनके अतिरिक्त, पुरानी शैली की सटकी जनोपयोगी प्रस्तुति पं. कुंजविहारीलाल शुक्ल ने की है, नई शैली की सर्वांगपूर्ण छात्रोपयोगी प्रस्तुति डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, श्री धर्मेन्द्र शर्मा, डॉ. तिलक वडेहरा की त्रयी ने की है। किन्तु दोनों प्रतियाँ अशुद्धियों से आच्छन्न हैं। इस सरल-सुगम किन्तु सरस-मार्मिक खंडकाव्य को आचार्यों एवं विद्वानों ने अच्छा आदर प्रदान किया है। इनमें मिश्रवन्धु, आचार्य शुक्ल, महाकवि हरिऔध, डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इसकी कविता को 'विनोद' में मिश्रवन्धु ने 'परम मनोहर', 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "बहुत सरस और हृदयग्राहिणी" माना है। 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' में महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने नरोत्तमदास को "एक सहृदय कवि" घोषित किया है।

सुदामा-चरित³

सुदामा-चरित का हिन्दी-साहित्य के खंडकाव्यों में सर्वाधिक लोकप्रिय होने के कारण तो एक विशिष्ट स्थान है ही, अपने अद्वितीय सुदामा-सुबुद्धि⁴-संवाद, अपने मार्मिक निर्धनता-चित्रण, प्रभावी निर्धन-तेजस्विता-रक्षण एवं महान् मैत्री-वर्णन के कारणों से साहित्यिक दृष्टि से भी इसकी समता कम खंडकाव्य ही कर सकते हैं। कलात्मक दृष्टि से अप्रतिम राठौड़राज प्रिथ्वीराज कृत 'बेलि क्रिसन रुक्मणी री' एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अप्रतिम निराला कृत 'तुलसीदास' ही इसकी समता कर सकते हैं, क्योंकि तुलसीदास कृत वृत्तप्रधान जानकी-मंगल एवं पार्वती-मंगल से लेकर मैथिलीशरण गुप्त कृत वृत्तप्रधान 'जयद्रथवध' एवं 'पंचवटी', रामनरेश त्रिपाठी कृत आदर्शप्रधान 'पथिक' एवं 'स्वप्न' इत्यादि तक इसकी समता नहीं कर पाते—भवानीप्रसाद मिश्र कृत कल्पित 'कालजयी' (अशोक) इसकी तुलना में भाषण लगता है, नरेश मेहता कृत 'संशय की एक रात' (राम-सम्बद्ध) इसकी तुलना में आधुनिकता का आयास लगता है। सुदामा-चरित अपनी सांस्कृतिक गरिमा एवं मार्मिक सरसता में साहित्य की एक निधि है। यह एक सफल जनकाव्य भी है। नरोत्तमदास एक सफल जनकवि हैं। उनकी सफल ब्रजभाषा सफल जनभाषा भी है। दारिद्र्यगत वैवश्य, दारिद्र्यगत द्विधा (हीनभावना कहने का मन नहीं होता क्योंकि सुदामा एक तेजस्वी धीरशान्त नायक हैं), दारिद्र्यगत संकोच, दारिद्र्यगत स्मृति इत्यादि का जैसा मार्मिक चित्रण सुदामा-चरित में प्राप्त होता है वैसा अन्यत्र नहीं। और, कृष्ण की सहृदयता एवं मैत्री का चित्रण तो विलक्षण है ही! आधारग्रन्थ

1. 'नामसंकीर्तन' (चैतन्य-संकीर्तन) के प्रणेता नरोत्तम से भिन्न। राजस्थान के विद्वान् नरोत्तमदास स्वामी समनामी थे।

2. ठाकुर शिवसिंह सेंगर के अमर ग्रन्थ 'सरोज' के अनुसार सं. 1602 वि.।

3. मीरजापुर-जनपदवासी, स्फोट 'रामाश्वमेध' काव्यप्रणेता ब्रह्मदेव त्रिपाठी 'ब्रह्मा' ने सुदामाकथा 'रामानुराग' शीर्षक सप्तवर्गीय खंडकाव्य में गाई है, जिसमें सुदामा रामभक्त भी हैं, कृष्णभक्त भी।

4. भागवत में सुदामा-पत्नी का नाम सुशीला है। दोनों सुदामापुरी (जैसा कि समस्थानजन्मा गांधी ने 'आत्मकथा' या 'सत्य के प्रयोग' या 'माइ एक्स्पेरिमेंट्स विद ट्रूथ' में लिखा है) के निवासी थे। आजकल पोरबन्दर।

श्रीमद्भागवत में भी सुदामा का वृत्त इतना सरस और मार्मिक नहीं है जितना नरोत्तमदास की अपनी प्रतिभा से स्पर्शित 'सुदामा-चरित' में। कुछ उदाहरण उक्त बिन्दुओं के प्रमाण-रूप में प्रस्तुत हैं :

1. कोदो-सवाँ जुरतो भरि पेट, तो चाहति ना दधि-दूध-मिठौती।
सीत वितीत गई सिसियातहि, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि-से तो मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर तें कवहुँ न गयो पिया! टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥
2. चक्कवै चौंकि रहे जक से जहाँ, भूले-से भूप कहाँ लौं गनाऊँ।
देव-गँधर्व औ किन्नर-यच्छ से साँझ लौं देखे खरे जेहि ठाऊँ।
वै दरबार! बिलौक्यौ नहीं, अव तोहि कहा कहिकै समुझाऊँ।
रोकिए लोकन के मुखिया तहँ हौं दुखिया किमि पैठन पाऊँ॥
3. सीस पगा न झगा² तन में, प्रभु! जाने को आहि? वसै केहि ग्रामा?
धोती फटी औ लटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल, देखि रह्यौ चकि सो वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल कौ धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा॥
4. ऐसे वेहाल वेवाइन सों पद, कंटक-जाल लगे पुनि जोए।
हाय, महादुख पायौ सखा! तुम आए इतै न, कितै दिन खोए॥
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानी परात कौ हाथ छुयौ नहिं, नैनन के जल सों पग धोए॥

ध्रुवचरित

नरोत्तमदास ने 'ध्रुवचरित' शीर्षक एक अन्य खंडकाव्य भी रचा था, ऐसा प्रसिद्ध है। पहले यह रचना समग्रतः अप्राप्त थी, किन्तु अब इसके 28 छन्द प्राप्त हैं। छन्द दोहा-सवैया-कवित्त (घनाक्षरी) ही हैं, भाषा ब्रज ही। संवाद-कुशल नरोत्तमदास के इस अपूर्ण लघुतर काव्य में भी नारद-ध्रुव-संवाद अच्छा बन पड़ा है। 'सुदामा-चरित' के सदृश 'ध्रुवचरित' में भी नरोत्तमदास को सवैया छन्द में ही सफलता प्राप्त हुई है, क्योंकि उनके दोहे मामूली हैं तथा कवित्त ठीक-ठाक। अपूर्ण 'ध्रुवचरित' साधारण कृति है। एक अपेक्षाकृत अच्छा छन्द प्रस्तुत है :

दीनन की सुधि लेत सदा, मिलिहैं हरि वै मोहिं बानन³ मैं।
बालक हौं, न सधै तप-जोग, रिझाय सकौं नहि गानन मैं॥
हरि कौ बिनु पाए नहीं टरिहौं, छनिहौं बन-धूरि पयानन मैं।
नहिं खैहौं कछु, न कहूँ रुकिहौं जब लौं न मिलैं प्रभु कानन मैं॥

नरोत्तमदास कृत 'विचारमाला'⁴ ग्रन्थ का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो पाया।

'सन्त कवि रज्जव', 'महात्मा ज्योतिराव फुले', 'राजर्षि छत्रपति शाहू'⁵, 'डॉ. भीमराव अम्बेडकर' जैसे प्रखर ग्रन्थों के प्रचंड प्रणेता डॉ. ब्रजलाल वर्मा (24 जून, 1924, जन्म प्रेमपुर जनपद, कानपुर तथा निधन 29 अक्टूबर 2005, इलाहाबाद) ने काकोरी (लखनऊ) निवासी मुंशी गुरुसहाय 'मुल्लजी' कृत 'तरकीबे-गरीब' (रचनाकाल 1900-1905 ई. के मध्य) का 'सुदामा-चरित' के रूप में सुन्दर सम्पादन किया है, जिसमें मूल का देवनागरी-रूप, हिन्दी-अनुवाद, टिप्पणियाँ इत्यादि सर्वथा सन्तोषजनक हैं। इस ग्रन्थ की विद्वत्पूर्ण भूमिका में डॉ. ब्रजलाल वर्मा ने मुंशी जगन्नाथसहाय के फ़ारसी 'सुदामा-चरित' (1875 ई.), मुंशी हरिनारायण कृत उर्दू 'सुदामा-चरित'

1. तुर्क-पठान-दरबारों का प्रभाव छन्द पर स्पष्टतः पड़ा है।
2. उक्त प्रभाव। प्राचीन आर्य सिले वस्त्र न पहनते थे।
3. गज, गणिका इत्यादि के उद्धार करने वाले विरद-रक्षक वानों या रूपों में।
4. 'हिन्दी साहित्य कोश' में डॉ. विनयमोहन शर्मा द्वारा उल्लिखित।
5. प्रख्यात साहूजी से भिन्न, समाजसुधारक जिनका जीवनकाल 1874-1922 ई. था।

(1883 ई.), उर्दू में ही आनन्ददास (महाराष्ट्र) के एक अन्य 'सुदामा-चरित' के नामोल्लेख भी किए हैं तथा लाला भगवानदीन 'दीन' के अपरिसमाप्त 'मित्रादर्श' का भी संकेत किया है। कश्मीरी, बांग्ला, गुजराती, मलयालम् प्रभृति भाषाओं में भी सुदामा-चरित उपलब्ध हैं। मुंशी गुरुसहाय 'मुल्लजी' कृत 'सुदामा-चरित' (तरक्रीबे-गरीब) एक चुस्त-दुरुस्त साहित्यिक खंडकाव्य है। डॉ. वर्मा, सम्भवतः नरोत्तमदास के ब्राह्मण होने के कारण, इसे प्रख्यात एवं लोकप्रिय 'सुदामा-चरित' से श्रेष्ठतर मानते हैं। किन्तु एक तो नरोत्तमदास से 'मुल्लजी' मौलिकता के साथ भी पूर्णतः प्रभावित हैं, दूसरे प्रथम मार्मिक जनकाव्य है, द्वितीय एक प्रभावी कलाकाव्य। अपनी अनगढ़ अनुभूति एवं सहज अभिव्यक्ति में 'सुदामा-चरित' अप्रतिम है। प्रकारान्तर से, यदि नरोत्तमदास मीराँ (मीरा) हैं, तो 'मुल्लजी' महादेवी! साहित्य एवं इतिहास को जातिवाद से मुक्त रखा जाना चाहिए।

श्री भट्ट

निम्बार्क-सम्प्रदायगत तथा अन्य कृष्णभक्तों में भी अत्यन्त समादृत ग्रन्थ 'युगल-शतक' एवं 'आदिवाणी' के प्रणेता वृन्दावन-वासी वैष्णव श्री भट्ट (रचनाकाल 1522 ई. के इधर-उधर) ने बड़ी मनोहर पद-रचना की है। इनके चतुर्पंक्तीय पद छोटे किन्तु मार्मिक हैं। इनकी व्रजभाषा ध्वनिसम्पन्न एवं संस्कृतनिष्ठ है। राधाकृष्ण (युगल) के प्रति तन्मय प्रेम के साथ-साथ यह व्रजभूमि के प्रति भी तन्मय प्रेम की विवृति करते हैं :

1. वने वन ललित त्रिभंगविहारी।
बंसीधुनि मनु बंसी लाई आई गोपकुमारी॥
अरप्यो चारु चरन पद ऊपर लकुट कच्छ तर धारी।
श्रीभट मुकुट चटक लटकनि मैं अटकि रहे प्रिय-प्यारी॥
2. वसौ मेरे नैनन में दोउचंद।
गोरबदनि वृषभानुनंदिनी स्यामवरन नंदनद॥
गोलक रहे लुभाय रूप में निरखत आनंदकंद।
जय श्री भट्ट प्रेमरस बंधन क्यों छूटे दृढ़ फंद॥
3. भीजत कव देखौं इन नैना।
स्यामाजू की सुँरग चूनरी मोहन को उपरैना॥
स्यामा-स्याम कुंज पर ठाढ़े जतन कियो कछु मैना।
श्रीभट उमड़ि घटा चहुँ दिखि ते घिरि आई जल-सेना॥
4. व्रजभूमि मोहिनी मैं जानी।
मोहन कुंज, मोहन वृन्दावन, मोहन जमुना-पानी॥
मोहन नारि सकल गोकुल की बोलति अमरित बानी।
श्रीभट के प्रभु मोहन नागर, मोहनि राधा रानी॥

प्रिथीराज (पृथ्वीराज)

सवैया, गीत, श्लोक, वेलि, दोहा, गुण, नवरस।
पिंगल, काव्य-प्रमाण, विविध विधि गायो हरिजस॥
परिदुख-विदुख सलाघ्य, वचन रसना जु उचारै।
अर्थ-विचित्र न मोल, सवै सागर उद्धरै॥
रुक्मिणी-लता बरनन अनुप, वागसि-वदन कल्याण¹-सुव।
नरदेव उभै-भाषा-निपुन, प्रिथीराज कविराज हुव॥

—नाभादास (भक्तमाल)

1. वीकानेर-नरेश एवं कल्याणमल राठौड़राज प्रिथीराज के पिता थे।

रुक्मणि गुण लक्षण, रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करै वखाण?
पाँचवो वेद भाखियो पीथल¹, पुणियौ उगणी समौ पुराण॥
केवल भगत अथाह कुलवितं, जैं जु किशन त्रीगुण तवियौ।
चिहँ पाँचवो वेद चालवियौ, नव दूणम गति नीगमियौ॥
मैं कहियौ हरिभगत प्रिथीमल अगम, अगोचर, अति अचड़।
व्यास तणा भाखिया समोवड़, ब्रह्म तणा भाखिया वड़॥

(प्रचलित प्रशस्ति)

वीकानेर-गौरव राठौड़राज प्रिथीराज (1549-1600 ई.) कवि, योद्धा और अकबर-दरबार के त्रित् में अब्दुलहीम खानेखानों का स्मरण कराते हैं। उनकी पत्नी चंपादे भी अच्छी कवयित्री थीं। उन्होंने 'दसम भागवत रा दूहा', 'दशरथ रावउतः', 'वासुदेव रावउतः', 'गंगालहरी' एवं 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' की रचना करके हिन्दी-साहित्य में एक सुनिश्चित स्थान प्राप्त कर लिया है। उनकी संस्कृतनिष्ठ भाषा राजस्थानी और ब्रज की संगमी शोभा से निष्पन्न है। उनकी अलंकृत कविता कला की दृष्टि से इतनी उच्चकोटि की है कि टेसीटरी ने उनकी तुलना लैटिन के महाकवि होरेस से की है। टॉड ने उनके शौर्य की भी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' (रचनाकाल 1580 ई.) 305 छन्दों का एक अत्यन्त सफल खंडकाव्य है, जिसमें भागवत के आधार पर कृष्ण-रुक्मणी-मंगल² (विवाह) का बहुत ही सरस एवं अलंकारसम्पन्न वर्णन किया गया है। 'हिन्दी का रुक्मिणी-काव्य' शोध का विषय है, क्योंकि नरहरि (रुक्मिणी-मंगल), नन्ददास (रुक्मिणी-मंगल), साँयाजी (रुक्मिणी-हरण) इत्यादि कृतियों की ख्याति लगातार चली आ रही है तथा एतद्विषयक नाटक भी रचे गए हैं। निस्सन्देह, समग्र रुक्मिणी-साहित्य में प्रिथीराज कृत 'वेलि' खंडकाव्य सर्वोत्तम है जिसकी टीका संस्कृत तक में की गई है। यह सत्य है कि महाराज एवं अकबर-सुहृद् कवि की प्रशंसा स्वभावतः बहुत बढ़ा-चढ़ाकर की गई है, किन्तु यह भी सत्य है कि वह एक अत्यन्त श्रेष्ठ कवि हैं। हिन्दी के खंडकाव्यों में नरोत्तमदास कृत 'सुदामा-चरित' सर्वाधिक मार्मिक एवं सर्वाधिक लोकप्रिय है, निराला कृत 'तुलसीदास' सर्वाधिक सांस्कृतिक एवं तेजपूर्ण है, प्रिथीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' सर्वाधिक सरस एवं कलासम्पन्न है। हिन्दी का कोई खंडकाव्य 'वेलि' से आगे नहीं जा सका। 'वेलि' राजस्थानी की सर्वोत्तम कलाकृति है। यह काव्य "यदि हरिस्मरणे" (जयदेव) से "हरि-राधिका सुमिरन" (भिखारीदास) तक का स्मरण कराते हुए भी शृंगारिक कृति ही है :

सुकदेव, व्यास, जैदेव, सारखा सुकवि अनेक से एक संध।

त्रीवरणण पहिले कीजै³, तिणि गूथियै जेणि सिंगारग्रंथ॥

'वेलि' में वयःसंधि, नखशिख, नायिकाभेद, लज्जा, षड्भक्त, संयोग इत्यादि के स्पर्श अतीव मनोहारी हैं। कवि का अलंकार-सामर्थ्य सर्वथा विलक्षण है और वह रूपक का राजा सिद्ध होता है। (रूपक-सम्राट् तुलसीदास से तुलना का प्रश्न नहीं।) "'वेलि' में शृंगार-निष्पत्ति" एवं 'वेलि' में अलंकृत प्रकृति-चित्रण" लघुप्रबन्धों के सुन्दर विषय हैं। यद्यपि स्वयंवर एवं हरण, विशेषतः कृष्ण-रुक्म-युद्ध में वीररस के भी दर्शन होते हैं, तथापि काव्य की आत्मा शृंगाररस में ही रमी है। राजस्थानी कविता 'पृथ्वीराजरासो', 'वीसलदेवरासो' इत्यादि से 'ढोला मारू रा दूहा', 'वेलि' इत्यादि तक शृंगारप्रधान ही दीखती है। उसकी शृंगारप्रधानता स्वाभाविक ही है, क्योंकि शृंगार यत्र-तत्र-सर्वत्र रसरज है। वीररस परिस्थिति-विशेष-व्यंजक है, शृंगाररस समग्र जीवन-व्यंजक। कवि ने रुक्मिणी के यौवनागम, मधुराकुलता, लज्जागम इत्यादि का विश्वकाव्यस्तरीय वर्णन किया है :

पहिलौ मुख राग प्रगट थ्यौ प्राचीन अरुण कि अरुणोद अम्बर।

पेखे किरि जागिया पयोहर, संज्ञा वंदण रिखेसर॥

जम्प जीव नहीं, आवतौ जाणे जोवण; जावणहार जण।

1. प्रिथीराज या प्रिथीमल नं पंचमग्रेद कहा।

2. परमेसर प्रणवि, प्रणवि सरसति, पुणि सदगुरु प्रणवि, त्रिण्डे ततसार।

मंगलरूप गाइजै माहव, चार सु ए ही मंगलचार॥

3. कवि व्यास, सुकदेव, जयदेव इत्यादि की नायकप्रधान परिपाटी से हटकर नायिकाप्रधान शृंगारग्रन्थ रच रहा है। स्वकीया रुक्मिणी "परोढ़ां वर्जयित्वा" (साहित्य-दर्पण : विश्वनाथ महापात्र) की रसनिष्पत्ति के भी शतशः अनुकूल हैं। राधा (आराधना की प्रतीक) भक्ति के शतशः अनुकूल हैं।

बहु विलसी वीछड़ती वाला बालसंघाती बालपण॥

आगलि¹ पित-मात रमंती आँगणि काम-विराम छिपाड़ण काज।

लाजवती अंगि एह लाज विधि लाज करंती आवै लाज॥

यौवनांग-गोपनादि की लज्जा में एक अतिरिक्त लज्जा : कवि ने महान् एवं सार्थक वर्णन किया है।

शैशव-शिशिर के समापन पर यौवन-वसन्त के आगम का रूपक सर्वथा सफल है :

दल फूलि विमल वन, नयण कमल-दल, कोकिल कंठ सुहाइ सर²।

पाँपणि³-पंख सँवारि नवी परि भूहरि भ्रामिया भ्रमर॥

मलयाचल सुतनु, मलै मन, मौरि केलि⁴ कि काम-अंकूर कुच :

तणौ दखिण दिसि दखिण त्रिगुण-मै ऊरध-साँस समीर उच॥

कोमल चरणों एवं नखों पर महान् कल्पनाएँ सन्देह अलंकार से परिपुष्ट हैं :

ऊपरि पदपलव पुनर्भव⁵ ओपति विमल कमलदल ऊपरि नीर।

तेज कि रतन? कि तार⁶ कि तारा? हरि⁷ हंस⁸? सावक-ससिहर हीर?

हरण के अनन्तर विधिवत् विवाह हुआ। तब मिलन-यामिनी आई। कवि ने इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है :

आजाति-जाति पट-घूँघट अंतरि मेलण एक करण अमिली॥

मन-दम्पती-कटाछि-दूति मै निय मन सत्र कटाछि नली।

वर-नारि नेत्र निज वदन विलासा जाणियौ अंतहकरण जई।

हसि-हसि भूहे, हेक-हेक हुइ, गृह वाहरि सहचरी गई॥⁹

राठौड़राज प्रिथीराज के कवि, भक्त, योद्धा एवं दरबारी रूपों में अतिरिक्त एक प्रशस्य रूप देशभक्त का भी है। 'वेलि' के एक सादा, सस्ते और 'कलभ' को गजशावक न मानकर कदली-स्तम्भ मानने की बड़ी ग़लती तथा मुद्रण की असंख्य त्रुटियों से भरपूर संस्करण के विद्वान् सम्पादक स्वर्गीय पं. कृष्णशंकर शुक्ल ने लिखा है, "मुग़ल दरबार में रहते हुए भी पृथ्वीराज के हृदय में स्वाभिमान, देशभक्ति और क्षत्रियोचित दर्प की कमी नहीं थी, इसका पूरा प्रमाण इनके उस ओजपूर्ण पत्र से मिलता है जो इन्होंने राणा प्रताप को लिखा था। एक समय विपत्तियों से आकुल होकर राणा प्रताप ने अकबर को एक सन्धिपत्र भेज दिया। अकबर ने बड़ी प्रसन्नता से वह पत्र पृथ्वीराज को दिखाया। पृथ्वीराज ने इस बात पर विश्वास नहीं किया कि यह राणा का पत्र है। सत्य का निर्णय करने के लिए पृथ्वीराज ने राणा को एक पत्र लिखा। उस पत्र में राणा से कहा कि केवल अब तुम्हीं हिन्दुओं के शरणस्थान हो। यदि तुम्हीं से निराश हो जाना पड़ेगा तो हिन्दू-जाति का भविष्य अन्धकारपूर्ण ही है। इस पत्र की कुछ ओजपूर्ण पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

माई! एहड़ा पूत जण जेहड़ा राण प्रताप।

अकबर सूतो आझकै जाण सिराणें साँप॥

अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजल।

मेवाड़ो तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी॥

हिन्दूपति परताप! पत राखौ हिन्दुवाण री।

सहे विपति-संताप, सत्य सपथ करि आपणी॥

1. आगे सामने,

3. पलक,

5. नख,

7. ताग्रवर्ण,

9. उठीं सखीं हंसि, मिस करि, कहि मृदु बैन।

सिय रघुवर के भए उनींद नैन॥

पति रति की बतियाँ कहीं, सखी लखी मुसुकाद।

कै-कै सबै टलाटली, अली चलीं सुख पाई। (बिहारी : सतसई)

तुलसी एवं प्रिथीराज के वर्णन कलात्मक एवं सूक्ष्म हैं, बिहारी का वर्णन सामान्य एवं स्थूल है।

2. स्वर,

4. कलियाँ,

6. ज्योति,

8. सूर्य।

(तुलसीदास : बरवै-रामायण)

इस पत्र का जो प्रभाव हुआ, उससे सभी परिचित हैं।¹

यद्यपि प्रताप पर अर्थसंकट, घास की रोटी, अकबर को पत्र, प्रिथ्वीराज द्वारा प्रताप को पत्र शतशः इतिहासपुष्ट नहीं हैं, तथापि यह विन्दु राठौड़राज का गौरव बढ़ानेवाला ही है। सम्भव है, उन्होंने प्रताप-प्रशस्ति स्वतन्त्र रूप से लिखी हो। 'हिन्दुवान' की चर्चा, और वह भी राणा प्रताप को ठीक ही 'हिन्दूपति' कहते हुए, और वह भी उस युग में जब अकबर को हिन्दूपति कहा जाने लगा था, प्रिथ्वीराज को वीरकाव्य-सीमान्त महाकवि भूषण का पूर्वकवि-गौरव भी प्रदान करती है (जिन्होंने "राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान की तिलक राख्यौ" कहते हुए महान् राष्ट्रनायक छत्रपति शिवाजी महाराज पर स्फीत काव्यसृजन किया था)।

रसखान¹

दिल्ली नगर निवास बादसा² बंस विभाकर। चित्र देखि मन हर्यो भर्यो मन प्रेम सुधाकर॥

श्रीगोबर्धन आय जबहि दरसन नहिं पाए। टेढ़े-मेढ़े वचन रचन, निरभय हवै गाए॥

तव आप आयु सु मनाय कर सुसूसा महमान की।

कवि कौन मिताई कहि सकै नाथ³ साथ रसखान की॥

—राधाचरण गोस्वामी (नव-भक्तमाल)

महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य, विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ के नाम पर प्रचलित किन्तु परवर्ती एवं अप्रामाणिक 'दोसौवावन वैष्णवन की वार्ता' में 218वीं संख्या में प्रशंसित, भारतेन्दु कृत 'उत्तर-भक्तमाल' एवं राधाचरण गोस्वामी कृत 'नव-भक्तमाल' में श्रद्धान्वित और, सबसे बढ़कर, कोटि-कोटि भारतीयों के कंठहार रसखान (1558-1628 ई.) रहीम के साथ-साथ हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय एवं लोकमान्य मुसलमान कवि हैं क्योंकि जायसी साम्प्रदायिकता के कारण पहले नितान्त उपेक्षित रहे तथा आत्मवादी आलोचक रामचन्द्र शुक्ल के द्वारा पाठ्यक्रम-प्रतिष्ठित किए जाने के बावजूद जनप्रेम नहीं प्राप्त कर पाए और कवीरदास का गौरव उनके सन्त होने के कारण है, कवि होने के कारण नहीं (यद्यपि अपनी रहस्यवादी रवीन्द्र-प्रेरक कविता में वे महाकवि अवश्य हैं)। मिश्रबन्धु कृत 'प्रस्थान'-ग्रन्थ 'विनोद' में रसखान का अनुमानित 1615-1685 वि. का जीवनकाल डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में डॉ. विनयमोहन शर्मा ने भी स्वीकार किया है, यद्यपि जन्मवर्ष 1548 ई. गलत लिख गए हैं (मुद्रण-त्रुटि भी हो सकती है क्योंकि इस कोष में छोटे सिकके भरे पड़े हैं)⁴। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'विनोद' का अनुकरण रचनाकाल 1640 वि. (1583 ई.) के बाद मानकर किया गया था। 'प्रेमवाटिका' का रचनाकाल 1671 वि. (1614 ई.) सर्वमान्य है ही। प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कहानीकार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष एवं काव्यरसिक किशोरीलाल गोस्वामी ने रसखान के प्रेमवाटिका (52 दोहे-सोरठे) एवं सुजान-रसखान (129 सवैया-घनाक्षरी, प्रायः 10 दोहे-सोरठे) प्रस्तुत करने का 'प्रस्थान' कार्य किया था। अनन्य हिन्दी-सेवी बाबू अमीरसिंह ने 'रसखान और घनआनन्द' के माध्यम से उत्कृष्ट सम्पादन का समारम्भ किया। मिश्रबन्धु के 'विनोद' से रसखान की आलोचना-प्रतिष्ठा हुई जो लगातार गतिशील रही है।

कतिपय तत्त्व रसखान को सैयद इब्राहीम पिहानीवाले (हरदोई) मानते हैं, जिसे मिश्रबन्धु ने अस्वीकार किया है। किन्तु मिश्रबन्धु ने इन्हें "दिल्ली के पठान" के रूप में स्वीकार किया है और उनके अनुकरण में आ. शुक्ल ने "सम्भव है पठान बादशाहों की कुल-परम्परा से इनका सम्बन्ध रहा हो" लिखा है। दिल्ली के सैयद-वंश (1414-1445 ई.)⁵, लोदी-वंश (1445-1526 ई.) एवं सूरी-वंश

1. 'खान' से 'खान' बने और वह भी रस की! 'खान' हिन्दू भी है, मुसलमान भी! ताज वेगम भी मुगल थीं।

2. 'बादशाह' शब्द मुगलों में चलता था, अतः रसखान उनसे ही सम्बद्ध हो सकते हैं। तुर्कों एवं पठानों में सुल्तान शब्द चलता था। 'खान' शब्द पठानों मात्र में न चलकर अन्यो में भी चलता था। महान् योद्धा चंगेज खान वीर्यवान् था। खान शब्द उससे लिया गया जिसका अर्थ है प्रधान या सरदार। मुसलमानों में सिकन्दर और कैसर (सीज़र) जैसे योद्धाओं पर भी नामकरण होते रहे हैं गैर-मुसलमान तो थोड़े ही, मोहम्मद-पूर्ववर्ती भी थे।

3. श्रीनाथजी (वल्लभ-सम्प्रदाय में विष्णु या सर्वकलासम्पन्न अवतार कृष्णजी)। यहाँ नाथ से अभिप्राय विट्ठलनाथ से भी है।

4. इसी विवरण में 252 के स्थान पर 225 छपा है।

5. सैयद-वंश का सुल्तान अलाउद्दीन आलमशाह 1445 ई. में दिल्ली छोड़कर बदायूँ चला गया, जहाँ 1478 ई. में मरा। सैद्धान्तिक दृष्टि से इस दुर्बल एवं सीमितराज्य वंश का पतन 1478 ई. में हुआ।

(1540-1555 ई.) ही पठानों से सम्बद्ध थे, क्योंकि मोहम्मद गोरी (पुराने मोहम्मदी इतिहासकारों के नाम मुइज्जुद्दीन साम लिखा है तथा 'पृथ्वीराजरासो' में शहाबुद्दीन कहा गया है—दिल्ली राज्यकाल (1192-1206 ई.) जो इसके निस्सन्तान होने के कारण गुलामों के वंश के रूप में चला, गुलाम-वंश (1206-1290 ई.), खिल्जी-वंश (1290-1320 ई.), तुगलक-वंश (1320-1412 ई.)¹ एवं मुगल-वंश (1526-1857 ई. किन्तु 1707 ई. के बाद नामनिहाल तथा 1540-1555 ई. में सूरी-वंश) तुर्कों से सम्बद्ध थे (मुगल तुर्क-मंगोल-मिश्रित थे तथा चंगेज़ ख़ाँ की विश्वविजेता-छवि से अभिभूत होने के कारण ही मुगल कहने में गौरव का अनुभव करते थे—इसीलिए अपेक्षाकृत उदार थे)। रसखान का जीवनकाल समग्रतः मुगलकालबद्ध है। रसखान विशाल मुगल-राजपरिवार के ही अंग हो सकते हैं; प्रचलित 'पठान' होने की बात गलती लगती है। 'प्रेमवाटिका' के ये दोहे प्रसिद्ध हैं :

देखि गदर हित साहिबी दिल्ली नगर मसान²।

छिनहिं वादसा वंस की ठसक छाँड़ि रसखान।।

प्रेमनिकेतन श्रीवनहिं आइ गोवर्धन धाम।

लहयो सरन चित चाहि के जुगल सरूप ललाम।।

तुर्क-पठान-काल (1192-1526 ई.) में शासक प्रायः सुल्तान कहलाते थे, मुगल-काल में प्रायः बादशाह (पादशाह)। रसखान का बादशाह-वंश लिखना भी उन्हें मुगल सिद्ध करता है। किन्तु दिल्ली में गदर की स्थिति लोदी-वंश के विनाश (1526 ई.), सूरी-वंश की प्रतिष्ठा (1540 ई.), मुगल-वंश की पुनर्प्रतिष्ठा जिसमें पानीपत की दूसरी लड़ाई भी सम्मिलित है (1555 ई. एवं 1556 ई.) के अवसरों पर ही हो सकी थी, अतः ये दोहे इतिहास की कसौटी पर विवादास्पद हैं। वैसे, सूरी-वंश स्थापना पर मुगल-पतन का सन्दर्भ मनीय है।

प्रसिद्ध है कि रसखान एक वणिकपुत्र पर आसक्त थे। उसके पीछे पड़े रहते। उसकी जूठन वगैरह खाकर प्रसन्न होते। इसमें चौकना व्यर्थ है। सममैथुन का इतिहास यहूदी-वाइविल के इसके विरोधी लूत (लॉट) प्रकरण, जूलिअस सीज़र³, महमूद गज़नवी⁴, इत्तुमिश⁵, अलाउद्दीन खिल्जी⁶, शेक्सपीअर⁷, मॉर्ली⁸, मीर⁹, ऑस्कर वाइल्ड¹⁰ इत्यादि से अनेक भारतीय¹¹, फ़िराक़¹² इत्यादि विविधि आयामों के प्रतिभाशाली व्यक्तियों तक प्रसरित है। मुसलमानों में सममैथुनवृत्ति अधिक पाई जाती है। जन्मत में पूरे प्याले लिए हूँ के साथ गिलमान की व्यवस्था भी है। कुरान में गिलमान के रूप-रंग का वर्णन भी किया गया है। नारी-सौन्दर्य के साथ नर-सौन्दर्य भी कुरान में प्राप्त है। ईसाई-वाइविल के अनुसार अविवाहित ईसा अपने एक चेले को छाती पर मुँह रखकर लेटाते थे। कहा जाता है कि सामी दुनिया में सममैथुनवृत्ति यूनानी प्रभाव से बढ़ी। यूनान में पारिवारिक जीवन से दुखी, पत्नी से पिटे सुकरात का अविवाहित शिष्य प्लेटो (अफ़लातून) के प्रति प्रेम प्रसिद्ध रहा है। प्लेटो ने नर-नर-प्रेम की पवित्रता एवं आध्यात्मिकता का वर्णन

1. दो वर्ष अनिश्चय के बीते। 1414 से सेयद-वंश चला।

2. 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 'समान' छपा है जो गलत भी है, निरर्थक भी।

3. महान् वक्ता एवं सांसद सिसरो के अनुसार यह जगज्जयी योद्धा (जिस पर जुलाई महीना चलता है) "समस्त पत्नियों का पति एवं समस्त पतियों की पत्नी" था। जूलिअस सीज़र (जिस पर सीज़र या कैसर या ज़ार पदवियाँ चलीं) के भतीजे ऑगस्टस सीज़र पर ऑगस्ट महीना चलता है—ईसा का जन्म इसी के राज्यकाल में हुआ था। इसी ने सिसरो की हत्या करा दी थी।

4. अयाज़ नाम का गुलाम महमूद गज़नवी की पटरानी ही था! जिसके हुस्नोजलाल के वर्णन उर्दूवाले अब तक करते हैं।

5. इल्तुमिश (रजिया का बाप) जिस्मानी खूबसूरती की वजह से कुलुद्दीन ऐबक़ द्वारा ख़रीदा गया था।

6. अलाउद्दीन खिल्जी की पुरुष-पत्नी (हिजड़ा) मलिक काफ़ूर था, जिसने दक्षिण जीता।

7. शेक्सपीअर का अर्ल ऑफ़ सॉउथैम्पटन से प्रेम था, जिसके टूटने पर भयावह-त्रासदियों रची गई। कई प्रशान्त सॉनट्स में भी स्मृति की गई है।

8. मॉर्ली बदचलन गुंडा था, जो जवानी में ही मारा गया। वह महान् नाट्यकार है। शेक्सपीअर का समकालीन था।

9. मीर के ताबों के "हम पर भी था आशनों" एवं "अतार के लोंडें से दवा लेते हैं" वगैरह खुद ही लिखा है।

10. ऑस्कर वाइल्ड को अपने समय में सममैथुन के गैरकानूनी होने के कारण सज़ा काटनी पड़ी थी। वे अपने खास माशूक को 'लॉर्ड डगलस' कहते थे। (मेरी समझ में, स्वयं को शेक्सपीअर और उसे अर्ल ऑफ़ सॉउथैम्पटन मानकर!)

11. फ्रीडम ऐट् मिड्नाइट (कॉलिन्स एंड लापीअर)। गांधी-नेहरू सन्दर्भ।

12. खुपतिसहाय 'फ़िराक़ गोरखपुरी' भयावह 'तरुणभक्षी' थे; वे भयावह 'सुन्दरीभक्षी' भी थे। साहसी प्रतिभाशाली के कारण उन्होंने अपनी सर्वविध कामुकता छिपाई नहीं। प्रसिद्ध था कि वे नेहरू पर भी फ़िदा थे, इन्दिरा पर भी। दो पीढ़ियों तक प्रसरित सग़्र-कामभाव!!

किया है। उर्दू की आरजू, आवरू, जानजाना मज़हर, ताबाँ, मीर, फ़िराक़ इत्यादि सममैथुनी थे। सममैथुन एक प्रवृत्ति है जिसे तूल देना मूर्खता भी है, पाखंड भी। हाँ, संस्कृत में पद्मपुराण के एक (जैन-प्रक्षिप्त? जैनों का अपना पद्मपुराण भी है) घटिया वर्णन एवं हिन्दी में सीतल कवि के लालविहारी-स्तवन (जो रहस्यवादी भी कहा जा सकता है—प्रसाद के 'आँसू' एवं महादेवी के सारे काव्य के सदृश) के अतिरिक्त सममैथुन-वर्णन एवं एतद्विषयक संकेत नहीं मिलते। भारतीय परम्परा सममैथुनमुक्त रही है। रसखान-विषयक कथा के अनुसार, वे कृष्ण का एक चित्र देखकर भावाभिभूत हुए और मथुरा-वृन्दावन की ओर निकल पड़े जहाँ विट्ठलनाथ की प्रेरणा से इश्कमजाज़ी इश्कहक़ीकी में तब्दील हो गया। यह कथा कल्पित भी हो सकती है—स्वयं अपने को जन्मांध कहने वाले सूर को ज़बरदस्ती आँखों वाला बताकर कथा गढ़ी हुई है, स्वयं अपने को अविवाहित कहने वाले तुलसी को ज़बरदस्ती विवाहित बताकर कथा गढ़ी गई है! नन्ददास की खत्राणी-प्रेमकथा प्रचलित है! वैसे, ऐसी कथाओं में पतितपावनी शक्ति अवश्य विद्यमान रहती है। इनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव अचूक है। किन्तु रसखान के सन्दर्भ में वणिकपुत्रानुराग-कथा का खंडन भी प्राप्त है :

तोरि मानिनीं तें हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छविहि लखि भए मियाँ रसखान।।¹

रसखान प्रेम के कवि हैं। 'प्रेमवाटिका' रसखान की 'साखी'² है, 'सुजान-रसखान' उनका 'सूरसागर' है। यद्यपि वे वल्लभ सम्प्रदाय से संपृक्त थे, तथापि बालकृष्ण पर बहुत-अधिक नहीं रीझे—उनके आराध्य रसविहारी कृष्ण ही हैं। किन्तु केवल इस आधार पर आ. चन्द्रबली पांडेय की उनकी विट्ठलनाथ से अलग करने की कल्पना महत्वहीन है, क्योंकि वल्लभ-सम्प्रदाय के सारे कवि रसिक-कृष्ण के उपासक भी हैं। नन्ददास ने बाललीला पर कोई उल्लेख्य रचना नहीं की। चन्द्रबली पांडेय कल्पना-अश्विनी को वल्गा-विहीन करने में बहुत रुचि रखते थे : तुलसी का जन्मस्थान अयोध्या, जायसी का जन्मस्थान जायस ('तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू' के सुस्पष्ट अन्तर्साक्ष्य की एकान्त उपेक्षा), मीराँ (मीरा) के 'जोगी' या 'गिरिधर नागर' के रूप में चैतन्य महाप्रभु³ की स्थापना इत्यादि अन्य प्रमाण भी हैं जो उन्हें एक अप्रात्ययिक विद्वान् सिद्ध करते हैं। रसखान की प्रेमसाधना ही उनकी भक्ति-साधना है। उनका प्रेम उज्ज्वल एवं अनन्य है। उनकी ब्रजभाषा एकदम साफ़-सुथरी है, खुसरो की ब्रजभाषा का स्मरण कराती है। उनकी ब्रजभाषा सहज एवं सरल है, जो घनआनन्द की क्लिष्ट एवं अलंकृत भाषा से भिन्न भी है, श्रेष्ठतर भी। उनका छन्दप्रवाह सवैयाँ और दोहों में सर्वत्र असाधारण रूप से सफल हैं; न कहीं गतिभंग, न यतिभंग। अपनी अनुभूति-अभिव्यक्ति-गति द्विविध गुणवत्ता के कारण परिमाणगत अल्पता के बावजूद, रसखान सूर एवं मीराँ के अनन्तर हिन्दी-कृष्णकाव्य के सर्वोत्तम कवि सिद्ध होते हैं। बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न रहीम के आयाम व्यापकतर हैं तथा उन्होंने अवधी, खड़ीबोली और संस्कृत में भी लिखा है। वे कृष्णकाव्यबद्ध नहीं हैं। कुछ वानगियाँ इन बिन्दुओं को स्पष्ट कर देंगी :

1. दंपति-सुख अरु बिपय-रस, पूजा, निष्ठा, ध्यान।
इनते परे बखानिए शुद्ध प्रेम रसखान।।⁴
2. इक-अंगी, बिनु कारनहिं, इकरस, सदा समान।
गने प्रियहि सर्वस्व जो सोई प्रेम प्रमान।।
3. जेहि बिनु जाने कछुहि नहिं जान्यो जात बिसेस।
सोइ प्रेम जेहि जानि कै रहि न जात कछु सेस।।
4. प्रेम-फाँस सो फँसि मरै सोई जियै सदाहिं।
प्रेम-मरम जाने बिना मरि कोउ जीवत नाहिं।।

1. मैं इस दोहे को प्रक्षिप्त मानता हूँ क्योंकि यह अन्य-वर्णित है। बाइबिल हो या कुरान, पुराण हों या वैष्णवकथाएँ, रामकृष्णकथाएँ हों या गुरुकथाएँ, सबका बहुत-कुछ कल्पित है।
2. 'साक्षी', 'टेस्टामेन्ट', 'सिद्धान्तसार'।
3. पद्मावती 'शबनम' ने भी मीराँ (मीरा) के जीवन में किसी प्रेमी की कल्पना की है।
4. भूषण, देव, घनआनन्द इत्यादि के अनेक छन्दों में प्राप्त जैसा-नाम नाम-श्लेष।

5. मानुस हैं तौ वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हैं तौ कहा बसु मेरो चरौ नित नंद की घेनुमँझारन ।।
पाहन हैं तौ वही गिरि को जो भयो ब्रज-छत्र पुरंदन-कारन ।
जौ खग हैं तौ बसेरो करौं उन कालिन्दी-कूल कदंब की डारन ।।
6. वा लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख नंद की गाय चराय विसारौं ।।
रसखान सदा इन नैनन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिन ही कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं ।।
7. मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंजन-माल गरे पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी वन गोधन ग्वालन संग फिरौंगी ।।
भावतो सोई मेरो रसखान सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी ।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी ।।
8. सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं ।।
नारद से सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं ।।

5. नीति-काव्य

साहित्य में नैतिकता के मनोहारी एवं प्रेरक समावेश का आदि-देश भारत ही है जिसके मानव-जति के पुस्तकालय के प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद में ही शाश्वत नैतिक मूल्य समाहित करने वाले अनेक उद्गार उपलब्ध हैं। यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में नैतिक-काव्य के उत्कृष्ट दर्शन होते हैं। उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण इत्यादि में नीति-साहित्य का विस्तार होता गया। व्यास और कालिदास की वाणी में नीति-साहित्य को सम्मान्य स्थान प्राप्त है। किन्तु नैतिक साहित्य के सर्वश्रेष्ठ एवं स्वतन्त्र वैश्विक प्रतीक भर्तृहरि हैं जिनका प्रमुख ग्रन्थ ही नीतिशतकम् है तथा जिनके शृंगारशतकम् एवं वैराग्यशतकम् में भी नीति ऊभ-चूभ है। तमिल के भर्तृहरि तिरुवल्लुवर ने भी अपने 'कुरल' (जिसे तमिल-वेद कहा जाता है) में नीति, शृंगार एवं वैराग्य का त्रित् प्रस्तुत किया है। फ़ारसी के भर्तृहरि शेख सादी ने 'गुलिस्तौ' एवं 'बोस्तौ' में कथातत्त्वसम्पृक्त नीतिकाव्य का विश्व-स्तरीय प्रणयन किया है। पाश्चात्य साहित्य में नैतिक साहित्य का पृथक् अस्तित्व नहीं दृग्गत होता। किन्तु वहाँ के कवियों की वाणी में स्फुट रूप से नैतिकता की सहज विवृति अवश्य हुई है। अंग्रेज़ी के आदिकवि चॉसर (1340-1400 ई.), शेक्सपीयर, मिल्टन, पोप एवं वर्डस्वर्थ की वाणी में यत्र-तत्र नीति-साहित्य भी विद्यमान है। नैतिक स्पर्श से पुलकित कथा का जन्म भी भारत में हुआ, जैसा कि विंटरनिट्ज़ (विंटरनिट्ज़) जैसे पाश्चात्य विद्वान्, स्व. शारदाप्रसाद सक्सेना जैसे अंग्रेज़ी के भारतीय विद्वान्, डॉ. मोतीचन्द्र जैसे हिन्दी के विद्वान् इत्यादि ने स्वीकार भी किया है। नैतिक कथा भारत से यूनान पहुँची जैसाकि ईसप की कथाओं में व्याप्त भारतीय परिवेश से ही व्यंजित है (जो यूनानी बहुत कम है)। ईरान, अरब इत्यादि ने भी भारत की नैतिक-कथा से प्रेरणा प्राप्त की।

संस्कृत का नैतिक साहित्य संसार में अतुलनीय है। भर्तृहरि एवं विष्णु शर्मा तो उसके दो प्रतीक मात्र हैं। वल्लभदेव प्रस्तुत 'सुभाषितावली', नारायणप्रसाद आचार्य प्रस्तुत 'सुभाषितरत्नभाण्डागारम्' जैसे ग्रन्थ संस्कृत-नीतिसाहित्य की वैश्विक अद्वितीयता के प्रमाण हैं। वाल्मीकि, व्यास, गुणादय इत्यादि ने विश्व के नैतिक काव्य एवं नैतिक कथाकथन को सर्वोपरि प्रेरणाएँ प्रदान की हैं। हिन्दी संस्कृत की प्रमुख उत्तराधिकारिणी है, अतः उसके नैतिक साहित्य या स्फूर्ति एवं प्रभावी होना स्वाभाविक है। संक्रान्तिकाल में देवसेन, पुनरुत्थानकाल में कवीर, नानक, तुलसी, रहीम इत्यादि तथा शास्त्रीयकाल में वृन्द, घाघ, वैताल, गिरिधर कविराय इत्यादि ने नीतिकाव्य का उत्कृष्ट सृजन किया है। बौद्धिककाल में सन्धियुग के दीनदयाल गिरि के अनन्तर

नीति-साहित्य का पृथक् अस्तित्व दृग्गत नहीं होता किन्तु भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर इत्यादि कवियों एवं प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रेमचन्द इत्यादि गद्यकारों के साहित्य में उसका समावेश अवश्य प्राप्त होता है। 'वैदिककालीन कविता में नैतिकता', 'हिन्दी-निबन्ध में नैतिकता', 'हिन्दी नाटक में नैतिकता', 'हिन्दी उपन्यास में नैतिकता', 'हिन्दी-कहानी में नैतिकता' इत्यादि शोध के अच्छे विषय हैं।

नीति-साहित्य कोरा मानवमूल्यपरक-साहित्य नहीं होता, उसका रसात्मक एवं कलात्मक महत्व भी उल्लेखनीय है। रसशास्त्र में सामान्यतः प्रत्येक तथा विशेषतः शान्त रस तथा अलंकारशास्त्र में सामान्यतः दृष्टान्त, अन्योक्ति इत्यादि तथा विशेषतः अर्थान्तरन्यास नीति से ओतप्रोत रहे हैं। नैतिकता भी एक प्रवृत्ति है जो मानव की अन्यप्राणिविशिष्टता की सूचना देती है। भले ही नैतिकता क्रियागत कम और प्रतिक्रियागत अधिक हो, किन्तु क्रिया-प्रतिक्रिया के अन्योन्याश्रित होने के कारण उसका मनोवैज्ञानिक मूल्य कम नहीं कूटा जा सकता—उसका सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक महत्व तो स्वयंसिद्ध है ही। प्रत्येक धर्म एवं प्रत्येक दर्शन में नैतिकता को अत्यन्त उच्च महत्व प्राप्त है। पुनरुत्थानकाल के अनेक कवि महापुरुष भी थे—कबीर, रैदास, नानक, सूर, मीरों एवं तुलसी के स्तर के महापुरुष हिन्दी-साहित्य के इतिहास के किसी काल में तो हुए ही नहीं, हिन्दू तथा संसार के इतिहास में भी नहीं हुए। समग्र आधुनिक भारत के इतिहास में तुलसी या कबीर के स्तर का नेता तथा मीरों के स्तर की नेत्री कहाँ है? दयानन्द, विवेकानन्द, रवीन्द्र इत्यादि का प्रभाव केवल शिक्षित वर्ग पर पड़ा, गाँधी का प्रभाव राजनीतिज्ञों का एक हथकंडा मात्र बनकर रह गया। अतः पुनरुत्थानकालीन नीति-साहित्य महापुरुष-महाकवि-संग्राम के सृजन-रूप में प्राप्त होने के कारण विशेष प्रभावी एवं अद्यावधि जीवन्त है।

कबीर का नीति-साहित्य कोरा नीति-साहित्य है, रहीम के नाते-साहित्य के सदृश ललित नहीं। तुलसी के नीति-साहित्य में सन्तत्व एवं कवित्व का प्रौढ़ समन्वय दृग्गत होता है। किन्तु रहीम का ललित-नीतिसाहित्य काव्य-ही-काव्य होने के कारण विशेष कलात्मक बन पड़ा है। कबीर का कोरा-नीतिसाहित्य, तुलसी का प्रेरक-नीतिसाहित्य एवं रहीम का ललित-नीतिसाहित्य पुनरुत्थानकालीन नीति-साहित्य को भी हिन्दी-साहित्येतिहास में विशद गरिमा प्रदान कर देता है :

1. कबीर नौबत आपणीं दिन दस लेहु बजाइ। ए पुर, पत्तन, ए गली बहुरि देखै आइ॥
यहु ऐसा संसार है जैसा सेमल फूल। दिन दस के ब्योहार कौं झूठे रंग न भूल॥
दुरलभ मानुस जनम है देह न बारंवार। तरुवर तैं फल झड़ि पंड्या बहुरि न लागै डार॥
कबीर पढ़िबा दूरि करि, आधि पढ़्या संसार। पीर न उपजी प्रीति सँ, क्यों करि करै पुकार॥
2. प्रीति राम सों, नीति-पथ चलिय राग-रिस जीति। तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति॥
तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार। राग न रोष न दोष दुख, दास भए भव पार॥
करम खरी कर, मोह धल, अंक चराचर-जाल। हनत गुनत, गुनि-गुनि हनत जगत ज्योतिषी काल॥
तुलसी अद्भुत देवता आसादेवी नाम। सेए सोक समर्पयी तजे सदा अभिराम॥
3. रहिमन धागा प्रेम का मत तोरो चिटकाय। टूटे ते पुनि जा जुरै, जुरै गाँठि परि जाय॥
रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून। पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून॥
ज्यों रहीम गति दीप की कुल कपूत गति सोय। बारे उजियारो लगै, बड़े अँधेरो होय॥
रहिमन वे नर मरि चुके जे कहूँ माँगन जाहिं। उनते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं॥

6. युग-काव्य

युग-साहित्य प्रत्येक काल में रचा जाता है जो युग के चिरांग होने के कारण सदैव महत्व रखता है। साहित्य को समाज का दर्पण इसीलिए कहा जाता है। पुनरुत्थानकाल में युग-साहित्य की अच्छी रचना हुई है। विद्यापति की कीर्तिलता एवं तुलसीदास की कवितावली (उत्तरकाण्ड) एवं दोहावली कृतियों युग-विकृति चित्रण की दृष्टि से श्रेष्ठतम हैं। तुलसीदास चिर के सर्वश्रेष्ठ कवि भी हैं, युग के भी। कबीर इत्यादि ने युग की साम्प्रदायिक स्थिति का वर्णन किया है, नानक ने बाबर के 1521 ई. के वर्ष

आक्रमण का मार्मिक चित्रण किया है, केशवदास ने वीरबल के निधन (वीरगति) का हृदयद्रावक अंकन किया है। विश्व-इतिहास के अतुलनीय मुसलमान, मध्यकाल के अतुलनीय मानवतावादी, सहस्राब्दि के अतुलनीय नेता, अकबर महान् स्वयं हिन्दी-कवि थे जिनके दरबार में रहीम, प्रिथीराज, नरहरि और उनके साथ आने वाले करनेस, वीरवल, टोडरमल, मनोहर कवि, होलराय, मानसिंह¹, जगदीश, गंगाप्रसाद ब्राह्मण, जैतराम, जगामग, अमृतराय, नाहरदास चारण इत्यादि के स्वर भी गूँजते थे। हिन्दुओं ने उन्हें 'हिन्दूपति' कहा। उन्होंने नरहरि के एक छप्पय से उद्धेलित होकर गोवध-निषेध किया। खानखाना एक श्रेष्ठ कवि थे, जिनके आश्रय में गंग, प्रसिद्ध, बान चौबे इत्यादि कवियों ने रचनाएँ कीं। वीरवल स्वयं कवि थे, जिन पर केशवदास ने अमर छन्द रचे। उधर, मेवाड़ के दुरसा जी ने 'प्रताप चहोतरा' में राणा प्रताप की प्रशंसा एवं अकबर की निन्दा कर युग-साहित्य में योगदान किया। 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' के अमर कवि राठौड़राज प्रिथीराज ने राणा प्रताप को पत्र लिखा था, ऐसा कहा ही जाता है। प्रामाणिकता के विवादास्पद होने पर भी यह पत्र युग-साहित्य का एक रत्न है। पुनरुत्थानकालीन युग-साहित्य की तीन ऐतिहासिक महत्व की बानगियाँ प्रस्तुत हैं :

1.

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नाहें मारि सकत कोइ।
हम संतत तिन चरहिं, वचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महिथंभन जावहिं।
हिंदुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरकहिं न पियावहिं॥
कह कवि नरहरि, अकबर! सुनहु, बिनवत गउ जोरे करन।²
अपराध कौन मोहि मारियत? मुए चाम सेवै चरन॥³

(महापात्र नरहरि वंदीजन)

2.

अकबर सो बर कौन नर, नरपति? पति-हिंदुवान!
करन चहै जेहि करन सो लेन दान सनमान॥⁴
अचरज मोहि हिंदू-तुरुक वादि करत संग्राम।
यक दीपति सों दीपियत काबा, काशी धाम॥

(मनोहर कवि)

3.

दिल्ली ते न तख्त, हैहै बख्त ना मुगल कैसो,
हैहै ना नगर बढि आगरा नगर ते॥⁵
गंग ते न गुनी, तानसेन ते न तानबाज़,
मान⁶ ते न राजा औ न दाता बीरबर ते॥
खान खानखाना ते न, नर नरहरि ते न,

1. मानसिंह के कवियों ने 'मानचरित्र' रचा। इन पर यह दोहा प्रसिद्ध है :

माई ऐहा पूत जण जेहा मान मरद।

समन्दर खौड़ पछालिया, काबल पाड़ी हट॥

अकबर ने वीरभूमि, मानभूमि और सिंहभूमि जिले वीर मानसिंह के नाम पर आधृत किए थे। आज ये तीन जिले तीन राज्यों में फैले हैं।

2. करन में उत्कृष्ट श्लेष। गी इत्यादि 'कर्ण' उठाते हैं जिसे हाथ जोड़ने से मिलाया है।

3. यह ऐतिहासिक छप्पय जिसने गोवध-निषेध कराया।

4. 'करन' में श्लेष। दानी कर्ण, कवि कर्ण या कर्णेश या करनेस। यमक भी।

5. "बधिया मरी सो मरी, आगरा तो देखा" कहावत आज तक प्रचलित है। किन्तु तब भी केन्द्रीय सत्ता की प्रतीक दिल्ली ही था, जैसा कि "दिल्ली ते न तख्त" से स्पष्ट है। अकबर के समय राजधानी आगरा और फ़तहपुर सीकरी में रही। 1507 ई. में सिकन्दर लोदी ने दिल्ली के स्थान पर आगरा को राजधानी बनाया, 1648 ई. में शाहजहाँ ने दिल्ली को पुनः राजधानी का गौरव भी प्रदान किया।

6. राजा मानसिंह आमेर वाले (जयपुर बाद में बसा)।

हैहै न दिवान कोऊ बेडर टुडर¹ ते।
 नओ खंड सात दीप², सातहू समुद्र³ पार,
 हैहै न जलालुदीन शाह अकबर ते॥ (होलराय ब्रह्मभट्ट)

7. शास्त्रीय काव्य

पुनरुत्थानकाल में शास्त्रीय साहित्य का भी उल्लेख्य सृजन हुआ। महाकवि केशवदास तो शास्त्रीयकाल के अग्रदूत ही सिद्ध हुए (जिनका अधिकांश जीवन पुनरुत्थानकाल से संपृक्त)। कृपाराम (हिततरंगिनी) रसनिरूपण, मोहनलाल मिश्र (शृंगारसागर) रसरजनिरूपण, करनेस (कर्णाभरण, श्रुतिभूषण, भूपभूषण) अलंकारनिरूपण तथा केशवदास (कविप्रिया, रसिकप्रिया) प्रायः सर्वांगसम्पन्न काव्यशास्त्रीय निरूपण करनेवाले ऐतिहासिक महत्त्व के नाम हैं, जिनके अतिरिक्त बलभद्र मिश्र (नखशिख), रहीम (बरवै-नायिकाभेद), तुलसीदास (बरवै-रामायण) ने भी भावी काल की शृंगार एवं अलंकार से ऊभ-चूभ शास्त्रीय कविता का पथ प्रशस्त किया। तुलसी की कवितावली शास्त्रीयकाल के प्रमुख छन्दों (कवित एवं सवैया), गीतावली (विशेषतः उत्तरकांड) शास्त्रीयकाल की ऐश्वर्यपूर्ण शृंगारिकता एवं “बरवै-रामायण” (विशेषतः बालकांड) शास्त्रीयकाल के अलंकरण की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती हैं। केशवदास ने तो कविप्रिया-रसिकप्रिया द्वारा रस-नायिकाभेद-अलंकारादि तथा रामचन्द्रिका द्वारा छन्दवैविध्य का ऐसा भव्य निरूपण किया कि शास्त्रीयकाल के जनक ही बन गए। बलभद्र मिश्र एवं रहीम की ‘नखशिख’ एवं ‘नायिकाभेद’ की परम्परा शास्त्रीयकाल में चरमोत्कर्ष प्राप्त कर सकी। पुनरुत्थानकाल की रसालंकारमयी कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

लोचन चपल, कटाच्छ सर अनियारे विष पूरि।

मन मृग वेधैं मुनिन के जग जन सहित बिसूरि॥

(कृपाराम)

पाटल नयन कोकनद के से दल दोऊ, बलभद्र बासर उनींदी लखी वाल मैं।
 सोभा के सरोवर में बाइव की आभा किधौं देवधुनि भारती मिली हैं पुण्य काल मैं॥
 काम के बरत कैधौं नायिका उडुप बैइयो खेलत सिकार तरुनी के मुख ताल मैं।
 लोचन सितासित मैं लोहित लकीर मानो बाँधे जुग मीन लाल रेसम के जाल मैं॥

(बलभद्र मिश्र)

“चंचल न हूँ नथ! अंचल न खैंचो हाथ, सोवै नेक सारिकाऊ, सुक तौ सोवायो जू।
 मंद करौ दीप दुति चंद मुख देखियत, दौरिकें दुराय आऊँ द्वार तौ दिखायो जू॥
 मृगज मराल बाल बाहिरे बिडारि देऊँ, भायो तुम्हें केसव सो मोहूँ मन भायो जू॥”
 छल के निवास ऐसे बचन बिलास सुनि, सौगुनो सुरत हू तें स्याम सुख पायो जू॥

(केशवदास)

भोरहि बोलि कोइलिया बढ़वति ताप। घरी एक भरि अलिया! रहु चुपचाप॥
 बाहर लै कै दियवा बारन जाइ। सासु-ननद घर पहुँचत देति बुझाइ॥

(रहीम)

केस मुकुत सखि! मरकत मनि मय होत। हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥
 सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर। सीय अंग सखि! कोमल, कनक कठोर॥
 चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सोहात। जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलात॥

(तुलसीदास)

1. टोडरमल। अकबर के राजस्व-मन्त्री। तुलसी के मित्र टोडरमल दूसरे थे, जो काशी-निवासी थे।
2. दीप। प्राचीन भारतीय परम्परा विश्व में ‘सप्तदीप’ मानती थी। सम्प्रति छह महादीप हैं। किन्तु अंटार्कटिका को जोड़ने पर सात हो जाते हैं। “सात दीप नौ खंड” का प्रयोग कवीर ने भी किया है।
3. ‘सप्तसागर’ या सप्तसमुद्र (“भूमि सप्तसागर मेखला। एक भूप खूपति कोसला।।”—तुलसी) भी प्रसिद्ध था। “सात समन्दर पार” मुहावरा आज तक चलता है।

8. विविध रचनाकार

ज्योतिरीश्वर ठाकुर¹

हिन्दी के प्रथम श्रेष्ठ गद्यकार ज्योतिरीश्वर ठाकुर कविशेखराचार्य (1300 ई. के आसपास मिथिला नरेश हरिहरदेव के सभा-पंडित) मुख्यतः संस्कृतग्रन्थकार थे जिनके खंडित रूप में प्राप्त 'वर्णरत्नाकर' में नगर, ऋतु, नायिकादि से श्मशान तक के प्रभावी वर्णन प्राप्त होते हैं। पृथ्वीराज के प्रस्तरलेखादि का सूचनात्मक तथा गोरखनाथ की वार्तादि का उपेक्षात्मक गद्य क्रमशः अव्यवस्थित एवं विवादास्पद है, अतः ज्योतिरीश्वर ठाकुर के गद्यकार-रूप का ऐतिहासिक महत्व स्पष्ट है। 'विनोद' का उदाहरण प्रस्तुत है :

“अथ वर्षारत्रि का वर्णन। काजर के भीति तेलें सीचलि अइसन रात्रि पछेवाँ काँ वेगें काजर कमोट फूजल अइसन मेघ निविड मांसहा अंधकार देखू। मेघ पूरित आकाश भए गेल ते अछ। विद्युल्लता क तरंग तें पंथ दिश ज्ञान होइतें अछ। लोचन क व्यापार निष्फल होइतें अछ य रात्रि पात क शब्दें तरु ज्ञान दहुर क शब्दें जलाशय ज्ञान चटक क शब्दें वन ज्ञान झिकरुआ क शब्दें पृथ्वी ज्ञान मेघ क शब्दें आकाश ज्ञान मनुष्य क शब्दें गृह ज्ञान अग्नि क द्योतें पुर ज्ञान चरण क शब्दें पथ ज्ञान वचन क शब्दें परापर ज्ञान विज्ञान जनहुँ दिग्भ्रम जं रात्रि।”

दामो

लक्ष्मणसेन-पद्मावती-कथा (1459 ई.) के कवि दामो सम्भवतः राजस्थान के थे जैसाकि यत्र-तत्र राजस्थानी के शब्दों के प्रयोग से प्रतीत होता है—वैसे, प्रेमकथा ब्रजभाषा में है। इस प्रेमकथा में नायक द्विविवाही है किन्तु उसका पद्मावती (जिसका चितौड़ की पद्मावती या पद्मिनी से कोई सम्बन्ध नहीं) के प्रति प्रेम उत्कट है। पद्मावती का विरह भी वर्णित है। काव्य में वीररस का समावेश भी है। कथानक या तो किसी लोककथा पर आधृत है या कल्पित, जिस पर अनुभूति या अभिव्यक्ति की किसी भी दृष्टि से यत्किंचित् पूर्ववर्ती दाऊद कृत 'चंदायन' का कोई प्रभाव दृग्गत नहीं होता। इस काव्य का परवर्ती कुत्बन, जायसी, मंझन इत्यादि की सूफी-प्रेमकथाओं पर प्रभाव भी सिद्ध कर सकना कठिन ही है। प्रायः आरम्भिक या परिचयात्मक उदाहरण देखें जो नरपति नाल्ह कृत 'वीसलदेवरासो' का स्मरण कराता है :

सुनुहु कथा रस लीला बिलास। योगी मरण अउर बनवास।।
पद्मावती बहुत दुख सहइ। मेलो करि कवि दामो कहइ।।
संवत पंदरइ-सोलोत्तरा मझार। ज्येष्ठ बदी नौमी बुधवार।।
सप्त तारिका नक्षत्र दृढ़ जान। बीर कथा करूँ बखान।।

कल्लोल

'ढोला मारू रा दूहा' राजस्थानी का विशाल एवं विशिष्ट प्रेमकाव्य है, जो लोककथा से लोककाव्य के रूप में विकसित हुआ प्रतीत होता है। पं. कृष्णशंकर शुक्ल ने राठौड़राज प्रियीराज कृत खंडकाव्य 'वेलि' की भूमिका में लिखा है, “इस ग्रन्थ की रचना संवत् 1530 में कल्लोल कवि ने की।” अतः कल्लोल का समय 1473 ई. के इधर-उधर का है। सर्वश्री रामसिंह, सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तमदास स्वामी की विद्वत्त्रयी ने 'ढोला मारू रा दूहा' का सक्षम सम्पादन कर समूचे हिन्दी-साहित्य की महत्वपूर्ण सेवा की है। इस सुन्दर एवं मार्मिक काव्य में प्रेम, मिलन, विरह इत्यादि सारे प्रेम-काव्यावयव बहुत ही उत्कृष्ट रूप में चित्रित मिलते हैं जो कल्लोल को हिन्दी के उच्चकोटि के कवियों में प्रतिष्ठित करते हैं। 'ढोला मारू रा दूहा' ने राजस्थानी-चित्रशैली को भी प्रभावित किया है। इस काव्य की भाषा में राजस्थानी का सहज रूप विवृत हुआ है, जो बहुत ही प्रभावशाली है। प्रेम की ऐसी हृदयहारी व्यंजना उच्चतम कोटि की ही मानी जा सकती है :

साल्ह चलंतइ परठिया आँगण बीखड़ियाँह।
सो मई हियइ लगाड़ियाँ भरि-भरि मूठड़ियाँह।।
साल्ह चलंतइ परठिया आँगण बीखँड़ियाँह।
कूवा केरी कुहड़ि ज्यूँ हियइड हुइ रहियाँह।।

(साल्ह कुमार के चलते समय आँगन में पद-चिह्न बन गए। उनकी धूल को मैंने मुट्ठियाँ भर-भर के हृदय से लगाया। साल्ह कुमार ने चलते हुए आँगन में पदचिह्न बना दिए जो मेरे हृदय में कुँएँ की कुहड़ की तरह होकर रह रहे हैं।)

छीहल¹

राजस्थानी के हिन्दी के एक विभाषा-रूप होने के पुराने प्रमाण-रूप छीहल कवि (रचनाकाल 1519 ई.) ने वियोग एवं संयोग के उभय पक्षों का चित्रण करनेवाली सामान्यस्तरीय 'पंचसहेली' संवाद-कविता लिखी है। आ. शुक्ल ने उनकी अनुपलब्ध रचना 'बावनी' का उल्लेख भी किया है। 'विनोद' से उद्धरण अवतरित है :

देख्या नगर सोहावना अधिक सुचंगा थानु।
नाउँ चँदेरी परगटा जनु सुरलोक समानु।।
ठाई ठाई मँदिर सिति सोन लहीया लेह।
छीहल तिनकी ऊपमा कहत न आवै केह।।
ठाई ठाई सरवर पेखईँ सूभर भरे निवाँण।
ठाई ठाई कुवा बावरी सोहड़ फटिक सिवाँण।।
पंद्रूसै-पचहतै, पूनिम फागुण मास।
पंचसहेली वर्णई कवि छीहल परगास।।

दो या पाँच या सात सहेलियों की विविध काव्यवार्ताएँ लोककाव्य में आज तक प्रचलित हैं, जिनकी भद्दी नक़ल चलचित्र के व्यावसायिक-गीतकार भी करते रहते हैं। लगता है, सहेली-वार्ताकाव्य² की लोक-परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। छीहल इस परम्परा के एक अविस्मरणीय स्मारक हैं।

जसवन्त

हिन्दी साहित्य में जसवन्त नाम के कई कवि हुए हैं, जिनमें एक महाराष्ट्र के भक्त जन-जसवंत (यशस्वियों के सेवक) तुलसीदास के शिष्य थे जिनका देहान्त 1617 ई. में हुआ था तथा निन्हें पुनरुत्थानकालीन रामकाव्यकार माना जाएगा, दूसरे भाषाभूषण-प्रणेता शास्त्रीयकाल के प्रसिद्ध आचार्य (जोधपुर के महाराज) जसवन्तसिंह (1625-1681 ई.) थे, तीसरे शास्त्रीयकाल के ही जसवन्त-विलास एवं धनुर्वेद ग्रन्थों के रचयिता बुन्देला जसवन्तसिंह थे जिनका रचनाकाल 1780 ई. के इर्द-गिर्द का था। इन चार में ख्याति केवल भाषाभूषण के रचयिता महाराज जसवन्तसिंह को ही मिल पाई। पाँच बार भारत की नंगी और पाशविक लूट करने तथा अन्तिम (1526 ई.) में यहाँ मुगल-वंश की स्थापना करनेवाले इतिहास के लघु-महमूद बर्बर बाबर के द्वारा अयोध्या के रामजन्मभूमि-मन्दिर ध्वस्त कराने की प्रतिक्रिया में 9 जून, 1528 को प्रलयकारी युद्ध करके हुतात्मा का गौरव पानेवाले पंडित देवीदीन पांडे (जो निकट ही सरयू-तटवर्ती ग्राम सनेधू के निवासी थे) पर वीररस के अद्वितीय छन्द रचनेवाले जसवन्त कवि इन चारों से भिन्न हैं। यह सम्भवतः समकालीन कवि थे। खेद है कि नानक द्वारा 1521 ई. के आक्रमण-सन्दर्भ में निन्दित, फ़र्गाना के भगोड़े, स्वयं मुसलमानों द्वारा जन्मभूमि एवं काबुल तक में उपेक्षित बर्बर बाबर की तत्कालीन प्रधानमन्त्री विश्वनाथप्रताप सिंह ने जुलाई, 1990 में पूर्व सोविएट यूनियन यात्रा में भरपेट तारीफ़ करके वहाँ के लोगों को भी चकित कर डाला था। महान् योद्धा तथा धर्म-वलिदानी पंडित देवीदीन पांडे की वीरता का वर्णन स्वयं बर्बर बाबर की 'तुजुके-बावरी' में इन शब्दों में प्राप्त है, "जन्मभूमि को शाही अख़्तियारात से बाहर करने के लिए दो-चार हमले हुए, उनमें से सबसे बड़ा हमलावर देवीदीन पांडे था। इस शख्स ने एक दिन में सिर्फ़ तीन घंटे में ही गोलियों की बौछार के रहते हुए भी शाही फ़ौज़ के 700 व्यक्तियों का क़त्ल किया। एक सिपाही की ईंट से इसकी खोपड़ी घायल हो जाने के बावजूद भी वह अपनी पगड़ी को कपड़े से बाँधकर इस क्रूर लड़ाई में किसी बारूद की थैली को जैसे पलीता लगा दिया गया हो!"³

1. 'शीतल' का तद्भव?

2. 'सहेली-वार्ताकाव्य' शोध एवं संकलन का अच्छा विषय है।

3. 'क्या कहती सरयू धारा?' (प्रतापनारायण मिश्र), पृष्ठ 61-64

पांडे लोग वीरता के विभिन्न सन्दर्भों में प्रसिद्ध रहे हैं, जैसे मंगल पांडे, चित्तू पांडे, उग्र, श्यामनारायण पाण्डेय इत्यादि किन्तु देवीदीन पांडे का स्थान निर्विवादतः सर्वश्रेष्ठ है। खेद है कि कृतघ्न राष्ट्र इन्हें भूल-सा गया है। इनका भव्य स्मारण अयोध्या में भी बनना चाहिए, सनेयू में भी। जसवन्त कवि ने इन पर 70 उत्कृष्ट छन्द रचे हैं। बानगी पेश है :

1. ईट के लगत ही चटक खोपरी गई,
बाँधि कसि साफा सों तुरंत बीर हँसि गो।
भाखैं जसवंत टाप घोड़ा की अड़ाय देत
सिंधुर के सीस पर अरि की जान कसि गो॥
भयभीत हौदा में लुकानो जाय बीर बाँकी'
खींचि खड़ग म्यान ते तुरंत तोम तसि गो।
सुंड काटि, मुंड काटि और लौहकुंड काटि,
काटि पीलवान को जमीं में जाय धँसि गो॥
2. काटि-काटि कल्ला से दुपल्ला भूमि डारि दीन्हीं
मानो मीचु आपही भई है रूप खँडे की।
अल्ला-अल्ला बोलि कै मुसल्ला करै हल्ला'लागे
राह धरि भागिकै गोसाईगंज टँडे² की॥
खोलि फेंकि लुंगी औ लगाय कै तिलक भाल,
रोइ हाथ जोरि-जोरि माँगें भीख छँडे की।
फब्बी रनभूमि झूमि छब्बी भई हिंदुन की
देखिकै जुनब्बी जोर देवीदीन पाँडे की॥

निस्सन्देह जसवन्त कवि चन्द्र, जगनिक, जज्जल, बनवारी, भूषण, जोधराज, सूदन, गोविन्दसिंह, चन्द्रशेखर वाजपेयी, श्यामनारायण पांडेय, दिनकर इत्यादि की वीरकाव्य-शृंखला की एक मजबूत कड़ी हैं, जिनका सृजन प्रशस्य भी है, प्रणम्य भी।

कृपाराम

कविहितार्थ रचित 'हितरंगिनी' (1541 ई.) नामक अतिलघु रसनिरूपक रमणीय ग्रन्थ के प्रणेता कृपाराम शास्त्रीयकाल के प्रथम अग्रदूत के रूप में साहित्येतिहास-पुरुष सिद्ध हो चुके हैं। रत्नाकर के अनुसार ये पश्चिमी ब्राह्मण थे। कृपाराम नाम के अनेक साहित्यसेवी हुए हैं। एक कृपाराम ज्योतिषी जयपुर-नरेश जयसिंह के आश्रित थे, जिन्होंने 1720 ई. में 'समयबोध' नामक ज्योतिष-ग्रन्थ बनाया। दूसरे समनामी-समसामयिक कृपाराम ज्योतिषी शाहजहाँपुर के कायस्थ थे जिन्होंने 'भाषा ज्योतिषसार' (1735 ई.) बनाया। तीसरे कृपाराम गूदड़ चित्रकूट के एक महन्त थे जिन्होंने 'भागवत दशम स्कन्ध' (1758 ई.) बनाया और जो मुझे 'भागवत भाषा' एवं 'चित्रकूट-माहात्म्य' इत्यादि के रचयिता कृपाराम नारायणपुर (गोंडा) वाले से अभिन्न लगते हैं। एक अन्य कृपाराम खिड़िया (1800 ई. के लगभग विद्यमान), सीकर (राजस्थान) वाले भी हुए हैं जिनके सोरठे प्रसिद्ध हैं। पाँच-छह कृपारामों में हिततरंगिणीकार कृपाराम सर्वोपरि हैं जिनके सुन्दर दोहे बिहारी, मतिराम, रसलीन इत्यादि तक को प्रेरित-प्रभावित कर चुके हैं। निस्सन्देह, कृपाराम आचार्य तो हैं ही, उत्कृष्ट शृंगारी-कवि भी हैं। इनके अनुसार अनेक कवियों ने बड़े शृंगार-ग्रन्थ लिखे थे (जो अब उपलब्ध नहीं), अतः यह छोटा-सा ग्रन्थ लिख रहे हैं तथा (मुख्यतः) दोहा छन्द अपनाते हैं जो लघुता में गुरुता-सक्षम है। 'विनोद' से उद्धरण प्रस्तुत हैं :

सिधि-निधि-सिवमुख-चंद्र³ लखि माघ सुदि⁴ वृत्तियासु।
हिततरंगिनी हौं रची कवि हित परम प्रकासु॥

1. विदेशी मुगलों का आक्रान्ता सेनानायक मीर बाँकी। विरोधाभास अलंकार।

2. गोसाईगंज टँडे में मुसलमान बहुत रहे हैं।

3. चन्द्र (1), शिवमुख (5), निधि (9), सिधि (8) = 1598 वि.।

4. सुदी (शुक्ल-पक्ष)। 'विनोद' में शुद्धि गलत लिखा (या छपा) है, 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (शुक्ल) में शुक्ल-पक्ष (सुदि) ठीक है।

वरनत कवि सिंगाररस छंद बड़े विस्तारि ।
 मैं बरन्यो दोहानि बिच याते सुघर विचारि ।।
 लोचन चपल कटाच्छ सर अनियारे विष पूरि ।
 मन मृग बेधै मुनिन के, जग जन सहत¹ बिसूरि ।।
 आज सबारे हौं गई नंदलाल हित ताल ।
 कुमुद कुमुदिनी के भट्ट! निरखे औरै हाल ।।
 पति आयो परदेस ते ऋतु वसंत को मानि ।
 झमकि झमकि निज महल में टहलैं करै सुरानि ।।

करनेस

शास्त्रीयकाल के प्रथम अग्रदूत कृपाराम 1541 ई. में प्रस्तुत 'हिततरंगिनी' में रसनिरूपण कर चुके थे। मोहनलाल मिश्र² 1559 ई. में 'शृंगारसागर' द्वारा आगे आनेवाले काल की एक विशिष्ट प्रवृत्ति की पूर्वसूचना दे चुके थे। करनेस³ (नरहरि वंदीजन के शिष्य-मित्र और स्वयं वंदीजन जो अकबर के दरबार में जाते थे—रचनाकाल 1580 ई. के आसपास) ने कर्णाभरण⁴, श्रुतिभूषण एवं भूपभूषण शीर्षक अलंकार-ग्रन्थ रचकर आगे आनेवाले काल के 'अलंकृत' होने की पूर्वघोषणा की। उनके श्लिष्ट ग्रन्थाभिधान ही उनके अलंकारवादी होने की सूचना देते हैं। मिश्रबन्धु के अनुसार करनेस का काव्य 'साधारण श्रेणी' का है। किन्तु शास्त्रीयकाल के एक अग्रदूत होने के कारण वे अमर हैं। दूसरे, उन्होंने खड़ीबोली में भी काव्यरचना की है :

खात हैं हराम दाम, करत हराम काम, धाम-धाम तिनही के अपजस छावेंगे ।
 दोजख मैं जैहैं तब काटि-काटि कीड़े खैहैं, खोपड़ी को गूद काक टोंटन उड़ावेंगे ।।
 कहै करनेस अबै घूस खात लाजैं नहिं, रोजा औ नेवाज अंत काम नहिं आवेंगे ।
 कविन के मामिले में करैं जौन खामी, तौन निमकहरामी मरे क़फ़न न पावेंगे ।⁵

तुर्क-पठान काल अन्धकार-काल था। उसमें घूस का बाज़ार गर्म था। प्रतिष्ठित विदेशियों तक को उत्कोच की शरण लेनी पड़ती थी जैसा कि इब्नेबतूता के 'अजाइबुल-असफ़ार' से जाहिर होता है। शेरशाह सूरी के कठोर शासन में भी 'अँकोरा' चलता था जैसा कि जायसी के पद्मावत से स्पष्ट है। मुग़ल-काल भी वैसा ही रहा। अकबर के समय 'घूस' का वर्णन स्वयं दरबारी करनेस ने किया है। 'हिन्दी-कविता में उत्कोच-वर्णन' निबन्ध का रोचक विषय है।

1. 'विनोद' का 'सहित' ग़लत है, शुक्ल ठीक है।

2. 'पत्तलि' (कृष्णविवाह में नन्द की ज्योनार) के कवि मोहनलाल द्विज से भिन्न। 'पत्तलि' का 1190 ई. रचनाकाल विवादास्पद हो सकता है।

3. चन्द्रशेखर वाजपेयी के गुरु करनेस (रचनाकाल 1810 ई. के आसपास), रसकल्लोल एवं साहित्यरस के प्रणेता करन कवि (रचनाकाल 1800 ई. के आसपास, छत्रसाल-पुत्र हिन्दूपति के अश्रित) तथा रसकल्लोल एवं साहित्यचन्द्रिका (विहारी-सतसई टीका) के प्रणेता करन भट्ट (जो हिन्दूपति के ही अश्रित थे—जिनके दो अश्रित-कवियों ने मिलते-जुलते शीर्षकों के ग्रन्थ रचे, जिसका कारण "हम किसी से कम नहीं" की प्रवृत्ति लगती है) से भिन्न, पूर्ववर्ती भी, प्रथमोल्लेख्य भी।

4. गोविन्द कवि कृत सरल-सुगम कर्णाभरण (1740 ई.) से भिन्न (द्रष्टव्य है डॉ. ओमप्रकाश कृत 'हिन्दी अलंकार-साहित्य')।

5. आजकल मरने पर भी जो राशि दी जाती है उससे पर तक 'पत्ती' चलती है—भूकम्प, बाढ़, सूखा इत्यादि नेताओं, अधिकारियों, समाजसेवियों के लिए चिन्तामणि, कामधेनु, कल्पतरु इत्यादि बन गए हैं। अतः पिछले युग घूसरहित लगते हैं। पर घूस चलती पहले भी थी। करनेस ने कवि-वृत्ति पर भी 'पत्ती' की भर्त्सना की है। कुछ पहले, जायसी ने पद्मावत में "टका लाख दस दीन्ह अकोरा" (अँकोरा या अकबर या घूस) का वर्णन किया है। काफ़ी पहले आनेवाले मोरक्को के यात्री इब्नेबतूता ने 'अजाइबुल-असफ़ार' में विकट घूसखोरी का वर्णन किया है (और तब जबकि वह भयानक सुल्तान मोहम्मद तुग़लक़ के बहुत नज़दीक था)। प्राचीन भारत में भी उत्कोच चलता था। 'घूसखोरी और उसका इतिहास' लिखा जाए तो एक गम्भीर-रोचक ग्रन्थ से साहित्य सम्पन्न हो सकता है।

वजही

‘सवरस’ के गद्यकार-कवि मुल्ला वजही (रचनाकाल 1550-80 ई.) गोलकुंडा के कुली कुतबशाह के पिता इब्राहीम कुली कुतबशाह के दरबारी कवि थे। इनका स्वदेश-प्रेम प्रशंस्य है :

दखिन सा नहीं ठार संसार में। निपट फाजिलों का है इस ठार में॥
दखिन है नगीना अँगूठी में जग। अँगूठी कूँ हुरमत नगीना ही लग॥
दखिन मुल्क कूँ धन अजब साज है। कि सब मुल्क सिर होर दखिन ताज है॥

आलम (अकबरकालीन)

पुष्पानगरी-नरेश गोपीचन्द्र द्वारा निर्वासित वीणावादक माधव और कामावती-नरेश कामसेन की राजनर्तकी कामकन्दला के प्रेम-प्रणय की लोकगाथा में कल्पना तथा अध्यात्म के समन्वय एवं विक्रमादित्य के गौरव का समावेश कर ‘माधवानलकामकन्दला’ की अवधी चौपाई-दोहों में रचना करने वाले आलम 1580 ई. के आसपास विद्यमान थे। यह कृति सूफ़ी-मसनवीगत प्रेमाख्यानों से भिन्न तो है, किन्तु कोरी शृंगारिक नहीं। हिन्दी में आलम नाम के चार कवि तथा एक कवयित्री विद्यमान हैं : 1. ‘माधवानलकामकंदला’ के कवि आलम जो अकबरकालीन थे, 2. गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी-कवि आलम जिन्होंने गुरु की प्रशस्ति की है, 3. आलमों में आलम स्वच्छन्दतावादी कवि जो मुअज़्ज़म के आश्रित थे, 4. ‘सुदामचरित’ के सामान्य लोककवि आलम जो पद्माकर के समकालीन थे, तथा 5. आलम बेगम जो वाजिद अलीशाह की एक बीवी थीं। ‘माधवानलकामकंदला’ के आलम समय की दृष्टि से सारे आलमों में प्रथम हैं। डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव के अनुसार, “माधव-कामकंदला की कहानी पर रचित काव्यग्रन्थों में मुख्य रूप से भीष्म कृत ‘माधवविलास’ या ‘माधवानलकामकंदला’ (रचनाकाल सं. 1810), हरिनारायण कृत ‘माधवानलकथा’ (रचनाकाल सं. 1832), नेवाजीलाल कृत ‘माधवानलकथा’, गणपति कृत ‘माधवानल प्रबन्ध दोग्धक’, कुशलाभ कृत ‘माधवानलकामकंदलाचरित्र’, दुधसिंह पंजाबी कृत ‘माधवनलकथा’, बोधा कृत ‘विरह-वारीश’ और अज्ञात कवि रचित ‘माधवनलकामकंदला चौपाई’ उल्लेख्य हैं।’ वस्तुतः ‘हिन्दी के माधवानलकामकंदला-काव्य’ स्वतन्त्र शोध की अपेक्षा रखते हैं। उदाहरण :

अथ माधवानल भाषाग्रंथ लिख्यते।
प्रथम पारब्रह्म परणामं। पुन कष्ट युगति रीति वर नामं॥
घट घट बसै सु अंतरजामी। ता घट भेद पार नहिं पामी॥
घट-घट रहै लखै नहिं कोई। जल-थल रहे सर्व में सोई॥
जाकी आदि-अंत नहिं जानी। पंडित कथा ज्ञान सोई मानी॥
माधवनल कंदल मिलाई। फिर विक्रम नुजै नै जाई॥
संग बिप्र माधव तब लीन्हा। जिन यह प्रेम पसारा कीन्हा॥

1. शेख शरफुद्दीन अशरफ़ का 1503 ई. में व्यक्त हिन्दीप्रेम देखें :

बाचा कीना हिंदवी में।
क्रिस्सा मरुतल शाह हुसैन॥
नज़म लिखी सब मौजूँ आन॥
यों मैं हिंदवी कर आसान।
यक यक बोल यह मौजूँ आन।
तक्ररीर हिंदवी सब बखान॥

बुरहानुद्दीन जानम (जन्म 1522 ई.) का हिन्दीप्रेमोद्गार प्रसिद्ध है ही :

सब मिल बोलो हिंदी बोल।
ऐब न राखें हिंदी बोल।
माने तूँ चख देखे खाल॥

राजा नगर उजैन कुँ गयाऊ । तब ही अंत कथा को भयऊ ।
माधवनल अरु कंदल नारी । बिधना जोरी दर्ई सँवारी ।।

डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव ने इन्हीं माधवानलकामकंदला के कवि आलम (अकबरकालीन) कृत 'श्यामसनेही' या 'रुक्मिणीहरण' काव्य का उल्लेख भी किया है तथा उदाहरण भी दिया है। यह सारा प्रात्ययिक लगता है, क्योंकि भाषा-शैली एकदम इन्हीं की है तथा नामोल्लेख भी प्राप्त होता है।

तानसेन¹

'आईने-अकबरी' में अबुल फ़ज़ल ने लिखा है कि तानसेन की टक्कर का गायक हिन्दोस्तान में एकहज़ार साल से नहीं हुआ आत्मकथा (तुजुकेजहाँगिरी वस्तुतः जहाँगीरनामा) में जहाँगीर का उद्गार है कि किसी युग में ऐसा गायक नहीं हुआ।

पीथल² सों मजलिस गई, तानसेन सों राग।

हँसिबौ, रमिबौ, खेलिबौ गयो बीरबल त्याग।।

तानसेन का नाम रामतनु मिश्र का तन्ना मिश्र या तन्नू मिश्र थे। यह पांडेय-वंशधर थे जो अकबर के सारे ब्राह्मणों को 'मिश्रजी' कहने के स्वभाव के कारण मिश्र बने तथा कालांतर में दरबार में आने-जाने के कारण मुसलमान। ग्वालियर में तानसेन की कब्र पर प्रतिवर्ष विराट् संगीत-मेला लगता है। मध्य प्रदेश प्रशासन प्रतिवर्ष तानसेन पुरस्कार देता है। तानसेन की कब्र वाली इमली की पत्तियाँ खाने से गला मीठा होना तक माना जाता है! उत्तर भारत में तानसेन को प्रायः वही आदर प्राप्त है जो दक्षिण भारत में त्यागराज को, यद्यपि त्यागराज इनके सदृश संगीत-सम्राट् मात्र न होकर महाकवि भी हैं, संत भी। तानसेन का कवि-रूप अत्यन्त साधारण है। अपने व्यक्तित्व की समग्रता एवं कृतित्व की विविधता में त्यागराज तानसेन से श्रेष्ठतर सिद्ध होते हैं। किन्तु अकबर से जुड़े रहने के कारण तानसेन की ख्याति विशेष रूप से है (विशेषतः उत्तर भारत में अधिकतर अंचलों में)।

तानसेन द्वारा प्रवर्तित 'मियाँ की मल्हार', 'मियाँ की टोड़ी', 'गूजरी टोड़ी' (गूजरी ग्वालियर-रानी मृगनयनी पर नामित, जिसके राजा मानसिंह तोमर निर्मित 'गूजरी-महल' और वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'मृगनयनी' उपन्यास जैसे अन्य 'स्मारक' भी विद्यमान हैं—दूरदर्शन में एक चलताऊ धारावाहिक 'मृगनयनी', 1991-1992 ई., भी चला), 'दरबारी कान्हरा' जैसे राग आज भी शास्त्रीय संगीत की निधियाँ हैं। तानसेन और इनके गुरुभाई बैजू बावरा पर अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं ('संगीत-सम्राट् तानसेन' और 'बैजू बावरा' चलचित्र भी बन चुके हैं)। गुरु हरिदास तो ध्रुपद के सर्वश्रेष्ठ गायक रूप में अमर हो ही चुके हैं, जिनका विशाल स्मृति-पर्व वृन्दावन में मनाया जाता है—वस्तुतः गुरु हरिदास ही वृन्दावन के संस्थापक थे। हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा, कुम्भनदास, गोविन्दस्वामी इत्यादि महान् गायक प्रायः समकालीन थे। यह वैसा ही विलक्षण है जैसा जायसी, मीराँ (मीरा), सूर, तुलसी, केशव, रसखान इत्यादि महान् कवियों का प्रायः समकालीन होना। राजनीति में भी शेरशाह, अकबर, बीरबल, रहीम इत्यादि भी प्रायः समकालीन थे। पुनरुत्थानकाल का सर्वोच्च रूप इन्हीं में साकार होता है। किंवदन्ति है कि सूर ने तानसेन की प्रशंसा में कहा था :

बिधना यह जिय जानिकै सेषहि दिए न कान।

धरा मेरु सब डोलती तानसेन की तान।।

तानसेन की कृतियाँ, 'रागमाला', 'संगीतसार', 'गणेशस्तोत्र', 'ध्रुपद' और 'हिय हुलास' बताई जाती हैं। 'ख्यालटिप्पा' एवं 'रागकल्पद्रुम' में भी इनकी स्फुट रचनाएँ मिलती हैं। उदाहरण देखें:

1. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने 'कवि तानसेन और उनका काव्य' ग्रन्थ लिखा है। 'भारत-निर्माण' (भाग 1) में कृष्णवल्लभ द्विवेदी ने भी तानसेन पर लिखा है। 'दो सो-बावन वैष्णव की वार्ता' तथा वैष्णव रामदास संपादित 'श्री गुसाईं जी के निज सेवक 252 वैष्णव की वार्ता' में तानसेन पर कथा प्रात्ययिक नहीं लगती। अन्य अनेक कथाएँ भी प्रचलित हैं।
2. फ़तहपुर सीकरी का 'प्रियस्थल' जहाँ धर्म, संगीत, कला की गोष्ठियाँ लगती थीं। कहीं अबुल फ़ज़ल एवं उनके अग्रज फैज़ी का आवास, कहीं बीरबल का महल, कहीं दीवानेखास जहाँ तानसेन गाते थे, विविध धर्मों एवं मज़हबों के आचार्य आते थे—दोहा आज भी 'देखा' जा सकता है। प्रियराज को भी पीथल कहते थे।

1. आज कहा तज बैठी है भूषण ए से अंग कछू अरसीले ।
बोलत बोल रुखाई लिए तुम काहे कुढंग किए अहसीले ।।
क्यों न कहो दुख प्रान प्रिया सों आँसु रहे भर नैन लजीले ।
तानसेन सुख होवै जिनके तिनके मनभावन छैल-छवीले ।।
2. बादर आए री लाल पिया विन लागे डरपावन ।
एक तो अँधेरी कारी विजुरी चमकत उमड़-धुमड़ बरसावन ।।
जब ते पिया परदेस गवन कीनो तब ते बिरह भयो भरे वन तावन ।
सावन आय अति झर लावत तानसेन न आए मनभावन ।।
3. लंगर बटमार खेलै होरी ।
बाट घाट कोउ निकस न पावै पिचकारिन रंग बोरी ।।
मैं जु गई जमुना जल भरने गह मुख मीजी रोरी ।
तानसेन प्रभु नंद को ढोटा बरज्यो न मानत मोरी ।।

तानतरंग ख़ाँ

तानसेन (मृत्यु 1589 ई.) के विलास ख़ाँ, सुरतसेन, तानतरंग ख़ाँ और निचोड़सेन पुत्रों तथा कई पुत्रियों में तानतरंग ख़ाँ संगीतात्मक ब्रजभाषा-कवि भी थे :

राग टोढ़ी

अब ही डारि दै रे इँडुरिया कन्हवाई मेरी पँचरँग पाट¹ की ।
हा हा खात, तेरे पैयों परति हों लालच मोहिं मथुरा नगर हाट की ।।
मेरे सँग की दूरि निकसि गई, हों न रही किहुँ घाट की ।
'तानतरंग' प्रभु झगरौ ठान्यौ, हँसत लुगाई बाट की ।।

राग भैरवी चौताल

रैन गँवाय आए हो लालन, कहाँ जागे सारी रात, बात कहो प्यारे ।
नव किशोर नवल तिया संग जागे भागे अंग अंग के चिह्न न्यारे-न्यारे ।।
सिगरी निसा मोहि तलफत बीती भोर भए पै आए लला रे ।
'तानतरंग' रंग रस भीने कीन्हें नखचिह्न भाग जागे हमारे ।।

बाज़बहादुर

मालवा के सुल्तान बाज़बहादुर अकबर (राज्यकाल 1556-1605 ई.) से परास्त होकर अंततोगत्वा दरबार के एक विशिष्ट गायक के रूप में विजेता के निकट आए । 'आईने-अकबरी' में अबुल फ़ज़ल ने इन्हें महान् गायकों की सूची में समादृत किया है । मालवा और अन्यत्र भी बाज़बहादुर और रूपमती की प्रेमकथा और इससे संबद्ध लोकगीत प्रचलित हैं । बाज़बहादुर मूलतः गायक थे, कवि नहीं, किन्तु हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा, तानतरंग ख़ाँ इत्यादि गायकों के सदृश इन्होंने भी कुछ संगीतात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं :

1. रेशम । "पाट कीट ने होय ताते पाटंबर रुचिर ।" (तुलसी)

1. भैरव-चौताल

करता तुमको कीनो सब लायक, मेरी मुसकिल करो आसान ।
जो जो तोहे तक आवै, मन इच्छा फल पावै
सब गुणजीन को सुखदायी
बाज़बहादुर गुणनिधान राखत सबको सम्मान ।¹

2. ध्रुपद

तू ही सर्वशक्तिमान जग में बिराजत, सृजन करत जीव निरख अचरज लगत ।
तुअ दरशन अब लौं कहीं न पायो, याही लिए निराकार कहत ।।
जेते योगी गुणी ज्ञानी तुव कृपा से, होय और बहुत यश लहत ।
बाज़बहादुर तिनहिं गुण गावत और आनंद-मगन रहत ।।

रूपमती²

मालवा के सुल्तान बाज़बहादुर की प्रेयसी रूपमती अच्छी संगीत-प्रवण कवयित्री थी, जिसका देहान्त 1590 ई. के आसपास हुआ । मध्यकालीन बर्बरता के अनुरूप, बाज़बहादुर ने अकबर के आक्रमण का प्रतिरोध करते जाते समय महल के सैनिकों को आदेश दे दिया था कि पराजय की स्थिति में बेगमों को मार डालें । विजयी सेनापति अहमद ख़ाँ ने रूपमती को मरणासन्न पाया तो चिकित्सा कराई तथा ठीक होने पर प्रणय-निवेदन किया । बारम्बार इंकार करने पर भी पिंड न छूटता देखकर रूपमती ने हामी भर ली किन्तु जब वह मिलने आया तब देखा रूपमती आत्महत्या कर चुकी थी!³ अहमद ख़ाँ को यह दोहा अवश्य मिला:

रूपमती दुखिया भई बिना बहादुर बाज़ ।

सो सब जियरा तजति है, इहाँ नहीं कछु काज ।।

रूपमती की विरहव्यथाप्रवण कविता उसे समसामयिक कश्मीरी-कवयित्री हब्बा खातून से समतुल्य बना देती है । निस्सन्देह, रूपमती हिन्दी की हब्बा खातून है । दोनों मुसलमान पूर्व सत्ताधारियों की पलियाँ थीं । इतना अन्तर अवश्य था कि रूपमती हिन्दू से मुसलमान बनी थी तथा बाज़बहादुर का बेगमों की हत्या का आदेश बर्बरतापूर्ण था (स्वयं अकबर का दरवारी गवैया बनकर वेशमी से जीता रहा जैसाकि आईने-अकबरी से ज़ाहिर है) । किन्तु रूपमती का प्रेम अनन्य था :

1. राग विराग

स्याम बिना उमगे री, बहु बदरा ।

बरखत रहत रैन अरु बासर, हिया कियो अति कदरा ।।

कासों कहों, सुने को मेरी, जोहत बैठी पिय को मगरा ।

रूपमती और बाज़बहादुर तजि दियो गोकुल मिटि गयो झगरा ।।

2. राग देवगंगाधर

तू जो अब मुख देखन कहत, एतौ गुमान करें रीझे ललना भावै ।

बाद ही बकिबो करत, पूछे ते उतर न देति, कंचन की सम काँच जो भावै ।।

1. सम्भवतः यह भैरव-चौताल किसी कवि ने बाज़बहादुर के प्रति रची है । किन्तु स्वयं उनकी भी हो सकती है (अकबर के प्रति) ।

2. 'रानी रूपमती' नामक एक मार्मिक चलचित्र भी बन चुका है । साहित्यिक रचनाएँ भी हुई हैं ।

3. कश्मीर की रानी कोटा और विदेशी सत्तादस्यु शाह मीर का घटनाचक्र (1369 ई.) याद आता है ।

साह कसौटी के नाह मेरे जान, तही की मैहयाँ जो मन में रहि जावै।
रूपमती कहै ताही को लैहनों, जो बाज़बहादुर को आइ रिझावै॥

3. राग टोड़ी

देखौ री वौ आवत बगर में, हीरी खेलत स्याम सलोना।
छिन में मन बस करत सबन कौ, वाकी मुरली में है कछु टोना॥
मोर-मुकुट, कुंडल की अति छवि, अरुन नैन अंजन धरे कोना।
रूपमती मन होत बिरागी बाज़बहादुर के नंद द्विटोना॥

फैज़ी

1. ईशो-अ-ला-ब-हिंद गर्म खेज़स्त। ईज़ास्त कि आफ़ताब तेज़स्त॥
इश्के-अरब व अज़मशुदीनम्। अज़-हिंद बगोयम आंचि दीदम्॥¹
2. ई नशऽअजां ज़ियाद दारम्। क-ज शक़रे-हिंद वादऽदारम्॥²

अबुल फ़ज़ल के अग्रज अबुल फ़ैज़ (1517-1595 ई., आगरा) फ़ैज़ी के नाम से मशहूर हैं जो फ़ारसी के महाकवि एवं गद्यकार के अतिरिक्त ब्रजभाषा-कवि भी थे। जहाँ तक भारत-प्रेम का सम्बन्ध है, फ़ैज़ी अपने समय के खुसरो थे। अटूट भारत-प्रेम के कारण कष्टर तत्व बन्धुद्वय का विरोध भी करते थे। दोनों भाई मज़हब के पाबन्द थे जैसाकि फ़तहपुर सीकरी के शेख़ सलीम चिश्ती के दरगाह से नगरभाग की ओर उतरते ही उनके आवास से भी ज़ाहिर है, किन्तु दोनों महान् देशभक्त भी थे। इनके तीन सगे भाई और थे तथा एक सौतेला भाई भी था। अकबर ने फ़ैज़ी को 'मलिकुशुअरा' (कविसम्राट्) की पदवी दी थी। कहते हैं, विश्व की सम्भवतः बृहत्तम कथा 'तिलिस्म-होशरुबा' फ़ैज़ी की ही कृति है।

शिवसिंह ने फ़ैज़ी का हिन्दी-कवि के रूप में प्रथम उल्लेख किया है। राहुल सांकृत्यायन ने 'कविराज फ़ैज़ी' लेख ('सरस्वती', सितम्बर 1956) लिखा था। डॉ. शैलेश ज़ेदी, डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव इत्यादि ने भी इन पर लिखा है। ब्रजभाषा में फ़ैज़ी की रचनाएँ बहुत कम हैं। सम्भव है, उन्होंने कुछ-अधिक लिखी हों। किन्तु जो प्राप्त हैं, वे सुन्दर हैं। विषय प्रकृति एवं विरह हैं। उदाहरण देखें :

1. कहुँ कहुँ थोर थोर पात गिरै रूखन तैं, कहुँ कहुँ पातिन में आई पियराई है।
कहुँ कहुँ सारी पीरी पातिन बिलोकति हैं, कहुँ कहुँ झरन की झर सी लगाई है॥
कहुँ कहुँ ठाढ़े द्रुम देखियत दिगंबर से, कहुँ कहुँ कोउ कोउ डार हरियाई है।
'फ़ैज़' यह सब होत पेखि पेखि प्रान हा हा, बेग कहो बीर³ यह कौन ऋतु आई है॥
2. आलस कै मुख जानैं कौं पीय पियारी के प्रीति गए चलि पागै।
छाय रहो हियरा दुख सों जब देखो न हवाँ नँदलाल सुभागै॥
काहू सों लौ लहहू न कही मति स्याम न चित्त कहुँ अनुरागै।
खेलत खेल सहेलिन में पर खेल नवेली को जेल सो लागै॥⁴
3. लख्यो न कंत सहेट में तक्यो नखत गौराई।
नबल बाल को कँबल सो गयो वदन कुम्हिलाई॥

1. प्रेम की यह ज्वाला हिंद में प्रज्वलित हुई। यह वह स्थान है जिसके सूरज में प्रखरता है। मैंने अरब तथा ईरान का 'प्रेम' सुना है, भारत का (प्रेम) कहता हूँ जिसमें मैंने देखा है। ('मध्ययुगीन हिन्दी की सूफ़ी-इतर मुसलमान कवि' डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव, पृष्ठ 253)। सन्दर्भ 'नल-दमन' शीर्षक फ़ारसी-मसनवी का है, जो नल-दमयंती-कथाधृत है।
2. इस प्रेम का नशा मुझे ज्यादा है क्योंकि प्याला प्रेम हिन्द के शक्कर का है। (वही, पृष्ठ 252)
3. सखी। वीर, भट, माई, अली, अली, आलि, आली प्रभृति शब्द भी प्रचलित हैं।
4. इस छन्द की प्रमाणिकता संदिग्ध है।

बलभद्र मिश्र

अमर 'नखशिख' एवं उत्कृष्ट 'रसविलास' के विख्यात कवि एवं आचार्य बलभद्र मिश्र (प्रसिद्धिकाल 1590 ई. के आसपास-ओरछा के निवासी) शास्त्रीयकाल के अग्रदूतों में थे। शास्त्रीयकाल के उद्घाटनकर्ता महाकवि केशवदास इनके अनुज थे, जिन्होंने अपनी 'कविप्रिया' में इनका सादर उल्लेख किया है। मिश्रबन्धु के शब्दों में "नृप शंभु के अतिरिक्त बलभद्र का 'नखशिख' भाषा-साहित्य के प्रायः समस्त नखशिखों से बढ़कर है।" अल्पलेखन पर भी अमरता के हितहरिवंश, नरोत्तमदास, बलभद्र, बिहारी, दूल्हा, रामचन्द्र जैसे कवियों के निदर्शन कम ही मिलते हैं। केवल 'नखशिख' के कारण बलभद्र मिश्र शास्त्रीयकाल के उल्लेख्य कवियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित हैं। 1834 ई. में गोपाल कवि ने 'नखशिख' की टीका लिखी जिसमें इनके 'बलभद्री-व्याकरण', 'हनुमन्नाटकटीका', 'गोवर्द्धन-सतसई टीका' जैसे कई ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। इनका 'दूषण-विचार' शीर्षक ग्रन्थ भी मिला है। 'नखशिख' से दो ललित उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. पाटल नयन कोकनद के से दल दोऊ बलभद्र बासर उनींदी लखी बाल मैं।
सोभा के सरोवर में वाइव की आभा कैधों। देवधुनी भारती मिली है पुण्यकाल मैं।।
काम-कैवरत कैधों नासिका-उडुप वैठो खेलत सिकार तरुनी के मुख-ताल मैं।
लोचन सितासित में लोहित लकीर मानो। बाँधे जुग मीन लाल रेसम के जाल मैं।।
2. मरकत के सूत कैधों पन्नन के पूत, अति राजत अभूत तमराज के से तार हैं।
मखतूल-गुनग्राम सोभित सरस स्याम, काममृगकानन कै कुहू के कुमार हैं।।
कोप की किरन कै जलज-नाल नील तंतु, उपमा अनंत चारु चँवर सिंगार हैं।
कारे सटकारे भीजे सोंधे सों सुगंध बास, ऐसे बलभद्र नवबाला! तेरे बार हैं।।

एकनाथ

महान् एकनाथी-भागवत² एवं भावार्थ-रामायण (मराठी-रामायणों में प्रमुख) के अमर-प्रस्तोता, 'ज्ञानेश्वरी' के उद्धारक एवं प्रसारक, महाराष्ट्र के विश्वविश्रुत संत एकनाथ (1533-1599 ई.) भारतीय साहित्य के सीमांतों में एक हैं। 'श्रीरुक्मिणी-स्वयंवर' एवं 'स्वात्मसुख' इनके अन्य अमर ग्रन्थ हैं। तुलसीदास के सदृश, एकनाथ ने भी रामकृष्ण उभय-काव्य का सृजन किया, व्यापक समन्वय-शक्ति का परिचय दिया, आत्मपरक काव्य भी रचा। यद्यपि तुलसी का कलाकार-रूप अधिक प्रशस्त है, तथापि दोनों समसामयिक थे, दोनों मूलनक्षत्र में जन्मे थे, दोनों को मातृपितृसुख नहीं मिल सका था (तुलसी परित्यक्त हुए, एकनाथ के माता-पिता नहीं रहे), दोनों ने काशी में भी सृजन किया (यद्यपि एकनाथ की समाधि पारण में है तथा एक नव-तीर्थ भी बन सकती है)। किन्तु तुलसी के विपरीत एकनाथ मोहम्मदी प्रभाव से अभिभूत हैं। नामदेव के सदृश, एकनाथ ने खड़ीबोली काव्य-रचना भी की है जिसके सरल-सामान्य-कलारहित रूप को जनकाव्य में समाविष्ट किया जा सकता है। वैष्णव होते हुए भी एकनाथ ने नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि के सदृश हिन्दू-मुस्लिम-एकता, जातिपाँति-खंडन, एकेश्वरवाद इत्यादि का प्रतिपादन किया है :

1. अल्ला रखेगा वैसा रहना। मौला रखेगा वैसा रहना।।
कोई दिन सिर पर छतर उठावै। कोई दिन सिर पर घड़ा चढ़ावै।।
कोई दिन सेवक हाथ जोड़ खड़े। कोई दिन नजीक न आवत ठड़े।।
एका जनार्दन करत करतारी। गाफल क्यों करता मक्कारी।।

1. 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 'रेशम की डोर' ग़लत है। 'विनोद' में ठीक है।

2. "आपने केवल 25 वर्ष की आयु में 'एकनाथी-भागवत' नामक एक अपूर्व ग्रन्थ बनाया। 'ज्ञानेश्वरी', 'दासबोध' जैसे महामान्य ग्रन्थों की श्रेणी में स्थान प्राप्त करने की योग्यता इसी एक ग्रन्थरत्न को है।" —मिश्रबन्धु

2. देव छिनाल का छिनाल का । खेल खिलाड़ी बाँका ।।
छंद बड़ा सुखर को बाँटा । जाकर झरोखे में बैठा ।।
बड़ा धरम का दाता । नहीं जाति-पाँति कुछ नाता ।।
एकनाथ का वाली । उसे कौन देवे गाली ।।
3. हजरत मौला मौला सब दुनिया पालनवाला ।
सब धरमों साईं बिराजे करत है बोलबाला ।
गदीबनवाज ! मैं गरीब तेरा, तेरे चरनन कूँ रतवाला ।।
अपना साथी समझ के लेना सलील वोही अल्ला ।
जिन रूप से जगत पसारा वोही सल्लाल अल्ला ।।

अकबर

विगत सहस्राब्दि (1000-2000 ई.) के भारतीय इतिहास का अतुलनीय शासक एवं नेता अकबर (जीवनकाल 1542-1605 ई., राज्यकाल 1556-1605 ई., जन्मस्थान अमरकोट, निधनस्थान आगरा) संसार के सर्वश्रेष्ठ सम्राटों एवं महापुरुषों में परिगणित है। इधर की तीन सहस्राब्दियों में मौर्य-वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य, महान् गुप्त वंश के 'वास्तविक संस्थापक' समुद्रगुप्त एवं उसके प्रतापी पुत्र चन्द्रगुप्त (द्वितीय¹) विक्रमादित्य के अतिरिक्त अकबर की समता कोई नायक एवं नेता नहीं कर सकता, क्योंकि वह मुगल-वंश का 'वास्तविक संस्थापक' तो था ही, उस भारतीय पुनरुत्थान का एक सशक्त वाहक एवं नायक भी था जिसमें साहित्य, संगीत, शिल्प इत्यादि कलाओं का उत्कर्ष हुआ, हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित हुई। वना-बनाया साम्राज्य प्राप्त कर उसे विनाश के कगार तक ढकेलनेवाले अशोक की वास्तविक एवं जुझारू चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य और अकबर जैसे निर्माताओं से क्या समता जिसने जनता का अरबों रुपया लाटों, स्तूपों एवं शिलालेखों पर नष्ट करके ख्याति-आखेटक होने का परिचय दिया, जनता ने जिनकी 'देवनांप्रिय पदवी' का अर्थ 'मूर्ख' माना तथा शान्ति-अहिंसा के प्रचार-प्रसार की आड़ में सर्वहारा के अशांतिकारी-हिंस्र शोषक गौरांग पूँजीवादियों अथवा साम्राज्यवादियों ने जिसे सातवें आसमान पर जबरदस्ती ही कुदा दिया (संकीर्ण एवं सांप्रदायिक एच. जी. वेल्स जैसे साम्राज्यवाद-प्रशंसक इतिहासकारों तथा साम्राज्यवाद की आड़ में पूँजीवाद को सबलतर बनाने वाले भारतीय इमारतबाजों के दृष्टान्त विद्यमान हैं)? अशोक से काँस्टेन्टाइन की ही तुलना उचित है, क्योंकि इसने एशिया एवं उसने यूरोप में बौद्धधर्म एवं ईसाई मजहब फैलाया। किन्तु धर्मों एवं मजहबों ने संसार में अधर्म, घृणा, हिंसा, पार्थक्य इत्यादि को ही बढ़ावा दिया है। अतः धर्मप्रवर्तकों एवं धर्मप्रसारकों की महानता का राग अलापना कालातीत प्रतिगमित मात्र है। महान् वे हैं जो जीवन से जूझें, एकता के लिए प्रयत्नरत रहे, आविष्कारों से विश्व बदलते रहे, ग्रन्थों से मानवता को सम्पन्न करते रहें न कि वे जो अपने को सर्वोपरि कहकर स्वर्ग एवं नरक, पावन एवं अपावन की। मतांध औरंगजेब की मूढ़ता ने अकबर के निर्माण को ध्वंस का आखेट बना दिया। मानवभेदकारी सांप्रदायिकता ने राष्ट्र को खंडित कराके उस एकता को टूक-टूक कर दिया। समूचे मोहम्मदी इतिहास में अकबर की समता करने वाला कोई व्यक्ति नहीं हुआ। कई लोग अकबर पर सूफ़ी (रूमी इत्यादि) के प्रभाव की चर्चा करते हैं किन्तु इसका कोई आधार दृग्गत नहीं होता, क्योंकि सूफ़ी इस्लाम पर अधिक केन्द्रित दीखते हैं जबकि अकबर अधिक उदार था। मानवतावादी अकबर के समक्ष अधिक प्रतापी एलिजाबेथ प्रथम, अधिक शानदार लुई फ़ोर्टीन्थ, अधिक तेजस्वी फ़्रेडेरिक द ग्रेट, अधिक प्रभावी ज़ार अलेक्जेंडर फ़र्स्ट इत्यादि तक कोरे सम्राट् ही लगते हैं।

अकबर भारत का प्रथम सर्वधर्म-समन्वयाचार्य था जिसका अनुकरण रामकृष्ण, परमहंस, विवेकानन्द, गाँधी इत्यादि ने अपनी-अपनी सीमाओं में किया। कठमुल्ले जब धार्मिक वाद-विवाद में कुरान की ऐंड लगाते तब वह "तर्क करो" का सशक्त आदेश देता था। कहाँ उसकी सहज-सशक्त धर्मनिरपेक्षता और कहाँ आज का विषाक्त वातावरण!

1. गुप्त के पुत्र घटोत्कच के पुत्र थे, घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम, चन्द्रगुप्त प्रथम के पुत्र समुद्रगुप्त।

अकबर मुसलमान था, किन्तु मोहम्मदीयत का मज़ाक भी उड़ाता था। उसने 'दीनेइलाही' के रूप में मानवधर्म का प्रवर्तन भी किया था किन्तु सांप्रदायिकता में अन्धे तत्वों के कारण उसके प्रचार-प्रसार पर जोर नहीं दिया। वह सवेरे-दोपहर-शाम-अधरात अर्थात् चार बार सूर्य की पूजा करता था, यथासम्भव गंगाजलपान तथा प्रत्येक स्थिति में गंगाजल-युक्त जलपान करता था, जन्माष्टमी-दीपावली इत्यादि मनाता था; उसने वनमनरत राम-जानकी सिक्का चलाया था। डॉ. पवनकुमार ने 'अकबर की सांस्कृतिक दृष्टि' ('सानुबन्ध' उन्नाव, अक्टूबर, 1987 अंक) निबन्ध में उस महान् मानवतावादी सम्राट् की स्तुति ठीक ही की है।

अकबर हिन्दी-कविता का प्रेमी ही नहीं अपितु स्वयं कवि भी था। उसके दरबार में राठौड़राज प्रिथ्वीराज, रहीम, गंग, वीरवल, नरहरि इत्यादि विख्यात कवि विद्यमान थे तथा अन्य अनेक कवि एवं चारण यथा मनोहर कवि, गंगाप्रसाद, ब्राह्मण, जगदीश, जोध, करनेस बन्दीजन या करन कवि, होलराय ब्रह्मभट्ट (याद में रायवरेली जनपद में होलपुर नामक गाँव है), नाहरदास चारण ('चन्द छन्द बरनन की महिमा' में उल्लिखित), मानराय बन्दीजन इत्यादि भी काव्यपाठ किया करते थे। हिन्दू-कवि अकबर को 'हिन्दूपति' कहते थे, सच्ची धर्मनिरपेक्षता का प्रतिपादन करते थे, उसे सर्वश्रेष्ठ सम्राट् मानते थे :

1. अकबर सो वार कौन नर-नरपति? पति-हिन्दुवान!
करन चहै जेहि करन सो लेन दान-सनमान॥
अचरज मोहिं हिन्दू-तुरुक वादि करत संग्राम।
यक दीपक सों दीपियत कावा-कासी-धाम॥

—मनोहर कवि (पूरा नाम मनोहरदास कछवाहा)

2. दिल्ली तें न तख्त हैहैं, बख्त ना मुगल कैसो,
हैहै ना नगर बढ़ि आगरा नगर तें।
गंग तें न गुनी, तानसेन¹ ते न तानवाज,
मान² तें न राजा औ न दाता बीरवर तें॥
खान खानखाना तें न, नर नरहरि तें न,
है न दीवान कोऊ बेडर दुडर³ तें।
नवौ खंड, सात दीप⁴, सात हूँ समुद्र पार,
हैहै ना जलालुद्दीन साह अकबर⁵ तें॥ —होलराय
3. पाय प्रसिद्ध पुरंदर, ब्रह्म सुधारस, अमृत अमृत बानी।
गोकुल, गोप, गोपाल गुनी, करनेस गुनागर, गंग सुजानी॥
जोध, जगन्न, जगे, जगदीस, जगामग, जैत, जगत् है जानी।
कोरे अकबबर सों न कथी, इतने मिलि कै कविता जु बखानी॥

—अज्ञात

इस छन्द में उल्लिखित अकबर, वीरवल, 'ब्रह्म', गंग एवं करनेस (चार) ही जाने-माने हैं—पुरंदर, अमृत, गोकुल, गोप, गोपाल, जोध, जगन, जगे, जगदीश, जगामग, जैत एवं जगत (बारह) विस्मृत हो चुके हैं। इसमें प्रिथ्वीराज, रहीम एवं नरहरि तीन प्रसिद्ध कवियों तथा मनोहर कवि, गंगाप्रसाद ब्राह्मण, होलराय, मानराय बन्दीजन एवं नाहरदास चारण पाँच अन्य कवियों का उल्लेख नहीं है। मुझे ये चौबीस कवि मिले हैं।

1. मिश्रबन्धु के अनुसार त्रिलोचन मिश्र। कतिपय स्रोत रामतनु मिश्र मानते थे। तन्ना कहे जाते थे। तानसेन सम्भवतः सूफी शेख मोहम्मद गौस के प्रभाव से मुसलमान हो गए थे। ग्वालियर में दोनों की कब्रें हैं। 'आईने-अकबरी' में अबुल फ़ज्ज ने लिखा है कि हिन्दोस्तान में इतना बड़ा गायक एक हजार साल से नहीं हुआ। (गुप्तकाल का प्रताप व्यंजित है।)
2. आमेर (तब जयपुर न था) के राजा मानसिंह जो कवि भी थे।
3. टोडरमल अकबर के प्रसिद्ध मन्त्री थे। समसामयिक काशी के एक जमींदार टोडरमल भी थे, जो तुलसीदास के शिष्य थे—“चारि गाँव को ठाकुरा मन को महादीप”।
4. द्वीप (महादीप—“सप्त द्वीप नौ खंड” आज का तक प्रसिद्ध है)।
5. अकबर का पूरा नाम जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर शाह 'शाजी' था।

मिश्रबन्धु कृत अद्वितीय साहित्येतिहास 'विनोद' में अकबर की हिन्दी-कविता के तीन उदाहरण दिए गए हैं, जिनमें से दो 'विनोद' की ही सामग्री पर आधृत रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में भी पुनर्प्रस्तुत मिलते हैं :

1. जाको जस है जगत मैं, जगत सराहै जाहि।
ताको जीवन सफल है, कहत अकब्बर साहि॥
2. साह अकब्बर एक समै चले कान्ह विनोद विलोकन बालहिं।
आहत ते अबला निरख्यो, चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिं॥
त्यो बलि वेनि सुधारि धरी सु भई छवि यों ललना अरु लालहिं।
चंपक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिए अहिवालहिं॥
3. केलि करै बिपरीत रमैं सु अकब्बर क्यों न इतो सुख पावै।
कामिनी की कटि किंकिनि कान किधौं गनि पीतम के गुन गावै॥
विन्दु प्रसेद को छूट्यो ललाट ते यों लट में लटको लगि आवै।
सोह मनोज मनो चित मैं छवि चंद लए चक डोरि खिलावै॥

अकबर की कविता उनकी अतिशृंगारिकता को विवृत करती है। बदायूनी वगैरह के विवरणों से बीरबल के लतीफों तक अकबर, नैपोलियन बोनापार्ट के सदृश, अश्लील चर्चा में रुचि लेते दिखाई पड़ते हैं। मीना बाज़ार, आँखमिचौली, रहीम-मातृ-अधिग्रहण, राजपूत-ललना-प्राप्ति इत्यादि अकबर की विलासिता के प्रतीक हैं। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने पटरानियों इत्यादि के अतिरिक्त पाँच-पाँच हजार नारियों के जीवन तबाह किए। औरंगजेब के कारण दारा की एक बेगम ने आत्महत्या कर ली और एक अंकशायिनी बन गई। आपराधिक कामुकता मुगलों की खास पहचान थी। आरम्भ में वह किसी भी सुन्दर स्त्री की लूट पर तुले थे। बीस पार करते-करते उन्होंने दिल्ली के एक शेख की बीवी को हथियाने के लिए यात्रा की। निज़ामुद्दीन की दरगाह से जब शाही सवारी पुराने किले के सामने मस्जिद-मदरसे खैर-उल्ल-मंज़िल से गुज़री तब संयोगात् एक विद्रोही अमीर शर्फुद्दीन हुसैन के हब्शी गुलाम कूका फ़ौलाद ने तीर चलाया जो कन्धे को रगड़ता निकल गया। युवा सम्राट बच गया। फ़ौलाद के टुकड़े-टुकड़े कर डाले गए। इस घटना के कारण शेख का बीवी नहीं खोनी पड़ी। नारी-लूट भी कम हो गई। खैर-उल्ल-मंज़िल (जिसके छज्जे से तीर चलाया गया था) अकबर की धाय-माँ माहम अंगा ने 1661 ई. में बनवाई थी। यह अब भी विद्यमान है। इसके सामने की सड़क अब मथुरा रोड कहलाती है, जिसके दूसरी तरफ पुराना किला और आधुनिक चिड़ियाघर हैं।

अकबर की मातृभाषा-गृहभाषा फ़ारसी थी। वह लगभग निरक्षर थे (मोहम्मद, शार्लमैन, अलाउद्दीन खिल्जी, कबीर इत्यादि के लगभग समान-‘लगभग’ यों कि दस्तख़त वगैरह कर लेते थे)। फिर भी, उनकी ब्रजभाषा-कविता यतिभंग-गतिभंग इत्यादि छन्द-दोषों से तो मुक्त है ही, अलंकृत भी है। नीतिकाव्य, कृष्णकाव्य एवं शृंगारकाव्य, सभी में उनकी रुचि थी। प्रकृत्या विलासी होने के कारण शृंगार यत्र-तत्र उल्लंग हो गया है। अकबर की थोड़ी-सी कविता में अगले शास्त्रीयकाल की वैसा ही पूर्वसूचना प्राप्त हो जाती है जैसी रहीम कृत ‘वरवै-नायिकाभेद’ एवं तुलसी कृत ‘वरवै-रामायण’ में, केशव कृत ‘कविप्रिया’ एवं ‘रसिकप्रिया’ में।

अपने परम मित्र बीरबल के असामयिक निधन पर अकबर ने जो मार्मिक सोरठा कहा, वह करुणा से ओतप्रोत है, अत्यन्त उत्कृष्ट है :

सब कछु हम कहैं दीन¹, एक न दीनों दुसह दुख।
सोऊ पूरन कीन, कछु नहिं राख्यो बीरबल॥

इस दोहे का ‘विनोद’ प्रस्तुत एवं ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’-गृहीत निम्नलिखित रूप अंत्यानुप्रास-विपन्न है :

दीन देखि सब दीन², एक न दीन्हों दुसह दुख।
सोऊ हम कहैं दीन, कछु नहिं राख्यो बीरबल॥

1. पाठांतर “दीन देखि सब दीन” (जिसमें यमक का सुन्दर प्रयोग प्राप्त होता है)।

2. “दीन जानि सब दीन” पाठ भी सुनाई पड़ता रहता है।

बीरबल

अकबर महान् (जीवनकाल 1542-1605 ई. तथा राज्यकाल 1556-1605 ई.) के घनिष्ठ मित्र, दरबार के अमर रत्न एवं योद्धा वीरबल (1528-1585 ई.)¹ एक श्रेष्ठ कवि-भी-थे—स्वयं अकबर ने उन्हें 'कविराय' की पदवी प्रदान की थी² तथा यह दोहा भी प्रसिद्ध है :

उत्तम पद कवि गंग के, उपमा को बलवीर ।
केसव अरथ-गँभीरता, सूर तीनि गुर धीर ।³

'विनोद' में इनके किसी ग्रन्थ का पता न होने का उल्लेख है किन्तु यह भी लिखा है कि "पं. मायाशंकर जी याज्ञिक के पास इनके कई सौ छन्द मौजूद हैं तथा भरतपुर में भी कहे जाते हैं।" 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 योगेन्द्र प्रताप सिंह ने लिखा है: " 'सुदामाचरित' नामक इनकी रचना का उल्लेख मिलता है। ... 100 छन्दों का संग्रह डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि' के अन्तर्गत किया है। कवित्त और सवैया शृंगाररस की सरसता से ओतप्रोत हैं तथा उनमें प्रायः मार्मिक काव्योक्तियों के सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं।" बीरबल कविता में 'ब्रह्म' उपनाम का प्रयोग करते हैं।

वीरबल का जन्म कानपुर जिले में यमुना-तट पर स्थित उस प्रसिद्ध तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) में हुआ था, जिसमें कालान्तर में चिन्तामणि, भूषण, मतिराम एवं जटाशंकर बन्धुचतुष्टय उत्पन्न हुए—यह स्वयं महाकवि भूषण ने 'शिवराज-भूषण' में "वीर वीरबल-से जहाँ उपजे कवि अरु भूप" लिखकर स्पष्ट कर दिया है, जिसे 'विनोद' में ठीक ही स्वीकारा गया है। कुछ लोग उन्हें कालपी का बताते हैं, कुछ नारनौल का, किन्तु यह-सब वार्ता निराधार है। तिकवाँपुर के पास ही इनका वसाया वीरबल-अकबरपुर⁴ गाँव भी विद्यमान है। नारनौल का उल्लेख करने वाले शुक्ल ने भी 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में "जन्मस्थान तिकवाँपुर ठहरता है" स्वीकार किया है। इनके पिता एक साधारण कान्यकुब्ज ब्राह्मण गंगादास थे। शुक्ल ने इनके महेशदास नाम का उल्लेख किया है।

एक साधारण स्थिति से वीरबल एक महान् व्यक्ति बने, जो उनके पुरुषार्थ का सूचक है। फ़तहपुर सीकरी में उनका शानदार महल आज भी ज्यों-का-त्यों खड़ा है। यह महल शाही महल के करीब भी है। प्रयाग के अशोक-स्तम्भ (किले के अन्दर जहाँ सेना का अधिकार है) में अंकित है : "संवत् 1632 शाके 1493 मार्ग⁵ बदी 5 सोमवार गंगादास सुत महाराज वीरबल श्री-तीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितं।"⁶ अकबर को उन्होंने लगभग हिन्दू बना लिया था (चार बार सूर्य-पूजा, गंगाजलपान, जन्माष्टमी इत्यादि के आयोजन, क्षीर, तिलक इत्यादि तो इसके प्रमाण हैं ही, तीर्थकर-उन्मूलन, जज़िया पर रोक, गोवध-निषेध इत्यादि भी हैं—इनके मरने के बाद तथा अपने मरने से कुछ ही समय पहले उसने वनगमनरत राम-सीता-मुद्रा भी चलाई थी)। धर्मान्ध विषमतावादी इतिहासकार बदायूँनी इसके लिए वीरबल को 'नरक का कुत्ता' कहने से कैसे चूकता? उनकी बढ़ती हुई महत्ता से क्षुब्ध षड्यंत्रकारी तत्वों ने उन्हें 1585 ई. में यूसुफ़जई पठानों के विरुद्ध युद्ध में भिजवाने में सफलता पा ली जहाँ मृत्यु निश्चित थी, क्योंकि दूसरा सेनापति जैन खान इनका शत्रु था—वहाँ आठ हजार सैनिकों के साथ वे खेत रहे! सम्भव है, किसी मुगल ने ही उन्हें अपना शिकार बना डाला हो? कालान्तर में, जसवंतसिंह की मृत्यु भी लगभग ऐसी ही हुई! अकबर की इच्छा न थी कि वीरबल इस युद्ध में जाएँ। सिक्का तक उछाला गया था। किन्तु षड्यंत्रकारी सफल रहे। वीरबल के मरने पर अकबर ने दो दिन-दो रात निर्जल-निराहार बिताए और यह मार्मिक सोरठा कहा :

सब-कछु हम कहँ दीन्ह, एक न दीन्हों दुसह दुख ।
सोऊ पूरन कीन्ह, कछु नहि राख्यो बीरबल ।।

1. मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' के अनुसार सं. 1585-1640 वि. जिसे सभी परवर्ती विद्वान् स्वीकार करते आए हैं। जन्मसंवत् अनुमानित है। किन्तु मृत्युवर्ष इतिहास-दृष्टि से दो वर्ष आगे मानना ठीक होगा।
2. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (डॉ. ईश्वरीप्रसाद), पृष्ठ 707।
3. उपमा कालिदासस्य, भवेदर्थगीरवम्। नैषधे पद-लालित्यं, माधे सन्ति त्रयगुणाः। (उक्त छन्द अनुपयुक्त अनुकरण)
4. 'विनोद' में 'अकबरपुर-बीरबल' लिखा है।
5. मार्गशीर्ष या अग्रहायण (अगहन)।
6. दे. 'विनोद', 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 इत्यादि।

महाकवि केशवदास से बीरबल की घनिष्ठ मित्रता थी¹, जिसके परिणामस्वरूप राजा इन्द्रजीतसिंह पर अकबर द्वारा किया एक करोड़ रुपए का जुर्माना माफ़ हो गया था। केशव के इस महान् छन्द पर बीरबल ने छह लाख रुपए की हुडियाँ दे दी थीं :

पावक, पंछी, पसू, नर, नाग, नदी, लोक रचे दस-चारी ।
 केसव देव, अदेव रचे, नरदेव रचे, रचना न निवारी ॥
 कै वर बीर बली बलवीर² भयो कृतकृत्य महाव्रतधारी ॥
 दै करतापन आपन ताहि दई करतार दुवौ कर तारी ॥

केशव का अन्य छन्द भी अतीव उत्कृष्ट है :

केशवदास के भाल लिख्यो बिधि रंक को अंक, बनाय सँवार्यो ।
 छोरे छुट्यो नहिं धोए धुयो बहु तीरथ के जल जाय पखार्यो ॥
 है गयो रंक ते राउ तहीं जब बीर बली बलवीर निहार्यो ।
 भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाय रह्यो मुख चार्यो ॥

बीरबल के निधन पर अकबर के अतिरिक्त केशवदास की रचना भी प्राप्त होती है :

पाप के पुंज पखावज केसव, सोक के संख सुने सुषमा में ।
 झूठ के झालरि, झौंझ अलीक के, आवझ जूथन जानि जमा में ॥
 भेद के भेरी, बड़े डर के डफ, कौतुक भो कलि के कुरमा में ।
 जूझत ही बलवीर बजे बहु दारिद के दरवार दमामें ॥

बीरबल जैसे महान् हिन्दू एवं मानवतावादी³ के निधन पर पाप सचमुच प्रसन्न हुआ होगा! बीरबल एक उदारचेता सच्चे मानवतावादी महापुरुष थे। उनकी सुन्दर कविता की कुछ बानगियाँ प्रस्तुत हैं :

1. एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मंजु रसालहि ।
 डीठि गई चलि मोहन की वृषभानुसुता उर मोतिन मालहि ॥
 सो छवि ब्रह्म लपेटि हिए कर सों कर लै कर कंज सनालहि ।
 ईस के सीस कुसुंभ की माल मनौ पहिरावति व्यालिनि ब्यालहि ॥
2. उछरि-उछरि केकी झपटै उरग पर, उरग हू केकिन पे लपटैं लहकिहै ।
 केकिन के सुरति हिए की ना कछू है, भए एकी करि केहरि, न बोलत बहकिहै ॥
 कहै कवि ब्रह्म बारि हेरत हरिन फिरैं, बैहर बहुत बड़े जोर सों जहकिहै ।
 तरनि के तावन तवा सी भई भूमि रही, दसहू दिसान में दवारि सी दहकिहै ॥
3. पूत कपूत, कुलच्छनि नारि, लराक परोसि, लजायन सारो ।
 बंधु कुबुद्धि, पुरोहित लंपट, चाकर चोर, अतीथ धुतारो ॥
 साहब सूम, अड़ाक तुरंग, किसान कठोर, दिवान नकारो ।
 ब्रह्म भनै, सुनु साह अकब्वर! बारही बाँधि समुद्र में डारो ॥

1. यों ही कह्यो जो बीरबल माँगु जो माँगन होय ।

माँग्यो तुय दरबार में मोहिं न रोके कोय ॥

2. एक तिरहुत-निवासी क्षत्रिय बलवीर कवि भी हुए हैं, जिन्होंने 1551 ई. में दोहे चौपाई में 'उंगव-पर्व' नामक साधारण ग्रन्थ रचा था ।

3. अकबर के 'दीनेइलाही' के स्वीकर्ता ।

नरहरि

महापात्र नरहरि वंदीजन (निधन 1610 ई. के आसपास) अकबर के दरबार के नवरत्न में थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इनका अनुमानित जीवनकाल 1562-1667 विक्रमी (1505-1610 ई.) लिखा है, जिसमें निधन काल तो ठीक लगता है क्योंकि अकबर का देहान्त 1605 ई. में हुआ था किन्तु मिश्रबन्धु के 'विनोद' पर आधृत जन्मकाल युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता, क्योंकि 15 अक्टूबर 1542 ई. में जन्में तथा 14 फरवरी 1556 को तेरह वर्ष की आयु में सिंहासनारूढ़ होने वाले अकबर से इसकी संगति नहीं बैठती तथा 105 वर्ष का जीवन की सामान्यतः प्रात्ययिक नहीं लगता। मिश्रबन्धु एवं आचार्य शुक्ल ने इनका निवास विख्यात कविभूमि असनी (ज़िला फ़तेहपुर, उ. प्र.) लिखा है, किन्तु वस्तुतः यह नरहरपुर पखरौली¹, तहसील डलमऊ, ज़िला रायबरेली के निवासी थे, जिन्होंने असनी में अनेक ब्राह्मण परिवार बसाए थे। इस सन्दर्भ में श्री मदनमोहन मिश्र द्वारा प्रस्तुत रायबरेली-संबद्ध अमूल्य ग्रन्थ 'भूला जनपद विख्यात इतिहास' में लिखा है, "अकबर ने शासनकाल में महाकवि नरहरि भट्ट (निवासी नरहरपुर पखरौली, तहसील डलमऊ) ने कन्नौज से फैले कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के बसाने का विशेष कार्य अपने ऊपर लेकर उन्हें असनी (फ़तेहपुर), गेगासों, नरहरपुर पखरौली (रायबरेली), वेंती, मुअज़्जमाबाद, जहाँगीराबाद आदि स्थानों में उन्हें भूमियाँ और प्रचुर धन की व्यवस्था कर बसावाया।" इस उद्धरण में उल्लिखित ग्रामों में मुअज़्जमाबाद (औरंगज़ेब के पुत्र मुअज़्जम से संबद्ध जो वहादुरशाह प्रथम के रूप में बादशाह बना) तथा जहाँगीराबाद (अकबर के पुत्र बादशाह जहाँगीर से संबद्ध) परवर्ती नामकरण-सूचक हैं। किन्तु ऐसे अधिकांश नामकरण पूर्ववर्ती नामकरणों को उच्छिन्न करके ही रखे गए थे। अतः तथ्य पर मूल आघात नहीं होता। निस्सन्देह ब्रह्मभट्ट होने के कारण नरहरि का असनी से विशेष प्रेम था। आज भी असनी ब्रह्मभट्ट-सम्पन्न है। वहाँ नरहरि के समय से अब तक अनेक कवि हुए हैं। 'असनी के कवि' एक अमूल्य ग्रन्थ ही बन गया है। 'शिवलोक' (प्रद्युम्न-उषा पर आधृत शिवप्रधान महाकाव्य) के प्रणेता कविवर सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' असनी की कवि-परम्परा को सोलहवीं सदी से इक्कीसवीं सदी तक ला रहे हैं। उनका त्रिखण्डीय महाकाव्य 'जमावन्त' में भी उल्लेखनीय कृति है। असनी शब्द 'अश्विनी' से संबद्ध है। सम्भवतः ऋग्वेद के प्रख्यात वैज्ञानिक बन्धुद्वय अश्विनीकुमार (जो देवताओं के रूप में नानासूक्त-पूजित हैं, जिन्होंने ऋषिका अपाला का कुष्ठ-निवारण किया, वीरांगना विशपला को कटे पैर की धातु के पैर से क्षतिपूर्ति करते हुए पुनः युद्धयोग्य बनाया, परवर्ती कथाओं के अनुसार महर्षि च्यवन को औषधि द्वारा पुनः यौवनोचित ऊर्जा प्रदान की) इस पावन गंगातटवर्ती ग्राम से संबद्ध थे। आसपास के गंगातटवर्ती स्थानों में महर्षि गर्ग का गेगासों (रायबरेली जनपदी), महर्षि दालभ्य (डालम्य) का डलमऊ² (रायबरेली) सम्राट् पुरुखा का प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग में संगम के पास), सम्राट् ययाति का जाजमऊ (कानपुर जनपद), राजा विराट् का बरहट (कानपुर जनपद) इत्यादि देवता-वैज्ञानिक अश्विद्वय का असनी (फ़तेहपुर जनपद) से सम्बन्ध पुष्ट कर सकते हैं।

अकबर ने नरहरि (जो भट्ट होने के कारण 'वंदीजन' संपृक्त थे) को महापात्र की पदवी दी थी। संयोगात् तुलसीदास के गुरु नरहरदास (जिनका नरहरिदास नाम रामचरितमानस के त्रुटिपूर्ण पाठ का परिणाम है जिसका निराकरण कविवर पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने स्वटीकायुक्त प्रति में "कृपालसिन्धु नर रूप हर" की "जासु बचन रवि कर निकर" की तुकांत-संगति का सटीक प्रमाण देकर³ किया है, जिसकी पुष्टि स्वयं नरहरदास के प्रयाग-निवासी वंशज भी करते हैं) इनके समकालीन थे। असनी के ठाकुर द्वितीय के पूर्वज नरहर इनसे भिन्न तथा परवर्ती हैं। संयोगात् तीनों ही ब्रह्मभट्ट थे। संक्रान्तिकाल से बौद्धिक काल तक भट्टों ने हिन्दी की लगातार महान् सेवा की है।

महापात्र नरहरि वंदीजन के 'रुक्मिणी-मंगल', 'छप्पय-नीति' तथा 'कवित्तसंग्रह' ग्रन्थ श्रुतिगोचर मात्र होते हैं, दृष्टिगोचर नहीं। स्फुट रचनाएँ अवश्य प्राप्त हो सकी हैं जिन्हें डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि' ग्रन्थ के परिशिष्ट में संगृहीत किया है। किन्तु यह एक उत्कृष्ट कवि अवश्य थे अन्यथा अकबर इनका इतना सम्मान न करते कि किसी आखेट-प्रकरण में एक

1. मूलतः पखरौली जिसमें नरहरपुर इनके नाम 'नरहरि' से ही संबद्ध होकर जुड़ा। 'हिन्दी साहित्य कोश' में स्व. डॉ. भालानाथ तिवारी ने भी पखरौली को ही जन्मस्थान माना है।
2. परवर्ती राजा दल या डल से संबद्ध। किन्तु दल या डल नाम स्वयं ऋषिमूलक है। वैसे, मुल्ला दाऊद ने 'चंदायन' में 'दलमौ' लिखा है जो दालभ्यमूलकता एवं दलमूलकता दोनों को प्रमाणित करता है।
3. शुद्ध पाठः बंदउ गुरु पद कंज, कृपासिन्धु नर रूप हर।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर॥

महान् छप्पय सुनकर गोहत्या पर प्रतिबन्ध ही लगा देते! एक शाही आखेट-यात्रा में मुँह में दबी घास से युक्त गोसमूह भागता हुआ बादशाह के दल की ओर आता दीखा तो वह अपने इष्टमित्रों के साथ बहुत चकित हुआ और उसके मुख से निकला, “ये गाएँ इधर क्यों आ रहीं हैं?” आशय था कि इन्हें तो डरकर दूर भाग जाना चाहिए था! महापात्र नरहरि वंदीजन ने कहा, “जहाँपनाह, ये महावदौलत के हुजूर में फ़रियाद करने आई हैं :

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहिं मारि सकत कोइ
हम संतत तिनु चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित म्रवहिं, बच्छ महि-थंभन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरकहिं न पियावहिं॥
कह कवि नरहरि सुनौ, बिनवति गउ जोरे करन।
अपराध कोन मोहि मारियत, मुएहु चाम सेवइ चरन॥

इस महान् छप्पय से प्रभावित एवं प्रेरित होकर अकबर महान् ने गोवध-निषेध लागू कर दिया। अकबर ने 1563 ई. में घृणित तीर्थंकर एवं 1564 ई. में पाशविक धर्मकर (जजिया) की वसूली रोककर विशद मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया ही था¹, 17 अक्टूबर 1605 ई. को प्रातःकाल अपनी सम्भवतः षड्यंत्रजन्य विष दिए जाने के कारण (माता हमीदा वानो जीवित थीं—षड्यंत्र सलीम द्वारा कराया भी हो सकता है जिसके विद्रोह से सम्राट् क्षुब्ध था) मृत्यु से कुछ समय पूर्व, 1605 ई. में ही, उसने रामसिया-सिक्का भी चलाया था (जिस पर धनुर्धर राम और उनके पीछे सीता की गतिशील पूर्णाकृतियाँ अंकित हैं²) सम्भवतः इस कार्य की प्रेरणा भी नरहरि से प्राप्त हुई हो? अकबर के तीन पुत्र मदिरा-सागर में डूब चुके थे, चौथा मध्यम सलीम (यथासमय जहाँगीर) मध्यम, विलासी एवं स्वेच्छाचारी था। संग्रहिणी का विकट रोग जानलेवा साबित हुआ। अकबर सलीम से असन्तुष्ट था। यदि 622 ई. में हिंस्र मज़हब के प्रचलित किए जाने से लेकर अब तक के सारे इस्लामी इतिहास के सर्वश्रेष्ठ मुसलमान महापुरुष अकबर का अनुकरण इक़बाल, जिन्ना, नेहरू इत्यादि छोटे-छोटे नेताओं ने किया होता तो इस अभागे उपमहाद्वीप की वह सांप्रदायिक दुर्दशा न होती जो है।

नरहरि साहित्येतिहास में तो गोवध-निषेधकारी छप्पय तथा करनेस जैसे कवियों की प्रतिष्ठा के कारण-द्वय से अमर हैं ही, गंगातटवर्ती धर्म एवं साहित्य के द्विविधतीर्थ अश्विनी (असनी-ऋग्वेद के वैज्ञानिक-देवता आश्विद्वय या अश्विनीकुमार बन्धुद्वय के स्थान एवं अप्रतिहत कवि-परम्परा के अप्रतिम स्थल) की भट्ट तथा अन्य कवियों की अप्रतिहत परम्परा के कारण भी पूज्य हैं। स्व. डॉ. विपिनविहारी त्रिवेदी ने ‘असनी के कवि’ शीर्षक स्मरणीय ग्रन्थ लिखा था। ‘कान्यकुब्ज मंच’ त्रैमासिक (कानपुर) के जून, 1996 अंक में डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी ने असनी के कवियों की सूची दी है : 1. नरहरि महापात्र (1505-1610 ई.), 2. मानराय (1523), 3. करनेस (1554), 4. हरिनाथ महापात्र (1547), 5. मनीराम (1600), 6. ठाकुर प्राचीन³ (1643), 7. श्यामलाल (1648), 8. घनश्याम शुक्ल (1680), 9. महापात्र जैतसिंह (1685), 10. करन कवि (1700), 11. ऋषिनाथ (1723), 12. शिवराम वंदीजन (1731), 13. ठाकुर द्वितीय (1732), 14. वेनी वाजपेयी (1733), 15. दशरथराम महापात्र (1735), 16. गोविन्द कवि (1740), 17. सभालाल (1743), 18. शिवनाथ कवि महापात्र (1753), 19. वैरीसाल (1768), 20. लाल कवि वंदीजन ‘बनारसी’ (1775), 21. धनीराम या धनीदास (1783), 22. अजवेश (1784-1871), 23. गणेश (1800), 24. ठाकुर कवि (1804), 25. शंकर वंदीजन (1811), 26. करनेस द्वितीय (1813), 27. भवनेश महापात्र (1891), 28. मणिदेव वंदीजन (1820), 29. मदनेश (1824), 30. महासुख महापात्र (1824), 31. करन कवि (1828), 32. सेवक (1828), 33. लाल कवि वंदीजन (1830), 34. दौलराम (1840), 35. कृष्ण या श्रीकृष्ण (1841), 36. फेरन वाजपेयी (1843), 37. शीतलप्रसाद (1851), 38. वागेश्वर भट्ट सारवन (1856), 39. कवि लाल जी महाराज (1861), 40. हुवलाल महाराज (1865), 41. कविवर ब्रजेश महापात्र (1871), 42. शशिभाल तिवारी (1884), 43. शिवराखन वाजपेयी (1890), 44. कन्हैयालाल महापात्र (1895), 45. बालकिशोर मिश्र (1899), 46. सूर्यकुमार वाजपेयी (1900), 47. भगवतीशंकर भट्ट (1921), 48. दिवाकर शर्मा (1940)।

बच्चू शुक्ल शर्मा ‘सुधाकर’, अशोक वाजपेयी (कवि, आकाशवाणी समाचार-प्रवाचक) इत्यादि नाम भी इस सूची में होने चाहिए थे। (साहित्यनेता और कवि अशोक वाजपेयी उन्नाव जनपद के हैं।)

1. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (डॉ. ईश्वरी प्रसाद), पृष्ठ 467।

2. टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 9-10-1986, पृष्ठ 5

3. ‘ठाकुर प्रथम’ उचित होता।

4. यमुना नामक द्वितीय शिष्या भी थीं। दोनों का उल्लेख ध्रुवदास कृत ‘भक्तनामावली’ में है।

गंग

मिश्रवन्धु ने 'विनोद' में गंग नामक चार कवियों एवं गंगा नामक हित हरिवंश-शिष्या¹ का उल्लेख किया है, जिनमें कवि गंग एवं 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' नामक 16 पृष्ठीय खड़ीबोली के प्रथम गद्यकार गंग ब्रह्मभट्ट के एक होने की सम्भावना भी व्यक्त की है—एक शास्त्रीयग्रन्थकार गंगाप्रसाद ब्राह्मण (रचनाकाल 1563 ई.) भी अकबर के दरबार में थे जो इकनौर या यकनौर (ज़िला इटावा) के रहने वाले थे¹, एक अन्य भक्त गंगा (उपनाम 'गंग ग्वाल' : रचनाकाल 1578 ई.) भी हुए हैं जिनका उल्लेख नाभादास कृत भक्तमाल एवं ध्रुवदास कृत भक्तनामावली में हुआ है। वस्तुतः कवि गंग ब्रह्मभट्ट एक ही व्यक्ति हैं, जो अकबर के दरबार में थे अब्दुरहीम खानेखानों के प्रिय कवि थे तथा जिन्हें शरावी जहाँगीर ने प्रौढ़ावस्था में शेर अफगन को मरवाकर हथियाई गई विदेशी प्रौढ़ा (पैंतीस वर्षीया) मेहरुनिस्सा (जिसे नूरजहाँ ही बना डाला) के परम हिन्दू-विद्वेषी भाई जैन खॉ (जो वीरवल के अवसान का कारण था) के भड़काने पर "सारी खुदाई एक तरफ़ जोरू का भाई एक तरफ़" के अनुरूप चलते हुए 1625 ई. में (अपनी निराशापूर्ण मृत्यु से दो वर्ष पहले) हाथी के पैर से कुचलवा डाला था, जिसकी चर्चा मरण-पूर्व-रचित संदर्भों में प्राप्त होती है :

1. संगदिल साह जहाँगीर-से उमंगि आज,
देते हैं मतंग मद² सोई गंग छाती में।
2. गंग ऐसे गुनी को गयंद सों चिराइए।
3. सब देवन को दरवार जुर्यो तहँ पिंगल छंद बनाइ कै गायो।
जब काहु सो कह्यो न गयो³ तब नारद एक प्रसंग चलायो।।
मृतलोक में है इक गंग गुनी, कहि गंग को नाम सभा में सुनायो।
सुनि चाह भई परमेसुर को तव गंग को लेन गनेस पठायो।।
4. कवहुँ न भँडुवा⁴ रन चढ़े, कवहुँ न वाजी बंव।
सकल सभाहिं प्रनाम करि विदा होत कबि गंग।।

मिश्रवन्धु न 'विनोद' में कवि गंग का रचनाकाल 'प्रायः 1616' (1559 ई.) दिया है जो ग़लत है क्योंकि 13 वर्ष की आयु में अपने पिता हुमायूँ के शेर-मंडल (दिल्ली के पुराने किले में स्थित भवन जो आज भी खड़ा है) के एक जीने से फ़िसलकर गिरने और मर जाने पर अकबर 1556 ई. में बादशाह बना तथा कई वर्षों तक वैरम खॉ (अब्दुरहीम खानेखानों का पिता) उसका अभिभावक ही नहीं अपितु सलतनत का भी सर्वेसर्वा रहा—ये वर्ष अतीव संघर्षपूर्ण भी रहे जिसमें पानीपत की दूसरी लड़ाई भी हुई; अतः इस समय अकबरी दरबार की कल्पना भी व्यर्थ होगी। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में योगेन्द्रप्रताप सिंह ने लिखा है, "इनका जन्म 1538 ई. में हुआ माना जाता है।" यह मान्यता भी ग़लत है क्योंकि यदि इसे सही माना जाए तो 1625 ई. में गजदलन के समय गंग 87 वर्ष के ठहरेंगे, जो उनके जहाँगीर पर प्रत्यक्ष तथा जैन खॉ पर अप्रत्यक्ष व्यंग्यों के साथ पूरे जोश-ख़रोश से मरने के अनुरूप नहीं लगती। अतः गंग का जन्मवर्ष अज्ञात ही कहा जा सकता है। सभा ने 'गंग-कवित्त' ग्रन्थ में इनके उपलब्ध काव्यसृजन को प्रकाशित किया है।

-
1. इटावा-निवासी (प्रयाग में बसे) एवं इटावा-प्रेमी-न्यायमूर्ति श्री प्रेमशंकर गुप्त के अनुसार यही गंग कवि थे, विवादास्पद है। गंगा का जन्मस्थल एवं जन्मसंवत् विवादास्पद हैं। वैसे, इष्टिकापुरी (इष्टिकादेवी की नगरी या पक्की ईंटों के भवनों की नगरी) या इटावा का इतिहास पुराना भी है, गौरवशाली भी। इटावा जनपद स्थित चकरनगर के यहाँ के लोग महाभारत की एकचक्रा नगरी मानते हैं। इकनौर इसी के पास है। देव का प्रायः इटावा का ही माना जाता है। श्रीनारायण चतुर्वेदी, गुलाबराय, उदयशंकर भट्ट, श्रीमन्नारायण अग्रवाल, रत्नाकर शास्त्री, शिशुपालसिंह भटौरिया 'शिशु', राधावल्लभ दीक्षित 'वल्लभ', नीरज, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, प्रह्लाद यदुवंशी, गिरजाशंकर मिश्र 'गिरजेश', विश्वनाथ भट्टेल, डॉ. मिजाजीलाल शर्मा, नेमसिंह 'रमन', मेधावसु पाठक, कुश चतुर्वेदी जैसे अनेकानेक विविधस्तरीय एवं विविधविधागत साहित्यकार इटावा जनपद से किसी-न-किसी रूप में संपृक्त हैं।
 2. अधपागल जहाँगीर के विकट शराबी होने का व्यंग्य-संकेत। यह तथ्य स्वयं तुजुके-जहाँगीर (जहाँगीरनामा) से स्पष्ट है।
 3. पाठान्तर : "काहू सो अर्थ कह्यो न गयो"।
 4. जैनखॉ पर व्यंग्य करता "कवहुँ न जनखा रन चढ़े" पाठ अधिक युक्तियुक्त होता। यह भी प्रचलित है।

निस्सन्देह, गंग एक साहसी नरनाहर एवं श्रेष्ठ कवि थे। “उत्तम पद कवि गंग के” लोकोक्ति-सी बन गई है, जबकि भिखारीदास ने लिखा है :

तुलसी, गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार।

इनके ग्रंथनि मैं मिली भाषा विविध प्रकार।।

प्रसिद्ध है कि गंग द्वारा अपनी प्रशंसा में यह छप्पय सुनकर नवाब अब्दुरहीम खानेखाना ने छत्तीस लाख की हुंडी लिख दी थी:

चकित भँवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल-वन।

अहि-फन मनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन बन।।

हंस मानसर तज्यो, चक्क-चक्की रन मिलै अति।

बहु सुंदरि पद्मिनी पुरुष न चहै, न करै रति।।

खलभलित सेस कवि गंग भन, अमित तेज रवि रथ खस्यो।

खानानखान बैरम-सुवन जबहिं कोप करि तँग कस्यो।।

यह भी विधि की विडम्बना ही थी कि खानेखाना (जो भावी बादशाह सलीम के शिक्षक रह चुके थे) भी जहाँगीर द्वारा ही लुटे और रंक हुए! न्याय की घंटी का नाटक रचने वाला मुगल-वंश का यह मोहम्मद तुगलक घोर अन्यायी, मद्यप एवं विक्षिप्त था।

गंग के नाम से एक व्यंग्य-छन्द औरंगजेब से संबद्ध भी है, जो वस्तुतः कविराज सुखदेव मिश्र का है, क्योंकि गंग जहाँगीर (देहान्त 1627 ई.) के समय में मरवाए जा चुके थे :

तिमिर¹ लंग लइ मोल, चली बाबर के हलके।

साह हुमाऊँ साथ गई फिर सहर बलकके।।

अकबर करी अजाच, भात जहाँगीर खवाए।

साहजहाँ करि कृपा पीठ के भार छुड़ाए।।

उन छोड़ि दई, उद्यान-वन भ्रमी फिरत है स्यार-डर।

औरंगजेब बखसीस किय, अब आई कवि गंग घर।।²

कंजूस औरंगजेब (जो टोपियाँ सिलता और कुरान उतारता था—वह बात और कि औरंगाबाद में बहुत-सी बीवियों में एक पर अपना ताजमहल भी खड़ा करता था) का बहुत ही अच्छा परिहास है!

पहले गंग के पाँच छन्द प्रस्तुत हैं तथा अन्त में उनका गद्य :

1. नवल नवाब खानखाना जू! तिहारी त्रास भागे देसपति धुनि सुनत निसान की।
गंग कहै तिनहू की रानी राजधानी छाँड़ि फिरै बिलखानी सुधि भूलीं खान-पान की।।
तेऊ मिलीं करिन, हरिन, मृग, वानरन, तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की।
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरिन, मृगन कलानिधि, कपि जानी जानकी।।
2. प्रबल प्रचंड बली वैरम के खानखाना! तेरी धाक दीपन दिसान दह-दहकी।
कहै कवि गंग तहाँ भारी सूरबीरन के उमड़ि अखंड दल, प्रलै-पौन लहकी।।
मच्यो घमसान तहाँ तोप, तीर-बान चलै, मंडि बलवान किरवान कोपि गहकी।
तुंड काटि, मुंड काटि, जोसन जिरह काटि, नीमा जामा जीन काटि जिमीं आनि ठहकी।।
3. झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान, एकन ते एक मानौ सुखमा जरद की।
कहै कवि गंग तेरे बल की बयारि लगे फूटी गज-घटा घन-घटा ज्यों सरद की।।
एते मान सोनित की नदियाँ उमड़ि चलीं, रही न निसानी कहूँ महि में गरद की।
गौरी गह्यो गिरिपति, गनपति गही गौरी, गौरीपति गह्यो पूँछ लपकि वरद की।।³

1. कवि ने बड़े कौशल से आततायी तैमूर को ‘तिमिर’ (अंधकार) कहा है। मुगलों के इस लकड़वादा की क्रूर समरकंद में है।

2. पाठांतर: “औरंगजेब करिनी साई लै दीन्हों कबिराज कर”। सारे छन्द में कई पाठांतर हैं (देखें सुखदेव मिश्र का विवरण)।

3. ये तीनों छन्द भी अब्दुरहीम खानेखाना की प्रशस्ति के हैं।

4. धी। स्त्री।

4. वैठी तो¹ सखिन संग, पिय को गवन सुन्यो, सुख के समूह में वियोग-आगि भरकी।
गंग कहै त्रिविध सुगंध लै पवन बह्यो, लागत ही ताके तन भई विथा जर की।।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहुँ, लागत ही औरै गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो, जल जरि गयो, पंक सूख्यो, भूमि दरकी।¹
5. देखत कै वृच्छन में दीरघ सुभायमान, कीर चल्थो चखिबे को, प्रेम जिय जग्यो है।
लाल फल देखिके जटान मँडरान लागे, देखत बटोही बहुतेरे डगमग्यो है।।
गंग कवि फल फूटे भुआ उधिराने लखि, सवही निरास है कै निज गृह भग्यो है।
ऐसो फलहीन वृच्छ वसुधा में भयो, यारो! सेमर विसासी बहुतेरन को ठग्यो है।।²

6. सिद्ध श्री 108 श्री पातसाहिजी श्री दलपति जी अकबरसाहिजी आमखास में तखत ऊपर विराजमान हो रहे। और आमखास भरने लगा है जिसमें तमाम उमराव आय-आय कोर्निस बजाय-बजाय जुहार करके अपनी-अपनी बैठक पर बैठ जाया करें अपनी-अपनी मिशाल से जिनकी बैठक नहीं सो रेसम के रसे में रेसम की लूमें पकड़-पकड़ के पड़े ताजीम में रहें। इतना सुनके पातसाहिजी श्री अकबरसाहिजी आद सेर सोना नाहरदास³ चारन को दिया इनके डेढ़ सेर सोना हो गया। रास बचना पूरन भया आमखास वरखास हुआ जिसका संवत् 1627 का मेती मधुमास सुदी 13 गुरुवार के दिन पूरन भए।⁴

रहीम

अकबरी-दरबार के एक सर्वश्रेष्ठ कवि, हिन्दी-नीतिकाव्य के एक सीमांत, शास्त्रीयकाल के एक अद्वितीय अग्रदूत नवाब अब्दुरहीम खानेखाना का जन्म बृहस्पतिवार, 17 दिसम्बर 1556 ई. को लाहौर में हुआ।⁵ मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में जन्मसंवत् 1610 वि. (1553 ई.) दिया है, शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में उसी का अनुकरण किया है, जो गलत है। 'विनोद' में निधन-वर्ष सं. 1684 वि. (1627 ई.) दिया है, जो ठीक है। 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में निधन-वर्ष सं. 1683 वि. (1626 ई.) भी गलत दिया है। रहीम का मक़बरा दिल्ली की बस्ती निज़ामुद्दीन (ईस्ट) में मथुरा रोड पर स्थित है। उनका देहान्त दिल्ली में ही हुआ था। यह मक़बरा रहीम के पतन के सदृश ही अपूर्ण रह गया था और इसके गुम्बद का संगमरमर कालान्तर में प्रस्तर-तस्कर सफ़दरजंग के मक़बरे में लगा दिया गया था। इसके पास ही हुमायूँ के मक़बरे के मोड़ पर सड़कों के बीचोबीच इनके पिता वैरम ख़ाँ का मक़बरा है। इन दोनों मक़बरों की विशेषता यह है कि ये दो गुम्बदी हैं—नीचे से जो गुम्बद लगता है वह छत है, जिसके ऊपर भी गुम्बद है। पतन में भी महान् रहीम का मक़बरा जर्जर दशा में भी प्रभावी लगता है।

रहीम के पिता वैरम ख़ाँ ख़ूखार तातार तुर्क थे जो 16 वर्ष की उम्र में बाबर (जो उस समय काबुल हथियाकर वहाँ जम चुका था) की सेवा में आए थे। 26 दिसम्बर, 1530 को आगरे में बाबर के मरने⁶ तथा 29 दिसम्बर को वहीं हुमायूँ के बादशाह बनने, उसके पठान शेरशाह द्वारा 1540 ई. में भारत से खदेड़े जाने, इस भगदड़ के बीच अमरकोट (सिन्ध)⁷ में 15 अक्टूबर, 1542 को अकबर के पैदा होने, 1655 ई. के हुमायूँ के पुनः बादशाह बनने तथा 24 जनवरी 1556 ई. को दिल्ली के पुराने क़िले के शेर-मंडल के जीने से फ़िसल मरने, उस समय अकबर के पंजाब में होने के कारण कलानौर (ज़िला गुरदासपुर) में 14 फरवरी को उसके बादशाह बनावे जाने इत्यादि के सारे घटनाचक्र में उनकी ऐतिहासिक भूमिका निर्विवाद है। पानीपत की दूसरी लड़ाई (1556 ई.) के बाद अकबर को आहत बंदी हेमू (राजा विक्रमादित्य) का सर कलम करा काफ़िर के क़त्ल का शवाब लूटते हुए गाज़ी बनने का परामर्श बैरम ख़ाँ ने ही दिया था। अबुल फ़ज़ल कृत 'अकबरनामा' के आधार पर "हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया" में डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि पराभूत एवं मृतप्राय शत्रु के वध को अवीरतापूर्ण कहते हुए जब अकबर ने यह 'पवित्र कार्य' सम्पन्न न किया, तब इन्होंने ही यह पुण्य लूटा।

1. अत्युक्ति अलंकार।

2. अन्योक्ति।

3. 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (शुक्ल) में नहरदास लिखा है।

4. यह वृत्त 1565 ई. का है; गद्य भी प्रौढ़ नहीं। लगता है, किशोर कवि किसी के साथ दरबार देखने गया था।

5. दे. "रहीम" (अंग्रेज़ी-ग्रन्थ) ले. समर बहादुर सिंह।

6. इसे उसकी इच्छा के अनुसार काबुल में दफ़नाया गया। मक़बरा छोटा भी है और उपेक्षित भी, क्योंकि अफ़ग़ान (पठान) विदेशी तुर्क लुटेरों से नफ़रत करते हैं।

7. इतिहास-हंता इसे उमरकोट कहते हैं। उमर दूसरे ख़लीफ़ा थे।

कतिपय स्रोत अकबर द्वारा ही हेमू का सर कलम करना स्वीकार करते हैं। इससे पूर्व आगरा-विजय के पश्चात् दिल्ली-विजय में हेमू से परास्त अनुभवी सेनापति तर्दीबेग को भी इन्होंने ही मरवा डाला था। हुमायूँ के मरने पर यह 13 साल के बाल-बादशाह अकबर के अभिभावक और वकीले-सल्लनत बने तो इनका नृवंशगत क्रूर-कठोर व्यक्तित्व भयानकतम रूप में प्रकट हुआ और शिया होने के कारण उन्होंने शियाओं को अनाप-शनाप बढ़ावा देना शुरू कर दिया, अपने लगभग 25 चेहत्तों को पंजहजारी-मनसबदार बना डाला, एक बार तो अकबर के महावत को बिना किसी कसूर के ही मरवा डाला। ताकत का यह पागलपन तरुण अकबर को कैसे भाता? एक बार तो अकबर के महावत को बिना किसी कसूर के ही मरवा डाला। ताकत का यह पागलपन तरुण अकबर को कैसे भाता? उसने इनके शिकजे से निकलने की सोची। तब इन्होंने जिन्दगी भर हुमायूँ को परेशान करने, एक बार युद्ध के बीच शिशु अकबर को एक किले की दीवार पर खड़ा करने तथा सदा अग्रज-द्रोह करने वाले कामरान के बेटे अयुल कासिम को बादशाह बनाने की योजना बनाई। पर चतुर अकबर ने इन्हें हर तरह से क़ाबू किया तथा मक्का की तीर्थयात्रा (हज) के लिए विवश किया। 'हारे को हरि नाम'! किन्तु जब वह पाटन या सोमनाथ (गुजरात) पहुँचे तब 1561 ई. में एक पठान गिरोह ने इनके शिविर पर आक्रमण किया, इन्हें तलवार के घाट उतारा और सब-कुछ लूट लिया। पठान सरदार ने पितृहत्या का बदला लिया था। सम्भव है, यह अकबर के ही पड़्यन्त्र का परिणाम रहा हो? उस समय रहीम 4-5 वर्ष के ही बीच में थे। यह किसी प्रकार बचा लिए गए। अकबर ने इनकी विधवा माँ को अपनी बीवी बना लिया तथा इन्हें पुत्रवत् पाला। बाद में वह मशहूर सिपहसालार बने, इन्हें नवाब एवं खानेखानों के अलंकार प्राप्त हुए। किन्तु यह कोरे सेनापति न थे; तुर्की, फ़ारसी, अरबी इत्यादि के विद्वान् भी थे तथा संस्कृत, अवधी, ब्रज, खड़ीबोली के विलक्षण काव्यस्रष्टा थे। इन्होंने 'तुजुके-बाबरी' का तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद किया तथा फ़ारसी में एक दीवान भी रचा। इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर अकबर ने इन्हें बालक सलीम (बाद में जहाँगीर) का शिक्षक नियुक्त किया था।

'विनोद' के अनुसार, 'पंडित नकछेदी तिवारी ने लिखा है कि इन्होंने रहीम-सतसई, बरवै-नायिकाभेद, रास-पंचाध्यायी, मदनाष्टक, दीवान-फ़ारसी और बाकयात-बाबरी का फ़ारसी अनुवाद ये 6 ग्रन्थ बनाए। इनमें से द्वितीय मुद्रित और प्रथम के हस्तलिखित दो सौ बारह दोहे हमारे पुस्तकालय में वर्तमान हैं। शेष ग्रन्थ हमने नहीं देखे। 'शिवसिंह सरोज' में इनका शृंगार-सोरठा नामक एक ग्रन्थ लिखा है।" 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में इसके अतिरिक्त अन्य कृतित्व पर भी प्रकाश डाला गया है। भरतपुर के श्रीयुत् पंडित मायाशंकर जो याज्ञिक ने इनकी और भी रचनाओं का पता लगाया है, जैसे 'नगर-शोभा', फुटकल बरवै, फुटकल कवित्त-सवैये और रहीम का एक पूरा संग्रह 'रहीम-रत्नावली' के नाम से निकला है। 'हिन्दी साहित्य कोश भाग 2' में डॉ. रामचन्द्र तिवारी के अनुसार "रहीम-काव्य के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें रहीम-रत्नावली (सं. मायाशंकर याज्ञिक-1928 ई.) और रहीम-विलास (सं. ब्रजरत्नदास-1948 ई., द्वितीयावृत्ति) प्रामाणिक और विश्वसनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'रहिमन-विनोद' (हिन्दी साहित्य सम्मेलन), 'रहीम-कवितावली' (सुरेन्द्रनाथ तिवारी), 'रहीम' (रामनरेश त्रिपाठी), 'रहिमन-चन्द्रिका' (रामनाथ 'सुमन'), 'रहिमन-शतक' (लाला भगवानदीन) आदि संग्रह भी उपयोगी हैं।"

तुलसी और रहीम की मिताई जगजाहिर है। रहीम बनारस के प्रशासक भी रहे थे। एक ब्राह्मण के कन्याविवाह सन्दर्भ याचन पर तुलसी ने यह शब्द लिखकर दिए और रहीम से मिलने को कहा:

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, अस चाहति सब कोय ।

जिस पर रहीम ने उसे भरपूर दान देते हुए यह शब्द लिखे और तुलसी को देने के लिए कहा :

गोद लिए हुलसी³ फिरै, तुलसी-सो सुत होय ।।

प्रसिद्ध है कि एक सैनिक के अवकाश के अत्यधिक आग्रह पर रहीम ने कारण पूछा तो उसे नववधू का पत्र दिखाना पड़ा जिसकी इबारत थी :

प्रेम-प्रीति कर बिरवा चलेउ लगाय ।

सींचन के सुधि राखेव मुरझि न जाय ।।

उसे तो अवकाश मिला ही, साहित्य को 'बरवै-नायिकाभेद' जैसा उत्कृष्ट अवधी-काव्य भी मिला और रहीम द्वारा बरवै-नायिकाभेद को तुलसी को दिखाने पर तुलसी का 'बरवै-रामायण' भी प्रकाश में आया जो एक मनोहारी अलंकृतकाव्य है। बरवै-नायिकाभेद एवं बरवै-रामायण शास्त्रीय कविता के सुन्दर निदर्शन हैं। अतः दोनों कवि भावीकाल के अग्रदूत भी हैं।

1. श्री मायाशंकर याज्ञिक का रहीम पर किया कार्य चिरस्मरणीय है।

2. हुलसी के तुलसी-माता होने का एक प्रमाण; अन्य अर्थ भी स्पष्ट है।

परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में खड़गजीवी योद्धा का जीवन उत्थान-पतन में झूलने लगता है। खुर्रम (वाद में शाहजहाँ) के विद्रोह पर रहीम का दुलमुलपन उनके पतन का कारण बना। दो पुत्र पहले ही मर चुके थे। विधुर था ही। चित्रकूट में निर्वासित जीवन विताना पड़ा। किन्तु अपने युग के हातिमताई को तब भी याचक-मुक्ति नहीं मिल सकी। एदुसन्दर्भी दोहे प्रसिद्ध हैं :

तवहीं लौ जीवो भलो दीवो परै न धीम। विन दीवो जीवो भलो मोहि न रुचै रहीम॥

ये रहीम दर-दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं। यारो! यारी छोड़िए वे रहीम अब नाहिं॥

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमान अवध-नरैस। जा पर विपदा परति है सो आवत यहि देस॥

अन्तिम दोहा रीवा-नरेश को सुनाया गया तो उन्होंने दोहा-रूप पत्र-वाहक को एक लाख रुपया प्रदान किया। उनके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी महाबत खान¹ ने अवसर देखकर इनके एकमात्र अवशिष्ट पुत्र दाराब खान, उसके पुत्र एवं भतीजे को ख़लास कर दिया। वृद्ध एवं बंदी, निरुपया एवं एकाकी खानेखानों की मर्यान्तक पीड़ा देने की पैशाचिक आह्लाद ही प्राप्ति के उद्देश्य से नरपशु महाबत खान ने रुमाल के अन्दर तर्बूज़ की भेंट के रूप में दाराब खान का सर भेजा, जिसे देखकर उन्होंने कहा था, “तर्बूज़ शहीदी अस्त² (तर्बूज़ शहीदी है)। जीवनान्तपूर्व उन्हें जहाँगीर एवं नूरजहाँ की कृपा प्राप्त तो हुई किन्तु तब तक विलम्ब हो चुका था। रहीम के जीवन का आरम्भ पितृनाश से हुआ, अन्त वंशनाश से, किन्तु वे एक बहुत ही महान् जीवन जिए जो एक करुण-काव्य है, करुण-नाटक है, करुण-कथा है। रहीम मुगल-काल (1526-1857 ई.) के सर्वाधिक प्रतिभाशाली मुसलमान थे। वे अपने समय के खुसरो थे। खुसरो का उन प्रभाव भी पड़ा। खड़ीबोली-काव्यरचना में, फ़ारसी-हिन्दी-मिश्रित काव्यरचना में, उदारता में, मानवतावादिता में।

हिन्दी साहित्य में रहीम का द्विविध-महत्व है: वे देवसेन, कवीर, तुलसी, वृन्द, गिरिधर एवं दीनदयाल गिरि की परम्परा में प्रतिष्ठित नीतिकाव्यकार भी हैं तथा कृपाराम, करन कवि, तुलसी (गीतावली एवं बरवै-रामायण में ऐश्वर्य-चित्रण एवं अलंकृत-सृजन के कारण) एवं केशवदास की परम्परा में प्रतिष्ठित शास्त्रीयकाल-अग्रदूत भी हैं। उपलब्ध सृजन के आधार पर अकबरी दरबार के कवियों में उनकी समता न गंग कर सकते हैं (जिनके साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे), न नरहरि, न वीरबल (ब्रह्म), न टोडरमल और न कभी-कभार आने वाले मनोहर कवि, न होलराय (ब्रह्मभट्ट) इत्यादि। हिन्दी के मुसलमान कवियों में जायसी का स्थान सर्वोपरि है, क्योंकि उनका श्रेष्ठ महाकाव्य पदमावत, यत्र-तत्र सांप्रदायिकता के दोष से ग्रस्त होते हुए भी, शृंगार एवं वीर रसों से निष्पन्न है, क्योंकि उसका हठयोग-पुष्ट सूफ़ी-रहस्यवाद विश्वस्तीर्य है। किन्तु जायसी के अनन्तर रसखान और रहीम की जोड़ी ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है तथा लोकप्रियता में जो जायसी इस जोड़ी से कोसों पीछे पड़ जाते हैं। जायसी प्रायः सांप्रदायिक हैं, अतः लोकप्रिय नहीं हो सके; रसखान और रहीम मानवतावादी एवं धर्मनिरपेक्ष थे, अतः जनता के कंठाभरण बन गए। व्यक्तित्व की गरिमा में जायसी न रसखान की समता कर सकते हैं, न ही रहीम की। रसखान और रहीम की तुलना सरल नहीं है। यदि प्रेम की तन्मयता में रसखान आगे हैं, तो जीवन-व्याप्ति में रहीम। दोनों सरस हैं, स्वच्छ भाषा के आचार्य हैं। बहुमुखी प्रतिभा में रहीम रसखान से बहुत आगे हैं, किन्तु भावव्यक्तिमता में रसखान विशदतर हैं। वस्तुतः दोनों प्रायः एकस्तरीय उच्च कवि हैं।

रहीम ने भर्तृहरि एवं तिरुवल्लुवर के सदृश शृंगार, नीति एवं वैराग्य के त्रित् का सम्मान किया है। यह सत्य है कि इस त्रित् की विशदता जैसी भर्तृहरि एवं तिरुवल्लुवर में है वैसी रहीम में नहीं, किन्तु वे हिन्दी के भर्तृहरि अथवा हिन्दी के तिरुवल्लुवर अवश्य हैं। उनकी रचनाओं से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. शृंगार काव्य

1. नैन सलोने, अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन?
मीठो भावै लोन पर, मीठे हू पर लौन॥
2. गरब तराजू करति चख, भौंह मोरि मुसकाति।
डाँड़ी मारति बिरह की, चित चिन्ता घटि जाति॥
3. रहिमान धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय।
टूटे ते पुनि ना जुँरै, जुँरै गाँठि परि जाय॥

1. इसने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह भी किया था।

2. रहीम (अंग्रेजी), पृष्ठ 91

3. सुन्दर रूपक, महान् असंगति अलंकार।

4. कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था। चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था।।
कटितर बिच मेला पीत सेला नवेला। अलि! बन अलबेला यार मेरा अकेला।।
5. भोरहिं बोलि कोइलिया बढवति ताप। घरी एक भरि अलिया! रहु चुपचाप।।
बाहर लैके दियवा बारन जाइ। सासु-ननद घर पहुँचत देइ वुझाइ।।
पिय आवत अँगनैया उठिकै लीन। बिहँसत चतुर तिरियवा बैठक दीन।।
लै के सुधर खुरपिया पिय के साथ। छड़बै एक छतरिया बरसत पाथ।।
पीतम! इस सुमरिनिया मोहिं देइ जाहु। जेहि जपि तोर बिरहवा करव निवाहु।।

नीति-काव्य

1. रहिमन पानी रखिए, विनु पानी सब सुन।
पानी गए न ऊवरे मोती, मानुस, चून।।¹
2. ज्यों रहीम गति दीप की कुल कपूत गाति सोय।
बारे उजियारो लौ, बड़े अँधेरो होय।।²
3. रहिमन वे नर मरि चुके जे कहूँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे गुए जिन मुख निकसत नाहिं।
4. माँगत मुकरि न को गयो? केहि न त्यागिनो साथ?
माँगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ।।
5. कमला थिर न, रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय?
6. रहिमन विपदा हू भली जो थोरे दिन होय।
हित-अनहित या जगत में जानि परत सब कोय।।
7. दुरदिन परे रहीम कह, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं बितहानि की जौ न होय हितहानि।।
8. काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।
रहिमन भाँवर के परे नदी सेरावत मौर।।
9. जो गरीब को आदरैं ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो कृष्ण मिताइ जोग?
10. छमा वड़ेन को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात।।
11. रहिमन बिगरी आदि की बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकास लौं तऊ बामनै नाम।।

भक्ति-काव्य

1. संपति संपत्तिवान को सब कोऊ कछु देत।
दीनबंधु बिन दीन की को रहीम सुधि लेत।।

1. उत्कृष्ट यमक।

2. सुंदर श्लेष।

2. अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे से तौ जग नहीं, झूठे मिलै न राम ॥
3. तैं रहीम मन आपनो कीनो चारु चकोर ।
निसि-बासर लाग्यो रहै कृष्णचंद्र की ओर ॥
4. रहिमन को कोउ का करै ज्वारी, चोर, लवार ।
जाके राखनहार हैं माखन-चाखनहार ॥
5. हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सर पूर ।
खैंचि आपनी ओर को डारि दियो पुनि दूर ॥
कमल दल नैनन की उनमानि ।
विसरत नाहिं साखी! मो मन में मंद-मंद मुसकानि ।
बसुधा की वस करी मधुरता, सुधा-पगी बतरानि ।
मढ़ी रहै चित उर विसाल की मुकताहल थहरानि ।
नृत्य समय पीतांबर हू की फहर-फहर फहरानि ॥
अनुदिन श्रीवृंदावन ब्रज तैं आवन आवनि जानि ।
अब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि ॥

वैराग्य-काव्य

1. भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गलत लघु भूप ।
रहिमन गिरि तैं भूमि लौं लखौ तो एकै रूप ॥
2. धन दारा अरु सुतन सों लगो रहै नित चित्त ।
नहिं रहीम कोऊ लख्यौ गाढ़े दिन को मित्त ॥
3. बड़ेन सो जान-पहचान कै रहीम कहा,
जो पै करतार ही न सुख देनदार है?
सीतहर सूरज सों नेह कियो याहि हेत,
ताहु पै कमल जारि, डारत तुषार है ॥
छीरनिधि माहिं धस्यो, संकर के सीस बस्यो,
तऊ ना कलंक नस्यो, ससि में सदा रहै ।
बड़ो रिझवार या चकोर-दरबार है पै
कलानिधि यार तऊ चाखत अँगार है ॥

कुली कुत्बशाह

गोलकुंडा का सुल्तान कुली कुत्बशाह (राज्यकाल 1580-1611 ई.)¹ हिन्दी कवि भी था। 'दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा' में महापंडित राहुल सांकृत्यायन एवं 'दक्खिनी हिन्दी' में डॉ. बाबूराम सक्सेना ने अपने विषय के साथ पर्याप्त न्याय किया है। अनेक कवि प्रकाश में लाए हैं। कुली कुत्बशाह की कविता की बानगियाँ देखें:

1. गोलकुंडा जनपद के चंचलम् ग्राम की नर्तकी भागमती पर यह इतना लड़ू हुआ कि भागनगर बसाया था जो भागमती के मोहम्मदीकरण पर बेगम हैदर महल बनने से हैदराबाद कहलाया। गोलकुंडा में कुली कुत्बशाह का मक़बरा (1625 ई.) दक्षिण भारत के बृहत्तम-श्रेष्ठतम् मोहम्मदी भवनों में एक है।

1. पियारी के नैना हैं जैसे कटारे । न सम उनके अंगे हैं कोई दोधारे ॥
दो लोचन हैं तेरे निसँग चोर रावत । उनों में दिलेरी न कर, सबही हारे ॥
सख्यों में तू मिर्गनयनी छबीली । सजन तो नहीं होते तुजसे किनारे ॥
2. नहीं कै न अछसे न देख्या नबेली । छबीली जगत में जगत में छबीली ॥
नबेलीन देख्या न अछसे नहीं कै । नहीं कै न अछसे न देख्या नबेली ॥
नहीं कै न अछसे सहेली रँगली । तुज ऐसी जगत में छबीली रँगली ॥
छबीली जगत में गहेली गहेली । सहेली रँगली न देख्या नबेली ॥
सहेली न अछसे न देख्या रँगली । तुज ऐसी जगत में जगत में गहेली ॥¹

राय प्रवीण

महाकवि केशवदास कृत 'कविप्रिया' की रचना (जिसके द्वारा महान् शास्त्रीयकाल का सभारम्भ हो सका) का मूल कारण ओरछा के केशवदास द्वारा अमर किए गए इन्द्रजीतसिंह की पत्नीवत् प्रिय वेश्या, लोककथा बनकर स्वयं सतत-जीवंत राय प्रवीण (सोलहवीं सदी का उत्तरार्द्ध) कुशल नृत्यांगना के साथ कवयित्री भी थीं। इकवाल बहादुर देवसरे ने 'बाबा कहि कहि जाहिं' शीर्षक हल्के शीर्षक के भारी ऐतिहासिक उपन्यास में राय प्रवीण का विशद प्रात्ययिक चित्रण किया है। राय प्रवीण सोनार (सुनार, स्वर्णकार)² जाति की रत्न थीं। इनकी रूपकला, नृत्यकला एवं काव्यकला की ख्याति से अभिभूत परमकामुक अकबर ने इन्हें बलात् हस्तगत करना चाहा। इस विषय पर इनके कई छन्द प्राप्त होते हैं; सम्भवतः जिनसे प्रभावित होकर अकबर ने इन्हें इन्द्रजीतसिंह के पास जाने दिया :

1. आई हों वृझन मंत्र तुम्हें, निज स्वासन सों सिगरी मति गोई ।
देइ तजौं कि तजौं कुल-कानि, हिए न लजौं, लजिहैं सब कोई ॥
स्वारथ औ परमारथ कौ गथ³ चित्त विचारि कहौ तुम सोई ।
जामैं रहे प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई ॥
2. बिनती राय प्रवीण की सुनिए साह सुजान ।
जूठी पतरी भखत हैं बारी, बायस, स्वान ॥

लालनदास

पुनरुत्थानकाल एवं शास्त्रीयकाल के कुछ कवियों ने सायास-अनायास मुगलकालीन ऐश्वर्य एवं विलास-सज्जा⁴ के भड़कीले किन्तु स्थूल वर्णन किए हैं, जिनमें एक कालयुगल-संयोजक लालनदास (1600 ई. के लगभग विद्यमान) भी उल्लेखनीय हैं, जो दालव या दालभ्य ऋषि से संपृक्त होने के कारण 'दलमौ' (मुल्ला दाऊद कृत 'चन्दायन' में) तथा राजा दल या डल से संपृक्त होने के कारण 'डलमऊ' (ज़िला रायबरेली जिसका पूर्वनाम दल या डल के भाई बल पर आधृत बलावली या बलौली था) के निवासी थे, जहाँ से पूर्ववर्ती मुल्ला दाऊद और परवर्ती निराला (ससुराल होने के कारण—'कुल्ली भाट'⁵ डलमऊ के ही थे) भी जुड़े हैं :

दालव ऋषि की दलमऊ सुरसरि तीर निवास ।
तहाँ दास लालन बसे करि अकास की आस ॥

1. चित्रकाव्य के कारण रचना विचित्र लगती है (द्रष्टव्य है डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव कृत 'मध्ययुगीन हिन्दी के सूफ़ी-इतर मुसलमान कवि', पृष्ठ 422-23) ।
2. राना बेनीमाधव के अमर सहायक 'हुतात्मा' खंडकाव्य (बालकृष्ण मिश्र) के नायक लालचन्द एवं प्रसिद्ध उपन्यासकार चतुरसेन शास्त्री भी सोनार थे ।
3. धन ।
4. 'हिन्दी-कविता में मुगलकालीन ऐश्वर्य एवं विलास' शोध का श्रेष्ठ विषय है जिसे आईने-अकबरी, तुजुके-जहाँगीर (जहाँगीरनामा), बादशाहनामा इत्यादि का सबल ऐतिहासिक आधार भी प्राप्त है तथा गंग, मतिराम, भूषण, विहारी, सुखदेव, देव, सूदन, पद्माकर इत्यादि का प्रात्ययिक साहित्यिक आधार भी । विन्सेन्ट ए. स्मिथ इत्यादि के अंग्रेजी-ग्रन्थ भी सहायक सिद्ध हो सकते हैं ।
5. वास्तविक व्यक्ति पर आधृत निराला का उपन्यास । निराला ने पैतृकग्राम गढ़ाकोला (उन्नाव जनपद) के 'चतुरी चमार' पर भी लिखा है ।

मिश्रबन्धु के अनुसार, “इन्होंने शान्तरस तथा स्फूट विषयों के छन्द बनाए। इनकी कविता सानुप्रास और विशद होती थी।” ‘चिनोद’ से उद्धरण अवतरित है :

दीप-कैसी जाकी जोति जगर-मगर होति, गुलावास बादर मैं दामिनी अलूदा है।
जाफरानी फूलन मैं जेसे हेमलता लसै, तामैं उग्यो चंद लेन रूप अजमूदा है।।
लालनजू लालन के रंग-सी निचोरि रँगी, सुरँग मजीठ ही के रंगन जमूदा है।
वकि न बहूदा, लखि छबिन को ऊदा ओप, अतर अफलूदा अंगना के अंग ऊदा है।।

उपसंहार

पुनरुत्थानकाल (1300-1600 ई.) हिन्दी-साहित्य के इतिहास का स्वर्णकाल है, क्योंकि इसमें हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ जनमान्य कवित्रय तुलसी, सूर एवं केशवदास हुए जिनका सृजन सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वप्रभावी प्रमाणित हुआ, हिन्दी में सूफ़ी-कविता के प्रवर्तक एवं मध्यकालीन पुनरुत्थान के प्रथम नेता अमरी खुसरो, हिन्दी-प्रेमाख्यान-परम्परा के आदिकवि मुल्ला दाऊद, हिन्दी के सर्वोपरि सूफ़ी कवि जायसी हुए; हिन्दी के सर्वोत्तम संतत्रय-कवित्रय कबीर, रैदास, नानक हुए; महान् गीतकार विद्यापति हुए; हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री मीराँ हुई; रसखान एवं रहीम, नन्ददास एवं हितहरिवंश जैसे पुनरुत्थान-प्रतीक सत्कवि हुए। इन सबका जनता पर आज भी ऐसा प्रभाव है जैसा पूर्ववर्ती संक्रान्तिकाल (800-1300 ई.) तथा परवर्ती शास्त्रीयकाल (1600-1800 ई.) एवं बौद्धिककाल (1800 ई. से) के कवियों एवं गद्यकारों का नहीं पड़ सका। विशेषतः गुण एवं सामान्यतः परिमाण में पुनरुत्थानकाल की सी काव्यसृष्टि “न भूतो न भविष्यति” तक की अत्युक्ति भी करा सकती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह काल पुनरुत्थानकाल ही था जिसमें चैतन्य महाप्रभु एवं बल्लभाचार्य जैसे दार्शनिकों ने लीलामयी-आशामयी भक्ति के पीयूष से राष्ट्र को परिप्लावित किया, सामान्यतः शेरशाह एवं विशेषतः अकबर महान् ने सुशासन एवं सौमनस्य की स्थापना में सफलता प्राप्त की, राणा प्रताप एवं भामाशाह जैसे देशभक्तों ने स्वातन्त्र्य एवं त्याग के बीज बोए। हिन्दू-पुनरुत्थान इस काल की महती उपलब्धि थी। संगीत की दृष्टि से भी खुसरो एवं तानसेन, हरिदास एवं वैजू बावरा इत्यादि का यह काल सहस्राब्दि में अतुलनीय सिद्ध हुआ। स्थापत्य अथवा शिल्प की भी महान् उन्नति हुई, जिसके प्रत्यक्ष प्रमाण हुमायूँ का मक़बरा (दिल्ली), बुलन्द दरवाज़ा (फ़तहपुर सीकरी), अकबर का मक़बरा (सिकन्दरा-आगरा) इत्यादि आज भी विस्मयाविष्ट कर देते हैं। समग्र भारतीय इतिहास के स्वर्णकाल गुप्तकाल¹ के अनन्तर समूचे मध्यकाल में केवल इस काल को ही स्वर्णकाल कहा जा सकता है।²

मानव-जाति के व्यापक आयामों की दृष्टि से इस समय ईरान, स्पेन, ब्रिटेन इत्यादि में भी पुनरुत्थानकाल एवं स्वर्णकाल गतिशील थे। समग्र यूरोप का तो यह पुनरुत्थानकाल विख्यात है ही। अकबर, ऐलिज़ाबेथ, फिलिप, शाह अब्बास जैसे शासक, कबीर, नानक, लूथर जैसे सुधारक तुलसीदास, शेक्सपीयर, सर्वेन्टीज़ जैसे कवि, मॉन्टेन जैसे निबन्ध-जनक, मीराँ, टेरेसा जैसी कवयित्रियाँ, बेकन जैसे वैज्ञानिक-दार्शनिक निबन्धकार पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदियों की मानव-जाति के इतिहास में अद्वितीय पुनरुत्थानमयी सदियों का गौरव प्रदान कर सकते हैं। इसी वैश्विक पुनरुत्थान ने क्रमशः वैश्विक शास्त्रीयता एवं वैश्विक बौद्धिकता का पथ-प्रशस्त किया; अतः यह अब भी जीवन्त है, प्रभावी है तथा आगे भी रहेगा।

1. चिसेन्ट ए. स्मिथ (अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया)।

2. डॉ. ईश्वरीप्रसाद ('हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया' में अकबर-संबद्ध 'ए गोल्डेन एपोक')।

3. शास्त्रीयकाल¹ (1600-1800 ई.)

भृंगारकाव्य	वीरकाव्य	रामकाव्य	कृष्णकाव्य	संतकाव्य	आत्मपरक प्रेमकाव्य	सूफीकाव्य	नीतिकाव्य	आस्थाकाव्य	अनुवादकाव्य	गद्य	कुछ अन्य रचनाकार
केशवदास सेनापति विहारी मतिराम सुखदेव देव पदाकर इत्यादि	भूषण लाल कवि गुरु गोविन्दसिंह सूदन इत्यादि। गुरु गोविन्द सिंह पदाकर इत्यादि।	केशवदास सेनापति गुरु गोविन्द सिंह पदाकर इत्यादि। गुरु गोविन्द सिंह पदाकर इत्यादि।	केशवदास ताज वेगम विहारी गोविन्द सिंह नागरीदास ब्रजवासीदास पदाकर इत्यादि।	रज्जब मल्लकदास सुंदरदास तेगबहादुर प्राणनाथ दरिया साहब इत्यादि। पदाकर इत्यादि।	आलम धनआनन्द बोधा ठाकुर गुरु गोविन्द सिंह नागरीदास ब्रजवासीदास पदाकर इत्यादि।	उस्मान नूरमोहम्मद इत्यादि। गुरु गोविन्द सिंह नागरीदास ब्रजवासीदास पदाकर इत्यादि।	विहारी बृंद घाय निरिधर इत्यादि। गुरु गोविन्द सिंह पदाकर इत्यादि।	जसवंतसिंह गुमान मिश्र सरप्रराम घडित गोकुलनाथ गोपीनाथ मणिदेव इत्यादि।	कुलपति इत्यादि (ब्रजभाषा) रामप्रसाद निरंजनी (खड़ीबोली)। इत्यादि।	वनारसीदास जैन छत्रसाल बुल्लाशाह सीतल रामचन्द्र इत्यादि।	
प्रवृत्तियों : नायिकाभेद नखशिख षड्वर्णन। प्रवृत्तियों : वीरपूजा हिन्दुत्व-रक्षा स्नेह-पवन। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : वीरपूजा हिन्दुत्व-रक्षा स्नेह-पवन। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : भक्ति कलात्मक वर्णन लीला-वर्णन। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : लीला-वर्णन कथा-वर्णन भक्ति। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : समन्वय निर्गुण-निरूपण भक्ति। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : आत्मपरकता स्वच्छन्दता। (मिथित-भाषा भी)	प्रवृत्तियों : रूढ़ कल्पना (कथानकाल)। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : नैतिकता व्यवहार- कुशलता। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : हास परिहास व्यंग्य। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : संस्कृत के काव्यशास्त्र एवं धर्मशास्त्र की प्रस्तुति। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : ज्ञान-प्रसार साधु-अनुवाद। ललित- ब्रजभाषा।	प्रवृत्तियों : विविध वैयक्तिक। ललित- ब्रजभाषा।
प्रभाव : परवर्ती चित्रण, प्रकृति- चित्रण एवं अलंकरण पर।	प्रभाव : परवर्ती वीरकाव्य पर। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : परवर्ती रामकाव्य पर। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : परवर्ती कृष्णकाव्य पर। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : अपने पंथों पर। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : परवर्ती स्वच्छन्दतावादी कवियों पर। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : नगण्य। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : जनजीवन पर व्यापक रूप से। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : अनुवाद परम्परा पर व्यक्तिचित्। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : अनुवाद परम्परा पर व्यक्तिचित्। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : परवर्ती अनुवादकों पर व्यक्तिचित्। ललित- ब्रजभाषा।	प्रभाव : अन्य। ललित- ब्रजभाषा।

1. प्रचलित नाम अलंकृतकाल या रीतिकाल या कलाकाल या भृंगारकाल जो एकान्ती है।

1. डॉ. सूर्यप्रकाश मिश्र कृत 'रिति और शैली' एवं 'हिन्दी-साहित्य में रिति-शैली' शीर्षक सन्तुलित-विद्वत्तासम्पन्न ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। (यद्यपि उनमें काल-नामकरण का विन्दु नहीं उठाया गया और न ऐसा विषयसम्मत ही होता।)

इस काल के प्रतिनिधि कवि तो प्रायः विशुद्ध-शास्त्रीयकाव्यकार हैं ही (केशव को कोरा अलंकारवादी-चमत्कारवादी मानना भ्रममूलक है क्योंकि वे रसवादी भी हैं, सेनापति एवं भूषण का अलंकारवाद भी रसपुष्ट है, शेष तो शृंगाररसवादी हैं ही), बिहारी भी नायिकाभेद एवं अलंकार की शास्त्रीयता से सराबोर हैं, आलम, घनआनन्द, बोधा, ठाकुर (बुन्देलखण्डी) एवं द्विजदेव (वस्तुतः बौद्धिककालीन संधियुग के कवि) भी क्रमशः रसवाद, अलंकार, शब्दशक्ति, शृंगारिकता एवं षड्भूत-वर्णन की शास्त्रीयता से संपृक्त हैं, यहाँ तक कि नीतिकाव्य के श्रेष्ठ कवि दीनदयाल गिरि (वस्तुतः बौद्धिककालीन संधियुग के कवि) भी अलंकारवाद (उनकी प्रमुख कृति का नाम ही 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' है) से जुड़े हुए हैं। पारंपरिक एकांगी नामकरणों एवं स्थूल-वर्गीकरणों के सारे प्रमुख कवि इस या उस रूप में शास्त्रीयता से भरपूर लाभ उठाते दिखाई देते हैं। जहाँ तक इस काल के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कवियों केशव, सेनापति, मतिराम, भूषण, सुखदेव, देव एवं पद्माकर का सम्बन्ध है, वे शास्त्रीय-कवि हैं। जहाँ तक घनआनन्द जैसे आत्मपरक-प्रेमकाव्यकार का सम्बन्ध है, वे अलंकारशास्त्र एवं शब्दशास्त्र की सहायता के बिना ठीक-ठीक समझे भी नहीं जा सकते। जहाँ तक चिन्तामणि, कुलपति, श्रीपति, भिखारीदास इत्यादि विशुद्ध आचार्य-कवियों का सम्बन्ध है, वे तो शतशः शास्त्रीयकाव्यकार हैं ही। अतः यह नाम व्यापक एवं सरल-सुगम है।

शास्त्रीयता (क्लैसिसिज़म) के दो पक्ष हैं : एक बौद्धिक-शास्त्रीयता-बद्ध और दूसरा जीवनव्यापी-शास्त्रीयता-बद्ध। शास्त्र शासन या प्रभाव का व्यंजक शब्द है। रामायण, महाभारत, भागवत इत्यादि का शासन (प्रभाव) उन्हें शास्त्र (धर्मशास्त्र, कर्मशास्त्र, मर्मशास्त्र) का रूप भी प्रदान कर देता है। नाट्यशास्त्र इत्यादि तो शास्त्र हैं ही। शास्त्रीयकाल की कविता भरत, भामह, दंडी, रुद्रट, मम्मट, विश्वनाथ, भानुदत्त, जगन्नाथ इत्यादि से ही प्रेरित नहीं है, वाल्मीकि, व्यास, शुकदेव, हनुमन्नाटककार दामोदर मिश्र, गीतगोविन्दकार जयदेव, प्रसन्नराघवकार जयदेव, अनर्घराघवकार जयदेव मिश्र, प्रबोधचन्द्रोदयकार कृष्ण मिश्र इत्यादि से भी प्रभावित है जिसकी अवस्थिति रामकृष्ण, महाभारताधृत-कृष्णकाव्य, भागवताधृत-कृष्णकाव्य, शृंगाराधृत-कृष्णकाव्य, विभिन्न अनुवादों इत्यादि से स्पष्ट हो जाती है।

रसवाद बनाम अद्वैतवाद

रसवाद साहित्य में अद्वैतवाद का प्रतिफलन है। नवरस हों या दशरस या न्यून या अधिक, तत्त्वतः रस एक है—आनन्द। वीभत्स हो या करुण, वीर हो या भयानक, रौद्र हो या हास्य, तन्मयता का आनन्द अभिन्न एवं एक है। उपनिषद् हो या पुराण, आनन्द या कैवल्य का एकानुभव ही अभीप्सित-तत्त्व है। शास्त्रीयकाल के कवियों में रसवाद के मूल-दर्शन अद्वैतवाद की गहन आनन्दानुभूति वस्तुपरक रूप में भी प्राप्त होती है, आत्मपरक रूप में भी, जिसे परम रससिद्धि माना जा सकता है। खेद है कि सूक्ष्म दार्शनिक ऊहापोह में रुचि न होने के कारण इस काल (अपने अलंकृतकाल) के सम्बेदनशील विद्वान् एवं शीर्षस्थ आलोचक मिश्रबन्धु तथा मिश्रबन्धु-उच्छेद-पूर्वाग्रह के कारणों से आ. शुक्ल ने इस काल को स्थूल रूप में ही देखा है। तथा परवर्ती आलोचकों में कोई इस स्तर का भी नहीं हो सका। गहन अद्वय-आनन्द या तलस्पर्शी कैवल्य की महान् अनुभूति की विविधरूपा सरस एवं प्रांजल अभिव्यक्ति शास्त्रीयकाल की कविता को उच्चतम स्तर प्रदान करती है :

1. केसोदास लाख-लाख भौतिन के अभिलाख बारि दै री बावरी! न बारि हिए होरी सी।
राधा-हरि केरी प्रीति सब से अधिक जानि, रीति-रतिनाथ हूँ मैं देखो रति थोरी सी।।
तिनहूँ मैं भेद न भवानि हूँ मैं पार्यो जाइ, भारती की भारती है कहिबे को भोरी सी।
एकै गति, एकै मति, एकै प्रान, एकै मन, देखिबे को देह द्वै हैं नैनन की जोरी सी।।' (केशव)
2. धातु, सिला, दार, निरधार, प्रतिभा कौ सार, सो न करतार तू बिचारि बैठि गेह रे।
राहु दीठि अन्तर, कछू न सून-अन्तर है, जीभ कौ निरन्तर जपाउ तू हरे हरे।।
मंजन बिमल सेनापति मनरंजन तू, जानि कै निरंजन परम पद लेह रे।
कर न सँदेह रे, कही मैं चित देह रे, कहा है बीच देहे? कहा है बीच देह रे।। (सेनापति)
3. मैं देख्यो निरधार यह जग काँचो काँच सो।
एकै रूप अपार प्रतिबिम्बत लखियत जहाँ।। (बिहारी)

4. वरनत साँच असंग कै तुमको बेद गुपाल।
हिए हमारे बसत हौ पीर न पावत लाल।। (मतिराम)
5. सीता संग सोभित सुलच्छन सहाय जाके, भू पर भरत नाम भाई नीति चारु है।
भूषन भनत कुल-सूर कुल-भूषन हैं, दसरथी सब जाके भुज भुव भारु हैं।।
अरि-लंक तोर जोर जाके संग बानर हैं, सिंधु रहे बाँधे जाके दल को न पारु है।
तेगहि कै भैटे जौन राकस मरद जानै, सरजा सिवाजी राम ही कौ अवतारु है।। (भूषण)
6. मोही में छिपे हौ मोहि छुवावत न छाहीं ताते,
छाहँ भए डोलत इतै पै मोहि छरिहौ।
7. राधिका कान्ह कौ ध्यान करै तब कान्ह हवै राधिका के गुन गावै।
त्यों अँसुवां चरसै बरसाने को पाती लिखै लिखि राधे को ध्यावै।
राधे हवै जाय घरीक मैं देव सु प्रेम की पाती लै छाती लगावै।
आपुने आपुही मैं उरझै - सुरझै - बिरुझै - समुझै - समुझावै।।
8. औचक आगाध सिन्धु स्याही कौ उमड़ि आयो, तामैं तीनौ लोक बूड़ि गए यक संग मैं।
कारे कारे आखर लिखे जु कारे कागद, सु न्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित भंग मैं।।
आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैन जिमि, जंबुरस-बुंद जमुना-जल-तरंग मैं।
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई, स्याम रंग हवै कै समान्यो स्याम रंग मैं।। (देव)
9. कंत रमैं उर-अंतर मैं सु लहै नहीं क्यों सुख-रासि निरन्तर।
दंत रहैं। गहि आँगुरी ते जु वियोग के तेह तचे परतंतर।।
जो दुख देखति हों घनआनंद रैन-दिना विन जान सुतंतर।
जानै वेई दिन-राति, बखाने तें जाय परै दिन-राति को अंतर।। (घनआनंद)
10. वा अनुराग की फाग लखौं जहँ रागति राग किसोर-किसोरी।
त्यों पदमाकर घाती घली फिरि लाल की लाल गुलाल की झोरी।।
जैसी की तैसी रही पिचकी कर काहू न केसरि रंग से बोरी।
गोरिन के रँग भीजिगो साँवरो, साँवरे के रँग भीजिगै गोरी।। (पदमाकर)

शास्त्रीयकालीन गहन-शृंगार कोरी विलासिता का उद्गार नहीं है, उसके तल में गहन प्रेमाद्वैत विद्यमान है। प्रेम की गहनता केशव, बिहारी, देव, पद्माकर इत्यादि में भी विद्यमान है, केवल आलम, घनआनंद, बोधा, ठाकुर इत्यादि में ही नहीं जैसाकि संवेदनहीनता के कारण मान लिया जाता है। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, आ. श्यामसुंदरदास एवं आ. रामचन्द्र शुक्ल की बृहत्त्रयी ने इस या उस रूप में इस काल के साथ अन्याय किया है तथा डॉ. नगेन्द्र प्रायः अनुगामी-से बनकर रहे हैं, डॉ. भगीरथ मिश्र ने सत्य का साक्षात्कार तो कराया है किन्तु उनमें शक्ति का अभाव है, डॉ. विजयपालसिंह ने पण्डित जगन्नाथ तिवारी की प्रेरणा से सत्य का स्पर्श तो किया है किन्तु द्विधा के कारण वह पिलपिला रह गया है। यदि हमें हिन्दी-आलोचना को विश्व-स्तर प्रदान करना है तो युगबद्ध या वादबद्ध या पूर्वाग्रहबद्ध या अहंबद्ध संकीर्ण आलोचना पर विशद वस्तुवाद की वरीयता देनी ही होगी तथा इसके लिए यथार्थसंदर्भ प्रहार अपरिहार्य होगा।

अंतस्साधना

भारत सूक्ष्मसाधना अथवा अंतस्साधना का प्रथम एवं प्रमुख देश रहा है जहाँ याज्ञवल्क्य, उद्दालक, श्वेतकेतु, श्वेताश्वतर, व्यास, कृष्ण, पतंजलि इत्यादि ने आस्तिक एवं बुद्ध, महावीर इत्यादि ने नास्तिक अंतस्साधना का प्रतिपादन किया, जिसका अनुकरण सरहपा इत्यादि सिद्धों, गोरखनाथ इत्यादि नाथों एवं कबीर इत्यादि निर्गुणप्रधान सन्तों ने अपने-अपने युगों एवं व्यक्तित्वों के अनुकूल रूपों में किया। 'अंतर' एवं 'बाह्य' का भेद निष्फल, स्थूल एवं द्रव्यमूलक है। किन्तु अंतस्साधना-प्रतिपादन मानव-गरिमा का प्रतीक अवश्य है। अनेक अन्तस्साधना-प्रतिपादक प्रकारान्तर से स्वपूजा-प्रतिपादक भी रहे हैं। किन्तु उनके कारण मानवता का विकास भी हुआ है।

वस्तुतः बहिस्साधना अथवा कर्मकाण्ड, तीर्थाटन, स्नान-पूजन इत्यादि मानव-प्रकृति के अंग हैं तथा हिन्दू, बौद्ध, जैन इत्यादि धर्मों: एवं मूसाई, ईसाई, मोहम्मदी इत्यादि मजहबों में कोई इनसे मुक्त नहीं। कोई घंटियाँ बजाता है, कोई अजान देता है। कोई गंगास्नान करता है, कोई जमजम-स्नान। कोई काँवर ढोता है, कोई सलीब। कोई यज्ञोपवीत धारण करता है, कोई टाई¹। कोई काशी-यात्रा करता है, कोई सारनाथ-यात्रा, कोई पावापुरी-यात्रा, कोई अमृतसर-यात्रा, कोई यरुसलेम-यात्रा, कोई हज और इन सबसे मानसिक लाभ भी होता है। मोहरम में छाती पीटना या गुड-फ्राइडे को क्रॉस ढोना या ग्रहण पर स्नान करना, सब एक-से-परा-मनोवैज्ञानिक हैं। जो मूढ़ या असहिष्णु है, वही दूसरे पर हँसता है। फिर भी, अंतस्साधना के अनुगमन से बौद्धिकता का विकास होता है, अनेक व्यर्थ-व्यय बचते हैं, अनेक व्यर्थ-यात्राएँ टलती हैं, अनेक उपयोगी कार्य होते हैं।

कबीर इत्यादि का अंतस्साधना-प्रतिपादन स्वपूजामूलक था, तुलसीदास इत्यादि का अंतर्बाह्य-अभेद स्वस्थ-स्वच्छ जिसका प्रभाव व्यापकतर सिद्ध हुआ। शास्त्रीयकाल के अनेक कवियों ने कर्मकाण्ड एवं पाखण्ड का खण्डन अथवा अंतस्साधना का मंडन अवश्य किया है किन्तु वह कबीर इत्यादि के खण्डन की तरह लट्टमार नहीं है अपितु तुलसी इत्यादि के खण्डन क सदृश स्वस्थ-स्वच्छ है और अपनी कलात्मकता में अद्वितीय :

गीतहिं सुनावैं, तिलकन झलकावैं, भुजमूलन छपावैं, द्वारका हू के पयान ही।
 बैसनव भेष भगतन की कमाई खाहिं, सेवैं हरि साहिबै न साँच है निदान ही॥
 देखि कै लिवास नीची सबन की नारि² होति, मोहि कै बिकच करै मन धन ध्यान ही।
 सेनापति सुमति विचारि देखौ भली भाँति, कलि के गुसाई मानौ मँगना समान ही॥ (सेनापति)
 धातु, सिला, दार³, निरधार प्रतिमा कौ सार, सो न करता, तू बिचार बैठि गेह रे॥
 राखु दीठि अंतर, कछू न सून-अंतर है, जीभ कौ निरंतर जपाहु तू हरे-हरे॥
 मंजन बिमल सेनापति मनरंजन तू, जानि कै निरंजन परम पद लेह रे।
 कर न सदेह रे, कही मैं चित देह रे, कहा है बीच देहरे, कहा है बीच गेह रे॥ (सेनापति)
 जप माला, छापा, तिलक, सैर न एकौ काम। मन काँचै नाचै बृथा, साँचै राँचै राम॥
 दूर भजत प्रभु पीठि दै गुन-बिस्तारन काल। प्रगटत निर्गुन निकट रहि चंग-रंग भूपाल॥
 मोहन मूरति स्याम की अति अदभुत गति जोई। बसति सुचित-अंतर तरु प्रतिबिम्बित जग होई॥
 मैं समुझ्यो निरधार, यह जग काँचो काँच सौं। एकै रूप अपार प्रतिबिम्बत लखियतु जहाँ॥ (बिहारी)
 कथा मैं न कंथा मैं, तीरथ के पंथा मैं न, पोथी मैं न पाथ मैं, न साथ की बसीति मैं।
 जटा मैं न, मुंडन न, तिलक-त्रिपुंडन न, नहीं कूप-कुंडन अन्हान दान रीति मैं॥
 पीठ-मठ-मंडल न, कुंडल-कमंडल न, माला-दंड मैं न देव-देहरे की भीति मैं।
 आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो, पाइए प्रगट परमेशुर प्रतीति मैं॥ (देव)

भ्रमवश अथवा पूर्वाग्रहवश यह भावना प्रसरित की गई है कि शास्त्रीयकाल के कवि जीवन-निरपेक्ष कलावादी मात्र थे। वस्तुस्थिति यह है कि केशव, सेनापति, बिहारी, भूषण, देव इत्यादि कवि समता, पाखंड-खंडन, अंतस्साधना, राष्ट्रदशा, रहस्यदशा इत्यादि के प्रति सर्वथा जागरूक थे। बस, वे नेता न थे। वे केवल कवि थे। नेता सदैव ही आवश्यकता से बहुत अधिक होते रहते हैं, क्योंकि सत्ता का स्वाद बड़ा लुभावना होता है। शास्त्रीयकाल में भी ऐसे भले-बुरे नेताओं की कमी न थी जो चर्वित-चर्वण एवं पिष्ट-पेषण द्वारा जनता को आतंकित किया करते थे। संप्रति उनमें से कुछेक का ही कुछ महत्त्व शेष है। केशव की शूद्र राय प्रवीण एवं म्लेच्छ जहाँगीर की प्रशस्ति समतावाद एवं मानवतावाद की दृष्टि से उल्लेखनीय है, सेनापति का पाखंड-विडंबन सामाजिक दृष्टि से प्रशंसनीय है, बिहारी का सत्य-सरल-साधनावाद आज भी अनुकरणीय है, भूषण का प्रखर-राष्ट्रवाद आज भी वन्दनीय है, देव का अकृत्रिम-आस्थावाद आज भी अभिनन्दनीय है—‘समसामयिक सन्दर्भ’ का सुरा-बेसुरा राग अलापनेवाले आलोचकों को इन बिन्दुओं पर ध्यान देकर सत्य का साक्षात्कार करना चाहिए।

1. टाई क्रॉस की प्रतीक है।

2. स्त्री। गर्दन। अति आघीन सुजात कनौड़े गिरधर नारि नवावति।” (सूर) श्लेष।

3. दाढ़, काष्ठ, काष्ठ-मूर्तियाँ भी होती ही हैं।

आकर्षक प्रकृतिचित्रण

आ. शुक्ल ने स्वरुचिसंकीर्णतावश यह प्रचलित कर दिया है कि शास्त्रीयकाल ('हिन्दी-शब्दसागर' में सम्पादकों द्वारा प्रचलित किए गए तथा 'विनोद' में 'रीति' के बारम्बार प्रयोग से गृहीत 'रीतिकाल') में सुन्दर प्रकृतिचित्रण हुआ ही नहीं है तथा समूची हिन्दी-कविता आलम्बनात्मक प्रकृतिचित्रण में विपन्न है। यह सर्वथा निराधार है। संक्रान्तिकाल की परिस्थिति एवं चित्ति प्रकृतिचित्रण के बहुत अनुरूप न थी किन्तु पुनरुत्थानकाल में तुलसी ने सर्वविध तथा सूर ने उद्दीपनात्मक प्रकृतिचित्रण में भारी सफलता प्राप्त की और शास्त्रीयकाल में इसका प्रशस्य विकास हुआ। केवल आलम्बनात्मक प्रकृतिचित्रण को प्रकृतिचित्रण का निकष समझना जीवन-निरपेक्षता को प्रश्रय देना है। प्रकृति जीवन-सापेक्ष है। मानव-रहित प्रकृति भयावह मात्र हो सकती है। अतः उद्दीपनात्मक, रहस्यात्मक एवं अलंकृत प्रकृतिचित्रण भी महत्त्वपूर्ण हैं—यही नहीं, उपदेशात्मक प्रकृतिचित्रण तक प्रेरक एवं प्रभावी होता है। विश्व में प्रकृति के प्रसिद्ध कवि विलिअम वर्डस्वर्थ ने भी उपदेशात्मक प्रकृतिचित्रण किए हैं। शास्त्रीयकाल के कवि कलाकार थे, सन्त नहीं। वैसे भी, सन्त और पैगम्बर बहुत हो चुके थे तथा होते आ रहे थे। “जहँ-जहँ चरन परैं संतन के तहँ-तहँ होइ जाय बंटाढार” कहावत इन्हीं दिनों की लगती है। समाज उनसे ऊबने लगा था। उनके कारण फूट को बढ़ावा मिल रहा था। दूसरे, उपदेशात्मक प्रकृतिचित्रण संस्कृत पर ही आधृत रहे हैं। अतः शास्त्रीयकाल के कवियों ने उपदेशात्मक प्रकृतिचित्रण पर ठीक ही नहीं के बराबर ध्यान दिया। उन्होंने सुन्दर आलम्बनात्मक, अद्वितीय उद्दीपनात्मक, अभूतपूर्व अलंकृत एवं यत्र-तत्र ललित रहस्यात्मक प्रकृतिचित्रण किए हैं जो साहित्य के रत्न हैं :

(क) आलम्बनात्मक प्रकृतिचित्रण

1. सेनापति उनए नए जलद सावन के, चारिहू दिसान घुमरत भरे तोड़ कै।
सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भौंति, आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै।।
घन सौं गगन छयौ, तिमिर सघन भयौ, देखि न परत मानौं रबि गयो खोइ कै।
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि मेरे जान याही तैं रहत हरि सोइ कै।। (सेनापति)
2. बैठि रही अति सघन बन पैठि सदन तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की छाँहों चाहति छाँह।। (बिहारी)
3. डार द्रुम पालन, बिछौना नव पल्लव के, सुमन झगूला सोहै तन छबि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी-कीर बतरावै देव, कोकिल हलावै, हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सौं उतारो करै राई-नोन, कंज कली नायिका लतनि पुचकारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि, प्रातहि जगावै गुलाब चटकारी दै।। (देव)
4. कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में, क्यारिन में, कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै पदमाकर परागन में, पौन हूँ में, पानन में, पिक में, पलासन पगंत है।।
द्वार में, दिसान में, दुनी में, देस-देसन में, देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में, बनन में, बागन में, बगर्यो बसंत है।। (पद्माकर)

(ख) उद्दीपनात्मक प्रकृतिचित्रण

1. सघन कुंज, छाया सुखद, सीतल सुरभि-समीर।
मन हवै जात अजौं वहै उहि जमुना के तीर।। (बिहारी)
2. जमुना के तीर बहै सीतल समीर, तहाँ मधुकर करत मधुर मंद सोर हैं।
कवि मतिराम तहाँ छबि सौं छबीली बैठी, अंगन ते फैलत सुगंध के झकोर हैं।
पीतम बिहारी की निहारिबे को बाट ऐसी चहूँ ओर दीरघ दृगनि करी दौर हैं।
एक ओर मीन मानों, एक ओर कुंज-पुंज, एक ओर खंजन, चकोर एक ओर हैं।
(मतिराम)

3. चंद्र छटा छिटकी रति अंबर मीठी सुधा लौं सुनी पिक बानी।
सीरे समीर हरे-हरे आइ कहूँ ते सुवास की साहसी आनी।।
चाँदनी के करि बैठे बिछावने राजिव-नैन औ राधिका रानी।
देखि दुहूँ के लिए इहि औसर काम लता अति ही सरसानी।।
(सुखदेव)
4. कैधों मोर सोर तजि गए री, अनत भाजि कैधों उत दादुर न बोलत हैं, ए दर्ई।
कैधों पिक-चातक महीप काहू मारि डारे कैधों बग-पाँति उत अंत-गति हवै गई?
आलम कहै, हो आली! अजहूँ न आए प्यारे कैधों उत रीत विपरीत बिधि ने ठई?
मदन महीप की दुहाई फिरिबे तें रही, जूझि गए मेघ कैधों वीजुरी सती भई?
(आलम)

(ग) अलंकृत प्रकृतिचित्रण

1. अरुनगात अति प्रात पद्मिनी-प्राणनाथ भय। मानहुँ केशवदास कोकनद कोकप्रेममय।
परिपूण सिंदूरपूर कैधों मंगलघट। किधों शक्र को छत्र मद्भयो मानिकमयूषपट।।
कै श्रोणित-कलित कपाल यह किल कापालिक काल को। यह ललित लाल कैधों लसत दिग्भामिनि के भाल को।।¹
2. सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि, मीच घटी हूँ घटी, जग जीव यतीन की छूटी तटी।।
अघ-ओघ की बेरी कटी विकटी, निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचति मुक्तिनटी, गुण धूरजटी वन पंचवटी।।²
(केशवदास)
3. कारी कूर कोकिला कहाँ को चैर काढ़ति री, कूकि कूकि अबही करेजो किन कोरि लै।
पैड़ परे पापी में कलापी निसि द्यौस ज्यों ही, चातक रे घातक हवै तुहू कान फोरि लै।।
आनंद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना जानि कै अकेली सब घेरो-दल जोरि लै।
जौ लौं करैं आवन विनोद - बरसावन वे तौ लौं रे डरारे वजमारे घन घोरि लै।।³
(घनआनंद)
4. कूरम पै कोल, कोल हू पै सेष-कुडली है, कुंडली पै फली फैल सुफन हजार की।
कहै पदमाकर त्यों फन पै फबी है भूमि, भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार की।।
रजत-पहार पर संभु सुरनायक हैं, संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
संभु जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा, चंद की छटान पै घटा है गंगाधार की।।
(पदमाकर)

(घ) रहस्यात्मक प्रकृतिचित्रण

1. खंजन हैं मनरंजन केशव रंजन नैन किधों, मति जी की।
मीठी सुधा कि सुधाकर की द्युति दंतन की किधों दाड़िम ही की।।
चंद भलो मुख चंद किधों सखि सूरति काम की कान्ह की नीकी।
कोमल पंकज कै पदपंकज प्राणपियारे कि मूरति पी की।।
(केशवदास)

1. उत्प्रेक्षा-सदिह-संकर जिसमें प्रकृति का विराट् अद्वय चित्रित है। स्थूल भेदवादी नाक-भौ सिकोड़ेंगे।
2. संस्कृताधृत अनुप्रास-वैभव जिसका चमत्कार प्रतिभा का सूचक है। प्रभाववादी इस सौन्दर्य पर भी पिल पड़ेंगे।
3. अलंकारशास्त्र में निष्णात, विरोधाभास-सम्राट् घनआनंद का एक सानुप्रास पारंपरिक प्रयोग।

हैं ही ब्रज, वृंदावन मोही मैं बसत सदा, जमुना-तरंग स्याम रंग अवलीन की।
 चहूँ ओर सुंदर सधन बन देखियत, कुंजनि मैं सुनियत गुंजनि अलीन की।।
 बंसीबट तट नटनागर नचत मों मैं, रास के विलास की मधुर धुनि बीन की।
 भरि रही भनक बनक तल-तालन की, तनक-तनक तामैं झलक चुरीन की।।
 (देव)

शास्त्रीयकाल के कवियों ने अद्वितीय षड्वर्णन किए हैं जिनका प्रभाव इस या उस रूप में संधियुग के द्विजदेव, सुधारवादी युग के भारतेन्दु, आदर्शवादी युग के रत्नाकर एवं मैथिलीशरण इत्यादि तक प्रसरित है। यद्यपि प्रकृतिचित्रण केशव, बिहारी एवं मतिराम ने भी सुंदर किए हैं। तथापि इस दिशा में प्रमुख स्थान सेनापति, देव एवं पद्माकर का है। सुखदेव, आलम, घआनंद इत्यादि ने यत्र-तत्र प्रकृति का अच्छा चित्रण किया है। संक्षेप में, शास्त्रीयकाल के कवियों का उद्दीपनत्मक प्रकृतिचित्रण तो अद्वितीय है ही, उन्होंने उत्कृष्ट आलम्बनात्मक एवं अतुलनीय अलं कृत प्रकृतिचित्रण भी किए हैं तथा यत्र-तत्र रहस्यात्मक प्रकृतिचित्रण में भी रुचि दिखलाई है।

इतिहास-बोध एवं नव्यता-आह्वान

प्रायः यह कह मारा जाता है कि शास्त्रीयकालीन कविता में राजनैतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक जागृति एवं प्रगति का अभाव है तथा इसके कवि केवल आश्रयदाताओं की स्तुति में लीन रहकर धनलाभ करते हुए विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। यह एक मिथ्या प्रवाद है। केशवदास, बिहारी, भूषण, सुखदेव इत्यादि कोरे दरबारी न थे। केशव इंद्रजीतसिंह के गुरु भी थे, राजनैतिक विपत्ति से उबारनेवाले सहायक भी। बिहारी ने जयसिंह को विलासिता से उबारा, द्विराज्य-प्रणाली के तन-क्लेश का निरूपण करते हुए उसे अपनी सीमाओं का बोध कराया, शिवाजी के सन्दर्भ में देशद्रोहिता के प्रति सचेत किया :

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास यहि काल।
 अली कली ही सों बिंधो, आगे कौन हवाल।।
 दुसह दुराज प्रजान मैं क्यों न बढै दुख-दंद।
 अधिक अँधेरो जग करैं मिलि मावस रबि-चंद।।
 स्यारथु सुकृतु न, समु ब्रिथा, देखि बिहंग! बिचारि।
 बाज! पराए पानि परि तू पच्छीनु न मारि।।

“नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल” का सदेश आज भी प्रगति का सूचक माना जाएगा, क्योंकि यह अल्पायु-विवाह का विरोध करता है। उस समय इस दोहे ने जयसिंह की कामुकता-तंद्रा तोड़ी थी। द्विराज्य-प्रणाली में केन्द्र की बादशाही और स्थानीय अथवा राज्य की राजशाही की दोहरी लूट से प्रजा के संतुष्ट होने का वर्णन बिहारी की राजनैतिक सूझ-बूझ का सूचक है। इस दोहे के माध्यम से कवि ने जयसिंह को उनकी सीमाएँ भी बताई हैं। आमेर के शीशमहल की भव्यता देखकर शराबी और सनकी जहाँगीर हीनभाव से आहत हो गया क्योंकि उसका अपना शीशमहल इसके मुकाबले का न था; अतः उसने शीशमहल पर कलई का आदेश दे दिया! यह व्यवहार उस आमेर राज्य के साथ किया गया था जिसकी ललनाएँ मुगलों के हरम की शोभा बढ़ाती थीं। निश्चित रूप से बिहारी का इशारा अतीत की इस घटना को भी समेटे है। पक्षी मारे और वह भी अन्य के लिए—हिन्दू (शिवाजी) को हिन्दू (जयसिंह) मिटाने दौड़े और वह भी दुराचारी मतांध (औरंगजेब) के लिए—बिहारी के इस दोहे ने जयसिंह को शिवाजी और मुगलों के बीच संधि कराने के लिए प्रेरित किया था। निराला कृत ऐतिहासिक-कविता ‘शिवाजी का पत्र’ इस दोहे की व्याख्या लगती है। निश्चित रूप से बिहारी कहीं भी रवीन्द्र के ब्रिटिश-युवराज के लिए ‘जग-गण-मन-अधिनायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता’ अथवा मैथिलीशरण के “जय-जय पंचम जार्ज श्रेष्ठ सम्राट् हमारे” जैसा चारणगान गाते नहीं दीखते। नेहरू ने लॉर्ड मॉउंटबैटेन एवं लेडी मॉउंटबैटेन के प्रभाववश 15 अगस्त को स्वतन्त्रता-दिवस घोषित कर दिया, क्योंकि रिअर-एडमिरल मॉउंटबैटेन को दो वर्ष पूर्व इसी दिन जापानी बेड़े पर भारी विजय प्राप्त हुई थी। विकटोरिया के प्रपौत्र और एलिजाबेथ द्वितीय के पति प्रिंस फिलिप (ड्यूक ऑफ एडिनबरा) के चाचा मॉउंटबैटेन के इस उत्कर्ष का राष्ट्र के इतिहास से क्या सम्बन्ध था? 8 अगस्त स्वतन्त्रता-दिवस होता तो ठीक था, क्योंकि इस दिन मुम्बई में 1942 का ऐतिहासिक भारत-छोड़ो प्रस्ताव पारित हुआ था। 9 अगस्त होता तो और अधिक ठीक

रहता, क्योंकि इस दिन 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ हुआ था। इन्हीं ने 1947 ई. में कश्मीर में उस समय युद्ध विराम करा दिया जब पाकिस्तानी आक्रान्ता सर पर पाँव रखकर भाग रहे थे—आज 78000 वर्ग किलोमीटर भूमि पाकिस्तान के कब्जे में है। इससे चीन और पाकिस्तान का जुड़ जाना भी भविष्यवाणी ही सिद्ध हुआ।¹ किन्तु नेहरू को पन्त 'उपचेतन-वीर' कहते हैं। अनेक छोटे-मोटे कवियों ने नेताओं पर लाभकर नव-चारणकाव्य 'बनाए' हैं। शास्त्रीयकाल के कवि इनसे कहीं अच्छे थे। राष्ट्रकवि भूषण के 'प्राकृत-जन-गुणगान'—विरोधी उद्गार मननीय हैं :

ब्रह्म के आनन ते निकसे ते अत्यंत पुनीत तिहूँ पुर मानी।

राम जुधिष्ठिर के बरने बलमीकिहू व्यास के अंग सुहानी॥

भूषण यों कलि के कबिराजन राजन के मुख पाय नसानी।

पुन्य चरित्र सिवा सरजा जस न्हाय पबित्र भई पुनि वानी॥²

क्या आश्चर्य यदि ऐसे महान् राष्ट्रकवि (जिसने सदैव 'हिंदुवानी' एवं 'हिंदुवान' के लिए गाया—जिसकी वीरदर्पपूर्ण वाणी की समता रवीन्द्र एवं मैथिलीशरण की शासक-प्रशास्तियों कभी नहीं कर सकती) की पालकी पर परम-योद्धा छत्रसाल ने कंधा लगा दिया।

सुखदेव मिश्र अपने आश्रयदाताओं के चारण नहीं थे, गुरु थे। वे राजाओं को आशीर्वाद देते थे, मस्तक नहीं झुकाते थे। डौंडियाखेड़ा के राव मर्दानसिंह (मर्दनसिंह) से रुष्ट होकर वे तो कभी डौंडियाखेड़ा गए ही नहीं, उनके वंशज आज तक वहाँ नहीं जाते।

प्रत्येक काल में शासक साहित्य को प्रभावित करते रहे हैं। प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य ही नहीं अपितु आधुनिक काव्य भी शासक (सम्राट, नायक, योद्धा, वीर, विलासी, सामंत, नेता इत्यादि समाहित) का प्रशस्ति से आपूर्ण है। सूफ़ी तो आँखें मूँदकर शाहेवक्रत की स्तुति करते रहे हैं। अतः शास्त्रीयकाल की आश्रयदाता-स्तुति का प्रत्याख्यान अज्ञानमूलक या पूर्वाग्रहमूलक है; वह रचना-राशि के आधार पर वस्तुपरक भी नहीं है। वास्तव में, अभी तक शास्त्रीयकालीन काव्य की अधुनातन, व्यापक-आयामी एवं वस्तुवादी आलोचना हो ही नहीं सकी।

मुगल-वंश के पतन का वास्तविक कारण चतुर्मुख हिन्दू-शौर्य था जिसके नायक शिवाजी, छत्रसाल, गुरु गोविन्दसिंह, दुर्गादास, सूरजमल इत्यादि वे राष्ट्रनायक थे जिनकी समता के राष्ट्रनायक आधुनिककाल के लक्ष्मीबाई, तिलक, आजाद-सम्राट, आज़ाद, भगतसिंह, सुभाष इत्यादि तक नहीं हो सके। शास्त्रीयकाल के कवि इस इतिहास-बोध से अभिज्ञ थे, अनभिज्ञ नहीं :

1. साहि के सपूत सिवराज! समसेर तेरी
दिल्ली-दल दावि कै दिवाल राखी दुनी मैं॥
2. तेरो करवाल भयौ दच्छिन कौ ढाल, भयौ
हिंदु कौ दिवाल, भयौ काल तुरकान कौ।

(भूषण)

3. दौरि देस मुगलनि को मारौ।
दपटि दिली के दल संघारौ॥

(लाल कवि)

4. जगै धर्म हिंदू सकल भंड भाजै।

(गुरु गोविन्दसिंह)

5. रब की रज़ा है, हमें सहना बज़ा है,
वक्त हिंदू का गजा 4गै, आया छोर तुरकानी का।

(सूदन)

6. बाबर-हिमायूँ कौ चलातू अब बंस भयौ...

(चाचा हित-वृंदावनदास)

1. चीन ने भी 38000 वर्ग किलोमीटर भूमि हथिया रखी है। 1947 ई. के बाद भारत की 116000 वर्ग किलोमीटर भूमि छीनी गई।
2. भूषण तुलसी के सच्चे उत्तराधिकारी थे।

ऐसी कविता को साम्प्रदायिक मानना पाखण्डपूर्ण होगा क्योंकि शिवाजी की सेना में अनेक मुसलमान थे और वे मस्जिद, कुरान इत्यादि का आदर करते थे; छत्रसाल और उनके गुरु प्राणनाथ विशुद्ध मानवतावादी थे; गुरु गोविन्दसिंह ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के उद्गार व्यक्त किए हैं ; सूरजमल की सेना में भी मुसलमान थे, और उन्होंने ताजमहल को मंदिर का रूप नहीं दिया था। आज की धर्मनिरपेक्षता सत्तालिप्साजन्य है, जिसके परिणाम भयावह ही हो सकते थे, हो सकते हैं, हो सकेंगे।

शास्त्रीयकाल के अनेक कवि रूढ़ि के प्रति विद्रोही अथवा नव्यता के आह्वानकर्ता भी थे, जिनमें घनआनन्द एवं ठाकुर बुंदेलखंडी प्रमुख हैं। घनआनंद आयामों की विराटता एवं प्रतिभा के प्रवाह में केशव, बिहारी, भूषण, मतिराम, देव एवं पद्माकर के समकक्ष नहीं हैं, ठाकुर बुंदेलखंडी तो घनआनंद के स्तर के कवि भी नहीं हैं (मिश्रवंधु ने असनी के ब्रह्मभट्ट ठाकुर दूसरे को तीनों ठाकुरों में श्रेष्ठतम माना है), किन्तु इन कवियों की कविता आत्मपरक प्रेम के मूल्यों में अनुठी है तथा नव्यता के वाहकों के नाते इनका साहित्येतिहास में स्थायी महत्त्व स्थापित हो चुका है :

1. लोग हैं लागि कबित बनावत, मोहिं तौ मेरे कबित बनावत।
(घनआनंद)
2. भाषा-प्रवीन, सुखंद सदा रहै, सो घन जी के कबित बखानै।
3. जग की कबिताई के धोखें रहै, ह्यौं प्रवीन की मति जाति जकी।
समुझे कबिता घनआनंद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी।।
(ब्रजनाथ)

4. सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन, सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामूनि, सीखि लीनो मेर² औ कुबेर गिरि आनो है।।
ठाकुर कहत याकी यड़ी है कठिन बात, याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
डेल लो बनाय आय मेलत सभा के बीच, लोगन कबित कीबो खेल करि जानो है।।

(ठाकुर बुंदेलखंडी)

हिन्दी ही उर्दू की जननी है

हिन्दी का नाम ही उसे हिन्द की भाषा अर्थात् राष्ट्रभाषा सूचित करता है। अमीर खुसरो (निधन 1325 ई.) की 'हिंदवी', मुल्ला दाऊद (रचनाकाल चौदहवीं सदी का उत्तरार्द्ध, क्योंकि शाहेवक्त फीरोजशाह तुगलक का राज्यकाल 1351-1388 ई. है) की 'हिंदुकी' या 'हिंदुगी', मलिक मोहम्मद जायसी (रचनाकाल सोलहवीं सदी का पूर्वार्द्ध क्योंकि शाहेवक्त बाबर का राज्यकाल 1526-1530 ई. तथा शेरशाह सूरी का राज्यकाल 1540-1545 ई. है) की 'हिंदुई', बाबर ('तुजुके-बाबरी' या 'बाबरनामा') की 'हिन्दुस्तानी' इत्यादि हिंदी के ही नाम हैं। बाद में 'हिन्दुस्तानी' को राजनैतिक रूप दिया गया। हिंदुओं ने इसे केवल 'भाषा' कहा, जो इसकी सार्वभौम महत्ता एवं विराटता का प्रतीक-शब्द है। उर्दू शब्द तुर्की भाषा का है जिसका अर्थ है छावनी या कैंट। मुगल-काल (1526-1857 ई.) में छावनियों में तुर्क, ईरानी, अफ़ग़ान (पठान), किरगीज़, कज़ाक, तातार, राजपूत, जाट, गूजर, पंडित इत्यादि सैनिक जो मिश्रित भाषा (रेक्ता) बोलते थे, उसे ही उर्दू कहा गया। राजनैतिक कारणों से कुछ लोगों द्वारा उर्दू का जनक अमीर खुसरो को बताया जाता है किन्तु उनकी भाषा या तो खड़ीबोली है या व्रज जिसमें अरबी, फ़ारसी, तुर्की के शब्द बहुत ही कम हैं और वे 'हिंदवी' शब्द का प्रयोग भी करते हैं। आदिलशाह की भाषा तो स्वयं उन्हीं के शब्दों में 'दक्खिनी हिंदी' है। अतः 'आबेहयात' के लेखक प्रो. मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' की यह मान्यता ही समीचीन प्रतीत होती है कि 'हमारी जुबान व्रजभाषा से निकली है।' उर्दू शब्द अठारहवीं सदी में चला और मोहम्मदशाह रंगीले (राज्यकाल 1719-1748 ई.) के समकालीन वली से इसका व्यवस्थित इतिहास आरम्भ होता है। साहित्य में 'उर्दू'

1. ठाकुर प्रथम भी असनी (जिला फतेहपुर, उ. प्र.) के ही ब्रह्मभट्ट थे।

2. सुमेरु जो स्वर्ण का है।

शब्द का प्रथम प्रयोग मीर तकी मीर' ने निकतुशशुअरा' (1752 ई.) में किया है। उर्दू को 'रेख्ता' या मिश्रित-भाषा कहा जाता था तथा इसकी आरम्भिक कविता वस्तुतः हिन्दी-कविता थी:

दिल वली का ले लिया दिल्ली ने छीन,
जा कहो कोई मोहम्मदशाह सँ।¹

(वली)

क्या बूदोबाश पूछो हो पूरब के साकिनो!

(मीर)

सुलेमाँ! क्या हुआ गर तू नज़र आता नहीं मुझको,
मेरी आँखों की पुतली में तेरी तस्वीर फिरती है।

(तावों)

नज़ीर अकबरावादी² का 'कृष्ण कन्हैया का बालपन' तो एकदम हिन्दी-कविता ही है। कालान्तर में साहित्येतर कारणों से उर्दू पर फ़ारसी को बेतरह लादकर इसे हिन्दी से अलग-थलग किया गया। उर्दू भाषा या विभाषा नहीं है, राजनीति का भिन्नतावादी उद्गार है अन्यथा वह पाकिस्तान में न चलाई जाती जहाँ की वास्तविक भाषाएँ पंजाबी, सिन्धी, बलोच, पश्तो इत्यादि हैं तथा कश्मीर पर न थोपी जाती जहाँ की वास्तविक भाषाएँ कश्मीरी, डोगरी, लद्दाखी इत्यादि हैं (डोगरी वस्तुतः हिन्दी की ही एक शैली है) नेहरू (1889-1964 ई.) ने 1961 ई. की जनगणना में 'मातृभाषा' के 'रूप' में 'हिन्दी-उर्दू' लिखाकर यह सिद्ध किया था कि वे मातृभाषा के एकवचन शब्द को बहुवचन रूप प्रदान करनेवाले व्यक्ति हैं।

कुलपति मिश्र ने 1670 ई. के आसपास कुछ ऐसे छन्द रचे जिन्हें उर्दू-कविता के मूल में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। घनआनन्द (हत्या 1761 ई.) की 'इश्कलता' एवं बोधा (रचनाकाल 1775 ई. के आसपास) के 'इश्कनामा' में भी उर्दू-शायरी के बीच दृष्टिगोचर होते हैं क्योंकि दोनों मुस्लिम वेश्याओं क्रमशः सुजान एवं सुभान के आजाद-आशिक थे और अरबी-फ़ारसी के शब्दों का भरपूर प्रयोग करते थे (निस्सदेह इन पुस्तकों में 'रेख्ता' के दर्शन भी होते हैं।) उर्दू-शायरी के वास्तविक आरम्भकर्ताओं में सीतल (जन्म 1710 ई.) विशेष स्मरणीय हैं। इन्होंने 'गुलज़ार चमन' का शीर्षक खालिस उर्दू का रखा था। इनकी भाषा खड़ीबोली है जो वली, घनआनन्द, बोधा इत्यादि के ब्रजभाषापन से मुक्तप्राय है, नज़ीर अकबरावादी की भाषा से अधिक उर्दूपन लिए है। इनका माशूक लालविहारी है (आरजू, आबरू, जानजाना मज़हर, तावों, मीर तकी मीर जैसे आरम्भिक उर्दू-शायरों के माशूकों की तरह)। सीतल केवल भाषा की दृष्टि से ही उर्दू-शायरी के एक जनक नहीं हैं, प्रवृत्तियों की दृष्टि से भी हैं। उनकी कविता में इश्कमज़ाजी और इश्कहकीकी का समन्वय दृग्गत होता है। सम्भवतः सीतल से प्रभावित होकर ही बोधा ने 'इश्कमज़ाजी में जहाँ इश्कहकीकी खूब'³ कहा है! सूदन (रचनाकाल 1753 ई. के लगभग) ने भी सुजानचरित या सुजानचरित्र में उर्दू-शायरी का बीज-वपन किया है। प्रस्तुत उद्धरण स्पष्ट कर देते हैं कि उर्दू-शायरी हिन्दी-कविता से ही निकली है जिसे भाषिक दृष्टि से भी प्रो. मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने ठीक ही स्वीकार किया है :

1. ...ज़ाहिद ने हक्क हसन यूसुफ अरहंत जैन छवि बसी कहा,
रत राज रूप रस प्रेम इश्क जानी छवि शोभा लसी कहा।...
2. मुख सरद-चन्द्र पर ठहर गया जानी के बुंद पसीने का,
या कुंदन कमल-कली ऊपर झमकाहट रक्खा मीने का।
देखे में होश कहाँ रहवै जो पिंदर बूअली सीने का,
या लालबदरशों पर खींचा चाका इल्मास नगीने का।।

(सीतल)

1. उर्दू के ग़ालिब के साथ-साथ सबसे बड़े शायर जो आगरे में जन्में (ग़ालिब की ही तरह), दिल्ली में बड़े और लखनऊ में मरे। एक मीर 'दर्द' नामक शायर भी हुए हैं, जो दिल्ली के ही थे तथा यहाँ मरे। ग़ालिब भी दिल्ली में मरे थे।
2. 'सों' भी प्रचलित है।
3. शाहजहाँ ने अपने बाबा के नाम पर आगरे का अकबराबाद बनाया पर यह चला नहीं। उसने दिल्ली का नाम शाहजहानाबाद रखा था, यह भी नहीं चला। आज के कुच्चे नेताओं में नामकरण-रोग महामारी का रूप ले रहा है : और काम ही क्या है?
4. विरह-यारीश।

3. महल सराय से रवाने वुवा वूवू करो,
मुझे अफ़सोस वड़ा वड़ी वीवी जानी का।
आलम में मालुम चकत्ता का घराना यारो,
जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का।।
खने खाने बीच में अमाने लोग जाने लगे,
आफ़त ही जानो हुआ औज देहकानी का।
रव की रज़ा है, हमें सहना बज़ा है,
वक़््त हिंदू का गज़ा है, आया छोर तुरकानी का।। (सूदन)
4.पल पल प्रीति बढ़ाय हुआ वेदरद है,
आशिक़ उन पर जान चलाई करद' है।
धनी हुई महवूव सू मरम न छोलिए,
आनंद जीवन जान दया कर बोलिए।।
क्यों चितचोर किसोर हुआ बेपीर है,
भाँह कमाने तान चलाया तीर है।.... (घनआनंद)
5. एक सुभान के आनन पै कुरवान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतकृतु की पदवी लुटियै तकि कै मुसकाहट ताको।।
सोक ज़रा गुज़रा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरान तहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै नहिं जान मिलै तो जहान कहाँ को।। (बोधा)

पतन-काल की इश्क़वाज़ी का रंग जितना गहरा सीतल, घनआनंद और बोधा में है उतना गहरा आरजू, आवरू और ताबीं में भी नहीं है। कर्मठ एवं सशक्त द्विपक्षीय नैसर्गिक-प्रेम न इन हिन्दी-कवियों में प्राप्त होता है, न इनके बन्धुओं एवं अपत्यों उर्दू-शायरों में। निस्सन्देह, कुलपति, सीतल, सूदन, घनआनंद, बोधा इत्यादि उर्दू के प्रेरक-कवि हैं। 'हिन्दी-कविता में उर्दू-शायरी के मूल स्रोत', 'उर्दू की जननी हिन्दी' इत्यादि विषयों पर वस्तुपरक अनुसन्धान अपेक्षित है। ब्रजभाषा-कवियों ने उर्दू-कविता की नींव रखी थी, जैसाकि कुलपति मिश्र (रचनाकाल 1670 ई. के आसपास) द्वारा रचित निम्नलिखित पद से भी स्पष्ट है (ऐसी पंक्तियाँ भूषण से पद्माकर तक अनेक कवियों के कृतित्व में मिल जाती हैं जो उर्दू-मूल मानी जा सकती हैं) :

मैं हूँ मुशताक़ तेरी सूरत का नूर देख, दिल भरपूर रहे कहने जवाब से।
मेहर का तालिव फ़कीर है मेहरवान, चातक ज्यों जीता है स्वाति वाले आव से।।
तू तो है अयानी, यह खूबी का खजाना तिसै खोल क्यों न दीजै, शेर कीजिए शवाब से।
देर की न ताब, जाग होती है कवाब, बोल हयाती का आव बोलो मुख महताब से।।

ब्रजभाषा तथा कवित्त-सवैया-दोहा-छंदत्रय एवं अलंकरण का परमोत्कर्ष

शास्त्रीयकाल ब्रजभाषा के कलात्मक उत्कर्ष का अप्रतिम काल है, जिससे पूर्व केवल तुलसीदास की 'कवितावली' में ही ऐसे उत्कर्ष के दर्शन हो पाते हैं, क्योंकि सूर की ब्रजभाषा सहज-ब्रजभाषा है, कलात्मक-ब्रजभाषा नहीं तथा अन्य कवियों-कवयित्रियों का महत्त्व ब्रजभाषा के कारण नहीं है, भाव के कारण है। वैसे भी ब्रजभाषा की मिठास अद्वितीय है। महान् ब्रजभाषा का अद्वितीय उत्कर्ष इस काल को एक विशेष महिमा से मंडित कर देता है। ब्रजभाषा की कोमलता, प्राञ्जलता, लाक्षणिकता, प्रवाह एवं प्रचण्डता की नाना भंगिमाएँ शास्त्रीकाल को एक अद्वितीय वैशिष्ट्य प्रदान करती हैं :

राज दियौ हमकौ बन रूरो। राज दियौ तुमको सब पूरो॥
सो हमहूँ-तुमहूँ मिलि कीजै। बापु कौ बोलु न नैकहूँ छीजै॥ (केशव)

कुंदन कौ रंग फीकौ लगै, झलकै अति अंगन चारु गुराई।
आँखिन मैं अलसानि, चितौनि मैं मंजु विलासन की सरसाई॥
को बिन मोल विकात नहीं, मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे हैं नैननि त्यों-त्यों खरी निकरै सी निकाई॥ (मतिराम)

तब तो छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे।
हिय पोष के तोष जु प्रान पले बिललात सु यौं दुख-दोष भरे॥
घनआनंद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख साज समाज टरे।
तब हार पहार से लागत हे, अब आनि कै बीच पहार परे॥ (घनआनंद)

ननद निनारी, सासु मायके सिधारी, अहैं रैन अँधियारी भरी, सूझत न करु है।
प्रीतम को गौन, कबिराज न सोहात भौन, दारुन बहत पौन, लाग्यो मेघ झरु है॥
संग ना सहेली, वैसे नवल, अकेली, तन परी तलबली महा, लाग्यो मौन सरु है।
भई अधरात, मेरो जियरा डरात, जागु- जागु रे बटोही! इहाँ चोरन को डरु है। (सुखदेव)

निकसत म्यान ते मयूखैं प्रलय-भानु जैसी, फारैं तम-तोम से गयंदन के जाल को।
लागति लपकि कंठ बैरिन के नागिन सी, रुद्रहिं रिझावै दै-दै मुंडन की माल को॥
लाल छितिणाल छत्रसाल महाबाहु बली, कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कँटीले केते काटि काटि कालिका सी किलकि कलेऊ देति ताल को॥ (भूषण)

कवित्त (घनाक्षरी), सवैया और दोहा छंदों का जैसा उत्कर्ष शास्त्रीयकाल के कवियों ने किया है वैसा तुलसी के अतिरिक्त अन्य किसी ने नहीं। सेनापति, भूषण, सुखदेव, देव, पद्माकर इत्यादि ने कवित्त, मतिराम, घनआनन्द, देव इत्यादि ने सवैया तथा विहारी ने दोहे को अभिव्यक्ति की सीमांतक गौरव-गरिमा प्रदान की। केशव छंद-वैविध्य के विश्वकवि हैं ही, जिन्होंने समग्र काल को प्रेरित और प्रभावित किया। अभिव्यक्ति की कला एवं उद्गार का कौशल जैसा केशव, विहारी, मतिराम, देव, घनआनंद, पद्माकर इत्यादि में दिखाई देता है वैसा तुलसी के अतिरिक्त किसी कवि में नहीं। कुछ उदाहरण भी तथ्य स्पष्ट कर देंगे :

भुज-भुजगेस की वैसंगिनी भुजगिनी-सी खेदि-खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरनि बीच धँसि जाती, मीन पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के॥
रैयाराव चंपति को छत्रसाल महाराज भूषन सकत करि बखान को बलन के।
पछी पर छीने ऐसे परे परछीने वीर तेरी बरछी ने बर छीने है खलन के॥ (भूषण)

हीन भएँ जल, मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि समानै?
नीर सनेही को लाय कलंक निरास हवै कायर त्यागत प्रानै॥
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै, जड़ मीत के पानि परे को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनन्द जीव की जीविनि जान ही जानै॥ (घनआनंद)

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं नैननु ही सब वात॥
बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौह करै, भौंहनु हँसै, देन कहै, नटि जाय॥
कर लै, चूमि, चढ़ाइ सिर, उर लगाइ, भुज भेटि।
लहि पाती पिय की, लखति, बाँचति, धरति समेटि॥ (विहारी)

जहाँ तक अलंकरण का सम्बन्ध है, शास्त्रीयकाल की कविता सर्वाधिक मनोहारी है। इस काल के सर्वश्रेष्ठ आलोचक मिश्रवधु (जिसकी स्फीत सामग्री का प्रशस्य संक्षेपण आ. शुक्ल ने किया है) ने इसे अलंकृतकाल कहा है और यह नाम एकांगिता के बावजूद एकांगी एवं अस्पष्ट रीतिकाल, नितांत एकांगी शृंगारकाल तथा भावपक्ष की उपेक्षा करनेवाले कलाकाल जैसे नामों से तो श्रेष्ठतर है ही क्योंकि इस काल की सारी श्रेष्ठ कविता अलंकृत है तथा अलंकार-सम्प्रदाय ने रस-ध्वनि की उपेक्षा नहीं की है। संप्रति अज्ञान के कारण अनेक कवि एवं आलोचक 'अलंकार' शब्द सुनते ही ऐसे बिदकते हैं जैसे लाल कपड़ा देखकर साँड़। किन्तु अलंकरण कविता में किसी-न-किसी रूप में सदैव रहा है। वस्तुतः अलंकरण वाणी का सहज अंग है। साधारण वर्ता तक अनलंकृत नहीं रही पाती। 'प्रयोग' या 'शिल्प' भी तत्त्वतः अलंकरण ही है। अतः विदकने के बजाय समझने में अपने साथ भी न्याय होगा, साहित्य के साथ भी अलंकरण के कुछ मनोहारी उदाहरण प्रस्तुत हैं :

श्री पुर मैं, बन मध्य हों, तू मग करी अनीति।

कहु मुँदरी अब तियन की को करिहै परतीति।। (काव्यलिंग-केशवदास)

दृग उरझत, दूटत कुटुंब, चढ़त चतुर चित प्रीति।

परति गौंठ दुरजन हिण, दर्ई! नई यह रीति।। (असंगति - बिहारी)

महावीर धीर सन्नुसाल-नंद भावसिंह, तेरी धाक अरिपुर जात भय भोय से।

कहै मतिराम तेरे तेजपुंज लिए गुन मारुत और मारतंड मंडल बिलोय से।।

उड़त, नवत, दूटि, फूटि, मिटि, फटि जात, बिकल सुखात बैरी सुखन समय से।

तूल-से, तिनूका-से, तरोवर-से, तोयद-से, तारा-से, तिमिर-से, तमोपति-से, तोय-से।।

(यथासांख्य या क्रमालंकार - मतिराम)

जोहैं जहाँ मगु नंदकुमार तहाँ चलि चंद्रमुखी सुकुमार है।

मोतिन ही को कियो गहनो सब, फूलि रही जनु कुंद की डार है।।

भीतर ही जो लखी सो लखी, अब बाहिर जाहिर होति न दार है।

जोन्ह सी जोन्है गई मिलि यों मिलि जाति ज्यों दूध में दूध की धार है।। (मीलित - सुखदेव)

विकच नलिन लखें सकुचि मलिन होति ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझति है।

सौरभ समीर आएँ बहकि दहकि जाय, राग भरे हिय मैं बिराग मुरझनि है।।

जहाँ जान प्यारी रूप गुन को न दीप लहै तहाँ मेरे ज्यो परै विषाद गुरझनि है।।

हाय, अटपटी दसा निपट चटपटी सों क्यों हूँ घनआनंद न सूझै सुरझनि है।।

(विरोधाभास - घनआनन्द)

1. शृंगारकाव्य

शास्त्रीयकाल की प्रतीक-काव्यधारा शृंगारकाव्यधारा ही है जिसके कारण प्रतिभाशाली आलोचक आ. शुक्ल ने रसदृष्टि से इसे (अपने रीतिकाल को) शृंगारकाल कहा जाना समीचीन बताया तथा उनके शिष्य अध्यवसायी ग्रंथावलीकार आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने साहसपूर्वक इसे शृंगारकाल कह ही डाला, यद्यपि ऐसा कहना 'प्रमुख' को वरीयता तथा 'अन्यों' की अपेक्षा के कारण सर्वथा अलोकतांत्रिक है — विशेषतः तब जब कि वीरकाव्य की सर्जना भी अभूतपूर्व हुई, आत्मपरम-प्रेमकाव्य भी अनूठा रहा, नीतिकाव्य भी उत्कृष्ट रचा गया तथा अनय अनेक काव्यधाराएँ भी कल-कल-नाद करती हुई प्रवाहित रहीं। आरम्भिक स्तर के साहित्येतिहासों में शास्त्रीयकाल की कविता की रसपरक, अलंकारपरक, शब्दशक्तिपरक छानबीन भी की गई, जो प्राविधिक शोध के अनुरूप है, न कि साहित्येतिहास के जिसका उद्देश्य विशुद्ध साहित्य-यात्रावृत्त प्रस्तुत करना होता है। 'शास्त्रीयकाल' शब्द रसशास्त्र, अलंकारशास्त्र, शब्दशक्तिशास्त्र, गुण-दोष-विवेचन इत्यादि का संकेत अनायास कर देता है। अतः प्राविधिक विषयों का निरूपण पृथक् रूपों में ही

1. "उड़त-नवत-दूटि-फूटि-मिटि-फटि-विकल-सुखात" (8) का "तूल-तिनूका-तरोवर (तरुवर)-तोयद-तारा-तिमिर-तमोपति (चंद्रमा)-तोय" (8) से विलक्षण क्रम-निर्वाह। यह छंद यथासांख्य या क्रम इस अलंकार का एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

समीचीन है। आ. शुक्ल, आ. श्यामसुन्दरदास, हरिऔध इत्यादि ने अपने साहित्येतिहासों में भाषिक संरचना पर भी प्रकाश डाला है जो आरम्भिकता का सूचक है, क्योंकि यह विषय भी प्राविधिक अर्थात् पृथक् शोधसम्बद्ध है।

केशव, सेनापति, विहारी, भूषण, मतिराम, सुखदेव, देव, पद्माकर इत्यादि ही शास्त्रीयकाल के प्रतिनिधि कवि हैं। केशव शास्त्रीयकाल के आकाश हैं जिनका रसवाद, अलंकारवाद, चमत्कारवाद समूचे काल पर छाया रहा। उनके कविप्रिया-रसिकप्रिया काव्यद्वय शास्त्रीयकाल के काव्य-शरीर में लोचन बनकर चमकते रहे। सेनापति ने श्लेश एवं भूषण ने सर्वालंकरण में भव्य काव्यसृजन किया। विहारी ने रस-अलंकार का अर्द्धनारीश्वर रूप प्रस्तुत किया। मतिराम ने ब्रजभाषा के रसखान-जैसे निखार में मोहक काव्यकला का समावेश कर इस दिशा में घनआनंद का पथ प्रशस्त किया तथा रसशास्त्र-अलंकारशास्त्र-छन्दःशास्त्र इत्यादि का सर्वांगीण निरूपण कर भिखारीदास इत्यादि के प्रेरक का पद पाया। सुखदेव मिश्र ने हिन्दी-छन्दःशास्त्र के सर्वश्रेष्ठ आचार्य होने के कारण 'पिंगलाचार्य' का गौरव प्राप्त किया किन्तु वे रसशास्त्र के मर्मी 'कविराज' भी थे जिनकी कविता का स्तर मतिराम, देव एवं पद्माकर का सा है। महाकवि देव ने रस को वरीयता दी किन्तु वे अलंकार के मर्मी भी हैं और ठीक यही बात महाकवि पद्माकर पर लागू होती है। सेनापति और भूषण के अतिरिक्त शास्त्रीयकाल के प्रायः सारे महाकवि शृंगाररस से संपृक्त हैं—केशव, विहारी, मतिराम, सुखदेव, देव, पद्माकर जैसे ही प्रतिनिधि नहीं अपितु चिंतामणि, मंडल, दूलह इत्यादि भी। श्रीपति, भिखारीदास इत्यादि आचार्य अधिक हैं, कवि कम, किन्तु इन पर भी शृंगार का भारी प्रभाव दृग्गत होता है। अधिकांश अन्य कवि भी शृंगाररस से ऊभचूभ हैं।

शृंगाररस का शास्त्रीय निरूपण

शास्त्रीयकाल के कवियों ने शृंगाररस के विभावों, अनुभावों एवं संचारीभावों का विशद निरूपण किया है। 'रसिकप्रिया' (केशवदास), 'रसराज' (मतिराम), 'रसरहस्य' (कुलपति), 'रसारणव' (सुखदेव), 'रसविलास' (देव), 'भावविलास' (देव), 'जगद्विनोद' (पद्माकर) जैसे अमर ग्रन्थ तो कुछ प्रतीक मात्र हैं। रसकल्लोल (कर्ण कवि या करन कवि), रसविलास (मंडन), रसकल्लोल (शम्भुनाथ मिश्र), रसतरंगिनी (शम्भुनाथ मिश्र), रसकलिवल्ली (घनआनंद), रसरत्नाकर (सूरति मिश्र), रसचंद्रोदय (कवीन्द्र उदयनाथ), रसनिवास (रामसिंह), रसविनोद (रामसिंह), रसपीयूषनिधि (सोमनाथ), रसप्रबोध (रसलीन), रसिकमोहन (रघुनाथ), रसिकरत्नाल (कुमारमणि भट्ट), रसरतन (पुहकर), रसविलास (वेनी बंजीजन), इत्यादि की शृंखला बहुत लम्बी है। विरह का भी अच्छा-खासा जोर रहा। वैसे तो सारे शृंगाररसपरक काव्यों में संयोग (संभोग) के साथ वियोग (विप्रलंब) विद्यमान है ही, किन्तु विरहलीला (घनआनंद), विरहवारीश (बोधो), विरहविलास (बख्शी हंसराज) इत्यादि से जाहिर है कि विरह को पृथक् रूप में भी महत्त्व प्राप्त था। 'शृंगार' शब्द का पृथक् रूप से सम्मान भी शृंगारलता (सुखदेव), शृंगारनिर्णय (भिखारीदास) इत्यादि की आगे तक प्रसरित परंपरा में दृग्गत हो जाता है। वैसे, शिवराजभूषण (भूषण), ललित-ललाम (मतिराम), भाषाभूषण (जसवंतसिंह) जैसे अलंकार-ग्रन्थ भी अनेक रचे गए किन्तु अधिकतर कवि रस पर ही रीझे जो स्वाभाविक भी था, क्योंकि रस या भाव या विचार या अनुभूति कविता की आत्मा है।

नायिकाभेद

भारतीय साहित्य का नायिकाभेद-वर्णन विश्व में अनूठा और अतुलनीय है। हिन्दी-कविता में नायिकाभेद का प्रथम ललित वर्णन 'विद्यापति की पदावली' में प्राप्त होता है किन्तु वह व्यवस्थित एवं शास्त्रीय नहीं है। रहीम का 'बरवै-नायिकाभेद' अपने अभिधान से ही विषय की सूचना देता है। किन्तु शास्त्रीयकाल के मतिराम, सुखदेव, देव इत्यादि ने नायिकाभेद के जो स्फीत वर्णन किए हैं वे अद्वितीय हैं। नायिकाभेद एवं नायकभेद में सौन्दर्य-चित्रण अनायास समाहित हो गया है। शास्त्रीयकालीन सौन्दर्यचित्रण विश्व-साहित्य की निधि है। किशोरावस्था से प्रौढ़ावस्था तक विभिन्न प्रकार की नायिकाओं के सुन्दर चित्र शास्त्रीयकालीन कविता को अतीव कलात्मक रूप प्रदान कर देते हैं। ब्रजभाषा-काव्य के तलस्पर्शी विद्वान् एवं ब्रज-प्रदेश की कलाओं के प्रकांड पंडित श्री प्रभुदयाल मीतल कृत 'ब्रजभाषा-काव्य में नायिकाभेद' विषय पर साधिकार प्रकाश डालता है। जवाहरलाल¹ चतुर्वेदी कृत 'आँख और कविगण' ग्रन्थ में भी शास्त्रीयकाल के विषयों के सौन्दर्य-चित्रण का एक पक्ष विवृत हुआ है।

1. जवाहरलाल भी लिखा मिलता है।

नखशिख

नखशिख के क्रमबद्ध एवं विशद चित्रण जायसी, मंझन इत्यादि सूफी कवियों की कविता में भी प्राप्त होते हैं जो पारम्परिक होते हुए भी सुन्दर हैं। किन्तु शास्त्रीयकाल के बलभद्र मिश्र, बिहारी, मतिराम, सुखदेव, रसलीन, देव, पद्माकर इत्यादि ने कहीं क्रमबद्ध तो कहीं स्फुट रूप से जो से जो सौन्दर्य-चित्रण किया है वह अतीव ललित एवं अतीव कलात्मक है। इस दिशा में अनेक शोधग्रन्थ टीक ही लिखे गए हैं। अभी एक-एक कवि, विशेषतः सुखदेव, के सौन्दर्य-चित्रण पर कार्य होना शेष है। विद्यापति, जायसी, मंझन, सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, मतिराम, सुखदेव, रसलीन, देव, पद्माकर इत्यादि के सौन्दर्य-चित्रण हिन्दी-कविता के सौन्दर्य-चित्रण का संसार-साहित्य में अद्वितीय सिद्ध करते हैं।

षड्ऋतु-वर्णन

केवल भारतवर्ष में वर्ष में 6 ऋतुएँ (वसंत या ऋतुराज, ग्रीष्म या निदाघ, वर्षा या पावस, शरद, हेमंत एवं शिशिर या पतझर) होती हैं। केवल भारतवर्ष में प्रकृति का उदात्त महाकाव्य ऋग्वेद प्राप्त होता है तथा वाल्मीकि, कालिदास, भारवि, माघ, तुलसीदास, पंत इत्यादि का प्रकृति-चित्रण विश्व में अद्वितीय प्रमाणित होता है। शास्त्रीयकाल के कवियों ने षड्ऋतु-वर्णन में महान् सफलता प्राप्त की है। इस सुंदर वर्णन का उद्दीपनात्मक वैभव मानवीय सम्बेदन से ऊभचूभ होने के कारण द्विविध सम्पन्न हो गया है तथा आँ. शुक्ल की व्यक्तिगत तरंग के परिणाम आलम्बनात्मक प्रकृति-चित्रण को वरीयता प्रदान करने के आयास को निराधार एवं भ्रामक सिद्ध करता है। पद्माकर के प्रकृति-चित्रण के चार छंद शुक्ल के सारे प्रकृति-चित्रण से चार गुने श्रेष्ठ तो हैं ही! केशव, मतिराम, सुखदेव, देव, पद्माकर इत्यादि के ललित प्रकृति-चित्रण विश्व की काव्यकला के शृंगार हैं, जिनका अनुकरण बौद्धिककाल के संधि-युगीन द्विजदेव इत्यादि, सुधारवादी युग के भारतेन्दु इत्यादि तथा आदर्शवादी युग के मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि कवियों ने किया है। आ. नन्ददुलारे वाजपेयी की गुप्त जी के 'साकेत' में षड्ऋतु-वर्णन पर झल्लाहट बेकार है, क्योंकि जब भारत में 6 ऋतुएँ होती ही हैं तब उनके वर्णन से कतराने की क्या आवश्यकता? मैथिलीशरण गुप्त खड़ीबोली-कविता में षड्ऋतु-वर्णन की परम्परा के यशस्वी एवं प्रमुख कवि हैं।

प्रेम एवं सौन्दर्य

जहाँ तक विलासिता और अश्लीलता का हौवा खड़ा करने का प्रश्न है, वह इसलिए निरर्थक एवं पाखंडमूलक है कि वाल्मीकि, कालिदास, जयदेव, कम्बु (कम्बर), विद्यापति, सूर इत्यादि से लेकर खजुराहो, कोणार्क इत्यादि तक भारत के अनेकानेक गौरव-प्रतीक उसकी फ़ालतू और वाहियात लपेट में आ जाते हैं। मम्मट तक ने 'क्यचित् अश्लीले गुणे' कहा है। शताब्दियों की दासता से जड़ीभूत बुद्धि ही अश्लीलता का हौवा खड़ा करती है। विलासिता का आरोप पाखंडपूर्ण है क्योंकि विलास मानव की सहज भूख है—कृष्ण और मोहम्मद से लेकर अकबर और नेहरू तक बला के विलासी रहे हैं, कॉम्युनिस्ट टीटो से प्रगतिशील नासर तक पहले दर्जे के कामुक रहे हैं। ऐसी पाखंडपूर्ण एवं अमनोवैज्ञानिक आलोचना जितना जल्दी कालातीत हो जाए, हिन्दी की उज्ज्वल अस्मिता उतनी ही अधिक भव्य प्रतीत होगी।

शास्त्रीयकाल शृंगारकाव्य के मनोहारी सौन्दर्यचित्रण, मिलन, विरह, प्रकृतिचित्रण प्रभृति के कतिपय अमर चित्र प्रस्तुत हैं जो असम्बेदनशील अथवा अध्ययनकृच्छ आलोचकों की तरंगों को अनायास ही निराधार एवं व्यर्थ सिद्ध कर देते हैं :

देखत ही चित्र सूनी चित्रसाला बाला आजु, रूप की सी माला राधारूपक सुहाए री।

नूपुर के सुरन के अनुरूप तानै लेत, पगतल ताल देत अति मनभाए री।।

ऐसे मैं दिखाई दीन्ह औचक कुँवर कान्ह, जैसे हैं ये गात तैसे जात न बताए री।

केसोदास कहैं अलज सलज से न, जलज से लोचन जलद से हवै आए री।।

राधा के अंग गोराई-सी और गोराई बिरंचि बनावन लीनी।

कै सत बुद्धि बिबेक सों एक अनेक बिचारनि मैं दृग दीनी।।

बानिक तैसी बनी न बनावत केसव प्रत्युत हवै गई हीनी।

लै तब केसरि केतकि कंचन चंपक के दल दामिन कीनी।।

(केशवदास)

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ ।
 सौंह करै, भौंहनि हँसै, देन कहै, नटि जाई ।।
 कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढ़िगौ इतौ उदोतु ।
 बंक बकारी देत ज्यों दामु रुपैया होतु ।।
 जोग जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि नैन ।
 चाहत प्रिय-अद्वैतता काननु सेवत नैन ।।
 सहज सेत पँचतोरिया¹ पहिरत अति छबि होति ।
 जलचादर² के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ।।
 घाम घरीक निवारिये, कलित ललित अलि-पुंज ।
 जमुना-तीर तमाल तरु मिलत मालती-कुंज ।।³
 पिय कै ध्यान गही गही रही वही हवै नारि ।
 आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि ।।⁴

(बिहारी)

अलि! हैं तो गई जमुना जल को, सो कहा कहों, बीर! विपत्ति परी ।
 घहराम कै कारी घटा उनई, इतनेई में गागरि सीस धरी ।।
 रपट्यो पग, घाट चढ्यो न गयो, कबि मंडल हवै कै बेहाल गिरी । (मंडन)
 चिरजीव रहै नंद को वारो, गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी ।
 मोरपखा मतिराम किरीट मैं, कंठ बनी बनमाल सुहाई ।
 मोहन की मुसकानि मनोहर, कुंडल-डोलनि मैं छवि छाई ।।
 लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भई बस माई ।
 वा मुख की मधुराई कहा कहों, मीठी लगे अँखियान लुनाई ।।
 आनन पूरन चंद लसै, अरबिन्द बिलास बिलोचन पेखे ।
 अम्बर पीत लसै चपला, छवि अम्बुद मेचक अंग उरेखे ।।
 काम हूँ तें अभिराम महा मतिराम हिए निहचै करि लेखे ।
 तैं बरनैं निज बैनन सौं सखी! मैं निज नैनन सौं जनु देखे ।।

तेरी औरै भाँति की दीपसिखा सी देह ।

ज्यों-ज्यों दीपति जगमगै त्यों-त्यों बढ़त सनेह ।।

तेरी मृदु मुसक्यानि लखि, सरद जोन्ह सम रंग ।

बाढ़त मोद पयोधि के दृगनि तरंग उतंग ।। (मतिराम)

हाथनि ए छवि मैलिए होति, बिरंचि मनौ मन ही सो बनाई ।

ही में गड़े अजौं नैन बड़े-बड़े, भागन दै गई नैकु देखाई ।।

अम्बर नील की औझिल फैलि रही मुख चंद्र की सुंदरताई ।

राहु दिखाइ कै राखी मनौ करि मद्धि अँधारी के जेर जुनहाई ।।

1. मध्यकालीन बहुमूल्य पारदर्शी कौशेय-परिधान । बहुत बारीक रेशमी साड़ी ।
2. मुगलकाल में कुछ ऊँचाई से जल गिराया जाता था तथा कुछ नीचे दीवार पर आले बना दिए जाते थे, जिनमें दीपक जलाकर रख दिए जाते—जल उनके आगे से गिरता तो दीपक-ज्योति इंद्रजालमयी लगती । दिल्ली के लाल क़िले में जलमहल है जिसमें जलचादर-कल्पना की जा सकती है । सन्दर्भ समग्र में पर महान् सौन्दर्य-चित्रण ।
3. वचनविदग्धा स्वयंदूतिका नायिका ।
4. गहन-पावन प्रमादित—हृदयहीन आलोचकों ने ऐसी रचनाएँ उपेक्षित कीं ।

काहु के होत हैं नैनई नीके औ काहू के आनन ही में निकाई ।
 काहु की होति चितौनिऐ नीकी और काहू की चाल ही में चतुराई ।।
 औरै विरंचि है कोऊ कहूँ जो मनोहर मूरित ऐसी बनाई ।
 नागर नंद लड़ाइते के नख ते सिख लौं सब सुंदरताई ।। (सुखदेव)
 माखन सों तन दूध सों यौवन, है दधि ते अधिकौ उर ईठी ।
 जा छवि आगे छपाकर छाछ, समेत सुधा वसुधा सब सीठी ।।
 नैन नेह चुवै कबि देव बुझावत नैन बियोग-अँगीठी ।
 ऐसी रसीली अहीरी अहै, कहौ क्यों न लगै मनमोहनै मीठी ।।
 साँसन ही सों समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि ।
 तेजु गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि ।।
 देव जियै मिलिवे ही कि आस कि आसहु-पास अकास रह्यो भरि ।
 जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरिजु हरि ।। (देव)

धरी जब बाहीं तब करी तुम नाहीं, पायँ दियौ पलकाहीं नाहीं नाहीं कै सुहाई हौ ।
 बोलत में नाहीं, पट खोलत में नाहीं, कबि दूलह उछाहीं लाख भाँतिन लहाई हौ ।।
 चुंबन में नाहीं, परिरंभन में नाहीं, सब आसन बिलासन में नाहीं ठीक ठाई हौ ।
 मेलि गलवाहीं केलि कीन्हीं चितचाही, यह हौं ये भली नाहीं सो कहाँ ते सीखि आई हौ ।। (दूलह)

जाहिरै जागति सी जमुना जब बूडै बहै उमहै वह बेनी ।
 त्यों पदमाकर हीर के हारन गंग तरंगन कों सुख-देनी ।।
 पायन के रँग सों रँग जाति सी सो सब भाँति सरस्वति सेनी ।
 पैरे जहाँई-जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल मैं होति त्रिवेनी ।।
 फाग के भीर अवीरन में गहि गोविंद लै गई भीतर गोरी ।
 भाई करी मन की पद्माकर ऊपर नाइ अवीर की झोरी ।।
 छीन पितंबर कंमर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी ।
 नैन नचाइ, कही मुसकाइ, “लला! फिरि आइयौ खेलन होरी ।”

साँझ के सलोने घन सबुज सुरंगन सों कैसे कै अनंग अंग-अंगनि सताउतौ ।
 कहै पदमाकर झकोर झिल्ली सोरन को, मोरन को महत न कोऊ मन त्याउतौ ।।
 काहू विरही की कही मानि लेतो जो पै दई, जग में दई तौ दयासागर कहाउतौ ।
 पावस बनायो तौ न विरह बनाउतौ, जौ विरह बनायो तौ न पास बनाउतौ ।। (पद्माकर)

उल्लेख्य कवि

केशवदास

“केशवदास के पूर्व हिन्दी में केवल कृपाराम, गोप, मोहनलाल आदि ने रीति-कविता की थी, सो भी इनकी महत्ता से बहुत पीछे । रीतिकाव्य में आपने दण्डी तथा रुय्यक का अनुसरण किया था, न कि अप्पय दीक्षित और विश्वनाथ का, जैसा कि इनके पीछे वाले बहुतेरे आचार्यों ने किया ।.... ‘कविप्रिया’ कुल मिलाकर बहुत विशद बना, और इसी से केशवदास को भाषाकाव्य में आचार्य की पदवी मिली है.... ‘रामचन्द्रिका’ वास्तव में महाकाव्य है, और उसके लक्षण भी उसमें मिलते हैं ।.... रामचन्द्रिका ग्रन्थ भाषाकाव्य का शृंगार है । हिन्दी-साहित्य में तुलसी-कृत रामायण के सिवा ऐसा रोचक ग्रन्थ एक भी नहीं है ।.... केशवदास को भाषा का मिल्दन कहना चाहिए । इन दोनों कवियों का पाण्डित्य और काव्य अत्यन्त सराहनीय है ।.... देव जी आदि ने भी इनको महाकवि माना है । यथा ‘केशव आदि

महाकवि' इत्यादि। यह महाशय भाषा में भामह-मम्मट के समान थे।....हिन्दी के अनेक रसिक सूर तथा तुलसी के अतिरिक्त केशव को ही सर्वश्रेष्ठ कवि समझते हैं।" —मिश्रबन्धु

"हिन्दी-साहित्य के उत्तर-मध्य युग को अपनी प्रतिभा और प्रभाव से सर्वाधिक प्रभावित करने वाले कवि केशवदास हैं। इन्होंने हिन्दी-साहित्य-रचना के लिए शुद्ध काव्य का मार्ग प्रशस्त किया।" —भगीरथ मिश्र

तुलसी और सूर के अनन्तर हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि केशवदास (1551-1617 ई.) हिन्दी के 'प्रथम' महान् आलोचक मिश्रबन्धु के देव-पक्षपात और हिन्दी-आलोचना के केन्द्र-पुरुष रामचन्द्र शुक्ल के जायसी-पक्षपात के वावजूद कोटि-कोटि जनता में 'उडुगन केशवदास', "कविता करता तीन हैं तुलसी, केशव, सूर" और "केशव अरथगँभीरता" इत्यादि के शताब्दियों से प्रचलित सम्मान से ही संपृक्त बने हुए हैं। उनके जीवन से मरण तक के वृत्त अब भी प्रचलित हैं, ओरछा में उनका महल आज भी खड़ा है तथा साहित्य-तीर्थ है, जिनके आधार पर स्वर्गीय इकबाल बहादुर देवसरे ने "बाबा कहि-कहि जाहिं" शीर्षक एक उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है जो अपनी वस्तुपरकता में अमृतलाल नागर के 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' से श्रेष्ठतर है। केशवदास ने सेनापति, विहारी, भूषण, मतिराम, सुखदेव, देव, पद्माकर इत्यादि शास्त्रीयकाल के शत-शत कवियों को तो स्पष्टतः प्रभावित किया ही है, रत्नाकर, जोतिसी (रामनाथ ज्योतिषी), वचनेश मिश्र, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, प्रकाश द्विवेदी, सिद्धिनाथ मिश्र जैसे अनेक बौद्धिककालीन कवि भी उनसे प्रभावित हुए हैं। 'शास्त्रीयकालीन कविता पर केशवदास का प्रभाव' एवं 'बौद्धिककालीन व्रजभाषाकाव्य पर केशवदास का प्रभाव' शोध के उत्कृष्ट विषय हैं। मध्यप्रदेश-उत्तरप्रदेश में प्रसरित बुन्देलखण्ड में जो काव्यज्योति उन्होंने जलाई थी वह अब तक लगातार जलती और प्रकाश विकीर्ण करती आ रही है। तुलसी, सूर एवं कबीर के अनन्तर केशव ने हिन्दी-कविता को सर्वाधिक प्रभावित किया है। अप्रामाणिक होते हुए भी उनका यह दोहा अब तक प्रचलित है, जो मार्मिक रसिकता में "अभी तो मैं जवान हूँ" (जोश मलीहाबादी) और "अभी न होगा मेरा अन्त" (निराला) से सहजतर-सरलतर है, इनका 'पूर्वज' तो है ही—

कैसव केसन अस करी जस अरिहू न कराहिं।

चन्द्रवदनि मृगलोचनी बाबा कहि-कहि जाहिं।।

रामलीलाओं में रामचन्द्रिका आज भी लोकप्रिय है—विशेषतः रावण-वाणासुर-संवाद, परशुराम-लक्ष्मण-संवाद, अंगद-रावण-संवाद इत्यादि प्रसंगों में, क्योंकि महाकवि केशवदास हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ संवादकार हैं। विन्दुबद्धता, क्रमबद्धता, संक्षिप्तता, रोचकता एवं चतुरता में केशव के संवाद विश्वस्तरीय हैं।

जीवन-वृत्त

केशवदास के जन्मसम्वत् एवं मृत्युसम्वत् पर मतभेद है क्योंकि उन्होंने रचनासम्वत् तो दिए हैं किन्तु इन सम्वत्‌ओं के संकेत भी नहीं किए, जैसाकि उन युगों में सभी कवि नहीं करते थे क्योंकि वे अपने को नहीं अपितु रचना को वरीयता प्रदान करते थे—“स्थूल जीवन नहीं, सूक्ष्म सृजन सत्य है” जीवन-दर्शन भारत में सहस्राब्दियों तक प्रचलित रहा ही है। मिश्रबन्धु ने 'जन्म सम्वत् 1608 वि.¹ के लगभग हुआ होगा" की अटकल लगाई है, जिसका 'कारण' रसिकप्रिया के रचनाकाल 1648 वि. (1591 ई.) के समय महाकवि की चालीस वर्ष की आयु-कल्पना है। रामचन्द्र शुक्ल ने केशव का जन्म 1611 वि.² के आसपास माना है। भगीरथ मिश्र के अनुसार 'जन्मतिथि'³ सम्वत् 1618 वि.⁴ 'ठहराती' है। इस 'ठहराव' का कोई कारण नहीं दिया है। देहान्त के सन्दर्भ में इन 'तीनों' विद्वानों ने क्रमशः 1674 वि. (1617 ई.), 1637 वि.⁵ (1590 ई.) एवं 1680 वि. (1623 ई.—तुलसीदास का निधन वर्ष) लिखा है। बृहत् विश्व सूक्तिकोश 1985 ई., डॉ. श्यामबहादुर वर्मा एवं मधु वर्मा) खण्ड 3 में दिया, 1561-1623 ई. जीवनकाल तर्कसंगत नहीं है। जन्म एवं मृत्यु दोनों में ही मिश्रबन्धु के सम्वत् ठीक लगते हैं, क्योंकि 1585 ई. के आसपास वीर-गति प्राप्त करने वाले वीरवल के जीवन एवं

1. 1651 ई.।

2. 1554 ई.। तर्कादिविहीन होने के कारण अविचारणीय।

3. 'जन्मसम्वत्' लिखना ठीक होता।

4. 1561 ई.। केशव के वीरवल-काव्य के कारण स्पष्टतः अविश्वसनीय।

5. 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', 11वाँ संस्करण, 2014 वि. (1957 ई.) पृष्ठ 191—यह एकदम गलत है क्योंकि केशव ने 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' उसी मुगल-सम्राट् को समर्पित की है जिसका राज्यकाल 1605-27 ई. है। मिश्रबन्धु के अनुकरण पर शुक्ल ने सम्भवतः 1674 वि. (1617 ई.) माना है तथा 74 के स्थान पर 47 मुद्रण-त्रुटि प्रतीत होती है जिसका दायित्व प्रकाशक (सभा) पर है।

मरण पर केशवदास ने जो उच्चकोटि की कविता रची है वह एक प्रौढ़ कवि का सृजन ही हो सकती है, और उस महापुरुष का सम्पर्क चौबीस वर्ष के युवक को प्राप्त होना कठिन था, क्योंकि 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में जो ताजगी है वह अतिमधुप-अतिविलासी-धर्मांधप्राय-विशिष्टप्राय सम्राट् की नहीं लगती जिसकी 'कवितावाली' में तुलसीदास ने नाम न देने की उचित उपेक्षा के साथ न्याय्यतः कठोर भर्त्सना की है किन्तु जो आरम्भ के वर्षों में मधुप-कामुक होते हुए भी कुशल-सफल सिद्ध हुआ था।

केशव एक महान् एवं विद्वान् वंश के रत्न थे। 'कविप्रिया' में ब्रह्मा के मानस पुत्रों में सनाढ्य से आरम्भ होने वाले अपने वंश का परिचय उन्होंने स्वयं दिया है। उनकी सनाढ्य ब्राह्मणों में अतिस्तुति से हिन्दी-नवरत्न के प्रणेता मिश्रबन्धु तथा 'केशव की काव्य-कला' के विद्वान् आलोचक पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल सन्तुष्ट नहीं हैं, किन्तु वंशस्तुति विशिष्टता-स्थिति में मानव की एक सहज प्रवृत्ति है—सनाढ्य जाति सर्वदा। परम पुनीत नर्मदा!....

केशव के एक पूर्वज भावनाथ मिश्र आयुर्वेद के महान् विद्वान् थे, जिनका 'भावप्रकाश' ग्रन्थ प्रसिद्ध था। इनके पितामह कृष्ण मिश्र ने 'प्रबोध-चन्द्रोदय' शीर्षक सुविख्यात प्रतीक-नाटक लिखा था, जो अपने ढंग की विश्वस्तरीय दार्शनिकता से सम्पन्न कलाकृति है। केशव का जन्म ओरछा या ओड़छा (मध्य प्रदेश) में हुआ था और ओरछा-राज्य के संस्थापक महाराज प्रताप रुद्रदेव पण्डित कृष्ण मिश्र के शिष्य थे। केशव के पिता पण्डित काशिनाथ मिश्र विख्यात विद्वान् एवं ज्योतिषी थे जिनका ज्योतिष-ग्रन्थ 'शीघ्रबोध' बहुत लोकप्रिय था और उसकी 'अष्ट वर्षा भवेत् गौरी' उक्ति घर-घर में प्रचलित थी। ओरछा-नरेश मधुकर शाह पण्डित काशिनाथ मिश्र के शिष्य थे। ओरछा में केशवदास का भवन-प्रासाद एवं पाठशाला अभी भी विद्यमान हैं। दोनों उनके ऐश्वर्य के स्मारक हैं। केशव के अग्रज बलभद्र मिश्र पुराण-सागर ही थे। महाराज मधुकर शाह नित्य अपराह्न उनसे पुराण सुना करते थे। सुविख्यात 'नखशिख' के अतिरिक्त उन्होंने 'बलभद्री-व्याकरण', 'भागवत-भाष्य', 'हनुमन्नाटक-टीका', 'दूषणविचार' इत्यादि ग्रन्थ भी रचे थे। मधुकर शाह के वारह² या आठ³ पुत्र थे। इनमें से पाँचवें इन्द्रजित सिंह (इन्द्रजीतसिंह) केशव के शिष्य थे जिन्होंने इन्हें इक्कीस (या बीस) गाँवों की जागीर प्रदान की थी। केशवदास का टीकमगढ़ के महल वाला पुराना और विश्वसनीय चित्र उनके 'राज सो करत है' शब्दों के सर्वथा अनुरूप है। इकबाल वहादुर देवसरे ने केशव का अच्छा शब्दांकन किया है—'पैरों के पंजों को छूता हुआ घेरेदार बादामी रंग का अंगरखा, जिस पर लाल रंग के फूल खिल रहे थे। नीचे की ओर छह अंगुल चौड़ी लाल गहरे रंग की गोद लगी थी। सफेद चूड़ीदार पाजामों पर उसकी अपूर्व छटा बिखर रही थी। कमर में सुवापंछी रंग का चमकदार फेंटा बँधा था, जिसके दोनों छोर घुटनों के ऊपर तक झूल रहे थे। सिर पर गुलाबी रंग की बुन्देलखंडी पगड़ी बँधी थी। सब मिलाकर उनकी आकृति उन्हें महाकवि घोषित कर रही थी।'⁵ केशवदास अपने समय के एक विख्यात राजनीतिज्ञ भी थे जिनका मधुकर शाह, रतनसेन, वीरसिंहदेव, इन्द्रजीत सिंह, चन्द्रसेन, राणा अमरसिंह⁶ बीरबल, जहाँगीर इत्यादि से परिचय था। वे जातपात, छुआछूत, ऊँच-नीच इत्यादि से ऊपर उठे हुए एक उदार व्यक्ति थे, जैसाकि उनके जीवनवृत्त से भी स्पष्ट होता है, कर्तव्य से भी। वे शूद्रों के मूर्तिपूजा के समर्थक और महन्तों के विरोधी थे।

केशवदास बुन्देलखण्ड की महान् विभूतियों में भी गण्य-मान्य हैं। ओरछा में अनेक शताब्दियों तक गहरवार-वंश के राजपूत्रों का राज्य रहा है। ओरछा-नरेश अपने को उदयपुर-नरेशों, जयपुर-नरेशों, नेपाल-नरेशों इत्यादि के सदृश रामवंशीय मानते हैं। 'विचित्र नाटक' में सिखों के दशम एवं अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह ने स्वयं को लव एवं नानक को कुश का वंशज अर्थात् रामवंशीय बतलाया है। मोहम्मद अली जिन्ना ने अपनी दैनन्दिनी में अपने पूर्वजों को कुशपुर (कसूर) का निवासी रामवंशीय क्षत्रिय (खत्री) माना है और ओरछा-राजवंश में पंचमसिंह बड़े शक्तिशाली हुए, जिनके प्रतापी पुत्र बुन्देल के नाम पर आज के उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश का क्षेत्रविशेष बुन्देलखण्ड के नाम से अभिहित और ख्यात हुआ। बुन्देलखण्ड वीरभूमि है—उत्तरप्रदेश का मेवाड़ (वैसे, मेवाड़ को राजस्थान का बुन्देलखण्ड भी कहा जा सकता है)। वहाँ के राजा गंड ने लुटेरे महमूद गज़नवी से लोहा ही नहीं लिया था अपितु उसे बुतफरोख्त बनाकर खजुराहो का विश्व में सर्वोत्तम कलातीर्थ भी बचा लिया था। परमार या परमर्दिदेव ने गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक से लोहा लिया था। आल्हा, ऊदल,

1. नर्म = मोक्ष। नर्मदा = मोक्षदायिनी। पावन नदी नर्मदा का अभिप्राय भी यही है।

2. 'हिन्दी नवरत्न'।

3. 'बाबा कहि-कहि जाहिं।'।

4. 'हिन्दी नवरत्न'। इसके चित्रकार सम्भवतः काशीराम थे।

5. 'बाबा कहि-कहि जाहिं', पृष्ठ 69।

6. राणा प्रताप के पुत्र जिन्होंने जहाँगीर से पर्याप्त गौरवशाली सन्धि की थी जिससे उनकी वीरता भी व्यक्त होती है और राजनीति-कुशलता भी। वे स्वयं मुगल-दरबार नहीं गए। सीसोदिया राजपूतों का कोई 'डोला' मुगल-हरम में नहीं गया।

मलखान, वीरसिंहदेव, जुझारसिंह, हरदौल, रानी सारंधा, चम्पतराय, छत्रसाल, रानी लक्ष्मीबाई इत्यादि के कारण बुन्देलखण्ड वीरखण्ड माना जा सकता है। बुन्देलखण्ड के इतिहास के सर्वाधिक सफल योद्धा गहरवार-वंशीय भारतीचन्द्र थे, जिन्होंने 1545 ई. में शेरशाह का वध किया। मिश्रबन्धु (जिन्होंने 'भारतवर्ष का इतिहास' भी लिखा था, 'सेनापति पुष्पमित्र शुंग' शीर्षक ऐतिहासिक उपन्यास भी) ने 'हिन्दी-नवरत्न' में लिखा है, "भारतीचन्द्र ने कालिंजर के किले पर धावा करते हुए हिन्दुस्तान के बादशाह शेरशाह सूर का वध किया।" सुल्तान शेरशाह सूरी के पठान-वंश एवं परवर्ती मुगलवंश के दबदबे को कायम रखने के लिए वारुद में आग लगने से शेरशाह के झुलक मरने की जो चर्चा की गई है, उससे भी तथ्य प्रकट हो जाता है। विदेशी इतिहासकार विजेता-जाति की पराजय कैसे लिखते? जगनिक या जगनायक, तुलसी, केशवदास, हरिराम व्यास, ठाकुर, बोधा, पद्माकर, 'दीन', मैथिलीशरण, सियारामशरण, वृन्दावनलाल वर्मा इत्यादि प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः बुन्देलखण्ड के साहित्यकार थे, जो उसे कविखण्ड भी बना देते हैं। भारतीय इतिहास के सबसे महान् खिलाड़ी होंकी के जादूगर स्वर्गीय ध्यानचन्द भी बुन्देलखण्ड की माटी से जुड़े हैं। मैं तो बुन्देलखण्ड को बुलंदखण्ड कहता हूँ।

केशवदास का राजनैतिक प्रभाव इतना अधिक था कि राय प्रवीण नामक परमसुन्दरी गायिका-नर्तकी को मुगल-दरबार में न भेजने पर जब इन्द्रजीतसिंह पर विलासी एवं अहंमत्त अकबर ने एक करोड़ रुपए का जुर्माना किया तब उन्होंने वीरवल से सिफारिश कराके माफ़ करा दिया था। राय प्रवीण केशव की शिष्या एवं इन्द्रजीत सिंह की चरित्रवान् प्रेमिका थी, जिसके एक दोहे ने अकबर की आँखें खोल दी थीं—

बिनती राय प्रवीण की सुनिए साह सुजान।

जूठी पातरि¹ भखत हैं वारी, बायस, स्वान।।

यह विगर्हणा कुम्भनदास के 'सन्तन की कहा सीकरी सों काम?' तथा तानसेन के 'जहाँपनाह, मैं अपने गुरु गोस्वामी हरिदास के स्तर का गायन कैसे कर सकता हूँ क्योंकि वे जगन्नियंता अनादि-अनन्त परमात्मा के लिए गाते हैं और मैं आपके लिए?' प्रश्नों में निहित सत्यकथनों से कहीं अधिक कठोर था। किन्तु अकबर महान् था—अपनी हिंसा, कामुकता, इत्यादि के बावजूद उसने राय प्रवीण की लूट नहीं की।

केशवदास ने अपने जीवन में आए प्रख्यात व्यक्तियों पर काव्य-सृजन किया है। उन्होंने 'रतनबावनी'², वीरसिंहदेवचरित' एवं 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' शीर्षक तीन चरितकाव्य भी रचे हैं। इन सब आधारों पर 'केशवदास की कविता में समसामयिक इतिहास' जैसा स्तरीय शोधप्रबन्ध लिखा जा सकता है। उनकी प्रख्यात-प्रशस्ति चारण-परम्परा का स्मरण करा सकती है। किन्तु उसमें उदारता भी विद्यमान है, धर्मनिरपेक्षता भी और ऐसी जैसी किसी अन्य कवि में दृग्गत नहीं होती। ओरछा-निवासी राय प्रवीण बहुत यत्न करके उनकी शिष्या बनी थीं। वह परम सुन्दरी नर्तकी कवयित्री भी थी। केशव ने उसकी जो श्लिष्ट प्रशंसा की है वह फिरदौसी द्वारा महमूद गज़नवी के दास एवं नरपत्नी अयाज़ की प्रशंसा³ की तुलना में अधिक प्राकृतिक एवं सहज है—

1. तँघी तूँ चहँ सारिका शुद्ध सुरन सों लीन।
देव सभा सी देखिए राय प्रवीण प्रवीन।।
2. सत्या⁴ राय प्रवीण युत सर तरु सुर तरु गेह।
इन्द्रजीत⁵ तासों बँधें केशवदास सनेह।
3. रत्नाकर लालित सदा परमानन्दालीन।
अमल कमल कमनीय कर रमा कि राय प्रवीन।।
4. राय प्रवीण कि शारदा शुचि रुचि रंजित अंग।
वीणा पुस्तक धारिणी राजहंस⁶ सुत रंग।।

1. पातरि = 'पतुरिया' या वेश्या का श्लिष्ट प्रयोग मननीय है ('पत्तल' के साथ)।

2. मधुकुशलाह के पुत्र रतनसेन पर केशव-समकालीन केहरी नामक दरबारी कवि ने भी वीररस में ही काव्य-रचना की थी किन्तु शिवसिंह कृत 'सरोज' एवं गोकुलप्रसाद 'व्रज' या गोकुल कवि कृत 'दिव्यजय-भूषण' में केवल एक ही छन्द प्राप्त हो पाया है।

3. द्रष्टव्य है मेरे ग्रन्थ 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' का 'शाहनामा' निबन्ध।

4. सत्यभामा।

5. गोवर्द्धन-सन्दर्भ में इन्द्र की जीतनेवाले कृष्ण।

6. हंस = सूर्य (सूर्यवंशीय इन्द्रजित् सिंह)।

सुन्दरी और कलावन्ती—सोने में सुगन्ध! ऐसी तारिकाओं का सदा सम्मान रहा है।

केशव ने इन्द्रजीत सिंह की भारी प्रशंसा की है जो दोनों के निकट सम्बन्ध को देखते स्वाभाविक है। केशव की आश्रयदाता-प्रशस्ति का शास्त्रीयकाल में भारी अनुकरण किया गया। केशव शिष्य-राजा की प्रशस्ति में आशीर्वचन का स्वाभाविक समावेश करने में भी सफल हुए हैं—

1. मेघ ज्यों गम्भीर वानी सुनत सखा सिर वान सुख औरन को हृदय जवसि¹ ज्यों जरत है।
जाके भुज दण्ड भुवलोक के अभय ध्वज, देखि देखि दुर्जन भुजंग क्योँ डरत है॥
तोखे को गढ़ तरु होत है सिला स्वरूप, राखिवे को द्वारन किवार ज्यों अरत है।
भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग-जुग, जाके राज केसोदास राज सो करत है॥

सम्भवतः आरम्भिक जीवन में महत्वाकांक्षी केशवदास ने राजस्थान की यात्रा की थी क्योंकि उस भूमि से उनके पूर्वजों का भी सम्पर्क रहा था। जोधपुर के प्रख्यात नरेश मालदेव के योद्धा पुत्र चन्द्रसेन से उनका सम्बन्ध प्रमाणसिद्ध है। सिवाना-नरेश चन्द्रसेन ने मुगलों से डटकर लोहा लिया था। केशव ने चन्द्रसेन की प्रशस्ति की है।

विश्वविश्रुत देशभक्त महाराणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह² ने जहाँगीर से गौरवशाली सन्धि की थी, जिस पर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ था जैसा कि उनकी आत्मकथा 'तुजुके-जहाँगीरी'³ के विस्तृत वर्णन से स्पष्ट होता है। आखेट-प्रेमी जहाँगीर अमरसिंह के पुत्र कर्णसिंह को उसके मनोरंजनार्थ अपने साथ तक ले गया था। केशवदास अमरसिंह के सम्पर्क में आए थे।

किन्तु केशवदास ने सर्वाधिक प्रशस्ति राजा वीरबल (उपनाम 'ब्रह्म' कवि) की की है। फ़तेहपुर सीकरी में विद्यमान वीरबल का शानदार महल उनके ऐश्वर्य का प्रतीक है। वे सम्राट् अकबर (जीवन काल 1542-1605 ई. तथा राज्यकाल 1556-1605 ई.) के घनिष्ठतम मित्र तथा सेनापति थे। वे दरबार के नवरत्नों में थे। सम्राट् अकबर पर वीरबल के भारी प्रभाव के कारण वह हिन्दुत्व की ओर सहानुभूति-पूर्वक आकृष्ट होने लगा था, जिससे बदायूँनी जैसे क्षुद्रहृदय इतिहासकार उन्हें 'नरक का कुत्ता' कहने लगे थे। ठीक यही विशेषण परवर्ती मुगल इतिहासकार खफ़ी खान शिवाजी के लिए व्यवहृत करता है। मुगल दरबारियों ने षड्यन्त्र करके वीरबल को यूसुफ़जई पठान क़बीलों के विरुद्ध युद्ध में भिजवा दिया, जहाँ पराजय निश्चित थी, क्योंकि दूसरे सेनापति ज़ैन खान और वीरबल में भारी मतभेद थे। आठ हज़ार सैनिकों के साथ वीरबल खेत रहे। सम्भव है कि स्वयं मुगलों में से ही किसी ने उन्हें उस ताण्डवस्थल पर मार डाला हो। अकबर नहीं चाहता था कि वीरबल इस युद्ध में जाएँ। सिक्का तक उछाला गया था। यह घटना 1585 ई. के आसपास आज के अफ़ग़ानिस्तान में घटी। अकबर ने शोक में दो दिन और दो रात न कुछ खाया, न पिया। केशवदास ने वीरबल से सिफ़ारिश कराके अकबर से इन्द्रजीतसिंह पर किए गए एक करोड़ रुपये के जुर्माने को माफ़ करा दिया था। महाकवि ने मध्यकालीन पुनरुत्थान के आकाश के एक सर्वाधिक जाण्वल्यमान् नक्षत्र वीरबल के गौरव पर भी उच्चकोटि की कविता लिखी है, वीरगति-प्राप्ति पर भी। गौरव-छन्द अद्वितीय हैं—

1. पावक, पंछी, पसू, नर, नाग, नदी, नद, लोक रचे दसचारी।
केसव देव, अदेव रचे, नरदेव रचे, रचना न निवारी॥
कै बर वीर बली बलवीर भयो कृतकृत महाव्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि दियै करतार दुवौ कर तारी॥⁴
2. केसवदास के भाल लिख्यौ बिधि रंग को अंक, बनाय सँवार्यो।
छोरे छुट्यो नहिं धोए धुयो बहु तीरथ के जल जाय पखार्यो॥
है गयो रंक ते राउ तहीं जब वीर बली बलवीर निहार्यो।
भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाय रह्यो मुख चार्यो॥

1. जवास। "अरक जवास पात विन भयऊ।" (तुलसी)

2. शाहजहाँकालीन वीर अमरसिंह राठौर से स्वाभवतः भिन्न।

3. प्रख्यात हिन्दी-सेवक ब्रजरत्नदास ने इसका 'जहाँगीरनामा' शीर्षक प्रात्ययिक एवं सुन्दर अनुवाद किया है। अन्य अनुवाद भी हैं।

4. स्वयं सम्राट् अकबर ने वीरबल को 'कविराय' की पदवी प्रदान की थी। ('हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया', डॉ. ईश्वरी प्रसाद, पृष्ठ 707)।

5. इस महान् छन्द की रचना पर वीरबल ने केशवदास को छह लाख लाख रुपये की हुण्डियाँ दे दी थीं। छन्द साठ लाख के भी योग्य है।

पहले छन्द पर छह लाख की हुण्डी पाकर केशव ने यह छन्द सुनाया था। इस छन्द की रचना पर मिश्रबन्धु ने 'रंक' शब्द के कारण उस समय केशवदास की आर्थिक स्थिति पर शंका प्रकट की है, जो निराधार है, क्योंकि केशवदास सम्पन्न राजगुरु-परिवार में जन्मे थे, क्योंकि "जायो कुल मंगल" (तुलसी) से "बाभन को धन केवल भिच्छा" (नरोत्तमदास) तक के सन्दर्भ भी उसका खण्डन कर देते हैं तथा यहाँ तो नम्रता का प्रत्यक्ष सन्दर्भ भी विद्यमान था। इस छन्द को सुनकर वीरवल ने पुनः 'माँगने' को कहा। इस घटना पर यह दोहा प्रसिद्ध है—

यों ही कह्ये जु वीरवल माँगु जो माँगन होय ।

माँग्यो तुव, दरबार मैं मोहि न रोकै कोय ।।¹

केशव महत्-प्रशंसा केवल धन के लिए न करते थे, यह वीरवल के वीरगति प्राप्त करने के अनन्तर लिखित इस उत्तम छन्द से भी स्पष्ट होता है—

पाप के पुंज पखावज केसव, सोक के संख सुने सुषमा में ।

झूठ के झालरि, झाँझ अलीक के, आवझ जूथन जानि जमा में ।।

भेद के भेरी, बड़े डर के डफ कौतुक भो कलि के कुरमा में ।

जूझत ही बलवीर बजे बहु दारिद के दरबार दमामें ।।

वीरवल की असामयिक मृत्यु भारत और हिन्दू जाति के लिए बहुत क्षतिकारी थी। वे उदार एवं धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति थे। उन्होंने 'दीने-इलाही' स्वीकार किया था। अकबर को महान् बनाने में उनका बहुत बड़ा हाथ था। केशवदास द्वारा उनकी प्रशस्ति सर्वथा उचित है। केशवदास ने चन्द्रसेन, अमरसिंह, वीरसिंह, वीरवल जैसे वीरों की प्रशंसा की, इन्द्रजीत सिंह जैसे कविता-प्रेमी की प्रशंसा की, अपने शासन के आरम्भिक वर्षों में उदार तथा कला-प्रेमी जहाँगीर की प्रशंसा की; अतः इसे कोरी प्रशंसा नहीं कहा जा सकता। ये नेता आधुनिक नेताओं से बढ़कर थे।

भक्ति

अनेक पूर्वाग्रहजर्जर और अध्ययनदरिद्र आलोचकों ने केशवदास को विलासी सिद्ध करने का तथ्यविरोधी आयास भी किया है। वस्तुतः केशवदास सदैव त्याग की वरीयता प्रदान करते रहे, उन्होंने उत्कृष्ट भक्तिकाव्य भी रचा, 'विज्ञानगीता' की रचना की, जीवनसंध्या में वाराणसी-वास किया। केवल बाह्याचार पर रीझने वाले पुरातनवादियों ने केशव, विहारी, देव, पद्माकर, प्रसाद इत्यादि के व्यक्तित्वों पर निराधार प्रहार के द्वारा हिन्दी-साहित्य की बड़ी क्षति की है। रामचन्द्र शुक्ल का केशवदास को अपने भक्तिकाल के फुटकल खाते में डालना सर्वथा अनुत्तरदायित्वपूर्ण एवं अवांछनीय है। केशव का भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य पर सृजन उच्चकोटि का है। कुछ छन्द-प्रमाणरूप में प्रस्तुत हैं—

1. पूरण पुराण अरु पुरुष-पुराण परि पूरण बतावै बतावै और उक्ति को ।
दरसन देत, जिन्हें दरसन समुझैं न, नेति-नेति कहै वेद छाँड़ि आन युक्ति को ।।
जानि यह केसोदास अनुदिन राम-राम, रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को ।
रूप देहि अणिमाहि, गुणदेहि गरिमाहि, भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को ।।

(रामचन्द्रिका)

2. केसव आपु सदा ही सह्यो दुख, दासन देखि सके न दुखारे ।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख ताहि तहाँ तिति भाँति उधारे ।।
मेरियै बार अबार कहा, कहूँ नाहिन दास के दोष विचारे ।
बूझत हो महामोह-समुद्र मैं राखत काहे न राखनहारे ।। (रामचन्द्रिका)

1. केशवदास की निर्लोभता इस दोहे से तो प्रकट होती ही है, एक अन्य दोहे से एक अन्य सन्दर्भ में भी प्रकट है—

इन्द्रजीत तासों कह्यो माँगन मध्य प्रयाग ।

माँग्यो सब दिन एकरस कीजै कृपा सभाग ।।

3. नारायण कीन्हीं मनि उर अवदात गनि, कमला कि वानी भनि सोभा सुभ सारु है।
केसव सुरभि केस सारदा सुवेष वेस, नारद को उपदेस विसद बिचारु है।।
सौनक ऋषि विसेषि सीरष सिखानि लेखि, गंगा की तरंग देखि विमल विहारु है।
राजा दसरथसुत सुतो राजा रामचन्द्र, रावरो सुजस सब जग को सिंगारु है।।
(कविप्रिया)
4. नीकें कै केंवार दैहों द्वार-द्वार केसोदास, मेरे घर आसपास सूरजो न छावैगो।
छिन मैं छायाय लैहों ऊपर अटानि आजु, आँगन पटाय लैहों जैसे मोहिं भावैगो।।
न्यारे-न्यारे नापदान मूँदिहों झरोखा-जाल, पायहै न पैड़ो पौन आवन न पावैगो।
माधव, तिहारे विन मोपहि मरन मूढ़, आवन कहत सु तो कौन पैड़ै आवैगो।।

वैराग्य

केशव का वैराग्य-निरूपण अतीव कलात्मक एवम् उत्कृष्ट है। वृद्धावस्था के शांतरस के स्थायीभाव निर्वेद की उद्दीपन-सामग्री ग्रहण करने में उनको जैसी सफलता प्राप्त हुई है, वैसी किसी कवि को नहीं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

1. सीतल समीर टारु, चन्द्र-चन्द्रिका निवारु,
ऐसे ही तो केसोदास हरष हेरातु है।
फूलन फैलाइ झारि डारु धनसारु चट,
चंदन को डारु चित चौगुनौ पिरातु है।।
नीरहीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही ते,
छीर के छिनीके कहा धीरज धिरातु है।
पाइहै तो पीर किधों यों ही उपचारु करै,
आगि ही को डाढ़ो अंग आगि ही सिरातु है।।
(कविप्रिया)
2. कच श्वेत विराजैं कीरति राजैं जनु केसव तपबल की।¹
तनु बलित पलित जनु सकल बासना निकरि गई थल-थल की।²
कंपित सुभ ग्रीवा सब अँग सीवा देखत चित भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति उपदेसति या जग मैं कछु नाहीं।³
(रामचन्द्रिका)
3. अनही ठीक को ठग, जानै ना कुठौर ठौर, ताही पै ठगावै ठेलि जाही को ठगतु है।
याके डर तू निडर डग डगति डरि, डर के डरनि डगै डौंगी ज्यों डगतु है।।
ऐसे बसोबास ते उदास होहि केसोदास, कसो न भजतु कहि काहे को भजतु है।
झूठो है रे जूठो जग, राम की दोहाई, काहू साँचे को कियो है ताते साँचो सो लगतु है।
(स्फुट)

1. श्वेतकेश पर महान् आशावादी-आस्थावादी सृजन महाकवि केशवदास ने ही किया है, नहीं तो 'अलसाई निसा रवि काल ज्यौ' (तुलसी) से 'बुढ़ापा' (प्रतापनारायण मिश्र), 'बुढ़ापा' (उग्र) और 'कफन ओढ़ा है जीते-जी निगार-ए-जिन्दगानी ने' (जोश मलीहावादी) इत्यादि तक सर्वत्र निराशावादी स्वर ही सुनाई पड़ते हैं।
2. खड़खड़ काया निरमल नेत। भई रे पूँता, गुरु सों भेंट।। (गोरखनाथ)
3. महान् कल्पना।

ज्ञान

‘विज्ञानगीता’ में महाकवि केशवदास का ब्रह्म-निरूपण औपनिषदिक गहनता से ओतप्रोत है। वे बहुदेववाद का विरोध करते हैं। उनका जीवन्मुक्त निरूपण अद्वितीय है। ‘रामचन्द्रिका’ में ही उन्होंने विशद एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया है—

सत चित प्रकास प्रमेव। तेहि वेद मानत देव॥
तेहि पूजि ऋषि रुचि मंडि। सब प्राकृतन को छंडि॥

विज्ञानगीता में इस सच्चिदानन्द ब्रह्म का विशद निरूपण प्राप्त होता है—

अजन्मु है, अमर्न है। असेष अन्त सुर्नु है॥
अनादि अन्तहीनु है। जु नित्य ही नवीनु है।
अरूप है, अगेय है। अमाप है, अभेय है॥
निरीह, निर्विकार है। सुमध्य अध्यहार है।
अकृत्य है, अखण्ड है। असेष जीव मंड है॥
समस्त सक्ति जुक्त है। सु देव देव मुक्त है॥

परमहंस या जीवन्मुक्त का सुन्दर वर्णन करने में केशव की सफलता अतुलनीय है—

लीक करैं सुख दुःखनि कै जनि राग विरागानि या महँ आनैं।
डारैं उपारि समूल अहंतरु, कंचन काँच न जी पहिचानैं॥
वालक' ज्यों भँवैं भूतल में, भव आपुन से जड़-जंगम जानैं।
केसव वेद-पुरान प्रमान तिन्हैं सब जीवनमुक्त बखानैं॥

केशवदास का अद्वैत तत्त्व-निरूपण अतीव विशद है—

देव अरूप, अमेय है कहे निरीह प्रकास।
सर्वजीवमंडित कहौ कैसे केसवदास॥
ज्यों अकास घटघटनि मैं पूरन, लीन न होइ।
त्यों पूरन सब देह मैं रहै कहैं मुनि लोइ^१॥

केशवदास का दान-निरूपण अद्वितीय है—

पहिले निजवर्तिन देहु अर्ब। फिरि पावहिं नागर लोग सर्ब।
फिरि देहु सबै निज देसिन को। उबरो धन देहु बिदेसिन को॥

‘विज्ञानगीता’ केशवदास की विनयपत्रिका है। यहाँ मैं विनयपत्रिका की विज्ञानगीता से तुलना नहीं कर रहा, क्योंकि विनयपत्रिका रामचरितमानस एवम् सूरसागर के अनन्तर भक्तिकाव्य का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है प्रत्युत यह स्पष्ट कर रहा हूँ कि केशवदास ने अध्यात्म पर उल्लेख सृजन किया है। शास्त्रीयकाल के कवियों ने अध्यात्मवादी सृजन कम ही किया है और ग्रन्थ-रूप में उल्लेख्य कृतियाँ केशवदास कृत विज्ञानगीता एवं सुखदेव कृत अध्यात्मप्रकाश ही हैं। वैसे, देव और बिहारी का स्फुट सृजन भी उत्कृष्ट है। ‘शास्त्रीयकालीन कविता में अध्यात्मवाद’ शोध का उत्तम विषय है।

भावपूर्ण सौन्दर्य-चित्रण

शास्त्रीयकाल की कविता में सौन्दर्य का महान् चित्रण प्राप्त होता है। नायिकाभेद सौन्दर्याधृत ही होता है। अतएव, शास्त्रीयकाल के प्रवर्तक महाकवि केशवदास द्वारा उत्कृष्ट सौन्दर्यचित्रण स्वाभाविक है। केशव का सौन्दर्यचित्रण गहन अनुभूतियों से पुलकित भी

1. सनक, सनन्दन, सनातन एवम् सनत्कुमार ने तपफल के रूप में चाहा कि वे सदैव पंचवर्षीय बने रहें—इस महान् पुराण-रूपक में जीवन्मुक्त-रहस्य व्याख्यायित है।
2. लोग।

है, अलंकृत भी, जिसने परवर्ती चिन्तामणि, मतिराम, बिहारी, सुखदेव, देव, पद्माकर इत्यादि को प्रभावित किया है। 'रसिकप्रिया' सौन्दर्यचित्रण की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें यत्र-तत्र रहस्य-स्पर्श की पुलक तक विद्यमान है—

1. पहिले तजि आरसु आरसी देखि घरीक घस्यो घनसारनि लै।
पुनि पोंछ गुलाब तिलोछि फुलेल अंगौछे मैं आछे अंगौछनि कै।।
कहि केसव भेद-जवादि लैं माँजि इते पर आँजै मैं आँजन दै।
बहुरो दुति देखौं तौ देखौं कहा सखि लाज नैनन लागि है।।¹
2. भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी लर मोतिन की सुख दैनी।
ताहि विलोकति आरसी लै कर आरस यों यक सारसनैनी।।²
केसव स्याम दुरे दरसी³ परसी उपमा मुख की अति पैनी।
सूरजमंडल मैं ससिमंडल मद्धि धसी मनो धार-त्रिवैनी।।
3. चपला पट मोर किरीट लसै मधवाधनु सोभ बढ़ावत है।
मृदु गावत आवत वेनु वजावत मित्र मयूर नचावत है।
उठि देखि भट्ट⁴ भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत है।
घनस्याम घने घन वेष धरे जु बने बन में ब्रज आवत है।
4. देखत ही चित्र सूनी चित्रशाला वाला आजु।
रूप की की माला राधा रूपक सहाए री।।
नूपुर के सुरन के अनुरूप तानें लेत।
पगतल ताल देत अति मन भाए री।।
ऐसे मैं दिखाई दीन्ह औचक कुँवरकान्ह।
जैसे हैं ये गात तैसे जात न बताए री।।
केसोदास कहैं परै अलज जलद से न।
जलज से लोचन जलद से हवै आए री।।⁵

'कविप्रिया' में भी सौन्दर्य-चित्रण के भव्य दर्शन होते हैं जिनमें प्रौढ़ता विद्यमान है—

1. हरिकरमंडन सकल दुख खण्डन।
मुकुरमहिमंडन को कहत अखंड मति।
परम सुवासन पुनि पीउष निवास
परिपूरन प्रकाश केशवदास भू-अकास गति।।
बदन मदन कैसो, श्री जू को सदन जिहि
सोदर सुधांदर-दिने राजू को मीत अति।
सीता जू के मुख-सुपमा की उपमा को कहि,
कोमल न कमल, अमल न रजनिपति।।
2. को है दमयन्ती⁶, इन्दुमती⁷, रति राति-दिन
होहि न छवीली छिन इन जो सिंगारिए।

1. ऐश्वर्यप्रधान युगस्थिति एवं सहज लज्जागौरव से संयुक्त महान् छन्द।

2. उत्कृष्ट विम्वालेखन।

3. रहस्य-वैभव। अन्यसन्दर्भित किन्तु उल्लेख्य—“प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई” (तुलसी)।

4. सखी, अलि, वीर, माई।

5. साश्रु-सौन्दर्य की इस मुद्रा ने घनआनन्द-समेत अनेक परवर्ती कवियों को प्रभावित किया है। मैथिलीशरण गुप्त को भी : “मैं निज अलिंद में खड़ी थी सखि थी सखि एक रात”....।

6. 'नैषधीयचरितम्' (श्रीहर्ष मिश्र) की प्रख्यात नायिका। नल-पत्नी।

7. दशरथ-पिता अज की प्रिया पत्नी। रघुवंशम् (कालिदास) की 'दीपशिखा'।

3.

केसव लजात जलजात जातवेद यौंडव, जातरूप बापुरो विरूप-सी निहारिए ।।
 मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो', चन्द वहरूप अनरूपक विचारिए ।
 सीता जू के रूप पर देवता कुरूप कोहैं, रूप हू को रूप सो लै वारि-वारि डारिए ।।²
 राधा के अंग गोराई-सी और गोराई विरंचि वनावन लीनी ।
 कै सत बुद्धि बिवेक सों एक अनेक विचारनि मैं दृग दीनी ।।
 वानिक तैसी बनी न वनावत केसव प्रत्युत है गई हीनी ।
 लै तब केसरि केतकि कंचन चंपक के दल दामिनि कीनी ।।

‘रामचन्द्रिका’ में वनपथ पर राम-सीता-लक्ष्मण का सौन्दर्य-चित्रण अतीव मनोहारी है जिसकी तुलना ‘रामचरितमानस’ के इसी प्रकार के सौन्दर्य-चित्रण से की जा सकती है (यद्यपि तुलसी सौन्दर्य-चित्रण में भी कालिदास-स्तरीय विश्वकवि हैं ।)।

मिश्रबन्धु को वनपथ-सन्दर्भ में मार्गवासियों द्वारा राम को ‘ठग’ समझने का भ्रम हो गया है। यह उपमान है। किन्तु तुलसी ने तो महान् जनक के मुख से ‘ठग के से लाडू खाए’ (गीतावली) कहलाया है। मंजन का नायक ‘ठग लाडू खाएँ’ (मधुमालती) का सुखद प्रयोग स्वयं करता है। प्रसंग देखते, यहाँ ‘ठग’ शब्द का प्रयोग बहुत ही रम्य है।

निम्नलिखित प्रसिद्ध छन्द में व्यतिरेक अलंकार का उत्कृष्ट प्रयोग प्राप्त होता है। जिसमें उद्देश्य उपमेय की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है, न कि प्रकृति-अवहेलना, जैसा कि भ्रमवश या पूर्वाग्रहवश रामचन्द्र शुक्ल³ मान बैठे हैं क्योंकि ऐसे वर्णन तुलसी-समेत अनेक कवियों ने अनेक बार किए हैं, और केशव ने सुन्दर प्रकृतिचित्रण भी किया है। अनन्वय-अलंकृत वर्णन स्वयं देखें—

एक कहैं अमल कमल मुख सीताजू कौ एक कहैं चन्द्र-सम आनैन्द कौ कन्द री ।
 होय जौ कमल तौ रयनि में सकुचै री, चन्द जौ तौ बासर न होइ द्युति मन्द री ।।
 बासर ही कमल, रजनि में ही चन्द्र मुख बासर हू रजनि विराजै जगवन्द री ।
 देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द, ताते मुख मुखै सखी, कमलौ न चन्द री ।।

कतिपय मनोवैज्ञानिक कारणों⁴ से रामचन्द्र शुक्ल का अहं जटिल हो गया था। मैथ्यू आर्नोल्ड की तरह उनकी रुचि भी प्रशंसा या प्रहार के छोरों की वन्दिनी हो गई थी। यदि ऐसा न होता तो वे केशवदास जैसे महाकवि पर ऐसा निराधार एवं अन्यायपूर्ण प्रहार करके अपने साथ अन्याय न करते। उनके इस अन्यायपूर्ण केशव-प्रत्याख्यान के विरोध में आलोचक पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल, सम्पादक डॉ. भगीरथ मिश्र, रसज्ञ पण्डित जगन्नाथ तिवारी, शोधकर्ता हीरालाल दीक्षित एवं सामग्री-समायोजक डॉ. विजयपाल सिंह तथा उपन्यासकार इकबाल बहादुर देवसरे प्रभृति ने अच्छा कार्य किया है, किन्तु उसमें अपेक्षित शक्ति का अभाव है। अत्यधिक श्लेषगर्भित एवं अलंकृत होने के कारण केशव के काव्य पर क्लिष्टत्व का आरोप लगाया जाता रहा है किन्तु एक तो केशव ने सरल-सहज काव्य रचना भी की है और दूसरे लाला भगवानदीन ‘दीन’ जैसे तपस्वी साहित्यकार की टीका ने भी इस आरोप को अंशतः समाप्त कर दिया है। ‘दीन’ की टीका की बड़ी सटीक प्रशंसा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा कर गए हैं। उच्छृंखल एवं अहंवादी आलोचना पर प्रहार साहित्य के सत्य की रक्षा के हेतु अपरिहार्य कर्तव्य है। ‘बरवै-रामायण’ में तुलसी तथा पदमावत में जायसी इत्यादि ने ऐसे छन्द रचे हैं जो सुन्दर हैं तथा सुन्दर भी माने जाते हैं। शुक्ल को यह भ्रम था कि आलम्बनात्मक प्रकृति-चित्रण का जो प्रतिपादन वे करते हैं, वही ‘अलम्’ है तथा शेष सब-कुछ व्यर्थ। अपनी झोंक में उन्होंने शास्त्रीयकाल के कवियों से लेकर प्रकृति के महाकवि पन्त-समेत स्वच्छन्दतावादी युग के कवियों के सुन्दर प्रकृति-चित्रण तक पर बड़े ‘प्रहार’ कर डाले हैं। वे भूल गए—

सुन्दर है पुष्प, विहग सुन्दर,
 मानव! तुम सबसे सुन्दरतम। (पंत)

1. महान् पंक्ति ।

2. तुलसीय—“सुन्दरता कहैं सुन्दर कई । छविगृहं दीपसिखा जनु बरई ।।” (तुलसी)

3. चारों ओर फैली हुई प्रकृति के नाना रूपों के साथ केशव के हृदय का सामंजस्य कुछ भी न था। अपनी इस मनोवृत्ति का आभास उन्होंने यह कहकर कि—

“देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द,
 ताते मुख मुखै सखी कमलौ न चन्द री ।।”

साफ दे दिया है। ऐसे व्यक्ति से प्राकृतिक दृश्यों के सच्चे वर्णन की भला क्या आशा की जा सकती है?

(हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 195)

4. देखें मेरा ग्रन्थ ‘आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : व्यक्ति, आलोचक, निबन्धकार’ (जो ‘आलोचना-सागर’ में भी समाविष्ट है ।)

खेद यह है कि अनेक अध्ययनहीन एवं अन्धास्थावादी व्यक्ति उनको प्रमाण मान बैठे हैं। सब-कुछ त्याग कर अध्ययन एवं लेखन में लीन रहने वाला मुझ जैसा, अस्मितानिष्पन्न व्यक्ति भी कभी इस दुर्बलता का आखेट हुआ था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी-आलोचना की महान् सेवा के साथ भयावह क्षति भी की है।

उत्कृष्ट प्रेमनिरूपण

सहृदय एवं भावुक महाकवि केशवदास ने मानव-हृदय के सर्वाधिक कोमल एवं कमनीय भाव प्रेम के अनेकानेक सफल वर्णन किए हैं, जिनका परवर्ती कवियों पर भारी प्रभाव भी पड़ा है। कहीं 'रहिमन धागा प्रेम का मति तोरो चिटकाय' अथवा 'बसीकरन यक मन्त्र है तजि दे बचन कठोर' (तुलसी) की नीत को कलारूप प्रदान किया गया है, कहीं सावन में प्रिय को न जाने देने की भावना को शब्दित किया गया है, कहीं सम्पूर्ण समर्पण का निर्णय व्यक्त किया गया है, कहीं "हाँ ते भली नाहीं" (दूलह) से भावोत्तेजन किया गया है, कहीं प्रियतम के हृदय से न निकलने का सत्य उद्घाटित किया गया है, तो कहीं गहनतम प्रेमाद्वैतवाद का दर्शन निरूपित किया गया है—

1. केशव सरिता सकल मिलत सागर मन मोहै।
ललित लता लपटानि तरुन तरु तरुवर सोहै।।
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुँ ओरन।
मनभावत कहँ भेटि भूमि कूजत मिस मोरन।।
इहि रीति रमन रमनीन सौं रमन लगे मनभावने।
पिय-गमन करन को को कहै, गमन न सुनियत सावने।। (कविप्रिया)
2. कानन के रँगें रंग, नैनन के डोलौ संग,
नासाअग्र, रसना के रस ही समाने हौ।
और कहा कहौं गूढ़ मूढ़ हौ जू जानि जाहु,
केसोदास प्रौढ़ रूप नीके करि जाने हौ।।
तन आन, मन आन, कपट निधान कान,
साँची कहौ, मेरी आन, काहे को डराने हौ।
वे तो हैं बिकानी हाथ मेरे, हौं तुम्हारे हाथ,
तुम ब्रजनाथ, हाथ कौन के बिकाने हौ।। (रसिकप्रिया)
3. सौंह दिवाइ सखी पहिं बारक कानन कानन आनि बसाए।
जानै को केसव कानन तैं कित है कब नैनबि माँहि सिधाए।
लाज के साज धरेई रहे सब, नैनन लै मन को सु मिलाए।
कैसी करौ अब, क्यों निकसै, यों हरे-ई-हरे हियरे हरि आए।। (रसिकप्रिया)
4. केसोदास लाख-लाख भाँतिन के अभिलाख बारि दै री बावरी! न बारि हिए होरी सी।
राधा-हरि केरी प्रीति सब ते अधिक जानि, रति-रतिनाथ हूँ मैं देखो रति थोरी सी।।
तिनहूँ मैं भेद न भवानि हूँ मैं पायो जाइ, भरती की भारती है कहिबे को भोरी सी।
एकै गति, एकै मति, एकै प्रान, एकै मन, देखिबै को देह द्वै हैं नैनन की जोरी सी।।

उपर्युक्त छन्द संसार-साहित्य में प्रेम-निरूपण का एक महानतम छन्द है। अरस्तू की मित्रता-परिभाषा (मित्रता दो तनों में एक मन है), कालिदास का प्रेमाद्वैत ("ससिना सह याति कौमुदी"—रघुवंशम्), तुलसी की दाम्पत्य अपरिहार्यता ("जिय बिन देह, नदी बिन

बारी”—रामचरितमानस) इत्यादि तक इस छन्द की समता नहीं कर पाते, यद्यपि अरस्तू एक दर्शनसीमान्त हैं, कालिदास एक प्रेमकाव्यसीमान्त है, तुलसीदास एक शीर्षस्थ विश्वकवि हैं। “देखिवे को देह द्वे हैं नैनन की जोरी सी” अद्वितीय विश्वोपमा है—“स्वस्थ-स्वच्छ नेत्र दो होकर भी एक देखते हैं।” आश्चर्य है कि इतने महान् सहृदय कवि के लिए मिश्रबन्धु—जैसे सहृदय आलोचकों ने कैसे लिख दिया, “यह महाशय बड़े पंडित और बुद्धिमान थे, परन्तु स्वभाव से कवि न थे।” आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो मिश्रबन्धु का अनुकरण करते हुए अति ही कर डाली है, “केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए। वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पाण्डित्य और रचना-कौशल की धाक जमाना चाहते थे। पर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए वैसा उन्हें प्राप्त न था।” मिश्रबन्धु ने देव को जमाने के चक्कर में पड़कर केशव के साथ अन्याय ही किया था। किन्तु रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी को जमाने के फेर में पड़कर केशव की हत्या करने की कोशिश ही कर डाली। संस्कृत का प्रभाव जायसी पर कम है उनका नखशिख-वर्णन संस्कृत नखशिख-वर्णन परम्परा का अनुवाद कहा जा सकता है। उनका युद्ध-वर्णन नितान्त पारम्परिक है। उनकी कथा लोकाधृत है। तुलसी पर संस्कृत-रामकाव्य, सूर पर भागवत, देव पर संस्कृत-शास्त्रीयकाव्य-शृंगारकाव्य का भारी प्रभाव एक स्वयंसिद्ध तथ्य है। स्वयं रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना पर मिश्रबन्धु का भारी प्रभाव पड़ा है, उनकी सैद्धान्तिकता तुलसी से महावीरप्रसाद द्विवेदी और मैथ्यू आर्नोल्ड से रचर्ड्स तक के द्वारा अनुप्राणित दीखती है। उनकी अनेक परिभाषाएँ नानाकोशों से गृहीत हैं। किन्तु प्रस्तुति की नव्यता-भव्यता के कारण तुलसी इत्यादि से लेकर रामचन्द्र शुक्ल तक सभी मौलिक साहित्यकार हैं। केशव अपनी प्रस्तुति की नव्यता-भव्यता में मौलिक हैं। भाषा पर केशव का असाधारण अधिकार है, भले ही वह कोमल यत्र-तत्र ही हो। विराट् हिन्दी को संकीर्ण भाषा-निकष पर परीक्षित करना अनुचित होगा। बुंदेलखंडी के शब्दों का अपना अलग महत्त्व है। संस्कृत के शब्दों से परहेज का कोई तुक नहीं है। संस्कृत केवल भाषा मात्र नहीं, संस्कृति भी है।

महान् विरहवर्णन

महाकवि केशवदास को हृदयहीन कहनेवाले की हृदयहीनता सिद्ध करने के लिए उनके नानाआयामी विरह-वर्णन अकाट्य प्रमाणों का कार्य सम्पादित करते हैं। यह सत्य है कि उनके अनेक वर्णन अलंकारों से दब गए हैं। किन्तु अनेक वर्णन ऐसे भी हैं जिनमें हृदय को कोमल अनुभूतियाँ सहज रूप में व्यक्त हुई हैं। आसन्न-विरह का वर्णन करते हुए कवि ने नायिका का यह चित्र खींचा है जिसमें सहज भाव को अनूठी मर्मस्पर्शिता प्रदान की गई है—

मेरी सौं तुमहिं हरि, रहियौ सुखहि सुख, मोहूँ, है तिहारी सौंह, रहीं सुख पाए ही।।¹

चले ही बनत जो तो चलिए चतुर पीय, सोवत ही जैयो छाँड़ि, जगौगी आए ही।।²

उपर्युक्त पंक्तियों पर प्रकाश डालते हुए ‘केशव की काव्यकला’ के प्रस्थान-आलोचक पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल (1904-1985 ई.) लिखते हैं, “एक नायिका का प्रिय परदेश जा रहा है। वह कहना तो यह चाहती है कि मैं तुम्हारे बिना न जी सकूँगी, परन्तु इसी बात को कैसे प्रकारान्तर से, कैसे काव्योचित ढंग से कह रही है। वह कहती है कि तुम मुझे सोती छोड़कर चले जाना और जब तुम लौटकर आओगे तभी मैं जगूँगी। यदि नायक का बाहर जाना रात्रि भर के लिए ही होता तो उपर्युक्त कथन के वाच्यार्थ में कोई ऐसा चमत्कार न था। परन्तु यह विदेशगमन है, नायक दो-चार दिन में लौटने वाला नहीं है और नायिका को भी कुम्भकर्णी-निद्रा का वरदान प्राप्त नहीं है। ऐसी अवस्था में उसके कहने का तात्पर्य ध्वनि से वही निकलता है जो ऊपर कहा जा चुका है।”

प्रिय के परदेश जाने के समय में नायिका के हृदय की किंकर्तव्यविमूढ़ता का बहुत ही मर्मस्पर्शी चित्र प्रिय के प्रति उसके कथन के माध्यम से महाकवि केशवदास ने निम्नलिखित छन्द में खींचा है—

1. आमी निज सुख दुख किछु न जानी।
तोमार कुशल कुशल मानी। (चण्डीदास)
2. पर जिसमें सन्तोष तुम्हें हो
मुझे उसी में है सन्तोष।। (मैथिलीशरण)

जो हौं कहौं 'रहिए' तौ प्रभुता प्रगट होति, चलन कहौं तौ हितहानि नाहिं सहनो।
 "भावै सो करहु" तौ उदासभाव¹ प्राननाथ, "साथ लै चलहु" कैसे लोकलाज वहनो।।
 केसवदास कौ सौं तुम सुनहुँ छवीले लाल, चले ही वनत जो पै नाहीं राजा रहनो।
 तैसियै सिखावौ तुम ही सुजान प्रिय, तुम ही चलत मोहि जैसो कुछ कहनो।।

इस मार्मिक एवं भावनिष्पन्न छन्द पर पंडित कृष्णशंकर शुक्ल लिखते हैं, "एक नायिका का पति परदेस जा रहा है। बेचारी यह नहीं समझ पाती कि चलते समय अपने प्रियतम से किन शब्दों में क्या कहना चाहिए। यह है तो अवश्य संस्कृत के एक प्रसिद्ध श्लोक का भावानुवाद, परन्तु ऐसे मँजे रूप में केशव ने भाव को अपनाया है कि यह अनुवाद-सा प्रतीत नहीं होता।"

केशव का अनमोल विरह-वर्णन नायक-नायिका में बद्ध नहीं है, अनेकायामी है। यहाँ दशरथ की राम-लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ जाते समय की स्थिति का बहुत ही सजीव एवं चित्रमय अंकन किया गया है, जो काव्यमूल्य की दृष्टि से विश्वस्तरीय है—

रामचलत नृप के जुग लोचन। वारि-भरित भए वारिज रोचन।।
 पायन परि ऋषि के सजि मौनहि। केसव उठि गए भीतर भौनहिं।।

केशव ने वाल्मीकि, कम्बन् (कम्बर), तुलसीदास इत्यादि की परम्परा को गतिशील करते हुए विरह को प्रकृति की जीवंतता से संपृक्त करने में भी सफलता प्राप्त की है।

विरह में आलंकारिकता का अतिरेक विशेष खटकता है, क्योंकि विरह एक विशुद्ध भावात्मक एवं साशु स्थिति है। फिर भी, कविरुचि के कारण ऐसे वर्णन होते आए हैं। केशव ने भी किए हैं—

किन्तु केशव के सहज-सरल एवं ललित-कलित विरह-वर्णन उनके अलंकृत-चमत्कृत एवं कृत्रिम-प्रयत्नज विरह-वर्णन से गुण एवं परिमाण दोनों में अधिक हैं। विरह-मूर्ति सीता का यह चित्रण निस्संदेह उच्च कोटि का है।

और सीता का मुद्रिका-अवलोकन पर यह कथन तो अपनी मार्मिकता में अद्वितीय ही है—

श्री पुर मैं, बन-मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
 कहि मुँदरी, अव तियन की को करिहै परतीति।।

उधर, राम ने हनुमान् द्वारा लाई चूड़ामणि को देखकर जो उद्गार व्यक्त किए हैं, वे भी बहुत सुन्दर हैं—
 श्री रघुनाथ जबै मनि देखी। जी महँ भागदसा सम लेखी।।

फूलि उठ्यो मन ज्यों निधि पाई। मानहुँ अन्ध सुडीठि सुहाई।।
 मनि होहि नहीं मनु आय प्रिया को। उर प्रगट्यो गुण प्रेम दिया को।।
 सब भाग गयो जु हुतो तम छायो। अब मैं अपने मन को मत पायो।।
 दरसे हमकोऽब नहीं दरसाए। उर लागति आय बर्याई लगाए।।
 कछु उत्तर देत नहीं चुप साधी। जिय जानति है हमको अपराधी।।

लक्ष्मण-शक्ति-प्रसंग में राम का विलाप केशवदास ने भी मार्मिक कराया है, यद्यपि तुलसी की भावुकता इस वर्णन में अद्वितीय ही है—

लक्ष्मण राम जहाँ अवलोक्यो। नैनन तै न रह्यो जल रोक्क्यो।।
 बारक लक्ष्मण, मोहिं बिलोकौ। मोकहँ प्रान चले तजि रोकौ।।
 हौं सुमिरौं गुन केतिक तेरे। सोदर, पुत्र, सहायक मेरे।।
 लोचन, बान तुही बल मेरो। तू बल, बिक्रम बारक हेरो।।
 तू बिन हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं, कछु झूठ न भाखौं।।
 मोहिं रही इतनी मन संका। देन न पाई विभीषन लंका।।
 बोलि उठो प्रभु को पन पारो। नातरु होत है मो मूख कारो।।

केशवदास ने ललित कोमलकांत भाषा-शैली में अनेक ऐसे महान् विरह-छन्द रचे हैं जिन्होंने विहारी, मतिराम, देव, पद्माकर इत्यादि को बहुत प्रभावित किया है—

1. भौंति भली बृषभानलली जव सौं अखियाँ अखियान सों जोरी ।
भौंह चढ़ाई कछू डरपाइ वोलाइ लइ हँसि कै इत भोरी ।।
केसव क्यों हूँ सुता दिन ते रुचि कै न निहारत केती निहोरी ।
लीलत है सबही के शृंगार अँगारन ज्यों बिन चन्द चकोरी ।।
2. सिखै हारी सखी, डरपाइ हारी सेवकिनि,
दामिनि दिखाइ हारी निसि अधरात की ।
कूकि-कूकि हारी रति, मारि-मारि हार्यो मार,
हारी उर कीरति बिगत म्रम बात की ।।
दर्द निरदर्द दर्द वाहि कहा ऐसी मति,
जरत ज्यों रैन-दिन ऐसे सम गात की ।
कैसेहु न मानति मनाइ हारी केसोदास,
बोली हारी कोकिला, बोलाइ हारी चातकी ।।
3. मेह के हैं सखि आँसू, उसासनि साथ निसासु बिसासिनि बाढ़ी ।
हास गयो उड़ि हंसन ज्यों, चपला सम नींद गई गति काढ़ी ।।
चातक ज्यों पिव पीव रटै चढ़ि ताप तरंगित ज्यों तन गाढ़ी ।
केसव वाकी दसा सुनि हों अब आगि बिना अँग-अंगानि डाढ़ी ।।

आश्चर्य है कि इतने उत्कृष्ट एवं बहुआयामी विरहवर्णनकार महाकवि केशवदास को अनध्ययन, अनुत्तरदायित्व एवं अन्य पक्षपात प्रभृति कारणों से अकविहृदय एवं हृदयहीन तक कहा गया! “बासर की सम्पत्ति उलूक ज्यों न चितवत” एक ऐसी पंक्ति है जिस पर प्रहार सरल है; अतः केशवविरोधी रामचन्द्र शुक्ल ने ‘उपमान बहुत हीन और बेमेल’ लिखने का अवसर निकालना अत्यावश्यक समझा। किन्तु विलक्षण अलंकरण तुलसी के “अध खग बाजः”, “कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम ।”, “सेवहिं लखन सदा रघुवीरहि । जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि ।” इत्यादि में भी प्राप्त होता है। सूर ने “जैसे बधिक चुगाय कपट कन पाछे करत बुरी” तक लिखा है। अतः इस प्रकार के सहजोद्गारों पर बेतरह सर-पैर पटकना बेकार है। जिस भारतवर्ष में अद्वैतवाद के साधारणीकरणार्थ वराह को अवतार एवं मकर, उलूक, मूषक इत्यादि को देववाहन माना गया, उसमें ऐसा संकीर्ण दृष्टिकोण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। संकीर्ण-सौन्दर्यवादी भारत के विशद-सौन्दर्यवाद को कभी नहीं परख पाते। रामचन्द्र शुक्ल एक महान् आलोचक थे किन्तु विशद-सौन्दर्यवाद से पुलकित न होने के कारण अनेक स्थूल निर्णय कर गए हैं, जिनमें एक उपर्युक्त है। केशव की जहाँगीर की प्रशंसा में काव्य-रचना की आलोचना की जा सकती है। किन्तु सूर ने हिन्दू से मुसलमान बने तानसेन की, सुखदेव मिश्र ने औरंगज़ेब की, मैथिलीशरण ने साम्राज्यवादी पंचम जॉर्ज की प्रशंसा की है। दाऊद ने फीरोज तुगलक, जायसी ने बाबर, उस्मान ने जहाँगीर, नूरमोहम्मद ने मोहम्मदशाह की स्तुति की है। गालिव ने बहादुरशाह ‘जफर’ के पाँव धोकर पीने की चापलूसी तक की है। अतः इस बिन्दु को अधिक दूर तक खींचना उचित नहीं। प्रत्येक कवि तुलसी नहीं हो सकता—ऐसी अपेक्षा ही मूर्खतापूर्ण है। मुझे हर्ष है कि मेरे लखनऊ विश्वविद्यालय के आचार्यों, प्रपाठकों, प्रवक्ताओं तथा शोधार्थियों के मध्य एक एतद्विषयक भाषण में डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित जैसे विद्वान् ने केशव की ‘जहाँगीर-जस-चन्द्रिका’ की प्रशस्ति को शाहेवक़्त-प्रशस्ति के सदृश मानते हुए महाकवि की निन्दा को अनुचित बताया था।

भाषा-शैली

केशवदास की भाषा संस्कृतनिष्ठ-व्रजभाषा है, जिसमें पत्र-तत्र बुंदेलखण्डी शब्दों का भी समावेश दृग्गत होता रहता है क्योंकि वे बुंदेलखण्ड की ही विभूति थे। भाषा पर उनका पूरा अधिकार था। प्रसाद, माधुर्य, ओज सभी गुणों के अनुरूप उनका मर्मस्पर्शी

भाषाधिकार अपनी विविधता में तुलसी के अनन्तर सर्वथा विलक्षण है क्योंकि सूर, जायसी, देव इत्यादि की भाषा प्रायः एकरूपवद्ध है। उनकी भाषा भाव के संवहन में सर्वथा सक्षम है। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

राज दियो हम को बन रुरो। राज दियो तुमको सब पूरो॥

सो हमहूँ तुमहूँ मिलि कीजै। बात की बोलु न नेकहु छीजै॥ (प्रसाद गुण)

कहूँ किन्नरी बिन्नरी' लै बजावैं सूरि आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥

कहूँ जच्छिनी पच्छिनी लै पढ़ावैं। नगीकन्यका पन्नगी को नचावैं॥

पियैं एक हाला गुहैं एक माला। वनी एक बाला, नचैं चित्रशाला॥

कहूँ कोकिला कोक की कारिका को। पढ़ावैं सुआ लै सुकी सारिका को॥ (माधुर्य गुण)

प्रचण्ड हैहयादि राज दण्डमान जानिए। अखण्ड कीर्ति लेय भूमि देयमान मानिए॥

अदेव देव जे अभीत रच्छमान लेखिए। अमेय तेज भय भक्त भार्गवस देखिए॥ (ओज गुण)

केशवदास शैलीकार के रूप में भी सर्वथा विलक्षण हैं। वर्णिक हों या मात्रिक दोनों प्रकार के प्रायः सारे प्रमुख छन्दों में उन्होंने साधिकार सृजन किया है। 'रामचन्द्रिका' के छन्द-बाहुल्य को देखकर उस महाकाव्य पर 'छन्दो का अजायबघर' होने का आरोप लगाया जा सकता है। किन्तु इस आरोप को तूल देना व्यर्थ है क्योंकि छन्दवैविध्य रामचरितमानस से साकेत तक दृष्टिगोचर होता है। केशवदास का छन्द-बाहुल्य अपनी विलक्षणता में अपना उपमान स्वयं है। अलंकार-प्रयोग में केशवदास का सामर्थ्य विलक्षण है। श्लेष, यमक, अनुप्रास इत्यादि से लेकर परिकर, परिसंख्या, उल्लेख इत्यादि तक प्रायः सभी प्रमुख शब्दालंकार एवं अर्थालंकार उनके काव्य में अनायास प्राप्त होते रहते हैं। उनके उदात्त अलंकार के सुन्दर प्रयोग भी सहज एवं सुन्दर हैं। शैलीकार के रूप में उनकी समता तुलसी को छोड़कर अन्य कोई हिन्दी-कवि नहीं कर सकता।

ग्रन्थ

डॉ. भगीरथ मिश्र ने केशवदास की रचनाओं का विवरण इस प्रकार दिया है, "1. रतनबावनी (सं. 1638), 2. रसिकप्रिया (सं. 1648), 3. नखशिख (सं. 1657), 4. बारहमासा (सं. 1657), 5. रामचन्द्रिका (सं. 1658), 6. कविप्रिया (सं. 1658), 7. छन्दमाला (सं. 1659), 8. वीरसिंहदेवचरित (सं. 1664), 9. विज्ञानगीता (सं. 1667), 10. जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' (1669)। इन ग्रन्थों में भक्ति, शृंगार तथा चरितकाव्य सम्मिलित हैं। इससे स्पष्ट है कि केशवदास ने अपने युग की सभी प्रवृत्तियों को लेकर रचना की।"

केशवदास की रचनाएँ उन्हें शास्त्रीयकाल का अग्रदूत भी प्रमाणित करती हैं, सर्वश्रेष्ठ महाकवि भी, क्योंकि रस, अलंकार, छन्द, गुण-दोष इत्यादि के निरूपण से चरितकाव्यों के लेखन तक उनका अनुकरण सेनापति, चिन्तामणि, मतिराम, भूषण, बिहारी, सुखदेव, देव, पद्माकर इत्यादि ने अपने-अपने ढंगों से किया है और इन सबसे लेकर रत्नाकर और रामनाथ ज्योतिषी (जोतिषी) इत्यादि तक पर ही उनका भारी प्रभाव पड़ा है, यद्यपि इनमें से कोई कवि उनके प्रतिभा-चैराट्य एवं प्रभाव-स्फीति की समता नहीं कर सका। मिश्रबन्धु की देव-वरीयता सृजन एवं प्रभाव दोनों दृष्टियों से निराधार है। शुक्ल की चिन्तामणि-वरीयता तो खैर प्रत्येक दृष्टि से सर्वथा उपेक्षणीय है ही, जिसका किसी सुधी आलोचक पर कोई प्रभाव कभी नहीं पड़ सका। रामचन्द्रिका का महाकाव्यत्व रामचरितमानस के अनन्तर किसी से कम महत्त्व का नहीं। कविप्रिया एवं रसिकप्रिया ने शास्त्रीयकाल के कवियों को भरपूर प्रेरित एवं प्रभावित किया। चरितकाव्यों ने भी शास्त्रीयकाल पर भारी प्रभाव पड़ा। यदि तुलसी और सूर ने करोड़ों लोगों को प्रभावित किया तो केशव ने भी रामलीला के माध्यम से लगभग ऐसा ही किया है और कवियों पर प्रभाव की दृष्टि से भी प्रायः यही कहा जा सकता है।

1591 ई. में रचित 'रसिकप्रिया' का शृंगारप्रधान रस-निरूपण, नायिकाभेद, नायकभेद, कर्मभेद, दर्शनभेद, वृत्तिनिरूपण रचना प्राथमिकता के बावजूद उत्कृष्ट भी है, प्रभावी भी। रचना में 16 'प्रकाश' हैं। 1601 ई. में रचित दण्डी के 'काव्यादर्श' एवं

1. वीणा। पाठान्तर 'किंगरी'।

2. प्रयाग-निवासी विद्वान् डॉ. किशोरीलाल (डॉ. किशोरीलाल गुप्त से भिन्न) ने इस ग्रन्थ का सुन्दर सम्पादन किया है। उन्होंने केशव के अन्य उपेक्षित ग्रन्थों का भी आदर किया है।

रुद्रट के 'काव्यालंकारसूत्र' से प्रभावित कविप्रिया प्रौढ़ ग्रन्थ है। काव्यदूषण, कवि-गुण-दोष, काव्य-परीक्षण, अलंकार, वारहमासा, नखशिख और चित्रकाव्य विवेचित हैं। इसमें भी 16 'प्रकाश' हैं। कविप्रिया एवं रसिकप्रिया के 16 'प्रकाश' शृंगार के प्रतीक हैं। 1601 ई. में समाप्त 39 'प्रकाश' या सर्गों में निबद्ध 'रामचन्द्रिका' विश्रुत महाकाव्य है ही जो रामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव इत्यादि से प्रभावित होने पर भी पर्याप्त मौलिक है। इसके रावण-वाणासुर-संवाद, परशुराम-लक्ष्मण-सम्वाद, अंगद-रावण-संवाद इत्यादि केशव को हिन्दी-कविता में संवादों के अन्यतम कवि के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। रामचन्द्रिका, कविप्रिया एवं रसिकप्रिया केशव के प्रमुख काव्य हैं।

किन्तु 1610 ई. में रचित 'विज्ञानगीता' भी अध्यात्म-काव्य की दृष्टि से एक उल्लेखनीय कृति है। 21 'प्रभावों' या अध्यायों में निबद्ध इस रूपक-काव्य में पूर्ववर्ती 15 में महामोह एवं विवेक का युद्ध वर्णित है जिसमें महामोह परास्त होता है तथा परवर्ती 9 में प्रह्लाद, बलि इत्यादि के चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें काम एवं रति, चार्वाक एवं कलि इत्यादि के वार्तालाप पर्याप्त सुन्दर हैं। इसके कुछ स्तोत्र भी अच्छे बन पड़े हैं। इस ग्रन्थ पर योग-वसिष्ठ तथा केशव के पूर्वज कृष्ण मिश्र कृत प्रबोध-चन्द्रोदय का भारी प्रभाव पड़ा है। प्रत्यक्षतः संस्कृत के स्तोत्र-साहित्य का प्रभाव दृग्गत होता है तथा परोक्षतः 'नैषधीयचरितम्' के सम्वादों का भी। काव्यकला की दृष्टि से सामान्य होने पर भी अध्यात्म-प्रवणता के कारण इस कृति का महत्त्व अवश्य है।

केशव के चरितकाव्यों में 1591 ई. में रचित लघु 'रतनबावनी' में प्रख्यात वीरसिंहदेव के भाई रतनसेन के मुगलों से युद्ध का सुन्दर वर्णन किया गया है। 1607 ई. में समाप्त 33 'प्रकाशों' में निबद्ध वीरसिंहदेवचरित एक विशुद्ध ऐतिहासिक काव्य है। इसका रचना-शिल्प दान, लोभ तथा विन्ध्यवासिनी देवी के सम्वादों के रूप में द्रष्टव्य है। इस काव्य में दान-लोभ-सम्वाद, वीरसिंहदेव-वंशवर्णन, मधुकरशाह-पुत्रों के अनेक युद्ध, वीरसिंह देव के अकबर से युद्ध, वीरसिंहदेव द्वारा अकबर के प्रियतर मित्र एवं आश्रित अबुल फ़ज्जल का सलीम (जहाँगीर) द्वारा प्रेरित वध, वीरसिंह देव का सम्पूर्ण ओरछा राज्य का अधिपति बनना तथा उनके ऐश्वर्य, क्रीड़ाकलाप, सुखभोग तथा अन्ततः राजनीति-निरूपण का विस्तार-से वर्णन प्राप्त होता है। यदि कोई वीरसिंहदेवचरित को महाकाव्य कहे तो कह सकता है। 1612 ई. में जहाँगीर के ओरछा-आगमन के अवसर पर प्रस्तुत जहाँगीर-जस-चन्द्रिका केवल पैंतीस दिनों में रचा गया काव्य है। इस काव्य में कल्पना का अतिरेक दृष्टिगोचर होता है। उद्यम एवं भाग्य का वाद-विवाद, निर्णयार्थ शिव के पास जाना, शिव का जहाँगीर के पास भेजना, दोनों का राजधानी आगरे पहुँचना तथा वहाँ के वैभव को देखकर चकित होना, जहाँगीर द्वारा दोनों को समान रूप से महत्वाशाली घोषित करना तथा दोनों का सन्तुष्ट होकर बादशाह-यशगान करना शिल्प के कौशल को प्रकट करते हैं। घोर नियतिवादी युग में केशव का उद्यम-मंडन उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण का सूचक है। व्यक्तिगत जीवन में भी केशवदास जात-पाँत, हिन्दू-मुस्लिम इत्यादि की संकीर्णता से मुक्त थे। 'केशव के चरितकाव्य', 'केशव के चरितकाव्यों में इतिहास की विवृत्ति', 'केशव के चरितकाव्यों में उनका व्यक्तित्व' इत्यादि नानास्तरीय शोध के सुन्दर विषय हैं। खेद है कि केशवदास के उल्लेखनीय ही नहीं प्रत्युत उत्कृष्ट चरितकाव्यों की उपेक्षा उनके समग्र कवि-व्यक्तित्व की उपेक्षा की तुलना में भी अधिक हुई है। उनके चरितकाव्य कला, शिल्प एवं इतिहास के त्रित् में अनुपम हैं। केशवदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ चरितकाव्यकार हैं। उन पर आश्रयदाता-स्तुतिगान का आरोप व्यर्थ है क्योंकि रतनसेन, वीरसिंहदेव, जहाँगीर इत्यादि साधारण व्यक्ति न थे। आधुनिक कवियों ने विक्टोरिया (भारतेन्दु, शिवसिंह, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, शुक्ल इत्यादि), पंचम जॉर्ज (मैथिलीशरण गुप्त), एडवर्ड अष्टम (निराला), नेहरू (पंत, नीरज, अन्य) इत्यादि का जयगान किया गया है। रवीन्द्र ने प्रिंस ऑफ वेल्स (ब्रिटिश युवराज) की स्तुति 'जन-गण-मन अधिनायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता' लिखा था।

हिन्दी-कविता में यथार्थ एवं प्रयोग की दृष्टियों से केशवदास की समता कोई नहीं कर सकता। 'वीरसिंहदेवचरित' और 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' से लेकर 'विज्ञानगीता' तक उनके अनेक शिल्पविधान सर्वथा उल्लेखनीय हैं। 'रामचन्द्रिका' का छन्द-प्रयोग भी अपने-आप में सर्वथा विलक्षण है। अज्ञेय के प्रयोगों में केशव के प्रयोगों की गरिमा कहाँ? यहाँ में महाकवि केशवदास और कवि अज्ञेय की तुलना नहीं कर रहा क्योंकि ऐसी तुलना अध्येता कभी नहीं कर सकता। केवल परिसीमित मौलिकता किन्तु स्फीत प्रयोगधर्मिता में ही दोनों के नाम साथ-साथ लिए जा सकते हैं।

यद्यपि पं. कृष्णशंकर शुक्ल कृत 'केशव की काव्यकला', पं. चन्द्रबली पाण्डेय कृत 'केशवदास' एवं पण्डित हीरालाल दीक्षित कृत 'आचार्य केशवदास' जैसे ग्रन्थों में शुक्ल के केशव-अन्वयाय का दबा-दबा विरोध किया गया है तथा परम-केशव-प्रेमी आ. जगन्नाथ तिवारी की प्रेरणा से इन सब पर आधृत डॉ. विजयपाल सिंह ने भी ठीक-ठाक परिश्रम किया है, तथापि प्रतिभा

के धनी, काल-प्रवर्तक एवं काल-नायक महाकवि केशवदास का सम्यक् आकलन अभी तक शेष ही है। भगवानदीन 'दीन' ने 'रामचन्द्रिका' की टीका द्वारा 'कठिन काव्य का प्रेत' वाला हौवा तोड़ा तथा विश्वनाथप्रसाद मिश्र एवं डॉ. किशोरीलाल (डॉ. किशोरीलाल गुप्त से भिन्न) ने अन्य ग्रन्थों के सुबोध सम्पादन किए। किन्तु टीका-सम्पादन-कार्य भी बिना तद्वत् आलोचना के समग्रतः फलीभूत नहीं हो पाया।

अपने नाना-आयामी सृजन, अपने नवकालोद्घाटन, अपने नवप्रयोगों एवं अपने सुदीर्घ-सुस्फीत प्रभाव के कारण केशवदास को तुलसीदास एवं सूर के अनन्तर हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि मानना सर्वथा समीचीन है। जन-मानस ने इस समीचीनता को सदैव मान्यता भी प्रदान की है। जायसी के पास केशव की युग-चिर-संपृक्तकारी स्फीति कहाँ है, समसामयिक एवं परवर्ती प्रभाव की परम्परा कहाँ है, व्यापक जनमान्यता कहाँ है, जीवन्त प्रवृत्ति कहाँ हैं, रचना-विविधता कहाँ है, छन्द-वैभव कहाँ है, अलंकरण-विभूति कहाँ है? विहारी, भूषण, देव, पद्माकर, रत्नाकर इत्यादि तो केशव-कृतज्ञ कवि हैं ही! प्रसाद में केशव की बहुरंगी कविप्रतिभा कहाँ, स्फीत प्रभाव कहाँ, जनजीवन-प्रवेश कहाँ? हिन्दी के मिल्टन के साथ जो अन्याय हो गया, वह खेदजनक है। अब उसे न्यायोचित रूप से पुनर्प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए।

अमरेश¹

तुलसी और अकबर के समकालीन माने जानेवाले किंतु वस्तुतः शास्त्रीयकाल के एक आरम्भिक शृंगारी कवि अमरेश (जन्म 1578 ई. रचनाकाल 1603 ई. से) के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं हो सका और न इनकी कोई रचना ही प्राप्त हो पाई है। किन्तु कालिदास के संकलन 'हज़ारा', गोकुलप्रसाद 'ब्रज' अथवा गोकुल कवि कृत 'दिविजय-भूषण', शिवसिंह कृत 'सरोज' एवं मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में इनके स्फुट छन्दकार होने की बानगियाँ मिलती हैं। मिश्रबन्धु ने इनकी कविता को 'मनोहर' मानते हुए इन्हें 'तोष कवि की श्रेणी में' रखा है तथा यह छन्द अवतरित किया है :

कसि कुच कंचुकी मैं, बिरचु बिमल हार, मालती के सुमन धरेई कुम्हिलाइगै ।
गोरी चारु चंदन बगारु घरसारु अब, दीपक जुग्यारु तम छिति पर छाइगे ॥
बारु धूप अगर अगारु धूप बैठी कहा, अमरेश तेरे आजु भूलि से सुभाइ गे ।
सरद सुहाई साँझ आई सेज साजु अस, कहत सुआ के औसु वाके बैन आइगे ॥

हेमविजय

संस्कृत के विद्वान् एवं कवि जैन मुनि हेमविजय (रचनाकाल 1610 ई. के आसपास) ने शास्त्रीयकाल के आरम्भ में अच्छी शृंगारप्रवण स्फुट कविता लिखी :

1. घनघोर घटा उनई जु नई इततें उततें चमकी बिजली ।
पियु रे पियु रे पपिहा बिल्लाति² जो मोर किगार करति मिली ॥
बिच बिन्दु परे दृग औंसु झरे धुनि धार अपार इसी निकली ।
मुनि हेम के साहिब देखन कूँ उग्रसेन लली सु अकेली चली ॥
2. कहि राजमती सुमती सखिमान कूँ एक खिनेक³ खरी रहु रे ।
सखि री सगरी अँगुरी मुहि वाहि करति बहुत इसी निहुरे ॥
अब ही तब ही कब ही जब ही यदुराय को जाय इसी कहु रे ।
मुनि हेम के साहिब नेमजी⁴ हो अब तो रन तें तुम क्यों बहुरे ॥

1. आधुनिक कवि एवं उपन्यासकार अमरेश बहादुर सिंह 'अमरेश' (रायबरेली जनपद) एवं अमरेश वैद्य (कानपुर) के नाम ध्यान में आ जाते हैं ।
2. असुंदर प्रयोग । अप्रयुक्तत्व दोष ।
3. एक खिनेक में पुनरुक्ति दोष ।
4. जैन तीर्थंकर नेमिनाथ जिन पर पर्याप्त काव्यरचना प्राप्त है ।

मंडन

सूर, केशव, मंडन, बिहारी, कालिदास, ब्रह्म¹, चिंतामणि, मतिराम, भूषण सु जानिए।
लीलाधर, सेनापति, निपट, नेवाज, निधि², नीलकंठ, मिश्र सुखदेव, देव मानिए।।
आलम, रहीम, रसखान, सुंदरादिक³, अनेकन सुमति भए कहाँ लौं बखानिए।
ब्रजभाषा हेत ब्रजबास ही न अनुमानौ, ऐसे ऐसे कबिन की बानी हूँ सो जानिए।।⁴ —भिखारीदास

जनकपचीसी, जानकीपचीसी, हनुमानाष्टक प्रभृति के यशस्वी रामकाव्यकार तथा रसविलास, रसरत्नावली, शिखनख, नयनपचासा, षड्भक्तुवर्णन प्रभृति के उत्कृष्ट शृंगाररसकवि एवं आचार्य मंडल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व⁵ सुस्पष्ट नहीं हो सका है। मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में 'पुरंदरमाया' के कवि मणिमंडन मिश्र को प्रसिद्ध आचार्य-कवि मंडन मान लिया है, यद्यपि पुरंदरमाया के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ इन्हीं के दिए हैं तथा जैतपुर⁶ (जनपद हमीरपुर, उत्तरप्रदेश) भी इन्हीं का दिया है। मणिमंडन मिश्र अन्य कवि हैं, जिनका श्रीकृष्णव्रजविहार, नवरसत्नाकर, रससमुद्र⁷, रामजसचंद्रिका⁸, रावणचरित्र इत्यादि ग्यारह ग्रन्थ बताए जाते हैं तथा जो प्रसिद्ध मंडन के सदृश ही आचार्य-कवि थे, रामकाव्यकार भी थे⁹। सम्भवतः इन मंडन एवं प्रसिद्ध मंडन के कृतित्व में वैसा ही गड़ुमगड़ु हो गया है जैसा असनी के ठाकुर प्रथम एवं ठाकुर द्वितीय¹⁰ तथा बुंदेलखंड के ठाकुर तृतीय¹¹ के कृतित्व में हुआ है। आ. रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 'विनोद' के विवरण का प्रायः सर्वत्रवत् प्रशस्य संक्षेपण करते हुए भी मणिमंडन मिश्र एवं पुरंदरमाया का उल्लेख नहीं किया तथा इनके एक आश्रयदाता अंगदराय का अंगदसिंह (मंगदसिंह) मुद्रण-त्रुटि लगती है, जो शुक्ल के इतिहास में बहुत हैं, किन्तु यदि मंगदसिंह लिखा है तो निरर्थक है) के रूप में उल्लेख किया है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि संपादित 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में पुरंदरमाया का इनकी कृति के रूप में उल्लेख 'विनोद' की त्रुटि के अनुकरण का परिणाम है तथा इसका, 'मिश्रबन्धु इनको तुलसी का समकालीन मानते हैं' का आधार 'विनोद' में नहीं मिलता। शिवसिंह ने 'सरोज' में इनका उपस्थितिकाल 1659 ई. (1602 वि.) माना है। मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में 1633 ई. (1690 वि.) में उत्पन्न बताया है। आ. शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 1659 ई. (1602 वि.) में उक्त अंगदसिंह के 'दरबार में वर्तमान' लिखकर शिवसिंह का अनुकरण किया है, जो मिश्रबन्धु की जन्मतिथि के विरुद्ध भी नहीं है। डॉ. देवेन्द्र ने 'हिन्दी रीतिकाव्य के परिप्रेक्ष्य में कवि मण्डन का अध्ययन' में 1583 ई. (1640 वि.) का अनुमान लगाया है। मंडन ने रहीम और उनके पुत्र दाराब खाँ का उल्लेख किया है। रहीम का जन्म बृहस्पतिवार 17 दिसम्बर, 1556 ई. को हुआ था तथा देहान्त 1627 ई. में। इसी साल जहाँगीर भी मरा था। दाराब खाँ का कल महाबत खाँ ने रहीम की जीवन-सन्ध्या में ही करा दिया था। रहीम एवं दाराब खाँ की प्रशंसा के छन्द अच्छे हैं। अतः मंडन ने यदि इन्हें 1610 ई. (रहीम के पतन को देखते) के आसपास लिखा हो तो जन्मकाल 1583 ई. के आसपास मानना ही युक्तियुक्त है। शिवसिंह का उपस्थितिकाल 1659 ई. मानना अस्पष्ट तथा मिश्रबन्धु का उत्पत्तिकाल 1633 ई. बताना गलत लगता है। डॉ. देवेन्द्र ने मंडन के आश्रयदाताओं में शाह आलम (जो 1764 ई. में बक्सर¹² की लड़ाई में बंगाल के नवाब

1. बीरबल का उपनाम।
2. तोषनिधि? तोष?
3. सुंदर कवि (संत सुंदरदास नहीं)
4. भिखारीदास ने तुलसी की ब्रजभाषा को आदर्श नहीं माना, अतः उनका उल्लेख नहीं किया। यों, कहीं-कहीं "सूर, तुलसी, केशव, बिहारी..." पाठ सुनाई पड़ता है, क्योंकि तुलसी महाकवि थे और पाठक उनकी अनुपस्थिति नहीं चाहते।
5. मण्डन-ग्रन्थावली (सम्पादक डॉ. देवेन्द्र) के प्रकाशन से इस श्रेष्ठ कवि के कृतित्व के दर्शन सुलभ हो गए हैं (यद्यपि निर्विवादतः नहीं), किन्तु व्यक्तित्व डॉ. देवेन्द्र के ही 'हिन्दी रीतिकाव्य कविता के परिप्रेक्ष्य में कवि मण्डन का अध्ययन' शोधग्रन्थ के बावजूद स्पष्ट नहीं हो पाया।
6. जैतपुर कई हैं, कई जनपदों में हैं।
7. सुखदेव मिश्र के 'रसांजव' का स्मरण आता है।
8. केशवदास की 'रामचन्द्रिका' की पद्धति पर।
9. हिन्दी-साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग 7, सं. डॉ. भगीरथ मिश्र) में इन पर प्रकाश डाला गया है।
10. असनी के ठाकुर (प्राचीन) एवं ठाकुर द्वितीय भट्ट थे। असली में अब भट्टों का जोर है।
11. ठाकुर तृतीय (बुंदेलखण्डी) कायस्थ थे। 'ठाकुर-ठसक' (सं. भगवानदीन 'दीन') इन्हीं पर है। किन्तु छंद असली के ठाकुर प्रथम एवं ठाकुर द्वितीय के भी आ गए हैं। मिश्रबन्धु ठाकुर द्वितीय को श्रेष्ठतर मानते हैं।
12. गंगातट पर ही एक बक्सर उन्नाव जनपद (उ. प्र.) में भी है जहाँ 'सरस्वती' के एक सम्पादक पं. देवीदत्त शुक्ल उत्पन्न हुए थे—पास ही उनके गुरु महान् आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी का दौलतपुर (रायबरेली) है।

और अवध के नवाब वजीर के साथ अंग्रेजों से हारा, 1788 ई. में फिर दिल्ली में गुलाम कादिर द्वारा पदच्युत और अंधा किया गया यद्यपि महादजी सिंधिया ने फिर से गद्दी पर बैठा दिया, जिसका उत्तराधिकारी अकबर द्वितीय 1806 ई. में नामनिहाल बादशाह बना) का उल्लेख किया है, जो बिना किसी ननु-नच के एककदम गलत ही हो सकता है। रहीम और शाह आलम के समय में बहुत अधिक अन्तर है। डॉ. देवेन्द्र के अनुसार मंडन जयगोपाल वाजपेयी के पिता थे। यद्यपि आस्पद बदलते थे—शुक्लों के वंशधर सुखदेव मिश्र थे, पांडेयों के वंशधर तानसेन मिश्र थे (मुसलमान बनने से पहले) किन्तु मंडन का वाजपेयी होना विवादास्पद ही है।

मंडन का जन्म जैतपुर (हमीरपुर) में 1580 ई. के आसपास हुआ तथा वे शृंगार रस के एक सिद्ध-प्रसिद्ध कवि थे। यत्र-तत्र सह्य अश्लीलता के हल्के स्पर्श ने उनकी कविता का रंग बिगाड़ा नहीं। उन्होंने खरी-निखरी ब्रजभाषा में कवित्त, सवैये, फाग, पद इत्यादि रचे। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. अलि! हौं तौ गई जमुना जल को सु कहा कहौं वीर! विपत्ति परी।
घहराय कै कारी घटा उनई इतने ही मैं गागरि सीस धरी॥
रपट्यो पग घाट चढ़यो न गयो कबि मंडन हवै कै बिहाल गिरी।
चिरजीव रहै नंद को वारो गहि बाँह गरीब न ठाढ़ी करी॥
2. खेलन को रस छाँड़ि दियो दिन द्वैक ते राति कहाँ बसती हो।
मंडन अंग संहारन को नित चंदन केसर लै घँसती हो॥
छाती निहारि-निहारि कछू अपनी अँगिया की तनी कसती हो।
तो तन को अचरा उघरो कहो मो तन ताकि कहा हँसती हो॥

मुबारक

‘तिलशतक’ एवं ‘अलकशतक’ के सिद्ध-प्रसिद्ध शृंगारी कवि मुबारक (जन्मवर्ष 1583 ई.) इन प्रकाशित दोहा-ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक कवित्त एवं सवैयों के रचयिता भी थे जो जनता की रसना ने जीवित रखे हैं। इनका पूरा नाम सैयाद मुबारकअली बिलग्रामी है। उत्तर प्रदेश के हरदोई जनपद में स्थित बिलग्राम विद्वानों एवं कवियों के लिए आज तक प्रसिद्ध है। यह वहीं के रत्न थे। मिश्रबन्धु के अनुसार “यह महाशय अरबी, फ़ारसी तथा संस्कृत के बड़े विद्वान थे” थे। इनकी अतिशयोक्तियाँ बिहारी तक को प्रभावित करती लगती हैं। मिश्रबन्धु ने इन्हें ‘पद्माकर की श्रेणी’ में ठीक ही रखा है। आयामों की संकीर्णता के बावजूद इनकी कविता मनोहारी है तथा इनकी अरबी-फ़ारसी-शब्दमिश्रित ब्रजभाषा बहुत ही साफ-सुथरी है :

1. सब जग पेरत तिलन को थक्यो चित्त यह हेरि।
तब कपोल को एक तिल सब जग डार्यो पेरि॥
अलक मुबारक तिय बदन लटकि परी यों साफ़।
खुशनसीब मुंशी मदन लिख्यो काँच पर काफ़¹॥
परी मुबारक तिय बदन अलक ओप असि होय।
मनो चंद की गोद में रही निसा सी सोय॥
चिबुक कूप में मन पर्यो छबि जल तृषा बिचारि।
कढ़ति मुबारक ताहि तिय अलक डोरि सी डारि॥
2. कान्हा की बाँकी चितौनि चुभी, झुकि काल्हि ही झाँकी है ग्वाल गवाछनि।
देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि ओछे फिरैं उभरैं चित जा छनि॥
मारेई जाति निहारे मुबारक ये सहजै कजरारे मृगाछनि।
सींक लै काजर दे री गवाँरिनि! आँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि॥³

1. संवत् 1610 (आ. शुक्ल के अनुसार)।

2. उर्दू-वर्णमाला का वह वर्ण जो अलक की लट जैसा होता है।

3. पाठांतर : “काजर दे जनि ऐ री सुहागिनि....”

पुहकर कवि

दाऊद, कुत्बन, जायसी, मंझन इत्यादि मुसलमान सूफ़ी कवियों ने लोककथामूलक एवं उस्मान इत्यादि मुसलमान सूफ़ी कवियों ने कल्पनामूलक प्रेमाख्यानकाव्य रचे थे; किन्तु हिन्दू कवियों ने विदेशी (ईरान की फ़ारसी-भाषागत) मसनवी-शैली को सम्भवतः इसलिए नहीं अपनाया कि उसमें मोहम्मद एवं शाहेवक्त की स्तुति आवश्यक थी तथा मोहम्मद के अनुयायी न होने पर नरक का 'प्रावधान' था। पुहकर ('पुष्कर' का तद्भव-रूप) कवि का ऐतिहासिक महत्त्व इसलिए है कि इन्होंने फ़ारसी-प्रबन्धकाव्य मसनवी-शैली से मुक्त रहकर भारतीय प्रबन्धकाव्य-शैली में 'रसरतन' (1616 ई.) की रचना की, जो कल्पनामूलक होने के कारण भी उल्लेखनीय है। रंभावती एवं सूरकुमार¹ की कल्पित प्रेमकथा दोहा-चौपाई-प्रधान बहुवृत्तीय सज्जा से पूर्ण है, जिनकी भाषा यत्र-तत्र अपभ्रंश शैली में रुचि के बावजूद प्रायः ब्रज हैं। "2766 छन्दों एवं 556 पृष्ठों"² के इस स्फीत-प्रबन्धकाव्य की रचना संतोषजनक है। इसमें पारम्परिक नखशिख, षड्भक्त, पूर्वराग इत्यादि का प्रभावी समावेश किया गया है। इनके 'नखशिख' ग्रन्थ की चर्चा भी हुई है।

पुहकर कवि परतापपुर, जनपद मैनपुरी (उ. प्र.) के निवासी थे, जो भूमिगाँव, सोमनाथजी के निकट (गुजरात) रहते समय किसी कारण से आगरा के कारागार में बन्दी के रूप में डाल दिए गए। कारागार में पुहकर कवि ने 'रसरतन' रचा, जिससे प्रसन्न होकर जहाँगीर ने इन्हें मुक्त कर दिया। कारागार में काव्यरचना करनेवाले हिन्दी-कवियों में मुंज, पुहकर कवि, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन इत्यादि अग्रगण्य हैं। 'कारागार में रचित हिन्दी-कविता' शोध का एक रोचक विषय है। कारागार से कृष्ण, तिलक इत्यादि भारतीय तथा वेन जॉन्सन, क्रिस्टोफर स्मार्ट, ओ'हेनरी, एज़ा पॉण्ड इत्यादि पाश्चात्य महानुभावों का सम्बन्ध एक अच्छे निबन्ध का विषय है।

'विनोद' एवं तदाधृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' से पुहकर कवि की कविता की दो बानगियाँ पेश हैं :

1. चले मत्त मैमंत झूमंत मत्ता। मनौ बदला स्याम साथै चलता।
बनी बागरी रूप राजंत दंता। मनौ बग आषाढ़ पाँतें उदंता।।
लसै पीत लालें, सुदालें ढलकैं। मनौ चंचला चौंधि छाया छलकैं।।
2. चंद की उजारी प्यारी नैनन तिहारे परै, चंद की कला मैं दुति दूनी दरसानि है।
ललित लतानि मैं लता-सी गहि सुकुमारी, मालती-सी फूलै जब मुदु मुसुकाति है।।
पुहकर कहै जित देखिए बिराजै तित, परम बिचित्र चारु चित्र मिलि जाति है।
आवै मन माहिं तब रहै मन ही मैं गड़ि, नैननि बिलोके बाल बैननि समाति है।³

इब्राहीम आदिलशाह

बीजापुर के सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह (1580-1626 ई.) का 57 गीतों का 'नवरस' राग-रागिनियों एवं रसों का निरूपण करनेवाला स्मरणीय ग्रन्थ है, जिसकी हिन्दी आज भी तरौताजा लगती है :

1. आसावरी स्त्री गौरी चंपक सार।
रक्त पीतांबर, कंचुकी नील⁴ शृंगार।।
2. एक नार देख्या खड़ी सामने।
पूनम रात की मकर चौंदनी।।
या झूम के मेघऋत सौदामिनी।
बहु रूप खेले कामिनी।।
ना मैं जानूँ तुरकन बर बामनी⁵।।

1. सूर (वैदिक संस्कृत एवं परवर्ती भी) = सूर्य।

2. विनोद।

3. उत्कृष्ट सौन्दर्य-चित्रण। "नैननि बिलोके बाल बैननि समाति है" मैं असंगति अलंकार का मनोहारी प्रयोग। 'स्थाली पुलाक न्याय' के अनुसार यह श्रेष्ठ छंद पुहकर को श्रेष्ठ कवि सिद्ध करता है।

4. राग आसावरी का मानवीकरण।

5. शृंगाररस का वर्ण नील है, देवता विष्णु हैं (नाट्यशास्त्र)।

6. श्रेष्ठ ब्राह्मणी। दक्षिण की ब्राह्मण-सुन्दरियों विख्यात हैं।

लीलाधर

सूदन एवं भिखारीदास द्वारा प्रख्यात कवियों के मध्य सम्मानित, 'नखशिख' (1619 ई. के आसपास) के प्रणेता लीलाधर जोधपुर-नरेश गजसिंह के आश्रित कवि थे। इनके छन्द गोकुल कवि के 'दिग्विजय-भूषण' में प्राप्त हैं। एक उदाहरण देखें :

1.

पावै जो परस ताको होत है सरस भाग,
पावन दरस जाकी जानो अनुसार है।
रमनीय वेखन की लीलाधर पेखन की,
ललित सुरेखन की प्रगटी प्रसार है।।
बहिक्रम बूढ़ी करि चिंता चित्त गूढ़ी करि,
रचनाऊ ढूँढ़ी विधि विविध बिचार है।
कथन कथे री लोक चौदहो मथे री, पर,
तेरी या हथेरी की न पाई अनुहार है।।

ताहिर

'कोकसार' (1621 ई.) के कवि ताहिर आगरा के निवासी थे, जिन्होंने विभिन्न नारी-वर्गों (पद्मिनी-चित्रिणी इत्यादि), कामासनों, वाजीकरण प्रभृति कामशास्त्रीय विन्दुओं पर प्रकाश डाला है। 'कोकसार' की कविता, मिश्रबन्धु के शब्दों में, "ललित, शांत और गम्भीर" है (फिर भी, इन्हें 'साधारण श्रेणी' में रखा गया है।) इनके 'गुणसागर' नामक अन्य ग्रन्थ की चर्चा भी की गई है। पद्मिनी-नायिका का वर्णन देखिए :

पदुम जाति जन पदुमिनि रानी। कंज सुवास, दुवादस - बानी^१॥
कंचन बरन, कमल कर^२ वासा^३। लोचन भँवर न छाँड़त पासा॥
अलप अहार, अलप मुखबानी। अलप काम, अति चतुर सयानी॥
सेत बसन औ सेत सिंगारा। सेत पुहुप, मोतिन के हारा॥
झीन बसन महँ झलकइ काया। जनु दरपन महँ दीपक छाया॥

सेन (कवि)

शिवसिंह कृत 'सरोज' में सेन कवि का समय 1560 विक्रमी (1503 ई.) लिखा है। मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में इसे शिरोधार्य न करते हुए "सेन का समय अनिश्चित है" की स्थापना की गई है, जो ठीक लगती है। मेरी समझ में, सेन कवि कृत निम्नलिखित घनाक्षरी शास्त्रीयकाल (1600-1800 ई.) की रचना है जैसा कि उनकी भाषा से भी स्पष्ट है, शैली से भी :

जब ते गोपाल मधुवन को सिधारो आली, मधुवन भयो मधु दानव विखम सों।
सेन कहै सारिका सिखंडी खंजरीट सुक मिलि कै करसे कीनो कालिंदी कदंब सों।।
जामिनी बरन यह जामिनी मैं जाम-जाम, बधिक की जुगति जनावै टेरी तम सों।
देह करै करज करेजो लियो चाहति है, काग भई कोयल कगायो करै हम सों।।

डॉ. जानकीनाथ सिंह 'मनोज' ने 'सरोज' के 1560 वि. को ज्यों-का-त्यों स्वीकार किया है, जबकि 'विनोद' जैसे पुराने ग्रन्थ तक में इसे अस्वीकार कर दिया गया है। उनका सेन कवि को 'प्रथम घनाक्षरी-लेखक' मानना निराधार है, क्योंकि कवि का समय

1. लालजी मिश्र ने भी 'कोकसार' (1794 ई.) रचा। इस विषय पर अनेक ग्रन्थ रचे गए।

2. एकदम खरा सोना। बारहबानी सोना : "कनक दुवादस बानि होइ चह सोहाग वह माँग।" (जायसी)

3. की।

4. सुवास, सुगंध, सुरभि।

निश्चित नहीं तथा रचना भाव, भाषा, शैली, सभी दृष्टियों से परवर्ती लगती है, जिस पर सेनापति का प्रभाव दृग्गत होता है। आश्चर्य है कि 'शर्वाणी' (अनूप शर्मा) की भूमिका में आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं 'हिन्दी में सवैया-साहित्य' शोधग्रन्थ में डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने 'मनोज' की इस 'खोज' को अनाप-शनाप महत्त्व दे डाला है। सेन कवि की अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं; वैसे, यह घनाक्षरी ठीकठाक है।

सेनापति

महाकवि सेनापति (1589-1649 ई.) अनूपशहर (जिला बुलंदशहर, उत्तरप्रदेश) के निवासी कान्यकुब्ज (दीक्षित) ब्राह्मण थे जिनका एकमात्र ग्रंथ 'कवित्त-रत्नाकर' श्लेष, शृंगार, षडक्रतु, रामायण एवं रामरसायन शीर्षक पाँच तरंगों तथा कुल तीन सौ चौरावने छन्दों में निबद्ध है। सेनापति श्लेष-सम्राट हैं—महत्तम स्तर पर रूपक-सम्राट तुलसीदास, महत्तर स्तर पर अनुप्रास-सम्राट केशवदास, समान स्तर पर विरोधाभास-सम्राट घनानन्द एवं उत्प्रेक्षा-सम्राट रत्नाकर का स्मरण हो जाता है। उनका सृजन अल्प है, किन्तु उसकी गुण-गरिमा महाकवि के उपयुक्त है। उनकी कोई अन्य कृति उपलब्ध नहीं है, यद्यपि 'काव्य-कल्पद्रुम' का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसको 'कवित्त-रत्नाकर' का ही दूसरा नाम भी जाना जाता है। इन्हें एवं संस्कृत-विद्वान् भट्ट नागेश दीक्षित को एक मानने वाले भी हो चुके हैं, यद्यपि यह मान्यता निराधार है। सेनापति को केशव के साथ-साथ पुनरुत्थानकाल एवं शास्त्रीयकाल का एक सेतु माना जा सकता है क्योंकि इन्होंने पुनरुत्थान-प्रतीक रामकाव्य एवं अन्यायामी भक्ति-काव्य की सशक्त रचना भी की है, शास्त्रीय-प्रतीक नखशिख-नायिकाभेदादि-अंगयुक्त शृंगारकाव्य का मनोहारी सृजन भी किया है। मिश्रबन्धु ने अपने महान् 'विनोद' के अलंकृतकाल के उद्घाटनकर्ता के रूप में सेनापति को ही प्रतिष्ठित किया है जो शुक्ल के अपने महान् 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के रीतिकाल के उद्घाटनकर्ता के रूप में चिन्तामणि को प्रतिष्ठित करने से अधिक समीचीन है, क्योंकि रस-अलंकार-छन्दादि पर अनेक ग्रन्थों के कर्ता आचार्य चिन्तामणि थोड़ा लिखनेवाले महाकवि सेनापति की तुलना में मौलिकता, अलंकरण, तेजस्विता एवं भाषा-वैभव के किसी भी बिन्दु की दृष्टि से नहीं खड़े किए जा सकते, किन्तु सृजन-वैराट्य, प्रभाव-वैराट्य एवं व्यक्तित्व-वैराट्य में शास्त्रीयकाल के वास्तविक उद्घाटनकर्ता महाकवि केशवदास ही सिद्ध होते हैं, जिनकी देव-प्रतिष्ठापन पक्षपातग्रस्त मिश्रबन्धु एवं अलंकृतकाव्य-विरोधी अहंग्रस्त शुक्ल ने साहित्य-सत्य-विरोधी एवं विगर्हणीय उपेक्षा की है। किन्तु आचार्य श्यामसुन्दर दास जैसे वरिष्ठ विद्वानों एवं डॉ. भगीरथ मिश्र जैसे अध्यवसायी शोधकर्ताओं ने केशव के साथ न्याय भी किया है। वैसे अपने-अपने स्तरों पर आचार्य शुक्ल के एक विद्रोही शिष्य तथा प्रख्यात आलोचक पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल एवं केशव-भक्त पण्डित जगन्नाथ तिवारी के शिष्य तथा परिश्रमी शोधकर्ता डॉ. विजयपालसिंह ने भी केशव की प्रशस्य रक्षा की है।

सेनापति एक प्रतिष्ठित वंश के रत्न थे, स्वयं एक उच्चकोटि के विद्वान् एवं कवि थे, जैसा कि स्वयं उनके ही इस छन्द से स्पष्ट होता है :

दीक्षित परशुराम दादा हैं बिदित नाम, जिन कीन्हें जज्ञ जाकी जग में बड़ाई है।

गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाके, गंगातीर बसति अनूप' जिन पाई है।¹

महाजिनमनि विद्यादान हूँ मैं चिन्तामणि हीरामनि दीक्षित तें पाई पंडिताई है।

सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी सब कवि कान दै सुनत कविताई हैं।।

सेनापति ने निजकाव्य प्रशस्ति में कई छन्द रचे हैं, जो उनके गौरव के अनुरूप हैं, तथा यदि उनमें गर्वोक्ति-आरोप भी किया जाए तो आचार्य शुक्ल को उद्धृत किया जा सकता है, "इनकी गर्वोक्तियाँ खटकती नहीं, उचित जान पड़ती हैं" :

1. राखति न दोषैं, पोषैं पिंगल के लच्छन कौं,
बुध कवि के जो उपकंठ ही बसति है।
जोए पद मन कौं हरष उपजावति है,
तजे को कनरसै जो छंद सरसति है।।

1. अनूपशहर, जिसके निकट स्थित चांदोख ग्राम में चतुरसेन शास्त्री का जन्म हुआ था।

2. मुझे लगता है, पण्डित गंगाधर दीक्षित को अनूपशहर दान में प्राप्त हुआ था (यद्यपि इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता)।

2.

अच्छर हैं विशद करति उषै आप सम,
जातैं जगत की जड़ताऊ बिनसति है।
मानौ छवि ताकी उदवत सविता की सेना-
पति कबि ताकी कबिताई विलसति है।¹
तुकन सहित भले फल कौं धरत सूधे,
दूर कौं चलत जे हैं धीर जिय ज्यारी के।
लागत विविध पछ सोहत हैं गुन संग,
स्रवन मिलत मूल कीरति उज्यारी के।
कोई सीस धुनै² जाके उर में चुभत नीके,
वेग विधि जात मन मोहैं नर नारी के।
सेनापति कबि के कबित बिलसत अति,
मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के।³

तेजस्वी व्यक्तित्व

मेरी समझ में सेनापति के पूर्वज मुगल सल्तनत द्वारा सम्मानित हुए थे, जैसा कि पिता गंगाधर के सन्दर्भ में 'गंगातीर' बसति अनूप जिन पाई है' से स्पष्ट होता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "जान पड़ता है कि मुसलमानी दरबारों में भी इनका अच्छा मान रहा, क्योंकि अपनी विरक्ति की झोंक में इन्होंने कहा है :

केतो करी कोइ, पैए करम लिखोई, तातैं दूसरी न होइ, उर सोइ ठहराइए।
आधी तैं सरस बीति गई है, वरस अब दुर्जन-दरस⁴ बीच रस न बढ़ाइए।।
चिन्ता अनुचित, धरु धीर उचित, सेनापति है सुचित रघुपति-गुन गाइए।
चारि⁵ बरदानि तजि पाँय कमलेछन के, पायक मलेछन के काहे को कहाइए।।⁶

महाकवि सेनापति ने म्लेच्छालोचना 'विरक्ति की झोंक' में नहीं की, जैसाकि भ्रमवश आचार्य शुक्ल ने लिख मारा है, अपितु यह जहाँगीर और शाहजहाँ के आचार की प्रतिक्रिया की पावन उद्भावना है—इस दिशा में जहाँगीर के शासनकाल में रचित तुलसी की कवितावली एवं दोहावली में 'भूमिचोर' का प्रत्याख्यान मननीय है। दूसरे, सेनापति एक उच्चकोटि के कवि भी हैं, और यह तथ्य उनकी कविता द्वारा ही प्रमाणित है। आचार्य शुक्ल केवल वेश-भूषा-पुष्ट साधु सन्तों को भक्त मानने के प्रतिक्रियावादी एवं कालातीत हठ के कारण ही सेनापति को अपने भक्तिकाल के फुटकल खाते में डालने की मनमानी कर गए

1. श्लेष एवं रूपक का महान् चमत्कार।

2. तानसेन की सूर-स्तुति याद आती है :

किधौं सूर कौ सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर।

किधौं सूर कौ पद लग्यौ, तन-मन धुनत शरीर।।

जिस पर सूर का महान् काव्योत्तर था :

विधना यह जिय जानिके सेषहि दिए न कान।

धरा-मेरु सब डोलतौ तानसेन की तान।।

3. पुनः श्लेष एवं रूपक का महान् चमत्कार। सेनापति में श्लेष अतीव सार्थक है।

4. संतन को कहा सीकरी सो काम?....

जिनके मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम।।—कुंभनदास

5. धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष।

6. भगति हेतु विधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई।।

रामचरित सर विनु अन्हवाएँ। सो सम जाय न कोटि उपाएँ।।—तुलसी

हैं। वैसे, भक्ति विराट् पुनरुत्थान-प्रक्रिया का एक अंग मात्र थी। आचार्य शुक्ल की फुटकलबाजी ने हिन्दी-साहित्य की अपार क्षति की है।

यद्यपि कृतित्व की परिसीमा एवं उसमें भी क्लिष्टता के व्यवधान विद्यमान हैं, तथापि सेनापति का स्मरण उच्च श्रेणी में करना ही उचित प्रतीत होता है, तथा व्यक्तित्व की गरिमा एवं उसमें भी हिन्दुत्व-निष्ठा के कारण वे भूषण के अनन्तर शास्त्रीयकाल के अप्रतिम महापुरुष-महाकवि प्रमाणित होते हैं। उनकी मौलिकता भी मनोहारिणी है। उनका कवि-गौरव मिश्रबन्धु कृत 'हिन्दी नवरत्न' की भूमिका में भी उजागर हुआ है, भले ही वे उसके 'एक महाकवि' के रूप में उल्लिखित-विवेचित न किए गए हों, "यह विचार उठा कि पाँच परमोत्कृष्ट कवियों को लेकर, संस्कृत-कवि पंचक की भांति, भाषा-कवि-पंचक नाम का एक ग्रन्थ हम भी लिखें। उसमें सूर, तुलसी, देव, बिहारी और केशवदास के नाम रखने पर विचार हुआ। फिर भूषण की कविता का चमत्कार जब ध्यान में आया, तब उनको छोड़ देना अनुचित जान पड़ने लगा, और भाषा-कवि-षट्क लिखने का विचार उठा। पीछे से सेनापति की कविता में ऐसा अनूठापन देख पड़ा, और वह ऐसी अच्छी समझ पड़ी कि उनका भी नाम मिलाकर कवि-सप्तक बनाने का संकल्प हुआ। अनन्तर भारतेन्दु तथा चन्द की रचनाएँ भी उत्कृष्ट तथा परम मनोहर देख पड़ीं। इस प्रकार हिन्दी-नवरत्न का नाम ध्यान में आया, और इसी नाम से प्रस्तुत ग्रन्थ बनाने का दृढ संकल्प हुआ। पीछे से जायसी की कविता बहुत बढ़िया समझ पड़ी और सेनापति के स्थान पर उनका नाम रखने का विचार हुआ; किन्तु अन्त को, उसे कई बार ध्यान से पढ़ने पर, उनका चमत्कार कुछ फीका जँचा, और जायसी का स्थान तोष कवि की श्रेणी में समझ पड़ा। यह पद्माकर की श्रेणी से नीचे है। सबसे पहले मतिराम की श्रेणी थी, फिर दास की, और तब पद्माकर की। तोष की श्रेणी के नीचे साधारण श्रेणी है। धीरे-धीरे यह समझ पड़ा कि सेनापति की कविता परम अनूठी एवं विशद होने पर भी मतिराम कृत रचना की समता नहीं कर सकती। इस विचार से मतिराम की श्रेणी को सेनापति की श्रेणी बना दिया, और नवरत्न में नव कवियों की स्थिति हुई। अनन्तर कबीरदास को भी नवरत्न में लेना ठीक जँचा, किन्तु किसी को निकाल डालना उचित न जान कर भूषण और मतिराम को त्रिपाठी-बन्धु कहकर नवरत्न नाम सार्थक रखा।" इस ऊहापोह से मिश्रबन्धु के अध्यवसाय, विकासशील दृष्टिकोण एवं उनकी पूर्वाग्रहविहीन उदारता का बोध होता है, किन्तु इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वे परम्परावादी-अलंकारवादी-चमत्कारवादी आलोचक थे, क्योंकि जायसी के प्रति उनके विचार सर्वथा संकीर्ण हैं, क्योंकि जायसी प्रथम श्रेणी के महाकवि हैं, भले ही आचार्य शुक्ल ने उनकी, सम्भवतः मिश्रबन्धुजन्य उपेक्षा की प्रतिक्रिया में, अत्यधिक स्तुति कर डाली हो। मिश्रबन्धु का महान् आलोचक-रूप उनके परम्परावादी-अलंकारवादी सिद्धान्तों से आहत हुआ है, आचार्य शुक्ल का महान् आलोचक-रूप उनके शास्त्रवादी-लोकमंगलवादी सिद्धान्तों से। आलोचना का सहज-स्वस्थ-स्वच्छ वस्तुवादी रूप इन 'दो' महान् आलोचकों के कृतित्व में विवृत नहीं हो पाया।

गौरवशाली कृतित्व

महाकवि सेनापति का कृतित्व निस्सन्देह गौरवशाली है। सीमित परिमाण में भी उन्होंने अनेक विषयों का स्पर्श किया है और सभी में उच्चस्तरीय गुणवत्ता का परिचय दिया है। नखशिख एवं नायिकाभेद में उन्हें अच्छी सफलता मिली है। शृंगाररस के कवियों में उनकी गणना है। एक उदाहरण प्रस्तुत है जो गौरवशाली ब्रजभाषा एवं गौरवशाली अलंकरण के साथ गौरवशाली भाव व्यक्त करता है :

नूपुर को झनकाइ मेदिनी धरति पाइ, ठाढ़ी आइ आँगन भई ही साँझ बार सी।

करता अनूप कीन्हीं रानी मैं भूप की सी, राजि राशि रूप की विलास को आधार सी।।

सेनापति जाके हक दूत है मिलत दौरि, कहत अधीनता को होत है सिपारसी।

गेह को सिंगार सी सूरत सुख सार सी, सो प्यारी मानो आरसी चुभी है चित आर सी।।

सेनापति का ऋतुवर्णन उच्चकोटि का है, जिसने परवर्ती कवियों को पर्याप्त प्रभावित किया है। डॉ. भगीरथ मिश्र के शब्दों में, "सेनापति की अप्रतिम सफलता उनके ऋतुवर्णन में है।" उनका षड्ऋतु-वर्णन बहुत उत्कृष्ट है जो केवल अलंकरण एवं नाद सौन्दर्यसम्पन्न ब्रजभाषा की अनूठी बानगी ही नहीं देता अपितु विशद बिम्बालेखन भी प्रस्तुत करता है। उनका वर्षा-वर्णन तो अद्वितीय ही है :

1. वसन्त या ऋतुराज (मधु-माधव = चैत्र-वैशाख), ग्रीष्म या निदाघ (ज्येष्ठ-आषाढ़), वर्षा या पावस (श्रावण-भाद्रपद), शरद (आश्विन-कार्तिक), हेमन्त (मार्गशीर्ष-पौष) एवं शिशिर या पतझर (माघ-फाल्गुन)।

1. दूरि जदुराई, सेनापति सुखदाई देखी, आई रितु पावस, न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधर की सुनति धुनि धर की है, दर की सोहागिल की छोह भरी छतियाँ।।
आई सुधि वर की हिए में आनि खरकी तू, मेरी प्रान प्यारी यह पीतम की वतियाँ।
वीती औधि आवन की, लाल मनभावन की, डग भई वावन की सावन की रतियाँ।।
2. सेनापति उनए नए जलद सावन के, चारि हू दिसान घुमरत भरे तोड़ कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात काहू भाँति, आने है पहार मानों काजर के ढोड़ कै।।
घन सौं गगन छयौं, तिमिर सघन भयौ, देखि न परत मानों रवि गयौं खोड़ कै।
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि, मेरे जान याही तैं रहत हरि सोड़ कै।।

सेनापति की समाज-दृष्टि प्रगतिशील एवं उपादेय है। इस दृष्टि से वे तुलसी से प्रभावित हुए होंगे। देव, बिहारी इत्यादि पर उसका प्रभाव देखा जा सकता है। “कहने के लिए गोस्वामी” किन्तु करने के लिए भिक्षावृत्ति” वे प्रत्याख्यान करते हैं :

गीतहिं सुनावैं तिलकन झलकावैं भुज मूलन छपावैं द्वारका हू के पयान ही।
वैसनव भेष, भगतन की कमाई खाहिं, सेवैं हरि साहिवै न साँच है निदान ही।
देखि कै लीवास नीची सवनि की नारि होति, मोहि कै बिकच करैं मन धन ध्यान ही।
सेनापति सुमति विचारि देखैं भली भाँति, कलि के गोसाईं मानों मँगना समान ही।।

बिंशद भक्तिभावना

सेनापति राम के प्रमुख भक्तों में परिगणित किए जाने योग्य हैं। हिन्दी रामकाव्य में वे तुलसी, केशव एवं मैथिलीशरण के बाद सबसे बड़े कवि के रूप में समादृत किए जा सकते हैं। अंगद पर उन्होंने अच्छी कवित्त-रचना की है। अधिकांश हिन्दुओं तथा प्रायः सभी कवियों के सदृश उनकी भक्ति-भावना अतीव उदार है, जिसमें कृष्ण, शिव, गंगा, काशी इत्यादि भी समाहित हैं। भक्ति की इस उदारता के दर्शन ऋग्वेद पुराण, कालिदास, विद्यापति, सूर, तुलसी इत्यादि में भी होते हैं। सूरदास, परमानन्ददास, नंददास, तुलसीदास इत्यादि के प्रिय भ्रमरगीत को भी उन्होंने सम्मान प्रदान किया है। सेनापति के भक्तिकाव्य में भावना एवं कला का मणिकांचनयोग प्राप्त होता है।

1. व्यापी देश-देस बिस्व कीरति उज्यारी-जाकी। सीतै संग लीने जामैं केवल सुधाई है।
सुर नर मुनि जाके दरस कौ तरसत, राखत न खर तेजै कला की निकाई है।।
करन के जोर जीति लेत है निसा कलकै सेवक हैं तारे ताकी गिनती न पाई है।
राजा रामचन्द्र अरु पून्यौं कौं उदित चन्द सेनापति बरनी दुहू की समताई है।।
2. सुरतरु सार की, सँवारी है विरंचि पचि, कंचन खचित चिंतामनि के जराइ की।
रानी कमला कौं पिय-आगम कहनहारी, सुरसरि-सखी, सुख-दैनी, प्रभु-पाइ की।।
वेद मैं बखानी, तीनि लोकनि की ठकुरानी, सब जग जानी, सेनापति के सहाइ की।
देव-दुख-दंडन, भरत-सिर-मंडन, वे बंदौं अघ-खंडन खराऊँ रघुराइ की।।²
3. कीनौ बालापन बालकैलि मैं मगन मन, लीनौ तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं।
अब तू जरा मैं पर्यो मोह पीजरा मैं, सेनापति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं।।
चितहिं चिताउ, भूलि काहू न सताउ, आउ लोहे कैसी ताउ, न बचाउ है सरीर कौं।
लेह देह करि कै, पुनीत करि लेह देह, जीभै अवलेह देह सुरसरि नीर कौं।।

हिन्दी के प्रथम साहित्येतिहासकार ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने अपने अमर ग्रन्थ ‘सरोज’ में लिखा है कि सेनापति ने अपने जीवन की संध्या के आसपास क्षेत्र-सन्यास ले लिया था। उनकी रामभक्ति हो या कृष्णभक्ति या अन्य भक्ति, वह विरक्तिपुष्ट थी, कोरी भक्ति न थी। उनकी कृष्ण-भक्ति-कविता अनूठी तन्मयता से आपूर्ण है :

1. गोधनस्वामी। गो = इन्द्रिय-स्वामी, जितेन्द्रिय, जिन।
2. रामचरणपादुका-चन्दना का यह छन्द एक महान् रचना है।

1. सारंग धुनि सुनावै, घन रस बरसावै, मोर मन हरषावै, अति अभिराम है।
जीवन अधार, बड़ी गरज करनहार, तपति हरनहार, देत मन काम है।।
सीतल सुभग जाकी छाया जग सेनापति पावत अधिक तन मन विसराम है।
सपै संग लीने सम्मुख तेरे बरसाऊ, आयौ घनस्याम लखि मानौं घनस्याम है।।
2. महा मोह कंदनि में, जगत जकंदनि में, दिन दुख दंदनि में जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है, कलेस सब भाँतिन को, सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै।।
आवै मन ऐसी घरवार परिवार तजौं, डारौं लोकलाज के समाज विसराय कै।
हरिजन पुंजनि में, वृंदावन कुंजनि में, रहौं बैठि कहूँ तरुवर-तर जाय कै।।

सेनापति की समन्वित भक्ति का प्रतीक प्रस्तुत छन्द राम, कृष्ण, शिव, गंगा, काशी, रामेश्वरम् सबको समाहित करने में इतना अधिक सफल है कि ऋग्वेद के “एकं सद् विप्र बहुधा वदन्ति”, “एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति”, एवं “एको विश्वस्य भुवनस्य राजा” का स्मरण अनायास ही आता है—इस छन्द में वाराणसी (वरुणा एवं असी नदियों के मध्य का वह नगर-भाग जो वैदिक राजा काश या काश्य = प्रकाश के राज्य काशी की राजधानी था) का वारा (दारा या नारी) नासी (नाशक) अर्थात् वासनाविनाशक अर्थ सेनापति की सृजनात्मक प्रतिभा का सूचक है :

गंगा तीरथ के तीर, थके से रहौ जू गिरि, कै रहौ जू गिरि चित्रकूट कुटी छाड़ कै।
जातै दारा नसी, वास तातैं वाराणसी, किधौं लुंज है कै वृंदावन कुंज बैठ जाइ कै।।
भयो सेतु अंध, तू हिए कौं हेतु बंध जाइ, धाड़ सेतुबंध के धनी सौं चित लाइ कै।
बसौ कंदरा मैं, भजौ खाइ कंद रामैं, सेनापति मंद, यामैं मति सोचौ अकुलाइ कै।।

सुंदर

‘सुंदर-शृंगार’ (1631 ई.) के ललित शृंगार-कवि सुंदर ग्वालियर के निवासी थे, जिन्हें शाहजहाँ (राज्यकाल 1627-58 ई.) ने पहले कविराय एवं बाद में महाकविराय की उपाधियाँ दीं जैसाकि इस ग्रन्थ से स्पष्ट है। सुन्दर-शृंगार नायिकाभेद का उत्कृष्ट ग्रन्थ है जिसमें हावों, भावों, कामदशाओं इत्यादि का अलंकृत चित्रण सुंदर ब्रजभाषा में हुआ है तथा नायक के स्थान पर कहीं कृष्ण तो कहीं शाहजहाँ की विलक्षण प्रतिष्ठा की गई है² (कवि ने चाटुकारिता की सीमा का स्पर्श कर लिया है)। सुंदर के यमक-प्रयोग आयासकरी-कला के द्योतक होते हुए भी सुन्दर हैं। उनके बारहमासा, ध्रुवलीला एवं सिंहासन-वत्तीसी ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। कविता का एक उदाहरण ‘विनोद’ (एवं तदनुवर्ती ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’) से उद्धृत है :

1. काके गए बसन? पलटि आए बसनु सु मेरो कछु बस न रसन उर लागे हो।
भौहैं तिरछाँहै कवि सुंदर सुजान सौहैं, कछु अलसौहैं गौहैं जाके रस पागे हो।।
परसौं मैं पाय हुते परसौं मैं पाय गहि, परसौं वे पाय निसि जाके अनुरागे हो।
कौन बनिता के हो जू कौन बनिता के हो सु कौन बनिता के बनि, ताके सँग जागे हो?

तोष (तोषमणि)

तोष नामक दो कवि³ हुए हैं : एक तोषमणि सुपुत्र चतुर्भुज शुक्ल निवास रामवनगमन यात्रा-पावन शृंगवेरपुर या सिंगरौर⁴ जो प्रयाग जनपद में है, जिनके ग्रंथ ‘सुधानिधि’ (1635 ई.), ‘विनयशतक’ एवं ‘नखशिख’ हैं, तथा दो तोषनिधि सुपुत्र ताराचन्द अवस्थी निवास प्राचीन पांचाल-क्षेत्र-राजधानी काम्पिल्य या कम्पिला जो आज के फर्रुखाबाद जनपद में हैं—जहाँ पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र का जन्म हुआ था— जिनके ग्रंथ ‘व्यंग्य-शतक’, ‘रति-मंजरी’ (1737 ई.) एवं ‘नखशिख’ (दिग्विजय-भूषण) की भूमिका में डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह⁵ हैं।

1. भ्रमवश नहीं, मिश्रबन्धु-अनुकरणवश।

2. 1614 ई.।

3. महारसमय।

4. उच्चस्तरीय श्लिष्ट रूपक।

5. श्रोत। श्रवण।

नाम, एक-एक शतक (विषयों की भिन्नता के बावजूद) एवं 'नखशिख' रचना-शीर्षकद्वय के कारण मिश्रबन्धु एवं उनके उपजीवी शुक्ल ने तोषमणि को तोषनिधि मान लिया। (सम्भवतः 'सुधानिधि' के 'निधि'—साम्य के कारण)। इन दो में 'सुधानिधि' के प्रणेता तोष (तोषमणि) श्रेष्ठतर कवि हैं जिनकी (ग़लतफ़हमी के बावजूद) मिश्रबन्धु ने अच्छी प्रतिष्ठा की है तथा अपनी प्रिय वर्गीकरण-शैली में एक 'तोष-श्रेणी' भी रखी है (जिसे अब कालातीत माना जा सकता है)। हरिमोहन श्रीवास्तव के अनुसार, "रामचन्द्र शुक्ल ने इनको तोषनिधि भ्रमवश' मान लिया।...काल सं. 1671 दिया है², जो ठीक नहीं लगता। ये भाषा पर अधिकार रखने वाले रसज्ञ कवि थे।इनकी रचना में उक्ति-चमत्कार तथा सरसता का संयोग रसखान के समान हुआ है।" भाषा की स्वच्छता एवं प्रवाह में रसखान तोष से ही नहीं अपितु घनआनंद से भी आगे हैं, किन्तु भाव की गहराई में तोष उनसे टक्कर लेते लगते हैं और रचना-स्फीति के कारण घनआनंद बाजी मार ले जाते हैं। तोष ने उच्चस्तरीय शृंगारकाव्य भी रचा है, भक्तिकाव्य भी उनकी कृतियाँ उन्हें संस्कृतज्ञ सिद्ध करती हैं। आ. शुक्ल का यह कथन एकदम सही है : "तोष जी एक बड़े ही सहृदय और निपुण कवि थे। भावों का विधान सघन होने पर भी कहीं उलझा नहीं है।" उनकी शृंगारनिपुणता एवं भक्तिगांभीर्य के द्योतक दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. भूषण भूषित दूषण हीन प्रवीन महारसमै³ छवि छाई।
पूरी अनेक पदारथ तें जेहि में परमारथ स्वारथ पाई।।
ओं उक्तैं मुक्तैं उलही कवि तोष अनोष धरी चतुराई।
होत सबै सुख की जनिता बनि आवत जौ बनिता कबिताई।।'
2. श्री हरि की छवि देखिबो को अँखियाँ प्रति रोमहिं में करि देतो।
बैनन के सुनिवे हित स्रोत⁴ जितै-तित सौ करतौ करि हेतो।।
मो ढिग छाँड़ि न काम कहूँ रहै तोष कहै लिखतो बिधि एतो।
तौ करतार इतो करनी करिकै कलि में कल कीरति लेतो।।

चिन्तामणि

शास्त्रीयकाल के कवियों में चिन्तामणि त्रिपाठी (शाहजहाँ, राज्यकाल 1627-56 ई. के समकालीन एवं दरबारी कवि —रचनाकाल 1650 ई. के आसपास) को कभी कोई विशेष महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ, यद्यपि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'अपने' 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के 'अपने' 'रीतिकाल' का आरम्भ इन्हीं से कर मारा है। शुक्ल केशव के प्रचण्ड विरोधी थे। इस विरोध का कारण उनकी 'अपनी' यह तरंग थी कि केशव कोरे चमत्कारवादी थे, जबकि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। किन्तु 'तरंग' सागर नहीं बन सकती। अतः उन्हें भी स्वीकार करना ही पड़ा, "केशवदास जी ने काव्य के सब अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। इसमें संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक् समावेश सबसे पहले आचार्य केशव ने ही किया। पर हिन्दी में रीति-ग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।...उन्होंने हिन्दी-पाठकों को काव्यांग-निरूपण की उस पूर्व-दशा का परिचय कराया जो भामह और उद्भट के समय में थी; उस उत्तर-दशा का नहीं जो आनंदवर्द्धनाचार्य, मम्मट और विश्वनाथ द्वारा विकसित हुई।" शुक्ल की यह स्थापना बहुत सटीक नहीं है, क्योंकि केशव में रस का भी पर्याप्त सम्मान किया है तथा उनका प्रभाव उनके समय से ही पड़ने लगा था, जिसे सेनापति एवं चिन्तामणि पर भी देखा जा सकता है। शास्त्रीयकाल की कविता ने रस का आदर तो किया है, किन्तु वरीयता अलंकार को दी है जिसके स्पष्ट दर्शन सेनापति, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, बिहारी, सुखदेव, देव, घनआनंद, पद्माकर इत्यादि सभी के काव्यों में अनायास हो जाते हैं। अन्तर केवल इतना है कि किसी कवि ने वस्तुपरक रचनाएँ कीं तो किसी ने आत्मपरक, किसी ने भावपक्ष पर विशेष ध्यान दिया तो किसी ने कलापक्ष पर। अतएव, रीतिवद्ध-रीतिसिद्धि-रीतिमुक्त कवित्रयी-वर्गीकरण अध्ययन की सामान्य सुविधा मात्र प्रदान करता है, तलस्पर्शी विवेचन नहीं करता। आचार्य का आदेश है, "हिन्दी-रीतिग्रन्थों की अखंड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली अतः

1. भ्रमवश नहीं, मिश्रबन्धु-अनुकरणवश।
2. 1614 ई.।
3. महारसमय।
4. उच्चस्तरीय श्लिष्ट रूपक।
5. श्रोत। श्रवण।

रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए।" आचार्य को 'चिन्तामणि' शब्द बहुत प्रिय था (उनके अमर निबन्ध-संग्रह का नाम 'चिन्तामणि' ही है।) दूसरे, केशव को पछाड़ने के कठिन आयास में उनके समय के आसपास के किसी कवि की टोह करनी थी। अतः चिन्तामणि को थोप दिया। किन्तु थोपाथापी में वास्तविकता कहाँ? 'आचार्य' को अपने द्वारा स्थापित 'आचार्य-कवि' को मिश्रबन्धु के 'विनोद' से गृहीत विवरण के आधार पर डेढ़ पृष्ठों से भी कम में चलता करना पड़ा। अन्य किसी आचार्य या विद्वान् ने शुक्लादेश का पालन नहीं किया : आचार्य श्यामसुन्दरदास से डॉ. भगीरथ मिश्र तक सभी पूर्वाग्रहमुक्त महानुभावों ने 'रीतिकाल' का उद्घाटनकर्ता केशवदास को ही माना है। लघु-शुक्ल डॉ. नगेन्द्र तक चिन्तामणि को थोपने में समर्थन नहीं करते।

चिन्तामणि निस्सन्देह एक विद्वान् आचार्य एवं सफल कवि थे, यद्यपि अपने अनुज-द्वय भूषण एवं मतिराम के सदृश महाकवि नहीं। यह भी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र तथा तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) जिला कानपुर के निवासी थे। इस सन्दर्भ में कुछ तुक्केवाजों ने जो पृथक्ता स्थापित करनी चाही है, वह अविचारणीय मात्र है। उन्होंने 'काव्यविवेक', 'कविकुलकल्पतरु', 'काव्यप्रकाश' एवं 'छन्दविचार' शीर्षक ग्रन्थों में काव्य के भाव एवं कला पक्षों का विशद निरूपण किया है। कविकुलकल्पतरु उनकी अमर सूचना है। उन्होंने कवितादि नाना छन्दों में 'रामायण' भी रची। भिखारीदास ने उन्हें आप्तकवियों में स्थान प्रदान किया है :

सूर, केशव, मंडन, विहारी, कालिदास, ब्रह्म' चिन्तामणि, मतिराम, भूषण सु जानिए।

लीलाधर, सेनापति, निपट, नेवाज, निधि^१, नीलकंठ, मिश्र सुखदेव, देव मानिए।

आलम, रहीम, रसखान, सुंदरादिक, अनेकन सुमति भए कहाँ लौं बखानिए।

ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ, ऐसे ऐसे कविन की वानी हूँ सो जानिए।।

किन्तु उन्होंने शीर्षस्थान सूर एवं केशव को ही प्रदान किया है तथा इसके बाद अक्रमत्वपूर्ण नामोल्लेख (जिसमें अनेक नाम उनकी इच्छा मात्र के सूचक हैं तथा अनेक कवियों का सृजन सम्प्रति अनुपलब्ध है) फिर, इत्यादि^३ का सार्वभौम साहाय्य भी लिया ही है। उनका उद्देश्य भी कवि-निरूपण न होकर, ब्रजभाषा-ग्राह्यता-निरूपण मात्र है।

आचार्य शुक्ल ने हिन्दी-आलोचना में एक भ्रामक रूढ़ि की सृष्टि की—हिन्दी काव्यशास्त्र संस्कृत-काव्यशास्त्र के सदृश प्रौढ़ एवं परिपक्व नहीं है—जिसका अनुकरण बहुत जोर-शोर से हुआ। इस रूढ़ि की आधारहीनता इसी से स्पष्ट है कि हिन्दी शास्त्रीयकाव्य के प्रणेता कवि थे, गद्यकार नहीं तथा उनकी शास्त्रीयता का उद्देश्य काव्य में नूतन सृष्टि के आयामों का उद्घाटन था, सैद्धान्तिक ऊहापोह नहीं। उन्होंने संस्कृत-काव्यशास्त्र एवं संस्कृत-काव्य से भरपूर प्रेरणा ली, किन्तु उनका ध्येय हिन्दी काव्य-सृजन था, जैसाकि रचना-शशि अनायास स्पष्ट कर देती है। केशव दण्डी न थे, चिन्तामणि आनन्दवर्द्धन न थे, सुखदेव पिंगल न थे, भिखारीदास मम्मट न थे और इसे यों भी कहा जा सकता है कि दण्डी केशव न थे, आनन्दवर्द्धन चिन्तामणि न थे, पिंगल सुखदेव न थे, मम्मट भिखारीदास न थे। इन आचार्य-कवियों को कवि-आचार्य कहना भी समीचीन होगा। इनका उद्देश्य कविता का ललित सृजन था, जिसमें ये बहुत सफल हैं।

चिन्तामणि भी शास्त्रीयकाल के अधिकांश कवियों के सदृश विशेष मौलिक न थे, किन्तु उनकी श्रृंगारिक कविता प्रवाह और अल्पता के बावजूद भाव-सौन्दर्य एवं भाषा-लालित्य में अतीव सफल है। कुछ उदाहरण भी प्रमाण बन सकते हैं :

1. आँखिन मूँदिवे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै।
कैहू कहुँ मुसकाय चितै अँगराय अनुपम अंग दिखावै।।
नाह छुई छल सों छतियाँ, हँसि भौह चढ़ाय अनंद बढ़ावै।
जोबन के मद मत्त तिया हिय सों पति को नित चित्त चुरावै।।

2. चिन्तामणि कच-कुच-भार लंक लचकति, सोहै तन तनक बनक छवि खान की।
चपल बिलास मद आलस बलित नैन, ललित विलोकनि लसनि मृदु बान की।।
नाक मुकुताहल अधर रंग संग लीन्हीं रुचि संध्या राग नखतन के प्रभान की।
बदन कमल पर अलि ज्यों अलक लोल, अमल कपोलनि झलक मुसक्यान की।।

1. वीरबल।

2. तोषनिधि।

3. द्रष्टव्य है श्री यशोदानंदन अखौरी का महान् निबन्ध 'इत्यादि की आत्मकहानी'।

ठाकुर (प्रथम)

ठाकुर (प्रथम) या ठाकुर प्राचीन विख्यात कविभूमि असनी¹ (फतेहपुर) के निवासी ब्रह्मभट्ट थे, जिनका जीवन वृत्त एवं कृतित्व अल्पज्ञात है किन्तु जिन्होंने 1650 ई. के आसपास बहुत ही मधुर उत्कृष्ट काव्य-रचना की थी। ठाकुर प्रथम की पहचान यत्र-तत्र 'कवि ठाकुर' के प्रयोग से हो जाती है, यत्र-तत्र ललित ब्रजभाषा से, क्योंकि परवर्ती ठाकुर-द्वय प्रायः 'ठाकुर' का ही प्रयोग करते हैं तथा भाषा-लालित्य में इनकी समता नहीं कर पाते। (यद्यपि समग्र काव्यगौरव में ठाकुर तृतीय विशिष्ट एवं ठाकुर द्वितीय श्रेष्ठतर हैं) :

1. बौर रसालन की चढ़ि डारन कूकति क्वैलिया मौन गहै ना।
ठाकुर कुंजन-कुंजन गुंजन भौरन-भीर चुपैबो चहै ना।।
सीतल मंद सुगंधित, बीर²। समीर लगे तनधीर रहै ना।
“व्याकुल कीन्हों बसंत बनाय कै,” जायकै कंत सों कोऊ कहै ना।।
2. सजि सूहे दुकूलन बिज्जुछटा सी अटान चढ़ी घटा जोवति हैं।
सुचिती हवै सुनै धुनि मोरन की रसमाती सँजोग सँजोवति हैं।
कवि ठाकुर वै पिय दूर वसैं हम आसुन सों तन धोवति हैं।
धनि वै धनि पावस की रतियाँ पति की छतियाँ लागि सोवति हैं।।

यद्यपि आ. शुक्ल ने 'ठाकुर प्राचीन' का नाम मिश्रबन्धु से ग्रहण किया है तथापि उनका विवरण एवं उदाहरण 'अपने' हैं क्योंकि मिश्रबन्धु ने इन्हें सूचीवर्ग में डाल कर टाल दिया है।

भीषम

भागवत के सफल अनुवादकों में भीष्म³ कवि (जो 'भीषम' नाम का प्रयोग करते हैं) भी उल्लेखनीय हैं। 'भागवत के विविध अनुवाद' शोध के विषय हैं। एक का संबंध दक्षिणात्य विद्वान् कादूर श्रीरंगाचार्य⁴ से भी है। मिश्रबन्धु ने शिवसिंह कृत 'सरोज' में उल्लिखित दो भीष्मों को एक माना है, जो ठीक लगता है, तथा रचनाकाल 1710 वि. (1653 ई.) दिया है। इनकी कविता अच्छी हुई है। एक सवैया देखिए :

नंद बाबा की सौं, मारिहौं साँटि, उतारि कै तौ गहने सब लैहौं।
भौंह-कमान तू काहे चढ़ावति, नैनन डाटे ते हौं न डरैहौं।।
देखत ही छन एक में भीषम ग्वालन पै दधि-दूध लुटैहौं।
गूजरी! गाल न मारु, गँवारि! हौं दान लिए बिन जान न दैहौं।।

अली आदिलशाह

बीजापुर का सुल्तान अली आदिलशाह द्वितीय (राज्यकाल 1656 - 73 ई.) फ़ारसी और हिन्दी का कवि भी था, यद्यपि इसके ब्रजभाषा-कवि होने पर मतभेद हैं :

सजन मिलने बुलावै जो चलूँगी पाँव कर सिर कूँ।
पिरतला पीव ते रहना न कधी पूछूँगी कधी किस कूँ।।
पिया ते दूर होने में लड़्या है नाग बिरहे का।
उसी का याद अमिरत हो न मरना है मुजे विस सूँ।।

1. द्रष्टव्य है, डॉ. विपिनबिहारी त्रिवेदी कृत अमूल्य ग्रंथ 'असनी के कवि'। इसमें समाविष्ट कवियों के अनन्तर भी असनी की कवि-परम्परा जीवंत है।

2. सखी। अलि, माई। भट्ट।

3. कदूर कॉम्युनिस्ट कथाकार भीष्म साहनी का स्मरण आता है, जिनकी सारी प्रगतिशीलता हिंदूनिंदा में सिकुड़कर रह गई तथा जिनके 'तमस्' के प्रसार हेतु आरक्षीदलों ने अनेक हिन्दुओं के प्राण ले लिए। दोनों 'अल्पकालिक' रचनाकार।

4. दिवंगत हिंदीसेवी, भाग 1 (क्षेमचन्द्र 'सुमन')

बिहारी¹

शास्त्रीयकाल के सिद्ध एवं प्रसिद्ध अभिधान, गालिब को उर्दू का बिहारी बनाने वाले महाकवि बिहारीलाल (1603-1663 ई.) साहित्य-जगत् में 'गागर में सागर' के प्रतीक माने जाते हैं। केवल 721 दोहों की सतसई लिखकर ये अमर हो गए; दीवाने-गालिब याद आता है (यद्यपि असद या गालिब ने ढेरों फ़ारसी कविता रची पर न वह फ़ारस या ईरान की बन पाई न भारत या हिन्दुस्तान की अर्थात् वेकार गई—हर एक अमीर खुसरो नहीं हो सकता) बिहारी का जन्म ग्वालियर के पास वसुवा गोविन्दपुर में हुआ।² ये माथुर³ चौबे ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशव या केशवराय था। इनकी कविता पर महाकवि केशव का प्रभाव भारी पड़ा है। इन कारणों से अनेक स्रोत इन्हें महाकवि केशव का पुत्र मानते रहे हैं—'कविवर बिहारीलाल' शीर्षक निबन्ध के रचयिता महान् हिन्दी-प्रेमी राधाकृष्णदास से लेकर 'बाबा कहि कहिं जाहिं' शीर्षक उपन्यास के सफल प्रणेता इकबाल बहादुर देवसरे तक की ऐसी ही मान्यता है। किन्तु यह मान्यता साधार नहीं लगती, क्योंकि केशवदास सनाढ्य मिश्र थे तथा बिहारी माथुर चौबे। दोनों के वंशज विद्यमान हैं। ऐसे स्रोतों के द्वारा 'केशवपुत्रवधू' के रूप में इनकी पत्नी भी कवयित्री मानी गई हैं। इनके दत्तकपुत्र कृष्ण कवि थे। सम्भवतः उन्होंने ही सतसई की टीका लिखी थी। प्रसिद्ध शास्त्रीयकालीन आचार्य-कवि कुलपति मिश्र इनके भांजे थे। इनकी सतसई बहुत ही अधिक प्रसिद्ध हुई है। मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान (1889 ई.—जिसका 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' शीर्षक से डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने अनुवाद किया है) में सर जार्ज ग्रीअर्सन ने स्वीकार किया है कि यूरोपीय कविता में सतसई जैसी कोई रचना नहीं प्राप्त होती। नवरत्नकार मिश्रबन्धु के शब्दों में, "इस एक छोटे से ग्रन्थ में इन कविरत्न ने मानो गागर में सागर भर दिया है। इन्हीं 1412 पंक्तियों में मानो सभी कुछ आ गया हो, और कविता का प्रायः कोई अंग, सिवा पिंगल के, नहीं छूटा। काव्य का यह छोटा-सा खजाना पाठक को चकित और स्तम्भित कर देता है। इतने छोटे-से ग्रन्थ में इतना चमत्कार अन्य कोई भी हिन्दी-कवि नहीं ला सका। जैसी एकाग्रता और श्रम से इस कवि-रत्न ने काव्य का प्रताप-पुंज या चमत्कार इस छोटे-से भाजन में भर रखा है, वैसे ही इनका आदर भी बहुत है।....करीब 35 महाशयों ने इसकी गद्य अथवा पद्य में टीका या व्याख्या की हैं उन सबसे सूरति मिश्र की टीका सर्वोकृष्ट है। हाल में बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर) ने सतसई पर विशेष श्रम किया। उसकी फलस्वरूप बिहारी-रत्नाकर नामक बहुत शुद्ध और उत्तम टीका गंगा-पुस्तकमाला' से प्रकाशित हुई है, जो प्रशंसनीय है। इसमें बिहारी का चित्र भी प्रकाशित किया गया है जो, कहा जाता है, जयपुर में बिहारी के सामने बना था। पठान सुल्तान के आश्रित चन्द कवि ने इन दोहों पर कुंडलियाएँ लगाई थीं, पर कार्य असाध्य और श्रम बहुत समझकर फिर छोड़ दिया।....पंडित परमानन्द⁴ ने संस्कृत श्लोकों में सतसई का उल्था किया, और कृष्ण ने सवैयाओं में। सतसई के टीकाकारों में सूरति, कृष्ण, चन्द, सरदार, रत्नाकर और भारतेन्दु सुकवि हैं। एक वैद्य ने सब दोहों से एक-एक वैद्यक का नुस्खा निकाला है, परन्तु उसमें टीकाकार ही का बुद्धि-चमत्कार देख पड़ता है। उक्त टीकावाला अर्थ स्वयं बिहारीलाल भी न जानते होंगे।" 'हिन्दी-नवरत्न' के सम्पादक के रूप में दुलारेलाल भार्गव की यह टिप्पणी भी द्रष्टव्य है, "एक और महाशय ऐसा ही कुछ प्रयोग 'शान्त-बिहारी' में कर रहे हैं। वह सब दोहों में शांतरस दिखा रहे हैं।" 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं, "...इन टीकाओं में 4-5 टीकाएँ तो बहुत प्रसिद्ध हैं—कृष्ण कवि की टीका जो कवित्तों में है, हरिप्रकाश-टीका, लल्लू जी 'लाल' की 'लाल-चन्द्रिका', सरदार कवि की टीका और सूरति मिश्र की टीका। इन टीकाओं के अतिरिक्त बिहारी के दोहों के भाव पल्लवित करने वाले छप्पय, कुंडलिया, सवैया आदि कई कवियों ने रचे। पठान सुल्तान की कुंडलिया इन दोहों पर बहुत अच्छी हैं, पर अधूरी हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कुछ और कुंडलिया रचकर पूर्ति करनी चाही थी। पंडित अबिकादत्त व्यास ने अपने 'बिहारी-बिहार' में सब दोहों के भावों को पल्लवित करके रोला छन्द लगाए हैं। पंडित परमानन्द ने 'शृंगार-सप्तशती' के नाम से दोहों का संस्कृत-अनुवाद किया है। यहाँ तक कि उर्दू शेरों में भी एक अनुवाद थोड़े दिन हुए बुन्देलखण्ड के कुंशी देवी प्रसाद (प्रीतम) ने लिखा। इस प्रकार बिहारी-सम्बन्धी एक अलग साहित्य ही खड़ा हो गया है।" मिश्रबन्धु एवं उनकी सामग्री के प्रशस्त पल्लवनकर्ता रामचन्द्र शुक्ल के उक्त उद्धरणों में कृष्ण कवि

1. एक अन्य परवर्ती बिहारीलाल कायस्थ हुए हैं जिन्होंने भी सतसई लिखी है, जो अपूर्णतः उपलब्ध है। 'राधाकृष्ण की रति' के बिहारीदास एवं 'संगीत-दर्पण' के बिहारीलाल भट्ट तो भिन्न हैं ही।
2. ग्वालियर एवं उसका पार्श्वक्षेत्र महाराज मानसिंह तोमर, तानसेन, बैजू बावरा, सूफ़ी फ़कीर मोहम्मद गौस (जो मंझन के गुरु थे), महाकवि बिहारी, झोंसी की रानी लक्ष्मीबाई, अटल बिहारी वाजपेयी इत्यादि की स्मृतियों से संपन्न है।
3. मथुरा के निवासी माथुर कहे जाते हैं। इनमें माथुर चौबे और माथुर कायस्थ विशेष प्रसिद्ध हैं।
4. लखनऊ की अतीतगत ऐतिहासिक प्रकाशन-संस्था जिसे साहित्य-प्रेमी एवं ब्रजभाषा-कवि दुलारेलाल भार्गव ने स्वर्गता पत्नी गंगादेवी पर नामित किया था।
5. क्रांतिकारी पं. परमानन्द एवं हिन्दुमहासभा के नेता तथा हिन्दी-लेखक भाई परमानन्द याद आते हैं।

कृत 'सवैया' एवं 'कवित्त' तथा 'पठान सुल्तान के आश्रित कवि चंद' एवं स्वयं 'पठान सुल्तान' विन्दु ध्यातव्य हैं जिसमें सम्भवतः मिश्रबन्धु ठीक हैं। इस सबके अतिरिक्त आ. पद्मसिंह शर्मा कृत अपरिसमाप्त 'संजीवन भाष्य' एवं उनका लट्ठमारवादी निबन्ध 'सतसई-संहार', सन्तुलित पं. कृष्णबिहारी मिश्र कृत 'देव और बिहारी', गंभीर विद्वान् लाला भगवानदीन 'दीन' कृत मूल्यवान् किन्तु बिहारीपरक 'बिहारी और देव' भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। डा. गणपतिचन्द्र गुप्त एवं डॉ. बच्चनसिंह ने शोध-दिशा में अच्छा कार्य किया है। 'नवरत्न' एवं 'बिहारी-रत्नाकर' में बिहारी पर आलोचना एवं टीका की अमूल्य सामग्री प्राप्त होती है। 'बिहारी-सतसई की टीकाएँ', 'बिहारी पर रचित आलोचना-साहित्य', 'हिन्दी की तुलनात्मक आलोचना और बिहारी' प्रभृति शोध के अच्छे विषय हैं।

बिहारी-सतसई शृंगारप्रधान होते हुए भी भक्ति एवं नीति से निष्पन्न है। यह प्रधानतः वस्तुपरक मुक्तकाव्य होते हुए भी अंशतः आत्मपरक काव्य से सम्पन्न है। इसके आयाम संकीर्ण नहीं हैं। 'त्रिवेणी' शब्द विवादास्पद हो सकता है, किन्तु 'रीतिकावय-नवनीत' के सम्पादक डॉ. भगीरथ-सतसई लोकप्रियतावाद की सामयिक झोंक के कारण अपने गुण-परिमाण की तुलना में बहुत ही अधिक प्रशंसित हुई है (जैसे 1913-20 ई. के बीच रवीन्द्र की गीतांजलि हुई थी)। उसके जीवन-आयाम संकीर्ण तो नहीं हैं, किन्तु वे इतने व्यापक भी नहीं हैं कि बिहारी को केशव और देव का समकक्ष कवि माना जाए। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में रामचन्द्र शुक्ल की अनेकानेक मान्यताएँ खंडनीय हो सकती हैं, कुछ विगर्हणीय भी हो सकती हैं, किन्तु प्रस्तुत मान्यता सर्वथा विचारणीय है, 'बिहारी की कृति का मूल्य जो बहुत अधिक आंका गया है, उसे अधिकतर रचना की बारीकी या काव्यांगों के सूक्ष्म विन्यास की निपुणता की ओर ही मुख्यतः दृष्टि रखनेवाले पारखियों के पक्ष से समझना चाहिए—उनके पक्ष से समझना चाहिए जो किसी हाथी दाँत के टुकड़े पर महीन बेल-बूटे देख घंटों 'वाह-वाह' किया करते हैं। पर जो हृदय के अन्तस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता।' 'देव और बिहारी' में पं. कृष्णबिहारी ने 'गम्भीरतापूर्वक भाव का निर्वाह' करने के लिए देश की श्रेष्ठतरता का जो प्रतिपादन किया है, वह समीचीन है। बिहारी की बिहारी-चतुष्टय (गणेशबिहारी-श्यामबिहारी-शुकदेवबिहारी = मिश्रबन्धु एवं कृष्णबिहारी मिश्र) ने प्रशंस्त करते हुए भी जो आलोचना प्रस्तुत की है, वह आ. पद्मसिंह शर्मा की एकांतस्तुतिवादी चर्चा एवं लाला भगवानदीन 'दीन' के व्याप्तिविरोधवादी आकलन से अधिक मूल्यवान् है। यद्यपि मैं नवरत्नकारों की इस स्थापना से सहमत नहीं हूँ, 'तुलसीदास, सूरदास और देव को छोड़कर यह महाशय हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं' क्योंकि इससे केशव, जायसी इत्यादि के साथ अन्याय होता है (तथा अब तो मैथिलीशरण, प्रसाद इत्यादि से भी), तथापि उनके प्रस्थान-कार्य का आदर करता हूँ। बिहारी से बिहारी पर अन्याय कैसा? बिहारी दरबारी-संस्कृति के तराशे गए पेड़ हैं, वन का झूमता हुआ विरवा नहीं। उनकी कविता प्रत्यन्त है, सहज नहीं। उनके यहाँ तुलसी का एकरस और अदृष्ट-जीवनदर्शन नहीं है। उनकी कविता गालिब की शायरी की तरह उत्सवों या समारोहों की कविता अधिक है, सहज जीवन के सुखों-दुखों या दिन-प्रति-दिन के उतार-चढ़ावों की कविता कम। किन्तु जैसे गालिब की शायरी में इश्कबाजी के अलावा जीवन की व्यथा भी है, दर्शन भी है, वैसे ही बिहारी की कविता में शृंगार के अतिरिक्त अंतर्वेदना भी है, जीवन का नैतिक पक्ष भी है।

गागर में सागर

बिहारी के दोहे वामन की तरह हैं जो लगते छोटे हैं पर माप तीनों लोक लेते हैं। जैसे नरकुल या सरकंडे या बाँस के छोटे-छोटे तीर देखने में कुछ नहीं लगते पर लगने पर चोट गहरी कर जाते हैं^१ वैसे ही बिहारी के दोहे 13 + 11, 13 + 11 की कुल 48 मात्राओं में सीमित होते हुए भी अपरिसीम चित्रांकन कर जाते हैं। उनके अनेक दोहे विराट् एवं सूक्ष्म बिम्बधर्मिता से प्रशस्यतः निष्पन्न हैं। उदाहरण के लिए यह दोहा प्रस्तुत है जिसे मैं बिहारी का सर्वश्रेष्ठ दोहा मानता हूँ :

कहट नटत रीझत खिझत मिलत खलित लजियात^२।

भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात।।

1. पठान सुल्तान के आश्रित कवि चंद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं आ. पद्मसिंह शर्मा की सतसई टीकाओं का अपूर्ण रह जाना भी स्वयं में कीर्तिमान है।
2. सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें घाय करें गंभीर।।
3. पाठांतर 'लजि जात'।

नायिका महिला-मंडल में बैठी है। वहाँ सास भी है और सास-वर्ग भी, ननद भी है और ननद-वर्ग भी, जेठानी-देवरानी भी। इस दृश्य के लिए सत्रहवीं शताब्दी के सम्मिलित एवं बृहत् परिवार का बोध आवश्यक है। नायक इधर-उधर घूम-घाम कर ताक-झोंक के योग्य स्थान निकाल लेता है—जहाँ चाह है वहाँ राह है! उस निरापद स्थान से वह नायिका से उस मंडल से निकलने के लिए नेत्रों की संकेत-भाषा से 'कहता' है। नायिका लज्जवश उसी भाषा में 'नट' जाती है। नट या अभिनेता से बना है 'नटत' शब्द जो वड़ा रहस्यमय भी है, कोमल भी। न वह सीधी स्वीकृति है, न सीधी अस्वीकृति। यहाँ 'नटत' शब्द का प्रयोग बिहारी को शब्द-योजना का एक अप्रतिम शिल्पी सिद्ध करने वाला है। महत्तम स्तर पर तुलसी ने ऐसे अनेक प्रयोग किए हैं। नायक पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है जैसे पड़ सकता है : वह और अधिक रीझ जाता है! नायिका इस आशंका से कि कोई इस मौन-मुखर नोक-झोंक देख न लें, क्योंकि नायक की मुद्रा ऐसी है कि सारा-कुछ छिपाए न छिपेगा। "क्रयामत की नज़र रखते हैं लेकिन ताड़ने वाले" कहने तक का अवसर नहीं। वह 'खीझ' जाती है और इधर-उधर देखने लगती है; "आँखें फिरा लेती है।" किन्तु ऐसा कितनी देर तक सम्भव है? चार आँखें जब सम्पर्क में हैं तब 'मिलती' जरूर हैं! दोनों 'खिल' पड़ते हैं: चारों आँखें खिल पड़ती हैं। इस प्रकार, भरे घर में दोनों नेत्रों से भरपूर बातें कर रहे हैं।

इस दो में पुरुष-स्पृहा, पुरुष-प्रकृति, नारी-मनोविज्ञान, लज्जा-विभूति क्या-कुछ नहीं है? जीवन्तता से ऊभचूभ है यह! उर्दू की शायरी आशिक-माशूक का विस्तृत चित्रण करने के लिए विख्यात से कुख्यात तक सभी-कुछ है। किन्तु समूची उर्दू-शायरी का कोई एक शेर इस स्तर का स्पर्श नहीं कर सकता। यह दोहा संसार-साहित्य का एक सर्वश्रेष्ठ द्विपद है।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है जिसके अद्वितीय चित्रांकन में नारी के सूक्ष्म मन को शतशः स्पष्ट करके रख दिया है :

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।

सौंह करै, भौंहनु हँसै, देन कहै, नटि जाइ॥

प्रेम की गली सदा सँकरी रहती है, सम्भवतः रहेगी भी। इसमें दो ही चल सकते हैं, तीसरा या तीसरी नहीं, चाहे वह चेतन प्राणी हो या जड़ वस्तु ही! अनेक अवसरों पर प्रेमी-युगल किसी एक के समय पर अधिकार करने वाले पशु या पक्षी या वस्तु पर बरस पड़ते हैं। कभी-कभी क्षति तक कर संतोष उत्पन्न करते हैं। सूर की राधा या गोपी या नायिका मुरली को स्वयं एवं कृष्ण के संग का व्यवधान मानने के कारण बुरा-भला कहती ही मिलती हैं : "मुरली तऊ गोपालहि भावति" पद तो उसे सपली ही बना डालता है, जिस पर अनेक व्यंग्य किए गए हैं, कृष्ण को पत्नीदास या प्रियादास सिद्ध किया गया है। रसखान की राधा या गोपी तो और सब कुछ करने को प्रस्तुत है, किन्तु "या मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी, अधरा न धरांगी" का प्रण कर डालती है। यहाँ बिहारी ने मूलभाव तो वही प्रेमाद्वैत ही रखा है, किन्तु स्वाभाविकता का सम्मान करते हुए नारी-मनोविज्ञान एवं सौन्दर्य-चित्रांकन का अपूर्व विकास किया है। शब्दचयन की दृष्टि से बिहारी के अनूठे होते हैं। यह दोहा एक प्रमाण है। यहाँ भी 'नटि' शब्द विद्यमान है। 'न' नारी की सबसे बड़ी शक्ति है। 'न' से बढ़कर कोई 'हाँ' नहीं!

प्रभावी सौन्दर्य-चित्रण¹

बिहारी ने नखशिख-वर्णन एवं नायिकाभेद-निरूपण की दोनों ही परिपाटियों को अपनाते हुए बहुत ही सुन्दर सौन्दर्य-चित्रण किया है, जिसका अलंकरण भी उच्च कोटि का है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. मुझे 'विदा' इत्यादि के यशस्वी उपन्यासकार श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव से 1964 ई. में कानपुर के रामबाग में स्थित उनके घर पर हुई अपनी भेंट याद आ जाती है, जिसमें उन्होंने महाकवि रत्नाकर (जिनकी बिहारी-सतसई की टीका 'बिहारी-रत्नाकर' अमर हो चुकी है, से अपनी वार्ता के सन्दर्भ में बतलाया कि जब मैंने बिहारी के इस सर्वप्रशंसित दोहे की यह कहकर निंदा की कि यह पूर्णचन्द्रमुखी को चतुर्थीचन्द्रमुखी बनाते हुए अपमानित करता है तब वे बहुत प्रसिद्ध हुए थे :

तू रहि सखि! हौं ही लखौं, चढ़ि न अटा बर वाल।

सबहिनु बिनु ही ससि उदै, दीजतु अरघ अकाल॥

कुटिल अलक छुटि परत मुख, वढ़िगौ इतो उदोतु ।
वंक वकारी' देत ज्यों दामु रुपैया होतु ।।

सुन्दरी के उज्ज्वल आनन पर बंकिम अलक ने अर्द्धवृत्त डाल दिया है और उस श्यामता ने उज्ज्वलता में अपरिसीम वृद्धि कर दी—तिरछी पाई लगाने पर कोई दाम रुपया² ही बन जाता है। ध्यान रहे यह 'रुपया' सत्रहवीं शताब्दी का है : आज के 500 रुपए के बराबर। उस समय मजदूर की रोजाना तनखाह एक पैसा थी। धेले में मजे में खा-पीकर धेला वचा लेता था। एक पाई का आटा काफ़ी था। कौड़ियाँ चलती थीं, जिनसे दाल वगैरह का काम निकल जाता था। वन-उपवन, खेत-बागात इतने थे कि लकड़ी या फल-फूल का काम अनायास निकल जाता था। चीजें बेहद सस्ती थीं। दिल्ली का लाल किला (1648 ई.) या उसी के पास स्थित जामा मस्जिद (1656 ई.) एक पैसे प्रति दिन के वेतन-दर पर बने थे। राज या मिस्त्री को दो पैसे मिलते थे। रुपया शताब्दियों तक एक महान् मुद्रा रहा है: भारत, नेपाल, पाकिस्तान, इंडोनेसिया इत्यादि तक में आज भी उसके 'नाम' से इसकी कल्पना की जा सकती है। अंग्रेज़ी-राज्य में भी रुपए की अच्छी धाक रही। स्वतन्त्र भारत में ही उसका पतन हुआ। वैसे 'रुपैया' श्लिष्ट शब्द है जिसका अर्थ रजतमुद्रा ही नहीं अपितु रजतमय एवं सुन्दर भी होता है। रूप एवं रूपा नाम रखे जाते हैं। इस 'जाति' का एक अन्य दोहा उल्लेखनीय है, जिसका 'गणितीय सौंदर्यांकन' अद्वितीय है :

कहत सवै वेंदी दिए आँकु दसगुनौ होतु ।
तिय-लिलार बेंदी दिए अगनित बढ़त उदोतु ।।

अनुपम भाषा-सौन्दर्य के साथ विवृत पावन सौंदर्य की यह झाँकी 'कुमारसम्भवम्' के महाकवि कालिदास के "यदुच्यते पार्वति ! पापवृत्तये न रूपमित्यभिचारि तद्वचः" एवं कामायनी के महाकवि प्रसाद के "रज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं" के अपेक्षाकृत उपदेशात्मक उद्गारों से विशिष्ट अवश्य है :

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट पट झीन ।
मानहुँ सुरसरिता विमल बिच उछरत जुग मीन ।।

'बिहारी की कविता में सत्रहवीं शताब्दी में प्रयुक्त सौन्दर्य-प्रसाधन एवं अन्य वस्तुएँ' साहित्य एवं इतिहास का सुन्दर गंगा-जमुनी शोधप्रबन्ध का विषय है। 'बिहारी की कविता में मुगलकालीन शिल्प' शोधनिबन्ध का उत्कृष्ट विषय है। निम्नलिखित दोहे में जिस पँचतोरिया (पंच तोला) का वर्णन है वह बहुत बारीक रेशमी साड़ी कुल पाँच तोले के वजन की होती थी। भारत का बारीक रेशम सहस्राब्दियों पूर्व मिस्र के फ़िराऊनों और रोम के सम्राटों तक में प्रिय था। इस कला का अन्त गौरांग साम्राज्यवादियों ने बड़ी पैशाचिकता के साथ किया क्योंकि उनके यंत्र भी इसकी समता न कर सकते थे और उन्हें इस देश की आत्म-निर्भरता को पंगु बनाना था। पं. सुन्दरलाल ने 'भारत में ब्रिटिश राज्य' ग्रन्थ में इस दिशा में प्रशस्य प्रकाश डाला है। इसी छन्द में जिस 'जलचादर' का वर्णन है उसका अनुमान दिल्ली के लालकिले में स्थित जलमहल के सूक्ष्म अवलोकन द्वारा आज भी लगाया जा सकता है, जिसमें नहर के पानी को महल पर चढ़ाकर उसे पुनः आगे जाती नहर में गिराते थे तथा गिरने के स्थान से नीचे कुछ पीछे बनाई दीवार में निरे आले बने होते थे जिनमें दीपक सजा दिए जाते थे जो गिरती पानी की चादर के पीछे झिलमिल-झिलमिल जगमगाते थे। निस्सन्देह, यह उपमा अब समयसीमाबद्ध होने के कारण कालातीत-सी लग सकती है किन्तु ज्ञानानुगानगम्य होने के कारण पठनीय अवश्य है :

सहज सेत पँचतोरिया, पहिरत अति छवि होति ।
जलचादर के दीपक लौं जगमगाति तन जोति ।।

1. 'वंक वकारी' तिरछी पाई के सम्बन्ध में एक सन्दर्भ याद आता है—उर्दू फ़ारसी-अरबी में 'लाम' अक्षर है। 'इसलाम' की तारीफ़ में एक मुल्ला का भाषण सुन कर एक हिन्दू ने राम या कृष्ण के मस्तक पर गिरी लट को 'इस लाम' बताया तथा इस पर मुग्ध न होने वाले को काफ़िर :
लाम के मानिंद हैं गेसू मेरे घनश्याम के,
वो सभी काफ़िर हैं जो बंदे नहीं इस लाम के ।।

नासिख द्वारा 'शेख ने मस्जिद बना मिस्मार बुतखाना किया' के व्यंग्य पर नसीम ने "तब तो इंक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया" का ऐतिहासिक उत्तर याद आता है।

2. उदाहरण है 1) या 10) या 100) या अन्य ।

और, बिहारी का सौन्दर्य-चित्रण मुग्धा गजगामिनी के इस चित्रण में पराकाष्ठा प्राप्त करता प्रतीत होता है :

भूषन भार सम्हरिहैं क्यों यह तन सुकुमार ।
सूधे पाँय न धर परत सोभा ही के भार ॥

और, अपने इस महान् दोहे में सौन्दर्य की अकल-ब्रह्मता का संकेत कर बिहारी 'क्षणे क्षणे यन्नवामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायः' से बहुत आगे बढ़ते दिखाई देते हैं :

लिखनि बैठ जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर ।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥

देव की व्यापकतम सौन्दर्यदृष्टि के समक्ष बिहारी की सौन्दर्यदृष्टि संकीर्ण प्रतीत होती है। अपने काव्यों, विशेषतः जातिविलास, में देव ने भारत के नाना राज्यों की नानाजातिगत सुंदरियों का विशद चित्रण किया है, जिसकी तुलना में बिहारी अभिजातवादी मात्र प्रतीत होते हैं। वे जयपुर-संस्थापक महाराज जयसिंह के राजकवि थे, चौहानी रानी द्वारा समादृत थे, उनके पुत्र रामसिंह के शिक्षक थे, काली पहाड़ी नामक ग्राम के स्वामी थे, आज भी उनके नाम पर बिहारीपुर (बिहारीपुरा) विद्यमान है, एक दोहे पर एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त करने वाले धनी-मानी व्यक्ति थे, जबकि देव तत्पतः ही नहीं प्रत्युतः भी जनकवि थे, क्योंकि एक तो उन्हें ऐसा वैभव न प्राप्त था और दूसरे उनकी रुचि जनजीवनसंपृक्त थी।

उत्कृष्ट प्रेम-निरूपण

महाकवि बिहारी का प्रेम-निरूपण जहाँ-जहाँ अतिरंजना से मुक्त है वहाँ-वहाँ बहुत ही सुंदर बन पड़ा है। नेत्र प्रेम के दूत हैं। बिहारी का नेत्र-वर्णन¹ यत्र-तत्र अत्युत्कृष्ट है। किन्तु उन्होंने प्रेमनियोजक रूप का चित्रण तो अनूठा ही किया है—एक ओर नेत्र प्रिय से जोड़ते हैं तो दूसरी ओर अन्य सब से तोड़ते भी हैं। असंगति अलंकार के मनोहारी प्रयोग इन छन्दों की शोभा में चार चाँद लगा देते हैं क्योंकि विषय तदनुरूप है।

दृग उरझत, दूटत कुटुम, चढ़त चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठ दुरजन हिए, दर्ई नई यह रीति ॥
क्यों² बसिए, क्यों निवाहिए, नीति नेहपुर नाहिं ।
लगालगी लोयन³ करैं, नाहक मन बँधि जाहिं ॥

बिहारी की स्वयंदूतिका वचनविदग्धा भी है जो अभिधा में नहीं लक्षणा-व्यंजना में बोलती है।

घाम घरीक निवारिए, कलित ललित अलि पुंज ।
जमुना तीर तमाल तरु मिलत मालती-कुंज ॥

इस रमणीक दोहे में उद्दीपन-सामग्री का बहुत ही सटीक प्रयोग किया गया है जिसकी संक्षिप्तता निस्संदेह अद्वितीय है।

बिहारी के प्रेम-निरूपण में रहस्यवाद के प्रशस्य दर्शन भी होते हैं, जिसके कारण वे विद्यापति एवं सूर की पूर्ववर्ती तथा देव एवं घनानंद की परवर्ती ललित रहस्य-परम्परा से संपृक्त हो जाते हैं :

या अनुरागी चित्त की गति समुझे नहिं कोय ।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम-रंग⁴ त्यों-त्यों उज्जलु होय ॥

इस दोहे में 'स्याम-रंग' का श्लेष अतीव गम्भीर है जो प्रेमसाधना में कृष्ण प्रेम का व्यंजक है तथा काव्यशास्त्रनिरूपण में शृंगाररस के नील वर्ण का। नाट्यशास्त्र के महान् आचार्य भरत ने शृंगार का वर्ण नील (स्याम) माना है, क्योंकि वह पालक विष्णु का प्रतीक

1. गुलाम नबी उपनाम 'रसलीन' का यह यथासांख्य-सम्पन्न महान् दोहा तक बिहारी का माना जाता है :
अमी - हलाहल - मद भरे सेत - स्याम रतनार ।
जियत - मरत - झुकि - झुकि परत जेहि चितवत यक बार ॥
2. कैसे, किस प्रकार। व्रजभाषा में क्यों का अर्थ कैसे होता है।
3. लोचन।
4. रंग का अन्य अर्थ प्रेम भी अनुस्यूत है। श्लेष।

है। शृंगाररस के देवता विष्णु ही हैं। शृंगार का वर्ण नील है किन्तु वह उज्ज्वलवेशात्मक है। एक ही दोहे में प्रेम एवं भक्ति को समेटना बिहारी-जैसे गम्भीर महाकवि के लिए ही सम्भव है।

मार्मिक विरह-वर्णन

आ. रामचन्द्र शुक्ल ने बिहारी के कुछ मनोरंजनमूलक हल्के-फुल्के दोहों की फ़ारसी-उर्दू जैसी अतिरंजना के आधार पर उनके विरहवर्णन को 'खिलवाड़' इत्यादि कह मारा है। अतिरंजना काव्य का एक अंग रही है, जिसके दर्शन तुलसी एवं सूर में भी बहुत होते हैं। किन्तु वह विरह की आत्मा कभी नहीं रही और बिहारी में भी नहीं है, जिनके अनेक दोहे विरह की उच्चतम एवं मार्मिकतम विवृत्ति करते हैं :

सघन कुंज, छाया सुखद, सीतल¹ सुरभि² समीर।

मन हवै जात अजौ बहै, उहि जमुना के तीर।।

जहाँ-जहाँ ठाढ़ो लख्यो स्याम सुभग सिरमौर।

विनहूँ उन छिनु गहि रहत दृगन अजौ वह ठौर।

स्मरण विरह का प्राण है। अनुभाव-संचारीभाव-अलंकरण सब उसका आधार लेते हैं। इन दोहों में स्मरण की तन्मयता के प्रशस्य दर्शन होते हैं। अद्वैतदर्शन की अद्वितीयात का इससे बड़ा प्रमाण क्या हागा कि चेतन-स्पर्शित जड़ चेतन हो जाते हैं? जड़ नितांत जड़ नहीं, वह चेतन-संपृक्त भी है। चेतन नितांत चेतन नहीं, वह जड़-संपृक्त भी है। दोनों की यह पारस्परिक संपृक्तता ही पूर्णता का बोध कराती है। इसी संपृक्तता का एक महान् चित्र देखिए :

उड़त गुड़ी लखि ललन की अँगना³ अँगना⁴ माह।

वौरी लौं दौरी फिरति छुवति छवौली छौह।।

यहाँ पतंग की छाया भी प्रिय-स्पर्श के कारण प्रिय लगती है तथा उसका स्पर्श प्रियस्पर्श का प्रतीक बन जाता है। अद्वैतदर्शन के प्रतिबिम्बवाद ने इस दोहे को अत्युच्च रूप प्रदान किया है। 'छवौली छौह' का प्रयोग सन्दर्भ-सम्पन्नता के कारण विश्व-साहित्य की एक निधि है। गुड़ी (पतंग) का एक अन्य अद्वैतनिष्पन्न मार्मिक प्रयोग प्रस्तुत है :

कहा भ्यो जो वीछुरे मो मन तो मन साथ।

उड़ी जाय कित हू गुड़ी तऊ उड़ायक हाथ।।

और, 'प्रिय की 'पाती' का यह नवरंग-चित्र बिहारी के अपूर्ण अध्येताओं से लेकर पूर्वाग्रहग्रस्त आलोचकों तक के द्वारा प्रचारित-प्रसारित प्रवाह को कालातीत सिद्ध करने वाला एक उदाहरण ही है :

कर लै, चूमि चढ़ाई सिर, उर लगाई, भुज भेंटि।

लहि पाती प्रिय की, लखति, बाँचति, धरति समेटि।।

ऐसे उदाहरणों के बाद यह कहना उचित होगा कि बिहारी जैसे महाकवियों पर कुछ कहने या लिखने से पहले यह दोहा हृदयंगम कर लें :

तंत्रीनाद, कवित्तरस, सरस-राग, रति-रंग।

अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब-अंग।।⁵

प्रेमाद्वैतवाद

भारत, भारतीय संस्कृति एवं भारतीय साहित्य पर आधुनिक प्रकाश अभी प्राथमिक स्तर से ऊपर नहीं उठ पाया। इसीलिए, उसे स्पष्ट करने के लिए मैंने अनेक साधारणीकरण-सक्षम शब्द गढ़े हैं, क्योंकि मुझे बहुत थोड़ा पढ़कर उसे अपने यूनानी

1. पाठांतर 'सरसिज'।

2. पाठांतर 'मंद'।

3. अँगना। स्त्री। नायिका।

4. आँगन। दोहे में यमक का प्रयोग सुन्दर हुआ है।

5. मैं इस अनमोल दोहे की 'बिहारी-सतसई' की भूमिका मानता हूँ। 'घनआनन्द-कवित' के प्रथम प्रस्तोता ब्रजनाथ का "समुझै कविता घन आनंद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी" याद आता है, किन्तु उसमें ऐसी पूर्णता कहाँ? स्वयं घनआनंद बिहारी के स्तर के कवि कहाँ?

ज्ञान-विज्ञान एवं ईसाई संस्कारों के रंग में रँगकर प्रस्तुत करने वाले मतांध पाश्चात्य एवं उनके अनुकरणकर्ता अस्मितांध प्राच्य विद्वान् सतही व्याख्या करनेवाले मात्र लगे हैं। इस दिशा में मैक्स मूलर, भंडारकर, राधाकृष्णन् इत्यादि के नाम लिए जा सकते हैं। इसकी प्रतिक्रिया में रघुनंदन शर्मा, भिक्षु चमनलाल, बलवंत नागेश ओक इत्यादि अतिभारतवादी विद्वानों का कार्य भी प्रश्नचिह्नमुक्त नहीं है। उच्चतमस्तरीय मनीषा के दर्शन तिलक जैसे नेताओं, अरविन्द जैसे योगी-लेखकों, रमेशचंद्र मजूमदार, राधाकुमुद मुखर्जी, ईश्वरीप्रसाद, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव जैसे इतिहासकारों में ही होते हैं। भारतीय दर्शन पर किसी भी भाषा में कोई गहन एवं समाहारवादी आधुनिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी-साहित्य का कोई वस्तुतः इतिहासपरक समाहारवादी इतिहास भी देखने में नहीं आता। अतः मुझे नए विशेषण एवं अभिधान गढ़ने पड़े हैं : वेदों के दर्शन के लिए देवसान्निध्यवाद, उपनिषदों के दर्शन के लिए अहंब्रह्मास्मिवाद या तत्त्वमसिवाद या सर्वखल्विदंवाद या ब्रह्मवाद, पौराणिक दर्शन के लिए समाहारवाद या सर्वसमाहनवाद इत्यादि कुछ निदर्शन हैं। साहित्येतिहास में समग्रतः नवीन कालनिर्धारण, काव्यशास्त्र में बौद्धिकरस, आलोचना में वस्तुवाद इत्यादि कुछ अन्य निदर्शन विशुद्ध हिन्दीपरक हैं। इसी सन्दर्भ में मुझे प्रेमाद्वैतवाद शब्द गढ़ना पड़ा है। प्रेमाद्वैतवाद के प्रथम दर्शन विद्यापति में होते हैं। सूर, बिहारी, देव इत्यादि में इसका विकास होता है। प्रेमाद्वैतवाद 'ध्याने-ध्याने स्वरूपता' में परिभाषित किया जा सकता है। बिहारी की प्रतिभा ने इस दिशा में मनोहारी सफलता प्राप्त की है :

पिय कैँ ध्यान गही रही वही हवै नारि।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि।
मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अंतर तरु प्रतिविंबित जग होइ॥

अंतस्साधना एवं सर्ववाद

हिन्दी-आलोचना की अज्ञानमूलक या पूर्वाग्रहमूलक या पाखण्डमूलक स्थापनाओं में एक यह रही है कि शास्त्रीयकाल के कवि कोरे विलासी या दरवारी थे। कुछ जड़बुद्धि व्यक्ति यह मानते हैं कि साधना या पवित्रता के लिए संत या महात्मा या गुरु या ब्रह्मचारी या महंत या आचार्य होना अपरिहार्य है। दीर्घदासताजान्य व्यक्तिपूजा-संस्कार हिन्दी-आलोचना को आगे नहीं बढ़ने दे रहे। दूसरी ओर, आयातवादी आलोचक परकीय-पूजा के आखेट होने के कारण बिना पेंदे के लोटों की तरह लुढ़कते दीखते हैं। आवश्यकता है, स्वस्थ एवं साहसपूर्ण वस्तुवाद की। केशव, बिहारी, सुखदेव, देव इत्यादि उत्कृष्ट दर्शन-निष्पन्न कवि भी हैं। इनका दर्शन गुरुडम-मूलक या स्वपूजाप्रतिपादक एकांगी-अंतस्साधनावाद की तुलना के सर्वांगपूर्ण अंतर्बाह्य-साधनावाद के निकटतर होने के कारण अधिक सुरम्य भी है, अधिक व्यावहारिक भी। बिहारी के कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

जप माला छापा तिलक, सैर न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै बृथा, साँचै राँचै रामु॥
तजि तीरथ, हरि-राधिका तन-दुति करि अनुरागु।
जिहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होतु प्रयागु॥
मैं समुझयौ निरधार, यह जग काँचौ काँच सौं।
एकै रूप अपार, प्रतिविंबित लखियतु जहाँ॥
जौ न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकति-मुँह दीन।
जौ लहिए सँग सजन तो घरक नरक हू कीन॥

बिहारी ने सगुण-प्रतिपादन, निर्गुण-अविरोध, प्रेम-मंडन, प्रवृत्ति-सम्मान इत्यादि की दिशाओं में प्रशस्य सृजन किया है। 'बिहारी-सतसई में दर्शन', 'देव की कविता में दर्शन' 'सुखदेव की कविता में दर्शन' इत्यादि शोध के अच्छे विषय हैं।

1. धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति प्रभृति की पृष्ठभूमि-पार्श्वभूमि में साहित्य का विकास विवेचित करनेवाला।

2. आभ्यंतर पर बहुत जोर देना स्थूल अद्वैतदृष्टि का परिचायक है क्योंकि बाह्य आभ्यंतर से अनुस्यूत है। तुलसी ने 'अंतरजामिहु ते वड़ बाहिरजामी हैं राम' (कवितावली) कहकर इस स्थूलता का प्रत्याख्यान किया है।

युग-बोध

विहारी शास्त्रीयकाल के कवियों में भूषण के साथ-साथ युग-बोध के अग्रणी कवि हैं। विहारी की प्रतिभा ने भारतीय इतिहास को परोक्ष रूप से प्रभावित किया, यह एक अज्ञात किन्तु अकाट्य उद्धरणपुष्ट तथ्य है :

नहिं परागु नहिं मधु मधु, नहिं विकासु इहि काल ।
अली कली ही सौं वैध्वौ, आगे कौन हवाल ।।
स्वारथु सुकृतु न, समु वृथा, देखि विहंग! विचारि ।
वाज! पराए पानि परि, तू पछीनु न मारि ।।

‘नहिं परागु’ शीर्षक प्रसिद्ध दोहे ने जयपुर-नरेश जयसिंह को एक नई अल्पवयस्क रानी के इंद्रजाल अथवा अपने व्यामोह के अतिरेक से बचा लिया था। इसके परिणामस्वरूप जयसिंह उनसे प्रभावित हुए, उत्तराधिकारी रामसिंह की माता पर उनका प्रभाव बढ़ गया और वे केवल कवि नहीं प्रत्युत गुरु भी बन गए। अल्पवयस्काओं के प्रति लोलुपता एक पुरानी बीमारी रही है। बहुविवाह एक प्राचीन-मध्यकालीन विश्वरोग रहा है। विहारी की यह अन्योक्ति इतिहास-गर्भित है।

‘स्वारथु सुकृत न’ शीर्षक अन्योक्ति में जयसिंह को परामर्श दिया गया है कि वे औरंगजेब के सेनापति के रूप में स्वधर्मी-सत्कर्मी शिवाजी जैसे नरेशों को अधीन कराने के युद्धों में व्यर्थ ही उलझते हैं। क्योंकि शिकारी के बाज़ के सदृश इससे उनका कोई लाभ नहीं (कुख्याति ही हाथ लगती है जिसके लिए उनका वंश मानसिंह के समय से ही कलंकित माना जा रहा है); वे पक्षी होकर पक्षियों को ही मारते हैं और वह भी अपक्षी की स्वार्थ-सिद्धि के लिए। इस दोहे का प्रभाव पड़ा और जयसिंह ने शिवाजी को सन्धि हेतु प्रस्तुत कर लिया। शिवाजी आगरा भी आए। किन्तु औरंगजेब के कुंठित अहं ने उनके सारे किए-कराए पर पानी फेर दिया। बाद में जयसिंह ने शिवाजी के साथ षड्यन्त्र भी करना चाहा, पर उसी बीच मर गए।

विहारी के युगबोध में राजनीति भी सम्मिलित है। उनके समय में दिल्ली एवं स्थानीय राजा के द्विराज्य की प्रणाली का रूप बड़ा ही विकृत था। स्थानीय राजा भी लूटता था, दिल्लीपति भी। दिल्लीपति का, अहं विचित्र था : जहाँगीर अपने पिता अकबर की और स्वयं अपनी ससुराल आमेर पहुँचने पर वहाँ के शीशमहल को देखकर जल-भुन गया और उस पर कलई फिरवाने का हुक्म दे दिया (क्योंकि यह शीशमहल उसके आगरा स्थिति जहाँगीरी-महल के शीशमहल से श्रेष्ठतर था। (अकबर महान् तक का यह आलम था कि शाहजादियाँ क्वाँरी रहती थीं क्योंकि शाही परिवार से श्रेष्ठतर कोई हो न सकता था तथा पति श्रेष्ठतर माना जाता था—परिणाम यह हुआ कि भ्रूणहत्या, गर्भपात इत्यादि के नरक का बोलबाला हो गया।)² ऐसी विकट-विचित्र द्विराज्य-प्रणाली की वड़ी ही सटीक आलोचना महाकवि विहारी ने की है :

दुसह दुराज, प्रजान को क्यों न बड़ै दुख-दंद ।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि-चंद ।।

बहुज्ञता

विहारी का काव्यशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, राजनीति इत्यादि का ज्ञान उनकी कृति में सफलतापूर्वक अभिव्यक्त मिलता है। इस दिशा में वे तुलसी और देव का स्मरण करा देते हैं, यद्यपि तुलसी के आयामों का स्पर्श वे नहीं कर पाए तथ देव उनसे आगे पड़ जाते हैं। इस दिशा में आ. पद्मसिंह शर्मा का संजीवन-भाष्य द्रष्टव्य है।

1. विहारी की यह पंक्ति भ्रमरगीत-परम्परा में योगदान की सूचना देती है, जिससे भ्रमरगीत-परम्परा के आधुनिक महाकवि रत्नाकर अपने उद्धवशतक में प्रभावित हुए हैं—विहारी रत्नाकर के प्रणेता पर विहारी का प्रभाव नितांत स्वाभाविक है।
2. औरंगजेब की चहेती बहन रौशनारा की दो युवकों की तस्करी एक नमूना है। एक साथ दो युवक बुरे वगैरह की मदद से लाए गए किन्तु जनानखाने के हिजड़े-पहरेदारों की नज़र से न बच पाए। इस घटना से औरंगजेब बड़ा दुखी हुआ था। (हालाँकि इसने दारा की हत्या कराने के बाद उसकी एक वीवी को अंकशायिनी बनाया, जबकि एक ने इस नर-पिशाच के चंगुल से बचने के लिए आत्महत्या कर ली)।

महान् कलाकार

बिहारी कलाकार-महाकवि हैं, द्रष्टा-महाकवि नहीं, स्रष्टा-महाकवि नहीं। सूर द्रष्टा-महाकवि हैं, प्रसाद स्रष्टा महाकवि हैं, तुलसी द्रष्टा-स्रष्टा-महाकवि हैं। हिन्दी के अन्य कलाकार-महाकवि पन्त हैं। किन्तु कलाकार-महाकवि के रूप में बिहारी की समता कोई नहीं कर सकता : सेनापति में लोकग्राह्यता कहाँ, रत्नाकर में कसावट कहाँ, पंत में 'गागर में सागर' कहाँ (कहीं-कहीं तो वे 'सागर में गागर' का प्रयोग करते लगते हैं)! और, वे कोरे-कलाकार नहीं हैं। निस्सन्देह अपने समाहार में बिहारी को जायसी या प्रसाद से कम महत्वपूर्ण महाकवि नहीं माना जा सकता। वे हिन्दी-कविता के वैसे ही ज्योति-स्तम्भ हैं जैसे उर्दू-कविता के गालिव। उनका एक-एक दोहा हिन्दी-काव्याकाश का एक-एक नक्षत्र है।

मतिराम

शास्त्रीयकाल के कवियों में मतिराम (1617-1716 ई.) को एक अत्यन्त उच्चस्थान प्राप्त है। एक ओर ललितकाव्य रचना में देव, बिहारी, पद्माकर के साथ खड़े दीखते हैं, दूसरी ओर आचार्यत्वगौरव में चिन्तामणि, सुखदेव, बिखारीदास के, तीसरी ओर भाषालालित्य में रसखान, आलम, घनआनन्द के। रसराज, ललितललाम एवं छन्दसागर-पिंगल में उन्होंने रस, अलंकार एवं छन्द का निरूपण किया है तथा उनकी सतसई भी श्रेष्ठ कलाकृति है। मतिराम का एक रसराज एक महान् ग्रन्थ है। सरस अनुभूति, प्रांजल भाषा एवं अप्रतिम प्रवाह में मतिराम एक बहुत ही प्रिय एवं उत्कृष्ट कवि हैं। मतिराम के प्रस्थान-आलोचक मिश्रबन्धु ने अमर नवरत्न में लिखा है, "महाकवि मतिराम की भाषा बहुत ही सुव्यवस्थित और परिपक्व है। इनकी इच्छा के अनुसार वह हर ओर लचक जाती है और हर प्रकार के भाव परम सुगमतापूर्वक व्यक्त करती है। इनका शब्दचयन उत्कृष्ट हिन्दी का रूप खड़ा किए हुए है। वह न तो संस्कृतपन की ओर जाता, न प्रांतिकता के फेर में पड़ता है। वाक्यविन्यास माधुर्य और प्रसाद का जामा पहने हुए है। पदावली अलंकृत, प्रांजल और भाव-व्यंजन में पूर्णतया समर्थ है। कोमलता, कांति, अभिव्यक्त आदि गुण मानो आप ही के लिए बने हैं। कथन में मार्मिकता, भावव्यंजना में स्वाभाविकता और वर्णन में पूर्णता है।" रामचन्द्र शुक्ल ने मिश्रबन्धु को अपने संक्षेपण-सामर्थ्य के साथ दुहराते हुए स्वीकार किया है, 'मतिराम की रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसकी सरसता अत्यन्त स्वाभाविक है, न तो उसमें भावों की कृत्रिमता है, न भाषा की। भाषा शब्दाडंबर से सर्वथा मुक्त है।"

मतिराम पर मिश्रबन्धु का प्रस्थान-कार्य सर्वोपरि है, जिसे 'मतिराम-ग्रन्थावली' (परिचय-भाग) में कृष्णबिहारी मिश्र ने विकसित किया है। इन गम्भीर विद्वानों के कार्य को डॉ. त्रिभुवनसिंह एवं डॉ. महेन्द्र कुमार प्रभृति अध्यवसायी शोधकर्ताओं ने प्रशस्यतः पल्लवित किया है।

नवयौवना के महाकवि

मतिराम की कविता में लालित्य अप्रतिम है—किन्तु देव की गम्भीरता नहीं प्राप्त होती। बिहारी एक परिपक्व विलासी हैं, मतिराम तरुण। गुणगत-गरिमा में बिहारी आगे हैं। संकीर्ण सृजन में भी उनका भाव-विस्तार प्रभवत्तर है। भूषण ने अपेक्षाकृत कम लिखा है किन्तु आनुपातिक छन्द-गौरव में वे मतिराम से आगे हैं। सुखदेव मतिराम-समकक्ष आचार्य-कवि हैं। मतिराम में लालित्य अधिक है, तो सुखदेव में जीवन के अनेक आयामों का स्पर्श करते हैं। पद्माकर श्रेष्ठतर कलाकार हैं, मतिराम श्रेष्ठतर कवि। अतः मतिराम और पद्माकर का क्रम ही समीचीन होगा; समय-दृष्टि से भी यही सार्थक है। सारांशतः, शास्त्रीयकाल के कवियों में युग-उद्घाटक नानाआयामी महाकवि केशवदास एवं गहन प्रतिभा से निष्पन्न महाकवि देव के अनन्तर बिहारी, भूषण, मतिराम, सुखदेव एवं पद्माकर अन्यतम

1. मिश्रबन्धु के अनुसार सं. 1696-1773 वि.। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सं. 1674 वि. (1617 ई.) में हुआ। यह वर्ष भूषण के जन्म वर्ष को देखते ठीक लगता है। शुक्ल जी ने मृत्युवर्ष दिया ही नहीं। रीतिकाव्य-नवनीत में डॉ. भगीरथ मिश्र जन्मवर्ष 1602 या 1603 ई. (1660 वि.) मानते हैं जिससे उन्हें भूषण से पर्याप्त ज्येष्ठ मानना पड़ेगा जो युक्तियुक्त नहीं लगता। मृत्यु-वर्ष वे भी नहीं देते। उन्होंने इन तिकवाँपुर कश्यप-गोत्रीय चिन्तामणि-भूषण-बन्धु मतिराम से भिन्न वनपुर-निवासी वत्स-गोत्रीय मतिराम (द्वितीय) का प्रशस्य उल्लेख भी किया है, जिनके ग्रन्थ अलंकार-पंचाशिका, वृत्तकोमुदी प्रभृति हैं। तिकवाँपुर कानपुर-देहात (कानपुर-नगर से अलग कर दिया गया है) जनपद की घाटमपुर तहसील में यमुना के समीप है, वनपुर पास ही फ़तहपुर जनपद में है, जहाँ के कालिदास त्रिवेदी, उनके पुत्र कवीन्द्र उदयनाथ तथा उनके पुत्र दूल्हा प्रसिद्ध हैं। भूषण के सदृश मतिराम भी दीर्घजीवी रहे।

हैं। घनआनन्द की कविता में विरह मात्र ही उत्कृष्टतापूर्वक विवृत हुआ है। (क्योंकि उनका भक्तिकाव्य साधारणतर है) तथा उसकी पुनरुक्ति उवाज है। उनकी लक्षणासम्पन्न ब्रजभाषा कलात्मक है, किन्तु क्लिष्ट भी, जिसकी रसखान, मतिराम और आलम की सहज-प्रसन्न ब्रजभाषा से तुलना नहीं की जा सकती। घनआनन्द की कविता स्वच्छन्द मानी जा सकती है, किन्तु भाषा-शास्त्रीयता एवं अलंकरण-शास्त्रीयता के ज्ञान के बिना वह समझी तक नहीं जा सकती। अतः रीतिबद्ध एवं रीतिमुक्त कवियों का वर्गीकरण अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से सामान्यतः उपयोगी होते हुए भी उतना तलस्पर्शी नहीं है जितना अनेक उत्साही तरंगाध्येता मान बैठते हैं। आ. रामचन्द्र शुक्ल जैसे महान् आलोचक, आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र जैसे महान् सम्पादक, श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा जैसे भावुक काव्यानुरागी तथा डॉ. मनोहरलाल गौड़, डॉ. रामफेर त्रिपाठी जैसे प्राध्यापकों ने घनआनन्द पर अच्छा काम किया है, किन्तु आयामों की विशदता एवं काव्य-प्रवाह में घनआनन्द केशव, देव, बिहारी, भूषण, मतिराम, सुखदेव एवं पद्माकर की समता नहीं कर सकते। निस्सन्देह, वे इन कवियों के साथ शास्त्रीय-काल के प्रमुख कवियों में समाविष्ट हैं। अन्य कवियों में कुलपति आचार्य बहुत-अधिक हैं, कवि बहुत-कम। दूल्हा बहुत मनोहारी हैं, किन्तु उनका सृजन इतना नहीं है कि उसकी मतिराम के सृजन से तुलना की जाए। भिक्षारीदास आचार्य तो बहुत बड़े हैं, परन्तु कवि के यप में कहीं-कहीं ही प्रभावी हैं। स्पष्ट है कि मतिराम शास्त्रीयकाल के सर्वश्रेष्ठ कवियों में प्रतिष्ठित हैं।

मतिराम चिरतरुण कवि हैं। उनकी अनुभूति तरुण है। उनकी अभिव्यक्ति तरुण है। उनकी तरुण कविता की तुलना में बिहारी की कविता प्रौढ़ एवं देव की कविता वृद्ध लगती है। इस दृष्टि से पद्माकर मतिराम के निकट है। मतिराम की प्रसन्न प्रेमाभिव्यक्ति और घनआनन्द की दर्दिली प्रेमाभिव्यक्ति में बहती सरिता और ठहरे सरोवर का अन्तर है। एक में प्रवाह है, दूसरे में गहराई। मतिराम यौवनोल्लास के महाकवि हैं। यौवन सुन्दर होता है। उसका सुन्दर को चाहना प्रकृति का नियम है। स्वभावतः वे सौन्दर्य के अनूठे चितरे हैं। उनका बिम्बालेखन सर्वोच्चस्तरीय है :

कुंदन को रँग फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि, चितौनि में मंजु विलासनि की अधिकाई।।
को विन मोल बिकात नहीं मतिराम लखे मुसुकानि मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिए नरे हवै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई।।

यह छकी हुई नायिका का छका हुआ चित्र है। कामतृप्ति के कुशल शिल्पी मतिराम ने काम के विरोधाभास-सम्पन्न 'सेद बढ़्यो तन, कंप उरोजनि, आँखिन आँसू, कपोलन हौंसी' जैसे भावशबलता के अमूल्य निदर्शन भी प्रस्तुत किए हैं। किन्तु मतिराम प्यास के चित्र उरेहने में भी कुशल हैं, जिनमें भोली-भाली स्पृहा को शब्दित किया जाता है :

क्यों' इन आँखिन सों निहसंक है मोहन को तन पानिप^१ पीजै।
नेकु निहारे कलंक लगै, इति गाँव बसे कहु कैसेक जीजै।।
होत रहे मन मों मतिराम कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजै।
है वनमाल हिए लगिए अरु है मुरली अधरा-रस^२ लीजै।

कालिदास के 'कुमारसम्भवम्' में सखियों के द्वारा चरणाभरण पहनाते समय उनके प्रिय-श्रुति-सामीप्य के शुभकामना-परिहास पर पार्वती 'हाथ चला' ही बैठती हैं, किन्तु मतिराम की नायिका चाहते हुए भी नहीं 'चला' पाती, क्योंकि सारा शरीर भावी प्रेम की पुलक की थकान से 'गतिशील' है—निस्सन्देह उच्चतम श्रेणी की कविता :

गौने के द्यौस कहै मतिराम सहेलिन को मिलिकै गन आयो।
कंचन की बिछिया पहिरावत प्यारी सखी परिहास बढ़ायो।।
“प्रीतम-सोन-समीप सदा बजै” यों कहिकै पहिले पहिरायो।
कामिनि कंज चलावन को कर ऊँचो कियो पै चलयो न चलायो।।

1. कैसे? किस प्रकार? ब्रजभाषा में 'क्यों' का अर्थ 'कैसे' या 'किस प्रकार' होता है।

2. पानी, आव, रस, दीप्ति, शोभा।

3. अधर का। अ + धरा = धरा या पृथिवी का नहीं अर्थात् अलौकिक। श्लेष। 'तप' के अनुरूप।

शृंगाररस के इस सिद्ध कवि की लक्षिता नायिका का यह चित्र यद्यपि देव, बिहारी इत्यादि के चित्रों से मिलता-जुलता है किन्तु इसका प्रसाद-गुण माधुर्य-गुण से इतना घुल मिया गया है कि निर्णय सरल नहीं :

आई हौ पायँ दिवाय महाउर कुंजन ते करिके सुख-सेनी ।
साँवरे आजु साँवारो है अंजन, नैनन को लखि लाजत एनी ।।'
बात के वृझत ही मतिराम कहा करती भटू!¹ भौंह तनेनी ।
मूँदी न राखति प्रीति अली! यह गूँथी गोपाल के हाथ को वेनी ।।

लम्बी, गुलामी से दवे संस्कारों अथवा आत्मपावित्र्य के जर्जर पाखंड के कारण बहुत दिनों तक शास्त्रीय काल की कविता के सन्दर्भ में अश्लीलता का हौवा खड़ा किया जाता रहा। अश्लीलता के हौवेवाजों ने वाल्मीकि, कालिदास, खजुराहो, कोणार्क इत्यादि को भी नहीं बख्शा। प्रश्न यह है कि मम्मट के 'क्वचित् अश्लीले गुण' सूत्र पर ध्यान क्यों न दिया जाए? जिसे कुंठित या विकृत या सन्नस्त मस्तिष्क अश्लील कहता है, उसे ही परितृप्त या सहज या स्वस्थ मस्तिष्क कलासौन्दर्य। हर्ष है कि अब 'हिन्दी-कविता में उरोज-सौन्दर्य' जैसे श्रेष्ठ एवं कलात्मक ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे हैं। भारत कामशास्त्र की जन्मभूमि है। तभी तो यहाँ कालिदास उत्पन्न हुए, खजुराहो में जीवन-सौन्दर्य साकार हुआ, कोणार्क में ललित-स्पृहा प्राणवान हुई, रवीन्द्र ने 'स्तन' शीर्षक कविता लिखी। वात्स्यायन फ्रायड के स्वस्थपूर्वज थे। अश्लीलता से कितने महाकवि बच सके हैं? और बचने की आवश्यकता क्या? वाल्मीकि, कालिदास, जयदेव, विद्यापति, सूर, तुलसी² शेक्सपीयर³, प्रसाद इत्यादि महाकवियों ने सत्य का सम्मान करते हुए पाखण्ड का तिरस्कार किया है, जो प्रशस्य है। अतः मतिराम के 'केलि के राति अघाने नहीं दिनहूँ में लला पुनि घात लगाई' जैसी पंक्तियों को देखकर चौंक पड़ना पाखण्ड या नपंसुकता के अतिरिक्त कुछ नहीं :

उस तन को नमस्कार जो 'सव' के होता है
और
जिसका जादू सबको मुग्ध कर लेता है
(कुंठितों, असमर्थों और पाखंडियों को भी)।
उस तन को नमस्कार जिसके बिना आत्मा प्रेत
और
जो मन का, प्राण का, बुद्धि का मंदिर है
(बड़े भाग मानुस तन पावा)।
उस तन को नमस्कार जिसने कला, कविता दी
और
अजंता, खजुराहो, कोणार्क भी दिए
(स्वर्ग, जन्नत, हेवेन से रम्यतर, दृग्गम्य)⁴

निम्नलिखित छन्द में सहेटस्थल को जाती अभिसारिका से 'कयामत की नज़र रखते हैं लेकिन ताड़नेवाले' की 'बुत्' सहेली का व्यंजनागर्भित प्रश्न निस्संदेह कला-गौरव है :

दूसरे की बात सुनि परति न, ऐसी जहाँ
कोकिल, कपोतन की धुनि सरसाति है।

1. "लागती हौ जैसे मृगनैनी" पाठ बाल्यकाल में सुना था। यह पाठांतर बेहतर है।
2. भट्ट, वीर, माई, आली, अली, सजनी, सखी इत्यादि एकार्थक शब्द विभिन्न गुणों के व्यंजक हैं।
3. पागलों के डॉक्टर फ्रायड का मनोविज्ञान अति में रुग्ण होने लगता है।
4. अहिरिनि हाथ दँहेड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोवनु देखि नृपति मन भावइ हो ।। (रामललानहछू)
5. 'वीनस एंड एडोनिस' में विशेषतः।
6. 'अवध-पुष्पांजलि' (लखनऊ) सितम्बर 1986 अंक, पृष्ठ 16 में प्रकाशित मेरी कविता। 'सार्वभौम' संग्रह में भी।

पूर रहे जहाँ द्रुम वेलिन सों मिलि मति-
 राम अलि-कुलनि अँधेरी अधिकाति है।।
 नखत-से फूलि रहे फूलन के पुंज, घन
 कुंजन में होति जहाँ दिनहूँ मैं राति है।
 ता वन की वाट, कोऊ संग ना सहेली, कहि
 कैसे तू अकेली दधि बेचन को जाति है।।

इस महान् छन्द में प्रकृति का महान् चित्रण मानव के स्पृहणीय सुकुमार भावों से ओतप्रोत होकर अर्द्धनारीश्वरवत् पूर्णता-व्यंजक बन गया है। इस उद्दीपनात्मक प्रकृति-चित्रण की समता आ. रामचंद्र शुक्ल के द्वारा वैयक्तिक उमंग के कारण अतिप्रशंसित आलंबनात्मक प्रकृतिचित्रण का कोई उदाहरण नहीं कर सकता। स्वयं शुक्ल का सारा प्रकृतिकाव्य मतिराम के इस एक छन्द भी समता नहीं कर सकता। आलम्बनात्मक-उद्दीपनात्मक का अतिशय। अन्तर-प्रतिपादन अद्वैत-विरोधी होने के कारण दार्शनिक दृष्टि से स्थूल है। मानव-संपृक्त प्रकृति ही उत्कृष्ट एवं रम्य है। प्रकृति निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष विभूति है।

यह महान् छन्द रहस्यनिष्पन्न भी है। प्रिया आत्मा प्रिय परमात्मा के हेतु सामान्य-पथ का परित्याग कर विलक्षण-पथ पर गतिशील है। प्रकृति जीवात्मा-परमात्मा की सेतु हैं। तत्त्वतः तीनों एक हैं। यह प्रवृत्ति का अतिप्रवृत्ति से प्रश्न है।

इस महान् छन्द में विशद विम्बांकन एवं ललित उदात्त का जैसा सहज वैभव व्याप्त है वैसा संसार-साहित्य के बहुत कम छन्दों में ही मिलेगा। निस्संदेह यह मतिराम का सर्वश्रेष्ठ छन्द है।

मतिराम मिलन के कवि हैं किन्तु विरह की गरिमा से विपन्न नहीं। प्रस्तुत श्रेष्ठ छन्द बिहारी के “सघन कुंज छाया सुखद” शीर्षक दोहे का स्मरण अनायास ही करा देता है :

हूँ मिलि मोहन सों मतिराम, सुकेलि करी अति आँनदवार।
 तेई लता द्रुम देखतैं दुःख, चले अँसुआ अँखियानि ते भारी।।
 आवति है जमुना-तट को, नहिं जानि परै बिछुरे गिरिधारी।
 जानति हैं सखि! आवन चाहत कुंजन ते कढ़ि कुंजबिहारी।।

देव, बिहारी, सुखदेव के सदृश मतिराम का कृष्ण-सौन्दर्यचित्रण भी सुन्दर बन पड़ा है :

मोरपखा मतिराम किरौट मैं, कंठ बनी बनमाल सुहाई।
 मोहन की मुसुकानि मनोहर, कुंडल लोलनि मैं छवि छाई।।
 लोचन लोल, बिसाल बिलोकनि, को न बिलोकि भयो बस माई।
 वा मुख की मधुराई कहा कहौं, मीठी लगे अँखियान लुनाई।।

मूर्ति-चित्र-नृत्यादि कलाओं से हीन, अद्वैत की पीन दार्शनिकता से अपरिचित, स्थूल एवं अंधविश्वासमूलक आदिम त्रैतवादबद्ध तत्त्व तक राधा-कृष्ण की ललित छवि से अभिभूत हुए बिना न रह सके, क्योंकि ये तो मनुष्य ही। वे भी राम के कर्तृत्व-सौन्दर्य एवं कृष्ण के नर्तृत्व-सौन्दर्य से गौरव एवं कला के प्रेमी बन गए। इनसे पहले भी राम-कृष्ण का व्यावहारिक प्रवृत्ति-गौरव बुद्ध-महावीर के निवृत्ति-गौरव से बलवत्तर प्रमाणित हो चुका था। वह ईरानी, यूनानी, शक, हूण प्रभृति अनेक आक्रांता-वर्गों को अभिभूत कर चुका था। राम एवं कृष्ण उत्तर-दक्षिण एवं पूर्व-पश्चिम भारत की समग्र एकता के प्रतिष्ठापक तो हैं ही, नानानृवंशसमाहार के प्रतीक भी हैं, हिन्दू-मुस्लिम एकता के आधार भी हैं। इनका भक्तिपरक चित्रण करनेवाले तुलसी एवं सूर जैसे कवि महान् थे, इनका सौन्दर्यपरक चित्रण करनेवाले देव एवं मतिराम जैसे कवि भी महान् थे, क्योंकि दोनों का मूल कार्य एकता-स्थापना एवं संस्कृति-प्रतिष्ठापन सिद्ध हुआ। “एक लहैं तपपुंजनि के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाईं” महानता में स्वीकार्य है, “हरि राधिका सुमिरन को बहानो” कलात्मकता में रम्य है। दोनों में बहुत अन्तर मानना व ऐतिहासिक कसौटी पर खरा उतरता है, न जीवनवाद की। अतः इस शीशे को अब कालातीत मानना चाहिए।

यदि सेनापति, भूषण, देव, पद्माकर रत्नाकर इत्यादि घनाक्षरी (कवित्त) में अधिक सफल हैं, तो मतिराम सवैया में। प्रकृत्या मतिराम कोमल भावों के कोमल कवि हैं और सवैया छन्द कोमल भावों को व्यक्त करने में अद्वितीय हैं। वैसे, उन्होंने घनाक्षरी में भी अच्छा सृजन किया है।

वीररस

शृंगाररस के निष्णात् कवि होते हुए भी मतिराम ने वीररस की भी अच्छी कविता की है। एक उदाहरण :

महावीर सत्रुसाल नंद राव भावसिंह, तेरी धाक अरिपुर जात भय-भोय-से।
कहै मतिराम तेरे तेजपुंज लिए गुन मारुत औ मारतंड-मंडल विलोय-से।।
उड़त, नवत, दूटि, फूटि, मिटि, फाटि जात, बिकल, सुखात वैरी दुखन समोय-से।
तूल-से, तिनूका-से, तरोवर-से, तोयद-से, तारा से, तिमिर-से, तमीपति-से, तोय-से।।

यथासांख्य या क्रम अलंकार का यह एक महान् उदाहरण है—इस सुंदर अलंकार का एक नया उदाहरण प्रस्तुत है :

सारी प्रकृति

चैत के बौर-सी	पुष्पसज्जा
वैसाख के भोर-सी	आकृति
जेठ की छाया-सी	स्मिति
असाढ़ की घटा-सी	अलकावली
सावन की वर्षा-सी	दृष्टि
भादों की विजली-सी	हँसी
क्वॉर की जुन्हाई-सी	लज्जा
कार्तिक की बयार-सी	श्वास
अगहन की नदिया-सी	स्वीकृति
पूस की दुपहरिया-सी	समर्पणवृत्ति
माह के अलाव-सी	आवेश
फागुन के फाग-सी	मिलन!
तुम्हारी	सारी प्रकृति तुममें और मुझमें समा गई
तुम्हारी	अपना लक्ष्य पा गई। ¹
तुम्हारी	

सतसई

‘मतिराम-सतसई’ नानाआयामिता, गहनता और कसावट में ‘विहारी-सतसई’ की समता नहीं कर सकती, किंतु अपनी तरल अनुभूति और सरस भाषा में एक श्रेष्ठ कृति अवश्य है। इसके आत्मपरक-भक्तिपरक दोहे तो बहुत ही सुंदर हैं :

मेरी मति मैं² राम है, कवि मेरे मतिराम।
चित मेरो आराम मैं³, हित मेरो आराम।।
मंजु गुंज के हार उर, मुकुट मोर-पर-पुंज।
कुंजविहारी विहरिए मेरेई मन-कुंज।।
बाल अलप जीवन भई ग्रीष्म सरित सरूप।
अब रस परिपूरन करो तुम घनश्याम अनूप।।

*

*

*

1. ‘नवनीत’ (मुंबई), सितम्बर, 1986, पृष्ठ 128 (मेरी कविता)। ‘सार्वभौम’ संग्रह में भी।

2. मय। मैं राम = राममय।

3. आराममय। आ = सर्वत्र + राममय। आराम = उद्यान (“परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत”—तुलसी)। विश्राम। श्लेष।

मतिराम के पिता का नाम रत्नाकर¹ त्रिपाठी ठीक ही था क्योंकि उनके चिन्तामणि-भूषण-मतिराम-रत्नों का त्रिपाठ अब तक हो रहा है। संयोगात् यह अमर त्रिपाठी-त्रिरत्न त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) के निवासी थे। इनसे पूर्व, इसी ग्राम में वीरवल (उपनाम 'ब्रह्म') जैसा इतिहास-पुरुष उत्पन्न हो चुका था (कुछ लोग वीरवल-अकवरपुर को मानते हैं, जो पास ही है)। इनके चतुर्थ भ्राता जटाशंकर भी कवि थे। त्रिपाठी² वर्ग में भूषण, दयानन्द सरस्वती, चंद्रशेखर 'आजाद',³ निराला जैसे प्रखर महापुरुष ही अधिक उत्पन्न हुए हैं, किन्तु मतिराम कोमल थे जिसे विलक्षण माना जा सकता है।

‘मधनायक’ (‘मध’)

‘मधनायक-शृंगार’ (1665 ई.) के रसिक काव्याचार्य एवं ‘नादचंद्रिका’ के संगीताचार्य निजामुद्दीन ‘मधनायक’ (किसी-किसी छन्द में ‘मध’ भी) ब्रजभाषा-कविता के एक रत्न हैं। यह हरदोई जनपद के विख्यात साहित्य-तीर्थ बिलग्राम के निवासी थे, जहाँ से सुंदरी नामक हिन्दू युवती को भगा ले गए तथा हरदोई जनपद के ही शाहाबाद में उसे मुसलमान बनाकर निकाह के कारण कई वर्ष रहे।⁴ परिस्थिति में परिवर्तन देखकर बिलग्राम लौटे⁵ और वहीं मरे, जहाँ कब्र है। उदाहरण देखें :

1. जो चतुरानन चित चढ़ी न विधी बुध वेदन ग्रंथन गाई।
भारती भोरी करै भरमै चुप जोगन जोग अनीठ गिनाई।।
जो तकि जोत जगी न थकी ‘मधनायक’ घूँघट चंचलताई।
झीन दुकूल छबी झलकै अपचच्छ विराजत अच्छ रिसाई।।
2. कोऊ कहै चंद के मृगंक अंक देखियत, कोऊ कहै छाया छिति भूतल प्रकास की।
कोऊ कहै अंधकार पियो है सो देखियत, कोऊ कहै कालिमा कलंक अन्यास की।।
‘मध’ कहै सिता हर लीनो करतार सब, ताही की सँवारी भामा कान्ह के बिलास की।
ता दिन ते छाती छेदि परी है छपाकर की, बार-बार देखियत नीलता अकास की।।

कुलपति मिश्र

मम्मट कृत ‘काव्य-प्रकाश’ पर आधारित किन्तु स्वरचित उत्तम उद्धरणों से भी सम्पन्न प्रख्यात ‘रस-रहस्य’ (1670 ई.) के रचयिता कुलपति मिश्र महाकवि विहारी के भागिनेय भी थे तथा उन्हीं के आश्रयदाता जयपुर-नरेश मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के आश्रित कवि। ‘नखशिख’ एवं ‘संग्रामसार-रहस्य’ इनकी अन्य उल्लेख्य कृतियाँ हैं। यह तन्त्र में भी निष्णात् थे। मिश्रवन्धु ने अपने ‘विनोद’ में उन्हें पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र के साथ “भारी आचार्य” माना है तथा उनके अनुकरण में आ. शुक्ल ने ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में तद्वत् ‘गंभीर शास्त्राभ्यासी पंडित’। ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग 2 में काव्यशास्त्र के विद्वान् डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित ने ठीक ही लिखा है : “इनका ध्यान विशेषतः आचार्यत्व पर ही केंद्रित रहा, कवित्व उपेक्षित-सा रह गया है।” डॉ. विष्णुदत्त ‘राकेश’ ने ‘आचार्य कुलपति मिश्र: व्यक्तित्व और कृतित्व’ में इन पर अच्छा प्रकाश डाला है। इन पर अन्य शोधकार्य भी हुए हैं। जिसे अठारहवीं सदी (ई.) रेखा या उर्दू कहा गया, उसके आदि-प्रयोक्ता के रूप में कुलपति मिश्र का नाम लिया जाना चाहिए।

कुलपति मिश्र चिन्तामणि, श्रीपति, भिखारीदास, प्रतापसाहि इत्यादि के सदृश आचार्य अधिक हैं तथा केशव, विहारी, भूषण, मतिराम, देव, पद्माकर इत्यादि के सदृश कवि कम। उनमें सुखदेव मिश्र का जैसा आचार्य एवं कवि का समानुपात नहीं प्राप्त होता,

1. कुछ लोग रतिनाथ बताते हैं।

2. तिवारी। तेवारी। त्रिवेदी।

3. कुछ लोग मिश्र बताते हैं, कुछ दीक्षित भी।

4. मुस्लिम-सत्ताकाल में हिन्दू-स्त्री का भी मुसलमान बनना पड़ता था, हिन्दू-पुरुष को भी—मजहब की एकतरफा ताकत प्रेम से बहुत ऊपर थी। सुंदरी का मुसलमान-नाम पता नहीं, आलम का हिन्दू-नाम पता नहीं।

5. “होइया बियाह म्यार करिहो का?”

जो निस्सन्देह आचार्य-रूप में अपनी सर्वांगपूर्णता (रसनिरूपण, अलंकृतसृष्टि, छन्दनिरूपण) के कारण श्रेष्ठतर हैं तथा कवि-रूप में व्यापकता (शृंगारकाव्य, वीरकाव्य, अध्यात्मकाव्य) के कारण रम्यतर। इनकी एक विशिष्टता गद्य के प्रयोग की है, किन्तु वह परिनिष्ठित नहीं है। मातृभाषा होने के कारण इनकी व्रजभाषा सहज एवं सुंदर है। राजा रामसिंह की प्रशस्ति में रचे गए छन्द तो वस यों ही (जैसे आश्रयदाता-प्रधान शास्त्रीयकालीन ढाँचों में फिट कर दिए जाते थे) हैं, किन्तु शृंगाररस के छन्दों में इन्हें (मातुल के स्पष्ट प्रभाव के कारण) अच्छी सफलता प्राप्त हुई है :

ऐसिय कुंज, बनी छविपुंज, रहै अलिगुंजन, यों सुख लीजै।
नैन बिसाल, हिए बनमाल, बिलोकत रूप-सुधा भरि पीजै।।
जामिनि-जाम की कौन कहै, जुग जात न जानिए, ज्यों छिन छीजै।
आनंद यों उमग्योई रहै, पिय मोहन को मुख देखिबो कीजै।।

सुखदेव

“वृत्तिविचार एवं छन्दविचार के कारण मिश्र जी पिंगल के सर्वोत्कृष्ट आचार्य समझे जाते हैं। —मिश्रबन्धु (विनोद)

“वास्तव में वे बहुत प्रौढ़ कवि थे और आचार्यत्व भी इनमें पूरा था। छन्द-शास्त्र पर इनका-सा विशद निरूपण और किसी कवि ने नहीं किया है।” —रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी-साहित्य का इतिहास)

“रीतिकालीन आचार्य-कवियों में मौलिक प्रतिभा के धनी महाकवि सुखदेव मिश्र का व्यक्तित्व बहुमुखी कृतित्व से मंडित है। रस, अलंकार, नायक-नायिका-भेद के निरूपण में तो वे सिद्धहस्त थे ही, पर छन्दशास्त्र के क्षेत्र में तो उनकी क्षमता अद्भुत एवं असाधारण रही है। इस दृष्टि से उनका स्थान समस्त हिन्दी-छन्दशास्त्र के इतिहास में अप्रतिम है। सुखदेव मिश्र एक मेधासम्पन्न कवि एवं आचार्य ही नहीं, वे एक मर्मी पंडित और सिद्ध सन्त के रूप में भा लोकविश्रुत थे।....रीतिकाल की परिस्थितियों में भक्तिकाल की विशिष्ट गरिमा को सँभाले रखना सुखदेव मिश्र के व्यक्तित्व की मौलिकता थी।”²

—डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तव (डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र कृत ‘सुखदेव मिश्र : जीवनी तथा कृतियाँ’ के प्राक्कथन में)

‘रसार्णव’, ‘फाजिलअली-प्रकाश’, ‘रस-रत्नाकर’ के सफल शृंगार-रस-कवि³ ‘मरदान-विरुदावली’⁴ के उल्लेखनीय वीररस-कवि⁵, ‘अध्यात्म-प्रकाश’⁶ के सन्त-कवि तथा ‘वृत्तविचार’, ‘छन्दविचार; एवं ‘छन्दोनिवास’ के हिन्दी-साहित्य में छन्दः शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ आचार्य कविराज सुखदेव मिश्र (1635-1737 ई.) की ‘दशरथराय’, ‘ऋषिभजिनस्तवन’ एवं ‘गुरु-महिमा’ कृतियाँ अनुपलब्ध हैं तथा संस्कृत में प्रणीत ‘मंत्रशास्त्र’ अप्रकाशित (डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र ने एक परवर्ती पत्र में उल्लेख किया था तथा मैंने भी दौलतपुर में इसकी चर्चा सुनी थी)। डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र ने उनकी रचनाओं को इस प्रकार सूचीबद्ध किया है : (अ) - (क) प्रकाशित कृतियाँ 1. फाजिलअली-प्रकाश। 2. अध्यात्म-प्रकाश। 3. रसार्णव। (ख) हस्तलिखित प्रतियाँ 1. वृत्तविचार-पिंगल। 2. छन्द-विचार पिंगल। 3. छन्दोनिवास-सार। 4. रस-रत्नाकर। 5. मरदान-विरुदावली। (ग) अप्राप्य कृतियाँ 1. शृंगारलता। 2. शिखनख। 3. ज्ञानप्रकाश। 4. दशरथराय। 5. पिंगल-भाषा। (आ)—अप्रामाणिक कृतियाँ, 1. ऋषिभजिनस्तवन। 2. गुरुमहिमा। संस्कृत में रचित ‘मंत्रशास्त्र’ एवं अज्ञात-अनुलिखित 266 वीररस-छन्दों का पता मुझे चला है। इस प्रकार, अपने सुदीर्घ जीवन में उन्होंने सत्रह ग्रन्थ लिखे। सुखदेव

1. “मिश्रजी का ऋषिवत् आचरण प्रकट होता है।” (मिश्रबन्धु)

2. शृंगारलता एवं शिखनख अब तक अनुपलब्ध हैं।

3. डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र द्वारा सर्वप्रथम ‘सुखदेव-सौरभ’ में प्रकाशित।

4. सुखदेव मिश्र के उत्तराधिकारी वंशधर श्री फूलचन्द्र मिश्र ‘चन्द्र’ ने 10-2-1987 को दौलतपुर (रायबरेली) में मुझे बताया कि 266 छन्द विद्यमान हैं, जहाँ भूषण का जन्म स्मरण कराते हैं—इन पर पृथक् शोध अपेक्षित है।

5. ‘ज्ञानप्रकाश’ : प्रकाश में नहीं आया।

6. ‘पिंगल-भाषा’ अनुपलब्ध है।

7. कवीर की वास्तविक जीवन काल 1399-1448 ई. है, जैसाकि “चौदहसी-पचपन साल गए चंद्रवार....जेठ....पूरनमासी तिथि प्रगत भए” तथा “संवत् पंद्रहसौ औ पाँच...अगहन सुदी एकादसी मिले पवन में पवन” से प्रमाणित है। तुलसी का जीवन-काल 1532-1623 ई. प्रायः सर्वमान्य है।

मिश्र के मिश्रबन्धु के 'विनोद' में अनुमानित जीवन-काल 1690-1760 वि. (1633-1703 ई.) है किन्तु इससे पूर्व आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ('प्राचीन पण्डित और कवि') के फरवरी 1905 ई. में 'सरस्वती' में प्रकाशित 'सुखदेव मिश्र' शीर्षक द्वितीय (प्रथम अक्टूबर, 1904) आलेख में 'सुखदेव जी का देहान्त हुए प्रायः 150 वर्ष से अधिक नहीं हुआ' अनुमान के अनुसार वे 1755 ई. में दिवंगत हुए। इस हिसाब से यदि वे 1633 ई. में उत्पन्न हुए तो 122 वर्ष जिए, जो कबीर के 120 तथा तुलसी के 126 वर्ष जीने की कथाओं के सदृश युक्तियुक्त नहीं लगता। डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र ने उनका जन्मकाल 1700 वि. (1643 ई.) के लगभग माना है। यदि सुखदेव मिश्र 1643 ई. में उत्पन्न हुए तथा 1755 ई. में दिवंगत हुए तो भी 112 वर्ष जिए; यह भी प्रात्यायिक नहीं लगता। अपने प्रथम ग्रन्थ वृत्तविचार में सुखदेव मिश्र ने रचनातिथि ज्येष्ठ शुक्ल 5, 1728 वि. (1671 ई.) दी है। यदि जन्म 1633 ई. में माना जाए तो प्रथम ग्रन्थ की रचना के समय वे 38 वर्ष के थे, यदि 1643 ई. में उत्पन्न हुए तो 28 वर्ष के। शिष्यों के उल्लेखादि के कारण उनका निधन 1703 ई. मानना कठिन है। 'अध्यात्म-प्रकाश' का रचना-काल एक प्रति में आश्विन शुक्ल 11, 1755 वि. (1698 ई.) दिया है, जिसके आधार पर मिश्रबन्धु ने निधन 1760 वि. (1703 ई.) अनुमाना है, किन्तु कई अन्य प्रतियों में यह 1775 वि. (1718 ई.) लिखा है। भगवतराय खींची की मृत्यु पं. सदानन्द मिश्र कृत 'रासाभगवंतसिंह' के अनुसार मंगलवार, कार्तिक शुक्ल, 9, 1792 वि. (1735 ई.) को हुई, जिस पर सुखदेव मिश्र ने शोक व्यक्त किया था :

भानु प्रभा विनु जैसे सरोज, सरोज बिना गति ज्यों सरसी की।
ज्यों रजनीस बिना निसि को, रजनीस बिना निसि लागति फीकी।।
द्योहरा विनु ज्यों देव, हरा विनु ज्यों छतियाँ औ तिया विनु पी की।
त्यों भुवकंत बिना भगवंत लगे सब अंतरवेद' न नीकी।।²

'सुखदेवस्फुटकाव्यसंग्रह' के लिपिकार ठा. जगन्नाथबख्श सिंह के अनुसार, सुखदेव मिश्र 1805-1806 वि. (1748-1749 ई.) में विद्यमान थे³। 'अवध के प्रमुख कवि' शीर्षक स्मरणीय ग्रन्थ के विद्वान् प्रणेता डॉ. ब्रजकिशोर मिश्र ने सुखदेव मिश्र का जीवन-काल 1690-1800 वि. (1633-1743 ई.) माना है, अर्थात् वे 110 वर्ष जिए। सुखदेव मिश्र के पूर्ववर्ती-समकालीन महाकवि भूषण (1613-1715 ई.) 102 वर्ष जिए थे। सुखदेव मिश्र विरक्त सन्त भी थे, कवि भी। सन्त आज भी अत्यधिक दीर्घजीवी मिल जाते हैं। क्योंकि रोटी-दाल इत्यादि की चिन्ता और तनावों से मुक्ति अपेक्षाकृत अल्प रहती है। आयुष्य-बुद्धि चिन्ता और तनावों के पाटों में भी पिसती है। (व्यसनों में भी)। 19 जून, 1990 को दिवंगत देवरहा बाबा आयुमुक्त माने जाते थे। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद (जन्म 3 दिसम्बर 1884 ई.) पिता के साथ बालक के रूप में दर्शनार्थ गए थे। तब भी वे आयुरहित माने जाते थे, किन्तु उन्हें प्रायः 80 वर्ष के लगे थे। वैसे संत-परम्परा के उत्तराधिकारी भी सोइह वन या बना दिया जाता है। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी 102 वर्ष के होकर दिवंगत हुए। कवियों में भूषण 102 वर्ष जिए। लेखकों में सन्तराम वी. ए. 102वें वर्ष में दिवंगत हुए। विश्वकर्मा (एजिनीअर)—राजनीतिज्ञ भारतरत्न ('सर' भी) मोक्षगुंडम् विश्वेश्वरैया (1861-1962 ई.) जैसे अन्य उदाहरण भी मिलते हैं। नेताओं में मोरारजी देसाई सौवें वर्ष में दिवंगत हुए तथा गुलजारीलाल नंदा सौ पार (1997 ई.) करके भी जीवित रहे। वेदमूर्ति सातवलेकर 100 वर्ष पूर्ण करने के अनन्तर दिवंगत हुए थे। इतिहासकार ईश्वरीप्रसाद (1888-1986 ई.) 98 वर्ष जिए थे। 'बौद्धकालीन भारत' एवं 'अशोक के धर्मलेख' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थों के प्रणेता तथा निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट के सुपुत्र पं. जनार्दन भट्ट ने 25 दिसम्बर, 1989 को 100 वर्ष पूर्ण किए। तब दिवंगत हुए। साहित्यकार श्रीनारायण चतुर्वेदी 97-98, कवि मुकुटधर पाण्डेय 95-96 में दिवंगत हुए थे। ऐसे अन्य अनेक निदर्शन भी उपलब्ध हैं। अतः अब (2002 ई.) मैंने पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र का जीवनकाल 1635-1737 ई. ही उपयुक्त माना है (गहन शोध के अभाव में अब तक मिश्रबन्धु प्रतिपादित 1690-1760 वि. अर्थात् 1633-1703 ई. मानना गलत था)। मेरे विचार से सुखदेव मिश्र का जन्म 1635 ई. कम्पिला (ज़िला फ़र्रुखाबाद) में हुआ उन्होंने काशी में प्रख्यात विद्वान् एवं कवि कवीन्द्राचार्य सरस्वती से उच्चतम शिक्षा

1. गंगा-यमुना-मध्यवर्ती भूभाग अंतर्वेद कहलाता था। अब भी प्रसिद्ध है।

2. शिवसिंह कृत 'सरोज', पृष्ठ 324। भगवतराय खींची (राज्यकाल 1713-35 ई.) पर श्री विश्वेश्वरप्रसाद एवं श्री विश्वभरप्रसाद 'गुप्तबन्धु' ने 'अनल प्रकाश' महाकाव्य में पर्याप्त प्रकाश डाला है तथा उनके वंशज डॉ. महेन्द्रप्रताप सिंह ने 'भगवतराम खींची और उनके मंडल के कवि' शीर्षक शोधप्रबंध लिखा है।

3. 'सुखदेव मिश्र : जीवनी तथा कृतियाँ', पृष्ठ. 73।

प्राप्त की, अनेकानेक स्थानों में घूमे, 1671 ई. में 36 वर्ष की प्रौढ़ स्थिति में 'वृत्तविचार' रचा, 1676 ई. में उन्होंने अपना प्रसिद्ध शृंगारकाव्य 'फाजिलअली-प्रकाश' रचा, 1678 ई. में उन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ शृंगारकाव्य 'रसार्णव' रचा जो मतिराम के 'रसराज' के समकक्ष है, अन्य ग्रन्थ रचे, 1698 ई. में 'अध्यात्म-प्रकाश' से प्रकाशित हुए, दौलतपुर (ज़िला रायबरेली) में बस गए, 'मन्त्रशास्त्र' (संस्कृत) एवं वीररस-छन्द रचते हुए विरक्त जीवन व्यतीत किया, भगवन्तराय खींची के निधन से व्यथित होने पर भी दो-तीन वर्ष रहने के उपरान्त, वे 102 वर्ष की आयु में दौलतपुर में ही दिवंगत हुए। मुरारमऊ के राजा देवीसिंह ने आग्रह करके उन्हें दौलतपुर में बसाया, यह ग्राम गुरुक्षिणारूप में उनके पुत्रों को प्रदान किया (क्योंकि वे विरक्त हो चुके थे); जहाँ उनके अनेक वंशज आज भी विद्यमान हैं (अनेक मूल एवं अन्य ज्ञात-अज्ञात पांडुलिपियाँ भी इनके पास हैं)।

महान् गुरु : गुरुनां गुरु

मिश्रवन्धु के अनुसार, "डौंडियाखेरा के राव मर्दनसिंह (मर्दानसिंह) की इन पर विशेष श्रद्धा हुई।¹ भगवन्तराय की भाँति यह भी सुखदेव के शिष्य हो गए।" अमेठी के राजा हिम्मतसिंह भी इनके शिष्य थे। पूर्ववर्ती धारणा से भिन्न, अब मैं 'गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि' ग्रन्थ में उल्लिखित सुखदेव को सुखदेव मिश्र ही मानता हूँ। दुर्गा या चण्डी के भक्त गुरु गोविन्दसिंह सुखदेव के ही सदृश शाक्त थे। सुखदेव ने 'गुरुमहिमा' भी लिखी थी। फ़ाज़िलअली शाह औरंगज़ेब के सामन्त या मन्त्री थे, जिनका बाप इनायत ख़ाँ बहुत प्रभावी प्रशासक एवं सेनप था। 1676 ई. में सुखदेव ने 'फ़ाज़िलअली-प्रकाश' रचा, अतः उनका दिल्ली-प्रवास स्पष्ट है। उनका दिल्ली-सम्बन्ध बाद तक बना रहा। दयावाई एवं सहजोवाई के गुरु सन्त चरणदास (जिनका स्थान दिल्ली में था जहाँ के चावड़ी बाजार क्षेत्र में स्मारक विद्यमान है)। सुखदेव के शिष्य थे जैसाकि मायाशंकर याज्ञिक ने भी माना है, जो स्वामी अखेराम (जो सुखदेव एवं चरणदास दोनों की वन्दना करते हैं) कृत 'गंगामाहात्म्य' (हस्तलिखित प्रति काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में विद्यमान) के आवरणपृष्ठ से प्रमाणित है :

जय जय श्री सुखदेव गुसाईं। ग्यान-भान जग प्रगटे आई।।
जिनके चरणदास विख्याता। पारब्रह्म में निसिदिन राता।।
गुरु छौना पर भए कृपाला। तिनकू ग्यान दियौ ततकाला।।
गुरु छौना गुरु पुर वे आसा। तिनकू अखेराम है दासा।।

स्पष्ट है कि सुखदेव मिश्र स्वामी अखेराम के गुरुनां-गुरु थे। भगवन्तराय खींची और मर्दनसिंह जैसे वीर राजाओं के गुरु सुखदेव मिश्र चरणदास और अखेराम जैसे सन्तों के गुरु भी थे—आचार्य-कवि शंभुनाथ मिश्र (जिन्होंने रसतरंगिणी में सुखदेव को गुरु-रूप में वन्दित किया है)², शंभुनाथ बन्दीजन (जिन्होंने 'रामविलास-रामायण' में सुखदेव की चरणवन्दना की है³ तथा शिवसिंह सेंगर एवं महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इन्हें सुखदेव मिश्र का शिष्य माना है), शम्भुनाथ त्रिपाठी (वैतालपचीसी इत्यादि के अनुवादक जिन्हें डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र ने सुखदेव मिश्र का शिष्य बताया), शम्भुनाथ शुक्ल (स्फुटछन्दकार जिन्हें डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र सुखदेव मिश्र का शिष्य बताते हैं), जयदेव कपिला वाले (जिनका करुण-रस-छन्द फ़ाज़िलअली-प्रकाश में स्वयं सुखदेव मिश्र ने उद्धृत किया है तथा जिनको ग्रीअर्सन एवं महावीरप्रसाद द्विवेदी उनका शिष्य मानते हैं) जैसे कवियों के गुरु भी थे। निस्सन्देह पंथ-मुक्त आध्यात्मिक क्षेत्र में सुखदेव मिश्र

1. प्रसिद्ध है कि मरणासन्न मर्दनसिंह इस छन्द के गंगाजल में घोलकर पिलाए जाने पर जीवित हो उठे थे।

अरिमंडल फोरि फत्ते करिके पर फौजन फारिके नाखिवो है।

बहुसंख्यक छन्द-प्रबन्ध बनाय हमें जस रावरो भाखिवो है।।

अकुलाने कहा मरदाने अवै रस सोनन ते तुम्हें चाखिवो है।

रघुनायक राम की नाई तुम्हें जग में रहिवो जग राखिवो है।

कालान्तर में रुष्ट होकर वंशनाश-शाप दिया जो चरितार्थ हुआ। सुखदेव-वंशधर तक डौंडियाखेरा नहीं जाते।

2. डॉ. आनन्दप्रकाश ने 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में सुखदेव मिश्र को शम्भुनाथ मिश्र का गुरु माना है।

3. श्री गुरु कवि सुखदेव के चरनन ही को ध्यान।

निर्मल कविता करन को बहै हमारे ज्ञान।।

का गुरुत्व महान् रामानन्द के अनन्तर तथा साहित्यिक क्षेत्र में सुखदेव मिश्र का गुरुत्व उन्हीं के ग्रामवासी महान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनन्तर समग्र हिन्दी-साहित्येतिहास में अतुलनीय है। उनके चमत्कारों की जिन कथाओं का उल्लेख आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र ने किया है (स्वयं मैंने अनेक स्रोतों से अनेक-काशी से दौलतपुर तक- सुनी हैं) वे उनके महान् व्यक्तित्व एवं उत्कृष्ट कृतित्व को ही विवृत करती हैं।

विराट् अटन : लाभ एवं हानि

सुखदेव मिश्र का अटन अत्यन्त विराट् था। कम्पिला आज के फर्रुखाबाद¹ जिले में है, जहाँ इनका जन्म हुआ। कम्पिला प्राचीन पांचाल राज्य की राजधानी कम्पिलय थी जहाँ के द्रुपद, द्रौपदी, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी इत्यादि महाभारत-पात्र अद्यावधि विख्यात हैं। सुखदेव मिश्र एक प्रसिद्ध विद्वान-परिवार में उत्पन्न हुए। ये लोग शुक्ल थे जो सम्भवतः अकबर के द्वारा किसी को 'मिश्रजी' कहे जाने के कारण मिश्र कहे गए।² अकबर सारे ब्राह्मणों को 'मिश्र' ही कहते थे, क्योंकि यह सारे ब्राह्मणों को प्राचीन विशेषण रहा है जैसाकि मंडन मिश्र, श्रीहर्ष मिश्र इत्यादि से स्पष्ट है—पांडे या पांडेय, शुक्ल, तिवारी या त्रिपाठी या त्रिवेदी, दीक्षित इत्यादि विशेषण बहुत परवर्ती हैं (भट्ट विशेषण अवश्य प्राचीन है किन्तु यह राजसभावद्ध-सा रहा है जिसके कारण 'भट्ट-भणत' इत्यादि के व्यंग्य चले।) मकरंद पांडे के पुत्र रामतनु या तन्ना या तन्नू अकबर द्वारा 'मिश्रजी' कहे जाने पर ही रामतनु मिश्र (कालान्तर में मियाँ तानसेन) हो गए थे।³ परिवार-परम्परा के अनुसार सुखदेव भी विद्याध्ययन हेतु काशी गए जहाँ प्रसिद्ध विद्वान् कवीन्द्राचार्य सरस्वती⁴ के शिष्य⁵ के रूप में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, व्रजभाषा, अवधी इत्यादि भाषाओं तथा वेद, उपनिषद् शास्त्र, तन्त्र, पुराण इत्यादि का गम्भीर अध्ययन किया। मुझे कवीन्द्राचार्य सरस्वती की कविता में अवधी⁶ का प्रयोग सुखदेव मिश्र के सम्पर्क का परिणाम लगता है, क्योंकि वे दक्षिण में गोदावरी-तट के किसी स्थान⁷ के निवासी थे। दक्षिणात्य पण्डितराज जगन्नाथ के सदृश दक्षिणात्य कवीन्द्राचार्य सरस्वती का शाहजहाँ (राज्यकाल 1627-1658 ई.) पर भारी प्रभाव था, जिसने इनके आग्रह पर ही काशी-प्रयाग इत्यादि के यात्रियों पर धर्मकर रुकवाया था।⁸ कवीन्द्राचार्य सरस्वती के योगवासिष्ठसार, समरसार तथा कवीन्द्र-कल्पनलता नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें अन्तिम में शाहजहाँ, उसके प्रियतर ज्येष्ठ पुत्र दारा एवं उसके प्रिय नगर शाहजहानाबाद (दिल्ली-लालकिले, जामामस्जिद और चौदनी चौक वाली नौ दिल्लीयों में से आठवीं दिल्ली)⁹ का वर्णन किया गया है। 'विनोद' से शाहजहानाबाद से सम्बद्ध छन्द प्रस्तुत है :

मंदर ते ऊँचे मनि मंदिर ये सुंदर हैं, मेदिनी-पुरंदर को पुर दरसत है।
हिय में हुलास होत नगर विलास लखि, रूप कयलास हू ते अति सरसत है।।
दुंदुभि मृदंग नाद¹⁰ विविध सुबाद जहाँ, साहिजहाँबाद अति सुख बरसत है।
छहौ रितु छाई छाजै आछी छवि देखन को, मानुष की कहा कहै इंद्र तरसत है।।

1. बादशाह फर्रुखसियार पर नामित प्राचीन गंगातटवर्ती स्थान। यहाँ 1907 ई. में महावेदी का जन्म हुआ।
2. बसत तहाँ षटकुल बड़े सुकुल अवनि के देव।
जिनके कुल में अवतरे सुमति मिश्र सुखदेव।। (फ़ाज़िलअली-प्रकाश 1/38)
3. "कहा जाता है कि अकबर-दरबार के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन का असली नाम तन्ना मिश्र था और उसके पिता का नाम मकरंद पांडे। कुछ लोग पांडेजी को मिश्र कहते थे।" (प्रो. हरिश्चंद्र श्रीवास्तव कृत 'राग-परिचय' भाग 2, पृष्ठ 134)
4. 'सरोज' में कवीन्द्राचार्य सरस्वती का समय 1622 वि. (1565 ई.) दिया है, 'विनोद' में 1650 वि. (1593 ई.), किन्तु 'समर-सार' के रचनाकाल 1687 वि. (1630 ई.) से विद्यमानता प्रमाणित है।
5. सुखदेव-सौरभ (सं. डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र), पृष्ठ 2।
6. 'विनोद' (1779 ई. का संस्करण), पृष्ठ 243।
7. 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग 2, पृष्ठ 79 (डॉ. रामसिंह तोमर)।
8. वही।
9. दे. मेरा 'दिल्लीनामा', विशेषतः 'कहानी नौ दिल्लीयों की' निबन्ध।
10. आज भी दिल्ली के लाल किले में 'नक्काखाना' (भवन) देखा जा सकता है।

अजमेर-प्रवास में इन्हें दिल्ली-यात्रा की प्रेरणा मिली। इनायत खाँ वहाँ फ़ौज़दार था, जिसके पुत्र फ़ाजिलअली से इनकी घनिष्ठता हुई, जिसका परिणाम 'फ़ाजिलअली-प्रकाश' (1776 ई.) के रूप में व्यक्त हुआ। एक बार फ़ाजिलअली के 'पंडितजी, नगाड़ा क्या कहा है?' प्रश्न पर इन्होंने जो उत्तर दिया उससे इनके विरक्तिमय जीवन की झलक मिलती है :

द्वार दमामा ना वजत, कहत पुकार-पुकार।

हरि न भजे ते पसु भए, परत चाम पर मार।।

फ़ाजिलअली के औरंगज़ेब के निकट होने के कारण सुखदेव मिश्र ने 'फ़ाजिलअली-प्रकाश' में उसकी प्रशंसा की है :

जेती पर पृथु-रथ फिर्यो, जेती धरी फनीस।

तेती जीती अवनि है औरंगज़ेब दिलीस।।

ऐसा लगता है कि औरंगज़ेब द्वारा वृद्ध हथिनी के अनुपयुक्त उपहार पर इन्होंने व्यंग्यकाव्य का एक अमूल्य छन्द रचा :

तिमिर लंग लड़ मोल, चली बाबर के हलके।

रही हुमायूँ संग, फेरि अकबर के दल के।।

जहाँगीर जस लियो, पीठि को भार हटाओ।

साहजहाँ करि न्याव ताहि पुनि माँड़ चटायो।।

बलरहित भई, पौरुष थक्यो, भगी फिरति बन स्यार डर।

औरंगज़ेब करिनी सोई लै दीन्हीं कविराज कर।।

इनायत खाँ के हिन्दू-विद्वेष, औरंगज़ेब के हिन्दू-घात एवं कार्पण्य इत्यादि से क्षुब्ध होने के कारणों से विरक्त होकर, दिल्ली से हटकर, सुखदेव मिश्र उन्नाव जनपद में बक्सर² के प्रसिद्ध गंगातट-स्थित चंद्रिकादेवी-मन्दिर के समीप कुटी बनाकर रहने लगे। इस प्रवासकाल में उनका सम्पर्क कई राजाओं से हुआ। तथा अन्ततः वे कुछ ही दूर स्थित रायबरेली जनपद के दौलतपुर में रहने लगे, जहाँ कम्पिला से अपना परिवार भी बुलवा लिया। किन्तु वे ग्राम से कुछ दूर विरक्तवत् ही रहे। उनकी सुदीर्घ जीवन-यात्रा में कम्पिला, काशी, अजमेर, दिल्ली, श्रीनगर (गढ़वाल), बीकानेर, असोथर (फ़तेहपुर), बक्सर एवं डौंडियाखेरा (उन्नाव), अमेठी (सुल्तानपुर), दौलतपुर (रायबरेली) इत्यादि कई पड़ाव पड़े, जिसका कारण उनका आद्यन्त प्रवृत्ति-निवृत्ति-द्वन्द्व रहा, जो दौलतपुर-निवास (जहाँ वे दिवंगत भी हुए) तक में विद्यमान रहा :

मैं इन पूत कपूतन सों अधीन है-है कै दोऊ कर जोड़्यों।

वाँध्यो रह्यो ममता की बरारन ज्यों बली बैल फिर्यों गड़ गोड़्यों।।

छाँड़िकै राधा औ कृष्ण को नाम अजान है कै यह ऊसर³ तोड़्यों।

एक दिना यह छाँड़िहैं मोहिं यहै जिय जानि इन्हैं मैं छोड़्यों।।⁴

विराट् अटन से उन्हें ज्ञान-लाभ हुआ, सत्संग-लाभ हुआ, गुरु गोविन्दसिंह के सम्पर्क से वे 'गुरुमहिमा-संपृक्त हुए, सन्त चरणदास एवं स्वामी अखेराम के गुरु हुए, कम्पिला के जयदेव से अन्तर्वेद के शम्भुनाथ मिश्र तक अनेक कवियों के गुरु हुए, ऋषिवत् पूज्य बने; किन्तु इससे उनका परिचय विशृंखल हो गया, उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर भारी भ्रम उत्पन्न हो गया।

1. कालिदास त्रिवेदी, सबलसिंह चौहान इत्यादि ने भी औरंगज़ेब की प्रशंसा की है, किन्तु वह भी सुखदेव मिश्र की प्रशंसा के सदृश ही चलताऊ है, बताऊ नहीं। इसे वैसी ही प्रशंसा कहा जा सकता है जैसी आधुनिक कवियों ने गाँधी (पाकिस्तान जिनकी 'लाश' पर नहीं बना—जिन्होंने पाकिस्तान को बलात् 55 करोड़ रुपए दिलाए) एवं नेहरू (जिन्होंने विहार के हिन्दुओं तथा कश्मीर का सर्वथा प्रतिवार्य विभाजन किया जैसे सत्ताधारियों की है। इसे तूल देना मुटमरदी है।
2. विहार में भी बक्सर है और वह भी गंगातट पर ही है, जहाँ के विश्वामित्र-आश्रम में राम-लक्ष्मण ने यज्ञ-रक्षा की थी, जहाँ 1761 ई. में प्रसिद्ध युद्ध हुआ। उन्नाव जनपद के इस बक्सर में आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी का भी आना-जाना रहा। उनके एक शिष्य एवं 'सरस्वती' के एक सम्पादक देवीदत्त शुक्ल (1887-1971 ई.) का जन्म यहीं हुआ था (निधन प्रयाग में जहाँ सपरिवार बस गए थे)।
3. ऊसर (धुरियाँधरग, बीहड़, गंगातट-नालों वाला दुर्गम) को दौलतपुर बनाने का कठिन कार्य सुखदेव मिश्र ने ही किया। वस्तुतः वे ही दौलतपुर के संस्थापक थे।
4. 'गोड़्यों' पाठ सुना भी है, पढ़ा भी; किन्तु एक तो यह तुक ठीक ऊपर की पंक्ति में विद्यमान है, दूसरे 'ऊसर तोड़ना' मुहावरा प्रचलित भी है।
5. दौलतपुर-प्रवासकाल में भी वे तीर्थ-यात्राएँ करते रहे। मथुरा, हरिद्वार प्रभृति की किसी ऐसी तीर्थयात्रा में ही चरणदास शिष्य बने।

विद्वानों के भ्रमावर्त में

शम्भुनाथ मिश्र, शम्भुनाथ बन्दीजन, शम्भुनाथ त्रिपाठी, शम्भुनाथ शुक्ल, स्वामी अखेराम, भिखारीदास, रघुराजसिंह इत्यादि ने सुखदेव मिश्र का सादर उल्लेख किया है। इन सब पर उनका किसी-न-किसी रूप में प्रभाव पड़ा है। किन्तु अनुरक्ति-विरक्ति के द्वन्द्व, विविधस्थानवास, कहीं 'सुखदेव', कहीं 'मिश्र सुखदेव', कहीं 'कविराज' की छापों प्रभृति कारणों से उनके व्यक्तित्व-कृतित्व के सन्दर्भ में अनेक भ्रम उत्पन्न हो गए :

1. सूदन ने 'सुजान-चरित्र' (1750 ई. के आसपास) महाकाव्य की कवि बन्दना में 'सुखदेव' एवं 'कविराज' को दो कवियों के रूपों में लिखा है, जो गलत है।

2. गार्सा द तासी (जिसके 1839 ई. एवं 1847 ई. में प्रकाशित द्विखण्डकीय 'इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' के हिन्दी-उर्दू खिचड़ी-कवियों के हिन्दी-अंश का डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ण्य ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' के रूप में अनुवाद किया है) ने ओरछा के राजा मर्दनसिंह के आश्रित-कवि के रूप में 'रसार्णव', 'भाषा-पिंगल', 'रस-रत्नाकर', 'फाजिलअली-प्रकाश', 'अध्यात्म-प्रकाश' इत्यादि के प्रणेता सुखदेव की निराधार कल्पना की है। उसका सारा विवरण ऊटपटाँग है। उसका सुखदेव को व्यास-पुत्र सुखदेव कहना तो प्रचंड-मूर्खतापूर्ण ही है।

3. शिवसिंह के 'सरोज' (1878 ई.) में तीन सुखदेव मिश्र विद्यमान हैं—एक राजा राजसिंह गौर के आश्रय में 'वृत्तविचार' नामक 'सर्वोत्तम-पिंगल-ग्रन्थ', राजा हिम्मतसिंह के आश्रय में 'छन्दविचार' तथा फाजिलअली खॉ के आश्रय में 'फाजिलअली-प्रकाश' के प्रणेता कम्पिला के सुखदेव मिश्र, जिनके 'अध्यात्म-प्रकाश' एवं 'दशरथराय' ग्रन्थ भी उन्होंने देखे थे : दूसरे राव मर्दनसिंह के आश्रय में 'रसार्णव' के प्रणेता सुखदेव मिश्र; तथा तीसरे राजा भवगन्तराय खींची के आश्रित सुखदेव मिश्र (जिनकी रचना का नाम नहीं दिया); किन्तु दूसरे-तीसरे के एक होने की सम्भावना भी व्यक्त है। निर्विवाद रूप से ये तीनों सुखदेव एक हैं; जैसाकि दौलतपुर के वंशजों के विचारों एवं पांडुलिपियों से स्पष्ट है। डॉ. किशोरीलाल गुप्त, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र इत्यादि के अधुनातन शोध भी इन तीनों को एक मानते हैं।

4. सर जॉर्ज एब्राहम ग्रीअर्सन (जिनके 1889 ई. में प्रकाशित 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ नॉदर्न हिन्दुस्तान' का भ्रामक-शीर्षकपूर्ण अनुवाद 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने किया है) ने प्रायः शिवसिंह का अनुकरण किया है—उनके अनुसार कम्पिला के सुखदेव मिसिर¹ 1700 ई. के आसपास विद्यमान थे तथा दौलतपुर के सुखदेव मिश्र 1740 ई. में विद्यमान थे जिनकी रचनाएँ बलदेव कवि सम्पादित 'सत्कवि-गिरा-विलास' एवं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्पादित 'सुन्दरी-तिलक' में प्राप्त हैं तथा जिनका अल्लेख भिखारीदास के 'काव्य-निर्णय' में किया गया है और यह भाषा-साहित्य के आचार्यों में परिगणित हैं। ये दोनों सुखदेव एक ही हैं भिखारीदास ने केवल 'मिश्र सुखदेव' को ही आप्तकवियों में प्रतिष्ठित किया है :

सूर, केशव, मंडन, बिहारी, कालिदास², ब्रह्म³, चिन्तामणि, मतिराम, भूषण सु जानिए।
लीलाधर, सेनापति, निपट⁴, नेवाज, निधि⁵, नीलकंठ, मिश्र सुखदेव, देव मानिए।।
आलम, रहीम, रसखान, सुन्दरादिक⁶ अनेकन सुमति भए, कहाँ लौं बखानिए।
ब्रजभाषा हेतु ब्रजभास न ही न अनुमानौ, ऐसे-ऐसे कबिन की बानी हूँ सों जानिए।।

1. मिसिर मिश्र को ही कहते हैं। इन विशेषणों में कोई अन्तर नहीं है।

2. कालिदास त्रिवेदी ('हज़ारा' वाले)।

3. बीरबल उपनाम 'ब्रह्म'।

4. निपटनिरंजन सन्त-कवि थे।

5. तोषनिधि।

6. एक अतिप्रसिद्ध सुन्दरदास सन्त-कवि (1596-1689 ई.), दूसरे प्रसिद्ध 'सुन्दरभृंगार' (1631 ई.) के शास्त्रीय-कवि सुन्दर जो शाहजहाँ के आश्रित थे, जिसने इन्हें 'महाकविराय' की पदवी प्रदान की थी—इन्होंने उदाहरणों में कहीं कृष्ण तो कहीं शाहजहाँ (जिसने 5000 स्त्रियों को भोगा तथा भोग-रोग में बन्दी बनाया गया और मरा) को ही नायक बना डाला है। यहाँ अभिप्राय इन्हें दूसरे सुन्दर कवि से है।

महाराज रघुराजसिंह ने भिखारीदास के इसी कवित्त से प्रभावित होकर इस मौलिक अतिरंजित-सूरप्रशस्ति की रचना की और इसमें भी सुखदेव विद्यमान हैं (किसी भी दृष्टि से 'एक सुखदेव' की पुष्टि)

मतिराम, भूषण, बिहारी, नीलकंठ, गंग, बेनी¹, संभु², तोष, चिन्तामणि, कालिदास की।
ठाकुर, नेवाज, सेनापति, सुखदेव, देव, पजन³, घनानन्दरु घनश्यामदास की।।
सुन्दर, मुरारि, बोधा, श्रीपति हू दयानिधि, जुगल, कविन्द⁴, ल्यों गोविन्द, केशोदास की।।
'रघुराज' और कविगन की अनूठी उक्ति मोहि लगी झूठी जानि झूठी सूरदास की।।

(संयोगात् ही नहीं प्रत्युत विवेकात् दोनों कवियों ने तुलसीदास का उल्लेख नहीं किया।)

5. सुखदेव मिश्र पर प्रथम अधिकारपूर्ण, शोधपूर्ण, प्रात्ययिक एवं प्रामाणिक सामग्री उन्हीं के ग्रामवासी अतिविख्यात आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.) ने महान् 'सरस्वती' के अक्टूबर, 1904 एवं फरवरी, 1905 ई. के 'सुखदेव मिश्र' शीर्षक आलेख में प्रस्तुत की जो 'प्राचीन पण्डित और कवि' ग्रन्थ में भी संगृहीत है। आ. द्विवेदी ने शिवसिंह एवं ग्रीअर्सन के भ्रमों का निराकरण करते हुए 'कम्पिला वाले', 'अन्तर्वेदवाले' (असोथरवाले) एवं दौलतपुरवाले सुखदेव को एक ही कवि माना, जिसके कारण मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' (1913 ई.) एवं आ. रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) में मानक विवरण सम्भव हो सका (भले ही उनके जीवन एवं वैयक्तिक महत्त्व पर पूर्ण प्रकाश न पड़ा सका हो)। किन्तु आ. द्विवेदी ने केवल 'रसाणव', 'वृत्तिविचार-पिंगल', 'शृंगारलता' एवं 'फाजिलअली-प्रकाश' को ही सुखदेव कृत माना (कालान्तर में 'अध्यात्म-प्रकाश' को भी)⁵, जिससे परवर्ती अनुकरणकर्ताओं ने अनेक भ्रम खड़े किए उनके जीवन-विवेचन में भी अनेक त्रुटियाँ हैं।⁶ 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' में पल्लवग्राही डॉ. मनमोहन गौतम ने आ. द्विवेदी की ग्रंथसंख्यागत त्रुटि को बड़ी मजबूती से पकड़ा, जिसका निराकरण विषय के मूलविज्ञ अधिकारी विद्वान् डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र ने किया है।⁷ मैंने इस निबन्ध में उनके जीवन पर अपेक्षाकृत-पूर्ण एवं मौलिक-विन्दुसम्पन्न प्रकाश डालने का यत्न किया है।

डॉ. नगेन्द्र सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश' (1981 ई.) में 'सुखदेव मिश्र कम्पिलावाले' लिखा जाना शिवसिंह एवं ग्रीअर्सन की कालातीत त्रुटियों का चर्वित-चर्वण मात्र व्यंजित करता है। डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र सम्पादित 'सुखदेव-सौरभ' की दैनिक 'हिन्दुस्तान' (20-2-1979, पृष्ठ 4) में समीक्षा करते हुए डॉ. महेन्द्रप्रताप सिंह ने भी कम्पिलावाले सुखदेव एवं दौलतपुरवाले सुखदेव को दो मानने का रमरसरा छेड़ा है। वे शिवसिंह को आ. द्विवेदी एवं मिश्रबन्धु पर वरीयता तक दे डालते हैं। 'साहित्य-समालोचक' (भाग 3, संख्या 1, 1926 ई.) के 'सुकवि सुखदेव' आलेख में पं. कृष्णविहारी मिश्र ने कम्पिला के दो सुखदेवों की अनावश्यक कल्पना करते हुए भी एक ही सुखदेव स्वीकार किया है। स्व. श्रीमदनमोहन मिश्र सम्पादित 'भूला जनपद बिखरा इतिहास' (रायबरेली, 1984 ई.) जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ में सुखदेव मिश्र का जन्म दौलतपुर में लिखा होना गलत है—दौलतपुर ने सुखदेव को नहीं, सुखदेव ने दौलतपुर को जन्म दिया। एक बेहरद ऊटपटाँग कल्पना 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में 'सं.' (धीरेन्द्र वर्मा या ब्रजेश्वर वर्मा या रामस्वरूप चतुर्वेदी या रघुवंश?) ने की है, जिसके अनुसार मान (बैसवाड़ा, रायबरेली)⁸ नामक 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (1850 ई. के बाद) के 'कृष्णकल्लोल'-कार-कवि 'कम्पिलानिवासी सुखदेव मिश्र के काव्य गुरु थे' (मज़ा यह है कि इसी 'कोश' में 'सं.' ने ही सुखदेव मिश्र का काल 1633-1703 ई., मिश्रबन्धु के अनुमानित 1690-1760 वि. के आधार पर आँख मूँदकर, किन्तु विना उल्लेख किए, लिखा है तथा गुरु-नाम कवीन्द्राचार्य सरस्वती भी दर्ज है)—क्यों न लोग हिन्दी का मज़ाक उड़ाएँ।

1. बेनी प्रवीन लगते हैं, बेनी बन्दीजन नहीं।

2. शंभुनाथ मिश्र।

3. पजनेस।

4. कवीन्द्र उदयनाथ जो कालिदास त्रिवेदी के पुत्र तथा दूल्ह के पिता थे।

5. सुखदेव मिश्र : जीवनी तथा कृतियाँ, पृष्ठ 38।

6. वही, पृष्ठ 38-40।

7. वही, पृष्ठ 40-41।

8. बैसवाड़ा या बैसवारा पुराने बैस ठाकुरों का राज्य था जो आज के उन्नाव-रायबरेली जदपद-द्वय के अंचलों में प्रसारित है तथा साहित्यकारों के जन्म की दृष्टि से अतुलनीय है। बैसवारा स्थान एवं स्थिति भी है।

‘सुखदेव मिश्र कपिलावाले’, ‘सुखदेव मिश्र अंतर्वेदवाले’, ‘सुखदेव मिश्र दौलतपुरवाले’ जैसी चर्चा ठीक वैसी ही होगी जैसी ‘मीर आगरावाले’, ‘मीर दिल्लीवाले’, ‘मीर लखनऊवाले’ की—‘भारतीय साहित्य कोश’, ‘हिन्दी साहित्य कोश’ इत्यादि में ऐसी चर्चा नितान्त खेदजनक है क्योंकि ‘विनोद’ एवं ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ ऐसी त्रुटियों का परिहार कर चुके हैं (डॉ. महेन्द्रप्रताप सिंह जैसे शिवसिंह एवं ग्रीअर्सन की घिसी-पिटी लकीर पीटनेवालों को उपेक्षा का न्याय प्रदान किया जा सकता है)—और, अब तो ‘सुखदेव मिश्र : जीवनी तथा कृतियाँ’ जैसा मानक शोधग्रन्थ उपलब्ध है।¹ ‘सुखदेव’ या ‘कविराज’ की छापों में दो कवियों की मान्यता ठीक वैसी ही होगी जैसी ‘असद’ या ‘ग़ालिब’ को दो मानने की। यह सत्य है कि सुखदेव (गोलापुर) भी हुए हैं जिन्होंने ‘वाणिकप्रिया’ एवं ‘वाणिज्यभेद-दर्शन’ (1660 ई.) लिखे, जिन्हें मिश्रबन्धु ने ‘निम्नश्रेणी’ प्रदान की है तथा एक अन्य सुखदेव कायस्थ (मैनपुरी) भी हुए हैं जिन्होंने गद्य-पद्य-मिश्रित ‘मानसहंस-रामायण’ (1731 ई.) की रचना की और ये दोनों सुखदेव पिंगलाचार्य सुखदेव मिश्र के समकालीन से थे, किन्तु इनका साहित्येतिहास में कोई विशेष स्थान नहीं है। ‘कम्पिलावाले’, ‘अन्तर्वेदवाले’ और ‘दौलतपुरवाले’ सुखदेव तीन या दो न होकर एक हैं, जैसा कि आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, आ. रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. ब्रजकिशोर मिश्र, डॉ. किशोरीलाल गुप्त, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र इत्यादि अधिकारी विद्वान स्वीकार करते हैं। मेरे मत से, गुरु गोविन्दसिंह के सभा-कवियों में एक यही सुखदेव थे, संत चरणदास एवं अखेराम के गुरु यही सुखदेव थे। कविराज (रचनाकाल 1824 ई.) नाम या उपाधि के एक महानुभाव भी हुए हैं किन्तु उनका व्यक्तित्व अज्ञातप्राय है, कृतित्व अनुपलब्ध और ‘तिमिर लंग लड़ मोल’ हथिनी वाले कविराज या सूदन के ‘सुजान-चरित्र’ में चर्चित कविराज इनसे बहुत पूर्व के हैं, जो यही सुखदेव ही हैं अतः सुखदेव या सुखदेव मिश्र या कविराज से हिन्दी साहित्येतिहासगत अभिप्राय केवलमात्र पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र से ही है। आ. शुक्ल ने ऐसा ही समझा भी है।² वैसे, कुल चार सुखदेव हुए हैं।

महान् धर्मनिरपेक्ष मानवतावादी प्रतिभा

हिन्दी-कविता प्रकृत्या धर्मनिरपेक्ष एवं मानवतावादी है, जिसमें संकीर्णताएँ दृग्गत नहीं होतीं। हिन्दूधर्म सत्कर्म को बरीयता प्रदान करता है, अन्य धर्मों तथा मजहबों पर प्रहार नहीं करता, दूसरों को धनमूलक साधनों (अस्पतालों, स्कूलों, अनाथालयों इत्यादि या नौकरी या नकद) के आधार पर हिन्दू बनाने का धर्मव्यापार-कृत्य नहीं करता, बलात् धर्मपरिवर्तन नहीं करता; वैसे, आस्था पर आधृत उसके धर्मद्वार सदैव खुल रहे हैं—गंधर्व, नाग, किन्नार, यक्ष, दरद, काम्बोज, ईरानी, आभीर, खस, यूनानी, शक, हूण, तुर्क इत्यादि ही नहीं प्रत्युत गौरांगों के निदर्शन भी विद्यमान हैं।³ हीनभाववश विकसित-अद्वैतवाद से सम्पन्न हिन्दूधर्म पर सदैव प्रहार किए गए हैं, किन्तु इस-सबके बावजूद उदार ही रहा है। मनु ने ‘वेदोऽखिलो धर्ममूलम्’ की उचित स्थापना की है : अन्य धर्मों एवं मजहबों के प्रति हिन्दूधर्म का सदैव पितृभाव रहा है।

सुखदेव मिश्र स्वधर्मगरिमा-अभिज्ञ होते हुए भी अन्यधर्म—अन्य मजहब-विश्वास-अनभिज्ञ न थे। हिन्दी-साहित्य के समग्र इतिहास में सुखदेव मिश्र की प्रगतिशील धर्मनिरपेक्षता एवं विशद मानवतावादी दृष्टि की कोई तुलना नहीं—उनकी ‘श्रीऋषभजिनस्तवन’ एवं ‘गुरु-महिमा’ कृतियाँ जैन एवं सिख पंथों के प्रति सम्मान की प्रतीक हैं, जबकि ‘फाजिलअली-प्रकाश’ में उन्होंने औरंगज़ेब तक की प्रशस्ति की है क्योंकि कैसा भी हो, बादशाह तो था ही।

स्वयं हिन्दूधर्म को उन्होंने उसी विराट् समन्वयवादी दृष्टि से अपनाया है, जिससे विद्यापति मीराँ (मीरा), सूर और सबसे बढ़कर तुलसी ने। ये यथास्थान गणेश, शिव, दुर्गा, गंगा, राम, कृष्ण इत्यादि सबका समाहार करते चलते हैं।

भक्त एवं सन्त

शास्त्रीयकाल के समग्र साहित्य में सुखदेव मिश्र के स्तर का कोई ज्ञानी-भक्त दृग्गत नहीं होता। भक्त-सन्त सुखदेव ने, रामानन्द के सदृश, निर्गुण-निराकार एवं सगुण-साकार, ज्ञान-योग एवं भक्ति-प्रेम में अभेद-दृष्टि का उन्मेष किया है। ‘अध्यात्म-प्रकाश’ में वेदान्त के ‘तत्त्वमसि’ (छान्दोग्य उपनिषद्) की विशद मीमांसा प्राप्त होती है, ‘ज्ञान-प्रकाश’ में उनकी महान् अभेद-दृष्टि धर्मों एवं

1. यह लखनऊ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। अलीगढ़ एवं दिल्ली विश्वविद्यालयों में भी शोधकार्य हो चुके हैं।

मजहबों से बहुत ऊपर उठी हुई विराट् मानवतावादी दृष्टि है, जिसने संत चरणदास एवं स्वामी अखेराम जैसे उच्चस्तरीय महापुरुषों को उनका शिष्य बनाया :

स्थावर-जंगम जीव जिते जग भौंतिन-भौंतिन भेष धरे हैं ।
तामहिं सत्य चिदानंद रूप सों आतम एक प्रकाश करे है ।
ता बिनु जाने ते सिन्धु सों लागत, जाने ते गोपद तुल्य परे है ।
बंदत ताहि कहै सुखदेव जु ब्रह्म सदा सबही ते परे है ॥

(अध्यात्म-प्रकाश)

ब्राह्मण, जोगी, सेवरा, संन्यासी, दरवेस ।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुर्लभ हरि को देस ॥
चारि मनुज, नौ जलज हैं, ग्यारह पशु, दस पच्छ ।
बीस महेस, तीस अहि, यह चौरासी-लच्छ ॥

(ज्ञान-प्रकाश)

शाक्त होते हुए भी, सुखदेव मिश्र ने गणेश, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, गंगा इत्यादि के प्रति अद्वयमयी भक्ति के उद्भार व्यक्त किए हैं तथा प्रपत्तिवाद में रुचि प्रकट की है। उच्चकोटि के भक्त एवं सन्त के साथ-साथ उच्चकोटि के आचार्य एवं कवि होने के कारण उनकी आध्यात्मिक एवं भक्ति-प्रपत्ति कविता अतीव कलात्मक भी है।

कानन टूटैं बिघन के जानन ते यह ग्यान ।

कज आनन की जाति मिटि गज आनन के ध्यान ॥ (रसार्णव)

गंगाधर, गिरिधर, गौरीधर, गदाधर, गिरीस, गरुडगामी, गोवरधर जू ।
वामदेव, वासुदेव, विरुपाक्ष, बनमाली, नीलकंठ, नारायण, भैरों, भामाभर जू ॥
त्रिपुरारि, कैटभारि, सिवापति, सीतापति, संकर, सुखैन, सुखदेव, सुखकर तू ।
असरनसरन, हरन दुख-दारिद के, जगतभरन जय जय हरि-हर तू ॥ (वृत्तविचार)
चंडी तू चंडिका तू, चंड मुंड खंडिका तू, कुल वेद कंडिका तू, दंडी कवि वानी है ।
मेरे एक तू है, तू सों और न हितू है, देत फरमे फतू है, कर कठिन कृपानी है ॥
देवी तू, दया तू, मोहरूपा मया तू, गंगा, गोमती, गया तू, तनया-गिरि जानी है ।
गरे परे तेरे रहैं, और के न नेरे रहैं, जगदंब! मेरे एक तू ही भवानी है ॥ (स्फुट)

पढ़े वेद-उपवेद, भेद, नाटक बहु जाने ।

पृथु पुरान, इतिहास, अगम आगम कर आने ॥

किए जाय तप कोटि-कोटि चलि तीरथ न्हाए ।

वृथा सकल कविराज जो न गोविंद गुन गाए ।

जिमि सेतु खोदि सौधो सुगम, पटु पटेल कीनहों विमल ।

आलबाल बयो बीजु नहिं, सबै मूल साधन अफल ।

(फाजिलअली-प्रकाश)

आलम-नींद में मातो सदा अरु उद्विग्नहीन दुबेर खवैया ।

प्यास लगै नहि पानी भरौ अरु पास धरौ उठिकै न पियैया ॥

ऐसे निकम्पन को सुख देव दया के धाम हौ पेट भरैया ।

भोर से सौझ औ सौझ से भोर लौ मो सो कपूत न तो सो दिवैया ॥

(स्फुट)

आ. रामचन्द्र शुक्ल भक्ति-प्रमाण-पत्र का 'दान' करने के लिए तुलसी से एक इंच भी नीचे उतरने को तैयार न थे। वे राजाश्रय को हिकारत की नज़र से देखते थे। क्या उन्हें ज्ञान न था कि वर्जिल, कालिदास, फ़िरदौसी, श्रीहर्ष इत्यादि महाकवियों ने राजाश्रय के बावजूद विश्व के साहित्य को सम्पन्न किया है—उसे कई सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ प्रदान किए हैं? खेद है कि मनोविज्ञानवादी-स्वच्छन्दतावादी आलोचक डॉ. नगेन्द्र ने भी आ. शुक्ल का राग ही नए ढर्रे पर अलाप डाला है, “वास्तव में यह भक्ति भी उनकी शृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब यह लोग घबरा उठते होंगे तो राधा-कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्मभीरु मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरणभूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। तभी तो वे किसी-न-किसी तरह उसका आँचल पकड़े थे।” यह स्थूल द्वैतपरक कथन आध्यात्मिकता के मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति होने के उस सिद्धान्त के नितान्त विरुद्ध है जिसका प्रतिपादन जुंग (युंग) इत्यादि अधुनातन मनोविज्ञानवेत्ताओं ने किया है। मानव को काल-खंडित करना सतही दर्शन का सूचक है। आध्यात्मिकता रोटी से भी अधिक ज़रूरी चीज़ है; इस तथ्य को सारा इतिहास विवृत करता है—आज भी प्रतिक्रियावादी अरब देशों से लेकर अर्द्धशताब्दी से अधिक तक द्वंद्वात्मक-भौतिकवाद-वद्ध विकासवाद की पुरानी ढपली के अतिरिक्त अन्य वाद्य को न दूने की कसम खाए बैठे रहे जड़ीभूत साम्यवादी देशों तक इस सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है। (विकसिततम पश्चिम तो इसका प्रमाण ही है)। विशालतम एवं अजेय सोविएट यूनिऑन का टूटना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। दो-सवादो-सौ वर्षों के लम्बे अन्तराल के लिए धर्म या भक्ति को निर्वासित करना मानव-प्रकृति पर आघात करना है, जो डॉ. नगेन्द्र ने किया है, “रीतियुग की धार्मिकता और भक्त भी रूढ़िबद्ध थी—वास्तव में धर्म इस युग में आकर धर्माभास मात्र रह गया था।”² क्या डॉ. नगेन्द्र को यह ज्ञात न था कि इस युग में ही भारत में समर्थ गुरु रामदास, छत्रपति शिवाजी, योगी प्राणनाथ, गुरु गोविन्दसिंह, महाकवि भूषण, समन्वयवादी महात्मा रामप्रसाद इत्यादि ने मानवता को ज्योतिर्मय किया था? हर्ष है कि शुक्ल-प्रवर्तित राजाश्रित-काव्य-विगिर्हण एवं शास्त्रीय-कवियों पर धर्महीनता-भक्तिहीनता के प्रवाद की लकीर के आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डॉ. नगेन्द्र प्रभृति फ़कीरों के विपरीत डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, श्री प्रभुदयाल मीतल, डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी, डॉ. ब्रजकिशोर मिश्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र इत्यादि ने सहज-स्वस्थ-दृष्टिकोण विवृत किया है। स्वयं शुक्ल का विक्टोरिया पर लिखना क्या था? नगेन्द्र का ‘पद्मभूषण’ क्या है? मानवानुभूति को भक्ति-रीति इत्यादि में खंडित करना स्थूल दृष्टि का परिचायक है। महिमा किसी युग में बद्ध नहीं होती। अब समय आ गया है जब केशवदास, सेनापति, विहारी, देव, पद्माकर इत्यादि के भक्तिभाव का पूर्वाग्रहमुक्त आकलन किया जाए—और, सुखदेव तो जीवन से भी कम-से-कम पचास-प्रतिशत विरक्त थे (उनका निवृत्ति एवं प्रवृत्ति दोनों के साथ न्याय करना स्वस्थ-जीवनवाद का द्योतक है जिसकी प्रशंसा की जानी चाहिए)।

महान् आचार्य

कविराज सुखदेव मिश्र ने अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ ‘रसार्णव’, प्रायः तदनुवर्ती ‘रसरत्नाकर’, एवं ‘फ़ाजिलअली-प्रकाश’ में प्रमुखतः शृंगार एवं नायिकाभेद तथा प्रसंगतः अन्य रसों का निरूपण किया है जो भरत, विश्वनाथ, भानुदत्त प्रभृति संस्कृति के आचार्यों से प्रेरित है तथा हिन्दी के कृपाराम, केशवदास, मतिराम प्रभृति, किन्तु ‘रसार्णव’ एवं ‘रसरत्नाकर’ में तैत्तिरीय संचारीभावों का पृथक्-पृथक् निरूपण उनकी उल्लेख्य विशेषता है। उनका हाव-निरूपण उत्कृष्ट है। उन्होंने नायकभेद भी अच्छा किया है। रसशास्त्र के आचार्यों में कृपाराम, केशवदास, चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति, सुखदेव एवं भिखारीदास अग्रगण्य हैं। अलंकार-निरूपण में सुखदेव ने विशेष रुचि नहीं दिखलाई किन्तु अत्यन्त ललित कृति ‘फ़ाजिलअली-प्रकाश’ के नायिकाभेद-निरूपण में कहीं-कहीं अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, व्यतिरेक, रूपक, उल्लेख इत्यादि प्रायः तीस अलंकारों का उल्लेख करते हुए तेइस का निरूपण किया है। जहाँ तक छन्दनिरूपण का सम्बन्ध है, ‘वृत्तविचार’ एवं ‘छन्दविचार’ के महान् प्रणेता ने 148 वर्णिक एवं 71 मात्रिक छन्दों का विशद निरूपण करके छन्द-शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ आचार्य का गौरव प्राप्त किया है। छन्दः शास्त्र के पिता पिंगल के हिन्दी-संस्करण के रूप में उन्हें पिंगलाचार्य ठीक ही कहा गया। उन्होंने अनेक नवीन छन्दों का विवेचन किया है। तत्र-तत्र ब्रजभाषा-गद्य का प्रयोग भी एक उल्लेख्य विन्दु है। पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र के विशद छन्दनिरूपण में उदाहरणों का काव्य-सौन्दर्य उच्चकोटि का है। अधिकारी विद्वान् डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र का यह सूत्र सर्वथा सटीक है : “प्रौढ़ आचार्यत्व एवं कवित्व का गठबंधन अन्यत्र दुर्लभ है।”

1. रीतिकाव्य की भूमिका, पृष्ठ 180।

2. वही।

एक महान् आचार्य के रूप में छन्द-शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट निरूपक, रसशास्त्र के उच्चस्तरीय विवेचक एवं प्रमुख अलंकारों के अधिकारी प्रवक्ता सुखदेव मिश्र मतिराम, देव एवं पद्माकर की पंक्ति में प्रतिष्ठित हैं—वे श्रीपति, भिखारीदास एवं प्रतापसाहि के सदृश प्रमुखतः आचार्य मात्र न होकर एक मनोहारी महाकवि-आचार्य हैं, इसमें सन्देह नहीं।

महाकवि

सुखदेव मिश्र एक रससिद्ध महाकवि हैं। वे जितने बड़े आचार्य हैं उतने ही बड़े कवि। यद्यपि वे प्रधानतः शृंगाररस-कवि हैं, तथापि अन्य रसों में भी उनका सृजन-सामर्थ्य उच्चकोटि का है, विशेषकर हास्यरस में (जिसमें 'तिमिर लंग लड़ मोल' वाले छप्पय के अतिरिक्त भी उनका सृजन चिरस्मरणीय है)। उनका सौन्दर्य-चित्रण अनूठा है, उनकी ललित व्रजभाषा आकर्षक है। यद्यपि उन्होंने अनेक छन्दों में काव्यरचना की है, तथापि सदैवा उनका प्रियतर छन्द है। उनका कवि-रूप किसी भी दृष्टि से मतिराम, देव एवं पद्माकर से न्यून नहीं है। केशव, बिहारी, भूषण, मतिराम, देव, घनआनन्द एवं पद्माकर प्रभृति शास्त्रीयकाल के अन्य शीर्षस्थ कवियों के सदृश ही, उन्होंने संस्कृत के अतुलनीय साहित्य से भरपूर लाभ उठाया है तथा वे केशव, मतिराम इत्यादि से भी प्रभावित हुए हैं—साथ ही, उन्होंने देव, घनआनन्द, पद्माकर, रत्नाकर इत्यादि को प्रभावित भी किया है; शंभुनाथ मिश्र, भिखारीदास इत्यादि उनसे विशेष प्रभावित हुए हैं। उनके वीरकाव्य का सूदन पर प्रभाव पड़ा है। उनके उच्चस्तरीय काव्य के कतिपय निदर्शन प्रस्तुत हैं :

शृंगाररस

1. हाथ छुए छवि मैलिए होति, बिरंचि मनो मन ही सों बनाई।
ही में गड़े अजौं नैन बड़े-बड़े भागन दै गई नेक देखाई॥
अंबर नील की औझलि फैलि रही मुख चंद की सुंदरताई॥
राहु रिसाइ के राखी मनौ करि मद्धि अँधियारी के जेर जुन्हाई॥
2. काहू के होत है नैन ई नीके औ काहू के आनन ही में निकाई॥
काहू को होति चितौनियै नीकी औ काहू की चाल ही में चतुराई॥
औरे बिरंचि है कोऊ कहूँ जो मनोहर मूरति ऐसी बनाई॥
नागर नंद लड़ाइते के नख ते सिख लौं सब सुंदरताई॥
3. फूलि रहे बन बाग सबै लखि फूलनि फूलि गयो मनु मेरो॥
फूलनि ही के बिछावने के गहनो कियो फूलनि ही को घनेरो॥
फूले पलासन ए चहुँ ओर ते मैन प्रताप कियो घन घेरो॥
राखे हैं फूल फुलाइ भयो ऋतुराज मनोज को मानो है चेतो॥
4. न्यारी है रही है दिन द्वै कहीं ते भाभी लरि, ता बिन न भावै भौन कहौ कहा कीजिए।
नेकऊ न सुनै बेर सौ कऊ जो टेरियत, अँधरी परोसिनिया दुख कैसे जीजिए।
दादा की दुहाई हों दुहाई तेरी राखिहों न, अपनी दुहाई कविराज आनि लीजिए।
गई मैया माइकै जु भैया घर नाही आज, नन्द के कन्हैया! मेरी गैया दुहि दीजिए।¹
5. ननद निनारी, सासु मायके सिधारी, अहै रैन अँधियारी भरी सूझत न करु है।
पीतम को गौन कविराज न सोहात भौन, दारुन बहत पौन, लाग्यो मेघ झरु है॥
संग ना सहेली, बैस नवल अकेली, तन परी तलबेली महा, लाग्यो मैन-सरु है।²
भई अधिरात, मेरो जियरा डरात, जागु, जागु रे बटोही! इहाँ चोरन को डरु है।³

1. वचनविदग्धा-नायिका मा मनोहारी उद्गार।

2. "लाग्यो मैन सरु है" में स्वशब्दवाच्यत्व दोष आ गया है। ये शब्द अनावश्यक हैं।

3. स्वयंदूतिका-नायिका का प्रवाहपूर्ण ललितोद्गार।

6. ल्याई ही गागरि सोऊ गिरी लखि सून्यो निकेत कँप्यो जब गातु है।
जानों न आइ कहाँ ते धौं राति अँधेरी घरी हू घरी अधिकातु है।।
को हौ जु ठाढ़े? इतै किन आवौ? तुम्हें लखि नैसुक ज्यो ठहरातु है।
नेक पठाइ न आवत हौ घर, मो पै अकेले गयो नहिं जातु है।।¹
7. जोहें जहाँ मगु नन्दकुमार तहाँ चली चन्द्रमुखी सुकुमार है।
मोतिन ही को कियो गहनो सब फूलि रही जनु कुंद की डार है।।
भीतर ही जो लखी सो लखी, अब बाहिर जाहिर होत न दार है।
जोन्ह सो जोन्हें गई मिलि यों मिलि जाति ज्यों दूध में दूध की धार है।।²

वीररस³

8. झुकत गिरवर झुंड, रुहिर मुक्कत फनिंद फन।
लुकत रज भर सूर, दरिन दुक्कत गनीम गन।।
बडिढय प्रवल प्रताप निकर, उडिढय अरिंद सब।
हिम्मतसिंह नरिंद कोपि चडिढय गयंद जब।।
9. धुककै नगेस, लुककै दिनेस। सुककै सुरेस, तक्कै नरेस।।
फट्टै फनिंद फन भूरि भार। कलामलत कच्छ गच्छत गरार।।
अनियुद्ध क्रुद्ध उद्दिदत अराल। दारिद दावानल जलधि जाल।।¹

हास्यरस

10. एक निसि एक तसकर-बर हर-घर मूसिबो को हरबर धायो कोस असी है।
कहूँ मुंडमाल, कहूँ पसरे कराल ब्याल, कहूँ गज-खाल, हाल देखि आयो डसी है।।
ढूँढत भवन कौन पाए हैं धतूर-बीज, चावर के धोखे चाबै, मति गति नसी है।
घूमत फिरत, गिरि उठत, चलत, आज कविराज ताहि देखि हँसी उर बसी है।।
11. चौक में स्वोंगु सो बैठो है दुलह, देह मसान की खेह सों पागे।
“व्याह रच्यों किधौं ख्याल इहै?” कहि लोग हँसै हिमवान के आगे।।
वाहेर की घरहूँ की हँसैं, गृहकाज में कैसे हू कोऊ न लागे।
नागो निहारै जे तेई तिया अँचरा मुँह दै हँसिकै फिरि भागे।।
12. हँसि हिमवान परोस की सकैं न मँड़वा पैठि।
रहयो अकेलौ चौक में नागो दूलह बैठि।।

आकलन

पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र एक उच्चकोटि के संत, गुरु, आचार्य एवं महाकवि के रूप में हिन्दी-साहित्य के इतिहास के एक श्रेष्ठतम व्यक्ति हैं। चरणदास जैसे सन्त के गुरु, शम्भुनाथ मिश्र जैसे आचार्य के गुरु, भगवंतराय खींची एवं मर्दनसिंह जैसे राजाओं

1. इस निर्दाष छन्द में स्वयंदूतिका एवं वचनविदग्धा एकाकार है।
2. शुक्लाभिसारिका-नायिका का अलंकृत चित्रण। मीलित अलंकार का प्रसिद्ध प्रयोग।
3. संक्रान्तिकालीन वीर-शैली का प्रभावी प्रयोग।
4. सूदन पर प्रभाव।

के गुरु, शृंगाररस के एक शीर्षस्थ कवि, हास्यरस के एक श्रेष्ठ कवि, वीररस के एक उल्लेख्य कवि, सर्वरसरचनाक्षम कवि तथा हिन्दी-छन्दशास्त्र के अन्यतम आचार्य के नाना आयामी रूपों में उनका विराट् व्यक्तित्व निस्संदेह अत्यन्त महान् है। उन पर सार्वभौम आकलन की दिशा में अभी बहुत-कुछ कार्य शेष है। हिन्दी-भाषी अभी अपने इस महान् साहित्याचार्य से अपरिचित-से हैं।

दौलतपुर का आरम्भ सुखदेव मिश्र से ही होता है जहाँ उनके प्रपौत्र कवि शीतलादीन (उपनाम 'सीतल' — 1743-1803 ई.), महान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.), उनके वंशज कवि स्व. गंगासागर मिश्र (जन्म 1910 ई.), उनके वंशज कवि फूलचन्द्र मिश्र 'चन्द्र' (1938 ई.) उत्पन्न हुए। दौलतपुर एक साहित्यतीर्थ है। शास्त्रीयकालीन कविता के एक अग्रणी विद्वान् तथा सुखदेव मिश्र पर उच्चस्तरीय शोधकार्य करनेवाले डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र (जन्म पुरवा, जनपद उन्नाव, निवास लखनऊ) भी उनके वंशज हैं। उनकी परम्परा शिष्यों एवं वंशजों के माध्यमों से सदैव जीवन्त रही है।

जमाल¹

जलालुद्दीन 'जमाल' (जन्म 1645 ई., पिहानी, जनपद हरदोई) अपने सुंदर शृंगार एवं नीतिपरक दोहों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी कृति को 'जमाल-दोहावली' कहा जाता है। अनेक दोहे बिहारी, मतिराम और 'रसलीन' का स्मरण कराते हैं :

झुलनी लखवति लखित का, का भागति इतराय।
चमकति जनु बिजुरी छटा, कह 'जमाल' यह काय।।
पिचकारी आँखिन लगी, मलति करेजे बाल।²
पुनि देखति पुनि मलति हिय, कारन, कवन 'जमाल'।।
'जमाल' ऐसी प्रीति कर जैसी निस अर चंद।
चंदे बिन निस साँवली, निस बिन चंदो मंद।।³
नैना सागर ज्यों भरें विरह नीर सों लाल।
दरस बिना नहिं जात है आँखियन प्यास 'जमाल'।।

रामजी⁴

'शृंगारसौरभ' के ललित कवि रामजी (जन्म 1646 ई.) पारम्परिक शास्त्रीयता में निष्णात् थे। उनकी ब्रजभाषा बहुत सुंदर है :

1. चंचलताई तजी न अबै गति पायन हूँ न सिखाई मरालन।
छीनता नेकु लही न अबै कटि पीनता त्यों ही उरोन रसालन।।
राजजी देखत हो तुमही न लगी अबै सौतिन के उर सालन।
आनन आय सुधाधर की न भटू केहि हेत लटू भए लालन।।⁵
2. उमड़ि घुमड़ि घन छोड़त अखंड धार, चंचला उठत तामैं तरजि तरजि कै।
बरही⁶ पपीहा भेक पिक क्षग टेरत हैं, धुनि सुनि प्रान उठैं लरजि लरजि कै।।
कहै कवि राम लखि चमक खदोतन की, पीतम को रही मैं तो बरजि बरजि कै।
लागे तन तावन बिना ही मनभावन के, सावन दुवन आए गरजि गरजि कै।

1. साधारण सूफ़ी-कवि जमाल (रचनाकाल 1620 ई.) से भिन्न।

2. उत्कृष्ट असंगति-अलंकार।

3. महान् दोहा।

4. प्रसिद्ध कवि रामचन्द्र एवं रामभट्ट प्रायः समनामी हैं। रामभट्ट (फ़र्रुखाबाद वाले) ने 'बरवै-नायिकाभेद' रचा था।

5. "नाई पराग नहिं मधुर...." (बिहारी) का प्रभाव।

6. मोर।

निशाती

गोलकुंडा के इब्ननिशाती (निशाती) का समय 1655 ई. के आसपास माना जाता है। इनका 'फूलवन' एक वैश्यपुत्र एवं ब्राह्मणपुत्री के प्रेम पर आधृत आख्यान है। बानगी देखें :

यकेला उस गली में कोई न दूजा।
जलूँ मैं चौदनी की धूप में जा।।¹
कर उस चंदनबदन के घर तरफ़ यूँ।
हरेक निस नैन के तारे बिखेरूँ।।
केतन दिन के पछे उम्मेद का सूर।²
मेरे बख़्तों के नैना कूँ दिया नूर।।
यकायक झाँक कर देखी मुजै नार।
मेरे होर उसके दो दीदे हुए चार।।

शम्भु (शिवाजी-पुत्र)

महान् राष्ट्रनेता एवं योद्धा शिवाजी³ (10 अप्रैल, 1627 - 4 अप्रैल, 1680 ई.) के पुत्र महाराज शम्भु (जो सम्भाजी के नाम से प्रसिद्ध हैं) एक आकर्षक शृंगारी-कवि भी थे जो नृप शम्भु एवं कवि शम्भुराज अभिधानों का भी प्रयोग कर लेते थे।⁴ उनके 'नायिकाभेद', 'नखशिख' ग्रन्थ अत्यन्त ललित माने गए हैं। उन्होंने 'बुधभूषण' भी रचा था, जिसमें उनकी संस्कृत-कविता भी है। एक अन्य 'नृप-शम्भु' (शम्भु कवि) भी हुए हैं, जिनका पूरा नाम शम्भुनाथ सिंह सोलंकी⁵ है, जिनके उत्कृष्ट 'नायिकाभेद' की चर्चा शिवसिंह ने 'सरोज' तथा अद्वितीय 'नखशिख' की चर्चा मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में की है। इस दिशा में निर्णायक शोध अपेक्षित है कि ये दोनों कवि भिन्न हैं या अभिन्न, क्योंकि दोनों के नाम तो मिलते-जुलते हैं ही, कृतियाँ भी मिलती-जुलती हैं। शिवाजी-पुत्र शम्भु का कवि होना कठिन नहीं क्योंकि वे कवि कुलेश⁶ के मित्र थे तथा उनके अत्यधिक व्यस्त पिता शिवाजी तक कविता के लिए समय निकाल लेते थे :

जय हो महाराज गरीबनिवाज।
बंदा कमीना कहे तो कतू साहेब तेरी ही लाज।।
मैं सेवक बहु सेवा माँगूँ इतना है सब काज।
छत्रपति तुम सेकदार सिव इतना हमारा छाज।।⁷

शम्भु या सम्भाजी का शृंगारी-कवि होना भी स्वाभाविक है क्योंकि वे नितान्त विलासी थे। वे चरित्रहीन व्यक्ति थे। योग्य पिता के योग्य पुत्र कभी-कभी ही होते हैं। योग्य पिता के अयोग्य पुत्रों से इतिहास पटा पड़ा है। शंभु योग्य पिता के अयोग्य पुत्र थे। अतः मुगल सेना द्वारा कवि कुलेश (कलश या कलस) के साथ बन्दी बनाए गए। दोनों की पत्नियाँ एवं पुत्रियाँ भी वन्दिनी बना ली गईं।

1. "चौदनी की धूप" में जलना उत्कृष्ट प्रयोग है जो 'आँसू' के मशकवि प्रसाद की 'शीतल ज्वाला जलती है' का स्मरण कराता है। विरोधाभास अलंकार।
2. सूर्य।
3. खफ़ीख़ान (ख़्वाफ़ीख़ान) के फ़ारसी-ग्रन्थ एवं इतिअँट (एलिअँट) के अंग्रेज़ी-अनुवाद, रानाडे के 'राइज़ ऑफ़ मराठा पॉवर', सरकार के शिवाजी एंड ब्रिज टाइम्स', सरदेसाई के 'भेन करेन्ट्स ऑफ़ मराठा हिस्ट्री', सेन के 'मराठा एडमिनिस्ट्रेशन', रॉबिंसन के 'शिवाजी' इत्यादि इतिहास-ग्रन्थों के नायक जिनमें उनके जीवन में ही महाकवि भूषण ने 'शिवराजभूषण' एवं 'शिवावावनी' काव्य-ग्रन्थों द्वारा अमर कर दिया था। वर्तमान सहस्राब्दी के सर्वश्रेष्ठ हिन्दू-नेता एवं हिन्दू-योद्धा।
4. मिश्रबन्धु कृत विनोद, पृष्ठ 263।
5. 'विनोद' में सुलंकी लिखा है।
6. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' (सरकार), चतुर्थ खंड, पृष्ठ 340 ('विनोद' के उद्धरण में 'कलूष कान्यकुब्ज' एकदम ग़लत है।)। इनका नाम कलश या कलस है। द्रष्टव्य है, 'विनोद' की ही कवि-संख्या 1550।
7. 'विनोद' में 'अर्ज' लिखा है।

औरंगज़ेब के शिविर से चार मील दूरी पर पहले से ही भारी जंजीरों और हथकड़ियों-वेड़ियों में जकड़े वंदियों को लम्बी जोकर-टोपी और विदूषक-भूषा पहनाई गई तथा ऊँटों पर बैठाकर बाजे-गाजे के साथ जुलूस निकाला गया। सारे शिविर में परेड कराई गई। हजारों दर्शकों का मनोरंजन किया गया। इसके बाद अवसर के अनुरूप आयोजित विशाल दरबार में पेश किया गया। शिवाजी के पुत्र को बन्दी रूप में देखकर विजय-विह्वल वृद्ध-गृद्ध औरंगज़ेब ने सिंहासन से उतरकर कालीन पर घुटनों के बल बैठकर भूमि तक सर झुकाकर अल्लाह को धन्यवाद-ज्ञापन किया जिस पर कवि कुलेश (कलश या कलस) ने कहा, “हे महाराज, आपका अवलोकन करते ही आलमगीर¹ अपने समग्र ऐश्वर्य एवं गौरव के साथ भी सिंहासन पर स्थित न रह सका तथा उतरकर नमन-सम्मान हेतु विवश हो गया।” इतनी पराभूत एवं निरुपाय दशा में भी कवि कुलेश (कलश या कलस) की आत्मा में कितना बल था। यह विवरण शिवाजी को ‘नरक का कुत्ता’ कहनेवाले मुगल-इतिहासकार खफ़ीख़ान का है—नितान्त निर्विवाद। और, शम्भु ने भी तब अपने सारे कलंक धो दिए जब औरंगज़ेब ने अधिकारियों को शंभु के कोषों तथा मुगलों में से कुछ की उनसे अतीतगत साठगाँठ (वस्तुतः उन्हें मुसलमान बनाने) पर वार्ता के लिए भेजा तब शिवापुत्र ने औरंगज़ेब को ही नहीं प्रत्युत मोहम्मद को भी गालियाँ दीं तथा मैत्री-मूल्य के रूप में शाहजादी की माँग की। स्पष्ट है कि अब वीर शम्भु बलिदान के लिए प्रस्तुत थे। इस पर औरंगज़ेब ने उन दोनों को अवर्णनीय यातनाएँ दी, एक-एक करके उनके अंग-प्रत्यंग कटवाए और कुत्तों के सामने फिंकवा दिया। इसके बाद दोनों के सिरों का दक्षिण में व्यापक प्रदर्शन कराया गया। वीर शम्भु की शहादत ठीक परवर्ती वीर बंदा बैरागी की शैली में हुई। राजा शम्भु एवं कवि कुलेश (कलश या कलस) 11 मार्च, 1689 को शहीद हुए²। खेद है कि हिन्दू-जाति इन महान् शहीदों को भूल गई है। शम्भु की निंदा तो की जाती है, किन्तु प्रशंसा नहीं। कवि कुलेश या कलश या कलस को उनके पतन का उत्तरदायी बताया जाता है। किन्तु दोनों की मृत्यु महान् थी। कवि कुलेश या कलश या कलस को चंद्रवरदायी परम्परा का ‘जीवन’ प्राप्त हुआ।

शम्भु (सम्भाजी) की ‘नायिकाभेद’, ‘नखशिख’ एवं ‘बुधभूषण’ (जिसमें संस्कृत-कविता भी है) के समर्थ कवि के रूप में प्रतिष्ठा अपेक्षित है। इस विषय में शोधकार्य एवं ग्रन्थावली-प्रकाशन करते समय शम्भुनाथसिंह सोलंकी से भिन्नता एवं कवि कुलेश या कलश या कलस के प्रभाव का विश्लेषण अपरिहार्य होगा। ‘विनोद’ से उनकी कविता के उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. दोउ दुहू पहरावत चूनरि, दोउ दुहू सिर बाँधत पागैं ।।
दोउ दुहू को सिंगारत अंग, गरे लगि दोउ दुहू अनुरागैं ।।
शंभु सनेह समाय रहैं रस ख्यालन मैं सिगरी निस जागैं ।।
दोउ दुहू सों मान करैं पुनि दोउ दुहू मनवान लागैं ।।
2. देखो चहै पिय को मुख पै अभिमान करै जिय की अभिलाषी ।।
चाहति शंभु कहै मन मैं बतियाँ मुख सों पुनि जात न भाखी ।।
भेटिवे कों फरकैं भुज पै नहिं, जीभ तें जाइ नहीं-नहिं भाखी ।।³
लाज औ काम दुहू बहू बसि आज दुराज प्रजा करि राखी ।।⁴
3. घेरदार घाघरे की घूमति अमोल मन मोल लेत देखत चलनि वह वाम की ।।
अरुझि-अरुझि नैन जात मोरवान बीच, छविनि नगीच है खरीद विन दाम की ।।
कहै शम्भुराज नंद लाल जब बास लख्यो, भयो उर साल सुधि भूलि गई धाम की ।।
कंचन बटा से गोल अतिहि सुलुभ राधे, रावरे गुलुफ सों कुलुफ खोली काम की ।।
4. कौहर कौल जपा दल बिद्रुम का इतनी जु बँधूक में कोति है ।।
रोचन रोरी रची मेंहदी नृप शम्भु कहै मुकुता सम पोति है ।।
पायँ धरे ढरै इंगुरई तिन मैं मनि पायल की घनी ज्योति है ।।
हाथ द्वै तीनिक चारिहूँ ओर लौँ चौंदनि चूनरि के रँग होति है ।।

1. ‘विश्वजयी’—औरंगज़ेब की पदवी।

2. ‘हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब’ (सरकार), चतुर्थ खंड, पृष्ठ 403।

3. दूल्हा का ‘नाहीं’ वाला प्रसिद्ध छन्द याद आता है।

4. “दुसह दुराज प्रजान मैं क्यों न बढ़े दुख दंद। (बिहारी)

कालिदास त्रिवेदी

“यदि कालिदास जी के हज़ारा में 212 कवियों के नाम एकत्र संगृहीत न मिल जाते तो शायद शिवसिंह जी को उनका पता लेने में बड़ी कठिनाई होती और भी उन सबके नाम एकत्र न हो सकते। हमें दलपतिराय और वंशीधर रचित संवत् 1792 का एक संग्रह मिल गया जो समय में कालिदास के हज़ारा से 16 वर्ष पीछे है। इसमें केवल 44 कवियों के नाम आए हैं परन्तु तो भी कवियों के समय-निरूपण में हमें इससे बड़ी मदद मिली। शिवसिंह जी ने यह ग्रन्थ नहीं देखा था अतः इसी छोटी-सी सूची में से 6 कवियों के नाम ‘सरोज’ में नहीं हैं। इस विचार से हमें हज़ारा के कारण कालिदास को भाषा-काव्य का प्रथम इतिहास-परक समझना चाहिए। यदि शिवसिंह जी इतना विशाल परिश्रम न कर गए होते तो आज हमें भाषा का इतिहास लिखने का साहस ही शायद न होता।”

—मिश्रबन्धु

‘हज़ारा’ के कारण हिन्दी के आदिकवितासंग्रहकार-आदिकविपरिचयकार (हिन्दी के आदि-साहित्यसंपादक) तथा ‘वरवधूविनोद’¹ शीर्षक नायिकाभेद ग्रंथ के ललित कवि कालिदास त्रिवेदी (रचनाकार 1692 ई.³ के इधर-उधर) अन्तर्वेद (गंगा-यमुना-मध्यवर्ती क्षेत्र) के वनपुरा (ज़िला फतेहपुर—‘कानपुर देहात’ जनपद की सीमा पर स्थित) के निवासी थे, जिनके पुत्र उदयनाथ ‘कवीन्द्र’ एवं पौत्र दूलह भी श्रेष्ठ कवि हुए। इसमें सन्देह नहीं कि इस महान् साहित्यिक परिवार को वाग्मिता का वरदान प्राप्त था।

कालिदास त्रिवेदी को संयोगात् (या तो सीधे दरबारी कवि होने या किसी सहायक राजा के साथ) 1689 ई.⁴ में औरंगज़ेब के गोलकुंडा-युद्ध एवं गोलकुंडा-विजय का अनुभव प्राप्त हुआ था, जिसे उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है :

गढ़न गढ़ी से गढ़ि, महल गढ़ी से मढ़ि⁵ बीजापुर ओप्यो दलमलि सुधराई में।

कालिदास कोप्यो बीर औलिया आलमगीर⁶, तीर-तरवार गहि पुहमी पराई में।।

बूंद तें निकसि महिमंडल घमंड मची, लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई में।

गाड़ि के सुझंडा आड़ कीन्हीं पातसाह⁷ ताते डकरी चामुंडा गोलकुंडा की लराई में।।

गोलकुंडा-विजय छल और उत्कोच के बल पर की गई थी। इतने पर भी उसमें सर्वोच्च वीरता का अमर गौरव अब्दुर्रज़्ज़ाक नामक योद्धा को प्राप्त हुआ था जो सुल्तान अबुल हसन का निष्ठावान सेवक था तथा जिसकी वीरता का विशद वर्णन मुगल-इतिहासकार खफ़ीखान (ख्वाफ़ीखान) तक ने किया है। शासक-स्तुति एक रूढ़ि है जिसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती किन्तु जो केशवदास (जहाँगीर), सुन्दर (शाहजहाँ), सुखदेव (औरंगज़ेब) इत्यादि से भारतेन्दु (विक्टोरिया), रवीन्द्र (प्रिंस ऑफ वेल्स—ब्रिटिश युवराज), मैथिलीशरण (जार्ज फ़िफ़्थ—पंचम जॉर्ज) इत्यादि तक प्रसरित है। आश्रयदाताओं की स्तुति तो अर्थलोभजन्य होने के कारण सरलता से समझ में आ जाती है। किन्तु अहैतुकी-शासक स्तुति एक प्रतिक्रियावादी संस्कार मात्र कही जाएगी। केशवदास की जहाँगीर-जस-चन्द्रिका की रचना का कारण उनके आश्रयदाता वीरसिंहदेव (जिन पर वीरसिंहदेवचरित रचा) की बादशाह से मित्रता थी। सुन्दर ब्राह्मण को स्वयं शाहजहाँ ने महाकविराय बना डाला था! सुखदेव मिश्र की औरंगज़ेब-प्रशंसा का कारण उनके तत्कालीन आश्रयदाता फ़ाजिलअली (जिन पर फ़ाजिलअली-प्रकाश रचा) हो सकते हैं। इसी प्रकार कालिदास त्रिवेदी भी औरंगज़ेब से प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध रखते लगते हैं। किन्तु मुल्ला दाऊद (फ़ीरोजशाह तुग़लक़), कुत्बन (हुसैनशाह शर्की), जायसी (बाबर एवं शेरशाह), मंज़न (इस्लामशाह), उस्मान (जहाँगीर),

1. “इसमें 1423 ई. से 1718 ई. तक के 212 कवियों के एकसहस्र संकलित हैं।” (डॉ. राकेश गुप्त, ‘हिन्दी साहित्य कोश’, भाग 2 पृष्ठ 86)।

2. “इसमें 340 छन्द हैं और ललिता सखी द्वारा राधा की विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का परिचय दिया गया है।...भानुदत्त की रसमंजरी का ही अनुकरण ...किन्तु उदाहरण बड़े सरस और कवित्वपूर्ण हैं।” (वही) मिश्रबन्धु ने ग़लती से वारवधूविलास लिख दिया है, आ. शुक्ल ने ग़लती का अनुकरण किया है। अनर्थ की ओर दोनों का ध्यान नहीं गया।

3. संवत् सत्रहसै उननचास। कालिदास किय ग्रंथ विलास।।

4. ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग 2 में डॉ. राकेश गुप्त ने मिश्रबन्धु एवं आ. शुक्ल के ग्रन्थों में लिखे 1745 वि. में 57 वर्ष घटाकर 1688 ई. लिख गया है जो ग़लत है। पूस माघ में ईसवी वर्ष बदल जाता है। इस कारण हिन्दी-ग्रन्थों में शत-शत त्रुटियाँ आ गई हैं। द्रष्टव्य हैं ‘हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया’ (डॉ. ईश्वरीप्रसाद) पृष्ठ 630।

5. ‘विनोद’ में, ‘गढ़न गढ़ी से महल गढ़ी से मढ़ि’ पाठ ग़लत है।

6. औरंगज़ेब की पदवी।

7. ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ (शुक्ल) में ‘बादसाही’ ग़लत लिखा है।

नूरमोहम्मद (मोहम्मदशाह रंगीला) इत्यादि की शाहेवक्त-स्तुति मोहम्मदी या ईरान-महाकाव्य (मसनवी) रूढ़ि का पालन मात्र लगती है, जिसका अनुकरण सबलसिंह चौहान (औरंगजेब) इत्यादि हिन्दुओं ने भी किया है। यदि भारतेन्दु ने अंग्रेज-प्रशस्ति की है, तो निन्दा करने में भी नहीं चूके। हाँ, रवीन्द्र एवं मैथिलीशरण (दोनों राष्ट्रकवि) ने गौरांगमहाप्रभु-स्तुति शुद्ध चारणवादी परिपाटी पर की है। दोनों धनीमानी व्यक्ति थे जो प्रायः शासकभीरु होते ही हैं।

कालिदास त्रिवेदी का कवि-रूप मौलिकता या कलात्मकता की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। किन्तु उनका 'हज़ारा' उन्हें अमर बनाने के लिए पर्याप्त है। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव शिवसिंह सेगर एवं मिश्रबन्धु इत्यादि मूलग्रन्थकारों पर पड़ा, परोक्ष आ. शुक्ल एवं डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि अन्य ग्रन्थकारों इत्यादि पर। उनकी कविता के दो प्रसिद्ध उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. हाथ हैंसि दीन्ह्यों भीति अंतर परसि प्यारी, देखत ही छकी मति कान्हर प्रवीन की।
निकस्यो झरोखा माझ बिकस्यो कमल सम, ललित अँगूठी तामें चमक चुनीन की।।
कालिदास तैसी लाल मेहँदी के बुंदन की, चारु नख-चंदन की लाल अँगुरीन की।
कैसी छवि छाजति है छाप और छलान की सु कंकन चुरीन की जड़ाऊ पहुँचीन की।।
2. चूमौ करकंज मंजु अमल अनूप तेरो, रूप के निधान कान्ह, मो तन निहारि दै।
कालिदास कहै मेरे पास हरै हेरि-हेरि, माथे धरि मुकुट, लकुट कर डारि दै।।
कुँवर कन्हैया, मुख-चन्द्र की जुन्हैया, चारु, लोचन-चकोरन की प्यासन निवारि दै।
मेरे कर मेहँदी लगी है नंदलाल प्यारे, लट उरझी है नकवेसरि सँभारि दै।।

बिहारी इत्यादि के सदृश कालिदास त्रिवेदी ने भी सामयिक सज्जा-प्रसाधनों, आभूषणों इत्यादि का अच्छा वर्णन किया है। 'शास्त्रीयकालीन कविता में आभूषण एवं अन्य सज्जा-प्रसाधन' शोध का सुंदर किन्तु प्राविधिक विषय है। कालिदास त्रिवेदी शारीरिक सौन्दर्य में हाथ पर अधिक रीझे हैं जो नव्यता एवं भव्यता की दृष्टियों से विशिष्टतापूर्ण लगता है।

देव

सूर सूर, तुलसी सुधाकर, नक्षत्र केसी, सेष कबिराजन को जुगनू गनायकै।
कोऊ परिपूरन भगति दिखरायो अब काब्यरीति मोसन सुनहु चित लायकै।।
देव नभमंडल समान है कवीन मध्य जायै भानु, सितभानु, तारागन आयकै।'
उदै होत, अथवत्, चारों ओर भ्रमत, पै जाको ओर-छोर नहिं परत लखायकै।¹ (अज्ञात)
देव सुकवि ने विरचि छन्द अनुपम टकसाली भाषा की सर्वोच्च दिखाई छटा निराली।।
देस-देस की बिसद तरुनिगन बरनि सुनाया। कर बरनित प्रति जाति सभी का रूप दिखाया।।
दस अंग काव्य, बैराग त्यों राग-भेद सब-कुछ कहा। सब कवियों में यह एक कवि भाषा का राजा रहा।।
(मिश्रबन्धु)³

शृंगार कविता के अन्तर्गत सानुराग प्रेम के वर्णन में देव जी का सामना हिन्दी-भाषा का कोई भी कवि नहीं कर सकता। ('देव और बिहारी' के प्रणेता पं. कृष्णविक्रमी मिश्र)

इनका सा अर्थ-सौष्ठव और नवोन्मेष विरले ही कवियों में मिलता है। रीतिकाल के कवियों में ये बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभासम्पन्न कवि थे, इसमें सन्देह नहीं। इस काल के कवियों में इनका विशेष गौरव का स्थान है। (रामचन्द्र शुक्ल)⁴

1. इस छन्द के अनुकरण में पन्त ने मैथिलीशरण-प्रशस्ति की है :

"सूर सूर, तुलसी शशि" लगता मिथ्यारोपण,
स्वर्गगा छयापथ में कर आपके भ्रमण।

2. यह छन्द मिश्रबन्धु के पिता पं. बालदत्त मिश्र को बहुत प्रिय था जिसे उन्होंने देव-कृत 'सुखसागर-तरंग' की भूमिका में उद्धृत भी किया है (नवरत्न, पृष्ठ 234)।

3. नवरत्न, पृष्ठ 236।

4. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 247।

प्रेम और शृंगार के सम्बन्ध में उनकी धारणा अत्यन्त उच्च है और उनकी भावना उदात्त और उज्ज्वल रूप में प्रकट हुई है।जो रचना उन्होंने की वह उनकी सर्वोच्चकोटि के कवियों में प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त है। (भगीरथ मिश्र)¹

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में देव (1673-1767 ई.) का स्थान प्रथम श्रेणी के कवियों में सुनिश्चित किया जाना चाहिए। देव इटावा-निवासी कान्यकुब्ज द्विवेदी ब्राह्मण थे, जिसके कुछ वंशज इटावा से 32 मील दूर कुसमरा (ज़िला मैनपुरी) में अब तक विद्यमान हैं; जैसाकि इनके एक वंशज (प्रपौत्र) भोगीलाल² ने 'वखतेश-विलास' नामक ग्रन्थ में लिखा है;

कस्यप गोत्र द्विवेदि कुल, कान्यकुब्ज³ कमनीय।

देवदत्त कवि जगत में भए देव रमनीय।।

मैनपुरी के सारे साहित्यकार देव को कुसमरा में ही उत्पन्न मानते हैं। डॉ. नगेन्द्र ('रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' के शोधकर्ता) इत्यादि ने कुसमरा की शोधयात्रा भी की है। 'मैनपुरी जनपद : स्वाधीनता-आन्दोलन का इतिहास' शीर्षक उल्लेख्य ग्रन्थ के लेखक श्री नरेशचन्द्र सक्सेना 'सैनिक' के अनुसार, "महाकवि देव का जन्म मैनपुरी के कुसमरा कस्बे में हुआ।" वहाँ स्मारक भी है। किन्तु मिश्रबन्धु ने देव का जन्मस्थान इटावा माना है। इटावाप्रेमी न्यायमूर्ति श्री प्रेमशंकर गुप्त (प्रयाग) ने 11 अप्रैल, 1994 को मुझे बताया था कि इटावा के लालपुरा में देव के वंशज विद्यमान हैं। श्रीनारायण चतुर्वेदी ने इटावा के उत्तुंग टिक्सी मन्दिर के विशाल प्रांगण में देव का स्मारक भी बनवाया था, जो दर्शनीय है।

देव के स्फीत सृजन में भावविलास, अष्टयाम, रागरत्नाकर, सुजान-विनोद, कुशलविलास, प्रेमचन्द्रिका, जातिविलास, रसविलास, काव्य-रसायन⁴, सुखसागर-तरंग एवं देवशतक प्रमुख हैं। रसविलास, प्रेमचन्द्रिका एवं जातिविलास देव के प्रमुख ग्रन्थ हैं। उनके काव्यरसायन एवं भावविलास शुद्ध शास्त्रीय-काव्य हैं जो उन्हें केशव, चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति, सुखदेव, श्रीपति, भिखारीदास, पद्माकर, प्रतापसाहि प्रभृति के साथ आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, यद्यपि कवि-रूप में वे इनमें केशव के अतिरिक्त सबसे श्रेष्ठ हैं। देव अपने देवशतक में केशव की विज्ञानगीता एवं सुखदेव के अध्यात्म-प्रकाश की परम्परा को गतिशील करते हैं। उन्होंने 'शृंगारविलासिनी'⁵ नामक एक संस्कृत-नायिकाभेदकाव्य भी रचा है। वृक्षविलास एवं पावसविलास शीर्षक क्रमशः लघु एवं आकाशसम्पन्न किन्तु पं. जुगलकिशोर मिश्र⁶ द्वारा देखे जाने पर भी संप्रति अनुपलब्ध ग्रन्थ उनके प्रकृतिप्रेम के प्रतीक हैं, जो अन्य प्रख्यात ग्रन्थों के षड्भूत-वर्णनादि से जुड़कर उन्हें उच्चकोटि का प्रकृति-कवि भी सिद्ध करते हैं। अपूर्ण एवं काव्यप्रधान 6 अंकों का देवमायाप्रपंच-नाटक धर्म-माया-युद्ध पर आधृत है, जिस पर केशव की विज्ञानगीता का प्रभाव सम्भव है, किन्तु यह न उनकी प्रमुख कृतियों में समाविष्ट हो सकता है, न शतशः प्रामाणिक ही है (क्योंकि 'देव' शब्द श्लिष्ट है)।

यह हिन्दी का दुर्भाग्य रहा कि देव जैसा महाकवि प्रशस्ति एवं अन्याय की छीनाझपटी का शिकार बनाया जाता रहा। मिश्र-बन्धु के नवरत्न में व्यक्त आलोचना की उच्च शिला से सरक-सरक जाती है, जिसे कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' में बड़े कौशल के साथ गिरने से बचाया है तथा भगीरथ मिश्र ने एक शिथिल आधुनिकता से निष्पन्न किया है। केवल मिश्रबन्धु के विरोध के लिए लिखी जाने के कारण रामचन्द्र शुक्ल की देव-विषयक आलोचना खोखली और अन्तर्विरोधपूर्ण हो गई है, जिसे विषय-सम्बद्ध विद्वानों ने ठीक ही कोई महत्त्व नहीं प्रदान किया। आ. पद्मसिंह शर्मा के संजीवन-भाष्य का महत्त्व अक्षुण्ण है, किन्तु उनकी अशोभनीय मिश्रबन्धु-निन्दा एवं उनका कालातीत वाहवाहवाद एकदम वाहियात है, जो बिहारी को सूर, केशव, देव इत्यादि पर अकारण वरीयता प्रदान करने के कारण वाहियात साबित हो भी चुका है। भगवानदीन 'दीन' कृत 'बिहारी और देव' अच्छा ग्रन्थ है किन्तु वह देव के कृतित्व का सम्यक् आकलन नहीं कर पाता। 'देव और उनकी कविता' में डॉ. नगेन्द्र कोई ठोस स्थापना नहीं कर सके; वस्तुतः उनका

1. रीतिकाव्य-नवगीत, पृष्ठ 76-77।

2. राजा भोगीलाल देव के आश्रयदाता थे; उनकी स्मृति का नामकरण लगता है : "रसविलास लखि रीझियाहिं भोगीलाल सुजान।"

3. आश्चर्य है कि 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आ. शुक्ल ने इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण घोषित करते हुए कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताने वाले मिश्रबन्धु का 'कुछ लोग' कहते हुए खंडन किया है। डॉ. भगीरथ मिश्र इत्यादि ने ठीक ही देव को कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना है। शुक्ल जी बहुत संकीर्ण व्यक्ति थे।

4. शब्दरसायन के दूसरे नाम से भी ख्यात।

5. रीतिकाव्य-नवनीत (सं. डॉ. भगीरथ मिश्र), पृष्ठ 75।

6. जुगलकिशोर मिश्र एवं जुगलकिशोर मिश्र नाम-रूप भी चलते हैं।

क्षेत्र आधुनिककाल (बौद्धिककाल) है, उसमें भी 'छायावाद-युग' (स्वच्छंदतावादी युग), उसमें भी कामायनी। डॉ. भगीरथ मिश्र, प्राचार्य डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र इत्यादि द्वारा देव की श्रेष्ठता का प्रतिपादन ही वस्तुवाद-आधृत होने के कारण वरेण्य हैं। शास्त्रीयकाल या अलंकृतकाल या रीतिकाल के प्रात्ययिक विद्वान् मिश्रबन्धु, कृष्णविहारी मिश्र, भगवानदीन 'दीन', युगलकिशोर मिश्र, ब्रजकिशोर मिश्र, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भगीरथ मिश्र, जवाहरलाल चतुर्वेदी, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र इत्यादि हैं, आ. शुक्ल, आ. पद्मसिंह शर्मा, डॉ. नगेन्द्र इत्यादि नहीं।

जीवन-दर्शन

आ. रामचन्द्र शुक्ल एवं परवर्ती अनुकरणवादियों ने प्रवाद प्रचलित कर रखा है कि शास्त्रीयकालीन कवि उल्लंग शृंगारी, अस्मिताहीन दरवारी और उच्छृंखल स्वेच्छाचारी थे। यों तो सारे श्रेष्ठ कवियों की वाणी ही इस प्रवाद का खंडन करती है, पर देव को इस दिशा में अग्रणी माना जा सकता है। देव का जीवन-दर्शन भाषा, सौन्दर्य-बोध, प्रेम, प्रकृति-बोध, अंतस्साधना इत्यादि तक प्रसरित है। वे राधावल्लभ-सम्प्रदाय से संपृक्त होते हुए भी अंतस्साधनावादी थे। वे शृंगारी होते हुए भी प्रेमाद्वैतवादी थे।

भाषा के सन्दर्भ में देव अभिधावादी थे। उन्होंने "अभिधा उत्तम काव्य है" की स्पष्ट घोषणा की है। वे सीधी-सादी किन्तु अलंकृत-सुसम्पन्न कविता के पक्षधर थे। उनका काव्यादर्श बहुत ऊँचा है, जो तुलसी के काव्यादर्श का स्मरण कराता है :

जाके न काम न क्रोध बिरोध न लोभ छुवै नहिं छोभ को छाहीं।
मोह न जाहि रहै, जग बाहिर, मोल जवाहिर तौ अति चाहैं।।
बानी पुनीत ज्यों देवधुनी, रस आरद सारद के गुन गाहैं।
सील ससी, सबिता छबिता, कबिताहि रचै, कबि ताहि सराहैं।।

देव के अभिधावाद का प्रत्याख्यान आ. शुक्ल की लक्षणवाद-व्यंजनावाद के प्रति आत्मपरक आसक्ति का परिणाम है (जिसके कारण वे क्रमशः घनआनन्द एवं प्रतापसिंह की अत्यधिक प्रशंसा कर गए हैं) वस्तुवाद का निष्कर्ष नहीं, क्योंकि संसार का सर्वश्रेष्ठ काव्य अभिधाप्रधान ही है और लक्षणा-व्यंजना का अधिक प्रसार सम्भव ही नहीं है, क्योंकि वे अभिधा के ही अंग हैं। मानव अधिकतर अभिधा में बोलता है, कभी-कभार लक्षणा में, बहुत कम व्यंजना में। महाकवि देव का भाषा-दर्शन सर्वथा प्रशस्य है, जो विश्वकवि तुलसी के "सूधो मन, सूधो वचन" के दर्शन से मिलता है।

देव का शृंगार-दर्शन अद्वैतमूलक है, कोरा मांसल व्यापार जैसाकि अनेक पूर्वाग्रहग्रस्त या अध्ययनविहीन व्यक्ति मानते चले आ रहे हैं :

मायादेबी नायिका, नायक पुरुष आपु।
सबै दंपतिन मैं प्रगट, देव करै तेहि जापु।।
सुख-दुख में है एक सम, तन-मन-वचनन प्रीति।
सहज बड़ै हित चित नयो, जहाँ सुप्रेम सुप्रीति।।

'सार' जैसे सूक्ष्म-सुंदर अलंकार के माध्यम से महाकवि देव ने अर्थ (संपत्ति) को काम (दाम्पत्य) एवं काम को धर्म (राधाकृष्णभक्ति) में अवसित कर गहन प्रेमदर्शन की समग्रता की निष्पत्ति की है क्योंकि प्रेम प्रवृत्तिमूलक होने के कारण निवृत्ति या मुक्ति या निर्वाण या मोक्ष को विशेष महत्त्व नहीं देता—उसका उदात्त रूप कुंठामुक्त होने के कारण स्वयं बैकुंठ है। इस महान् छन्द से स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धान्ततः देव आ. विश्वनाथ के 'परोढ़ां वर्जयित्वा' विकासक हैं :

देव सबै सुखदायक संपत्ति, संपत्ति को सुख दंपति जोरी।
दंपति को सुख प्रेम प्रतीति, प्रतीति की रीति सनेह निचोरी।।
रीति प्रतीति फबै तबही जब नेह की बानी सुधारस बोरी।
बानी को सार बखानो सिंगार, सिंगार को सार किसोर-किसोरी।।'

देव पूर्णजीवनवादी हैं। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सबको समाहित करता हुआ उनका पुरुषार्थ-दर्शन इस छन्द में महान् रूप में विवृत हुआ है। संसार-साहित्य में ऐसे सुंदर किन्तु गहन छन्द थोड़े ही मिलते हैं।

प्रकृति-चित्रण

देव ने सविस्तर प्रकृति-चित्रण किया है। उनका षड्भूत-वर्णन संयोग एवं वियोग दोनों से संपृक्त होने के कारण बहुत विशद है। प्रकृति-चित्रण का आलम्बनात्मक, उद्दीपनात्मक, रहस्यात्मक, उपदेशात्मक प्रभृति रूपों में वर्गीकरण अध्ययन की सुविधा के लिए उपयोगी है किन्तु इनमें सच्चा या झूठा, खरा या खोटा इत्यादि की स्थापना “भिन्नरुचिर्हि लोकाः” की अवहेलना करते हुए अपनी तरंग को दूसरों पर थोपना ही माना जाएगा। देव का प्रकृति-चित्रण सुंदर, सजीव, विंबसम्पन्न एवं उच्चस्तरीय है :

डार द्रुम पालना, विछौना नवपल्लव के, सुमन झगूला सोहै तन छवि भारी दै।
पवन झुलावै, केकी-कीर बतरावै देव, कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सों उतारो करै राई-लोन, कंजकली, नायिका लतानि पुचकारी दै।
मदन महीप जू को बालक वसंत, ताहि प्रातहि जगावन गुलाब चटकारी दै।।

यदि इस छन्द में सांग-रूपक का सजीव निर्वाह है, तो निम्नलिखित छन्द में अनुप्रास का; जहाँ तक बिम्बधर्मिता एवं संगीतात्मकता का सम्बन्ध है, दोनों ही अद्वितीय हैं—और ऐसे छन्द देव ने अनेक लिखे हैं :

सुनि कै धुनि चातक-मोरन की चहुँ ओरन कोकिल-कूजन सों।
अनुराग भरे बन बागन मैं, हरि रागत राग अचूकन सों।।
कवि देव घटा उनई जु नई, वनभूमि भई दल-दूकन सों।
रंगराती हरी हहराती लता, झुकि जाति समीर की झूकनि सों।।

सौन्दर्य-चित्रण

शास्त्रीयकाल के अधिकांश कवियों ने सौन्दर्य-चित्रण किए हैं, क्योंकि नायिकाभेद, नायकभेद एवं नखशिख इस काल के प्रधान वर्ण्य हैं और तीनों की ही आत्मा सौन्दर्य है। सौन्दर्य-चित्रण की दृष्टि से शास्त्रीयकाल की कविता संसार-साहित्य की एक निधि है। इस विषय पर महान् व्रजभाषा एवं व्रजकला मर्मज्ञ विद्वद्भर प्रभुदयाल मीतल कृत ‘व्रजभाषाकाव्य में नायिकाभेद’ एवं रसज्ञ जवाहरलाल चतुर्वेदी कृत ‘आँख और कविगण’ में अच्छा प्रकाश डाला गया है। संत हो या अंसारी, रहस्यवादी हो या यथार्थवादी—यदि वह मनुष्य भी है तो नारी-सौन्दर्य से बच नहीं सकता। श्री सोमदत्त मालवीय ने ‘हिन्दी-कविता में उरोज-सौन्दर्य’ प्रस्तुत कर एक प्रशस्य कार्य किया है। रवीन्द्र ने ‘स्तन’ कविता लिखी है—मुझे हर्ष है कि मैंने 1965 ई. में ‘उरोज’ कविता लिखी थी, जो ‘देश, दिल्ली और अहमू’ में संगृहीत है। देव ने बड़ी संख्या में सौन्दर्यचित्रणपरक छन्द रचे हैं, जिनके अनेक छन्द अनूठे हैं। दो उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. पाँयन नूपुर मंजु बजै, कटि-किंकिन मैं धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई।।
माथे किरीट, बड़े दृग चंचल, मंद हँसी, मुखचंद-जुन्हाई।
जै जगमन्दिर-दीपक सुंदर श्रीब्रजदूलह देव सहाई।।
2. माखन-सो तनु, दूध-सो जोबनु, है दधि ते अधिकौ उर ईठी।
जा छवि आगे छपाकर छाँछ, समेत सुधा बसुधा सब सीठी।।
नैनन नेह चुवै कहि देव, बुझावत बैन बियोग आँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहै, कहौ क्यों न लगे मनमोहनै मीठी।।

अद्वैतात्मक विरहवर्णन

देव का विरह-वर्णन स्वभावतः व्यापक है क्योंकि वे मुख्यतः शृंगारी कवि थे तथा संयोग एवं वियोग शृंगार-शरीर के लोचन हैं। उनके औत्सुक्य, प्रतीक्षा, आवेग इत्यादि वियोगावयवों के वर्णन महान् हैं, भाव-शबलता के अद्वितीय, जिनका पद्माकर एवं रत्नाकर पर प्रभाव पड़ा है। देव का प्रस्तुत अद्वैतात्मक विरह-छन्द संसार-साहित्य की एक उपलब्धि है, जिसका आशय है कि विरह में पंचतत्त्वों में जो चार स्थूल या दृश्य या अनुभवगम्य हैं वे स्वलीन हो गए तथा जो एक सूक्ष्म या शून्य या अनुभूतिगम्य है वह अक्षुण्ण होने के कारण विद्यमान है; विरह का ऐसा वर्णन न सूर कर सके हैं, न जायसी, न घनानन्द :

साँसन ही साँ समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि ।

तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि ।।

देव जिए मिलिबेई की आस कै आस हू पास अकास रह्यो भरि ।

जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि ।।

इस महान् छन्द की गहन दार्शनिकता¹ में अनुप्रास, यमक, परिकरांकुर इत्यादि अलंकार डूब-डूब कर रह गए हैं। ऐसे छन्दों के मूल स्रोत की कल्पना महत्त्वहीन होगी क्योंकि ऐसी कल्पना की परिधि में तुलसी, सूर से पंत, अज्ञेय तक प्रायः सभी श्रेष्ठ कवि आ जाएँगे। शेक्सपीयर के विषय में प्रसिद्ध है कि वह कभी मौलिक न थे तथा उन्होंने कभी मौलिक होने का यत्न भी नहीं किया था²। उक्त छन्द तो पर्याप्त मौलिक है। जिस आलोचक-प्रतिभाहीन तथाकथित-आलोचक के पास तत्त्वनिरूपण की शक्ति नहीं होती वह मौलिकता पर अनावश्यक प्रहार करता है। ऐसे अनेक मूर्ख तुलसी की मौलिकता पर प्रहार करते नहीं थकते।

प्रेमाद्वैतवाद

महाकवि देव ने अनेक ऐसे छन्द लिखे हैं जिनके स्पष्टीकरण के लिए मुझे 'प्रेमाद्वैतवाद' शब्द गढ़ना पड़ा है। यद्यपि यत्र-तत्र प्रेमाद्वैतवाद के दर्शन विद्यापति, सूर, विहारी इत्यादि में भी हो जाते हैं, तथापि देव के वर्णन इस दिशा में अतुलनीय हैं। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. राधिका कान्ह को ध्यान धरै, तब कान्ह हवै राधिका के गुन गावै ।
त्योँ अँसुवा बरसै, बरसाने को पाती लिखै, लिखि राधे को ध्यावै ।।
राधे है जाय घरीक में देव³ सु प्रेम की पाती लै छाती लगावै ।
आपुने आपु में ही उरझै, सुरझै बिरुझै, समुझै, समुझावै ।।
2. ना यह नंद को मंदिर है, वृषभान को भौन, कहा जकती हौ ।
हौं हीं यहाँ तुम ही कहि देव जू, काहि धौं घूँघुटु कै तकती हौ ।।
भेंटती मोहिं भटू! केहि कारन, कौन की धौं छवि साँ छकती हौ ।।
कैसी भई सो कहो किन कैसे हू, कान्ह कहाँ हैं, कहा बकती हौ ।।
3. देव मैं सीस बसायो⁴ सनेह⁵ सो भाल मृगम्मद बिंदु कै भाख्यो ।
कंचुकी मैं चुपड़्यो करि चोबा, लगाय लियो उर सो अभिलाख्यो ।।
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिमंत सिंगार⁶ कै चाख्यो ।
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं नैननि को कजरा करि राख्यो ।।

1. 'स्वरूपता' की स्थिति में अथवा साक्षात्कार की स्थिति में स्थूलता का संपूर्ण हास ।

2. ही वाज नेवर ऑरिजिनल नॉर एवर ही ड्राईट टु बी सो ।

3. उच्चतमस्तरीय श्लेष जो दर्शन का दर्शन कराता है : आराधना (राधा) का स्वयं आराध्य (कृष्ण) बनना (ध्याने-ध्याने स्वरूपता) ।

4. सुवासित किया, बसा लिया । श्लेष ।

5. प्रेम, तैल । श्लेष ।

6. आ. भरत ने नाट्यशास्त्र में शृंगार का वर्ण नील या श्याम माना है । श्याम शृंगारायतन हैं ।

भावशबलता

देव भावशबलता के सम्राट् हैं। उनके भावशबलता के उदाहरण अद्वैतात्मक-विरह एवं प्रेमाद्वैतवाद से निष्पन्न हैं—सम्भवतः इन्हीं दो तत्त्वों से प्रेरित होकर भी—जिन्होंने रत्नाकर प्रभृति महाकवियों तक को प्रभावित किया है दो निदर्शन प्रस्तुत हैं :

1. वैरागिनि कीधौ अनुरागिनि सोहागिनि तू, देव वड़भागिनि, लजाति औ लरति क्यों।
सोवत, जगति, अरसाति, हरषाति, अनखाति, विलखाति, दुख मानति, डरति क्यों।।
चौंकति, चकति, उचकति औ वकति, विथकति औ थकति, ध्यान धीरज क्यों।
मोहति, मुरति, सतराति, इतराति, सहचरज सराहि, अहचरज भरति क्यों।
जब तें कुँवर कान्ह रावरी कलानिधान कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।
तब ही ते देव देखी देवता-सी, हँसती-सी, खीझती-सी, रीझती-सी, रूसति-रिसानी-सी।।
छोही-सी, छली-सी छीनि लीनी-सी, छकी-सी, छीन, जकी-सी, टकी-सी, लागी थकी थहरानी-सी,
बौधी-सी, बँधी-सी, विषबूझी-सी, विमोहित-सी, बैठी वह वकति, विलोकति बिकानी-सी।।

भावशबलता मानवीय मनोभावों की सामासिकता की प्रतीक होने के कारण महान् मनोवैज्ञानिक महत्त्व रखती है। प्रेम के अंगी, मूल एवं प्रमुख मनोभाव होने के कारण अन्य सारे भाव किसी-न-किसी रूप में या कभी-न-कभी उसके अंग बन ही जाते हैं। भावशबलता में इसका सुंदर चित्रण हो जाता है। उपर्युक्त दोनों छन्दों में ऐसा ही हुआ है। द्वितीय छन्द की मालोपमा भी सुंदर है। भाषा-प्रवाह में देव की समता हिन्दी के बहुत ही कम कवि कर सकते हैं। यह छन्द इस तथ्य को भी उजागर करता है।

अंतस्साधना

भक्ति का मूल प्रेरक अद्वैतवाद रहा है, भले ही उसने इस या उस विशेषण का अवलंब भी ग्रहण किया हो। वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद का उनके समसामयिक एवं परवर्ती कवियों पर भारी प्रभाव पड़ा, जिनमें सूरदास एवं हितहरिवंश प्रमुख हैं। सूर की रासलीला, मुरली-माधुरी एवं भ्रमरगीत शुद्धाद्वैतवाद-निष्पन्न हैं। राधावल्लभ-समप्रदाय ने शुद्धाद्वैतवाद को शैव-शाक्त तत्त्वों से भी निष्पन्न किया है। हितहरिवंश का संक्षिप्त किन्तु महान् रासलीलावर्णन दार्शनिकता से ओतप्रोत है। महाकवि देव का मिलनकाव्य एवं विरहकाव्य अद्वैत-दर्शन से संपुक्त है—इतना कि एक को दूसरे के समझे बिना समझा ही नहीं जा सकता। किन्तु देव ने एकदम स्पष्ट अंतस्साधनामूलक काव्यसृष्टि भी की है, जो कबीर इत्यादि संतों की एतद्विषयक प्रेरक कविता से बहुत अधिक कलात्मक है :

1. कथा मैं न, कंथा मैं न, तीरथ के पंथा मैं न, पोथी मैं न, पाथ मैं न साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न, मुंडन न, तिलक-त्रिपुंडन न, नदी-कूप-कुंडन अन्हाय दान-रीति मैं।।
पीठ-मठ-मंडल न, कुंडल कर्मंडल न, माला दंड मैं न देव देहरे की भीति मैं।
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूर रह्यो, पाइए प्रगट परमेशुर प्रतीति मैं।।
2. देव न देखति हौं द्रुति दूसरी, देखे हैं जा दिन ते ब्रजभूप मैं।
पूरि रही री वही धुनि कानन' आन न आनन ओष अनूप मैं।
ये अँखियाँ सखियाँ न हमारियै जाय मिलीं जलबुंद ज्यों कूप मैं।
कोटि उपाय न पाइयै फेरि, समाइ गई रँगराइ के रूप मैं।।

रहस्यवाद

मिश्रबन्धु को रहस्यवाद से न लेना एक था न देना दो, श्यामसुंदरदास रहस्यवाद के प्रति तटस्थ थे, रामचंद्र शुक्ल रहस्यवाद से वैसे ही भड़कते थे जैसे लाल कपड़े से जवान साँड़। अतः विद्यापति से महादेवी तक के काव्य में व्याप्त रहस्यवाद के नाना रूपों पर वस्तुपरक प्रकाश नहीं पड़ पाया। परवर्ती आलोचकों में नन्ददुलारे वाजपेयी एवं नगेन्द्र का क्षेत्र स्वच्छंतावादी काव्य था,

हजारीप्रसाद द्विवेदी का नाथ-संत-काव्य, रामविलास शर्मा का भारतेन्दु-साहित्य एवं निराला-साहित्य तथा प्रौढ़कर आयु में महावीर प्रसाद द्विवेदी-साहित्य। अतः पूर्वाधुनिक कविता में कबीर एवं जायसी को छोड़कर अन्य कवियों के रहस्यवाद पर सम्यक् प्रकाश नहीं पड़ सका—“कबीर एवं जायसी को छोड़कर” इसलिए कि इनकी कविता रहस्यवाद से वागर्थविव संपृक्त है। अतः यदि मैं कहूँ कि ‘खुसरो की कविता में रहस्यवाद’, ‘नानक की कविता में रहस्यवाद’, ‘गुरु अर्जुन की कविता में रहस्यवाद’, ‘देव की कविता में रहस्यवाद’, ‘दीनदयाल गिरि की कविता में रहस्यवाद’ एम. फिल. के लघुप्रबन्धों के उत्कृष्ट विषय हैं, ‘शास्त्रीयकाल की कविता में रहस्यवाद’ पी-एच.डी. के प्रबन्ध का उत्कृष्ट विषय है, ‘गुरुग्रन्थसाहब’ की कविता में रहस्यवाद’ डी. लिट्. के महाप्रबन्ध का उत्कृष्ट विषय है, तो साधारण स्तर के बहुत-से लोग चकित तक हो सकते हैं।

देव एक उच्चकोटि के रहस्यवादी कवि भी हैं। उनका रहस्यवाद अनूठी काव्यकला से मंडित है। कबीर का रहस्यवाद साधनात्मक है, कलात्मक नहीं। रवीन्द्र का रहस्यवाद कलात्मक है, साधनात्मक नहीं। किन्तु देव का रहस्यवाद कलात्मक और केवल-कलात्मक है, अतः विशेष मनोहारी है। कबीर अपने रहस्यवाद में उपदेशक प्रतीत होते हैं, रवीन्द्र भाषणकर्ता। किन्तु देव अपने रहस्यवाद में केवल कवि हैं। देव के रहस्यवाद में महादेवी की “पीड़ा का चसका”¹ नहीं दीखता, पर पीड़ा का सौन्दर्य भरा-पूरा मिलता है :

मोहिं तुम्हें अंतरु गनै न गुरुजन, तुम मेरे, हों तुम्हारी, पै तऊ न पघिलत हौ।
पूरि रहे या तन मैं, मन मैं न आवत हौं, पंच पूछि देखे, कहूँ कानू ना हिलत हौं।।
ऊँचे चढ़ि रोई, कोई देत न दिखाई देव, गातन की ओट बैठे बातन गिलत हौं।
ऐसे निरमोही सदा मोही मैं बसत अरु, मोही ते निकरि फेरि मोही न मिलत हौं।।

श्लेष के गहन चमत्कार ने उक्त छन्द को क्लिष्ट कर दिया है किन्तु यह माधुर्य-भागवत रहस्यवाद से आद्यंत ओतप्रोत है। एक अन्य छन्द द्रष्टव्य है :

रावरो रूप रह्यो भरि नैननि बैननि के रस सों सुति सानो।
गात में देखत गात तुम्हारेई, बात तुम्हारेई बात बखानो।।²
ऊधो! हहा हरि सों कहियो, तुम हौ न इहाँ, यह हौं नहिं मानो।
या तन से बिछुरे तो कहा, मन ते अनते जु बसौ तब जानो।।

देव का रहस्यवाद कोरा व्यथात्मक नहीं है। उसमें आनन्द की पुलक भी है :

आँखिन आँखि लगाए रहैं, सुनिए धुनि कानन को सुखकारी।
देव रही हिय मैं घरु कै, न रुकै, निसरै, बिसरै न बिसारी।।
फूल मैं बासु ज्यों मूल सुबासु की, है फलि-फूलि रही फुलवारी।
प्यारी उज्यारी हिये भरिपूरि, सु दूरि न जीवनमूरि हमारी।।

महाकवि देव का प्रस्तुत रहस्यवादी छन्द उच्चतम स्थिति की अद्वयता से निष्पन्न है, जिसकी काव्यकला तो कबीर, रवीन्द्र एवं महादेवी में भी दुर्लभ है (यद्यपि कबीर देव की तुलना में बहुत-बहुत बड़े व्यक्ति हैं, भले ही कवि देव बड़े हों, यद्यपि रवीन्द्र देव की तुलना में बड़े व्यक्ति हैं, भले ही कवि-रूप में, केवल कवि-रूप में, देव कम न हों; यद्यपि महादेवी देव-समकक्ष व्यक्ति हैं, भले ही रहस्यवाद, केवल रहस्यवाद, में उनकी पहचान व्यापकतर हो—कवि-रूप में कम सही) :

औचक अगाध सिन्धु स्याही कौ उमड़ि आयो, तामैं तीनों लोक बूड़ि गए एक संग मैं।
कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागद, सु न्यारे करि बाँचे कौन जाँचे चितभंग मैं।।
आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैनि, जिमि जंबु-रस-बुंद जमुना-जल-तरंग मैं।
यों ही मन मेरी मेरे काम को न रह्यो माई। स्याम रंग हवै करि समान्यो स्याम रंग मैं।।

1. ‘गुरुग्रन्थसाहब’ की कविता हिन्दी-कविता है, पंजाबी कविता नहीं। नामदेव, कबीर इत्यादि की वाणी ही नहीं अपितु नानक, अर्जुन, तेगबहादुर इत्यादि की वाणी भी व्यापक राष्ट्रभाषा को ध्यान में रखकर लिखी गई थी।
2. ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में रामचन्द्र शुक्ल।
3. समीर, वार्ता। स्तरीय श्लेश-यमक भी।

“हौ ही ब्रज, वृंदावन मोही मैं बसत सदा” शीर्षक महान् कवित्त¹ देव का सर्वश्रेष्ठ छन्द है, जिसमें उपनिषद् एवं पुराण या ‘पूर्णमदः’ एवं ‘पूर्णमिदं’ या ज्ञान एवं भक्ति या योग एवं प्रेम या सत्यम् एवं सुंदरम् या दर्शन एवं कला या श्रेय एवं प्रेय सब-कुछ “अहं ब्रह्मास्मि”² एवं ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’³ के ‘एक’ में खप गए हैं। ‘गीतांजलि’ का कोई गीत इस छन्द की समता नहीं कर सकता, इकबाल का “कभी ऐ हकीक़ते मुंतज़र नज़र आ लिवासे मज़ाज में” इसके सामने किताबी लगता है, निराला कृत ‘तुम और मैं’ इसकी तुलना में सिद्धान्तकाव्य लगता है। महादेवी कृत, “मैं नीर भरी दुख की वदली” इसकी तुलना में आत्मव्यथा-उद्गार मात्र लगता है। यह छन्द सरलतापूर्वक तुलसी के ‘केशव कहि न जाइ का कहिए’ एवं सूर के ‘मोहन मौंग्यो अपनो रूप’ की समता कर लेता है—इसकी तुलना में कबीर का ‘काहे री नलिनी! तू कुभिलानी” तक उपदेशात्मक प्रतीत होने लगता है—निस्सन्देह यह संसार-साहित्य का एक सर्वश्रेष्ठ छन्द है। आधुनिक कविता में केवल प्रसाद की कामायनी में ऐसे कुछ छन्द प्राप्त हो सकते हैं। इस छन्द की सर्वोच्च उपलब्धि है, इसका महान् जीवनबोध-प्रवृत्तिबोध-सौंदर्यबोध जो ‘तनक तनक तामैं झनक चुरीन की” में स्वनित-विवृत हुआ है—जीवन सर्वोपरि है अर्थात् प्रवृत्ति है या जीवनाधार प्रेम सर्वोपरि है, जीवनध्येय आनन्द सर्वोपरि है, क्योंकि ईश्वर, स्वर्ग, धर्म, दर्शन, कला, कविता सब जीवन पर ही आधृत हैं, आश्रित हैं :

हौं ही ब्रज, वृंदावन मोही मैं बसत सदा, जमुना-तरंग स्याभरंग अवलीन की।

चहुँ ओर सुंदर सघन बन देखियत, कुंजन मैं सुनियत गुंजनि अलीन की।।

बंसीबट तट नटनागर नचत मों मैं, रास के विलास की मधुर धुनि वीन की।

भरि रही भनक वनक ताल तालन की, तनक तनक तामैं झनक चुरीन की।।

आकलन

रस, अलंकार, छन्द, शब्दशक्ति, प्रेमदर्शन, भक्तिदर्शन, अद्वैतदर्शन प्रभृति निकर्षों पर देव एक उच्चकोटि के महाकवि सिद्ध होते हैं। निस्सन्देह, अपने अधिकतर आयामों तक प्रसरित सृजन एवं बृहत्तर प्रभाव-प्रेरणा के कारण केशव शास्त्रीयकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, जिनका विशुद्ध कवि-रूप तुलसी एवं सूर के अनन्तर समग्र हिन्दी में अन्यतम है। किन्तु उनके अनन्तर देव की अद्वितीयता स्पष्ट है, जिसे मिश्रबन्धु (जो उन्हें केशव से श्रेष्ठतर मानते तथा तुलसी एवं सूर के अनन्तर सर्वोच्च स्थान पर अधिष्ठित करते हैं जिसे समीचीन मानना सम्भव नहीं), कृष्णबिहारी मिश्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र इत्यादि ने स्वीकार भी किया है। बिहारी में बिम्बधर्मिता, उदात्त एवं रहस्य का वैसा वैभव दृग्गत नहीं हो पाता जैसा देव में। परिमाण में भी देव की समता नहीं कर पाते। अतः आ. पद्मसिंह शर्मा की वाहवाहवादी आलोचना, जो बिहारी को सूर तक पर वरीयता का अनुत्तरदायित्व प्रदर्शित करती है, विचारणीय नहीं बन पाती। लाला भगवानदीन ‘दीन’ एक बहुआयामी विद्वान् एवं उत्तरदायी आलोचक थे, किन्तु उन्होंने जिन निदर्शनों के आधार पर देव से बिहारी को श्रेष्ठतर महाकवि सिद्ध किया है, वे पर्याप्त नहीं हैं। आ. पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी की प्रतिभा के उन्मेष के सन्दर्भ में, गालिब का बहुत सटीक प्रयोग किया है, जिसे गालिब के एक शार्पिद और ‘मुसद्दस’ के शायर हाली तक ने ठीक समझा था। मेरी समझ में, बिहारी हिन्दी के गालिब थे—संक्षिप्तता, कसावट, शब्द-मूल्य प्रभृति दृष्टियों से दोनों महाकवि एक-दूसरे के बहुत निकट हैं। दोनों शृंगारी हैं। दोनों दर्शन में रुचि लेते हैं। यह सत्य है कि बिहारी गालिब की तरह जुंवारी शराबी, कर्ज़खोर वगैरह न थे, पर एक मँजे हुए विलासी वे भी थे जिसके कारण उन्हें अर्थकृच्छ्र एवं अनादर के दिर भी देखने पड़े थे, जो अंतर्साक्ष्य-पुष्ट हैं। उर्दू-शायरी अधिकतर आशिक-माशूक की चोंचलेबाज़ी की ‘वाह-वाह’, “हाय क्या खूब कहा है”, ‘कलम तोड़कर रख दी है”, ‘ग़ज़ब की रवानी है”, ‘क्या अंदाजेबयाँ है” वगैरह में चुक जानेवाली शायरी है, जिसका व्यापक भारतीय संस्कृति एवं जीवन से कोई विशेष या विशद सम्बन्ध नहीं रहा, जो कोकिल या चातक पर नहीं, अपितु बुलबुल पर रीझी है जिसका संगीत कोकिल या चातक के संगीत की तुलना में नगण्य है, जो कमल पर नहीं नर्गिस पर रीझी है जिसे भारत की कोटि-कोटि जनता जानती तक नहीं और जो कमल-सदृश विवेक-प्रतीक हो ही नहीं सकती, अतः उर्दू किसी कालिदास या भवभूति, तुलसीदास या सूर, तिरुवल्लुवर या कंवन (कम्बर), पंप या कुमारयास, पुरंदरदास या त्यागराज, शंकरदेव या माधवदेव, कृत्तिवास या रवीन्द्र, एकनाथ या नरसी को उत्पन्न नहीं कर सकी।

1. घनाक्षरी।

2. बृहदारण्यक उपनिषद्।

3. छंदोग्य उपनिषद्।

बिहारी की कविता में देव की कविता की दार्शनिक गहराई के दर्शन नहीं होते। देव की तुलना में मतिराम प्रौढ़ की तुलना में तरुण के सदृश प्रतीत होते हैं। अधिक सरल-तरल-मोहक किन्तु अल्प गहन-चिंतनशील-प्रभावी। देव की तुलना में सुखदेव आचार्य अधिक लगते हैं, कवि कम—देव अधिक रमणीय भी हैं, कलात्मक भी (यद्यपि पूर्ववर्ती होने के कारण देव यत्र-तत्र सुखदेव से प्रभावित अवश्य हैं)। देव की तुलना में भिखारीदास गद्यकार लगते हैं। जहाँ तक घनआनन्द का सम्बन्ध है, उनके गहन प्रेमवाद, स्वच्छन्दतावाद एवं शब्द-शिल्प की प्रशंसा करते हुए भी कहना पड़ता है : “और-भी बहुत-कुछ है दुनिया में मोहव्यत के सिवा।” जीवन की व्यापकता से लेकर काव्य के प्रवाह तक कहीं भी घनआनन्द देव के निकट भी नहीं आ पाते। पद्माकर का प्रवाह एवं अलंकरण अतिशय प्रशंस्य है, किन्तु उनमें दार्शनिक गहराई नहीं है। निस्संदेह देव पद्माकर से श्रेष्ठतर कवि हैं।

शास्त्रीयकाल का एक महाकवि ऐसा है जो सबसे अलग, एक खास शान के साथ, आन-वान के साथ सीना ताने खड़ा है और जिसका व्यक्तित्व केशव, देव, बिहारी, मतिराम, सुखदेव, भिखारीदास, घनआनन्द, पद्माकर सबसे ऊँचा है, क्योंकि वह केशव इत्यादि के सदृश शृंगार और घनआनन्द इत्यादि के सदृश प्रेम की अभिरुचि से ऊपर विशिष्ट वीरत्व की अभिरुचि से संपृक्त है, जिसने विदेशी आक्रांताओं के विनाश इत्यादि के विरुद्ध उन्हीं के राज्यकाल में वीरत्व से ओतप्रोत स्वरघोष किया तथा मध्यकालीन भारत के सर्वश्रेष्ठ हिन्दू-योद्धा, राष्ट्रनायक एवं नेता छत्रपति शिवाजी को ‘राखी हिंदुवानी, हिंदुवान को तिलक राख्यो, अस्मृति-पुरान राखे, वेद-विधि सुनी मैं’ के ठोस आधार पर अपना काव्याधार बनाया—जो सचमुच भूषण था, अतः उसका स्थूल नाम ठीक ही लुप्त हो गया। व्यक्तिगत-गौरव में तुलसी, सूर, मीराँ (मीरा), कवीर और आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी को छोड़कर भूषण की समता कहाँ? इस महाकवि के ठोस व्यक्तित्व का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि जब साम्प्रदायिक तत्त्वों द्वारा लोकप्रियता-आखेटक राजनीतिजीवी गाँधी के दुराग्रहवश इसे साहित्य सम्मेलन के पाठ्यक्रम से बाहर करा दिया गया तब भारी विरोध हुआ तथा राष्ट्रकवि भूषण की प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गए। भूषण महापुरुष भी थे, महाकवि ही नहीं। किन्तु उनकी कविता के आयाम इतने स्फीत नहीं हैं जितने देव की कविता के—कलादृष्टि से भी देव बीस ठहरते हैं। अतः महाकवि के रूप में देव श्रेष्ठतर हैं।

रत्नाकर की रसनिष्पत्ति एवं कलागरिमा उच्चकोटि की है, किन्तु एक तो वे देव से बहुत प्रभावित हैं, दूसरे उत्कृष्टतम छन्दसंख्या में भी देव श्रेष्ठतर सिद्ध होते हैं। देव का शब्दचयन एवं प्रवाह भी रम्यतर है।

अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण प्रसाद का विशुद्ध साहित्यिक गौरव तुलसी एवं सूर के विराट् सृजन के कारण उनके अनंतर अन्यतम है, किन्तु केवल कवि के रूप में नानाआयामी एवं सततप्रभावी (शास्त्रीयकाल में कवियों एवं जनजीवन पर, बौद्धिककाल में व्यक्तित्वकथा एवं रामलीला के माध्यमों से साहित्यकारों एवं जनता पर) केशव का पारम्परिक तृतीय स्थान न्यायसंगत है। सृजन-गरिमा एवं काव्य-सौन्दर्य में देव एवं प्रसाद समकक्ष कवि हैं। यदि देव बड़े कलाकार हैं, तो प्रसाद बड़े चिन्तक। दोनों का कवि-रूप उच्चकोटि का है।

महाकवि देव हिन्दी-साहित्य के प्रथम श्रेणी के स्रष्टाओं में स्थान के अधिकारी हैं। मुझे तारुण्यकाल की एक घटना का ध्यान आता है। जब स्व. शिशुपालसिंह ‘शिशु’ के इटावा से संबद्ध होने के कारण मैंने उनसे देव की चर्चा की थी और मुख से निकल पड़ा था, “वे देव नहीं, महादेव थे!” यह ‘देव’ के प्रति ‘शिशु’ की उज्ज्वल श्रद्धांजलि थी। हिन्दी के प्रथम महान् एवं सर्वस्फीत आलोचक मिश्र बन्धु की ‘नवरत्न’ में प्राप्त स्थापना—“इनको सर्वश्रेष्ठ कहना गोस्वामी तुलसीदास तथा महात्मा सूरदास के साथ भी अन्याय होगा। सिवा इन दोनों महात्माओं के और किसी तृतीय कवि की तुलना देवजी से कदापि नहीं की जा सकती”—से सहमत न होते हुए भी यह मानना मुझे सर्वथा वस्तुपरक एवं समीचीन लगता है कि देव एक अग्रणी महाकवि हैं, जिनकी काव्यकला विश्वस्तरीय है।

करीम

करीम (रचनाकाल 1700 ई. के लगभग) का परिचय ज्ञात नहीं है किन्तु इनकी छाप के जो छन्द प्राप्त होते हैं वे व्रजभाषा की शृंगारिकता कविता में संग्रहणीय है। सूदन ने अपनी स्फीत कवि-नामावली में इनका उल्लेख किया है। वानगी देखें :

1. वीर रन दौर पै ज्यों, पिक अंब-मौर पै ज्यों, मोर घनघोर पै ज्यों करै नित कूक है।
सौन सुभ तान पै ज्यों, ग्यानी गुरु ग्यान पै ज्यों, जोगी प्रभु-ध्यान पै ज्यों निपट अचूक है।।
वारि पर मीन ज्यों, प्रवीन पर प्रवीन ज्यों, करीम कवि यामे मीन-मेघ न कछू है।
अलि मकरंद पै ज्यों, पपिहा स्वाति बूंद पै, यों, तेरे मुख-चंद पै करेजा टूक-टूक है।।

2. रूप रस सारहि सुधा रसोधि साधन के कारीगर मैन कोटि विधिन सँवारी है।
पानिप दे पान खुरसान नेह सानि धरि चितवनि अनी हाथ भाव धारा धारी है।।
सुकवि करीम देखो देखत ही लागत है, वेधि-वेधि हिए भई अति रतनारी है।
घायल करि डारी ब्रजनारी वैसे वारी सारी, अँखियाँ विहारीजू की काम की कटारी है।।

शेख रँगरेज़िन

शास्त्रीयकाल के एक स्वच्छंद कवि आलम औरंगज़ेब के शासनकाल 1658-1707 ई. में हुए थे तथा चार शाहज़ादों अकबर, मुअज़्ज़म¹, आज़म, कामबख़्श में से दूसरे के आश्रित थे। यह पहले ब्राह्मण थे किन्तु शेख रँगरेज़िन से इश्क लड़ाने के कारण मुसलमान बनने पर विवश हुए थे क्योंकि यही एकमात्र विकल्प था। जहाँगीर (शासनकाल 1605-1627 ई.) ने फ़र्मान जारी किया था कि काफ़िर मर्द को ऐसी हालत में मुसलमान बनना पड़ेगा। आज के मुसलमान संगीतकारों इत्यादि में अधिकांश दरबार में जाने या खानपान या युद्धबन्दी या प्रेमी पूर्वजों के वंशज हैं। अनेक को हिन्दुओं द्वारा बहिष्कृत किए जाने और राजनैतिक परिस्थितियों के दबाव में मुसलमान बनना पड़ता था, तो अधिकांश जज़िया नामक भारी धर्मकर न दे पाने के कारण ऐसा करते थे।

कथा² है कि ब्राह्मण-देवता ने पगड़ी रँगरेज़िन को दी जिसके एक सिरे में गाँठ थी। गाँठ में एक क़ागज़ था जिसमें दोहे का अर्द्धांश अंकित था :

कनक-छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।

अर्थात् जो कामना-योग्य सुन्दरी पहले से ही सोने की छड़ी-सी कृशांगी है, उसकी कटि अत्यधिक क्षीण क्यों? सम्भवतः किसी कारण से दोहा पूरा न हो सका था। (वैसे छेड़छाड़ भी सम्भव है)। शेख ने पगड़ी वापस की तो ब्राह्मण-देवता को दोहा पूरा मिला :

कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन।।

(इश्क में काट, छँट, लहू, घाव, फ़फ़ोले वगैरह फ़ारसी और उर्दू-शायरी में भरे पड़े हैं, अतः अप्रयुक्तत्व-दोष कहाँ?)

पता लगाने पर वास्तविकता का ज्ञान हो गया और प्रेम हो गया। आलम के हज़ार रुपए देने की बात गप लगती है, क्योंकि तब यह राशि बहुत ही बड़ी थी (आज के लाख से भी ज्यादा)।

शेख की हाज़िरजवाबी भी मशहूर है। एक बार मुअज़्ज़म ने परिहास किया, “क्या आप आलम की बीबी हैं?”³ उत्तर मिला, “हाँ हुज़ूर, जहान की माँ मैं ही हूँ।”⁴

मुंशी देवीप्रसाद ‘प्रीतम’ के अनुसार आलम के निम्नलिखित छन्द का अन्तिम चरण (यहाँ दो पंक्तियाँ) शेख का है :

प्रेम रँग पगे जगमगे जगे जामिनि के, जोबन की जोति जागि जोर उमगत हैं।

मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं, झूमत हैं झुकि-झुकि झँपि उघरत हैं।।

आलम सों नवल निकाई इन नैनन की, पाँखरी पदुम पै भँवर धिरकत हैं।

चाहत हैं उड़िये को देखत मयंक-मुख, जानत हैं रैन ताते ताहिमैं रहत हैं।।

दोहापूर्ति, कवित्तपूर्ति तथा प्राप्त छन्दों में शेख रँगरेज़िन की कविता में कोई असाधारण विशेषता दृग्गत नहीं होती। मुंशी देवीप्रसाद ‘प्रीतम’ के अनुसार, शेख रँगरेज़िन ने अनेकानेक छन्द रचे थे। मिश्रबन्धु ने भी बहुत-से स्फुट छन्द विभिन्न संग्रहों में पाए थे। ‘विनोद’ से एक छन्द प्रस्तुत है :

1. प्रथम ने विद्रोह किया। बाद में मर भी गया। मुअज़्ज़म दीर्घजीवी पिता के बाद 70 वर्ष की आयु में तलवार के ज़ोर पर बादशाह बना और ‘बहादुरशाह’ (प्रथम) का नाम धारण किया।
2. ‘विनोद’ एवं तदनुवर्ती ‘इतिहासों’ में प्राप्त भी।
3. जहान आलम और शेख का वेटा था।
4. ‘विनोद’ (मिश्रबन्धु) एवं तदनुवर्ती ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में। शुक्ल ने ‘जहाँपनाह’ लिखा है।

रति रन विषे जे रहे हैं परि सनमुख, तिन्हें बकसीस बकसी है मैं विहँसि कै।
करन को कंकन, उरोजन को चंद्रहार कटि माहिं किंकिनी रही है अति लसि कै।।
सेख कहैं आनन को आदर सों दीन्हों पान, नैनन में काजर विराजै मन बसि कै।
ऐरे बैरी वार ये रहे हैं पीठि पाछे ताते, वार-वार बाँधति हों वार-वार कसिकै।।

शेख रँगरेज़िन की कविता में मादक अश्लीलता के प्रभावी दर्शन होते हैं।

अब्दुल रहमान¹

औरंगज़ेब के चार में से दूसरे पुत्र मुअज़्ज़म पिता के निधन पर ज्येष्ठ भ्राता (अकबर) की पूर्वमृत्यु के कारण दो को परास्त कर कुतुबुद्दीन शाहआलम बहादुरशाह के नाम से 1707 ई. में 70 वर्ष की आयु में बादशाह बने तथा 6 वर्ष जीवित रहे। उनके समय मुगल-वंश की दशा ठीकठाक सी रही। इनके मरते ही पतन की प्रक्रिया (जिसका वास्तविक आरम्भ औरंगज़ेब की मज़हबी-पागलपन की नीति के कारण हो चुका था) तीव्रतर हो गई। इनको हिन्दी कविता से प्रेम था।² आलम, शेख रँगरेज़िन इत्यादि से निकट साहित्य-सम्बन्ध थे। कहते हैं, देव से भी यद्यपि देव टिके नहीं। इनके एक मनसबदार अब्दुल रहमान (रचनाकाल 1707-1712 ई.) ने 'यमकशतक' नामक एक क्लिष्ट एवं अलंकृत 107 दोहों का शृंगार ग्रंथ रचा जो पर्याप्त सफल है। दो दोहे देखें :

पलकन में राखौ पियहिं पलक न छाँड़ौ संग। पुतरी सो तै होहिं जिन डरपत अपने अंग।।
करकी करकी चूरियाँ बरकी बरकी रीति। दरकी दरकी कंचुकी हरकी हरकी प्रीति।।

'महीपति'³

'कविकुलतिलकप्रकाश' (रचनाकाल 1709 ई.) में शृंगाररस के संयोग-वियोग (दश कामदशाओं समेत), नायिकाभेद, नायकभेद, नाना विभावानभावदि, रसाभास, गुणदोषादि, अलंकार, शब्दशक्ति एवं छन्दों का निरूपण करनेवाले अमेठी-नरेश हिम्मतसिंह 'महीपति' एक उल्लेख्य शास्त्रीयकाव्यकार हैं, जिन पर पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र का पर्याप्त प्रभाव दृग्गत होता है, जो कुछ समय उनके आश्रय में रहे थे। उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर जनपद में स्थित अमेठी राज्य की स्थापना 966 ई. में हुई थी, यह राजपरिवार कवियों का आश्रयदाता भी रहा है, कवि-सम्पन्न भी। मलिक मोहम्मद जायसी को भी अमेठी-राज्याश्रय प्राप्त हुआ था, जिसके प्रायः पास ही उनका देहान्त हुआ। 'महीपति' की कविता पारम्परिक एवं सामान्य होते हुए भी कहीं-कहीं पर्याप्त आकर्षक है :

1. चंदन गारि लगाइ कै अंग मैं, कुंद के फूलन माल बनाई।
मोतिन को पहिरो हिय हार औ स्वेत दुकूल लसे सुखदाई।।
हासन कै बहु भाय सो भामिनि राह उज्यारी करी मन भाई।
जाति लखी न सहेलिहुँ, सों निसि देह धरे जनु जाति जोन्हाई।।⁴

(शुक्लभिसारिका या ज्योत्स्नाभिसारिका)

2. भारी अँधारी महानिसि मैं सो तो जाति चली है अली विनु हासहिं।
अंबर नील विराजत अंगनि मुद्रित चंद्र को देखि अकासहिं।।
नैनन अंजन दै कै सुधारि सो आस धरे हिय कुंज के वासहिं।
यों रचि भूषण स्यामल मानो तमी चलि जाति तमीस के पासहिं।।

(कृष्णाभिसारिका)

1. सदेशरासक (प्राकृत) के कवि अब्दुल रहमान समनामी थे।
2. इनके भाई आजम को भी था।
3. सतना के हिंदीसेवी महीपत शुक्ल का स्मरण आता है।
4. भव्य कल्पना।

‘रसलीन’

रसवत्ता-संपृक्त उक्ति-वैचित्र्य में विहारी का स्मरण करानेवाले सैयद गुलाम नवी ‘रसलीन’ (1689-1750 ई.) हरदोई जनपद स्थित प्रख्यात बिलग्राम के निवासी थे, जिनके प्रेरक मातुल मीर अब्दुल जलील विलग्रामी भी उत्कृष्ट हिन्दी-कवि थे। रसलीन ने मातुलवत् दोहों में ही सृजन किया। इनका नखशिख-सम्बन्धी ‘अंग-दर्पण’ (1737 ई.) 180 दोहों की छोटी-सी कृति होते हुए भी इस अमर एवं अद्वितीय दोहे के कारण अतिविख्यात है :

अमिय - हलाहल - मद भरे सेत - स्याम - रतनार।

जियत-मरत-झुकिझुकिपरत जेहि चितवत यक वार।।

हिन्दी-कविता में यथासंख्य (क्रम) अलंकार का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन यह दोहा भारत के द्वितीय प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री (१ अक्टूबर 1904-11 जनवरी 1966 ई., प्रधानमन्त्री जून 1964 से 11 जनवरी 1966 तक) को इसकी जिन्दादिली और रवानी के कारण बहुत पसन्द था। जब कोई हिन्दी-विरोधी हिन्दी-कविता में जीवन्तता एवं प्रवाह की कमी की बात करता तब वे इस दोहे को उद्धृतकर अर्थ स्पष्ट कर देते, जिसका परिणाम एक ही निकल सकता था। रसलीन का यह दोहा विश्व-साहित्य की एक महान् निधि है।

गुलाम नवी ‘रसलीन’ ने अहमद की शृंगार-परंपरा को गतिशील किया। जहाँगीर-कालीन कवि अहमद ने ‘कोकसार’ (1621 ई.), ‘रतिविनोद’, ‘रसविनोद’ एवं ‘अहमद-वारामासी’ के अतिरिक्त ‘सामुद्रिक’ की रचना भी की थी। अहमद ने कामशास्त्र एवं शृंगारशास्त्र के निकट सम्बन्ध को स्पष्ट किया है।

‘अंगदर्पण’ के अतिरिक्त, रसलीन ने ‘रस-प्रबोध’ (1741 ई.) शीर्षक 1127 दोहों का शास्त्रीयकाव्य भी रचा है, जिसमें रस, षड्भूत, वयःसन्धि, नायिकाभेद, बारहमासा प्रभृति शृंगारिक विषयों का सुन्दर निरूपण किया गया है, जो उन्हें आचार्य का गौरव भी प्रदान करता है।

रामनरेश त्रिपाठी, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति शीर्षस्थ विवेचकों ने रसलीन की अच्छी प्रशस्ति की है। यह सत्य है कि शास्त्रीय विषय को द्वि-पंक्तीय छन्द में निरूपित करना कठिन है (विहारी की सतसई शास्त्रीयकाव्य नहीं है), किन्तु जसवंतसिंह ‘भाषा-भूषण’ में पर्याप्त सफल भी हुए हैं (यद्यपि उनका ग्रन्थ अलंकार-संबंधी है), जिनसे तुलना करने पर रसलीन कवि-रूप में अधिक सफल सिद्ध होते हैं, आचार्य-रूप में कम। उनके दोहों की सरसता मन मोह लेती है :

तिय सैसव-जोवन मिले, भेद न जान्यो जात।

प्रात-समै निसि-द्यौस के दुवौ भाव दरसात।।

चख चलि स्रवन मिल्यौ चहत, कच बढि छुवन छवानि।

कटि निज दरव धर्यो चहत वक्षस्थल में आनि।।

याकूब खाँ

‘रसिकप्रिया’ (महाकवि केशवदास) के टीकाकार तथा ‘रसभूषण’ के आचार्य-कवि याकूब खाँ (कविताकाल 1718 ई.)^१ का दोहा-सोरठा-निबद्ध विषय-निरूपण स्पष्ट तथा सरल है। इन पर शास्त्रीयकाल के प्रवर्तक एवं कालाकाश महाकवि केशवदास का प्रभाव आद्यंत दृग्गत होता है :

1.

अलंकार^३-संयुक्त कहौ नायिकाभेद^४ पुनि।

वरनीं क्रम निज उक्ति लच्छन और उदाहरिन।।

2.

अलंकार बिनु नायिका सोभित सोइ न जानि।^५

अलंकार-जुत नायिका यातें कहौ बखानि।।

1. आलम की माशूका शेख रंगरेजिन के ‘कटि को कंचन काटि कै कुचन मध्य धरि दीन’ से श्रेष्ठतर-रम्यतर क्योंकि इसमें मारकाट का रसविपर्यय नहीं है।

2. मिश्रबन्धु कृत ‘विनोद’ के अनुसार सं. 1775 वि.।

3. भूषण।

4. रस (शृंगार)।

5. “भूषण विना न राजई कविता बनिता...” (केशवदास)।

पूर्णोपमा

पूरन उपमा जानि, चार पदारथ होइ जिहिं
ताहि नायिका मानि, रूपवंत सुंदर सुखि॥
हैं कर कोमल कंज से, ससि सी दुति मुख ऐन।
कुंदन रँग पिक बचन से मधुरे जाके वैन॥

श्रीपति

‘काव्य-सरोज’ (1720 ई.) के प्रख्यात प्रणेता श्रीपति महर्षि व्यास के जन्मस्थान¹ कालपी (जनपद जालौन, उ. प्र.) के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, जिनके ‘रससागर’ एवं ‘अनुप्रास-विनोद’ भी सुंदर ग्रन्थ हैं। मिश्रवन्धु के शब्दों को अधिक व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करते हुए, आ. शुक्ल ने इनके कृतित्व पर प्रशस्त्य प्रकाश डाला है : “श्रीपति ने काव्य के सब अंगों का निरूपण विशद रीति से किया है। दोषों का विचार पिछले ग्रन्थों से अधिक विस्तार के साथ किया है और दोषों के उदाहरणों में केशवदास के बहुत-से पद्य रखे हैं।....दास जी तो इनके बहुत अधिक ऋणी हैं। उन्होंने इनकी बहुत-सी बातें ज्यों-की-त्यों अपने ‘काव्य-निर्णय’ में चुपचाप रख ली हैं। आचार्यत्व के अतिरिक्त कवित्व भी इनमें ऊँची कोटि का था।” केशव से दोषों के उदाहरण देने का यह अभिप्राय नहीं कि कवि श्रीपति को उस महाकवि से विद्वेष था। इसका कारण बुंदेलखंड पर केशव का अपने समय से ही छाया रहना है। बुंदेलखंड ने हिन्दी को तुलसी², केशव, बिहारी, मंडन, मंचित, ठाकुर (तीसरे) पद्माकर, काली कवि, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, मुंशी अजमेरी जैसे कवि तो दिए ही हैं, श्रीपति, करन कवि³ एवं प्रतापसाहि जैसे आचार्य भी दिए हैं, वृंदावनलाल वर्मा एवं अंबिकाप्रसाद ‘दिव्य’ जैसे उपन्यासकार भी दिए हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी, भगवानदीन ‘दीन’⁴ एवं गुलाबराय भी बुंदेलखंड से संबद्ध रहे हैं। हिन्दी-साहित्य बुंदेलखंड पर गर्व कर सकता है। श्रीपति आचार्य-रूप में भिखारीदास के स्तर की विभूति हैं, किन्तु प्रेरक के रूप में ही, तथा कवि-रूप में अधिक सफल भी। उनकी भाषा अस्मिता से निष्पन्न है तथा अलंकरण सुस्पष्ट :

सास के नादन को वाद न सुनात कहूँ, नाहक ही बकवाद दादुर महा करै।

श्रीपति सुकवि जहाँ ओज ना सरोजन की, फूल ना फूलत जाहि चित दे चहा करै।

बकन की बाबनी की बिराजति है राधानी, काई सों कलित पानी फेरत हहा करै।

घोंघन के जाल जामे नरई सेवाल ब्याल, ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै।।

निस्सन्देह, यह एक उत्कृष्ट अन्योक्ति है। ‘हिन्दी की अन्योक्तियाँ’ शोध का सुन्दर विषय है। दीनदयाल गिरि हमारे शीर्षस्थ अन्योक्ति-कवि हैं।⁵ बिहारी ने भी सुंदर अन्योक्तियाँ कही हैं।

‘सदारंग’

यद्यपि ‘संगीतरागकल्पद्रुम’ (कृष्णानंद), ‘पोद्दार-अभिनन्दनग्रन्थ’ (सं. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल), ‘हिन्दी के मुसलमान कवि’ (अखौरी गंगाप्रसाद सिंह विशारद), ‘मध्ययुगीन हिन्दी के सूफ़ी-इतर मुसलमान कवि’ (डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव) इत्यादि ने ‘सदारंग मोहम्मदशाह ‘रंगीले’ (नामनिहाल राज्यकाल 1719-1748 ई.) का ही अन्य उपनाम माना है, तथापि इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं प्राप्त होता और ‘सदारंग’ भाषा-शैली में भी विशिष्ट प्रतीत होते हैं। ‘सदारंग’, ‘रंगीले’ के अंतरंग मित्र-कवि लगते हैं। बहुत सम्भव है कि

1. विलासपुर (हिमाचल प्रदेश) एवं विलासपुर (मध्य प्रदेश) मूलतः व्यासपुर रहे हैं, क्योंकि यहाँ महर्षि ने आश्रम स्थापित किए होंगे या इनका नामकरण आदर हेतु किया गया होगा। व्यास के नाम पर वैदिक विपाशा नदी को व्यास नदी का नाम दिया गया।
2. प्रसिद्ध है, महाकवि भवभूति ने मातुल मम्मट को जब ‘उत्तररामचरितम्’ दिखाया तब उन्होंने कहा था : बेटा! यदि ‘काव्यप्रकाश’ की रचना के पूर्व इसे दिखाते तो दोषों के लिए मुझे अनेकानेक ग्रन्थों के ऊहापोह का कठिन परिश्रम न करना पड़ता।
3. काशी-वासी तुलसी का बुंदेलखंड-संबंध टूट गया। वे सारे विश्व के हो गए।
4. छत्रसालकलीन (अकबरकालीन नहीं)।
5. ‘दीन’ की पत्नी का उपनाम ‘बुंदेलबाला’ था।
6. अन्योक्ति-कल्पद्रुम।

रंगीले के अनेक गीत 'सदारंग' ने रचे हों। वैसे, 'महम्मदशा' (कहीं-कहीं 'रंगीले' भी) भी छापवाले तथा 'सदारंग' की छापवाले गीतों की भाषा-शैली में अंतर स्पष्टतः दृग्गत होता है। तीन उदाहरण देखें :

1. जे तिय ते सब ठाढ़ि भई आय आय। गडुवा बनाय आगे धर दीने।
महम्मदशाह दक्षिण के लक्षण छिनक भेंटे ना, सो मन बस कर लीने॥
डफ, वीणा, मृदंग, रवाब बजावत अवीर गुलाल लिए भर झोरी॥
'सदारंग' नए भीजे ताल लय सुर सब लीने॥
2. अहो धुन धुकार डफ-मृदंग बजत है बिच मुरली घन घोरी।
चोबा-चंदन और अरगजा केसर रँग में बोरी॥
यक-गावत यक वीन बाजवत अवीर गुलाल लिए भर झोरी।
'सदारंग' बरसत गोकुल में खेलत नंद^१, किशोरी॥
3. ऐसे देखियत लालन, जागे भाग हमारे आज रस भीने।
एक वसंत जान सबकौ उतै देखत कृपा ते करि सुगंध नवीने॥
उदै भए गरव दौऊ और रीते आए अंजन अधर लगाइ लीने।
'सदारंग' महमदशाह छविनायक याते मन बस कीने॥

मोहम्मदशाह रंगीले

दिल्ली के पतनकालीन मुगल-वादशाहों में मोहम्मदशाह 'रंगीले' (नामनिहाल राज्यकाल 1719-1748 ई.) शास्त्रीय संगीत एवं हिन्दी कविता के प्रेमी थे। घनआनन्द इन्हीं के मीर-मुंशी बताए जाते हैं। डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव के अनुसार, सूरति मिश्र, आजम खॉं, गुमान मिश्र और युगलकिशोर भट्ट भी इनके आश्रित कवि थे; किन्तु यह विवादास्पद है। इनका 'मोहम्मदशाह रंगीले गावत अब प्रेमराग' शास्त्रीय संगीत की एक निधि है। ये बला के रसिक, ग़ज़व के शराबी और एकदम लापरवाह बादशाह थे, होली में कन्हैया वनते थे और प्रायः दर्पण देखते रहते थे। इन्हीं के समय (1739 ई.) में कुख्यात नादिरशाह ने दिल्ली की भयानक लूट की थी, लोमहर्षक कल्लेआम कराया था। संगीतात्मक कविता के दो उदाहरण देखें :

1. आओ बालम जी हमारे डेरे।
अवीर गुलाल मलों मुख तेरे होली के दिनन मोसे मत उरझे रे॥
जो पिया मोसे रूस रहे हो बलि बलि जाऊँ सब ही घने रे।
महम्मदशा पिया सदा ही रंगीले दूर न बसो बसो मोरे नरे॥^२
2. निश नींद नींद न आवे न भावे मोकों पिया विन सेज।
जैसे सदा रंगीली चाँदनी तैसे ही आभूषण ते बनिता वनि आई॥
या समय महम्मदशा सुंदर को कोऊ देहो भेज।^३

'दक्षन' ('दक्ष')

'दक्षन-विलास' (1722 ई.) के शास्त्रीय-कवि अब्दुलशाह 'दक्षन' (किसी-किसी छन्द में 'दक्ष') का ललित व्रजभाषा-काव्य हिन्दी का निधि है। शास्त्रीयकाल के मुसलमान कवियों में 'दक्षन' की रचना-दक्षता 'रसलीन' जैसे विरले कवियों में ही प्राप्त होती है तथा इनका प्रभाव पद्माकर जैसे महाकवि तक पर पड़ा है। (यद्यपि 'हत्यारिन राधे' जैसे अप्रयुक्तत्व-दोष भी विद्यमान हैं।)

-
1. दक्षिण नायक के लक्षणां से सम्पन्न।
 2. नंदकिशोर। आनन्द-रूप कृष्ण। अप्रयुक्तत्व दोष।
 3. रचना किसी अन्य कवि की हो सकती है।
 4. यह भी।

1. औरै जाति औरै भाँति औरै रूप औरै काँति औरै राग औरै ताँति औरै दुति अंग की ।
औरै रंग-भीजे नैन औरै प्रेम-पागे वैन औरै चाव औरै चैन औरै चोप संग की ।।
औरै चाल डगमग औरै बाल सगवग औरै दक्ष जगमग भूषन के भंग की ।
औरै रंग औरै ढंग औरै छवि की तरंग औरै उमंग गति औरै अनंग की ।।
2. तुव नैनन लूटि लिए मृग 'दक्षन', बैनन लूटि सुधा की मिठाई ।
सर नैन के सैनन लूटि लिए, गज गैनन चाल मतंक सुहाई ।।
कटि लूटि नितंब लियो, लट को हठि लूटि है नागिनि की विषताई ।
पल में बटमार हत्यारिन राधे तें लूटिहैं नंदकिसोर कन्हाई ।।

‘रसरंग’¹

‘रसरंग’ (रचनाकाल 1723 ई., झाँसी) ने ‘बानी’ नामक ग्रंथ रचा था। वैष्णव प्रभाव पड़ने पर इनका मूलनाम (‘रसखान’ के सदृश) लुप्त हो गया। इनकी भाषा खड़ीबोली है :

तेरे महबूब बाँके ने चखन की चोट मारी है ।
खड़ा है सामने ही² में ज़रा नहि पलक टारी है ।।
जिलाया उन्होंने ने मुझको जिनों यह गौंस मारी है ।
तड़पता कधी ना जीता बिछोहा दर्द भारी है ।।

‘भूपति’

भूपति-सतसई, भाषा-भाषागत, सुरस-रतनाकर, रसदीप एवं रस-रत्नावली³ के कवि एवं आचार्य अमेठी-नरेश गुरुदत्तसिंह ‘भूपति’ (1703-1774 ई.) हिम्मतसिंह ‘महीपति’ के ज्येष्ठ पुत्र एवं वंश-परम्परा के सत्ताईसवें रत्न थे। कवि के रूप में तो वे अपने वंश में अग्रणी हैं ही, मतांध आक्रांता सआदत खान⁴ से भयानक युद्ध करने तथा अयोध्या की रामजन्मभूमि तक बढ़कर उससे लोहा लेने के कारणों से देवीदीन पाँडे, गुरु गोविन्दसिंह जैसे अमर योद्धाओं की पंक्ति में भी प्रतिष्ठित हैं। विहारी-सतसई, मतिराम-सतसई इत्यादि की परम्परा में रचित भूपति-सतसई उनकी प्रसिद्ध रचना है, जिसके अनेक दोहे बहुत सफल हैं, जिनमें लाटानुप्रास, यमक इत्यादि अलंकारों का मनोहारी प्रयोग दृग्गत होता है :

धरे रूप मंजुल सगुन, निरगुन एक अनूप । जगत भुलान्यो रूप को, जगत भुलान्यो रूप ।।
रच्यो कुरंग सुरंग दृग, जान्यो बिधि रस भंग । वे कानन में करि दए, ये कानन के संग ।।
घायल हवै बचि जात है लगे सामुहै बान ।। सन्मुख ओटहु ना बचै लगे बाँसुरी तान ।
प्रानप्रिये पाती लिखी गए अवधि दिन दून ।। सीतल लगत समीर सी, विरह अनल बल दून ।
लिखी नाह बहु रंग सों, करति सखी यक रंग ।। उतपाती पाती करति पाती पाती अंग ।।

महबूब

महबूब (जन्म 1704 ई.) के कथित ग्रंथ ‘कवित्त’ या स्वयं इनके विषय में कुछ-विशेष ज्ञात नहीं है किन्तु शिवसिंह कृत ‘सरोज’ और मिश्रबन्धु कृत ‘विनोद’ के छन्दों से ज्ञात होता है कि यह सुयोग्य और ‘साफदिल’ इन्सान थे जो ‘ऐसा मिले प्यारा’ के प्यासे रहे ।⁵ इनके ब्रजभाषा-कवित्त ठीकठाक हैं, जिनमें शृंगारिकता के दर्शन होते हैं :

1. लखनऊ के शृंगारी ‘रसरंग’ (जन्म 1844 ई.) से भिन्न । वैसे, वे भी मुसलमान थे ।
2. श्लेष । ‘हृदय’ का गम्भीर अर्थ भी विद्यमान है ।
3. ‘कविता-कंकोश’ प्रधान संपादक राजा रणजयसिंह (पृष्ठ 38) । इस ग्रन्थ में हिम्मतसिंह ‘महीपति’, गुरुदत्तसिंह ‘भूपति’, माधवसिंह ‘क्षितिपाल’, रणवीरसिंह ‘वीर’ एवं रणजयसिंह अर्थात् 5 कवियों का संक्षिप्त वृत्त एवं पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होते हैं ।
4. लखनऊ के नवाब इसी के वंशज थे । पुराने लखनऊ का सआदतगंज क्षेत्र इसी पर नामित है । लखनऊ में इसका शानदार मक़बरा भी है ।
5. प्रेम की प्यास कभी नहीं बुझती :
“प्यासा हूँ मैं, अब भी प्यासा, संतुष्ट ओष से मैं न हुआ ।....” (कामायनी में मनु या प्रसाद का मन)
लॉर्ड बर्डाण्ड रसेल जैसे ‘सिद्धान्ततः’ विवाह-विरोधी किन्तु ‘व्यवहारतः’ अनेकविवाहकर्ता सर्वसक्षम व्यक्ति तक ने बुदाप में भी रूप की अवुझ प्यास का स्पष्ट उल्लेख (आत्मकथा) करके सत्य की प्रशंसा साधना की है ।

मृगमद-गंध मिलि चंदन सुगंध वहै, केसर कपूर धुरी पूरत अनंत है।
मोर मदगलित गुलाबन वलित भौर, भनै 'महबूब' तौर और दरसंत है।
रच्यो परपंच सरपंच पंचसर जू ने, कर लै कमान तान विरही हनंत है।
छीन छिति लई ऋतु राजत समाज नई, उनई फिरत भई सिसिर वसंत है।।

‘पठान सुल्तान’

राजागढ़ (भोपाल) के नवाब सुल्तान मोहम्मद ख़ाँ ‘पठान सुल्तान’ (1704 ई. के आसपास) कविता-प्रेमी भी थे, शृंगारी व्रजभाषा-कवि भी। इनके आश्रित चंद्र कवि ने ‘विहारी-सतसई’ की कुंडलिया छन्दों में टीका लिखी तथा ‘नेहतारंग’, ‘पिंगल’ एवं ‘रामायण भाषा’ शीर्षक तीन अन्य ग्रन्थ भी रचे। ‘पठान सुल्तान’ का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। भारतेन्दु ने इनका एक कुंडलिया लाने पर उस समय के भारी पारिश्रमिक पंद्रह रुपए देने की घोषणा की तो सेवक कवि इनकी छाप देकर पच्चीस कुंडलिया स्वयं बना लाए, यद्यपि पुरस्कार मिलने के समय सत्य बता दिया।¹ एक उदाहरण प्रस्तुत है :

नासा मोरि, नचाय दृग, करी कका की सौंह।
कॉटे-सी कसकति हिये गड़ी कँटीली भौंह।।
गड़ी कँटीली भौंह, केस निरवारति प्यारी।
तिरछी चितवनि चितै मनौ उर हनति कटारी।।
कहि ‘पठान सुल्तान’ विकल चित देखि तमासा।
वाको सहज सुभाव और बुधि-बल नासा।।

दत्त²

‘दत्त’ (जाजमऊ, कानपुर) के अत्यंत ललित ‘लालित्य-लता’ (1734 ई.) में सुंदर अलंकार-निरूपण मतिराम के ‘ललित-ललाम’ का स्मरण कराता है। मिश्रबन्धु ने ठीक ही इन्हें ‘पद्माकर-श्रेणी’ में रखा है। किन्तु वे ‘दत्त’ का ‘विनोद’ में 846 एवं 877 संख्याओं में दो बार उल्लेख कर गए हैं, जो भ्रामक है। ग्रीअर्सन ने ‘दत्त’ को चरखारी (बुंदेलखंड) के राजा खुमानसिंह के आश्रित ‘दत्त’ मानने की गलती की है, जिसे आ. शुक्ल दुहरा गए हैं। यह ‘दत्त’ कानपुर जनपद के ही माढ़ी के थे जिसे मिश्रबन्धु ने गलती से मढ़ि लिख दिया और आ. शुक्ल, डॉ. रामफेर त्रिपाठी³ इत्यादि दुहराते-तिहराते-चौहराते गए। मिश्रबन्धु ने जिन गया-वासी ‘दत्त’ को ‘प्राचीन’ लिखा है वे यत्किंचित् परवर्ती हैं, प्रायः समकालीन हैं, जैसाकि स्वयं ‘विनोद’ में ही दिए गए संवत्तो से स्पष्ट है। खेद है कि अतर्क्य अनुकरण के कारण डॉ. रामफेर त्रिपाठी भी ‘प्राचीन’ के फेर में पड़ने से बच नहीं पाए। वे एक ही पृष्ठ में इसवी सन् का प्रयोग करते हुए भी ‘अन्तिम दत्त’ लिखने की भूल करते हैं।

‘दत्त’ ने अपनी जन्मभूति जाजमऊ का सादर उल्लेख किया है जो ययाति की राधजानी के रूप में अत्यन्त प्राचीन मानी जाती है (यद्यपि कोई वैज्ञानिक या ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला—मैंने स्वयं अनेक यत्न किए थे)। गंगातट पर स्थित इस पवित्र स्थली में ‘सिद्धिनाथ’ (शिव) का मंदिर है जहाँ मेला लगता रहा है। खेद है कि चमड़ा-कारखानों (टैनरियों) ने इसे अस्वच्छ-अस्वस्थ किया तथा महानगर के अजगर ने इसे एकदम ही डस लिया—और नए पुल (जो ययाति-वक्श को चीरकर बनाया गया : मूढमति एवं जड़मति

1. मध्ययुगीन हिन्दी के सूफ़ी-इतर मुसलमान कवि (डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव), पृष्ठ 222-23।

2. ‘दत्त’ छाप का प्रयोग सात कवियों ने किया है : 1. जाजमऊ (कानपुर) के प्रख्यात ‘दत्त’ कवि जिन्होंने ‘लालित्य-लता’ (1734 ई.) रची। 2. गया के ‘दत्त’ जिन्होंने 1784 ई. के आसपास ‘सज्जनविलास’, ‘वीरविलास’ एवं ‘ब्रजयत्न-पंचाशिका’ ग्रन्थ रचे। 3. मढ़ी (कानपुर) के ‘दत्त’ जो चरखारी के राजा खुमानसिंह (राज्यकाल 1761-1782 ई.) के आश्रित कवि थे। 4. इनके समकालीन ‘दत्त’ जिन्होंने ‘दीपप्रकाश’ एवं ‘विद्वद्दिलास’ ग्रन्थ रचे। 5. ‘स्वरोदय’ नामक ग्रन्थ के रचयिता ‘दत्त’ जिन पर प्रकाश नहीं पड़ सका। 6. उमादत्त सारस्वत ‘दत्त’ (जन्म 1905 ई.) जिन्होंने गद्य एवं पद्य में प्रचुर रचना की है। 7. संस्कृत में ‘विन्ध्यकाव्यसौरभम्’ एवं हिन्दी में ‘विन्ध्यकाव्यतरंगिणी’ (1991 ई.) के कवि पंडा दुर्गादत्त उपाध्याय ‘दत्त’ (मिर्जापुर या मीरजापुर)।

3. ‘हिन्दी साहित्य कोश’, भाग 2 (डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि)।

विश्वकर्मागण' को पुराण या इतिहास या भावना से न लेना एक न देना दो) के कारण भारी भीड़ ने पुराने जाजमऊ को तो नेस्तनाबूद ही कर दिया :

अंतरवेद² पवित्र महा असनी³ औ कनौज⁴ के मध्य निवास है।
भागीरथी भवतारन के तट देखत होत सो पातक नास है।
देव सरूप सबै नर नारि दिनोदिन देखिए पुन्य प्रकास है।
जग्य निनानवे कीन्हें जजाति सो जाजमऊ कवि दत्त को बास है॥

ऐसा लगता है कि 'दत्त' को अच्छा जीवन प्राप्त हुआ था जो इनकी पद्याकर और ग्वाल से नोंकझोंक से प्रमाणित है। इनकी अलंकृत किन्तु मनोहर कविता से दो उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. लाल है भाल सिंदूर भरो मुख सुंदर चारु जु बाहु विसाल है।
साल है सत्रुन के उर को इतै सिद्धित सोम-कला धर भाल है।
भा लहै दत्त जू सूरज कोटि की कोटिन काटत संकट-जाल है।
जाल है बुद्धि बिबेकनि को यह पारबती को लड़ाइतो लाल है॥
2. ग्रीष्म में तपै भीषम भानु गई बन कुंज सखीन की भूल सों।
काम सो वाम लता मुरझानी वयारि बहै घनस्याम दुकूल सों॥
कंपत यों प्रगट्यो तन सेद उरोजन दत्त जू डोढ़ी के मूल सों।
द्वै अरविंद कलीन पै मानो गिरै मकरंद गुलाब के फूल सों॥

सूरति⁵ मिश्र

बिहारी-सतसई की अमरचंद्रिका⁶ (1737 ई.) के अमर टीकाकार⁷ तथा 'कविप्रिया' का 'तिलक' एवं 'रसिकप्रिया का तिलक' के कारण पूर्वानुधिक टीकाकारों में अग्रणी, सर्वांगीण 'काव्य-सिद्धान्त' तथा 'रसमाला', 'रसरत्नमाला', 'सरस रस', 'रसग्राहक-चंद्रिका', 'रत्न-रत्नाकर', 'शृंगार-सार', 'नखशिख', 'अलंकार-माला' (1709 ई.) के स्फुट शास्त्रीय-काव्याचार्य, 'भक्तविनोद', 'रासलीला', 'दानलीला', 'रामचरित्र', 'कृष्णचरित्र' के उल्लेख्य भक्तिकाव्यकार एवं अपने 'भक्तमाल' के कारण वल्लभ-संप्रदाय के एक रत्न सूरति मिश्र (जन्म 1683 ई.⁸, "नगर आगरे बास") ने 'प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक' के अनुवाद में गद्य का प्रयोग करके पूर्वानुधिक गद्यकारों में भी एक स्थान प्राप्त किया है। अली मुहिव खाँ, 'प्रीतम' (आगरा) एवं शिवदास (जयपुर) जैसे शिष्यों के गुरु सूरति मिश्र अपने समय के प्रख्यात काव्याचार्य थे। सूरति मिश्र भिखारी के सदृश आचार्य पहले थे, कवि बाद में। 'हिन्दी साहित्य का अतीत' (भाग 2) में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इन पर अच्छा प्रकाश डाला है, यद्यपि प्रस्थान-कार्य 'विनोद' के प्रणेता मिश्रबन्धु ने ही किया था, जिसका संक्षेपण 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आचार्य शुक्ल ने किया है। सूरति मिश्र आगरा के एक कवि-सम्मेलन के सभापति चुने गए थे जिसमें दिए गए इनके सुझाव महत्त्वपूर्ण माने गए थे। 'विनोद' से इनके काव्य से दो तथा गद्य से एक उदाहरण प्रस्तुत है :

1. एंजिनीअर्स।
2. प्राचीनकाल में गंगा-यमुना-मध्यक्षेत्र 'अंतर्वेद' कहलाता था। गुप्तकाल में 'अतर्वेद के विषयपति' (विषय = राज्य) शर्वनाग का उल्लेख प्रसाद ने 'स्कन्दगुप्त' नाटक में किया है।
3. अश्विनीकुमार-बंधुद्वय (ऋग्वेद के देवता) का स्थान अश्विनी जो गंगातट पर ही (संप्रति फतेहपुर जनपद) है जिसे 'कविगर्भा' कहा जा सकता है।
4. विश्वामित्र के पिता गांधि, हर्ष, यशोवर्मन, जयनंद इत्यादि की राजधानी 'कान्यकुब्ज' जो गंगातट पर ही है। जिसे लुटेरे महमूद गजनवी ने खूब लूटा। फ़िरदीसी कृत महाकाव्य 'शाहनामा' में बारम्बार उल्लेख है किन्तु महमूद-विषयक नहीं।
5. 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2, पृष्ठ 641) में सूरति मिश्र नाम गलत है, अनुचित भी। सूरत या सूरति संप्रुक्त नाम आज तक सुने जाते हैं। इनका पूरा नाम रामसूरति (रामसूरत) या ऐसी ही रहा होगा जिसकी काव्यछाप सूरति हुई। इनके शिष्य खटमल-वाईसी के प्रख्यात हास्य-कवि अली मुहिव खाँ 'प्रीतम' का नाम भी अलीमुहिवखाँ गलत है।
6. जोधपुर के दीवान अमरसिंह को समर्पित। 'विनोद' में 'महाराजा अमरसिंह जी जोधपुर' लिखा है जो ठीक नहीं लगता।
7. "सतसई पर कम-से-कम पैंतीस-चालीस तिलक हुए हैं, परन्तु सूरति जी के तिलक की समानता एक भी नहीं कर सकता।" (मिश्रबन्धु)
8. मिश्रबन्धु का अनुमान जो सर्वगृहीत है।

1. त्रिभुवनपति के हरत दुख देखत ही, सहज सुवास ऊँचै वास सोभरस है।
नेह जुत सरसे यहाई सुख सरसे वे, तीनिहू बरन को प्रगट सुदरस है॥
सब दिन एक सों महातम है सूरति यों, नागर सकल सुखसागर परस है॥
ए री मृगनैनी, पिकवैनी, सुखदेनी अति, तेरी यह बेनी तिरवेनी ते सरस है॥
2. तेरे ए कपोल बाल, अति ही रसाल, मन जिनकी सदाई उपमा विचारियन है।
कोऊ न समान जाहि कीजै उपमान अरु वापुरे मधूकनि की देह जारियत है॥
नेकु दरपन समता की चाहि करी कहूँ भए अपराधी ऐसे चित्त धारियत है।
सूरति सु याही ते जगत बीच आज हूँ तौँ उनके बदन पर छार डारियत है॥

3. कमल नयन कमल से हैं नैन जिनके कमलद बरन कमलद कहिए मेघ को वरण है श्याम स्वरूप है कमल। नाभि श्री कृष्ण को नाम ही कमल जिनकी नाभि तै उपज्यौ है कमलाप कमला लक्ष्मी ताके पति हैं तिनके, चरण कमल समेत गुन को जाप ज्यों मेरे मन में रहो।

सोमनाथ

‘रसपीयूषनिधि’ (1737 ई.) जैसे अमर एवं स्फीत शास्त्रीयकाव्य के प्रणेता सोमनाथ मिश्र (उपनाम शशिनाथ) विख्यात विद्वान् नरोत्तम मिश्र के वंशज एवं नीलकंठ मिश्र के पुत्र थे। इनका कुल राजगुरुओं का था तथा यह स्वयं जयपुर-नरेश रामसिंह के गुरु थे। भरतपुर-नरेश बदनसिंह के कनिष्ठ पुत्र प्रतापसिंह के लिए इन्होंने रसपीयूषनिधि की रचना की, जिसमें रस, ध्वनि, अलंकार, छन्द इत्यादि का विशद निरूपण है। भिखारीदास कृत ‘काव्य-निर्णय’ से भी वृहत्तर रसपीयूषनिधि अकेले ही सोमनाथ को कुलपति, सुखदेव, श्रीपति एवं भिखारीदास के स्तर का आचार्य सिद्ध करता है। कुलपति के सदृश, इन्होंने यत्र-तत्र गद्य का प्रयोग किया है। शृंगारविलास, कृष्णलीला-पंचाध्यायी, सुजान-विलास (सिंहासन-वत्तीसी) तथा ‘माधवविनोद नाटक’ इनके अन्य काव्य हैं। प्रबन्ध काव्य में भी इनकी अच्छी गति मुक्तकप्रधान शास्त्रीयकाल में विशिष्टता की द्योतक हैं। इन्होंने वैदर्भी, पांचाली एवं गौड़ी तीनों ही रीतियों के निरूपण में सफलता प्राप्त की है। यद्यपि भावपक्ष-कलापक्ष की समग्रता में यह भूषण, मतिराम, सुखदेव, देव प्रभृति शास्त्रीयकाल के शीर्षस्थ कवियों में परिगणित नहीं किए जा सकते, तथापि इनका कवि-रूप भी उच्चस्तरीय है। तोष के सदृश सोमनाथ शृंगारकाव्य की रचना में भी सफल हैं, भक्तिकाव्य की रचना में भी :

1. प्रीति नई नित कीजत है, सब सों छल की बतरानि परी है।
सीखी ठिठाई कहाँ ससिनाथ, हमें दिन द्वैक तें जानि परी है॥
और कहा लहिए, सजनी! कठिनाई गैरे असि आनि परी है।
मानत है बरज्यो न कछू अब ऐसी सुजानहिं बानि परी है॥
2. झमकत बदन मतंग कुंभ उत्तंग अंग बर।
बंदन बलित भुसुंड कुंडलित सुंड सिद्धिधर॥
कंचन मनि मय मुकुट जगमगै सुधर सीस पर।
लोचन तीनि बिसाल चारि भुज ध्यावत सुर भर॥
ससिनाथ नंद स्वच्छंद गति कोटि बिघन छर छंद हर।
जय बुद्धि बिलंद अमंद दुति इंदुभाल आनंदकर॥

रघुनाथ बंदीजन

हिंदी साहित्य में कम-से-कम 11 रघुनाथ नाम के कवि हुए हैं :

1. ‘विनोद’ में ‘क्यों’ शलत छपा है। ब्रजभाषा में ‘क्यों’ का अर्थ ‘कैसे’ होता है।

1. रघुनाथ ब्राह्मण जिन्होंने जहाँगीर के समय में संस्कृत की 'रसमंजरी' का भाषानुवाद 'रघुनाथ-विलास' (रचनाकाल 1609-1610 ई.) प्रस्तुत किया था, जिसका उल्लेख मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में दो बार (कविसंख्या 364 एवं 372) कर डाला है किन्तु दोनों के एक होने की सम्भावना भी व्यक्त की है। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामफेर त्रिपाठी ने इन रघुनाथ ब्राह्मण को रघुनाथ प्राचीन कहा है, जो ग़लत है, क्योंकि 'विनोद' में कविसंख्या 642 वाले रघुनाथ प्राचीन (रचनाकाल 1703 ई.) स्पष्टतः भिन्न हैं। डॉ. रामफेर त्रिपाठी का 'मिश्रबन्धुओं के अनुसार इनका जन्मकाल सन् 1853 ई.' लिखना एदम निराधार है तथा जहाँगीर का समकालीन कहना दुर्भाग्यपूर्णतः हास्यास्पद क्योंकि जहाँगीर 1627 ई. में मरा था।

2. रघुनाथ जोधपुरवाले (रचनाकाल 1634 ई. के लगभग) जिन्होंने साधारण स्फुट कविता की है।

3. रघुनाथ अहमदाबाद वाले (रचनाकाल 1644 ई. के लगभग) जिन्होंने 'सभासागर' एवं 'माधवविलास' ग्रन्थ रचे थे।

4. रघुनाथराय जिन्होंने 1684 ई. के आसपास 'कृष्णमोदिका' रची थी।

5. रघुनाथ ('विनोद' का 'प्राचीन' विशेषण निराधार है) जिन्होंने 1703 ई. के आसपास कविता की।

6. रघुनाथ जिन्होंने नायिकाभेद-ग्रन्थ 'रसमंजरी' (1803 ई.) प्रस्तुत किया।

7. ओयल (खीरी) के राजा रघुनाथसिंह जिन्होंने 'करी-कल्पद्रुप' (1826 ई.) की रचना की।

8. रघुनाथ संडीला वाले (हरदोई) जिन्होंने 'कृष्ण ग्वालनी का झगड़ा' (1827 ई.) में रचा।

9. रघुनाथ रसूलाबादी जिन्होंने 'कृष्ण-ग्वालनी का झगड़ा' (1827 ई.) रचा।

10. 'काव्यकलाधर', 'रसिकमोहन', 'जगतमोहन' एवं 'इश्कमहोत्सव' के प्रख्यात कवि रघुनाथ बंदीजन (प्रभावी रचनाकाल 1739-1750 ई.) जो काशी-नरेश वरिबंडसिंह के सभा-कवि तथा कविश्रेष्ठ गोकुलनाथ के पिता और कविवर गोपीनाथ के पितामह थे, जिन्हें हिन्दी-साहित्येतिहास में एक अविस्मरणीय स्थान प्राप्त है।

11. मैनपुरी के कवि रघुनाथ सिंह चौहान (1 जनवरी, 1939) जो एक प्रभावी लोककवि हैं।

*

*

*

रघुनाथ बंदीजन ने 1739 ई. में 'रसिकमोहन' शीर्षक अलंकार-ग्रन्थ रचा, जिसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों के भी उदाहरण दिए हैं तथा निरूपण केवल कुछ पंक्तियों मात्र में ही चुकता नहीं किया गया अपितु पूरे छन्द तक प्रसरित रखा गया है। 1745 ई. में रचित 'काव्यकलाधर' शीर्षक रसग्रन्थ में नायकभेद-नायिकाभेद का निरूपण प्राप्त होता है। इसमें भावभेद-रसभेद इत्यादि का विवरण चलताऊ है। 1750 ई. में रचित 'जगतमोहन' में कृष्ण के माध्यम से आदर्श-राजा के सम्पूर्ण दिवसयापन अर्थात् वारह घंटे की कर्मठता का उत्कृष्ट वर्णन किया गया है—यह ग्रन्थ कवि की बहुज्ञता का विलक्षण स्मारक है जिसमें राजनीति, ज्योतिष, आयुर्वेद, सैन्यविज्ञान इत्यादि के बिन्दु विशेष प्रभावी हैं। 'इश्क-महोत्सव' में खड़ी बोली-कविता के दर्शन होते हैं। शिवसिंह सेंगर के अनुसार, रघुनाथ बंदीजन ने 'बिहारी-सतसई' की टीका भी लिखी थी। रघुनाथ बंदीजन एक श्रेष्ठ पारम्परिक कवि हैं, जिनको खड़ीबोली-कविता के इतिहास में भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनके गौरवशाली पुत्र गोकुलनाथ, यशस्वी पौत्र गोपीनाथ तथा गोकुलनाथ के शिष्य विद्वान्-कवि मणिदेव ने महाभारत³ का अमर अनुवाद किया था। रचनाओं से उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन, कहै रघुनाथ भरे चैनरस सियरे।
दौरि आएँ और से करत गुनी गुनगान, सिद्ध से सुजान सुखसागर सो नियरे।।
सुरभी सी खुलन सुकवि सी सुमति लागी, चिरिया सी जागी चिंता जनक के हियरे।
धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आनु, भोर कैसे नखत नरिंद भए पियरे।।
2. काछी कटे पट पीत को सुंदर सीस धरे पगिया रँगराती।
हार गरे विच गुंजन के अलकैं छुटि छोरन लौं छहराती।।
खेलत ग्वालन सों रघुनाथ औ डोलै गलीन मैं री उतपाती।
जो रँग साँवरो होतो न ईठि तौ काहू की डीठि कहूँ लगि जाती।।

1. गुजराती 'अहमदाबाद' बोलते हैं। वड़ोदरा, पुणे, मुंबई, चेन्नै इत्यादि निदर्शन है।

2. करी = करि (हाथी)?

3. 'हरिवंश' समेत। विराट् एवं सफल ग्रन्थ जो नन्व-तिक्कन-एर्न के तेलुगू-महाभारत का स्मरण कराता है।

3. कैधों सेस देस ते निकसि पुहुमी पै आय, बदन उचाय बानी जस असपंद की।
कैधों छिति चवरी उसीर की देखावती है, ऐसी सोहै उज्जल किरनि जैसे चंद की।।
जानि दिनपाल श्रीनृपाल नंदलालजू को, कहै रघुनाथ पाय सुधरी अनंद की।
छूटत फुवारे कैधों फूल्यों है कमल तासों अमल अनंद कढ़े धार मकरंद की।।
4. आप दरियाव पास नदियों के जाना नहीं, दरियाव पास नदी होयगी सो धावैगी।
दरखत बेलि आसरे को कभौं राखत न, दरखत ही के आसरे को बेलि पावैगी।।
मेरे ही लायक जो था कहना सो कहा मैंने, रघुनाथ मेरी मति न्याव ही को गावैगी।
वह मोहताज आपकी है, आप उसके न, आप कैसे चलौ, वह आप पास आवैगी।।

रघुनाथ बंदीजन ठेठ बनारसी थे जो “काशी तीन लोक से न्यारी” पर अटूट विश्वास रखते हैं। काशी-प्रशंसकों की संख्या सम्भव नहीं, किन्तु इनमें रघुनाथ बंदीजन को निश्चित स्थान अवश्य प्राप्त है, जिनका निम्नलिखित उद्गार आज तक प्रसिद्ध है :

मैं मन बीच बिचारि लख्यौ, है
बनारस में न बिना रस कोऊ।

‘रसनायक’

तालिवअली विलग्रामी ‘रसनायक’ (रचनाकाल 1746 ई.) ने महाकवि केशवदास कृत ‘रसिकप्रिया’ एवं महाकवि विहारी कृत ‘सतसई’ की टीकाएँ लिखी थीं। अन्य ग्रन्थ-लेखन भी सम्भव है किन्तु सब अनुपलब्ध हैं। केवल कुछ छन्द मिलते हैं, यथा :

1. तट की न घट भरै, मग की न पग धरै, घर की न कछु करै, बैठी भरै साँसु री।
एकै सुनि लोटि गई, एकै लोट-पोट भई, एकन के दृग ते निकसि आए आँसु री।।
कहै ‘रसनायक’ सो ब्रज-बनितानि बधि वधिक’ कहाय हाय भयौ कुल हाँसु री।
करिए उपाय, बाँस डारिए दण्डय, नाही उपजैगो बाँस नाही बाजै फेरि बाँसुरी।।
2. कैसे ‘रसनायक’ त्रिबेनी के त्रिविध रंग, जैसे मुक्ताहल विराजै भरे थार हैं।
कैसे मुक्ताहल विराजै भर थार कहौ, जैसे जल माहिं मीन करत विहार हैं।
कैसे जल माहिं मीन करत विहार कहौ, जैसे खंजरीट पर सँताई चिरीमार हैं।
कैसे खंजरीट पर सँताई चिरीमार कहौ, जैसे तेरे लोचन बनाए करतार हैं।¹²

भिखारीदास

‘काव्यनिर्णय’ (1746 ई.), ‘शृंगारनिर्णय’ (1750 ई.) एवं ‘छन्दोर्णव पिंगल’ के प्रस्तोता भिखारीदास शास्त्रीयकाल के प्रमुख आचार्यों में परिगणित हैं तथा इनकी कविता का स्तर भी ठीकठाक है, यद्यपि इन्होंने सुखदेव एवं श्रीपति से बहुत अधिक ग्रहण करने के कारण अपनी मौलिकता विवादास्पद कर दी है। मौलिक वे वस्तुतः कहीं कहीं हैं। इनका जन्म श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में प्रतापगढ़ जनपद के टेउँगा नामक ग्राम में हुआ तथा निधन भभुआ (बिहार) में जहाँ इनके नाम का मंदिर है जिस पर वैशाख शुक्ल त्रयोदशी का मेला लगता है तथा इनकी कविताएँ पढ़ी जाती हैं।¹³ आ. शुक्ल ने शास्त्रीयकालीन कवियों के आचार्यत्व पर आवश्यकता से अधिक

1. व्याजस्तुति अलंकार। नाम ‘वंश’ -मूलक (वाँसुरी) पर काम ‘वधिक’ का। हिन्दी-दृष्टि से अप्रयुक्तत्व-दोष। किन्तु फ़ारसी-उर्दू में इश्क सय्याद, जल्लाद, सितमगर, क्रातिल, आले, फफोले, खूनेज़िर, तीर, कमान, तलवार वगैरह के बिना ‘दो डग भी नहीं चल पाता। सारी उर्दू-शायरी रसाभाव से ऊपर नहीं उठ पाई। वहाँ सावित्री-सत्यवान, नल-दमयन्ती, सीता-राम, इत्यादि के युग्म नहीं मिलते, लैला-मजनूँ, शीरी-फरहाद, हीर-रौंआ इत्यादि के समाज-क्षयी युग्म ही उपलब्ध हैं। भारत जब तक रुग्ण राष्ट्र है तभी तक उर्दू-शायरी जीवित है। रुग्ण उत्तरमुगलकाल में जन्मी उर्दू और इसकी शायरी पतन की प्रतीक है। उर्दू भाषिक दृष्टि से साम्प्रदायिकता और साहित्यिक दृष्टि से कालातीत इश्कवाजी की बंदिनी है।
2. सार अलंकार। किन्तु यहाँ भी मार-काट।
3. हरिमोहन श्रीवास्तव (हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2)

ध्यान दे डाला है, जबकि यह एक स्पष्ट तथ्य है कि शास्त्रीयता इस काल के कवियों का साधन थी तथा साध्य कविता ही थी; अतः उनकी इनमें भी “आचार्य का पूरा रूप” न पाने की शिकायत बेकार है। ‘शास्त्रीयकालीन आचार्य’ से अभिप्राय न तो सिद्धान्त-प्रवर्तक भरत, भामह, वामन, कुतक (कुंतल), आनंदवर्द्धन तथा अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र इत्यादि से है न व्यावहारिक-विवेचकों मम्मट, विश्वनाथ, भानुदत्त, जगन्नाथ इत्यादि से—केवल ‘शास्त्रीयता में अपेक्षाकृत अधिक रुचि लेनेवाले कवि’ से है। निस्सन्देह, भिखारीदास की काव्यकथित व्याख्याएँ एवं उदाहरण भ्रामक हैं। इनकी कविता भी प्रायः साधारण है। किन्तु आश्चर्य है (सम्भवतः मिश्रबन्धु के प्रति विद्वेष के कारण) आ. शुक्ल ने लिख मारा है, “इनमें देव की अपेक्षा अधिक रस-विवेक था” और इसका कोई कारण तक नहीं दिया—वे ‘केवल आदेश’ देते थे! देव-जैसे रस-सिद्ध महाकवि से दास-जैसे रस (विशेषतः शृंगार), अलंकार, छन्द, शब्दशक्ति, गुण, दोष इत्यादि के एक अतिस्फीत निरूपणकर्ता की तुलना का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अब आदेशवादी आलोचना कालातीत हो चुकी है। तर्क का अभाव ‘वातचीत’ है, आलोचना नहीं। सम्भवतः ‘आचार्य’ से प्रेरणा प्राप्तकर हरिमोहन श्रीवास्तव ने भी टँगड़ी फँसाई और अद्वैत की विशद भूमि पर नायिकाभेद का व्यापक निरूपण करनेवाले महाकवि पर यह संकीर्ण एवं कालातीत आरोप तक लगा डाला, “शृंगार ही इनका भी मुख्य वर्ण्यविषय रहा, पर इन्होंने सदैव मर्यादा का ध्यान रखा। देव की तरह निम्नवर्गीय स्त्रियों की नायिका रूप में वर्णन न करके दूती रूप में किया है।” साहित्य में निम्न एवं उच्च वर्गों की कालातीत चर्चा अब घटिया भी मानी जाएगी। रूप एवं सौन्दर्य को वर्गों में बाँटना विगर्हणीय है। तुलसी और सूर, रहीम और देव प्रभृति के रूप, सौन्दर्य, आकर्षण इत्यादि को जातियों और वर्गों में न बाँधकर प्रशस्य कार्य किया है। अभिजातवाद सदैव ‘बाह्य’ रहा है और अब मानवता के सौभाग्य से वह भी नहीं रहा। श्रीवास्तव जी ने (सम्भवतः ‘आचार्य’ के ही अनुकरण पर) यह आदेश देना भी उचित समझा है, “कुछ अंशों में तो ये केशवदास से भी बढ़कर हैं,” किन्तु कृपा होगी यदि वे ‘कुछ अंश’ स्पष्ट कर देते। महाकाव्यकार, शास्त्रकाव्यकार, चरितकाव्यकार, जीवनदर्शनाकार महाकवि केशवदास की तुलना तुलसी और सूर के अतिरिक्त किसी से नहीं की जा सकती। प्रसिद्ध ग्रन्थावली आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने ‘भिखारीदास-ग्रन्थावली’ का भी अध्यवसायपूर्ण सम्पादन कर साहित्य की उल्लेख्य सेवा की है।

यह सत्य है कि भिखारीदास आचार्य के रूप में वे चिन्तामणि, कुलपति एवं श्रीपति के समकक्ष हैं, भले ही इनके ऋणी भी हों। शास्त्रीयता में रहनेवाले कवियों में भिखारीदास के आयाम सर्वाधिक स्फीत हैं। हिन्दी के काव्य-शास्त्र निरूपणकर्ताओं में भिखारीदास की स्फीति अद्वितीय है। इस कारण वे अमर हैं।

तीन छन्द प्रस्तुत हैं :

1. नैनन को तरसैये कहाँ लौं? कहाँ लौं हियो विरहागि में तैये?
एक घरी न कहूँ कल पैये, कहाँ लगि प्रानन को कलपैये?
आवै यही अब जी में विचार, सखी! चलि सौतेहुँ के घर जैये।
मान घटे तें कहा घटिहै जु पै प्रापपियारे को देखन पैये।¹
2. अब तौ बिहारी के वे बानक गए, री! तेरी तन-दुति-केसर को नैन कसमीर भो।
श्रौन तुव बानी मन बूँदन के चातक भे, साँसन को भरिबो दुपदजा को चीर भो।
हिय को हरष मरु-धरनि को नीर भो, री, जियरो मनोभव-सरन को तुनीर भो।
एरी! बेगि करिकै मिलापु थिर थापु, न तौ आपु अब चहत अतनु को सरीर भो।²
- 3 च.3२. अँखियाँ हमारी दयीमारी सुधि-बुधि हारीं, मोहूँ ते जु न्यारी दास रहैं सब काल में।
कौन कहे ज्ञानै, काहि सौंपत सयानै, कौन लोक ओक जानै, ये नहीं हैं निज हाल में।
प्रेम पगि रहीं, महामोह में उमगि रहीं, ठीक ठगि रहीं, लागि रहीं वनमाल में।
लाज को अँचै कै, कुलधरम पचै कै, बृथा वंधन सँचै कै भई मगन गोपाल में।³

1. मतिराम से प्रभावित, किन्तु मतिराम का माधुर्य कहाँ!

2. बिहारी से प्रभावित, किन्तु उच्चकोटि का छन्द, जो यत्र-तत्र मौलिक भी है—“नैन कसमीर भो” एक स्मरणीय प्रयोग है। यह भिखारीदास का सर्वोत्तम छन्द है।

3. मतिराम से प्रभावित, किन्तु अपेक्षाकृत शिथिल।

‘कवीन्द्र’ उदयनाथ¹

कालिदास (‘हजारा’ वाले) के पुत्र तथा दूलह (‘कविकुलकंठाभरण’ वाले) के पिता उदयनाथ ‘कवीन्द्र’ अथवा ‘कवीन्द्र’ उदयनाथ (जन्म 1679 ई.) ‘रसचंद्रोदय’² (कविनामसंपृक्त शीर्षक, 1747 ई.) एवं ‘जोगलीला’ के प्रसिद्ध कवि एवं आचार्य हैं। इन्हें ‘कवीन्द्र’ की उपाधि अमेठी के कवि एवं नरेश हिम्मतसिंह ने प्रदान की थी, जिनके पुत्र कवि एवं नरेश गुरुदत्तसिंह ‘भूपति’ का आश्रय भी प्राप्त हुआ। इन्होंने बूंदी के राव बुद्धसिंह, जयपुर के किसी प्रभावी सामन्त (उल्लिखित राजा नहीं) गजसिंह एवं असोथर के राजा भगवंतराय खींची या भगवंतसिंह का सम्मान भी प्राप्त किया था। कालिदास त्रिवेदी, ‘कवीन्द्र’ उदयनाथ एवं दूलह के वंशज स्व. भगवतीप्रसाद त्रिवेदी ‘करुणेश’ (1907 ई., निवास लखनऊ) भी कवि थे। ‘कवीन्द्र उदयनाथ शृंगाररस के अच्छे कवि हैं :

सहर मँझार ही पहर एक लागि जैहै, छोर पै नगर के सराय है उतारे की।
कहत कविंद मग मँझ ही परैगी सँझ, खबर उड़ानी है वटोही द्वैक मारे की।।
घर में हमारे परदेस को सिधारे या तें दया कै विचारी हम रीति राह बारे की।
उतरौ नदी के तीर वर के तरे ही तुम, चौकौं जनि चौकी तहाँ पाहरू हमारे की।।

कान्ह³

शृंगार के सरस कवि कान्ह का विशेष विवरण प्राप्त नहीं है। यदि यह ‘रसरंग-नायिका’ (1747 ई.) के कवि कान्ह हैं तो रचना एवं समय दोनों ज्ञात माने जा सकते हैं। ‘सरोज’, ‘विनोद’ एवं ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग-2 के विवरण विवादास्पद हैं। ‘विनोद’ के उदाहरण में छाप ‘कान्ह’ दी हुई है जिससे नाम कान्हदास भी सम्भव है, क्योंकि ‘कान्ह’ मात्र का प्रयोग प्रायः दृग्गत नहीं होता। ‘विनोद’ का छन्द है :

कानन लौं अँखियाँ ये तिहारी हथेरी हमारी कहाँ लगा फैलिहैं।
मूँदे हूँ पै तुम देखती हो यह कोर तुम्हारी कहाँ लौं सकेलिहैं।।
कान्हरहूँ को सुभाउ यहै उनको हम हाथन ही पर झेलिहैं।
राधेजी मानो वुरो कै भलो अँखिमूदनो संग तिहारे न खेलिहैं।।

निस्सन्देह, छन्द व्याजस्तुति से अलंकृत भी है, भावमय भी है, सफलतर है।

ठाकुर (द्वितीय)

ठाकुर (द्वितीय) भी असनी के भट्ट थे। इनके पिता ऋषिनाथ एवं पौत्र सेवक भी कवि थे। पं. रामनरेश त्रिपाठी ने इनका जन्म 1712 वि. (1736 ई.) में माना है जिसका आधार ‘विनोद’ ही है। इनके पूर्वज गोरखपुर जनपदवादी कवि देवकीनन्दन मिश्र को एक राजविवाह में लोभवश भट्टान्त के कारण जातिच्युत कर दिया गया था, जो असनी में नरहर भट्ट के जामाता के रूप में आ वसे थे।

1. एक उदयनाथ बंदीजन (जन्म 1654 ई., काशी) भी हुए हैं, जो साधारण कवि थे।
2. ‘सरोज’ के अनुसार रसचन्द्रोदय, रतिविनोदचंद्रिका, रतिविनोदचंद्रोदय, रसचंद्रिका एक ही ग्रन्थ के विभिन्न नाम हैं, जो मंत्री समझ में, विभिन्न राजाओं को ‘रसचन्द्र’ रूप से प्रभावित करने के लिए रखे गए होंगे। शास्त्रीयकाल में यह ‘प्रथा’ प्रचलित थी, जिससे देव, पद्माकर जैसे महाकवियों ने भी लाभ उठाया था। आ. शुक्ल ने रसचन्द्रोदय एवं विनोदचंद्रिका को दो ग्रन्थ माना है, जो गलत है, जैसा कि ‘विनोद’ से भी स्पष्ट है तथा ‘हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास’ (1954 ई.) शीर्षक प्रसिद्ध ग्रन्थ में डॉ. भगीरथ मिश्र ने भी संकेतित किया है।
3. ‘विनोद’ में व्यक्त ‘मान्यता’ के अनुसार।
4. ‘विनोद’ में ‘उदयनाथ उपनाम कवीन्द्र’ के विवरण में ‘तेवरी’ (तिवारी) गलत है।
5. शिवसिंह की प्रेरणा से मिश्रवन्धु ने ‘कान्ह प्राचीन’ लिखा है, क्योंकि ‘चंद्रभाल-शतक’ के कवि कन्हैयालाल कायस्थ ‘कान्ह’ (जन्म 1848 ई., सेठियावाँ, जनपद हरदोई), ‘नखशिख’ के कवि कान्ह कायस्थ (जन्म 1857 ई., मऊरानीपुर, जनपद झाँसी), ‘देवीविनय’ के कवि कान्ह वैस (जन्म 1813 ई. वैसवाड़ा) तथा ‘संगीत-मकरंद’, ‘सावन-मयूर’, ‘नखशिख’, ‘आनन्दसार-रामायण’, ‘हास्य पंचरत्न’ इत्यादि अनेकानेक ग्रन्थों के रचयिता कान्हलाल ‘कान्ह’ (जन्म 1867 ई. नवागढ़ी, गया क्षेत्र) जैसे चार अन्य समनामी-समोपनामी कवि हुए हैं। (यदि कायस्थ ‘कान्ह’-द्वय एक हों ता तीन)।

यह नरहर स्पष्टतः अकबर के दरबार के रत्न महापात्र नरहरि बंदीजन तथा तुलसीदास के गुरु नरहरिदास (या नरहरदास, जो सम्भवतः संन्यासी के रूप में नरहर्यानन्द हो गए थे—यह भी भट्ट थे जिनके वंशज प्रयाग में विद्यमान हैं) से भिन्न हैं। ठाकुर (द्वितीय) की कविता भी असनी के ही ठाकुर (प्रथम) की कविता के सदृश पारम्परिक है। मिश्रबन्धु ने इन्हें सारे ठाकुरों में श्रेष्ठतम घोषित करते हुए 'महाकवि' माना हैं तीनों ठाकुर शृंगारी हैं, यद्यपि तृतीय में नव्यता एवं मौलिकता के तत्त्व उन्हें विशिष्ट सिद्ध कर देते हैं। ठाकुर (द्वितीय) की कविता भी ठाकुर (प्रथम) की कविता के सदृश मनोहारी है :

प्रातः झुकामुकि भेष बनाय कै, गागर लै घर तें निकरी ती।
जानि परी न कितीक अवार है, जाय परी जहँ होरी धरी ती।।
ठाकुर दौरि परे मोहिं देखि कै, भागि बची री, बड़ी सुधरी ती।
बीर की सों जौ केंवार न देउँ ती मैं होरिहारिन हाथ परी ती।।

प्रस्तुत छन्द में वचनदिग्धा अपनी सखी के अनाहूत एवं अचानक घर आने, द्वार बन्द होने, खोलने पर ठाकुर (श्लेष से स्वामी या कृष्ण) के उपस्थित होने पर होली के हुड़दंगियों से बचकर भागने और त्वरावश बिना कुछ देखे-सुने द्वार बन्द करने का वद्विया बहाना बना रही है और बहाने को सखी की क्रसम खाकर सत्य का जामा पहना रही है। पारम्परिक होने पर भी छन्द बहुत ही सुंदर है। सम्भव है कि रस-रत्नावली, रस-विलास, नैन-पचासा, जनक-पच्चीसी इत्यादि के कवि जैतपुर (बुंदेलखंड) निवासी मंडन (रचनाकाल 1660 ई. के आस-पास) के महान् सवैये का इस पर प्रभाव पड़ा हो :

आलि हौं तौ गई जमुना जल को, सो कहा कहौं बीर! विपत्ति परी।
घहराय कै कारी घटा उनई, इतनेई में गागरि सीस धरी।।
रपट्यो पग, घाट चढ़ो न गयो, कवि मंडन है कै विहाल गिरी
चिरजीव रहै नंद को बारो, गहि बाहँ गरीब ने ठाढ़ी करी।।¹

ठाकुर द्वितीय का सौन्दर्य-दर्शन प्रौढ़ एवं प्रशस्य है :

रूप अनूप दई दियो तोहिं त मान किए न सयान कहावै।
और सुनौ यह रूप जवाहिर भाग बड़े बिरले कोउ पावै।।
ठाकुर सूम के जात न कोऊ, उदार सुने सब ही उठि धावै।
दीजिए ताहि देखाय दया करि जो चलि दूरि ते देखन आवै।।

तीनों² ठाकुरों की रचनाएँ ऐसी गड्ढमगड्ढ हो गई हैं कि प्रामाणिकता का निर्धारण कठिन है। इस गड्ढमगड्ढ से ठाकुर तृतीय या ठाकुर बुंदेलखंडी को बहुत लाभ हुआ है क्योंकि उन्हें लाला भगवानदीन 'दीन' के रूप में 'ठाकुर-ठसक' का विद्वान् सम्पादक एवं संकलनकर्ता प्राप्त हो गया है जिसके आधार पर आ. शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में उनको व्यापक मान्यता प्रदान कर दी (यद्यपि 'दीन' एवं शुक्ल के उद्धरण निर्विवाद नहीं हैं)।

दूलह

'कालिदास-हजारा' के अमर प्रस्तोता ('सरोज' के यशस्वी लेखक शिवसिंह सेंगर के एक प्रेरणास्रोत) कविवर कालिदास त्रिवेदी के पौत्र एवं 'रस-चन्द्रोदय' जैसे सफल शृंगारग्रन्थ के प्रणेता 'कवीन्द्र'³ उदयनाथ के पुत्र शृंगौररस-निष्णात् कविरत्न दूलह (रचनाकाल 1760 ई. के इधर-उधर) केवल 85 (कहीं-कहीं 82) छन्दों के नामसिद्ध अलंकार-ग्रन्थ 'कविकुलकंठाभरण' के कारण अमर हैं। "और बराती सकल कवि दूलह दूलहराय" की यमक-रंजित अत्युक्ति इनकी कविता की उत्कृष्टता की सूचना देती है। वैसे,

1. मंडन इस एक सवैये के कारण ही अमर हैं। होना भी चाहिए।

2. एक अन्य बाबा ठाकुरदास भी हुए हैं, जिनका उल्लेख 'विनोद' में है। ठाकुरप्रसाद सिंह को भी ठाकुर-परम्परा का रत्न माना जा सकता है।

3. 'कविन्द'।

4. भोज कृत 'कविकुलकंठाभरण' (संस्कृत) का स्मरण आता है। डॉ. आत्माराम शर्मा 'अरुण' ने 'कविवर दूलह रचित कविकुलकंठाभरण' (2000 ई.) का पुनरुद्धार किया है।

‘दूलह-विनोद’ की चर्चा भी हुई है तथा कुछ फुटकल छन्द भी मिलते हैं। आ. शुक्ल ने (अक्रमत्वदोषयुक्त शैली में) लिखा है कि “देव, दास, मतिराम आदि के साथ दूलह का भी नाम लिया जाता है” किन्तु दूलह मतिराम की समता गुण-परिमाण की किसी भी दृष्टि से नहीं कर सकते तथा देव की समता तो मतिराम तक नहीं कर पाते। आचार्य के रूप में भिखारीदास आगे हैं, कवि के रूप में दूलह। अतः “देव, दास, मतिराम” के स्थान पर केवल ‘दास’ होता तो किसी सीमा तक समीचीन माना जाता। कम लिखकर बिहारी अमर हुए, दूलह प्रसिद्ध और मंडन (केवल एक छन्द के कारण-यद्यपि लिखा बहुत) स्मरणीय। दूलह की ब्रजभाषा ललित एवं प्रवाहपूर्ण है, छंदयोजना गतिभंग-यतिभंग-मुक्त, शृंगारिकता “क्वचित् अश्लीले गुणे” (मम्मट) का स्मरण कराती मनोविमोहक, आध्यात्मिकता विचारोत्तेजक-कलात्मक :

1. धरी जब बाहीं तव करी तुम नाहीं, पायँ दियौ पलकाहीं नाहीं नाहीं कै सुहाई हो।
बोलत में नाहीं, पट खोलत में नाहीं, कवि दूलह उछाहीं लाख भाँतिन लहाई हो।।
चुवन में नाहीं, परिभंजन में नाहीं, सब आसन बिलासन में नाहीं ठीक ठाई हो।
मेलि गलबाहीं केलि कीन्हीं चितचाही, यह हाँ ते भली नाहीं सो कहाँ ते सीखि आई हो।।¹
2. फल बिपरीत को जतन सों बिचित्र होत, हरि ऊँचे बामन भे बलि के सदन में।
आधार बड़े तें बड़ो आधेय अधिक जानौ, चरन समानो नाहिं चौदहो भुवन में।।
आधेय अधिक तें आधार की अधिकाई, दूसरो अधिक आयो ऐसो गननन में।
तीनों लोक तन में, अमान्यो ना गगन में, बसैं ते संत-मन में, कितेक कहौ मन में।।

शिवनाथ

‘रसवृष्टि’ (1771 ई.) के सरस कवि शिवनाथ द्विवेदी (कुर्सी², बाराबंकी) ने शृंगार एवं भक्ति के सुंदर छन्द रचे हैं। इनकी ब्रजभाषा सरल-सुन्दर है। उदाहरण देखें :

1. चंपा-चमेली कली चुनिकै अलबेली-सी फूलनि सेज सँवारी।
कुंज की देहरी बैठि रही मग जोवत स्यामहि गोपकुमारी।।
ज्यों-ज्यों गई रजनी सरसाइकै आवैं न आवैं इतै गिरिधारी।
खोलत मूँदि रहै पट घूँघट कानन कानन सुंदर बारी।।
2. नामहि ते गनिका गनि साधनि बाधनि काटि गई हरि धामहि।
धाम हि धौल सुदामहि दै पठयो प्रभुपास कोहाइकै³ बामहि।।
बामहि गौतम की गति पाय भई शिवनाथ सपूरन कामहि।
काम-हि-काम गए दिन बीति अरे मन मूढ़ भजो हरि नामहि।।

शाह आलम

नामनिहाल मुगल-बादशाह शाह आलम (‘राज्य’-काल 1761-1805 ई.), 1764 ई. में बक्सर की लड़ाई में अंग्रेजों से हारे, 1765 ई. में अंग्रेजों की दीवानी सौंपने पर विवश हुए, 1771 ई. में मराठों ने गद्दी पर बैठाया, 1788 ई. पदच्युत और अंधा किया गया,

1. बायरन के ‘डॉन जुआन’ की जूलिआ का ‘सेइंग’, ‘आई’ ल नेवर कॉन्सेन्ट’, ‘कॉन्सेन्टेड’ (कहते, ‘कभी न स्वीकृति दूँगी’, स्वीकृति दे दी) का स्मरण आता है। बायरन में स्थूलता नहीं है। और, स्थूलता कितनी स्पृहणीय होती है इसे अशोक वाजपेयी (कवि एवं साहित्य-नेता तथा आकाशवाणी के पुराने समाचार-प्रवाचक अशोक वाजपेयी से स्पष्टतः भिन्न) में देखिए : विलक्षण-उद्गार!
वह कैसे कहेगी हों— हों कहेंगे, उसके अनुस्तक नेत्र, उसके उदग्र उसुक कुचाक्र, उसकी देह की चकित धूप, उसके आर्द्र अघर, कहेंगे हों— वह कैसे कहेगी हों?
2. कुर्सी या कुरसी का प्रयोग ऊँचे स्थान या ऊँचे आसन के लिए होता था। अतः इस नाम के ग्राम अनेक जनपदों में प्राप्त होते हैं। कानपुर जनपद में भी है।
3. क्रोध = क्रोध। क्रोध करके स्त्री ने भेजा।

1792 ई. तक पुनः 'गद्दी' पर) एक अच्छे हिन्दी-कवि माने जा सकते हैं। यह, इनके पुत्र अकबर (द्वितीय) तथा पौत्र बहादुरशाह (द्वितीय) 'ज़फ़र' उर्दू-शायर थे। बला के रसिक होने के कारण इनकी ब्रजभाषा-कविता शृंगारिक ही हो सकती थी :

1. रूपमती और रसभरी करके सर्व सिंगार।
आवत प्यारी बाल वह लिए रंग पिचकार।।
2. मन मेरे अमोल लै जात पिया तुम बार कछू न लगावत हो।
पहले तो लुभाइ लगाए भले फिर पीछे उसे उचटावत हो।।
अति छैल-छबीले रँगीले महा गरबीले रसीले कहावत हो।
तुम राखन जानत हो तो कहो चित काहे पराए चुरावत हो।।
3. प्यारे बिना सखि काह करूँ जब तें रितु नीकी वसंत की आई।
फूले गुलाब की सीतल बास बयार मिली चहुँ ओर को धाई।।
वौरी भई हूँ न बोल मैं जानूँ औ भूली सवै मन की चतुराई।
बैठ के अंब की डारन पै वह बैरिन कोयल कूक मचाई।।³

देवकीनंदन

'शृंगारचरित्र'⁴ (1784 ई.)⁵ के सक्षम आचार्य-कवि देवकीनन्दन (जन्म 1744 ई.)⁶ प्रसिद्ध मकरंदनगर (अब कन्नौज का एक मोहल्ला) के शुक्ल-कुल-भूषण थे, जिन्होंने व्यापक शास्त्रीयता में विदग्धता का परिचय दिया है। रसनिरूपण, अलंकारनिरूपण, गुणदोषनिरूपण इत्यादि में उनकी अच्छी गति थी, जो यत्र-तत्र विद्वता से आच्छन्न होते हुए भी भावविपन्न नहीं है। भावपूर्ण 'पक्षीविलास' के स्रष्टा कवि गुरुदत्त शुक्ल एवं 'वंशावली रीवाँ' के रचयिता कवि शिवनाथ शुक्ल इनके भाई थे। ये शुक्ल-वन्धु त्रिपाठी-वन्धु (भूषण-मतिराम-चिन्तामणि) एवं मिश्रवन्धु (गणेशबिहारी-श्यामबिहारी-शुकदेवबिहारी) का स्मरण कराते हैं। उदाहरण देखें :

1. बैठी रंग रावटी मैं हेरत पिया की बाट, आए न बिहारी भई निपट अधीर मैं।
देवकीनंदन कहै स्याम घट घिरि आई, जानि गति प्रलै की डरानी बहु वीर मैं।।
सेज पै सदासिव की मूर्ति बनाय पूजी, तीनि डर तिनहू की करी ततवीर मैं।
पाखन मैं सामरे, सुलाखन मैं अखैबट, ताखन मैं लाखन की लिखी तसवीर मैं।।

1. हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया अंडर कंपनी एंड क्रॉउन (पी. ई. रॉबर्ट्स)। अनेक हिन्दी-ग्रन्थों में ग़लत तिथियों के कारण मानक ग्रन्थ से अनेक तिथियाँ दे दी हैं।
2. हुमायूँ के जनाना और मर्दाना दो हरम थे। जहाँगीर शराब के नशे में धुत रहने के कारण कभी-कभार औरत बनता था। शाह आलम ने अनेक किशोरों को क्लिब बनाकर पत्नी-वत् भोगा। प्रसाद की ऐतिहासिक कहानी 'गुलाम' के अनुसार गुलाम कादिर ने इसी कारण उन्हें अन्धा और अपमानित किया। रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता-कौमुदी' (उर्दू) के तावों के परिचय में इनके तावों (जो उर्दू-शायर भी थे) के हुस्नोजाल से प्रभावित होने के कारण स्वयं जाँक आवेहयात (पानी) मोंगने की बात लिखी है। तावों पर सैकड़ों कुर्बान थे, जिनमें जानजानों मज़हर और मीर विशेष उल्लेखनीय है।।
3. तीनों उद्धरण 'मध्यायुगीन हिन्दी के सूफ़ी-इतर मुसलमान कवि' (डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव), पृष्ठ 175 से लिए गए हैं, जिनमें अन्तिम दो 'नादिरातशाही' के बताए गए हैं।
4. 'शृंगार-चरित्र' को ही कुछ बढ़ाकर रुद्रामऊ (जनपद हरदोई) के अवधूतसिंह को 'अवधूत-भूषण' (अभिधान से ही अलंकार-ग्रन्थ) के रूप में समर्पित कर दिया गया है। यह अर्थमूलक-प्रवृत्ति शास्त्रीयकाल के कवियों में बहुत व्यापक हो गई थी।
5. 'विनोद' में 1841 वि.। इसे 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामफेर त्रिपाठी ने पता नहीं कैसे 1783 ई. लिखा है।
6. 'सरोज' (शिदसिंह) के अनुसार, 1801 वि. जिसे 'विनोद' (मिश्रवन्धु) ने 'यथार्थ' जाँचा है।
7. स्व. डॉ. रामदत्त भारद्वाज (स्वयं शुक्ल) ने तुलसीदास को शुक्ल माना है, जो विश्वकवि के द्विवेदी एवं मिश्र भी माने जाने के कारण नितांत विवादास्पद है। पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र के पूर्वज 'शुक्ल' थे जो बाद में 'मिश्र' (अकबर के प्रिय ब्राह्मण-सम्बोधन के परिणामस्वरूप) हो गए ('पाण्डेय' से 'मिश्र' बने तानसेन के सदृश, जो अंततः 'मियाँ' हो गए थे।) इन दो को छोड़ दिया जाए तो भी देवकीनंदन, गुरुदत्त, शिवनाथ, रामचन्द्र, गयाप्रसाद ('सनेही' भी, 'त्रिशूल' भी), ललिताप्रसाद, कृष्णशंकर, शिवलाल, जगन्नाथप्रसाद ('भव्य') इत्यादि विभिन्न वर्गों के शुक्ल हिन्दी की उल्लेखनीय सेवाएँ कर चुके हैं।

2. मोतिन की माल तोरि, चीर सब चीरि डारै, फेरिकै न जैहाँ, आली! दुख विकरारै हैं।
देवकीनंदन कहै धोखे नाग-छौनन के अलकै प्रसून नोचि नोचि निखारै हैं।।
मानि मुख चंद भाव चोंच दई अधरन, तीनों ये निकुंजन मैं एकै तार तारे हैं।
ठौर-ठौर डोलत मराल मतवारे तैसे मोर मतवारे त्यों चकोर मतवारे हैं।।

किशोर

‘किशोर-संग्रह’ एवं ‘तेहरमासी’ के कवि किशोर (जन्मवर्ष 1744 ई.²) ने ऋतुओं के सुंदर वर्णन किए हैं। मिश्रवन्धु के शब्दों में, “इनकी कविता लोकोक्तियुक्त, स्वाभाविक एवं प्रशंसनीय है।” भाषा सानुप्रास व्रज है। शिवसिंह के अनुसार, यह मोहम्मदशाह रंगीले (राज्यकाल 1719-1748 ई.) के आश्रित कवि थे, किन्तु यह एकदम ग़लत है, क्योंकि यह बादशाह 1748 ई. में गया था। उदाहरण देखें :

1. फूलन दे अवै टेसू कदवन अंवन वौरन छावन दे री।
री मधुमत्त मधुव्रत पुंजन कुंजन सोर मचावन दे री।।
क्यों³ सहिहैं सुकुमारि किसोर अली कल कोकिल गावन दे री।
आवत ही वनिहै घर कंतहि, वीर! वसंतहि आवन दे री।।
2. क्यैला भई कोयल, कुरंग वार कारे किए, कूटि-कूटि केहरी कि लंक लंक हदली।
जारि-जारि जंवूनद मूंगा वदरंग होत, अंग फार्यो दाड़िम, तुचा भुजंग वदली।।
ये री चंदगुखी! तू कलंकी कियो चंद हू को, बोले व्रजचंद सो किसोर आजु अदली।
छार मुंड डारै गजराज, ते पुकार करै, पुंडरीक डूव्यो री, कपूर खायो कदली।।

मीरन

शिवसिंह कृत ‘सरोज’ में उल्लिखित किंतु संप्रति अनुपलब्ध ‘नाखशिख’ के ललित व्रजभाषा-कवि मीरन (जन्म 1748 ई. से पूर्व)⁵ ने अनेक अच्छे शृंगार कवित्त-सवैये लिखे, जो स्मरणीय हैं। यमक में इनकी विशेष रुचि थी :

1. सुमन में वास जैसे सुमन में आवै कैसे, नाहीं कहे होत नाहीं हों कह्यो चहत है।
सुरसरि सूरजा में सूरसुता⁶ सोहै जैसे, बेद के बचन बाँचे साँचे निवहत है।।
परिवा के इंदु की कला जो बसै अंबर में, परिवा के अच्छ परतच्छ न लहत हैं।
जैसे अनुमान परमान परब्रह्म जैसे, कामिनी कटि कवि ‘मीरन’ कहत हैं।।⁷
2. पौढ़ी हुती पलिका पर हों निसि ज्ञान औ ध्यान पिया मन लाए।
लागि गई पलकै पल सों पल लागत ही पल मैं पिय आए।।
ज्यों ही उठी उनके मिलिवे हों सु जागि परी पिय पास न पाए।
‘मीरन’ और तो सोइ कै खोवत हों सखि प्रीतम जागि गँवाए।।

-
1. पुरुषोत्तम-मास (मलमास) को जोड़कर वारहमासा को तेहरमासा बनाने का विलक्षण प्रयोग।
 2. शिवसिंह कृत ‘सरोज’ : 1801 वि.
 3. कैसे (व्रजभाषा में)।
 4. सखी, भद्र, आली।
 5. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह (दिग्विजय-भूषण-संपादक) के अनुसार।
 6. सूर = सूर्य। सूरसुता = यमुना।
 7. ऐसी कल्पना ‘मीरन’ से ही सम्भव है।

पद्माकर

भट्ट तिलंगाने को, बुँदेलखंड-वासी कवि सुजस प्रकासी पद्माकर सुनामा हैं।
जोरत कबित छन्द छप्पय अनेक भाँति। संस्कृत प्राकृत पढ़े जु गुनग्रामा हैं।
हय रथ पालकी गयंद गृह ग्राम चारु आखर लगाय लेत लाखन की सामा हैं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगतसिंह तेरे जान तेरो वह विप्र हैं सुदामा हैं।

शास्त्रीयकाल की एक महान् प्रतिभा पद्माकर (1753-1833 ई.) के रूप में प्राप्त होती है, जिन्होंने रस-अलंकार-निरूपक प्रख्यात 'जगद्धिनोद' एवं 'पद्माभरण' भी रचे हैं तथा भक्तिपरक² 'गंगालहरी' भी रची है और इस प्रकार केशव, देव, विहारी, घनआनन्द, सुखदेव इत्यादि के सदृश जीवन के प्रवृत्ति-पक्ष को भी उजागर किया है तथा निवृत्ति-पक्ष को भी। केशव, देव, विहारी, घनआनन्द, सुखदेव इत्यादि न कोरे श्रृंगारी हैं तथा न कोरे भक्त : ये जीवन के व्यापक चितरे हैं जिनके साथ आलोचक अब तक पूरा न्याय नहीं कर सके। पद्माकर का जन्म सागर (मध्य प्रदेश) में हुआ किन्तु ये बाँदा (उत्तर प्रदेश) से अधिक जुड़े रहे जैसेकि इनके पूर्वज भी थे। मिश्रबन्धु ने इनका जन्म बाँदा में लिख दिया था जो गलत है।³ जीवनसंध्या में कुछ कुछ रोगनिवारणार्थ और कुछ भक्तिप्रेरित होकर यह कानपुर के गंगातट पर रहने लगे थे। वहीं रोगमुक्त भी हुए, शरीरमुक्त भी।⁴

पद्माकर अपने समय के केशवदास थे, जिनका प्रभाव इन पर स्पष्ट रूप से पड़ा है। लगभग उन्हीं के सदृश इनके पूर्वज भी विद्वान्, कवि एवं राजगुरु रहे; लगभग उन्हीं के सदृश यह भी राजा की तरह पूरे ठाट-बाट या शान-शौकत से रहे। इनके पितामह जनार्दन भट्ट एवं पिता मोहनलाल भट्ट भी विद्वान्, कवि एवं राजगुरु थे। इनका वंश 'कवीश्वर-वंश' था, अब तक है। सागर-नरेश रघुनाथराव अप्पा साहब, सुगरा के सेनापति नोने अर्जुनसिंह,⁵ दतिया-नरेश परीक्षित, बाँदा के राजनीतिज्ञ हिम्मत बहादुर (वास्तविक नाम अनूप गिरि), सितारा-नरेश रघुनाथराव (राघोबा), जयपुर-नरेश प्रतापसिंह एवं जगतसिंह, ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिंधिया⁶ इत्यादि से उन्हें अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई थी तथा ये राजाओं की तरह सदलबल गाजे-बाजे के साथ चला करते थे। ठाकुर (तृतीय) इत्यादि इनसे ईर्ष्या रखते थे किन्तु कुछ ने इनके आदर-सम्मान पर प्रभाव डाला था जैसाकि 1826 ई. में चरखारी-नरेश रतनसिंह के न मिलने की उस प्रसिद्ध घटना से स्पष्ट होता है, जिससे क्रुद्ध होकर इन्होंने यह सशक्त छन्द रचकर उन्हें क्षमायाचना के लिए विवश किया था :

तुम गढ़ किल्ला सदा जोर करि जीतत हौ, पिंगल अमरकोष जीतत जहाज हैं।

तुम सदा साम, दाम, दंड, भेद न्याव करो, चारों बेद हमहूँ सुनावतु समाज हैं।

हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, पैदल तुम्हारे साथ, राखत सदा ही हम छप्पे छन्द साज हैं।

तुमसों औ हमसों बराबरी को दावा गिनौ, तुम महाराज हौ तौ हम कबिराज हैं।

वस्तुतः भट्ट एवं भट्ट की बराबरी तर्क-संगत है। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। अतः भट्टात्मक-भट्टकाव्य अभिधान गढ़ रहा हूँ। पश्चिम में एक लोकोक्ति प्रचलित है, "आगोमेन्मोन से पहले भी महापुरुष हुए थे।" आगोमेन्मोन होमर कृत पश्चिम के आदि-काव्य इलियड के यूनानपक्षीय वीरों के नेता हैं। हेलेन-हरण पर ट्रॉय-युद्ध 1994-1984 ईसा-पूर्व के दस वर्षों तक लड़ा गया था। होमर ईसा-पूर्व नवीं शताब्दी में हुए। उक्त लोकोक्ति का अभिप्राय है कि महापुरुष तो पहले भी हुए किन्तु उन्हें कवि न मिले अतः लुप्त हो गए। योद्धा, महाराज एवं कवि छत्रसाल बुंदेला का 'कीरति के बिरवा कवि हैं इनको कबहूँ कुम्हिलान न दीजै' उद्गार वस्तुतः भी गौरवशाली है, तत्त्वतः भी। पद्माकर का स्वाभिमान तथा रतनसिंह की क्षमायाचना दोनों उचित हैं। उनका कोई आश्रयदाता उनकी समता नहीं कर

1. पं. नकछेदी तिवारी के आधार पर मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में 1810-90 वि. लिखा है जिसे शुक्ल इत्यादि सभी ने स्वीकार किया है। पता नहीं कैसे, 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित ने जन्म-सन्दर्भ में 'रामचन्द्र शुक्ल के अतिरिक्त' लिखने को गलती की है?
2. भक्तिपरक 'प्रबोध-पचासा' बस उल्लेख्य है तथा 'राम-रसायन' सामान्यतमवर्गीय (इनकी कृति या अन्य की?) मिश्रबन्धु राम-रसायन को पद्माकर-कृत नहीं मानते थे। वे इसे बाँदा में प्रचलित जनश्रुति के आधार पर एक सुनारिन से उत्पन्न इनके पुत्र मनीराम द्वारा रचित बताते हैं।
3. इसी कारण से आचार्य शुक्ल भी इनका जन्मस्थान बाँदा लिखने की गलती कर गए। उनका सारा विवरण 'विनोद' पर ही आधृत है।
4. अखौरी गंगाप्रसाद सिंह (जिन्होंने 'हिन्दी के मुसलमान कवि' ग्रन्थ भी रचा है) कृत 'पद्माकर की काव्य-साधना' प्रस्थान-ग्रन्थ होन के कारण भी पठनीय है, गुणवत्ता की दृष्टि से भी।
5. स्वर्गीय अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' के ऐतिहासिक उपन्यास 'सती का पत्थर' में उल्लिखित।
6. सिंधिया-राजा 'आलीजाह' पदवी धारण करते थे, अतः पद्माकर ने 'जगद्धिनोद' (महाराज जगतसिंह से सम्बद्ध) में ही थोड़ा-बहुत फेर-फार करके 'आलीजाह-प्रकाश' प्रस्तुत कर दिया।

सकता। हिन्दी की भट्ट-विभूतियों में चन्द्रवरदायी के अनन्तर (क्योंकि वे योद्धा भी थे) पद्माकर अन्यतम हैं। चन्द्रवरदायी, नरहरि, ठाकुर प्रथम, ठाकुर द्वितीय, पद्माकर, वेनी बंजीजन, बालकृष्ण भट्ट, उदयशंकर भट्ट, डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. त्रिभुवननाथ शर्मा, 'मधु', सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' इत्यादि भट्टों ने हिन्दी की महान् सेवाएँ की हैं किन्तु यह सब होते हुए भी पद्माकर के आश्रयदाता या तो महतोद्देश्यहीन योद्धा मात्र थे (जैसे नोने अर्जुनसिंह) या धूर्त राजनीतिज्ञ मात्र (जैसे हिम्मतबहादुर); अतः उनके वीरकाव्य में प्रेरणा के स्वरों का अभाव है। बिना महान् नायक के महान् वीरकाव्य की सृष्टि सम्भव नहीं तथा मतिराम, सुखदेव, पद्माकर इत्यादि का वीरकाव्य इस कथन का प्रमाण है जो केवल शैली-प्रधान होकर रह गया है। अपने वीरकाव्य में भूषण से प्रभावित होकर भी पद्माकर कहीं भी भूषण की समता नहीं कर पाते। काव्यगुण, भाषा-प्रवाह, मौलिकता एवं प्रेरणा के कारण भूषण समग्रता में भी पद्माकर से श्रेष्ठतर कवि हैं।

पद्माकर का भक्तिकाव्य उनके वीरकाव्य से श्रेष्ठतर है क्योंकि एक तो गंगा और राम महान् आलम्बन हैं, दूसरे वैभवशाली जीवन में कुछ ने विराट् कुण्ठा उत्पन्न कर दी थी जिससे भक्ति को स्फुरण प्राप्त हुआ।

पद्माकर का शास्त्रीय काव्य उच्चस्तरीय है, जिसने परवर्ती कवियों पर प्रभाव डाला है जिनमें द्विजदेव एवं रत्नाकर भी सम्मिलित हैं। जगद्दिनोद एक अमर कृति है जो रसराम और रसार्णव से भी अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई है।

निस्सन्देह पद्माकर अपने शास्त्रीय काव्य में महाकवि केशवदास से प्रभावित हैं। केशवदास बुन्देलखण्ड की महानतम विभूति थे, जिनके कारण यह क्षेत्र काव्यक्षेत्र ही बन गया। विहारी, पद्माकर, ठाकुर (तृतीय), बोध, मैथिलीशरण, सियारामशरण इत्यादि की परम्परा सतत-गतिशील रही है। शत-शत स्थानीय कवि अलग! वृंदावनलाल वर्मा एवं अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' जैसे विशुद्ध बुन्देला उपन्यासकार अलग! पद्माकर पर मतिराम, सुखदेव, देव इत्यादि का भी प्रभाव पड़ा है। किन्तु उनकी शैलीगत अस्मिता ने सारे प्रभावों को मौलिक बना डाला है। पद्माकर ने शृंगारकाव्य, भक्तिकाव्य एवं वीरकाव्य का त्रिमुख सृजन किया है, किन्तु उच्चकोटि की सफलता केवल शृंगारकाव्य में प्राप्त की है। उनकी कविता का प्रवाह अतीव प्रशस्य है। महान् साहित्येतिहासकार मिश्रबन्धु ने 'पद्माकर-काल' द्वारा उन्हें सम्मानित किया है। उनकी कविता शिल्पप्रधान है, किन्तु उनका भावपक्ष विपन्न नहीं है। प्रेम की नाना भंगिमों के अंकन में वे बहुत सफल हैं।

ग्रन्थ

शास्त्रीयकालीन कविता के शीर्षस्थ ग्रन्थावलीकार, अद्वितीय सम्पादक एवं अध्यवसायी विद्वान् आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र¹ ने काशी नागरीप्रचारिणी सभा की 'खोज' के आधार पर जो विवरण दिया है, उसके अनुसार पद्माकर ने अकारादि-वर्णक्रम से 'अनूपगिरि हिम्मतबहादुर की विरुदावली', ईश्वरपचीसी, गंगालहरी, जगद्दिनोद, जमुनालहरी, पद्माभरण, प्रबोधपंचाशिका,² राजनीति, रामरसायन, लिलहारी-लीला तथा विरुदावली की रचना की थी। जनश्रुति के अनुसार उन्होंने नोने अर्जुनसिंह की प्रशस्ति में 'अर्जुनरायसा' एवं 'अश्वमेध-भाषा' शीर्षक ग्रन्थ भी रचे थे किन्तु ये अप्राप्त हैं। आलीजाह-प्रकाश ग्रन्थ जगद्दिनोद का ही दूसरा नाम है। राम-रसायन की कविता इतनी साधारण है कि मिश्रबन्धु के आधार पर आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में लिखा है, "सम्भव है वह इनका न हो।" आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'पद्माभरण' की प्रस्तावना में लिखा है, "लिलहारी-लीला इनकी रचना ही नहीं जान पड़ती।" शेष कृतियों के सन्दर्भ में, लाला भगवानदीन 'दीन' (हिम्मतबहादुर-विरुदावली), डॉ. टीकमसिंह तोमर ("विरुदावली: वस्तुतः प्रतापसिंह-विरुदावली), आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र (पद्माभरण) इत्यादि ने प्रशस्य कार्य किए हैं। जगद्दिनोद एवं गंगालहरी तो पद्माकर के लोकप्रिय एवं श्रेष्ठतम काव्य रहे ही हैं।

उत्कृष्ट शृंगारकाव्य

महाकवि पद्माकर शृंगार रस के सिद्ध कवि हैं। प्रेम के इन्द्रजाल, प्रेम की विह्वलता प्रेम की तन्मयता, मिलन की द्विधा, विरह में अनन्यता इत्यादि के वर्णनों में उन्हें श्रेष्ठतर महाकवि-द्वय केशव एवं बिहारी से भी अधिक सफलता प्राप्त हुई है। इन दिशाओं में श्रेष्ठतर महाकवि देव ही उनकी समता कर पाते हैं। होली का राग-रंग जैसा पद्माकर ने चित्रित किया, वैसा किसी कवि ने नहीं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. पद्माभरण, प्रस्तावना, पृष्ठ 11-12।

2. प्रबोध-पंचासा।

1. औरे भाँति कुंजन में गुंजरत भीर भीर, डौर डौर झौरन के बौरन के हवै गए।
कहै पदमाकर सु औरे भाँति गलियान, छलिया छबीले छैल औरे छवि छवै गए।।
औरे भाँति बिहग समाज में अवाज होति, अबै ऋतुराज के न आज दिन द्वै गए।
और रस, औरे रति, औरे राग, औरे रंग, औरे तन, औरे मन, औरे बन हवै गए।।¹
2. आई रंग आलिन के ननद पठाई नीठि, सोहत सोहाई सीस ईइरी सुपट की।
कहै पदमाकर गँभीर जमुना के तीर। लागी घट भरन नवेली नेह अटकी।।
ताही समय मोहन जो बाँसुरी बजाई, तामें। मधुर मलार गाई ओर वंसीवट की।
तान लागे लटकी, रही न सुधि घूँघट की। घर की, न वाट की, न घट की।।²
2. वा अनुराग की फाग लखौं जहँ रागति राम किसोर-किसोरी।
त्यौं पदमाकर घाती घली फिरि लाल-ही-लाल गुलाल की झोरी।।
जैसी-की-तैसी रही पिचकी³ कर काहू न केसरि रंग से बोरी।
गोरिन के रँग भीजिगो साँवरो, साँवरे के रंग भीजिगै गोरी।।
4. फाग की भीर अभीरन⁴ में गहि गोबिन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पदमाकर ऊपर नाइ अबीर की झोरी।।
छीनि पितम्बर कम्पर तें सु विदा दर्द मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसकाय, “लला! पुनि आइयो खेलन होरी।।”
5. एकै सँग धाए नँदलाल औ गुलाल दोऊ, दुगनि गए जु भरि आनँद मढ़ै नहीं।
धोइ-धोइ हारी पदमाकर तिहारी सौंह, अब तौ उपाय एकौ चित पै चढ़ै नहीं।।
कैसी करौं? कहाँ जाऊँ? कासो कहौं? कौन सुनै? कोऊ तौ निकासौ दरद बढ़ै नहीं।
ऐरी मेरी वीर! जैसे-तैसे इन आँखिन तें कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं।।
6. खेद को भेद न कोऊ कहै, व्रत आँखिन हूँ अँसुवान को धारो।
त्यौं पदमाकर देखती हो तनकौ तन कंप न जात सँभारो।।
है धौ कहा को कहा गयो यों दिन द्वैक ही में कछु ख्याल हमारो।
कानन में वसी बाँसुरी की धुनि, प्रानन में बस्यो बाँसुरी वारो।।
7. आरस सोउ आरत, सँभारत न सीस-पट, गजव गुजारति गरीवन की धार पर।
कहै पदमाकर सुरा सों सरसार, तैसे विधुरि बिराजै वार हीरन के हार पर।।
छाजत छबीले छिति छहरि छरा के छोर, भोर उठि आई केलिमंदिर के द्वार पर।
एक पग भीतर औ एक डेहरी पर धरे⁵, एक कर कंज, एक कर है किंवार पर।।

अलंकृत प्रकृति-चित्रण

अलंकृत प्रकृति-चित्रण शास्त्रीयकालीन कविता की “न भूतो न भविष्यति” कहने को विवश करने वाली विशिष्टता है, जिसका समुद्रघाटन भी कालोद्घाटनकर्ता केशवदास ने किया था। आलम्बनात्मक हो या उद्दीपनात्मक, रहस्यात्मक हो या उपदेशात्मक, अलंकृत हो या वैज्ञानिक, प्रकृति-चित्रण का प्रत्येक रूप रम्य होता है क्योंकि प्रकृति आलम्बन भी बन सकती है, उद्दीपन से ऊभचूभ है, रहस्यमयी है, उपदेश-सम्पन्न है, अलंकृत है, विज्ञानमिलय है। स्थूलद्रष्टा या अहंवादी व्यक्ति एक या कुछ वर्णनों की प्रशस्ति कर सकता है, अन्य

1. द्विजदेव के ‘औरे भाँति काँकिल चकोर ठौर-ठौर बोलै’ छन्द पर भारी प्रभाव।
2. छन्द रहस्यवादी वैभव से भी निष्पन्न है।
3. पिचकारी।
4. आभीर (अहीर, ग्वाल), अ. भीर = श्लेष, यमक।
5. मार्गाचलव्यतिकराकुलितेय सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ। (कुमारसम्भवम्)

की निन्दा। किन्तु सहृदय द्रष्टा नव्यता का सम्मान ही कर सकता है। संस्कृत में भारवि, माघ, श्रीहर्ष प्रभृति महाकवियों ने मनोहारी अलंकृत प्रकृति-चित्रण भी किए हैं, किन्तु शास्त्रीयकाल की हिन्दी-कविता ऐसे वर्णनों की दृष्टि से सर्वथा विशिष्ट बन पड़ी है। पद्माकर के अलंकृत प्रकृतिचित्रण अतीव आकर्षक हैं। उनमें जो सरसता है वह केशवदास के वर्णनों में नहीं मिलती। (यद्यपि केशवदास के वर्णन अत्यधिक अलंकृत हैं) :

1. कूलन में केलि में, कछारन में, कुंजन में, क्यारिन में, कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै पद्माकर परागन में, पौन हूँ में, पानन में, पिक में, पलासन पगंत है।।
द्वार में, दिसान में, दुनी में, देस-देसन में, देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है।
वीथिन में, व्रज में, नवेलिन में, वेलिन में, वनन में, वागन में बगरो वसंत है।
2. साँझ के सलोने घन सवुज सुरंगन सों, कैसे कै अनंग अंग-अंगनि सताउतौ।
कहै पद्माकर झकोर-झिल्ली सोरन को, मोरन को महत न कोऊ मन ल्याउतौ।।
काहू बिरही की कही मानि लेतौ जो पै दर्ई, जग में दर्ई तौ दयासागर कहाउतौ।
पावस बनायो तौ न बिरह बनाउतौ। जो बिरह बनायो तौ न पावस बनाउतौ।।

प्रभावी भक्तिकाव्य

भक्तिकाव्य-रचना की दृष्टि से महाकवि पद्माकर केशव, विहारी, मतिराम, सुखदेव इत्यादि से अधिक सरस हैं तथा घनआनंद से अधिक कलात्मक। केवल सेनापति एवं देव भक्ति-विभूति में गहनता की दृष्टि से श्रेष्ठतर हैं। विशद पौराणिक भक्ति की सर्वदेवसमन्विनी विभूति से विद्यापति, तुलसी इत्यादि के सदृश ही पद्माकर भी सम्पन्न हैं, किन्तु राम एवं गंगा उनके प्रमुख आलम्बन हैं। शास्त्रीयकालीन कविता के राम-काव्य में केशव एवं सेनापति के अनन्तर पद्माकर का स्थान अन्यतम है। जहाँ तक गंगाकाव्य का सम्बन्ध है, पद्माकर की समता कोई कवि नहीं कर सकता। “काहू ने न तारे तिन्हें गंग तुम तारे मातु जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं।” आज भी लक्ष-लक्ष भारतीयों को याद है। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. या जग जानकीजीवन को जस क्यों इक आनन गाइ अघैयै।
त्यों पद्माकर मारग हैं बहुत द्वै पद पाइ कितै-कित जैये।।
नाम अनंत अनंत कहे ते कहे न परैं करि काहि जतैये।
राम की रूरी कथा सुनिबे की करोरन कान कहो कहाँ पैये।।
2. जैसें तैं न मासों कहूँ नेक हूँ डरात हुतो। तैसें अब तोसों हौं हूँ नेक हूँ न डरिहीं।।
कहै पद्माकर प्रचंड जो परैगौ तौ उमँडि कर तोसो भुजदंड ठोंकि लरिहीं।।
चलो चलो, चलो चलो, बिचलु न बीच ही तैं कीच बीच नीच तो। कुटुम्ब को कचरिहीं।
ऐरे दगादार मेरे पातक अपार तोहिं गंगा के कछार में पछारि छारि करिहीं।
3. बिधि के कमण्डल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही, हरिपदपंकज-प्रताप की लहर है।
कहै पद्माकर गिरीस-सीस-मंडल के, मुण्डन की माल ततकाल अघहर है।।
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुण्य-पथ, जहनु-जप-जोग-फल-फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा! रावरी लहर कलि काल की कहर, जम-जाल को जहर है।।

भट्टात्मक-भटकाव्य²

पद्माकर का वीरकाव्य वस्तुतः एवं तत्त्वतः भट्टात्मक-भटकाव्य है। मैं इसे भटकाव्य तो नहीं कह सकता। मतिराम, सुखदेव इत्यादि का वीरकाव्य भी ऐसा ही है। केशवदास के नायक रतनसेन, वीरसिंहदेव बुंदेला इत्यादि व्यापक अर्थों में भी वीर तो थे ही। फिर भी, वास्तविक वीरकाव्य के प्रणेता भूषण, लाल, गोविन्दसिंह, जोधराज, सूदन, चंद्रशेखर इत्यादि ही हैं क्योंकि इनके नायक क्रमशः शिवाजी

1. तब, तेरे।

2. भट्ट + आत्मक। भट = वीर, योद्धा।

(शिवराज-भूषण), छत्रसाल (छत्रप्रकाश), राम एवं चंडिका (रामावतार एवं चण्डीचरित्र), हम्मीर (हम्मीररासो), सूरजमल (या सुजानसिंह : सुजानचरित्र), हम्मीर (हम्मीर-हठ) इत्यादि वास्तविक वीर थे और वास्तविक वीर वह होता है जो किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के हेतु अस्त्र उठाए, न कि अहं की विकृति या क्षुद्र स्वार्थ से प्रेरित होकर आपस में ही हिंसा करता फिरे और मारे या मर मिटे। वैसे, कला की दृष्टि से पद्माकर का वीरकाव्य भूषण से प्रभावित होने पर भी प्रभावी अवश्य है :

1. तीखे तेगवाही जे सिपाही चढ़ै घोड़न पै, स्याही चढ़ै अमित अरिंदन की ऐल पै।
कहै पदमाकर निसान चढ़ै हाथिन पै, धूरि धार चढ़ै पाकसान के सैल पै॥
साजि चतुरंग चमू जंग जीतिबे के हेतु हिम्मत बहादुर चढ़त फर फैल पै।
लाली चढ़ै मुख पै, बहाली चढ़ै बाहन पै, काली चढ़ै सिंह पै, कपाली चढ़ै बैल पै॥
2. दाहन तैं दूनी, तेज तिगुनी तिसूलन तैं, चिरिन तैं चौगुनी, चलाँक चक्र चाली तैं।
कहै पदमाकर महीप रघुनाथराव', ऐसी समसेर सेर सत्रुन पै घाली तैं॥
पंचगुनी पब्ब तैं, पचीसगुनी पावक तैं, प्रगट पचासगुनी प्रलय-प्रनाली तैं।
सतगुनी सेष तैं, सहस्रगुनी सापन तैं, लाखगुनी लूक तैं, करोरगुनी काली तैं॥
3. तुपक, तमंचे, तीर, तोरा, तरवारिन तैं काटि-काटि सेना करी सोचित सितारे की।
कहै पदमाकर महावत ते गिरे कूदि किलकि किलाएँ आयो गज मतवारे की॥
हेरन हँसन हरषन सन धन वह, जूझन पवार वीर अरजुन' भारे की।
जंग में न थाका, कर्यो सूरन में साका जिहि ताका ब्रह्मलोक कों पताका लै पवार की॥

अपने सारे आश्रयदाताओं से पद्माकर ने नोने अर्जुनसिंह पर सर्वाधिक सफल वीर-छन्द रचे हैं। वैसे, उन्होंने हिम्मतबहादुर पर पूरी विरुदावली ही रच डाली है। किन्तु जैसे सशक्त छन्द नोने अर्जुनसिंह पर रचे हैं वैसे उन पर भी नहीं। नोने अर्जुनसिंह वीर-योद्धा थे भी। केशवदास द्वारा बीरबल के निधन पर रचित कविता श्रेष्ठतर है जिसका कारण कवि एवं नायक दोनों का श्रेष्ठता होता है किन्तु पद्माकर स्मरण करा ही देते हैं। संयोगात् उनके निधन के कारण हिम्मतबहादुर थे। इससे सिद्ध होता है कि पद्माकर बड़ी तटस्थता से दो परस्पर शत्रु व्यक्तियों पर काव्यरचना कर लेते थे। राजाश्रयकाल में ऐसा सम्भव है। अमीर खुसरो इस प्रवृत्ति के एक विलक्षण निदर्शन हैं किन्तु इससे वित्तवाद सिद्ध होता है, वीरवाद नहीं।

पद्माकर को विभिन्न आश्रयदाताओं से लाखों की राशि प्राप्त हुई थी किन्तु इस दिशा में सागर-नरेश रघुनाथराव अप्पा साहव अग्रणी सिद्ध होते हैं जिन्होंने अपनी दान-प्रशस्ति के एक छन्द पर एक लाख मुद्राएँ प्रदान की थीं, जिसके कारण आज भी पद्माकर के वंशजों में इसे 'लाखिया' कहते हैं—छन्द बहुत सुन्दर हैं :

सम्पति सुमेर औ कुबेर हू की पावै, ताहि तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै पदमाकर सु हेममय हाथिन के हलके हजारन के बितरि बिचारै ना॥
गंज-गज-वकस महीप रघुनाथराव याहि गज धोखे कहूँ काहू दै डारै ना।
ताही डर गिरिजा गजानन को गोय रही, गिरि तैं, गरे तैं, निज गोद तैं उतारै ना॥

जवाहिर³

जवाहिरलाल मिश्र (1754-1839 ई., असनी, जनपद फतेहपुर, निवास ससुराल सनेथू, जनपद रायबरेली) के सारे ग्रन्थ अग्निकांड में जल गए थे किन्तु कुछ स्फुट छन्द प्राप्त हो सके हैं। यह काव्यशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। सातनपुर¹ (रायबरेली) के प्रसिद्ध कवि

1. सागर-नरेश। सतार-नरेश रघुनाथराव (राघोवा) पर भी पद्माकर ने लिखा है।
2. नोने अर्जुनसिंह। निधन पर रचित छन्द।
3. जनता के एक बड़े वर्ग में 'जवाहर' की जगह 'जवाहिर' भी चलता है। जवाहिर बंदीजन (रचनाकाल 1788 ई. के इधर-उधर, विलग्राम, जनपद हरदोई) ने 'जवाहिर-रत्नाकर' इत्यादि ग्रन्थ लिखे हैं। भारतरत्न गोविन्द वल्लभ पंत नेहरू को 'जवाहिरलाल' की कहते थे। जवाहिरलाल जैन के दोनों उच्चारण प्राप्त हो जाते हैं। अब जवाहिरलाल ज्यादा चलता है। जवाहिरलाल चतुर्वेदी के साथ भी ऐसा ही है।
4. बंस राजपूतों के बंसवाड़ा या बंसवारा में सातन नामक राजा के नाम पर सातनपुर तो है ही, सातन (उन्नाव) भी है।

अयोध्याप्रसाद वाजपेयी 'औध' अपने रचनात्मक जीवन के आरम्भ में इनके शिष्य थे। इनकी कविता बहुत साफ़-सुथरी ब्रजभाषा में रचित है तथा सरस भी है :

साँझ भई तव चेती न तू अधिरातिहूँ लौं नहिं सुद्धि लई।
अब पाछे परी पछिरातिहूँ लौं तम चूरन की भई बानि नई।।
समुझै कहा होत जवाहिरजू करि चूक सबै फिरि याद भई।
अब दीपक बारि कहा करिए सजनी रजनी सब बीति गई।।

जानकीराम

'बारहमासा-वर्णन' के अतिरिक्त अनेक स्फुट छन्दों के रचयिता जानकीराम त्रिपाठी (रचनाकाल 1800 ई. के इधर-उधर, कुदौली¹, जनपद कानपुर) ने सुंदर ब्रजभाषा में ललित प्रकृतिचित्रण किया है। इनके एक वंशज लक्ष्मीकांत त्रिपाठी (कानपुर) इतिहास एवं साहित्य के अच्छे विद्वान् थे जिन्होंने कांग्रेसी नेता एवं लेखक नरेशचंद्र चतुर्वेदी (पूर्व सांसद) के सहयोग से 'कानपुर का इतिहास' लिखा। दो छन्द देखें :

1. जोर झकोर सों वायु बहै लगे लोग निवास बनावन छावन।
कोकिल के कुल चातक चोप कै मोर हु सोर लगे सरसावन।।
प्यौ परदेस सँदेस बिना गए गाढ़ असाढ़ के घौस भयावन।
धूँधरे धूँधरे धूमरे धीर धुकारत ये धुरवा लगे धारन।।
2. स्याम घटा घनघोर उमंडित मंडित हवै नभमंडल छायो।
धार अखंडित कै बरसैं तरपैं धर पै तम तोम सुहायो।।
झिल्लिम मोरन दादुर धोर न ठौरन ठौरन सोर मचायो।
जानकीदाम बिदेस ठट्टू भट्टू भादवैं मैं नहिं भावतो आयो।।

'रंगखान'

लालजी 'रंगखान' जयपुर-नरेश सवाई महेन्द्रप्रताप सिंह (शासनकाल 1803 ई. तक) के आश्रय में रहे तथा इनका कविताकाल 1817 ई. तक प्रसरित रहा। इन्होंने पारंपरिक ब्रजभाषा में अच्छी शास्त्रीय कविता रची है :

1. छाया छित राखी जित तित कौं कदंबन कै, कलित कलिंदी कूल फल फूल आम है।
पुंज गुंज झौर भौर सौरभ समीर सीरी, 'रंगखान' रूप की सरूप रूप याम है।।
तरुन तपत तन तेरो सुकुमार अति, घरी एक विरमि कै निवारिए जू धाम है।
लसत ललाम छाम परम अराम कै, यो विधना अराम रच्यौ मानौं काम घाम है।²
2. सावन के आवन बसावन बिरह ब्याधि, अति ही रिसावन हवै पंचबान बिरचैं।
भेज्यो ना सँदेस इत उत को अँदेस यह, कहावै हमेस परदेस सबसे चिरचैं।।
'रंगखान' कुंजन में केकी कूक हूक लूक, कोयल कुहूक करै करेजे किरचैं।
दादुर दररन दबावै देह दामिनि, पपीहा पी पुकारे जी जारे लोन-मिरचैं।।

2. वीरकाव्य : हिन्दू-वीरत्व और मुगल-वंश का पतन

मोहम्मदीयत की रीढ़ तलवार रही है। यह 'कुरान' से भी बारंबार स्पष्ट हो जाता है। यह मजहब तर्करहित है। स्वयं मोहम्मद के सत्तर युद्धों से भारत-विभाजन तथा लेबनान तक के वृत्तों से यह तथ्य स्पष्ट है। मोहम्मदीयत 'हराम' और 'हलाल' में, मुसलमान

1. झंडागान (विजयी विश्व तिरंगा प्यारा) के कवि श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' के प्रसिद्ध ग्राम नरवल के पास।

2. आराम = उद्यान, विश्राम। यमक। "परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत।" (तुलसीदास)

की श्रेष्ठता और गैर-मुसलमान की नेष्ठता में समझौता नहीं कर सकती। दारुल-इस्लाम और दारुल-हरव का सिद्धान्त मोमिन और काफिर की घृणा पर ही आधारित है; यह भारत से साइप्रस तक, फिलिपीन्स से ग्रीस (यूनान) तक, इस्राइल से चेचन्या तक, बांग्लादेश से बोस्निया तक आज भी दृग्गत है। पाकिस्तान एवं बांग्लादेश में हिन्दुओं एवं बौद्धों का संहार एवं दुर्व्यवहार, अफगानिस्तान के बर्बर 'तालिबान' के शासक में बामियान की विश्वविख्यात बुद्ध-मूर्ति का ध्वंस, लेबनान में ईसाइयों की संहार-चेष्टा इत्यादि इसी के ही अंग हैं, जिनको विभाजित भारत की मुस्लिमबहुल कश्मीर-घाटी में भी देखा जा सकता है जहाँ पहले हिन्दुओं की जनसंख्या लगातार गिरी तथा जो बचे वे भी खदेड़ दिए गए। पुनरुत्थानकाल में जो सुखद परिवर्तन हुए थे उनका एक बड़ा, वस्तुतः सबसे बड़ा, कारण हिन्दुओं की अजेयता थी। मुसलमान जान गया था कि हिन्दू को मिटाया नहीं जा सकता क्योंकि वह धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, सबमें श्रेष्ठतर है। अपनी श्रेष्ठता कौन छोड़ता है? यदि सभ्यता में भी कोई श्रेष्ठतर मिले तो प्रभाव पड़ सकता है जैसाकि इधर की शताब्दियों में सारे संसार पर पश्चिम का पड़ रहा है अन्यथा श्रेष्ठता त्याज्य कैसे हो सकती है? जितना अंतर शस्य-श्यामल भारत और टाट-सपाट अरब में है उतना ही हिन्दूधर्म और मोहम्मद-मजहब में। धर्म धारणीय गुणों की संहिता है, मजहब एक अटल प्रतीति। हिन्दू प्रकृत्या धर्मान्ध नहीं हो सकता क्योंकि उसका धर्म विकसनशील एवं उदार है। मोहम्मदीयत में "ला इल्लाह अल्लाह मोहम्मदुर्रसूल अल्लाह" की सीमा से बाहर जाना कुफ्र है। शिया-सुन्नी, शिया-बहाई, सुन्नी-अहमदिया इत्यादि आपस में ही रक्तपात करते रहते हैं—'तब 'काफिर' कैसे सह्य हो सकता है? अतः भारत में हिन्दू को लगातार लड़ना पड़ा और मुसलमान कभी सारा देश नहीं जीत सका। वह लड़ते-लड़ते थक गया। हिन्दू तो थका था ही। अतः सहअस्तित्व का पथ प्रशस्त हुआ, पुनरुत्थानकाल का आगमन हुआ। यह हिन्दुओं की तात्त्विक विजय थी, यह मुसलमानों के लिए वास्तविक उपयोगिता थी। जो भोले-भाले मुसलमान यह कहते हैं कि यदि मुसलमान उदार न होते तो भारत में हिन्दू बचते कैसे, वे भारत के इतिहास का क-ख-ग भी नहीं जानते और उनसे यूनान, स्पेन, यूगोस्लाविया, बुल्गारिया इत्यादि के इतिहासों की चर्चा करना तो अत्याचार करना मात्र होगा।

मोहम्मद ने कुरान में 'ल-कुन् दीनु-कुम व लिया दीन' (तुमको तुम्हारा दीन, मुझको मेरा दीन) तथा "ला इक्राहा फ़ि द्-दीन" (दीन में बल प्रयोग नहीं)² जैसे उद्गार भी व्यक्त किए हैं। मोहम्मदीयत में सह-अस्तित्व के लिए भी स्थान अवश्य प्राप्त है। भारत में लगातार लड़ते-लड़ते मुसलमानों को उदार बनना भी पड़ा। हिन्दू उदार था ही। मुसलमानों की उदारता ने भी हिन्दुओं की उदारता का शोषण किया। अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) जैसे उदार मुसलमान तक ने अपनी 'देवलरानी-खिज़्रखान' ('दिवलरानी-खिज़्रख़ाँ' या 'दुवलरानी-खिज़्रख़ाँ') शीर्षक फ़ारसी-मसनवी में 'हिन्दूकन्या-मुस्लिमवर' मात्र के सन्दर्भ में भी मुस्लिम के हिन्दू पर वर्चस्व का प्रतिपादन किया है। अकबर महान् (राज्यकाल 1556-1605 ई.) तक हिन्दूकन्या-मुस्लिमवर की संकीर्णता का वंदी था तथा मुस्लिमकन्या-हिन्दूवर की कल्पना भी न कर सकता था। उसके बेटे जहाँगीर (राज्यकाल 1605-1627 ई.) ने भिंवर (कश्मीर) में सद्यःधर्मान्तरित मुसलमानों के एक वर्ग में समतामूलक पारस्परिक विवाह-पद्धति पर रोक लगा दी थी अर्थात् केवल हिन्दूकन्या-मुस्लिमवर का आदेश दिया था, जैसाकि तुजुके-जहाँगीरी (जहाँगीरनामा) से स्पष्ट है। जहाँगीर ने अकबर की बलात् धर्मान्तरित या जज़िया के कारण धर्मान्तरित मुसलमानों के पुनः हिन्दू बन सकने की नीति पर रोक लगा दी तथा शाहजहाँ (राज्यकाल 1627-1658 ई.) ने इसे दंडनीय अपराध बना दिया। जहाँगीर ने पुष्कर की वरह-मूर्ति को सरोवर में फिंकवाया, पवित्र सरोवर में मछलियों का शिकार किया, हिन्दू-मन्दिरों की निन्दा की। शाहजहाँ ने अनेक हिन्दू-मन्दिर गिरवाए। औरंगज़ेब (राज्यकाल 1658-1707 ई.) ने असंख्य देवालय ध्वस्त कराए, प्रायः समस्त मूर्तियाँ खण्डित कराई, हज़ारों हिन्दुओं का कत्ल कराया, लाखों हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया। ऐसे बादशाह की परम साम्प्रदायिक इक्रवाल ने, अकबर और दारा की विगर्हणा करते हुए, "कुफ्र और मोहम्मदीयत के संग्राम में मोहम्मदीयत के तरकस का आखिरी तीर" कहकर तारीफ़ की है। नेहरू औरंगज़ेब के मुरीद थे जिसका प्रमाण नई दिल्ली की चमाचम गद्दीधर-वस्ती और लयालक राजपथ औरंगज़ेब रोड़ है।

जब हिन्दुओं को लगा कि औरंगज़ेब हिन्दूधर्म पर आघात करने में महमूद गज़नवी, तैमूर लंग जैसे बर्बर विदेशियों तथा फ़ीरोज़ तुग़लक़, सिकन्दर लोदी जैसे भारतवासी विदेशी म्लेच्छों के भी कान काटने पर तुला है तब वे पूरी शक्ति से उठ खड़े हुए। धीरोदत्त नायक शिवाजी (जिन्हें भारतरत्न डॉ. भगवान्दास ने "राम जी के स्थानीय शिवाजी का अवतार"³ का गौरव प्रदान किया है।) मुग़ल-वंश के पतन के प्रधान कारण सिद्ध हुए। शिवाजी उस मराठा-शक्ति के संस्थापक थे जिसके उच्छेद के लिए वलीउल्लाह ने विदेशी आक्रांता

1. महान् अरब विद्वान् एवं कुरान-व्याख्याकार इब्न कतीर ने इस उद्गार को कुफ्र के खिलाफ़ मायूसी का उद्गार माना है।

2. शाह वली अल्लाह एवं वलीउल्लाह ने 'इसाइयाह-ए-कुरान' में इसकी साम्प्रदायिक व्याख्या की है।

3. गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना, द्वितीय भाग, भूमिका।

अहमदशाह अब्दाली को आमंत्रित किया था। वलीउल्लाह की इसलिए इज़्ज़त है कि इसने मुसलमानों को आक्रमण के लिए बुलाया था और मीर जाफ़र की इसलिए निन्दा कि उसने अंग्रेज़ों को सहयोग दिया। साइप्रास के मुसलमानों ने तुर्की तथा लेबनान के मुसलमानों ने सीरिया की सेनाएँ बुलाकर मिलित की खिदमत की। चंपतराय एवं उनके महान् पुत्र छत्रसाल, सिखों के दसवें और अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह, जाट योद्धा सूरजमल (सुजानसिंह) इत्यादि ने बरबर मुगल-साम्राज्य को जर्जर कर दिया। यदि अंग्रेज़ न आते तो भारत पर मराठों का वर्चस्व होता। महादजी सिंधिया, हिन्दूराव इत्यादि दिल्ली के वास्तविक शासक बन भी चुके थे। सिखों ने ग्यारह दिनों तक लाल किले पर कब्ज़ा करके उसे बादशाह के हवाले कर दिया था क्योंकि उस बेचारे ने उसकी सारी माँगें मान ली थीं, जिनमें अनेक गुरुद्वारे सौंपना और बनाना शामिल था। सूरजमल दिल्ली पर कब्ज़ा करते-करते हिंडन के युद्ध में मारे गए। सतनामियों, राजपूतों इत्यादि ने भी विद्रोह किए। दिल्ली को ढीली देखकर नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे आक्रांता राजधानी और देश को लूट-पर-लूट से जर्जर करने लगे। मुगल वंश का पतन अवश्यम्भावी था। हिन्दुत्व के उत्कर्ष एवं मुगलों के पतन के सुस्पष्ट वर्णन देखिए :

1. ब्रह्म के आनन ते निकसे ते अत्यंत पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम जुधाष्ठिर के वरने बलमीकिहु व्यास के अंग सुहानी॥
भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन पाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजा जस न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥
2. राखी हिंदुवानी, हिंदुवान कौ तिलक राख्यौ, स्मृति औ पुरान राखे, वेद-विधि सुनी मैं।
राखी राजपूती, राजधानी राखी राजन की, धरा मैं धरम राख्यौ, राख्यौं गुन गुनी मैं॥
भूषन सुकवि जीति हृद्द मरहट्ठन की, देस-देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज! समसेर तेरी दिल्ली-दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं॥
3.भूषन भन्त राय चंपति कौ छत्रसाल
रोष्यौ रन ख्याल हैकै ढाल हिंदुवाने की।.... (भूषण)
4. दौरि देस मुगलनि के मारौ। दपटि दिली के दल संघारौ॥
ऐंड एक सिवराज निवाही। करै आपने चित की चाही॥
आठ पातसाही झकझीरे। सूबनि पकरि दंड लै छोरै॥
5. हिंदुवान सुरगज उर आनौ। ताके चारौ दंत बखानौ॥
जब तैं चंपति कर्यौ पयानो। तब तैं पर्यौ हीन हिन्दुवानो॥
लप्यौं होन तुरकन कौ जोरा। को राखै हिंदुन कौ तोरा॥
चंपतिराय तेग कर लीनी। ओप बुंदेलखंड कौ दीनी।
भुजन पातसाही झकझोरी। गई भूमि जुरि जुद्ध बहोरी॥
पंचम¹ उदयाजीत² के कुल कौ यहै सुभाउ।
दलै दौरि दिल्लीस दल ज्यों दुरदनि बनराउ॥
6. कह्यौ धन्य छिति छत्र छतारे। तुम कुल-चंद हिंदुगन तारे॥
चौकि-चौकि सब दिसि उठै सूबा खान खुमान।
अव धौं आवे कौन पर छत्रसाल बलवान॥
रूमी भगे साहि त्यों जाने। कारी परी कुल्लि तुरकाने॥
ज्ञान गनंता पौरुख हारै। सो जीतै जो पहिले मारै॥
गाय, वेद, बिप्रन प्रतिपालै। घाउ ऐंडधारिन पर घालै॥

1. महाराज पंचमसिंह।

2. उदयादित्य।

उद्यम ते संपति घर आवै। उद्यम करै सपूत कहावै॥
 उद्यम करै संग सब लागै। उद्यत ते जग मैं जसु जागै॥
 समुद्र उतरि उद्यम ते जैये। उद्यम ते परमेशुर पैये।
 जब यह सृष्टि प्रथम उपजाई। तेग-वृत्ति छत्रिन तब पाई॥
 यह संसार कठिन रे भाई! सबल उमड़ि निरबल कौ खाई॥ (लाल कवि)

7. सकल जगत महँ खालसा पंथ गाजै।
 जगै धर्म-हिन्दू सकल भंड भाजै॥ (गुरु गोविन्दसिंह)

8. सेलनु धकेला ते पठान मुख मैला¹ होत,
 केते भट मेला हैं भजाए भुव भंग मैं।
 तंग के कसे ते तुरकानी सब तंग कीनी
 दंग कीनी दिली औ दुहाई देत बंग मैं॥
 सूदन सराहत सुजान² किरवान गहि
 धायो धीर धारि वीरताई की उमंग मैं।
 दक्खिनी पछेला करि खेला तैं अजब खेल,
 हेला मारि गंग मैं, रुहेला मारे जंग मैं॥

9. महल सराय से रवाने बुआ बूबू करो,
 मुझे अफ़सोस बड़ा बड़ी वीबी जानी का।
 आलम में मालुम चकत्ता का ज़माना यारो,
 जिसका हवाल है, तनैया जैसे तानी का॥
 खने खाने बीच में अमाने लोग जाने लगे,
 आफ़त ही जानो हुआ औज देहकानी का।
 रब की रज़ा है, हमे सहना बज़ा है,
 वक्त हिन्दू का गज़ा है, आया छोर तुरकानी का॥ (सूदन)

10. नीत पातसाहेऊ क्यौ सूबनि मनसूब चूक्यौ, बहुत दिन निज़ाम³ कूक्यौ काबिल दरेरो कियै।
 बेस्या मदपान करि छकि गए अमीर जेते, रजतम की धार काढ़ी बूढ़े को बिलोकियै॥
 दिल्ली भई बिल्ली कटैला कुत्ता देखि डरी, भूल्यौ मुहम्मदसाह पहिले अब काह ढोकियै।
 बाबर-हिमायूँ को चलाऊ अब बंस भयौ, ताको यह फैल्यौ सोक परजा करम ठोकियै।⁴

(चाचा हित-वृन्दावनदास)

मुग़ल-वंश का पतन हिन्दू-जागृति एवं हिन्दू-पौरुष के कारण हुआ, यह भूषण, लालकवि, गुरु गोविन्दसिंह, सूदन इत्यादि की वीर-वाणी से स्पष्ट है। चाचा हित-वृन्दावनदास ने पतन का कारण मोहम्मदशाह रंगीले की विलासिता को माना है किन्तु विलासी तो जहाँगीर भी था? रंगीला जानता था कि दरबारी षड्यन्त्रों एवं हिन्दुओं की बढ़ती शक्ति के बीच पिसना व्यर्थ है—जो होता है वह होता रहे; मैं मौज-मस्ती से क्यों चूकूँ! उसकी माँ ने उसे यही समझाया था। अतः चाचा हित-वृन्दावनदास द्वारा प्रतिपादित कारण भी मूलतः वही है। उर्दू-शायरी मुग़ल-वंश के पतन-काल की उद्भूति है : उसी निष्क्रियता, मदिरा-मोह, विलासिता इत्यादि में आकण्ठ निमग्न!

1. श्लेष से बीमत्स का संकेत।

2. सुजानसिंह, सूरजमल।

3. आसफ़ज़ाह निज़ामुल्मुल्क जिसने वज़ारात के बाद दक्षिण में निज़ामशाही स्थापित की। दिल्ली में जामा मस्जिद के पास 'कटरा निज़ामुल्मुल्क' वस्ती इसी की स्मारिका है। हैदराबाद निज़ाम इसी के वंशज थे। दुर्बल एवं विलासी मोहम्मदशाह रंगीला तथा दरबारी इसका मजाक उड़ाते थे। नादिरशाह को दिल्ली बुलानेवाला देशद्रोही सफ़्दरजंग इसी का प्रतिद्वन्दी था। यह योग्य व्यक्ति था। श्लेष के शासन या राज्य भी।

4. अराजकता की स्थिति का वर्णन। 'कटैला' 'कुत्ता' नादिरशाह के लिए प्रयुक्त है।

हिन्दी-कविता सक्रियता, व्यसन-मुक्ति एवं शौर्य की कविता है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से खरी है। खेद है कि हिन्दी-साहित्य का कोई व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक, सर्वांगीण एवं सार्वभौम इतिहास न होने के कारण यह मिथ्या धारणा प्रचलित है कि शास्त्रीयकालीन कविता कोरी दरबारी कविता थी, विलासिता से ऊभ-चूभ थी, युग-पराङ्मुख थी। अध्ययन का अभाव भ्रम का जनक है।

शिवाजी, संभाजी, कलश कवि हों या छत्रसाल, गुरु गोविन्दसिंह, सूरजमल हों या भूषण, लालकवि, सूदन हों, सभी हिन्दू-जागृति के वीररस से सराबोर हैं। शिवाजी पर भूषण, चिरजीवी, लालकवि इत्यादि ने लिखा है। छत्रसाल पर भूषण, लाल कवि, हरिकेश कवि इत्यादि ने लिखा है। हिन्दुत्व की जागृति का ही परिणाम था कि छत्रसाल ने अपने एक पुत्र का नाम ही हिन्दूपति रखा था जो “यथा नाम तथा गुण” भी था और मराठों में हिन्दूराव¹ जैसे नामकरण होने लगे थे। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। इतिहासकारों ने साहित्यज्ञान के अभाव एवं पश्चिम-अनुवर्ती होने के कारण इस दिशा में ध्यान नहीं दिया। गुरु गोविन्दसिंह पर हंसराम, कुँवरे, मंगल कवि, अमृतराय इत्यादि ने लिखा है। सूरजमल पर सूदन ने लिखा है। इसी काल में या इसके आसपास जटमल, वनवारी, जोधराज, चंद्रशेखर वाजपेयी इत्यादि वीररस के अन्य श्रेष्ठ कवियों ने भी हिन्दुत्व की वीरत्व-ज्योति प्रचलित की क्योंकि गोरा या बादल हों या अमरसिंह राठौर या हम्पीर, सभी अजर-अमर हिन्दू-वीर हैं। गोरा-बादल के वीरत्व का वर्णन मुसलमान जायसी तथा हिन्दू से मुसलमान बने जटमल ने ही किया है : जादू वह जो सर पर चढ़ कर बोले।

शास्त्रीयकालीन वीरकाव्य हिन्दी-साहित्येतिहास में अतुलनीय है क्योंकि संक्रान्तिकाल में वीररस-काव्य गुण एवं परिमाण में इसकी समता नहीं कर सकता; पुनरुत्थान में वीररस-काव्य की विशिष्ट सृष्टि नहीं हुई, बौद्धिककाल में भी भूषण, लाल कवि, गुरु गोविन्दसिंह, सूदन इत्यादि के स्तर के अनेकानेक वीररस-कवि नहीं हुए। भूषण की समता का तो प्रश्न ही नहीं।

प्रमुख कवि

जटमल

‘गोरा बादल री कथा’ (1629 ई.) एक ऐसा खण्डकाव्य है जिसमें राजस्थानी के साथ खड़ीबोली का भी प्रयोग प्राप्त होता है। मिश्रबन्धु ने अपने अमर ‘विनोद’ में इसे सं. 1680 वि. (1623 ई.) में रचित ‘पद्मग्रंथ’ माना है किन्तु रचना में 1685 वि. लिखा है। टेसीटरी ने ‘फुटकल बातों रो संग्रह’ नामक ग्रन्थ के आधार पर इसे गलती से गद्यग्रन्थ माना। किन्तु ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में आचार्य शुक्ल ने मिश्रबन्धु को ही दुहराया है। उन्होंने सं. 1881 वि. (1824 ई.) में ‘किसी’ के द्वारा इसके खड़ीबोली-अनुवाद की चर्चा भी की है। इसकी जितनी स्वतन्त्रग्रन्थरूप प्रतियाँ मिली हैं वे काव्य में हैं। महामहोपाध्याय डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसे ठीक ही पद्यरचना बतलाया। पं. अयोध्याप्रसाद शर्मा ‘विशारद’ ने 150 छन्दों का यह काव्य सम्पादित कर हिन्दी की उल्लेख्य सेवा की है। दोहा एवं छन्दों में निबद्ध इस काव्य के पूर्वार्द्ध में नायिकाभेद, नायकभेद इत्यादि के साथ शृंगाररस का पारम्परिक वर्णन प्राप्त होता है तथा उत्तरार्द्ध में वीररस का जो प्रभावी भी है, उत्कृष्ट भी। इस महत्वपूर्ण खंडकाव्य के कवि, “धर्मसी को नंद नाहरखान जटमल” हैं जिन्होंने “संबत सोलह-पचासियौ” में रचना पूर्ण की थी। धर्मसिंह के पुत्र जटमल के साथ ‘नाहरखान’ की उपाधि का प्रयोग विचित्र है, किन्तु इसे ‘मियासिंह चौहान’ के वर्ग का भी माना जा सकता है क्योंकि उनके मुसलमान बनने की सूचना कहीं नहीं प्राप्त होती। संवत् 1685 विक्रमी की फाल्गुन पूर्णिमा (होली) के समय ईसवी वर्ष 1629 रहा होगा (माघ-फाल्गुन तक आते-आते 57 वर्ष घटाने का ‘नियम’ गलत पड़ जाता है, जैसा कि 1890 को जन्मे प्रसाद का जन्म 1889 ई. माननेवाले लिखते चले जाते हैं)² वैसे, यदि 1628 ई. में माना जाए तो भी यह समय जहाँगीर का न होकर शाहजहाँ का सिद्ध होता है, क्योंकि जहाँगीर 28 अक्टूबर 1627 ई. को मरा था, और सत्तासंघर्ष के बाद सफल शाहजहाँ 24 जनवरी, 1628 ई. को राजधानी में आया था³ अतः श्री अयोध्याप्रसाद शर्मा ‘विशारद’ का जहाँगीर लिखना गलत

1. दिल्ली को ‘वाड़ा हिन्दूराव’ इसी का स्मारक है। इस योद्धा का चित्र लाल किले के मुगलकाल-संबद्ध संग्रहालय में विद्यमान है (अन्य संग्रहालय नक्काशखाने की ऊपरली मंजिल पर हैं जिसमें मुगल एवं ब्रिटिश अस्त्र-शस्त्र रखे हैं।)
2. ‘कादम्बिनी’ (दिसम्बर 1986 अंक) ‘वर्ष 1889 ई. और हिन्दी-साहित्य’ लेख, डॉ. पवन कुमार।
3. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, डॉ. ईश्वरीप्रसाद, पृष्ठ 527 और 528।

है। वैसे, कई प्रतियों में 1680 विक्रमी लिखा मिलता है, जिसकी फाल्गुन पूर्णिमा के दिन 1624 ई. का वर्ष चल चुका था और यह समय जहाँगीर के राज्यकाल में आता है। मिश्रवन्धु ने इसे ही माना है।

“गोरा बादल री कथा” में जटमल ने जायसी के महाकाव्य पद्मावत की कथा का आधार ग्रहण किया है, यद्यपि सर्वत्र नहीं, क्योंकि जटमल ने रतनसेन की रानी का नाम प्रभावती लिखा है और जायसी ने नागमती, जटमल ने सिंहलद्वीप एवं पद्मावती का वर्णन एक भाट से कराया है, जायसी ने हीरामन तोते से। सिंहल पर धावा, राघवचेतन एवं अलाउद्दीन प्रकरण, चित्तौड़ पर चढ़ाई, गोरा-बादल-मंत्रणा, दोनों का चातुर्य, गोरा की वीरगति और बादल की सफलता का वृत्त पद्मावत जैसा ही है। इस काव्य में सुखान्त-दुखान्त का सुन्दर समन्वय हुआ है। जटमल ने भी कथा का आधार लिया है, जायसी ने भी, क्योंकि पद्मावती-प्रकरण कल्पित तो है ही-1303 ई. में अलाउद्दीन की चित्तौड़-विजय मात्र ऐतिहासिक घटना है, जिसकी पद्मावत में चर्चा है, पर ‘गोरा बादल री कथा’ में नहीं। ‘गोरा बादल री कथा’ एक स्वतन्त्र खण्डकाव्य है। वैसे, उसकी शैली पर पृथ्वीराजरासो और वस्तु पर पद्मावत तक का प्रभाव अवश्य पड़ा है। दूसरी ओर, जटमल का सूदन पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। रतनसेन का प्रौढ़ प्रेम पृथ्वीराज का स्मरण कराता है :

तजी रमणि सब ओर, राय पदमावति रातो।

रैण-दिवस रहि पास, अंग आणद मत मादो॥

ऐतिहासिक दृष्टि से ‘गोरा बादल री कथा’ में खड़ीबोली का प्रयोग निस्सन्देह उल्लेखनीय है। वस्तुतः जटमल ने कहीं-कहीं संस्कृत, कहीं-कहीं खड़ीबोली, तो अधिकांशतः राजस्थानी का प्रयोग करते हुए उदार भाषा-नीति अपनाई है। उदाहरण द्रष्टव्य है :

1. पद्मिनी पद्मगंधा च पुहुगंधा च चित्रिणी।
हस्तिनी मदगंधा च मत्स्यगंधा च शंखिनी॥
2. रे बालक बादल! तू ही है जीवन मेरा।
रे बालक बादल! मुझे आसरा है तेरा॥

साहित्यिक दृष्टि से ‘गोरा बादल री कथा’ में वीररस की पारम्परिक कविता के प्रभावी दर्शन होते हैं :

1. मेर² चलै, धू चलै, भांण जो पच्छिम ऊगै॥
साध-वचन जो चलै, पंग जो गिर लग पूगै॥
धरणि गिरै धवलाह³, उदधि मर्यादा छोड़ै॥
अरजुन चूकै वाण, लिखंत विधाता मोड़ै॥
बादल कहै री नार सुणि, एह बोल नाहीं टलै॥
नासी न पूठ देऊँ कवहुँ, बादल दल थे ना चलै॥

2. सुभट सुभट तैं लड़िगि, पड़िगि जहँ खड़ग भड़ाभड़।
जुड़िगि जुड़िगि तहँ जुड़िगि, जुड़िगि तहँ खड़ग धड़ाधड़।
मुड़िगि मुड़िगि जहँ मुड़िगि, मुड़िगि कोउ अंगन मोड़िगि।
गहर गहर गजदंत, भजत भुइपति गहतो डिगि॥
संग्राम राम रावण सुपरि, जुड़े जान ऐसी जुगति।
सलसले सेस, सायर सलल, धड़हड़ कम्प्यो धवलहरि॥

1. भरि अनंग अस्थिय महल, रति वडिदय, घटि सार।
विपरीत दिन दिल्लिय सहर नृपति अलुञ्जिय मार॥

2. सुमेरु पर्वत।

3. धवलगिरि (धौलगिरि)

जटमल ने राजपूत रमणियों की वीरता का भव्य चित्रण किया है (जो ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के व्याकरणाचार्य हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत प्रसिद्ध दोहे¹ का स्मरण अनायास ही करा देता है :

1. कन्ता! रण मैं पैसतां मत तूँ कायर होइ। तुम्हें लाज मुझ मेहणो, भलो न भापै कोइ।।
कायर करे माँस को गिरअण कवहुँ न खाइ। कहा कुपायण मुख कहै, हमहीं दुरगति जाइ।।
2. भला हुआ जो भिड़ हुआ, कलँक न आयो काइ।
जस जपै सब जगत में, हिव रण दूँहों जाइ²।।

बनवारी

वीररस के कुछेक छन्दों के कारण ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त करनेवाले बनवारी (रचनाकाल 1640 ई. के आसपास) ने शाहजहाँ के भरे दरबार में सलावतखान द्वारा अमरसिंह³ राठौर को गँवार कहने पर मारे जाने का अत्यन्त उत्कृष्ट वर्णन किया है। अमरसिंह ने भरे दरबार में सलावतखान का वध तो किया ही, म्लेच्छ योद्धाओं को मारते-काटते और आतंकित करते हुए बाहर भी निकल आए, अपने घोड़े पर बैठकर आगे के विशाल लाल किले की प्राचीन से परिखा पार जा कूदे तथा शहीद हुए। उनके अश्व की प्रस्तर प्रतिमा आज भी देखी जा सकती है जो स्वयं वीरता-विमुग्ध शाहजहाँ ने बनवाकर प्रतिष्ठित कराई थी। बनवारी को मिश्रबन्धु ने 'पद्माकर की श्रेणी' में रखा है किन्तु इनकी कोई रचना प्राप्त नहीं होती तथा कुछ छन्दों के ही आधार पर यह निर्णय मन की तरंग मात्र बनकर रहा जाता है। बनवारी जज्जल (जिनके हम्मीर पर कुछेक छन्द मिलते हैं) तथा जसवंत (जिनके अमर हुतात्मा वीररतन देवीदीन पांडे पर 70 छन्द बताए जाते हैं) से तुलनीय तथा चंद्र, जगनिक, भूषण, जोधराज, सूदन, गोविन्दसिंह, चन्द्रशेखर वाजपेयी, श्यामनारायण पाण्डेय एवं दिनकर प्रभृति वीररस के कवियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित होनेवाले कवि अवश्य हैं। उनकी गुणवत्ता भूषण का स्मरण कराती है। 'विनोद' से छन्द उद्धृत है :

धन्य अमर छिति छत्रपति अमर तिहारो मान। साहजहाँ की गोद में हन्यो सलावत खान।।
उत गकार मुख ते कढ़ी इत निकरी जमधार। वार कहन पायो नहीं कीन्हों जमधर पार।।
आनि कै सलावत खान जोर कै जनाई बात, तोरि घर पंजर करेजे जाय करकी।
दिल्लीपति साह को चलन चलिबे को भयो, गाज्यो गजसिंह⁴ को सुनी है बात बर की।।
कहै बनवारी वादशाह के तखत पास फरकि-फरकि लोथ लोथिन सों अरकी।
कर की बड़ाई की बड़ाई बहिबे की करौं, बाढ़ की बड़ाई कै बड़ाई जमधर की।।

मिश्रबन्धु ने इनका एक शृंगाररस का छन्द भी उद्धृत किया है जिससे स्पष्ट होता है कि यह कोरे नहीं थे, शृंगारी भी अच्छे थे। निश्चित रूप से इन्होंने अच्छे परिमाण में काव्य-रचना की होगी किन्तु खेद है कि वह उपलब्ध नहीं है। फिर भी, कतिपय कोशकारों एवं साहित्येतिहासकारों द्वारा इनकी उपेक्षा विगर्हणीय है। शृंगाररस का छन्द प्रस्तुत है :

नेह बर साने तेरे नेह बराने देखि यह बरसाने बर मुरली बजावैंगे।
साजु लाल सारी, लाल करैं लालसारी, देखिबे की लालसा री, लाल देखे सुख पावैंगे।।
तू ही उर बसी, उर बसी नाहिं और तिय, कोटि उबरसती तजि तोसों चित लावैंगे।⁵
सजे बनवारी बनवारी तन आभरन, गोरे तन वारी बनवारी आजु आवैंगे।

निस्सन्देह यह छन्द यमक अलंकार का एक अत्यन्त उत्कृष्ट निदर्शन है जिससे सम्भावना होती है कि बनवारी ने कोई अलंकार-ग्रन्थ रचा होगा।

1. भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि महारा कंतु।

लज्जेजं तु वयसिअहु जइ भग्ना घर एंतु।। —सिद्ध हेमचंद्र-शब्दानुशासन

2. अब मैं अपने प्रियतम का शव रणभूमि में जाकर दूँहूँगी (सती होने के लिए)।

3. जोधपुर-नरेश जसवंतसिंह के बड़े भाई जो खाटी वीर थे और इसी कारण राजा न बन सके। किन्तु बनवारी ने उन्हें राजा 'माना' है। जनता ने उन्हें वीर अमरसिंह राठौर के रूप में समादृत किया है। वे अद्भुत वीर थे, इसमें सन्देह नहीं, इन पर चलचित्र बना था।

4. महाराज गजसिंह (अमरसिंह के पिता)

5. तू मोहन के उर बसी है उरबसी समान। (विहारी)

भूषण

भूषण महाराज ने उपयोगी वर्णनों के साथ भारत-मुखोज्वलकारी शिवाजी, वाजीराव पेशवा, छत्रसाल-सदृश महाराजों का वर्णन करके हिन्दी और देश का भारी उपकार किया। यदि इनमें कोई वैसे बड़े काव्य के गुण न होते, तो भी इनका मान इसी कारण से अवश्य होता, पर यहाँ तो 'सोने में सुगंध' की कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है।....इनकी कविता से हिन्दी-साहित्य के एक अंग की पूर्ति हुई है। इनका नाम हिन्दी के साथ अमर हो गया है। जातीयता की अद्वितीय उमंग प्रदर्शित करने से उच्च भावों के कथन में यह हिन्दी-साहित्य में एकदम अद्वितीय हैं।....वास्तव में इनकी कविता के नायक एक प्रकार से न शिवाजी हैं, न छत्रसाल, न राव बुद्ध हैं, न अवधूतसिंह, न शम्भाजी हैं, न साहूजी; इनके सच्चे नायक हैं हिन्दू। अन्य नायक 'हिन्दुस्तान को आधार', 'ढाल हिन्दुवाने की' इत्यादि हैं। मतलब यह कि भूषण की कविता हिन्दूमय हो रही है।—मिश्रबन्धु

वे हिन्दू जाति के प्रतिनिधि कवि हैं। —रामशुक्ल

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
विजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कलम बाँधी स्वच्छन्द नहीं
फिर हमें बताए कौन हंत।

वीरों का कैसा हो वसंत? —सुभद्राकुमारी चौहान

भारत के सच्चे राष्ट्रकवि भूषण (1613-1715 ई.) वीररस के प्रतीक-महाकवि माने जाते हैं। उनके तीनों काव्य 'शिवराजभूषण', 'शिवावावनी' एवं 'छत्रसाल-दशक' राष्ट्रकाव्य हैं। संप्रति 'राष्ट्रकवि' विशेषण का प्रयोग कई कवियों के साथ किया जाता है। रवीन्द्र का 'जनगणमन-अधिनायक' गोरा-शासक है, मैथिलीशरण का 'जय जय पंचम जॉर्ज' जनगणमन-अधिनायक जैसा स्फीत पर घटिया चारणगान तो नहीं है (वे कारागार भी गए थे) किन्तु है उसी जाति का, इक़बाल का तराना अचछा है परन्तु कालांतर में वे साम्प्रदायिक हो गए थे। रवीन्द्र और इक़बाल 'सर' थे (सरफिरे नहीं) दोनों स्वपूजा-व्यामोही चतुर कवि। इनमें बलिदान-प्रेरणा नहीं है। ये व्यक्तित्व में भूषण की समता के पात्र नहीं। काव्यशक्ति में भी भूषण के समकक्ष नहीं। वैसे, स्फीत रचनाकार होने के कारण रवीन्द्र तथा पाकिस्तान के देवपिता होने के साम्प्रदायिक काण से इक़बाल की पूजा होती है। रवीन्द्र वंगालवादी थे, इक़बाल मुस्लिमवादी। भूषण हिन्दूवादी तो थे किन्तु उनकी अडिग-अमिट एवं एकतान-एकरस वीरदर्पपूर्ण राष्ट्रीय कविता बहुत अधिक निष्ठापूर्ण, साहसपूर्ण एवं प्रभावी है। कला में कोई 'राष्ट्रकवि' उनके समकक्ष नहीं।

भूषण की वास्तविक परख चित्रकूट-नरेश रुद्र सोलंकी ने की थी और यह सूक्ष्मगुणपरक परख इतनी प्रभावपूर्ण सिद्ध हुई कि उनका स्थूलशरीरपरक नाम 'अनावश्यक बन गया। वे रत्नाकर¹ त्रिपाठी के पुत्र, चिन्तामणि के अनुज एवं मतिराम के अग्रज माने जाते हैं। तीन² भाई और तीनों महाकवि! कविता में त्रिपाठी-बन्धु और आलोचना में मिश्रबन्धु (गणेशविहारी, श्यामविहारी, शुकदेव विहारी) की त्रयी ऋग्वेद के ऋभुगण एवं स्वातन्त्र-संग्राम के चाफेकर-बन्धु (तीनों हुतात्मा) का स्मरण कराती है। ये त्रिकवि त्रिविक्रमपुर (कानपुर-देहात जनपद में आज का तिकवाँपुर-जिसे त्रिकविपुर या त्रिकवीपुर कहना समीचीन होगा) में ठीक ही जन्मे थे। इनमें भूषण शिवाजी' से जुड़कर इतिहास पुरुष भी बन सके। शिवाजी के महाराष्ट्र की राजधानी विश्व-नगरी मुंबई (बंबई) में 'महाकवि भूषण मार्ग' विद्यमान है।

1. कोई मुरलीधर मानता है, कोई पतिराम, कोई मनीराम, कोई घनश्याम, कोई व्रजभूषण, (दृष्टव्य है अध्यवसायी संपादक डॉ. जगदीश गुप्त द्वारा सम्पादित 'ऐतिहासिक-संग्रह', पृष्ठ 22)।
2. रतिनाथ नाम भी सुनाई पड़ जाता है।
3. जटाशंकर (उपनाम 'नीलकंठ') भी भाई माने जाते हैं। मिश्रबन्धु ने इनके सहोदर न होने की सम्भावना व्यक्त की है। इनकी कृतियाँ भी अनुपलब्ध हैं। डॉ. जटाशंकर द्विवेदी (वैज्ञानिक-विश्वकोशकार) का स्मरण आता है।
4. शिवाजी एवं भूषण के समकालीन कवि चिरजीवी ने अपने नायक पर अनेक हिन्दी-छन्द रचे थे, भगवतीशरण मिश्र ने शिवाजी पर 'पहला सूरज' (1986 ई.) शीर्षक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है, वीरेन्द्र कुमार मिश्र ने 'छत्रपति शिवाजी' शीर्षक ऐतिहासिक नाटक लिखा है, सैठ गोविन्ददास का 'शिवाजी का सच्चा स्वरूप' एकांकी प्रसिद्ध है ही, अन्य अनेक साहित्यकारों ने भी कविताएँ, नाटक, कहानियाँ, कविताएँ रची हैं। 'छत्रप्रकाश' में लाल कवि ने शिवाजी का सादर उल्लेख किया है। शोधग्रन्थ एवं आलोचना-ग्रन्थ अलग-से, इतिहास में उल्लेख; भूषण का सर्जन तो अमर है ही। 'हिन्दी का शिवाजी-साहित्य' शोध पर अच्छा विषय है।

हिन्दी-साहित्य में 'पृथ्वीराजरासो' में हिन्दू शब्द का प्रथम प्रयोग प्राप्त होता है। चन्द्र एक वीर-कवि थे। सूदन ने 'सुजान-चरित्र' में हिन्दुत्व-जयगान गाया है। मैथिलीशरण ने 'हिन्दू' काव्य रचा तथा घोषणा की :

रक्खो हिन्दूपन का गर्व, यही ऐक्य साधन का सर्व;

हिन्दू निज संस्कृति का त्राण करो, भले ही दे दो प्राण!

निराला की 'शिवाजी का पत्र' हिन्दुत्व-प्रेरित स्फीत-कविता है। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, किशोरीलाल गोस्वामी, चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त, भगवतीशरण मिश्र इत्यादि के अनेक नाटक, उपन्यास इत्यादि हिन्दुत्व से परिपूर्ण हैं। किन्तु हिन्दुत्व के प्रतिनिधि कवि भूषण ही हैं; क्योंकि गुणवत्ता, नाटकद्वय-गरिमा, तेजस्विता इत्यादि में उनकी समता कोई नहीं कर सकता।¹ भूषण की वैयक्तिक महानता का इससे बड़ा प्रमाण होगा कि छत्रसाल ने उनकी पालकी को कंधे पर उठा लिया था। हिन्दुत्व का प्रतिनिधि कवि ही भारत का राष्ट्रकवि हो सकता है क्योंकि हिन्दू एवं भारत तत्त्वतः पर्यायवाची हैं। तुजुके-जहाँगीरी (जहाँगीरनामा) में जहाँगीर ने हिन्दू स्त्रियों के मुस्लिम स्त्रियों से अधिक चरित्रवान अर्थात् श्रेष्ठतर होने की बात लिखी है। अच्छे पानी तक के लिए तरसने वाले वंदी शाहजहाँ ने अपने कुपुत्र औरंगजेब से पितरों को गंगाजल-तर्पण करनेवाले हिन्दुओं की प्रशंसा की थी। एनी वेंसंट ने हिन्दू-धर्म की सर्वश्रेष्ठता स्वीकार की है। यहूदी मेनुहिन ने हिन्दू की अतुलनीयता का प्रतिपादन किया है।² शत-शत निर्देशन उपलब्ध हैं। सर एस. राधाकृष्णन् तक ने विभाजन पूर्व के अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इंडियन फिलॉसॉफी' में लिखा था, "भारत आज भी मुख्यतः हिन्दू है" (इंडिया ईवेन टुडे इज मेनली हिन्दू)। शिवाजी को मुगल-इतिहासकार खफ़ी खान 'लुटेरा' और 'नरक का कुत्ता' कहता है³, कॉम्युनिस्ट इतिहासकार इरफ़ान हवीब उन्हें हिन्दुत्व का उत्कर्षकर्ता वैसे ही नहीं मानता है जैसे कि महमूद गज़नवी को मोहम्मदीयत का! सर जदुनाथ सरकार सरकारी नज़रिए पर नज़र रखते हुए उनके जीवन-संघर्षों की आड़ में उनके हिन्दू-संगठनकर्ता-गौरवदाता होने के तथ्य को उड़ा देना चाहते हैं। सर रवीन्द्रनाथ टैगोर हों या सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् या सर रामकृष्ण भंडारकर या सर जदुनाथ सरकार, कहीं-न-कहीं बेसरपैर की बातें कर ही जाते हैं, क्योंकि गोरी सरकार का जादू उनके सर पर चढ़ कर बोल पड़ता है; "यथा राजा तथा प्रजा" का चिरसत्य वस्तुपरकता को सर करता रहता है। हम आयातित चश्मों के बिना देख तक नहीं सकते—क्या विकलांगता है! सौभाग्यवश व्यापक जनजीवन पर ऐसे इतिहासकारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इतिहासकार सरदेसाई का देशी सर ही जनमान्य है क्योंकि वह 'हिन्दू पद पादशाही' के ऐतिहासिक सत्य के आधार पर शिवाजी को हिन्दुओं की सरपरस्ती का गौरव प्रदान करता है, जय-जय रघुवीर समर्थ के अनुयायी और हिंदवी स्वराज्य के निर्माता शिवाजी सच्चे राष्ट्रपुरुष थे जो समसामयिक एवं इतिहाससिद्ध कवि भूषण के उद्गारों कसे सर्वतः प्रमाणित है :

1. दाढ़ी के रखैयन की दाढ़ी सी रहित छाती, बढ़ी मरजाद, जस, हृद्द हिंदुवाने की।
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब, मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की।।
भूषण भनत दिल्लीपति दिल धकधका, धाक सुनि-सुनि सिवराज मरदाने की।
मोटी भई चंडी विनु चोटी के चवाय सीस, खोटी भई संपत्ति चकत्ता के घराने की।।
2. काज मही सिवराज बली हिन्दुवान बढ़ाइवे को उर ऊटै।।
भूषन भू निरम्लेच्छ करी, चहै म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै।।
हिन्दू बचाय-बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ दूटै।
चंद अलोक ते लोक सुखी यह कोक अभाग जो सोक न छूटै।।
3. पैज-प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल, चहूँ चक्क को अमाल भयो दंडक जहान को।
साहिन को साल भयो, ज्वाल को जवाल भयो, हर को कृपाल भयो हार के विधान को।।
बीररस ख्याल सिवराज! भुवपाल, तुव हाथ को बिसाल भयो भूषन बखान को।
तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल, भयो हिन्दु को दिवाल, भयो काल तुरकान को।।

1. 'हिन्दी-साहित्य में हिन्दू एवं हिन्दुत्व' शोध का उत्तम विषय है।

2. देखें मेरे 'हिन्दूधर्म', 'हिन्दू केवल एक शब्द नहीं, प्रतीक है' एवं 'हिन्दूधर्म : फ़्रेड ऑफ़ फ़्रीडम' ग्रन्थ।

3. मोहम्मद को 'मोह + मद' ('मदन मोहन' के विपरीत) कहना, "खुद आ!" की टेर न सुनकर खुदा का भारत में ही आना" तथा इज़रत, खलीफ़ा इत्यादि के व्यंग्य ऐसे अपशब्दों के ही 'सम्य-प्रतिफलन' हैं।

4. वेद राखे बिरित, पुरान राखे सारजुत, राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिंदुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की, काँधे में जनेउ राखी, माला राखी गर मैं।।
मीड़ि राखे मुगल, मरोड़ि राखे पातसाह, वैरी पीसि राखे, बरदान राख्यो कर मैं।।
राजन की हद्द रखी तेगबल सिवराज, देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यो घर मैं।।
5. राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान को तिलक राख्यौ, स्मृति औ पुरान राखे, वेदविधि सुनी मैं।
राखी रजपूती, राजधानी राखी राजन की, धरा मैं धरम राख्यौ, राख्यौ गुन गुनी मैं।।
भूषन सुकबि जीति हद्द मरहट्टन की, देस-देस कीरति वखानी तब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज! समसेर तेरी, दिल्ली दल दावि कै दिवाल राखी दुनी मैं।।

भूषण ने आततायी औरंगजेब की आलोचना उसके शाहजहाँ-वन्दीकरण, दारा-वध, मुराद-छलहत्या, शुजा-पलायन इत्यादि के कुख्यात दुराचरण के कारण की है, जो इतिहास से पूरा-पूरा मेल खाती है। केवल भूषण ही ऐसे समसामयिक कवि हैं जिन्होंने औरंगजेब के पापों का कच्चा चिट्ठा खोला है। तेगबहादुर, भाई मतिदास, संभाजी, कवि कलश इत्यादि के साथ पैशाचिक व्यवहार करनेवाले, शर्मद का कत्ल करानेवाले औरंगजेब की तारीफ़ घोर साम्प्रदायिक इक़वाल-जैसे व्यक्ति ही कर सकते हैं। नेहरू जैसे सत्तावादी तुष्टीकरणवादी ही नई दिल्ली के शानदार क्षेत्र में औरंगजेब रोड का नामकरण करा सकते हैं। नई दिल्ली में देशद्रोही पुजते हैं। लौटते नादिरशाह को आमन्त्रित कर दिल्ली में क़त्लेआम इत्यादि का उत्तरदायी ग़द्दार सफ़्दरजंग का महत्त्व सफ़्दरजंग, मक़बरा, सफ़्दरजंग हवाईअड्डा, सफ़्दरजंग लेन, सफ़्दरजंग रोड सफ़्दरजंग लेन, सफ़्दरजंग एंक्लेव के नाना रूपों में प्रसरित है। इस कमीने ने रहीम के मक़बरे के संगमरमर को अपने भावी मक़बरे में लगवा लिए थे!! परम मानववादी और परम धर्मनिरपेक्ष रहीम पर कुछ नहीं। (उनके मक़बरे का क्षेत्र निज़ामुद्दीन ईस्ट कहलाता है—यह सूफ़ी फ़कीर मोहम्मद तुग़लक़ के पितृहत्या-घड्यन्त्र से अभिज्ञ थे तथा हिन्दुओं को मुसलमान बनाते थे)!!! उसकी निन्दा का कर्तव्य केवल भूषण ने पूरा किया है। उनका शिवाजी-स्तवन व्यक्तिपरक न होकर राष्ट्रपरक है। उनका छत्रसाल-स्तवन भी वस्तुतः राष्ट्रस्तवन है :

हैवर हरट्ट साजि, गैवर गरट्ट, सम पैदर के ठट्ट, फौज जुरी तुरकाने की।

भूषन भनत राय चंपति के छत्रसाल रोप्यो रन ख्याल हैकै ढाल हिन्दुवाने की।।

कैयक हजार एक बार वैरी मारि डारे, रंजक दगनि मानो अग्नि रिसाने की।

सैदअफगन-सैन सगर-सुतन लागी कपिल-सराप लौं तराप तोपखाने की।।

शिवाजी एवं छत्रसाल हिन्दू-जाति के दो प्रतीक हैं। पुलकेशिन् सुहृद्देव (सुहलदेव), नरसिंहदेव, कुंभा, साँगा, हेमू, प्रताप, नानाराय इत्यादि भी इसी वर्ग के सफल-असफल प्रतीक-योद्धा हैं। शिवाजी एवं छत्रसाल का हिन्दुत्वरक्षण छत्रसाल के एक अन्य समसामयिक कवि गोरेलाल पुरोहित, जो लाल कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं, कृत शतशः इतिहाससम्मत काव्य छत्रप्रकाश में भी उजागर हुआ है, यद्यपि इसमें 1707 ई. तक ही वृत्त उपलब्ध है :

छत्रसाल हाड़ा तहँ आयो। अरुन रंग आनन छवि छायो।

भयो हरौल बजाय नगारो। सार-धार को पहिरनहारो।।

दौरि देस मुगलन के मारौ। दपटि दिली को दल संहारौ।।

एक आन सिवराज निवाही। करै आपने चित की चाही।।

कबहूँ प्रगटि युद्ध में हाँकै। मुगलनि मारि पुहुमि तल ढाँकै।।

वानन वरखि गयंदन फोरै। तुरकनि तमक तेग करि तौरै।।

लाल कवि के वर्णन से स्पष्ट है कि छत्रसाल और छत्रसाल हाड़ा दोनों एक ही व्यक्ति हैं; अतः 'छत्रसालदशक' केवल छत्रसाल बुन्देला पर रचित लघु मुक्तककाव्य है, न कि छत्रसाल बुन्देला और छत्रसाल वूँदीपति (हाड़ा-वंशीय) दोनों पर, जैसाकि मिश्रवन्धु ने माना है। भूषण ने 'हाड़ा वूँदी धनी' का उल्लेख अवश्य किया है, किन्तु वह समनामी हाड़ा वीरों के संकेत हेतु है—काव्य छत्रसाल हाड़ा पन्ना-नरेश पर ही है। चौहान, राठौर इत्यादि के सदृश हाड़ा भी अनेक क्षेत्रों में फैले रहे हैं।

भूषण और लाल कवि, सूदन और गोविन्दसिंह इत्यादि के सृजन में हिन्दू धर्म या हिन्दुत्व की सुस्पष्ट चर्चा ही नहीं है। अपितु उसकी उन्नति या जागृति या विजय का संकेत भी है, जो स्पष्ट करता है कि मुगल वंश के पतन का वास्तविक कारण हिन्दू जाति

का उत्थान था। अंग्रेज़ी के दास इतिहासकारों ने यदि हिन्दी की ऐतिहासिक कविताओं का अध्ययन किया होता तो उन्हें मुगल साम्राज्य के पतन का सर्वोपरि कारण स्पष्टतः ज्ञात हो जाता। हिन्दी-साहित्येतिहासकारों में इतिहास का गहन अनुशीलन करने वाले कोई नहीं हुआ अन्यथा वह इस महान् सत्य का उद्घाटन अवश्य करता। शिवाजी के प्रभाव के कारण मराठों में हिन्दूराव नामक तक रखे जाने लगे। दिल्ली का वाड़ा-हिन्दूराव क्षेत्र मराठा वीर हिन्दूराव का स्मरण आज भी कराता रहता है। लाल क़िले के मुगल-संग्रहालय में हिन्दूराव का चित्र भी देखा जा सकता है। छत्रसाल के प्रभाव के कारण हिन्दू-जागृति उनके एक पुत्र हिन्दूपति के नाम से ही स्पष्ट है। शिवाजी एवं छत्रसाल के पूर्व हिन्दू-शब्द-संपृक्त नामकरण नहीं मिलते।

इतिहास का उन्मेष

पृथ्वीराजरासो इत्यादि के विपरीत, भूषणकाव्य इतिहास की तथ्यपरक प्रस्तुति करता है। कीर्तिलता, छत्रप्रकाश इत्यादि काव्य भी इतिहास की सही विवृति करते हैं। भूषणकाव्य शिवाजी एवं कवि की समसामयिकता सिद्ध करता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें किसी समय के मनमुटाव का संकेत तक स्पष्ट है, यद्यपि कविता-भूषण ने उसे भी व्याजस्तुति से भूषित किया है (जिस पर डॉ. जगदीश गुप्त का ध्यान नहीं जा सका) :

तुम सिवराज ब्रजराज अवतार आजु तुम ही जगत काज पोषन भरत हो।
तुम्हें छाड़ि याते काहि विनती सुनाऊँ मैं तुम्हरे गुन गाऊँ तुम ढीले क्यों परत हो।।
भूषण भनत वहि कुल में नयो गुनाह नाहक समुझि यह चित मैं धरत हो।।
और वाँभनन देखि करत सुदामा सुधि। मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हो।।

समसामयिकता का एक अन्य ज्वलंत उदाहरण देखिए :

दारा की न दौर यह, रार नहीं खुहुं^१ की, बाँधियो नहीं है कैधों मीर सहवाल को।
मठ विस्वनाथ^२ को न वास ग्राम गोकुल को, देवी को न देहरा, न मन्दिर गोपाल^३ को।।
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु वैरी कतलम कीन्हें, ठौर-ठौर हासिल उगाहत है साल को।
बूडति है दिल्ली सो सँभारि क्यों न दिल्लीपति, धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को।।

और दिल्ली वास्तव में डूब गई। निराश, वृद्ध, धनुषाकार, महजबी जुनून में अन्ध औरंगज़ेब तक समझ गया था कि मुगल वंश अब समाप्त होने जा रहा है। शिवाजी ने दक्षिण में अधिक रहनेवाले औरंगज़ेब और उसके सगे-संबंधियों की नाक के ठीक नीचे राजधानी रायगढ़ बनाई, तीन सौ पैंसठ क़िले हथियाए-बनाए, जलसेना बनाई जिसके नायक कान्होजी आंग्रे अमर हैं, दूर-दूर तक पैज की, चौध वसूली, सरदेशमुखी प्राप्त की; यदि वे अधिक जीते तो मुगल वंश का समूल उच्छेद कर देते। 1707 ई. में 90 वर्षीय इस बादशाह की मृत्यु के बाद पतन की प्रक्रिया तीव्रतर हो गई। मुगल-वंश के पतन के प्रधान कारण शिवाजी अर्थात् मराठों का उदय एवं औरंगज़ेब की दुर्नीति ही रहे। शिवाजी ने महमूद गज़नवी और बाबर (पाँच आक्रमणों में अन्तिम में सल्तनत कायम की और शेष में छोटा महमूद बना रहा) की लूट का उन्हीं के सिक्कों में दिया। कुछ ही समय बाद अटक से कटक तक मराठों की तूती बोलने लगी। दिल्ली के वली नामक प्रभावी व्यक्ति ने मोहम्मदीयत की रक्षा के नाम पर अहमदशाह अब्दाली को निगन्त्रित किया जिसने 1761 ई. में पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों को परास्त किया किन्तु इस लुटेरे की निर्दयता से हिन्दू-मुसलमान दोनों को क्षति हुई। इसने अमृतसर के हरि-मन्दिर को बार-बार ध्वस्त किया और लूटा जिसमें सिखों और मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ा। इसके अर्थलिप्सु सैनिक 'ज़र! ज़र!'

1. खड़ीबोली के अर्थ में।

2. हिन्दी-साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल) में 'खजुवे' गलत लिखा है। खजुहा फ़तेहपुर जनपद का प्रसिद्ध क़स्बा है जिसमें प्राचीनता के अवशेष मैंन स्वयं देखे हैं।

3. काशी-विश्वनाथ मन्दिर-ध्वंस का संकेत, जहाँ मस्जिद खड़ी है। किन्तु उसके पीछे मन्दिर के अवशेष भी खड़े हैं। नदी का मुख अब भी मस्जिद की ओर है।

4. कृष्ण-जन्मस्थान (आज के मथुरा-स्थित कटरा केशवदेव) मन्दिर-ध्वंस का संकेत। प्रथम ध्वंस महमूद गज़नवी, द्वितीय सिकन्दर लोदी एवं तृतीय औरंगज़ेब ने किया। मस्जिद खड़ी है, पर उसी के पीछे चौथा मन्दिर भी बन गया था जो पाँचवे विराट् मन्दिर के कारण लुप्त-सा गया है—मस्जिद भी छोटी लगती है।

(धन! धन!) चिल्लाते वृन्दावन पहुँचे और 'रज! रज!' पाकर घनआनन्द की हत्या करते गए। इसकी दिल्ली में लूटों ने नादिरशाह द्वारा पहले से ही दयनीय की गई राजधानी को प्रियमाण बना डाला। रविवार 11 मार्च, 1739 को नादिरशाह का कलेआम (इसे उसने चौदनी चौक की कोतवाली के पुराने भवन से लगी छोटी-सी सुनहरी मस्जिद में बैठकर देखा था) भूला न था कि दिल्लीवासियों को अब्दाली की लूटों का सामना करना पड़ा! नादिरशाह भी बीस लाख लेकर पंजाब (अब हरियाणा) से ही लौटने पर सहमत हो गया था किन्तु कहते हैं कि निजामुलमुल्क की सफलता से ईर्ष्याग्रस्त या सफ़दरजंग ने बीस करोड़ का लालच देकर उसे दिल्ली बुलाया था (बाद में देशद्रोही को इतनी राशि न होने के कारण नादिरशाह का डर लगा और आत्महत्या करनी पड़ी?)। गद्दारी की परम्परा में दौलत खां लोदी, सफ़दरजंग, वली, मीर जाफ़र, नद्वकीशाह इत्यादि की कमी नहीं; किन्तु मराठे फिर उभरे। अंग्रेजों से लड़ाइयाँ वास्तव में मराठे लड़े थे, मुगल नहीं। मुगलों में कौन 'बादशाह' बने, इनका निर्णय तक कई बार मराठे ही करते थे। दिल्ली को डुवाने का 'अथ' देखिए :

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग, ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे।
जानि गैर-मिसिल गुसीले गुसा धारि उर, किन्हों न सलाम, ना बचन बोले सियरे।।
भूषन भनत महावीर बलकन लाग्यो, सारी पातसाही के उड़ाय गए जियरे।
तमक में लाल मुख सिवा को निरखि भयो स्याह मुख नौरंग, सिपाह-मुख पियरे।।

उपर्युक्त छन्द राजा जयसिंह के प्रयत्न¹ से शिवाजी के आगरे के दरबार में आने, वहाँ समुचित आदन न होने पर प्रकटतः क्रुद्ध होने, वंदी बनाए जाने इत्यादि की ऐतिहासिक घटना को काव्यबद्ध करता है। भूषण ने इस विषय पर कई छन्द लिखे हैं। आगरे के क़िले से वन्दी के रूप में निकलने की रोमांचक गाथा खफ़ी खान ने लिखी ही है जिसके सामने सावरकर, सुभाष, जयप्रकाश, इत्यादि के वन्दी रूपों में निकलने की घटनाएँ तक साधारण लगती हैं। शौर्य, चातुर्य, सर्वधर्मसम्मान, सफलता, प्रभाव, परम्परा इत्यादि की दृष्टि से शिवाजी की समता कोई नेता नहीं कर सकता। शिवाजी का व्यक्तित्व चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य जैसे इतिहास के प्रथम श्रेणी के व्यक्तित्वों का स्तर का है—उनके सामने धर्मघाती विदेशी शासन की चुनौती कहीं ज्यादा कड़ी थी, जिसका उन्होंने सफलतापूर्वक सामना किया। द्वितीय सहस्राब्दि में तुलसी, अकबर और शिवाजी भारत के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष हुए। तीनों ने ही मानव एकता हेतु प्रभावी कार्य किए। तुलसी ने भक्ति की सार्वभौमता प्रतिपादित की। अकबर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित की। शिवाजी ने हिन्दू-पुनरुत्थान को पूर्णता प्रदान की।

अनेक में कुछेक इतिहास-उन्मेषक निदर्शन प्रस्तुत है :

1. लूट्यो खानदौरां जोरावर सफ़जंग अरु लह्यो कारतलवख़ाँ मनहुँ अमाल है।
भूषन भनत लूट्यो पूना में सइस्तख़ान,² गढ़न में लूट्यो त्यों गढ़ोइन को जाल है।।
हेरि-हेरि कूटि सहलेरि-बीच सरदार, घेरि-घेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय, हाथी, उमराव करि साथी, अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है।।
2. दारहि दारि, मुरादहि मारिकै, संगर साहिसुजै³ विचलायो।
कै कर में सब दिल्लि की दौलति, औरहु देस घने अपनायो।।
बैर कियो सरजा सिव सों, यह नौरंग के न भयो मनभायो।
फौज पठाई हुती गढ़ लेन को, गाँठिहु के गढ़-कोट गँवायो।।

1. इस प्रयत्न की प्रेरणा उनके दरवारी कवि बिहारी की इस विख्यात अन्योक्ति से प्राप्त हुई :

स्वारथु सुकृनु न, समु ब्रिया, देखु विहंग! विचारि।

पच्छीनु न मारि।।

वाज!

निराला की महान् कविता 'शिवाजी का पत्र' इस बिन्दु का सिन्धु-रूप है।

2. शाहस्ताख़ान औरंगजेब का मामा था, जिसकी अंगुलियाँ काटकर शिवाजी ने व्यक्तिगत वर्चस्व का महान् प्रदर्शन किया—युद्ध में तो बुरी तरह हराया ही।
3. शाह शुजा। दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद भाई थे। जहाँनारा और रौशनारा वहन थीं। बाद में अफ़ग़ानिस्तान में एक अन्य शाहशुजा हुए जिनसे 'पगड़ी-बदल' में रणजीतसिंह ने हीरा-कोहनूर प्राप्त किया जो उनके अक्षम-अयोग्य पुत्र दिलीपसिंह (दलीपसिंह) ने 'ब्रिटिश-क्रॉउन' को अर्पित कर दिया।

3. अफ़जलखान को जिन्होंने मयदान मारा, बीजापुर, गोलकुण्डा मारा जिन आज है।
 भूषण भनत फरासीस त्यों फिरंगी मारि, हवसी तुरुक डारे उलटि जहाज है।।
 देखत मैं रुसतमखाँ को जिन खाक किया, साल की सुरति आज सुनी जो अवाज है।
 चौंकि चौंकि चकता कहत, चुँँधा ते मारो, लेत रही खवरि कहाँ लौं सिवराज है।।
 'भूषण की कविता में तत्कालीन इतिहास' उच्चस्तरीय शोध का अच्छा विषय है।

द्वितीय वीरकाव्य

भूषण हिन्दी-साहित्य में वीररस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। चन्द्र से दिनकर तक कोई वीरकाव्यकार उनकी समता नहीं कर सकता। चन्द्र शृंगाररस के श्रेष्ठतर कवि हैं। वे महान् वीरकाव्यप्रणेता भी हैं। किन्तु भूषण का दुर्दमनीय प्रवाह एवं उच्चादर्श उनमें कहाँ? जितना अन्तर पृथ्वीराज और शिवाजी में है (जितना अंतर पराजय और विजय में होता है), उतना ही चन्द्र और भूषण में है। अन्य किसी कवि से भूषण की तुलना करना उचित नहीं है। भूषण का अर्थ ही वीररस है। यद्यपि भूषण अलंकारवादी हैं जैसाकि उनके प्रमुख ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' के अनेकयामी श्लेष भी स्पष्ट है, तथापि उनका काव्य वीररस के स्थायीभाव उत्साह से यत्र-तत्र-सर्वत्र निष्पन्न है। कई दूर की कौड़ी¹ लाने वाले खोजियों ने एक ओर तो यह साबित करने की कोशिश की है कि भूषण एवं मतिराम भाई न थे, दूसरी ओर यह कि भूषण का शिवाजी से कोई सम्बन्ध न था। पहली खोज की निस्सारता तो तिकवाँपुर तथा अन्यत्र विद्यमान मतिराम तथा भूषण के वंशज ही सिद्ध कर देते हैं, दूसरी की भूषण की कविता जो घटनाओं एवं नामों को वर्तमानकाल में प्रस्तुत करती है। अनेक नातिप्रसिद्ध घटनाओं एवं व्यक्तियों के उल्लेख शिवाजी एवं भूषण तथा छत्रसाल एवं भूषण की समसामयिकता को निर्विवाद सिद्ध करते हैं। ऐसी कौड़ी-छाप खोजों का जुवाँ ख्याति-आखेटक सदा ही खेलते रहते हैं। उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। शिवराजभूषण, शिवावावनी एवं छत्रसाल-दशक के शीर्षक भी मरदान-विरुदावली (सुखदेव मिश्र), छत्रप्रकाश (लाल कवि), हिम्मतवहादुर-विरुदावली एवं जगद्धिनोद (पद्माकर) इत्यादि शीर्षकों के सदृश शिवाजी एवं छत्रसाल को भूषण का आश्रयदाता सिद्ध करते हैं। शिवाजी जैसा विश्व का एक अद्वितीय नायक, भूषण-जैसा विश्व का एक अद्वितीय वीर-कवि! स्वभावतः शिवराजभूषण शास्त्रीयकाल का सर्वश्रेष्ठ अलंकृत-काव्य तो है ही, समग्र हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ वीरकाव्य भी है। शिवराजभूषण के आकार-प्रकार का वर्णन करते हुए हिन्दी के 'प्रथम' महान् आलोचक, वस्तुतः 'विनोद' के प्रणेता-रूप में प्रस्थान-साहित्येतिहासकार, हिन्दी की तुलनात्मक आलोचना के जनक तथा 'नवरत्न' के 'दश'²-कवि-प्रस्थानालोचक मिश्रबन्धु लिखते हैं, "इन कविरत्न के प्राप्त ग्रन्थों में सबसे बड़ा है, वरन् इसी को ग्रन्थ कहा जा सकता है, क्योंकि शेष.....ग्रन्थ बहुत छोटे और संग्रह मात्र हैं।" यद्यपि शिवराज-भूषण अलंकारग्रन्थ है, तथापि इसमें मौलिकता का रंग काफी गाढ़ा है, जैसाकि स्वयं कवि की "लखि चारु ग्रन्थन जिन मतो युत" स्थापना से भी प्रमाणित है। यह स्थापना तुलसीर के 'व्यचिदन्यतोऽपि' का स्मरण करा सकती है। मिश्रबन्धु ने अपनी प्रति में इसके 382 छन्द दिए हैं। ग्रन्थ में भयानक एवं वीर रसों की महान् निष्पत्ति हुई है। शिवावावनी अपने नाम के अनुरूप लघु है, किन्तु 'भूषण-ग्रन्थावली' के सम्पादक मिश्रबन्धु के अनुसार, "इसके छन्द शिवराजभूषण के छन्दों से भी अधिक प्रभावोत्पादक हैं।" छत्रसाल-दशक तो बहुत ही छोटी पुस्तिका है, किन्तु इसका एक-एक छन्द अमर कविता के कोष का एक-एक हीरा है। मैं छत्रसालदशक को हीरकदशक मानता हूँ। हीरक-नायक, हीरक-कवि, हीरक-छन्द! अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' ने महान् एवं सफल योद्धा छत्रसाल पर 'जूँठी पातर' (शीर्षक भ्रामक है क्योंकि ध्यान राय प्रवीण एवं अकबर के प्रकरण की ओर चला जाता है) ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है। मिश्रबन्धु ने इस ग्रन्थ पर अपने गौरव के अनुरूप प्रकाश डाला है, "इतना छोटा ग्रन्थ होने पर भी यह हिन्दी-भाषा का एक नामी ग्रन्थ है, और इसे निकाल डालने से हिन्दी साहित्य में एक प्रकार की कमी आ जाएगी।" उनके 'सिके स्फुट छन्द भी मिलते हैं। जहाँ तक अन्य ग्रन्थों का सम्बन्ध है, भूषण-उल्लास, दूषण-उल्लास, भूषण-हज़ारा के नाम भर पता है। भूषण की भाषा तत्त्वतः समर-भाषा है, जिसमें वस्तुतः व्रजभाषा का सहयोग लिया गया है। भूषण ने व्रजभाषा को वीरव्यंजक-छवि प्रदान की है। आज के ग़ज़लवाज़ों को छोड़ दिया जाए, तो हिन्दी-कवियों में भूषण

1. भूषण = कवि, अलंकार। श्लेष। शिवराजभूषण में शिवाजी स्पष्टतः संकेतित हैं। किन्तु शिवराजभूषण का अर्थ नाग भी है जिसकी मणि अलंकार की सूचक है।

2. दूर की कौड़ी लानेवाले के हाथ मोती नहीं आता—बस, कौड़ी ही हाथ लगती है।

3. भूषण एवं मतिराम 'त्रिपाठी-बन्धु' के रूप में समाहित हैं।

ने अरबी-फ़ारसी-तुर्की के शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक किया है। सम्भवतः भूषण हिन्दी के प्रथम कवि हैं जिन्होंने अंग्रेज़ों के शब्दों का प्रयोग भी किया है। उनके द्वारा शब्दों की तोड़-मरोड़ की चर्चा व्यर्थ है क्योंकि युद्ध तो शरीर की तोड़-मरोड़ का विकटकर्म है और उसी को उन्होंने शब्दित किया है! उपलब्ध परिमाण की दृष्टि से भूषण स्कीत कवि नहीं है। विहारी की तरह सम्भवतः उन्होंने भी कम ही लिखा था। किन्तु गुण की दृष्टि से वे महान् हैं तथा उद्देश्य की दृष्टि से महान्तर। उनके अधिकांश छन्द काव्याकाश के ज्योतिष नक्षत्र हैं। कुछ उदाहरण भी इस कथन को स्पष्ट कर देंगे।

1. वाने फहराने, घहराने घंटा गजन के, नाहीं ठहराने राव-राने देस-देस के।
नग भहराने, ग्राम नगर पराने, सुनि बाजत निसाने सिवराजजू नरेस के।।
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे, केरा के से पात विहराने फन सेस के।।
2. साजि चतुरंग, वीर-रंग मैं तुरंग चढ़ि सरजा सिवाजी जंग जीतन¹ चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के नदी नद मद गैवरन² के रलत है।।
ऐल फैल खेल भैल खलक में गैल गैल, गजन की ठेल पेल सैल उलसत है।
तारा सों तरनि धूरि धारा मैं लगत, जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत है।।³
3. दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी⁴ डगा नाचे डग पर रुंड मुंड फरके।
भूषन भनत बाजे जीति⁵ के नगारे भारे, सारे करनाटी-भूष सिंहल को सरके।।
मारे सुनि सुभट पनारेवारे उदभट, तारे लगे फिरन सितारे-गढ़धर के।
बीजापुर-वीरन के, गोलकुंडा-धीरन के, दिल्ली-मीरन के उर दाड़िम-से दरके।।
4. निकसत म्यान तें मयूखें प्रलै-भानु की-सी फारै तम-तोम-से गयंदन के जाल को।
लागति लपकि कंठ वैरिन के नागिनि-सी, रुद्रहि रिझावै दै-दै मुंडन की माल को।।
लाल-छितिपाल छत्रसाल! महाबाहु-बली, कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट-कटक कटीले केते काटि-काटि कालिका-सी किलकि कलेऊ देति काल को।।
5. भुज-भुजगेस की वैसंगिनि भुजंगिनी-सी खेदि-खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरिन बीच धँसि जाती, मीन पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।।
रैयाराव चंपति⁶ को छत्रसाल महाराज, भूषन सकत को बखानि यों दलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने वीर, तेरी बरछी ने बर⁷ छीने हैं खलन के।।

चिरजीवी

द्वितीय सहस्राब्दि (1000-2000 ई.) के सर्वश्रेष्ठ एवं सफलतम हिन्दू-योद्धा एवं नायक छत्रपति शिवाजी (10 अप्रैल, 1627-4 अप्रैल, 1680, राज्यकाल 1674-1680 ई.) के दरबार में भूषण के अतिरिक्त कुछ अन्य हिन्दी-कवि भी विद्यमान थे, जिनमें चिरजीवी का नाम उल्लेखनीय है जिनके व्रजभाषा-कवित्त अच्छे बन पड़े हैं। चिरजीवी के छन्दों में शिवाजी-प्रशस्ति के माध्यम से व्यक्त मुगल-साम्राज्य के पतन का ऐतिहासिक सत्य भी विवृत हुआ है, जैसाकि भूषण, सूदन, चाचा हित वृंदावनदास इत्यादि की भिन्नसन्दर्भों काव्यरचना में भी दृग्गत होता है। भाषा अच्छी है तथा छन्दप्रवाह सन्तोषजनक। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. शिवाजी का लक्ष्य विजय रहा, राजपूतों के सदृश कंसरिया वाना धार के मरना नहीं। जीना कठिन है, जीतना कठिनतम है। मरना सरल है। “जीतन चलत है” शब्द शिवाजी की ठीक-ठीक व्यक्त करते हैं। वे राम और कृष्ण के सच्चे उत्तराधिकारी थे।
2. गयवरों, हाथियों।
3. यह न जानते हुए कि शिवाजी ही शत्रुता हैं—पहला छन्द जो महान् नायक ने महान् कवि के मुख से सुना!
4. विजंता! “शिवाजी गाजी” की “जंग जीतन चलत है” से पूरी संगति बैठती है।
5. “जीतना” का मानवीकरण शिवाजी।
6. छत्रसाल के पिता चंपतराय भी अच्छे योद्धा थे।
7. बल। “रलयोरभेद” हिन्दी पर भी लागू है।

1. साधनु को परम¹ धर्म सिद्ध करिवे को इष्ट, चोरन को परम धर्म पर-वित्त लीवे को।
कामिन को परम धर्म कामिनी-रमण प्रेम, मद्यप को परम धर्म नित मद पीवे को।।
महाराष्ट्र-भूषण महीप सिवराज! सुनै, कवि चिरजीवी नेकु इतै चित्त दीवे को।
मेरो परम धर्म एक तेरे गुन गाइवो को, तेरो परम धर्म म्लेच्छहीन महि कीवे को।।
2. बाएं-लिखवैयन² के वाम विधि होन लगे, दाएं-लिखवैयन³ पर दर्प सी चढ़ै लगी।
हवै गई उदासी फेरि मसजिद मकबरनि⁴ मैं, मठ-मंदिरन हूँ पै रोसनी चढ़ै लगी।।
कवि चिरजीवी सिवराज! आज तेरे राज फेरि तुरकनि तेजहीनता दृढ़ै लगी।
भाल पर फेरि लागे चंदन चमक देन, फेरि सिखा-सूत्रणि⁵ की महिमा बढ़ै लगी।।

लाल कवि

बुंदेलखंड के महान् योद्धा एवं नायक छत्रसाल पर स्फीत किन्तु अपूर्ण महाकाव्य 'छत्रप्रकाश' के प्रसिद्ध प्रणेता लाल कवि (दंहांत 1707 ई. के आसपास) मऊ के निवासी थे। इनका पूरा नाम गोरेलाल पुरोहित था। इनके पूर्वजों में नरहरि बंदाजन आज तक विख्यात हैं। इनके पुत्र गुलाब कवि एवं पौत्र गणेश कवि का भी अच्छा नाम था। गणेश कवि (1793-1583 ई.) विद्याव्यसनी काशी-नरेश उदितनारायण सिंह एवं ईश्वरीनारायण सिंह के दरबारी कवियों में थे। उन्होंने 'वाल्मीकि-रामायण श्लोकार्थ-प्रकाश' (बालकाण्ड पूर्णतः तथा किष्किन्धाकाण्ड के पाँच सर्ग), 'प्रद्युम्नविजय' नाटक, एवं 'हनुमत्-पचीसी' ग्रन्थ रचे थे। हिन्दी में एक 'लाल कवि' और हुए हैं। वे लल्लूजी 'लाल' थे, जो ग़लत ढंग से त्वरापूर्वक लल्लूलाल के नाम से प्रख्यात हैं, जिनका 'प्रेमसागर' हिन्दी गद्येतिहास का एक चिरस्मरणीय ग्रन्थ बन चुका है, किन्तु जिनकी बिहारी-सतसई की 'लाल-चन्द्रिका' टीका आज भी उनके उपनाम की सूचना देती है।

'छत्रप्रकाश' में बुंदेल-वंशोत्पत्ति, चम्पतराय-वृत्त एवं छत्रसाल विजयशृंखला पर प्रशंस्य एवं इतिहासम्मत काव्यसृष्टि प्राप्त होती है, जिसमें नायक के पलायन भी छिपाए नहीं गए। आज की भाषा में 'गोरिल्ला-युद्ध' का सुन्दर चित्रण इस काव्य की एक उल्लेखनीय विशेषता है। छत्रसाल को 'बुंदेलखण्ड का शिवाजी' कहा जा सकता है। इस प्रात्ययिक महाकाव्य में छत्रसाल के जीवन का 1707 ई. तक का वृत्त ही प्राप्त होता है। इसी वर्ष धर्मान्ध बादशाह औरंगजेब मरा था। सम्भवतः इसी वर्ष लाल कवि भी दिवंगत हुए अन्यथा वे वृत्त को आगे बढ़ाते।

छत्रप्रकाश की कविता दोहा-चौपाई छन्दों में निबद्ध है तथा वीररस की दृष्टि से प्रशंस्य है। महाकवि भूपण कृत लघुतमवर्गीय मुक्तककाव्य 'छत्रसाल-दशक' की उच्चस्तरीय सृजनशक्ति तो अन्यत्र दुर्लभ है किन्तु कविवर लाल ने 'छत्रप्रकाश' में उत्कृष्ट सृजन अवश्य किया है :

छत्रसाल हाड़ा तहाँ आयो। अरुन रंग आनन छवि छायो।।
भयौ हरौल बजाय नगारो। सार-धार को पहिरनहारो।।
दौरि देस मुगलन के मारो।। दपटि दिली के दल संहारो।।
एक आन सिवराज⁶ निबाही। करै आपने चित की चाही।।
आठ पातसाही झकझारै। सूबनि पकरि दंड लै छारै।।

काटि कटक किरवान बल, बाँटि जंबुकनि देहु।

ठाटि युद्ध यहि रीति सों, बाँटि धरनि धरि लेहु।।

1. परम।

2. अरबी-फ़ारसी एवं इनकी अनुगामिनी जदू बाएं से दाएं लिखी जाती हैं। अशोक के आज के अफ़ग़ानिस्तान और उस तरफ़ के अभिलेखों की लिपि भी वाम-दक्षिण है जिसे 'खरोष्ठी' (गद्या-ऊँट की) नाम दिया गया है।

3. संस्कृत, हिन्दी, मराठी, नेपाली तथा विश्व की अधिकांश भाषाएँ दक्षिण-वाम लिखी जाती हैं।

4. सुल्तानों, बादशाहों, शासकों के शवभवन। फ़कीरों वगैरह के शवभवन दरगाह कहे जाते हैं।

5. शिखा-सूत्र (चोटी-जनेऊ)। गुरु गोविन्दसिंह ने भी यज्ञोपवीत, गौर प्रभृति की रक्षा का लक्ष्य घोषित किया है।

6. शिवाजी।

कवहूँ प्रकट युद्ध में हाँकै। मुगलनि मारि पुहुमितल ढाँकै।।
 वानन वरखि गयंदनि फोरै। तुरकनि तमक तेज तर तोरै।।
 कवहूँ उमड़ि अचानक¹ आवै। घन सम घुमड़ि लोह वरसावै।।
 कवहूँ हाँकि हरौलन कूटे। कवहूँ चापि चंडालन² लूटे।।
 कवहूँ देस दौर कै लावै। रसद कहूँ की कढ़न न पावै।।
 बिरझयो रन छतसाल बुँदला। कियो खमरि खगन खिजि खेला।
 एक उमक अरु दमक सँहारे। लेहिं सौंस जब वीसक मारे।।
 छत्रसाल जिहि दिसि धौंसि आवै। तिहि दिसि बखतर पोस ढहावै।।
 कटि अरिमुंड उछालत कैसे। बटनि खेल खेलत नट जैसे।।
 रुधिर भभकि रुंडन ज्यों भंडी। मानहुँ जरत टुंड बनखंडी।।

गोविन्दसिंह

भारतीय इतिहास की एक विभूति, हिन्दूधर्म के एक महान् रक्षक³, सिखों के अन्तिम तथा दशम गुरु गोविन्दसिंह (1666-1708 ई.) सामान्यतः शृंगार, वात्सल्य इत्यादि तथा विशेषतः वीर रसों के सिद्धहस्त कवि हैं। हिन्दी-वीरकाव्य, हिन्दी-रामकाव्य, हिन्दी-कृष्णकाव्य, हिन्दी-शक्तिकाव्य एवं हिन्दी-अध्यात्मकाव्य में उनका युगपत् अमर स्थान सुरक्षित है। भाई मनीसिंह द्वारा सम्पादित उनकी ग्रन्थावली 'दशम ग्रन्थ' के अनुसार, उन्होंने 16 काव्यों (जापु, अकालस्तुति, विचित्र नाटक, चंडीचरित्र खण्ड 1, चंडीचरित्र खण्ड 2, 'वार भगउती जी की' या 'चंडी की वार', नाम-प्रबोध, चौबीस अवतार, मंहदीवीर, ब्रह्मावतार, रुद्रावतार, स्फुट सवैये, शास्त्रनाममाला, चरित्रोपाख्यान, जफरनामा, हिदायतें) की रचना की, जिनमें अन्तिम दो फ़ारसी में हैं। 'जापु' पर नामक के 'जपुजी', चण्डीकाव्यों पर मार्कण्डेयपुराण (विशेषतः इसके महान् अंश दुर्गासप्तशती) तथा अवतारकाव्यों पर विष्णुपुराण, भागवतपुराण इत्यादि का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। 'चरित्रोपाख्यान' स्फीत कथासंग्रह है। 'चौबीस अवतार' में 'रामावतार' एवं 'कृष्णावतार' का प्रमुख होना स्वाभाविक है। 'विचित्र नाटक' समग्रतः मौलिक एवं आत्मकथात्मक काव्य है जिसमें गुरु गोविन्दसिंह स्वयं को रामपुत्र लव एवं नानक को रामपुत्र कुश का वंशज मानते हैं। इसमें उन्होंने 'सर दिया पर सार न दिया' के अजर-अमर उद्धोषक हुतात्मा गुरु तेगबहादुर का वृत्त भी प्रस्तुत किया है। पटना में उत्पन्न तथा पले-पुसे गोविन्दसिंह पर देवी का प्रभाव स्वाभाविक है। उन पर पुराणों एवं अवतारवादी दर्शन का व्यापक प्रभाव पड़ा था। वे निर्गुण-निराकार एवं सगुण-साकार के महान् समन्वयकर्ता थे। उनके पिता नवम गुरु तेगबहादुर (1621-1675 ई.) बलिदानी थे : मतान्ध औरंगज़ेब (राज्यकाल 1658-1707 ई.) के विरोधी। उनके प्रपितामह पंचम गुरु अर्जुन (1563-1606 ई.) बलिदानी थे : पितृविरोधी, पुत्रशत्रु, मद्यप जहाँगीर (राज्यकाल 1605-1627 ई.) के विरोधी। उनके दो बालक पुत्र जोरावरसिंह एवं फतेहसिंह धर्म के लिए दीवारों में चुनवाए गए, दो किशोर पुत्र अजीतसिंह एवं जुझारूसिंह समरभूमि में वीरगति पा गए। पिता एवं पुत्रचतुष्टय के बलिदान उनके अपेक्षाकृत छोटे जीवनकाल में ही हुए। और नादेड़ में वे स्वयं एक पठान के प्रहार से शहीद हुए। संसार के इतिहास में जैसी बलिदान-विभूति गुरु गोविन्दसिंह को प्राप्त हुई है वैसी किसी अन्य व्यक्ति को नहीं।

जीवनविभूति में काव्यविभूति का स्वर्ण-सुगंध अर्जुन एवं तेगबहादुर को भी प्राप्त है, किन्तु गोविन्दसिंह का कविरूप अपनी अनेक रसनिष्पत्ति, अपने व्रजभाषा-वैभव एवं अपने अलंकरण में सर्वथा विशिष्ट है। यह सत्य है कि अर्जुन एवं तेगबहादुर के सदृश ही गोविन्दसिंह की कविता भी मौलिकता की दृष्टि से नहीं रची गई प्रत्युत जनहित की दृष्टि से रची गई है, किन्तु गोविन्दसिंह में आत्मपरकता अधिक है तथा 'विचित्र नाटक' तो पूर्णतः मौलिक कृति ही है! यह प्रश्न उठ सकता है कि गोविन्दसिंह अपने 42 वर्षों के सततस्थानंतरपूर्ण एवं सततसंघर्षपूर्ण जीवन में इतना विशाल साहित्य कैसे रच सके? यह प्रश्न उठ सकता है कि गुरु-दरबार में रहे अनेक कवियों के कृतित्व

1. गोरिल्ला-युद्ध के संकेत।

2. चाण्डाल या म्लेच्छ।

3. 'तिलक' और 'जनेऊ' की रक्षा के लिए खड़ा उठानेवाले गुरु जिन्होंने स्पष्ट घोषणा की है कि खालसा-पंथ का उद्देश्य हिन्दू-धर्म की रक्षा है :
 सकल जगत महीं खालसा पंथ गाजे।
 जगै धर्म हिन्दू सकल भंड भाजे।।

खेद है कि डॉ. महीपसिंह (मुख्यतः कहानीकार) इन पंक्तियों को प्रात्ययिक नहीं मानते। तो, "देहि शिवा वर मांह" इत्यादि भी प्रक्षिप्त होंगे।

को भी भाई मनीसिंह ने जाने-अनजाने गोविन्दसिंह के कृतित्व में ही समाहित तो नहीं कर लिया? यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या 'राम', 'श्याम' 'काल' प्रभृति उपनाम अन्य कवियों के हैं? किन्तु एक तो इन प्रश्नों को किसी निर्विवाद आधार का अवलम्ब नहीं प्राप्त, दूसरे गुरु गोविन्दसिंह के काव्य पर शोध करनेवाले डॉ. महीपसिंह प्रायः सारे ग्रन्थों को गोविन्दसिंह कृत मानते 'ये' तथा अकाट्य न सही पर अच्छे तर्क भी देते थे। उनका गोविन्दसिंह को मुख्यतः वीररस का कवि मानना भी उचित है। उपलब्ध साहित्य के आधार पर गुरु गोविन्दसिंह का कवि-रूप निस्सन्देह उच्चकोटि का है। डॉ. प्रसिन्नी सहगल का उनके साहित्य में सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् की त्रिवेणी का दर्शन समीचीन है। जहाँ तक वीररस का सम्बन्ध है, "जब आव' की औध² निदान³ बने अति ही रन में तब जूझि मरौं" का क्षत्रिय' कवि निस्सन्देह भूषण एवं चंद्रवरदायी के अनन्तर तथा सूदन एवं चंद्रशेखर वाजपेयी के साथ-साथ अमर-अमर हो ही चुका है। उनकी ब्रजभाषा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को भी 'प्रौढ़ साहित्यिक' लगी है, जिन्होंने (पता नहीं किस आधार पर), 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में उनके सुनीतिप्रकाश, सर्वलोहप्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धिसागर एवं चण्डीचरित्र का नामोल्लेख किया है।

गुरु गोविन्दसिंह की काव्यकृतियों में से चंडीचरित्र एवं रामावतार श्रेष्ठतम हैं। रामावतार स्फीत 'दशम-ग्रन्थ' का एक अंश है, जिसमें गोविन्दसिंह के अतिरिक्त 52 दरवारी कवियों की वाणी का समाहार प्राप्त होता है। विष्णु के 24 अवतारों को समर्पित 'दशम ग्रन्थ' में 'कृष्णावतार' का आकार (2492 छन्द) वृहत्तम है किन्तु कविता शिथिल है। इसमें कृष्ण के योद्धा-रूप का सुंदर चित्रण विशेष रूप से किया गया है, किन्तु लीला-प्रसंगों की उपेक्षा नहीं की गई। चंडी एवं राम का वीरत्व उनकी प्रकृति के विशेष अनुरूप था। वे राम को पूर्वज तो मानते ही थे, धनुर्बाण भी धारण करते थे। "अवर वासना नाहिं मुहि कर्मयुद्ध के चाई" एवं नानक-वंशावली के अंश के रूप में प्रचलित प्रस्तुत पंक्तियाँ भी मननीय हैं : यह हमारे बड़े हैं जुगाँ-जुगाँ अवतार।

सूरजबंसी रघु भया, रघुकुलबंसी राम।

रामचंद्र के दोय सुत, लउ-कुस ताही नाम॥

संग सखा सब तज गए, कोउ न निबहो साथ।

कहि नानक इस विपत में टेक एक रघुनाथ॥

रामावतार

यदि गुरु गोविन्दसिंह की एक श्रेष्ठतम रचना का नाम लेना हो तो वह 'रामावतार' ही हो सकती है क्योंकि 'चंडीचरित्र' में पारम्परिकता मात्र के दर्शन हो जाते हैं जबकि रामावतार में रामवंशज गुरु-कवि का मौलिक उत्साह भी दृग्गत होता रहता है : "धर्म चलावन, संत उवारन। दुष्ट समन को मूल उपारन" की आशा का पुनरोदय होता चलता है तथा सीता के भूमिलीन होने पर राम की योगसाधना द्वारा शरीरत्याग की प्रकरणवक्रता के अभूतपूर्व-अद्वितीय दर्शन होते हैं (रघुबर विन सिय न जियै, सिय विन जियै न राम)। रामावतार के श्रवण-गायन-महात्म्य का निरूपण करते हुए गुरु गोविन्दसिंह गोस्वामी तुलसीदास से भी प्रभावित है :

जो यह कथा सुनै अरु गावै। दूख पाप तिह निकट न आवै॥

बिसन भगत की ऐ फल होई। आधि-ब्याधि छुवै सकै न कोई॥

रामावतार की वीररसप्रधानता स्पष्ट है क्योंकि 664 छन्दों में 420 इसी रस में निबद्ध हैं। इसमें राम अभूतपूर्वतः परशुराम तक से एक भयावह योद्धा के सदृश संवाद करते हैं :

बोल कहे सु सहे द्विज जू, जुपै फेरि कहे तुपै प्रान गँवहौ।

बोलत ऐठ कहाँ सठ तूँ, सभ दाँत तुराइ अवै घरि जैहौ॥

धीरत बोलत हैं तुम कउ, जब भीर परी इक तीर चलैहौं।

वात सँभार कहौ मुख ते, इन बातन को अब हीं फल पैहौ॥

1. आयु।

2. अवधि।

3. अंततोगत्वा। अंततः। अंत।

4. सोढ़ी खत्री।

5. हंसराम, कुँवरेश, मंगल कवि, अमृतराय, नंदलाल, पंडित सुखदेव (पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र), आलम (अकबरकालीन आलम एवं मुअज्जम-आश्रित आलम से भिन्न), वृन्द (नीतिकाव्यकार वृन्द से भिन्न) इत्यादि।

प्रस्तुत सवैया शक्ति-शील-सौन्दर्य-प्रयाग राम के शाश्वत व्यक्तित्व से भिन्न है, जिसमें जगनिक की सम्वाद-शैली एवं भूषण की कटूक्ति-शैली के दर्शन अधिक होते हैं। इसमें गुरु गोविन्दसिंह का स्पष्टवादी कठोर वीर-व्यक्तित्व ही अभिव्यक्त हुआ प्रतीत होता है। किन्तु उनके राम की गूढ़-गहन ध्येयवादिता भरत के प्रति कथन से स्पष्ट है :

त्रयोदस बरख फिरि ऐहैं। जाहु हमें कछु काज किबै हैं।

यद्यपि काव्य कथा के अनुरूप अन्य रसों का भी समायोजन है किन्तु अंगीरस वीर ही है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

रोष भरे रण मों रघुराज कमान लै बाण अनेक चलाए।
वाजि गजी गजराज घने रथराज बने करि रौष उड़ाए।
जो दुख देह कटे सिय के हित ते रण आज प्रतच्छ दिखाए।
राजिवलोचन राजकुमार घनो रण घाल घने घर घाये।।

इस सवैये पर तुलसी की कवितावली के 'घने घर घालिहै' का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। यह छन्द "राम सरासन ते चले बान" इत्यादि का स्मरण कराता है :

श्री रघुनंदन की भुज ते जब घोर सरासन बाण उड़ाने।
भूमि अकास पताल चहुँ चक धूर रहे नहिं जात पछाने।।
तोर सनाह सुवाहन के तन आह करी नहिं पार पराने।
छेद करोटन ओटन कोट अटान मों जानकी बान पिछाने।।

ट्रिनीडाड के प्रसिद्ध हिन्दीसेवी एवं विद्वान् प्रो. हरिशंकर 'आदेश' के शब्दों में, "....गुरु गोविन्दसिंह ने दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदि छन्दों में रचित 'रामावतार' में अपना प्रयोजन² पूर्ण करने के साथ ही जनमनश्चर्या को ही अक्षुण्ण बनाए रखा है। पुनरपि, जिस प्रकार अन्य काव्य-जिनमें रामकथा चित्रित की गई है—भक्तिप्रधान काव्य हैं, इसे भक्तिप्रधान काव्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। 'रामावतार' वास्तव में उच्चकोटि का वीरकाव्य अथवा युद्धकाव्य है।"³

रामावतार का वनगमन-पूर्व-राम-सीता-संवाद अतीव उत्कृष्ट है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. घोर सिया! वन, तू सुकुमार, कहौ हमसे कसकै निवहै हैं।
गर्जत सिंह, डकारत कोल, भयानक भील लखै भ्रम ऐहैं।।
सूँकत साँप, बकारत बाघ, भकारत भूत, महादुख पैहैं।
तू सुकुमार रची करतार, बिचारि चलै, तुहि क्यों बन ऐहैं।।
2. सूल सहौं, तन सूक रहौं, पर सी न कहौं, सिर सूल सहौंगी।।
बाघ बुकार, फनीक फुकार, सुसीस गिरै पर सी न कहौंगी।।
बास कहा बनबास भलौ, नहि पास तजौं, पिय पाय गहौंगी।
हास कहा, इहुं दास⁴ सभै, गृह आस रौ पर मैं न रहौंगी।।

भाषा की दृष्टि से, अपूर्व ध्वनिपूर्ण शब्दों के प्रयोग के कारण, उपर्युक्त दोनों छन्द बहुत सफल हैं। भाव की दृष्टि से कवि ने वाल्मीकि, कालिदास (रघुवंशम्) एवं तुलसीदास का सक्षम उत्तराधिकार ग्रहण किया है।

रामावतार का प्रकरणवक्रता-संपन्न, रससंपन्न एवं भाषासंपन्न रूप गुरु गोविन्दसिंह को हिन्दी-रामकाव्य में तुलसी, केशव, मैथिलीशरण एवं निराला के अनन्तर एक उच्च कविरूप प्रदान करा देता है। विष्णुदास, पुरुषोत्तम, रामचरित उपाध्याय, नरेश मेहता, बालकृष्ण मिश्र, सोहनलाल 'रामरंग' इत्यादि उनकी समता नहीं कर पाते।

1. सीता द्वारा राम के बाण पहचानने की मौलिकता प्रशंस्य है।
2. 'धर्म चलावन, संत उबारन' का। व्यास एवं तुलसी से प्रेरित।
3. 'विश्व हिन्दी दर्शन' अक्टूबर 1986, पृष्ठ 24।
4. इहुं + उदास (यहाँ उदास)।

चंडीचरित्र

गुरु गोविन्दसिंह तन-मन से राममय थे, तो जीवन से चंडिकामय। उनका 'चंडीचरित्र' वीररस का एक श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य है, जिसमें प्राप्त दुर्गासप्तशती की कथा का आत्मशौर्य-पुलकित वर्णन उच्चकोटि का है। वे चण्डी को बलि देने में भी रुचि दखते थे, और उनकी बलि पशुक्षति नहीं करती थी, 'पंचपियारों' की सृष्टि करती थी। इस उत्कृष्ट वीरकाव्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कोप के चंड प्रचंड चढ़ी इत क्रोध कै धुम्र चढ़ै उत सैनी।
बान कृपानन मार मची, तब देवी लई बरछी कर पैनी।।
दौरि दई अरि के मुख में कटि ओंठ दये जिमु लोह के छैनी।
दंत गंगा जमुना तन स्याम सो लोहू बह्यो तिह माहि त्रिवेनी।।'
2. युद्ध कियौ महिषासुर दानव, देखत भानु चलै नहिं पंथा।
सोनसमूह चलयौ, लखिकै चतुरानन भूलि गए सब ग्रंथा।।
मांस निहारी कै गिद्ध रइँ, चटसार पढ़ैं जिसि वालक संथा।
सारसुती-तट लै भट-लोथ, सृगाल कि सिद्ध बनावत कंथा।।
3. वीर बली सरदार दयैत, सु क्रोध कै म्यान ते खड्ग निकारौ।
एक दयो तन चंडि प्रचंड कै, दूसर केहरि के सिर झारौ।।
चंडि सम्हारि तबै बलु धारि, लयौ गहि नारि², धरा पर मारौ।
ज्यों धुबिया सरिता-तट जाइकैं लै पट को पट साथ पछारौ³।।

शृंगार-वर्णन

प्रमुखतः वीररस के कवि होते हुए भी गुरु गोविन्दसिंह ने अपने स्फीत सृजन में शृंगाररस की कविता में भी थोड़ी-बहुत रुचि ली है :

1. विधं वाक वैणी। मृगीराज नैणी।
करं छीन देसी। परी पद्मनी सी।।
2. गोपिन को तन को छुटिगी सुधि डोलत हैं बन में जन बौरी।
एक उठै, इक भूमि गिरे, ब्रज की महरी इक आवती दौरी।।
आतुर है अति दूँढ़त है तिनके सिर की गिरगी सु पिछौरी।
कान्ह को ध्यान बसो मन में सोउ जान गहै पुन रुखन कौरी।।

समन्वित भक्ति-पद्धति

गुरु गोविन्दसिंह ने एक ओर निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार, शिव-शक्ति, राम-कृष्ण इत्यादि की विशद समन्वित-भक्तिपद्धति को विवृत कर शंकराचार्य, विद्यापति एवं तुलसीदास का उत्तराधिकार ग्रहण किया है, दूसरी ओर निर्वेदपरक भक्ति का वैसा सम्मान भी किया है जैसा यथासन्दर्भ कबीर, नानक, सूर, तुलसी इत्यादि ने भी। वे जीवन के विराटवादी द्रष्टा थे :

1. निर्जन निरूप हो कि सुंदर स्वरूप हो कि भूपन के भूप हो कि दानी महादान हो।
प्राण के बचेया, दूध-पूत के देवैया, रोग-सोग के मिटैया किधों मानी महामान हो।।
विद्या के बिचार हो कि अद्वैत-अवतार हो कि सुद्धता की मूर्ति, सिद्धता-सान हो।
जोवन के जाल हो कि कालहू के काल हो कि सनुन के लाल हो कि मित्रन के प्राण हो।।'
2. रे मन ऐसो करि सनिआसा।
बन के सदन सबै करि समुझौ मन ही माहि उदासा।।

1. उत्कृष्ट रूपक।

2. गर्दन।

3. यमक अलंकार का सुंदर प्रयोग।

4. उच्चस्तरीय सदेह-अलंकार।

3.

देहि शिवा! वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहू न डरौं।
न डरौं अरि सौं जब जाइ लरौं, निसचै करि अपनी जीति करौं।।
अरु सिख हौं अपने ही मन कउ इह लालच हौं गुन तउ उचरौं।।
जव आउ की औध निदान बनै अति ही रन में तव जूझि मरौं।।

गुरु गोविन्दसिंह एक विलक्षण महापुरुष थे। एक ओर वे नानक जैसे संतों के उत्तराधिकारी थे, दूसरी ओर शिवाजी जैसे देशभक्त के, तीसरी ओर भूषण-जैसे कवियों के। ऐसा त्रिविध व्यक्तित्व संसार के इतिहास में शायद ही मिले। उन पर कोटि-कोटि मानवों की श्रद्धा सर्वथा साधार है। कवयित्री सुभद्रा खुराना ने उन पर 21 सर्गीय 'जय गोविन्दम्' महाकाव्य की रचना की है। श्री वीरेन्द्रकुमार मिश्र ने उन पर 'गुरु गोविन्दसिंह' शीर्षक ऐतिहासिक नाटक लिखा है। श्री उदयभानु 'हंस' कृत 'सिपाही' के नायक वे ही हैं। वे वस्तुतः धीरोदात्त राम के सुयोग्य धीरोदात्त वंशज हैं।

घनश्याम¹ शुक्ल

घनश्याम शुक्ल (1680-1778 ई. असनी, जनपद फ़तेहपुर) का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो पाया किन्तु स्फुट छन्द मिलते हैं जिनमें वीर एवं शृंगार रसों के सुंदर एवं अलंकृत व्रजभाषा-काव्य के दर्शन होते हैं। 'विनोद' के अनुसार, इन्होंने 'सुरसुंदरी-प्रबन्ध' रचा था। उदाहरण देखें :

1.

पग मग धरत महीधर डिगत, डममगत पुहुमि चटकत फन सेस के।
उलटि पलटि खलभलत जलधि जल, कंपत अवलि अलकंस लंकंस के।।
कहै घनश्याम कछ मछ को कहल होत, हहल हहल होत महल सुरेस के।

2.

गढ़न दलत, मृगराजन मलत मद, अरत चलत गज बांधव नरेस के।।
चंद अरविन्द विम्ब विद्रुम फनिंद सुक, कुंदन गयंद कुंदकली निदरति है।
चंपा संपा संपुट कदलि घनस्याम कहाँ, कुकुंम को अंगराग अंगना करति है।।
केहरी कपोत पिक पल्लव कलिंदी घन, दरके निरखि दार्यो छतिया बरति है।
मेरे इन अंगन को नकल बनाई विधि, नकल बिलोके मोहिं कल न परति है।

गंजन

'कमरुद्दीनखाँ-हुलास' (1728 ई.)² शीर्षक मोहम्मदशाह रंगीले के समय के मुगल-ऐश्वर्य³ के द्योतक विलासमूलक वस्तुविधान से ऊभचूभ 327 छन्दों के काव्य के प्रणेता वज़ीर कमरुद्दीनखाँ के आश्रित काशी-निवासी धनाढ्य गुजराती-ब्राह्मण गंजन एकांगी-युगचित्रण के कवि हैं, सरस अनुभूति एवं प्रांजल अभिव्यक्ति के सहज-वैतालिक नहीं। मिश्रबन्धु ने गंजन को "एक वास्तविक सुकवि" माना है। इनकी कविता का तेवर उनका अपना है। जैसे आज के अनेक इतिहासकार, कवि, कलाकार इत्यादि धेला-छाप गद्दीधरों उर्फ़ जनधनतस्कर नेताओं को भी स्तुति करते नहीं थकते जैसे ही स्तुतिकर्ता अतीत के प्रत्येक काल में भी हुए हैं और गंजन इन्हीं में से एक थे। जब मुसलमान, विशेषतः सूफ़ी शायर, वजह-वेवज़ह शाहेवज़त वगैरह की निराधार तरीफ़ों के पुल बाँधने के लिए कुख्यात रहे तब आश्रयदाता का स्तुति करनेवालों पर शब्द-कुंतल लेकर बेतरह पिल पड़ना खालिस वेवकूफी है। गंजन को कमरुद्दीन खाँ ने बहुत धन दिया था। उन्होंने बहुत स्तुति भी की। प्रत्येक कवि न तुलसी हो सकता है, न कुम्भनदास। इनके ऐश्वर्य-चित्रण एवं विलास-व्यामोह का प्रभाव ग्वाल कवि एवं महाकवि पद्माकर तक पर पड़ा :

1. एक अन्य घनश्याम (1578 ई.) भी हुए हैं।

2. 'विनोद' में 1785 वि. दिया है, 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 1786 वि. तथा 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में हरिमोहन श्रीवास्तव ने 1730 ई. किन्तु चूँकि शुक्ल जी एवं श्रीवास्तव जी ने मिश्रबन्धु की सामग्री का ही क्रमशः संक्षेपण एवं अतिसंक्षेपण किया है, मिश्रबन्धु प्रायः रचना-अवलोकन करत थे अतः 1728 ई. ही ठीक लगता है।

3. नादिरशाह का आक्रमण 1739 ई. में हुआ, अहमदशाह अब्दाली का तदनंतर, सिखों-जाटों-मराठों के धावे तदनंतर अतः दिल्ली में अभी तक माल-टाल काफ़ी था।

मीना के महल जरवाफ दर परदा है, हलवी फनूसर में रोसनी चिराग की।
गुलगुली गितम गरकआव पग होत, जहाँ विछी मसनद लालन के दाग की।।
केती महतावमुखी खचित जवाहिन, गंजन सुकवि कहै बोरी अनुराग की।
एतमाददौला' कमरुद्दीनखॉ की महफिल, सिसिर में ग्रीषम बनाई वड़ भाग की।।

जब पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र, कविवर कालिदास त्रिवेदी, कवि सबलसिंह चौहान इत्यादि औरंगजेब की प्रशंसा कर सकते हैं, तब गंजन कमरुद्दीन खॉ की क्यों न करें?

भगवंतराय खींची

अनुपलब्ध 'रामायण', चर्चित 'हनुमत्-पचासा' एवं उपलब्ध 'हनुमत्-पचीसी' के ओजस्वी कवि असोथर (जनपद फतेहपुर, उ. प्र.) के राजा भगवंतराय खींची² या भगवंतसिंह (अवध के प्रथम नवाब-वज़ीर सआदतखॉ के साथ 1735 ई. में हुए युद्ध में वीरगति)³ अनेक कवियों के आश्रयदाता के रूप में भी अमर हैं। भगवंतराय खींची को लघु-भोज कहा जा सकता है, जिनके अवसान पर किसी कवि ने कहा था, "भूप भगवंत सुरलोक को सिधारो आजु, आजु कविगन को कलपतरु टूटि गो!"⁴ पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र अस्थायी रूप से एवं उनके शिष्य शंभुनाथ मिश्र प्रायः स्थायी रूप से इनके आश्रय में रहे। इनकी ओजमयी वीर-वाणी में उच्चस्तरीय कविता के दर्शन होते हैं :

1. सुख भरिपूर करै, दुखन को दूर करै, जीवन समूरि सो सजीवन सुधार की।
चिंता हरिवे को चिंतामनि-सी बिराजै, कामना को कामधेनु, सुधा संजुत सुमार की।
भनै भगवंत सूधी होत जेहि ओर होत साहिबी समृद्धि देखि परत उदार की।
जनमनरंजनी है, गंजनी विधा की, भयभंजनी नजरि अंजनी के ऐंडदारकी।।
2. विदित बिसाल ढाल भालु-कपि-जाल की है, ओट सुरपाल की है, तेज के तुमार की।
जाही सों चपेटि कै गिराए गिरि गढ़, जासों कठिन कपाट तोरे, लंकिनी सों मार की।।
भनै भगवंत जासों लागि-लागि भेंटै प्रभु, जाके त्रास लखन को छुभिता खुमार की।
औड़े ब्रह्म-अस्त्र की अवाती महातापी बंदों। युद्धमदमाती छाती पवनकुमार की।।

शंभुनाथ⁵ मिश्र

शंभुनाथ मिश्र (विद्यमानता 1810 ई.)⁵ एवं शंभुनाथ मिश्र (विद्यमानता 1814 ई.) से भिन्न 'रसकल्लोल', 'रसतरंगिणी' एवं 'अलंकार-दीपक' के प्रस्तोता आचार्य-कवि शंभुनाथ मिश्र (विद्यमानता 1749 ई.) साहित्येतिहासों में विवेचित किए गए हैं। 'विनोद'

1. मुगल-काल की एक बड़ी पदवी जो सबसे पहले जहाँगीर ने नूरजहाँ के चाप को प्रदान की थी। मिर्जा ग़यास बंग का 'नाम' ही एतमादुद्दौला हो गया, जिसका शानदार मक़बरा आगरा में यमुना के उस पार है जिसे 'अवशेष' के ललित-ऐतिहासिक निबन्धकार महाराजकुमार डॉ. रघुवीरसिंह ने 'सुंदरता में ताज का प्रतियोगी' माना है।
2. एक वंशज डॉ. महेन्द्रप्रताप सिंह ने इन पर शोधकार्य (भगवंतराय खींची और उनके मंडल के कवि) किया है, जो समग्रतः वस्तुपरक नहीं लगता। श्री विश्वेश्वरप्रसाद एवं श्री विश्वभरप्रसाद गुप्तबन्धु ने 'भगवंतराय खींची' शीर्षक खंडकाव्य रचा है तथा 'अनलप्रकाश' शीर्षक विशाल प्रबंधकाव्य में भी इन पर लिखा है।
3. 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में डॉ. रामफेर त्रिपाठी ने 'विनोद' के अनुसार काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की "खोज में इनका समय 1806 दिया है" जो ग़लत लगता है, क्योंकि यह 1749 ई. बनता है, इसी प्रकार हनुमत्-पचीसी का 'संवत् 1817 कहा गया है' भी ग़लत है क्योंकि यह 1760 ई. बनता है। 'खोज' करनेवालों ने सम्भवतः अनुकृति-काल को रचना-काल मान लिया था। आ. शुक्ल ने 1817 वि. को उठाकर 'विनोद' संकेतित त्रुटि दुहरा दी है।
4. अद्य धारा निराधारा, निरालंबा सरस्वती।
पंडिता: खंडिता: सति, भोजराज दिवं गतः।।
एवं
अद्य धारा सदाधारा, सदालंबा सरस्वती।
पंडिता: मंडिता: सति, भोजराज भुवं गतः।।
5. 'वैतालपचीसी भाषा', 'मुहूर्तचिंतामणि भाषा', 'जातक-चंद्रिका' एवं 'प्रेमसुमनमाल' के प्रस्तोता शंभुनाथ त्रिपाठी समकालीन से थे। यह भी सुखदेव मिश्र के शिष्य थे (दे. डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र कृत 'सुखदेव मिश्र : जीवन तथा कृतियाँ', पृष्ठ 67)।
6. यह शंभुनाथ मिश्र मुरादाबाद, जनपद उन्नाव के निवासी थे तथा इन्होंने 'राजकुमार-प्रबोध' रचा। आचार्य-कवि शंभुनाथ मिश्र भी उन्नाव या फ़तेहपुर जनपद के लगते हैं।

एवं तदाधृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में इन्हीं को स्थान प्राप्त है। इनकी रसतरंगिणी भानुदत्त कृत संस्कृत 'रसतरंगिणी' पर आधृत है। इन्होंने अपने आश्रयदाता भगवंतराय खींची (असोथर) की स्तुति ही अधिक की है। किन्तु इस प्रशस्ति से मुगल-वंश के प्रायः पतन के परिणामस्वरूप नवाबों की बढ़ती में छोटे-छोटे राजाओं तक के स्वतन्त्र-सा हो जाने का सूक्ष्म इतिहास विवृत होता है। इनके वीररस के परिणामस्वरूप नवाबों की बढ़ती में छोटे-छोटे राजाओं तक के स्वतन्त्र-सा हो जाने का सूक्ष्म इतिहास विवृत होता है। इनके वीररस के अच्छे वन पड़े हैं। रसतरंगिणी में इन्होंने पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र को अपना गुरु बताया है, जिनका जन्म कम्पिला (फर्रुखाबाद) में हुआ, जो असोथर में भी रहे तथा दौलतपुर (रायबरेली) में वसे। डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित के 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में प्राप्त विवरण के अनुसार शिव कवि (देवतहा, जनपद गोंडा) शंभुनाथ मिश्र के शिष्य थे। शम्भुनाथ मिश्र को मिश्रवन्धु ने पद्माकर-श्रेणी में माना है। 'विनोद' से ही नमूना पेश है :

आजु चतुरंग महाराज सेन साजत ही धौसा की धुकार धूरि परी मुँह माही के।
भय के अजीरन तें जीरन अजीर भए, सूल उठी उर में अमीर जाही ताही के
वीर खेत बीच बरछी लै बिरुझानो, इतै धीरज न रह्यो संभु कौन हू सिपाही के।
भूप भगवंत वीर गवाही कै खलक सब स्याही लाई बदन तमाम पातसाही के।।

सूदन

महान् जाट-योद्धा सूरजमल या सुजानसिंह पर विशाल काव्य 'सुजान-चरित्र' रचने वाले सूदन (रचना काल 1750 ई. के आस-पास) हिन्दी-वीरकाव्य के एक अमर सीमांत हैं। सूदन मथुरा के चौबे (चतुर्वेदी) थे, जिनके पिता का नाम वसंत था। सूदन सूरजमल के दरबारी कवि थे। कृषिप्रधान जाट जाति धर्मान्ध औरंगजेब की पाशविक दुर्नीतियों के कारण वीर जातियों में परिगणित हुई तथा चूड़ामणि, गोकुल, राजाराम जैसे नेताओं के कारण इतिहास-प्रसिद्ध हुई। सूरजमल वीर जाट जाति के इतिहास के सर्वश्रेष्ठ नायक एवं महापुरुष हुए हैं क्योंकि आधुनिक जातिवादी एवं पदलोलुप नेता इनकी समता नहीं कर सकते। हिंडन के युद्ध में विजयी होते-होते ये खेत रहे। इनकी समाधि दिल्ली के यमुना-पार क्षेत्र में है। राजाराम ने आगरे के आक्रमण के दौरान सिकंदरा-स्थित अकबर के मक़बरे से शव निकलवाकर जलवा डाला। सूरजमल ने तो आगरे के ताजमहल को मंदिर बना दिया होता, यदि पोंगा-पंडित लोग टाँग अड़ाने से बाज़ आ गए होते। ऐसे ही पोंगा-पंडित लोगों ने महाराज रणबीरसिंह और महाराज प्रतापसिंह (डोंगरा) के समय में कश्मीरी मुसलमान-बन्धुओं के हिन्दू-पुनरागमन को रोका था। महाराज सूरजमल पर डॉक्टर पी. सी. चण्डावत कृत 'महाराज सूरजमल और उनका युग' एवं डॉ. गिरीशचन्द्र द्विवेदी कृत 'मुगल-साम्राज्य के इतिहास में जाटों की भूमिका' शीर्षक शोधग्रन्थ पठनीय हैं। वैसे, प्रशासक एवं काँग्रेसी नेता कुँवर नटवरसिंह ने 'महाराजा सूरजमल : जीवन और इतिहास' (मूल ग्रंथ अंग्रेजी में : अनुवादकर्ता श्री विराज) शीर्षक ग्रन्थ लिखा है किन्तु वह स्वयं उनके जाट होने, महान् नायक के भरतपुर से संबद्ध होने तथा अतिव्यस्त होने के कारणों से वस्तुपरक एवं अध्यवसायपूर्ण नहीं हो पाया। सूरजमल अथवा सुजानसिंह एवं सुजानचरित्र का आकलन करते हुए मिश्रवन्धु कृत 'विनोद' के स्फीत विवरण के आधार पर 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, 'मोगल-साम्राज्य के गिरे दिनों में भरतपुर के जाट राजाओं का प्रभाव बढ़ा था वह इतिहास में प्रसिद्ध है। उन्होंने शाही महलों और खजानों को कई बार लूटा था। पानीपत की अन्तिम लड़ाई के सम्बन्ध में इतिहासज्ञों की धारणा है कि यदि पेशवा की सेना का संचालन भरतपुर के अनुभवी महाराज के कथनानुसार हुआ होता है और वे रूठकर न लौट आए होते तो मरहटों की हार कभी न होती। इतने ही से भरतपुरवालों के आतंक और प्रभाव का अनुमान हो सकता है। अतः सूदन को एक सच्चा और वीर चरित्रनायक मिल गया। 'सुजान-चरित्र' बहुत बड़ा ग्रन्थ है। इसमें संवत् 1802 से लेकर 1810 तक की घटनाओं का वर्णन है। अतः इसकी समाप्ति संवत् 1810 के दस-पन्द्रह वर्ष पीछे

1. सुखदेव मिश्र के वंशजों में शीतलादीन (प्रपौत्र) से स्व. गंगासागर मिश्र (जन्म 1910 ई.) एवं वर्तमान (1997 ई.) फूलचंद मिश्र 'चंद्र' तक अनेक कवियों की परंपरा विद्यमान है; इसमें एक शंभूरत्न मिश्र (देहांत 1920 ई.) भी हुए जिनका एक छन्द प्रस्तुत है :
वाला भवानी को ध्यान धरौं, निहंसक रहौं, बर दे मेरी वाला।
उच्च अस्थान निवास करौं, जहाँ पीपर पाँच हैं वृच्छ विसाला।।
सोभा बखान कहीं लौं करौं मनु बैठी त्रिकूट विराजति ज्वाला।
दोड़ कर जोरि कै संभु कहै अब तो मुझको बर दे मेरी वाला।।

(इस छन्द के बर शब्दों में बल एवं वरदान अर्थों के कारण यमक का अच्छा प्रयोग हुआ है तथा "मनु बैठी त्रिकूट विराजति ज्वाला" में लंका में शक्ति के अतिरिक्त आज्ञाचक्र या त्रिकुटि में ज्योति की सूक्ष्म विवृति हुई है जो उत्प्रेक्षा से अलंकृत है—कवि शाक्त थे; स्वयं सुखदेव मिश्र शाक्त थे।)

मानी जा सकती है। इस हिसाब से इनका कविताकाल संवत् 1820 के आसपास¹ माना जा सकता है। सूरजमल की वीरता की जो घटनाएँ कवि ने वर्णित की हैं वे कपोलकल्पित नहीं, ऐतिहासिक हैं। जैसे अहमदशाह बादशाह के सेनापति असदख़ाँ के फ़तहअली पर चढ़ाई करने पर सूरजमल का फ़तहअली के पक्ष में होकर असदख़ाँ का सैन्य नाश करना, मेवाड़, माँझगढ़ आदि जीतना, संवत् 1804² में जयपुर की ओर होकर मरहों को हटना, संवत् 1805 में बादशाही सेनापति सलावतख़ाँ वख़्शी को परास्त करना, संवत् 1806 में शाही वज़ीर सफ़्दरजंग मंसूर की सेना से मिलकर बंगश पठानों पर चढ़ाई करना, बादशाह से लड़कर दिल्ली लूटना, इत्यादि-इत्यादि। इन सब बातों के विचार से 'सुजान-चरित्र' का ऐतिहासिक महत्त्व भी बहुत कुछ है।³

'सुजानचरित्र' आद्यंत-व्यवस्थित काव्य नहीं है। यह सात 'जंगों' का वृत्त प्रस्तुत करता है। अनेक भाषाओं और छन्दों का प्रयोग रोचक तो है, पर गम्भीर नहीं। सूदन के द्वारा प्रशांत चरित्रचित्रण एवं रसनिष्पत्ति पर वर्णन-वैविध्य एवं वस्तुवाहुल्य को बरीयता प्रदान करने के कारण काव्य का विशेष कलात्मक मूल्य नहीं सिद्ध हो पाता, किन्तु ऐतिहासिक महत्त्व स्वयंसिद्ध है। सूदन के प्रस्थान-आलोचक मिश्रबन्धु ने 'सूदन-काल' द्वारा कवि को सम्मानित किया है। सूदन बहुज्ञ थे तथा बहुज्ञता के अत्यधिक प्रदर्शन में अत्यधिक रुचि रखते थे। आरम्भ में 175 कवियों का नामोल्लेख, यत्र-तत्र-सर्वत्र नाना देशवासियों, जातियों, अश्वों, अस्त्र-शस्त्रों इत्यादि का व्योरा तत्कालीन जीवन का विश्वकोष तो बन सकता है, काव्यकोष नहीं। फिर भी, काव्य रोचक अवश्य है :

1. बखत बिलंद तेरी दुंदुभी धुकारन सों दुंद दवि जात, देस-देस सुख जाही के।
दिन-दिन दूनों महिमंडल प्रताप होत, सूदन दुनी में ऐसे बखत न काही के।।
उद्धत सुजान सुत बुद्धि बलवान सुनि दिल्ली के दरनि वाजें आवन उछाही के।
जाही के भरोसे अब तखत उमाही करें, पाही से खरे हैं जो सिपाही पातसाही के।
2. सोनित अरघ ढारि, लुथ जुथ पाँवड़े दै, दारूधूम धूपदीप, रंजक की ज्वालिका।
चरबी को चंदन, पुहुप पल³-टूकन के, अच्छत अखंड गोला-गोलिन की चालिका।।
नैबेद्य नीकों साहि-सहित दिली को दल, कामना बिचारी मनसूर⁴ पन-पालिका।
कोटरा के निकट बिकट जंग जोरि सूजा, भली विधि पूजा कै प्रसन्न कीन्ही कालिका।।
3. धड़दधरं धड़दधरं भड़भभरं भड़भभरं। तड़तत्तरं तड़तत्तरं कड़कक्करं कड़कक्करं।।
घड़घघरं घड़घघरं झड़झजरं झड़झजरं। अरररं अरररं सरररं सरररं।।
4. दब्यत छुत्थिनु अब्यत एक सुखब्यत से। चब्यत लोह अचब्यत सोनित गब्यत से।।
चुट्टित खुट्टित केस सुलुट्टित इक्क मही। जुट्टित फुट्टित सीस सुखुट्टित तेग गही।
कुट्टित घुट्टित काय बिछुट्टित प्रान सही। छुट्टित आयुध हुट्टित, गुट्टित देह दही।।
5. इसी गल्ल धरि कन्न में बकसी मुसक्याना। "हमनू बूझत है तुसी क्यों किया पयाना"।।
"उसी आवने भेदनू तूने नहिं जाना। साह अहम्मद⁵ ने मुझे अपना करि माना"।।

मिश्रबन्धु के अद्वितीय साहित्येतिहास 'विनोद' में सूदन द्वारा सुजानचरित्र में वर्णित 175 (चंदवरदाई एवं चंद के पृथक् होने के कारण 176) कवियों ने नाम इस प्रकार दिए गए हैं : केशव, किशोर, काशी, कुलपति, कालिदास, केहरि, कल्याण, करन, कुंदन, कविंद, कंचन, कमंच, कृष्ण, कनकसेन, केवल, करीम, कविराज⁶, कुँवर, केदार, खानखाना, खगपति, खेम, गंगापति, गंग, गिरिधरन, गयंद, गोप, गदाधर, गोपीनाथ, गोवर्द्धन, गोकुल, गुलाब, गोविंद, घनश्याम, घासीराम, नरहरि, नैन, नायक, नवल, नंद, निपट, नित्यानंद, नंदन,

1. 1763 ई.।

2. 1747 ई.।

3. मांस।

4. सफ़्दरजंग मंसूर।

5. (नामनिहाल बादशाह) अहमदशाह।

6. 'कविराज' पिंगलाचार्य सुखदेव मिश्र की पदवी है, पृथक् कवि-नाम नहीं। कहीं 'कविराज', कहीं 'सुखदेव', कहीं 'मिश्र सुखदेव' एक ही व्यक्ति की तीन छापें हैं जो पदवी, सामान्योल्लेख एवं पूर्णोल्लेख की सूचक मात्र हैं। कविराज नामक एक व्यक्ति हुए अवश्य हैं किन्तु उनकी रचनाएँ प्राप्त नहीं तथा वे परवर्ती (1824 ई. के आसपास) भी हैं। सुखदेव गोलापुरवाले, एवं सुखदेव कायस्थ साधारण रचनाकार हैं, 'कविराज' नहीं।

नरोत्तम, निहाल, नेही, नाहर, नेवाज, चंदवरदाई, चंद, चिंतामनि, चेतन, चतुर, चिरंजीवि, छीत, छवीले, जदुनाथ, जगाथ, जीव, जयकृष्ण, जसवंत, जगन, टीकाराम, टोडर, तुरत, तारापति, तेज, तुलसी, तिलोक, देव, दूलह, दयादेव, देवीदास, दूनाराय, दामोदर, धीरधर, धीर, धुरंधर, पुखी, पीत, पहलाद, पाती, प्रेम, परमानंद, परम, पर्वत, प्रेमी, परसोत्तम, बिहारी, बान, वीरवल, वीर, विजय, वालकृष्ण, वलभद्र, बल्लभ, वृंद, वृंदावन, वंशीधर, ब्रह्म, बसंत, राव-बुद्ध, भूषण, भूधर, मुकुंद, मनिकंठ, माधव, मतिराम, मलूकदास, मोहन, मंडन, मुवारक, मुनीस, मकरंद, मान, मुरली, मदन, मित्र, अक्षर अनन्य, अग्र, आलम, अमर, अहमद, आजमख़ाँ, इच्छाराम, ईसुर, उमापति, उदय, ऊधौ, उधृत, उदयनाथ, राधाकृष्ण, रघुराय, रमापति, रामकृष्ण, राम, रहीम², रणछोर राय, लीलाधर, नीलकंठ, लोकनाथ, लीलापति, लोकपति, लोकमनि, लाल, लच्छ, लच्छी, सूरदास, सिरोमनि, सदानंद, सुंदर, सुखदेव, सोमनाथ, सूरज, सनेही³, सेख, श्यामलाल, साहेब, सुमेर, शिवदास, शिवराम, सेनापति, सूरति, सबसुख, सुखलाल, श्रीधर, सबलसिंह, श्रीपति, हरिप्रसाद, हरिदास, हरिवंश, हरिहर, हरी, हीरा, हुसेनी और हितराम। मेरी समझ में, 'सुजान-चरित्र की कवि-नामावली' शोध का एक उत्कृष्ट किन्तु जटिल विषय है।

रतन कवि⁴

'फ़तेह-भूषण', 'फ़तेह-प्रकाश'⁵ एवं 'अलंकार-दर्पण' के सक्षम शास्त्रीयकाव्यकार रतन कवि (जन्म 1761 ई.) ने सम्भवतः 'चूक-विवेक' एवं 'विष्णुपद' ग्रन्थ भी रचे थे। आश्रयदाता-प्रशस्ति के अतिरेक के बावजूद रतन कवि आचार्य एवं कवि दोनों रूपों में स्मरणीय हैं। वीर एवं शृंगार रसों की छंदरचना में उन्हें अच्छी सफलता मिली है। 'विनोद' एवं तदनुवर्ती 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में इनके दो सुन्दर उद्धरण दिए गए हैं :

1. बैरिन की बाहिनी को भीषम निदाघ-रबि, कुबलय-केलि को सरस सुधाकरु है।
दान झरि सिंधुर है, जग को बसुंधर है, बिबुध कुलनि को फलित कामतरु है।।
पानिप मानिन को रतन रतनाकर, कुबेर पुन्य जननि को छमा महिधरु है।
अंग को सनाह बनराह को रमा को नाह, महाबाहु फतेसाह एकै नर वरु है।।
2. काजर की कोर वारे भारे अनियारे नैन, कारे सटकारे बार छहरे छवानि छवै।
स्याम सारी भीतर भरक गोरे गातन की, ओपबारी न्यारी रही वदन उज्यारी वै।।
मृगमद-बेंदी भाल में दी, याही आभरन, हरन हिये की तू है रंभा रति ही कवै।
नीके नथुनी के तैसे सुंदर सुहात मोती, चंद पर चै रहे सु मानौ सुधा-बुंद दवै।।

3. रामकाव्य

शास्त्रीयकालीन रामकाव्य पर्याप्त संपन्न है। हिन्दी में यदि कोई काव्य-परंपरा ऐसी है जो संक्रान्तिकाल से बौद्धिककाल तक, वस्तुतः आदि से अब तक, अप्रतिहत-अनवरत रूप से गतिशील रही है तो वह केवल रामकाव्य-परंपरा है, जिसे संक्रान्तिकाल में स्वयंभू इत्यादि, पुनरुत्थानकाल में तुलसी इत्यादि, शास्त्रीयकाल में केशव इत्यादि तथा बौद्धिककाल में मैथिलीशरण इत्यादि ने संपन्न किया है। इसमें आश्चर्य ही क्या—कविता का जन्म ही रामकाव्य (आदिकवि वाल्मीकि के आदिकाव्य रामायण) से हुआ था। रामायण के कुछ प्राचीन अंश ईसा-पूर्व ग्यारहवीं शताब्दी⁶ के हैं जबकि होमर कृत इलिअड और ओडिसी ईसा-पूर्व नवीं शताब्दी⁷ के। समुद्र-गर्भ में विलीन

1. वीरबल का ही उपनाम, पृथक् कवि-नाम नहीं।
2. खानखाना की पदवी रहीम की है, अतः वही दोबरा गिना दिए गए हैं।
3. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' से स्पष्टतः भिन्न।
4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 में डॉ. रामफेर त्रिपाठी ने तीन रतन कवियों की चर्चा की है : रसमंजरी (भानुदत्त-कृत संस्कृत-ग्रन्थ के अनुवादक रतन-कवि, जन्म 1861 ई.) एवं रतन कवि (ब्राह्मण, काशी के, जन्म 1848 ई.) दो अन्य बताए हैं। डॉ. त्रिपाठी का इन रतन कवि का विवरण (विशेषतः तिथियाँ) 'विनोद' (मिश्रबन्धु) एवं 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (शुक्ल) का त्रुटि-निराकरण करने के कारण भी प्रशंस्य है।
5. श्रीनगर (उ. प्र.) के राजा फ़तेहशाह बुदेला (राज्यकाल 1684-1716 ई.)
6. डॉ. नरेन्द्र सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश'।
7. मेरा ग्रन्थ 'विश्वकवि होमर और उनके काव्य'।

द्वारिका के अन्वेषण ने सिद्ध कर दिया है कि महाभारत-काल कम-से-कम ईसा पूर्व पंद्रहवीं शताब्दी का है और महाभारत में राम पुरातन-पुरुष के रूप में बारंबार उल्लिखित हैं। द्रौप का युद्ध ईसा-पूर्व 1193 से 1183 तक (दस वर्ष) चला था। महाभारत का इससे कम-से-कम तीन सौ साल पहले होना शोधसिद्ध है जो अठारह सौ साल पहले का माना जाता है। रामायण में प्रक्षिप्त अंश बहुत हैं। किन्तु उसके युद्ध का स्तर (जिसमें पत्थर चलते हैं, शाखाओं का प्रयोग होता है, हनुमान् के कंधों पर बैठकर राम एवं लक्ष्मण युद्ध करते हैं—इत्यादि) महाभारत एवं एलिअड से प्राचीनतर काल की सूचना देता है। आदि-वाल्मीकि (राम-समकालीन) कृत रामायण गिल्यामेश (लगभग साढ़ेचार-हजार पूर्व का महाकाव्य) से भी प्राचीन लगता है जो सुदीर्घ काल तक मौखिक अथवा लोककाव्य के रूप में प्रचलित रहने के बाद आज से तीन हजार वर्षों से कुछ पूर्व की वाल्मीकि-परंपरा के किसी वाल्मीकि द्वारा व्यवस्थित किया गया था तथा जिसमें कम-से-कम डेढ़ हजार वर्षों तक प्रक्षेपण किया जाता रहा। अश्वघोष (बुद्धचरितम्) एवं कालिदास (रघुवंशम्) पर रामायण का प्रभाव स्पष्टतः दृग्गत होता है।

शास्त्रीयकालीन रामकाव्य दो रूपों में प्राप्त होता है : केशवदास, सेनापति, गुरु गोविन्दसिंह, सरजूराम पंडित, मधुसूदनदास, विश्वनाथसिंह जू देव, पद्माकर इत्यादि की आर्ष-परंपरा पर रचित उदात्तकाव्य तथा रामप्रियाशरण, जानकीरसिक अली¹ जनकराजकिशोरीशरण, प्रेमसखी, रसिकबिहारी, रघुनाथदास, हेमलता, रघुनाथदास रामसनेही, वनादास इत्यादि की रसिक²-परंपरा पर रचित मधु-काव्य। इनमें उदात्त-काव्य ही विशेष उल्लेखनीय है। मधुर-रामकाव्य तो मधुर-कृष्णकाव्य की एक रामकाव्य की मूल प्रकृति से मेल न खानेवाली प्रतिक्रिया का प्रतिफल मात्र है।

शास्त्रीयकाल के कवियों ने रामचंद्रिका (केशव), कवित्त-रत्नाकर (सेनापति), रामावतार (गुरु गोविन्दसिंह), आनंद-रामायण एवं आनंदरघुनंदन-नाटक इत्यादि (विश्वनाथसिंह जू देव), रामरसतरंगिणी एवं रघुवरकरुणाभरण इत्यादि (जनकराजकिशोरीशरण³), जैमिनिपुराण भाषा (सरजूराम पंडित), हनुमत्-पचीसी (भगवंतराय खींची), रामाश्वमेध (मधुसूदनदास), हनुमत्-छबीसी एवं सुंदरकांड (मनियारसिंह), रामरसायन (पद्माकर), लक्ष्मणशतक एवं हनुमान्-नखशिख तथा हनुमान्-पंचक एवं हनुमान्-पचीसी (खुमान) इत्यादि के द्वारा रामकाव्य में महान् योगदान किया है। बौद्धिककाल के संधियुग तक इनमें से अनेक कवि रामकाव्य की रचना करते रहे। नवलसिंह कायस्थ ने रामचंद्रविलास, अध्यात्म-रामायण, रूपक-रामायण, सीता-स्वयंवर, रामविवाह-खंड, मिथिला-खंड, रामायण-सुमिरनी और आल्हा-रामायण इत्यादि तो संधियुग से सुधारवादी युग तक रचे, रामसहायदास ने राम-सतसई संधि-युग में ही रची, गिरिधरदास (गोपालचन्द्र) ने रामकथामृत, श्रीरामस्तोत्र, रामाष्टक, अद्भुतरामायण, वाल्मीकि-रामायण (पद्मानुवाद) इत्यादि की रचना संधि-युग में ही की। मधुर-रामकाव्य की रचना भी सुधारवादी युग, आदर्शवादी युग, स्वच्छंदतावादी युग एवं यथार्थवादी युग में भी अर्थात् आज तक होती आ रही है—जहाँ तक आर्ष-रामकाव्य का संबंध है, वह संप्रति सर्वाधिक परिमाण में रचा जा रहा है।

शास्त्रीयकालीन रामकाव्य की कुछ वहरंगी छटाएँ देखिए :

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
 दरशन देत, जिन्हें दरशन समुझै न, नेति-नेति कहै बेद छाँड़ि आनि युक्ति को।।
 जानि यह केसोदास अनुदिन राम-राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
 रूप देहि अणिमाहि, गुण देहि गरिमाहि भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को।।
 (केशवदास)

ब्यापी देस-देस विस्व कीरति उज्यारी जाकी, सितै संग लीने जामैं केवल सुधाई है।
 सुर-नर-मुनि जाके दरस कौं तरसत, राखत न खर तेजै कला की निकाई है।।
 करन के जोर जीति लेत हैं निसा कलंकै, सेवक हैं तारे ताकी गनती न पाई है।
 राजा रामचंद अरु पून्हौं कौं उदित चंद सेनापति बरनी दुहु की समताई है।।
 (सेनापति)

1. अली, सखी।

2. डॉ. भगीरथ मिश्र सम्पादित 'रीतिकाव्य-नवनीत'।

3. इन्होंने 'तुलसीदास-चरित्र' भी लिखा था।

अनुराग के रंगनि रूप तरंगनि अंगनि ओष मनो उफनी ।
 कवि देव हिये सियरानी सबै सियरानी को देखि सुहाग सनी ।।
 बर धामन बाम चढ़ी वरसै मुसुकानि सुधा घनसार घनी ।
 सखियानि के आनन इंदुन ते अँखियान की बंदनवार तनी ।।
 (देव)

रोष भरे रण मों रघुनाथ कमान लै बाण अनेक चलाए ।
 बाजि गजी गजराज घने रथराज बने करि रौष उड़ाए ।।
 जो दुख देह कटे सिय के हित ते रण आज प्रतच्छ दिखाए ।
 राजिवलोचन राजकुमार घनो रण घाल घने घर घाये ।।
 श्रीरघुनंदन की भुज ते जव छेर सरासन बाण उड़ाने ।
 भूमि अकास पतार चहुँ चक्र घूर रहे नहीं जात पछाने ।।
 तोर सनाह सुवाहन के तन आह करी नहीं पार पराने ।
 छेद करोटन ओटन कोट-अटान मो जानकी वान पिछाने ।।

(गुरु गोविन्दसिंह¹)

बाजि गज सोर रथ सुतुर कतार जेते, प्यादे ऐड़वारे जे सबीह सरदार के ।
 कुँवर छबीले जे रसीले राजबंसवारे, सूर अनियारे अति प्यारे सरकार के ।।
 केते जातिवारे, केते-केते देसवारे, जीव स्वान सिंह आदि सैलवारे जे सिकार के ।
 डंका की धुकार द्वै सवार सबै एक बार, राज वार पार कार कोसलकुमार के ।।
 (विश्वनाथसिंह)

विदित बिसाल ढाल भालु-कपि-जाल की है, ओट सुरपाल की है तेज के तुमार की ।
 जाही सों चपेटि कै गिराए गिरि गढ़, जासों कठिन कपाट तोरे, लंकिनी सों मार की ।।
 भनै भगवंत जासों लागिन भेंटे प्रभु, जाके त्रास लखन को छुभिता खुमार की ।।
 औढ़े ब्रह्म-अस्त्र की अवांती महातापी, बंदों युद्ध-मद-माती छाती पवनकुमार की ।।
 (भगवंतराय खींची)

अभय कठोर बानी सुनि लछिमन जू की मारिबे को चाहि जो सुधारी खल तरवारि ।
 बीर हनुमंत तेहि गरजि सुहास करि उपटि पकरि ग्रीव भूमि लै परे पछारि ।।
 पुच्छ तैं लपेटि फेरि दंतन दरदराइ, नखन बकोटि चौंथि देत महि डारि-डारि ।
 उदर बिदारि मारि लुत्थन को टारि बीर, जैसे मृगराज गजराज डारै फारि-फारि ।।
 (मनियारसिंह)

आयो इंद्रजीत दसकंध को निबंध, बोल्यो रामबन्धु सो प्रबन्ध किरवान को ।
 कौ है अंशुमाल, को है काल विकराल, मेरे सामुहें भए न रहै मान महेसान को ।।
 तू तौ सुकुमार यार लखनकुमार! मेरी मार बेसुमार, को सहेया घमासान को ।
 वीर ना चितैया, रनमंडल जितैया, काल कहर बितैया, हौं जितैया मधवान को ।।
 (खुमान)

मानुस को तन पाय अन्हाय अघाय पियो किन गंग को पानी ।
 भाषत क्यों न भयो पदमाकर राम ही राम रसायन बानी ।।
 सारँगपानि के पायन सों तजि कै मन को कत होत गुमानी ।
 मोटी मुचंड महामतवारिनि मूड पै मीच फिरै मड़रानी ।।

1. गुरु गोविन्दसिंह ने अयोध्या में रामजन्मभूमि की मुक्ति के हेतु युद्ध भी किया था ।

आस-वस, वास-वस, विविध विलास-वस वासना बड़ी को सुर-त्रासन-लौं हरिहो।
कहै पद्माकर त्यों अधम अजामिल-लौं औगुन हमारे गुन मानि ही तौ धरिहो।।
गुह पर, गोध पर, गनिका, गयंद पर जाही द्वार द्वरे तब ताही द्वार ढरिहो।
हवै रहौं तिहारे चरनन ही को चरो, कहूँ ऐसो मन मेरो कब मेरे राम! करिहो।।

(पद्माकर)

प्रमुख कवि

तुकाराम

ज्ञानेश्वर और नामदेव के प्राचीन महाराष्ट्र ने 17वीं सदी में जिस महान् और अभूतपूर्व नवजागरणकाल का विकास किया उसके नेता संत तुकाराम, महात्मा एकनाथ, समर्थ रामदास, दादाजी कोणदेव एवं छत्रपति शिवाजी थे। मराठी-अभंगों के लिए विख्यात संत तुकाराम (1568-1649 ई.) एक प्रभावी हिन्दी-कवि भी हैं, जिनका कृतित्व खड़ीबोली का माना जा सकता है। तुकाराम की रामनाममयी हिन्दी-कविता भाषालालित्यहीन एवं छंदभंगदोषाच्छन्न होते हुए भी ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। इस महान् शूद्र संत ने नामदेव (दर्जी), रैदास (चमार), कबीर (मुसलमान जुलाहा), धना (जाट), सन (नाई), सदन (कसाई), दादू (धुनिया), नाभादास (डोम) इत्यादि के सदृश समग्र राष्ट्र का सम्मान प्राप्त किया था, जिससे यह स्पष्ट होता है कि जातिप्रथा के वावजूद भारतीय समाज जड़ नहीं रहा। भारत में महिमा का आदर सदैव हुआ है। तुकाराम के अनुज कान्होबा भी सन्त-कवि थे। पंढरपुर ही तुकाराम के भागवतधर्मान्तर्गत बारकरी-पंथ का भी तीर्थ है। मिश्रवन्धु का तुकाराम के प्रति अतिरंजित और निराधार श्रद्धा भी मननीय है : “इनके चरित्र में हिन्दी कवि-सम्राट् महात्मा तुलसीदासजी और साहित्यसूर्य सूरदास जी की प्रतिभा का संयुक्त रूप विद्यमान कहा जाता है।” उदाहरण प्रस्तुत है :

1. तुका बड़ो वह ना तुलै जाहि पास बहु दाम।
बलिहारी वा वदन की जेहि ते निकसे राम।।
2. लोभी के चित धन वसे, कामी के चित काम।
माता के चित सुत वसे, तूका के चित राम।।
3. क्या गाऊँ कोई सुननेवाला। देखें तो सब जग मतवाला।।
खेलो अपने रामहि साथ। जैसी वैसी कर रहें माथ।
कहाँ से लाऊँ मधुरी बानी। रीझे ऐसी लोक विरानी।।
गिरिधरलाल भाव का भूखा, राग, कला नहिं जानत तूका।।

हृदयराम¹

हिन्दी के स्फीत हनुमान्-काव्य में रामानन्द (आरती), तुलसीदास (रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, हनुमानवाहुक, हनुमानचालीसा, हनुमानअष्टक), बलभद्र मिश्र (हनुमन्नाटक), हृदयराम (हनुमन्नाटक), रायमल्ल पांडेय (हनुमच्चरित्र), भगवंतराय खींची (हनुमतपचीसी), मनियारसिंह (हनुमतछब्बीसी), खुमान कवि (हनुमत-नखशिख-पंचक) एवं ‘हनुमानपचीसी’, कालीकवि (हनुमतपताका), डॉ. कुँवर चंद्रप्रकाशसिंह (रामदूत एवं संकटमोचन काव्यद्वय), संतकुमार टंडन ‘रसिक’ (नमन) इत्यादि के नाम अग्रगण्य हैं। प्रयाग से ‘श्रीरामदूत’ पत्रिका निकलती है। हनुमान् का संमान चीन (माओ त्से-तुंग हनुमान् के भक्त थे जिन्होंने ‘महाकपिराज’ जैसी कविताएँ भी लिखी हैं, जिनके हिन्दी-अनुवाद भी हो चुके हैं), जापान, मलेसिया, हिंदिसिया इत्यादि तक प्रसरित है तथा वे धर्मो-मजहबों-वादों की सीमा से ऊपर उठे विश्व-देवता हैं (मारग्रेटे थैचर भी उनकी भक्त हैं)।

हृदयराम कृत ‘हनुमन्नाटक’ (1623 ई.) एक उत्कृष्ट प्रबन्धनाटक है, जिस पर दामोदर मिश्र प्रणीत संस्कृत के ‘हनुमन्नाटक’² का यत्किंचित् प्रभाव ही दृग्गत होता है क्योंकि कवि ने संभवतः तुलसी से प्रेरित होकर मर्यादावाद को प्रश्रय दिया है तथा कथा में

1. हृदयराम भल्ला, उपनाम ‘राम’ (‘हृदयराम पंजाबी’ के रूप में भी ख्यात)।

2. संस्कृत में मधुसूदनदास रचित अन्य ‘हनुमन्नाटक’ भी उपलब्ध हैं।

मानवीय सम्बेदनों को वरीयता प्रदान की है—वस्तुतः यह एक मौलिक कलाकृति है जिस पर यथास्थान वाल्मीकि, दामोदर मिश्र¹, तुलसीदास एवं केशवदास का प्रभाव भी पड़ा है। इसकी भाषा ललित (व्रज) एवं संवाद-शैली उत्कृष्ट है। हृदयराम का हिन्दी-रामकाव्यकारों में एक उच्च स्थान सुरक्षित है। मर्यादित अनुभूति-पक्ष एवं प्रभावी अभिव्यक्ति-पक्ष के कारण वे एक मौलिक कवि के रूप में स्मरणीय हैं। मिश्रबन्धु ने इनके 'बालचरित्र' एवं बदरीनारायण श्रीवास्तव ने 'सुदामाचरित्र' तथा 'रुक्मिणीमंगल' काव्यों का भी उल्लेख किया है। 'हनुमन्नाटक' से कुछ उद्धरण हैं :

1. बैरी-सिव जाग्यो, तकि तैसे पाछे लाग्यो, जैसे पारो जाय भाग्यो, देख सुंदर स्वरूप को।
लौंवी डग भरी, ठौर ठौर गिर परी, राम देखे जिह धरी, देखि रही मुख-रूप को।²
2. जानकी को मुख न बिलोक्यो, ताते कुंडल न जानत हों, बीर पाँव रघुराइ कै।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे ताते कंकन न देखे, बोल कह्यो सतभाइ के।।
पायँ के परिवे को जाते दास लछमन याते पहिचानत हैं भूषण जे पायँ के।
बिछुवा हैं आई अरु झँझ हैं आई जुग, नूपुर हैं तेई, राम जानत जराइ के।।³
3. “एहो हनू!” कह्यौ श्री रघुबीर, “कछू सुधि है सिय की छिति माँहीं?”
“है प्रभु! लंक कलंक विना, सु बसै तहँ रावन वाग की छाँही।।”
“जीवति है?” “कहिबेई को नाथ!” “सु क्यों न मरी हमतें बिछुराहीं?”
“प्राण बसै पदपंकज में, जम आवत है पर पावत नाहीं।।”

नरहरिदास⁴

‘रामचरित्रकथा’ (काकभुशुंडि-गरुड़-संवाद), ‘अहल्यापूर्वप्रसंग’, ‘अवतार-चरित्र’, ‘दशमस्कंध-भाषा’⁵, ‘नरसिंह-अवतार-कथा’ एवं ‘बानी’ के प्रमुखतः अवतारवादकवि एवं स्मरणीय रामकाव्यकार बारहट नरहरिदास (रचनाकाल 1650 ई. के इधर-उधर, टेलाग्राम, जोधपुर) का यथोचित सम्मान नहीं हो पाया। इन पर शोध की आवश्यकता है। यह सम्मान-योग्य सुकवि हैं। दो उदाहरण भी उक्त तथ्य को प्रमाणित कर सकते हैं :

1. या धवलागिरि वास वेष वरणी हंस वरं बाहनी।
या धवल अवतंस अंग अमलं कर वीण वाणी वरा।।
या धवल वसना विसाल नयनी स्यामं च सरलं कया।
सा अनुकंप्य सरस्वती सुवदना विद्या वरं दायिनी।।
2. यहि प्रकार कोसलकुमार ऋषि-नारि उधारिय।
इंद्र-धोख पति-शाप मोषि सिल-देह सुतारिय।।
पावन पदरज परस पाप परिहरि पुनीत भय⁶।
सुमन बरसि सुर गगन बर्नि जस गावत जय-जय।।

-
1. दामोदर मिश्र भोज (197-1052 ई.) की राजसभा के रत्नों में थे। इनका ‘हनुमन्नाटक’ इतना प्रसिद्ध हुआ कि इसे हनुमान-कृत एवं भोज-उद्धारप्राप्त माना जाने लगा (“रघुनाथ चरित हनुमंत कृत भूप भोज उद्धरिय जिसि।” —पृथ्वीराजरासो)।
 2. शूर्पखणा का मोह।
 3. वाल्मीकि-रामायण के इस महान् छन्द का छायानुवाद :
नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुंडले।
नूपुरे अभिजानामि, नित्यं पादाभिवंदनात्।।
 4. तुलसीदास के गुरु का नाम नरहरिदास प्रसिद्ध, यद्यपि वह नरहरिदास या जैसाकि उनके वंशज आज तक मानते हैं। नरहरि महापात्र (या बंटीजन) प्रसिद्ध हैं ही। असनी में एक भाट नरहरि कवि भी हुए हैं।
 5. श्रीमद्भागवत महापुराण के प्राणतत्त्व स्कीत दशमस्कंध का अनुवाद।
 6. हो गई।

जेहि चरन सरन नरहरि सुकवि विग्रह छेदि सकै न गनि ।
सोइ राम करन कारन समथ महाबाहु अवतार-मनि ॥

बाल अली¹

मधुररामोपासकों में अति-समादृत 'नेहप्रकाश' (1692 ई.) एवं 'सीतारामध्यानमंजरी' (1669 ई.) के प्रख्यात प्रेमी-कवि बाल अली (रचनाकाल 1669-1692 ई.)² ने 'सिद्धान्ततत्त्वदीपिका', 'दयालमंजरी', 'ग्याल-पहेली', 'प्रेम-पहेली', 'प्रेम-परीक्षा' एवं 'परतीत-परीक्षा' ग्रन्थ भी रचे हैं। इनका मधुरप्रेमतत्त्व-निरूपण स्मरणीय है तथा इनकी ब्रजभाषा ललित। जनकलाङ्गिरीशरण ने 'नेहप्रकाश' एवं 'सीतारामध्यानमंजरी' की टीकाएँ की हैं। मिश्रबन्धु ने बाल अली को तोष की श्रेणी का कवि माना है। उदाहरण :

नेह सरोवर कुँवर दोउ रहे फूल नव-कंजु। अनुरागी अलि-अलिन के लपटे लोचन मंजु ॥
स्याम बरन तन, सीस जरकसी³ पाग रही फबि। नव नीरज ते निकसि प्रात जनु जात भयो रबि ॥
श्रीमुख पर लिय झलक अलक अस लस घुँघुरारे। रहे घेरि नव कंज मध्य सौरभ मतबारे ॥
केसरि तिलक लालट पटल छवि परत विसेखै। ललिन कसौटी उपर मनहु नव कुंदन रेखै ॥

जानकीरसिकशरण

'अवधसागर' के रसिक-रामभक्त कवि जानकीरसिकशरण (कविताकाल 1703 ई. के आसपास) को रामाष्टयामकारों में शीर्षस्थ महत्त्व प्राप्त है। इन्होंने वनविलास, जलकेलि, रास, भोजन, शयन इत्यादि के सफीत वर्णन किए हैं, जिन्हें मिश्रबन्धु ने 'अच्छे' माना है। मधुरोपासना-विरोधी होने के कारण आ. शुक्ल ने इनका नाम तक लेना उचित नहीं समझा, किन्तु इनकी कविता उपेक्षणीय नहीं है :

1. रथ पर राजत रघुबर राम ।⁴
क्रीट मुकुट सिर, धनुष-वान कर, सोभा कोटिन काम ॥
स्याम गात केसरिया बानो, सिर पर मौर ललाम ।
वैजंती बनमाल लसै उर पदिक मध्य अभिराम ॥
मुख मयंक, सरसीरुह लोचन, हैं सबके सुखधाम ।
कुटिल अलक अतरन⁵ मैं भीनी दुहुँ दिसि छूटी स्याम ॥
कंबु कंठ मोतिन की माला, किंचिन कटि, दुतिदाम ।
रस माला यह रूप रसिक बर करहु हिए अभिराम ॥
2. झुकी लता हुम डार भूमि परसत सुखरासी। मनहु भए हुम लता इहाँ के तीरथबासी ॥
उड़ि-उड़ि परति विहार-थली की अँग-रज तिनके। लगे सुभग फल गुच्छ नवल दल पर हित जिनके ॥

रसिक अली⁶

'मिथिलाविहार', 'अष्टयाम', 'होरी', 'षट्कृतु-पदावली' इत्यादि के कवि रसिक अली (रचनाकाल 1753 ई. के आसपास) मधुररामकाव्यकारों में स्मरणीय हैं, जिनके पद और कवित्त साफ़-सुथरी भाषा में रचे गए हैं :

1. अली या अलि सखी-सम्प्रदाय का सूचक शब्द है। यह पुरुष थे। नाम था बालकृष्ण नायक।
2. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 (भगवतीप्रसाद सिंह)।
3. मुगल (पूर्ववर्ती तुर्क-पठान भी) प्रभाव, जिसके दर्शन सूर, तुलसी तक में होते हैं।
4. पुनरुक्तवदाभास। रघु के वंश में श्रेष्ठ। राम।
5. इत्रों। मुगल-प्रभाव।
6. अलि। सखी-सम्प्रदाय। यह पुरुष थे। रसिक सुमति (1718 ई. में विद्यमान), रसिक गोविंद (रचनाकाल 1792-1833 ई.), रसिक विहारी (जानकीप्रसाद, जन्म 1844 ई.) इत्यादि का स्मरण आता है। 'विनोद' में इन तीन के अतिरिक्त, रसिक, रसिक मुकुन्द, रसिक प्रीतम, रसिक शिरोमणि, रसिकदासजी स्वामी, रसिकविहारीनिदास, रसिक सुजान, रसिक विहारी (वर्णोठणों या बनीठनी), रसिकानंदलाल, रसिकराम, रसिकराय, ('रसिकपचीसी' इत्यादि वाले), रसिकराय ('द्वारिकाधीश चौरासी' वाले) नामक बारह अन्य (कुल सोलह), 'रसिकों' के नाम बिखरे मिलते हैं।

1. माई! घन-गरजन लगत सुहाई।
वन प्रमोद मोरन की सोरा चहुँ दिसि वन हरिआई।
रिमझिम बरसत दमकत दामिनि घन अँधियारी छाई।।
झिल्ली रव चातक रट कोकिल छिन-छिन कुटक मचाई।
तर द्रुम बकुल रसाल कदवन सोभा रहि अधिकाई।।
2. सोहे सीस प्यारी जू के चंद्रिता जटित नग, जगमग जोति भानु कोटि उजियारी है।
रतन किरिट राजै राघव सुजान सीस, उदित विदित कोटि तरनि तमारी है।।
दामिनी सघन घन बरन बिराजै दोऊ, नील पीत बसननि जटित किनारी है।
रसिकअली जू प्यारे राजते सिंगार कुंज, सुख या अमित पुंज छवि मोदकारी है।।

‘प्रेमीयमन’

‘अनेकार्थनाममाला’ (103 छन्द) के कवि ‘प्रेमीयमन’ (जन्म 1741 ई. दिल्ली) ने अपने ढंग से राम इत्यादि के क्लिष्ट अनेकार्थ-रूपकार्थ रचने में अच्छी सफलता प्राप्त की है। ‘प्रेमीयमन’ उपनाम प्रतीत होता है। राम और चंद्र के अनेकार्थ-रूपकार्थ देखें :

1. ईस नभ अस मृग मेरु धनु अरजुन संगी, देव सिंह अन्य सिंह गुच्छ आनिए।
दुंदुभी भँवर सठ अग्नि सूर सस अस्व, जम के कौतुक कला गीत चित्र ठानिए।।
जीव वासुदेव रिस गरुड़ गनेस काल, त्रिवली और मोतीमाल जलतंतु जानिए।
गजगति हंसगति नरगति त्रिया नदी, सित सीत गुरु ऊँट रहिमान मानिए।
2. चंद्रमन इस तार तारिका और कस्तूरी, चंदन और पृथ्वी गंगा ग्रंथन गहत है।
वानर और कुशलता ब्रजनाथ अवधपुरी, लंका साँप कामदेव जग में चहत है।।
खग रिपु ग्रहजन रवि मंडलौ प्रमान, मेघ इते शब्द चंद्रमाहु के लहत है।
चंद्रमा सुनर जानि भजो राम रहिमान, नाहिं तो तवा समान ताही को कहत है।।

ललकदास

‘सत्योपाख्यान’² एवं ‘भाषा केशलखण्ड’³ के स्मरणीय रामकाव्यकार महंत ललकदास (रचनाकाल 1765-1795 ई.) भँडौवाकार बेनी वंदीजन के अनुसार लखनऊ में रहते थे। संभव है कि ये रायबरेली जनपद के नानाकविसंबद्ध महान् डलमऊ या आसपास के मूल निवासी रहे हों, जहाँ के लोगों की बेनी ने कसकर खवर ली है तथा जहाँ ‘भागवत दशमसंबद्ध भाषा’ (तासी द्वारा फ्रेंच में अनूदित) के प्रणेता लालचदास एवं अन्य भक्त कवि लालनदास हो ही चुकें थे। इन्हें सब भूल चुके थे, मिश्रबन्धु ने इनको प्रतिष्ठित किया, शुक्ल ने उन्हीं की सामग्री को संक्षिप्ततः पुनर्प्रस्तुत, तथा सम्प्रति यह उत्कृष्ट कवि माने जाते हैं। डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह ने इनके काव्यों को ‘सत्योपाख्यान’ एवं ‘कोशलखण्ड’ ग्रन्थों का अनुवाद माना है। यदि यह सत्य हो तो भी उनके एक उत्कृष्ट कवि होने में सन्देह नहीं क्योंकि शास्त्रीयकाल प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अनुवादों का काल था। मिश्रबन्धु के अनुसार, “काव्यरचना बड़ी मनोहर है।” सत्योपाख्यान में राम के जन्म से विवाह तक की कथा और होली, जलकेलि इत्यादि का सरस वर्णन है जिसका परवर्ती रसिक कवियों पर प्रभाव पड़ा है। इनकी कविता वर्णनात्मक है किन्तु सवलसिंह चौहान (महाभारत-लेखक) के सदृश शुष्क नहीं। कवि की भाषा-शैली पर तुलसी छाप हैं :

धरि निजअंक राम को माता। लह्यो मोद लखि मुख, मृदु गाता।।
दंत-कुंद-मुकता-सम सोहै। बंधुजीव सम जीभ विमोहै।।

1. सखी।

2. दे. ‘विनोद’ एवं (तदाधृत) ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’।

3. दे. ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग-2 डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह ने ग्रन्थद्वय का रचनाकाल क्रमशः 1768 ई. एवं 1793 ई. दिया है।

किसलय सधर-अधर छवि छाजै। इंद्रनील सम गंड विराजै।।
 सुंदर चिवुक, नासिका सोहै। कुमकुम तिलक चिलक मन मोहै।।
 कामचाप-सम भृकुटि विराजै। अलक-कलित मुख अति छवि छाजै।।
 यहि विधि सकल राम के अंगा। लखि चूमति जननी सुख संगी।।

ख्यामदास

जगजीवन साहब के एक प्रमुख शिष्य ख्यामदास¹ कृत 'काशी-कांड' (1770 ई.)² एक विलक्षण उदारतावादी अध्यात्मकाव्य है, जिसमें निर्गुण-निराकार एवं सगुण-साकार, ज्ञान एवं भक्ति, योग एवं प्रेम सबका विशेष समाहार दृग्गत होता है तथा जिसकी प्रतीक-योजना भी प्रशस्य है। ख्यामदास की अद्वैत-दृष्टि कवीर, नानक इत्यादि ही नहीं प्रत्युत स्वयं उनके गुरु जगजीवन से भी विलक्षण है। वे ब्राह्मण को अपशब्द कहकर जातिवादी-हीनभावना का परिचय नहीं देते। तीर्थनिंदादि की अव्यावहारिक एवं व्यर्थपरिणामी वक्तृता से वंचते हैं तथा तुलसी से प्रभावित किन्तु स्वतन्त्र समग्र-अद्वैतदृष्टि³ का प्रतिपादन करते हैं। वैसे, उनकी गुरुभक्ति अप्रतिहत है। 'काशी-कांड' एक श्रेष्ठ अद्वैतवादी काव्य है। उदाहरण देखें :

नमो नमो गननायक, सचिताआनंद रूप। जो सुमिरे सब सिद्धिता, गैवो रूप अनूप।।
 वेदउँ गुरुपदकंज मग जेहि उर अंतर ध्यान। ताहि दरस दूखन दहइ अघ कटि घटि विलगान।।

नमो नमोनी अक्षरं, ब्रह्मा, विसुन, महेस।।...

कहेउ न अव लहिँ, कहिहौं सोई। सो मत समुझी विरला कोई।।
 सात दीप⁶ नौ खंड, एक एक ब्रह्मंड महैं।
 अदभुत अलख अखंड, कौन सकै लखि ताहि गति।।
 वई राम सब किरला कीन्हा। संतन हेत जन्म जग लीन्हा।।
 वई राम कंसासुर मारा। वई राम सब असुर सँहारा।।
 वई राम प्रह्लाद उबारा। वई राम हरिनाकुस मारा।
 वई राम पंडो पछ धारी। कौरो की सत बिलग निकारी।।
 वई राम लंकेस सँघारा। विभीषण के तिलक निकारा।।
 वई राम जिन वलि का छलेऊ। आधे पगहिं पीठि दल मलेऊ।।
 भक्त हेत हरि प्रगट निदाना। बहुतेन का हरि लीन्ह गुमान।।⁷

1. खेमजी ब्रजवासी एवं खेमदास बुंदेलखंडी ने 1598 ई. आसपास क्रमशः 'खेमजी की चिंतवनी' एवं 'सुख-संवाद' रचा। दादू के एक शिष्य खेम ने 1603 ई. के आसपास 'रंभा-शुक सम्वाद' प्रस्तुत किया। खीमराज चारण (जिनके नाम पर उदयपुर अंचल में खीमपुरा विद्यमान है) ने 1628 ई. के आसपास मुक्तक छन्द रचे। खेमरसिक (1712 ई.) के आसपास भक्तियोग गाए, अनंतर खेमदास कायस्थ (वाँदा) ने कुछ मुक्तककाव्य रचा। खेम नामक एक अन्य कवि ने 1840 ई. के लगभग 'भक्तिसारचंद्रिका' प्रस्तुत की, किन्तु इन सात क्षेममूलक अभिधानधारियों की तुलना में ख्यामदास का कृतित्व कहीं अधिक स्मरणीय है।
2. संवत कहिए अष्टदस-सत्ताइस पर लीन्ह। अगहन सुक्ला सप्तमी लिखि संपूरन कीन्ह।।
 'काशी-कांड' की पांडुलिपि महंत प्रभुदयालदास (करोरवा, लखनऊ) से प्राप्तकर श्री राजवहादुरसिंह 'महंत' ने स्वसंपादित मासिक 'भक्तशिरामणि' (रायबरेली) के जून 1989 में प्रकाशित की। दोनों महंत प्रशंसा के पात्र हैं।
3. (क) साध साध सब एक हैं द्वैत न जानै कोय।
 जोई द्वैत कै जानिहै नरक ताहि का होय।।
 प्रीति रीति जिन्ह एकहिं जाना। द्वैत न भाव, एकरस साना।।
4. जगजीवन जगतारना, तारेहु कोटि तेतीस।
 दास खयामहि कृपा करि भजन बकुसु बकसीस।।
5. 'पैराडाइज़ लॉस्ट' के महाकवि मिल्टन की गर्वोक्ति का स्मरण आता है : "थिंग्स अनूअटेम्प्टेड येट इन प्रोज़ ऑर राइम" (1/16)
6. दीप। (दीपक नहीं।)
7. कवीर का करारा उत्तर। तुलसी का अनुकरण।

मधुसूदनदास

‘रामाश्वमेध’ (1782 ई.) के रूप में स्फीत उत्तर-रामचरितमानस प्रस्तुत करनेवाले, ‘धर्माश्वमेध’—प्रस्तोता पुरुषोत्तम एवं रामकाव्य-सीमांत तुलसीदास के सुयोग्य उत्तराधिकारी मधुसूदनदास (इटावा-निवासी माथुर चौबे²) शास्त्रीयकालीन रामकाव्य के एक शीर्षस्थ कवि माने जा सकते हैं। मधुसूदनदास ने संस्कृतनिष्ठ एवं ब्रजपुटयुक्त अवधी का सफल प्रयोग किया है तथा अपने महाकाव्य को सुखांत रूप प्रदान करने में भी तुलसीदास का ही अनुसरण किया है।³ वे उच्चस्तरीय कवि हैं :

1. सिय-रघुपति पद-कंज पुनीता। प्रथमहि बंदन करौं सप्रीता।।
मृदु मंजुल सुंदर सब भाँती। ससि-कर सरस सुभग नख-पाँती।।
प्रणत कल्पतरु तर सब ओरा। दहन अज्ञ तम जन चित चोरा।।
जन मन मानस रसिक मराला। सुमिरत भंजन बिपति बिसाला।।
2. निरखि कालजित कोपि अपारा। बिरथ होय करि गदा प्रहारा।।
महा बेग युत आवै सोई। अष्टधातुमय जाय न जोई।।
अयुत भार भरि भार प्रमाना। देखिअ जमपति दंड समाना।।
देखि ताहि लव हनि इषु चंडा। कीन्हीं तुरत गदा त्रय खंडा।।
3. जिमि नभ मास मेघ समुदाई। बरसहिं बारि महा झरि लाई।।
तिमि प्रचंड सायक जनु ब्याला। हने कीस तन लव तेहि काला।।
भए बिकल अति पवनकुमारा। लगे करन तब हृदय बिचारा।।
यह अजीत बालक बरजोरा। अब न चलै कछु विक्रम मोरा।।
मैं सब भाँति भयों बेहाला। केहि बिधि उबरहूँ रन बिकराला।।
भाजि जाहु जो समर बिहाई। तौ प्रभु अग्र लाज अधिकाई।।
कहहिं सकल जन करि उपहासा। भजे मरुतसुत बालक त्रासा।।
पुनि कपीस मन कीन्ह बिचारा। कपट-मूरछा बिनु न उवारा।।

मनियारसिंह

पुष्पदन्त कृत ‘शिव-महिम्नस्तोत्रम्’ पर आधृत 35 छंदीय ‘भाषा-महिम्न’ (1784 ई.) के स्वतन्त्र अनुवादक तथा पार्वती पर आधृत 103 छंदीय ‘सौन्दर्य-लहरी’, यथानाम-तथागुण ‘हनुमत-छब्बीसी’ तथा 63 छंदीय ‘सुन्दरकाण्ड’ के प्रस्तोता भक्त-कवि काशी-वासी ठाकुर मनियारसिंह (उपनाम ‘यार’) शास्त्रीयकाल के रामकाव्यकारों में उल्लेखनीय हैं। उनकी संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा अस्मितानिष्पन्न है। उदाहरण देखें :

1. संबत वसु-दस सत सुनहु पुनि नव-तीस मिलाय।
बिदित मास आषाढ़ ऋतु पावस सुखद बनाय।।
स्पष्टतः 1839 वि.। मिश्रबन्धु के ‘विनोद’ में गलती से 1332 वि. आ गया है। शुक्ल के ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में ठीक दिया है।
2. महाकवि बिहारी भी माथुर चौबे थे। बिहारी, मधुसूदनदास, नवनीत, महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा, नवरत्न, माखनलाल, श्रीनारायण, बनारसीदास, परशुराम, सीताराम, जवाहरलाल, गजेन्द्रनाथ इत्यादि विभिन्न वर्गों के चौबे (चतुर्वेदी) हिन्दी की महान् सेवा कर चुके हैं। अन्य दिशाओं में भी उनकी उपलब्धियाँ उल्लेखनीय रही हैं।
3. वाल्मीकि-रामायण का समापन युद्धकाण्ड में ही कर दिया गया है तथा रामराज्य-वर्णन भी इसी में है जो भारतीय जीवन-दर्शन एवं काव्यशास्त्र-परंपरा के सुखांत-प्रतिपादन के भी अनुरूप है। उत्तरकाण्ड परवर्ती प्रक्षिप्त एवं अवैदिक कथाओं का विशृंखल संकलन है, जिसे तुलसीदास तक ने रामचरितमानस में कोई महत्त्व नहीं प्रदान किया। लवकुश-युद्धकल्पना, सीतात्याग-कल्पना, अशोभनीय शम्बूक-वध-कल्पना इत्यादि वाल्मीकि-कृत आर्ष-महाकाव्य के अनुरूप नहीं हैं। फिर भी, सम्भवतः गुप्तकाल-कल्पित उत्तरकाण्ड का प्रभाव कालिदास एवं भवभूति जैसे महाकवियों पर पड़ा है। अतः इस प्रकरण के कविय दोषी नहीं हैं। मधुसूदनदास ने कल्पित वृत्त तो ग्रहण किया, किन्तु तुलसी-प्रभाववश महाकाव्य को रखा सुखांत ही।

1. किंकिनी क्वनित, पद नूपुर रनित, अगनित सुवरन आभरन झनकार की।
दिव्य पट, भव्य भाल, कुमकुम-विपंक मुख, मंडल मयंक सोभा सरद सुधार की।।
'मनियार' बान धनु धारिनि सहित मणि, पास त्रास हारिनि सुप्रभा भुज चारि की।
दामिनि-सी देह-दुति, सर्वजग स्वामिनि, सो नैन-पथ-गामिनि हूँ भामिनि पुरारि की।।
2. अभय कठोर बानी सुनि लछिमनजू की। मारिबे को चाहि जो सुधारी खल तरवारि।
'यार' हनुमंत' तेहि गरजि सहास करि, डपटि, पकरि ग्रीव भूमि लै पै पछारि।।
पुच्छ ते लपेटि, फेरि दंतन दरदराइ, नखन बकोटि, चोथि लेत महि डारि-डारि।
उदर विदारि मारि लुत्थन को टारि वीर, जैसे मृगराज गजराज डारै फारि-फारि।।²
3. देख्यौ जाय गढ़ महादुर्गम अटूट, जाको नाम सुने पुरहूत पाँय थहरात हैं।।
कंचन-दिवारैं दीह, बुरज बलंद, चहुँ ओर घोर खंदक समुद्र घहरात हैं।।
'यार' कहै अति उच्च द्वार दुरापार डटे, कुलिस किंवार छवि-पुंज छहरात हैं।
छत्र मेघ-डंवर दिगंबर-निलय मानों अंबर लौं अरुन पताके फहरात हैं।।

खुमान³ बंदीजन 'मान'

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'मान' नाम या उपनाम वाले अनेक कवि हुए हैं : 1. मानराय बंदीजन (रचनाकाल 1553 ई.) जो अकबर के दरबारी कवियों में थे, 2. अकबर के एक प्रख्यात सेनापति (जो आमेर के राजा भारमल के पुत्र राधा भगवानदास के दत्तक पुत्र थे) राजा मानसिंह जो 'मान' उपनाम से कविता लिखते थे तथा जिन्होंने 'मानचित्र' शीर्षक जीवनी लिखवाई थी, 3. हरिगँव जिला खीरी के चौहान ठाकुर मानसिंह जिन्होंने 'अश्वमेध-पर्य' (1635 ई.) रचा, 4. मानदास ब्रजवासी जिन्होंने 'रामचरित्र' (1653 ई.) प्रस्तुत किया, 5. मान कवीरश्वर या मान कवि जिन्होंने मेवाड़-नरेश राजसिंह (राज्यकाल 1652-1680 ई.) पर 'राजविलास' (लाला भगवानदीन 'दीन' के द्वारा सुसम्पादित तथा काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा द्वारा 1912 ई. प्रकाशित) नामक उच्चस्तरीय ऐतिहासिक काव्य रचा तथा जिन्हें मिश्रबन्धु ने 'विनोद' (खण्ड 2) में 'साधारण श्रेणी' प्रदान की है किन्तु 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में डॉ. टीकमसिंह तोमर ने 'वीरकाव्यधारा के एक सफल तथा उच्चकोटि के कवि' के रूप में मान दिया है, 6. महावीरजी को नखशिख, हनुमानपचीसी, हनूनाटक एवं रामकूट-विस्तार के कवि मान जिनका उल्लेख 'सुजानचरित्र' में सूदन ने किया है जिससे समय 1697 ई. से पूर्व माना जा सकता है, 7. कृष्णकल्लोल (कृष्ण-खंड भाषा) के मान ब्राह्मण (बैसवाड़ा या बैसवारा वाले) जिनका कविताकाल 1761 ई. है, 8. विजयगढ़, उदयपुर के मानसिंह जैन (रचनाकाल 1765 ई.) जिन्होंने बिहारी सतसई की टीका लिखी, 9. मानसिंह (रचनाकाल 1772 ई.) जिन्होंने नरसिंहचरित्र एवं नरसिंहपचीसी लिखी (यह हनुमानपचीसी एवं हनूनाटक वाले मान कवि भी हो सकते हैं), 10. सिख-कवि मानसिंह जिन्होंने 'मोक्षदायक पंथ' (1778 ई.) रचा, 11. मानदास जिन्होंने कृष्णविलास (1806 ई.) प्रस्तुत किया, 12. रसकवितासंग्रह एवं ज्ञानसार के प्रस्तोता गुजरात के मानसिंह (रचनाकाल 1806 ई.), 13. रामचन्द्रिका के प्रस्तोता मान (रचनाकाल

1. 'हिन्दी का हनुमान्-काव्य' शोध का अच्छा विषय है, जिसे रामानन्द, तुलसीदास, केशवदास, हृदयराम, भगवंतराय खींची, मधुसूदनदास, मनियारसिंह, काली कवि, संतकुमार टंडन 'रसिक', डॉ. कुंवर चंद्रप्रकाशसिंह ('रामदूत' महाकाव्य तथा 'संकटमोचन' के कारण तुलसी के अनंतर प्रमुख हनुमानकाव्यकार) इत्यादि का कृतित्व प्राप्त है। यह भी अच्छा संयोग है कि वीरता-प्रसिद्ध ठाकुरों ने वीर-शिरोमणि हनुमान पर पर्याप्त लिखा है।
2. प्रायशः सिंह, हाथी, शैड इत्यादि पर आक्रमण नहीं करता तथा ये भी सिंह से बचते हैं, किन्तु साहित्यिक-सत्ता की विलक्षणता में हंस नीर-क्षीर विवेक करता है तथा मोती चुगता है, चकार अंगारे चुगता है, चातक केवल स्वाति नक्षत्र की वर्षा में जल पीता है, अशोक सोभाग्यवती सुंदरी के चरणप्रहार पर फूलता है; अतः प्रचलित।
3. मेवाड़ के इतिहास में तीन खुम्माण (खुमान) हुए हैं जिन्होंने चितौड़ का राजसिंहासन सुशोभित किया : खुम्माण प्रथम (राज्यकाल 753-78 ई.), खुम्माण द्वितीय (राज्यकाल 813-43 ई.) एवं खुम्माण तृतीय (राज्यकाल 908-93 ई.), जिनमें से खुम्माण द्वितीय पर दलपति विजय ने 'खुमानरासो' लिखा था जो नितांत प्रक्षिप्त रूप में होता है। लगता है, खुमान बंदीजन 'मान' के पूर्वज राजस्थानी चारण थे।
4. 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में 'संपादक के द्वारा 'कृष्णकल्लोल' नामक शृंगारिक काव्य के प्रणेता के रचयिता मान को सुखदेव मिश्र का काव्यगुरु माना गया है जो नितांत निराधार है क्योंकि इनका समय "18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध" लिखा है जबकि सुखदेव मिश्र पर्याप्त थे पूर्ववर्ती। "18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध" विनोद के 1818 वि. (1761 ई.) से टीपा गया है।

1820 ई.), तथा 14. जोधपुर-नरेश मानसिंह (राज्यकाल 1803-43 ई.) जिन्होंने 'रागाँ रो जीलो', 'श्रीनाथजी रा दूहा', 'रामविलास', 'जालंधरनाथजी रा चरित्र', 'नाथजी की वाणी', 'नाथकीर्तन', 'नाथमहिमा', 'नाथपुराण', 'नाथसंहिता', इत्यादि अनेक ग्रन्थ राजस्थानी एवं ब्रजभाषा दोनों में ही रचे तथा हिन्दी का अविस्मरणीय एवं स्फीत नाथकाव्यकार माना जा सकता है—खुमान बंदीजन 'मान' इन चौदह के अतिरिक्त हैं। मानसिंह 'द्विजदेव' तो बौद्धिककाल के संधियुग के प्रसिद्ध कवि हैं ही। 'हिन्दी साहित्य के सोलह मान' शोध की अपेक्षा रखते हैं। (वैसे, नंददास कृत मानमंजरी, 'मानलीला' परक तथा शृंगारिक 'मान'-परक अनेक रचनाएँ मिलती ही हैं)

चरखारी (बुंदेलखंड) के राजा विक्रमसिंह के आश्रित जन्मांध कवि खुमान बंदीजन 'मान' (कविता 1773-1823 ई.)¹ शास्त्रीय काल के एक उत्कृष्ण रामकाव्यकार थे, जिनके लक्ष्मणशतक, 'हनुमतपचीसी', 'हनुमतनखशिख', 'हनुमानपंचक' काव्य सानुप्रास ब्रजभाषा वीरकाव्य के उत्कृष्ट निदर्शन हैं। यह संस्कृत में भी कविता करते थे तथा इनका 'अमरप्रकाश' विक्रमादित्य (राज्यारोहण 57 ईसा-पूर्व) के एक सभारत्न अमरसिंह² के 'अमरकोश' का अनुवाद ही है। 'अष्टयाम' (अष्टजाम) में इन्होंने विक्रमसाहि की दिनचर्या प्रस्तुत की है, 'नीतिविधान' में दीवान पृथ्वीसिंह की प्रशस्ति की है, 'समरसार' (1795 ई.) में इन्होंने विक्रमसाहि की दिनचर्या प्रस्तुत की है, 'नीतिविधान' में दीवान पृथ्वीसिंह की है, 'समरसार' (1795 ई.) में राजकुमार धर्मपालसिंह द्वारा अंग्रेज-उच्चाधिकारी को वश में करने का वृत्त वर्णित है। खुमान काव्य-सर्जना का स्थायी स्मारक उनका 'लक्ष्मणशतक' शीर्षक 129 छंदीय³ उत्कृष्ट वीरकाव्य ही है, जिसकी रचना 1798 ई. में हुई थी। इस चिरस्मरणीय काव्य में प्राप्त लक्ष्मण-मेघवाद युद्ध का सरस-सानुप्रास वर्णन अतीव प्रभावी है :

1. भूप दसरथ को नवेलो, अलबेलो रन रेलो रूप, झेलो रन राकस-निकर को।
मान कवि कीरति उमंडी खलखंडी, चंडी पति सों घमंडी, कुलकंडी दिनकर को।।
इंद्रगज गंजन को भंजन प्रभंजन-तनै को मनरंजन निरंजन निभर-कौ।
रामगुनज्ञाता, मनवांछित को दाता, हरिदासन को त्राता, धनि भ्राता रघुवर को।।
2. आयो इंद्रजीत दसकंध को निबंध-बंध, वोल्हो रामवन्धु सों प्रबन्ध किरवान को।
को है अंसुमाल, को है काल विकराल, मेरे। सामुहे भए न रहे मान महेसान को।।
तू तौ सुकुमार यार लछनकुमार मेरी मार वेसुमार को सहैया घमासान को।।
वीर ना चितैया, रनमंडल रितैया, काल कहर वितैया, हौं जितैया मघवान को।।

4. कृष्णकाव्य

याज्ञवल्क्य एवं उद्दालक के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी कृष्ण विश्व में आत्मवाद के व्यापकतम एवं सर्वाधिक प्रभावी दार्शनिक हैं, जो लीलाविहारी एवं जननायक भी हैं, तथा अपने 'समग्र' में समग्र इतिहास की एक सर्वश्रेष्ठ विभूति के रूप में अजर-अमर हैं। द्वारिका के समुद्र-गर्भस्थ प्राचीनतम अवशेष उनका समय कम-से-कम 15वीं शताब्दी ईसा-पूर्व प्रमाणित करते हैं (किन्तु युगाब्द 5093 उन्हें इससे 1500 वर्ष पीछे ले जाता है—इतिहास अभी इतना विश्वसनीय नहीं हो पाया कि कोई प्रश्नचिह्नित प्राचीनतम-विन्दु निर्विवाद मान लिया जाए)। महाभारत में सिन्धु देश का उल्लेख है (जिसका राजा जयद्रथ दुर्योधन का वहनोई था)। सिन्धु-घाटी सभ्यता ई. पू. 3000 की मानी जाती है। वैसे रमेशचन्द्र मजूमदार ई. पू. 1500 तक खींचते हैं और इरफ़ान हबीब और किसी विन्दु पर न सही तो इस पर सहमत लगते हैं। किन्तु व्यापक मान्यताएँ 3000 ई. पू. की ही हैं। अतः कृष्ण का समय आज से 5000 वर्ष पूर्व का हो सकता है और युगाब्द सिद्ध भी करता है। अगले शोध इसे वैज्ञानिक दृष्टि से भी प्रमाणित कर सकेंगे। सिंधुघाटी को पूँजीवादी (व्यक्तिवादी) दर्शन के अपत्य साम्राज्यवाद के प्रतीक सर जॉन मार्शल इत्यादि ने बलात् द्रविड़ों से जोड़ा है : भूगोल, जलवायु, नृवंश, इतिहास, कुछ भी सिन्धु देश में द्रविड़ नहीं है, न हो सकता है। 1922-23 ई. में सिन्धुघाटी सभ्यता के वास्तविक अन्वेषक राखालदास बैनर्जी ने गोरों के घृणित राजनीतिमूलक पूर्वाग्रह के कारण स्वयं को इस कूटचक्र से पृथक् कर लिया था। मोहनजोदड़ो-हड़प्पा में प्राप्त वृषभ-मुद्रा, पशुपति-मुद्रा, विशाल स्नानागार

1. 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में डॉ. टीकमसिंह तोमर के अनुसार। डॉ. तोमर ने यह समय आ. शुक्ल कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के 1830-80 वि. पर आधृत किया है।
2. नाम के साथ 'सिंह' का प्रथम प्रयोग अमरसिंह में ही प्राप्त होता है, जिसका ऐतिहासिक महत्त्व है।
3. 'विनोद'।
4. रावणादि के शैव होने के कारण अप्रयुक्तत्व दोष।

स्वस्तिक-चिह्न इत्यादि इसे आर्यों से जोड़ते हैं। डॉ. फ़तहसिंह ने 'सिन्धु-लिपि रहस्योद्घाटन' में यही सिद्ध किया है। अट्ठासी वर्षीय जर्मन विद्वान् कुर्त शिल्डमान ने भी मोहनजोदड़ो की लिपि को पढ़ने का दावा करते हुए इसे संस्कृत पर आधृत बताया है (द्रविडी पर नहीं)। उन्होंने पेरू और अमेरिका की गुफाओं में संस्कृत के अभिलेख खोजे हैं तथा सिद्ध किया है कि भारतीय नाविक किसी भी अन्य से बहुत पहले इन क्षेत्रों में पहुँचे थे।¹ भिक्षु चमनलाल कृत अंग्रेज़ी-ग्रन्थ 'हिन्दू अमेरिका' में भी यही तक्ष्य प्रमाणित किया गया है। छांदोग्य उपनिषद् में देवकीपुत्र कृष्ण का उल्लेख एक जिज्ञासु के रूप में प्राप्त होता है। वासुदेव² कृष्ण नृवंश की दृष्टि से आर्य-अनार्य-समन्वय के वैसे ही प्रतीक हैं जैसे राम, भरत, अर्जुन (चारो श्याम-वर्ण के थे)। कृष्ण ने अनार्य-तत्त्वों में इंद्र की आलोचना के कारण भारी लोकप्रियता प्राप्त की, जिसके अनुकरण में बुद्ध और महावीर ने नास्तिक-मतप्रचारों द्वारा वेदालोचना की। वस्तुतः कृष्ण वेद के प्रथम आलोचक थे। पूर्व-पश्चिम भारतीय राष्ट्र के निर्माता एवं नेता कृष्ण ही थे (उत्तर-दक्षिण की एकता अगस्त्य, पुलस्त्य एवं परशुराम के कारण अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित होने के अनन्तर पुरुषोत्तम राम द्वारा फलीभूत हो ही चुकी थी)। राम ने आत्मप्रतिष्ठा का यत्न नहीं किया। कृष्ण ने किया। इसके कारण कृष्ण की पूजा राम की पूजा से पहले आरम्भ हुई। मधुरा (मधुपुर, मधुवन, मथुरा) के प्राचीन कृष्णजन्मस्थल (आज के कटरा केशवदेव) के उत्खनन यह प्रमाणित करते हैं कि यहाँ दो हजार वर्ष पूर्व एक यूनानी शासक ने वासुदेव की पूजा-अर्चना में देवालय बनवाया था। लगभग एक हजार वर्ष पूर्व लुटेरे महमूद गज़नवी ने हीनभाववश यहाँ पर जो विराट् एवं अतुलनीय (स्वयं उसके शब्दों में, मनुष्यों ने नहीं, फ़रिश्तों ने बनाया होगा-निर्माण में सौ वर्ष लगे होंगे और 10 लाख³ स्वर्ण-मुद्राएँ लगी होंगी) देवालय ध्वस्त किया था वह विक्रमादित्य (शकारि विक्रमादित्य माना जाता है—अयोध्या के रामजन्मभूमि मंदिर के ही सदृश-किन्तु मेरा अनुमान चंद्रगुप्त विक्रमादित्य पर ठहरता है क्योंकि वे वंशतः 'परम भागवत' थे जिन्होंने आज की दिल्ली में महारौली का महान् लौहस्तम्भ तब के विष्णुपद पर्वत पर स्थित मंदिर के प्रांगण में विष्णु-ध्वज के रूप में प्रतिष्ठित किया था और जिनके समय में पाटलिपुत्र या कुसुमपुर के साथ ही अयोध्या भी राजधानी के गौरव को प्राप्त किए थी) द्वारा निर्मित था। गोपाल कृष्ण गोपालकों इत्यादि में पूज्य थे तो उनके अग्रज हलधर बलराम मल्लों, गदावीरों एवं हलधरों (कृपकों) इत्यादि में। बलराम-पूजा के प्रचलन के प्रमाण प्राप्त हैं। महान् मनीषी टी. गणपति शास्त्री (जिन्होंने भास के नाटक ढूँढ़ निकाले) के अनुसार भास ईसा-पूर्व छठवीं शताब्दी में हुए थे (पाश्चात्य विद्वान् इस समय को आगे खींचते हैं जिससे पश्चिम में नाटक के जनक एस्काइलस पूर्ववर्ती बताए जा सकें तथा नाटक यूनान से आयातित)। भास के अमर नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' का मंगलाचरण बलराम की स्तुति का है। स्पष्ट है कि कृष्ण और बलराम की पूजा ढाई-हजार साल पहले तो प्रचलित थी ही, दो हजार साल पहले तो प्रचलित ही थी—सम्भवतः वह उनके समय से ही चली आ रही थी। बौद्धों द्वारा राम के व्यक्तित्व से अनुचित लाभ उठानेवाला 'दशरथ-जातक' भी पर्याप्त प्राचीन है, जैनों द्वारा राम के व्यक्तित्व से अनुचित लाभ उठानेवाला 'पउम-चरित' (प्राकृत में विमल सूरि द्वारा रचित) लगभग अठारह सौ वर्ष पुराना है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि राम का भी भारी महत्त्व था किन्तु वैज्ञानिक-इतिहास की दृष्टि से पूजा कृष्ण की ही पहले सिद्ध होती है।

हिन्दी-साहित्येतिहास के संक्रान्तिकाल में कृष्णकाव्य की प्रासंगिक रचना मात्र हुई जो पुष्पदंत, चंद्रवरदायी इत्यादि ने की किन्तु पुनरुत्थानकाल जहाँ समूचे हिन्दी-साहित्येतिहास का स्वर्णकाल है, रामकाव्य का स्वर्णकाल है, वहीं कृष्णकाव्य का स्वर्णकाल भी है, जिसमें विद्यापति, मीराँ (मीरा) सूरदास, नंददास, हितहरिवंश, रसखान इत्यादि ने ऐसा सृजन किया जो "न भूतो न भविष्यति" कहने पर विवश करता है। किन्तु शास्त्रीयकालीन कृष्णकाव्य अतीव स्फीत है जिसे केशवदास, सेनापति, बिहारी, मतिराम, देव, घनआनन्द इत्यादि ने ललित-सृजन द्वारा सजाया है, गुरु गोविन्दसिंह, नागरीदास, चाचा हितवृंदावनदास, बख्शी हंसराज⁴, ब्रजवासी दास, मंचित इत्यादि ने लीला-लास द्वारा, सबलसिंह चौहान, गोकुलनाथ इत्यादि ने वीर-वृत्त द्वारा। शास्त्रीयकालीन कृष्णकाव्य में भागवत के कृष्ण का तो गान किया ही गया है, महाभारत के कृष्ण को भी काव्य-दर्पण पर उतारा गया है, और ऐसा हिन्दी में पहली बार हुआ था, क्योंकि पुनरुत्थानकालीन कृष्णकाव्य भागवत के कृष्ण में सीमित है। जहाँ तक कृष्णकाव्य के कलात्मक वैभव का प्रश्न है, शास्त्रीयकालीन कृष्णकाव्य अद्वितीय है। आ. शुक्ल को यह भ्रम हो गया था कि केशवदास, बिहारी, देव इत्यादि कोरे विलासी थे। इस भ्रम के दो कारण थे। एक कारण था उनका यह विचार कि प्रेम एवं भक्ति केवल संत-महात्मा या विरक्तजन ही कर सकते हैं, जिसके लिए उन्हें

1. हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, सोमवार ॥ सितम्बर, 1997, पृष्ठ 14।

2. वासुदेव-पुत्र।

3. संप्रति 1 का मूल्य 3500 रुपये।

4. 'विजयसखी' ललितनामधारी महात्मा ने इन्हें 'प्रेमसखी' का ललित-नाम प्रदान किया था।

स्फीत आचार्य अथवा परोपजीवी' काव्यशास्त्री किन्तु साधारण कवि-कलाकार भिखारीदास के 'राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो' जैसे एकाध प्रमाण भी मिल गए हैं। दूसरा कारण मिश्रबन्धु-प्रशंसित कवि थे जिनका उच्छेद किए बिना मिश्रबन्धु का उच्छेद सम्भव न था और मिश्रबन्धु के उच्छेद के बिना उनके 'विनोद' की सामग्री के संक्षेपण एवं 'हिन्दी शब्दसागर' की सामग्री के पल्लवन पर टिके 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' की प्रतिष्ठा सम्भव न थी। उनकी महान् प्रतिभा हिन्दीभाषा-भाषियों की अध्ययन-भीरुता एवं रूढ़िवादिता पर सर्वतः आश्वस्त थी। वे जानते थे कि स्फीत एवं जटिल 'विनोद' उनके संक्षिप्त एवं सुगम 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के कारण उपेक्षित हो जाएगा। उनकी जनभावना की सूझबूझ एकदम ठीक साबित हुई। उनका 'रीतिकाल' 'विनोद' के 'अलंकृतकाल' की समता न गुण की दृष्टि से कर सकता है, न परिमाण की दृष्टि से—वस्तुतः वह 'विनोद'-परोपजीवी मात्र है। किन्तु उसने साहित्य के साथ भारी अन्याय किया है—अनेक क्या असंख्य लोग उनके 'रीतिकाल' के कवियों के वास्तविक रूप से अपरिचित रह गए। जब तक 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' प्रभावी रहेगा, हिन्दी-साहित्य की स्फीति, गरिमा एवं महिमा की व्यापक प्रतीति बाधाग्रस्त ही रहेगी।

शास्त्रीयकालीन कृष्णकाव्य तीन रूपों में प्राप्त होता है :

1. ललितकलात्मक-कृष्णकाव्य जो केशवदास, सेनापति, बिहारी, मतिराम, सुखदेव, देव, घनआनंद, पद्माकर इत्यादि ने रचा है, जो साहित्यिक दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वाधिक लोकप्रिय है।

2. भागवतपरक-लीलालासमय-कृष्णकाव्य जो गुरु गोविन्दसिंह, नागरीदास, सुन्दरिकुँवर बाई (नागरीदास की बहन), चाचा हितवृन्दावनदास, ब्रजवासीदास, कृष्णदास इत्यादि ने रचा है, जो भक्तिपरक कहा जाता है।

3. महाभारतपरक वीरवृत्तात्मक कृष्णकाव्य जो सबलसिंह चौहान एवं गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव की त्रयी ने प्रस्तुत किया है, जिसमें कृष्ण का लोकरक्षक-रूप विवृत हुआ है।

कुछ ललित एवं कलात्मक निदर्शन प्रस्तुत हैं (संबद्ध कविवृत्तों में सभी प्रकार के उद्धरण पढ़े ही जा सकते हैं) :

माखन के चोर, मधु चोर, दधि-दूध चोर, देखत हौं देखत ही हियो हरि लेत हैं।
पुरुष पुराण अरु पूरण पुराण इन्हें पुरुष पुराण सु कहत किहि हेत हैं।।
केसोदास देखि-देखि सुरन की सुंदरी वे करती बिचार वे सुमति समेत हैं।
देखी गति गोपिका की भूमिल जात निज गति, अगतिन कैसे धौं परम गति देत हैं।।

(केशवदास)

पान चरनामृत कौं, गान गुनगनन कौं, हरिकथा सुनि सदा हिय कौं हुलसिबौ।
प्रभु के उतीरन की, गुदरीयो चीरनि की, भाल, भुज, कंठ, उर छापन कौ लसिबौ।।
सेनापति चाहत है सकल जनम भरि बृन्दावन सीमा तैं न वाहिर निकसिबौ।
राधा-मन-रंजन की सोभा नैन-कंजन की, माल गरे गुंजन की, कुंजन कौं वसिबौ।

(सेनापति)

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तनदुति करि अनुराग। जिहि ब्रज केलि-निकुंज मग पग-पग होत प्रयाग।।
जहाँ-जहाँ ठाढ़ी लख्यौ स्यामु सुभग-सिरमौर। बिन हूँ उन छिनु गहि रहलु दृगनु अजौं वह ठौर।।
या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।। ज्यों-ज्यों बूडै स्यामु रँग त्यों-त्यों उज्जलु होइ।।

(बिहारी)

मोरपखा मतिराम किरीट मैं, कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसकानि मनोहर, कुंडल-डोलन मैं छबि छाई।।
लोचन लोल, बिलोल बिलोकनि, को न बिलोकि भई बस माई।
वा मुख की मधुराई कहा कहौं मीठी लगै अँखियान लुनाई।।

(मतिराम)

1. श्रीपति से भरपूर चुराया है, सुखदेव से पर्याप्त, प्रायः सारे पूर्ववर्तियों से कुछ-कुछ। मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में, आ. शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र ने 'सुखदेव मिश्र : जीवनी तथा कृतियों' में इस बिन्दु पर प्रकाश डाला है।

पाँयनि नूपुर मंजु वजें, कटि किंकिनि में धुनि की मधुराई।
 साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई।।
 माथे किरीट, बड़ै दृग-चंचल मंद हँसी मुखचंद-जुन्हाई।
 जै जगमंदिर-दीपक सुंदर श्री ब्रज-दूलह देव सहाई।।

(देव)

गोपिन को तन की छुटिगी सुधि डोलत हैं बन में जब चोरी।
 एक उठै, इक भूमि गिरै, ब्रज की महरी इक आवती दौरी।।
 आतुर है अति ढूँढत हैं तिनके सिर की गिरगी सु पिछोरी।
 कान्ह को ध्यान बसो मन में सोउ जान गहै पुन रूखन कौरी।।

(गुरु गोविन्दसिंह)

काहे को रे नाना मत सुनै तू पुरानन के, तैही कहा? तेरी मूढ़! मूढ़ मति पंग की।
 वेद के बिवादन को पावैगी न पार कहूँ, छौंड़ि देहु आस सब दान-न्हान गंग की।।
 और सिद्धि सोधे अब, नागर न सिद्ध कछू, मानि लेहु मेरी कही वार्ता सुदंग की।
 जाइ ब्रज भोरे! कोरे मन को रँगाइ लै रे, बृंदावन रेनु रची गौर स्याम रंग की।।

(नागरीदास)

कहति जसौदा कौन विधि समझाऊँ अब कान्ह।
 भूलि दिखायो चंद मैं ताहि कहत हरि खान।।
 यहै देत नित माखन मोकों। छिन-छिन देति तात! सो तोकों।।
 जो तुम स्याम! चंद कौ खैहौ। बहुरो फिर माखन कहँ पैहौ।।
 देखत रहौ खिलौना चंदा। हठ नहिं कीजै बालगोविन्दा।।

(ब्रजवासीदास)

चंदकला चुनि चूनरी चारु दई पहिराइ, लगाइ सु रोरी।
 बेंदी बिसाखा रची पद्माकर, अंजन आँजि समाज करोरी।।
 लागी जवै ललिता पहिरावन स्याम कौं कंचुकी केसरि-बोरी।
 हेरि करें मुसिकाइ रहीं अँचरा मुख दै बृषभान-किसोरी।।

(पद्माकर)

प्रमुख कवि

घासीराम¹

‘पक्षीविलास’ (1623 ई.)² शीर्षक चमत्कारवादी किन्तु ललित कलाकृति के प्रणेता घासीराम (1566-1625 ई.³, मल्लावौं, जनपद हरदोई) के ‘कालिदासहज़ारा’, ‘दिग्विजय-भूषण’, ‘शिवसिंह-सरोज’ में उद्धृत छन्दों के आधार पर लगता है कि इन्होंने नखशिख-नायिकाभेद-तथा अलंकारों पर शास्त्रीय काव्यरचना भी की थी। किन्तु अन्य ग्रन्थ अप्राप्त हैं। इनकी ख्याति का प्रधान आधार अन्योक्ति-संपन्न ‘पक्षीविलास’ ही ‘च.1’ है, जो मिश्रबन्धु के शब्दों में “एक बड़ा उत्कृष्ट, अपूर्व-ग्रन्थ” है, जिसके कारण इनको ‘पद्माकर की श्रेणी’ का कवि माना है। इनके “ऐ वाज जहाज़िम क्या लाज़िम चिड़ियों पर ख्यार करते” जैसी लोकप्रिय

1. गीतगोविन्द, काव्यप्रकाश एवं रसगंगाधर के अनुवादक भरतपुर-निवासी घासीराम (रचनाकाल 1753 ई. के आसपास) समनामी हैं। एक घासीराम अकबर (राज्यकाल 1556-1605 ई.) के समय में भी हुए थे। संत घीसादास (1803-68 ई.) का नाम, कुछ दूर पड़ता है; किन्तु मध्यप्रदेश के विख्यात संत घासीदास (जिन पर रायपुर विश्वविद्यालय नामित है) तो यत्किंचित् भिन्ननामी ही हैं।
2. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 में 1523 ई. ग़लत लिखा है, ‘विनोद’ में 1680 वि. ठीक है।
3. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 के अनुसार।

अन्योक्तियाँ फ़ारसी-मिश्रित खड़ीबोली में होने के कारण ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती हैं, जिनसे बिहारी जैसे महाकवि भी 'स्वारथु सुकृतु न' जैसी अन्योक्तियों में प्रेरित हुए हैं। 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' के श्रेष्ठतर कवि दीनदयाल गिरि पर भी इनका प्रभाव पड़ा है। 'विनोद' से उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. कहाँ पाई माई! झूठे मोती मैं सचाई, नहिं दुरति दुराई गति पाँडव-गयंद की।
बड़ेन बड़ाई, लघुताई छोटे नरन की जानी जाति ऐसे ज्यों परिच्छा सूक-चंद की।।
जान्यों मैं अहीर को है, हीर को है, पीर को है, हीर को न पीर को मिठाई विष कंद की।
घासीराम कंठ जब कूबरी लगाई तब आई री! उघरि सुघराई नंदनंद की।।
2. स्याम लिखे गुनि पयारी को आखर, जोग-चिठी वह जो सुनि पैहै।
देखत ही उड़ि जायेंगे प्रान, कपूर लौं फेरि न हाथन ऐहै।।
ऊधौ! चुपाहु, सुनी खबै बृषभानुलली तन क्यों बिष वैहै।
कौल कली सम राधे हमारी, सु वा कुबजा की खवासिनि ह्वैहै।।

ताज बेगम

कृष्णकाव्य की कवयित्रियों में ताज बेगम (1595 ई.) के आसपास का स्थान मीरा के अनन्तर श्रेष्ठतम है। उनकी खड़ीबोली-पंजाबी-मिश्रित भाषा, उनके आत्मपरक कविता के स्पर्श एवं उनकी प्रेम की अनन्यता अपनी कलारहित-कला एवं अपने समर्पणपूर्ण उद्गार में उन्हें सैफो, राविया, आंजाल (गोदा) एवं टेरीसा (टेरेसा) की परम्परा में प्रतिष्ठित करती है। ताज बेगम हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कवयित्रियों में एक हैं : मीरा और महादेवी के बीच की कड़ी, क्योंकि काव्यानुभूति की दृष्टि से मुक्ताबाई, करमाबाई, सहजोबाई, दयाबाई इत्यादि से लेकर सुभद्राकुमारी चौहान तक कोई उनकी समता नहीं कर सकता। महान् साहित्येतिहासकार एवं आलोचक मिश्रबन्धु ने ठीक ही उनकी कविता को "बहुत ही सरस और मनोहर" कहा है। उनके अनुसार, "कवि गोविन्द गिल्लाई के यहाँ इनके सैकड़ों छन्द विद्यमान हैं।" ताज बेगम पर स्तरीय शोध-संकलन अपेक्षित है। मिश्रबन्धु ने इन्हें पंजाब की तरफ का माना है, किन्तु 'जनश्रुति है कि ताज दिल्ली की रहने वाली' मुगल शाहजादी² थीं। ताज बेगम यदि पुरुष होतीं तो उनका नाम रसखान होता, रसखान यदि नारी होते तो उनका नाम ताज बेगम होता :

1. सुनो दिलजानी! मेरे दिल की कहानी, तुम दस्त की विकानी, वदनामी भी सहूँगी मैं।
देवपूजा ठानी, मैं निवाज हूँ भुलानी, तजे कलमा कुरान, तेरे गुननि गहूँगी मैं।।
स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिए, तेरे नेह-दाघ में निदाघ हो दहूँगी मैं।।
नंद के कुमार! कुरबान तेरी सूरत पर, हूँ तो तुरकानी³ हिन्दुवानी हो रहूँगी मैं।।
2. छैल जो छवीला, सब रंग में रंगीला बड़ा, चित्त का अड़ीला, कहूँ देवतों में न्यारा है।
माल गले सोहै, नाक मोती सेत जौहै, कान कुंडल मन मोहै, लाल मुकुट सिर धरा है।।
दुष्टजन मारे, संतजन रखवारे ताज चित्त हित वारे प्रन-प्रीति करनवारा है।
नंद जू का प्यारा, जिन कंस को पछारा, वह वृंदावनवारा कृष्ण साहब हमारा है।।
3. कोऊ जन सेवै भैरो, राजा राव ठाकुर कोऊ, कोऊ जन सेवै शाह, भूप काजसार है।
कोऊ जन सेवै देवी चंडिका प्रचंड को ही, कोऊ जन सेवै ताज गनपति सिरभार है।।
कोऊ जन सेवै जग भूत भवसागर को, कोऊ जन सेवै प्रेत, कहूँ बार-बार है।
काहू के ईश, विधि, शंकर को नेम पड़े, मेरा तो अधार एक नंद का कुमार है।।

1. शिवसिंह के अमर ग्रन्थ 'सरोज' के अनुसार 1652 वि.। मिश्रबन्धु के 'विनोद' में मुंशी देवीप्रसाद द्वारा अनुमानित 1700 वि. (1643 ई.) के लगभग का भी उल्लेख है। अकबर के उदार शासनकाल (1556-1605 ई.) के संस्कार ही ठीक लगते हैं जो जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकालों तक चले।
2. 'सानुबन्ध' मासिक (उन्नाव) के दिसम्बर 1987 अंक में बनवारीलाल वैश्य कृत लेख 'ताज का कृष्णानुराग'।
3. पाठांतर 'मुगलानी'।

4. साहब सिरताज हुआ नंद जी का आप पूता, मार जिन असुर करी काली सिर छाप है।
कुंदनपुर जायकै सहाय करी भीषम की, पांडव की पछ धरी चीर बन आप है।।
दीन से सुदामा के पद अँसुवन ते धोए, करुनासिंधु करुणा करि मेटी सब ताप है।
निहचै करि सोधि लेहु ज्ञानी गुनवंत वेगि, जग में अनूप मित्र कृष्ण का मिलाप है।।
5. कालिंदी तीर, नीर निकट, कदंब कुंज, मन कुछ इच्छा कीती सेज सरोजन की।
अन्तर में यामी कामी कँवल के दल लैके रची सेज तहाँ, शोभा कहा कहौं तिन की।।
वादी सम ताज प्रभु दंपति मिले की छवि, वरन सकत कोऊ नाहिं वाहि छिन की।
राधा की चटक देखि अँखियाँ अटक रही, मीन की मटक नाहिं साजत वा दिन की।।

ताज अपने प्रियतम को पत्र लिखती हैं, विरह-विकल होती हैं, मिलन का विश्वास रखती हैं, अर्थात् उनकी उत्कृष्ट कविता प्रेम के सारे तत्त्वों से निष्पन्न है। उनकी कविता इश्कहकीकी को इश्कमजाजी से सँवारती है (कोरी सैद्धान्तिक कविता नहीं लगती) और इश्कमजाजी को इश्कहकीकी से (कोरी शारीरिक कविता नहीं लगती)। ताज बेगम भारत की राबिया है। उनकी कविता के मुकाबले में कोरा निर्गुणियाँ सूफियाना अंदाज़ वायवीय लगता है तथा कोरा आशिकाना अंदाज़ मांसल। ताज का प्रेम भक्ति की पावनता से ऊभचूष है, उनकी भक्ति प्रेम की जीवंतता से सरावोर। संसार की श्रेष्ठ कवयित्रियों में ताज बेगम का भी एक निश्चित स्थान स्वीकार किया जाना चाहिए।

ताज बेगम ने 'बदनामी भी सहुँगी मैं' की जो घोषणा की है वह मीरों की 'लोकलाज खोई' की घोषणा की तुलना में कहीं अधिक संघर्षपूर्ण रही होगी क्योंकि मोहम्मदीयत में सहिष्णुता के लिए कोई विशेष स्थान नहीं। 'आधुनिक रसखान' (जिनका वास्तविक 'रशीद' लुप्त हो गया है—जिनके नाम पर रायबरेली में मार्ग है) के कवि एवं लेखक पुत्र इफ्तखार अहमद खाँ 'राना' ने मुझे बताया था। (हिन्दी दिवस 14 सितम्बर, 1989 को मेरे भाषण के अनन्तर) कि उन्हें हिन्दी-राम-तुलसी-प्रेमी होने के कारण कठिनाई होती है। फिर भी रहीम, रसखान, ताज बेगम, नज़ीर अकबराबादी इत्यादि की परम्परा जीवन्त है। उर्दू के नामी शायर मौलाना हसरत मोहानी (मोहाना, जनपद उन्नाव-फ़िल्मी शायर हसरत जयपुरी की याद आ जाती है) के उद्गार देखिए :

मन तोसे प्रीत लगाई कन्हाई।

काहू और की सूरत अब काहे को आई।।

गोकुल ढूँढ़ो बृंदावन ढूँढ़ो बरसाने लग घूम के आई।

तन मन धन सब वार के 'हसरत' मथुरा नगर चल धूनी रमाई।।

आदिल'

भारत में विदेशमूलक और स्वदेशमूलक दोनों के ही मुसलमानों को अभिव्यक्ति की जो विशद स्वतंत्रता प्राप्त हुई वह उन्हें मनोमुग्धकारी लगी। पंथप्रवर्तक निर्गुणप्रधान सन्त हों या अहंमुक्त स्वच्छंद सगुणप्रधान लीलालासगायक कवि, सभी की वाणी भारतीय धर्मसाधना एवं काव्यसाधना की प्रतीक है, जिसके दर्शन कट्टरपंथी एवं पोंगापंथी देशों में नहीं या कम ही हो पाते हैं। आदिल (जन्म 1605 ई.)² का कृष्णप्रेम सरस बन पड़ा है :

मुकुट की चटक, लटक बिबि कुंडल की, भौंह की मटक नैकु आँखिन दिखाउ रे।

एही बनवारी! बलिहारी जाऊँ तेरी, मेरी गैल किनि आई नैक गाइनि चराउ रे।।

'आदिल' सुजान रूप गुन के निधान कान्ह, बाँसुरी बजाइ तन तपनि बुझाउ रे।

नंद के किसोर चितचोर मोरपंखवारे, बंसीवारे साँवरे पियारे इत आउ रे।।

तालिब

तालिब (1611 ई.) ने कृष्णविषयक कवित्त³ तथा अन्य छन्द⁴ लिखे हैं, जिनकी भाषा खड़ीबोली कही जा सकती है :

1. 'नवरस' (1550 ई.) के प्रणेता बीजापुर-सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह से भिन्न स्फुट ब्रजभाषा-छन्दकार।

2. शिवसिंह कृत 'सरोज'।

3. शिवसिंह ने 'सरोज' में तालिब के कवित्तों की प्रशंसा की है।

4. डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव ने 'मध्ययुगीन हिन्दी के सूफ़ीइतर मुसलमान कवि' में 'सरोज' से ही भुजंगप्रयात (वर्णवृत्त) की बानगी पेश की है।

महबूब आगे सुहागे बने हैं। सु मोहन गरे माल फूलों हिए हैं।।
महारंग माते अमाते मदन के। विलोकत वदन और चंदन दिए हैं।।
यही भेष हरिदेव भृकुटी तुम्हारे। सु लकुटी भँवरी लेख या लख लिए हैं।।
दिवाना हुआ है निमाना वरस का। सु 'तालिव' वही श्याम गिरिवर लिए हैं।।

तालिव की कविता शिथिल है। भाषा में उपसर्गों का भरती का प्रयोग खटकता है। अर्थ ठीक से नहीं खुल पाता। उनके छन्द वैसे ही हैं जैसे आज के अनेक हिन्दू-बन्धुओं के गज़ल (नक़ल या ग़लत या भोंड़े)!

हरिवल्लभ

भगवद्गीता-भाषानुवाद (1644 ई.) के पुराने अनुवादकों में हरिवल्लभ स्मरणीय हैं। 'गीता के अनुवादक' शोध के पात्र हैं। इनका 'संगीत-भाषा' नामक अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त है। इनका गीता का अनुवाद साफ़-सुथरा और प्रवाहपूर्ण है :

लरत मरें लहिहैं स्वरग, जीते पुहुमी-भोग। उठि अर्जुन तूँ जुद्ध करि, यहै जु तोको जोग।।
लाभ-हानि अरु दुःख-सुख जय-अविजय सम जानि। ताते अर्जुन जुद्ध करि पाप लेहि जनि मानि।।
सांख्य बुद्धि तो सौं कही, कहत योग बुधि तोहि। ता बुधि के संयोग तैं रहै न कर्मनि मोहि²।।
कर्म करे बिन कामना ताको होय न नास। अल्प किए हू धर्म यह काटत भव-भय-प्रास।।
बुद्धि जो निश्चयवन्त को एकै है तू जानि। जिनके निश्चय नाहिनै तिनहि बुद्धि यहु मानि।।
गीता हरिवल्लभ कियो भाषा कृष्ण प्रसाद। भयो प्रथम अध्याय यह अर्जुन कियो विषाद³।।

'चंदसखी'

चंद अथवा चंदलाल 'चंदसखी' (1640⁴-1701⁵ ई., जन्म एवं निधन ओरछा, सुदीर्घ प्रवास वृंदावन⁶) ने विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति, राम-स्तुति एवं स्फीत कृष्णलीला-गान किया है। वे राधावल्लभ सम्प्रदाय से सम्बद्ध माने गए हैं। पद्मावती 'शबनम' ने 'चंदसखी और उनका काव्य' ग्रन्थ तथा अगरग़न्द नाहटा, मनोहर शर्मा, कैलाशचन्द्र माथुर, किशोरीशरण 'अलि' इत्यादि ने आलेखों द्वारा चंदसखी पर प्रकाश तो डाला है किन्तु किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके, जबकि प्रभुदयाल मीतल ने 'चंदसखी के भजन और लोकगीत' ग्रन्थ में ऐसा यत्न किया है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में चंदसखी को भारी लोकप्रियता प्राप्त है किन्तु विभाषाओं में भारी अन्तर भी मिलता है। उनकी 'होली' रचनाएँ विशेष आकर्षक हैं। कृष्ण की सारी लीलाओं पर उनके गीत बहुत प्रभावी हैं। वैसे, प्रक्षिप्त गीतों की संख्या भी कम नहीं है। कई नर-नारी चंदसखी बताए जाते हैं। बहरहाल, उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. तेरो मुख नीको है, कि मेरो राधा प्यारी?
दरपन हाथ लियौ नंदनंदन, साँची कहो वृषभान-दुलारी।
हम का कहैं, तुम ही क्यों न देखो, मैं गोरी तुम स्याम विहारी।
हमरौ बदन ज्यों चंदा की उजियारी, तुमरौ बदन जैसे निसि अँधियारी,
तुमरे सीस पर मुकुट बिराजै, हमरे सीस पर तुम गिरधारी।
'चंदसखी भज बालकृष्ण छबि, दोउ ओर प्रीति बढ़ी अति भारी।।

1. संगीत पर हिन्दी-ग्रन्थ।
2. मोहग्रस्त।
3. अर्जुनविषादयोग (गीता का प्रथम अध्याय, जो महाभारत के भीष्म-पर्व का 25वाँ अध्याय है)।
4. 'चंदसखी के भजन और लोकगीत' (संकलनकर्ता एवं संपादक प्रभुदयाल मीतल : "सं. 1700 से कुछ पूर्व सम्भवतः ओरछा में।")
5. 'देहांत की तिथि आपाद कृष्ण 11 है और संवत् सम्भवतः 1758' (वही)
6. कंशीघाट पर जहाँ 'चंदसखी की कुंज' आज भी प्रसिद्ध है।

2. कन्हैया ने हमसे मचाई होरी।
 क्या विरज में नार थोरी?
 वाजत ताल-मृदंग-झोंझ-डफ, लेत तान चित चोरी।
 अवीर-गुलाल के बादल छाए, मृगमद केसर घोरी।।
 अँगुली पकड़, मेरो पौंचो पकड़यो, वहियाँ पकड़ झकझोरी।
 'चंदसखी' भज वालकृष्ण छवि हमरी समझ भई भोरी।।

नागरीदास

सिंगारसार, गोपीप्रेमप्रकाश, भक्तिसार इत्यादि में कृष्णकाव्य एवं रामचरितमाला में रामकाव्य के प्रस्तोता रूपनगर'-नरेश सावंतसिंह (1699-1764 ई.), विरक्ति के अनंतर उपनाम नागरीदास, पछत्तर ग्रन्थों के स्फीत कवि हैं, यद्यपि अधिकांश ग्रन्थ छोटे, उद्धरणपूर्ण, पुनुरुक्तिपूर्ण हैं तथा वैराग्यसागर, सिंगारसागर एवं पदसागर के त्रिरूप में प्रस्तुत किए गए हैं। नागर-समुच्चय एवं डॉ. किशोरी लाल द्वारा प्रस्तुत 'ग्रन्थावली' में भी इनका सृजन सुरक्षित है। मिश्रबन्धु ने इन्हें वल्लभ-सम्प्रदाय का माना है, किन्तु वृन्दावन (जहाँ 'नागरकुंज' है) में यह निर्वार्क-सम्प्रदाय के माने जाते हैं और यही ठीक लगता है। नागरीदास (राधादास) उपनामधारी अनेक कवियों² में महाराज नागरीदास ही गण्य भी हैं, मान्य भी। यद्यपि इनकी कविता सूर, नंददास, हितहरिवंश इत्यादि से अत्यधिक प्रेरित होते हुए भी साधारण है तथापि उसमें कलहमूलक-राज्यत्यागजन्य आत्मपरक कविता के प्रभावी स्पर्श भी प्राप्त होते हैं, होली के सुंदर वर्णन भी, और परवर्ती उर्दू-कविता के बीज भी :

1. हमारी सवकी बात सुधारी।
 कृपा करी श्रीकुंजविहारिनि अरु श्री कुंजबिहारी।।
 राख्यो अपने वृंदावन मैं जिहि को रूप उँज्यारी।
 नित्त केलि आनंद अखंडित रसिक संग सुखकारी।।
 कलह-कलेस न व्यापै यहि ठौँ ठौर विस्व ते न्यारी।
 नागरिदासहि जनमि जिवायो बलिहारी-बलिहारी।।
2. कबहूँ नागरिदास अब तजै न ब्रज को वास।
3. स्वर्ग-बैकुंठ मैं होरी जो नाहिँ तौ कोरी कहा लै करै ठकुराई!
4. उस हुस्न के मुकाबिल करना वयान क्या है,
 फिर चश्म बिन बिचारी शायर जुवान क्या है।

नागरीदास का नजीर अकबरावादी इत्यादि उर्दू-शायरों पर सीधा प्रभाव पड़ा है। कुलपति मिश्र, नागरीदास, आलम, घनआनन्द, बोधा, सीतल इत्यादि हिन्दी-कवि ही बली, आबरू, आरजू, तावाँ इत्यादि उर्दू शायरों के प्रेरक थे। प्रो. मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने 'आवेहयात' में ठीक ही लिखा है कि हमारी जुवान ब्रजभाषा से निकली है।

सुंदरि कुँवरि बाई

'नेहनिधि', 'रसपुंज', 'प्रेमसंपुट', 'सारसंग्रह', 'भावनाप्रकाश', 'रामरहस्य' प्रभृति ग्रन्थों तथा अनेक पदों, कवितों इत्यादि की कवयित्री सुंदरि कुँवरि बाई (जन्म 1734 ई.) सुप्रसिद्ध भक्त कवि नागरीदास की बहन थीं, जिनकी माता महारानी बाँकावती ने भागवत का काव्यानुवाद किया था। मिश्रबन्धु ने इनकी गणना 'उच्च श्रेणी' में की है। परिवार की दासी बनीठनी (बणीठणी-नागरीदास की उपपत्नी जो वृंदावन में भी साथ रहीं) तक 'रसिक विहारी' उपनाम से कविता करती थी। सुंदरि कुँवरि बाई ने ब्रजभाषा में दोहा, कवित, पद इत्यादि की सफल रचना की है :

1. कृष्णगढ़-नरेश के रूप में प्रसिद्ध हैं किन्तु यह नगर बाद में बना। प्रसिद्ध कृष्णगढ़ की चित्रशैली पर भी नागरीदास का प्रभाव पड़ा है।
2. इनमें एक समसामयिक नागरीदास वृंदावनवासी 'बानी'-कार तथा दूसरे 1763 ई. में रचित 'स्वामीजी के पदन की टीका'-कार नागरीदास वृंदावनवाले का उल्लेख 'विनोद' में प्राप्त होता है।

1. घूमत मन, घूमत सु तन, दृग उनमील घुमार।
थकित बयन, गति सिथिल, चढ़ि अन उतरन मतवार।।
2. स्याम-नैन-सागर में नैन वार-पार थके, नचत तरंग अंग-अंग रंगमगी है।
गाजत गहर धुनि, बाजत मधुर बेनु, नागिनि अलक जुग सोधैं सगबगी हैं।
भँवर-त्रिभंगताई, पानिप लुनाई तामैं, मोती-मनि-जालन की जोति जगमगी है।
काम-पौन प्रबल छुकाव लोपी पाजतामे, आज राधे लाज की जहाज डगमगी है।।
3. मेरी प्रान-सजीवन राधा। कब तुव बदन सुधाधर बरसै, मों अखियन हरै वाधा।।
ठमकि ठमकि लरिकौही चालनि आव सामुहे मेरे। रस के वचन-पियूष पोषि कै कर गहि वैठों तेरे।।
रंगमहल संकेत सुगल करि तहलनि करो सहेली। आज्ञा लहाँ, रहीं तहँ तवपर, बोलत प्रेम-पहेली।।
मन-मंजरी जु कीन्हों किंकर, अपनाबहु किन बेग। सुंदरि कँवरि स्वामिनी राधा हिय कौ हरौ उदेग।।

अलबेली अलि

संस्कृत में 'श्रीस्तोत्र' एवं हिन्दी में 'समयप्रबन्धपदावली' के कवि अलबेली अलि (1750 ई. के लगभग) विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के नेता वंशी अलि के शिष्य थे। मधुरोपासकों में 'अलि' या अली, 'सखी', 'किशोरी', 'लता' इत्यादि पुरुषों का बड़ा योगदान रहा है—चंद्रसखी (एकाधिक-स्त्री भी), ललितकिशोरी², ललितमाधुरी³, 'कनकलता'⁴ इत्यादि तो कुछ निदर्शन मात्र हैं। आज भी ब्रज एवं अवध क्षेत्रों में नारीसज्जा-युक्त अलियाँ, सखियाँ, किशोरियाँ एवं लताएँ मिल जाती हैं। अपनी संस्कृत-कविता सदृश हिन्दी-कविता में भी इन्होंने अनुप्रास के बड़े सुंदर एवं सुरुचिपूर्ण प्रयोग किए हैं। इनकी कविता में मधुरभाव का सुंदर निरूपण बड़ी ही निखरी भाषा एवं साफ़-सुथरी शैली में प्राप्त होता है :

1. नेही नेह बिना नहिं जानत, चातक स्वाति बिना किनको री!
अलबेली अलि रसिकन जीवन नैननि नैन मिलन इनको री।।
2. लाल! तेरे लोभी लोलुप नैन।
केहि रस-छकनि छके हौ छबीले मानत नाहिन चैन।
नींद नैन धिरि-धिरि आवत अति घोरि रहो कछु नैन।
अलबेली अलि रस के रसिया कत बितरत ये बैन।।
3. बने नवल प्रिय प्यारी। सरद रैन उजियारी।।
सरद रैन सुख दैन मैन मय जमुना-तीर सुहायो।
सकल कला पूरन ससि सतील महि-मंडल पर आयो।।
अतिसय सरस सुगंध मंद गति बहत पवन रुचिकारी।
नव नव रूप⁵ नवल नव जावन बने नवल पिय प्यारी।।

ब्रजवासीदास

संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा में 'ब्रजविलास' (1771 ई.)⁶ नामक विशाल एवं लोकप्रिय काव्य रचनेवाले तथा 'प्रबोध-चंद्रोदय' के अनुवादक ब्रजवासीदास सचमुच ब्रजवासी (वृंदावन-निवासी) थे, जिनका स्फीत लीला-चित्रण उन्हें वल्लभ-सम्प्रदाय से संपृक्त करता है।

1. "331 उत्कृष्ट पद हैं।" (विनोद)। 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (शुक्ल) में 313 (सम्भवतः मुद्रण-त्रुटि है।)
2. शाह कुंदनलाल।
3. शाह फुंदनलाल।
4. सेठ रामचरण (मैथिलीशरण के पिता)।
5. क्षणे क्षणे यन्नवतामुपेति तदेव रूपं रमणीयतायः।
6. संवत् शुभ पुराण शत जानौ। तापर और नछत्रन तानी।।
माघ सुमास पक्ष उजियारा। तिथि पंचमी सुभग शशिवारा।।

इनके परिचय में आ. शुक्ल ने मिश्रबन्धु से गृहीत 1827 वि. ठीक लिखा है किन्तु पृष्ठ 151 में 'संवत् 1809' गलत लिख गए हैं। 9 ग्रह होते हैं, नक्षत्र नहीं। 1827 वि. से 57 घटाने पर 1770 ई. बनता है किन्तु माघ शुक्ल 5 को नया ईसवी सन् लग चुका था अतः 1771 ई. ही ठीक है।

इन्होंने सूर की आत्मा को तुलसी के शरीर में प्रस्तुत करने का यत्न किया है। दोहा-सोरठा-चौपाई में स्फीत कृष्णकाव्य-प्रस्तोता की दृष्टि से ब्रजवासीदास को बीसवीं सदी (ई.) के द्वारका¹ प्रसाद मिश्र (कृष्णायन) एवं कैलाश² नाथ 'प्रियदर्शी' (श्रीकृष्णचरितमानस) प्रभृति का पूर्वज माना जा सकता है। उन्होंने स्पष्ट किया है :

या मैं कछुक बुद्धि नहीं मोरी। उक्ति-युक्ति सब सूरहि केरी।³
मोते यह अति होत ढिठाई। करत विष्णुपद की चौपाई॥
मैं नहीं कवि न सुजान कहाऊँ।⁴ कृष्णविलास प्रीति करि गाऊँ॥

यद्यपि ब्रजवासीदास में सूर की गहन अनुभूति एवं तुलसी की सशक्त अनुभूति-अभिव्यक्ति-समाहार के दर्शन नहीं होते (सम्भव भी यही है) तथापि उनकी इतिवृत्तात्मकता प्रभावी अवश्य है :

बार-बार चपला चमकि झकझोरति चहुँ ओर।
अरर-अरर आकास ते जल डारत घन घोर॥
सात दिवस बीते यहि भाँती। बरसत जल जलधर दिन-राती॥
कोपि-कोपि डारत जलधारा। मिटी न ब्रज की नेकु लगारा॥
भए जलद जल ते सब रीते। रहो एक गुन द्वै गुन बीते॥
महाप्रलय जल बरसे आनी। ब्रज मैं बूँद न पहुँच्यो पानी॥

‘कारे’ (कालेखॉ)

‘कारे’ (रचनाकाल 1786 ई. के लगभग, रहली, जनपद सागर) की छाप कालेखॉ या कारेखॉ की है जो विष्णु तथा उनके अवतारों के अनन्य भक्त थे। कृष्ण पर इनका विशेष अनुराग था। मूसा, ईसा, मोहम्मद, कबीर, नानक इत्यादि की चमत्कार-कथाओं के सदृश ‘कारे’ की चमत्कार-कथाएँ भी प्रचलित हैं। इनकी ब्रजभाषा में अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्द बहुतायत से पाए जाते हैं तथा अभिव्यक्ति स्पष्टतर नहीं है। यमक के प्रयोगों में इन्हीं अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। ‘हिन्दी के मुसलमान कवि’ (गंगाप्रसाद सिंह विशारद) में इनके चार कवित्त⁵ अवतरित किए गए हैं :

1. माफ किया मुलुक मताह दी विभीषन को, कही थी जुवान कुरबान ये करार की।
बैठिबो को ताइफ तखत दे तखत दिया, दौलत बढ़ाई थी जुनारदार यार की॥
तब क्या कहा था अब सरफराज आप हुए, जबकि अरज सुनी चिरीमार खार की॥
‘कारे’ के माहिं क्यों न दिलदार हुए, एरे नंदलाल! क्यों हमारी बार बार की॥
2. छल बल करि धक्यो अनेक गजराज भारी, भयो बलहीन जब नेक न छुड़ा गयो।
कहिबो को भयो करुना की कवि ‘कारे’ कहैं, रही नेक नाक और सब या डुबा गयो॥
पंकज से पायन पयादे पलंग छाँड़ि, पावरी विसारी प्रभू ऐसी परि पा गयो।
हाथी के उर माँहिं आधौ हरि नाम सोह, गर जौ न आयौ गरुड़स तो लौ आ गयो॥
3. स्वामी सिसुपाल हू की गारी सही सस्त्र सम, गारी दई मारी लात सोई सिर प्यार की।
भीर परी पारथ पै अनेक भूपाल मारे, भारई के मंडल कूँ घंटन समार की॥

1. वे ‘द्वारिका’ नहीं चाहते थे। शुद्धता पर प्रचलन को वरीयता।

2. वे ‘कैलास’ नहीं लिखते। शुद्धता पर प्रचलन को वरीयता।

3. ‘मधुप स्वभाव मोहिं प्रिय लागा।’ (कृष्णायन)। आयाम व्यापकतर। इसमें महाभारत एवं भागवत के उभय कृष्णरूपों का समाहार प्राप्त होता है जो सफल न होने पर भी प्रयोग एवं पूर्णता की दृष्टियों से प्रशस्य है।

4. कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीन। सकल कला, सब विद्या हीन॥ (तुलसी)

5. हफ़ीजुल्लाह खॉ संपादित ‘हज़ारा’ में भी एक कवित्त मिलता है।

4. राजा दुरजोधन के मेघन को राजी नहीं, बिदुर की भाजी महाराज के अहार की।
 धन्य नन्द के कुमार हाथ जोर कहूँ बार, ऐरे नन्दलाल! क्यों हमारी बार बार की।।
 वृंदावन कीरत विनोद कुंज कुंजन में, आनंद-कंद लाल मूरति गुपार' की।
 कालीदह 'कारे' पताल पैठि नाग नाथ्यो, केतकी के फूल तोरि लाए माला हार की।।
 परसत ही पूतना परम गति पाय गई, पलक ही पार पार्यौ अजामिल नार की।
 गीध गुनगान-हार^१, छाँछि के उगानहार, आयो ना अहीर क्यों हमारी बार-बार की।।

चाचा हित वृंदावनदास

हित हरिवंश (1502-1583 ई.) द्वारा प्रवर्तित राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनेक अनुयायी 'हित' शब्द का प्रथमादर-प्रयोग करते रहे हैं। इन्हीं में एक पुष्करक्षेत्रोत्पन्न हित वृंदावनदास (1708-1793 ई.)^३ थे जो वृंदावन स्थित तत्कालीन गोस्वामी के गुरुभ्राता होने के कारण 'चाचा' शब्द से भी सम्मानित थे। इन्होंने नखशिख, अष्टयाम, समयप्रबन्ध, छद्मलीला प्रभृति अनेक प्रसंगों पर प्रभूत काव्यसृष्टि की जो पारम्परिक होते हुए भी ललित है। सूर, परमानंददास, नंददास, हितहरिवंश इत्यादि महान् कृष्णलीलावर्णनकारों की पंक्ति में इनको भी एक स्थान प्राप्त है। किंवदंति-प्रचलित एक लाख-पदरचना एवं विपुल रचना-राशि को देखते डॉ. विजयेन्द्र स्नातक तो इन्हें ब्रजभाषा-काव्य का व्यास तक कह सकते हैं। मैं इतनी दूर तक तो नहीं जा सकता किन्तु यह कह सकता हूँ कि चाचा हित वृंदावनदास अपने उत्तम लीलापदों एवं युगचित्रण के कारण कलावैभव-विपन्न होने पर भी अमरत्व के अधिकारी हैं। मनिहारी-लीला अतीव लोकप्रिय है, जो लोकगीतों (कजली इत्यादि) में भी बड़े उत्साह से प्रवेश पा चुकी है। एतद्विषयक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

मिठबोलनी नवल मनिहारी।

भौहें गोल गरूर हैं याके नयन चुटीले भारी।।

चूरी लखि मुख तें कहै घूँघट में मुसकाति।

ससि मनु बदरी-ओट में दुरि दरसत यहि भाँति।।

चूरी बड़ो है मोल को नगर न गाहक कोय।

मो फेरी खाली परी आई सब घर टोय।।

इनके काव्य में प्रेम-तादात्म्य के भव्य वर्णन भी प्राप्त होते हैं, यथा :

प्रीतम! तुम तो दृगन वसत हो।

कहा भरोसे है पूछत हो, कै चतुराई करि जु हँसत हो।।

लीजै परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन मैं तुमहीं तौ लसत हो।

वृंदावन हित रूप रसिक तुम, कुंज लड़ावत हिय हरषत हो।

अंतिम चरण में स्वयं अपना एवं गुरु हितरूप के नाम संश्लिष्ट हैं।

चाचा हित वृंदावनदास कोरे भक्त अथवा कोरे समाज-निरपेक्ष कवि नहीं थे। उनका इतिहास-बोध उच्चकोटि का है जो परम विलासी मोहम्मदशाह रंगीले (राज्यकाल 1719-1748 ई.) के समय में ही मुगल-वंश के पतन की स्पष्ट घोषणा कर देता है :

नीत पातसाहै ऊक्यौ, सूवनि मनसूब चूक्यौ, बहुत दिन निजाम कूक्यौ, काविल दरेरो कियै।

वेस्या मदपान करि छकि गए अमीर जेते, रज-तम की धार काढ़ी, बूढ़े को विलौकिये।।

दिल्ली भई विल्ली, कटैला कुत्ता देखि डरी, भूल्यौ मुहमदसाह पहिले, अब काह ढोकियै।

वावर, हुमाऊँ को चलातू अब बंस भयौ, ताकौ यह फैल्यो सोक, परजा करम ठोकियै।।

इतिहास-बोध के इस महान् छन्द में होली में कन्हैया वननेवाले तथा दर्पण-प्रिय मोहम्मदशाह रंगीले के पतनकाल का सम्पूर्ण चित्र अंकित है। लुटेरा नादिरशाह अपनी पिशाचलीला सीधे दिल्ली और लाल किले में डटकर पूरी तरह करता रहे, वर्वर अहमदशाह

1. गोपाल। गुपाल। रलयोरभेदः।

3. गुनगानगावनहार।

3. क्रमशः आ. शुक्ल (हिन्दी-साहित्य का इतिहास) एवं डॉ. विजयेन्द्र स्नातक (हिन्दी साहित्य कोश) के अनुसार।

अब्दाली अपनी पिशाचलीला तत्कालीन विराट् पंजाब से लेकर आज के उत्तर प्रदेश तक करता रहे, दिल्ली में बादशाह की नाक के नीचे घैठा नीच सफ़दरजंग' अपनी निज़ामुल्मुल्क से व्यक्तिगत ईर्ष्या के कारण बाहर-ही-बाहर लौटते राशि-नुष्ट नादिरशाह को दिल्ली की लूट का लालच-भरा आमन्त्रण देता रहे, दिल्ली का ही तथाकथित सूफ़ी फ़कीर किन्तु वास्तव में घृण्य देशद्रोही वलीउल्लाह अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण देता रहे, ज़लजले हों या क़यामत, मोहम्मदशाह के रंगीलेपन पर कोई असर नहीं आ पाया! खेद है कि उर्दू (रेख्ता) के आदिकवि वली और 'इन्द्रावती' के सूफ़ी प्रेमाख्यानकार नूर मोहम्मद ने ऐसे नामराद और भ्रष्ट बादशाह की तारीफ़ों के पुल बाँधकर सत्य का गला घोटा है।

चाचा हित वृंदावनदास ने घनआनन्द का निधन अपनी आँखों से देखा था। अब्दाली के लुटेरे सैनिक बादशाह के किसी ज़माने के मीर मुंशी से 'जर' माँगने गए किन्तु उन्हें मिली 'रज'। वे कोई सिकंदर तो थे नहीं जो शत्रु का शौर्य भी पहचानता था, तप का तेज भी। इस्लाम सिकंदर नहीं, तैमूर ही पैदा कर सकता है। तत्काल 'रज' देनेवाला हाथ कट कर धरती पर जा गिरा! घनआनन्द ने कहा, मुझे लगातार घायल कर-करके मारो। बरबर् म्लेच्छों को मनोरंजन का अपूर्व अवसर मिल गया। वे घाव-पर-घाव करते जाते, घनआनन्द 'ब्रजरज' में लोट-लोट कर उसे 'आत्मसात्' करते जाते! इस गम्भीर दृश्य का आकलन करते हुए चाचा हित वृंदावनदास ने 'हरिकलावेलि' में ही लिखा है :

विरह सौ तायौ तन, निवाह्यौ वन साँचौ पन,² धन्य आनन्दघन मुख गाई सोई करी है।

एहो ब्रजरज कुँवर! धन्य-धन्य तुमहूँ कौ, कथा नीकी प्रभु! यह जग में विस्ती है।।

गाढ़ौ ब्रज-उपासी जिन देह अंत पूरी पारी, रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है।

वृंदावन हित रूप तुमहूँ हरि! उड़ाई धूरि, ऐ पै साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है।।

ऐसा प्रतीत होता है कि चाचा हित वृंदावनदास की घनआनन्द से प्रगाढ़ मैत्री थी क्योंकि 1761 ई. में महाकवि की पाशविक हत्या से लगभग चार वर्ष पूर्व फर्रुखाबाद के एक आयोजन में महाकवि का एक 'ख्याल' (खयाल) सुनकर विह्वल होने के स्मृति-सन्दर्भ के साथ वह ऐसे भक्त की भी हत्या पर हार्दिक क्लेश व्यक्त करते हैं :

ठारह से तेरहें³ बरस हरि यह करी। जमन विगोयो देस विपति गाढ़ी करी।।

तब मन चिन्ता वाढ़ी साधु पतन करे। हरिहीं मनहूँ सृष्टि संहार काल-आयुध धरे।।

भाजि-भाजि कोऊ छुटे, तब मन उपज्यो सोच। अहो नाथ! तुम जन हते, भये कौन विधि पोच।।

बार-बार सोचत यही, गए प्राण वौराई। संत करे बध जमन नै, यह दुख सह्यौ न जाइ।।

सहर फरुखाबाद जहँ गए सुरधुनी पास। चैत सुदी एकादसी तहाँ भयौ इस रास।।

तीन पहर रजनी गई, वे कवि कीयो गान। तहाँ एक कौतुक भयो, ताकर करौ बखान।।

आनंदघन को ख्याल इक गायौ खुलि गए नैन। सुनत महाविहवल भयौ, मन नहिं पायौ चैन।।

ऐसेहूँ हरि संतजन मारे जमननि आई। यह अति देखि हियो भयो लीनौ सोच दवाई।।

नज़ीर अकबराबादी⁴

हिन्दी-कविता की प्रेरणा से उर्दू-शायरी के उद्भव के वली, आबरू, आरजू, तावाँ वगैरह से भी बढ़कर सशक्त प्रमाण हैं नज़ीर अकबराबादी (1735-1830 ई.)¹। कुलपति मिश्र, सूदन, सीतल, घनआनन्द, बोधा, पजनेस इत्यादि की हिन्दी-कविता के बीच भावी शैली

1. खेद है कि दिल्ली में इस धिनौने गद्दार के नाम पर कई संस्थान विद्यमान हैं, जिसका कारण हमारे नेताओं में राष्ट्रीय गौरव का अभाव या इतिहास का अज्ञान ही कहा जा सकता है।
2. वृंदावन के प्रति सत्यनिष्ठ प्रण का निर्वाह किया।
3. "...यद्यनों ने मार डाला। पर कब? क्या संवत् 1813 में? न, संवत् 1817 में।" (घनआनन्द-कवित्त, सं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृष्ठ 17-18)। हरिकलावेलि का रचनाकाल "ठारहसे-सत्रहौं वर्ष" (घनआनन्द-ग्रन्थावली, सं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र) ही घनआनन्द का निधन-वर्ष है। यों, अब्दाली के सैनिकों की पिशाचलीला सं. 1813 समेत कई वर्षों में हुई थी।
4. अकबराबाद जैसा भारी-भरकम नाम आगरा के लिए शाहजहाँ ने ठोका था जिसे जनता ने ठुकरा दिया। शाहजहाँ को पिता जहाँगीर से घृणा थी, किन्तु पितामह अकबर से श्रद्धा भी थी।

उर्दू के सुस्पष्ट दर्शन होते हैं। सीतल और नज़ीर की कविता में भाषा का विशेष अन्तर नहीं है। दोनों प्रायः समसामयिक भी थे। कहते हैं, असादुल्ला खाँ 'ग़ालिब' (पूर्व उपनाम 'असद') आरम्भ में इनके शिष्य थे। नज़ीर, मीर, ग़ालिब आगरा में जन्मे थे। बाद में 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के दबदबे में ग़ालिब नज़ीर की शिगिर्दी तक को नकारने लगे थे। ग़ालिब ने उर्दू को कृत्रिम, क्लिष्ट एवं अर्द्धविदेशी रूप देकर उसे जन-जीवन से अलग-अलग कर दिया। उर्दू को फ़ारसी की पूँछ बनानेवालों में ग़ालिब सर्वोपरि हैं। किन्तु नज़ीर विशुद्ध जनकवि हैं। नज़ीर की भाषा हिन्दी-उर्दू की एकता की ज़बर्दस्त प्रतीक है। मोहम्मदअली करीम छागला (अंग्रेज़ी में 'चागला') इत्यादि उर्दू को देवनागरी लिपि में लिखे जाने का प्रतिपादन करते थे, जिससे वह राष्ट्रीय धारा में समाविष्ट होकर कोटि-कोटि जनता में समादृत हो—केवल साम्प्रदायिकता की प्रतीक बनकर रोज़-ब-रोज़ चुकती न चले। ग़ालिब वगैरह की इज़्ज़त का कारण अध्ययन-अनुशीलन नहीं है, उर्दू के फ़ारसीकरण का विजायीयतावादी आग्रह है।

नज़ीर खुसरो की परम्परा के सच्चे भारतीय एवं रहीम की परम्परा के असली धर्मनिरपेक्षतावादी कवि एवं सन्त^१ थे। उनका सारा काव्य मानवतावाद से ओतप्रोत है। इस कारण से कई साम्प्रदायिक मुसलमान एवं "यथाराजा-तथाप्रजा"—अतीतदास उनके पुछले हिन्दी-उर्दूदाँ उन्हें उच्चकोटि का शायर तक मानने से इंकार कर देते हैं : वह भी कोई उर्दू है जो फ़ारसी की पूँछ न हो! उर्दू को भारत से क्या लेना-देना! उसके प्रेम-प्रतीक मजनों और फ़रहाद हैं, उसका पक्षी बुलबुल^२ है, उसके लोक दो हैं तीन नहीं, उसकी गंगा जमजम है, उनकी काशी मक्का है और अयोध्या मदीना, उसके हीरो ग़ज़नवी, तैमूर, बाबर और औरंगज़ेब हैं, उसके कवि-प्रतीक कालिदास और तुलसीदास जैसे विश्वकवि न होकर क्लिष्ट-कवि ग़ालिब और साम्प्रदायिक कवि इक़बाल हैं। किन्तु नज़ीर सच्चे राष्ट्रीय कवि थे, उदार मानवतावादी कवि थे। वैसे भी, वे उदार सूफी थे जिनका इश्क़हकीकी अत्यंत व्यापक है। उन्होंने हिन्दी-उर्दू के कृत्रिम द्वैत को नकारा और ताज बेग़म की कृष्णकाव्य-परम्परा को भी समुन्नत किया। नज़ीर ने एक नई नज़ीर पेश की कि भारत का मुसलमान वही उसका सर्वस्व है। नज़ीर भारतेन्दु के मंत्र "...मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिन्दू वारिए" के एक जीवन्त प्रतीक हैं :

1. यारो! सुनो ये दधि के लुटैया का बालपन औ मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन।
मोहन सरूप नृत्य करैया का बालपन, बन-बन में ग्वाल गौवें चरैया का बालपन।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन, क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन।
परदे में बालपन के ये उनके मिलाप थे, जोती^३-सरूप कहिए जिन्हें सो वो आप थे!
2. वाँ कृष्ण मनमोहन ने जब ग्वालों से ये बात कही औ आपी से झट गेंद-डंडा उस कालीदह में फेंक दई।
यह लीला है उस नंदलालन मनमोहन जसुमति-छैया की, रख ध्यान सुनो, दंडवत करो, जय बोलो कृष्ण-कन्हैया की।

5. संतकाव्य

संतकाव्य-परम्परा का आदि-रूप संक्रान्तिकाल के सरहपा इत्यादि बौद्ध सिद्धों, देवसेन इत्यादि जैन आचार्यों एवं गोरक्षनाथ (गोरखनाथ) इत्यादि शैव हठयोगियों में दृग्गत होता है। पुनरुत्थानकाल संतकाव्य का स्वर्णकाल था जिसमें रामानन्द, नामदेव, कबीर, रैदास, नानक, अर्जुन दादू इत्यादि महान् धर्मनेता अवतरित हुए। शास्त्रीयकाल में संतकाव्य का यथेष्ट विकास हुआ। मलूकदास (1574 ई.) इनके समकालीन यारी साहब, यारी साहब के शिष्य बूला साहब, बूला साहब के शिष्य जगजीवन^४ साहब सतनामी (जन्म 1670 ई.)

1. 'हिन्दी-ग़ज़ल : उद्भव और विकास' (डॉ. रोहिताश्व अस्थाना)। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 1797-1877 वि. (1740-1820 ई.) दिया है।
2. फ़क़ीर। नज़ीर फ़क़ीर थे भी।
3. बुलबुल संगीत का बुलबुला उठाती है, किन्तु कोकिला संगीत का सरोवर लहराती है, पपीहा संगीत की सरिता बहाता है : पर उर्दू है कि विदेशदासता से टस-से-मस होने को तैयार नहीं। ऐसी भाषा केवल केवल साम्प्रदायिकता और पूर्वशासकदासता के बल पर कब तक जिन्दा रखी जा सकती है?
4. जायसी इत्यादि सूफ़ियों ने "उपजा मोहमद नूर" इत्यादि की ही चर्चा की है, किन्तु नज़ीर ऐसे सूफ़ी थे जो कृष्ण को भी ज्योति-स्वरूप मान सकते थे। दाऊद कुत्बन, मंज़न, उस्मान इत्यादि कुछ नरम सूफ़ी तक नज़ीर जैसे उदार नहीं—जायसी और नूरमोहम्मद जैसे क्रमशः साम्प्रदायिक और मतांध सूफ़ियों से तो उनकी कोई तुलना ही नहीं।
5. दूसरे जगजीवन साहब दादूपंथी और तीसरे जगजीवन साहब निरंजनी अर्थात् जगजीवन साहब नाम के तीन संत हुए हैं।

या 1682 ई.), गुरु तेगबहादुर (1621-1675 ई.), प्राणनाथ (प्रभावकाल 1670 ई. के आसपास), दादू के शिष्यद्वय रज्जव (मृत्यु 1689 ई.) एवं सुंदरदास (मृत्यु 1689 ई.), दूलनदास (मृत्यु 1778 ई.) चरनदास (1703-1781 ई.) एवं उनकी सहजोबाई-दयाबाई नामक दो शिष्याएँ, शिवनारायण¹ (1700-1780 ई.), दरिया साहब (1734-1780 ई.) इत्यादि की सूची काफी बड़ी है जिनमें दार्शनिक गहनता की दृष्टि से मलूकदास तथा साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से सुंदरदास श्रेष्ठतम हैं। जैसे पुनरुत्थानकालीन संतों में रामानन्द परम विद्वान् ब्राह्मण थे, कबीर मुसलमान जुलाहा, रैदास चर्मकार, नानक एवं अर्जुन खत्री, दादू मुसलमान धुनियाँ, वैसे ही शास्त्रीयकाल के संतों में मलूकदास एवं सुंदरदास खत्री थे, जगजीवन साहब सतनामी क्षत्रिय, चरनदास एवं उनकी सहजोबाई-दयाबाई शिष्याएँ वैश्य, रज्जव, दरिया साहब एवं यारी साहब मुसलमान, अर्थात् संत-मत सर्वधर्ममय एवं सर्वाजातिमय अथवा मानवतावादी ही रहा है। इन सन्तों में मलूकदास, जगजीवन साहब सतनामी, शिवनारायण इत्यादि निर्गुण-निराकार एवं सगुण-साकार के समन्वय-प्रतीक भी हैं। पुनरुत्थानकालीन रामानन्द, नामदेव, कबीर, नानक, अर्जुन इत्यादि भी कोरे निर्गुण-निराकार-चछ संत नहीं हैं। इन्हें निर्गुणमार्गी कहना इनको मतसंकीर्णता में आवद्ध करना मात्र है। आ. शुक्ल की स्थूल भेदवादी दृष्टि के कारण निर्गुण-सगुण का अनावश्यक वर्गीकरण प्रचलित हो गया है, जो वस्तुपरक नहीं है अर्थात् तत्त्वतः निराधार है। गुरु अंगद, गुरु अर्जुन, गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह की वाणी को तो केवल निर्गुण या केवल-सगुण कहना ही गलत होगा। गुरु गोविन्दसिंह का स्फीत दशावतार (जिसमें रामावतार एवं कृष्णावतार प्रमुख हैं) तो स्पष्टतः सगुण-साकार-वादी रचना ही है; उनका चण्डीचरित्र या चण्डीचरित भी इसी वर्ग की कृति है। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थवाल ने एक निरंजन-सम्प्रदाय पर प्रकाश डाला था जिसके बारह संत-कवियों का सर्वप्रथम उल्लेख राघवदास ने अपने भक्तमाल (सन्तमाल) में किया है, जिनमें हरिदास, तुलसीदास, सेवादास, मनोहरदास, कान्हरदास² विशेष महत्त्व के हैं। कबीरपंथ, नानकपंथ, दादूपंथ इत्यादि आज भी विद्यमान हैं। संत भी होते ही रहते हैं। सिद्ध-योगियों पर बिहार में 'जोगीड़ा' चलता है, कबीर इत्यादि पर उत्तरप्रदेश में 'कबीर' गाए जाते हैं और ये दोनों अश्लील तक हो गए हैं। "जहँ-जहँ चरन परै संतन के तहँ-तहँ होइ जाय बंदाद्वार", "कुछ बढ़ाएन संतन कुछ बढ़ाएन भगतन", "अपनी-अपनी ढपली पर अपना-अपना राग" जैसे लोकोक्तियाँ संतों की समीक्षा भी प्रस्तुत करती हैं। अधिकांश सन्तों ने कुछ भी नया नहीं कहा। फिर भी, साम्प्रदायिक सौमनस्य अर्थात् धर्मनिरपेक्षता तथा मानवतावाद की दृष्टियों से संत-वाणी का महत्त्व एकदम से नकारना उचित न होगा। कुछ स्तरीय उदाहरण प्रस्तुत हैं :

सबहिन के हम, सबै हमारे। जीव-जन्तु मोहि लगै पियारे।।
तीनों लोक हमारी माया। अंत कबहूँ से कोई नहीं पाया।।
छत्तिस पवन हमारी जाति। हमहीं दिन औ हमहीं राति।।
हमहीं तरवर कीट पतंगा। हमहीं दुर्गा, हमहीं गंगा।।
हमहीं मुल्ला, हमहीं क्राप्पी। तीरथ-बरत हमारी बाप्पी।।
हमहीं दसरथ, हमही राम। हमरै क्रोध औ हमरै काम।।
हमहीं रावन, हमही कंस, हमहीं मारा अपना बंस।।

(मलूकदास)

गेह तज्यो अरु नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ कै देह सँवारी।
मेह सहे सिर, सीत सहे तन, धूप समै जो पँचागिनि बारी।।
भूख सही, रहि रूख तरे, पर सुंदरदास सबै दुख भारी।
डासन छाँड़िकै कासन ऊपर आसन मार्यो पै आस न मारी।।

(सुंदरदास)

माई! मैं कि बिधि लखउ गुसाँई।
महामोह अज्ञान तिमिर मो मनु रहिओ उरझाई।।
जनम भरम ही भरम खोइओ, नहि असथिरु मति पाई।।
बिसियासकत रहिओ निसि-बासुर, नहि छूटी अधमाई।।

1. इनका मुगल बादशाहों एवं अहमदशाह से संपर्क था।

2. कान्हरदास।

साध-संग, कबहूँ नहिं कीना, नहिं कीरति प्रभु गाई ।
 नानक^१ माहि नाहि कोऊ गुनु, राखि लेहु सरनाई ॥
 जौ नर दुखु मैं दुखु नहिं मानै ।
 सुख, सनेह अरु भै नहिं जाकै, कंचन माटी मानै ॥
 नहिं निंदिया^२ नहिं उसतति^३ जाकै, लोभ, मोहु, अभिमाना ।
 हरष-सोग ते रहे निआरउ, नाहिं मान-अपमाना ॥
 आसा-मनसा सगल तिआगै, जग ते रहै निरासा^४ ।
 काम-क्रोध जिह परसै नाहनि तेह घटि ब्रह्म निवासा ॥
 गुरु कृपा जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगति पछानी ।
 नानक लीन भइयो गोविन्द सिउ^५ जिउ पानी सँग पानी ॥
 (गुरु तेगबहादुर)

जात एक खसम की, और न कोई जात ।
 एक खसम एक दुनिया और उड़ गई दूजी बात ॥
 सब जातें नाम जुदे धरें, सबको खाविंद एक ।
 सबको वंदगनी याही की, पीछे लड़े बिना पाए विवेक ॥
 लड़ फिर के जुदे हुए, हिन्दू-मुसलमान ।
 और खलक देती कहूँ, सब में लड़े गुमान ॥
 जो कुछ कहा कतव में, सोई कहा वेद ।
 दोऊ बंदे एक साहब के पर लड़त बिना पाए भेद ॥
 बोली सबन जुदा परी, नाम जुदे धरे सबन ।
 चलन जुदा कर दिया ताथे समझ न परी किन ॥
 ताथे हुई बड़ी उरझन सो सुरझाऊँ दोय ।
 नाम-निशान जाहिर करूँ ज्यों समझे सब कोय ॥
 (प्राणनाथ)

जिन सत पद खोजा चित लाई । निकट नाम निज ज्ञान समाई ॥
 आतमदास ज्ञान अब बूझै । प्रेम मगन है अपने सूझै ॥
 तत्त्व तिलक मन मुद्रा फेरै । अनहदु धुनि मुरली तहँ हैरै ॥
 अजपा संध्या तरपई करई । ग्यानगम्य गायत्री लहई ॥
 पल-पल सुमिरि प्रेमरस पीजै । मनि मुकुता तहवाँ चित दीजै ॥
 चंद-सूर दुइ परचै भयऊ । सरिता तिन संगम तहँ रहेऊ ॥
 कुंभ-पत्र तहवाँ भरि पीवै । ब्रह्म दृढ़ाइ तहाँ सुख जीवै ॥
 (दरिया साहब)

1. दस में सात गुरु कवि भी थे और प्रायः सब ने नानक नाम (छाप) से ही कविता लिखी है। गुरु गोविन्दसिंह ने केवल ललितकाव्य में ऐसा नहीं किया, अपना नाम भी नहीं दिया। दस गुरुओं में नानक कवित्व-दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ हैं, तब अर्जुन, तदनंतर गुरु गोविन्दसिंह जिनके पिता तेगबहादुर भी सत्कवि हैं। अन्य गुरुओं का कवि-रूप साधारण है।
2. निंदा। परनिंदा।
3. स्तुति। प्रशंसा।
4. आशारहित ('निराशा' नहीं)
5. सं, के साथ।

प्रमुख कवि

रज्जव

दादू के शिष्य रज्जव (जन्म 1567 ई.)¹ साँगानेर (राजस्थान) में हुए जहाँ रज्जव-पंथ (रजवावत) की गद्दी विद्यमान है। किंवदन्ति के अनुसार, यह कलाल थे। किन्तु इन्हें रज्जव अली खाँ (पठान) मानना ही ठीक लगता है। रज्जव के साथ वागर्थविव-संपृक्त डॉ. ब्रजलाल वर्मा (कानपुर) ने 'संत कवि रज्जव' शीर्षक शोधकार्य किया है, 'रज्जव-वाणी' का सम्पादन भी। स्वयं रज्जव एक अच्छे संपादक थे जिन्होंने 'अंगवधू' में दादू तथा 'सव्यंगी' में अपनी और नामदेव, कबीर, रैदास, पीपा, नानक, दादू इत्यादि की वाणी का संकलन किया था।

यद्यपि रज्जव की वाणी में कबीर, रैदास, नानक, दादू इत्यादि का भारी प्रभाव पड़ा है तथापि इन्होंने छंदवैविध्य की नूतनता का प्रदर्शन अवश्य किया है। उद्गार की स्पष्ट रज्जव की प्रमुख विशेषता है। यह एक श्रेष्ठ संत तथा साधारण कवि हैं :

वारी बुद्धि माहै उदै सफरी सबद समान। इह प्रकार वानी विविध समुझै साधु सुजान॥

निर्मल पीवै प्रेमरस पल-पल पोसै प्रान। जन रज्जव छाक्या रहै साधु, संत, सुजान॥

रज्जव का सुंदरदास पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था, क्योंकि छह वर्ष की अल्पायु में दादू के शिष्य बनने के अनंतर सुंदरदास ने इन तथा जगजीवन के साथ काशी-यात्रा की थी। सुंदरदास का देहांत भी साँगानेर में हुआ था। दादू एक महान् गुरु थे जिनके रज्जव, सुंदरदास, जनगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, खेमदास इत्यादि अनेक शिष्य हुए और सभी ने कविता भी लिखी या कही।²

मलूकदास

'ज्ञानबोध', 'रतनखान', 'ज्ञानपरोष्ठि', 'बारहखड़ी' एवं 'विभयविभूति' में ज्ञान एवं योग, 'भक्तवच्छावली'³ एवं 'भक्तिविवेक' में भक्तित्व तथा 'सुखसागर', 'ध्रुवचरित', 'रामावतारलीला' एवं 'ब्रजलीला' में भक्ति के सगुण-साकार-गत अवतारवाद का व्यापक एवं विशद अंकन करनेवाले, मलूकदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत मलूकदास (1574-1682 ई.)⁴ निर्गुण-सगुण-सेतु एवं सत्कवि थे। आ. शुक्ल द्वारा 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में इन्हें निर्गुण-धारा की ज्ञानाश्रयी-शाखा में बाँधना, तदनुवर्ती डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल का 'हिन्दी-काव्य में निर्गुण-सम्प्रदाय' (द निर्गुण स्कूल ऑफ हिन्दी-पोएट्री) में लपेटना तथा डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित का 'मलूकदास' शीर्षक उत्कृष्ट ग्रन्थ में इनके सगुणसाकारवादी तथा अवतारवादी ग्रन्थों को आरम्भिक कहकर उड़ाना वस्तुपरक नहीं है, क्योंकि यह तत्त्वतः निर्गुण-सगुण-अभेदवादी महात्मा थे। स्वयं नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि भी शत-प्रति-शत निर्गुणवादी-निराकारवादी नहीं सिद्ध किए जा सकते। खेद है कि आ. शुक्ल की वर्गीकरणव्यामोही दृष्टि के कारण हिन्दी-आलोचना निराधार भेदभाव का आखेट होकर रह गई है। यदि कबीर इत्यादि को 'निर्गुणप्रधान' तक कहा जाता तो भी गनीमत थी। किन्तु जहाँ तक मलूकदास का सम्बन्ध है वे स्पष्टतः उतने ही सगुणवादी-साकारवादी भी हैं जितने निर्गुणवादी-निराकारवादी। मिश्रबन्धु ने ठीक लिखा है, "आप

1. इनका 122 वर्ष जीना प्रात्ययिक नहीं लगता। 1689 ई. में मृत्यु बताई जाती है। जन्मवर्ष ही विवादास्पद है क्योंकि मृत्युवर्ष में प्रसिद्ध हो चुके होंगे। 'विनोद' में रचनाकाल 1700 वि. (1643 ई.) दिया है। यह भी प्रात्ययिक नहीं, क्योंकि सृजन 75-80 की आयु में आरम्भ नहीं होता।
2. 'द निर्गुण स्कूल ऑफ हिन्दी-पोएट्री' (डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल, 36 ई.), 'उत्तरी भारत की संत-परम्परा' (आ. परशुराम चतुर्वेदी), 'संत कवि रज्जव' (डॉ. ब्रजलाल वर्मा, 1965 ई.) इत्यादि ग्रन्थ संत-काव्य एवं रज्जव पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। दादू, रज्जव, सुंदरदास, चरणदास, सहजावाँई, दयावाँई इत्यादि अनेक संतों के कारण राजस्थान को संतस्थान भी कहा जा सकता है। सगुण-साकार-मयी मीरों (मीरा) तो राजस्थान की आत्मा हैं ही; वे मरुभूमि की मंदाकिनी भी हैं।
3. टोंगा-चोपाई-निबद्ध 'भक्तवच्छावली' अवधी में रचित है जो 'हिन्दी-काव्य में निर्गुणसंप्रदाय' के प्रस्थानग्रन्थकार डॉ. पीताम्बरदत्त बड़धवाल के शब्दों में मलूकदास की सर्वोत्तम रचना है।
4. मलूकदास का 108 वर्षीय जीवन भूषण के 102, सुखदेव के 102 तथा संतराम की. ए. के 101 वर्षीय जीवन की परम्परा में माना जा सकता है। यद्यपि संदेह होता है, तथापि तुलसी के आमन्य 126 तथा कबीर के अप्रात्ययिक 120 वर्षीय जीवन जैसा नहीं। 'सधुरादास' की 'परिचयी' इन्हीं संवत्सों (1631-1739 वि.) का उल्लेख करती है।

विशेषतया सगुणवादी थे, किन्तु कुछ विचार निर्गुणवाद के भी कहते थे।" कोरे निर्गुणवादी-निराकारवादी तुलसी साहव इत्यादि को जनता ने घास नहीं डाली और उन्हें 'पूर्वजन्म में तुलसी' के पाखंड की शरण लेनी पड़ी, जिसका परिणाम भी परिहास ही निकला। तुलसी ने निर्गुण का खंडन नहीं किया, सूर ने निर्गुण को कठिन बताया है निराधार नहीं, मीराँ (मीरा) ने निर्गुण का भी सम्मान किया है। कबीर, नानक, मीराँ, सूर, तुलसी इत्यादि का व्यापक सम्मान इस कारण से भी है कि ये सब उदार मानवतावादी थे, संकीर्ण सम्प्रदायवादी नहीं। आ. शुक्ल ने इस वस्तु-सत्य की निराधार, अवहेलना कर राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा की क्षति की है।

मलूकदास का जीवन राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मोहम्मद, कबीर, नानक इत्यादि के जीवनो के सदृश कल्पित कथाओं से आच्छन्न है। मिश्रबन्धु ने तो 'विनोद' की संख्या 418 में 'मलूकदास ब्राह्मण' तक लिख मारा है तथा लिखा है कि "मलूकदास खत्री का वर्णन हमने संख्या 1804 में किया है," यद्यपि संख्या 1804 में 'छद्दूरि रायसो' के रचयिता धरमपाल दर्ज हैं। हाँ, उन्होंने संख्या 1067 में कालपी के 'मलूकदास क्षत्रिय' साधु का उल्लेख अवश्य किया है जिनके ग्रन्थ 'भक्त-वत्सल', 'भक्त-विरुदावली', 'गुरु-प्रताप', 'पुरुष-विलास', 'रतनखानि' एवं 'अलखबानी' हैं, कविताकाल 1824 वि. (1767 ई.) बताया है। 'विवरण' में दर्ज है : "बाबू कृष्णबलदेव खत्री कालपी-निवासी के मातामह के बाबा थे। पिता का नाम सुंदरदास खत्री।" इनकी कविता का उदाहरण नितांत निकृष्ट है। स्पष्ट है कि यह विवरण उपेक्षणीय है, भले ही यह मलूकदास कड़ा (प्रयाग जनपद) वाले तथा मलूकदास कालपी (जालौन जनपद) वाले दो मलूकदासों का अस्तित्व सिद्ध करता हो। जिन मलूकदास को मिश्रबन्धु ने ब्राह्मण बतलाया है वे प्रमाण, परम्परा एवं आ. शुक्ल, डॉ. बड़वाल, आ. परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित इत्यादि विद्वानों के मतानुसार खत्री ही सिद्ध होते हैं, कालपी-वाले मलूकदास तो खत्री थे ही। सम्भव है कि इन्होंने कड़ा-वाले प्रसिद्ध मलूकदास से नाम-साम्यगत लाभ भी उठाया हो। संत सदा लाभ उठाने में अग्रणी रहे हैं। ईसा ने यहूदी पैगम्बर यशायाह से, मोहम्मद ने मूसा इत्यादि अनेक यहूदी पैगम्बरों से, कबीर ने नामदेव से, नानक ने कबीर से तथा अन्य अनेक ने अन्य अनेक से भरपूर लाभ उठाए हैं।

मलूकदास के 'परिचयी'-कार सथुरादास एवं उनसे भी अधिक नानाग्रंथप्रतिलिपिकार प्रयागवासी दयालदास कायस्थ (जो मलूकदास के शिष्य एवं भक्त थे) के कारण ही महान् संत-कवि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रकाश में आ सका है। डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने उच्चस्तरीय 'मलूकदास' ग्रन्थ द्वारा उन्हें आधुनिक पाठक से परिचित कराया है। 'भारतवर्ष का धार्मिक इतिहास' के प्रणेता शिवशंकर मिश्र ने भी मलूकदास पर प्रकाश डाला है। मिश्रबन्धु, आ. रामचन्द्र शुक्ल, आ. क्षितिजमोहन सेन, पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' इत्यादि ने तो उन पर लिखा ही है।

मलूकदास का व्यक्तित्व भी विलक्षण है, कृतित्व भी। जिस प्रकार वे निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार, ज्ञान-भक्ति एवं योग-भक्ति के समाहार से निष्पन्न जीवन की विराटवादी व्याख्या करते हैं उसी प्रकार उपदेशप्रवण कविता भी लिखते हैं, लालित्यप्रवण कविता भी। निस्सन्देह, वे कबीर, रैदास एवं नानक के स्तर के व्यक्ति थे। निस्सन्देह, वे सुन्दरदास के स्तर के कवि थे। सन्तों में कवि कम ही हुए हैं, यह सर्वविज्ञात है। मलूकदास पर तुलसीदास का प्रभाव भी पड़ा है। उन्होंने अवधी एवं ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ीबोली को भी अपनाया है। अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया है। गेय पद, दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त इत्यादि में व्यक्त उनका स्फीत उद्गार हिन्दू का धन है।

मलूकदास के इस लोकप्रिय दोहे को आ. शुक्ल ने "आलसियों का मूल मन्त्र" कहा है किन्तु बाइबिल में ठीक यही ही कथन ईसा का भी मिलता है—ऐसे अनेक कथनों का उद्देश्य चिन्ता-ग्रस्त जीवन में निश्चिन्तता का संचार है जिसे तूल देना तर्कसंगत नहीं :

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।

दास मलूका कहि गए, सबके दाता राम॥

मलूकदासजी-पंथ में मलूकदास की वैसी ही पूजा होती है जैसी नानक-पंथ में नानक की, कबीर-पंथ में कबीर की। उनके बहुआयामी सृजन के कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

1. खत्री। नानक, अर्जुन, गोविन्दसिंह प्रभृति गुरुओं, सुंदरदास, मलूकदास, पुरुषोत्तमदास टंडन, श्यामसुंदरदास (खन्ना) इत्यादि खत्रियों की हिन्दी सदा कृतज्ञ रहेगी।
2. पंथ की गद्दी, साहित्य इत्यादि।
3. 'उत्तरी भारत की संत-परम्परा' शीर्षक अमर ग्रन्थ के विद्वान् लेखक।
4. दशावतार को ही नहीं, "अहं ब्रह्मास्मि", 'तत्त्वमसि', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' को भी समझो। वेदांत का प्रभाव।

1. अब तो अजपा जपु मन मेरे।
सुर-नर-असुर टहलुवा जाके, मुनि-गंधर्व हैं चरे। दस औतार देखि मत भूलौ, ऐसे रूप घनेरे।¹
अलख पुरुष के हाथ विकाने जव तैं नैनरि हेरे। मलूक तू चेत अचेता, काल न आवै नेरे।।
2. नाम हमारा खाक है, हम खाकी बंदे। खाकहि से पैदा किए, अति गाफिल गंदे।¹
कबहुँ न करते बंदगी, दुनिया में भूले। आसमान को ताकते, थोड़े चढ़ फूले।।
3. सबहिन के हम, सबै हमारे। जीव-जन्तु मोहि लगैं पियारे।।
तीनों लोक हमारी माया। अंत कबहुँ से कोई नहिं पाया।।
छत्तिस पवन हमारी जाति। हमहीं दिन औ हमहीं राति।।
हमहीं तरवर कीट पतंगा। हमहीं दुर्गा, हमहीं गंगा।।
हमहीं मुल्ला, हमहीं क्राज़ी। तीरथ-वरत हमारी बाज़ी।।
हमहीं दसरथ, हमही राम। हमरै क्रोध औ हमरै काम।।
हमहीं रावन, हमही कंस, हमहीं मारा अपना बंस²।।
4. चंद कलंकी कहा करिहै, सरि-कोकिल-कीर-कपोत लजाने।
बिद्रुम, हेम, करी, अहि, केहरि, कंजकली और अनार के दाने।।
मीन, सरासन, धूम की रेख, मलूक सरोवर, कंबु भुलाने।
ऐसी भई नहिं है भुव में, नहिं होइगी नारि, कहा कबि जाने।।
5. अलंकार, छन्द, काव्य, नाटक अपार, राग, रागिनी भँडार बर बानी को निवास है।
कोक-कारिका बिख्यात पंकज को कोष मानौ निकसत जाँ मैं भाँति-भाँति को सुवास है।।
फूल से झरत बानी बोलत मलूक प्यारी, हँसनि में होत दामिनी को परकास है।
ऐसो मुख काको पटतर दीजै प्यारे लाल, जाँ मैं कोटि-कोटि हाव-भाव को विलास है।।

मैंने अपने बाल्यकाल में मलूकदास के छन्दों पर आधृत फाग सुने थे जो सगुण-साकार-भक्तिपरक थे। मलूकदास ने निर्गुण-निराकार से अपने संत-व्यक्तित्व और सगुण-साकार से अपने कवि-व्यक्तित्व को जैसा सँवारा है वैसा किसी अन्य संत या कवि ने नहीं। निस्सनदेह, तुलसीदास से प्रभावित होने के कारण मलूकदास अपने दायरे में जीवन के विराटवादी विश्लेषक थे।

गरीबदास

दादू के उत्तराधिकारी³ गरीबदास (जन्म 1575 ई.) राजस्थान के कोई मुसलमान-भाई थे जैसाकि दादू के मुसलमान होने और उनकी भाषा से स्पष्ट है। इनकी बानी प्रायः संतों की पारम्परिक बानी ही है, किन्तु इसमें अनुदारता नहीं है। यह प्रेरक एवं आशावादी है। उदाहरण देखें :

1. ए हरे हरे रसना रटत रहौ। साधु संग भित्ति मन परमोद्यौ, मन में मनै गहौ।।
दुति आभा उसवै तुम त्यागी, दुष-सुष सबै रहौ। यह मति प्रगट होइ प्राणी के, तिनकी मुक्ति कहौ।।
स्रीधर गाय व कुंजबिहारी कहि सब दोष दहौ। दास गरीब आस चरनन की, साध संग निवहौ।।
2. तिल में तेल, बीज में अंकुर, कस्तूरी ज्यों कुंडल माहिं।
केलि⁴ कपूर, सीप में मोती, गरीबदास यूँ गौव्यंद हाईं।।
स्वामी मंगलदास ने दादू महाविद्यालय जयपुर से 'गरीबदास की वाणी' प्रकाशित कराई है।

1. मोहम्मदीयत का प्रभाव, जिसके अनुसार अल्लाह ने आदमी को भिट्टी से बनाया और वह जन्म से ही पापी है जिसे केवल मोहम्मद स्वर्ग दिला सकते हैं।
2. हमीं कृष्ण हैं। एक महान् अद्वैतवादी काव्यांश।
3. दादू के पुत्र : औरस या पोष्य? क्याएँ भी चलती हैं, जो प्रायः सभी पैगम्बरों, पीरों, फ़कीरों, संतों, महात्माओं, महंतों की कथाओं के सदृश ही बौद्धिक दृष्टि से अविचारणीय हैं।
4. कंले में। 'कंले में कपूर' एक साहित्यिक सत्य है।

सुंदरदास¹

दादू के शिष्य तथा रज्जव के कनिष्ठ गुरुभाई सुंदरदास (1596-1689 ई.) का जन्म दौसा या दौसा (राजस्थान) के एक खंडेलवाल परिवार में हुआ तथा देहांत साँगानेर (राजस्थान) में। पंथव्यामोही संतों में सुंदरदास सर्वाधिक सुंदर एवं सुशिक्षित थे जिन्होंने ललित ब्रजभाषा में उत्कृष्ट काव्यरचना की, किन्तु जो संत की कम और कवि की अधिक लगती है—काषायधारी कौशेयधारी के रूप में नहीं फ़बता। इन्होंने अपने सुदीर्घ जीवन में व्यापक अटन किया था जिसके परिणामस्वरूप इनकी पूर्वी भारत, मारवाड़, दक्षिण भारत इत्यादि के लोगों की आलोचना आज भी तरोताज़ा लगती है। इनकी बयालीस रचनाओं में 'ज्ञानसमुद्र' एवं 'सुंदर-विलास' प्रमुख हैं। पुरोहित प्रतापनारायण शर्मा ने 'सुंदर-ग्रंथावली' का संपादन किया है। डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित ने 'सुंदर-दर्शन' लिखा है। सुंदरदास अखंड ब्रह्मचारी थे जिन्होंने रसिकप्रिया (केशवदास), रसमंजरी (नंददास), सुंदर-शृंगार (महाकविराय सुंदर) इत्यादि की कड़ी निन्दा की है। अँगूठाछाप ढपोरशंखों की अंट-शंट तुकवाजी और रासभराग की भी इन्होंने अच्छी खबर ली है। सुंदरदास अलोचकबुद्धि-निष्पन्न संत-कवि थे जो अपने उत्कृष्ट ब्रजभाषा-सृजन के कारण सदैव समादृत होते रहेंगे। तीन उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. गेह तज्यो अरु नेह तज्यो, पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी।
मेह सहे सिर, सीत सहे तन, धूप समै जो पँचागिनि वारी।।
भूख सही रहि रूख तरे, पर सुंदरदास सवै दुख भारी।
डासन छाँड़िकै कासन ऊपर आसन मार्यो पै आस न मारी।
2. पति ही सँ प्रेम होय, पति हूँ सँ नेम होय, पति ही सँ छेम होय, पति ही सँ रत है।
पति ही है जग्य-जोग, पति ही है रस-भोग, पति ही सँ मिटै सोग, पति ही को जत है।।
पति ही है ग्यान-ध्यान, पति ही है पुन्य-दान, पति ही है तीर्थन्हान, पति ही को मत है।
पति बिनु पति नाहिं, पति बिनु गति नाहिं, सुंदर सकल विधि एक पतिव्रत है।।
3. बोलिए तौ तब जब बोलिवे की बुद्धि होय, ना तौ मुख मौन गहि चुप होय रहिए।
जोरिए तौ तब जब जोरिवे की रीति जानै, तुक-छन्द-अरथ अनूप जामें लहिए।।
गाइए तौ तब जब गाइवे को कंठ होय, स्रवन के सुनतही मनै जाय गहिए।
तुकभंग, छन्दभंग, अरथ मिलै न कछु, सुंदर कहत ऐसी बानी नहिं कहिए।।

तेगबहादुर

सिखों के नवें गुरु तेगबहादुर (1621-75 ई.) का जन्म अमृतसर में हुआ था। वे छठें गुरु गोविन्द के कनिष्ठ पुत्र थे। इनकी माता का नाम नानकी था। उन्हें भाई गुरदास से शास्त्र तथा जेठा जी ने शास्त्र की शिक्षा दी। बाबा बुड्ढा उन्हें महान् कर्मकथाएँ सुनाया करते थे। ये पाँच भाई थे। गुराँदित्ता, सूरजमल, अनीराय, अटलराय इनके अग्रज थे। इनके पिता ने गुरुगद्दी अपने किसी पुत्र को न देकर गुराँदित्ता के पुत्र हरराय को दी थी किन्तु उनका अवसान यौवन में ही हो गया तथा गद्दी उनके शिशु हरकिशन को प्राप्त हुई जो केवल आठ वर्ष की अल्पायु में दिल्ली में शीतला के आखेट हुए। उन्होंने देहत्याग से पूर्व केवल 'वावा वकाला' कहा था जहाँ तेगबहादुर का निवास था। वे गुरु तो हो गए किन्तु वकाला के अनेक व्यक्ति भी पद के दावेदार बने रहे। अंगद, अमर और रामदास को भी गुरुपद पुष्पशय्या के रूप में न मिल पाया था, अर्जुन को भारी विरोध का सामना करना पड़ा था, हरगोविन्द पहले आपसी ईर्ष्या से जुझे और तब मद्यप जहाँगीर ने उन्हें ग्वालियर में कैद करा दिया था, हरराय को भी पारस्परिक एवं औरंगजेबी संकट झेलने पड़े थे, हरकिशन की अल्पकालिक गद्दी भी रामराय के षड्यंत्रों के कारण कष्टपूर्ण रही थी और तेगबहादुर को भी रामराय और धीरमल के कारण भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। शैशवकाल में ही धीरमल ने उनकी हत्या करनी चाही थी। बाद में भी 1670 ई. में, उन्हें उस दरबार-साहब में प्रवेश तक न करने दिया था जिसका निर्माण उनके पिता हरगोविन्द ने कराया था। तेगबहादुर ने सारे

1. दादू के सुंदरदास नामक एक अन्य शिष्य भी थे, अतः इन्हें 'छोटे सुंदरदास' कहा जाता था। ग्वालियर-निवासी ब्राह्मण सुंदर भी प्रसिद्ध हैं जिन्हें शाहजहाँ ने 'महाविद्यालय' की उपाधि दी थी और जिनकी 'सुंदर-शृंगार' एक उत्कृष्ट कृति है।

भारत की विराट् यात्राएँ की थीं, जिनका एक बड़ा कारण पंजाब की पारस्परिक ईर्ष्यापूर्ण स्थिति थी। इसी यात्रा के मध्य 26 दिसम्बर, 1666 को पटना में उनके पुत्र गोविन्दराय का जन्म हुआ जो 30 मार्च, 1699 को आनन्दपुर में 'खालसा' की स्थापना करके स्वयं भी गोविन्दसिंह हो गए तथा प्रत्येक सिख को भी 'सिंह' बना गए। तेगबहादुर 15 नवम्बर, 1675 को दिल्ली में मतांध औरंगज़ेब के द्वारा शहीद किए गए। लाला दौलतराम ने 'महावली', वख्तमल ने 'तारीखें-सिखों', एम. एम. लतीफ ने 'हिस्ट्री ऑफ़ पंजाब', पी. ए. कौल बमज़ई ने 'ए हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीर' में उनके हिंदूधर्म-रक्षामूलक बलिदान के वर्णन किए हैं। कवि सेनापति (महाकवि सेनापति से भिन्न) ने 'गुरु-शोक' में लिखा है :

प्रगट भए गुरु तेग बहादर। सगलै सिसरि है ढापी चादर॥
करम धरम की जिनी पति राखी। अटल करी कलयुग में साखी॥
तिलक जनेउ अरि धरम शाला। अटल करी गुरु भव दिआला॥
सगल सिसरि जावा जस भयो। जिह ते सख धरम बचयो॥

उनके बलिदान से पूर्व, इनके प्रमुख मित्र एवं शिष्य भाई मतीदास, भाई सतीदास एवं भाई दयालदास को अमानुषिक यातनाएँ देकर शहीद किया गया। किन्तु किसी ने भी हिन्दूधर्म त्यागकर मोहम्मदीयत को स्वीकार नहीं किया। महान् एवं अमर शहीद तेगबहादुर ने 'सर दिया पर सार न दिया'! उन्हें हिन्द की चादर कहा गया। जहाँ उन्होंने 'सर' दिया था वहाँ (दिल्ली के दिल चाँदनीचौक के बीचोबीच) विश्वविख्यात सीसगंज-गुरुद्वारा 'सार' बना खड़ा है, जहाँ उनके धड़ की अंत्येष्टि हुई थी वहाँ (भारत के हृदय नई दिल्ली के संसद भवन के ठीक सामने) गुरुद्वारा रकावगंज खड़ा है, जहाँ उनके सर की अंत्येष्टि की गई वहाँ गुरुद्वारा आनन्दपुर साहब (पंजाब) खड़ा है। इस प्रकार, हिंदूधर्म के महान् रक्षक तेगबहादुर के अपूर्व बलिदान ने उन्हें अजर-अमर कर दिया। उनके बलिदान के कारण ही सिख अपेक्षाकृत शीघ्रतर भीषण योद्धा बन गए। वैसे, शौर्य-परम्परा के प्रवर्तक उनके पिता हरगोविन्द थे। आत्मकथात्मक 'विचित्र नाटक' में गुरु गोविन्दसिंह ने लिखा है :

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका। कीनो बड़ो कलु महि साका॥
साधाँ हेतु इति जिन करी। सीस दिया पर सी न उचरी॥
धरम हेतु साका जिन कीया। सीस दिया पर सिर रु न दीया॥
तेगबहादुर के चलत भयो जगत महि सोक। है-है-है सब जग भयो, जै-जै-जै सुरलोक॥
ठीकरी फोरि दिलीस सिर प्रभु पुरि किया पयान। तेगबहादुर सी क्रिया करी न किनहूँ आन॥

उदारता एवं समन्वयवाद

खुसरो, नामदेव, कबीर, रैदास, नानक इत्यादि की उदार, निर्गुणप्रधानता समयांतरों के साथ परिवर्तित रूप ग्रहण करती रही है। सिखों के गुरु अंगद ने कृष्ण को ब्रह्म माना। अर्जुन ने निर्गुण-सगुण की अभिन्नता तो प्रतिपादित की ही, अवतारवाद में भी रुचि ली। तेगबहादुर में विराट् हिंदूधर्म की विशद समन्वयवादी दृष्टि प्राप्त होती है, जो उनके पुत्र गोविन्दसिंह में पराकाष्ठा प्राप्त करती है। जिन्होंने दशावतार की रचना की जिसके रामावतार एवं कृष्णावतार स्वभावतः विशेष प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने 'चंडीचरित्र' (चंडीचरित) की रचना की है, जिन्होंने हिन्दूधर्म की रक्षा को अपना लक्ष्य घोषित किया है, जिन्होंने गौ एवं यज्ञोपवीत की रक्षा के लिए खड्ग उठाया था, जिन्होंने अयोध्या में रामजन्मभूमि की मुक्ति हेतु आक्रमण किया था। गुरु तेगबहादुर की वाणी में अंतस्साधना, सत्संग-महिमा, संत-लक्षण, विनय, प्रपत्ति, कलियुगानकूल-भक्तिमंडन, तीर्थटन-महत्त्व, श्रुति-सम्मान इत्यादि वे सारे तत्त्व विद्यमान हैं जो सूर या तुलसी में। तेगबहादुर में निर्गुण-सगुण एवं निराकार-साकार का ब्यव संयोजन प्राप्त होता है, जिसका बहुत अधिक प्रभाव गोविन्दसिंह पर पड़ा है। उनकी भाषा लगभग विशुद्ध ब्रज है, यत्र-तत्र सहज-अलंकरण (उपमा, रूपक इत्यादि) विद्यमान है। नानक एक नानाआयामी विराट् साधनाप्रधान कवि हैं। अर्जुन प्रायः नानकवत् किन्तु अधिक कलाप्रवण कवि हैं। तेगबहादुर गुण एवं परिमाण में नानक या अर्जुन की समता नहीं कर सकते किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सत्कवि अवश्य हैं :

1.

ना हरि भजिओ, न गुरुजन सेविओ, नहिं उपजिओ कछु गियाना।
घट ही माहिं निरंजनु तैरे, तै खोज उदियाना॥

2. माई, मैं किहि विधि लखउ गुसाँई ।
महामोह अज्ञान तिमिर मो मनु रहिओ उरझाई ॥
जनम भरम ही भरम खोइओ, नहिं असथिरु मति पाई ।
बिसियासकत रहिओ निसिबासुर, नहिं छूटै अधमाई ॥
साध-संग कबहूँ नहिं कीना, नहिं कीरति प्रभु गाई ।
नानक माहि नाहि कोऊ गुनु, राखि लेहु सरनाई ॥
3. सुख दुख रहत सदा निरलेपी जा कहु कहत गुसाई ।
सो तुमहीं महि बसै निरंतरि नानक दरपनि नाई ।¹
4. जौ नर दुखु मैं दुखु नहिं मानै ।
सुख सनेह अरु भै नहिं जाके कंचन माटी मानै ॥
नहिं निंदिया² नहिं उसतति जाकै लोभ मोहु अभिमाना ।
हरष सोग ते रहे निआरउ, नाहिं मान-अपमाना ।³
आसा मनसा सगल तिआगै, जग ते रहै निरासा ।
काम क्रोध जिग परसै नाहनि, तेहि घटि ब्रह्मु निवासा ॥
गुरु कृपा जिह नर कउ कीनी, तिह इह जुगति पछानी ।
नानक लीन भइयो गोविन्द सिउ जिउ पानी सँग पानी ॥
5. सुआन पूँछ जिउ भइयो न सूधउ, बहुत जतन मैं कीनउ ।
नानक लाज बिरद की राखउ, नाम तुहारउ⁴ लीनउ ।
6. कलि में एकै नामु कृपानिधि,⁵ जाहि जपै गति पावै ।
अउर धरम ता कै सम नाहिन, इह बिध बेद⁶ बतावै ॥
7. बेद पुरान समृति के मत सुनि, निमष न हिये बसावै ।
परधन परदारा⁷ सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै ॥
8. मन की मन ही माहिं रही ।
ना हरि भजे, न तीरथ सेवे, चोटी कालि⁸ गही ॥
9. मन रे प्रभु की सरनि बिचारो ।
जिहि सिमरत गनका सी उधरी ताको जसु उर धारो ॥
अटल भइयो ध्रुव जाकै सिमरनि अरु निरभै पद पादया ।
दुखहरता इह बिधि को स्वामी, तै काहे⁹ बिसराइया ॥

1. पंडिअ असल सत्त बक्खाणइ । देहे बुद्ध बसंत ण जाणइ ॥ (सरहपा)
जल बिच मीन पियासी । (कबीरे)
कस्तूरी कुंडलि बसै मृग दूँद्रे बन माहिं । (कबीरे)
आनंद-सिन्धु मध्य तब वासा । विनु जाने कस मरसि पियासा । (तुलसी)

2. निंदा ।
3. तुलसी के 'कबहुँक हों यहि रहनि रहौंगो' (विनयपत्रिका) तथा "अब लों नसानी अब न नसैहौं" (विनयपत्रिका) पदों का स्मरण आता है ।
4. भोजपुरी का प्रभाव । बिहार में रहे, उत्तर प्रदेश से प्रभावित हुए । अतः स्वाभाविक ।
5. कलजुग केवल नाम अधारा । (तुलसी)
6. तुलसी के सट्टश वेद का भक्तिपरक प्रयोग ।
7. जे लंपट परधन परदारा । (तुलसी)
8. काल ने ।
9. भोजपुरी एवं अवधी का प्रयोग ।

जबही सरन गही किरपानिधि गज गराह ते दूटा।
महिमा नाम कहाँ लउ बरनउ, राम कहत बंध छूटा।।
अजामील पापी जगु जाने, निमष माहि निसतारा।
नानक कहत चेत चिन्तामनि' तै भी उतरहि पारा।।²

निपट निरंजन

‘संत-सरसी’ एवं ‘निरंजन-संग्रह’ (‘शांतरस-वेदांत’ एवं ‘कवित्त निरंजनजी के’ रूपों में भी ख्यात) के कवीर-प्रभावित निर्वेदवादी कवि निपट निरंजन (प्रभावकाल 17वीं सदी उत्तरार्द्ध³, जन्मस्थान चंदेरी, प्रवास औरंगाबाद-क्षेत्र) की कविता बीभत्स का सम्मान करने से नहीं कतराती। उनकी ब्रजभाषा में खड़ीबोली का अच्छा मिश्रण है। मिश्रबन्धु ने ‘विनोद’ में अकबर (राज्यकाल 1556-1605 ई.) की इनसे भेंट की चर्चा “सुना जाता है” शब्दों के साथ की है जो युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि यह औरंगजेब (राज्यकाल 1658-1707 ई.) के समकालीन थे।⁴ इनके औरंगाबाद के निकट एकनाथ-मंदिर में रहने के कारण औरंगजेब के साथ संपर्क सम्भव है। यत्र-तत्र कवीर, निपट निरंजन इत्यादि की बीभत्स शब्दावली शांतरस की उदात्तता के अनुरूप नहीं है। निर्वेद को जुगुप्सा द्वारा स्फुरित करना शालीनताहीन एवं अवैज्ञानिक है। इनकी कविता में कोई मौलिकता एवं विशिष्टता के दर्शन नहीं होते। यह साधारण संतकाव्य में ही समाहित की जा सकती है। एक ठीक-ठिकाने का निदर्शन अवतरित है :

छन मद छका जाके छके ते अच्छक होत, अच्छक छका है धूम घूमत घुमारी का।
दिन-निसि-निसि-दिन जब सुधि आवति है, तब उपजावै सुधि साहेब-सुमारी का।।
निपट निरंजन अमर, मरने का नहीं, एक बार मारू नाम आवै न दुबारी का।
हौं तौ मतवाला ओछे मद का न लेनेवाला, पूर करु प्याला खोज रहै न खुमारी का।।

प्राणनाथ

जिस प्रकार शिवाजी को समर्थ गुरु रामदास की आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त हुई थी उसी प्रकार छत्रसाल को स्वामी प्राणनाथ (प्रभावकाल 1670 ई. इधर-उधर) की। शिवाजी एवं छत्रसाल मित्र थे किन्तु समर्थ गुरु रामदास एवं हठयोगी प्राणनाथ की मित्रता का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। समर्थ गुरु रामदास पौराणिक अथवा पारम्परिक हिन्दूधर्म के रक्षक थे। हठयोगी प्राणनाथ गोरखनाथ, ज्ञानेश्वर, नामदेव, रैदास, कवीर, नानक, दादू इत्यादि की परम्परा में आते हैं। छत्रसाल ने दूसरे आध्यात्मिक गुरु अक्षर अनन्य भी इसी परम्परा से संबद्ध किए जा सकते हैं। किन्तु छत्रसाल राधाकृष्ण एवं सीताराम के निकटतर थे, उनका ध्येय विषमतामुक्त रामराज्य का प्रतिष्ठापन था, जैसाकि उनके छन्दों से स्पष्ट है। वास्तव में, निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार का आज-जैसा अनैतिहासिक एवं संकीर्ण वर्गीकरण अंग्रेजों के आने और उनसे राजनैतिक ही नहीं प्रत्युत वैचारिक दृष्टि से भी अभिभूत होने से पूर्व था ही नहीं। स्वामी प्राणनाथ को ज्ञात था कि शिवाजी ने छत्रसाल को अपनी तलवार भेंट की है, बर्बर एवं विदेशी मुगलों से विघातक एवं कालातीत आदर्शवाद के बल पर नहीं प्रत्युत छल-बल-कल सबसे निष्पन्न यथार्थवाद के बल पर ही लड़ा जा सकता है। अतः उन्होंने छत्रसाल को उच्चादर्श-संपृक्त तो रखा ही, यथार्थविपन्न भी नहीं होने दिया। स्वामी प्राणनाथ गुजराती थे। उनका जन्म जामनगर में हुआ था जहाँ उनके पिता केशवराय मन्त्री थे। उनका प्रथम नाम मेहराज था जो गुरु निजानन्द स्वामी ने प्राणनाथ में परिवर्तित कर दिया। अपने भव्य व्यक्तित्व के कारण वे कई बार औरंगजेब से प्राण बचाकर भागने वाले उस पितृद्रोही, वंध्यघाती, मतांध एवं दूरदृष्टिहीन बादशाह के अग्रज शुजा मान लिए जाते थे। यद्यपि शुजा सुदूर असम भागने पर वहाँ के लोगों द्वारा मारा जा चुका था तथापि जनकल्पना ने उसे बहुत दिन तक जिलाए रखा (हिटलर के सदृश, सुभाष के सदृश)!

1. “रामभगति चिन्तामनि सुन्दर” (मानस) एवं “पायो नाम चारु चिन्तामनि.....” (विनयपत्रिका)-सुलसी।
2. यह पद मीरों (मीरा), सूर, तुलसी इत्यादि सगुणसाकारवादियों के पदों से शत-प्रति-शत मिलता है। नानक ने भी ऐसे पद रचे हैं। भेदवादियों ने स्थूल चिंतन एवं अनध्यन के कारण निर्गुण-सगुण को दूर-दूर विवेचित कर सत्य के साथ भारी अन्याय किया है।
3. डॉ. श्यामबहादुर वर्मा एवं मधु वर्मा सम्पादित ‘विश्व-सूक्तिकोश’ में जीवनकाल 1623-1738 ई. दिया है जो 115 वर्ष का होने के कारण प्रात्यधिक नहीं लगता।
4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 (सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि)।

प्राणनाथ पर हठयोगियों, सूफियों और सन्तों का व्यापक प्रभाव पड़ा, किन्तु उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में कृष्ण, गीता और लीला के प्रति पूरा लगाव भी बराबर बनाए रखा। वैसे, वे निर्गुण-निराकार ब्रह्म के उपासक थे, हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतिपादक थे, ऊँच-नीच-विरोधी विशुद्ध मानवतावादी सुधारक एवं महात्मा थे : गुजरात के कबीर, गुजरात के नानक, जिनका सर्वाधिक प्रभाव बुंदेलखंड पर पड़ा (गुजरात के दयानंद का सर्वाधिक प्रभाव पंजाब पर पड़ा)। पन्ना में इनके मत का मुख्यालय है। उनकी शुष्क-संतभाषा वस्तुतः खड़ीबोली है तथा छन्दयोजना विशृंखल। कबीर, नानक, अर्जुन की कलारहित-कला भी उनमें नहीं है। किन्तु उनके उपदेश उदात्त भी हैं, प्रेरक भी :

1. रे हो! दुनिया बावरी, खोवत जन्म गँवार।
मदमाती माया की छाकी, सुनत नहीं पुकार।।
रे हो! दुनिया को तू कहाँ पुकारे? ये सब कोई है स्याना।।
ये मदमाती, अपने रंग राती, करत मन का मान्या।।
तू न भूलना महामति! दुनिया देख आप सँभाल।।...
2. यामें गुनी, मुनी, ज्ञानी, महंत अगम कर कर गावें।
सुनें, सीखें, पढ़ें पंडित, पार कोई न पावें।।
ए भ्रमवाजी रची रामत बहुत विधे संसार।
ए जो नैन देखें, श्रवन सुने सब मूल बिना विस्तार।।
ए तू देख नाटक निमेष को, अव करे कहा विचार।
पाव पल में उलैष के ब्रह्माण्ड शून्य निराकार।।¹
3. जो कुछ कहा कतेब में, सोई कहा वेद।
दोऊ बंदे एक साहेब के पर लड़त बिना पाए भेद।।
बोली सबन जुदा परी, नाम जुदे धरे सबन।
चलन जुदा कर दिया, ताथे समझ न परी किन।।
ताथे हुई बड़ी उरझन, सो सुरझाऊँ दौय।
नाम-निशान जाहिर करूँ ज्यों समझे सब कोय।।
4. नाम सारे जुदे धरे, लई सवों जुदी रसम।
सबमें उमत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म।।
लोक चौदा कहे वेद ने, सोई कतेब चौदे तबक।
वेद कहे ब्रह्म एक है, कतेब कहे एक हक।।
दोऊ कहें वजूद एक हैं, अरवाह सबों में एक।
वेद-कतेब एक बतावहीं पर पावे कोई न विवेक।।
5. जात एक खसम की, और न कोई जात।
एक खसम एक दुनिया और उड़ गई दूजी बात।।
सब जाते नाम जुदे धरें, सबका खाविंद एक।
सबको बंदगी याही की, पीछे लड़े बिना पाए विवेक।।
लड़ फिर से जुदे हुए हिन्दू-मुसलमान।
और खलक केती कहूँ, सब में लड़े गुमान।।
6. एक माया छै² अति बलवती, उसनी छे मूल धनी थकी।
मुनीजन के मनाव्यापार, शिवब्रह्मादिक नव लहे पार।।

1. पायु-उपस्थ-मध्य सुप्त अधोमुखी कुंडलिनी-शक्ति को आसन-प्राणायाम द्वारा जापूतकर तथा षट्चक्र-वेधन कराते हुए, सुषुम्ना-मार्ग द्वारा, शून्य (सहस्रार) तक पहुँचाने की हठयोग-साधना विवृत हुई है।

2. है। गुजराती।

अक्षर अनन्य

मिश्रबन्धु कृत अमर 'विनोद' के अनुसार अनन्ययोग, राजयोग, शक्तिपच्चीसी (अनन्यपच्चीसी), अनुभवतरंग, ज्ञानबोध, ब्रह्मज्ञान, ज्ञानपचासा, योगशास्त्र, विवेकदीपिका इत्यादि अनेक ग्रन्थों के रचयिता अनन्य अक्षर या अक्षर अनन्य (जन्म 1653 ई. स्थान दतिया क्षेत्र में सेनुहरा) दतिया-नरेश दलपतिराय के पुत्र पृथ्वीराज के गुरु थे।¹ यह संत कायस्थ थे। कवि-रूप में साधारण एवं स्थूल-वर्णनात्मक होते हुए भी, अक्षर अनन्य ने ज्ञान, योग एवं दुर्गाभक्ति पर अच्छी रचना की है जिसमें समन्वय की साधना प्रशस्त्य लगती है :

1. जो अंतर सुमिरत सुरत आइ। तौ बाहेर कर मन लगत नाइ।।
जा मति सा गति यह कहत वेद। मन गत साधत यह ज्ञान भेद।।
जो मत न सधै मन करम भोय। टोपीहि दिए नहि मुक्त होय।।
2. यह भेद सुनौ पृथिचंदराय। फल चारहु को साधन उपाय।।
यह लोक सधै सुख पुत्र वाम। परलोक नसै सब नरकधाम।।
परलोक लोक दोउ सबै जाय। सोइ राजयोग सिद्धांत आय।।
नित राजयोग ज्ञानी करंत। हठि मूढ धर्म साधत अनंत।।
3. पहिले तप तीरथ व्रत करै, करि संगति साधुन की हरसै।
पुनि भक्ति करै अवतारन की, वर युक्ति सुयोगिन की परसै।।
पुनि आपुन तत्त्वविचार करै, परिपूरन ब्रह्म प्रभाकर सै।
क्रम सों यह रीति अनन्य भनै तरवस्य सरूप स्वयं दरसै।।

आधुनिक भारत में विवेकानंद, अरविंद, महेश इत्यादि अनेक कायस्थ धर्मनेता एवं योगी हुए हैं। अक्षर अनन्य को इनका पूर्वपुरुष माना जा सकता है।

यारी साहब²

बावरी साहिबा के प्रशिस्य एवं वीरू साहब के शिष्य यारी साहब (1668-1723 ई. दिल्ली) के शिष्यों में केशवदास³, हस्तमोहम्मदशाह, सूफीशाह, शेखनशाह⁴, बुल्ला साहब⁵ इत्यादि के नाम स्मरणीय हैं। यारी साहब की, 'रत्नावली' (प्रकाशित) के अतिरिक्त, 'यारी साहब के शब्द', 'रमैनी' और 'राम के ककहरा' (निर्गुणज्ञानपरक) कृतियाँ बताई जाती हैं। इन्होंने पद (शब्द या सबद) भी रचे हैं, कवित्त भी। भाषा ब्रज है। इनके सूफियाना अंदाज़ पर वेदांत का स्वाभाविक प्रभाव पड़ा है :

1. आँधरे को हाथी हरि, हाथ जाको जैसो आयो, बूझो जिन जैसे तिन तैसोई बतायो है।
टका टोरी दिन रैन, हिए हू के फूटे नैन, आँधरे को आरसी में कहा दरसायो है।।
मूल की खबर नाहिं जासों यह भयो मुलुक⁶, वाको विसारि भौंदू डारे अरुझायो है।
आपनो सरूप रूप आपु माँहिं देखे नाहिं, कहै 'यारी' आँधरे ने हाथी कैसो पायो है।⁷

-
1. रामचंद्र शुक्ल कृत महान् 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में अक्षर अनन्य को पन्ना-नरेश छत्रसाल का गुरु माना गया है जो इतिहास-सम्मत नहीं लगता क्योंकि छत्रसाल ने प्राणनाथ को गुरु माना था। सम्भव है कि छत्रसाल अक्षर अनन्य से भी प्रभावित हुए हों।
 2. वास्तविक नाम यार मोहम्मद था।
 3. वैश्य थे जो दिल्ली में ही रहते थे।
 4. 'शाह' शब्द एक प्रचलित विशेषण-सा बन गया था जो दिल्ली में बादशाही के नामनिहाल होने पर फ़कीरों में बंजर फैलकर एक मनोवैज्ञानिक जटिलता का सूचक कहा जा सकता है। 'सच्चे बादशाह', 'बाशशओं' इत्यादि के प्रयोग आज तक सुनाई पड़ते रहते हैं। किसी-न-किसी प्रकार की सत्ता संत एवं फ़कीर भी चाहते थे। प्रभुता कौन नहीं चाहता?
 5. मोहम्मद साहब की नक़ल में साहबों की दाढ़ ही आ गई थी! यह 'साहब' हिंदू थे जिनका वास्तविक नाम बुलाकीराम था; ये भुखुड़ा (ग़ाज़ीपुर) के कुर्मी थे। सुखदेव के कनिष्ठ पुत्र का नाम भी बुलाकीराम था किन्तु अन्यनाम परमानंद भी।
 6. अज्ञानवश इस नाशवान संसार को ही देश समझते हैं (यह तो 'परदेस' है जहाँ से जाना तय है)!
 7. प्रभावो रूपक।

2.

दिन-दिन प्रीति अधिक मोहिं हरि की ।

काम क्रोध जंजाल भसम भयो बिरह-अग्नि लागि धधकी ॥

धुधुकि-धुधुकि सुलगति अति निरमल झिलमिल-झिलमिल झलकी ।

जगजीवन साहब¹

सतनामी सम्प्रदास के प्रवर्तक एवं प्रख्यात गुरु जगजीवन साहब (1671-1760 ई.², कोटवा³, जनपद बाराबंकी) की 'ज्ञान-प्रकाश', 'दोहावली', 'मनपूर्णा' (अन्तिम कृति) प्रभृति अठारह पुस्तकें मिलती हैं। मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में उनके 'प्रथमग्रन्थ', 'ज्ञानप्रकाश', 'महाप्रलय', 'बानी' एवं 'शब्दावली' कुल पाँच ग्रन्थों का उल्लेख किया है, किन्तु कविताकाल 1818 वि. (1761 ई.) दिया है, जो ग़लत है। आ. शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में यह ग़लती ज्यों-की-त्यों दुहराते हुए, इन्हें दादू की शिष्य-परम्परा में माना है किन्तु दादूपंथी जगजीवन दूसरे हैं। एक तीसरे जगजीवन निरंजनी भी हुए हैं। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने ठीक लिखा है, "इनमें सर्वाधिक ख्याति जगजीवनदास सतनामी को मिली है," किन्तु उन्होंने जन्मवर्ष 1670 ई. ग़लत लिख दिया है, जिसका कारण 1727 वि. से 57 वर्ष घटाते हुए यह भूल जाना है कि माघ शुक्ल 7 के पूर्व ही अगला ईसाई सन् लग चुका था। कोटवा सतनामियों का तीर्थ है। यह जगजीवन साहब चंदेल ठाकुर थे। इनके शिष्यों में दूलनदास⁴, देबीदास, गोसाईदास, ख्यामदास प्रमुख थे। इस पंथ में संत-कवियों की अप्रतिहत परंपरा अद्यावधि विद्यमान है। जिन सतनामियों ने औरंगजेब के मोहम्मदी उन्माद के विरुद्ध ऐतिहासिक विद्रोह किया था वे यही थे या भिन्न? इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं। सिखों के नामधारी वर्ग के लोग (जो शाकाहारी होते हैं, सफ़ेद और सादा रंग की पगड़ी बाँधते हैं, उदार होते हैं) सतनामियों से भिन्न हैं।

जगजीवन साहब की वाणी में निर्गुण की प्रधानता तो है, किन्तु सगुण का प्रत्याख्यान नहीं। कर्मकाण्ड-निन्दा, ब्राह्मण-निन्दा, अंतस्साधना, हठयोगप्रवण-रहस्यवाद इत्यादि की संतकाव्य-रूढ़ियों का पालन इन्होंने भी किया है। पैगम्बर बनने की कबीरी हसरत ने इनका भी पिंड नहीं छोड़ा। कविता का स्तर अधिकांश संतकाव्य के अनुरूप ही साधारणतर है। छंदनिर्वाह ठीक नहीं है। यद्यपि इन्होंने भी संतभाषा या मिश्रितभाषा का प्रयोग किया है, तथापि उसमें स्थानीयता के कारण अवधी की रंगत भी मिलती है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1.

जगजीवन मन रौंद कर, सूरति खेंचु कमान । कर चित सौं लागो रहै, निरखहु नाम निसान ।
जगजीवन जग दुइ अहैं, कोइ नहिं जानत रंग । एक बसत संसार महँ, यक साई के संग ॥
जगजीवन सिंहासन चहै, चहै नरक की बास । नरहिं माँ बैकुंठ है, एक नाम की आस ॥
कलजुग करे ब्रह्मना सूखे हाड़ चबाहिं । पैलागत सुख मानहीं, राम कहत मरि जाहिं ॥

(दोहावली)

2.

आपुइ सत्य लेत अवतारा । अपुइ आपु रहत है न्यारा ॥
आपुइ कीन जमी-असमाना । आपु आइ तिहुँ लोक समाना ॥
आपु करत हैं दिन औ राती । दूसर कवन कहै केहि भाँती ॥
दोसर आपु आपु पहिचाना । स्याम सेत माँ आपु समाना ॥
सेत होत होइ बीतत, होत स्याम फिरि सेत ।
जगजीवन ख्याल अगम तव, ज्ञान निगम कहि देत ॥

1. मोहम्मद साहब की नक़ल में साहबों की धूम मच गई : कबीर साहब, दादू साहब, यारी साहब, दरिया साहब ही नहीं, जगजीवन साहब इत्यादि भी हो गुजरे—हिन्दू भी 'साहब' बने। संतानों के बलिदान पर गोविन्दसिंह ने सिख-पंथ से गुरु-गद्दी पिटा दी और 'गुरु मानियो ग्रन्थ' का निर्णय दिया—तब गुरुग्रन्थसाहब, जपुजीसाहब इत्यादि ग्रन्थ एवं ग्रन्थांश तथा तख्त हरिमंदिर (हरिमंदिर) साहब, पटना साहब इत्यादि स्थान भी साहबों में शामिल कर लिए गए।
2. माघ शुक्ल 7 सं. 1727 वि. को जन्म। वैशाख कृष्ण 7, सं. 2046 वि. को 229वाँ निर्वाण दिवस मनाया गया।
3. डक्कू कुक ने जन्मवर्ष 1682 ई. तथा जन्मस्थान सरदहा (जनपद बाराबंकी) माना है, जो ग़लत लगता है।
4. आ. शुक्ल ने दूलमदास लिखा है जो ग़लत है।
5. 'नरक' का ग़लत प्रयोग।

आपुइ ज्ञान कर्म अपारा। आपु अगम को करे विचारा॥
 आपु आपु ही राह वतावै। दोसर आपु संसार कहावै॥
 सब घट आप करत है वासा। काहू घट न होइ विस्वासा॥
 काहू के मन नियरे बसई। काहू के मन देखि न परई॥
 आपुइ वेद भेद महुँ रहई। आपुकू आपु कथा सब कहई॥
 पंडित आपु आपु अज्ञाना। आपुइ आपु लगावत ध्याना॥
 आपु आपु समुझावै बाता। आपुइ अंध आपु है राता॥
 कतहुँ क्रोधवंत होइ फिरई। कतहुँ गर्व आपु निस्तई॥
 कतहुँ छिमा होइ छिमा न वासा। कहुँ देखत है दूरि तमासा॥
 (ज्ञान-प्रगास)

3. राखी सरन चरन चित मोरा। नैन ते देखौं दर्सन तोरा॥
 जक्त' न वसै वास मन तोहीं। यह वर देहु जानि कै मोहीं॥
 पल नित लोचन चरन तुम्हारे। सो मन स्वामी बसह हमारे॥
 कहीं सुनाइ दोउ कर जोरी। सूरति निकट राखिए मोरी॥

कई साहित्येतिहासों एवं संतकाव्यसंग्रहों में जगजीवन साहब के ऐसे पद उद्धृत एवं अवतरित मिलते हैं, जिनकी भाषा परिनिष्ठित है, कहीं-कहीं ब्रज की रंगत लिए हुए है; इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। जगजीवन साहब की भाषा भी संतभाषा ही है, जिसमें अवधी की रंगत साफ़ नज़र आती है। तीन जगजीवन साहबों की वाणी तीन ठाकुरों की वाणी के सदृश गड्ढमड्ढ हो गई है। रायबरेली के श्री राजबहादुरसिंह 'महंत' के पास जगजीवन साहब की प्रात्ययिक वाणी उपलब्ध है, जिसे वे स्वसंपादित 'भक्तिशिरोमणि' में प्रायः निकालते रहते हैं। स्वयं सतनामी होने के कारण ही नहीं प्रत्युत अध्यवसाय के कारण भी उनका कार्य प्रशस्य लगता है।

दरिया साहब (मारवाड़ वाले)

विहार के कबीर दरिया साहब के प्रायः समकालीन दरिया साहब मारवाड़ वाले (जन्म 1676 ई.) खिमानगर (वीकानेर) के संत प्रेमदास के मुसलमान¹ शिष्य थे अनेक अहंवादी और परिवार-विरोधी नारीनिंदकों संतों के विपरीत, यह एक अकुंठित एवं सच्चे प्रगतिशील संत थे। इनकी भाषा भी अपेक्षाकृत अधिक साहित्यिक है। इनका अपना दरियापंथ राजस्थान में पर्याप्त प्रचलित है। उदाहरण देखें :

1. जो धुनियाँ तो भी मैं राम तुम्हारा।
 अधम कमीन जाति भतिहीना, तुम तौ हौ सिरताज हमारा॥
2. नारी जननी जगत की पालपोस दे पोष॥
 मूरख राम बिसारकर ताहि लगावै दोष॥
3. जो कोइ साधू गृही माहिं राम भरपूर।
 दरिया कह उस दास कौ मैं चरनन की धूर॥
4. भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग।
 दरिया आया मेंट कर मिले अगिन में रंग॥
5. विरही प्रेमी मोमदिल जन दरिया निःकाम।
 आसिक दिल दीदार का जामें कहिए राम॥

1. जगत्।

2. डॉ. मोतीलाल मेनारिया ने 'राजस्थान का पिंगल साहित्य' में इन्हें हिन्दू माना है।

दादू भी मुसलमान धुनिया थे, अतः दरिया साहब मारवाड़ वाले को भी मुसलमान धुनिया होने के कारण दादू का अवतार माना गया। वेलवेडिअर प्रेस इलाहाबाद ने 'दरिया साहब (विहार वाले) चुने हुए पद और साखी' के सदृश 'दरिया साहब (मारवाड़ के प्रसिद्ध महात्मा जी) चुने हुए पद और साखी' ग्रन्थ छपा है।

सहजोबाई

'सहजोप्रकाश'¹ (1743 ई.)² की अमर संत-कवयित्री सहजोबाई (1683-1763 ई.)³ ने ज्ञान, योग, एवं भक्ति के व्यापक आयामों का स्पर्श किया तथा उनकी प्रेमाभक्ति पर मीरों का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। राजस्थान के मेवात अंचल में स्थित डेहरा नामक ग्राम में दूसरे या दूसर या दोसर वैश्यकुलोत्पन्न इन संत ने जीवन-यावन अपने गुरु संत चरणदास के सान्निध्य में दिल्ली में किया। अन्य कवयित्री दयाबाई उनकी गुरुभगिनी थीं। इनकी मिश्रित भाषा में ब्रज, राजस्थानी एवं खड़ीबोली के अस्तित्व युगभाषा, जन्मभाषा एवं जीवनभाषा के सूचक हैं। यद्यपि सहजोबाई की कविता शुष्क उपदेशप्रधान है तथापि उसमें प्रेरणा का स्वर विद्यमान है। सहजोबाई की कविता वास्तव में सहज कविता है जिसमें दृष्टांत, अर्थान्तरन्यास इत्यादि अलंकार अनायास ही आ गए हैं। उनका पैगम्बराना अंदाज़ दीन-संवेदन में ईसा, कवीर और तुलसी का स्मरण कराता है। उनका नीतिकाव्य रहीम की याद दिलाता है। वे हिंदी की लल्लेश्वरी हैं। वैसे, सामान्यतः गुरुभक्ति, नाम-माहात्म्य, अजपा-जप, हठयोग एवं दिव्य-प्रेम में रंगी उनकी कविता पारंपरिक संत-साहित्य में ही समाहित की जा सकती है :

सहजो तारे सब सुखी, गहै चंद और सूर। साधू चाहै दीनता, चहै बड़ाई कूर।।
भली गरीबी नवनता, सकै न कोई मारि। सहजो रुई कपास की काटै ना तरवारि।।
साहब को तो भै घना, सहजो निर्भय रंक। कुंजर के पग बेड़िया, चींटी फिरै निसंक।।
प्रेम-दिवाने जो भए मन भो चकनाचूर। छकै रहैं, घूमत रहैं, सहजो देखि हजूर।।

दयाबाई⁴

'दयाबोध' एवं 'विनयमालिका' की संत-कवयित्री, संत चरणदास की शिष्या एवं संत-कवयित्री सहजोबाई की गुरुभगिनी दयाबाई (जन्मस्थान डेहरा जो राजस्थान के मेवात क्षेत्र में है, निधनस्थान, दिल्ली, निधनवर्ष 1763 ई.)⁵ ने 'दया', 'दयाकुँवरि', 'दयादास' प्रभृति कई छापों से रचना की है। उनका अद्वैत-संगीत प्रशस्य है, जिसमें विरह की मार्मिकता विद्यमान है। कवीर, नानक, दादू, इत्यादि के मधुर-रहस्यवाद में उनके पुरुष होने के कारण सहजोबाई का वैसा परिपाक नहीं हो पाता जैसा दयाबाई के मधुर-रहस्यवाद में या मीरों के साधार एवं सर्वोत्कृष्ट सुस्पष्ट-रहस्यवाद में। इन्होंने जगत् की अनित्यता पर शांतरस की कविता भी अच्छी रची है। सम्भव है कि 'दयाबोध' का शीर्षक समर्थ गुरु रामदास की विश्वविख्यात कृति 'दासबोध' से प्रभावित हो। 'दासबोध' मराठी का गौरव-ग्रन्थ है। कोई सन्देह कर सकता है कि 'दयाबोध' समर्थ गुरु रामदास की शिष्या दयाबाई की कृति है। किन्तु 'दासबोध' एवं 'दयाबोध' की विषय-वस्तु पर्याप्त भिन्न है क्योंकि समर्थ गुरु ने कर्मयोग एवं शौर्य का वह आह्वान किया है जिसने शिवाजी जैसे अतुलनीय राष्ट्रायक को प्रेरित किया, तिलक को (विशेषतः 'गीता-रहस्य' के विशिष्ट कर्म-प्रतिपादन में) प्रभावित किया। उद्धरण प्रस्तुत हैं :

वौरी है चितवत फिरूँ हरि आवैं केहि ओर।
छिन उट्टूँ, छिन गिरि परूँ, राम! दुखी मन मोर।।

1. मिश्रबन्धु के महान् ग्रंथ 'विनोद' में 'सहजोप्रकाश' लिखा है, किन्तु वेलवेडिअर प्रेस प्रयाग से 'सहजप्रकाश' के रूप में छपा है तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने 'सहजप्रकाश' ही लिखा है।
2. 'विनोद' में कविता-काल 1800 वि. (1743 ई.) माना गया है।
3. 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग 2, पृष्ठ 620।
4. समर्थ गुरु रामदास की शिष्या दयाबाई (जिन्होंने 1678 ई. के लगभग भक्तिकाव्य रचा) से भिन्न। महाराष्ट्र की दयाबाई ने भी हिन्दी-कविता रची थी। यह विचित्र संयोग है कि इन दयाबाई ने समर्थ गुरु रामदास के महान् ग्रन्थ 'दासबोध' से मिलता-जुलता शीर्षक 'दयाबोध' पसन्द किया।
5. शिवब्रत लाल के अनुसार, देखें 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग 2, पृष्ठ 244।

प्रेम-पुंज प्रगटे जहाँ तहाँ प्रगट हरि होय ।
दया-वारि करि देत है री हरि दर्शन सोय ।।

दयाकुँवरि या जगत में नहीं रह्यो थिर कोय ।
जैसी बास सरौंय को तैसी यह जग होय ।।

मीतादास¹

कवीर की कॉर्वन-काँपी बनने के लिए छटपटाने वाले, राम को विशिष्टतापूर्वक दानव तथा कृष्ण को अज्ञानवश गुंडा कहनेवाले, हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवित्रय तुलसी-सूर-केशव की मूढतावश निन्दा करनेवाले संत-कवि मीतादास (1690-1768 ई., दोसर-वैश्य परिवार, जन्मस्थान फ़तुहाबाद या खजुहा जनपद फ़तेहपुर, निवासस्थान 1728 ई. से पुरवा, जनपद उन्नाव) का अज्ञातप्राय रहना सर्वथा सकारण है क्योंकि वे सर्वोच्चों पर निराधार प्रहार कर ख्याति का आखेट करनेवाले रुग्ण-मानसिकता के व्यक्ति थे। वे संत तुलसी साहब हाथरस वाले के सदृश² पाखंडी तो न थे, किन्तु विचित्र ध्वंसवादी अवश्य थे। वैसे, उनके कुछ समर्थक विद्यमान हैं तथा पुरवा में मृत्युतिथि ज्येष्ठ शुक्ल 5 को मेला भी लगता है। उन्होंने कबीर, नानक, दादू की नक़ल में मधुर-रहस्यवादी कविता भी लिखी है। मीतादास अपनी संकीर्ण विचारधारा के वंदी जड़वादी कवि हैं उनका संत-रूप विवादास्पद है, कवि-रूप साधारण (जैसाकि अधिकांश संतों का है)। उन जैसे संतों के कारण ही “जहँ-तहँ चरन परैं संतन के तहँ-तहँ होइ बंटोढार” लोकोक्ति एक महान् सूक्ति बन गई है। उनके समय को देखते उनकी कविता किसी संकीर्ण जातिवादी राजनीतिजीवी द्वारा प्रक्षिप्त की गई लगती है। सचमुच विचित्र उदाहरण देखें :

1. दानव एक हरी पर-नारी रावन बड़ा खुआरी ।
दूसर दानव रामचंद्र देखा सैन बहुत जिन मारी ।।
मोर तोर साहब कै नाही उड़ि पालै संसारा ।
उसकी इच्छा ते सब होता ना धरते अवतारा³ ।।
2. कान्हा गुंडा नंद ग्वाल का ब्रज माँ कीन्हीं खुआरी ।
कामी कुटिल हता मन मैला बोरि गया संसारी ।।⁴
कृष्ण नाम संत का कहिए गीता जिनकी बानी ।
नारद सुकदेव व्यास ओट दे मीता करी बखानी ।।
3. ई तो आहीं दुबे तिवारी ई ब्राह्मण ना होय ।
ब्राह्मण करे धोखे इनकी पूजा होय ।
ई तो आहीं दुबे तिवारी ई तो ब्राह्मण नाय ।।
ई तो आहीं पोंडें चौबे झूठे जग ठग खाय ।।
ब्राह्मण करे कुल नहीं नहीं जात न पात ।
ब्रह्म मिले ते ब्राह्मण वै अभिनासी की जात ।।

-
1. डॉ. गोपाल प्यार ने ‘संत कवि मीतादास: व्यक्तित्व एवं कृतित्व’ शीर्षक शोधकार्य भी किया है तथा ‘अमरावती’ शीर्षक ग्रंथावली भी संपादित की है (यद्यपि स्वकल्पित आध्यात्मिक-महाकाव्य का रूप देने की वस्तुहत्या के साथ)।
 2. तुलसी साहब हाथरसवाले स्वयं को तुलसी का अवतार बताते थे क्योंकि अज्ञानवश सगुणसाकारवाद अपना देने के कारण तुलसी को मुक्ति या पूर्णता न मिल पाई थी—यह तुलसी साहब के रूप में अवतरित होते तथा निर्गुणनिराकारवाद अपनाने पर मिली। राम को बोधिसत्वावतार बताने के बौद्ध-पाखंड की एक स्पष्ट पुनरावृत्ति। जैनों ने राम को अहिंसक तथा लक्ष्मण को रावणादि के वध के कारण नरकगामी चित्रित करने का पाखंड किया है। कूपमंडूकता के ऐसे अनेक निदर्शन अनायास प्राप्त हो जाते हैं।
 3. अवतारवाद तर्कसम्मत नहीं है, तो निर्गुणवाद-निराकारवाद भी तो कल्पना पर ही आधृत हैं। आस्था तर्कसंगत हाँ ही—यह आवश्यक नहीं। ईसाई और मोहम्मदी मज़हब तो ईसा और मोहम्मद के प्रभुपुत्र और अल्लाह-पैगम्बर होने की कल्पनाओं मात्र पर आधृत हैं।
 4. चेतन्य, वल्लभ, सूर, मीराँ इत्यादि को ‘डूवा’ वही मान सकता है जिसका अहं सड़ गया हो।

4. तुलसी सूर की कविताई ज्यों सेमर का फूल ।
बास न आवै फल न लागै सो तन का है सूल ॥
तुलसी सूर की कविताई भोंदुवन की हितकारी ।
सज्जन हैं ते नालिसि करिहैं मीता कहौ बिचारी ॥
कै कविताई कान्ह की केशो कवि भा भूत ।
सोइ जुगुत तुमका लिखी कहि मीता सुन धूत ॥
5. जो काशी कहि गया जुलाहा सो तो है टकसारी ।
मीता वाकी थाप देत हैं वो पहुँचा दरबारी ॥
मीता के मारग चले कबीर सरीखा होय ।
मीता कबीरा एक हैं कहवे के हैं दोय ॥
कबीर खोजा शरीर का मीत बखाना सोय ।
मीता कबीरा एक हैं कहवे के हैं दोय ॥

दूलनदास

शास्त्रीयकाल के संत-कवियों में जगजीवन के शिष्य दूलनदास (निधन 1778 ई.¹—जन्मस्थान समैसी, जनपद लखनऊ, निधनस्थान धम्मै, जनपद रायबरेली) भी उल्लेखनीय हैं जिन्होंने अपेक्षाकृत अधिक ललित संतभाषा में अंतस्साधना, कर्मकांडखंडन, रहस्य, एकता इत्यादि के सिद्धों, नाथों एवं कबीरादि पूर्ववर्तियों के उद्गारों को ही अभिव्यक्ति प्रदान की है, जो अब तक प्रचलित है :

1. ना प्रभु मिलिहै जोग-जाप तें, ना पथरा के पूजे ।
ना प्रभु मिलिहै पाँय पखारे, ना काया के भूजे ॥
दया-धरम हिरदै में राखहु, घर में रहहु उदासी ।
आन क जिव आपन करि जानहु, तव मिलिहै अविनासी ॥
पढ़ि-पढ़ि कै पंडित सब थाके, मुल्ला पढ़ै कुराना ।
भसम रमाई जोगिया भूले, उनहूँ मरम न जाना ॥
जोग जाग तहियाँ ते छाड़ल, छाड़ल तिरथ नहाना ।
दूलनदास बंदगी गावै, है यह पद निरवाना ॥
2. धन मोरि आज सुहागिन घड़िया ।
आज मोरे अँगना संत चलि आए, कौन करौं मिहमनिया ।
निहुरि-निहुरि मैं अँगना बुहारौं, मातौं मैं प्रेम लहरिया ॥
भाव के भात, प्रेम का फुलका, ज्ञान की दाल उतरिया ।
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन बलिहरिया ॥
3. पिया-मिलन कव होइ, अँदेसवा लागि रही ।
जब लगि तेल, दिया में बाती, सूझि परै सब कोइ ।
जरिगा तेल, निपट गई बाती, लै चलु लै चलु होइ ॥
बिन गुरु मारग कौन बतावै, करिए कौन उपाय ।
बिना गुरु के माला फेरै, जनम अकारथ जाय ॥

1. जन्म 1660 ई. (1717 वि.) के अनुसार 118 वर्ष का जीवन ('दूधाधारी वचनामृत'), सं. गिरीशचन्द्र त्रिपाठी, दिसम्बर 1988 अंक में श्री रामप्रवेश शास्त्री के लेख 'संत दूलनदास जी' में मुझे प्रात्याधिक नहीं लगता ।

चरणदास

ज्ञान-योग-भक्ति-कर्म के विशद समन्वयकर्ता, सहजोबाई एवं दयाबाई के गुरु संत चरणदास (1703-81 ई.)¹ उसी डेहरा² (राजस्थान) में उत्पन्न हुए थे जिसमें उनकी शिष्याएँ³ तथा तीनों संत दूसर वैश्य⁴ कुल के रत्न भी थे। तीनों दिल्ली में रहे। ऐसा लगता है कि चरणदास पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र (जो गुरु गोविन्दसिंह के संपर्क में भी रहे तथा 'गुरुमहिमा' लिखी, फ़ाज़िलअली के साथ दिल्ली में रहे तथा 'फ़ाज़िलअली-प्रकाश' लिखा, औरंगज़ेब के संपर्क में आए तथा वूढी हथिनी के दान का परिहास किया, औरंगज़ेब तथा इनायतख़ाँ वगैरह की हिन्दूघाती नीतियों के विरोध में निर्वेदोन्मुख हुए तथा दिल्ली त्याग दी—जो संत एवं सिद्ध भी थे) के शिष्य थे जैसाकि स्वामी अखेराम⁵ कृत 'गंगाभाहात्म्य' से स्पष्ट है तथा जिसे मायाशंकर याज्ञिक ने भी स्वीकार किया है :

जय जय श्री सुखदेव गुसाईं। ग्यान-भान जग प्रगटे आई।।

जिनके चरनदास बिख्याता। तिनको अखेराउ है दासा।।

पुरानी दिल्ली की चावड़ी बाज़ार वस्ती में चरणदासजी की वगीची जहाँ वे रहे तथा समाधिस्थ हुए। चरणदास की 'ज्ञानस्वरोदय', 'अष्टांगयोग', 'भक्तिसागर', 'राममाला', 'दानलीला', 'ब्रजचरित' प्रभृति 21 रचनाओं में कबीर की निर्गुणप्रधानता, तुलसी की सगुणप्रधानता एवं सूर की लीलाप्रधानता का समाहार प्राप्त होता है। वेलवेडिअर प्रेस, प्रयाग से दो भागों में 'चरणदासजी की वानी' प्रकाशित हुई थी। चरणदासी-सम्प्रदाय के प्रभाव अब भी विद्यमान हैं। कबीर इत्यादि के सदृश चरणदास भी पंथ-प्रवर्तक थे किन्तु इनके पंथ में संकीर्णता एवं अहंवाद को महत्त्व नहीं प्रदान किया गया। अतः रामदास गौड़⁶ का इनको योगमत, विल्सन का वैष्णवमत एवं डॉ. पीताम्बरदत्त बड़ध्याल का निर्गुणमत में बाँधना युक्तियुक्त नहीं हैं। परशुराम चतुर्वेदी ने इनको समन्वय-स्थापक माना है, जो ठीक लगता है। चरणदास की भाषा भी निर्गुण-सगुण-समन्वयमयी है जिसमें न तो संस्कृत 'कूपजल'⁷ है और न 'भाषा'⁸ हीनभावकारिणी⁹ :

नमो नमो सुखदेवजी करूँ प्रनाम अनंत।

तब प्रसाद स्वरभेद को चरनदास बरनंत।।

चरनदास सो सुक कहत थिरकत स्वर पहिंचान।

थिर कारज को चंद्रमा, चर को भानु सुजान।।¹⁰

1. 'सरोज' में शिवसिंह ने समय 1537 वि. (1480 ई.) दिया है जो एकदम ग़लत है। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने निघनवर्ष 1782 ई. दिया है। उक्त समय 'विनोद' में मिश्रबन्धु ने दिया है। संपादकद्वय डॉ. रामदास गुप्त एवं डॉ. शरणविहारी गोस्वामी ने 'रहस्यदर्पण एवं रहस्यचंद्रिका' शीर्षक ग्रन्थ (1987 ई.) में चरणदास के इन दोनों ग्रन्थों की प्रस्तुति के साथ उनके जीवन पर भी प्रकाश डाला है।
2. 'विनोद' में अलवर लिखा है।
3. 'विनोद' में दयाबाई का जन्म मेवाड़ में होना लिखा है, जो ग़लत है (वैसे भी, मेवाड़ स्थान विशेष न होकर क्षेत्र का सूचक है; जैसे मारवाड़, मेवात, बुंदेलखंड, रुहेलखंड इत्यादि)। सम्भव है, 'मेवात' की जगह 'मेवाड़' छापे की भूल हो। डेहरा मेवात-अंचल में है।
4. 'विनोद' में चरणदास का दूसरा ब्राह्मण होना लिखा है, जिसका कारण दूसर या दूसर या दोसर वैश्यों का स्वयं को ब्राह्मण मानना हो सकता है।
5. अक्षयराम का तद्भव-रूप।
6. पं. रामदास गौड़ कायस्थ थे। पंडित रामप्रसाद 'बिस्मिल' ठाकुर थे। पं. सुखलाल, पं. अमृतलाल इत्यादि जैन-विद्वान् हुए हैं। पण्डित का अर्थ विद्वान् या पढ़ा-लिखा होता ही है।
7. निरक्षर होने के कारण कबीर ने "संसकित है कूपजल" कहा है, जो अंशतः सत्य भी है, क्योंकि "भाषा बहता नीर" में संदेह नहीं।
8. हिन्दी (उसकी विभाषाएँ स्वतः समाहित)
9. केशवदास प्रतीक-कवि हैं।
10. "सुखदेव जी" एवं 'सुक' में 'गुरु शंकररूपिणम्' (तुलसी नरहरदास हेतु) की शैली में सुखदेव का संकेत लगता है, जो अखेराम के स्पष्ट 'सुखदेव' लिखने से भी स्पष्ट होता है।

गरीबदास

संत गरीबदास¹ (1717²-1778³ ई. दिल्ली के निकट छुड़ानी⁴) ने गरीब-पंथ का प्रवर्तन किया जिसके अनुयायी हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश इत्यादि में मिल जाते हैं। मूसा, ईसा, मोहम्मद हों या कबीर, रैदास, नानक, सब पर जैसी चमत्कार-कथाएँ मिलती हैं वैसी ही इन पर भी। राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकराचार्य, तुलसीदास, किसी को चमत्कारवादी मानवीय अभिरुचि ने छोड़ा नहीं। मानव की जिजीविषा एवं विजिगीषा पूज्य में चमत्कार की प्रतिष्ठा करने पर विवश-सी है, क्योंकि वह परोक्षज्ञतः उनसे संपृक्त हो जाता है। डॉ. इंद्र सेंगर के अनुसार, गरीबदास की वाणी का प्रथम संकलन दादूपंथी संत गोपालदास ने 1740 ई. में कराया था। जिसे स्वामी अजरानंद ने 'ग्रन्थसाहिब' शीर्षक से 1924 ई. में प्रकाशित कराया। मेरी समझ में, इसकी प्रामाणिकता निर्विवाद नहीं क्योंकि एक गरीबदास दादूपंथी भी हुए हैं तथा इसमें कबीर-वाणी भी उपलब्ध है—वस्तुतः यह, संकलन है, जैसाकि 'ग्रन्थसाहब' या 'गुरुग्रंथसाहब' के अनुकरण पर नाम से ही स्पष्ट है। इनकी परम्परा में तीसरी पीढ़ी के रत्नदास ने इनकी वाणी को 'श्रीरत्नसागर' के रूप में प्रकाशित कराया किन्तु यह उक्त 'ग्रन्थसाहिब' पर ही आधारित है। वेलवेडिअर प्रेस प्रयाग के 'संत गरीबदास की वाणी' में भी कोई नवीनता नहीं। दो गरीबदासों के गड्डमगड्ड के कारण प्रात्ययिकता संदिग्ध है ही। वैसे भी, सारे निर्गुणप्रधान संतों की वाणी कवीरमूलक अंतःसाधना (हठयोगपरक कुंडलिनी, सुखमन, आठ या छह चक्र, अनहद नाद, अमृत-निर्झरण, आनंद), हिन्दू-मुस्लिम-एकता, जातिप्रथा-विरोध, अन्य उपदेश इत्यादि में वेहद मिलती-जुलती है। रामकाव्य, कृष्णकाव्य, शृंगारकाव्य, वीरकाव्य, स्वच्छन्दतावादी काव्य, प्रगतिवादी काव्य, प्रयोगवादी काव्य भी क्रमशः तुलसी, सूर, केशव, चंद्र या भूपण, प्रसाद-निराला-पंत-महादेवी, अज्ञेय, मुक्तिबोध इत्यादि से प्रभावित रहा है, किन्तु निर्गुणप्रधान-संतकाव्य की एकरूपता सर्वाधिक उवाऊ है। क्योंकि प्रायः संत-कवि न शिक्षित थे न अनुभवी—उनकी संतता एक रूढ़ि मात्र थी (गद्दी दिलाती थी)। एक तीसरे 'गरीब' भी हुए हैं, किन्तु उनकी कविता अलग ढंग की है। वस्तुतः यह गरीबदास कवि न थे केवल संत थे और इनके नाम पर औरों की वाणी प्रचलित कर दी गई है। यह एक ठिकाने के संत थे, जिन्होंने कबीर के आदर्शों का प्रचार किया। कहते हैं, कबीर इनके स्वप्न-गुरु थे। यह अर्द्धाली उनकी बताई जाती है, यद्यपि मुझे संदेह है क्योंकि इसमें वर्ण्य भी लगते हैं :

दास गरीब कबीर का चेरा। सत्तलोक अमरापुर डेरा।।

नितानंद

'सत्यसिद्धांतप्रकाश'⁵ के संत-कवि नितानंद (1723⁶-1799⁷ ई., जन्मस्थान नारनौल⁸ हरियाणा, निधनस्थान दूवलधन माजरा⁹, जनपद रोहतक, हरियाणा), संपन्न ब्राह्मण थे, जिनके गुरु का नाम गुमानीदास था :

ब्राह्मण कुल में जन्म था, करता बहुत मरोड़। गुरु गुमानीदास जी दिया कुवघगढ़¹⁰ तोड़।।

टेढ़े-मेढ़े चालते, टेढ़ी धरते पाग। गुरु गुमानी दास जी दिया ज्ञान वैराग।।

1. 'भारतेन्दु-पूर्व खड़ीबोली-कविता' (डॉ. इंद्रपालसिंह या डॉ. इंद्र सेंगर का अप्रकाशित शोधप्रबन्ध) में गरीबदास, नितानन्द, घीसादास, जीतादास, शंकरदास एवं गंगादास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। इस शोधकार्य के निर्देशक डॉक्टर एल. बी. राम 'अनंत' थे, जो अब अवकाशप्राप्त हैं और हिन्दी के अनुसूचित-जातिगत-विद्वानों में विशेष उल्लेखनीय। संत गरीबदास जाट थे।
2. वैशाख पूर्णिमा 1774 वि. (जैतरामदास कृत 'ग्रंथसाहिब' में 'गरीबदास जी का हाल' में जिसे 'उत्तरी भारत की संत-परंपरा' में आ. परशुराम चतुर्वेदी एवं 'उत्तर भारत के निर्गुणपंथ-साहित्य का इतिहास' में डॉ. विष्णु 'राकेश' ने भी स्वीकार किया है।)
3. 1835 वि. (डॉ. विष्णु 'राकेश' अनुसार)।
4. ग्राम छुड़ानी नगरी माँही। गरीबदास उत्तरे तिस ठाँही।। हरियाणा मंडल कहिलाई। ता मध्य सतगुरु आई।। छुड़ानी में समाधि विद्यमान है, मूर्ति भी लगी है।
5. मूलकार्य भोलादास प्रज्ञाचक्षु ने किया था और इसे 'शब्दावाणी संग्रह' भी कहा जो 1928 ई. में प्रकाशित हुआ। सत्यप्रकाश गोयल ने पुनः 'नितानंद-वचन' के रूप में 1976 ई. में प्रकाशित किया।
6. 'स्मारिका': हरियाणा प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, जुलाई 1983, डॉ. रामपति यादव का लेख 'हरियाणा के विशिष्ट निर्गुणिया संत' (डॉ. सेंगर कृत शोधप्रबन्ध 'भारतेन्दु-पूर्व खड़ीबोली-कविता' से)।
7. डॉ. इंद्र सेंगर के अनुसार।
8. इनकी 'लाल हवेली' अब भी विद्यमान है।
9. यहाँ फाल्गुन पूर्णिमा एवं चैत्र प्रतिपदा को स्मृतिपर्व मनाया जाता है। निवार का पलंग, चरणपादुकाएँ, हरी वनात की चादर, गुदड़ी कटोरी और घंटी विद्यमान हैं।
10. कु + अघ + गढ़ = कुपाप का दुर्ग।

नितानंद पर कवीर का भारी प्रभाव पड़ा है, किन्तु शिक्षित ब्राह्मण होने के कारण इन्होंने वेद-शास्त्रनिंदा में वैसी रुचि नहीं दिखाई जैसी अशिक्षित मुसलमान महापुरुष दिखा सकते थे। इन्होंने दादू की स्तुति की है। इनकी कविता संतकविता को देखते ठिकाने की लगती है, जिसकी भाषा 'खड़ी' है :

1. जिस वन में प्रीतम मिले धन्य धन्य वन सोय।
जाल करील सुहावने रहे कल्पतरु होय॥
2. सोई जन मस्ताना, जिन पाया पद निर्वाणा।
दासा तन में भजन कर, मुख से वहक न बोल।
3. नितानंद घट राखले शब्द-ब्रह्म की झोल॥
जो प्राणी मर उसे ना जारिए।
4. हाथोंहाथ उठाय जँगल में डारिए॥
सब पंछी मिल खाहिं कि चीरें चाम को।
भर जाय जिनका पेट दुआ दें राम को॥¹

दरिया साहब

विहार के मुसलमान-संत दरिया साहब (1734-1780 ई.)² ने अपने को कवीर का अवतार³ घोषित करते हुए 'शब्द या वीजक', 'मूर्ति-उखाड़'⁴ एवं 'यज्ञ-समाधि' जैसे मोहम्मदीयत-प्रचारग्रन्थ रचे तथा 'ज्ञानरत्न' एवं 'विवेकसागर' में रामायण एवं महाभारत की कथा को अपने ढंग के निर्गुण-ढरें पर प्रस्तुत किया। हर्ष है कि इन अहंवादी पाखंडी संतों का जनता पर कोई ठोस प्रभाव नहीं पड़ा। इन 'साहबों' की बाढ़ में भी हिन्दूधर्म अपनी संगीत-नृत्य-चित्र-मूर्ति ललितकलाओं के साथ ज्यों-का-त्यों रहा बहा नहीं, इसका कारण उसकी मरुधर्मिता से श्रेष्ठतर कलाधर्मिता रही है। अकेले तुलसीदास दर्जनों 'साहबों' से अधिक प्रभावी सिद्ध हुए, क्योंकि उनकी जड़ें भारतीय समन्वयवाद एवं सरस जीवनवाद में हैं, न कि विदेशी जड़तावाद एवं नीरस पैगम्बरवाद में। 'दरियासागर', 'दरियानामा', 'अग्रज्ञान', 'भक्तिहेतु', 'ज्ञानदीपक', 'ज्ञानमूल', 'ज्ञानरत्न', 'ज्ञानस्वरोदय' इत्यादि सूर एवं तुलसी के प्रभाव को कम करने या मिटाने के उद्देश्य से रचित-कथित ग्रन्थों में लोकप्रियता-आखेट हेतु तुलसी का अनुकरण भी किया है। वानगी पेश है :

जिन सत पद खोजा चित लाई। निकट नाम निज ज्ञान समाई॥
आतमदास ज्ञान अव बूझै। प्रेम मगन हवै अपने सूझै॥
तत्व तिलक मन मुद्रा फेरै। अनहदु धुनि मुरली तहँ हैरै॥⁵
अजपा संध्या तरपन करई। ग्यानगम्य गायत्री लहई॥⁶
पल पल सुमिरि प्रेमरस पीजै। मनि मुकुता तहवाँ चित दीजै॥
चंद-सूर दुइ परचै भयऊ। सरिता तिन संगम तहँ रहेऊ॥⁷
कुंभ-पत्र तहवाँ भरि पीवै।⁸ब्रह्म दृढ़ाइ तहाँ सुख जीवै॥

1. पारसी-प्रभाव? किन्तु शांति-स्तम्भ (टॉवर ऑफ पीस) का बावला नहीं।
2. 'संत-कवि दरिया: एक अनुशीलन' (डॉ. धर्मन्द्र ब्रह्मचारी) में स्तरीय शोध प्राप्त होता है। 'दरिया साहब विहारवाले के चुने हुए पद और साखी' तथा 'दरिया-दर्पण' प्रसिद्ध संकलन हैं ही।
3. एक ओर राम-कृष्णादि के अवतारवाद का खंडन, दूसरी ओर अपने अवतार का मंडन : खंडन की पराकाष्ठा। तुलसी साहब हाथरसवाले भी ऐसे ही पाखंडी थे जो तुलसीदास का अवतार बनते थे। दरिया मुसलमान थे जो अवतार नहीं मानते; इसीलिए इनका मुसलमानों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा—हाँ, हिन्दुत्व-हनन के यत्न के कारण थोड़ा-सा आदर अवश्य मिला।
4. मूर्ति-प्रतीक असत्य, केवल उनका निर्गुण-निराकार सत्य! किन्तु निर्गुण-निराकार की सत्यता का प्रमाण क्या? वह भी तो प्रतीक ही है। मोहम्मदी कट्टरता का भयानक ग्रंथ।
5. तिलक, मुद्रा, कृष्ण-मुरलिका सब त्यागो।
6. गायत्री त्यागो।
7. संगम-स्नान त्यागो।
8. कुंभ-भंला त्यागो। सब त्यागो और पुंज भजो = संतवाद (पैगम्बरवाद का पुत्र)।

कोमल आंले मूढ़ के धरे आपना अंड। निस दिन राखैं हेत में तिन से परे न खंड।।
चौमासे रितु जानकर पिरथी को जल देत। कबहूँ लावे रितु बिना वहि चातक के हेत।।
जन दरिया गुरुदेव जी ऐसे किया निहाल। जैसी सूखी बेलड़ी बरसि किया हरियाल।।

पलटू

कबीरपंथी संतों में पलटू साहब (अठारहवीं सदी उत्तरार्द्ध¹, नागपुर-जलालपुर, जनपद फ़ैजाबाद) का नाम भी आदर से लिया जाता है। मिश्रबन्धु ने इनकी पुस्तक का नाम 'कुंडलिया पलटू साहब' दिया है।² किन्तु इनकी प्रचलित एवं प्रसिद्ध रचनाएँ कुंडलिया छन्द में निबद्ध नहीं हैं। यह स्पष्ट नहीं कि अभिप्राय 'कुंडलिनी' से ही है। हठयोगपरक रचनाएँ कबीर, धरमदास, भीखा इत्यादि के सदृश पलटू ने भी अच्छी लिखी हैं। ऐसी रचनाएँ कुंडलिनी, सुषुम्ना, अष्टचक्र या षट्चक्र और सहस्रपार पर आधृत होती हैं। उदाहरण देखें—

गगन के बीच में अमी की बुंद है, पियत इक साँपिनी धार धारा।
साँपिनी मारि कै पियै कोउ संतजन मुए संसार को फटकि सारा।।
सेष अरु संभु नर झूलते हिंडोलना कहत औ सुनत ठग वेद हारा।
दास पलटू कहै बुंद है सिंधु में, मथे ब्रह्माण्ड तब होय न्यारा।।

कोई कह सकता है कि मूढमति संत वेद तथा देवी-देवताओं पर ऊटपटाँग वक्तवास करके अपने-आप को पुजवाने के लिए बेताब रहते थे। वस्तुतः संतों में से अधिकांश मुसलमान-शासकों के अनुकूल वादविवाद पर निरापद रूप से हिन्दूधर्म पर प्रहार के माध्यम से स्वपूजा-प्रवर्तन करते रहते थे, जिसे पंथ-प्रवर्तन कहा जाता था। यदि वेद ठग है तो हठयोग चोर। यदि वेद निराधार है तो हठयोग उससे भी अधिक निराधार है क्योंकि सूर्य, घन, वन, नदी इत्यादि का सृष्टि, पर्यावरण इत्यादि से संपृक्त देवत्व प्रत्यक्ष अथवा यथार्थवादी है तथा कुंडलिनी, सुषुम्ना, विविधचक्र, सहस्रार इत्यादि पूर्णतः काल्पनिक हैं। जिसने वेद का अनुशीलन किया (न्यस्तस्वार्थग्रस्त अध्ययन-विवेचन मात्र नहीं) वह अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि वेद प्रकृति का महाकाव्य है, मानवता के अथ का गान है, संकीर्णतारहित विराटवादी चेतना का उद्गार है। किन्तु इन अनपढ़ संतों ने अपनी अनगढ़ बानी के द्वारा मानव-महिमा एवं मानव-एकता की प्रतिष्ठा में योगदान दिया, अतः इनका सतर्क सम्मान अनुचित नहीं।

6. आत्मपरक-प्रेमकाव्य

भारतीय काव्य में प्रेम वस्तुपरक काव्य में समाहित रहा है। कवि मर्यादावश आत्मोद्गार भी पात्र के कंठ से व्यक्त करता रहा है। किन्तु अरब के गज़ाला या 'गज़ल' नाम के शरावी और ऐयाश शायर ने निजी इश्क़वाजी के बयान की जो इत्तदा की थी वह ईरान में इंतहा पर पहुँची तथा "यथा राजा तथा प्रजा" के अनुरूप भारत में फली-फूली। हिन्दी में आत्मपरक-प्रेमकाव्य के प्रथम कवि आलम थे जो शेख नामक रँगरेज़िन के कारण ब्राह्मण से मुसलमान हो गए थे। उनकी परम्परा को घनआनन्द ने आगे बढ़ाया जो 'सुजान'¹ नामक सम्भवतः मुसलमानवेश्या के कारण दिल्ली से निकाले गए तथा प्रेमिका की बेवफ़ाई के बावजूद एकनिष्ठ प्रेम में अटल रहे—घनआनन्द हिन्दी में आत्मपरक प्रेम के श्रेष्ठतम कवि हैं, जिनके असफल प्रेम की अप्रतिहत एकनिष्ठा विश्व-साहित्य की एक दुर्लभ निधि है, जिनकी गंभीर कविता की तुलना में उर्दू की सतही गज़लबाजी बौनी लगती है। बोधा को सुभान नामक नर्तकी के कारण पन्ना राज्य से निर्वासन का दंड मिला जिसकी अवधि में उन्होंने 'विरह-वारीश' रचा जिसका एक-एक छन्द प्रेम की अनन्यता का प्रतीक है तथा जिसके कारण उन्हें क्षमा भी मिली, सुभान भी। ठाकुर बुंदलीखंडी भी मँजे हुए आशिक थे किन्तु उनकी प्रेमिका का नाम ज्ञात नहीं है—सम्भव है कि उनकी गूढ़दंड प्रकृति के कारण कोई प्रेमिका उनके निकटतर न आई हो—किन्तु उनका प्रेमकाव्य भी अतीव प्रभावी है। इन ईरान से प्रभावित कवियों ने अतीव मार्मिक विरहकाव्य की सृष्टि की है। ईरान-इराक़ और अरब-मिस्र की सुंदरियों की मुग़लकालीन भारत में बेहद माँग थी। कई भिखोरियों के रूप में आई और हुस्नो-जलाल की बंदोलत नूरजहाँ, मुमताज़ महल इत्यादि

1. पलटू अवध के नवाब शुजाउद्दौला (देहांत जनवरी 1775 ई. में) के समकालीन थे। नामनिहाल मुग़ल-बादशाह शाहआलम, बंगाल के नवाब मीर कासिम और शुजाउद्दौला (नवाब-वज़ीर) की सम्मिलित सेनाओं को अंग्रेज़ों ने 1764 ई. के प्रसिद्ध बक्सर (बिहार) युद्ध में हराया था।
2. यह पदवी लगती है। वास्तविक नाम ज्ञात नहीं।

वन वैठीं। अन्य नाच-नाच कर दरवारों को नचाती रहीं। पंडितराज जगन्नाथ तो मुगलों के पतन-काल से पर्याप्त पूर्व शाहजहाँ के गौरवशाली काल में ही, “यवनी नवनीत कोमलांगी” के फेर में पड़ गए थे। यह प्रवृत्ति बढ़ती ही गई। हिन्दी-कवि सीतल ने ‘गुलज़ार चमन’ में समप्रेम जोड़ते हुए अपने माशूक लालविहारी की खुलकर चर्चा की, उसे अवधविहारी राम में एकाकार कर दिया—इश्क़मज़ाजी को इश्क़हक़ीकी का रूप दे डाला—और उर्दू-शायरी के एक प्रस्तोता बन गए। वास्तव में कुलपति, नागरीदास, आलम, घनआनंद, बोधा इत्यादि उर्दू-शायरी के अग्रदूत थे। इस दिशा में, सूदन एवं सीतल उनसे भी आगे गए। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त का वर्गीकरण पुराने और भारी-भरकम पंडिताऊपन का सूचक और सतही है। ये कवि षड्भूत-वर्णन अन्य उद्दीपन-सामग्री, अलंकरण इत्यादि में शास्त्रीयता का पूर्ण सम्मान करते हैं—घनआनंद तो इसके अतिरिक्त शब्दशक्ति की शास्त्रीयता के बिना समझे तक नहीं जा सकते। निस्सन्देह, ये कवि स्वच्छंद एवं विद्रोही थे—लीक से हट कर चले थे—किन्तु इन्हें रीतिमुक्त कहना सत्य के साथ आंशिक न्याय करना मात्र होगा। आलम, घनआनंद, बोधा और ठाकुर बुंदेलखंडी आत्मपरक-प्रेमकाव्य के प्रणेता थे। ‘आत्मपरक-प्रेमकाव्य’ शब्दद्वय इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों को सरलतापूर्वक स्पष्ट कर देते हैं। इनकी अनूठी तन्मयता, गहरी समर्पणवृत्ति, अप्रतिहत एकनिष्ठा एवं निश्छल अभिव्यक्ति सर्वथा मार्मिक एवं नितांत प्रभावी है :

रात के उनींदे, अरसाते, मदमाते राते¹, अति कजरारे दृग़ तेरे यों सुहात हैं।
तीखी-तीखी कोरनि करोरि लेत काढ़े जीव, केते भए घायल औ केते तलफात हैं।।
ज्यों-ज्यों सलिल चल सेख² धोवै वार-वार, त्यों-त्यों बल बुंदन के वार झुकि जात हैं।
कैवर के भाले कैधौं नाहर नहनवाले, लोहू के पियासे कहुँ पानी में अघात हैं।।³
जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सो चरित्र गुन्यो करैं।।
आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं।।
(आलम)

जेतो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौं, को धौं जीव जाँरे, अटपटी गति दाह की।
धूम को न धरै, गात सीरो परै ज्यों-ज्यों वरै, ढरै नैन वीर⁴! हरे मति आह की।।
जतन बुझे हैं सब जाकी ज़र आगे अब, कबहुँ न दबै भरी भभक उमाह की।
जब तैं निहारे घनआनंद सुजान प्यारे, तब तैं अनोखी आगि लागि रही चाह की।।⁵

हीन भए जल, मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाभ कलंक निरास हवै कायर व्यागत प्रानै।।
प्रीति की रीति सो क्यों समुझै, जड़ मीत के पानि परै को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनंद जीव की जीवनि जान⁶ ही जानै।।
(घनआनंद)

एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतकृतु की पदवी लुटिये तकि कै मुसकाहट ताको।।
सोक ज़रा गुज़रा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उज्रान तहाँ को।
जान⁷ मिलै तो जहान मिलै, नहि जान मिलै तौ जहान कहाँ को।।

1. राते होने के कारण, रात में जागने के कारण। गंभीर श्लेष।

2. शेख नामक शीख रंगरेज़िन।

3. फ़ारसी-मूल की लोहू, जख़्म, घायल, तड़फ़ वगैरह की यह सारी सामग्री उर्दू-शायरों ने पूरे जोश-ख़रोश से अपनाई।

4. भट्ट, सखी।

5. आग, शोले, चिंगारी वगैरह की सामग्री तो उर्दू-शायरी पर छा ही गई। पूरी आतिशबाजी। अब भी ‘ढाक के वही तीन पात’ हैं।

6. जान, जानेमन, जानेजानी, जानेतमन्ना की शब्दावली उर्दू-शायरी की जान बन गई। यहाँ ‘सुजान’ के लिए।

7. यह ‘जान’ खालिस ‘मेरी जान’ है, घनआनंद की जान सुजान नहीं।

दूर है मूरि अपूरब सो, ससि-सूरजहू कवहूँ क निहारी।
आदर वेली-नबेली अवै, कहूँ कैसे मिलै बर जोग दिवारी।।
बोधा, सुनै हे सुभान! हितू, करि कोटि उपाय थके उपचारी।
पीर हमारी दिलंदर की, हम जानत हैं वह जाननहारी।।

(बोधा)

वा निरमोहिनि रूप की रासि जऊ उर हेतु' न ठानति हवैहै।
बारहि-बार विलोकि घरी-घरी सूरति तौ पहिचानति हवैहै।।
ठाकुर या मन को परतीति है, जो पै सनेह न आनति हवैहै।
आवत हैं नित मेरे लिए, इतनो तो विशेष कै जानति हवैहै।।

दस बार, बीस बार, बरजि दई है जाहि, एते पै न मानै जौ तौ जरन-वरन देव।
कैसो कहा कीजै कछू आपनो करो न होय, जाके जैसे दिन ताहि तैसेई भरन देव।।
ठाकुर कहत मन आपनो मगन राखो, प्रेम निहसंक रस-रंग विहरन देव।
विधि के बनाए जीव जेते हैं जहाँ के तहाँ खेलत फिरत तिन्हें खेलत फिरन देव।।

(ठाकुर)

भारतीय प्रेमकाव्य की वस्तुपरक परंपरा से हटकर चलने के कारण आलम, घनआनंद, बोधा और ठाकुर की प्रतिष्ठा हिन्दी-साहित्य में तब हो पाई जब पाश्चात्य कविता के आत्मपरक-प्रेमकाव्य की महिमा ज्ञात हुई। प्रेमी जीव कष्ट पाते ही हैं। आलम के मुसलमान बनने पर उनको स्वजन-परिजन-वियुक्त होना पड़ा होगा, उनकी भर्त्सना की गई होगी। घनआनंद को तो “महा हरामज़ादो” लिखा तक गया है। बोधा को निर्वासन का अपमान झेलना पड़ा। ठाकुर के इश्क़ इस दर्जे का न था परन्तु उन्हें भी जीवन में अनेक संघर्ष करने पड़े थे—उनके काव्य में कुंठा के दर्शन भी होते हैं। अर्से तक ये प्रेमी कवि उपेक्षित पड़े रहे। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने घनआनन्द की बेहद तारीफ़ की और उनके शिष्य आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ‘घनआनन्द-कवित्त’ (ब्रजनाथ), ‘घनआनन्द-ग्रन्थावली’ एवं ‘बोधा-ग्रन्थावली’ के सम्पादन के साथ इन दो कवियों को जमाने में सफल हुए। आ. शुक्ल ने आलम की भी प्रशंसा की थी। लाला भगवान-दीन ‘दीन’ ने ‘ठाकुर-ठसक’ में कायस्थ ठाकुर बुंदेलखंडी के साथ इतना अधिक न्याय कर डाला कि असनी के ब्रह्मभट्ट ठाकुर प्रथम एवं वहीं के ब्रह्मभट्ट ठाकुर द्वितीय (जिन्हें मिश्रबन्धु ने ठाकुर-त्रय में अन्यतम माना है) के अनेकानेक छन्द भी ‘ठसक’ में समा गए! अब विश्वविद्यालयों में इन प्रेमी कवियों की प्रतिष्ठा हो गई है।

प्रमुख कवि

आलम

प्रत्येक सम्पन्न साहित्यिक काल में कुछ उन्मुक्त प्रतिभाएँ भी होती रहती हैं। संक्रांतिकाल में अब्दुलरहमान एवं मेरुतुंग इत्यादि तथा पुनरुत्थानकाल में विद्यापति एवं रसखान इत्यादि उदाहरण हैं, शास्त्रीयकाल में आलम एवं घनआनंद इत्यादि। बौद्धिककाल के भी प्रत्येक युग में ऐसी प्रतिभाओं के दर्शन होते हैं, जैसे सुधारवादी युग में जगमोहनसिंह इत्यादि, आदर्शवादी युग में श्रीधर पाठक इत्यादि स्वच्छन्दतावादी युग में माखनलाल चतुर्वेदी इत्यादि, यथार्थवादी युग में नीरज इत्यादि। आलम (रचनाकाल 1700 ई. के आसपास) शास्त्रीयकाल के आत्मपरक प्रेमकाव्य के प्रथम उन्मुक्त कवि हैं जिनके जन्मस्थान एवं जन्मतिथि इत्यादि का वृत्त तो ज्ञात नहीं है किन्तु जो औरंगज़ेब (निधन 1707 ई.) के वस्तुतः द्वितीय तथा तत्त्वतः ज्येष्ठ² पुत्र मुअज़्ज़म के आश्रित कवि होने के कारण समग्रतः अज्ञातकालिक नहीं हैं। अकबर-कालीन ‘मधवानलकामदकंला’ के प्रस्तोता आलाम एवं गुरु गोविंदसिंह के आश्रित कवि

1. प्रेम।

2. मतान्ध एवं सर्वशंकालु औरंगज़ेब के चार पुत्र थे (अकबर, मुअज़्ज़म, आजम, कामवख़्श) जिनमें प्रथम पितृ-विद्रोह के कारण नाम मात्र का महत्त्व रख पाया तथा असमय काल-कलवित भी हुआ। मुअज़्ज़म अपने नव्वे वर्ष के बाप के मरने पर तलवार के ज़ोर से सत्तर साल की उम्र में बहादुरशाह के नाम से वादशाह बना था।

आलम से भिन्न यह आलम जाति से ब्राह्मण थे किन्तु शेख रँगरेज़िन के इश्क में मुसलमान हो गए थे। “यथा राजा तथा प्रजा” का सत्य चिरंतन-सा है। पंडित रामतनु मिश्र या तन्नू पंडित मियाँ तानसेन’ हो गए थे, जिसके मूल में भी (एक मत के अनुसार) इश्क विद्यमान था। काफ़ी पहले बंगाल का औरंगज़ेब काला पहाड़ भी इश्क के कारण मुसलमान बना था। संगीत-जगत् में आज के लगभग सारे उस्तादों के पुरखे हिन्दू थे। इनमें कुछ इश्क तो कुछ ऐश्वर्य के कारण मुसलमान बने थे। जज़िया से मुक्ति के कारण लाखों गरीब हिन्दू मुसलमान बनने के लिए विवश हो जाते थे। “अब तुरुक से भुरुक तो होंगे नहीं?” की लोकोक्ति इस चरम पतन को आज भी विवृत करती है। अनेक कवि-संगीतकार इत्यादि काम या दाम या नाम के लिए इस्लाम कुबूल करते थे। किन्तु इश्कवाज़ आज भी होते ही रहते हैं। उन्होंने ऐसा रोना भी नहीं रोया :

इश्क ने ग़ालिब निकम्मा कर दिया,
वर्ना हम भी आदमी थे काम के!

आलम की माशूका रँगरेज़िन शेख घनआनंद की माशूका वेश्या सुजान और बोध की माशूका वेश्या सुभान की तुलना में अधिक प्रतिभाशाली थी। क्योंकि उसने “कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन”² की चुहलबाज़ी पर “कटि को कंचन काटि के कुचन मध्य धरि दीन” की दोहा-पूर्ति करके पण्डित जी को मुल्ला जी बनाया था तथा एक बार शाहज़ादा मुअज़्ज़म की “आलम³ की बीबी आप ही हैं?” के मज़ाक का “जहान” की अम्मी मैं ही हूँ!” उत्तर देकर हतप्रभ कर दिया था। मुस्लिमकाम में ऐसी चुहलबाज़ियों और चोंचलेबाज़ियों का दौर चलता ही रहता था।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में आलम के काव्यसंग्रह ‘आलम-केलि’ का उल्लेख किया है, यद्यपि संपादक (लाला भगवानदीन ‘दीन’) का नाम नहीं दिया। आलम की कविता उच्चस्तर की है जिसकी गहन तल्लीनता एवं प्राञ्जल ब्रजभाषा पाठक का मन अनायास ही मुग्ध कर लेती है। घनआनंद से रत्नाकर तक अनेक कवि उनसे प्रभावित हुए हैं। गुण की दृष्टि से वे एक उत्कृष्ट कवि हैं आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है, “प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रखखान और घनआनंद की कोटि में होनी चाहिए।” यद्यपि फ़ारसी-शैली के प्रभाव के कारण कहीं-कहीं रस-भंग दृग्गत होता है तथापि अपने उत्तम छन्दों में वे बहुत ही सफल सिद्ध हुए हैं। वैसे तो आलम ने प्रेम की दीप्ति से जगमग शोभा के वर्णन भी सफलतापूर्वक किए हैं, किन्तु विरह-विन्वालेखन में उनकी सफलता महानता का स्पर्श करती दृग्गत होती है :

1. प्रेमरंगपगे, जगमगे, जगे जामिनि के, जोवन की जोति जागि जोर उमगत हैं।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं, झूमत हैं झुकि-झुकि झँपि उधरत हैं।।
आलम सों नवल निकाई इन नैनन की, पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत हैं।
चाहत हैं उड़िवे को देखत मयंकमुख, जानत हैं रैनि तातें ताहि में रहत हैं।।⁴
2. जा थल कीने विहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करें।
जा रसना सों करी बहु वातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करें।
आलम जौन सी कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करें।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करें।।
3. कैधौ मोर सोर तजि गए री अनत भाजि, कैधौ उत दादुर न बोलत हैं ए दर्ई!
कैधौ पिक चातक महीप काहू मारि डारे, कैधौ बगपौति उत अंतगति है गई।।

1. मिश्रवन्धु ने ‘विनोद’ में शेख रँगरेज़िन के छन्दों को ‘परम मनोहर’ मानते हुए उसकी गणना तांघ कवि की श्रेणी में की है। शेख रँगरेज़िन शृंगाररस की उन्मुक्त कवयित्री हैं जिसके ललित ब्रजभाषा में रचित नेत्र, कुंतल इत्यादि के वर्णन आकर्षक हैं।
2. नोंक-झोंक तो चल ही रही थी, आलम ने पगड़ी रँगवाने के वहाने एक छोर की पाँठ में यह पंक्ति लिखकर बाँध दी और रंगीन पगड़ी के छोर में रंगीन दोहापूर्ति से अभिभूत होकर रह गए।
3. आलम = संसार। आलम पति का नाम था ही।
4. जहान = संसार। जहान पुत्र का नाम था ही।
5. ‘विनोद’ में इस छन्द को शेख रँगरेज़िन का माना गया है।

आलम कहै हो आली! अजहूँ न आए प्यारे, कैधौँ उत रीत विपरीत विधि ने ठई।
मदन महीप की दुहाई फिरिबे तें रही, जूझि गए मेघ, कैधौँ वीजुरी सती भई।।

आगे चलकर जिसे रेख्ता और उर्दू कहा गया, उस भाषा और उसकी कविता का उद्गम हिन्दी के ब्रजभाषा-काव्य में स्पष्टतः देखा जा सकता है। प्रोफ़ेसर मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने अपने ग्रंथ 'आवेहयात' में उर्दू का ब्रजभाषा से निकलना ठीक ही माना है। आलम के छन्द इसके प्रमाण हैं, घनआनंद की इश्कलता इत्यादि इसका प्रमाण हैं, बोधा का इश्कनामा इत्यादि इसका प्रमाण हैं, सीतल का 'गुलज़ार-चमन' तो उर्दू-कविता का एक आदिग्रंथ ही लगता है। सभी जानते हैं, इश्क उर्दू-शायरी की रूह है! हिन्दी-कवि उर्दू-कवि का पिता है। एक निदर्शन प्रस्तुत है :

दाने की न पानी की न आवै सुध खाने की, गली महवूव की अराम खुसखाना है।
रोज ही से है जो राजी भार की रजाय बीच, नाज की नज़र तेज तीर का निशाना है।।
सूरज चिराग, रोशनाई आसनाई बीच बार-बार बरै बलि जैसे परवाना है।
दिल से दिलासा दीजै, हाल के न ख्याल हूजै, बेखुद फकीर वह आशिक दीवाना है।।

उर्दू के आदि-कवि वली अठारहवीं सदी में हुए तथा मोहम्मदशाह 'रैंगीले' के समकालीन थे :

दिल वली का ले लिया दिल्ली ने छीन, जा कहे कोई मोहम्मदशाह सों।।'

वली, आरजू, आबरू, जानजानों (मज़हर), ताबाँ, मीर, नज़ीर इत्यादि आरम्भिक उर्दू-कवियों की शायरी ब्रजभाषा से प्रेरित भी है, प्रभावित भी। उर्दू-ए-मुअल्ला तो ग़ालिब जैसे फ़ारसी के असफल कवि आए। मुस्लिम-साम्प्रदायिकता की फ़ारसीवाज़ी ने उर्दू के दायरे सँकरे कर दिए, जिससे इस भाषा की बड़ी क्षति हुई। सम्प्रति पाकिस्तान की अकृत्रिम-उर्दू भारत की कृत्रिम-उर्दू की तुलना में सरल भी है, साफ़-सुधरी भी। आरम्भ का असाम्प्रदायिक इकबाल अकृत्रिम उर्दू का पक्षधर था किन्तु साम्प्रदायिक होने पर वह भी फ़ारसीवाज़ बन गया। फिर भी, सागर निजामी जैसे शायर अकृत्रिम-उर्दू में ही सृजन करते रहे।

आलम के विषय में शिवसिंह द्वारा प्रस्तुत स्वयं कवि का प्रशस्ति-उदाहरण ठीक है जो उन्हें औरंगज़ेब के पुत्र मुअज़्ज़म से संपृक्त करता है। मुंशी देवीप्रसाद द्वारा आलम को अकबर का समकालीन मानना ग़लत है क्योंकि कवि-रचना का अंतर्साक्ष्य भी उसके विरुद्ध जाता है, वर्ण्य एवं शैली-शिल्प का बहिर्साक्ष्य भी। मिश्रबन्धु शिवसिंह एवं मुंशी देवीप्रसाद के बीच में फ़ँसकर दो आलमों की चर्चा करते हैं जिसे श्री भवानीशंकर याज्ञिक निराधर सिद्ध करते हैं। 'आलमकेलि' के प्रस्तोता लाला भगवानदीन 'दीन' वस्तुतः आलम के वाहक हैं—वे ठाकुर तृतीय के वाहक भी हैं—यद्यपि उनके संकलन में शेख रंगरेज़िन के अनेक छन्द आलम कृत हो गए हैं ('ठाकुर-ठसक' में भी सामान्यतः ठाकुर प्रथम एवं विशेषतः ठाकुर द्वितीय के अनेक छन्द ठाकुर तृतीय के हो गए हैं)। वैसे, आलम एवं शेख रंगरेज़िन की कविता इतनी अधिक मिलती-जुलती है कि अनेक महानुभाव आलम एवं शेख दोनों को एक ही व्यक्ति की छाप मानते हैं। किन्तु शेख के पृथक् कवि-व्यक्तित्व को नकारना न्यायसंगत नहीं है। शुक्ल ने सारी पूर्ववर्ती सामग्री को खपाकर आलम का प्रशस्य आकलन किया है। वे इस संदर्भ में परवर्ती रीतिबद्ध-रीतिमुक्त-वर्गीकरण का पथ भी प्रशस्त करते हैं : 'आलम रीतिबद्ध रचना करनेवाले कवि नहीं थे। वे प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे। इसी से इनकी रचनाओं में हृदयतत्त्व की प्रधानता है।' में रीतिबद्ध-रीतिसिद्ध-रीतिमुक्त के तत्त्वतः शुक्लोपजीवी वर्गीकरण को स्थूल अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी मानते हुए भी सूक्ष्म दृष्टि से तथ्यपूर्ण नहीं मानता क्योंकि आलम इत्यादि की कविता में सारी उद्दीपन-सामग्री शास्त्रीय है, नखशिख के प्रति रुझान शास्त्रीय है, अलंकरण शास्त्रीय है—हाँ उनकी कविता आत्मपरक अवश्य है जिसे हृदयतत्त्व-बुद्धितत्त्व के द्वैत में खंडित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

शास्त्रीयकालीन आत्मपरक कविता के प्रवर्तक के रूप में आलम को घनआनंद एवं बोधा प्रभृति का प्रेरक माना जा सकता है।

1. पाठान्तर 'सू'।

2. दुर्दर्शन (दूरदर्शन) एवं आसासवानी (आकाशवाणी) की कोई विज्ञप्ति सुनकर अनायास स्पष्ट हो जाती है : दोनों सरकारी प्रचार-माध्यम हिन्दी को उर्दू और उर्दू को फ़ारसी बनाने की क्रम खाए बैठे हैं।

घनआनंद

शास्त्रीयकाल के आत्मपरक-प्रेमकाव्यकारों में घनआनन्द (1689 हल्यार्ष 1761 ई.)¹ गुण एवं परिमाण दोनों दृष्टियों से अन्यतम हैं। आलम परिमाण में पीछे हैं तथा गुण में आगे नहीं। बोधा एवं ठाकुर गुण एवं परिमाण दोनों में समकक्ष नहीं। द्विजदेव परिमाण में बहुत पीछे। यद्यपि इनकी छन्द-प्रति-छन्द काव्य-गरिमा केशव, सेनापति, देव, विहारी, भूषण, मतिराम एवं पद्माकर के स्तर की नहीं है, तथापि इनकी मौलिकता विशिष्ट है तथा यह शास्त्रीयकाल के एक प्रमुख कवि अवश्य हैं। आचार्य शुक्ल ने इनकी वेहद तारीफ़ कर डाली है, जिससे हिन्दी को यह लाभ हुआ कि एक श्रेष्ठ कवि प्रकाश में आ गया। इनका जन्मस्थान रत्नाकर इत्यादि द्वारा बुलंदशहर माना गया है किन्तु इनकी भाषा विशेषतः 'इश्कलता' में पंजाबी के प्रयोग इसे विवादास्पद सिद्ध कर देते हैं। यह भटनागर कायस्थ थे। 'प्रेम-अभिलाष' शीर्षक वर्णनात्मक कृष्ण-काव्य के कवि साहवदास भी भटनागर कायस्थ थे। डॉ. रामरतन भटनागर तथा डॉ. महेन्द्र भटनागर का स्मरण भी आ जाता है। रीतिबद्ध, रीतिसिद्धि और रीतिमुक्त काव्यधाराओं का स्थूल निर्धारण घनआनंद पर आलम, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव से भी कम सटीक बैठता है क्योंकि इनका काव्य पर्याप्त अलंकृत है और यत्र-तत्र इन्होंने शृंगाररस, विशेषतः विरह, के शास्त्रीय तत्त्वों का उल्लेख भी किया है, यद्यपि यह सत्य है कि इन्होंने कोई सुनियोजित शास्त्रकाव्य नहीं रचा। मोहम्मदशाह रंगीले के दरबार में यह मुंशी (या मीर मुंशी) थे, सुजान नामक वेश्या पर आसक्ति के कारण पदच्युत एवं निष्कासित किए गए, सुजान के साथ न देने पर विरक्त होकर वृंदावन चले गए, जहाँ 1761 ई. में आक्रांता अहमदशाह अब्दाली के कुछ लुटेरे सैनिकों के 'ज़ार' (घन) मॉंगने पर 'रज' (धूनी की भस्म) देते हुए मार डाले गए। घनआनंद एक महान् प्रेमी थे। आलम ने धर्म देकर शेख रंगरेज़िन को लिया, बोधा को सुभान अंततः मिल ही गई, किन्तु घनआनन्द ने सुजान के अभाव को भाव से सजाकर महान् काव्यसृजन किया, मरने के कुछ क्षण पूर्व अपने रक्त से यह अद्वितीय छन्द लिखना नहीं भूले, तथा दांते की व्रीट्रिस, वोक्केशिओ की लौरा, विंची की मोना लीसा और कीट्स की फ़ेनी ब्रॉउन के सदृश अपनी निर्मम, वस्तुतः संगदिल और तंगदिल, प्रेमिका को अमर कर गए :

बहुत दिनान की अवधि आसपास परे, खरे अरवरनि भरे हैं उठि जान को।

कहि-कहि आवन छवीले मनभावन को, गहि-गहि राखत ही दै-दै सनमान को।

झूठी बतियानि की पत्यानि ते उदास है कै अव ना घिरत घनआनंद निदान को।

अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को।

घनआनंद को 'तुरकिनी' वेश्या पर आसक्ति के कारण उनके स्तर के अनुरूप ख्याति नहीं मिल पाई थी। वे लोकप्रिय नहीं रहे। किन्तु आलोचकप्रवर मिश्रबन्धु द्वारा 'विनोद', कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा 'सुजान-सागर', इतिहासकार काशीप्रसाद जायसवाल द्वारा 'विरह-लीला', साहित्यसेवी अमीरसिंह द्वारा 'रसखान और घनआनंद', शम्भुप्रसाद बहुगुणा द्वारा 'घनआनंद' के प्रस्थान-कार्य उन्हें प्रकाश में लाए, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आत्मपरक प्रशस्ति ने उन्हें अत्यधिक न्याय प्रदान किया, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा 'घनआनन्द-कवित्त' एवं 'घनआनन्द-ग्रंथावली' के अतीव प्रशस्य सम्पादन ने उन्हें विश्वविद्यालयों में लोकप्रियता प्रदान की, जिस पर आधृत, व्यापक छात्रसेवा का कार्य डॉ. मनोहरलाल गौड़, डॉ. रामफेर त्रिपाठी इत्यादि अध्यवसायी प्राध्यापकों ने किया। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के प्रेरणा-बीज को विशाल वट-वृक्ष का रूप प्रदान कर स्मरणीय साहित्यसेवा की है। घनआनन्द एवं विश्वनाथप्रसाद मिश्र अन्योन्याश्रित हो गए हैं। वैसे, घनआनन्द के काव्य-सागर का प्रथम मुक्तासंकलन सम्भवतः उनके समकालीन काव्यरसिक ब्रजनाथ ने 'घनआनन्द कवित्त' के रूप में प्रस्तुत किया था और आचार्य मिश्र उनके भी ऋणी हैं। आचार्य मिश्र ने राधाकृष्णदास, विद्याधर पाठक, ज्ञानवती त्रिवेदी इत्यादि की साधारण खोजों

1. 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'लगभग' की अटकल के साथ जन्म संवत् 1746 वि. (1689 ई.) लिखा है। प्रख्यात विद्वान् अप्रतिम ग्रंथावलीकार आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा प्रतिपादित 1761 ई. में निघन के वर्ष को अब सभी स्वीकार करते हैं। ज्ञानवती त्रिवेदी ने निघन 1760 ई. में अब्दाली के मयुरा पर दूसरे आक्रमण में माना है। अतिस्फूर्ति खंडकाव्यकार महेन्द्रकुमार सिंह ने 'कविवर घनआनन्द' (मई, 1990) शीर्षक लघु-खंडकाव्य रचा है। माया शबनाम ने 'सुजान के आँगन' शीर्षक 'ऐतिहासिक' कहा गया उपन्यास लिखा है, जिसमें घनआनन्द को 'लोकप्रिय रूप' घनानंद नाम दिया गया है। पुस्तक वस्तुतः वास्तविक अथवा तथाकथित नारी-इतिहास में केन्द्रित है। 'प्रगतिशील' होना तो तय ही है।
2. समसामयिकों ने 'तुरकिनी सुजान' के प्रेम के कारण 'कायथ आनन्दघन महा हरामजादो हो', "डफरी बजावै, डोम ढाड़ी सम गावै, काहू तुरकै रिझावै, तब पावै झूठी नाम है" जैसे कटुतम प्रहार किए थे किन्तु प्रेम पद, जाति, धर्म सबसे अधिक शक्तिशाली होता है और कवि ने इसे प्रमाणित ही कर दिया। और वेश्याओं पर तो महाकवि केशवदास (राय प्रवीण) एवं कवि बोधा (सुजान) भी रीझे थे। संकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता प्रेम से सदा हारती रही है।

के आधार पर शिवसिंह, ग्रीअर्सन, राधाचरण गोस्वामी, मिश्रबन्धु, शुक्ल इत्यादि द्वारा नादिरशाह के आक्रमण में घनआनन्द की हत्या का त्रुटिसुधार भी किया' तथा तीन 'आनन्दघनों' का आधिकारिक विश्लेषण भी :

1. नन्दगौववासी आनन्दघन (सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध)।
2. जैन आनन्दघन (सत्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध)।
3. वृंदावनवासी आनन्दघन (अठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध)।

उन्होंने 'कम्पिलावाले सुखदेव मिश्र', 'दौलतपुरवाले सुखदेव मिश्र' और 'अंतर्वेदवाले सुखदेव मिश्र' अथवा 'हिम्मतसिंह के दरबारी सुखदेव मिश्र', 'भगवंतराय खींची के दरबारी सुखदेव मिश्र' और 'मर्दनसिंह के दरबारी सुखदेव मिश्र' के त्रिसुखदेववादी ईपत्-अनुसन्धानकर्ताओं के सदृश एक को तीन में बाँटने-काटने की निराधार त्वरा नहीं दिखलाई तथा ठाकुर प्रथम, ठाकुर द्वितीय और ठाकुर तृतीय का रचना-अनिश्चय भी ज्यों-का-त्यों-सा नहीं छोड़ा।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'घनआनन्द-ग्रन्थावली' में कवि की कृतियों को सुजानहित, कृपाकंद, वियोगवेलि, इश्कलता, यमुनायश, प्रीतिपावस, प्रेमपत्रिका, प्रेमसरोवर, ब्रजबिलास, सरसवसंत, अनुभवचंद्रिका, रंगवधाई, प्रेमपद्धति, वृषभानुपुर-सुपमावर्णन, गोकुलगीत, नाममाधुरी, गिरिपूजन, विचारसार, दानघटा, भावनाप्रकाश, कृष्णकौमुदी, धामचमत्कार, प्रियाप्रसाद, वृंदावन-मुद्रा, ब्रजस्वरूप, गोकुलचरित्र, प्रेमपहेली, रसनायश, गोकुलविनोद, ब्रजप्रसाद, मुरलिकामोद, मनोरथमंजरी, ब्रजव्यवहार, गिरिगाथा, पदावली, प्रकीर्णक, छंदाष्टक, त्रिभंगी, परमहंस-वंशावली अर्थात् 39 (उनचालीस) शीर्षकों में प्रस्तुत किया है, जिनमें काव्यदृष्टि से सुजानहित, कृपाकंद, प्रेमपत्रिका एवं प्रकीर्णक उल्लेखनीय हैं तथा रागदृष्टि से पदावली; शेष ग्रन्थ साधारण एवं लघु हैं किन्तु कवि को एक विशद भक्त सिद्ध करते हुए आचार्य शुक्ल की इस स्थापना का स्पष्ट खंडन कर देते हैं कि "इनकी अधिकांश कविता भक्तिकाव्य की कोटि में नहीं आएगी, शृंगार की ही कही जाएगी।" आचार्य शुक्ल का विद्यापति को भक्ति-वहिष्कृत करना इसी प्रकार की धक्काशाही का दूसरा नमूना है। सम्भवतः वे भक्ति के लिए जप-माला इत्यादि या कम-से-कम कंठी अप्रतिवार्य मानते हैं। उनका भक्ति-प्रमाण कृतित्व पर नहीं व्यक्तित्व पर आधृत था और वह भी बाह्य सज्जा पर। किन्तु घनआनन्द तो इस दृष्टि से भी अधिकारी थे। वे वृंदावन में रहते थे, निर्लिप्त हो चुके थे, भक्ति के पद-दोहे-कवित्व रचते थे। यदि बनीठनी (बणीठणी) के साथ रहने वाले नागरीदास भक्त थे तो एकाकी घनआनन्द क्यों नहीं? घनआनन्द का कृतित्व उनके वाद्यसंपन्न चित्र के साथ पूर्ण न्याय करते हुए उन्हें मीराँ एवं सूर के सदृश कवि-गायक सिद्ध करता है, भले ही वे पुरंदरदास एवं त्यागराज के स्तर के गायक-कवि न रहे हों। उनका कृतित्व आचार्य शुक्ल के इस आदेश का खंडन भी अनायास ही कर देता है कि "इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ।" घनआनन्द की ब्रजभाषा टकसाली और लक्षणासम्पन्न तो है, किन्तु प्रसाद-गुण में रखखान, लालित्य में आलम तथा प्रवाह में मतिराम एवं पद्माकर की ब्रजभाषा की समता नहीं कर सकती। आचार्य शुक्ल ने घनआनन्द की भाषा में प्राप्त लाक्षणिकता की बहुत प्रशंसा की है, जिसका अनुकरण आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने किया है। निस्सन्देह घनआनन्द ने भाषा में बहुत सुन्दर और नए प्रयोग किए हैं किन्तु इनके कारण काव्य का प्रसादगुण भी आहत हुआ है, माधुर्य-गुण भी।

महान् विरहकाव्य

घनआनन्द के काव्य की सर्वोपरि विशेषता उनका स्फीत एवं स्तरीय विरहकाव्य है जो अनुभूति-पक्ष की दृढ़ता एवं एकनिष्ठा तथा अभिव्यक्ति-पक्ष की परिष्कृति एवं अलंकृति में अप्रतिम है। घनआनन्द शास्त्रीयकालीन विरहकाव्य के शीर्षस्थ कवि हैं। निस्सन्देह अपने कृतित्व की समग्रता में केशव, देव, बिहारी, भूषण, मतिराम एवं पद्माकर घनआनन्द से श्रेष्ठतर कवि हैं क्योंकि घनआनन्द के पृथुल सृजन में अधिकांश साधारण हैं तथा अपनी श्रेष्ठतम सृष्टि में भी वे इन सुस्थापित महाकवियों की श्रेष्ठतम सृष्टि की समता नहीं कर सकते, तथापि विरहवर्णन में वे इन सबसे बहुत उत्कृष्ट सिद्ध होते हैं; यही नहीं, सूर, जायसी, मीराँ, हरिऔध, मैथिलीशरण एवं महादेवी के साथ समग्र हिन्दी-साहित्य के एक श्रेष्ठतम विरहकाव्यकार हैं। उन जैसा अटल एवं धृतिशाली विरही-कवि संसार में दूसरा नहीं मिलता, जिसने प्रेम के लिए, पद, सुख, सुविधा, सब कुछ त्याग दिया तथा प्रिया के कृतघ्न होने पर भी उसी के प्रति समर्पित रहा, उसे अजर-अमर कर गया—सबसे बढ़कर, मरने से पहले अपने खून से प्रिया की स्मृति का गीत

1. नादिरशाह का मथुरा पर आक्रमण इतिहासबद्ध नहीं है।

लिखता गया। घनआनन्द की तुलना में प्रसाद एवं महादेवी का प्रेम सैद्धान्तिक लगता है, हरिऔध एवं मैथिलीशरण का प्रयत्नज-यहाँ तक कि जायसी का अतिभावुकतापूर्ण। कीट्स का कामोष्मापूर्ण प्रेम घनआनन्द की अर्पणनिष्ठा के समक्ष नितांत किशोर प्रतीत होता है। गालिव की व्यसनवत् प्रेमविवशता घनआनन्द की प्रेमतपस्या की तुलना में बाज़ारू-सी लगती है। घनआनन्द प्रेम की पीर को पूरी तरह पचा गए थे। देव भी विष पीकर ही महादेव बन पाता है और महादेव वह हैं जो विष को त्यक्त न मानकर नीलकंठी शोभा धारण करता है। घनआनन्द ऐसी ही चिरंतन नीलकंठी शोभा धारण करते हुए प्रेमोपमान मीन को भी प्राणत्याग की कायरता के कारण हीन घोषित करते हैं :

हीन भएँ जल मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक, निरास है कायर त्यागत प्रानै॥
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै, जड़ मीत के पानि परे को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनंद जीव की जीवनि जान ही जानै॥

घनआनन्द का प्रेम जीवनवादी है, मरणवादी नहीं और यही उनको महान् व्यक्ति का गौरव प्रदान करता है—घनआनन्द का 'कवि' उनके 'व्यक्ति' को देखते छोटा पड़ जाता है क्योंकि उनका विरही-कवि उनके विशद-व्यक्ति का एक उद्गार मात्र है :

मरिबो बिसराम गनै वह तौ, यह बापुरी मीत-तज्यौ तरसै।
वह रूप-छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै वरसै॥
घरआनंद कौन अनोखी दसा मति आवरी वावरी है थरसै।
विछुरे मिलैं मीन पतंग दसा कहा मो जिय की गति को परसै॥

विरहशास्त्र का प्रत्येक विन्दु घनआनन्द के काव्य में विद्यमान है, क्योंकि ये विन्दु विरहनिःसृत ही हैं। पड़ूछतु हो या बारहमासा, एक अप्रत्यक्ष लगाव स्पष्टतः दृग्गत हो जाता है। सारे अनुभाव-संचारीभाव, जिनको संदर्भगत कामदशाओं में व्यवस्थित किया गया है, घनआनन्द के काव्य में अनायास ही विम्बित हो गए हैं। उनका महान् सृजन न रीतिबद्ध में बद्ध किया जा सकता है, न रीतिवद्ध में, न रीतिमुक्त में, क्योंकि उसमें ये सारे वर्ग समाहित दीखते हैं। उन्होंने परम्परा का निषेध कहीं नहीं किया किन्तु वे सर्वतः नवीन भी हैं क्योंकि उनका व्यक्तित्व परंपरा-विरोधी न होते हुए भी अस्मितानिष्पन्न था, क्योंकि एकांगी या पूर्वाग्रहबद्ध न था। मेघदूतम् की परम्परा का विकास द्रष्टव्य है जो हरिऔध के प्रियप्रवास के पवनदूत का एक प्रेरक विन्दु लग सकता है :

एरे वीर पौन! तेरो सवै ओर गौन, वीरी'तो सो ओर कौन, मनै ढरकोंहीं बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे-बड़े को समान घन आनंद-निधान सुखदान दुखियानि दै॥
जान उजियारे गुन-भारे अंत मोही प्यारे, अव हवै अमोही बैठे, पीठि पहिचानि दै।
विरह विधाहि मूरि, आँखिन मैं राखीं पूरि, धूरि तिन पायन की हा-हा नेकु आनि दै॥

घनआनन्द की प्रेम-दृढ़ता का यह अर्थ नहीं कि वे व्यथित नहीं हैं क्योंकि व्यथा का रस ही विरह का प्राण है और वे रोम-रोम से विरही हैं, सिद्धान्तवादी चिन्तक नहीं :

मुख चाहनि कों चित चाहत हैं, चख-चाहनि ठौरहि पावति ना।
अभिषालनि लाखनि भाँति भरे हियरा-मधि, साँस सुहावति ना॥
घनआनंद जान तुम्हैं विन यौं गति पंगु भई, मति धावति ना।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएँ विना सुधि आवति ना॥

उत्कृष्ट सौन्दर्य-चित्रण

सौन्दर्य कला का प्राण है। सौन्दर्य के बिना कला निष्प्राण हो जाएगी। घनआनन्द जैसा कुशल कलाकार सौन्दर्यचित्रण में कुशल कैसे न होता? उनके सौन्दर्यचित्रण में नखशिख से नायिका भेद तक की सारी शास्त्रीयता भी विद्यमान है। सुजान के सौन्दर्य ने उनके कवि को स्फुरित किया था। रूप का जादू कभी बिसरता नहीं :

चेटक रूप-सजीले सुजान! दर्ई बहुतै दिन नेकु दिखाई।
 कौंध में चौंध भरे चाख हाय! कहा कहाँ हेरनि ऐसे हिराई।।
 बातें विलाय गई रसना पै हियो उमड़्यो कहि एकौ न आई।
 साँच कि संभ्रम हो घनआनंद सोचनि ही मति जाति समाई।।

वस्तुतः सौन्दर्य दृग्गम्य है, तत्त्वतः अनुभूतिगम्यः और यही उसकी दिव्यता का स्पष्टीकरण है। नारी अर्द्धसत्य-अर्द्धस्वप्न है। नारी अर्द्धसुषुप्ति-अर्द्धतुरीय है। यहाँ 'संभ्रम' शब्द बहुत समीचीन नहीं लगता, किन्तु अर्द्ध-विवृत हो जाती है। घनआनन्द में देव की दार्शनिकता नहीं प्राप्त होती। वे देव के स्तर के कवि भी नहीं हैं। किन्तु वे गहन अनुभूति से प्रेरित अवश्य हैं।

घनआनन्द ने नायिकाभेद-निरूपण में अच्छी रुचि दिखलाई है। वासकसज्जा का विम्ब प्रस्तुत है :

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी लसति ललित लोल चख तिरछानि मैं।
 छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल, रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।।
 दसन दमक फैल हिण मोती माल होति, पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं।
 आनंद को निधि जगमगति छवीली बाल अंगनि अनंग रंग दुरि मुरि जान मैं।।

सुरतांतुसुख से तृप्त नायिका का यह मनोहारी चित्र रीतिबद्ध-रीतिमुक्त के वर्गीकरण की व्यर्थता का एक प्रमाण माना जा सकता है। न देव रीतिबद्ध हैं, न घनआनंद रीतिमुक्त :

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
 हंसि बोलन मैं छवि फूलन की वरषा उर ऊपर जाति है है।।
 लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावल द्वै।।
 अँग-अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अवै धर चवै।।

मनोहारी अलंकरण : विरोधाभास-सम्राट्

घनआनंद की कविता का अलंकरण उच्चकोटि का है। मिश्रबन्धु का अलंकृतकाल नामकरण केशव, सेनापति, बिहारी, भूषण, मतिराम, सुखदेव, देव, पद्माकर इत्यादि को भी आत्मसात् कर लेता है, घनआनंद इत्यादि को भी। अलंकृतकाल नामकरण न रीतिकाल नामकरण के सदृश रीतिसम्प्रदाय-सन्दर्भगत-भ्रमोत्पादक एवं अस्पष्ट है, न कलाकाल नामकरण के सदृश एकांगी, न शृंगारकाल नामकरण के सदृश संकीर्ण, यद्यपि शास्त्रीयकाल नामकरण बोझीला होने पर भी इन सब को आत्मसात् कर लेता है तथा अन्य संबद्ध आयामों की सूचना भी दे देता है। घनआनन्द की कविता मतिराम या सुखदेव की कविता से कम अलंकृत नहीं लगती। वैसे तो उन्होंने अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, परिकरांकुर इत्यादि अलंकारों का भी सम्यक् प्रयोग किया है किन्तु विरोधाभास के तो वे विशिष्ट कवि ही हो गए हैं। घनआनन्द को विरोधाभास-सम्राट् कहा जा सकता है :

1. जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह।
2. हो घनआनंद जीवन² मूल, दर्ई कित प्यासन मारत मोही³?
3. आमोही के मोह-मिठास ठगी।
4. नीर भीज्यौ जीव, तऊ गुड़ी लौं उड़्यौ रहै।
5. बदरा बरसै रितु मैं घिरि के नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं।
6. जब तैं निहारे घनआनंद⁴ सुजान प्यारे! तब तैं अनोखी आगि लगी रही चाह की।
7. झूठ की सच्चाई छाक्यौ त्यों हित⁵ कचाई पाक्यौ।

1. मोतियों की दोलड़ी माला। द्विभुज-मृणालकमल के लिए भी।
 2. जल। जिन्दगी। श्लेष।
 3. मुझे। मोहित करके। श्लेष।
 4. आनंदमय जलद। कवि। श्लेष।
 5. प्रेम। भलाई।

8. भसमी बिधा पै नित लंघन करति हैं।

9. राग-भरे हिय मैं बिराग मुरझनि है।

10. अंतर उदेग-दाह, आँखिन प्रवाह-आँसू।

“अंतर उदेग-दाह आँखिन प्रवाह-आँसू” ने ‘आँसू’ के कवि प्रसाद को प्रभावित किया है :

शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृगजल का

यह व्यर्थ साँस चल-चल कर, करती है काम अनिल का।

टकसाली ब्रजभाषा

घनआनन्द ने ब्रजभाषा का बड़ा ही खरा प्रयोग किया है। प्रोक्ति-लोकोक्ति से संपन्न उनकी मानक ब्रजभाषा रसखान की सहज ब्रजभाषा एवं मतिराम की सरस ब्रजभाषा का आनन्द तो नहीं दे पाती किन्तु कलात्मकता में विशिष्ट अवश्य है। देव और पद्माकर का सा प्रवाह घनआनन्द की ब्रजभाषा में नहीं मिला पाता, किन्तु लक्षणा के विलक्षण प्रयोग उसे गौरवशाली रूप प्रदान करते हैं। अतः आचार्य शुक्ल की तारीफों के पुल वाहवाहवादी आलोचना की झोंक मात्र में बने नहीं लगते, यद्यपि वस्तुवादी नहीं हैं, “अपनी भावनाओं के झूठे रूप-रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा वेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी। प्रयोग-वैचित्र्य दिखाने के लिए कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं :

(क) अरसानि गही वह वानि कछू, सरसानि सों आनि निहोरत है।

(ख) है है सोऊ घरी भाग-उघरी अनंदघन

सुरस बरसि, लाल देखिहौ हरी हमें।

(‘खुले भाग्यवाली घड़ी’ में विशेषण-विपर्यय)

(ग) उघरो जग, छाय रहे घनआनंद चातक ज्यों तकिए अब तौ।

(उघरो जग=संसार जो चारो ओर घेरे था वह दृष्टि से हट गया)।

(घ) कहिए जु कहा, अब मौन भली, नहीं खोवते जौ हमें पावते जू।

(हमें = हमारा हृदय)।

विरोधमूलक वैचित्र्य भी जगह-जगह बहुत सुंदर मिलता है जैसे—

(च) झूठ की सचाई छाक्यो, त्यों हित-कचाई पाक्यो,

ताके गुनगन घनआनंद कहाँ गनों!

(ख) उजरनि वसी है हमारी आँखियानि देखौ,

सुवस सुदेस जहाँ रावरे वसत हौ।

(ज) गति सुनि हारी, देखि थकनि मैं चली जाति,

थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।

(झ) तेरे ज्यो न लेखें मोहि मारत परेखो महा,

जान घनआनंद पै खोयबो लहत है।

इन उद्धरणों में कवि की चुभती हुई वचनवक्रता पूरी-पूरी झलकती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि की उक्ति ने वक्र पथ हृदय के वेग के कारण पकड़ा है।”

एक ओर ‘साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद’ में वैचित्र्य का विरोध और दूसरी ओर घनआनन्द की वैचित्र्य-प्रशस्ति। एक ओर छायावाद की उक्तिभंगिमाओं का परिहास और दूसरी ओर घनआनन्द की उक्तिभंगिमा-स्तुति! आचार्य शुक्ल की अधिकांश आलोचना तरंगवादी है; वह न तो सिद्धान्तवादी है और न वस्तुवादी। घनआनन्द के उक्त उद्धरण क्लिष्ट तो हैं ही, प्रवाह-विपन्न भी है। संसार की महानतम कविता न क्लिष्ट है, न प्रवाह-विपन्न।

किन्तु घनआनन्द ने सरल-सरस एवं ललित-कलात्मक ब्रजभाषा के प्रयोग में रसखान, मतिराम और आलम का सा सामर्थ्य भी प्रदर्शित किया है, इसमें सन्देह नहीं। दो उद्धरण भी पर्याप्त होंगे :

1. मूरति सिंगार की उजारि छवि आछी भाँति दीठि-लालसा के लोयननि लै-लै आँजिहों ।
रति-रसना-सवाद पाँवड़े पुनीतकारी पाय चूमि-चूमि कै कपोलनि सों माँजिहों ।।
जान प्यारे-प्रान अंग-अंग रुचि-रंगनि मैं वोरि सब अंगन अनंग-दुख भाँजिहों ।।
कव घनआनंद ढरौही बानि देखैं, सुधा हेत मन-घट दरकनि सुठि रँजिहों ।।
2. कारी कूर कोकिल कहाँ कौ बैर काढ़ति री, कूकि-कूकि अवही करेजो किन कोरि लै ।
पैड़ परे पापी ये कलापी निसि-द्यौस ज्यों ही, चातक रे धातक है तुहू कान फोरि लै ।।
आनंद के घन प्रानजीवन सुजान बिना जानिकै अकेली सब घेरो दल जोरि लै ।
जो लौं करैं आवन विनोद बरसावन वे तौं लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ।।

घनआनन्द ने अनेक छन्दों का सफल प्रयोग किया है। उनके कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई, छप्पय, पद इत्यादि ब्रजभाषा के आयामों को स्फीत करने में सफल सिद्ध होते हैं।

भक्तिभावना

घनआनन्द जितने बड़े कवि हैं, उतने ही बड़े भक्त। यद्यपि वे निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैतवादी सम्प्रदाय के सम्बद्ध थे तथा प्रायः राधा को वरीयता प्रदान करते थे जो संख्यभक्ति है, तथापि उनके काव्य में दास्यभक्ति एवं शान्तभक्ति के शत-शत निदर्शन भी प्राप्त हो जाते हैं। उनकी भक्ति के आयाम पर्याप्त स्फीत हैं। पदावली की 1057 लघुरचनाएँ तो समग्रतः भक्ति-रचनाएँ हैं ही, कृपाकन्द के अनेक पद एवं छन्द भी भक्ति से ऊभचूभ हैं, प्रकीर्णक में भी यत्र-तत्र भक्ति के दर्शन होते हैं तथा वियोगवेलि, इश्कलता, यमुनायश, प्रेमपत्रिका, ब्रजविलास, नाममाधुरी, कृष्णकौमुदी इत्यादि-इत्यादि लघु कृतियाँ भी भक्तिकाव्यगत ही हैं। यह सत्त्व है कि घनआनन्द का श्रेष्ठतम सर्जन शृंगारसगत है, किन्तु उनका भक्तिगत-सर्जन भी साधारण नहीं है तथा परिमाण में तो वह बहुत अधिक पड़ जाता है। घनआनन्द राग से अतिराग की ओर उन्मुख हुए थे। उनकी प्रतिभा का ऋतुराज रागोत्पन्न है। किन्तु उनकी प्रतिभा का अतिरोगोत्पन्न पावस सर्वथा सरस है। खेद है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भ्रमोत्पादक स्थापना, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र की शुक्लोपजीविता एवं किसी प्रस्थानालोचक के अभाव में घनआनन्द के भक्तिकाव्य का सम्यक् प्रकाश नहीं पड़ सका। 'घनआनन्द का भक्त-रूप' अथवा 'घनआनन्द का भक्तिकाव्य' उच्चस्तरीय शोध का विषय है। ब्रजपरम्परा में वे एक महान् भक्त के रूप में सदैव सम्मानित रहे हैं। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. मो से अनपहचान को पहचानै हरि कौन ।
कृपाकान-मधि-नैन ज्यों त्यों पुकार-मधि मौन ।।
2. जौ लौं जगै न भूल तौ लौं सोवै सुरति-सुख ।
वही होय अनुकूल तौ भूलै सुख-सुधि सवै ।।
3. चलनि रही मँडराय रहनि कौं चलनि चलयौ तू ।
छल सो जीवन देखि तऊ तिहि छलनि छल्यो तू ।।
वृथा बाद पचि मर्यो, सबद-सोधौ न धर्यौ तू ।
अंत गहैगो मौन कह्यौ कवहूँ न कर्यो तू ।।
अजौं चेति जड़ जीव किनि कित आयौ जैवो कहाँ ।
चित चलाय नित है अचल घनआनंद चलिवो जहाँ ।।
4. फीके सवाद परे सब ही अव ऐसो कछू रसपान कृपा को ।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहि मिल्यो सनमान कृपा को ।।
रीझनि लै भीज्यौ हियरा घनआनंद स्याम-सुजान-कृपा को ।।
मोल लियौ विन मोल, अमोल है प्रेम-पदारथ-दान कृपा को ।।

5. बृंदावन-रानी श्री राधा । मोहन-मनमानी श्री राधा ।।
जय नित्यविहारिनि श्री राधा । ब्रजसुख-विस्तारिनि श्री राधा ।।
कीरति की कन्या श्री राधा । सब ही विधि धन्या श्री राधा ।।
जय रासविलासिनि श्री राधा । नित कुंज-निवासिनि श्री राधा ।
हरि-उर-वनमाला श्री राधा । गुन रूप-रसाला श्री राधा ।।
6. गोपाल तुम्हरेई गुन गाऊँ ।
करहु निरंतर कृपा कृपानिधि विनती करि सिर नाऊँ ।
टरत न मोहनि मूरति हिय तें देखि-देखि सुख पाऊँ ।
आनंदघन हौ बरसौ-सरसौ प्रान-पपीहा ज्याऊँ ।।
7. जव-जव धर्म-गिलानि को होत अवनि संचार ।
तव-तव निज बपु धरि करें जगत-जीव-निस्तार ।।

बोधा

शास्त्रीयकाल की कविता में आत्मपरक प्रेमकाव्य के रचयिताओं में बुद्धिसेन (1747-1803 ई.)¹, उपनाम बोधा, की भी अच्छी ख्याति है। यह तुलसी-जन्मस्थान राजापुर (बाँदा) के निवासी थे। यद्यपि इनका 'विरह-वारीश' वस्तुतः 'माधवानल कामकंदला' पर आश्रित है तथा 'इश्कनामा' (विरह सुभान दम्पति विलास) की कविता आलम और घनआनंद से बहुत प्रभावित है तथापि जिन्दगी की मुगलिया रंगीनी के कारण यह भी काफ़ी महशूर हो गए। इनकी कविता में उर्दू-जैसी इश्कबाज़ी दिखाई दे जाती है। पन्ना दरबार की सुभान वेश्या पर रीझने के कारण निर्वासन, निर्वासित दशा में भी एकनिष्ठप्रेम एवं तज्जन्य सृजन, पुनरागमन एवं सुभान-प्राप्ति की कथा ने इनके प्रति सम्मान का भाव भी जागृत किया। प्रसिद्ध ग्रन्थावली आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'बोधा-ग्रन्थावली' भी प्रस्तुत की है। डॉ. मनोहरलाल गौड़ आचार्य मिश्र की ग्रन्थावलियों पर आधृत आलोचक के रूप में ख्याति होने योग्य हैं, जिन्होंने इनकी कृतियों की भी अच्छी प्रशंसा की है। यद्यपि इनकी कविता में आलम की सहज तन्मयता एवं उनका भाषालालित्य, घनआनंद की गहनता एवं उनका शिल्प, ठाकुर (बुदेलखंडी) का इतिहासबोध एवं क्रांतस्वरूप नहीं प्राप्त होता, तथापि अपनी प्रेमनिष्ठा एवं सरलोद्गार में यह आकर्षक अवश्य हैं :

1. रितु पावस स्याम घटा उनई, लखिके मन धीर धिरातो नहीं ।
पुनि दादुर मोर पपीहन की सुनिके धुनि चित धिरातो नहीं ।।
जबते बिछुरे कवि बोधा हितू तवते उरदाह सिरातो नहीं ।
हम कौन सों पीर कहें अपनी, दिलदार तौ कोऊ दिखातो नहीं ।।
2. "कबहू मिलिगो!" "कबहू मिलिबो!" यह धीरज ही में धरैबो करै ।
उर तें कढ़ि आवै, गरें ते फिरै मन की मन ही में सिरैबो करै ।।
कवि बोधा न चाँड़ सरी कबहू, नितही हरवा सो हिरैबो करै ।
सहते ही बनै, कहते न बनै, मन-ही-मन पीर पिरैबो करै ।।

कवि बोधा के "यह प्रेम को पंथ कराल महा, तरवारि की धार पै धावनो है", "लोक की भीति डेरात जो मीत तौ प्रीति के पैड़े पुरै जानि कोऊ", "पीर हमारी दिलंदर की हम जानत हैं वह है जाननहारी", "जान मिलै तौ जहान मिलै, नहिं जान मिलै तौ जहान कहाँ को?", "आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिए" जैसे उत्कृष्ट अर्थान्तरभ्यास अलंकार के सुंदर प्रयोग बहुत प्रसिद्ध रहे हैं।

1. 'सरोज' के अनुसार जन्म 1804 वि., 'विनोद' के अनुसार रचनाकाल 1860 वि. तक। मिश्रबन्धु ने बोधा बुदेलखंडी एवं बोधा फीरोजावादी को एक कवि माना है, जो युक्तियुक्त नहीं लगता क्योंकि दोनों की शैली में अन्तर है।

ठाकुर (तृतीय)

शास्त्रीयकालीन कविता अधिकतः वस्तुवादी थी, जैसाकि अभिधान से ही स्पष्ट है। किन्तु इस काल के कुछ कवियों ने आत्मवादी सृजन भी किया है। यह सृजन प्रेमकाव्य है जो प्रेमी कवियों द्वारा रचा गया है। आलम की शेख रँगरेज़िन, घनआनन्द की सुजान और बोधा की सुभान के कारण इस प्रेमकाव्य का आत्मपरक रूप स्पष्ट हो चुका है। ओरछा (वुंदेलखंड) के ठाकुर तृतीय (1766-1823 ई.) भी ऐसे ही प्रेमी कवि थे, यद्यपि इनकी प्रेमिका का नाम ज्ञात नहीं है। इनके पुत्र दरियावसिंह 'चातुर' एवं पौत्र शंकरप्रसाद भी कवि थे। जैसे राजापुर (बाँदा) में तुलसी, बोधा इत्यादि कई कवि उत्पन्न हुए, वैसे ही ओरछा में केशव, ठाकुर (तृतीय) इत्यादि। यह कायस्थ थे, जिनका पूरा नाम सम्भवतः ठाकुरप्रसाद या ठाकुरदत्त था। हिन्दी के अनन्य सेवी लाला भगवानदीन 'दीन' ने 'ठाकुर-ठसक' के द्वारा इनको प्रतिष्ठित किया, यद्यपि वे भी असनी (फ़तेहपुर) के दो भिन्नकालीन ब्राह्मण (भट्ट) कवियों के कृतित्व के साथ इनके कृतित्व के गड़ड़मगड़ड़ से बच नहीं सके। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में भी "यह चारिहु ओर उदो मुखचंद" एवं "पिय प्यार करें जेहि पै सजनी तेहि सी सब भाँतिन सैयत है" छन्द असनी वाले ठाकुर (प्रथम) के जैसा कि नाम-प्रयोग एवं भाषा से स्पष्ट है। कवि ठाकुर की विख्यात महाकवि पद्माकर से बहुत चलती थी, जो बाँदा के थे तथा वहाँ के धूर्त राजनीतिज्ञ हिम्मतबहादुर पर 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' के रचयिता भी। अतः ठाकुर की हिम्मतबहादुर से भी नहीं पटी। ठाकुर की कविता में प्रेम की तन्मयता तथा समर्पण-वृत्ति की प्रभावी अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। यद्यपि अपनी अनूठी तन्मयता एवं अपने अप्रतिम भाषा-लालित्य में आलम तथा अपनी गहन एकनिष्ठा एवं उल्लेख्य स्फीति में घनआनंद का स्तर ठाकुर से बहुत ऊँचा है, तथापि आत्मपरक प्रेमकाव्यकारों में प्रगतिशीलता एवं मौलिकता के कारण इनका स्थान बोधा से श्रेष्ठतर है। "विधि के वनाए जीव जेतें हैं जहान वीच, खेलत फिरत हैं तिन्हें खेलत फिरन देव" जैसे आज सृजन-काल से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण उद्गारों में इनकी जीवनदया मुखरित हुई है। प्रेम की व्यावसायिकता के विरोधी होने के कारण ठाकुर प्रिया के संवेदन तक को महान् वरदान मानते हैं :

वा निरमोहिनी रूप की रासि जऊ उर हेतु^१ न ठानति हैहै।

बारहि-बार बिलोकि घरी-घरी, सूरति तौ पहिचानति हैहै॥

ठाकुर या मन को परतीति है जो पै सनेह न मानति हैहै।

आवत हैं नित मेरे लिए, इतनों तो विसेष कै जानति हैहै।^२

ठाकुर क्रांतदर्शी कवि थे, रूढ़िवादी नहीं, जैसाकि प्रस्तुत प्रसिद्ध छन्द से स्पष्ट है (यद्यपि इसके मूल में पद्माकर के प्रति सम्भवतः हीनभावजन्य द्वेष भी विद्यमान है तथापि इसका ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि यह तत्कालीन पिष्टपेषण-चर्चितचर्वण के प्रति विरोध का उद्गार है, नवयुग-सूचकवत् है और, हीनभाव प्रतिभा के बल से सृजन का प्रेरक बन जाता है, जैसाकि कवीर इत्यादि में स्पष्ट है) :

सीखि लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन, सीखि लीन्हों जस और प्रताप को कहानो है॥

सीखि लीन्हों कल्पवृच्छ, कामधेनु, चिन्तामणि, सीखि लीन्हों मेरु और कुबेर गिरि आनो है॥

ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात, याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत वानो है।

ढेल-सो वनाय आय मेलत सभा के बीच, लोगन कबित कीबो खेल करि जानो है॥

7. सूफ़ी-काव्य

शास्त्रीयकाल में सूफ़ीकाव्य की रचना परिमाण की दृष्टि से सर्वाधिक हुई। यद्यपि पुनरुत्थानकाल के जायसी एवं मंझन के स्तर का कोई कवि नहीं हुआ, तथापि उस्मान कृत चित्रावली (1613 ई.), शेख नबी कृत ज्ञानदीप (1619 ई.), कासिमशाह कृत हंस-जवाहिर (1736 ई.), नूरमोहम्मद कृत इंद्रावती (1744 ई.) तथा अनुराग-बाँसुरी (1764 ई.), शेख निसार कृत यूसुफ़-जुलेखा (1790 ई.) जैसी सुंदर से साधारण रचनाएँ तक रची गईं। शाहजहाँ के राज्यकाल (1627-58 ई.) में सूरदास नामक कवि ने सूफ़ियाना अंदाज़ में नल-दमयंती

1. मिथुबन्धु एवं तदनुसार शुक्ल ने जन्म 1823 वि. में माना है, रचनाकाल 1870 वि. तक। 'हिन्दी साहित्य कोश' में डॉ. जगदीश गुप्त ने जन्म 1766 ई. (1823 वि.) एवं मृत्यु 1824 ई. (1880 वि.) लिखा है।

2. प्रेम। प्रीति।

3. छन्द की प्रामाणिकता संदिग्ध है। यह ठाकुर द्वितीय का भी हो सकता है।

काव्य रचा जिसे आ. शुक्ल ने 'अत्यन्त निकृष्ट' माना है। दुखहरनदास नामक एक अन्य कवि का उल्लेख स्व. डॉ. भगीरथ मिश्र ने किया। भगीरथ जी ने केस कवि, हंस कवि, बोधा, जनकुंज, गणपति एवं दामोदर द्वारा रचे गए 'शुद्ध प्रेमाख्यानों' की चर्चा की है किन्तु इन्हें सूफ़ी काव्य नहीं माना जा सकता। उन्होंने जहाँगीर, शाहजहाँ एवं औरंगज़ेब के कालों तक प्रसरित सूफ़ीकाव्य-रचनाकार जान कवि को 70 ग्रन्थों का प्रणेता बतलाया है जिनमें कनकावती, कामलता, मधुकर-मालती एवं छीता प्रमुख हैं। सूफ़ीकाव्यरचना ईसा की वर्तमान (वीसवीं) शताब्दी तक होती रही। ख्वाज़ा अहमद ने नूरजहाँ (1909 ई.) शेख रहीम ने भाषा-प्रेमरस (?), कवि नसीर ने प्रेमदर्पण (1917 ई.) रचा। किन्तु प्रमुख सूफ़ी-कवि मुल्ला दाऊद, कुत्बन शेख, मलिक मोहम्मद जायसी, मंज़न एवं उस्मान ही हैं। नूरमोहम्मद मतान्ध हैं। अवधी भाषा, चौपाई-दोहा छन्द, सौन्दर्यचित्रण, विरह-वर्णन एवं मिलन-चित्रण की दृष्टि से लगभग 600 वर्षों तक प्रसरित सूफ़ी-कविता में एकरूपता का अतिरिक्त प्राप्त होता है, यह अवश्य है कि दाऊद की पुरानी-अवधी, जायसी की खालिस-अवधी, मंज़न, उस्मान और नूरमोहम्मद की संस्कृतनिष्ठ अवधी रूपों में अस्मिता के दर्शन होते हैं जो स्वाभाविक भी है क्योंकि दो एकदम एक नहीं होते—प्रकृति पुनरुक्ति नहीं करती। बाह्य एकता के अतिरिक्त इश्क़हक़ीकी की आन्तरिक एकता भी सूफ़ी-कविता में बहुत मिलती-जुलती है, यद्यपि दाऊद ने दर्शन का संकेत मात्र किया है, कुत्बन में यह संकेत कुछ-कुछ व्यापक है, जायसी में वह हठयोग-संपृक्त एवं गहनतर है, मंज़न एवं उस्मान में अद्वैतरसपरक, नूरमोहम्मद में सैद्धान्तिक मात्र एवं प्रतीक-प्रधान। साहित्यिक दृष्टि से सूफ़ी-कविता सौन्दर्यचित्रण एवं विरहवर्णन में विशिष्ट है। भाषा की भंगिमा एवं शैली के चमत्कार में कोई सूफ़ी कवि केशव की समता नहीं कर सकता। किन्तु अनुभूति की तरलता में जायसी का स्थान स्थिर हो चुका है। अन्य सूफ़ी कवियों में कोई विहारी, भूषण, मतिराम, सुखदेव, देव, घनआनन्द या पद्माकर की समता नहीं कर सकता। हिन्दी के सूफ़ी कवियों में केवल जायसी ही हैं किन्तु उनकी साम्प्रदायिक एवं एकांगी प्रतिभा अपने समग्र में केशव की उदात्त एवं धर्मनिरपेक्ष बहुआयामी प्रतिभा की समता नहीं कर पाती और जहाँ तक प्रभाव का सम्बन्ध है, केशव केवल तुलसी, सूर, मीरा एवं कवीर से ही पीछे हैं—अन्य सब से स्पष्टतः आगे। शास्त्रीयकालीन सूफ़ीकाव्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

रितु वसंत नौतन बन फूला। जहँ-तहँ भौर कुसुम-रँग भूला।।
आहि कहाँ सो भँवर हमारा। जेहि बिनु वसंत उजारा।।
रात बरन पुनि देखि न जाई। मानहुँ दवा दहूँ दिसि लाई।।
रतिपति दुरद रितुपती बली। कानन देह आइ दलमली।।
(उस्मान)

अजहूँ कली फूल नहिं भई। रूप-बास तौरु जग छई।।
सादे वसन सेत ही रंग। तामैं बदन कमल मधि गंग।।
सेत वसन, उज्जल वदन, देखत बढ़त अनंद।
कहत जान सोहत सुभग मनहुँ चाँदनी चंद।।
(जान-'छीता' में)

मुहमदसाह' दिली सुलतानू। का मन मुन ओहि केर खानू।।
छाजै पाट छत्र सिर ताजू। नावहिं सीस जगत के राजू।।

1. यही वही बला का कामुक एवं वज्र विलासी मोहम्मदशाह रंगीला है, जिसके समय में ग़द्दर सफ़्दरजंग के बुलाने से नादिरशाह ने दिल्ली लूटी थी, क़त्लेआम किया था, सारा भारत अनेक राज्यों में बंट गया था! रंगीला होली में कन्हैया बनता था। इसे शीशा देखने का बहुत शौक था। किन्तु यह शास्त्रीय संगीत का मर्मज्ञ था, उर्दू के पहले शायर बली का मित्र था। हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने इसकी जो स्तुति की है, वह विचित्र है। भारतेन्दु ने इसकी निन्दा ठीक ही की है। वैसे, मुसलमान साहित्यकार मोहम्मद, अबू बक्र, उमर, उस्मान, अली अतिस्तुति तो करते ही हैं, सुल्तानों, बादशाहों, अन्यों की प्रशंसा में भी धरती और आसमान के कुलावे एक कर देते हैं। सारा इस्लामी इतिहास और साहित्य न कहीं वस्तुपरक है न बौद्धिक। उदाहरणार्थ बहादुरशाह और फूल वालों की सेर नामक उर्दू पुस्तक में मिर्ज़ा फ़रहत अल्लाह वेग का मुग़लकालीन वस्तुओं का वर्णन अनमोल है, किन्तु ऐश्वर्य-चित्रण कल्पात्मक, क्योंकि इस जमाने में दाने-दाने के लाले पड़े थे, पेंशन के लिए अंग्रेजों से प्रार्थनाएँ की जाती थीं, याचक प्रार्थना-सन्दर्भ में इंग्लैण्ड तक दौड़े जाते थे जिनमें अज़ीमुल्ला और राममोहन राय विशिष्ट हैं। राजा साहब तो वहीं दिवंगत भी हो गए थे। ऐयाश ग़ालिब भी पेंशन का राना रते रहते थे। इस पुस्तक में मोहम्मदशाह 'रंगील' के भी भड़कीले ऐश्वर्य-चित्रण किए गए हैं। अकबर द्वितीय और बहादुरशाह इत्यादि वस नामनिहाल बादशाह थे, किन्तु वर्णन अकबर या शाहजहाँ के ऐश्वर्य को भी मात करने वाले हैं। आज भी जब 'भदरसा'-छाप लोग मक्का की तारीफ़ के पुल बाँधते हैं तब बार-बार दोहराते हैं : राष्ट्रपति-भवन कुछ नहीं है! वैसे, जनता तो मक्का के दंगो, भगदड़ों, काण्डों में मरने वालों की भारी संख्या मात्र पढ़ पाती है! अत्यधिक एवं निराधार आत्मस्तुति कुंठा का उद्गार बनकर चुक जाती है।

रूपवंत दरसन मुँह राता । भागवंत ओहि कीन्ह विधाता ॥
 दरबवंत औ धरम मैं पूरा । ज्ञानवंत औ खड़ग मैं सूरा ॥

(क़ासिमशाह¹)

कथा जो एक गुप्त महँ रहा । सो परगट उघारि मैं कहा ॥²
 हंस-जवाहिर विधि औतारा । निरमल रूप सो दर्ई सँवारा ॥
 बलख नगर बुरहान सुल्तानू । तेहि घर हंस³ भए जस भानू ॥
 आलमसाह चीनपति भारी⁴ । तेहि घर जनमी जवाहिर वारी ॥
 तेहि कारन वह भएउ बियोगी । गएउ सो छाँड़ि देस होइ जोगी ॥
 अंत जवाहिर हंस घर आनी । सो जग महँ यह गयउ बखानी ॥
 सो सुनि ज्ञान-कथा मैं कीन्हा⁵ । लिखेउँ सो प्रेम रहै जग चीन्हा ॥

(क़ासिमशाह)

करौं मुहम्मदसाह बखानू । है सूरज देहली सुलतानू ॥⁶
 धरमपंथ जग बीच चलावा । निवर न सवरे सों दुख पावा ॥
 बहुतै सलातीन जग करे । आइ सहास वने हैं चरे ॥
 सब काहू पर दाया धरई । धरम सहित सुलतानी करई ॥

(नूरमोहम्मद-‘इन्द्रावती’ में)

मन-दृग सों इक राति मँझारा । सूझि परा मोहि सव संसारा ॥⁷
 देखेउँ एक नीकि फुलवारी । देखेउँ तहाँ पुरुष औ नारी ॥
 दोउ मुख सोभा बरनि न जाई । चंद-सुरुज उतरे भुईं आई ॥
 तपी एक देखेउँ तेहि ठाऊँ । पूछेउँ तासों तिन्हकर नाऊँ ॥
 कहा अहैं राजा औ रानी । इन्द्रावति औ कुँवर गियानी ॥

आगमपुर इन्द्रावती, कुँवर कलिंजर राय ।

प्रेम हुते दोउन्ह कहँ दीन्हा अलख मिलाय ॥

(नूरमोहम्मद-‘इन्द्रावती’ में)

अहमदशाह अब्दाली को आमन्त्रण देकर पानीपत की तीसरी लड़ाई (1761 ई.) करानेवाले फ़क्रौर वली (वलीउल्लाह) को सांप्रदायिकता का प्रपितामह कहा जा सकता है (सर सैय्यद अहमद ख़ाँ पितामह और सर मोहम्मद इक़्बाल पिता हैं)। इसने जो ज़हर उगला उसे लाखों मुसलमान फ़िरकापरस्त हो गए। ‘क़ायदे-आज़म’ कहा जानेवाला मिस्टर मोहम्मद अली जिन्ना (जिन्नाह) वली, अहमद और इक़्बाल की फ़स्ल काटने में कामयाब हुआ—पाकिस्तान का निर्माता बना। नूरमोहम्मद पर वली की सांप्रदायिकता का बल छाया लगता है। ‘अनुराग-बाँसुरी’ (1764 ई.) में यह पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों की हार के बावजूद हिन्दू-वर्चस्व से संव्रस्त एवं कुँठित हुआ लगता है। सांप्रदायिक दृष्टि से नूरमोहम्मद परम-सांप्रदायिक इक़्बाल का प्रेरक माना जा सकता है—वैसे, हाली के ‘मुसद्दस’ से भी इक़्बाल प्रेरित हुआ लगता है। उस समय उर्दू या रेख़्ता महज़ नाम-निहाल थी और जो थी वह हिन्दी से दूर न थी अतः मतान्ध नूरमोहम्मद हिन्दी में लिखने के लिए भी पछताया है (जिस पत्तल में ख़ाया उसी में छेद किया)। इसकी मतान्धता एवं हीनभावना के तीन चित्र देखिए :

1. डॉ. मोहम्मद अख़्लाक़ (लखनऊ) का ‘क़ासिमशाह: व्यक्ति और काव्य’ शोधकार्य पठनीय है।
2. कल्पित कथा का संकेत। उस्मान ने भी निजंघरी कथा गाई है। किन्तु वे अच्छे कवि हैं।
3. बाप का नाम बेटे के नाम से समाजतः भिन्नवर्गीय है।
4. कवि को चीनी नाम-प्रणाली तक का ज्ञान नहीं है।
5. प्रात्ययिकता एवं टांशनिक्ता का ठप्पा लगाने के लिए ही यह लिखा है। कथा स्पष्टतः कल्पित है।
6. वही टाक के तीन पात! शास्त्रवस्तु की स्तुति का रुढ़िपालन मात्र।
7. इलहामी आलम!

1. जानत है वह सिरजनहारा। जो किछु है मन मरम हमारा।।
हिन्दू-मग महुँ पाँव न राखेउँ। का जो बहुते हिंदी भाखेउँ।।
मन इसलाम मिरिकलै भोजेउँ। दीन जेवरी करकस भोजेउँ।।
जहँ रसूल-अल्लाह पियारा। उम्मत को मुक्तावनहारा।।
तहाँ दूसरो कैसे भावै। जच्छ, असुर, सुर काज न आवै।।
2. बहुत देवता को चित धरै। वहु मूरति औंधी होइ परै।।
बहुत देवहरा ढाहि गिरावै। संखनाद की रीति मिटावै।।
3. कामयाव यह कौन जगावा। फिर हिंदी भाखै पर आवा।।
छाँड़ि फ़ारसी कंद नवातैं। अरुझाना हिंदी रस-बातैं।।

प्रमुख कवि

उस्मान

हिन्दी की सूफ़ी कविता में उस्मान (उपनाम 'मान') को एक निश्चित महत्व प्राप्त है जो गाज़ीपुर² के निवासी थे तथा जिन्होंने 1613 ई. में 'चित्रावली' नामक प्रेमकाव्य की रचना की। चित्रावली अनेक कारणों से एक महत्वपूर्ण काव्य है, जिनमें एक निजकथा ('कथा-एक मैं हिए उपाई', 'कथा मान कवि गाएउ नई') है क्योंकि अन्य सूफ़ी प्रेमकाव्य पारम्परिक कथाओं पर आधारित रहे हैं, दूसरा हिन्दी-साहित्य के प्रथम अवसर पर अंग्रेज़ों का उल्लेख (यद्यपि ग्रेट ब्रिटेन या इंग्लैण्ड का नाम 'वलंदीप' दिया हुआ है) जो उस फिरंगी जाति के अर्थलोभ एवं मांसप्रधान जीवन के प्रति घृणा से आपूर्ण है :

वलंदीप देखा अँगरेजा। तहाँ जाइ जेहि कठिन करेजा।।

ऊँच नीच धन संपति हेरा। मद वराह³ भोजन जिन्ह केरा।।

'चित्रावली' को प्रकाश में लाने का श्रेय बाबू अमीरसिंह को है, जिन्होंने 1904 ई. में काशी-नरेश के अमूल्य पुस्तकालय में कैथी लिपि में इसकी पाण्डुलिपि देखी तथा काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इसका सारांश प्रकाशित कराया, यद्यपि प्रस्थानग्रन्थप्रस्तेता श्री जगन्मोहन वर्मा थे जिनके द्वारा संपादित ग्रन्थ 1912 ई. में प्रकाशित हुआ। कालान्तर में श्री सत्यजीवन वर्मा, श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, डॉ. यश गुलाटी, डॉ. निरंजनलाल शर्मा इत्यादि ने इसके शैक्षिक प्रचार-प्रसार की दृष्टि से प्रशस्य कार्य किया।

उस्मान चिश्ती संप्रदाय के सूफ़ी थे। वे सुशिक्षित कवि थे। (अच्छर चारि पढ़ै हम सिखा) जैसाकि चित्रावली से ही स्पष्ट है। संगीत, कामशास्त्र, लोकजीवन के व्यक्त ज्ञान से स्पन्दित काव्यसृजन में उनका लक्ष्य अमरता⁴ था :

वचन समान सुधा जग नाही।

जेहि पाए कवि अमर रहहीं।।

'चित्रावली' की रचना मसनवी⁵—शैली की ही है, जिसमें अल्लाह, मोहम्मद, चार बड़े खलीफ़ा अबू बक्र, उमर, उस्मान और अली, शाहेवस्त, कवि-संप्रदाय-संकेत, गुरु, कवि की निजचर्चा प्रभृति से आरम्भ होता है। दाऊद, कुतबन, जायसी और मंज़न ने चन्दायन, मृगावती, पदमावत और मधुमालती का आरम्भ ऐसा ही किया है। परतर्वी कवियों ने भी इस परम्परा का पालन किया है। सूफ़ी प्रेमकाव्यों के शीर्षक नायिकाधृत होते हैं जिसका कारण नायिका का परमात्मा-प्रतीक होना है, यद्यपि इस प्रतीक-योजना की गम्भीरता का आद्यंत निर्वह नहीं हो पाता। चित्रावली की एक विशिष्टता, जो शीर्षक की श्लिष्टता में भी व्यजित है, नायक सुजान के मन में चित्र-माध्यम से प्रेमसंचार है, जो अपना चित्र बनाकर नायिका चित्रावली के चित्र के साथ लगा देता है जिससे उसमें भी तद्वत् प्रेमसंचार हो जाता

1. 'हिन्दी' शब्द अठारहवीं सदी में भी प्रचलित था।

2. अतिरंजनाप्रेमी होने के कारण उस्मान ने गाज़ीपुर की अतिप्रशस्ति तो की ही है, वहाँ गंगा, यमुना एवं गोमती का संगम भी करा दिया है।

3. मुसलमान शूकरमांस को 'हराम' मानते हैं।

4. "काव्यं यशसे..." इत्यादि (मम्मट)।

5. फ़ारसी-प्रबन्धकाव्य।

है। चित्रावली में नायक के भ्रमण-सन्दर्भ में सागरगढ़ के राजा सागर की पुत्री कौलावती से विवाह-वैवश्य का उपवृत्त भी प्राप्त होता है। सुजान नेपाल के राजा धरणीधर का पुत्र है, चित्रावली रूपनगर के राजा चित्रसेन की परमसुन्दरी पुत्री। सूफ़ी प्रेमकथाओं में नेपाल का प्रयोग उस्मान की विशिष्टता है। आगे चलकर 'जोगी ढूँढ़न खंड' में काबुल, बदख़्शान, खुरासान, रूम, साम, मिस्र, इस्तंबोल, सिंहलद्वीप, वलंदीप (ब्रिटेन) प्रभृति का उल्लेख भी उनकी वैश्विक रुचि का परिचायक है। चित्रावली की अपूर्व सुखान्तता भी इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। मुल्ला दाऊद ने अपनी ओर से 'चन्दायन' को सुखान्त रखा है। (प्रक्षेपों की बात और है)। मंज़न ने 'मधुमालती' को सुखान्त रखा है। कुत्वन कृत 'मृगावती' एवं जायसी कृत 'पदमावत' दुखान्त हैं।

उस्मान पर जायसी का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है जो नशशिख-वर्णन, वारहमास से युक्त विरहवर्णन इत्यादि से प्रेमदर्शन-निरूपण तक स्पष्ट देखा जा सकता है। अश्लीलता का दोष तो जायसी तक पर लगाया जा सकता है। उस्मान मम्मट की "क्वचित् अश्लीले गुणे" स्थापना की सीमा का अतिक्रमण कर गए हैं। मध्यकाल की अतिप्राकृतिक-अतिरंजित सूफ़ी प्रेमकथा-पद्धति की विचित्र पराकाष्ठा के दर्शन चित्रावली में होते हैं। किन्तु सौन्दर्य, प्रेम एवं विरह के वर्णनों की दृष्टि से चित्रावली काव्यकृति है। सूफ़ी दर्शन रूपाधृत है, जो प्रेम का स्फुरण करता है। उस्मान उस नूरो-जलाल से स्फुरित इशकहक़ीकी का सफल निरूपण करते हैं :

प्रेम किरन ससि रूप जेउ, पानि प्रेम जिनि हेम।

एहि विधि जहँ तहँ जानियहु, जहाँ रूप तहँ प्रेम॥

इस रूप-प्रेम का महान् प्रसार ही सूफ़ी-सृजन का आधार है:

जहाँ रूप जग बनज पसारा। आइ प्रेम तहँ किय व्योहारा॥

जो विधि माया करि दीन्ही। प्रेम चकोर नैन तिन्ह कीन्हीं॥

नूरमोहम्मद

सूफ़ी-कथाकाव्य 'इन्द्रावती' एवं सूफ़ी-प्रतीककाव्य 'अनुराग-बाँसुरी' का प्रणेता नूरमोहम्मद (रचनाकाल 1744 ई. के आसपास) दाऊद, कुतबन, जायसी, मंज़न एवं उस्मान की परम्परा का अन्तिम श्रेष्ठ कवि था (यद्यपि सूफ़ी-कथाकाव्य-परम्परा बीसवीं सदी तक चली)। नूरमोहम्मद परवर्ती मुगल-बादशाह मोहम्मदशाह 'रंगीला' (राज्य काल 1779-48 ई.) का समकालीन था। यह बादशाह था, सदा शराब के नशे में धुत् रहता था, शीशा देखने का बेहद शौकीन था, होली में कन्हैया बनता था। इस विलासी बादशाह के ज़माने में ईरानी-नरपिशाच नादिरशाह ने 1739 ई. में दिल्ली की अनाप-शनाप लूट की, फ़व्वारे की सुनहरी मस्जिद से दिल्ली का क़त्ले-आम देखा। किन्तु यह शास्त्रीय संगीत का संरक्षक एवं श्रेष्ठ गायक¹ था, उर्दू के आदिकवि वली² का घनिष्ठ मित्र था, घनआनन्द आरम्भ में इसके मुन्शी या मीर-मुन्शी रहे थे, 'हंस-जवाहिर' के हिन्दी-सूफ़ी-कवि कासिमशाह ने भी शाहेवक्त के रूप में इसकी अत्युक्तिपूर्ण स्तुति की है³; नूरमोहम्मद ने भी ऐसा किया है :

करौं मुहम्मदसाह बखानू। है सूरज देहली सुलतानू॥

धरमपंथ जग बीच चलावा। निवर न सवरे सों दुख पावा॥

बहुतै सलातीन जग करे। आइ सहास बने हैं चरे॥

सब काहू पर दाय़ा धरई। धरम सहित सुलतानी करई॥

नूरमोहम्मद के विषय में आ. शुक्ल लिखते हैं, "ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समय में थे और सवरहद नामक स्थान के रहने वाले थे जो जौनपुर जिले में जौनपुर-आजमगढ़ सरहद पर है। पीछे सवरहद से ये अपनी ससुराल भादों (जिला

1. "मोहम्मद रंगीले गावत अव प्रेम राग" जैसे गीत अमर हैं।
2. दिल वली का ले लिया दिल्ली ने छीन,
जा कहो कोई मोहम्मदशाह सों॥
3. मुहम्मदसाह दिल्ली सुलतानू। का मन गुन ओहि कर बखानू॥
छाजै पाट छत्र सिर ताजू। नावहिं सीस जगत के राजू॥
रूपवंत दरसन मुँह राता। भागवंत ओहि कीन्ह बिधाता॥
दरबवंत पर धरम म पूरा। ज्ञानवंत पर खरंग मैं सूर।

आजमगढ़) चले गए। इनके श्वसुर शम्सुद्दीन के और कोई वारिस न था इससे ये सुसराल¹ में ही रहने लगे। नूरमोहम्मद के भाई मुहम्मदशाह सबरहद ही में रहे। नूरमुहम्मद के दो पुत्र हुए—गुलाम हसनैन और नसीरुद्दीन फ़िदा की वंश-परम्परा में शेख फ़िदा हुसैन अभी वर्तमान हैं जो सबरहद और कभी-कभी भादों में भी रहा करते हैं।² अतएव, नूरमोहम्मद पर जौनपुर का भी अधिकार है, आजमगढ़ का भी। 'भूला-जनपद: विखरा इतिहास' शीर्षक रायवरेली-संवद्ध श्रेष्ठ ग्रन्थ (सं. मदनमोहन मिश्र) के अनुसार, "इन्द्रावती के रचयिता तथा प्रेमाश्रयी शाखा के एक प्रमुख कवि नूरमोहम्मद को भी कुछ विद्वान् जायस का निवासी मानते हैं।³ रायवरेली जनपद ने हिन्दी की सूफ़ी-कविता को आदिकवि मुल्ला दाऊद (डलमऊ) दिया है, सर्वोत्तम कवि जायसी (जायस) भी। जायस की अपनी सूफ़ी-परम्परा भी रही है। नूरमोहम्मद की भाषा भी रायवरेली के निकटतर है। किन्तु रायवरेली के पक्ष में नूरमोहम्मद-सम्बन्धी कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

नूरमोहम्मद मतांध कवि था जिसकी 'अनुराग-वाँसुरी' में प्रायः सर्वत्र हिन्दुओं और उसके देव-देवताओं का खुलकर अपमान किया गया है। इन्द्रावती में पाँच अर्द्धलियों के बाद दोहे का क्रम है, जैसाकि मृगावती (कुत्वन) एवं मधुमालती (मंझन) में भी है, जबकि पदमावत (जायसी) और चित्रावली (उस्मान) में सात अर्द्धलियों के बाद दोहे का क्रम प्राप्त होता है। अनुराग-वाँसुरी में चौपाइयों के बीच (बिना किसी निश्चित क्रम के) वरवै का प्रयोग सर्वथा नवीन है। इन्द्रवती और अनुराग-वाँसुरी की भाषा संस्कृतिनिष्ठ-अवधी है। नूरमोहम्मद सूफ़ी-कवियों में सर्वाधिक शिक्षित लगते हैं। वे संस्कृत एवं फ़ारसी भी जानते थे। निर्गुणप्रधान सन्तों में जो स्थान सुन्दरदास का है, सूफ़ी कवियों में वही नूरमोहम्मद का (यद्यपि सुन्दरदास का कवि-रूप अनुभूति में भी श्रेष्ठतर है, अभिव्यक्ति में भी)।

नूरमोहम्मद की कविता के कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. आगमपुर इन्द्रावती, कुँवर कलंजर राय।
प्रेम हुते दाँउह कहँ दीन्हा अलख मिलाय।।
2. हिंदू-मग महँ पाँव न राखेउँ। का जो बहुतै हिंदी भाखेउँ।।
मन इसलाम मिरिकलै मँजेउँ। दीन जँवरी करकस भँजेउँ।।
जहँ रसूल-अल्लाह पियारा। उम्मत को मुक्तावनहारा।।
तहाँ दूसरो कैसे भावै। जच्छ असुर सुर काज न आवै।।
3. नगर एक मूरतिपुर नाऊँ। राजा जीव रहै तेहि ठाऊँ।।...
तनय एक राजा के रहा। अंतःकरन नाम सब कहा।।...
रहे सँघाती ताके पत्तन ठावँ। यक संकल्प विकल्प सो दूसर नावँ।।
बुद्धि चित्त दुइ सखा सरेखै। जगत बीच गुन अवगुन देखै।।...
अहंकार तेहि तीसर सखा निरंत्र। रह्यो चारि के अंतर नैसुक अंत्र।।
अंतःकरन सदन यक रानी। महामोहनी नाम सयानी।।...
4. सुनतै जौ यह सबद मनोहर। होत अचेत कृष्ण मुरलीधर।।
मुहम्मदी जन की यह बोली। जामैं कंद नबातैं घोली।।
बहुत देवता को चित धरै। बहु मूरति औंधी होइ परै।।
बहुत देवहरा ढाहि गिरावै। संखनाद की रीति मिटावै।।'

1. विहारी भी सुसराल में रहे, निराला भी; किन्तु नूरमोहम्मद वहाँ बस ही गए।

2. हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 103।

3. पृष्ठ 39।

4. इन पंक्तियों में सांप्रदायिक कवि नूरमोहम्मद यह स्पष्ट करता है कि यह वाँसुरी मदनमोहन की नहीं अपितु मोहम्मद की है, जिसका उद्देश्य मूर्त-ध्वंस, देवालय-ध्वंस, शंखनाद-निषेध इत्यादि की प्रेरणा देना है।

8. नीतिकाव्य

हिन्दी-नीतिकाव्य अत्यन्त समृद्ध हैं। संक्रान्तिकाल में देवसेन तथा हेमचन्द्र, पुनरुत्थानकाल में कवीर, तुलसी तथा रहीम इत्यादि ने प्रशस्य एवं बहुआयामी नीतिकाव्य की रचना की, जो शास्त्रीयकाल में वृन्द (रचनाकाल 1704 ई.), घाघ (रचनाकाल 1725 ई. के आसपास), बैताल (जन्म 1677 ई., रचनाकाल 1725 ई. के आसपास), गिरिधर कविराय (रचनाकाल 1750 ई. के आसपास), इत्यादि के द्वारा विकसित एवं गतिशील की गई। वैसे बिहारी (उल्लेख्य रचनाकाल 1660 ई. के आसपास) इत्यादि ने भी नीति के दोहे रचे हैं। गुलाबसिंह बख्शी (कथित रचनाकाल 1695 ई. के आसपास) ने 'दफ्तरनामा' में व्यावसायिक-नीतिशास्त्र रचा है (यह कृति परवर्ती लगती है)। अन्योक्ति-कल्पद्रुम के हिन्दी-नीतिकाव्यकला-सीमांत बाबा दीनदयाल गिरि ने नीतिकाव्य को अतीव ललित रूप प्रदान किया किन्तु वे बौद्धिककाल के सन्धियुग (1800-1850 ई.) के कवि हैं जो शास्त्रीयकाल एवं बौद्धिककाल के मध्य सेतु के रूप में दृग्गत होता है तथा हिन्दी-साहित्य की अनवरतता का प्रतीक है। इसी सन्धियुग में सम्मन रचनाकाल 1800-25 ई. ने नीति के दोहे रचे तथा लुकमान हकीम (रचनाकाल 1825 ई. के आसपास) ने 'नसीहतनामा' (अनुवाद), दयाल कवि (गुजराती ब्राह्मण-रचनाकाल 1830 ई. के आसपास) ने 'दायदीपक', परमसुख (रचनाकाल 1830 ई. के आसपास) ने 'नसीहतनामा' की रचना की।

'नीति' एक अतीव व्यापक शब्द है। जिसमें आचार, व्यवहार, कार्यपद्धति इत्यादि अनेक जीवनोपयोगी एवं गरिमाशाली विषयों का समाहार प्राप्त होता है। वेद, शुक्रनीतिसार, महाभारत, भर्तृहरि कृत नीतिशतकम्, विष्णु शर्मा कृत 'पंचतंत्र' तिरुवल्लुवर कृत 'कुरल' (तिरुक्कुरल) इत्यादि भारतीय नीति के शीर्षस्थ ग्रन्थ हैं जो भारतीय नीतिकाव्य को संसार में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। भारत की अनुकृति में ईरान के शेख सादी ने फ़ारसी में 'गुलिस्तान' एवं 'बोस्तान' में प्रशस्य नीतिकाव्य का मौलिक सृजन किया है। पाश्चात्य साहित्य में नीतिकाव्य की उपविधा के दर्शन नहीं होते, क्योंकि इसे दर्शनशास्त्र (फिलॉसॉफी) के आचारशास्त्र (एथिक्स) में ही समाहित कर लिया गया। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में बौद्धिककाल में भी बाबा दीनदयाल गिरि से मैथिलीशरण गुप्त तक नीतिकाव्य का प्रसार विद्यमान है। दिनकर ने नीतिकाव्य भी रचा है, जो 'कुरुक्षेत्र' एवं 'रश्मिरथी' में बिखरा मिलता है। 'आधुनिक नीतिकाव्य' शोध का विषय है। इसमें दीनदयाल गिरि, लुकमान हकीम, दयाल कवि, परमसुख, भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रतानारायण मिश्र, हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर इत्यादि का योगदान विशेष उल्लेखनीय है जो आचार-नीति, कर्म-नीति, धर्म-नीति, राजनीति इत्यादि तक प्रसरित है।

संक्रान्तिकाल एवं पुनरुत्थानकाल का नीतिकाव्य सैद्धान्तिक है, जबकि शास्त्रीयकाल का नीतिकाव्य वृन्द², रामसहायदास³ इत्यादि में सैद्धान्तिक, गिरिधर कविराय इत्यादि में व्यावहारिक तथा घाघ, बैताल इत्यादि में जनात्मक है। बौद्धिककाल का नीतिकाव्य दीनदयाल गिरि में कलात्मक है, सम्मन एवं लुकमान हकीम इत्यादि में पारम्परिक तथा भारतेन्दु, मैथिलीशरण, दिनकर इत्यादि में राष्ट्रीय। सैद्धान्तिक नीतिकाव्य, व्यावहारिक नीतिकाव्य, व्यावसायिक नीतिकाव्य, जनात्मक नीतिकाव्य, कलात्मक नीतिकाव्य तथा राष्ट्रीय नीतिकाव्य की स्फूर्ति से युक्त विराट् 'हिन्दी-नीतिकाव्य' ग्रन्थ लिख जाना चाहिए। जिससे इस उपविधा की अस्मिता उजागर हो।

शास्त्रीयकालीन नीतिकाव्य के उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनमें कला की झाँकियाँ भी दिखाई देती हैं, आचारशास्त्र की भी, व्यवहारशास्त्र की भी, अन्य भी :

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास यहि काल। अली! कली ही सो बिंध्यो, आगे कौन हवाल।।
स्वारथु सुकृतु न, स्रमु ब्रिथा, देखि विहंग! बिचारि। वाज पराए पानि परि तू पच्छीनु न मारि।।
वे न इहाँ नागर बड़े जिन आदर तव आव। फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई-गाँव गुलाव।।
(बिहारी)

फीकी पै नीकी लगै कहिए समय बिचारि। सबको मन हरखित करै ज्यों बिवाह में गारि।।
सुखदायी जो देख दुख सो सब दिन को फेर। ससि सीतल संजोग में तपत बिरह की बेर।।
भले-बुरे सब एक सम जौ लौं बोलत नाहिं। जानि परत हैं काग पिक रितु वसंत के माहिं।।
सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय। पवन जगावत अगिनि को दीपहिं दैत बुझाय।।

(वृन्द)

1. लुकमान हकीम ने 'मुगल-पुराण' भी रचा। जब 'अल्लोपनिषद्' रचा जा सकता है तब 'मुगल-पुराण' क्यों नहीं? ईसाई-प्रचारक वाटविल को 'धर्मशास्त्र' शीर्षक के रूप में बेचते और बाँटते हैं, जिससे उनका धन्धा फल-फूल सके। परमसुख ने भी 'नसीहतनामा' लिखा है।
2. वृन्द-सतसई।
3. राम-सतसई जो वस्तुतः 'शृंगार-सतसई' है जैसाकि भारतजीवन प्रेस ने छापी भी है। 'बिहारी-सतसई' के अनुकरण में रची इस सफल सतसई में नीति प्रासंगिक ही है।

मुए चाम ते चामु कटावैं सँकरी भुँइ मा स्वावैं। घाघ कहै तीनिउ भकुहा उठरि गए पर र्वावैं॥
चन्ना पहिरे हरु ज्वातैं औ बोझु धरे अठिलावैं। घाघ कहै ई तीनिउ भकुहा पीसत पान चवावैं॥
उधारु काढ़ि बेउहारु चलावैं छप्पर डारैं तारो। सारे के सँग वहिनी पठवैं तीनिउँ का मुँह कारो॥

कुचकट पनही वनकट जोय। जो पहिलौठी चिटिया होय॥

पातरि कृपी वौरहा भाय। घाघ कहै दुख कहाँ समाय॥

(घाघ)

राजा चंचल होय मुलुक को सर करि लावै। पंडित चंचल होय सभा उत्तर दै आवै॥
हाथी चंचल होय सागर में सूँड़ि उठावै। घोड़ा चंचल होय झपटि मैदान दिखावै॥
हैं ये चारों चंचल भले राजा, पंडित, गज, तुरी। बैताल कहै विक्रम सुनौ तिरिया चंचल अति वुरी॥
चोर चुप्प हवै रहै रैनि अँधियारी पाए। संत चुप्प हवै रहै मढ़ी में ध्यान लगाए॥
बाधिक चुप्प हवै रहै फाँसि पंछी लै आवै। छैल चुप्प हवै रहै सेज पर तिरिया पावै॥
वर पिपर-पात हस्ती-स्रवन कोइ-कोइ कवि कुछु-कुछु कहै। बैताल कहै विक्रम सुनौ चतुर चुप्प कैसे रहै॥

(बैताल)

वीती ताहि विसारि दे आगे की सुधि लेइ। जो वनि आवै सहज मैं ताही मैं चित देइ॥
ताही मैं चित देइ वात जोई बनि आवै। दुरजन हँसै उठाय चित मैं खेद न पावै॥
कह गिरिधर कविराय यहै करु मन परतीती। आगे को सुख होइ समुझ वीती सो वीती॥
साई अपने चित्त की भूलि न कहिए कोय। तब लगि कन मैं राखिए जब लगि काज न होय॥
जब लगि काज न होय भूलि कबहूँ नहिं कहिए। दुरजन हँसै उठाय आपु सियरे हवै रहिए॥
कह गिरिधर कविराय वात चतुरन के ताई। करतूती कहि देति आपु जनि कहिए साई॥

(गिरिधर)

प्रमुख कवि

घाघ

हिन्दी में घाघ और असमिया, उडिया इत्यादि में डाक' नाम से प्रसिद्ध इस कृषकों के लोकप्रिय कवि की रचनाएँ “यथा स्थान तथा भाषा”¹ एवं “यथा भाषा तथा कवि”² की प्रतीक ही बन गई हैं। घाघ कृषकों के राष्ट्रकवि हैं। इनकी चतुराई के विषय में इतना कहना पर्याप्त होगा कि ‘घाघ’ शब्द ही (यत्किंचित् अर्थपतन के साथ) ‘चतुर’ का द्योतक बन गया है। शिवसिंह, मिश्रवन्धु, रायवहादुर मुकुन्दलाल गुप्त, रमाशंकर मिश्र ‘श्रीपति’ इत्यादि विद्वानों ने इनका जन्मस्थान कन्नौज, जन्मकाल 1753 ई. वि. (1696 ई.) एवं कविताकाल 1780 वि. (1723 ई.) माना है। किन्तु ‘घाघ और भड्डरी’ शीर्षक महत्वपूर्ण ग्रन्थ में रामनरेश त्रिपाठी ने इन्हें ‘अकबरावाद सरय घाघ’ के आधार पर अकबर (देहान्त 1605 ई.) का समकालीन माना है जो गलत लगता है क्योंकि यह गाँव पहले कुछ था, तब अकबरावाद हुआ, इनके प्रति सम्मान के कारण ‘सराय घाघ’ कहा जाने लगा तथा अब भी कहा जाता है, जहाँ घाघ के वंशज विद्यमान हैं। इस समय घाघ की दसवीं-ग्यारहवीं पीढ़ी से 1696 ई. का जन्मकाल ही युक्तियुक्त लगता है। स्वयं शाहजहाँ ने आगरा का नाम अकबरावाद रखा था जो नहीं चल पाया—केवल नजीर अकबरावादी के सन्दर्भ में याद आता है। स्थानों के नाम बनते-बिगड़ते रहते ही हैं। ‘हिन्दी नीतिकाव्य-संग्रह’ के प्रस्तोता डॉ. भोलानाथ ने ‘घाघ और भड्डरी’ की स्थापना के अनुसार घाघ को दुवे बताया है। वे ‘देवकली के दुवे’ थे। रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी सहज-विधातक वर्गीकरणवादी संकीर्ण-दृष्टि से ‘कवि’ और ‘सूक्तिकार’ का घिसा-पिटा रमरसरा छेड़ते हुए अभिजातवादी स्थापना की है, “रीतिकाल के भीतर वृन्द, गिरिधर, घाघ और बैताल अच्छे सूक्तिकार

1. बिहार एवं राजस्थान के हिन्दी-क्षेत्रों में भी डाक नाम चलता है।

2. धन्यवाद घाघ को कि मुझे यह सूक्ति सूझी जो अन्य अनेक कवियों पर भी लागू होती है।

3. वही।

हुए हैं।" इस घातक एवं संकीर्ण दृष्टि से भर्तृहरि, तिरुवल्लुवर और सादी तक को सूक्तिकार सिद्ध किया जा सकता है। मिश्रबन्धु ने इन पर ठीक विचार व्यक्त किए हैं, "भोटिया नीति आपने बड़े जोरदार ग्रामीण भाषा में कही है। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है।" निस्सन्देह कला की दृष्टि से घाघ साधारण कवि हैं, किन्तु उनके कुछ उद्गार उत्कृष्ट श्रेणी के भी हैं। घाघ या डाक की भाषा स्थानानुकूल हो चुकी है तथा कन्नौजी, वैसवारी (वैसवाड़ी), भोजपुरी, उड़िया, असमिया इत्यादि में राष्ट्रीय एकता की प्रतीक मानी जा सकती है। घाघ एक उत्कृष्ट कृषककवि हैं जो शस्य, आहार, सुख, सन्तोष इत्यादि विविध पर उपयोगी प्रकाश डालते हैं। वे वैकुण्ठ (कुंठाहीन लोक) को बहुत दूर नहीं, बहुत पास ला देते हैं :

अरहर की दाल, जड़हन का भात, गागल निवुआ औ घिउ तात ।

खौड़ दही जो घर माँ होय, बाँके नैन परोसै जोय ।

कहै घाघ तब सब ही झूठो, उहाँ छौड़ि, इहवाँ वैकुण्ठ ।।

'सुख की परिकल्पना' पर प्रश्न के उत्तर में डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने उक्त पंक्तियाँ उद्धृतकर उत्तम रसज्ञता का परिचय दिया था।¹ निस्सन्देह उक्त पंक्तियाँ विहारी की निम्नलिखित अन्योक्ति से भाव में, भाषा में, प्रसाद-गुण में, दर्शन में श्रेष्ठतर हैं :

पटु पाँखै, भखु काँकरै, सपर परेई संग ।

सुखी, परेवा! पुहुमि में तू ही एक विहंग ।।

प्रखर-प्रशस्य जीवनवादी कवि घाघ ने अन्यत्र भी कहा है :

ऊँचि अटारी, मधुर वतास ।

घाघ कहैं घर ही कैलास ।।²

लोककवि घाघ ने वैकुण्ठ को लोक में ठीक ही उतारा है और वह भी लुटेरे महमूद गज़नवी के दरबार या प्रदर्शनव्यामोही शाहजहाँ से दीवाने-खास में नहीं अपितु सुमतिपूर्ण घर-घर में! ऐसे जनकवि की अवहेलना हृदयहीनता ही होगी।

घाघ की रचना के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. मुए चाम ते चामु कटावैं सँकरी भुँइ मा स्वावैं ।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुवा उदरि गए पर स्वावैं ।।
2. चन्ना पहिरे हरु ज्वातैं औ बोझु धरे अठिलायैं ।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुवा पीसत पान चवायैं ।।
3. उधारु काढ़ि वेउहारु चलावैं छप्पर डारैं तारो ।
सारे के सँग बहिनी पठवैं तीनिउँ का मुँह कारो ।।
4. कुचकट पनही बनकट जोय । जो पहिलौठी बिटिया होय ।।
पातरि कृषी वौरहा भाय । घाघ कहै दुख कहाँ समाय ।।
5. भेदिहा सेवक, सुंदर नारि । जीरन-पट, कुराज-दुख चारि ।।

खेद है कि ऐसे व्यावहारिक-आदर्शवादी लोककवियों की नस्ल अब विजातीयता के व्यामोह एवं शिष्टता के पाखंड के कारणों से समाप्त-सी हो रही है। वैसे, घाघ के "उत्तम खेती, मध्यम बान । निषद चाकरी, भीख निदान ।।" "मारि कै टरि रहु । खाय के परि रहु ।।" जैसे सूक्तियाँ भाषांतर के साथ सभी वर्गों में आज भी प्रचलित हैं।

1. श्री लल्लनप्रसाद व्यास सम्पादित 'विश्व हिन्दी दर्शन', अक्टूबर-दिसम्बर 1987 अंक, पृष्ठ 95 में डॉ. गोपालप्रसाद 'वंशी' द्वारा प्रस्तुत । (डॉ. बलदेव 'वंशी' का स्मरण आता है!)
2. दरबारवादी फ़ारसी-शेर प्रस्तुत है :
अगर फ़िरदौस बर रूप ज़मी अस्त ।
हमी अस्तो, हमी अस्तो, हमीन् अस्त ।।
(“अगर ज़मीन पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, और यह है।”) यह शेर फ़िरदौसी का माना जाता है तथा दिल्ली के दीवाने-खास की दीवार पर आज भी उत्कीर्ण देखा जा सकता है ।

गिरिधर कविराय

हिन्दी के लोकप्रिय नीतिकाव्यकार गिरिधर कविराय (जन्म 1713 ई.?) के जीवन पर कुछ दन्तकथाओं के अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं हैं। 'साई' शब्द को पकड़कर यह कहना कि जिन छन्दों में यह आया है वे इनकी पत्नी के हैं, निराधार हैं, क्योंकि प्रायः प्रत्येक छन्द में "कह गिरिधर कविराय" स्पष्टतः अंकित है। मेरे विचार से, 'साई' शब्द का प्रयोग आश्रयदाता के लिए किया गया है। इनकी रचनाराशि 91 कुंडलियों ('विनोद') से 457 (हिन्दी साहित्य कोश भाग 2) तक प्रसरित है—स्पष्टतः उसमें भारी प्रक्षेप हुआ है। गिरिधर की कविराय² पदवी उन्हें ब्रह्मभट्ट सिद्ध करती है। उनकी अवधी उन्हें फ़तेहपुर-उन्नाव-रायबरेली अंचलों से संबद्ध करती लगती है। वे देवसेन, कबीर, तुलसी के सदृश सन्त-नीतिकाव्यकार नहीं हैं। वे रहीम के सदृश सरस-नीतिकाव्यकार भी नहीं हैं। वे दीनदयाल गिरि के सदृश कलाकार-नीतिकाव्यकार भी नहीं हैं। वे वृन्द के सदृश कोरे नीतिकाव्यकार भी नहीं हैं। साथ ही, वे घाघ, बैताल, भड्डरी प्रभृति के सदृश ग्राम्य-नीतिकाव्यकार भी नहीं हैं। वे अपने ढंग के अकेले नीतिकाव्यकार हैं जिनकी सरलता सतही नहीं है, जिनके दृष्टान्त प्रभावी हैं, जिनका उद्गार प्रेरक है। मैं आ. शुक्ल के सदृश काव्य एवं सूक्ति के भेदभाव को तूल देना समीचीन नहीं मानता, भले ही डॉ. भोलानाथ तिवारी उस पर जी-जान से फ़िदा रहे हों। काव्य संग्रहालय-निधि न होकर जीवन-विभूति है। साहित्य में नीतिकाव्य को उच्चस्थान प्राप्त है—भर्तृहरि, तिरुवल्लुवर, कबीर, तुलसी, रहीम इत्यादि का सृजन इसका प्रमाण है। फ़ारसी के अजीम शायर सादी भी नीतिकाव्यकार हैं। अतः आचार्य शुक्ल का भेदभाव यथार्थवाहित न होकर उनकी वर्गीकरणवादी प्रवृत्ति का प्रतिफलन मात्र है। गिरिधर कविराय के कुछ उद्धरण भी इसे स्पष्ट कर देंगे :

1. वीती ताहि विसारि के आगे की सुधि लेइ।
जो वनि आवै सहज मैं ताही मैं चित देइ।।
ताही मैं चित देइ वात जोई वनि आवै।
दुरजन हँसै उठाय चित मैं खेद न पावै।।
कह गिरिधर कविराय यहै करु मन परतीती।
आगे को सुख होइ समुझ बीती सो वीती।।
2. साई अपने चित्त की भूलि न कहिए कोय।
तब लगि मन मैं राखिए जब लगि काज न होय।।
जब लगि काज न होय भूलि कबहूँ नहिं कहिए।
दुरजन हँसै ठठाय, आपु सियरे हवै रहिए।।
कह गिरिधर कविराय वात चतुरन के ताई।
करतूती कहि देति आपु, जनि कहिए साई।।
3. जाकी धन-धरती हरी ताहि न लीजै संग।
जौ सँग राखे ही बनै तौ करि राखु अपंग।।
तौ करि राखु अपंग, भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगंधें खाय, चित्त मैं एक न दीजै।।
कह गिरिधर कविराय करहु परतीति न वाकी।
सत्रु-सरिस परिहरिय हरिय धन-धरती जाकी।।
4. रहिए लटपट काटि दिन बरु घामहिं मैं सोय।
छाँह न वाकी बैठिए जौ तरु पतरो होय।।

1. 'सरोज' में लेखक शिवसिंह ने जन्मसंवत् 1770 वि. माना है जिसे 'विनोद' (मिश्रबन्धु) एवं 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (शुक्ल) में यथावत्ग्रहण किया गया है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ('हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 तथा 'हिन्दी-नीतिकाव्य-संग्रह' में) ने भी इसे ही स्वीकार किया है।

2. प्रायः साहित्येतर किन्तु लोकप्रिय कवि स्व. पद्मश्री काका हाथरसी 'कविराय' विशेषण का प्रयोग करते हैं। "बाहर नेता 'अंदर' कवि" तैय्यी कविराय (अटल विहारी वाजपेयी) इत्यादि ने अपनी सीमाओं में गिरिधर कविराय की नक़ल की है।

जौ तरु पतरो होय एक दिन धोखा देहै।
जा दिन बहै वयारि टूटि तब जर से जेहै॥
कह गिरिधर कविराय छौं मोटे की गहिए।
पाता सब झरि तरु छाया में रहिए॥

9. हास्य-काव्य

शास्त्रीयकाल का हास्यकाव्य पर्याप्त सम्पन्न है। पद्याकर इत्यादि के होली के व्यंग्य-विनोद का सुन्दर वर्णन किया है किन्तु उसे शृंगारकाव्य के निकट मानना उचित होगा। बिहारी के व्यंग्यों, सुखदेव के शिव-सम्बन्धी छन्दों, अली मुहिव खाँ 'प्रीतक' की 'खटमल-बाईसी' इत्यादि में हास्यरस की अच्छी रचनाएँ प्राप्त होती हैं। कंजूस औरंगजेब के द्वारा बूढ़ी हथिनी के दान पर कविराज सुखदेव मिश्र फ़क्ती में ग़ज़ब का व्यंग्य दृग्गत होता है। किसी अज्ञात कवि ने कंजूस 'लाला' के 'देत' पर उच्चतम-स्तरीय व्यंग्य किया है जो आ. रामचन्द्र शुक्ल के अमर निबन्ध 'लोभ और प्रीति' में लोभियों पर किए गए व्यंग्य के सर्वथा समकक्ष किन्तु अधिक कलात्मक है। कविराज सुखदेव मिश्र के हास्य-छन्द हिन्दी-कविता के अनूठे रत्न हैं। कुल मिलाकर शास्त्रीयकाल का हास्यकाव्य सन्तोषजनक प्रतीत होता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

कर लै, सूँधि, सराहि कै, रहे सबै गहि मौन। गंधी! गंध गुलाब की गँवई गाहक कौन॥
वे न इहाँ नागर बड़े जिन आदर तुव आव। फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई-गाँव गुलाब॥
(बिहारी)

एक निसि एक तसकर-बर हर-घर मूसिबो को हरबर धायो कोस असी है।
कहूँ मुंडमाल, कहूँ पसरे कराल ब्याल, कहूँ गजखाल, हाल देखि आयो डसी है॥
ढूँढ़त भवन कहूँ पाए हैं धतूर-बीज चावर के धोखे चावे, मति-गति नसी है।
घूमत, फिरत, गिरि, उठत, चलत आज, कविराज ताहि देखि हँसी उर बासी है॥
चौक में स्वाँगु सौ बैठी है दूलह देह मसान की खेह सों पागे।
“ब्याह रच्यो किधौं ख्याल इहै?” कहि लोग हँसे हिमवान के आगे॥
बाहेर की घरहूँ की हँसैं, गृहकाज कैसेहूँ कोऊ न लागैं।
नाँगो निहारैं जे तेई तिया अँचरा मुँह दै हँसिकै फिरि भागैं॥
हँसि हिमवान परोस की सकैं न मँड़वा पैठि।
रह्यौ अकेलौ चौक में नागो दुलहा वैठि॥

तिमिर लंग लड़ मोल, नई बावर के हलके। रही हुमायूँ संग, गई अकबर के दल के॥
जहाँगीर जस लियो पीठि को भार हटायो। साहिजहाँ करि न्याव ताहि पुनि माड़ चटकायो॥

वलरहित भई, पौरुख थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरंगजेब करिनी सोई लै दीन्हीं कबिराज कर॥

(कविराज सुखदेव मिश्र)

पौर मैं किंवार देत, घरे सबै गारि देत, साधुन को दोष देत प्रीति न चाहत हैं।
माँगने को ज्याब देत, बात कहे रोय देत, लेत देत माँज देत ऐसे निबहत हैं॥
बागै हू के बंद देत, बोरन की गाँठ देत, परदन की काँछ देत काम में रहत हैं।
एते पै सबैही कहैं लाला कछु दे नाहिं, लाला जू तौ आठौं जाम देत ही रहत हैं॥
(अज्ञात)

जगत के कारन करन चारौ वेदन के कमल मैं बसे वै सुजान ज्ञान धरि कै।
पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के समुद्र मैं जाय सोए सेस सेज करि कै॥
मदन जरायो औ सँघारैं दृष्टि ही मैं सृष्टि बसे हैं पहार वे हू भाजि हरवरि कै।
बिधि-हरि-हर, और इनते न कोऊ, तेऊ खाट पै न सोवैं खटमल को डरि कै॥

वाघन पै गयो देखि वनन में रहे छिपि, सँपन पै गयो तौ पताल ठौर पाई है।
गजन पै गयो धूरि डारत हैं सीस पर, वैदन पै गयो काहू दारु न वताई है॥
जब हहराय हम हरि के निकट गए, हरि मोसों कह्यो, 'तेरी मति भूल छाई है।'
कोऊ न उपाय, भटकत जिन डोलै, सुनै, खाट के नगर खटमल की दोहाई है॥'
(अली मुहिव खाँ 'प्रीतम')

10. अनुवाद-काव्य

अनुवाद साहित्य-भवन का वातायन है, जो उसके स्वास्थ्य-बिन्दु को ध्यान में रखकर किए गए निर्माण की सूचना देता है। अनुवाद संबद्ध भाषा की जागरूकता का प्रतीक है। शास्त्रीकाल का अनुवाद की दृष्टि से पूर्ववर्ती कालों की तुलना में अधिक व्यापक एवं सम्पन्न होना स्वाभाविक है क्योंकि शास्त्रीय (क्लासिकल) साहित्य का विश्व में सर्वश्रेष्ठ एवं अतुलनीय भांडार संस्कृत में ही है, जो हिन्दी की माता है। अंग्रेजी के शास्त्रीयकाल (पीरियड ऑफ़ क्लासिसिज़्म)¹ में भी यूनानी के इलियड, ओडिसी जैसे महाकाव्य इत्यादि अनूदित किए गए थे। हिन्दी में शास्त्रीयकाल का अनुवाद-काव्य शास्त्रीयता के समग्र आयामों का स्पर्श करता है—भाषाभूषण (जसवंतसिंह) तत्त्वतः अनुवाद ग्रन्थ है, एक ओर कुलपति मिश्र ने रास-रहस्य (1670 ई.) के रूप में मम्मट के काव्य-प्रकाश का छायानुवाद प्रस्तुत किया, दूसरी ओर नेवाज² (छत्रसाल-कालीन तिवारी ब्राह्मण) ने 'शकुन्तला नाटक' (1680 ई.) के रूप में कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का, तीसरी ओर गुमान मिश्र ने 1744 ई.³ में श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम् महाकाव्य का अनुवाद किया, चौथी ओर गोकुलनाथ-गोपनीय-मणिदेव की त्रयी ने रॉयल अठपेजी से दूने आकार के 1866 पृष्ठों का व्यास के विश्वकाव्य महाभारत का महानुवाद (1771-1827 ई. की लगभग 6 दशाब्दियों में प्रसरित) किया। गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव की त्रयी द्वारा अनूदित महाभारत विश्वस्तरीय है तथा नन्नय-तिक्कन-एर्न द्वारा अनूदित तेलुगू-महाभारत से सर्वथा तुलनीय है। यह सत्य है कि संस्कृतेतर महाभारतों में तेलुगू-महाभारत सर्वश्रेष्ठ है किन्तु गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव के हिन्दी-महाभारत से उसका तुलनात्मक अध्ययन किया जाना चाहिए। रामायण का अनुवाद नहीं किया गया क्योंकि तुलसीदास का रामचरितमानस विद्यमान था जो रस, अलंकार एवं प्रभाव में वाल्मीकि की रामायण से भी श्रेष्ठतर है तथा मौलिक भी।

अनुवाद की सफलता यह है कि वह अनुवाद न लगे। इस दृष्टि से शास्त्रीयकाल के अनुवाद-काव्य सफल हैं, यद्यपि कहीं-कहीं स्वच्छन्दता का दोष भी आ गया है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. जग ते अद्भूत सुख-सदन शब्दरु अर्थ कबित्त। यह लक्षण मैंने कियो समुझि ग्रन्थ बहु चित्त॥
जस संपति आनंद अति, दुरतन डारै खोय। होत कबित ते चतुराई जगत राम बस होय॥
शब्द अर्थ जिनते बनै नीकी भाँति कबित्त। सुधि दायन समरत्थ तिन कारण कवि को चित्त॥
व्यंग्य जीव ताको कहत, शब्द-अर्थ है देह। गुन गुन, भूषन भूषन, दूषन दूषन येह॥
(कुलपति मिश्र)
2. न्हाती जहाँ सुनयना नित बावली में, छूटे उरोदतल कुंकुम नीर ही में।
श्रीखंड चित्र दृग अंजन संग साजै, मानौ त्रिबेनि नित ही घर ही बिराजै॥
3. हाटक-हंस चलयो उड़िकै नभ में, दुगनी तन-ज्योति भई।
लीक सी खैंचि गयो छन में, छहराय रही छवि सोनमयी॥
नैनन सों निरख्यो न बनायके, कै उपमा मन महिं लई।
स्यामल चीन मनौ पसर्यो, तेहि पै कल कंचन-बेलि नई॥

1. द्रष्टव्य है ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ़ 'हिन्दी लिटरेचर' जो 'ऑक्टोलाईस ऑफ़ हिन्दी लिटरेचर' के रूप में पुनर्प्रकाशित है।

2. इस नाम के तीन कवि हुए हैं (आ. शुक्ल ने इन्हें नेवाज को आजमशाह से संबद्ध लिखा है) : 1. छत्रसाल के आश्रित नेवाज, 2. आजम के आश्रित नेवाज,

3. भगवंतराय खींची के आश्रित नेवाज। इन पर शोध अपेक्षित है।

3. 'विनोद' में 1801 वि. दिया है तथा 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में सं. 1800 वि. (1743 ई.)।

4. त्रिभुवन भूषण भूमि भूरि बर नगर सिरोमनि । झलझलात छवि अच्छ-अच्छ लखि भाषत धनि-धनि ।।
सोहत विकट कपाट जटित पुर द्वार फटिकमय । मनौ रच्यो कैलास शंभु निज बास भक्त दय ।।
जनु सजत सुमेरु प्रदच्छिना चहुँ सुबरन परकार पर । सरवरि जहान को करि सकै सब नरवर नव नगर कर ।।
(गुमान मिश्र)

5. लहि सुदेष्णा की सुआज्ञा नीच कीचक जौन, जाय सिंहनि पास जंवुक तथा कीन्ह्यों गौन ।
लग्यो कृष्णा सों कहन यहि भाँति सस्मित बैन, “इहाँ आई कहाँ ते? तुम कौन हो छवि-ऐन?
चंद्रबदनी । कहहु हमसों सत्य सो अभिराम, भरी परमा काँति सों सुकुमारता की धाम ।
कमलनयने! अंग तो सब बसीकर के यंत्र, चारुहासिनि! सुधा-से तव वचन मोहक-मंत्र ।
नहीं तुम-सी लखी भू पर भरी सुखमा बाम, देवि, यक्षी, किन्नरी कै श्री शची अभिराम ।
काँति सों अति भरो तुमरो लखत बदन अनूप, करैगो नहिँ स्ववश काको महा मनमथ भूप ।
हार योग्य सुसद्य उन्नत कनक कुंभ समान, करत उरसिज रावरे अति व्यथित कठिन महान् ।
लसति त्रिवली भंग-सी दवि धरे उरसिज भार, उदर धाम गँभीर नाभी लाँक तनु सुकुमार ।
सरित-पुलिन समान जंघा सघन पीत अलोम, मदन रोग अमोघ कारन अंग तो छवि-तोम ।
करहु मेरे संग सुंदरि सौख्य को अभिराम, खान-पान-विधान भूषन-वसन सों छविधाम ।

6. द्रोणाचार्य कोपि तेहि पल मैं । पार्यौ प्रलय पांडवी दल मैं ।।
बाण-वृष्टि कर ब्यूह-बिदारण । मर्दत भटन भूरि-भय-कारण ।।
मंडल सम कोदंडहि कीन्हें । फिरत चक्र-सम गुरुता लीन्हें ।।
पुरुषसिंह द्विजवर की दपटैं । दावानल-सम सर की लपटैं ।।
सहि न सके उत के भट एकौ । थिरि न सके धरि धीरज नेकौ ।।
प्रलैकाल के रुद्रसमाना । लसत भयो तहँ द्रोण अमाना ।।
हय, गज, रथ, भट अगणित काटे । रुंड-मुड सों रण-महि पाटे ।।
बर्धित करी रुधिर की सरिता । निज विक्रम गिरिवर की चरिता ।।
निज विक्रम की गुरुता लीन्हें । सब थर पर भट मर्दित कीन्हें ।।
यहि विधि नजि भट मर्दित देखी । सदल सर्वंधु धर्म नृप पेखी ।।
घनसमूह सम बढ़ि अति बल सों । भिर्यो आय द्विजराज सदल सों ।।
उड़ै बायु-बस हवै तृण जैसे । भए पराजित परभट तैसे ।।
द्विज के सर झरि सों तेहि पल मैं । हाहाकार मच्यो परदल मैं ।।
अग्नि अलात असंख्यन देखी । भगै करिनि जिमि भय सो भेखी ।।
तिमि लखि बाण-जाल द्विजवर के । थिरि न सकत अब योधा पर के ।।
जिमि सिंहहि लखि मृगगण भागत । भगे जात तिमि भय सों पागत ।।

(गोकुलनाथ)

7. तहाँ भीषम किए कार्मुक मंडलाकृत बेष । तजे बाण विशाल, अगणित, अतुल, अकथ, अलेप ।।
कुपित अहि-से सरन सों सब दिशा दीन्हें छाय । हते अगणित द्विरद, हय अरु रथिन के समुदाय ।।
सर्वदिशि मैं फिरत भीषम कों सुरथ मन मान । लखें सब कोउ तहाँ भूप अलातचक्र समान ।।

8. तब रथ रोकि कृष्ण अनुमानी । कही धनंजय सों यह बानी ।।
“पूर्व सभामधि तुम हे पारथ । प्रण कीन्हे सो करहु यथारथ ।।”
कही कृष्ण सो सुनि हित बानी । कहत भयो पारथ अभिमानी ।।
“तात, शीघ्र परदल मधि हलिए । भीषम के सन्मुख लै चलिए ।।
“बूढ़हिँ एक बान सों मारी । रथ ते देहुँ भूमि पर डारी ।।”

सो सुनि कृष्ण हाँकि वर घोरे। रथ लै गए भीष्म के धोरे।।
तहँ भीषम बहु शर तेहि छन मैं। हने पार्थ औ प्रभु के तन मैं।।
भीषम की गुरुता लखि ऐसी। पार्थ की मृदुता लखि तैसी।।
मन मैं गुनत भर यदुनायक। नहिं कोउ भीष्महि जीतन लायक।।
इमि कहि वक्र पानि मैं लीन्हें। करि भ्रामित ऊरथ भुज कीन्हें।।
रथ ते कूदि सिंह सम परखत। चले भीष्म पै धीरन धरखत।।
लखि भीषम करि अचल सरासन। करत भए हरि सों संभाषन।।

(गोपीनाथ)

9. भए तहँ अति करत विक्रम उभय योधा धीर। सहि परसपर गदा गरुई गतन नेकु न पीर।।
गर्जि-गर्जि अखंड गति गहि उभय वीर उदंड।। करत चालन दोरदंडनि चपल अतिशय चंड।।
सब्य कोउ उपसब्य फिरि, जो सब्य सो अपसब्य। फिरत वाहत गदा गरुई सुभट भा' भरि भव्य।।
शब्द सों भरि दियो अब्दहिं स्तब्द भे नहिं नेक। टूटि-टूटि अचूक वाहत गहे जय को टेक।।^१
10. कृपाचारज के वचन सुनि द्रोण-सुत अनखाय। कह्यो, "निज मत श्रेष्ठ सब कहँ परत जानि सचाय।।
विप्र हम, निज धर्म तजिकै, गह्यो क्षत्रिय-धर्म। कर्म क्षात्रिन के करव अव, उचित तजिकै भर्म।।
झूठ कहि, तजि धर्म, उन मम पितहिं डार्यो मारि। तथा अव हम वधव उन कहँ नीति-धर्म विसारि।।
न्याय सहित लरि शत्रु सों हारे सरबस जात। करि अधर्म जीते रहत सर्वस जीति कहात।।
समित-कार्य^२ तत्पर भजत निजन निरायुध पाय। सोवत निशि मैं लहि सउय शत्रुहि मारव न्याय।।
(मणिदेव)^३

प्रमुख अनुवादक कवि

जसवंत सिंह

जोधपुर-नरेश जसवंत सिंह भारतीय इतिहास के भगैले और हरैले वीरों में गिने जा सकते हैं क्योंकि मुगलों की सेवा में 15 अप्रैल, 1658 ई. को धरमत के युद्ध में दारा के पक्ष में लड़ते हुए औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित सेना से हारे तथा भागकर जोधपुर पहुँचे तो महारानी ने द्वार बन्द करा दिया क्योंकि राजपूत ललनाएँ भगोड़े पतियों का स्वागत नहीं करतीं, 1663 ई. में औरंगजेब ने इन्हें अपने मामा शाइस्ता ख़ाँ की विजय में सहायक होने के लिए भेजा तो पुणे में ख़ाँ साहब का अँगूठा स्वयं शिवाजी ने काट डाला तथा उसके बेटे अबुल फ़ह्र समेत सैकड़ों सैनिक खेत रहे, जिस पर बाद में इनको देखते ही बादशाह ने कहा कि मैं तो समझता था कि महाराज मेरे लिए रात्रियुद्ध में खेत रहे, बादशाह ने उन पर सन्देह किया तथा जमरूद का फ़ौजदार नियुक्त किया जहाँ 10 दिसम्बर, 1678 को इनका देहान्त हो गया^४ तथा जोधपुर को लोलुप बादशाह ने हड़प लिया। मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में इनका जन्मसंवत् 1682 वि. (1625 ई.) दिया है तथा मृत्युसंवत् 1738 वि. (1681 ई.), रामनरेश त्रिपाठी ने मृत्यु 1682 ई. तथा भगीरथ मिश्र ने 1708 ई. में बताई है (मज़ा यह है कि 1707 ई. में औरंगजेब खुद मर चुका था तथा जसवंतसिंह-परवर्ती उत्तराधिकार-युद्धादि हो चुके थे—यह

1. आभा, प्रभा, ज्योति। 'भाममंडल' में भी केवल 'भा' का ही प्रयोग होता है। 'भापा' में भी 'भा' विद्यमान है।

2. भीम-दुर्योधन-गदायुद्ध।

3. युद्ध-कार्य। 'समित्तिजयः' (गीता) युद्धजयी।

4. मणिदेव जिहानपुर (तब भरतपुर राज्य के अन्तर्गत) के निवासी थे जो विमाता-दुर्यवहार-विवश काशी चले गए तथा गोकुलनाथ के शिष्य एवं गोपीनाथ के गुरुभाई हो गए। प्रेमचन्द एवं आ. शुक्ल के सदृश मणिदेव ने विमातृ-दुर्यवहार झंला तथा मुकुटधर पांडेय, निराला, राहुल, मुक्तिबोध के सदृश विक्षिप्तता भी झेली। इनका देहान्त 1863 ई. में हुआ। 'मणिदेव' शीर्षक नाटक या उपन्यास रचा जा सकता है।

5. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (डॉ. ईश्वरीप्रसाद), पृष्ठ 572।

6. वही पृष्ठ 619।

है प्रसिद्ध विद्वान् एवं 'रीतिकाल'—विशेषज्ञ डॉ. भगीरथ मिश्र का इतिहास-बोध), जबकि भगवतीप्रसाद सिंह ने, सम्भवतः 'सिंह'-साम्य के कारण, उनकी वीरगति की चर्चा की है: 'मिश्रबन्धु, रामनरेश त्रिपाठी एवं भगीरथ मिश्र द्वारा दिए गए निधन-वर्ष गलत हैं तथा भगवतीप्रसाद सिंह की वीरगति-कथा अटकल! मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में शाइस्ता ख़ाँ की दुर्दशा के पीछे इनका हाथ बतलाया है, जिसका अनुकरण रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' एवं डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित ने 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 के एतद्विषयक विवरण में किया है—है तो यह सम्भावना ही किन्तु सन्देह औरंगजेब तक ने किया था! हिन्दी-विद्वानों ने जयसिंह के शिवाजी—संवेदन की चर्चा तक की है जबकि तथ्य यह है कि कुख्यात मुगल-दास घराने के इस क़मीने मिर्ज़ा राजा ने ज़फ़र ख़ाँ को पत्र लिखा था कि वह शिवाजी की पुत्री से अपने पुत्र के विवाह की व्यवस्था करके उनका खात्मा करा देगा! इसकी यह योजना 2 जुलाई, 1667 ई. को बुरहानपुर में मर जाने के कारण पूरी न हो पाई अन्यथा यह ग़द्दार मानसिंह से भी अधिक घृणित इतिहास-कीट माना जाता। जसवंतसिंह का राठौर-राजवंश जयचन्द्र³ वाला था (अब भी है) किन्तु यह जयपुर (कछवाहा) और ग्वालियर (सिंधिया) राजवंशों के सदृश क़मीना नहीं सिद्ध होता। हिन्दी-विद्वानों में वस्तुपरक इतिहास-निरूपण किसी से नहीं किया। मिश्रबन्धु का तो कहना ही क्या औरंगजेब-सेवा पर जसवंतसिंह-प्रशंसा! हिन्दी-साहित्येतिहाससादि जसवंतसिंह की प्रशस्तियों से उनके कारण ही भरे पड़े हैं। वैसे, यह एक प्रतापी व्यक्ति थे। जोधपुर के मंडौर (मंडावर) गार्डन में जसवंतसिंह की विशाल समाधि (अन्य समाधियों के साथ) अब भी एकदम ठीक हालत में खड़ी है।

'आचार्य' जसवंतसिंह की ख्याति का प्रधान आधार 261 दोहों का छोटा-सा अलंकार-ग्रन्थ 'भाषा-भूषण' (1644 ई.) है, जिसकी रचना संस्कृत के विख्यात 'चन्द्रलोक' की शैली में की गई है तथा जिस पर अप्पय दीक्षित कृत 'कुवलयानन्द' का भी भारी प्रभाव पड़ा है। इसे वास्तविक नहीं तो तात्त्विक अनुवाद कहा जा सकता है। 19 वर्ष का व्यक्ति और वह भी राजवंशगत (जिसे अस्त्र-शस्त्र-चालन, अश्व-चालन, आखेट, राजनीति इत्यादि अपरिहार्यतः सीखने पड़ते हैं), ऐसा प्रौढ़ ग्रन्थ कैसे लिखा गया? सम्भव है कि ग्रन्थ किसी अन्य आचार्य-कवि का हो, जो जसवंतसिंह के नाम पर चल पड़ा? राजा-महाराजाओं के नाम पर दूसरों के ग्रन्थ अक्सर प्रचलित रहते हैं। अब नेताओं के नाम से होते हैं। जोधपुर-राजकवि मुरारिदान का 'जसवंतजसोभूषण' में भाषाभूषण का जसवंतसिंह कृत बताना स्वाभाविक ही है! किन्तु रचना इनकी ही मानी जाएगी, क्योंकि दूसरा दावेदार है ही नहीं! इस पर दलपतिराय एवं वंशीधर⁴ ने सम्मिलित रूप से 'अलंकार-रत्नाकर' (1735 ई.) नामक श्रेष्ठ टीका लिखी। 'अलंकार-रत्नाकर' में अनेकानेक कवियों के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं तथा कवि-नामावली की दृष्टि से यह एक अमूल्य ग्रन्थ है। प्रतापसाहि की 'तिलक' एवं गुलाब कवि की 'भूषण-चंद्रिका' टीकाएँ भी प्रसिद्ध हैं, जबकि मुरारिदान के जसवंतजसोभूषण में टीका अधूरी है। 'विनोद' में इनके अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभव-प्रकाश, आनन्द-विलास, सिद्धान्त-बोध-सिद्धान्त-सार एवं प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक शीर्षक 6 वेदान्तपरक ग्रन्थों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह ने 'इच्छा-विवेक' (1668 ई.) शीर्षक अष्टम् कृति का उल्लेख किया है। महाकवि कृष्ण मिश्र कृत विख्यात 'प्रबोध-चन्द्रोदय' का इनके द्वारा किया गया अनुवाद बहुत सफल माना गया है, जिसमें ब्रजभाषा काव्य एवं गद्य दोनों का प्रयोग मिलता है। 'हिन्दी साहित्य-कोश' भाग 2 में डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित लिखते हैं, "सोमनाथ गुप्त तथा वीरेन्द्र शुक्ल ने कलात्मक दृष्टि से इसे हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक बताया है। यों इसमें नाटकीयता कम है और आध्यात्मिक तत्वों का विश्लेषण अधिक किया गया है। हिन्दी में इस नाटक के लगभग एक दर्ज़न अनुवाद हुए और इसकी शैली से प्रभावित होकर अन्य रचनाएँ प्रकाश में आईं। भारतेन्दु से पूर्व, शाहजहाँ के मुन्शी कनवासीदास⁵ का फ़ारसी-अनुवाद 'गुलज़ारे हाल', अनाथदास, सुरति⁶ मिश्र, ब्रजवासीदास, कविवर आनन्द, गुलाबसिंह, नानकदास, धौकल मिश्र, हरिवल्लभ, जनअनन्य कृत अनुवादों के साथ उल्लिखित होता है और भारतेन्दु

1. 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित का विवरण, पृष्ठ 212।

2. सर जटुनाथ सरकार : 'शिवाजी एंड हिज़ टाइम्स'—पृष्ठ 160।

3. कुख्यात मोहम्मदी-सांप्रदायिकता-शोषक एवं जातिवादी-हिंसा-पोषक पूर्व प्रधानमन्त्री विश्वनाथप्रताप सिंह (सत्ताकाल 1981-90 ई. के प्रायः 11 मास) भी जयचन्द्र-वंशधर हैं।

4. माण्डव ऋषि के आश्रम की स्थली। मैंने देखी है।

5. कवि वंशीधर मिश्र (रचनाकाल 1615 ई.); 'तुलसीदास का संक्षिप्त जीवन-चरित्र' से 'हुक्का हुआ' तक अनेक ग्रन्थों के प्रणेतृ वंशीधर मिश्र एम. ए. (रचनाकाल 1990 ई. के इधर-उधर) एवं 'आत्मानुशासन का अनुवाद' प्रस्तुत करने वाले वंशीधर शास्त्री (रचनाकाल 1920 ई. के इधर-उधर) से भिन्न।

6. वनवासीदास?

7. सुरति मिश्र? "सुरति मिश्र कनौजिया नगर आगरा वास"। सुरति नाम कभी नहीं सुना। ऐसी नामहत्या अशोभनीय भी है।

के समय श्री शीतलप्रसाद तथा अयोध्याप्रसाद चौधरी कृत अनुवादों का नाम लिया जाता है। इनमें महाराज जसवंतसिंह कृत अनुवाद शुद्ध की दृष्टि से अत्यन्त प्रशंसनीय हैं।¹ प्रसिद्ध ग्रन्थावलीकार आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'जसवंतसिंह-ग्रन्थावली' पर भी प्रशंस्य श्रम किया था।

'भाषाभूषण' कवियों के लिए अलंकार-निर्देशिका कार्य सम्पादित करता रहा है। दोहे के छोटे-से कलेवर में लक्षण एवं उदाहरण दोनों का समावेश वैदग्ध्यसूचक ही है। यह सत्य है कि इसमें चन्द्रालोक से अनुवाद भी किया गया है किन्तु इसकी हिन्दी-प्रस्तुति नितान्त प्रशंस्य है। नीचे 'विनोद' एवं 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' से इस ग्रन्थरत्न के क्रमशः पाँच दोहे उद्धृत हैं :

1. मुख ससि वा ससि सों अधिक उदित जोति दिन राति ।
सागर ते उपजी न यह कमला अपर सुहाति ।।
2. नैन कमल ये ऐन हैं और कमल केहि काम ।
गमन करत नीकी लगै कनक लता यह वाम ।।
3. धरम दुरै आरोप ते सुद्धापहुति होय ।
उर पर नाहिं उरोज ये कनकलता फल दोग ।।
4. परजस्ता² गुन और विषे आरोप ।
होय सुधाकर नाहिं यह बदन सुधाकर ओप ।।
5. अलंकार अत्युक्ति यह वरनत अतिसय रूप ।
जाचक तेरे दान तें भए कल्पतरु भूप ।।

सरयूराम पंडित

सरयूराम पंडित कृत 'जैमिनि-पुराण' जैमिनि³-विरचित महाभारत के अश्वमेध-पर्व की कथा पर आधृत बैसवाड़ी (वैसवारी) अवधी में रचित 36 अध्यायों का स्त्रीत महाकाव्य है जिसमें प्रेरक विश्वकवि तुलसीदास-विरचित रामचरितमानस की दोहा-चौपाई शैली का अनुगमन किया गया है तथा जो 1748 ई. (1805 वि.) में समाप्त हुआ था। अनेक उत्कृष्ट युद्ध वर्णनों से निम्न 'जैमिनि-पुराण' में प्रासंगिक रूप से लवकुशकाण्ड-जैसा रामकथा वर्णन भी है जो वाल्मीकि-रामायण के प्रक्षिप्त उत्तरकाण्ड की कथा से भिन्न है तथा जिसमें राम तक मूर्च्छित होते हैं। रामचरितमानस में सीतात्यागमूलक इन निराधार वृत्त का स्पर्श तक नहीं किया गया। यह सरयूराम पंडित का कौशल है कि उन्होंने तुलसी-त्यक्त विषय पर सृजन कर सफलता प्राप्त की है। इस महाकाव्य के नायक अर्जुन हैं। सरयूराम पंडित के जीवन पर कुछ भी ज्ञात नहीं है, किन्तु भाषा के आधार पर यह उन्नाव-रायबरेली जनपद दयाश-प्रसरित बैसवाड़े (वैसवारे) के लगते हैं।

महान् मिश्रबन्धु के अमर 'विनोद' में इन पर सन्तोषजनक एवं अध्ययन-पुष्ट सामग्री प्राप्त होती है, जिसका संक्षेपण आ. रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी-साहित्य का इतिहास), श्री रामबहोरी शुक्ल एवं डॉ. भगीरथ मिश्र (हिन्दी-साहित्य का उद्भव और विकास) इत्यादि और अतिसंक्षेपण डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह (हिन्दी साहित्य कोश भाग 2) इत्यादि में बिना स्रोताल्लेख की शुक्ल-प्रवर्तित परिपाटी के अनुरूप ही किया है। 'विनोद' से उद्धरण अवतरित है:

गुरुपदरज सम नहिं कछु लाहा। चिंतामनि पाइय चितचाहा।
गुरुपदपंकज पावन रेनू। कहा कलपतरु का सुरधेनू।।
गुरुपदरज प्रिय पावन पाए। अगम सुगम सब बिनहिं उपाए।।
गुरुपदरज अज हरि हर धामा। त्रिभुवन-बिभव बिस्व-विसरामा।।
गुरुपदरज अंजन दृग दीन्हे। परत सुतत्व चराचर चीन्हे।।
तब लगि जग-जड़ जीव भुलाना। परम तत्व गुरु जिय नहिं जाना।।

1. शुद्धपहुति (अलंकार)।

2. पर्यस्तापहुति (अलंकार)।

3. पूर्वमीमांसाकार जैमिनि से भिन्न। कवि।

श्रीगुरुचरन सरन सब पाई । रह्यौ न कछु कमनीय उपाई ॥
 श्रीगुरु पंकज पाउँ पसाऊ । स्रवत सुधामय तीरथराऊ ॥
 सुमिरत होत हृदय असनाना । मिटत मोहमय मन मल नाना ॥
 व्यापक ब्रह्म चराचर अंतर । ध्याइय परमहंस सिर ऊपर ॥

गुमान मिश्र

काव्यकलानिधि (महाकवि श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम् का नाना छन्द-निबद्ध स्वतन्त्रतवत् अनुवाद), कृष्णचन्द्रिका (उदयशंकर भट्ट ने संपादन किया है), अलंकार-दर्पण, गुलाल-चन्द्रोदय इत्यादि के प्रख्यात कवि गुमान मिश्र (रचनाकाल 1740-65 ई.—महोवा) के सात-आठ ग्रन्थ मिश्र युगलकिशोर 'ब्रजराज' ने देखे थे जिनमें अधिकांश अब तक अप्रकाशित हैं। 'विनोद'-कार मिश्रबन्धु ने केवल नैषध का अनुवाद देखा था, जिस पर वे लिखते हैं, "इन्होंने अनुप्रास साधारणतया अधिक लिखे हैं। इनकी भाषा प्रशंसनीय है। यह महाशय बहुत शीघ्र छन्द बदलते गए हैं। इनका अनुवाद ऐसा मनोहर बना है कि वह स्वतन्त्र ग्रन्थ के समान हो गया है। इनकी कविता में उत्कृष्ट छन्द बहुत हैं। यह महाशय केशवदास की रीति पर चले हैं, और छन्दों की चाल में यह ग्रन्थ रामचन्द्रिका-सा बना है। हम इनको पद्याकर की श्रेणी में समझते हैं। "आ. शुक्ल के शब्दों में "गुमान जी अच्छे साहित्यमर्मज्ञ और कलाकुशल थे।" बुन्देलखंड के होने के कारण ही नहीं प्रत्युत रुचि के कारण भी गुमान मिश्र पर केशवदास यत्र-तत्र-सर्वत्र छापे दीखते हैं। सम्भव है अन्य बुन्देलखंडी कवि पद्याकर इनसे प्रभावित हुए हों। इनकी कविता क्लिष्ट है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. देस प्रबाहन की सरिता सब ओर वहाँ बहुतै सरसानी।
 कानन कोठि अगोठि कुलाचल भार भरी धरनी अकुलानी ॥
 सूछम छाँह सरूप भई चित चाह नई निहिचै नियरानी।
 सीतल आप पियैं ससि मैं पर हीतल की तव ताप बुझानी ॥
2. नहाती जहाँ सुनयना नित बावली में। छूटे उरोदतल कुंकुम नीर ही में ॥
 श्रीखंड चित्र दृग-अंजन संग साजै। मानौ त्रिवेनि नित ही घर ही विराजै ॥

गोकुलनाथ¹

अपने पुत्र गोपीनाथ एवं शिष्य मणिदेव के साथ महाभारत ('हरिवंश' समेत) के नानाछन्दसम्पन्न श्लाघ्य अनुवादकर्ता, सीतारामगुणार्णव के रूप में अध्यात्म-रामायण के स्मरणीय अनुवादकर्ता, 'राधाकृष्णविलास' शीर्षक रसग्रन्थ, 'कवि मुखमंडन' शीर्षक अलंकार ग्रन्थ इत्यादि के प्रणेता गोकुलनाथ (रचनाकाल 1770-1830 ई.) प्रसिद्ध कवि रघुनाथ बंदीजन (जिनके रसग्रन्थ 'काव्यकलाधर' एवं अलंकारग्रन्थ 'रसिकमोहन' की अच्छी ख्याति रही है) के पुत्र थे। सबका वास काशी में रहा। महाभारत के स्फीत अनुवाद में चौवन वर्ष (1773-1827 ई.) का निर्णायक एवं सुदीर्घ समय लगा। गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव की त्रयी का हिन्दी-महाभारत निस्सन्देह नन्तय-तिक्कन-एर्न की त्रयी के तेलुगू-महाभारत से तुलनीय है। इस विषय पर तुलनात्मक शोध अपेक्षित है। इस अमर ग्रन्थ पर विशद प्रकाश डालने का प्रस्थान-कार्य भी महान् मिश्रबन्धु के अमर 'विनोद' में ही निष्पन्न हुआ जिसका सारांश परवर्ती साहित्येतिहासकार एवं लेखक देते रहे। मिश्रबन्धु लिखते हैं, "इन तीनों कवियों ने मिलकर काशी-नरेश महाराजा उदितनारायणसिंह की आज्ञा से संस्कृत महाभारत और हरिवंश का भाषा छन्दों में बड़ा ही विलक्षण और प्रशंसनीय अनुवाद किया। इसके द्वारा इन तीनों कवियों का कथा-प्रासंगिक भाषा-साहित्य पर बहुत बड़ा उपकार हुआ। कथा-प्रसंग का इतना बड़ा उत्कृष्ट ग्रन्थ और कोई भी नहीं है। इसमें कुल मिलाकर 1866 पृष्ठ हैं, और इन पृष्ठों का आकार रॉयल अठपेजी का दुगुना है। फिर भी ये छोटे टाइप में छपे हुए हैं।... इन्होंने केवल दोहा-चौपाई न लिखकर विविध छन्दों में रचना की। सवैया, घनाक्षरी, छप्पय, कुंडलिया आदि का प्राधान्य नहीं रखा और उठाय़ा, उसको कुछ दूर तक चलाया। इनकी कविता-शैली और शक्ति बहुत सराहनीय है।"

1. गोस्वामी गोकुलनाथ विख्यात हैं ही! एक अन्य (तीसरा) गोकुलनाथ पादरी भी हुआ है, जिसने 1883 ई. के आसपास कपूरथला के राजवरान को ईसाई रंग में रंगा था।

भापालालित्य एवं छन्दयोजना की दृष्टि से त्रयी-प्रसूत महाभारत पूर्णतः हिन्दी का अपना महाकाव्य लगता है। तीनों अनुवादकर्ता भाषा-शैली में इतने अन्योन्य हैं कि यदि पृथक् नामोल्लेख न होता तो यह विराट् कृति एक महाकवि की लगती। गोकुलनाथ ने आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराटपर्व एवं उद्योगपर्व का अनुवाद किया है जिनमें वनपर्व के केवल चार अध्याय इनके नहीं हैं। इन्होंने भीष्मपर्व के पाँच, द्रोणपर्व के चार तथा शान्तिपर्व के नौ अध्यायों का अनुवाद भी किया है। इस ऐतिहासिक एवं विराट् अनुवादकार्य में प्रेरक-कार्य गोकुलनाथ का ही रहा है, यद्यपि गोपीनाथ एवं मणिदेव ने भी समान-समान योगदान किया है। गोकुलनाथ को एक महाकवि की प्रतिभा प्राप्त थी। मिश्रबन्धु का इनको दास-श्रेणी में रखना न्यायसंगत नहीं क्योंकि दास अधिकतर शास्त्रनिरूपक पद्यकार मात्र हैं जबकि गोकुलनाथ सर्वत्र एक सुरम्य कवि लगते हैं। गोकुलनाथ कृत अनुवाद के दो अंश प्रस्तुत हैं :

1. लहि सुदेष्णा की सुआज्ञा नीच कीचक जौन। जाय सिंहनि पास जंवुक तथा कीन्हों गौन॥
लग्यो कृष्णा सों कहन यहि भाँति सस्मित वैन। इहाँ आई कहाँ ते, तुम कौन हौ, छवि ऐन॥
चंद्रवदनी कहहु हमसों सत्य सो अभिराम। भरी परभा काँति सों सुकुमारता की धाम॥
कमलनयनी अंग तो सब बसीकर के यंत्र। चारुहासिनि सुधा सेव बचन मोहन-तंत्र॥
2. द्रोणाचार्य कोपि तेहि पल में। पार्यौ प्रलय पांडवी दल मैं॥
बाणवृष्टि कर ब्यूह-विदारण। मर्दत भटन भूरि-भय-कारण॥
मंडल सम कोदंडहि कीन्हें। फिरत चक्रसम गुरुता लीन्हें॥
पुरुषसिंह द्विजवर की दपटैं। दावानलसम सर की लपटैं॥

गोपीनाथ¹

रघुनाथ बंदीजन के पौत्र एवं गोकुलनाथ के पुत्र गोपीनाथ (रचनाकाल 1800 ई. के आसपास) ने अपने पिताश्री एवं पिता-शिष्य मणिदेव के साथ मिलकर विराट् महाभारत ('हरिवंश' समेत) की अनुवादकत्रयी में एक अमर स्थान प्राप्त किया है। उन्होंने भीष्म पर्व एवं द्रोणपर्व के अधिकांश, शान्तिपर्व के तीस तथा अश्वमेधपर्व, आश्रमवासिकपर्व, स्वर्गरोहणपर्व के समग्र अध्यायों और हरिवंश का अनुवाद किया। यद्यपि इनका कोई अन्य ग्रन्थ नहीं मिलता तथापि कुछ स्फुट छन्द इधर-उधर मिल जाते हैं। गोपीनाथ अपने पिता गोकुलनाथ के सदृश विशेष प्रतिभाशाली न होते भी एक श्रेष्ठ कवि हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. तहाँ भीषम किए कार्मुक मंडलाकृत वेष। तजे बाण विशाल, अगणित, अतुल, अकथ, अलेष॥
कुपित अहि-से सरन सों सब दिशा दीन्हों छाय। हते अगणित द्विद, हय अरु रथिन के समुदाय॥
सर्वदिशि मैं फिरत भीषम कों सुरथ मन मान। लखे सब कोउ तहाँ भूप अलातचक्र समान॥
2. भीषम की गुरुता लखि ऐसी। पारथ की मृदुता लखि तैसी॥
मन मैं गुनत भए यदुनायक। नहिं कोउ भीष्महि जीतन लायक॥...
आजुहि भीष्म वीर जगजेना। हतिहि सर्व पांडव की सेना॥
भीष्म-द्रोण आदिक जे रन मैं। तिन्हें बधव अव हम यहि छन मैं॥
इमि कहि चक्र पानि मैं लीन्हें। करि भ्रामित ऊरध भुज कीन्हें॥
रथ ते कूदि सिंह सम परखत। चले भीष्म पै धीरन धरखत॥...
प्रभु को पाणिनाल बपु सरसो। लसो चक्र तहँ बारिज वर सो॥
रिस रबि-सों विकसित रण दिन मैं। निरखि रद्यो तहँ धीरज किन मैं॥
जानि कुरुन को क्षय सब राजा। भए प्रकपित सहित समाजा॥

1. महाप्रभु बल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र, 'साधन-दीपिका' शीर्षक संस्कृत-ग्रन्थ के लेखक गोपीनाथ एवं 'अखंड महायोग' 'भारतीय संस्कृति और साधना', 'तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि', 'तांत्रिक साहित्य', 'काशी की सारस्वत साधना' एवं 'हिस्ट्री ऑफ़ फिलॉसॉफी'—ईस्टर्न एंड वेस्टर्न, 'शाक्त फिलॉसॉफी' के मूर्खन्य तन्त्र-विद्वान् एवं महान् मनीषी स्वर्गीय महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज (1887 ई.) समनामी हैं—एक अन्य गोपीनाथ पुरोहित एम. ए. (1883 ई.) सुधारवादी युग के विख्यात हिन्दी-अंग्रेजी अनुवादक थे।

पुरुषसिंह अनुपम छवि छावत । कृष्णचंद्र कहैं निज दिसि आवत ।।
लखि भीषम करि अचल सरासन । करत भए हरि सो संभाषन ।।

मणिदेव

गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव की विराट् महाभारत ('हरिवंश' समेत) अनुवादकत्रयी के एक रत्न मणिदेव (निधन-वर्ष 1863 ई.) का कोई अन्य ग्रन्थ नहीं मिलता किन्तु इन्होंने राम पर अनेक स्फुट छन्द रचे थे जो मिश्रवन्धु ने देखे थे। यह भी वन्दीजन थे। भरतपुर से विमाता-दुर्व्यवहार के परिणामस्वरूप काशी चले गए जहाँ गोकुलनाथ के शिष्य के रूप में उन्हीं के साथ रहने लगे। इनका भी बहुत सम्मान हुआ। जीवनसंध्या में मणिदेव (निराला, राहुल, मुक्तिबोध इत्यादि के सदृश) विक्षिप्त² हो गए थे। यद्यपि मणिदेव का स्तर गोपीनाथ के सदृश ही है तथापि इनका अनुवाद अधिक स्पष्ट एवं अधिक प्रवाहपूर्ण है, हालाँकि यत्र-तत्र दुरुह हो जाता है। उदाहरण देखें :

1. इभि सुभटन सों टेरि पराक्रम भीम भट ।
दुस्सासन सन हेरि कहत भयो अमरख भरो ।।
तव तो सोनित-पान् करन कह्यौ हम मधि सभा ।
से अव करत सुजान सकत त्रान करि कौन भट ।।
नृप यह सुनि तो सुत रनधीरा³ । कहत भयो इमि बचन गँभीरा ।।
ये मम कर करिकुंभविदारन । देनहार गो-वाजि हजारन ।।
इनके बल तुम सरबस हारे । वर्ष त्रयोदस विपिन बिहारे ।।
2. भए तहँ अति करत विक्रम उभय योधा धीर ।
सहि परसपर गदा गरुई गनत नेकु न पीर ।।
गर्जि-गर्जि अखंड गति गहि अभय वीर उदंड ।
करत चालन दोरदंडनि चपल अतिशय चंड ।।
सब्य कोउ उपसब्य फिरि, जो सब्य सो अपसब्य ।
फिरत वाहत गदा गरुई सुभट भे अति भव्य ।।
सब्द सों भरि दियो अब्दहिं स्तब्द भे नहिं नेक ।
टूटि-टूटि अचूक बाहत गहे जय की टेक ।।

11. गद्य

यह सत्य है कि संसार-साहित्य का व्यवस्थित आरम्भ ऋग्वेद, गिलामेश¹ इत्यादि के साथ काव्य में प्रायः 5000 या 4500 वर्ष पूर्व हुआ था तथा रामायण के साथ भारतीय एवं इलिअड के साथ यूनानी के दोनों महानतम साहित्यों की परम्परा का श्रीगणेश हुआ। किन्तु यह भी सत्य है कि गद्य भी किसी-न-किसी रूप में लगभग इतना ही प्राचीन है जो यत्र-तत्र यजुर्वेद में एवं मिस्र के फिराऊन के मक़बरों (पिरामिडों) तथा उनमें प्राप्त पुरानिधियों पर अंकित विवरणों से स्पष्ट है। मोहेंजोदड़ो-लिपि पढ़ने के दावेदार डॉ. फ़तहसिंह एवं श्री कुर्त शिल्डमान ने इसकी भाषा संस्कृत मानी है तथा सिन्धु घाटी को द्रविड़ों से संबद्ध नहीं समझा सिन्धु-देश में द्रविड़ की गौरांग-कल्पना निराधार तो है ही! यदि ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, इलिअड, ओडिसी इत्यादि मानव-जाति के महान् ग्रन्थ काव्य में हैं, तो यजुर्वेद में यत्र-तत्र, उपनिषद् में पर्याप्त, शास्त्रों में सर्वत्र, बाइबिल (जो प्रायः एकसहस्र वर्ष की रचना-परम्परा से संपृक्त है

1. वस्तुतः मणिदेव बौद्धिककाल (1800 ई. से) के सन्धियुग (1800-50 ई.) के कवि थे, किन्तु स्वगुरु गोकुलनाथ एवं महाभारत-अनुवाद के कारण तत्कालीन शास्त्रीयकाल (1600-1800 ई.) में रखना अनुपयुक्त नहीं लगता।
2. स्व. मुकुटधर पांडेय भी विक्षिप्त हुए थे, किन्तु स्वस्थ होकर बहुत जिए।
3. संजय राजा धृतराष्ट्र से कह रहे हैं।
4. प्रायः 4500 वर्ष पूर्व का बड़ी ईंटों पर लिखा सुमेर-महाकाव्य जिसका शीर्षक गिलामेश नामक योद्धा पर है तथा जो मूलतः आर्य-महाकाव्य है।

तथा मोहम्मद ने अपनी पुस्तक 'कुरान' में जिसे जाली ठहराया है—शब्द स्वयं हिब्रू का न होकर यूनानी का है जहाँ ईसाइयत प्रायः पाँचवीं शताब्दी में प्रभावी हुई) में प्रायः सर्वत्र एवं कुरान (मोहम्मद 632 ई. में मदीना नगर में मरे किन्तु इस ग्रन्थ की प्रस्तुति तीसरे खलीफा उस्मान के समय 660 ई. में हुई अतः शत-प्रतिशत यथावत् होना कठिन है किन्तु पुस्तक प्रात्ययिक है) में सर्वत्र (अलंकृत गद्य जो गद्यकाव्य कहा जा सकता है जिसके कारण अनेक लोग मोहम्मद को पैगंबर नहीं प्रत्युत शायर मानते थे जिसका 'सूरे शुअरा' में मोहम्मद ने खंडन किया है)। अतः साहित्य में काव्य की सर्वोपरिता को स्वीकार करते हुए भी गद्य को भी प्रायः तद्वत् महत्वपूर्ण माना जा सकता है, प्रायः तद्वत् प्राचीन भी।

हिन्दी-गद्य का इतिहास पृथ्वीराज के पट्टों एवं अभिलेखों के साथ आरम्भ होता है, जो दिल्ली के महारौली (मिहिरावली) क्षेत्र कं कुत्यमीनार परिसर में खड़े चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य (राज्यकाल 375-413 ई.) के विख्यात लौहस्तम्भ (वस्तुतः मिश्रधातुस्तम्भ या अष्टधातुस्तम्भ) के निचले भाग में उत्कीर्ण शब्दों से अन्यत्र प्राप्त कतिपय प्रस्तरांकित शब्दों इत्यादि तक उपलब्ध हैं। गोरखनाथ की वार्ताओं का गद्य प्रात्ययिका न होते हुए भी उल्लेख्य है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर का मैथिल-गद्य ऐतिहासिक महत्व का है। गंग कृत 'चन्द छन्द वरनन की महिमा' का गद्य तो खड़ीबोली में है ही। 'दो सौ-वावन वैष्णवन की वार्ता' एवं 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' की संदिग्ध प्रात्ययिकता के बावजूद उनका ब्रजभाषा-गद्य ऐतिहासिक महत्व का है।

शास्त्रीयकाल के कुलपति जैसे कुछ आचार्यों में यत्र-तत्र ब्रजभाषा-गद्य का प्रयोग भी किया है। किन्तु इस काल में साधु एवं परिष्कृत खड़ीबोली-गद्य का समारंभ भी हुआ। इस सन्दर्भ में दौलतराम के रविषेणाचार्य कृत जैसे-पद्मपुराण का 700 पृष्ठों से अधिक आकार वाला हिन्दी-अनुवाद (1766 ई.) उल्लेख है, जिसका यह उद्धरण आ. शुक्ल ने दिया है :

“जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र विषै मगध नामा देश अति सुन्दर है, जहाँ पुण्याधिकारी बसे हैं, इन्द्र के लोक समान सदा भोगाभोग करे हैं और भूमि विषै साँठेन के बाड़े शोभायमान है। जहाँ नाना प्रकार के अन्नों के समूह पर्वत समान ढेर हो रहे हैं।”

प्रायः इसी समय (1773 ई. के लगभग) किसी अज्ञात लेखक का जोधपुर के प्रसिद्ध मांडव्याश्रम (मंडोवर) का वर्णन प्राप्त होता है जिसकी भाषा में विदेशी बोलचाल शब्द का प्रयोग भी हुआ है :

“अवल में यहाँ मांडव्य रिसी का आश्रम था। इस समय से इस जगे का नाम मांडव्याश्रम हुआ। इस लफ्ज़ का विगड़ कर मंडोवर हुआ।” (मंडोवर का वर्णन)

इन उदाहरणों से यह प्रतीति सम्भव है कि खड़ीबोली-गद्य अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दो रूपों में प्राप्त था: एक, पारम्परिक कथात्मक शैली, तथा द्वितीय, समसामयिक मिश्रित शैली। किन्तु अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रामप्रसाद निरंजनी कृत ‘भाषा योगवसिष्ठ’ (1741 ई.) का गद्य श्रेष्ठतर एवं आधुनातन गद्य का पूर्णरूप माना जा सकता है। निस्सन्देह, रामप्रसाद निरंजनी खड़ीबोली-गद्य के पितामह थे। आ. शुक्ल ने ठीक लिखा है, “जब तक और कोई पुस्तक इससे पुरानी न मिले तब तक इसी को परिमार्जित गद्य की प्रथम पुस्तक और रामप्रसाद निरंजनी को प्रथम प्रौढ़ गद्यलेखक मान सकते हैं।” दो उद्धरण अवतरित हैं :

1. प्रथम परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है जिससे सब भासते हैं और जिसमें सब लीन और स्थित होते हैं,....जिस आनन्द के समुद्र के कण से सम्पूर्ण विश्व आनन्दमय है, जिस आनन्द से सब जीव जीते हैं। अगस्त जी के शिष्य सुतीक्ष्ण के मन में एक सन्देह पैदा हुआ तब वह उसको दूर करने के कारण अगस्त मुनि के आश्रम को जो विधि सहित प्रणाम करके बैठे और विनती कर प्रश्न किया कि हे भगवन्! आप सब तत्वों और सब शास्त्रों के जाननहारे हो, मेरे एक सन्देह को दूर करो। मोक्ष का कारण कर्म है कि ज्ञान है अथवा दोनों हैं, समझाय के कहो। इतना सुन अगस्त मुनि बोले कि ब्रह्मण्य! केवल कर्म से मोक्ष नहीं होता और न केवल ज्ञान से मोक्ष होता है, मोक्ष दोनों से प्राप्त होता है। कर्म से अन्तःकरण शुद्ध होता है, मोक्ष नहीं होता और अन्तःकरण की शुद्धि बिना केवल ज्ञान से मुक्ति नहीं होती।

2. हे राम जी! जो पुरुष अभियानी नहीं है वह शरीर के इष्ट-अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता क्योंकि उसकी शुद्ध वासना है।मलीन वासना जन्मों का कारण है। ऐसी वासना को छोड़कर जब तुम स्थित होगे तब तुम कर्ता हुए भी निर्लेप रहोगे और हर्ष शोक आदि विकारों से जब तुम अलग रहोगे तब वीतराग भय-क्रोध से रहित रहोगे।जिसने आत्मतत्त्व पाया है वह जैसे स्थित हो वैसे ही तुम भी स्थित हो। इसी दृष्टि को पाकर आत्मतत्त्व को देखो तब विगत-ज्वर होंगे और आत्मपद को पाकर फिर जन्म-मरण के बन्धन में न आओगे।

रामप्रसाद निरंजनी ने उर्दू-शायरी और उर्दू-गद्य के उद्भव से पूर्व ही खड़ीबोली में ऐसा गद्य लिखा जो आज का लगता है। आ. शुक्ल ने फ़ारसी-मिश्रित खड़ीबोली या रेख्ता में शायरी शुरू होना औरंगज़ेब के काल (राज्यकाल 1658-1707 ई.) में लिखा है जो ग़लत है, क्योंकि नामदेव और कबीर ने भी ऐसी कविता लिखी थी तथा रेख्ता-शायरी मोहम्मदशाह रंगीले के काल में शुरू हुई, 'उर्दू' शब्द का एतद्विषयक प्रयोग तो मीर ने और बाद में किया। औरंगज़ेब की सांप्रदायिकता अवश्य हिन्दी-उर्दू के पार्थक्य का कारण मानी जा सकती है। वास्तव में उर्दू का भाषा-रूप भी हिन्दीजन्य है, साहित्य-रूप भी और प्रो. मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' ने इसे स्वीकार भी किया है।

12. कुछ अन्य रचनाकार

रामप्रसाद निरंजनी

“संवत् 1798 में रामप्रसाद निरंजनी ने ‘योगवासिष्ठ-भाषा’ बहुत ही परिमार्जित गद्य में लिखा।अब तक पाई गई पुस्तकों में यह योगवासिष्ठ ही सबसे पुराना है जिसमें गद्य आने परिष्कृत रूप में दिखाई पड़ता है। अतः जब तक और कोई पुस्तक इससे पुरानी न मिले तब तक इसी को परिमार्जित गद्य की प्रथम पुस्तक और रामप्रसाद निरंजनी को प्रथम प्रौढ़ गद्यलेखक मान सकते हैं।”

—आ. रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी-साहित्य का इतिहास)

आधुनिक हिन्दी-गद्य के वास्तविक जनक, “योगवासिष्ठ भाषा” के प्रस्तोता निर्गुणवादी-योगवादी रामप्रसाद निरंजनी (रचनाकाल 1741 ई.—पटियाला दरबार) लल्लूजी ‘लाल’, सदलमिश्र, सदासुखलाल ‘नियाज’, इंशाअल्लाह खाँ, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, राजा लक्ष्मणसिंह, भारतेन्दु एवं आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के सक्षम ‘पूर्वज’ थे, जिनका संस्कृतिष्ठ कर्तव्य पूर्ववर्ती गंग कृत ‘चन्द छन्द बरनन की महिमा’ (1570 ई.) एवं परवर्ती पं. दौलतराम के रविषेणाचार्य कृत ‘जैन-पद्मपुराण-भाषानुवाद’ (1766 ई.) से श्रेष्ठतर भी है और कथावाचकपन के बावजूद अधिक व्यवस्थित भी, जिसकी महान् आ. शुक्ल ने उचित प्रशंसा की है। उन्हीं के अमर इतिहास के उद्धरणों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करता हूँ :

1. प्रथम परब्रह्म परमात्मा को नमस्कार है जिससे सब भासते हैं और जिसमें सब लीन और स्थित होते हैं....जिस आनन्द के समुद्र के कण से सम्पूर्ण विश्व आनन्दमय है जिस आनन्द से सब जीव जीते हैं।केवल कर्म से मोक्ष नहीं होता और न केवल ज्ञान से मोक्ष होता है मोक्ष दोनों से प्राप्त होता है। कर्म से अन्तःकरण शुद्ध होता है मोक्ष नहीं होता और अन्तःकरण की शुद्धि बिना केवल ज्ञान से मुक्ति नहीं होती।

2. हे रामजी जो पुरुष अभिमानी नहीं है वह शरीर के इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष नहीं करता।....

जहाँगीर

वैसे तो ‘संगीतरागकल्पद्रुम’ में मुगल-बादशाहों पर लिखी या कही गई कविताएँ नामोल्लेख मात्र देखकर उन्हीं द्वारा रचित कह डाली गई हैं तथा अनेक शोधकर्ताओं ने उनका सम्यक् परीक्षण किए बिना ही वर्ण्य को वर्णनकर्ता मान लिया है (औरंगज़ेब और आजमशाह प्रभृति को तो बलात् हिन्दी-कवि बना डाला गया है) पर ‘तुजुके-जहाँगीरी’ या ‘जहाँगीरनामा’ का उत्कृष्ट फ़ारसी-गद्यकार (तथा जब-तब फ़ारसी-कवि भी) जहाँगीर (राज्यकाल 1605-1627 ई.) हिन्दी-कवि होने की सम्भावना-परिधि में आ सकता है। इसकी बादशाह बनने से पहले की रचनाओं में ‘सुलतान सलीम’ और बादशाह बनने के बाद की रचनाओं में ‘साह जहाँगीर’ छापोँ वाली कविताएँ प्राप्त होती हैं और इतिहासकार डॉ. ईश्वरीप्रसाद का इसे हिन्दी-कवि मानना सभीचीन है :

1.

अति छवि छाजत हैं ललना ! लोचन तिहारे । रंग रंगीले रसीले छबीले मोहन लजीले सौहैं खात जात झुकौ है कछु उझकौ है ऐसे सोहन होत हमारे ।।
अद्भूत रूप गोप बरनो न जाय कोटिक काम युति सुध बुध बिसारे ।
‘साह जहाँगीर’ जान-बूझ कर सकुचावत इन नैनन में रैन बिहारे ।।

2.

बनि बनिता आई पिय मन भाई, सौतिन मधि मानो फूली फुलवाई।
एकन सो नैन सैन, एकन सों मीठे बैन पाछे तें अंक भरत दूनी छवि छाई।।
उत मधुक्रतु फूली, इत कामबेली, पिय-तिय दोऊ भाँति इकदाई।
अति सुख दियौ दोऊ बिब सन राई, 'सुलतान सलीम' पिय रूसी मनाई।।'

शहरयार

शहरयार (1627 ई. में जहाँगीर के मरने पर सत्ता-संघर्ष में मारा गया) जहाँगीर का वह बेटा था जो नूरजहाँ² के पूर्व-पति शेर अफ़ग़ान से उत्पन्न पुत्री लाडली बेगम से ब्याहा गया था और नूरजहाँ जिसे बादशाह बनाना चाहती थी, यद्यपि अपने भाई आसिफ़ ख़ाँ (आसफ़ ख़ाँ) के द्वारा अपनी बेटी अर्जुमन्द बानो (बाद में मुमताज़ महल जो कालान्तर में मरने पर पहले बुरहानपुर में दफ़नाई गई और बाद में ताजमहल आगरा में) के पति ख़ुर्रम (बाद में शाहजहाँ) का पक्ष लेने के कारण असफल रही। शहरयार कभी-कभी हिन्दी-कविता लिख लेता था। एक छन्द देखिए जो अच्छा है और खड़ीबोली में है :

चौद से चकोर टले, मेघ से मोर टले, चोरी से चोर टले, दिल से दिलदार जो।
रोगी से रोग टले, भोगी से भोग टले, जोगी से जोग टले, कामी से नार जो।।
पर्वत से मेरु टले, धन से कुबेर टले, दिन का भी फेर टले बुरा हजार जो।
लेकिन 'शाहरयार' मानो यह एतबार, टले नहीं एतबार, होवे होनहार जो।।³

कादिर

कादिरबख़्श पिहानी (हरदोई) वाले (जन्म 1578 ई.) अपने मुक्तक छन्दों के कारण प्रसिद्ध हैं। मिश्रबन्धु के अनुसार, यह वल्लभ-संप्रदाय के भक्तों में भी परिगणित हैं। किन्तु इसका कोई पुष्ट आधार नहीं प्राप्त होता। इनकी कविता को देखते मिश्र-बन्धु ने इन्हें 'विनोद' के 'प्रौढ़ माध्यमिक प्रकरण' के 'तुलसी काल' में रखा है। आ. शुक्ल ने इन्हें 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के 'भक्तिकाल' के फुटकल खाते में डाला है। तथाकथित रीतिकाल बहुत दूरी तक रतिकाल था, जबकि कादिर का कथ्य भक्ति के निकट है; किन्तु समय को देखते इन्हें शास्त्रीयकाल से संपृक्त किया जा सकता है, जिसमें भक्तिकाव्य, विरक्तिकाव्य इत्यादि भी पर्याप्त रचा गया। कादिर का यह छन्द अमर है :

गुन कोन पूछै कोऊ औगुन की बात पूछै, कहा भयो दर्ई! कलिकाल यों खरानो है।
पोथी औ पुरान ज्ञान ठड्डन में डारि देत, चुगल चबाइन को मान ठहरानो है।।
कादिर कहत यासों कछु कहिबे को नहिं, जगत की रीति देखि चुप मन मानो है।
खोलि देखौ हियौ सब ओरन सो भाँति-भाँति, गुन ना हिरानो, गुनगाहक हिरानो है।।

लालचन्द (लब्धोदय)⁴

लालचन्द 'लब्धोदय' कृत 'पद्मिनी-चरित्र' (1650 ई.) पूर्ववर्ती हेमरतन कृत 'गोरा बादल पद्मिनी चउपई' की पुनर्प्रस्तुति मात्र होते हुए भी यत्किंचित् प्रसिद्ध रचना है जिसमें पटरानी प्रभावती के व्यंग्य पर उत्तेजित राजा रत्नसेन (रतनसी) सिंहलद्वीप जाते तथा पराक्रम के द्वारा पद्मिनी प्राप्त करते हैं। इस अभियान में औषड़नाथ नामक सिद्ध उन्हें सागरतट से सीधे सिंहलद्वीप पहुँचा देते हैं।

1. पोद्दार—अभिनन्दनग्रन्थ, पृष्ठ 364 (त्रुटियाँ मैंने सुधार दी हैं)।

2. दरिद्र ईरानी प्रवासी के रूप में आई मेहरुन्निसा। विदेशी मुगल दासता के युग में विदेशी मुसलमानों का ही वर्चस्व रहा।

3. नियतिवादी उद्गार जो स्वयं शहरयार पर सच उतरा!

4. डॉ. पीतांबरदत्त बड़थवाल द्वारा प्रयुक्त 'लब्धोदय' उपनाम (जो शुक्ल ने भी दुहरा दिया है) श्री अगरचन्द नाहटा ने ग़लत सिद्ध किया है। नाहटा के अनुसार, बड़थवाल ने लालचन्द 'लब्धोदय' की जिस 'लीलावती' पुस्तक का उल्लेख किया है, वह अन्य लालचन्द कृत 'लीलावती रास' है। मिश्रबन्धु ने 'इतिहास भाषा' (1586 ई.) नामक ग्रन्थ के प्रणेता लालचन्द का उल्लेख किया है जो अन्य ही प्रतीत होते हैं।

अनैतिहासिक लोककथा पर आधृत पद्मिनी-काव्य जायसी, हेमरतन, जटमल, लब्धोदय, संग्राम सूरि, गिरधीलाल इत्यादि¹ अनेक कवियों ने रचा है जो पदमावत के कारण ही गौरव पा सका है। जायसी ने लोककथा को सूफ़ी 'इश्क़हकीकी', हठयोग एवं काव्यकला से संपृक्त पूर्णरूप प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है जबकि अन्य कवि एकपक्षीय कथाकार मात्र हैं। पद्मिनी-चरित्र की कविता भी साधारणतर ही है :

1. तब तड़की बोली तितसे जी राखी मन धरि रोस। नारी आणों काँ न बीजो द्यो मत झूठो दोस।।
हम्मे कलेवी जीणा नहीं जी किसूँ करीजे बाद। पदमिणि का परणो न बीजी जिमि भोजन होय स्वाद।।
2. सिंहलद्वीप नो राजियो रे सिंहल सिंह समान रे। तसु बहण छै पदमिणि रे रूपे रंभ समान रे।।
जोबन लहचवैयाँ जायछे रे ते परणू भरतार रे। परतज्ञा जे पूरबै रे तासु बैर बरमाल रे।।

बनारसीदास जैन

'बनारसी-विलास' (घनाक्षरी, सवैया, छप्पन, दोहे चौपाई प्रभृति नानाछन्दयुक्त तथा गद्यसंपृक्त काव्यकृति) हिन्दी का एक स्मरणीय ग्रन्थ-समाहार है। 'नाममाला' (कोश) एवं 'अर्द्धकथानक' (55 वर्षों का स्वजीवनवृत्त जिसमें इनकी ही नहीं अपितु इनके युग की प्रात्ययिक झोंकी देखने को मिलती है) के प्रणेता जैन-कवि बनारसीदास (जन्मवर्ष—1586 ई., जन्मस्थान जौनपुर) एक प्रतिभाशाली जौहरी थे, जिनके जीवन में विरक्ति ने भारी प्रभाव डाला था। प्राचीन जैनाचार्य कुंदकुंदाचार्य² के दर्शनग्रन्थ 'समयसार' को इन्होंने प्राकृत से हिन्दी में प्रस्तुत किया जो दिगम्बर-श्वेतांबर दोनों प्रधान जैन-वर्गों में समादृत है—यह अनाटक-नाटक सवैया, कवित्त इत्यादि छन्दों में निबद्ध है। इनके निधन के कुछ ही बाद जगजीवन ने 'बनारसी-विलास' (1644 ई.) में इनकी प्रायः सारी छोटी-बड़ी 75 कृतियाँ संगृहीत की थीं। निस्सन्देह, यह एक स्फीत रचनाकार थे। 'हिन्दी जैन-साहित्य का इतिहास' में कामताप्रसाद जैन ने इन पर अच्छा प्रकाश डाला है। इन्हें 'विनोद' में मिश्रबन्धु ने तोष तथा 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आ. शुक्ल ने सुन्दरदास के स्तर पर प्रशंसित किया है किन्तु इस सन्दर्भ में मुझे 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में व्यक्त डॉ. रामसिंह तोमर के शब्द ही समीचीन लगते हैं, "इन छन्दोबद्ध कृतियों में काव्य की मात्रा बहुत ही कम है"। वस्तुतः कविता इनके कथ्य का माध्यम मात्र थी। इनके गद्य का भी ऐतिहासिक महत्व है।

हिन्दी के प्रथम आत्मकथाकार के नाते बनारसीदास जैन को साहित्येतिहास में एक निश्चित महत्व प्राप्त है। प्रसिद्ध जैन प्रकाशक एवं विद्वान् स्व. नाथूराम 'प्रेमी' ने 'अर्द्ध-कथानक' का संपादन किया था, सर्वत्र 'प्रस्थान'-विपन्न किन्तु विद्वान् आलोचक डॉ. नगेन्द्र ने इसी के प्रभाववश अपनी आत्मकथा का नाम 'अर्द्धकथा' रखा है। 'अर्द्धकथानक' निस्सन्देह 'अर्द्धकथा' नहीं हैं क्योंकि बनारसीदास जैन ने अपना जीवन पूर्णसत्य रूप में विवृत किया है। इस ग्रन्थ में प्राप्त युगचित्रण भी महत्वपूर्ण है। इनकी रचनाओं से उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. अब घर में बैठे रहे, नाहिन हाट बजार।
मधुमाला, मृगावती पोथी दोय उचार।।
2. काया सो विचार प्रीति, माया ही में हार जीति, लिए हठ रीति जैस हारिल की लकरी।
चंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्यों ही पायें गाड़ै पै न छाँड़ें टेक पकरी।।
मोह की मरोर सों मरम न ठौर पावैं, धावैं चहुँ ओर ज्यों बढ़ावैं जाल मकरी।
ऐसी दुरबुद्धि झूलि, झूठ के झरोखे भूलि, फूली फिरै ममता जँजीरन सों जकरी।।

3. सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो। संशय, विमोह, विभ्रम ये तीन भाव जाँचै नाहीं सो सम्यग्दृष्टी। संशय, विमोह, विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्त करि दिखाइयुत है सो सुनो।

1. 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के गिनाए नाम।

2. नई दिल्ली में 16 अक्टूबर, 1988 को इनके 2000 वर्ष पूरे होने पर विशाल आयोजन किया गया था। किन्तु समय विवादास्पद है।

शाहजहाँ¹

मुगल बादशाह शाहजहाँ (4 जनवरी, 1592²-22 जनवरी, 1666, जन्मस्थान लाहौर, मृत्युस्थान आगरा, राज्यकाल 6 फरवरी, 1628-21 जुलाई, 1658³) ने ऐश्वर्य की पराकाष्ठा (दिल्ली का लाल किला, जामा मस्जिद, आगरे का ताजमहल और वहाँ के लाल किले की खूबसूरत संगमरमरी मोती मस्जिद, मसुम्मन बुर्ज इत्यादि अजमेर के आनासागर⁴ का संगमरमरी पाल, कश्मीर का चश्माशाही, तख्तेताऊस, हीरा-कोहेनूर इत्यादि प्रमाण हैं) भी देखी, पतन (दार, शुजा एवं मुराद पुत्रत्रय के अन्त, स्वयं पुत्र औरंगजेब द्वारा बन्दी होना) को भी। शाहजहाँ का अन्त आहजहाँ था! बन्दी-जीवन में अस्वच्छ जल को लेकर उसने औरंगजेब के लिए प्रसिद्ध शेर लिखे थे जिनमें काफिर हिन्दुओं के पितरों को पावन जलदान का उल्लेख था।⁵ मुगल बादशाहों में बाबर तुर्की (तुजुकेबाबरी या बाबरनामा), ग्रन्थकार था तथा कभी-कभी शेर भी कह लेता था, अकबर अच्छी पर थोड़ी ब्रजभाषा-कविता रच गया है, जहाँगीर फ़ारसी (तुजुकेजहाँगीरी या जहाँगीरनामा) ग्रन्थकार था तथा आसानी से शेर रच लेता था और परवर्ती नामनिहाल बादशाहों में शाह आलम, अकबर द्वितीय, बहादुरशाह (द्वितीय) 'ज़फ़र' तो शायर 'भी' क्या शायर 'ही' थे। शाहजहाँ शायर या कवि न था किन्तु परिस्थितियों ने उससे शेर कहलाए, ब्रजभाषा-कविता लिखाई :

जनमत ही लख दान कियो अरु नाम धर्यो नवरंग बिहारी।
बालहिं सो प्रतिपाल कियो अरु देस मुलुक दियो दल भारी।।
सो सुत बैर बुझै मन में धरि हाय दियो बँधसार में डारी।
शाहजहाँ बिनवै हरि सों बलि राजिवनैन⁶ रजाय⁷ तिहारी।।

औरंगजेब को नौरंगजेब⁸ या नौरंगशाह⁹ कहा जाता था। यह नामकरण उसके रंगीले बाबा जहाँगीर ने दिया था (जैसेकि शाहजहाँ का मूल नाम खुर्रम अकबर ने रखा था) जो 'यथा नाम तथा गुण' से एकदम विपरीत रहा क्योंकि औरंगजेब ललित कलाओं (संगीत, नृत्य नाटक, रसरंग इत्यादि) का भयानक विरोधी था (दिल्ली में संगीत का जनाज़ा निकलवाया था)। उस-जैसा ठूँठ बादशाह नहीं मिलता!

'संगीतरागकल्पद्रुम'¹⁰ में शाहजहाँ की हिन्दी-कविता की जो बानगियाँ दी हैं, वे मुझे प्रातयायिक नहीं लगतीं क्योंकि उनमें वह वर्ण्य है वर्णनकर्ता नहीं।

मुगल-बादशाह का हिन्दीप्रेम अकबर से आरम्भ हुआ और औरंगजेब तक बराबर चला। 'संगीतरागकल्पद्रुम' में औरंगजेब की हिन्दी-कविता प्रात्ययिक नहीं है क्योंकि वह वर्ण्य है वर्णनकर्ता नहीं तथा उसकी रुचि भी श्रृंगारिक न थी, किन्तु उसके दरबार में हिन्दी-कवि विद्यमान रहते थे, इसमें सन्देह नहीं। शाहजहाँ के दरबार में अनेक हिन्दी-कवि विद्यमान रहते थे जिनमें चिन्तामणि एवं सुन्दर विशेष उल्लेखनीय है। प्रख्यात संस्कृत काव्याचार्य¹¹ एवं कवि पंडितराज जगन्नाथ भी उसके दरबार में रहे तथा 'यवनी नवनीत-कोमलांगी' पर आसक्त हुए। अतः उक्त छन्द शाहजहाँ का हो सकता है, जैसाकि प्रसिद्ध भी है।

1. मारवाड़ के राजा उदयसिंह (मोटा राजा) की पुत्री जगत गोसाई और सलीम (बादशाह के रूप में जहाँगीर) का पुत्र। मूल नाम खुर्रम (सुखद)।
2. रबी (1) मास के अन्तिम दिन, 1000 हिजरी (अकबरनामा—अबुल फ़ज्जल, 'हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया'—डॉ. ईश्वरीप्रसाद, पृष्ठ 530)।
3. इस दिन औरंगजेब बादशाह बना। (हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, डॉ. ईश्वरीप्रसाद पृष्ठ 575)।
4. अजयपाल (अजयमेरु या अजमेर के प्रतिष्ठापक) के वंशज अर्णोराज (आना) द्वारा निर्मित।
5. शाहजहाँ ने हिन्दू-पुत्रों की प्रशंसा की, जहाँगीर (तुजुकेजहाँगीरी या जहाँगीरनामा में) ने हिन्दू-स्त्रियों की (उन्हें मुसलमान-स्त्रियों से श्रेष्ठतर बताते हुए)।
वैसे, दोनों हिन्दुत्व के विरोधी थे। पर जादू वह जो सर पर चढ़कर बोले!
6. हरि और राजीवनयन प्रयोग रहीम और रसखान का स्मरण कराते हैं!
7. सम्राटों को भी 'राजाज़' (रजाय) का पालन करना पड़ता है!
8. भूषण के द्वारा बारंबार (...सुनौ नवरंगजेब...)।
9. सबलसिंह चौहान द्वारा बारंबार (नौरंगशाह दिलीपति भारी)।
10. यह ग्रन्थ प्रात्ययिक नहीं है।
11. 'रसगंगाधर' के अमर प्रणेता।

जलालुद्दीन

जलालुद्दीन (रचनाकाल 1640 ई. के लगभग) का व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुत कुछ अज्ञातप्राय है यद्यपि इनका उल्लेख शिवसिंह, ग्रीयर्सन इत्यादि ने किया है तथा कहा जाता है कि इनके छन्द 'हज़ारा' (कालिदास त्रिवेदी) में मिलते हैं। 'काजल' पर पहेली देखिए :

आदि के अंक बिना जग जीवन मध्यम के जग हीन कहावै ।
अंत बिना सगरो जग है बस जाहिर जोति मु यों छबि छावै ।।
अंक जिते जग लोक 'जलालदी' जो मनसा तिय को अति भावै ।
स्याम के अंग में रंग प्रसिद्ध है पंडित होय सो अर्थ बतावै ।।

भरमी

'मूँछ-साहित्य' एक ललित निबन्ध का रोचक विषय है। हालाँकि मूँछ का वह दबदबा अब नहीं रहा जो कभी था; फिर भी, वह कालातीत न तो हुई है और न कभी होगी ही। मूँछ कटा कर नारी-अभिनय करने पर भारतेन्दु के चाचा का ठीक मंच पर जूता लेकर भतीजे को पछियाना तथा प्रतापनारायण मिश्र का पिता से आज़ा लेना 'ऐतिहासिक' घटनाएँ हैं। ऊँची-मूँछ, नीची मूँछ, "मूँछ नहीं तो कुछ नहीं" इत्यादि मुहावरों-कहावतों का प्रयोग आज भी दनादन किया जाता है—बेमूँछ तक करते हैं! मोहेंजोदड़ो-छाप गुलमुच्छे, राजपूत-छाप माला-मूँछ, पंडित-छाप सादा मूँछ, बनिया-छाप बकरा-मूँछ, ओष्ठ पर कटी तथा शेष मुख पर फैली (दाढ़ी-युक्त) मियाँ-छाप-मूँछ इत्यादि का ऐतिहासिक विश्लेषण सचमुच गम्भीर कार्य है। अल्लामियाँ की मूँछ का रंग काला है या सफ़ेद? इस प्रश्न का उत्तर भी सरल नहीं है! साम्यवादी अंग्रेज़ी-कथाकार मुल्कराज आनन्द की 'मूँछों का जोड़ा' कहानी बहुत रोचक है। अनूप शर्मा का यह क्रमालंकार-सम्पन्न तुलनात्मक दोहा आज तक प्रसिद्ध है:

कहाँ बिहारीलाल¹ हैं कहाँ दुलारेलाल²।

एक मूँछ का बाल है, एक पूँछ का बाल ।।

कवि भरमी (रचनाकाल 1650 ई. के आसपास) की कोई रचना उपलब्ध नहीं है, केवल कुछेक स्फुट छन्द मिलते हैं, जिनमें मूँछ-महत्व का निरूपण करते हुए वे एकदम बेभरमी हैं :

जिन मुच्छन धरि हाथ कछु जग सुजस न लीनो ।
जिन मूच्छन धरि हाथ कछू परकाज न कीनो ।।
जिन मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी ।
जिन मुच्छन धरि हाथ कबौं पर पीर न जानी ।।
तब मुच्छ नहीं वह पुच्छ सम कबि भरमी उर आनिए ।
चित दया दान सनमान नहिं मुच्छ न तेहि मुख जानिए ।।

छत्रसाल

राजा धंग³, राजा गंड⁴, राजा परमाल⁴ (परमर्दिदेव, परमर्दिन), आल्हा, ऊदल, मलखान, भारतीचन्द्र⁶, वीरसिंह⁷, हरदौल, सारंधा⁸, जुझारसिंह, चम्पतराय, झौंसी की रानी लक्ष्मीबाई⁹ जैसे वीरों की भूमि बुन्देलखण्ड मेवाड़ से तनिक भी कम वीरभूमि नहीं है तथा तुलसी,

1. 'सतसई' वाले महाकवि बिहारी।

2. दुलारे-दोहावली' वाले पं. दुलारेलाल भार्गव (जिन पर बदरीनाथ भट्ट ने 'टटोलू राम टलास्त्री' हास्यनिबन्ध लिखा था)।

3. 'काला भीरा' उपन्यास (बुन्देलखण्ड-गीरव अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य') के नायक भी। विश्व के वास्तविक आश्चर्य कलालोक खजुराहो के एक निर्माता।

4. 'खुजुराहा की अतिरूपा' उपन्यास (दिव्य) के नायक भी। खजुराहो के प्रमुख निर्माता।

5. परमालरासो या आल्हखण्ड या आल्हा (जगनिक) के प्रेरक, जगनिक या जगनायक के आश्रयदाता।

6. जिन्होंने शेरशाह सूरी का वध किया (मुस्लिम इतिहासकारों को बरूदखाने में आग से मरने की कल्पना करनी पड़ी—हिन्दू मुसलमान और वह भी सुल्तान को मारे : लाहौलविलाकूत! "अयोध्या राम की नहीं, बाबर की" यह नया मोहम्मदी इतिहास है)।

7. वीरसिंहदेवचरित (महाकवि केशवदास) के नायक! अबुल फ़ज़ल को मारा। जहाँगीर के मित्र।

8. 'रानी सारंधा' कहानी (प्रेमचन्द) की अद्भुत वीरंगना-नायिका।

9. विश्व-इतिहास की सर्वश्रेष्ठ वीरंगना, 'झौंसी की रानी लक्ष्मीबाई' उपन्यास (वृन्दावनलाल वर्मा) एवं स्वतन्त्रता-संग्राम का आल्हा 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झौंसी वाली रानी थी' कविता (सुभद्राकुमारी चौहान) की नायिका भी। जीवन-काल 1835-58 ई. जन्मस्थान काशी, बलिदानस्थान ग्वालियर।

केशव, विहारी, पद्माकर, ठाकुर (तृतीय), बोधा, काली कवि, मैथिलीशरण, सियारामशरण, मुन्शी अजमेरी, वृन्दावनलाल वर्मा, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' इत्यादि साहित्यकार इसे साहित्यिक गौरव में मेवाड़ से बहुत-बहुत अधिक श्रेष्ठतम सिद्ध करते हैं। मेवाड़ में चित्तौड़ है तो बुन्देलखण्ड में कालिंजर। मेवाड़ में हन्दीघाटी है, बुन्देलखण्ड में ग्वालियर और महोबा ऊपर से। मेवाड़ में विजय-स्तम्भ (चित्तौड़) है, तो बुन्देलखण्ड में खजुराहो। मेवाड़ में नाथद्वारा है, तो बुन्देलखण्ड में चित्रकूट। कुल मिलाकर, बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक, वीरत्वपूर्ण, साहित्यिक, शिल्पकलागत गौरव की समता संसार का कोई तद्वत् क्षेत्र नहीं कर सकता।

इसी अतुलनीय वीर-भूमि बुन्देलखण्ड के एक अजर-अमर रत्न छत्रसाल¹ (1649²-1731 ई.) कवियों के कल्पतरु भी थे, स्वयं कवि भी।³ अजेय योद्धा छत्रसाल बुन्देला प्रताप एवं शिवाजी के समकक्ष मध्यकालीन भारतीय इतिहास के एक सर्वाधिक सफल राष्ट्रनेता थे, जो यद्यपि आपसी फूट के कारण बुन्देला वीरों को संगठित कर विदेशी म्लेच्छ साम्राज्य को ध्वस्त करने में सफल तो न हो पाए किन्तु अपने पराक्रम, रणकौशल, कूटचातुर्य इत्यादि के कारण अपेक्षाकृत एक विशाल राज्य अवश्य स्थापित कर गए, 'आधुनिक बुन्देलखण्ड' की स्थापना अवश्य कर गए। अपार शारीरिक शक्ति एवं सौन्दर्य के धनी छत्रसाल को अपार शील भी प्राप्त था, वे "ऐ रे गुरु ज्ञानी, अभिमानी भए होत कहा, नामी नर होत गरुड़गामी के हेरे ते" के उद्घोषक थे। कहावत प्रचलित है: छत्रसाल महाबली करियो भली-भली! छत्रसाल को राम का एक विनम्र उत्तराधिकारी कहा जा सकता है। उनकी नम्रता अतुलनीय थी : एक बार भूषण के स्वागत में पालकी पर कन्धा लगा दिया, जिसकी प्रतिक्रिया में कवि ने यह कवित्त गढ़ा-पढ़ा:

राजत अखंड तेज, छाजत सुजस बड़ो, गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को।

जाहि के प्रताप सों मलीन आफताव होत, ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को।।

साज सजि गजतुरी पैदल कतार दीन्हें, भूषन भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को।

और राव राजा एक मन में न ल्यौयू अब, सिवा' कौ सराहौ कै सराहौ छत्रसाल को।।

भूषण के अतिरिक्त के दरवारी कवियों की संख्या बयासी थी, जिसमें लाल (इस नाम के कई कवि हैं—यह लाल कवि गोरेलाल पुरोहित थे), चिन्तामणि (भूषण एवं मतिराम के अग्रज आचार्य-कवि चिन्तामणि से भिन्न), नेवाज, भगवत, हरिकेश, नवरंग, वख्शी हंसराज, केशवराज, हिम्मतसिंह तथा प्रतापसिंह बन्दीजन प्रमुख थे। परवर्ती करन कवि⁴ (कर्ण ब्राह्मण) ने भी छत्रसाल का गुणगान किया है। रत्नाकर, अंबिकेश, सेवकेन्द्र त्रिपाठी प्रभृति कवियों ने उन पर उत्कृष्ट वीर-छन्द रचे हैं। 'छत्रसाल पर रचित साहित्य' शोध का उत्तम विषय है। छत्रसाल ने सन्त-कवि अक्षर अनन्य को गुरु मानकर उनसे प्रेरणा प्राप्त की थी और वे योगी प्राणनाथ के भी शिष्य थे। उनका "कीर्ति के बिरवा कवि हैं इनको कबहूँ कुहिलाल न दीजै" उद्गार दूरदर्शितापूर्ण भी है, उदारतापूर्ण भी। छत्रसाल की कविता में उनके महान् व्यक्तित्व का शक्ति एवं शील गरिमापूर्वक व्यक्त हुआ है :

1.

ध्याननि में ध्यानी और ज्ञाननि में ज्ञानी अहौं,

पण्डित पुरानी प्रेम बानी अरथाने को।

1. 'छत्रप्रकाश' काव्य (लालकवि—गोरेलाल पुरोहित) जिसे डॉ. महेन्द्रप्रतापसिंह ने 'छत्रप्रकाश' शीर्षक से संपादित किया है, 'जूंठी पातर' उपन्यास (अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य') इत्यादि के नायक भी। डॉ. महेन्द्रप्रतापसिंह ने 'ऐतिहासिक प्रमाणवली और छत्रसाल' (1975 ई.) शीर्षक एक प्रशस्त्य एवं प्रामाणिक ग्रन्थ भी संपादित किया है। उन्होंने अपेक्षाकृत अधिक आत्मपरक 'भगवंतराय खींची और उनके मण्डल के कवि' शोधप्रबन्ध से भी बढ़कर वस्तुपरक शोध छत्रसाल पर किया है।
2. शुक्रवार, ज्येष्ठ शुक्ल 3, सं. 1706 वि.। जन्मस्थान महोबा। द्र. है 'हिन्दूकुलगौरव वीर छत्रसाल' ग्रन्थ (ले. परशुराम गोस्वामी)
3. द्रष्टव्य है वियोगीहरि संपादित 'छत्रसाल-ग्रन्थावली'। इनके एक वंशज स्व. सन्तोषसिंह बुन्देला (छतरपुर) बुन्देली के श्रेष्ठ कवि थे तथा खड़ीबोली में भी अच्छी कविताएँ लिखते थे।
4. 'वर्तमान काल' के कारण 'साहू कौ सराहौ के सराहौ छत्रसाल को' पाठान्तर ठीक नहीं लगता—कवि के शब्द स्पष्ट करते हैं कि 'सिवा' एवं 'छत्रसाल' दोनों जीवित हैं (महान् शिवाजी के पुत्र संभाजी के पुत्र साहू कालान्तर में छत्रपति बने और उनका व्यक्तित्व भी भूषण-प्रशस्ति-योग्य न था)।
5. जोधपुर के करन कवि (1731 ई. में विद्यमान) एवं पन्ना के करन कवि (1738 ई. में विद्यमान 'विहारी सतसई' की 'साहित्य चन्द्रिका' टीका के प्रणेता) से भिन्न 'साहित्यरस' (1804) एवं 'रसकल्लोल' इत्यादि के प्रणेता इन्होंने छत्रसाल के अवसान का वर्णन किया है, यशगान भी। करनस बन्दीजन अकबर के दरवारी कवियों में थे, जिन्हें करन कवि या कर्ण कवि भी कहा जाता है। कर्ण कवि या करन कवि या करनस बन्दीजन (1600 ई. के लगभग—अकबर के दरवारी कवि एवं नरहरि महापात्र के मित्र), करन कवि (1731 ई. के आसपास—जोधपुर वाले), करन कवि (1738 के आसपास—पन्ना वाले) के यह करन कवि या कर्ण ब्राह्मण परवर्ती हैं।

- साहब सौं सच्चा, कूर करमन में कच्चा,
छत्ता चंपत को बच्चा सेर सूर बीर बाने को ।।
मित्रन को छत्ता, दीह सत्रुन को कत्ता,
सदा ब्रह्मरसरत्ता, एक कायम ठिकाने को ।।
नाहिं परवाही, न्यारा नौकिया सिपाही,
मैं तो नेही चाह चाही एक स्यामा-स्याम पाने को ।।
2. रैयत सब राजो रहे, ताजी रहै सिपाह ।
छत्रसाल वा नृपति को बल न बाँकौ जाह ।।
3. स्वामी! तेरे राज्य में रामराज्य फिर होय ।
जित-जित तेरा मन चले तेरी सत्ता होय ।।
4. जो बीती गज-ग्राह पर सो गति भई है आज ।
बाजी जाति बुँदेल की राखो बाजी लाज ।।
5. अपुनो मनभायौ कियौ गहि गोरी सुलतान ।
सात बार छाँड़्यौ नृपति कुमति करी चहुवान ।।
कुमति करी चहुवान ताहि निंदत सब कोऊ ।
अंसुर बैर इक बार पकरि काढ़े दृग दोऊ ।।

दूसरा दोहा (उक्त संख्या 3) छत्रसाल ने अपने गुरु प्राणनाथ के इस कथन पर कहा था :

छत्ता! तेरे राज्य में धक-धक धरणी होय ।
जित-जित घोड़ा मुँह करै तित-तित फत्ते होय ।।

तीसरा दोहा (उक्त संख्या 4) मोहम्मद ख़ाँ बंगश के आक्रमण पर (1728 ई.) पेशवा बाजीराव को लिखा गया था; जिन्होंने सचमुच बाजी रख ली और छत्रसाल के तृतीय पुत्र बने! इस समय यह महान् योद्धा अस्सी वर्ष का था। पाँचवें छन्द में नीतिज्ञ योद्धा ने पृथ्वीराज चौहान की उचित आलोचना की है। जिसमें सात युद्धों में विजय पृथ्वीराजरासो के अनुकूल है (जनमान्यता सत्रह और इक्कीस तक जाती है तथा स्थूल इतिहास एक या कहीं-कहीं दो तक)।

यह सत्य है कि छत्रसाल ने थोड़ी कविता रची या कही और वह भी कवि के रूप में नहीं अपितु राजा एवं स्वातन्त्र-योद्धा के रूप में पर वह कर्तव्यप्रेम एवं भक्ति को विवृत करती है तथा उनके महान् व्यक्तित्व को उजागर करने के कारण चिरस्मरणीय है। बुँदी में छत्रसाल हाड़ा नामक महाराज हुए जो वीर भी थे। छत्रशाह देव नामक सिंगरौली (मिश्रबन्धु ने 'सिंहरौली' लिखा है) के महाराजा ने भी राग-रागिनियों पर आधुत 'पद-रचनावली' नामक ग्रन्थ रचा था। किन्तु इन दोनों का छत्रसाल बुन्देला से कोई सम्बन्ध नहीं है।

करन कवि

252 छन्द्रीय 'रसकल्लोल' के रसभेद, ध्वनिभेद, गुणादि के विशद निरूपणकर्ता, महान् स्वातन्त्र्य-योद्धा हाड़ा-वंशीय छत्रसाल² बुन्देला के पुत्र पन्ना-नरेश हिन्दूपति के आश्रित करन कवि (कविताकाल 1700 ई. के आसपास)³ ने प्रांजल ब्रजभाषा में सफल काव्यरचना की है। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित लिखते हैं : 'इस नाम के तीन लेखकों' का उल्लेख 'सरोज'-कार⁴ ने किया है। एक करन कवि बन्दीजन जोधपुरवाले हैं जिनका उपस्थितिका सन् 1731⁶ (सं. 1787) बतलाया गया है।

1. इत जमुना उत नर्मदा, इत चंबल उत टीस । छत्रसाल सौं लड़ने की काहुँ रही न हौंस ।।
2. एक अन्य छत्रसाल महोबा (उत्तर प्रदेश के बुन्देलखंड अंचल में—बुन्देलखंड मध्य प्रदेश तक प्रसरित है) में हुए। हिन्दी पर चार छत्र!
3. संवत् 1757 (विक्रमी)—'खोज' और तदनुसार 'विनोद' में (जो ठीक लगता है)।
4. चौथे करन या कर्ण करनेस बन्दीजन जब-तब अकबर के दरबार में भी जाते थे। लेखकों की जगह कवियों लिखना ठीक होता।
5. ठाकुर शिवसिंह सेंगर।
6. ईसवी। सन् हिजरी भी होता है (जैसे संवत् शक भी)।

दूसरे करन भट्ट पन्ना-निवासी हैं जो सन् 1738¹ में उपस्थित थे और जिन्होंने वन्देल-वंशावतंश राजा सभासिंह हृदयसाहि पन्ना-नरेश की आज्ञा से 'विहारी-सतसई' की 'साहित्य-चन्द्रिका' नामक टीका लिखी है। तीसरे हैं कर्ण ब्राह्मण बुन्देलखंडी जिनका उपस्थितिकाल सन् 1801² (सं. 1857) बतलाया गया है और जो राजा हिन्दूपति पन्ना-नरेश के यहाँ थे।.... तीनों लेखकों³ में इन अन्तिम की ही विशेष प्रतिष्ठा है। डॉ. दीक्षित का समय-निर्धारण ठीक नहीं लगता, क्योंकि छत्रसाल का देहान्त 1731 ई. में हुआ था। यह करन कवि कवि कुलीन कान्यकुब्ज पाण्डेय थे। जिनके उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. खल-खंडन, मंडन-धरनि, उद्धत उदित उदंड।
दल-मंडन, दारुन समर हिंदुराज भुजदंड।।
2. भौरनि को कंज, राजहंसनि को मानस, चंद्रमा चकोरन को, 'करन' बितै गयो।
सुजन को कामतरु, कान्ह ब्रजमंडल को, जलद पपीहन को काहू ने रितौ गयो।।
दीपनि को दीप, हीरा-हार दिगबालनि को, कोकनि को वासरेस देखत चितै गयो।।
छत्ता छितिपाल छितिमंडल उदार, धीर, धरा को अधर जो समेरु धौं कितै गयो।।⁴
3. कंटकित होत गात बिपिन-समाज देखि, हरी हरी भूमि हेरि हियो लरजतु है।
एतै पै 'करन' धुनि परत मयूरनि की, चातक पुकार तेह ताप सरजुत है।।
निपट चवाई भाई-बंधु, जे बसत गाउँ, दाउँ परे जानि न कोई बरजतु है।
अरजो न मानी तू न गरजो चलत बेर, ए रे घन! बैरी अब काहे गरजतु है।।

मीर जलील⁵

अनेक मुगल-बादशाहों के कृपापात्र मीर जलील (1662-1726 ई., बिलग्राम, जनपद हरदोई) अरबी-फ़ारसी के विद्वान् और हिन्दी-कवि थे। प्रसिद्ध कवि 'रसलीन' (विहानी, हरदोई) इनके भांजे थे। इनके प्रशंसकों में हरिवंश मिश्र एवं उनके पुत्र दिवाकर मिश्र उल्लेखनीय हैं। कहते हैं, इन्होंने 'प्रेमकथा' लिखी थी। इनके स्फुट छन्द ही प्राप्त हो सके हैं। तीन बरवे देखें जो रहीम और तुलसी (क्रमशः 'बरवै-नायिकाभेद' और 'बरवै-रामायण') की अवधी-परम्परा के अनुरूप हैं :

अधम-उधारन नमवाँ सुनि करि तोर। अधम काम की बढियाँ गहि मन मोर।।
मन-बच-कायक निसि-दिन अधमी काज। करत-करत मन भरिगा हो महाराज।।
बिलग्राम कर बारसी मीर जलील। तुम्हरी सरन गहि गाढ़े ऐ निधिशील।।

बुल्लाशाह⁶ (बुल्लेशाह⁷)

बुल्लाशाह (बुल्लेशाह) का देहान्त 1753 ई. में कसूर⁸ (अब पाकिस्तान में) में हुआ। इनके सम्बन्ध में अनेक विवादास्पद कथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें से एक के अनुसार इनका जन्म 1703 ई. में रोमानिया में हुआ था, किन्तु ये यह सैयद ही (पूर्ववर्ती शर्मद शहीद की तरह गौरांग नहीं)। 'बुल्लाशाह की सी हरफ़ी' निर्णसागर प्रेस (मुम्बई) ने छापी थी। यह एकदम आज़ाद फ़क़ीर थे जिनके इश्क़हकीकी

-
1. इसवी।
 2. इसवी।
 3. कवियों।
 4. हिन्दूपति के पिता एवं बुन्देलखंड-सूर्य छत्रसाल बुन्देला के निधन पर रचा गया उत्कृष्ट छन्द।
 5. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष 37, अंक 1-4, सं. 2025) के डॉ. शैलेश जैदी के 'बिलग्राम के मुसलमान हिन्दी-कवि' लेख में मीर जलील का वंशवृक्ष (पृष्ठ 166) दिया गया है जिसे 'मध्ययुगीन हिन्दी के सूफ़ी-इतर मुसलमान कवि' में डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव ने अवतरित किया है।
 6. एक बुल्ला साहब भुक्कुड़ा (गाजीपुर) में भी हुए जो प्रायः समसामयिक थे।
 7. बेशक मन्दिर-मस्जिद तोड़ो, बुल्लेशाह ये कहता।
पर प्यार-भरा दिल कभी न तोड़ो, इस दिल में रब रहता।।
 8. प्राचीन कुशपुर। मोहम्मद अली जिन्ना (जिन्नाह) ने अपनी दैनन्दिनी में लिखा था कि मुझे फ़ख़ है कि मेरे पुरखे कुशपुर या कसूर के निवासी क्षत्रिय या खत्री थे और मैं राम का वंशज हूँ! जिन्ना शिया थे। संयोगात् कराची में पैदा हुए थे। वहीं मज़ार भी है।

में सूफियाना अन्दाज़ भी दिखाई दे जाता है तथा तत्त्वनिरूपण में औपनिषदिक अथवा संतमत का प्रभाव भी। इनकी संतभाषा को खड़ीबोली कहा जा सकता है, जिस पर मुसलमान होने के कारण अरबी-फ़ारसी तथा पंजाबी होने के कारण पंजाबी का प्रभाव एकदम स्वाभाविक है :

1. ज़ाला¹ ज़रा भी शक्क ना रख मन तैं ।² तुम्हीं होस वेशक्क खुद खसम साँई ।।....
शीन³ शुबह नाहीं ज़रा एक इसमें ।। सदा आपणा आप स्वरूप है जी ।।....
2. नेति नेति कहि वेद बखान देनी ।। नहीं दूसरा इस्ससे तुलदा है ।।
बुल्लाशह संभाल जब आप देख्या ।। सदा स्वयं परकाश इह झुल्लदा है ।।
बुद्धि आदि संघात नड देखीए जी ।। पड़ा काष्ठ पाषाण ज्यौ भूम माहीं ।।
आप आतमा ज्ञान स्वरूप तेरा ।। सदा अफुर न फुर खरा एक साहीं ।।

अनीस

‘दिग्विजय-भूषण’ (गोकुल कवि), ‘सरोज’ (शिवसिंह) एवं ‘विनोद’ (मिश्रबन्धु) में अनीस का उल्लेख मिलता है। ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग 2 में ‘संपादक’ ने लिखा है, ‘मिश्रबन्धुओं के अनुसार दलपतराय वंशीधर ने काव्यशास्त्र ग्रन्थ ‘अलंकार-रत्नाकार’ में अनीस के अनेक छन्द संगृहीत हैं। इस ग्रन्थ की रचना 1741 ई. में हुई है, अतः इससे पूर्व ही अनीस का समय माना जा सकता है। परन्तु सरोजकार ने किस आधार पर इस कवि का उपस्थितिकाल 1854 ई. माना है कहना कठिन है।’ ‘विनोद’ का जो संस्करण (1972 ई.) मेरे समक्ष है उसमें ‘अलंकार-रत्नाकर’ का उल्लेख नहीं है, ‘सरोज’ का उल्लेख नहीं है; ‘दिग्विजय-भूषण’ का ही उल्लेख है तथा रचनाकाल 1854 ई. में दिया गया है। डॉ. श्यामबहादुर वर्मा एवं मधु वर्मा संपादित ‘विश्व सूक्ति कोश’ में अनीस का नाम मीर बबर अली दिया है तथा जीवनकाल 1802-74 ई.। यह उर्दू के शायर अनीस हैं—अनीस और दबीर की जोड़ी मशहूर है ही! किन्तु 1854 ई. का रचनाकाल हिन्दी-कवि अनीस और उर्दू-शायर अनीस को समकालीन सिद्ध करता है। व्यक्तिगत रूप से मैं हिन्दी-कवि अनीस और उनके छन्द दोनों को प्रात्ययिक नहीं मानता। स्पष्ट है कि हिन्दी-कवि अनीस का परिचय एवं समय विवादास्पद है तथा इनका केवल एक छन्द ही मिलता है जो लोकप्रिय भी है उत्कृष्ट भी, किन्तु जो रहीम का भी माना जाता है (‘सुकवि अनीस’ की जगह ‘सुकवि रहीम’ भी मिलता है)। मेरी समझ में, इसी झमेले के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में अनीस का उल्लेख नहीं किया। व्यक्तिगत रूप से मैं हिन्दी-कवि अनीस और उनके छन्द दोनों को प्रात्ययिक नहीं मानता। किन्तु अनीस और उनका यह छन्द प्रसिद्ध अवश्य है :

सुनिए बिटप प्रभु! पुहुप तिहारो हम, राखिए सरन तौ सोभा रावरी बढ़ाइहैं।
तजिहौ तो हरष औ बिषाद न मानै कछु, जहाँ-तहाँ जैहैं तहाँ दूनी छवि छाड़हैं।।
सुरन चढ़ैगें सुरनरन चढ़ैगें हम, सुकवि अनीस हाथ-हाथ ही बिकाड़हैं।
देस में रहैगें परदेस में रहैगें—काहू बेस में रहैगें पर रावरे कहाड़हैं।।⁴

1. अलिफ़-बे-ये (यूनानी से प्रभावित अरबी-वर्णमाला) के क्रम में ‘ज़ाल’ पर तत्त्वनिरूपण। जायसी ने ‘अखरावट’ के क-ख-ग के क्रम से सांप्रदायिक मोहम्मदी प्रचार किया है। बुल्लेशाह सांप्रदायिक नहीं है। पश्तूनिस्तान, बलूचिस्तान और पंजाब के मुसलमान उत्तर प्रदेश, बिहार और केरल के मुसलमानों से बहुत कम सांप्रदायिक रहे हैं।
2. बुल्लेशाह या उन की वाणी के लेखक प्रत्येक चरण पर दो विराम पंक्तियों का प्रयोग करते हैं, जो विलक्षण-सा है।
3. अरबी-वर्णमाला में ‘शीन’ पर तत्त्व-निरूपण। कुरान में मोहम्मद “अलिफ़-लाम-मीम” जैसे प्रयोग करते हैं किन्तु व्याख्या या निरूपण नहीं (अतः ‘अनिर्वचनीय’ या मुतशाबिह कहा जाता है)।
4. मैंने बचपन में छन्द उक्त रूप में पढ़ा और याद किया था। कवि के नाम के स्थान पर ‘सुकवि रहीम’ भी पढ़ा था। यह रूप ठीक लगता है। किन्तु ‘विनोद’ में यह रूप दिया है :

सुनिए बिटप प्रभु सुमन तिहारे संग, राखिहौ हमें तौ सोभा रावरी बढ़ाय हैं;
तजिहौ हरखि कै तौ बिलुग न मानैं कछु, जहाँ-जहाँ जैहैं तहाँ दूनी जसु छाय हैं।
सुरन चढ़ैगें नर सिरन चढ़ैगें पर, सुकवि अनीस हाट-बाट में बिकाय हैं,
देस में रहैगें परदेस में रहैगें, काहू बेस में रहैगें तऊ रावरे कहाय हैं।

सीतल

‘गुलज़ार चमन’ के खड़ीबोली-कवि सीतल (जन्म 1710 ई. के लगभग, हरदोई जनपद) को मिश्रबन्धु ने पद्माकर की श्रेणी का कवि माना है, खड़ीबोली के कवियों में ‘प्रथम’ तक कह डाला है। ‘दिवंगत हिन्दीसेवी’ में क्षेमचन्द्र ‘सुमन’ ने गंगादास को खड़ीबोली-कवियों में प्रथम माना है, किन्तु सीतल निश्चित रूप से पूर्ववर्ती भी हैं, श्रेष्ठतर भी। किन्तु खड़ीबोली कविता का प्राचीन माध्यम रही है जिसमें चौदहवीं सदी ईसवीं से लगातार सर्जना होती आ रही है; पहले खुसरो, ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, नामदेव इत्यादि प्रायः समसामयिकों द्वारा, तदनन्तर कवीर, एकनाथ, तुकराम, प्राणनाथ, इत्यादि द्वारा जिनमें कवीर के अतिरिक्त अन्य सब ने खड़ीबोली में ही लिखा है, जबकि कवीर की अधिकांश रचनाएँ मिश्रित संतभाषा में हैं (ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, नामदेव, एकनाथ, तुकराम इत्यादि मूलतः मराठी से संवद्ध रहे)। हेमचन्द्र एवं गोरखनाथ इत्यादि तक में खड़ीबोली के दर्शन किए जा सकते हैं। रहीम, भूषण, कुलपति मिश्र, सूदन इत्यादि में भी खड़ीबोली की बानगियाँ प्राप्त हो जाती हैं। खड़ीबोली के आदिकवि न खुसरो थे, न सीतल, न गंगादास। वह अभिव्यक्ति का एक ब्रजभाषा और अवधी पुराना माध्यम रही है। मिश्रबन्धु, रामनरेश त्रिपाठी, क्षेमचन्द्र ‘सुमन’ इत्यादि के द्वारा सीतल, खुसरो, गंगादास इत्यादि को खड़ीबोली का ‘प्रथम’ कवि घोषित करना ऐतिहासिक दृष्टि से भी गलत है, भाषिक दृष्टि से भी (रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्याप्रसाद खत्री इत्यादि का खड़ीबोली मात्र को हिन्दी मानना सर्वथा अनुचित है)।

रामबाबू सक्सेना वगैरह का उर्दू को खुसरो के साथ बाँधना नितान्त अनैतिहासिक है, क्योंकि उनकी भाषा ‘हिन्दवी’ या हिन्दी है। फ़िराक़ गोरखपुरी का इस सन्दर्भ में खुसरो का उल्लेख न करना तो ठीक है, किन्तु उनका इब्राहीम आदिलशाह, कुली कुत्बशाह, निशाती, वजही, बहरी’ इत्यादि की हिन्दी (दक्खिनी हिन्दी) की उपेक्षा कर उर्दू से बाँधना उचित नहीं। उर्दू की कीर्त्तिका संरचना खड़ीबोली के निकटतम है, किन्तु उसका सीधा उद्भव एवं विकास ब्रजभाषा से हुआ है, जिसे ‘आबेहयात’ के लेखक प्रो. मोहम्मद हुसैन आज़ाद ने ठीक ही स्वीकार किया है। ‘कविता-कौमुदी’ (उर्दू में रामनरेश त्रिपाठी एवं ‘उर्दू भाषा और साहित्य’ में फ़िराक़ गोरखपुरी ने मोहम्मद हुसैन ‘आज़ाद’ से प्रभावित होकर ही वली (1668-1744 ई., जन्म औरंगाबाद, मृत्यु अहमदाबाद) के उर्दू का आदिकवि होने की चर्चा की है, यद्यपि फ़िराक़ कृत्रिम पुरातनतावाद से मुक्त नहीं हो पाए। उर्दू-कविता को ब्रजभाषा-कविता की पुत्री मानना ही पड़ेगा, क्योंकि प्रमाण अकाट्य हैं :

मैं हूँ मुश्ताक तेरी सूरत का नूर देख, दिल भरपूर रहे कहने जवाब से।

मेहर का तालिब फ़कीर है मेहरबान, चातक ज्यों जीता है स्वाति वाले आब से।।

तू तो है अयानी, यह खूबी का खजाना तिसै खोल क्यों न दीजै, शेर कीजिए शवाब से।

देर की न ताब, जान होती है कवाब, बोल हयाती का आब बोली मुख माहताब से।।

(कुलपति मिश्र : रचनाकाल 1670 ई. के लगभग)

महल सरा से रवाने बुवा बूबू करो, मुझे अफ़सोस बड़ा बड़ी बीबी जानी का।

आलम में मालुम चकता का घराना यारों, जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का।।

खने खाने बीच में अमाने लोग जाने लगे, आफ़त ही जानों हुआ औज देहकानी का।

रब की रज़ा है, हमे सहना बज़ा है, वख़्त हिंदू गजा है, आया छोर तुरकानी का।।

‘उर्दू’ शब्द का प्रथम प्रयोग मीर तकी ‘मीर’ (1724-1810 ई., जन्म आगरा, मृत्यु लखनऊ) ने ‘निकातुशुअरा’ (1752 ई.) में किया है। उपर्युक्त उद्धरण स्पष्ट करते हैं कि वली, आबरू, आरजू, जानजानों मज़हर, ताबाँ, मीर वगैरह से पहले ही ब्रजभाषा के कुलपति मिश्र, सूदन वगैरह उर्दू-कविता की पूर्व-प्रस्तुति कर चुके थे (क्योंकि खुसरो, आदिलशाह, कुत्बशाह, वजही, बहरी वगैरह ने हिन्दवी या दक्खिनी हिन्दी’ या हिन्दी में लिखा था)।

सीतल : उर्दू के वास्तविक आदिकवि

उर्दू का जन्म भारत में मोहम्मदीयत के पतन-काल में हुआ था; शाह आलम, अकबर द्वितीय, बहादुरशाह (द्वितीय) ‘जफ़र’ इत्यादि नामनिहाल बादशाहों के पास शासन-कार्य न था अतः इनकी प्रतिभा ने कविता-कार्य का मार्ग ढूँढ़ निकाला। उधर, खाने-आरजू, मीर,

1. काज़ी महमूद बहरी ने ‘हिन्दी’ शब्द का प्रयोग किया है, रेज़्ज़ा या उर्दू का नहीं।

गालिब वगैरह के पुरखे मनसबदार या फ़ौज़दार या सिपाही थे और इनके लिए यह काम बचा ही नहीं था अतः शायरी करनी पड़ी। इश्क, प्याला, साक्री, जफ़ा, घाव, खंज़र वगैरह के साथ एक निरुपाय नियतिवाद एवं निराशावाद उर्दू को पतन की दुहिता सिद्ध करते हैं। यह पतन समप्रेम की प्रवृत्ति या विकृति से भी नहीं बच सका। शाह आलम, आबरू, आरजू, जानजानाँ मज़हर, सौदा, मीर इत्यादि समप्रेमी भी थे। सीतल की भाषा ही नहीं प्रत्युत उनकी समप्रेमवृत्ति भी उन्हें उर्दू का वास्तविक आदिकवि सिद्ध करती है, क्योंकि वली में यह वृत्ति नहीं है। वली का जन्म कुछ पहले हुआ, पर सीतल समकालीन-से भी और मीर इत्यादि से थोड़ा-सा परवर्ती। सीतल का लालबिहारी नामक तरुण से प्रेम था, जिसे उन्होंने सूफ़ियाना अन्दाज़ में इश्कहकीकी का दर्ज़ा दे दिया था। वैसे, वे हरिदासी-संप्रदाय के महन्त थे जिन्होंने लालबिहारी को दिव्य लालबिहारी (राम) बनाकर देखा था। वाइबिल में सदूम (सोडोम) की कथा के कारण समप्रेम को अनुचित माना गया। परन्तु सुकरात, प्लेटो, जूलियस सीज़र¹, ईसा—एक प्रिय शिष्य को वक्ष-शयन का आदर देते थे, मौलाना रूम (रूमी), जिनका जन्म आज के अफ़ग़ानिस्तान में स्थित बलख में हुआ किन्तु चंगेज़ी आक्रमण-आतंक के कारण परिवार तुर्की के कोन्या चला गया, अलाउद्दीन खिल्जी, हुमायूँ (मर्दाना हरम भी था), शेक्सपीयर, मार्लो, रसखान, जहाँगीर (औरत बनने का शौक था), शाह आलम, आबरू, आरजू, जानजानाँ मज़हर, ताबाँ, सौदा, मीर, ऑस्कर वाइल्ड, फ़िराक़, माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल, सोहनलाल द्विवेदी इत्यादि विविध प्रतिभाओं के धनी व्यक्तियों का वृत्त समप्रेम-निन्दा को प्रतिक्रियावादी, परम्परावादी एवं अमनोवैज्ञानिक सिद्ध करता है। कुरान की जन्मत तक में पूरे प्याले लिए गिलमान मौजूद हैं! अतः सीतल या किसी की एतद्विषयक निन्दा व्यर्थ है। उन्होंने इश्कमज़ाज़ी को इश्कहकीकी की ओर मोड़ा था :

1. मेरे उर बीच समाय रहे वे चिह अहल्या-तारी के।
दुखहरन कलुष के नासकरन वारिज-पद लालबिहारी के।।
2. शिव, विष्णु, ईश, बहुरूप हई नभ-तारा चारु सुधाकर है।
अंबा, धारानल, शक्ति, स्वधा, स्वाहा, जल, पवन, दिवाकर है।।
हम अंशाअंश समझते हैं सब खाक जाल में पाक रहें।।
सुन लालबिहारी! ललित-ललन, हम तो तेरेई चाकर है।।
3. कारन कारज लै न्याय कहै, जो तिस मत रवि, गुरु, ससी कहा।
जाहिद ने हक्क, हसन, यूसुफ़, अरहंत जैन छवि बसी कहा।।
रतराज, रूप, रस, प्रेम, इश्क, जानी, छवि, सोभा लसी कहा।
लाला! हम तुम को वह जाना जो ब्रह्म तत्त्वत्वमूअसी कहा।।

सीतल ने लालबिहारी के नखशिख का सुन्दर वर्णन किया है जिसमें मुख, विशेषतः श्रमसीकर, के वर्णन बहुत सुन्दर हैं जिन पर फ़ारसी की शायरी का असर नहीं पड़ा है और जिन्होंने उर्दू-शायरी पर असर भी डाला है, क्योंकि उसमें माशूक पुल्लिंगवाची ही रखा जाता है। उनके वर्णन मुग़ल-ऐश्वर्य की झाँकी भी दिखाते हैं :

1. मुख-सरदचंद्र पर ठहर गया जानी के बूँद पसीने का।
या कुंदनकमलकली ऊपर झमकाहट रखा मीने का।।
देखे में होश कहाँ रहवै जो पिदर बूअली सीने का।
या लालबदख़्शाँ पर खींचा चौका इल्मास नगीने का।।
2. हम खूब तरह से जान गए जैसा आनंद का कंद किया।
सब रूप सील गुन तेज पुंज तेरे ही तन में बंद किया।।
तुझ हुसन-प्रभा की बाक़ी ले फिर बिधि ने यह फरफंद किया।
चंपकदल सोनजुही नरगिस चामीकर चपला चंद किया।।

1. जूलियस पर जुलाई मास-नामकरण हुआ, 'सीज़र' से कैसर, जार इत्यादि विशेषण बने। महान् रोमन साम्राज्य के संस्थापक। इतिहास के एक महानतम योद्धा एवं विजेता। किन्तु सिसरो जैसे सांसद, वक्ता एवं प्रतिद्वन्द्वी के शब्दों में "प्रत्येक पत्नी के पति, प्रत्येक पति की पत्नी"।

सीतल की उक्त छन्दों को समकालीनों और परवर्तियों के उद्गारों से मिलाने पर उनके उर्दू के वास्तविक आदिकवि होने का तथ्य स्पष्ट हो जाएगा :

1. बेवफ़ाई न कर खुदा सँ डर । जगहँसाई न कर खुदा सँ डर ।।
है जुदाई में ज़िन्दगी मुश्किल । आ जुदाई न कर खुदा सँ डर ।।
2. दिल 'वली' का ले लिया दिल्ली ने छीन,
जा कहो कोई मोहम्मदशाह सँ ।। (वली)
उस तुंद-खूँ सनम से जब से लगा हूँ, मिलने,
हर कोई मानता है मेरी दिलावरी को । (आरजू)
मुफ्त सौदा है, अरे यार! कहाँ जाता है,
आ मेरे दिल के खरीदार! कहाँ जाता है? (अशरफ अली ख़ाँ 'फुग़ौ')
खुदा के वास्ते इसको न टोको,
यही इक शहर में क़ातिल रहा है । (जानजानाँ)
सुलेमाँ! क्या हुआ गर तू नज़र आता नहीं मुझको,
मेरी आँखों की पुतली में तेरी तसवीर फिरती है । (तावाँ)
सिरहाने 'मीर' के कोई न बोलो,
अभी टुक रोते-रोते सो गया है । (मीर)
ऐ लाला गो फ़लक़ ने दिए तुझको चार दाग़,
छाती मेरी सराह कि इक दिल हज़ार दाग़ । (सौदा)
जग में आकर इधर-उधर देखा,
तू ही आया नज़र जिधर देखा । (दर्द)

सौदा

मिर्ज़ा मोहम्मद रफ़ी 'सौदा' (1713-81 ई., जन्म दिल्ली, निधन लखनऊ) उर्दू के श्रेष्ठतम शायरों में एक माने जाते हैं। इन्होंने फ़ारसी में भी काफी लिखा। समसामयिक मीर तकी 'मीर' ने अपने बाद इन्हें पूरा शायर माना था, जबकि मीर 'दर्द' को आधा—उनके अनुसार, उस समय वे, 'सौदा' और 'दर्द' मिलकर कुल ढाई शायर थे। 'सौदा' उर्दू के फ़कीराना शायर हातिम के शिष्य और शाह आलम 'आफ़ताब' के गुरु थे। नवाब-वज़ीर शुजाउद्दौला और नवाब आसफ़ुद्दौला 'सौदा' की बड़ी इज़्ज़त करते थे। 'सौदा' दूसरे शायरों, खासकर जानजानाँ मज़हर, पर बड़े करारे ब्यंग्य करते थे और कभी-कभी ग़ाली-ग़लौज तक पर उतर जाते थे। हिन्दी में 'सौदा' ने थोड़ी-सी कविता ही लिखी है जिसमें ग़ज़लें, मरसिए, पहेलियाँ वगैरह शामिल हैं। उदाहरण देखें :

1. मुझे पसीना जो तेरे मुख पर दिखाई दे है तो सोचता हूँ,
ये क्योंकि सूरज की जोत आगे हरएक तारा छिटक रहा है।
2.जो मैंने 'सौदा' से जाके पूछा तुझे कुछ अपने भी मन की सुध-बुध,
ये रोके मुझसे कहा किसी ने लटक में लट की लटक रहा है।
3. गागर तरे जल भरा, सिर पर लागी आग।
बाजन लागी बाँसुरी, निकसन लागे नाग।²

1. पाठांतर "आहिस्ता बोलो"

2. पहेली। हुक्का।

पुखी¹

शृंगार एवं व्यंग्य के कुशल स्फुट छन्दकार पुखी (जन्म 1746 ई., मैनपुरी के निकट कहीं) की रचनाएँ आकर्षक भी हैं, रोचक भी :

1. सिंगमरमर² की सुधारी सरवर पारि, फूले तरवर सब बिपिन को वार्यो है।
ठाढ़ी तहाँ प्यारी संग रसिकबिहारी पुखी, रैन उजियारी इत बदन उजार्यो है।।
कान को तय्योना छूटि परसि पयोधर को, धरनी परत कन झरि झनकार्यो है।
रोख भरपूरि जिय जानिकै कलंकी कूर, मानो चंदचूर चंद चूर करि डार्यो है।।
2. पीरस³ वारो प्रवीन मिलै तौ कहाँ लौं सुगंधी⁴ सुगंध सुँघावै।
कायर कोपि चढ़ै रन मैं तौ कहाँ लागि चारन चाव बढ़ावै।।
जो पै गुनी को मिलै निगुनी तौ पुखी कहु क्यों करि ताहि रिझावै।
जैसे नपुंसक नाह मिलै तौ कहाँ लागि नारी सिंगार बनावै।।

महताब

भिखारीदास के आश्रयदाता हिन्दूपतिसिंह⁵ (प्रतापगढ़-नरेश पृथ्वीपतिसिंह के भाई) महताब (1750 ई. के आसपास) के भी आश्रयदाता थे, जिनको इन्होंने बादशाह तक कह डाला है—वैसे, मुगल-वंश के इस पतनकाल में हर राजा-राव भी बादशाह ही लगता है, और “सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय”⁶! यह साधारण कवि थे, इसलिए भिखारीदास ने ‘काव्यनिर्णय’ के कविगण-उल्लेख में इन्हें स्थान नहीं दिया। सम्भव है, दोनों में चलती भी रही हो क्योंकि यह आश्रयदाता की सीमातीत प्रशंसा के कारण उसके निकटतर हो सकते हैं। यह ब्रजभाषा में भी लिखते थे, खड़ीबोली में भी। एक कवित्त प्रस्तुत है जो एक सीमा तक अपने चार्वाक, एपीक्यूरस, उमर खय्याम इत्यादि के दर्शन की स्मृति करा सकने के कारण रोचक है तथा ग्वाल कवि⁷ के एक कवित्त का स्मरण भी कराता है :

दिया है खुदा ने खुशी करो ‘महताब’ खूब, खाओ-पीओ देओ-लेओ येही रह जाना है।
पातसाही आदले अमीर उमराव भए, कूच कर गए कुछ लगा न ठिकाना है।।⁸
देओ-लेओ सबसे निरंगदी की राह चलो, जिन्दगी जरा सी तामे दिल बहलाना है।
आवे परवाना फिर बने न बहाना, जग नेकी कर जाना फेर आना न जाना है।।

1. पुष्प नक्षत्र में जन्म के कारण, पुख्य से पुखी? पोख्य और तब पुखी? पुखराज से संबद्ध नहीं?
2. संगमरमर (संग = पत्थर + मरमर = श्वेत)।
3. नासिका-रोग। घ्राण-रोग।
4. सुगन्धित इत्र, गुलाबजल इत्यादि पदार्थों का विक्रेता। गंधी (अंग्रेजी ने गाँधी बना दिया)। “गाँधी गंध गुलाब की गँवई गाहक कौन?” (बिहारी)
5. मराठा-सरदार हिन्दूराव (दिल्ली का बाड़ा हिन्दूराव क्षेत्र इन्हीं का स्मारक है तथा लाल क़िला स्थित संग्रहालय में मैंने इनका एक चित्र भी देखा है) एवं छत्रसाल-पुत्र हिन्दूपति का स्मरण आता है। औरंगज़ेब के हिन्दू-नाश-रत्न की प्रतिक्रिया में जो हिन्दू-जागृति हुई, उसका एक प्रबल प्रमाण, क्योंकि इस काल से पूर्व ऐसे नाम नहीं मिलते। मुगल-वंश के पतन का सर्वोपरि कारण हिन्दू-जागृति थी। दिल्ली के लाल क़िले की नाक की सीध में मूलतः मराठों द्वारा स्थापित गौरीशंकर-मन्दिर एक सर्वज्ञात प्रमाण है।
6. दिहारी। सागर प्यास नहीं बुझाता, किन्तु प्रतीक तो है ही।
7. ग्वाल कवि पर इनका कुछ प्रभाव सम्भव है।
8. मुगल-वंश के पतन की सूचना, जो भूषण, सूदन, चाचा हित वृन्दावनदास प्रभृति भी देते हैं।

कल्याणदास

डाकोर जी (गुजरात के एक कृष्ण-तीर्थ) के सन्त एवं भक्त कल्याणदास (प्रभातकाल 1750-1790 ई.) का अखाड़ा¹ अब भी प्रसिद्ध है। इनकी कविता साधारण एवं उपदेशात्मक है किन्तु उसमें सामयिक इतिहास के व्यापक संकेत प्राप्त होते हैं :

1. पाजी बाजी झूठ तज, लोलपुर लोल स्वभाव। हिंदूपति² सो मर गए नाना माधवराव³।।
नाना माधवराव मुए जयसिंह सवाई⁴। मिर्जा मुनिब⁵ नवाब मौत तिनकूँ भी आई।।
कहत दास कल्याण भयो काया में राजी। भज-भज श्री भगवान झूठ तज पाजी बाजी⁶।।
2. जीवन अपार जाकी जाति को न आवे थाह, किए कोष भाँति-भाँति, रतनों की ढेरी है।
संपति के सागर जगत में कल्याण कहे, औरन को दीजिए, बड़ाई सब तेरी है।।
अंग-अंग पूरन तरंगन से छाय रह्यो, सोहे चंद्र तात एक बात घट घेरी है।
वाट के बटाऊ प्यासे पूछें तीर कूप कहाँ, अहो क्षीरसागर! बड़ाई धिक् तेरी है।।

‘गरीब’⁷

‘गरीब’ नाम या उपनाम के कवि का समय, परिचय इत्यादि ज्ञात नहीं है किन्तु अनुमानतः यह अठारहवीं सदी (ई.) में हुए तथा ‘तारीख-गरीबी’ की रचना की जिसमें पैगम्बरों के वृत्त वर्णित हैं। यह हिन्दी के भारी प्रेमी थे :

हिंदी पर ना मारो ताना। सभी बतावें हिंदी माना।।
यह है जो कुरआन खुदा का।⁸ हिंदी करै बखान सदा⁹ का।।
लोगों को जब खोल बतावें। हिंदी में कहकर समझावें।।
जिन लोगों में नवी जो आया। उनकी बोली सों बतलाया।।
हिंदी मेंहदी ने फरमाई। खूँदमीर के मुँह पर आई।।
कई दोहरे साखी बात। बोले खोल मुबारकजात।।
मियाँ मुस्तफ़ा ने भी कही। और किसी की फिर क्या रही।।

थान कवि

राव मर्दान सिंह (मरदानसिंह या मर्दानसिंह) से राना बेनीमाधव तक कई प्रसिद्ध वीरों तथा पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र जैसे कई श्रेष्ठ कवियों से किसी-न-किसी रूप में जुड़े प्रसिद्ध डौंडियाखेरा के थान कवि अपने विशृंखल शास्त्रीयकाव्य

1. साधुसमूह-वासस्थल, जहाँ आसन-प्राणायाम-व्यायाम होते ही हैं।
2. छत्रसाल-पुत्र बुन्देलखंड-नरेश हिन्दूपति प्रतापी व्यक्ति थे। छत्रसाल के ही संत प्राणनाथ के शिष्य थे। कल्याणदास का हिन्दूपति-उल्लेख, प्राणनाथ का हिन्दूपति-उल्लेख इत्यादि हिन्दी की राष्ट्रीय व्यापकता के सूचक हैं। प्राणनाथ, कल्याणदास, दयानन्द, गाँधी, पटेल, मोरारजी इत्यादि का हिन्दी-सम्बन्ध गुजरात को हिन्दी-साहित्येतिहास में प्रतिष्ठा दिलाता है।
3. वीरवर माधवराव (माधोराव) ने 1764 ई. में मैसूर के हिन्दूसत्तादस्यु हैदरअली को परास्त कर क्षतिपूर्ति में भारी रकम वसूली। ‘हिन्दूपति’ माधवराव का विशेषण भी हो सकता है।
4. जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह (मिर्जा राजा जयसिंह के उत्तराधिकारी) का फ़र्रुखसियार (राज्यकाल 1717-1718 ई.) के समय अच्छा दबदबा रहा। बाद में भी जयपुर-राज्य उन्नत रहा।
5. कोई स्थानीय शासक?
6. पेशवा बाजीराव प्रथम (1720-1740 ई.), पेशवा बालाजी बाजीराव (1740-1761 ई.) एवं नामनिहाल पेशवा बाजीराव द्वितीय (देहांत 1853 ई. में 35 वर्ष पेंशन पाने के बाद) में किसकी प्रति? बालाजी बाजीराव के प्रति लगता है।
7. संत गरीबदास से स्पष्टतः भिन्न।
8. ऐलान। “कुरान कलाम-उल्-अल्लाह।” सदेश अल्लाह का, आवाज़ मोहम्मद की।
9. टेर, पुकार, आवाज़।

‘दलेलप्रकाश’¹ (1791 ई.)² के कारण स्मरणीय हैं। थान कवि के ‘प्रस्थान’—प्रस्तोता मिश्रबन्धु के ‘विनोद’ के अनुसार, ‘दलेलप्रकाश’ में वन्दना के पीछे कविवंश एवं राजवंश का वर्णन एक अध्याय में है। इसमें एकादश अध्याय और करीब साढ़े तीन सौ के छन्द हैं। गणविचार, गुणविचार, भावभेद और रसभेद का वर्णन है। आदि में जिस-जिस छन्द का नाम आ गया है, उसका लक्षण भी उन्होंने उसी स्थान पर कह दिया। इसी प्रकार जहाँ किसी छन्द में कोई मुख्य अलंकार आ गया है, वहाँ उसका भी लक्षण कह दिया गया है। एक स्थान पर राग-रागिनियों का नाम आया, वहाँ इन्होंने उनका भी वर्णन कर दिया है।.... ग्रन्थ के अंत में कुछ चित्र-कविता भी की गई है।” ‘विनोद’ के प्रशस्य संक्षेपणकार आ. शुक्ल ने मिश्रबन्धु द्वारा दिए गए इस ग्रन्थ-परिचय को ‘भानमती का पिटारा’ में अच्छी तरह समेट लिया है। ‘दलेलप्रकाश’ वर्णन-वैविध्य एवं पांडित्य-प्रदर्शन के कारण व्यवस्थित एवं एकरस-एकतान ग्रन्थ नहीं रह सका, किन्तु थान कवि की योग्यता-ललित भाषा, अलंकार, क्षमता प्रशस्य है। प्रयोग की दृष्टि से उल्लेख्य केवल ह्रस्ववर्ण की यह गंगास्तुति प्रसिद्ध है :

कलुषहरनि सुखकरनि सरनजन बरनि जस कहत धरनिधर।
कलिमल कलित बलित अघ खलगन लहत परमपद कुटिल कपटतर।।
मदन कदन सुर सदन बदन ससि अमल नवल दुति भजत भगतवर।
सुरसरि! तब जल दरस परस करि सुरगति सुभगति लहत अधम नर।।

थान कवि की यह वाणी-वन्दना भी प्रसिद्ध है :

दासन पै दाहिनी परम हंसवाहिनी हौ, पोथी कर, बीना सुरमंडल मढ़त है।
आसन कँवल, अंग अंबर धवल, मुख चंद सो अवैल रंग नवल चढ़त है।।

ऐसी मातु भारति की आरती करत थान जाको जस विधि ऐसो पंडित पढ़त है।

ताकी दया-दीठि लाख पाथर निराखर के मुख ते मधुर मंजु आखर कढ़त है।।

शीतलादीन

यद्यपि शीतलदानी (1743-1803 ई.³) की कृतियाँ उपलब्ध नहीं हैं, तथापि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें अच्छा कवि माना है। “उनके (कविराज सुखदेव मिश्र के) वंश में उनके प्रपौत्र शीतलदानी भी अच्छे कवि हुए। उन्होंने ‘राधाभोगविलास’ नाम की एक पुस्तक लिखी है, परन्तु उसका सर्वनाश हो गया, या बची और जो बची तो कहाँ और किसके पास है—इसका पता नहीं लगता। सभी मिश्र महाराज दुहाई देते हैं कि उनमें से किसी के पास नहीं। शीतलादीन जी शीतलता रोग (चेचक) में अंधे हो गए थे। अंधेपन में उन्होंने विष्णु और वैष्णवी, दोनों की प्रार्थना में फुटकर कविता की है। नेत्रों का विकार जाने के लिए वे औषधि भी करते थे। उनकी, इस समय की, कविता में दो उदाहरण देकर हम इस लेख को समाप्त करते हैं :

विष्णु की प्रार्थना

द्विरद की पुकार सुनि ग्राह ते बचायो धाय द्रुपदी की लाज-काज चीर भयो आय है।
गौतम की नारि पग परसि पुनीत कीन्हों खंभ फोरि आयो प्रहलाद-काज धाय है।।
शीतल⁴ महीतल में केते उपकार कीन्हें याही के प्रभाव तेरो जग जस गाय है।
नैनन निरंजन जो अंजन न लागिहौ तो विरद तिहारो सब रद परि जाय है।।

1. चँड़रा (बैसवारा-क्षेत्र) निवासी दलेलसिंह को समर्पित।

2. समत अठारह-सौ जहाँ अड़तालीस बिचार।” ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ (शुक्ल) में 1558 गलत छपा लगता है।

3. प्राचार्य डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र (लखनऊ) द्वारा अनुमानित जीवनकाल।

4. दीलतपुर (ज़िला रायबरेली) जहाँ पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र वसे और दिवंगत भी हुए, जहाँ शीतलदानी आजीवन रहे, जहाँ आचार्य द्विवेदी का जन्म हुआ, वहाँ के सुखदेव एवं शीतलादीन के वंशज हिमकर के मिश्रगण।

5. शीतल नामक अन्य कवि भी हुए हैं। शीतलादीन ‘शीतल’ छाप को प्रयोग करते हैं।

देवी की प्रार्थना में उन्होंने कई कविताएँ लिखी हैं। उनमें से एक यह है—

परमपद दानी सिद्धि निधि की निसानी घट-घट में समानी चहुँ वेदन बखानी है।
महिषासुर मारि चंड-मुंडहि विदारि रक्तबीजहि सँहारि शुंभ दानवै रिसानी है।।
महा मरदानी गहे कठिन कृपानी कहि सीतल सयानी तिहूँ लोकन में जानी है।
दादि सुनि लीजै और नैन करि दीजै सुनि पाथर पसीजै तू तो आदि महारानी है।।

यह कविता बुरी नहीं है। 'कविराज के वंश में उत्पन्न कवि के सर्वथा अनुरूप है।'¹

पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र के दो पुत्र थे। बुलाकीराम अन्यनाम परमानन्द लाला² अन्यनाम जगन्नाथ। शीतलादीन बुलाकीराम के पौत्र थे। यह प्रसन्न प्रकृति के कवि थे। जब नवाबी खत्म हुई और अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ तब दौलतपुर की जमींदारी प्रमाणित करना आवश्यक हो गया। दौलतपुर सुखदेव मिश्र को गुरुदक्षिणा में मिला था। शीतलादीन के पास पहले क्रागजात थे तो, पर बाद में चूहों की खुराक बन गए। उन्होंने एक रोचक कवित्त³ लिखकर अंग्रेज अफसर से एतद्विषयक आवेदन किया तो वह इतना प्रसन्न हुआ कि इनका हक बहाल रखा। दौलतपुर⁴ एक ऐसा साहित्यिक तीर्थ है, जिससे कविराज सुखदेव मिश्र, कवि शीतलादीन मिश्र, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, कवि गयाचरण मिश्र, कवि गंगासागर मिश्र (जन्म 1910 ई.), प्राचार्य डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र (जन्म 1924 ई.), कवि श्री फूलचन्द्र मिश्र 'चन्द्र' (जन्म 1938 ई.) इत्यादि संबद्ध रहे हैं, अर्थात् जिसका जीवंत साहित्यिक इतिहास प्रायः चार शताब्दियों का है।

रामचन्द्र

केवल 62 घनाक्षरियाँ लिखकर अमरता प्राप्त करने वाले 'चरणचंद्रिका' के स्रष्टा रामचन्द्र (रचनाकाल 1783 ई.—स्थान बलिया) को मिश्रबन्धु ने 'महाकवि' माना है, सेनापति की श्रेणी में पंक्तिबद्ध किया है। हिन्दी-साहित्येतिहास के इनके प्रवेश का सम्पूर्ण श्रेय मिश्रबन्धु को ही प्राप्त है, क्योंकि शिवसिंह ने इनका उल्लेख नहीं किया तथा शुक्ल ने मिश्रबन्धु की सामग्री को ही थोड़ा-सा उलट-पलट कर (जैसाकि उन्होंने शत-शत सन्दर्भों में किया है) संक्षिप्त रूप में पुनर्प्रस्तुत मात्र किया है। मिश्रबन्धु ने अपने अमर 'विनोद' में 'उत्तरालंकृत प्रकरण' के 1839-1855 वि. के काल को 'रामचन्द्र-काल' तक कह डाला है जो युक्तियुक्त नहीं लगता क्योंकि पंडितप्रवर रामचन्द्र की पार्वतीचरणार्पित कविता मौलिक, विलक्षण एवं उत्कृष्ट होते हुए भी इतनी कम है तथा कवि मनियारसिंह मात्र की शिष्यता इतनी एकांगी है कि उन पर समूचे काल का नामकरण आत्मपरक मात्र कहा जाएगा। रामचन्द्र की 'टीका गीतगोविन्द' एवं 'अरित्यन' कृतियों का उल्लेख मात्र प्राप्त होता है। उनकी कीर्ति का आधार 'चरणचंद्रिका' ही है जो विनयविलास, अभयविलास विभवविलास, विरदविलास एवं विजयविलास शीर्षक एवं पाँच अध्यायों में विभक्त है।

'रामविनोद' (1563 ई.) के रचयिता रामचन्द्र मिश्र, 'जंबूचरित्र' (1663 ई.—जैनसाहित्यांतर्गत) के रचयिता रामचन्द्र साकी तथा 'भावसंग्रह' (1814 ई.—जैनसाहित्यांतर्गत) के रचयिता रामचन्द्र प्रभृति समाननामी कवियों में 'चरणचंद्रिका'-कार रामचन्द्र निस्सन्देह अन्यतम। 'विनोद' में उनके तीन छन्द उद्धृत किए गए हैं :

1. नूपुर बजत मन मृग-से अधीन होत, मीन होत जानि चरणामृत झरनि को।
खंजन-से नचै देखि सुखमा सरद की सी, मचै मधुरक-से पराग केसरिन को।।
रीझि-रीझि तेरे पद छवि पै तिलोचन के लोचन ये अबं। धारै केतिक धरनि को।।
फूलत कुमुद-से, मयंक-से निरखि नख, पंकज-से खिलै लखि तरवा तरनि को।।

1. अक्टूबर, 1904 की 'सरस्वती' एवं 'प्राचीन पण्डित और कवि' ग्रन्थ के 'सुखदेव मिश्र' शीर्षक निबन्ध में।

2. देठा, प्रिय, धनी आदरणीय।

3. दीन्हीं गोपाल मराठे मही सो सही करिके मैं आजु लौं पावौं।

फेरि दई इलामास अली सो भली विधि कै मैं सुकीरति गावौं।

जोरलावले दीन्हीं सनंद लिखि नाजिर साहब तोहि बतावौं।

चूहा गटिकक गए फरमान कलटूर को मैं काह दिखावौं।।

4. द्रष्टव्य है आ. पद्मसिंह शर्मा कृत संस्मरण 'मेरी तीर्थयात्रा' जो आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी से संबद्ध है।

2. जारे ताप दाहन के, मारे पाप पाहन के, निपट निरासरै, ये आस काकी धरते ।
छूटे सतसंग के अनंग बटमार लूटे, कूटे कलिकाल के कहाँ तो जाय अरते ।।
अति अकुलायकै, डेराय, घबराय हाय, त्राहि-त्राहि कहि आगे काके धाय परते ।
होते जो न अंब! तेरे चरन सरन, तौ ये अरज गरजबंद कापै जाय करते ।।
3. मानिए करींद्र जो हरींद्र को सरोस हैरै, मानिए तिमिर घेरै भानु-किरणन को ।
मानिए चटक बाज जुरा को पटक मारै, मानिए झटक डारै भेक भुजगन को ।।
मानिए कहै जो वारि-धाम पै दवारि औ अँगार बरसाइबो बतावै बारिदान को ।
मानिए अनेक बिपरीति की प्रतीति, पै न भीति आई मानिए भवानी-सेवकन को ।।

शेख़ सादी¹

दक्षिण के हिन्दी-कवियों में शेख़ सादी (रचनाकाल 1790 ई. के लगभग) ने प्रायः पारम्परिक दक्खिनी हिन्दी में कविता लिखी जो ठीकठाक लगती है :

1. सदा रंग राती जैसे पील हाती, बिना तेल बाती दिया से जरे हैं ।
पिये ज्ञान ज्ञानी धरे ध्यान ध्यानी जिन्होंने सजानी से देखे डरे हैं ।।
पिये सूरमा जो करे खेल लोहा, कटक में सिरोही जो सम्मुख खरे हैं ।
कहै सेख़ लगे भाँग प्यारी जो पीवे अनारी तो ख्वारी करे हैं ।।
2. कहना उस पै जो करै कहना, न करै कहना तो कहा कहना ।
रहना उस पै जो लखै गुन को, गुन के न लखै तो कहा रहना ।।
बहना उस पै हित होता जहाँ, हित नहीं होता तो कहा बहना ।
लहना अपना कहि जात नाहीं, जो लिलाट लिखे सो वही लहना ।।

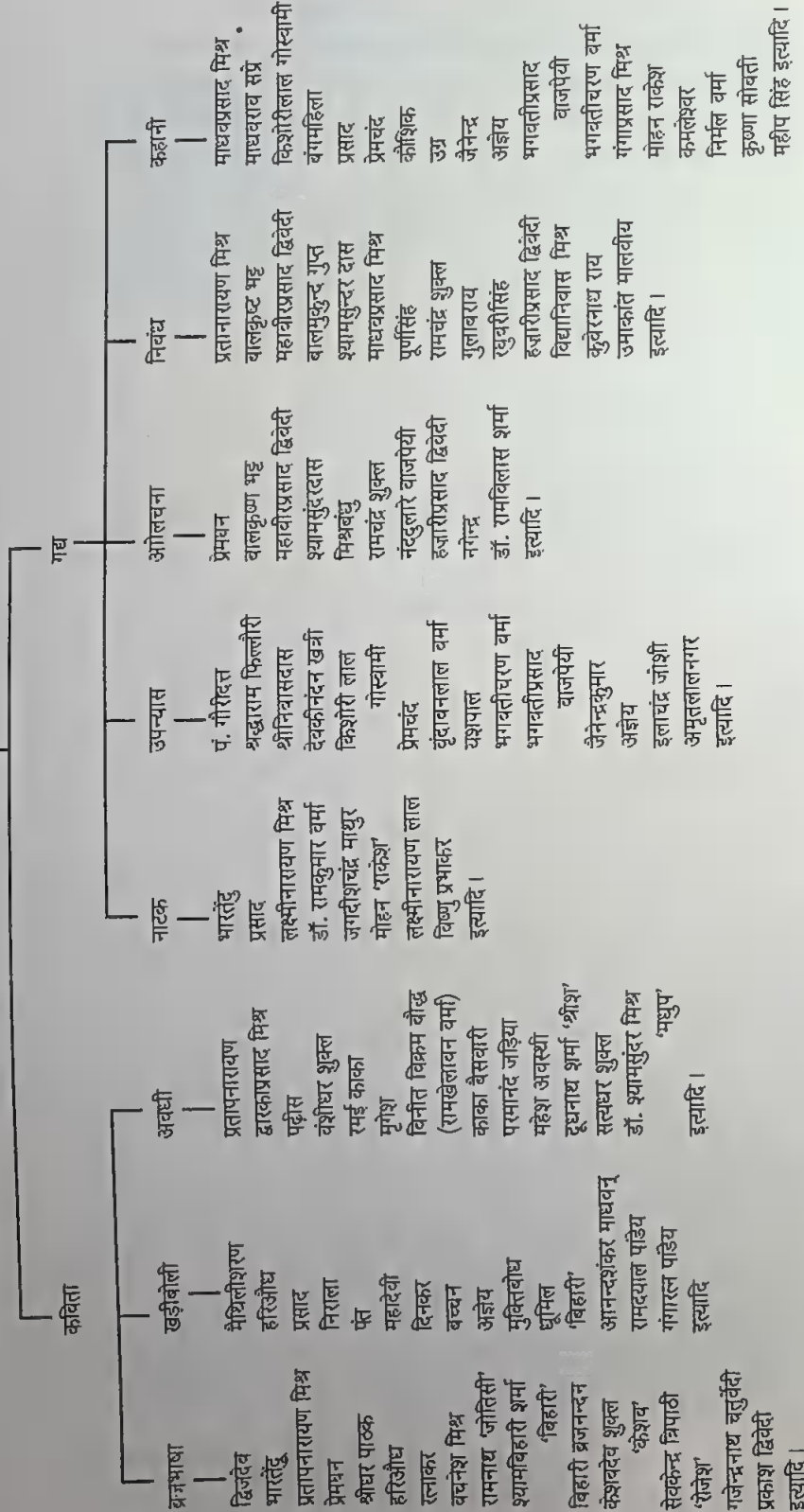
उपसंहार

शास्त्रीयकालीन कविता अपने शृंगारकाव्य, वीरकाव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य, संतकाव्य, सूफ़ीकाव्य, आत्मपरक-प्रेमकाव्य, नीतिकाव्य, हास्यकाव्य एवं अनुवादकाव्य के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा शास्त्रीयकालीन खड़ीबोली-गद्य का ऐतिहासिक महत्व भी निर्विवाद है। विविधता में शास्त्रीयकाल का साहित्य पूर्ववर्ती संक्रान्तिकालीन एवं पुनरुत्थानकालीन साहित्यों से अधिक उल्लेखनीय है। इस काल के साहित्यस्रष्टाओं में सर्वरसनिष्पत्ति-सक्षम महाकवि सुखदेव मिश्र, अनुवाद-सम्राट् गोकुलनाथ एवं गद्य-सीमांत रामप्रसाद निरंजनी पर अभी तक हिन्दी-जगत् वस्तुपरक दृष्टि नहीं अपना सका। केशवदास, बिहारी, मतिराम, सुखदेव, देव एवं पद्माकर का शृंगारकाव्य, भूषण एवं सूदन का वीरकाव्य, वृन्द एवं गिरिधर का नीतिकाव्य, मलूकदास एवं सुन्दरदास का संतकाव्य, उस्मान एवं नूरमोहम्मद का सूफ़ीकाव्य, घनआनन्द एवं बोधा का आत्मपरक-प्रेमकाव्य तथा सुखदेव एवं 'प्रीतम' का हास्यकाव्य समग्र हिन्दी-साहित्य में उच्चस्थान का अधिकारी है। केशव, सेनापति, बिहारी, भूषण, मतिराम, सुखदेव, देव, घनआनन्द एवं पद्माकर जैसे महाकवि संख्या एवं गुणवत्ता में शास्त्रीकालीन कविता को किसी भी काल की कविता से पीछे नहीं रहने देते, भले ही इनमें से कोई तुलसी और सूर के समकक्ष न हो, व्यक्तित्व में कबीर और नानक की समता न कर सकता हो, महिमा में मीरा का उपमान न हो। कुलपति, श्रीपति एवं भिखारीदास जैसे आचार्य शास्त्रीयकाल की कविता को गौरव प्रदान करते हैं। अतः इस काल के प्रति वस्तुपरक एवं नवीन दृष्टिकोण की आवश्यकता है। आ. शुक्ल एक महान् आलोचक थे, किन्तु शिक्षण-परीक्षण-निरीक्षण इत्यादि आजीविकामूलक कार्यों से लेकर शब्दकोश-प्रस्तुति, भाषा विभाषा-निरूपण, शास्त्रीयता-ऊहापोह इत्यादि साहित्येतर कार्यों तक में अत्यधिक व्यस्तता, सभा-सम्मेलनों में विशेष रुचि एवं शारीरिक विवशतावश लेटकर लिखने के कारणों से उनका 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' वस्तुतः

1. 'गुलिस्ताँ' एवं 'बोस्ताँ' के महान् फ़ारसी-नीतिकाव्यकार (ईरान के भर्तृहरि, फ़ारसी के तिरुवल्लुवर) शेख़ सादी (जो शीराज़ के निवासी थे) समनामी थे।

‘हिन्दी-शब्दसागर’ की भूमिका का पल्लवन एवं ‘विनोद’ का संक्षेपण मात्र बनकर रह गया है, जिसमें अनेक अंतर्विरोध एवं अनेकानेक त्रुटियाँ भी विद्यमान हैं—यही नहीं, उनका काव्य-सम्बन्धी दृष्टिकोण रूढ़ एवं आदर्शवादी भी है तथा शास्त्रीयकालीन कवियों के साथ भी वे (सिद्धों, नाथों, संतों, स्वच्छन्तावादियों इत्यादि के सदृश ही) न्याय नहीं कर सके। मिश्रबन्धु ने इस काल पर सर्वोत्कृष्ट सामग्री की है, जिससे अपनी-अपनी संकीर्ण सीमाओं के अनुरूप नगेन्द्र, भगीरथ मिश्र, त्रिभुवनसिंह, विजयपालसिंह, वचनसिंह, महेन्द्रकुमार इत्यादि ने लाभ उठाया है तथा उसका पल्लवन भी किया है किन्तु ये लोग निर्णायक भूमिका नहीं निभा सके। संप्रति शुक्लातंक से मुक्त वस्तुपरक चिन्तन भी होने लगा है और सिद्धों, नाथों, संतों, केशवदास तथा अन्य शास्त्रीयकालीन कवियों, स्वच्छन्तावाद तथा प्रसाद, निराला, महादेवी (पन्त पर उन्होंने अच्छा लिखा है—संयोगात् पन्त की मिश्रबन्धु ने भी प्रशंसा की थी) इत्यादि के अनुशीलन पर उनका प्रभाव नगण्यवत् रह गया है। यह शुभ लक्षण है। हमें अधुनातन सांस्कृतिक-प्रगतिवादी एवं प्रखर-बुद्धिवाद के निकष पर खरी उतरनेवाली वस्तुवादी-आलोचना विकसित करनी है, जिससे हम अपने महान् एवं विश्व-स्तरीय साहित्य को ठीक-ठीक समझ भी सकें, समझा भी सकें।

4. बौद्धिककाल (1800 ई. से)



अमर साहित्य-संतभ

1. भाषा एवं साहित्य के महान् निर्माता: भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (आधुनिक हिन्दी के जनक) ।
2. खड़ीबोली-कविता के आचार्य, मानक हिन्दी के जन्मदाता एवं साहित्य के सर्वांगीण उन्नायक: आचार्य महावीर द्विवेदी ।
3. बहुमुखी प्रतिभा के विश्वस्तरीय प्रतीक: जयशंकर प्रसाद ।
4. उपन्यास-सम्राट् एवं कहानी-यन्त्रवर्ती: प्रेमचन्द ।
5. आलोचक-कुलगुरु एवं महान् निबन्धकार: आ. रामचन्द्र शुक्ल ।
6. स्वच्छन्दतावाद-समाजपरक यथार्थवाद-व्यक्तिपरक यथार्थवाद के एक प्रमुख प्रवर्तक: निराला । महाकवि-चतुष्टय: मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला, पंत, तथा अमर कवयित्री महादेवी ।

रूपरेखा—2

युगविभाजन

बौद्धिककाल

(1800 ई. से)

संधि युग¹

(1800-1850 ई.)

सुधारवादी युग²

(1850-1900 ई.)

आदर्शवादी युग³

(1900-1920 ई.)

स्वच्छन्तावादी युग⁴

(1920-1940 ई.)

यथार्थवादी युग⁵

(1940 ई. से)

-
1. पारंपरिकता में यत्किंचित् नवीनता के साथ ब्रजभाषा-काव्य, साधु खड़ीबोली गद्य का विकास।
 2. पारंपरिकता में सर्वविध नवीनता, विशेषतः राष्ट्रवाद, के साथ युगांतरकारी ब्रजभाषा-काव्य एवं खड़ीबोली-गद्य की नाटक, निबन्ध प्रमृति विद्याओं में अपूर्व सृजन। बौद्धिकता अथवा आधुनिकता का वास्तविक श्रीगणेश।
 3. गद्य-पद्य के माध्यम-अद्वय की ऐतिहासिक स्थापना : खड़ीबोली का सर्वविध उत्कर्ष। साहित्य की समग्र विद्याओं में महान् सृजन। बौद्धिकता अथवा आधुनिकता की सर्वविध प्रतिष्ठा। गद्य का स्वर्णयुग।
 4. पाश्चात्य प्रभाव का स्पष्ट उत्कर्षः महान् स्वच्छन्तावादी काव्यसृजन। बौद्धिककालीन कविता का स्वर्णयुग।
 5. पाश्चात्य प्रभाव में भयावह वृद्धि किन्तु प्रचुर भारतवादी सृजन भी। साहित्य की व्यापकता का विश्व-स्तर।

4. बौद्धिककाल

प्रस्तावना

बौद्धिकता मानवता को पहली पहचान है, जो उसे अन्य प्राणियों से विशिष्ट रूप एवं स्तर प्रदान करती है, जिसके कारण वह सतत-विकसनशील रहा है, जबकि अन्य प्राणी प्रायः ज्यों-के-त्यों रहे (उनमें से कई मानव-सम्पर्क के कारण कार्यकुशल तो हुए किन्तु अस्मिता का विकास वे भी न कर सके)। मिस्त्र के पिरामिड हों या मोहेंजोदड़ो की ढँकी नालियाँ, मोहेंजोदड़ो का विशाल-स्नानगार हो या चीन की दीवार, सभी यह स्पष्ट करते हैं कि मानव की बौद्धिकता ने ही सभ्यता का उद्भव एवं विकास किया है। पाँच, चार और तीन हजार साल पुरानी मिस्त्री मूर्तियाँ आज भी आश्चर्यचकित कर देती हैं; चाहे वे प्रस्तर की हों या काष्ठ की या स्वर्ण की या अन्य धातुओं की। तूतनखानम (राज्यकाल 1334-1325 ईसा-पूर्व) की मूर्तियाँ, विशेषतः उसकी हिप्पो (दरियाई घोड़ा जो प्राचीन मिस्त्री अन्धविश्वास में पाप के प्रतीक सेथ या सेठ माना जाता था) का आखेट करती मूर्ति (जिसमें गतिशील तन की भंगियाओं का विस्मयकारी अंकन है तथा जिसके पदत्राण आज के अच्छे-से-अच्छे चप्पल को भी मात करते हैं) आज के किसी भी मूर्तिकार के लिए चुनौती हैं।¹ ज्ञानलवदुर्विदग्ध व्यक्ति 'आज-आज' या 'नया ज़माना-नया ज़माना' चिल्ला सकता है किन्तु जिसने मानवता के विकास का गहन अनुशीलन किया है वह जानता है कि अतीत का प्रत्येक दिन भी 'आज' ही था, प्रत्येक ज़माना भी 'नया ज़माना' ही था तथा उसी से आज का 'आज' तथा 'नया ज़माना' पूरी तरह जुड़ा हुआ है। विकासवाद एक आशावादी चिन्तन है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिककाल में बौद्धिकता की प्रगति अमृतपूर्व रही है जिसका कारण पूँजीवाद भी रहा है जो नई-नई वस्तुओं के आविष्कार तथा पुरानी वस्तुओं के नवरूपोत्पादन पर ही आधृत रह सकता है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जब गोरों ने लगभग सारी दुनिया पर राजनैतिक-व्यावसायिक अथवा केवल-व्यावसायिक (निहित-स्वार्थ के अनुरूप) आधिपत्य स्थापित कर लिया तब उन्हें इतना बड़ा बाज़ार मिल गया कि यंत्र के बिना मॉग की आपूर्ति सम्भव न रही। अतः अठारहवीं शताब्दी में यूरोप, विशेषतः संसार के बहुत बड़े भाग के राजनैतिक-व्यावसायिक द्विविध-स्वामी ग्रेट ब्रिटेन, में व्यावसायिक क्रान्ति हुई जिसमें कताई-बुनाई तथा अन्य दिशाओं के अनेक यंत्र बने। क्रमशः विश्वाटन-सुविधा हेतु भाप के इंजन, वायुयान इत्यादि बनते रहे। अब भारी लाभ हेतु विशाल वायुयान, युद्धयान, युद्धपोत, संगणक (कम्प्यूटर) इत्यादि का युग चल रहा है। परिस्थितियों ने जापान जैसे विकसित, चीन जैसे सशक्त, इस्त्राइल जैसे उन्नत देशों समेत सारे विश्व को पश्चिम का अनुगामी बना दिया है। उन्नति ही अनुगमन को आकृष्ट कर सकती है। आज रूस तक अमेरिका का अनुकरण कर रहा है, चीन तो साम्यवादी कड़रता के सिंह-चर्म के नीचे उसका पुछल्ला बना हुआ है! भारत जैसे दरिद्र एवं पिछड़े देश तो पश्चिम के दास थे भी, हैं भी (संस्कृति, भाषा, जीवन-यापन, प्रायः सभी दृष्टियों से) पश्चिम के आधुनिककाल का समारम्भ अठारहवीं सदी में हुआ जब सुदीर्घकाल-प्रसरित औद्योगिक क्रान्ति हुई, अमेरिका की क्रान्ति (1775 ई.) में हुई, फ्रांस की क्रान्ति (6, मई 1789 ई.) में हुई तथा एक ओर औद्योगिक अथवा वैक्तिक उत्कर्ष हुआ, दूसरी ओर वैचारिक उथल-पुथल अभूतपूर्व हो गई, जिसके परिणामस्वरूप अगली दो शताब्दियों में जर्मन-अंचलों के तीन यहूदियों (जिनका परिवार बचपन में ईसाई बनने पर मजबूर हो गया था), फ्रायड (जिन्हें अपने मजहब के कारण ग्रेट ब्रिटेन भागना पड़ा जहाँ, मार्क्स के सदृश ही, वह भी मरे) और आइंस्टाइन (अणु-युग के जनक—इन्हें भी मजहब के कारण भागना पड़ा किन्तु यह अमेरिका गए और वहीं मरे) ने संसार के राजनैतिक-आर्थिक चिन्तन, मनोवैज्ञानिक चिन्तन और वैज्ञानिक चिन्तन में आमूलचूल क्रान्ति कर दी।² बर्बर तुकों और पठानों के अन्धकार-काल तथा विलासी मुगलों के प्रदर्शनपूर्ण परतंत्र-काल के कारणों से भारत पिछड़ चुका था अतः यहाँ बौद्धिककाल का आरम्भ उन्नीसवीं सदी में हुआ, जिसका कारण हिन्दू की जागरूकता भी थी, गौरांगों के साथ अज्ञात अतीत के मूल आर्य-संस्कारों की एकता भी, जिसके

1. द्रष्टव्य, 'ट्रेज़र्स ऑफ़ तूतनखामन' (वैलेंटाइन बुक्स, न्यू यॉर्क) और 1922 ई. में तूतनखामन के मक़बरे एवं कोष, मम्मी इत्यादि की खोज करनेवाले हार्वर्ड कार्टर कृत अमर ग्रन्थ 'द टूम ऑफ़ तूत-ऑख-अमन' (3 भाग जिनमें 1 ए. सी. मेस के साथ लिख गया) जो लंदन से छपा। 'ट्रेज़र्स ऑफ़ तूतनखामन' के अन्त मिस्त्र, फ़िराऊनों, मक़बरों, आभूषणों इत्यादि पर ग्रन्थों की बड़ी सूची दी हुई है जिसे प्राचीनतम सभ्यता में रुचि है उसके लिए यह अनमोल है।
2. मार्क्स 1883 ई. में मरे, फ्रायड 1939 ई., में आइंस्टाइन 1955 ई. में। मार्क्स के कारण श्रमिक-वर्ग में अभूतपूर्व चेतना का संचार हुआ—1 मई 1896 को अमेरिका के शिकागो नगर में आन्दोलनकारी श्रमिकों का नृशंस संहार हुआ जिसके परिणामस्वरूप 1 मई श्रमिकों का सर्वोपरि विश्व-पर्व बन गया। फ्रायड के काम-चिन्तन ने मनोविज्ञान एवं आइंस्टाइन के सापेक्षता-सिद्धान्त ने विज्ञान में क्रान्ति कर दी।

आ. रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आधुनिककाल का आरम्भ संवत् 1900 वि. (1843 ई.) से माना है, जिसकी प्रेरणा मिश्रबन्धु के 'विनोद' में 'परिवर्तन-कालिक हिन्दी' के संवत् 1890 वि. (1833 ई.) से आरम्भ में निहित है। शुक्लजी ने भारतेन्दु-काल संवत् 1925-1950 वि. (1868-1883 ई.) के मध्य माना है, जिसकी प्रेरणा मिश्रबन्धु के 'पूर्व हरिश्चन्द्र-काल' के संवत् 1626-1635 वि. (1869-1878 ई.) तथा 'उत्तर हरिश्चन्द्र-काल' के संवत् 1936-1945 वि. (1879-1888 ई.) के योग में निहित है। भारतेन्दु (1850-1885 ई.) पर केन्द्रित मिश्रबन्धु एवं तदनुवर्ती शुक्ल जी का यह काल-विभाजन ऐतिहासिक निकष पर खरा नहीं उतरता क्योंकि आधुनिकता का समारम्भ उनसे अर्द्ध-शताब्दि पूर्व ही हो चुका था, भले ही वे समूची उन्नीसवीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी-साहित्यकार भी रहे हों, हिन्दी-नेता भी, हिन्दी-नायक भी! विशद एवं ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी-साहित्य के इतिहास का आधुनिककाल (जिसे मैं प्रवृत्ति की सार्वभौम दृष्टि से संक्रान्तिकाल, पुनरुत्थानकाल एवं शास्त्रीकाल से विकसित तथा इनका उत्तराधिकारी बौद्धिककाल कहाना समीचीन समझता हूँ) 1800 ई. से आरम्भ होता है जब लॉर्ड वेलेज़ली ने कलकत्ता में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज स्थापित किया, जिसका उद्देश्य शासकों को जनभाषाज्ञान कराना भी था, भारतीय परिस्थितियों को समझने की प्रेरणा देना भी। 19 फरवरी 1802 को इसी कॉलेज में लल्लूजी 'लाल' की भाषा-मुंशी पद पर नियुक्ति हुई जिनके 'प्रेमसागर' का गद्य-साहित्य के इतिहास में भारी महत्व है। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का प्राचार्य जॉन गिलक्राइस्ट (1759-1841 ई.) नामक एक हिन्दी-विरोधी व्यक्ति था 'जो भाषा' को 'हिन्दुस्तानी' (बाबर की नहीं—उर्दू की पूँछ) कहता था तथा इसकी 'दरबारी फ़ारसी', 'मध्य-मूलभूत हिन्दुस्तानी' एवं 'गँवारु या हिन्दवी' तीन शैलियाँ ('द हाइ कोर्ट ऑर पर्शियन स्टाइल', 'द मिडल ऑर जेनुइन स्टाइल' एवं 'वलार ऑर हिन्दवी') मानता था, किन्तु इसकी प्रकाशन-योजना से हिन्दी का लाभ अवश्य हुआ क्योंकि उर्दूबाज़ी के बावजूद लल्लूजी 'लाल' के सिंहासन-बत्तीसी, बैताल-पच्चीसी, शकुन्तला-नाटक एवं माधवानल की वज़ह से अंग्रेज़ों में भी भाषा के प्रति रुझान बढ़ा और उनके भारतीय दासों (प्रशासनिक कर्मचारियों इत्यादि) में भी। सम्भवतः हिन्दी-विरोधी होने के कारण 26 फरवरी, 1804 को इसे हटा दिया गया अर्थात् इसने त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि टेलर रोएबक, प्राइस इत्यादि ने हिन्दी के हास के संकेत दिए हैं तथा प्राइस ने तो हिन्दी एवं हिन्दुस्तानी के लिपिपरक एवं भाषिक अन्तर को भी स्पष्ट किया है। आधे मन से ही सही, 'कम्पनी बहादुर' (सरकार) ने 1803 ई. में नागरी अक्षरों का महत्व स्वीकार किया था। कालांतर में फ्रेडरिक पिन्कॉट ने हिन्दी का खुला समर्थन किया। लल्लूजी 'लाल' ने खड़ीबोली में ही बिहारी-सतसई की 'लाल-चन्द्रिका' शीर्षक टीका भी लिखी। किन्तु संभवतः गिलक्राइस्ट के प्रभाव के कारण इनकी आरम्भिक पुस्तकों (सिंहासन-बत्तीसी, बैताल-पच्चीसी, शकुन्तला-नाटक, माधवानल) की भाषा उर्दू से लदी-बदी है। "यथा राजा तथा प्रजा" का यही प्रभाव कालांतर में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द को चर गया जिनकी उर्दूबाज़ी की नक़ल ने हिन्दी के लिए उनके किए-कराए पर भी पानी फेर दिया। बहुत बाद में नेहरू की उर्दूबाज़ी ने कई कवियों (शमशेरबहादुर सिंह, दुष्यंतकुमार, नीरज इत्यादि) को न घर का रखा न घाट का। एकदम आज संविधान की राजभाषा (हिन्दी) को कुचलने वाली दुर्दर्शन (दूरदर्शन)-भाषा (अंग्रेज़ी-हिन्दी की क्लर्क-ब्रांड खिचड़ी जो राष्ट्र के लिए नितांत अपमानजनक है) की नक़ल राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर जैसे 'प्रगतिवादी' का 'लाल' अंगवस्त्रम् ओढ़े परकीयतावादी उर्फ़ साम्यवादी मसिजीवी कर रहे हैं और किए गए भर रहे हैं। ऐसे लोग भूल जाते हैं कि उर्दू से आए बालमुकुन्द गुप्त,

1. डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णय ने 'फोर्ट विलियम कॉलेज' (वे 'विलियम' लिखते हैं जो सद्ध किन्तु गलत है) ग्रन्थ लिखकर अत्यन्त प्रशस्य कार्य किया है।

कौशिक, प्रेमचन्द, सुदर्शन, अश्वक इत्यादि ने हिन्दी की अस्मिता को आघात नहीं पहुँचाया तथा अंग्रेजी के विद्वान् प्राध्यापक होते हुए भी डॉ. रामविलास शर्मा, बच्चन इत्यादि ने हिन्दीपन से छेड़छाड़ नहीं की! हिन्दुस्तानी का समर्थन करने के कारण रामनरेश त्रिपाठी की क्षति हुई। गाँधी, नेहरू इत्यादि हिन्दुस्तानी-भक्तों की एक न चलने देनेवाले राजर्षि टंडन, देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसाद इत्यादि को भारी समान प्राप्त हुआ हैं टोडरमल ने हिन्दी के स्थान पर फ़ारसी चलवाई। जब आधुनिक भारतीय सांप्रदायिकता के एक प्रबल स्तम्भ तथा अंग्रेजों के भक्त सर सैय्यद अहमद ख़ाँ, परम हिन्दू-हिन्दी-विरोधी गार्सा द तासी, हिन्दी-विरोधी हैवेल, हिन्दुस्तानी के सेवक सर तेजबहादुर सप्रू, उर्दू एवं अंग्रेजी के अनन्य भक्त जवाहरलाल नेहरू इत्यादि हिन्दी के जन-रथ की गति नहीं रोक पाए, तब छुटभैए क्या कर पाएँगे? किन्तु संप्रति इटैलियन, अरब, ब्रिटिश एवं अमेरिकन तत्व बहुतांश को लाभों तथा उत्कोचों से ख़रीद रहे हैं अतः ख़तरा कहीं ज़्यादा हो गया है।

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के एक-दूसरे गद्य-पुरुष थे सदल मिश्र जिनका नासिककेतोपख्यान ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कर चुका है। अन्य पद्यपुरुषों में मुंशी सदासुखलाल 'नियाज़' (सुखसागर के लेखक) एवं उर्दू-शायर इंशाअल्ला ख़ाँ ('रानी केतकी की कहानी' के लेखक) के नाम भी विख्यात हैं ही।

30 मई, 1826 को कलकत्ता से कानपुर के पंडित युगलकिशोर शुक्ल ने 'उदंत मार्तण्ड' शीर्षक समाचार-साप्ताहिक निकाला, जिसे ऐतिहासिक महत्व प्राप्त हो चुका है। 1829 ई. में राजा राममोहन राय ने 'बंगदूत' नामक हिन्दी संवादपत्र निकाला। राजा साहब ने 'वेदांतसार' जैसी कई हिन्दी-पुस्तकें भी लिखीं। इससे भी पूर्व, 1818 ई. में ईसाइयत के प्रचार के उद्देश्य से ही सही, विलियम कैरे ने 'बाइबिल' का अनुवाद किया जो पुराने ढर्रे की हिन्दी में था, हिन्दुस्तानी में नहीं और आज तक प्रचलित है (कामिल बुल्के¹ वाइविल के 'न्यू टेस्टामेन्ट' का अनुवाद किया किन्तु यह निःशुल्क वितरित न किए जाने के कारण विशेष प्रचलित नहीं हो सका, यद्यपि इसकी भाषा नवीन एवं श्रेष्ठ है)।

1871 ई. में लॉर्ड बारेन हेस्टिंग्स की 'उदार शिक्षा' प्रसार-नीति के अनुरूप भारत में कलकत्ता में कॉलेज (मदरसा) की स्थापना हो चुकी थी, 1813 ई. में अंग्रेजी-शिक्षा का व्यवस्थित समारंभ भी किया गया तथा विज्ञान की शिक्षा के उन्नयन का लक्ष्य भी रखा गया, 1823 ई. में राजा राममोहन राय ने विज्ञान-शिक्षा पर विशेष बल दिया। 6 मार्च 1835 को मैकॉले की प्रेरणा से अंग्रेजीशिक्षा का प्रस्ताव पारित किया गया जिसके दूरगामी परिणाम निकले तथा निकल रहे हैं किन्तु इस हिन्दी-अहितकारी प्रस्ताव के कार्यान्वयन से एक लाभ यह हुआ कि हिन्दी उर्दू या इसके कालनेमि-रूप हिन्दुस्तानी के चंगुल के कुछ-न-कुछ निकलने लगी तथा हिन्दी-उर्दू दोनों की स्थितियाँ (प्राविधिक दृष्टि से ही सही) एक-जैसी हो गई, भले ही मुगल-दासता के प्रतिबद्ध तत्व आज तक हिन्दुस्तानी का बेसुरा राग अलापते रहते हों।

इन अनेक कारणों से हिन्दी-साहित्य के इतिहास का आधुनिककाल 1800 ई. से मानना ही उचित है। तत्पश्चात्: यह काल बौद्धिककाल है तथा बुद्धि के स्फुरण के अनेक बिन्दु (मुद्रण, गद्य, भाषागत अस्मिता की रक्षा इत्यादि) 1800 ई. में तथा इसके अनन्तर लगातार विकसित हुए हैं। स्वयं आ. शुक्ल ने इन सारे तथ्यों का विस्तार के साथ ऊहापोह किया है, जिससे उनका काल-निर्धारण यहाँ भी (आदिकाल या वीरगाथाकाल के सदृश ही) अंतर्विरोधपूर्ण हो गया है।

1800 ई. से ही हिन्दी और उर्दू के प्रच्छन्न रूप हिन्दुस्तानी के बीच संघर्ष का आरम्भ भी शुरू हुआ, जो आज भी चल रहा है, यद्यपि अब अंग्रेजी की दासता हिन्दी पर भी लादी जा रही है, हिन्दुस्तानी पर भी, उर्दू या उसके कालनेमि-रूप हिन्दुस्तानी के प्रति उर्दूदासों के संस्कारगत भक्तिभाव के बावजूद कोटि-कोटि जनता की भाषा हिन्दी कुचली नहीं जा सकी।

'बौद्धिककाल' शब्द से चौंकने या बिदकने का कोई कारण नहीं क्योंकि अब यह स्पष्ट हो चुका है। कि बुद्धि एवं भाव एक ही मस्तिष्क की दो भंगिमाएँ मात्र हैं, पृथक्-पृथक् तत्व नहीं। हृदय का भावना से कोई वैज्ञानिक या अन्य सम्बन्ध नहीं। बौद्धिक या भावात्मक प्रक्रिया-प्रतिक्रिया का उद्गम मस्तिष्क ही है। यह सत्य है कि उपनिषद् के 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' के सूत्र से बाइबिल की आदम द्वारा वर्जित जानतारु का फल खाने के कारण स्वर्ग की कथा में मूलभूत बुद्धि या तर्क या मस्तिष्क पर भाव या आस्था या हृदय को वरीयता प्रदान करने की रूढ़ि विश्वभर में व्याप्त है; भक्तिदर्शन का आधार ही ज्ञान एवं योग पर भक्ति एवं प्रेम को

1. कामिल बुल्के (1909-1984 ई.) का विश्यात ग्रन्थ 'राम-कथा: उत्पत्ति और विकास' (1950 ई.) है। उनका 'अंग्रेजी-हिन्दी-कोश' भी अच्छा है। बेल्जियम में जन्मे ईसाई-प्रचारक बुल्के भारत में रहे भी, मरे भी।

2. अंग्रेजी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'पैराडाइज़ लॉस्ट' (जॉन मिल्टन) इसी पर आधृत है।

वरीयता प्रदान करना है जिसका सर्वश्रेष्ठ रूप 'रामचरितमानस' (विशेषतः उत्तरकांड) एवं 'सूरसागर' (विशेषतः भ्रमरगीत प्रसंगों में) जैसे हिन्दी के अद्वितीय एवं अतुलनीय ग्रन्थों में स्पष्टतः दृग्गत होता है; जिसका आधुनिक प्रतिपादन अनातोले फ्रांस इत्यादि में प्राप्त होता है—तथा जिसको प्रसाद ने कामायनी में विराट् रूप प्रदान किया हैं, किन्तु इस-सब के अर्थवादगत महत्व के बावजूद वैज्ञानिक अथवा वास्तविक तथ्य की उपेक्षा उचित नहीं। व्यावहारिक दृष्टि से इस दर्शन की यह उपयोगिता अवश्य विचारणीय है कि मनुष्य को जटिल शास्त्रीयता एवं वैज्ञानिकता से बचते हुए सहज-सरल जीवन व्यतीत करना सुखदतर है। किन्तु तत्त्वतः यह निराधार भी है, द्वैतमूलक भी। आश्चर्य है कि अद्वैतवादी प्रसाद ने कामायनी में हृदयपक्ष-बुद्धिपरख के द्वैत को प्रथम दिया तथा आ. शुक्ल की 'चिंतामणि'-यात्रा में निकली "बुद्धि पर हृदय को साथ लेकर" (नगेन्द्र के 'आस्था के चरण' इसका शब्दांतर झड़ा और श्रद्धा में कर देते हैं)!

'फ़ीलिंग' एवं 'थॉट' अथवा 'भावना' एवं 'विचार' का द्वैत गहनतम सर्जना नहीं कर सकता। द्वैत सतही है, अद्वैत गहन। संसार-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ महाभारत हो या हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ रामचरित्रमानस, सर्वत्र भावविचार-अद्वैत सम्मानित हुआ है :

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रिय हितं च यत्।

स्वाध्यायाभ्येसनं चैव वाङ्मयं-तप उच्यते।।

हृदय-सिंधु मति सीप समाना। स्वाति-सारदा कहहिं सुजाना।।

जौ बरसहि बर-बारि-विचारू। होहि कवित-मुकुतामनि चारू।।

जैसे ऋग्वेद के यम-यमी-संवाद, इंद्र-इंद्राणी-संवाद इत्यादि की कोई उपयोगिता नहीं है, रामायण की विंध्याचल को सागर-तट पर बतलाने वाली जैसी चर्चाएँ गलत हैं, महाभारत का रामोपाख्यानपर्व अनिन्तनीय है, दशरथ-जातक में राम-सीता को भाई-बहन कहना निन्दनीय है, पउम-चरित में राम का जैन बनना तथा लक्ष्मण का हिंसा के कारण नरक जाना लिखा होना मूर्खतापूर्ण है, बाइबिल की नर-बलि इत्यादि की आदिम कवायली कथाएँ घृण्य हैं, इलिअड-ओडिसी की बलि-प्रधान साधना त्याज्य है, कुरान के काफ़िर वध इत्यादि आह्वान विगर्हणीय हैं, 'डिवाइन कॉमेडी' का मोहम्मद और अली (रोदित) को भयानकतम नरक (इन्फ़र्नो) में देखना धर्मान्धतापूर्ण है, वैसे ही 'पैराडाइज़ लॉस्ट' की ज्ञानतरु-आवृत कथा धर्मान्धता-युग की एक मूढ़-कथा मात्र है तथा कामायनी का हृदयपक्ष बुद्धिपक्ष-द्वैत अवैज्ञानिक एवं अग्राह्य है। विज्ञान की घातक देनें (प्रदूषण जो अंतरिक्ष के प्राणवायु-क्षेत्र या ओज़ोन तक प्रसरित होकर जीवन के अस्तित्व के लिए ख़तरा पैदा कर रहा है, अन्ध-यंत्रीकरण, आवश्यकताओं की सुरसा-मुख से भी अधिक स्फीति इत्यादि) बुद्धिजन्य न होकर पूँजीवादी-शोषण-जन्य हैं। इसी प्रकार, बलि-प्रथा, धार्मिक मानव-हिंसा, ऊँच-नीच, श्वेत-अश्वेत, काफ़िर-मोमिन इत्यादि के घृणास्पद विन्दु भावनाजन्य न होकर अन्धविश्वासजन्य अथवा आदिममूढ़ताजन्य हैं। बौद्धिकता का अर्थ ही विचार-भाव-अन्विति है। कोई महान् विचार भाव-दुर्बल नहीं हो सकता। बौद्धिकता ने ही मानव-समस्याओं के समाधान ढँढ़े हैं, परा-मनोविज्ञान इत्यादि में उपयोगिता के अनुसंधान किए हैं, भावुकता को नूतन एवं सशक्त आयाम प्रदान किए हैं। बौद्धिकता का प्रत्याख्यान केवल अव्यावहारिक ही नहीं अपितु प्रतिगामिता का प्रतीक भी है।

बौद्धिककाल हिन्दी-साहित्य के इतिहास में विविध-विद्यात्मक सृजन का अपूर्व एवं अतुलनीय काल है, जिसमें व्यक्तित्व-कृतित्व के समन्वय-रूप भारतेन्दु, व्यक्तित्व की महानता के समेरु आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, उपन्यास-कहानी-सम्राट् प्रेमचन्द, निबन्ध-आलोचना के गौरव-पुरुष आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला और पन्त का कवि-चतुष्टय प्रथम श्रेणी को मंडित करता है। यह सत्य है कि तुलसी एवं सूर अब भी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं तथा व्यक्तित्व-गरिमा में कबीर, नानक एवं मीराँ का स्तर केवल आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी में दृग्गत होता है (जिनका सृजनात्मक साहित्य विशेष महत्वपूर्ण नहीं) किन्तु चन्द्र, विद्यापति, जायसी, केशव, बिहारी, भूषण, देव एवं पद्माकर की परम्परा को गुप्त, प्रसाद निराला एवं पन्त ने निस्सन्देह आगे बढ़ाया है तथा प्रेमचन्द एवं शुक्ल विश्व-स्तरीय गद्यकार हैं। पिछले बारहसौ वर्षों की हिन्दी-साहित्ययात्रा पर संसार, भारत एवं हिन्दी-क्षेत्र सन्तोष कर सकता है। बौद्धिककाल का वस्तुपरक विभाजन प्रस्तुत है :

1. सन्धि-युग (1800-1850 ई.)
2. सुधारवादी युग (1850-1900 ई.)
3. आदर्शवादी युग (1900-1920 ई.)
4. स्वच्छन्दतावादी युग (1920-1940 ई.)

5. यथार्थवादी युग (1940 ई. से)

1. संधि-युग
(1800-1850 ई.)

शृंखारकाव्य	रामकाव्य	कृष्णकाव्य	वीरकाव्य	नीतिकाव्य	संतकाव्य	हास्यकाव्य	गद्य
बेना प्रवीन प्रतापसाहि द्विजदेव इत्यादि।	विश्वनाथसिंह गिरिधरदास (गोपालचंद्र) इत्यादि।	रसिक गोविंद ग्याल कवि गिरिधरदास (गोपालचंद्र) इत्यादि।	जोधराज चंद्रशेखर वाजपेयी सूर्यमल्ल मिश्रण इत्यादि।	वैताल दीनदयाल गिरि इत्यादि।	तुलसी साहब पहलवानदास इत्यादि।	बेनी वंदीजन	लल्लूजी 'लाल' सदल मिश्र सदासुखलाल 'नियाज' इंशाअल्ला ख़ाँ युगकिशोर शुक्ल राजा राममोहनराय इत्यादि।

प्रवृत्तियाँ : प्रायः पारम्परिक। काव्य भाषा: ब्रजभाषा। प्रभाव शृंगारकाव्य का सुधारवादी युग के कवियों पर यकिचित्; गद्य की दृष्टि से लल्लूजी 'लाल' की उर्दूभरी-शैली का राजा शिवप्रसाद सितेरहिन्द की उर्दूभरी-शैली पर, शेष का परवर्ती युगों पर नगण्य। प्रमुख आचार्य व्यंजना-विवेचक प्रतापसाहि ^{भूष} एवं आचार्य ग्याल कवि; प्रमुख कवि जोधराज, चन्द्रशेखर वाजपेयी (वीरकाव्य), अन्योक्ति-सम्राट् बाबा दीनदयाल गिरि (नीतिकाव्य)। प्रमुख विशेषता गद्य का अनवरत विकास। प्रासंगिक विशेषता गिरिधरदास (गोपालचन्द्र) द्वारा नाटक का अपेक्षाकृत व्यवस्थित समारम्भ। सन्धि-युग वस्तुतः सुधारवादी युग का उर्वरक-युग था।

1. सन्धि-युग

प्रमुख विशेषता: गद्य

सन्धि-युग की सबसे बड़ी साहित्येतिहासिक घटना थी गद्य का व्यापक सृजन एवं अनवरत उत्कर्ष जिसके लिए लल्लूजी 'लाल', सदल मिश्र, ईशाअल्ला खा एवं सदासुखलाल 'नियाज़' के नाम चिरस्मणीय हो गए हैं। लल्लूजी 'लाल' निस्सन्देह एक उच्चकोटि के शैलीकार थे जिन्होंने प्रेमसागर में विषयानुरूप पंडितारूपन वाली शैली अपनाई तथा वैताल-पच्चीसी इत्यादि में गिलक्राइस्ट को प्रसन्न करने के लिए उर्दू-भरी शैली। प्रेमसागर की पंडिताऊ शैली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' इत्यादि ब्रजभाषा तथा 'भाषा योग-वासिष्ठ' की खड़ीबोली से प्रभावित थी तथा कथावाचकों में आज तक श्रुतिगोचर हो सकती है। वैताल-पच्चीसी इत्यादि की उर्दू-भरी शैली का अनुकरण सुधारवादी युग में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने अपनी अंग्रेज़ों को खुश करने के लिए लिखी गई पाठ्यपुस्तकों में किया तथा इस शैली का प्रयोग परम उर्दू-भक्त नेहरू के भाषण-संग्रहों इत्यादि तक दृग्गत हो सकता है। वे ब्रजभाषा-गद्यकार भी थे। सदल मिश्र का गद्य पूरबीपन के बावजूद एकरूप है। ईशा का गद्य खलिसपन के पूर्वाग्रह के कारण तमाशाई लगता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध कृत 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' के अतिरिक्त अन्यत्र इसका प्रभाव नहीं मिलता। सदासुखलाल 'नियाज़' का गद्य अधिक स्वाभाविक है किन्तु पुरानापन उसमें भी विद्यमान है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

ग्रीष्म की अति अनीति देख नृप पावस-प्रचंड पशु-पक्षी जीव-जन्तुओं की दशा विचार चारों ओर से दल-बादल साथ ले लड़ने को चढ़ आया। जिस समय घन जो गरजता था सोई तौ धौंसा बजता था और वर्ण-वर्ण की घटा जो घिर थी सोई शूर-वीर रावत थे जिनके बीच विजली की दमक शस्त्र की सी चमक थी बग-पाँति ठौर-ठौर ध्वजा सी फहराय रही थी दादुर-मोर कड़खैतों की सी भाँति यश बखानते थे और बड़ी-बड़ी बूँदों की झड़ी बाणों की सी झड़ी लगी थी।

(लल्लूजी 'लाल': 'प्रेमसागर' 1802 ई.)

इस प्रकार से नासिकेतु मुनि यम की पुर सहित नरक का वर्णन कर फिर जौन-जौन कर्म किए से जो भोग होता है जो सब ऋषियों से सुनाने लगे कि गौ ब्राह्मण माता-पिता बालक स्त्री स्वामी वृद्ध गुरु इनका जो वध करते हैं, जो झूठी साक्षी भरते झूठ ही कर्म में दिन-रात लगे रहते हैं अपनी भार्या को त्याग दूसरे की स्त्री को ब्याहते औरों की पीड़ा देख प्रसन्न होते और जो अपने धर्म से हीन पाप ही में गड़े रहते हैं वो माता-पिता की हित बात को नहीं सुनते सब से बैर करते हैं ऐसे जो पापी जन हैं सो महा डेरायने दक्षिण द्वार से जा नरकों में पड़ते हैं।

(सदल मिश्र: 'नासिकेतोपाख्यान या चंद्रावती' 1803 ई.)

एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए जिसमें हिन्दवी की छुट और किसी और किसी बोली का पुट न मिले तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच न हो।

*

■

*

इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझसे कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती पर यह बात मेरे पेट में नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो तुमने अभी कुछ देखा नहीं। जो ऐसी बात सचमुच दलाव देखूँगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भूभूत जो वह मुआ निगोड़ा भूत मुछंदर का पूत अवधूत दे गया है हाथ मुरकवाकर छिनवा लूँगा।

(ईशाअल्ला खाँ: उदयमान-चरित या 'रानी केतकी की कहानी' 1805 ई. के आसपास)

इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चांडाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ही ब्राह्मण से चांडाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे हमें इस बात डर नहीं। जो बात सत्य हो उसे कहना चाहिए कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका जो सत्त्ववृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कह के लोगो को बहकाइए और फुसलाइए और सत्य छिपाइए व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए और धन-द्रव्य इकठ्ठर कीजिए और मन को कि तमोवृत्ति से भर रहा है निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।

(मुंशी सुदासुखलाल 'नियाज़': अपरिसमाप्त 'सुखसागर' 1820 के आसपास)

कविता

सन्धि-युग का काव्य-सृजन प्रायः पारंपरिक रहा यद्यपि प्रतापसाहि ने व्यंजना की विशद व्याख्या की, द्विजदेव ने उन्नत ब्रजभाषा में उन्नत सौन्दर्यचित्रण एवं प्रकृतिचित्रण किया, रामसहायदास, नवलसिंह कायस्थ इत्यादि ने रामकाव्य, ग्वाल कवि इत्यादि ने कृष्णकाव्य, जोधराज एवं चन्द्रशेखर वाजपेयी इत्यादि ने वीरकाव्य, दीनदयाल गिरि ने नीतिकाव्य, वेनी बंदीजन ने हास्यकाव्य, सेवक, गणेश कवि इत्यादि ने अनुवादकाव्य को गतिशील किया तथा गिरिधरदास (गोपालचन्द्र) से नाटक-रचना के शास्त्रीयकाल में विश्वनाथ सिंह द्वारा आरम्भ किए गए प्रयोग को विकसित करने का श्रेय प्राप्त किया, तथापि नव्यता-भव्यता के आयाम परिसीमित ही रहे। इस युग की काव्य-रचना के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

चंचलता अपनी तजि कै रस ही रस सों रस सुंदर पीजियो ।
कोऊ कितेक कहै तुमसों तिनकी कही बातन को न पतीजियो ।।
चोज चवाइन के सुनियो न, यही इक मेरी कही नित कीजियो ।
मंजुल मंजरी पैहो, मलिनद! बिचारि के भार सँभारि कै दीजियो ।
सीख सिखाई न मानति है, बर ही बस संग सखीन के आवै ।
खेलत खेल नए जल में, बिन काम बृथा कत जाम वितवै ।।
छोड़ि कै साथ सहेलिन को, रहि कै कहि कौन सवादहि पावै ।।
कौन परी यह बानि, अरी! नित नीर-भरी गगरी ढरकावै ।'
(प्रतापसाहि)

मिलि मालती आदिक फूल के ब्याज बिनोद-कला बरसायो करैं ।
रचि नाच लता-गन तान वितान सबै विधि चित्त चुरायो करैं ।।
द्विजदेव जू देखि अनोखी प्रभा अलि-चारन कीरति गायो करैं ।
चिरजीवो बसंत! सदा द्विजदेव प्रसूनन की झरि लायो करैं ।।
आजु सुभायन ही गई बाग, बिलोकि प्रसून की पाँति रही पगि ।
ताहि समै तहँ आए गोपाल, तिन्हँ लखि औरो गयो हियरो ठगि ।।
पै द्विजदेव न जानि पर्यौ धौ कहा तेहि काल परे अँसुवा जगि ।
तू जो कही, सखि! लोनी सरूप, सो मो अँखियान कों लोनी गई लगि ।।
(द्विजदेव)

आलम-नेवाज सिरताज पातसाहन के, गाज ते दराज कोप-नजर तिहारी है ।
जाके डर डिगत अडोल गढ़धारी, डग मगत प्रहार और डुलति महि सारी है ।।
रंक जैसो रहत ससंकित सुरेस भयो, देस-देसपति में अतंक अति भारी है ।
भारी गढ़धारी, सदा जंग की तयारी, धाक मानै न तिहारी या हमीर हठधारी है ।।
भागे मीरजादे, पीरजादे औ अमीरजादे, भागे खानजादे प्रान भरत बचाय कै ।
भागे गज, बाजि, रथ, पथ न सँभारैं, परैं। गोलन पै गोल, सूर सहमि सकाय कै ।।
भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि वेगि बलित-बितुंड पै बिराजि बिलखाय कै ।
जैस लगे जंगल में ग्रीष्म की आगि, चलैं भागि मृग, महिष, बराह विललाय कै ।।
(चन्द्रशेखर वाजपेयी)

1. मीननयनी घटजल में मीन-विम्ब से भ्रमित होती है। भ्रांतिमान अलंकार। अन्य अर्थ 'अशु' की रस-सामग्री से संपृक्त है। प्रतापसाहि की कविता में अन्योक्ति एवं श्लेष के गम्भीर प्रयोग अतीव मनोहारी हुए हैं।

निकट रहे आदर घटै दूर रहे दुख होय। सम्मन या संसार में प्रीति करो जनि कोय।।
सम्मन चहु सुख देह को तौ छोड़ौ ये चारि। चोरी चुगुली जामिनी और पराई नारि।।
सम्मन मीठी बात सों होत सबै सुख पूर। जोहि नहिं सीखो बोलिबो तेहि सीखो सब धूर।।
(सम्मन)

वरसौ कहा, पयोद! इत मानि मोद मन माहिं। यह तो ऊपर भूमि है अंकुर जमिहै नाहिं।।
अंकुर जमिहै नाहिं वरस सत जौ जल दैहै। गरजै-तरजै कहा, बृथा तेरो स्रम जैहै।।
वरनै दीनदयाल न ठौर-कुठौरहि परखै। नाहक गाहक बिना, बलाहक! ह्यौ तू वरसै।।
केतो, सोम! कला करो करौ सुधा को दान। नहीं चंद्रमनि जो द्रवै, यह तेलिया-पखान।।
यह तोलिया-पखान, बड़ी कठिनाई जाकी। टूटी याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी।।
वरनै दीनदयाल, चंद! तुमही चित चेतौ। कूर न कोमल होहिं कला जौ कीजै केतौ।।
(दीनदयाल गिरि)

घर-घर, घाट-घाट, वाट-वाट ठाट ठटे, वेला और कुवेला फिरै चेला लिए आसपास।
कविन सों वाद करै, भेद विन नाद करै, महा-उनमाद करै धरम-करम-नास।।
बेनी कवि कहै, विभिचारिन को वादसाह, अतन-प्रकास, तन सतन सरन-तास।
ललना ललक, नैन मैन की झलक, हँसि हेरत अलक रद खलक ललकदास।।¹
चींटी की चलावै को, मसा के मुख आपु जायँ, स्वाद की पवन लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाए मरु-मरु कै निहारे जात, अनु-परमानु की समानता खगत है।।
बेनी कवि कहै, हाल कहाँ लौं बखान करौं, मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है।
दीन्हें दयाराम मन मोद करि ऐसे आम जाके आगे सरसो सुमेरु-सी लगत है।।²
गाड़ि जात बाजी ओ गयंद-गन अड़ि जात, श्रुतुर अकड़ि जात, मुसकिल गऊ की।
बावन उड़ाय पाँव धोखे जो धरत होत आप गडकाव रहि जात मऊ की।।
बेनी कवि कहै, देखि थर-थर काँपै गात, रथन को पथ न, बिपति बरदऊ की।
वार-वार कहत पुकारि करतार! तो सों, मीच हू कबूल पै न कीच लखनऊ की।।³
(बेनी बंदीजन)

नवयुग-वाहक साहित्यकार

लल्लूजी 'लाल'

मिश्रबन्धु के शब्दों में 'वर्तमान गद्य के जन्मदाता' लल्लूजी 'लाल' (1763-1825 ई.—जन्म: आगरा, निधन: कलकत्ता) के प्रेमसागर⁴, सिंहासन-बत्तीसी, बैताल-पच्चीसी, माधवानल, लालचन्द्रिका (बिहारी-सतसई की टीका) इत्यादि ग्रन्थ पुरातनवादी-कथावाचकवादी होते हुए भी ऐतिहासिक महत्व स्थापित कर चुके हैं। यह गुजराती औदीच्य ब्राह्मण थे जिन्होंने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में 'भाखा-मुंशी' (हिन्दी-प्राध्यापक) का कार्य करते हुए एक लोकप्रिय गद्यकार का गौरव प्राप्त किया, जिसमें इनके प्रेस-मालिक होने से चार चाँद लग गए। यद्यपि यह साधारण ब्रजभाषा-कवि भी थे, तथापि अमर गद्यकार के रूप में ही हैं। दो उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. बेनी बंदीजन ने ललकदास पर तीन भँडौवे कहे हैं, जैसाकि मिश्रबन्धु ने ठीक ही लिखा है; अतः डॉ. भगीरथ मिश्र का 'एक छन्द' लिखना शलत है। संयोगात् ललकदास एवं मिश्रबन्धु लखनऊ के ही थे तथा बेनी बंदीजन एवं डॉ. भगीरथ मिश्र वहाँ रहे थे।
2. किन्हीं दयाराम पर बहुत छोटे आम देने पर व्यंग्य।
3. लखनऊ के कीचड़ पर व्यंग्य। 'तुजुके-जहाँगीरी' (जहाँगीरनामा) में जहाँगीर का अहमदाबाद पर व्यंग्य याद आता है।
4. रचनाकाल 1802 ई.। प्रकाशन 1803 ई.।

1. शुकदेवजी बोले कि राजा एक समय पृथ्वी मनुष्य तन धारण कर अति कठिन तप करने लगी। तहाँ ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन तीनों देवताओं ने आ उससे पूछा कि तू किसलिए इतनी कठिन तपस्या करती है। धरती बोली कृपासिन्धु मुझे पुत्र की वांछा है इस कारण महा तप करती हूँ। दया कर मुझे एक पुत्र अति बलवंत महाप्रतापी बड़ा तेजस्वी दो ऐसा कि जिसका सामना संसार में कोई न करे न वह किसी के हाथ से मरे। यह वचन सुन प्रसन्न हो तीनों देवताओं ने वर दे उससे कहा तेरा सुत भौमासुर नाम अति बली महाप्रतापी होगा।

2. जिस काल ऊषा बारह वर्ष की हुई तो उसके मुखचन्द्र की ज्योति देख पूर्णमासी का चन्द्रमा छविहीन हुआ बालों की श्यामता के आगे अमावस्या की अँधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी सटकाई लख नागिन अपनी केंचली छोड़ सटक गई। भौंह की बंकाई निरख धनुष धकधकाने लगा। आँख की बड़ाई चंचलाई पेख मृग मनी खंजन खिसाय रहे।

सदन मिश्र

केवलमात्र 38 पृष्ठों के 'नासिकेतोपाख्यान' (1803 ई.) के कारण हिन्दी-गद्य के आरम्भिक आचार्यों में प्रतिष्ठित सदल मिश्र (1767-1847 ई.—धुवडीहा, जिला शाहाबाद, बिहार) ने 'रामचरित' (1803 ई.) शीर्षक अध्यात्म-रामायण का अनुवाद भी प्रस्तुत किया था (दोनों ग्रन्थ 'सदल मिश्र ग्रन्थावली' के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं)। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता में सदल मिश्र एवं लल्लू जी 'लाल' ने सहकर्मियों के रूपों में रामप्रसाद निरंजनी के पूर्ववर्ती गद्य को गतिशील एवं आधुनिक गद्य का शिलान्यास किया। लल्लू जी 'लाल' की भाषा में ब्रज का रंग अधिक है, उनकी कविता ब्रजभाषा में है। सदल मिश्र की भाषा में पूर्वी का रंग अधिक है, उनकी कविता खड़ीबोली में है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. नरक निवासी सुख के रासी हरि चरित्र नहिं गए। क्रोध लोभ को नीच संग कहो कौन फल पाए ।।
तजि आचार महा मद माते हृदय चेत नहिं ल्याए। आतुर है नारिन के पीछे मानुष जन्म गँवाए ।।
2. सकल सिद्धिदायक वो देवतन के नायक गणपति को प्रणाम करता हूँ कि जिनके चरनकमल के स्मरण किए से विघ्न दूर होता है और दिन हिय में सुमति उपजती वो संसार के लोग अच्छा भोग विलास कर सबसे धन्य कह अन्त में परमपद को पहुँचते हैं जहाँ इन्द्र आदि देवता सब भी जाने को ललचाते रहते हैं।
3. चित्र विचित्र सुन्दर सुन्दर बड़ी बड़ी अटारिन से इन्द्रपुरी समान सोभायमान नगर कलिकत्ता² महाप्रतापी वीर नृपति कम्पनी महाराज³ के सदा फूला फला रहे कि जहाँ उत्तम उत्तम लोग बसते हैं और देश देश से एक से एक गुणी जन आय अपने अपने गुण को सुफल करि बहुत आनन्द में मगन होते हैं।

सदासुखलाल 'नियाज'

'सुखसागर' के प्रणेता मुंशी सदासुखलाल 'नियाज' (1746-1824 ई.⁵—जन्म दिल्ली, मृत्यु प्रयाग) हिन्दी-गद्य के आद्याचार्यों में प्रतिष्ठित हैं। मिश्रबन्धु के शब्दों में "आपकी भाषा संस्कृत-मिश्रित विशुद्ध खड़ीबोली है, जिसका कहीं-कहीं पंडिताऊ⁶ से भी कुछ लगाव है। यद्यपि आप उर्दू से भली-भाँति परिचित⁷ थे, तथापि ग्रन्थों में अपने हिन्दुओं की उस श्रेष्ठभाषा का प्रयोग किया, जिसे अपने समय में प्रचलित पाया। शुद्ध भक्त और सच्चरित्र पुरुष थे।" यद्यपि यह फ़ोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता में 'भाखा-मुंशी' न थे, तथापि 'कम्पनी बहादुर' के मुलाजिम (चुनार में तहसीलदार) अवश्य थे। किन्तु इनका कृतित्व स्वतन्त्र एवं स्वातः—सुखाय रहा। यह उत्कट

1. नासिकेतु की उत्पत्ति, यमपुरी-दर्शन, ऋषियों से वर्णन यम-सभा का वर्णन मिश्रबन्धु के शब्दों में 'उपहासास्पद'। भाषा में 'पूर्वोपन' (मिश्रबन्धु—आ. शुक्ल ने इसी शब्द का प्रयोग किया है)।
2. 'कालिकाता' से बना शब्द। जॉब चारनौक ने 1690 ई. में आरम्भ किया। कहीं-कहीं 1707 ई. लिखा मिलता है।
3. 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' का 'मानवीकरण'। 'कम्पनी बहादुर' भी चलता था।
4. विष्णुपुराण पर आधृत अपरिसमाप्त रूप में प्राप्त कृति।
5. संवत् 1803-81 विक्रमी ('विनोद')।
6. आ. शुक्ल ने इस शब्द का भरपूर प्रयोग किया है।
7. 'नियाज' तख़ल्लुस से जाहिर है कि शायरी भी करते थे।

हिन्दीप्रेमी थे तथा इस सन्दर्भ में आ. शुक्ल ने इनका व्यथाव्यंजक उद्गार “रस्मों-रिवाज भाखा का दुनिया से उठ गया” ठीक ही उद्धृत किया है। उदाहरण प्रस्तुत है :

“इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चांडाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो तुरन्त ही ब्राह्मण से चांडाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे हमें इस बात का डर नहीं। जो बात सत्य हो उसे कहना चाहिए कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कह के लोगों को बहकाइए और फुसलाइए और सत्य छिपाइए व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए और धनद्रव्य इकठौर कीजिए और मन को कि तमोवृत्ति से भी रहा है निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।”

सदासुखलाल का गद्य खड़ीबोलीपन की दृष्टि से लल्लू जी ‘लाल’ के ब्रजभाषापन वाले तथा सदल मिश्र के पूर्वीपन वाले गद्य से अधिक खरा है क्योंकि वे खड़ीबोली-क्षेत्र में जन्में थे, उर्दू के शायर भी थे।

इंशाअल्ला ख़ाँ

‘रानी केतकी की कहानी’ (वास्तव में ‘उदयमान-चरित’ या ‘रानी केतकी की कहानी’: रचनाकाल 1798-1803 ई. के बीच¹) में संस्कृत-रहित ठेठ हिन्दी² की बाज़ीरीरी दिखाने वाले अपने ज़माने में उर्दू के नामी-गिरामी शायर इंशाअल्ला ख़ाँ (मृत्यु 1817 ई.)³ मूलतः कश्मीरी थे जिनके पिता दिल्ली आए, मुर्शिदाबाद गए (जहाँ इंशा पैदा हुए) और इंशा दिल्ली-दरबार में रहे और लखनऊ में भी इनके ज़िन्दादिली, चुलबुलाहट एवं मस्ती ग़ज़ब की थी जिसके उल्लेख ‘विनोद’ एवं ‘कविता-कौमुदी’ (उर्दू: रामनरेश त्रिपाठी) में प्राप्त होते हैं। इनके कृत्रिम गद्य की आ. श्यामसुन्दरदास एवं लक्ष्मीसागर वाष्णय ने ज़रूरत से ज़्यादा तारीफ़ कर डाली है, क्योंकि उसकी न तो कोई परम्परा ही बन सकती थी, न बन ही सकी (एकाध नकलें हुईं, तो वे भी बेकार गईं)। संस्कृत-च्युत खालिसबाज़ी हिन्दी में सम्भव नहीं और ‘धूममचातियाँ’, ‘अँगड़तियाँ’, ‘जम्हातियाँ’ जैसे प्रयोग तो सर्वथा हास्यास्पद ही हैं। फिर भी, इंशा लल्लू जी ‘लाल’ ‘सदल मिश्र एवं सदासुखलाल ‘नियाज़’ के साथ आरम्भिक हिन्दी-गद्य के समसामयिक आचार्यों में एक माने गए हैं। ‘विनोद’ से उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले। तब जा मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो।... हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।

स्पष्ट है कि ‘रानी केतकी की कहानी’ जनविरोधी गद्य की सूचक है, जो एक दरबारी हँसोड़िये ने मन की मौज में आकर लिख मारी थी।

युगलकिशोर शुक्ल: हिन्दी-पत्रकारिता के जनक

30 मई, 1826 (ज्येष्ठ कृष्ण 9, सं. 1883 वि.)⁴ को कलकत्ता से हिन्दी का प्रथम साप्ताहिक समाचारपत्र ‘उदन्त मार्तण्ड’ निकालने वाले कानपुर के पं. युगलकिशोर शुक्ल हिन्दी-पत्रकारिता के अज़र-अमर जनक हैं। संपादकाचार्य पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के शब्दों में, “संपादक बहुभाषज्ञ थे। यह उनका बड़ा भारी गुण था। ‘उदन्त मार्तण्ड’ हिन्दी का पहला समाचारपत्र होने पर भी भाषा और विचारों की दृष्टि से सुसम्पादित पत्र था।”⁵ डॉ. प्रतापनारायण टंडन के अनुसार, “इस पत्र में सरकारी अफसरों की नियुक्ति और

1. ‘विनोद’ के अनुसार 1855-1860 विक्रमी।

2. हरिऔध ने नक़ल में ‘ठेठ हिन्दी का ठाठ’ (उपन्यास) रचा है।

3. ‘विनोद’ के अनुसार 1875 विक्रमी। ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में 1856 विक्रमी ग़लत छपा लगता है क्योंकि शुक्ल ने सारा विवरण ‘विनोद’ से ही लिया है—75 के स्थान पर 57 ग़लत छप गया है। ‘हिन्दी साहित्य कोश भाग’ में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने मृत्यु 1817 ई. में लिखी है, जो ठीक लगती है।

4. त्रैमासिक ‘कान्यकुब्ज मंच’ (कानपुर) के दिसम्बर 1989 अंक (अतिथि-संपादक बद्रीनारायण तिवारी—सं. बालकृष्ण पांडेय) में संयुक्त-संपादक आशुतोष पांडेय का लेख “आदिपत्रकार पं. युगलकिशोर शुक्ल और ‘उदन्त मार्तण्ड’”, पृष्ठ 41

5. वही।

स्थानान्तरण की सूचनाएँ, यात्रा-वर्णन, व्यापारिक तथा कानूनी सूचनाएँ, जहाजों की समय-सारणी, विदेश-चर्चा, साहित्यिक सूचनाएँ, सार्वजनिक नोटिस आदि प्रकाशित होते थे। यह पत्र दिसम्बर, 1827 ई. को ग्राहकों की कमी के कारण बन्द हो गया। 'उदन्त मार्तण्ड' के अवतरणों को देखने से यह प्रतीत होता है कि युगलकिशोर को कई भाषाओं का ज्ञान था क्योंकि उनकी भाषाओं में संस्कृत, फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी के साथ ब्रजभाषा और खड़ीबोली की परिमार्जित शैली मिलती है।" इस पत्र का आदर्श वाक्य था :

दिनकर का प्रगटत दिनहिं यह प्रकाश अठयाम।
ऐसो रवि ऊग्यो महि जेहि तेहि को सुखधाम।।
उत कमलनि विकसित करत बढ़त चाव चित वाम।
लेत नाम या पत्र को होत हर्ष अरु काम।।

शीर्षकान्त में संस्कृत-श्लोक दिया जाता था :

दिवाकान्तकान्ति विनाध्वांतमन्तं न चाप्नोति तदवज्जगयाज्ञ लोकः।
समाचारसेवामृते तत्त्वमाप्तं न शक्नोति तस्माकरोमीतियत्नम्।।

'उदन्त मार्तण्ड' समाचार पत्र की 'प्रथमता' स्वयं सिद्ध है:

यह 'उदन्त मार्तण्ड' अब पहिले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेज़ी ओ पारसी ओ बँगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों को जानने ओ पढ़ने वालों की ही होता है। इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेंयँ ओ पराई अपेक्षा न करें ओ अपने भाषे की उपज न छोड़ें।.... जो कोई प्रशस्त लोग इस खबर के कागज के लेने की इच्छा करें तो अमड़ा तला की 37 अंक मार्तण्ड-छापाघर में अपना नाम ओ ठिकाना भेजने ही सतवारे के सतवारे यहाँ के रहने वाले घर बैठे ओ बाहिर के रहने वाले डाक पर पाया करेंगे।"

'उदन्त मार्तण्ड' में खड़ीबोली के स्थान पर मध्यदेशीय भाषा का प्रयोग किया जाता था। इसमें रोचकता एवं व्यंग्य का भी यथेष्ट समावेश रहता था :

"एक यशी वकील वकालत का काम करते-करते बुढ़ा होकर अपने दामाद को यह काम सौंप के सूचित हुआ। दामाद कई दिन काम करके एक दिन आया औ प्रसन्न होकर बोला हे महाराज आपने जो फलाने का पुराना और संगीन मोकदमा हमें सौंपा था सो आज फैसला हुआ। यह सुनकर वकील पछता करके बोला तुमने सत्यानाश किया। उस मोकदमे से हमारे बाप बढ़े थे तिस पीछे हमारे बाप मरती समय हमें हाथ उठा के दे गए औ हमने भी उसको बना रखा और अब तक भलीभाँति अपना दिन कटा और वही मोकदमा तुमको सौंपकर समझता था कि तुम भी अपने बेटे पोते परोतों तक पलोगे पर तुम थोड़ी से दिनों में उसे खो बैठे।"

पं. युगलकिशोर शुक्ल कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत में कार्यवाही-प्रपाठक (प्रीसीडिंग-मीडर) पद पर कार्य करने के अनन्तर वकील के रूप में भी जमे थे। उन्हें अदालतों का खासा तजुर्बा था। अंग्रेज़ों ने मुकद्दमेबाज़ी के नशे में चूरकर भारतीयों को खूब लूटा और ऊपर से तुरा यह कि व्यंग्य भी किया—एम. एल. डार्लिंग ने लिखा था कि जैसे अंग्रेज़ों का राष्ट्रीय खेल क्रिकेट है वैसे ही भारतीयों का राष्ट्रीय खेल मुकद्दमेबाज़ी है। स्वतन्त्र भारत में भी अर्द्धशताब्दिगत वाद दुर्लभ नहीं है। डॉ. पवनकुमार बता रहे थे कि एक वाद 700 वर्षों से चल रहा है (यह व्यंग्य हो सकता है)! पं. युगलकिशोर शुक्ल ने स्वयं वकील होकर भी वकीलों और न्याय-व्यवस्था पर सटीक व्यंग्य किया, जो सर्वथा प्रशस्य है।

'उदन्त मार्तण्ड' में केवल पूर्णविराम (।) का प्रयोग किया जाता था, विराम (कॉमा), अर्द्धविराम (सेमी-कोलन), प्रश्नवाचक, विस्मयादिबोध इत्यादि का नहीं। व्याकरणसम्मत भाषा, निश्चित वर्तनी एवं विरामचिह्नों का प्रयोग आदर्शवादी युग (1900-1920 ई.) में आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के विराट् प्रभाव के फलस्वरूप प्रचलित हो सका।

'उदन्त मार्तण्ड' कुल एक-वर्ष छह-महीने तेरह-दिन तक ही प्रकाश विकीर्ण कर सका क्योंकि हिन्दी भाषाभाषी अब की तरह तब भी भाषा-सजग न थे तथा सरकार जुझारू हिन्दीभाषियों में सर्वांगीण चेतना न चाहती थी अन्यथा वह फ़ारसी-पत्र 'जामे-जहाँनुमा' या बांग्ला-पत्र 'समाचार-दर्पण' के सदृश 'उदन्त मार्तण्ड' को भी आर्थिक सहायता दे सकती थी। पत्र निर्जीव होता अर्थात् शासन-दास मात्र होता तो भी बात बन सकती थी। किन्तु संपादक इसके लिए प्रस्तुत न था। उस पर सरकार अप्रसन्न थी तथा इसी कारण से

विज्ञापन न मिलते थे। विवश होकर एक अंक का मूल्य आठ आना (आज का आधा-रुपया जो उस समय दस-रुपयों से भी अधिक था) रखना पड़ा था। परिणामतः 11 दिसम्बर, 1827 को 'उदन्त मार्तण्ड' अस्त हो गया :

आज दिवस लौं उग चुक्यौ मार्तण्ड उदन्त।

अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अन्त॥

1850 ई. में पं. युगलकिशोर शुक्ल ने 'सामदंड मार्तण्ड' पत्र निकाला किन्तु सम्भवतः वह भी प्रशासकीय कोप, तज्जन्य विज्ञापन-अभाव या अल्पता, परिणामतः अधिक मूल्य और सबसे बढ़कर हिन्दी-चेतना के अभाव के कारणों से शीघ्र ही अवसित हो गया। हिन्दी-पत्रकारिता भारतीय पत्रकारिता में सबसे ज्यादा जुझारू रही है। युगलकिशोर शुक्ल इसके आदिपुरुष थे। उनके जुझारू एवं बलिदानी उत्तराधिकारियों ने उनकी परम्परा को जीवंत रखा है।

पं. युगलकिशोर शुक्ल मरुभूमि की मन्दाकिनी हिन्दी के तपःपूत अभिषेककर्ता-महामानव पत्रकार थे जिन्हें प्रतापनारायण मिश्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे सक्षम उत्तराधिकारी प्राप्त हुए। वे हिन्दी पत्रकारिता एवं हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सदैव अजर-अमर रहेंगे।

राममोहन राय

आधुनिक भारत के प्रथम निर्माता, ब्रह्मसमाज (जिसके अनुकरण में आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, रामतीर्थ मिशन इत्यादि अनेक संस्थाएँ बनीं) के संस्थापक, अद्वैतवाद के प्रचारक-प्रसारक, अस्पृश्यता-उन्मूलन, विधवा-सुधार, नारी-शिक्षा इत्यादि के आदि-प्रतिपादक राजा राममोहन राय (22 मई 1772-27 सितम्बर 1833, जन्मस्थान राधानगर, पश्चिम बंगाल, निधन ब्रिटेन में) बंगदूत, संवादपत्र (1829 ई.) एवं 'वेदान्त सूत्रों के हिन्दी-अनुवाद' के कारण हिन्दी-साहित्य के इतिहास के एक अविच्छिन्न अंग है। वे हिंदू, ग्रीक (यूनानी), लैटिन (लतीनी), अंग्रेजी इत्यादि पाश्चात्य एवं संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला इत्यादि भारतीय भाषाओं के विलक्षण विद्वान् तो थे ही, राजनीतिज्ञ भी थे। राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, तिलक, गाँधी इत्यादि राष्ट्र के द्रष्टा नेताओं ने राष्ट्रभाषा का प्रशस्त्य प्रचार-प्रसार किया था। महान् वेदान्त-दर्शन या अद्वैतवाद के प्रथम आधुनिक प्रचारक राममोहन राय ही थे, जिनका रवीन्द्र, विवेकानन्द, अरविन्द इत्यादि पर प्रभूत प्रभाव एक स्वयंसिद्ध तथ्य है। देवेन्द्रनाथ, रवीन्द्रनाथ, अवनीन्द्रनाथ इत्यादि ठाकुर² (टैगोर), नेता विधानचन्द्र-राय बांग्ला-चलचित्र-सीमान्त सत्यजित् राय इत्यादि ब्रह्मसमाजियों ने राष्ट्र एवं विश्व में अच्छी ख्याति प्राप्त की। उनके स्वभावतः बांग्ला-स्पर्शयुक्त हिन्दी-गद्य का एक निदर्शन प्रस्तुत है :

“जो सब ब्राह्मण संग वेद अध्ययन नहीं करते सो सब ब्राह्म्य हैं यह प्रमाण करने की इच्छा करके ब्राह्मण-धर्म-परायण श्री सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी ने जो पत्र सांग वेदाध्ययन-हीन अनेक इस देश के ब्राह्मणों के समीप पठाया है उसमें देखा जो उन्होंने लिखा है—वेदाध्ययन-हीन मनुष्यों का स्वर्ग और मोक्ष होने शक्ता नहीं³”।

प्रमुख कवि

तुलसी साहब

‘घट-रामायण’, ‘शब्दावली’, ‘रत्नसागर’ एवं ‘पद्मसागर’ (अपूर्णा) संत-कवि तुलसी साहब हाथरस वाले (1760-1842 ई.)⁴ साहब-पंथ के प्रवर्तक थे जो स्वयं को तुलसीदास का अवतार मानते थे, जिन्हें भ्रष्ट सगुणमार्ग एवं अवतारवार के प्रतिपादन के पापप्रक्षालनार्थ अवतरित होकर उत्तम निर्गुणमार्ग एवं योगवाद के प्रतिपादन का पुनीत कर्तव्य पूर्ण करना पड़ा था। इनका सारा जीवनवृत्त

1. हिन्दी-साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल), पृष्ठ 391। जन्मवर्ष कहीं-कहीं 1774 ई. लिखा मिलता है।

2. सम्पन्नता के कारण। वेसे, ब्राह्मण थे।

3. हिन्दी-साहित्य का इतिहास (शुक्ल), पृष्ठ 391।

4. ‘दादू’ पर प्रख्यात ग्रन्थ लिखने वाले आ. क्षितिमोहन सेन के अनुसार। अन्य स्रोत 1763-1843 ई. कहता है। मिश्रबन्धु ने ‘विनोद’ में ‘घट-रामायण’ का रचनाकाल सं. 1954 (1897 ई.) दिया है, जो गलत है।

मिथ्या है। तुलसी-अवतार-कथा तो पाखंडपूर्ण है ही। हाँ, इन्होंने तुलसीदास को कान्यकुब्ज ब्राह्मण कहा, जिसका अनुसरण राजा प्रतापसिंह एवं मिश्रबन्धु ने किया (कालांतर में मिश्रबन्धु ने तुलसीदास के सरयूपारीण होने के तर्क को सम्मान प्रदान किया) तथा जन्मस्थान राजापुर माना (अपेक्षाकृत निकट सोरों नहीं जिनकी कल्पना बाद में पं. रामनरेश त्रिपाठी एवं डॉ. रामदत्त भारद्वाज इत्यादि ने की), जिसका यत्किंचित् साहित्येतिहासगत एवं तुलसीजीवनगत महत्त्व अवश्य है। सारे अवतार, प्रभुपुत्र, पैगम्बर, संत, गुरु कल्पित कथाओं के बंदी हैं। अतः तुलसी साहब और उनके चेले-चाटियों का पाखंड कोई अजूबा नहीं है।

तुलसी साहब के तुलसीदास-अवतार को 'हिन्दी-काव्य में निर्गुण-संप्रदाय' में डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थवाल एवं 'उत्तरी भारत की संत-परम्परा' में आ. परशुराम चतुर्वेदी ने ठीक ही प्रक्षिप्त माना है। तुलसी साहब ने एक ओर उपनिषद् के "आत्म वै गुरुरेकः" का अनुगमन करते हुए गुरुडम को निरर्थक सिद्ध किया, 'योगवासिष्ठ' का अनुमान करते हुए राम को योगसंपृक्त किया, किन्तु दूसरी ओर अहंवाद का आखेट बनते हुए व्यर्थ-परिणामी पंथप्रवर्तन भी, तुलसीदास-अवतार का कल्पना-पाखंड भी; अतः उनका किसी पर कोई प्रभाव निष्पन्न न हो सका। वे "कुछ बढ़ाया संतों ने कुछ बढ़ाया भक्तों ने" लोकोक्ति के ज्वलंत निदर्शन मात्र बनकर रह गए।

बहादुरशाह (द्वितीय)¹ 'जफ़र'²

मिर्जा अब्दुल मुज़फ़्फ़र सिराजुद्दीन मोहम्मद ने अपने पिता अकबर द्वितीय के बाद नामनिहाल बादशाह बनने पर बहादुरशाह सानी³ का नाम या विशेषण धारण किया। इनका जीवनकाल 1775-1862 ई. था, नामनिहाल बादशाह 1837 ई. से 1857 ई. में बंदी बनाए जाने तक रही। अंग्रेज़ों ने इन्हें रंगून भेज दिया था जहाँ फ़कीर की तरह रहे। इसीलिए इनकी समाधि को दरगाह⁴ कहते हैं, मक़बरा नहीं। फ़ीरोज़ तुग़लक़, सिकन्दर लोदी, जहाँगीर, शाहजहाँ इत्यादि के सदृश, 'जफ़र' हिन्दू-माँ (लालबाई बेगम) के बेटे थे। परिस्थितियों ने इन्हें उदार बनाया, स्वानन्त्र्यप्रेमी बनाया, निराशावादी बनाया। उर्दू-शायरों में इनको एक निश्चित स्थान प्राप्त है, जिसका एक बड़ा कारण इनका महान् वंश और स्वयं अन्तिम मुग़ल-बादशाह होना है तथा अन्य कारणों से प्रतिभा, विषमता, निराशा इत्यादि हैं। यह हिन्दी-कवि भी थे :

1.

याही बिरहा दरजन होवें। याही बिरहा सिरजन होवे॥
ना छूटे या बिरहा मो सों। न छूटूँ मैं बिरहा से॥
नहीं खुले कुछ और ही देखूँ। मूँदूँ तो कुछ और ही और॥
कोऊ वाको सौँच न जाने। देखी बात कहूँ जासे॥
मन के अंदर पिया कलंदर। तेरे 'जफ़र' वो आन बसा॥
काम पड़्यो जब वासों यारो। काम रह्यो क्या दुनिया से॥

2.

प्रेम-अगन नित मोहें जरावे या को भेद कहूँ कासे।
पी हो पास तो जी हो ठंडा अपनी विपत कहूँ वासे॥
रतियाँ गुज़ारूँ रोवत-रोवत, दिन को गुज़ारूँ आहाँ खेंच।
मेरे मन की मो सों न पूछो, पूछो मेरी विपता से॥

3.

जिन गलियन में पहले देखीं लोगन की रँगरलियाँ थीं।
फिर देखा तो उन लोगन बिन सूनी पड़ी वो गलियाँ थीं॥
ऐसी अँखियाँ मीचे पड़े हैं करवट भी नहीं ले सकते।
जिनकी चालें अलबेली और चलने में छलबलियाँ थीं॥
खाक का उनका बिस्तर है और सर के नीचे पत्थर है।
हाय, वो शक्लें प्यारी-प्यारी किस-किस चाव से पलियाँ थीं॥

1. औरंगज़ेब के पुत्र मुअज़्ज़म बहादुरशाह के नाम से बादशाह बने जिनका राज्यकाल 1707-12 ई. रहा। वे बहादुरशाह प्रथम माने जाते हैं।
2. तख़ल्लुस (उपनाम)। उर्दू-शायर थे। जौक़र उस्ताद, ग़ालिब मित्र।
3. द्वितीय।
4. क़ब्र, रौज़ा, मज़ार, मक़बरा, दरगाह, इमामबाड़ा में अर्थांतर है।

मंचित¹

‘सुरभीदानलीला’ एवं ‘कृष्णायन’ के कवि मंचित (1779 ई. के आसपास, मऊ, बुन्देलखंड के निवासी) बौद्धिककाल में सन्धि-युग के कृष्णकाव्यकारों में उल्लेखनीय हैं। ‘सुरभीदानलीला’ प्रधानतः सार छन्द में निबद्ध है जिसमें बाललीला, यमलार्जुन-वध एवं दानलीला का विस्तृत वर्णन किया गया है। ‘कृष्णायन’ में तुलसी-पद्धति का अनुसरण दृग्गत होता है।² मंचित ने कृष्ण के नखशिख का अपने युग के अनुरूप सुन्दर वर्णन किया है। इनकी ब्रजभाषा का स्तर सर्वत्र अच्छा है, किन्तु अरबी-फ़ारसी के शब्द कुछ-अधिक आ गए हैं। इनकी भाषा-शैली ब्रजवासीदास से अधिक व्यवस्थित है, अधिक साहित्यिक है। उद्धरण देखें :

1. जुलफैं सुलफ ब्याल-बाला-सी खासी डुलती आवैं। घुँधरारी, कारी, सटकारी, देखत मन ललचावैं॥
कुँडल लोल अमोल कान के छुवत कपोलन आवैं। दुलैं, आपुते खुलैं, जोर छवि बरबस मनहि चुरावैं॥
खौर बिसाल भाल पर सोभित केसरि की, चित भावै। ताके बीच बिंदु ‘रोरी की, ऐसो देस बनावै॥
भृकुटी बंक, नैन कंजन-से खंजन-गंजन वारे। मद-भंजन खग-मीन सदा जे मनरंजन अनियारे॥
(सुरभीदानलीला)
2. बाम ओर राजैं वर बानी। सुकुल सरीर, सुकुल रुचि सानी॥
वदन सरद ससि विहँसि विराजैं। अधर सधर बिंबा लखि लाजैं॥
कुलिस-कनी-सी बनी बतीसी। सरद-सरोरुह दृग-दुति दीसी॥
नख ते सिख लागि बनि मनि गहनै। झलकन झलक ललकि मनरहनै॥
पीत पटंवर पावन पूरे। स्वर्न-समान सुगंधित रूरे॥³
यक कर बर पुस्तक लिए, यक कर बीना-बैन।
ज्ञान रूप सोभित सदा, भगत-अनुग्रह-ऐन॥
3. अति विस्तार पार पय पावन। उभय करार घाट मनभावन॥
बनचर बनज विपुल बहु पच्छी ! अलि-अवली धुनि सुनि अति अच्छी॥
नाना जिनिस जीव भरि सेवैं। हिंसाहीन असन सुचि जेवैं॥
रतन रचे राजैं सोपान। लखि मनि पुलं पुनि लसि मनि जाना॥
सरि समता को कहि सकै, सुनिए मुनि सनकादि॥
चौरी, लामी, गहिरता कही कही जब आदि॥
(कृष्णायन)

गुरुदीन पाँडे

रस-नायिकाभेद-नखशिख-षड्भक्तु, गुण-दोष, शब्दशक्ति, अलंकार एवं पिंगल प्रभृति का युगपत् निरूपण करने वाले विशद शास्त्रीयकाव्य ‘बागमनोहर’ (1803 ई.)⁴ के केशव एवं उनकी कविप्रिया से प्रभावित किन्तु पर्याप्त मौलिक एवं उत्कृष्ट कवि गुरुदीन पाँडे (शिवसिंह कृत ‘सरोज’ के अनुसार 1834 ई.⁵ में विद्यमान) का आचार्य-रूप उन्हें सर्वांगपूर्ण काव्य-निरूपक भिखारीदास का स्तर प्रदान करता है। गुरुदीन पाँडे के वास्तविक विवेचक मिश्रबन्धु ने उन्हें पद्माकर की श्रेणी प्रदान की है (क्योंकि उनकी कविता भिखारीदास

1. मनचित् का तद्भव-रूप। रंगमंच से संबद्ध नहीं।

2. द्वाराकाप्रसाद मिश्र कृत श्रेष्ठतर अवधी-महाकाव्य ‘कृष्णायन’ में भी ऐसी ही है।

3. सोने में सुगन्ध। अतिरेक-अलंकार की प्रतीति सम्भव। मुहावरे का प्रयोग भी।

4. ‘विनोद’ एवं ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में 1860 वि.। किन्तु इन दोनों के संक्षेपक डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित ने ‘हिन्दी साहित्य कोश’ (भाग 2) में 1804 ई. दिया है।

5. 1891 वि.। किन्तु डॉ. दीक्षित ने 1835 ई. लिखा है।

की कविता से ललित है) किन्तु यह 'श्रेणी' ही है, 'समता' नहीं। आ. शुक्ल ने "बागमनोहर" को 'साहित्य का एक सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ' माना है। गुरुदीन पाँडे ने संस्कृत के वर्णवृत्तों का निरूपण विशेष सफलतापूर्वक किया है।

गुरुदीन पाँडे के जीवन में विषय में रचना-वर्ष के अतिरिक्त प्रात्ययिक रूप से कुछ भी प्राप्त नहीं है किन्तु उनकी अभिव्यक्ति में ब्रजभाषा के साथ बैसवाड़ी (बैसवारी) के प्रयोग से यह अंतर्साक्ष्य सुस्पष्ट होता है कि वे बैसवाड़ा (बैसवारा) के निवासी थे (जो उन्नाव-रायबरेली जनपदों के अंचलों में प्रसरित है)। 'विनोद' का उद्धरण प्रस्तुत है :

मुख ससी ससि दून कला धरे। कि मुकतागन जावक मैं भरे।।
ललित कुंदकली अनुहारि के। दरसन श्री वृषभानुकुमारि के।।
सुखद जंत्र कि भाल सोहाग के। ललित मंत्र किधौं अनुराग के।।
भृकुटि यों वृषभानुसुता लसै। जनु अनंग-सरासन को हँसै।।
मुकुर तौ पर-दीपति कौ धनी। ससि कलंकित राहु-विधा घनी।।
अपर न उपमा मैं लहै। तब प्रिया-मुख की सम का कहै।।

पहलवानदास

जगजीवन साहब या जगजीवनदास के शिष्य दूलनदास के शिष्य सिध्यादास (सिद्धादास) के शिष्य¹ पहलवानदास² सतनामी संप्रदाय के एक विख्यात संत हुए हैं जिनका प्रमुख ग्रन्थ 'उपखान-विवेक' (1808 ई.) संकीर्णतामुक्त विशद मानवतावादी ग्रन्थ है। पहलवानदास जितने बड़े संत हैं, उतने ही बड़े रामभक्त। उनका संतमत कुंठामुक्त है जिस पर मोहम्मदी प्रभाव नहीं पड़ा। उन पर तुलसी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मिश्रबन्धु ने इनके 'मसलेनामा' ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है। पहलवानदास के चमत्कारों की कथाएँ आज तक प्रचलित हैं। यह संत भीखीपुर (बाराबंकी) के थे। 'उपखान-विवेक' के अन्तिम दोहों में इन्होंने अपना एवं ग्रन्थविषय का पूरा परिचय दिया है :

सतगुरु सिध्या विदित जग, पूरन गुन के गान।
पहलवान जानै नहीं, सतगुरु परम सुजान।।
कातिक शुक्ला मुक्ति तिथि हंसवार कह दीन।
सँवत अठारहसौ-पैंसठ खानि विवेक सो कीन।।....
भीखीपुर है ग्राम यक तहँ पोथी यह कीन।।
उत्तर दिश पहचान तहँ कोटवा जोजन पाँच।
अभरन तीरथ पापहर जगजीवन मत साँच।।
जोजन भरि पूरब दिसा गुरु अस्थल हरिगाँव।
पहलवान के दानि वे सतमत³ दीन्हों ठाँव।।....
मम गुरु सिध्या विदित जग, उन गुरु दूलनदास।
जगजीवन गुरु ताहि के, कियो भक्ति परकास।।....
आपु माँ देखै जो सुनै सोइ महरमी संत।
पहलवान संसार महँ सबै भेष भगवंत।।

पहलवानदास की अनुभूति की दृष्टि से उदार समन्वयवादी तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से अवधी-मिश्रित और प्रशस्य रूप से मुहावरे वाणी की कुछ बानगियाँ पेश हैं :

1. आ. शुक्ल ने पहलवान का नामोल्लेख मात्र करते हुए उन्हें दूलनदास (आ. ने दूलमदास लिखा है जो गलत है) का शिष्य बताया है, जो निराधार है।
2. मिश्रबन्धु ने पहलवानदास लिखा है, जो गलत है।
3. हज़रत (धूर्ती), खलीफ़ा (गुंडा), गुरु (दादा या बदमाश), पोपलीला (पाखंड), अररर कबीर (अश्लील होली-गीत), बुद्ध (बौद्ध) इत्यादि के दंभबोधपरक प्रयोगों की शृंखला में संतमत को संतमेंत (मुफ्त में, फोकट में) कहा जा सकता है। जनता आदर भी करती है, तथ्य भी जानती है! हम सत अन्य असत!! हम सतगुरु शेष असतगुरु!!! (क्या अशिष्टता है!) किन्तु पहलवानदास एक नम्र एवं सज्जन संत है।

1. महादेव गनपति गिरा गिरजा सुरन समेत। बंदों सुरपति¹ फनिपतिहिं रामभक्ति के हेत।।
सुरसरि भूसुर सर्वमुनि जगतपिता रवि चंद। पवनतनय! तुमते विनय, पहलवान मतिमंद।।....
कृष्ण चौध² द्वापर भए, कलि के सौ औतार। दुष्टदलन पावनकरन पापहरन महिभार।।....
का तजि राम और तोड़ै जाना। द्विज भौरी कूकुर सनमाना।।....
राम छोंड़ि कहु केहिकै सुधरी। चलै केतिक दिन जल कै चुपरी।।
जो आवा सो बेगहि चाला। भजन बिना सुति कहत न भाला।।
नर तन पाय भजन नहिं पाए। नाथर पड़ा जो मूँडु मुड़ाए।।
पाँच पचीस रात दिन खटका। सरग ते गिरा खजूरि म अटका।।....
जन्म पदारथ बादहि खोए। बहता पानी हाथ न धोए।।....
भूसी थुरै न निकरै चाउर। हरिना खेदै कूकुर बाउर।।....
नर तन पाय न भव जल तरा। सन की गाँठी पानी परा।।
2. ताहि न व्यापै मलिन जुग जेहि घट में दरसाउँ।
सिद्धि होइ षट मास कलि जो सुमिरै मन नाउँ।।
3. जेहि मन लागे ध्यान, ताहि न व्यापै जरनि जग। उधरै घट असमान, वड़ जन प्यारे साईं का।।
करनधार गुरु होइ, पार उतारै खेड़ कै। वो हित अवर न कोइ, पहलवान यक नाम है।।

ऐनानन्द

ऐनानन्द एक मुसलमान फ़कीर थे जिनकी समाधि ग्वालियर के किले में विद्यमान है।³ 1810 के लगभग इन्होंने अच्छी फ़कीराना अन्दाज़ की हिन्दी-कविता की थी। इनकी कविता मानवीय एकता अथवा सच्ची धर्मनिरपेक्षता की प्रशस्य कविता है, जो आज रचनाकाल से भी अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है :

ऐनानन्द फ़कीर हैं, परमहंस निर्वान। दाढ़ी-मूँछ मुँडावतें, भसम करें असनान।।
भसम करें असनान, रखें पीतांबर सारा। जानहिं एकहि ब्रह्म, तुरक-हिंदू नहिं न्यारा।।
भिक्षुक दोऊ दीन के ऐन एक ही जान। ऐनानंद फ़कीर हैं, परमहंस निर्वान।।

यशोदानन्दन

बौद्धिककाल के सन्धियुग में 'बरवै-नायिकाभेद' (1815 ई.) लिखने के कारण रहीम की परम्परा के एक स्मरणीय कवि यशोदानन्दन ने शृंगाररस की उन्मादिनी कविता की आकर्षक सर्जना की है। वैसे, उन्होंने नीति का स्पर्श भी किया है। मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में उन्हें 'साधारण श्रेणी' का कवि माना है, तो उन्हीं की सामग्री का प्रायः ज्यों-का-त्यों प्रयोग करते हुए भी आ. शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इनके ग्रन्थ को 'अनूठा' तथा 'रहीम वाले से अच्छा नहीं तो उसकी टक्कर का' लिखना अपरिहार्य-सा था ही; और डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित का 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में आ. शुक्ल को निष्ठापूर्वक दुहराना भी लाज़िमी-सा था! यशोदानन्दन के 'बरवै-नायिकाभेद' में कुल 62 बरवै (छन्द) हैं; 9 संस्कृत के, 53 अवधी के। रहीम के 'बरवै-नायिकाभेद' में 94 बरवै हैं और उसकी अवधी अधिक कलात्मक है—वह अपने ढंग का 'प्रस्थान-ग्रन्थ' भी है। अतः रहीम और यशोदानन्दन की बरवैकार

1. इन्द्र-वन्दना हिन्दी-कविता में सम्भवतः पहलवानदास ने ही की है। इन्द्र ऋग्वेद के प्रधान देवता हैं। कृष्ण, जैनों बौद्धों, तुलसी इत्यादि ने इन्द्र से अन्याय किया है।
2. बुद्ध कलियुग में हुए थे, द्वापर में नहीं। द्वापर कृष्ण के साथ समाप्त हो गया था।
3. ग्वालियर में तानसेन और सूफ़ी-फ़कीर (मोहम्मद ग़ौस, सूफ़ी कवि मंज़न के गुरु) की समाधियाँ भी हैं और पास ही महान् लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी) की समाधि भी है।

के रूप में तुलना समीचीन नहीं। जहाँ तक समग्र कवि-रूप का सम्बन्ध है, रहीम बहुत-बहुत श्रेष्ठतर हैं ही। अतः यदि मिश्रबन्धु का 'साधारण' शब्द कुछ अखर सकता है, तो शुक्ल एवं दीक्षित की प्रशस्ति बहुत-अधिक लग सकती है।

यशोदानन्दन पर रहीम का भारी प्रभाव एक स्पष्ट एवं निर्विवाद तथ्य है। उन पर देव के नानाजातिगत-नायिकाभेद-वर्णन का प्रभाव भी पड़ा है। उनकी अतिशृंगारिकता दूलह का स्मरण करा सकती है। 'विनोद' एवं तदनुवर्ती 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में यशोदानन्दन कृत संस्कृत का एक एवं अवधी के तीन बरवै उद्धृत किए गए हैं :

1. यदि न भवति बुध मिलनं किं त्रिदिवेन।
यदि न भवति शठ मिलनं किं निरयेण॥
2. अहिरिनि मन कै गहिरिनि उतरु न देइ।
नैना करै मथनिया मन मथि लेइ॥
3. तुरकिनि जाति हुरुकिनी' अति इतराइ।
खुवन न देइ इजरवा' मुरि मुरि जाइ॥
4. पीतम तुम कचलोइया हम गजबेलि।
सारस के असि जोरिया फिरौं अकेलि'॥

नवलसिंह कायस्थ

'रामचन्द्र-विलास', 'रूपक-रामायण', 'अध्यात्म-रामायण', 'आल्हा-रामायण', 'रामायण-सुमिरनी', 'नाम-रामायण', 'रामायण-कोश', 'सीता-स्वयंवर' इत्यादि के स्फीत रामकाव्यकार नवलसिंह कायस्थ¹ उपनाम 'नवलेख' या 'नवलेस' (सुदीर्घ-रचनाकाल 1815-1870 ई., झाँसी) ने कृष्णकाव्य ('रसपंचाध्यायी', 'रुक्मिणीमंगल' इत्यादि) की रचना भी की तथा मुक्तकाव्यरचना में भी रुचि ली। यह रसिकाभाव के भक्त एवं कवि थे, जिनकी रचनाएँ पारम्परिक हैं, किन्तु जिनकी स्फीति एवं निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार, भक्ति-ज्ञान, राम-कृष्ण तक व्याप्त समन्वयवादिता प्रशस्य है :

1. अभव अनादि अनंत अपारा। अमर अप्रान अमर अविकारा॥।
अग अनीह आतम अबिनासी। अगम अगोचर अविरलवासी॥।
अकथनीय अद्वैत अरामा। अमल अशेष अकर्म अकामा॥।
रहत अलिप्त ताहि उर ध्याऊँ। अनुपम अमल सुजस मैं गाऊँ॥।
2. सगुन सरूप सदा सुषमानिधान मंजु, बुद्धि गुन गुनत अगाध वनपति से।
भनै नवलेस फैल्यौ विसद मही में यश, बरनि न पावै पार झार फनपति से॥।
जक्त² निज भक्तन के कलुष प्रभंजै, रंजै, सुमति बढ़ावै धन धान धनपति से।
अवर न दूजो देव सहज प्रसिद्ध यह, सिद्धि वर दैन सिद्ध ईस गनपति से॥।

दीन दरवेश

शत-शत पंथ-प्रवर्तकों में अनेक, प्रायः अधिकांश, मुसलमान थे क्योंकि हीनभावग्रस्त, पतित, पददलित हिन्दुओं तथा उनकी महिमा से प्रभावित कुछ मुसलमानों में उनका प्रभाव पड़ जाता था। उनकी उदारता हिन्दुओं का मन मोह लेती थी। मुसलमानों पर

1. हुक = हुड़क। हुरुकिनी = हुड़क देनेवाली। बहुत पहले लिखे विद्यापति के "छोटउ तुरुका भभकी मार" शब्द याद आते हैं।
2. इजारबन्द। दूलह के "पट खोलत में नाहीं" से तुलनीय। दूलह का छन्द उच्चस्तरीय है, यह सुन्दर।
3. अकेलि = अकेली। अ + केलि = केलि रहित। सुन्दर श्लेष।
4. मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में 'अद्रभूत-रामायण' (रचनाकाल 1891 वि. या 1834 ई.) के रचयिता नवलसिंह प्रधान का उल्लेख है, जो भिन्न प्रतीत होते हैं (यद्यपि 'प्रधान' का प्रयोग कायस्थ करते हैं)।
5. जगत्।

पंथों का विशेष पड़ना सम्भव न था क्योंकि अल्लाह और पैगम्बर पर प्रवर्तकगण मौन रहते थे। मोहम्मदीयत में परिवर्तनवाद को स्थान नहीं। अतः उनका पंथ-धंधा जोर-शोर से चल निकला। कबीर, दादू, दरिया (बिहारी), दरिया (मारवाड़ी) इत्यादि के सदृश दीन दरवेश (मृत्यु 1833, एकलिंग, राजस्थान¹) ने भी पंथ चलाया: “उनके शिष्यों में बाबा नबी², बाबा फ़ज़ल, नूरुद्दीन, हुसैन ख़ाँ आदि ने हिन्दी में रचनाएँ की हैं।³ गिरनार (काठियावाड़) के हिन्दू-संत बालगुरु भी इनके शिष्य थे।

दीन दरवेश ईस्ट इंडिया कम्पनी में मिस्त्री थे, जहाँ से बाँह कटने के कारण हटना पड़ा। मृत्यु भी कोटा में चंबल में डूबने से हुई। यह एक श्रेष्ठ मानवतावादी संत थे, जिनके कथन खड़ीबोली में हैं :

1. हिंदू कहें सो हम बड़े, मुसलमान कहें हम्म।
एक मूँग दो फार हैं, कुण ज्यादा कुण कम्म॥
2. बंदा जाने मैं करौं, करनहार करतार। तेरा किया न होयगा, होगा होवनहार॥
होगा होवनहार बोझ नर यों हि उठावे। जो बिधि लिखा लिलार प्रतच्छ वही फल पावै॥
कहै दीन दरवेश हुकुम से पान हलंदा। करनहार करतार करेगा क्या ऐ बंदा॥
3. माया-माया करत है, खरचा-खाया नाहिं। सो नर ऐसे जाहिंगे ज्यों बादल की छाँहिं॥
ज्यों बादल की छाँहिं जायगा आया ऐसा। जाना नहिं जगदीश प्रीत कर जोड़ा पैसा॥
कहै दीन दरवेश नाहिं कोइ अम्मर काया। खरचा खाया नाहिं करत नर माया-माया॥

रसिक गोविन्द

रसिककृष्णभक्तों एवं रसिककृष्णकाव्यकारों में रसिक गोविन्द (रचनाकाल 1793-1833 ई.)⁴ का स्थान बहुत ऊँचा है। वे एक उच्चस्तरीय शास्त्रीयकाव्यकार भी हैं। आ. शुक्ल ने इनके नौ ग्रन्थों अतिसंक्षिप्त ‘रामायण-सूचनिका’, अतिबृहद् ‘रसिकागोविन्दानन्दधन’ (विशद शास्त्रीयकाव्य), अतिसंक्षिप्त ‘लछिमन⁵-चन्द्रिका (लक्षणग्रन्थ), विलक्षण ‘अष्टदेशभाषा’ (ब्रजभाषा, खड़ीबोली, पूरबी, पंजाबी⁶ इत्यादि आठ विभाषाओं में राधाकृष्ण-भृंगारलीला), ‘पिंगल’, ‘समय-प्रबन्ध’, (राधाकृष्ण का विभिन्न समयों अथवा ऋतुओं में लीलालास 85 पदों में), अतिसंक्षिप्त ‘कलियुगरासो’ (16 कवित्त जिनमें अंततः ‘कीजिए सहाय जू कृपाल श्रीगेन्दिराय कठिन कराल कलिकाल चलि आयो है’⁷ का प्रयोग मिलता है), संक्षिप्ततर ‘रसिक-गोविन्द’ (अलंकारग्रन्थ), ‘युगलरसमाधुरी’ (मिश्रबन्धु ने ‘जुगलरसमाधुरी’ लिखा है) का विवरण दिया है, जबकि मिश्रबन्धु ने केवल एक (अन्तिम) का ही (‘अष्टदेशभाषा’, ‘गोविन्दनन्दधन’, ‘कलियुगरासो’, ‘पिंगलग्रन्थ’, ‘समय-प्रबन्ध’ ‘श्रीरामायण-सूचनिका’ एवं ‘गोविन्दचन्द्र-चन्द्रिका’ ग्रन्थों का उल्लेख मात्र किया है)। ‘रसिकागोविन्दानन्दधन’ में ब्रजभाषा-गद्य का प्रयोग भी प्राप्त होता है।

विशद शास्त्रीयकाव्य ‘रसिकागोविन्दानन्दधन’ एवं मनोहारी ‘युगलरसमाधुरी’ (जुगलरसमाधुरी—जिसमें 201 छन्दों में वृन्दावन एवं राधा का ललित वर्णन किया गया है) रसिक गोविन्द के श्रेष्ठतम ग्रन्थ हैं जो उन्हें एक उत्कृष्ट आचार्य एवं सरस भक्त प्रमाणित करते हैं। गीतिकाव्य से छन्दकाव्य तक उनकी गति अबाध एवं अजस्त्र है। भारतेन्दु एवं रत्नाकर पर उनके ललित-अलंकृत प्रकृति-चित्रण का प्रभाव स्पष्टतः दृग्गत होता है। मिश्रबन्धु ने ठीक ही इन्हें ‘ऊँची श्रेणी’ का कवि माना है। उदाहरण देखें :

1. आलस सों मंद मंद धरा पै धरिन पाय, भीतर तें बाहिर न आवै चित चाव कै।
रोकति दृगनि छिन छिन प्रति लाल साज, बहुत हँसी की दीनी बानि बिसराय कै॥

1. सम्भवतः एक दीन दरवेश बुन्देलखंडी भी हुए हैं, जिनका उल्लेख कवि-संख्या 1225 में मिश्रबन्धु ने ‘विनोद’ में किया है।

2. सूफ़ी शेख नबी से भिन्न।

3. ‘मध्ययुगीन हिन्दी के सूफ़ी-इतर मुसलमान कवि’ (डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव), पृष्ठ 101।

4. हिन्दी-साहित्य का इतिहास (शुक्ल) : 1850-1890 वि.।

5. लछिमन नायक कान्यकुब्ज (ब्राह्मण?) के अनुरोध पर रचित।

6. भारतीय संविधान (26 जनवरी 1950 से लागू) से पूर्व पंजाबी हिन्दी की ही एक विभाग समझी जाती थी। घनआनन्द, सूदन, रसिका गोविन्द इत्यादि कवियों में पंजाबी की झलकियाँ प्राप्त होती हैं। नानक, अर्जुन, तेगबहादुर, गोविन्दसिंह इत्यादि ने ब्रजभाषा को भी अपनाया है।

7. तुलसीदास (रामचरितमानस एवं कवितावली के कलि-वर्णन) का प्रभाव सम्भव है।

बोलति बचन मृदु मधुर बनाय, उर, अंतर के भाव की गँभीरता जनाय कै।
बात सखी सुंदर गोविन्द की कहात तिन्हें सुंदरि बिलोकै वंक भृकुटी नचाय कै।।

2. अन्यज्ञानरहित जो आनन्द सो रस! प्रश्न—अन्यज्ञानरहित आनन्द तो निद्राहू है? उत्तर—निद्रा जड़ है, यह चेतन! भरत आचार्य सूत्रकर्ता को मत—विभाग, अनुभाव, संचारीभाव के जोग में रस की सिद्धि। अथ 'काव्यप्रकाश' को मत—कारण का सहायक हैं जो लोक में इन ही को नाट्य में, काव्य में विभाव संज्ञा है। अन्य टीकाकर्ता को मत तथा 'साहित्य-दर्पण' को मत—सत्य, विशुद्ध, अखण्ड, स्वप्रकाश, आनन्द, चित्, अन्यज्ञान नहीं संग, “ब्रह्मनन्द-सहोदर रस”।

(रसिकगोविन्दानन्दधन)

3. मुकुलित पल्लव फूल सुगंध परागहि झारत। जुग मुख निरखि विपिन जनु राई-लोन उतारत।।
फूल फलन के भार डार झुकि यों छवि छाजै। मनु पसारि दइ भुजा देन फल पथिकन काजै।।
मधु मकरंद पराग लुब्ध अलि मुदित मत्त मन। विरद पढ़त ऋतुराज नृपति के मनु बंदीजन।।
4. तैसिअ निरमल नीर निकट जमुना बहि आई। मनहुँ नीलमनि-माल विपिन पहिरे सुखदायी।।
अरुन लीन सित पीत कमल-कुल फूले फूलनि। जनु बन पहिरे रंग रंग के सुरँग दुकूलनि।।
इंदीवर कल्हार कोकनद पदुमनि ओभा। मनु जमुना दृग करि अनेक निरखत बन सोभा।।
तिन मधि झरत पराग लखि दीठि न हारति। निज घर की निधि रीझि रमा मनु बन पर वारति।।
सरस सुगंध पराग सने मधु मधुप गुँजारत। मनु सुखमा लखि रीझि परसपर सुजस उचारत।।

बेनी² 'प्रवीन'

‘नवरस-तरंग’ (1817 ई.) एवं ‘नानाराव-प्रकाश’ (अलंकार-ग्रन्थ) के प्रणेता बेनी ‘प्रवीन’ लखनऊ के वाजपेयी (कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का एक उच्चतम वर्ग) भी थे और लखनऊ³ निवासी भी। इनके समकालीन लखनऊ-संबद्ध कवियों में सागर वाजपेयी भी उल्लेखनीय हैं। इसके निस्सन्तान एवं सम्भवतः रुग्ण जीवन का समापन तीर्थाटन करते हुए बदरीनाथ के आसपास हुआ (कतिपय स्रोत आबू मानते हैं)। आ. शुक्ल ने इन्हें “मतिराम ऐसे कवियों के समकक्ष” तथा “माधुर्य में पद्माकर तक से टक्कर” लेने वाला कहा है जो, शतशः निराधार है (वैसे भी, उनकी प्रशस्ति में पद्माकर मतिराम से श्रेष्ठतर ध्वनित होते हैं, जो तथ्यरहित है) क्योंकि इनकी कविता सामान्यतः अच्छी होने पर भी मतिराम की प्रांजलता एवं पद्माकर के प्रवाह की समता नहीं कर सकती। नवरसतरंग में इनका नायिकाभेद उत्कृष्ट है किन्तु वह मतिराम, सुखदेव, देव इत्यादि के स्तर का नहीं है। इनकी अनुभूति में भी प्रसन्नता का

1. महान् कल्पना। महान् अलंकार (उत्प्रेक्षा)।

2. बेनी नाम के तीन कवि हुए हैं। इनमें असनी (फतेहपुर) के बेनी बंदीजन को कोई ग्रन्थ नहीं मिलता किन्तु इन्होंने 1950 ई. के आसपास शृंगाररस की अच्छी कविता की थी। बेनी (रायबरेली) के बेनी बंदीजन ने 1792 ई. में ‘टिकैतराम-प्रकाश’ (अलंकार-ग्रन्थ) एवं 1817 ई. में ‘रसविलास’ की रचना की। मिश्रबन्धु ने इन्हें पद्माकर श्रेणी का कवि माना है जो गुणगत दृष्टि से भी अनुचित है, परिमाणगत दृष्टि से भी। किन्तु इनके ‘भँडौवा’ बहुत प्रसिद्ध हैं (‘भँडौवा-संग्रह’ भी प्रकाशित हुआ है।) कवि-दृष्टि से बेनी ‘प्रवीन’ तीनों बेनियों में अग्रणी हैं। बेनी बंदीजन (भँडौवा वाले) नवाबों के वजीर टिकैतराम के आश्रम में रहे और वहीं दीवान दयाकृष्ण कायस्थ के पुत्र ललनजी (नवलकृष्ण) के आश्रय में बेनी ‘प्रवीन’ भी थे। दोनों में चली भी, पर अन्त में ऐसी बनी कि प्रतिद्वन्दी ने ही ‘प्रवीन’ सम्मान प्रदान किया। किन्तु लखनऊ के ही धनी महंत तथा प्रसिद्ध रामकाव्यकार (स्फीत ‘सत्योपाख्यान’ के रचयिता) ललकदास पर बेनी बंदीजन ने कर्कश काव्यप्रहार किए थे :

घर घर घाट बाट बाट ठाट ठटे, बेला औ कुबेला फिरँ चेला लिए आसपास।

कविन सो वाद करै, भेद बिन नाद करै, महाडनपाद करै धरम करम नास।।

बेनी कवि कहैं विभिचारिन को बादसाह, अतन प्रकासत न सतन सत्त तास।

ललना ललक, नैन नैन की झलक, हँसि हेरत अलक रद खलक ललकदास।।

3. लखनऊ का उर्दू-शायरी से प्रगाढ़ सम्बन्ध रहा है। मीर, सौदा, नासिख, सोज़, नसीम, जुलत, इंशा, चक्रवस्त, मजाज़, मुल्ला (आनन्दनारायण) इत्यादि की संख्या बहुत बड़ी है। किन्तु बेनी प्रवीन, बेनी बंदीजन, ललकदास, मिश्रबन्धु, प्रेमचन्द, निराला, रूपनारायण पाण्डेय, कृष्णबिहारी मिश्र, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, गंगाप्रसाद मिश्र, शिवानी, डॉ. देवराज, लक्ष्मीशंकर मिश्र, ‘निशंक’, वंशीधर शुक्ल, रमई काका, भुशुंडि इत्यादि के कारण लखनऊ का हिन्दी-साहित्य में भी ऊँचा स्थान है।

अभाव खटकता है, अभिव्यक्ति में भी। वैसे, शास्त्रीयकाल के परवर्ती कवियों की अपार संख्या को देखते, यह एक उल्लेखनीय आचार्य-कवि अवश्य हैं। महान् स्वातन्त्र्य-सेनानी नानाराव पेशवा पर काव्यसृजन भी इन्हें समादरणीय बनाता है। प्रथम स्वतन्त्र्य-संग्राम के प्रथम कवि के रूप में वेनी 'प्रवीन' सुभद्रा, चन्द्रशेखर मिश्र ('कुँवरसिंह' महाकाव्य) इत्यादि के 'पूर्वज' सिद्ध होते हैं। इनका अपने समय में अच्छा आदर रहा। एक उदाहरण प्रस्तुत है :

घनसार पटीर मिलै मिलै नीर चहै तन लावै न लावै चहै।
न बुझै विरहागिन झार झरी हू चहै घन लावै न लावै चहै।।
हम टेरे सुनावतीं वेनी प्रवीन चहै मन लावै न लावै चहै।
अब आवै विदेस तें प्रीतम गेह चहै धन लावै न लावै चहै।।

बैताल

जनकवि बैताल बंजीजन (1782-1829 ई.) ने कलारहित एवं सरल किन्तु प्रभावी एवं प्रेरक नीतिकाव्य रचा है जो पर्याप्त लोकप्रिय है। कविता को केवलमात्र अलौकिक से संपृक्त करने वाले अभिजातवादी आलोचक आ. रामचन्द्र शुक्ल ने वृन्द, गिरिधर और घाघ के साथ बैताल को भी कवि न मानते हुए सूक्तिकार कहना आवश्यक समझा है। मेरे विचार से, कविता को खंडित करना स्थूल द्वैतदृष्टि का परिणाम है जो सूक्ष्म अद्वैतवाद-संपृक्त रससिद्धांत के तो प्रतिकूल है ही, व्यापक मान्यता की अवहेलना करने के कारण जनविरोधी भी है। यह स्थूल द्वैताक्रान्त वर्गीकरण कवीर, नानक, तुलसी इत्यादि के नीतिकाव्य को भी सूक्ति-वर्ग में डाल सकता है। सूक्ति कविता का अपरिहार्य अंग है। कविता और सूक्ति के बीच दीवार खड़ी करना व्यर्थ है।

आ. शुक्ल ने त्वरा में बैताल को भी कुंडलियाकार मान लिया है, जिसका अनुकरण दूसरे शुक्ल ('हिन्दी साहित्य का इतिहास' के लेखक डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल') ने आँख मूँद कर किया है, किन्तु जो ग़लत है, क्योंकि बैताल ने गिरिधर कविराय एवं दीनदयाल गिरि जैसे नीतिकाव्यकारों के सदृश कुंडलिया छन्द में रचना नहीं की प्रत्युत छप्पय अपनाया है, जैसाकि मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में ठीक ही लिखा है। बैताल की भाषा एक शब्द में अवधी कही जा सकती है जिसका प्रवाह प्रशस्य है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार इनके लगभग तीस छप्पय ही प्राप्त होते हैं। कतिपय उद्धरण अवतरित हैं :

1. मरै बैल घरियार^१, मरै वह अडियल टटू। मरै करकसा नारि, मरै वह बलम निखटू॥
बाँभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै। पूत वही मरि जाय जु कुल में दाग लगावै॥
अरु बे-नियाउ राजा मरै, तबै नींद भरि सोइए॥ बैताल कहै बिक्रम सुनौ, एते मरे न रोइए॥
2. जीभि जोग अरु भोग, जीभि बहु रोग बढ़ावै। जीभि करै उद्योग, जीभि लै कैद करावै॥
जीभि स्वर्ग लै जाय, जीभि सब नरक देखावै। जीभि मिलावै राम, जीभि सब देह धरावै॥
निज जीभि ओंठ एकत्र करि, बाँट सहारे तोलिए। बैताल कहै बिक्रम सुनौ, जीभि सँभारे बोलिए॥
3. टका करै हूल, टका मिरदंग बजावै। टका चढ़ै सुखपाल, टका सिर छत्र धरावै॥
टका माय अरु बाप, टका भाइन को भइया। टका सासु अरु ससुर, टका सिर लाड़ लइया॥
अब टके बिनु टकटका लगी रहत नित राति-दिन। बैताल कहै बिक्रम सुनौ, धिक जीवन जग टके बिन॥

-
1. शिवसिंह ने 'सरोज' में 1677 ई. (1734 वि.) में जन्म माना है, जिसे मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में उद्धृत किया है। किन्तु रामचन्द्र शुक्ल ने चरखारी के प्रसिद्ध विक्रमसाहि ('विक्रमसतसई'—प्रणेता कवि जो खुमान, प्रतापसिंह प्रभृति कवियों के आश्रयदाता भी थे) के आधार पर 1839-86 वि. का अनुमान किया है जो ठीक लगता है। 'हिन्दी-नीतिकाव्य' के प्रस्तोता डॉ. भोलानाथ तिवारी ने शुक्ल-प्रतिपादित 1839 वि. को 1872 ई. ('हिन्दी साहित्य कोश भाग 2, पृष्ठ 393) लिख दिया जो ग़लत है। पुष्य या पुंड को पुषर्दत मानने, पृथ्वीराजरासो के शुक्-शुक्ती-संवाद सम्बन्धी अंशों को प्रामाणिक मानने तथा ऐसी ही अनेक कल्पनाशील मान्यताओं के धनी डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' में "बैताल कहे विक्रम सुनौ" के आधार पर विक्रम-बैताल की 'निजंधरी कथा' (यह फ्रेज डॉक्टर साहब को बहुत पसन्द था) का ताना-बाना भिड़ाया है जो प्रतीक-निष्पन्न होने के कारण विचारणीय है।
 2. मैंने बचपन में 'घरियार' (घड़ियाल की तरह सुस्त या आलसी) सुना था, किन्तु मेरी पत्नी स्वर्गता राजकिशोरी 'गरियार' (गालियाँ खाते रहने वाला) बताती थी। 'विनोद' एवं 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (शुक्ल) में 'गरियार' ही लिखा है। अर्थ विवृति की दृष्टि से 'घरियार' ठीक लगता है।

4. राजा चंचल होय मुलुक को सर करि लावै। पंडित चंचल होय सभा उत्तर दै आवै।।
हाथी चंचल होय समर में सँड़ि उठावै। घोड़ा चंचल होय झपटि मैदान दिखावै।।
हैं ये चारों चंचल भरे' राजा, पंडित गज, तुरी। बैताल कहै बिक्रम सुनौ तिरिया चंचल अति बुरी^१।।
5. दया चट्ट है गई, धरम धँसि गयो धरन मैं। पुन्य गयो पाताल, पाप भे बरन-बरन मैं।।
राजा करै न न्याउ, प्रज्ञा की होत खुवारी। घर-घर भे वेपीर, दुखित भे सब नर-नारी।
अब उलटि दान गजपति मँगै, सील सँतोष कितै गयो। बैताल कहै बिक्रम सुनौ, अब कलजुग परगट भयो।।^२
6. मर्द सीस पर नवै, मर्द बोली पहिचानै। मर्द खिलावै-खाय, मर्द चिंता नहिं मानै।।
मर्द देय अरु लेय, मर्द को मर्द बचावै। गाढ़े-सँकरे काम मर्द के मर्दें आवै।।
पुनि मर्द उनहिं को जानिए दुख-सुख साथी मर्द के। बैताल कहै बिक्रम सुनौ, ए लच्छन हैं मर्द के।।
7. चोर चुप्प हवै रैनि अँधियारी पाए। संत चुप हवै रहै मढ़ी में ध्यान लगाए।।
बधिक चुप्प हवै रहै फाँसि पंछी लै आवै। छैल चुप्प हवै रहै सेज पर तिरिया पवै।।
बर पिपर-पात हस्ती-म्रवन कोइ-कोइ कबि कुछु-कुछु कहै। बैताल कहै बिक्रम सुनौ चतुर चुप्प कैसे रहै^३।।

गिरधारीलाल^४

बौद्धिककाल के सन्धियुग में उत्कृष्ट पारम्परिक ब्रजभाषा-कवि गिरधारीलाल (जन्मवर्ष 1786 ई., सातनपुरवा^५, जनपद रायबरेली) ने 'सुदामाचरित' एवं 'गिरधारीचरित' नाम ग्रन्थद्वय में प्रौढ़ एवं आकर्षक कविता प्रस्तुत की है, जबकि उनके 'गोपीविरह', 'गिरधारी-सतसई', 'राधा-उपालंभ', 'रस-मराल', 'श्याम-चरित' एवं 'सरस-सूक्तियाँ' ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। वे पद्याकार की श्रेणी के सफल कवि हैं जिनके कृतित्व में अस्मिता के भव्य दर्शन होते हैं। प्रौढ़ एवं कला की दृष्टि से 'सुदामा-चरित' उच्चकोटि की रचना है, जो हिन्दी में प्राप्त कम-से-कम छह-सात सुदामाचरितों में किसी से भी न्यून नहीं है, भले ही अपनी सरलता एवं अपने अद्वितीय दरिद्रता-चित्रण में नरोत्तमदास का 'सुदामाचरित' ठीक ही अतिविख्यात हो। 'सुदामाचरित' तथा 'गिरधारीचरित' से दो-दो उद्धरण देखें :

1. राजदंड चोरदंड अगिनि ठगिनि दंड, धन ही ते होत बहु और दंड जेते हैं।
धन धाम धंधे में न लागै ध्यान ईश्वर को, धन मद मत अंध होत न तेते हैं।।
कह गिरधारी जे हैं ब्राह्मण विचारी ते वै, धन के उपाव पर पाँव नहीं देते हैं।
धन ते सतावे मार, धन ही ते अहंकार, धन के अकार विकार होत केते हैं।।
2. जाही लच्छमी ते जग तीरथ नहान होत, जाही लच्छमी ते जू महान कहवाइए।
जाही लच्छमी ते जग करिकै अखंड जज्ञ अखिल अखंडल को ऊँच पद पाइए।।
जाही लच्छमी ते सब अकुल कुलीन होत, तुम हौ प्रवीन तुम्हें काह समझाइए।
जाही लच्छमी को अति श्रीपति पियार करैं, ताही लच्छमी को, पति! मति इतराइए।।
3. गंग उत मंग पर गौरी अरधंग पर, अंग पर भूषन भुजंग छबि छायो है।
कहै गिरधारी उर मुंडन की माल, गरे पुंडरीक खाल ओढ़े सुभग सोहायो है।।
शैल पै अगार, आयो बैल पै सवार नंदी, मंदिर में आय शृंगीनाद ही बजायो है।
जाकी फूँक जाल सो निहाल भो कँधैयालाल, धरि कै जोंधैया भाल जोगी एक आयो है।।

1. भले ('बुरे की तर्ज पर)।

2. 'चंचल' में श्लिष्ट सौन्दर्य।

3. तुलसीदास कृत रामचरितमानस एवं कवितावली के उत्तरकांडों में वर्णित कलि-प्रसंगों से तुलनीय छन्द। इस वर्णन में उत्तर-मुगलकालीन भारत की विशृंगल स्थिति का चित्रण प्राप्त होता है।

4. "चतुर चुप्प कैसे रहै"—सुन्दर अर्थान्तरन्यास अलंकार। लोकोक्ति।

5. 'गिरधारीलाल: ऐतिहासिक अज्ञात कृष्णभक्त कवि' (डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र, लखनऊ), 'विश्वभारती पत्रिका' (शांतिनिकेतन, पश्चिम बंगाल), जनवरी-मार्च 1974, पृष्ठ 361-364। निबन्ध 'कल्पत' (2005 ई.) में भी प्रकाशित।

6. बैस राजा सातन के नाम पर। उन्नाव जनपद में भी सातन विद्यमान है।

4. फूले वन भूले मन अचल मुनीनहू की अलिन को आली मृदु बोलनि उवाहती।
कहै गिरधारी छवि नीकी चंद चौंदनी की त्रिविध बयारी मकरंद बुंद गाहती।।
बिलसै मनोहर मनोज के बिलास ऐसे तापर तिहारी कला अधिक उमाहती।
कांह तेरी बाँसुरी की तान सुनि कानन में सकल सुकीया परकीया होन चाहती।।

प्रेमसखी'

‘सीताराम-नखशिख’ के कवित्त-सवैयों के कुशल कवि प्रेमसखी (रचनाकाल 1825 ई. के इधर-उधर)² ने ‘पद’, ‘कवित्त’ और ‘होरी’ ग्रन्थ भी रचे हैं। मधुररामकाव्यकारों में प्रेमसखी को एक स्मरणीय स्थान प्राप्त है। उनकी अनुभूति भक्तिमयी एवं ब्रजभाषा ललित है :

कलपतला के सिद्धिदायक कलपतरु कामधेनु कामना के पूरन करन हैं।
तीनिलोक चाहत कृपाकटाक्ष कमला की, कमला सदाई जाको सेवत सरन हैं।।
चिंतामनि चिंता के हरनहारे ‘प्रेमसखी’, तीरथ जनक बर बानिक बरन हैं।
नख बिधु-भूषन समन सब दूसन ये रघुवंसभूषन के राजत चरन हैं।।

जोधराज

‘हम्मीररासो’ के रचयिता जोधराज (रचनाकाल 1828 ई.³ के आसपास) वीररस के कवियों में भूषण, लालकवि, गुरु गोविन्द सिंह, सूदन एवं चन्द्रशेखर वाजपेयी के साथ एक महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। इन्होंने नीवेंगढ़ (नीमराणा, अलवर) के राजा चन्द्रभानु चौहान के अनुरोध पर हम्मीररासो की रचना की थी जो प्रमुखतः संक्रान्तिकालीन छप्पय-शैली और यत्र-तत्र डिंगलमिश्रित ब्रजभाषा में रचा गया है। यद्यपि चह चरण (भट्ट) न होकर गौड़ ब्राह्मण थे तथापि इन्हें चारण-शैली में सफलता प्राप्त हुई है। इनकी अभिव्यक्ति में क्लिष्टता एवं जटिलता नहीं है तथा वीररस की प्रभावी निष्पत्ति प्राप्त होती है। महिमा नामक मंगोल का प्रेयसी के साथ आना, हम्मीर का दोनों को शरणदान देना, इस कारण से अलाउद्दीन खिलजी से युद्ध तथा अंततः बलिदान का कल्पना-युक्त परम्परा-गृहीत वृत्त कथात्मक अधिक है, ऐतिहासिक कम। किन्तु हम्मीर की वीरता इतिहाससिद्ध है जिसने 1299 ई. से 1301 तक भयानक युद्ध किया, जिसमें म्लेच्छ सेनापति नुसरत खान मारा गया, उलुगखान की सेना के टुकड़े-टुकड़े हुए तथा उसे भाग कर जान बचानी पड़ी⁴, स्वयं अलाउद्दीन को युद्ध-नेतृत्व के लिए आना पड़ा, एक साल तक घेरा पड़ा रहा, तब कहीं वीररत्न ने वीरगति प्राप्त की तथा स्त्रियों ने जौहर दिखाकर म्लेच्छों को चकित किया। यह सत्य है कि हम्मीर की सेना में मीर मोहम्मद शाह नामक मंगोल सेनापति विद्यमान था। वह घायल हुआ। अलाउद्दीन ने जान बचाने पर प्रतिदान का प्रश्न किया तो उसने कहा कि ठीक होने पर वह सुल्तान का कल्ल कर अपने स्वामी हम्मीर के पुत्र को राजा बनाएगा।⁵ किन्तु हम्मीररासो का वृत्त कल्पित है। महिमा नाम मंगोलों में नहीं रखा जाता। जोधराज ने हम्मीर की रानी आशा के प्रेरक-शक्ति के रूप में प्रस्तुत कर आदर्श क्षत्राणी का गौरव चित्रित किया है।

जिस प्रकार पाटलिपुत्र में गुप्तवंश के पतन पर अनेक गुप्त-योद्धा मेवाड़ की ओर निकल गए थे क्योंकि वहाँ की दुर्गमता रक्षार्थ अमूल्य थी, उसी प्रकार दिल्ली में चौहान-वंश के पतन पर अनेक चौहान-योद्धा रणथंभौर के अजेय दुर्ग में जा जमे थे। कन्नौज में राठौर-वंश के पतन पर अनेक राठौर-योद्धा घोर मरुस्थल की ओर निकल गए थे जहाँ उनके जोधा जी एवं बीकाजी जैसे वंशजों ने

1. मधुरभक्तिपरक नाम। मधुरकृष्णकाव्यकारों में राधावल्लभ-संप्रदाय के चन्द्रसखी (ब्रजवासी, रचनाकाल 1581 ई. के लगभग) का स्मरण आता है जिनके पद ‘रागसारोद्भव’ में हैं। चन्द्रसखी छाप का प्रयोग कई नरों ने किया है। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय चन्द या चन्दलाल ‘चन्दसखी’ (अनुमानतः 1640-1701 ई., ओराछा) हैं।
2. यह शृंगवेरपुर (प्रयाग) के निवासी थे तथा चित्रकूट के बाबा रामदास गूदर के शिष्य। तुलसी-साहित्य के चिरस्मरणीय टीकाकार बैजनाथ और प्रसिद्ध रामकाव्यकार रीवाँ-नरेश रघुराजसिंह ने इनकी बहुत प्रशंसा की है। युगलप्रिया ने अपने ‘सत्सिक्काश-भक्तमाल’ में इन पर छप्पय रचा है।
3. बृहस्पतिवार, वैशाख शुक्ल 3, सं. 1885 वि. (17 अप्रैल, 1828 ई.) को हम्मीररासो की रचना पर ‘हिन्दी साहित्य कोश’ (भाग 2) में डॉ. टीकमसिंह तोमर का निर्णय उचित है तथा ग्रीअर्सन, श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु एवं शुक्ल के भ्रमों का निवारण कर देता है।
4. “उलुग खान उल्लू-सा दिन में छिपा फिरा!” (रामप्रसाद मिश्र)
5. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (डॉ. ईश्वरीप्रसाद) पृष्ठ 263-64।

जोधपुर एवं बीकानेर इत्यादि बसाए। चौहान और राठौर राजा कभी-कभी पृथ्वीराज, हम्मीर चौहान और जयचन्द्र इत्यादि राठौर राजाओं पर काव्यसृजन कराने का यत्न करते रहते थे। शार्ङ्गधर का हम्मीररासो, भट्ट केदार का जयचन्द्रप्रकाश, मधुकर का जयमयंकयशचंद्रिका महाकाव्यों का उल्लेख संक्रान्तिकाल से संपृक्त हो चुका है, यद्यपि न तो ये काव्य ही उपलब्ध हो सके हैं और न इनके लिखे जाने का कोई अकाट्य प्रमाण ही मिल सका है। आचार्य शुक्ल ने लक्ष्मीधर संपादित प्राकृत-पैंगलम् के जिन छन्दों को शार्ङ्गधर कृत समझ लिया है, वे स्पष्टतः जज्जल कृत हैं, जैसाकि डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बारंबार सिद्ध भी किया है। चौहानों का सम्बन्ध अजमेर से भी था। अतः पृथ्वीराज का सम्मान मेवाड़, रणथम्भौर, अलवर इत्यादि के राजाओं तक प्रसरित रहा। पृथ्वीराजरासो के स्फीत रूप का प्रमुख कारण यह भी है। हम्मीर तो सार्वभौम श्रद्धापात्र रहे ही हैं अन्यथा पटियाला के सिख राजा चन्द्रशेखर कृत हम्मीरहठ के प्रेरक क्यों बनते? सकारण या अकारण जयचन्द्र देशद्रोही माने जाते रहे हैं। यह इतिहास-सिद्ध है कि यदि उन्होंने तराइन की दूसरी (या तीसरी या कोई) लड़ाई में पृथ्वीराज द्वारा याचित सहायता प्रदान की होती तो मोहम्मद ग़ोरी एक बार फिर हार जाता। अतः उन पर लांछन लगाए गए। फलतः उन पर काव्यसृष्टि का अभाव रहा। उधर, हम्मीर संस्कृत, प्राकृत एवं ब्रज भाषाओं के नाना काव्यों के अजर-अमर नायक बनने में अतीव भाग्यशाली रहे क्योंकि उनकी वीरता-धीरता प्रशस्य भी थी, प्रणम्य भी। जोधराज ने हम्मीररासो में अनेक उच्चकोटि के छन्द रचकर प्रशस्य-प्रणम्य योद्धा के साथ पूरा न्याय किया है :

1. कहेँ पँवार जगदेव सीस आपन कर कट्यो। कहेँ भोज, विक्रम सुराव जिन पर-दुख मिट्यो।।
सवा भार नित करन कनक बिप्रन को दीनो। रह्यो न रहिए कोय देव, नर, नाग सु चीनो।।
यह बात राव हम्मीर सूँ रानी इमि आसा कही। जो भई चक्कवै-मंडली सुनौ राव! दीखै नहीं।।
2. जीवन-मरन सँजोग जग, कौन मिटावै ताहि। जो जनमै संसार में, अमर रहै नहिं आहि।।
कहेँ जैत, कहेँ सूर, कहेँ सोमेश्वर राणा। कहेँ गए प्रथिराज, साह दल जीतिण आणा।।
हो तव मिटै न जगत में, कीजै चिन्ता कोहि। आसा कहै हमीर सो, अब चूकौ मत सोहि।।

हम्मीररासो में वीर-प्रशस्ति, सत्कर्म-प्रेरणा इत्यादि का अच्छा आयोजन है किन्तु कविता कला की दृष्टि से प्रभावी नहीं है। जोधराज लाल कवि के सदृश श्रेष्ठ वर्णनकर्ता भी नहीं हैं क्योंकि वे प्रेरणा या उपदेश पर अधिक ध्यान देते हैं। फिर भी, प्रशस्य वर्ण्य के कारण काव्य प्रशस्य बन पड़ा है।

‘आशी’

जनसम्मानित मौलाना शाह अब्दुल अलीम ‘आशी’ ने 1844 ई. के आसपास प्रेम एवं विरह पर सुन्दर ब्रजभाषा-दोहे रचे। इन्हें साहित्येतिहास-समाविष्ट करने का श्रेय ‘हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास’ के प्रस्तोता आचार्य चतुरसेन शास्त्री¹ को है :

काजर दूँ तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय। निज नैनन मो पिउ बसैं, दूजा कौन समाय।।
भुज फरकत तुव मिलन की, स्रवन सुनन को बैन। मन माला तव नाम की जपत रहत दिन-रैन।।
मैं चाहूँ कै उड़ि चलूँ, पर बिना उड़ा न जाय। काह कहौं करतार कों पर न दिया लगाय।।
ओस-ओस सब कोइ कहै, आँसू कहै न कोय। मोहि बिरहिनि के सोग में रैन रही है रोय।।

विश्वनाथसिंह

भारतेन्दु (जिनके पिता गोपालचन्द्र उपनाम ‘गिरिधरदास’ कृत ‘नहुष नाटक’ हिन्दी के आरम्भिक नाटकों में गण्य है तथा जो स्वयं एक महान् नाट्यकार थे) के शब्दों में “हिन्दी का प्रथम दृश्यकाव्य” एवं आ. शुक्ल (जिनका ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ सर्वाधिक मान्य रहा है) के शब्दों में “हिन्दी का प्रथम नाटक” ‘आनन्द-रघुनन्दन नाटक’ लिखकर साहित्येतिहास में अमरता प्राप्त करनेवाले रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह जू देव (1789-1854 ई., जिनका राज्यकाल पिता सुकवि जयसिंह जू देव (जन्म 1765 ई.) के गंगा में जलसमाधि लेने के अनन्तर 1833 ई. से आरम्भ हुआ)² शास्त्रीयकाल एवं बौद्धिकाल के एक सशक्त सेतु हैं। उनके पिता जयसिंह

1. लोकप्रिय उपन्यासकार एवं कहानीकार।

2. ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग 2, पृष्ठ 574-75 का डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी का संक्षिप्त विवरण अधिक व्यवस्थित है, ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में आ. शुक्ल ने उत्कृष्ट विवरण दिया है किन्तु जन्म-मरण पर कुछ नहीं लिखा तथा राज्यकाल 1778-97 वि. (1721-1740 ई.) गलत लिखा है, ‘विनोद’ मिश्रबन्धु की सामग्री अव्यवस्थित है।

एवं पुत्र रघुराजसिंह (1833-1880 ई.) भी कवि थे। रघुराजसिंह ने 'रासबिहारी' में पिता की रामनिष्ठा एवं सखीभावभक्ति का उल्लेख किया है। प्रपौत्र डॉ. सुमेरसिंह 'शैलेश' (10 अप्रैल 1843) महाराज विश्वनाथसिंह बौद्धिककाल में निर्गुण-सगुण के संयोजक के रूप में भी स्मरणीय हैं जिनकी 'कवीर-बीजक' की 'पाखंड-खंडिनी टीका' में संकीर्ण सांप्रदायिकता पर प्रहार किया गया है। यह टीका सगुणसाकारपरक है तथा अंशतः सत्याधृत है क्योंकि कवीर न तो शत-प्रति-शत निर्गुणनिराकारवादी ही हैं, न शत-प्रति-शत सहगुणसाकारवादी ही—आनुवंशिक दृष्टि से मुसलमान होने के कारण वे संस्कारतः यत्र-तत्र सगुणसाकार-विरोध करते हैं किन्तु हिन्दू-अनुयायियों की बहुलता के कारण प्रयत्नः यत्र-तत्र उसके संकेत करने पर भी विवश होते हैं (यह भी विचित्र संयोग था कि स्वयं उनके पुत्र कमाल उनके यत्र-तत्र रामकृष्णविरोध के कारण विरोधी हो गए थे और प्रायः ठीक ऐसा ही नानक के साथ घटा जिनके पुत्रद्वय श्रीचन्द-लक्ष्मीचन्द सगुणसाकारवादी एवं मूर्तिपूजावादी थे)। विश्वनाथसिंह तर्कसंगीत हैं, तुलसी साहब की तरह पाखंडी नहीं (जिन्हें तुलसीदास के रूप में सगुणवाद-प्रतिपादन के पाप-प्रक्षालनार्थ तुलसी साहब के रूप में निर्गुणवाद-प्रतिपादन का पुण्यकार्य करने के लिए अवतार लेना पड़ा था—बोधिसत्त्वावतार-कल्पना का स्मरण आता है)। 'रामायण', 'आनन्द-रामायण', 'संगीत-रघुनन्दन', 'गीतारघुनन्दन प्रामाणिक', 'रामगीता टीका', 'रामपरत्व', 'रामचन्द्रजू की सवारी' इत्यादि बहुआयामी रचनाएँ विश्वनाथसिंह को रामकाव्यकार के रूप में अमर करने के लिए पर्याप्त हैं। 'विनयपत्रिका की टीका' समेत उन्होंने कई टीकाएँ भी लिखीं। वे 43 ग्रन्थों के प्रणेता माने जाते हैं जिनमें दरबारी कवियों द्वारा उनके नाम पर रचित समझे गए हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि विश्वनाथसिंह हिन्दी-नाटक एवं हिन्दी-रामकाव्य की अमर विभूति हैं। उनका विशद समन्वयवाद निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार, उपनिषद्-पुराण, राम-कृष्ण, सब का समाहार प्रस्तुत करता है। स्वयं राजा होने के कारण उनका राजनीति-निरूपण, युद्ध-वर्णन इत्यादि स्वाभाविक एवं सजीव बन पड़ा है। उनकी ब्रजभाषा में प्रवाह भी अच्छा है। पिता जयसिंह अलंकृत-शैली के प्रेमी थे, विश्वनाथसिंह सहज-शैली के उदाहरण देखें :

1. उठौ कुँवर दोउ प्रानपियारे।
हिमरितु प्रात पाय सब मिटिगे नभ-सर पसरे पुहकर-तारे।।
जग-वन महँ निकस्यो हरषित हिय बिचरन हेत दिवस मनियारे।
बिस्वनाथ यह कौतुक निरखहु रविमनि दसहु दिसिन उजियारे।।
2. करि जो कर मैं कयलास लियो, कसिकै अब नाक सिकोरत है।
दइ तालन बीस भुजा छहराय झुको धनु को झकझोरत है।।
तिल एक हलै न हलै पुहुमी, रिस पीसि कै दाँतन तोरत है।
मन में यह ठीक भयो हमरे, मद काको महेस न मोरत है।।
3. वाजि गज सोर रथ सुतुर कतार जेते, प्यादे ऐँड़बारे जो सबीह सरदार के।
कुँवर छबीले जे रसीले राजवंसवारे, सूर अनियारे अति प्यारे सरकार के।।
केते जातिवारे केते-केते देसवारे, जीव स्वान सिंह सैलवारे जे सिकार के।
डंका की धुकार द्वै सवार सबै एकै बार, राज वार पार कार कौसलकुमार के।।
4. भाइन भृत्यन विष्णु सो, रैयत भानु सो, सत्रुन काल सो भावै।
सत्रु बली सों बचै करि बुद्धि औ अस्त्र सों धर्म की रीति चलावै।।
जीतन को करै केते उपाय और दीरघ दृष्टि सबै फल पावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै नृप सो कबहूँ नहिं राज गँवावै।।

विश्वनाथसिंह एवं रघुराजसिंह के अनेक दरबारी कवियों में अजवेश या अजबेस कवि का उल्लेख उचित होगा। शिवसिंह, ग्रीअर्सन एवं मिश्रबन्धु ने दो अजबेस माने हैं, जबकि डॉ. किशोरीलाल गुप्त एवं डॉ. विपिनबिहारी त्रिवेदी द्वारा अजबेस नरहरि महापात्र के पुत्र हरिनाथ महापात्र (असनी, जनपद फ़तेहपुर) के वंशज माने गए हैं। मिश्रबन्धु ने अजबेस भट्ट (रचनाकाल 1512 ई.) द्वारा अकबर के बाल्यकाल-वर्णन की चर्चा की है। यदि यह वर्णन प्राप्त हो सके तो दो अजबेस सिद्ध हो सकते हैं। वैसे, उन्होंने 'बघेलवंशवर्णन' (1835 ई.) के रचयिता अजबेस भाट को 'तोष-श्रेणी' का कवि माना है। मेरे विचार से, जब तक रचना-प्राप्ति एवं रचना-शोध न हो जाए तब तक दो अजबेसों को एकदम नकारना उचित नहीं। 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम में रघुराजसिंह

के अंग्रेजों के पक्ष में लड़ने पर अजबेस भाट ने वीरस के अच्छे छन्द रचे हैं। 'अजबदास के झूलना' (1891 ई.) वाले अजबदास तो नाम से ही भिन्न हैं।

गुमानी¹

रामनामपंचपंचाशिका, राममहिमावर्णन, रामसहस्रगणदण्डक, राममहिम्न, रामविषयक भक्ति विज्ञापितसार प्रभृति के चिरस्मरणीय रामकाव्यकार गुमानी (1790-1846 ई., काशीपुर) आधुनिक कुमाउँनी² के आदिकवि एवं अन्यतम जनकवि के रूप में अमर हैं। उन्होंने गंगाशतक, कालिकाष्टक, कृष्णाष्टक इत्यादि रचकर हिन्दुत्व की विराटता के साथ पूरा न्याय किया है तथा नीतिशतक (शतोपदेश) की रचना भी की है। रामकाव्यकार के रूप में गुमानी नेपाली के भानुभक्त से तुलनीय हैं। गुमानी की कविता में भारतीय धर्मसाधन, प्रकृति, देश-दुर्दशा, समाज-दुर्दशा इत्यादि का इतना विशद एवं बहुआयामी चित्रण प्राप्त होता है कि उन्हें कुमाउँनी का भारतेन्दु कहा जा सकता है। उन्होंने कुमाउँनी, नेपाली, खड़ीबोली एवं संस्कृत का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत किया है जो उनको अपने दायरे में मते तुलसीदास का उत्तराधिकारी कह सकता है। उनकी कविता पारम्परिक है, किन्तु उसमें नए विषयों का समावेश है। वे कलाकार नहीं हैं, किन्तु अपनी बात प्रभावी ढंग से कह लेते हैं। मुनीशचन्द्र जोशी एवं शैलजा का गुमानी को खुसरो के बाद का खड़ीबोली-कवि एवं खड़ीबोली का प्रथम कवि कहना चापत्यपूर्ण हो सकता है क्योंकि खड़ीबोली हेमचन्द्र, खुसरो, खुसरो-समकालीन नामदेव, प्राणनाथ इत्यादि में स्पष्टतः विद्यमान है तथा उसके आदिकवि न खुसरो हैं, न गुमानी, न गंगादास। किन्तु इससे गुमानी का राष्ट्रीय महत्व स्पष्ट होता है। जनकवि श्रीकृष्ण पांडे (जन्म 1800 ई.), चिन्तामणि ज्योतिषी (रचनाकाल 1897 ई.) इत्यादि कवियों पर गुमानी का प्रभूत प्रभाव पड़ा। शिवदत्त सती (रचनाकाल 1891 ई.), दीवानसिंह (देहान्त 1952 ई.), लीलाधर जोशी (मेघदूत का कुमाउँनी-अनुवाद 1894 ई. तथा श्रीमद्भागवतदगीता का 1980 ई.), गौरीदत्त पांडे 'गौर्दा' (1872-1940 ई.) तथा बचीराम, हीराबल्लभ शर्मा, चिन्तामणि पालीवाल, रामदत्त पन्त 'भारती', बचीराम आर्य, बच्चीराम आर्य, बचेसिंह पटवाल, केशवदत्त पांडे, कुलानन्द भारतीय, दामोदर उपाध्याय, पूर्णानन्द भट्ट 'कुमय्यौ', भवानीराम, चन्द्रलाल चौधरी इत्यादि अधुनातन कुमाउँनी-कवि गुमानी के सुयोग्य उत्तराधिकारी हैं। हिन्दी के उपभाषा-कवियों में गुमानी को एक अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त है। वैसे, उत्तरप्रदेश के पर्वतांचल ने व्यापक स्तर पर हिन्दी को पन्त जैसा वैश्विक महाकवि, गोविन्दबल्लभ पन्त³ (खड़ीबोली-नाटकों में कुमाउँनी-गीतों का प्रयोग विशेष उल्लेख्य) जैसा स्मरणीय नाट्यकार, इलाचन्द्र जोशी जैसा एक शीर्ष उपन्यासकार; शिवानी जैसी शीर्षस्थ उपन्यास लेखिका, स्व. शैलेश मटियानी जैसा प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यासकार, पीताम्बरदत्त बड़थवाल जैसा अविस्मरणीय शोधकर्ता, हेमचन्द्र जोशी जैसा विख्यात भाषाविद् प्रदान किया है। किन्तु उपभाषा कुमाउँनी को विशद रूप प्रदान करने वाले कवि गुमानी की अपनी अलग सत्ता भी है, महत्ता भी। रेवादत्त उप्रेती ने 'गुमानी नीति' तथा देवीदत्त शर्मा ने 'गुमानी कवि विरचित काव्य संग्रह' जैसे ग्रन्थ प्रस्तुत किए हैं। डॉ. नारायणदत्त पालीवाल ने 'कुमाउँनी (हिन्दी की उपभाषा) के कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन' शीर्षक अध्ययनपूर्ण स्फीत-ग्रन्थ में उन पर अच्छी सामग्री संकलित एवं प्रस्तुत की है।

गुमानी की कविता में अत्याचारी गोरखा-राज्य⁴, अनाचारी अंग्रेज-राज्य, आपसी फूट, विधवा-दुर्दशा इत्यादि के ऐतिहासिक दृष्टि से अमूल्य वर्णन तो प्राप्त होते ही हैं, स्थानीय प्रकृति से राष्ट्रीय संस्कृति तक के चिर महत्वशाली वर्णन भी प्राप्त हैं। वे तत्त्वतः भी राष्ट्र-कवि थे, वस्तुतः भी। कुछ आकर्षक उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. वास्तविक नाम लोकरल पन्त।

2. कुमाऊँ और कुमाउँनी पर पठनीय ग्रन्थ: कुमाऊँ का इतिहास (ब्रदीदत्त पांडे), कुमाऊँ के सम्राट (भाग 1-2-3, चिन्तामणि पालीवाल), प्राचीन कुमाऊँ (बागगिरी), पर्वतीय लोकगीत (केशवदत्त पांडे), कुमाउँनी गीत (खीमसिंह), कुमाऊँ विनोद (मनवरसिंह पटवाल गोसाई), पहाड़ी गीत (आनन्दसिंह हरिसिंह) 'फूलपाती', 'गढ़वाल लोकगीत (डॉ. गोविन्द 'चातक'), 'श्याम गढ़वाली लोकगीत', 'छम छुंमरु बाजला', 'उजियाली' (शिवानन्द नौटियाल), 'किन्नर देश' 'कुमाऊँ (राहुल सांकृत्यायन), 'कूर्मांचल की लोककथाएँ', 'नैनीताल की लोककथाएँ', (शैलेश मटियानी), कूर्मांचल की लोककथाएँ' (जीवनचन्द्र पन्त), कुमाउँनी भाषा की कहावतें (भाग 1-2, चन्द्रलाल वर्मा), कुमाऊँ का लोकसाहित्य (डॉ. त्रिलोचन पांडे) इत्यादि।

3. ठीक इसी नाम के राजनैतिक नेता भारतरत्न गोविन्दबल्लभ पन्त सर्वज्ञात हैं ही, जिनके पुत्र कृष्णचन्द्र पन्त भी नेता एवं मन्त्री रहे (हिन्दी प्रेमी भी)।

4. जैसे कश्मीर में 'हुन' (हुण) आज भी गाली है, मिथिला में "छोटउ तुरुका भयकी मार" (लोकोक्ति) प्रचलित है, वैसे ही कुमाऊँ में भी "गोरखि जे के ले रौ" (गोरखाराज्य धोड़े ही है) की लोकोक्ति विद्यमान है।

1. दिन दिन खजाना का भार का वो किया ले, शिवशिव चुलि में का बाल नैं एक कैका।
तदपि मुलुक तेरो छोड़ि नैं कोइ भाजा, इति वदति गुमनी धन्य गोखालि राजा।
2. विष्णु का देवाल उखाड़ा ऊपर बंगला बना खरा, महाराज का महल ढहाया बेड़ी खाना तहाँ धरा।
मल्ले महल उड़ाई नंदा बंगलों से भी तहाँ भरा, अंग्रेजों ने अल्मोड़े का नक्शा और ही और करा।।
3. अपने घर से चला फिरंगी पहुँचा पहले कलकत्ते, अजब टोप बनाती कुर्ती ना कपड़े ना कुछ लते।
सारा हिंदुस्तान किया सर बिना लड़ाई कर फत्ते, कहत गुमानी कलयुग ने माँ सुबजा भेजा अलबत्ते
4. विद्या की बढ़ती होती, फूट न होती राज्यों में;
हिंदुस्तान असंभव होता वश करना लख बरसों में।।

ग्वाल कवि

शिवसिंह कृत 'सरोज' एवं मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में ग्वाल नामक दो कवियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनमें प्रथम को मिश्रबन्धु ने ग्वाल प्राचीन (जन्मसंवत् 1715 अर्थात् 1658 ई.) कहा है जिनकी कविता कालिदास त्रिवेदी संपादित अमर संग्रह 'हजारा' में मिलती है किन्तु जो साधारण कवि थे, दूसरे प्रसिद्ध ग्वाल कवि (1792-1867 ई.) हैं जिनके पचासेक ग्रन्थों में 'रसरंग' एवं 'कविदर्पण' उल्लेखनीय हैं। यह ब्रह्मभट्ट वंशीय (बंदीजन) ब्राह्मण एवं वृन्दावन के मूल निवासी थे जो बाद में मथुरा में बस गए थे। पिता का नाम सेवाराम और माता का नाम दगदम्बिका था।

1. वासी वृन्दा बिपिन के श्री मथुरा सुखवास" (जमुनालहरी)
2. वृन्दावत ते मधुपुरी किय सुखवास प्रमान।
विदित बिप्र बंदी बिसद नाम ग्वाल कवि जान।। (रसरंग)
3. बिदित विप्र बंदी बिसद, बरने ब्यास पुरान।
ता कुल सेवाराम को सुत कवि ग्वाल सुजान।। (जमुनालहरी)
श्री गुरु, श्री जगदंबिका, श्री पितु दया सुभाय।
तिनके चरन सरोज कों, बंदत सीस नवय।। (श्री कृष्णचन्द जू के नखशिखा)

ग्वाल जी के प्राथमिक गुरु वृन्दावन के गोस्वामी दयालाल जी 'दयानिधि' थे¹। बाद में उन्होंने विधिवत् काव्य-शिक्षा काशी में बरेली-निवासी खुशालराम जी से ग्रहण की।² ग्वाल कवि प्रतिभासम्पन्न कवि एवं शास्त्रनिष्णात् आचार्य होने के साथ ही व्यावहारिक जीवन-दर्शन में आस्था रखने वाले समर्थ व्यक्तित्व के धनी भी थे। अपने जीवनकाल में विभिन्न राज्याश्रयों में उन्हें पर्याप्त सम्मान एवं धन प्राप्त हुआ। वे नाभा-नरेश जसवन्तसिंह, लाहौराधिपति रणजीतसिंह तथा कुछ समय बाद हीरासिंह, पुनः नाभानरेश भरपूरसिंह तथा रामपुर के नवाबों (नवाब यूसुफ खाँ तथा कल्ब अली खाँ) के यहाँ रहे। वृन्दावन में जन्में इस कवि का देहान्त रामपुर में ही हुआ।³

कालक्रमानुसार ग्वाल कवि की प्रामाणिक रचनाओं का विवरण इस प्रकार है :

रसिकानन्द (1822 ई.), हम्मीरहठ (1824 ई.), कविदर्पण (1834 ई.), विजयविनोद (1844 ई.), रसरंग (1847 ई.), साहित्यानन्द (1848 ई.), गुरुपचासा (1860 ई.), इश्कलहर दरयाव⁴ (1860 ई.), भक्तभावन (1862 ई.), जमुनालहरी, श्री कृष्णचन्द्रजू के नखशिख, बलदेव जी के कवित्त, नृहसिंह जी के कवित्त, गोपीपचीसी, राधाष्टक, श्रीकृष्णाष्टक, रामाष्टक, गंगापंचदशी, दशमहाविधान के कवित्त, फुटकर देव-देवी स्तुति, षट्क्रतु बर्नन, अन्योक्ति बर्नन, प्रास्तविक नीति, दृगशतक, शान्तरस-मिश्रित भक्तिपक्ष के कवित्त, बिहारी के कवित्त इनके अतिरिक्त निम्बार्क-स्वाम्यष्टक, नेहविवाह, वंशीबीसा, कुब्जाष्टक, प्रस्तारप्रकाश, बलवीरविनोद ऐसे ग्रन्थ हैं जिनका रचनाकाल अभी ज्ञात नहीं। 'कवि हृदय विनोद' कालान्तर में किया गया कवि-कृत छन्दों का संग्रह है।

1. 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 उत्कृष्ट एवं प्रात्ययिक विवरण में डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित ने 1659 ई. दिया है।
2. रामपुर दरबार के मशहूर शायर, 'ग्वाल-कवि के निकट मित्र अमीर मीनाई (इत्तिखाने-यादगार)' के अनुसार जन्म 1802 ई. में हुआ था।
3. ब्रजभाषा के कतिपय कवि-कोविद (ज्यो. राधेश्याम द्विवेदी)।
4. मीनाई साहब के अनुसार।
5. वही।
6. मीर हसन की कृति 'सिहरूल-बयान' का भावानुवाद।

प्रशस्य शोधकर्ता डॉ. रवीन्द्रनाथ जौहरी के अनुसार, कवित्व की दृष्टि से अभीष्ट संवेदशील, जीवन-जगत का व्यापक अनुभव, कल्पना-चातुरी, विदग्ध शब्द-विन्यास ग्वाल की जातीय विशेषताएँ हैं। आचार्य शुक्ल जी ने मर्यादावादी एवं आदर्शोन्मुख सात्विक काव्य-मनीषा के प्रति आग्रह के कारण ग्वाल कवि के काव्य में 'बाजारूपन' देखा था तथा उसकी अनुकृति में डॉ. महेन्द्रकुमार ने 'प्रतिभा-जनित विशिष्टता के अभाव में एक प्रकार के सस्तापन' को रेखांकित किया है^१। वस्तुतः कवि-रचित विशाल साहित्य की मूल अन्तर्धारा कला के सौन्दर्यशास्त्रीय मानदण्ड से ही समुचित मूल्यांकन पा सकती है। इस दृष्टि से, वे महत्तर जीवन-मूल्यों के उद्गाता नहीं, भाव-जगत् के स्वच्छन्द रसिक ही ठहरते हैं। जहाँ तक अभिव्यक्ति-व्यापार का प्रश्न है, वह शास्त्रनिष्ठ होने के साथ-साथ कहीं-कहीं कौतुक-प्रिय अवश्य हो गई है। किन्तु अनुशासनहीन, बाजारू एवं सस्ती नहीं। अपनी पूर्ववर्ती शास्त्रीय विरासत को जितनी जिम्मेदारी से इस आचार्य-कवि ने अपनाया है, उसका अन्य उदाहरण दुर्लभ है। प्रमाणस्वरूप 'रसिकानन्द' (रसचक्र एवं नायिकाभेद), 'रसरंग' (भाव-रस विवेचन तथा नायिका भेद), 'कविदर्पण' (काव्य-दोष-विश्लेषक सतर्क समालोचना-ग्रन्थ), 'साहित्यानन्द' (सर्वाङ्गनिरूपक प्रौढ़ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ), 'प्रस्तारप्रकाश' (छन्द-प्रस्तारभेद) प्रस्तुत किए जा सकते हैं। उनके खड़ीबोली-छन्दों का ऐतिहासिक महत्व है। कवि-आचार्य ग्वाल के अन्तरंग परिचय के लिए द्रष्टव्य हैं :

1. हाव भाव दावन संयुक्त जुक्त उक्तन तें पुन पुन उक्त आदि दोष तें गये गये।
माधुराज ओज परसाद गुन भरे खरे, जाति-गति वाज तवीरन सु ठये ठये।
ग्वाल कवि रस व्यंग ध्वनि लक्ष्ना तें लसैं, भूषन जमक अनुप्रासन बये बये।
सरस्वती मैया कृपा छत्तन छवैया ना तें, चित के हरैया बने कवित नये नये। (रसिकानन्द)
2. मेला की बहार करि इतही पधार कर, दैहे सुख सार कर प्रीतम बिहार कर।
ऐसैं जी विचार कर ननद सो शर कर, मादी हो अपारकर सास सो उचार कर।
ग्वाल कवि पौरि कों बुहार कर चार कर, साँकर उतारकर मुँदे से किवार कर।
दीपक निवार कर नूपर निकार कर, मौनी सेज डार कर बैठी दृग द्वार कर।। (रसरंग)

ग्वाल कवि मनमौजी, घुमक्कड़ बहुभाषाविद् एवं प्रदर्शनप्रेमी थे जिनको उमर खैयाम के "खाओ-पिओ-मजो उड़ाओ" दर्शन का गायक प्रथम हिन्दी-कवि एवं बच्चन, नीरज इत्यादि का पूर्वज माना जा सकता है। राहुल को तो ग्वाल का अवतार ही कहा जा सकता है। इनकी आत्मपरक कविता का अपना अलग महत्व है। अलंकृत प्रकृतिचित्रण सेनापति, पद्माकर एवं द्विजदेव का स्मरण कराता है। हिन्दी के अलमस्त कवियों में इनको एक शीर्षस्थ स्थान प्रदान किया जा सकता है :

दिया है खुदा ने खूब, खुसी करो ग्वाल कवि,
खाओ-पियो, लेव-देव यही रह जाना है।
राजा राव उमराव केते बादसाह भए,
कहाँ ते कहाँ को गए, लग्यो न ठिकाना है।।
ऐसी जिंदगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे,
देस-देस घूमि-घूमि मन बहलाना है।
आए परवाना चलै ना बहाना यहाँ,
नेकी कर जाना, फेर आना है न जाना है।।

प्रतापसाहि

'व्यंग्यार्थ कौमुदी' (1827 ई.) तथा 'काव्य-विलास' (1829 ई.) इत्यादि के सफल आचार्य तथा 'रसरज' (मतिराम) बिहारी-सतसई, भाषा-भूषण (जसवन्तसिंह) इत्यादि के असफल टीकाकर प्रतापसाहि बौद्धिककाल के सन्धि युग के कवियों में अग्रणी हैं। व्यंजना-निरूपण में इनकी समता कोई शास्त्रीय कवि नहीं कर सकता। मिश्रबन्धु (विनोद) एवं आ. शुक्ल (हिन्दी-साहित्य का इतिहास) तथा इन दोनों दिग्गजों के अनुकरण में डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित (हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2) एवं डॉ. सत्यदेव चौधरी (हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख

1. हिन्दी-साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)।
2. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग), सं. डॉ. नगेन्द्र।

आचार्य) ने प्रतापसाहि की बड़ी प्रशंसा की है। आ. शुक्ल लक्षणा के प्रशंसक (धनानन्द की स्तुति) एवं व्यंजना के भक्त (प्रतापसिंह की स्तुति) थे क्योंकि मिश्रबन्धु (जिनकी स्फीति के संक्षेपण का प्रतीक उनका इतिहास है) द्वारा 'अतिप्रशंसित' देव 'अभिधा' को 'उत्तम काव्य' मानते थे! यह एक स्पष्ट तथ्य है कि अधिकांश कविता अभिधात्मक ही होती और हो सकती है तथा अधिकांश विश्वकवि अभिधात्मक ही हैं—लक्षणा एवं व्यंजना का चारुत्व यत्र-तत्र ही सम्भव है। अतः शुक्ल की अभिधा-निन्दा, लक्षणा-प्रशंसा एवं व्यंजना-मुग्धता उनकी तरंग मात्र मानी जा सकती है, जिसके फेर में पड़कर वे अनेक अनुतरादायित्वपूर्ण, निराधार एवं भ्रामक 'स्थापनाएँ' कर गए हैं, जिनमें एक प्रतापसाहि से संबंध है: "यदि हम आचार्यत्व एवं कवित्व दोनों के एक अनूठे संयोग की दृष्टि से विचार करते हैं तो मतिराम, श्रीपति और दास से ये कुछ बीस ही ठहरते हैं।" यहाँ मतिराम जैसे महाकवि से अन्याय केवल इसलिए किया गया है कि मिश्रबन्धु उन्हें 'नवरत्न' में समाविष्ट करते हैं। यह सत्य है कि पूर्ववर्ती चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति, सुखदेव, देव, भिखारीदास इत्यादि आचार्यों एवं कवियों ने व्यंजना पर सम्यक् दृष्टिपात नहीं किया तथा प्रतापसिंह ने इस कमी की पूर्ति कर ऐतिहासिक महत्व का कार्य संपादित किया, किन्तु वे न तो मतिराम, सुखदेव, देव प्रभृति के स्तर के स्फीत आचार्य हैं और न बिहारी, भूषण, पद्माकर प्रभृति के स्तर के सरस कवि—वे कुलपति, श्रीपति, भिखारीदास प्रभृति के स्तर के शास्त्रीय आचार्य-कवि अवश्य हैं। उनकी सुन्दर शृंगारिक कविता उन्हें आचार्य की तुलना में अधिक सफल कवि सिद्ध करती है। डॉ. दीक्षित एवं डॉ. चौधरी परोपजीवितामुक्त न होते हुए भी प्रतापसिंह के पर्याप्त सफल समीक्षक हैं। वैसे, मिश्रबन्धु ने भी उन पर शुक्ल की सी ऊटपटाँग 'स्थापना' नहीं की।

प्रतापसाहि के दो उत्तम एवं प्रसिद्ध छन्द प्रस्तुत हैं :

1. कानि करै गुरु लोगन की न सखीन की सीखनि ही मन लावति।
ऐंड़ भरी अँगराति खरी कत घूँघट में नए नैन चलावति॥
मंजन कै दृग अंजन आँचति, अंग उन्नंग उमंग बढ़ावति।
कौन सुभाव री! तेरो पयूरो, खिन आँगन में खिन पौरि में आवति॥
2. सीख सिखाई न मानति है, बरहीबस संग सखीन के आवै
खेलत खेल नए जल में, बिन काम वृथा कत जाम बितावै॥
छोड़ि के साथ सहेलिन को रहि कै कहि कौन सवादहि पावै।
कौन परी यह बानि अरी! नित नीर-भरी डागरी ढरकावै॥¹

बकसी²

बकसी (1833 ई. के लगभग विद्यमान) के कुछ स्फुट छन्द ही प्राप्त हो सके हैं, जिनके इनकी विशद धर्मनिरपेक्षता एवं आकर्षक शृंगारिकता का पता चलता है। अमीर खुसरो के बाद बकसी ने ब्राह्मण की सर्वाधिक प्रशस्त प्रशंसा की है :

जेई वेद प्रभु के बसत उर अंतर हैं तेई बिन द्विज मुख रचना बिसेखिए।
प्रभुजू के बंदन करत लोक, लोकपति ऐसही बड़ाई सति जीव अवेरेखिए॥
बकसी कहै इन्हें एक सम माने रहौ, दूसरो न मानौ गनौ दृगन में पेखिए।
गुपत चहौ तो परमेसुर कौ ढूँढ़ौ करौ, प्रगट चहौ तो इतै ब्राह्मण को देखिए॥

दीनदयाल गिरि,

'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' के अमर कवि बाबा दीनदयाल गिरि (1794-1858 ई³—काशी) हिन्दी के देवसेन, कबीर, तुलसी, रहीम वृंद, गिरिधर कविराय प्रभृति नीति-काव्यकारों की सुसम्पन्न परम्परा के अन्यतम कलाकार हैं। उनकी अन्योक्तियाँ कोरा उपदेश न

1. वयःसन्धि-प्रभावजन्य सफरी-नयना घट-जल में झॉकने पर सफरीद्वय-प्रमवश बारंबार जल गिराकर फिर-फिर भरती है। रोचक अत्युक्ति जो 'काजर दै जनि ऐ री सुहागिनी! आँगुरी तेरी कटैगी कटाछन" का स्मरण कराते हुए भी अधिक रसपूर्ण है।
2. बख्शी। यह पदवी है या उपनाम? कहना कठिन है। कवि हिन्दू है या मुसलमान? शिवसिंह और डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव मुसलमान मानते हैं।
3. आ. शुक्ल ने जन्म मृत्यु-वर्ष 1851-1915 वि. (1794-1858 ई.) दिया है, मिश्रबन्धु ने 1859-1915 वि. (1802-1858 ई.) तथा डॉ. भोलानाथ तिवारी (हिन्दी साहित्य कोश भाग 2) ने 1802-1865 ई. आ. शुक्ल यहाँ अधिक प्रात्ययिक लगते हैं।

होकर कलाकृतियाँ हैं। 'सरोज' के अमर प्रस्तेता ठाकुर शिवसिंह सेंगर के अनुसार, दीनदयाल गिरि संस्कृत एवं हिन्दी के महान् पंडित थे और यह कथन उनकी रचनाएँ पूर्णतः प्रमाणित करती हैं। उनकी एक अन्य उल्लेख्य कृति 'अनुराग-बाग' में कृष्णचरित विशद रूप से वर्णित है किन्तु सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, रसखान, हित हरिवंश, मतिराम, देव, भारतेन्दु इत्यादि के विषयों में वे नव्यता या भव्यता नहीं भर सके। अपने महान् 'विनोद' में मिश्रबन्धु ने इसी को ध्यान में रखकर लिखा है, "इनकी कविता में भेदे छन्द प्रायः नहीं के बराबर हैं, परन्तु परमोत्तम छन्दों का भी अकाल-सा है।" शिवसिंह ने इनके 'बाग-बहार' ग्रन्थ का उल्लेख किया है, जो अनुपलब्ध है और जिसे आ. श्यामसुन्दरदास 'अनुराग-बाग' का ही दूसरा नाम मानते हैं। आ. श्यामसुन्दरदास संपादित 'दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली' में 'अनुराग-बाग', 'दृष्टान्त तरंगिणी', 'अन्योक्ति-माला', 'वैराग्य-दिनेश' और 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' संगृहीत हैं। आ. शुक्ल ने लाला भगवानदीन 'दीन' संपादित 'दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली' का उल्लेख किया है। दीनदयाल गिरि ने नीति, वैराग्य एवं कृष्णलीला का त्रिविध सृजन किया है। उनके सारे सृजन पर संस्कृत-कविता का भारी प्रभाव तो स्पष्टतः दृग्गत ही है, सूर एवं सूरजदास इत्यादि से भी उन्होंने बहुत-कुछ लिया है। किन्तु यह सब प्रौढ़तापूर्वक आत्मसात् किया गया है जिससे वे एक मौलिक कवि भी सिद्ध होते हैं।

बाबा दीनदयाल गिरि एक महान् अन्योक्तिकार हैं। वे हिन्दी के अन्योक्ति-सम्राट् हैं। भाव-गांभीर्य, ललित ब्रजभाषा, रूपक-श्लेषादि से पुष्ट उनका अन्योक्ति-सृजन अतुलनीय है। कुंडलिया उनका प्रिय छन्द है। आ. शुक्ल ने ठीक ही लिखा है, "ये एक अत्यन्त सहृदय और भावुक कवि थे। इनकी सी अन्योक्तियाँ हिन्दी के और किसी कवि की नहीं हुई।.... इनका 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' हिन्दी-साहित्य में एक अनमोल वस्तु है।"

दीनदयाल गिरि ने पारम्परिक नीतिकाव्य एवं कृष्णाकाव्य मात्र नहीं लिखा, कतिपय उत्कृष्ट रहस्यवादी एवं राष्ट्रवादी छन्द भी रचे हैं। वे एक उत्कृष्ट कवि थे। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. चल चकई! तेहि सर विषे जहँ नहिँ रैन-बिछोह। रहत एकरस दिवस ही, सुहृद हंस-संदोह।।
सुहृद हंस-संदोह कोह अरु द्रोह न जाको। भोगत सुख अंबोह, मोह-दुख होय न ताको।।
बरनै दीनदयाल भाग बिन जाय न सकई। पिय-मिलाप नित रहै ताहि सर चल तू चकई।।
2. गरजै बातन ते कहा धिक नीरधि! गंभीर। बिकल बिलोकै कूप पथ तृषावंत तो तीर।।
तृषावंत तो तीर फिरैं तोहिं लाज न आवै। भँवर लोल कल्लोल कोटि निज बिभव दिखावै।।
बरनै दीनदयाल सिंधु! तीको को बरजै। तरल तरंगी ख्यात वृथा बातन ते गरजै।।
3. बरखै कहा पयोद! इत मानि मोद मन माहिं। यह तो ऊसर भूमि है, अंकुर जमिहै नाहिं।।
अंकुर जमिहै नाहिं बरष सत जौ जल दैहै। गरजै-तरजै कहा? वृथा तेरो स्रम जैहै।।
बटनै दीनदयाल न ठौर-कुठौरहि परखै। नाहक गाहक बिना बलाहक! ह्यौ तू गरजै।।
4. केतो सोम! कला करौ, करौ सुधा को दान। नहीं चंद्रमनि जो द्रबै यह तोलिया पषान।।
यह तेलिया पषान, बड़ी कठिनाई जाकी। टूटी याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी।।
बरनै दीनदयाल, चंद! तुम ही चित चेतौ। कूर न कोमल होहिं कला जौ कीजै केतौ।।
5. कोमल मनोहर मधुर सुर-ताल सने नुपुर-निनादनि सों कौन दिन बोलिहैं।।
नीके मन ही के बुंद-बुंदन सुमोतिन को गहि कै कृपा की अब चोंचन तो तोलिहैं।।
नेम धरि छेम सों प्रमुद होय दीनदयाल प्रेम-कोकनद बीच कब धौं कलोलिहैं।।
चरन तिहारे जदुवंश-राजहंस! कब, मेरे मन-मानस में मंद-मंद डोलिहैं?
6. गुंजत पुंज अली-गन के बहु, राजत लंब-कदंब दली है।
ताहि थली यक छैल बली सिर सोहत पच्छन की अवली है।।
माल लसै धवली गर मैं कर दीनदयाल रली मुरली है।
कुंजगली मैं अचानक ही भली भौंति अली! उन मोहि छली है।।
7. पराधीनता दुख महा, सुखी जगत स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषे, कनक पींजरे दीन।।

चन्द्रशेखर वाजपेयी

‘हम्मीरहठ’ शीर्षक नानावृत्तिनिबद्ध उत्कृष्ट वीरकाव्य के प्रणेता महाकवि चन्द्रशेखर¹ वाजपेयी (1798-1875 ई.) का जन्म उत्तर प्रदेश के फ़तेहपुर जिले में स्थित मुअज़्ज़माबाद नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम मानूलाल वाजपेयी था, जैसा कि उन पर ‘महाकवि चन्द्रशेखर वाजपेयी और उनका साहित्य’ शीर्षक स्तरीय एवं प्रस्थान-प्रबन्ध के शोधकर्ता डॉ. आत्माराम शर्मा ‘अरुण’ ने सिद्ध किया है न कि मनीराम वाजपेयी, जैसा कि हम्मीरहठ के प्रथम प्रस्तेता महाकवि जगन्नाथदास ‘रत्नाकर’ ने लिख दिया था और जिसका अनुकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में कर दिया है। मानूलाल वाजपेयी भी कवि थे। चन्द्रशेखर के पितामह रामनाथ वाजपेयी ‘कविराम’ एक उत्कृष्ट कवि थे, जिनका बरवै-छन्द में रचित नायिका-भेद ग्रन्थ ‘रसभूषण’ अतीव सरस एवं सफल है, जिन पर डॉ. आत्माराम शर्मा ‘अरुण’ ने ‘हिन्दुस्तानी’ त्रयमासिक (इलाहाबाद) के अप्रैल-जून, 1984 अंक में प्रकाशित “रामनाथ वाजपेयी ‘कविराम’ और उनका काव्य” शीर्षक शोधलेख में प्रात्ययिक प्रकाश डाला है। उन्होंने ‘चन्द्रशेखर वाजपेयी रचनावली’ का संपादन कर स्मरणीय साहित्यसेवा की है। ‘चन्द्रशेखर वाजपेयी: जीवनवृत्त एवं कर्तव्य’ प्रस्थान-प्रबन्ध का विस्तार लगता है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के ‘हस्तलिखित पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण: द्वितीय खण्ड’ में रामनाथ नाम के तीन कवियों का गड्ढमगड्ढ कर दिया था जिसका निराकरण उन्होंने इन शब्दों में किया है, “इन तीनों में सर्वाधिक प्राचीन कवि रामनाथ वाजपेयी ‘कविराम’ हैं जिन्होंने संवत् 1817 वि. के आसपास कभी बरवै छन्द में रसभूषण नामक नायिकाभेदोपभेद-सम्बन्धी शृंगाररस के ग्रन्थ का प्रणयन किया था। ‘जानकी-पच्चीसी’ के रचयिता रामनाथ उपाध्याय हैं। ये अयोध्या के निकटवर्ती कहीं के निवासी थे। इनका समय संवत् 1900 वि. के आसपास का है। ये रामभक्त कवि थे। खोज रिपोर्ट 1917/152 में ‘जानकी-पच्चीसी’ के संवत् 1904 वि. के हस्तलेख के आधार पर इन्हें उपाध्याय उल्लिखित किया गया है। तीसरे रामनाथ कवि पटियाला दरबार में आश्रित थे। महाभारत के नौ अनुवादकों में से एक यही थे। इनका समय संवत् 1919 वि. है।” ‘कवि राम’ नामक एक अन्य कवि भी हुए हैं, जिनका जन्म ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने अपने अमर ‘सरोज’ में संवत् 1703 वि. माना है, जिनके कवित्त ‘कालिदास हज़ारा’ में मिलते हैं, जिनके ‘शृंगार-सौरभ’ एवं ‘हनुमान-नाटक’ का उल्लेख आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में किया है। बाद के रामनाथ ज्योतिषी (कवि), रामनाथ सुमन (आलोचक), रामनाथ वेदालंकार (विद्वान्) इत्यादि इस नाम की महत्ता बढ़ाते हैं। रामनाथ वाजपेयी ‘कविराम’ के स्फुट कवित्त-सवैयें भी प्राप्त होते हैं। ये शृंगाररस के श्रेष्ठ कवि थे, यद्यपि कविता पारम्परिक मात्र थी। इनके ज्येष्ठ पुत्र कुंजबिहारी वाजपेयी भी कवि थे। चन्द्रशेखर वाजपेयी के पुत्रद्वय उमादत्त वाजपेयी ‘दत्त कवि’ गौरीशंकर वाजपेयी भी अच्छे कवि थे। यह वाजपेयी-वंश कवियों एवं विद्वानों से भरा-पूरा रहा है।

चन्द्रशेखर वाजपेयी की ख्याति का आधार ‘हम्मीरहठ महाकाव्य’ है, किन्तु उन्होंने रसिकविनोद, विवेकविलास, हरिभक्तिविलास, ‘नखशिख’, शिवदानविनोद² इत्यादि अन्य ग्रन्थ भी रचे थे। उनकी शृंगारिक कविता भी उच्चकोटि की है जिसका रत्नाकर पर भारी प्रभाव पड़ा है, जिन्होंने ‘नखशिख’, ‘रसिकविनोद’ और ‘हम्मीरहठ’ का प्रस्थान-प्रकाशन भी कराया था। चन्द्रशेखर वाजपेयी के शृंगारकाव्य का उच्चस्तर इस एक निदर्शन से भी परख में आ सकता है :

आई केलि करिकै नबेली संग पीतम के राजत बिबस अंग आलस घनेरे मैं।

छूटै हार छहरै छवान लगि छूटै बार, लुटिगे सिंगार मैन समर दरेरे मैं।।

सेखर सलोनी रात जागी गुरुजन आगे, बैठि गई सकुचि सखी जन के घेरे मैं।

गोरे गात गोरी नील अम्बर में गोइ रही गरकि गई है मनो बीजुरी अँधेरे मैं।।

रणथम्भीर के पृथ्वीराजवंशी पुण्यश्लोक महाराज हम्मीर (तेरहवीं सदी) पर संस्कृत में हम्मीरकाव्य³, अपभ्रंश (पुरानी हिन्दी) में तथाकथित शार्ङ्गधर कृत तथाकथित ‘हम्मीररासो’ ब्रजभाषा में ग्वाल कवि कृत ‘हम्मीरहठ’, राजस्थानी, मिश्रित ब्रजभाषा में जोधराज

1. उपनाम या लघुनाम शेखर (सेखर)।

2. अलवर-नरेश सवाई शिवदानसिंह के आश्रयकाल (1862-1864 ई.) में रचित माधवानलकामकन्दला पर आधृत काव्य जो माधवी-बसन्त के नाम से थोड़े से फेरफार के साथ पटियाला-नरेश महेन्द्रसिंह को समर्पित रूप में भी प्राप्त होता है।

3. देखें, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के ‘साहित्य-सन्दर्भ’ में एतद्विषयक निबन्ध।

कृत 'हम्मीररासो' प्रभृति पर्याप्त साहित्य रचा गया, जिसमें ब्रजभाषा में रचित चन्द्रशेखर वाजपेयी के 'हम्मीरहठ' का स्थान 'हम्मीरकाव्य' के अनन्तर सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जिसकी रचना पटियाला-नरेश नरेन्द्रसिंह (देहान्त 1862 ई.) के आश्रय में की गई। 'हम्मीर पर रचित काव्य' प्रबन्ध का विषय है। 'हम्मीरहठ' रचना पारम्परिक शैलीगत है जिसमें पृथ्वीराजरासो एवं इसके पूर्ववर्ती हम्मीर-काव्य की दरबारी महिमा मंगोल का एक अनिन्द्य सुन्दरी को कामुक सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी से बचाकर भागने, नायक द्वारा शरण देने, विकट युद्ध के समय में भी दुर्ग में नृत्य होने इत्यादि की रूढ़ियों के दर्शन होते हैं। सुल्तान को चूहे से डरते दिखाना तो बांग्ला-महाकाव्य 'मेघनाथ-वध' के विकृतमन कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के द्वारा राम को भीरु चित्रित करने के जैसा ही वीररसविरोधी है, क्योंकि महान् प्रतिभट ही महान् वीर का गौरव बढ़ा सकता है। वैसे, हम्मीरहठ की कविता कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है जो चन्द्रशेखर वाजपेयी को भूषण एवं चन्द्रवरदायी के अनन्तर वीररस का एक श्रेष्ठ महाकवि प्रमाणित करती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :

उदै भानु पछिम प्रतच्छ, दिन चंद प्रकासै । उलटि गंग बरु बहै, काम-रति-प्रीति बिनासै ।।
तजै गौरि अरधंग, अचल ध्रुव आसन चल्लै । अचल पवन बरु होय, मेरु मंदर गिरि हल्लै ।
सुरतरु सुखाय, लोमस मरै, मीर ! संक सब परिहरौ ।
मुख-बचन बीर हम्मीर को, बोलि न यह कबहूँ टरौ ।।

बलवानसिंह 'काशिराज'

बलवानसिंह 'काशिराज' हिन्दी के अग्रणी चित्रकाव्यकार के रूप में स्मरणीय हैं, जिनकी 'चित्रचन्द्रिका' (1832 ई.) चित्र, कविता एवं टीका के साथ 233 पृष्ठों का एक बड़ा ग्रन्थ है। मिश्रबन्धु के शब्दों में 'इस ग्रन्थ से श्रेष्ठ चित्रकाव्य शायद ही किसी भाषा-ग्रन्थ में हो। इसमें सात-सात अर्थों तक के कवित्त वर्तमान हैं और फिर भी उनकी भाषा नहीं बिगड़ने पाई। इस कवि को हम तोष की श्रेणी में रखते हैं।' विविध प्रयोगों (जैसे निर्मात्रिक कवित्त) की दृष्टियों से 'चित्र-चन्द्रिका' एक उत्कृष्ट एवं ऐतिहासिक महत्व से सम्पन्न कलाकृति है। इसके अधिकांश कवित्त चित्रप्रधान हैं, काव्यप्रधान नहीं। इसकी ब्रजभाषा संस्कृतनिष्ठ है। क्लिष्ट भी है। किन्तु बहुमुखी रचना-काल की दृष्टि से इसे सम्मान प्राप्त होना ही चाहिए। 'विनोद' से उदाहरण अवतरित हैं :

1. सप्तार्थ कवित्त—अभंग श्लेष
बर हंस करि सोहै धारण किए है हरि, दायक परक शिव जग मैं बखानिए ।
कह्यो नैन भद्रा प्रिय गुण शुभ राजत है, पक्ष मैं रुचिर रुचि लोक लोक गानिए ।।
धरम प्रगट कियो रुचिर सकति धर, भग छबि छाजत है बचन प्रमानिए ।
भनि काशिराज ऐसे हरि हरि हरि हरि, ऐसे हरि हरि किधौँ प्रौढ़ा तिय जानिए ।
2. द्वयर्थ कवित्त
सीकर ललित सोहै सुमन समाल पर राजै द्विजराज दुति हंस कलरत जात
कबि काशिराज भनि मृदु सुखदानि बानी, मैन सैन रसन रसालहि भरत जात ।।
सौभै उर बसी रति सुंदर सुकेशी बेस, रसन बलय मंजु घोष उचरत जात ।
रति बिपरीत किंघौ जीति करि इंद्र आज, बारन ते मुकुता हज़ारन ढरत जात ।।
3. निर्मात्रिक कवित्त
कनक लजत तन अमल बसन सज, बदन कमल बर कचन सघन घन ।
मलन करत कर रदन चमक पर, बचन सरस मन बसन अतन तन ।।
नयन सयन सर गमन लसत गज, चरम नरम छँद सरँग फवन वन ।
रमत गहन बन चलत न धव अब, तरल लखत पथ कहत अपन पन ।।

1. मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में पर्याप्त वर्णन एवं समीक्षा प्राप्त होती है। खेद है कि चित्रकाव्य-परम्परा लुप्तप्राय है।

‘ललितकिशोरी’

‘ललितकिशोरी’ लखनऊ के प्रसिद्ध साह कुन्दनलाल (निधन 1873 ई.) का मधुरोपासना-सम्बन्धी नाम था। इनके अनुज साह फुंदनलाल का मधुर-नाम ‘ललितमाधुरी’ था। मधुरोपासकों के दर्शन के अनुसार पुरुष केवल एक (राम) या कृष्ण—जैसी स्थिति हो) है तथा सारे आराध्य स्त्री हैं जो प्रियतम को शतशः समर्पित प्रेम करती हैं। ‘ललितकिशोरी-ललितमाधुरी’ बंधुद्वय सर्वत्यागी एवं समर्पित मधुरकृष्णोपासक थे। दोनों ने विलासितापूर्ण अष्टयाम के विस्तृत वर्णन किए हैं; जिसमें सूर की जीवन-व्याप्ति के दर्शन कहीं नहीं होते, नन्ददासका जीवन-दर्शन एवं विचार-भाव-उत्तेजन नहीं, रसखान का सहज-प्रेमरस नहीं। वृन्दावन का विख्यात साहजी का मन्दिर (1868 ई.) इन्होंने ही बनवाया था।

बंधुद्वय में ‘ललितकिशोरी’ श्रेष्ठतर कवि हैं। इन्होंने ब्रजभाषा के पदों और दोहों के अतिरिक्त खड़ीबोली की गज़लों में भी रुचि दिखाई है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. लाभ कहा कंचन तन पाए।
वचननि मृदुल कमलदललोचन दुखमोचन हरि हरषि न ध्याए॥
तन मन धन अरपन नहीं कीनो प्रान प्रानपति गुननि न गाए।
यौवन धन कलधौत-धाम सब मिथ्या सिगरी आयु गँवाए॥
गुरजन गरब बिमुख रँग राते डोलत सुख संपति बिसराए।
‘ललितकिशोरी’ मिटै ताप नहीं बिन दृढ़ चिंतामनि उर लाए॥
2. जंगल में अब रमते हैं, दिल बस्ती से घबराता है।
मानुष गंध न भाती है, सँग मरकट मोर सुहाता है॥
चाक गरेबा करके दम दम आहें भरना आता है।
‘ललितकिशोरी’ इश्क रैनदिन ये सब खेल खेलाता है॥

‘ललितमाधुरी’

‘ललितमाधुरी’ साह फुंदनलाल का मधुर-नाम है जो लखनऊ के विख्यात करोड़पति सेठ साह बिहारीलाल के पौत्र तथा ‘ललितकिशोरी’ साह कुन्दनलाल के अनुज थे। इन मधुरोपासक-कृष्णभक्त-बंधुद्वय का वृन्दावन-स्थित साहजी का मन्दिर (1868 ई) आज भी प्रसिद्ध है। ‘ललितमाधुरी’ और उनके अग्रज ‘ललितकिशोरी’ का भ्रातृत्व ‘दो-तन एक-प्राण’ का प्रतीक है। ‘ललितकिशोरी’ आयु में भी बड़े थे, कवित्व-शक्ति में भी, रचना-राशि में भी। किन्तु ललितमाधुरी की ब्रजभाषा-पदरचना भी अच्छी है। इन्होंने सूर से प्रभावित उत्प्रेक्षादि अलंकारों का भी ध्यान रखा है। एक पद प्रस्तुत है :

प्रिया मुख राजत कुटिली अलकैं।
मानहुँ चिबुक कुंड रस चाखन द्वै नागिन अति उमगी थलकैं॥
वेनी छूटि परी एंडी लौं बिथुरि लटैं घुँघुरारी हलकैं।
यह अरविंद सुधारस कारन भँवर बृंद जुरि मानहुँ ललकैं॥
चंदन भाल कुटिल भ्रू मोरी ता पर यक उपमा हैं झलकैं।
गै चढ़ि अरध चंद तट अहिनी अमी लूटिबे मन करि चलकैं॥
पुहुप सचित उरमाल बिराजत चरन कमल परसत ढलमलकैं।
मनहुँ तरंग उठत पुनि ठिठुंकत रूप सरोवर माहिं बिमलकैं॥
‘ललितमाधुरी’ बदनसरोजहि राम करत प्रिय श्रमकन झलकैं।
भृंग दृगनि पिय छबि मकरंदहि घूँटत मुदित परत नहि पलकैं॥

1. मैथिलीशरण गुप्त के पिता सेठ रामचरण गुप्त का मधुर-नाम ‘कनकलता’ था। वे कवि भी थे।

नजीब खाँ 'रसिया'

सरल-तरल ब्रजभाषा-कवि नजीब खाँ 'रसिया' (रचनाकाल 1842 ई. के आसपास) का उल्लेख शिवसिंह कृत 'सरोज' एवं भारतेन्दु कृत 'सुन्दरी-तिलक' में प्राप्त होता है। यह पटियाला-दरबार में थे। तीन सवैये देखें :

1. रमि कै रस-रीति गैलन माँहिं अनीति को पंथ न गाहिए जू।
अब तौ छल-छंद की बानि तजौ हँसि बोलि कै चित्त उमाहिए जू॥
'रसिया' कर जोरि करैं बिनती कछु और हमें नहिं चाहिए जू।
यह प्रेम की आँखें लगीं पै कुलीन ज्यों और निबाहिए जू॥
2. रूप की चाल अनूप चढ़ी यह प्रेम मिठास पगाय लै जी को।
नैनन सैन सलौनी भली मुख बैन रसाल कढ़ै अति नीको॥
तेरे अधीन भयो 'रसिया' बिधि क्यों न बनाय रिझाय लै पी को।
साजि कै ऊँची दुकान अरी फिरि राख्यौ कहा पकवान है फीको॥
3. जब तें ऋतुराज समाज रच्यौ तब तें अवली अलि की चहकी।
सरसाय कै सोर रसाल की डारनि कोकिल कूकै फिरि बहकी॥
'रसिया' बन फूले पलास करील गुलाब की बास महामद की।
बिरही जन के दिल दागिबे कों यह आगि दसों दिसि तें दहकी॥

रामसहायदास

प्रख्यात 'रामसतसई' (जिसे शृंगारसतसई भी कहा जाता है) के सफल कवि के रूप में 'द्वितीय बिहारी' कहे जा सकने वाले कवि रामसहायदास (1844 ई. में यशस्वितापूर्वक विद्यमान—चौबेपुर, जनपद वाराणसी के निवासी, काशी-नरेश उदितनारायणसिंह के आश्रित, अस्थाना कायस्थ-कुल-भूषण) ने छन्दःशास्त्र का गद्य-संपृक्त शास्त्रीयकाव्य 'वृत्ततरंगिणी' भी लिखा है। उनके अलंकारग्रन्थ 'वाणीभूषण' एवं वर्णक्रम से ज्ञानोपदेशकारी 'ककहरा' अप्राप्य हैं। मिश्रबन्धु द्वारा बहुत प्रशंसा के कारण, आ. शुक्ल ने प्रकृत्या ही इन पर भी अनावश्यक प्रहार कर डाला है। निस्सन्देह, बिहारी-अनुयायी होते हुए भी, रामसहायदास एक सफल कवि हैं जिनकी 'शृंगारसतसई' बिहारी-सतसई एवं मतिराम-सतसई के अनन्तर सर्वथा उल्लेखनीय कलाकृति है :

सतरौहैं मुख रुख किए कहैं रुखोहैं बैन। रैन जगे के नैन ये सने सनेह दुरैं न॥
खंजन कंज न सरि लहैं बलि अलि को न बखानि। ये नीकी अँखियानि ते ये नीकी अँखियानि॥
सीस झरोखे डारि कै झाँकी घूँघुट टारि। कैबर-सी कसकै हिए बाँकी चितवनि नारि॥
बेलि-कमान प्रसून-नर गहि कमनैत बसंत। मारि-मारि बिरहीन के प्रान करैगी अंत॥

बनादास

उन्नीसवीं शताब्दी ईसवी (विशेषतः 1840-1860 ई. के काल) के इतिहास को वस्तुवादी एवं प्रात्ययिक रूप से चित्रित करने वाली बनादास की कविता सर्वथा अविस्मरणीय है। उन्होंने ईसाई-प्रचार से लेकर हिन्दू-विलासिता तक अनेक बिन्दु निष्ठापूर्वक चर्चित किए हैं :

1. पहिले हिंदू, बीच मुसल्ला, पीछे भया फिरंगी।¹ ईसा ईसा कै गोहरावै, पालैं भक्ति यकंगी॥²
हिंदू तुरुक दोउ में बरतैं सबही से सरभंगी। 'दास बना' चुहड़ौ ना छाड़ैं याकी सब से नंगी॥

1. प्राचीन, मध्य, आधुनिक कालों के बीज-बिन्दु।

2. "प्रभु के एकमात्र पुत्र ईसा" पर टिकी 'एकांगी' भक्ति की महान् समीक्षा। ईसाइयों में प्रभु तक गौण है। सगुण-साकार को कोई स्थान नहीं। नरक का भय दिखाकर दूसरों को छलना ही धन्या है।

2. सोहदा गुंडा भाँड़ पतुरिया रौंड साधु-धन खाहीं।
हँसी-मसखरी संत-सभा में भजन कि चरचा नाहीं।।
3. विरक्त भजनानंद तपस्वी अन्न विना मरि जाहीं।
बनादास यह रीति अवध की हवै गै कलियुग माहीं।।

1857 ई. से अंग्रेजों ने जो आतंक-राज्य स्थापित किया वह अत्याचार-प्रधान ही हो सकता था। बनादास ने आतंक-राज्य एवं उसके अत्याचार का ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से अमूल्य एवं अकाट्य उल्लेख किया है। पतितदास ने पतित एवं परास्त भारतीयों के शोक का संकेत किया है। इन रामभक्त कवियों ने तुलसी के यथार्थ युगचित्रण का उत्तराधिकार प्राप्त किया है।

प्रताप

‘ध्यानमंजरी’, ‘विनयपचीसी’, ‘मानलीला’, ‘पंचरत्न’ एवं ‘स्फुट-काव्यसंग्रह’ (पाँचों का संग्रह ‘रहस्य-काव्य-शृंगार’²) के कवि इश्वरी प्रताप नारायण राय (उपनाम प्रतापसिंह—‘प्रताप’ की छाप, 1802-1868 ई.) पडरौना (भारत-नेपाल-सीमा, उत्तर प्रदेश) राजा थे, जिन्होंने भक्ति, शृंगार एवं वीर-रसों में उत्कृष्ट ब्रजभाषा-कविता की सर्जना की। कवित्त, सवैया, पद (दीपक, रामकली, भैरों, भैरवी, झिझोटी, गंधार, विलावल, टोड़ी, सारंग, बिहाग, मुलतानी, पीलू, पूरवी, कल्यान, केदार, छायानट, कान्हारा, रासा इत्यादि रागों में निबद्ध) इत्यादि में उनकी सफलता प्रशस्य है। उन्होंने संस्कृत-काव्यरचना भी की। वे सफल जनकवि थे। उद्धरण देखें :

1. पदपल्लव अति मृदुल स्याम सोभा अति पैनी।
संतनि के मन लसै किधौं बिलसै नख श्रेनी।।
मंडित के मन मृगमद मलय मोद मिश्रित कुंकुम जटि।
गुंजत मधुर विमत्त भृंग सौरभ रस लंपटि।।
2. साँझ समय जमुना तट बीच खड़े तरु टेकि कदंब कन्हाई।
मंद सुगंध समीर बहै जमुना जल उज्ज्वल सीर सोहाई।।
सारद मास विलास विलोकि नई उर आनंद की छवि छाई।
सो न कही छवि जात प्रताप जबै बँसुरी ब्रजराज बजाई।।

धीसादास³

संत धीसादास (1803⁴-1868⁵ ई., खेकड़ा, जनपद मेरठ) पर ‘सचित्र ग्रन्थसाहब’ (सं. गणेश मेहता), ‘श्री धीसा संत का जीवनचरित्र’ (डॉ. नीलमरानी), ‘गुरुदेव धीसा साहब का जीवनचरित्र’ (देव चैतन्य राय निर्वाण) जैसे ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उन पर आ. क्षेमचन्द्र ‘सुमन’ (दिवंगत हिन्दीसेवी, प्रथम भाग), डॉ. इन्द्र सेंगर (शोधप्रबन्ध ‘भारतेन्दु-पूर्व खड़ीबोली-कविता’) प्रभृति ने भी लिखा है। मेरी समझ में,

1. ‘ध्यानमंजरी’ में रोला छन्द का सफल प्रयोग गंगावतरण के महाकवि रत्नाकर का स्मरण कराता है। रत्नाकर ने यह ग्रन्थ देखा होगा, ऐसा लगता है।
2. प्रकाशन वर्ष 1987 वि. (1930 ई.)।
3. संत धीसादास (मध्य प्रदेश) का स्मरण आता है।
4. गुरुपूर्णिमा (आषाढ़-पूर्णिमा) 1860 वि. (दिवंगत हिन्दीसेवी, प्रथम भाग, क्षेमचन्द्र ‘सुमन’)
5. मार्गशीर्ष शुक्ल 10, 1925 वि.।
6. प्रतिवर्ष जन्म एवं मृत्यु की तिथियों पर श्री सद्गुरु धीसा संत दरबार, खेकड़ा में स्मृति-आयोजन होते हैं।
7. ‘सूरज बिखरा द्वारे-द्वारे’ के कवि तथा ‘भैली चादर’, ‘अंकुर’, ‘गाँव के घूँघट’ इत्यादि कहानियों के लेखक डॉ. इन्द्र सेंगर (17 फरवरी, 1951, कुतुबपुर-अमरपुर, जनपद अलीगढ़, निवास दिल्ली) का ‘धीसापंथ: एक अवलोकन’ (1984 ई.) स्वतन्त्र-ग्रन्थ के रूप में भी उल्लेखनीय है, जिनके परिशिष्ट में धीसादास, जीतादास, नेकीराम, द्योतरामदास, ईश्वरदास, अवगतदास, योगानन्द, अचलदास, मंगतदास, समंदरदास एवं आत्मप्रकाश की कविता की चुनौदा बानगियों भी दी गई हैं। ग्रन्थारंभ में धीसादास के धीसादास-समेत प्रायः सारे महत्वपूर्ण संतों, महंतों एवं व्यक्तियों के चित्र भी दिए हैं, जिनमें जीतादास इत्यादि भी समाविष्ट है। हिन्दी के संतसाहित्य पर डॉ. पीताम्बर बड़ध्याल, आ. क्षितिमोहन सेन, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. श्यामसुन्दरदास, आ. परशुराम चतुर्वेदी, श्री वियोहरि, डॉ. ब्रजलाल वर्मा, आ. क्षेमचन्द्र ‘सुमन’, डॉ. जगन्नाथ शर्मा, डॉ. इन्द्र सेंगर इत्यादि के प्रशस्य कार्य पर स्वतन्त्र शोधकार्य अपेक्षित है।

‘सचित्र ग्रन्थसाहब’ का पर्याप्त अंश प्रक्षिप्त है। वे वर्णनकर्ता न होकर वर्ण्य हैं। संतों की वाणी में प्रक्षिप्त अंश सर्वत्र व्याप्त हैं। जीवन में चमत्कार-कथाएँ भरी पड़ी हैं। घीसादास गौतम (ब्राह्मण) थे। किन्तु उन पर कबीर का भारी प्रभाव पड़ा था। उनके द्वारा प्रवर्तित या उनके नाम पर निर्मित घीसापंथ भी चलता है। वैसे, उन्होंने “आप गुरु आपौई भए चले” भी कहा है और “सतरूप सतगुरु मिलै नीर-क्षीर के तीर” भी। प्रात्ययिक वाणी के अभाव में वास्तविकता का बोध कठिन ही है। उदाहरण देखें :

1. मेरा मुझ में राम है, सब उसकी तदवीर।
सकल शरीरों रम रहे, अवगत संत कबीर॥
2. खाली बात करो मत कोय।
दूध बिना घृत कभी न होय॥
3. सतगुरु शब्द महल बना साँचा, हो रहा अखंड उजाला है।
घीसा संत-पंथ में आए, छूटा धर्म-जिंजाला है॥

अयोध्याप्रसाद वाजपेयी ‘औध’

शास्त्रीयकालीन कविता की परम्परा के परम अनुप्रासप्रेमी-श्लेषप्रेमी कवि अयोध्याप्रसाद वाजपेयी ‘औध’ (1803-1885 ई.—जन्म सातन पुरवा, जनपद रायबरेली, मृत्यु अयोध्या) को मिश्रबन्धु ने पद्याकर-श्रेणी का कवि माना है। साहित्यसुधासागर, छन्दानन्द, रामसर्वस्व, रामकवितावली इत्यादि से स्पष्ट होता है कि इन्होंने शास्त्रीयकाव्य, कृष्णकाव्य, रामकाव्य इत्यादि के अनेक आयामों का स्पर्श किया था। अनेक राजाओं, महात्माओं एवं कवियों से इनका अच्छा सम्पर्क रहा। यद्यपि 1857 ई. के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम में राजा हरिदत्तसिंह के राज्य बोंड़ी (जनपद बहराइच) के ज़ब्त किए जाने के साथ इन्हें प्राप्त ग्राम (माफ़ी) भी हाथ से निकल गया तथापि इन्होंने पतित नवाबी एवं आततायी मुगल सल्तनत से मुक्ति का वैसा ही स्वागत किया है जैसा शिवसिंह सेंगर, ठाकुरप्रसाद मिश्र ‘पंडित प्रवीन’, भारतेन्दु, प्रेमधन इत्यादि कवियों तथा बालकृष्ण भट्ट इत्यादि निबन्धकारों ने।

मिश्रबन्धु ने ‘औध’ के लिए ‘महाकवि’ शब्द का प्रयोग किया है। इनकी सानुप्रास वार्ता का एक विलक्षण उदाहरण ‘विनोद’ में प्राप्त होता है: “एक बार एक राजा ने इन्हें मखमली अचकन और पायजामा दिया, पर सर के लिए कोई वस्तु टोपी आदि देना भूल गए। इस पर आपने कहा कि ‘वाह महाराज! आपने मुझे ऐसा सिरोपाव² दिया है कि घटाटोप³!’ इस पर लोगों ने झट ‘टोप’ का भी ‘घटा’ पूरा कर दिया।” ‘शुकुन्तला नाटक’ के रूप में महाकवि कालिदास के विश्वविख्यात ‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’ के सफल अनुवादक नेवाज (अंतर्वेद के ब्राह्मण—1677 ई. के लगभग विद्यमान) को जब महाराज छत्रसाल ने भगवत कवि के स्थान पर धर्मग्रन्थ-प्रवाचक नियुक्त किया तब भगवत ने इससे भी सुन्दर श्लेष दोहा कहा था :

भली आजु कलि⁴ करत हौ छत्रसाल महाराज।

जहँ भगवत गीता पढ़ी तहँ कवि पढ़त नेवाज॥

‘औध’ की सुन्दर कविता से उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. चारो ओर राजैं औध राजैं धर्म राजैं, दुसमन की पराजैं है सदा जै खतरान⁵ की।
ब्रह्मायचवासी भगवान ते उदासी कहैं, बीबियाँ मियाँ है तुम्हें खता खफकान की॥
जान की जहान की इमान की खराबी हाय, डूबा मनसूबा तूबा⁶ कसम कुरान की।
रामजी की सादी, फिरंगान की मनादी⁷, हिंदुवान की अबादी, बरबादी तुरकान की॥

1. एक सातन उन्नाव जनपद में है। किन्तु उसके साथ ‘पुरवा’ शब्द नहीं लगता। वैसे राजाओं में एक सातन भी हुए थे। दोनों नाम उन पर ही हैं। सातन शान्तुन का अपभ्रंश है या सनातन का? प्रश्न विचारणीय है।
2. पंजाबी में ‘सरोपा’ कहते हैं। यह शब्द भी प्रचलित है।
3. घटा (दिया है) टोप! श्लेष से अर्थ सर्वांग-आवरणकारी परिधान से भी है।
4. आज-कल। किन्तु ‘कलि’ के श्लेष में कलियुगी-कृत्य का व्यंग्य विद्यमान है।
5. क्षत्रियों। पंजाब में क्षत्री को ‘खत्री’ कहते हैं। ‘खतरे’ झेलने वालों की जय होती है—श्लेष भी।
6. तौबा! तौबा!!
7. मुनादी फिर गई है। वर्चस्व स्थापित हो गया है। मना कर दिया गया। श्लेष।

2. वाटिका बिहंगन पै, बारि गात रंगन पै, बायु बेग गंगन पै बसुधा बगार है।
वाँकी बेनु तानन पै, बँगले बितानन पै, बेस औध पानन पै बीथिन बजार है।।
बूँदावन बेलिन पै, बनिता नवेलिन पै, ब्रजचंद केलिन पै बंसी बट मार है।
बारि के कनानक पै, बदलन बाँकन पै, बीजुरी बलाकन पै बरसा बहार है।'

जीतादास

संत जीतादास (1803-1888 ई., खेकड़ा, जनपद मेरठ) संत घीसादास के शिष्य एवं उत्तराधिकारी थे। उन्होंने अपने बारे में पर्याप्त लिखा है :

1. सब बामन का धाम है यू ही खेकड़ा ग्राम।
दिल की दुर्मत खोय के यहीं मिले हैं राम।।
ग्राम में पूरे सतगुरु पाए²
2. जीता पढ़ा न अक्षर सीखिया।
गुरु प्रताप अगम ही दीखिया।।
3. जीता सरधा मेरे पूरण राम की शोभा पावे दास।
ऐसे पूरण गुरु मिले घीसा साहेब पास³।।
4. पूरण ब्रह्म जुलाहा गुरु मिलिया लिया सूत सुलझाई।
घीसा संत मिला गुरु पूरा भक्ति का दरा दिया लगाई।।

जाट जाति ने धना, गरीबदास, जीतादास, गंगादास, इत्यादि संत उत्पन्न किए हैं। गोकुल, राजाराम, सूरजमल जैसे जाट योद्धा ऐतिहासिक महत्व स्थापित कर चुके हैं। आधुनिक राजनीति में चरणसिंह को ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है। जीतादास उत्तर प्रदेश, हरियाणा एवं पंजाब के जाटों में आज भी बहुत लोकप्रिय हैं। अन्य वर्गों में भी उनका सम्मान है।

गरीबदास, नितानन्द, घीसादास, जीतादास, गंगादास इत्यादि दिल्ली, हरियाणा एवं पश्चिम उत्तर प्रदेश के संत-कवियों में गंगादास के अतिरिक्त अन्य सब कविरूप में अत्यन्त साधारण एवं अत्यधिक पारम्परिक हैं। किन्तु जन-जागरण के नेताओं के रूप में उनका स्मरण बहुत समय तक होता रहेगा।

नबी कवि

अपनी शैली-शिल्प एवं अपनी भाषा में शास्त्रीय-कवि गुलाम नबी 'रसलीन' एवं सूफ़ी कवि शेख नबी से भिन्न नबी कवि (जन्म 1810 ई. के लगभग) के 'अद्भुत' ग्रन्थ 'नखशिख' की चर्चा शिवसिंह ने की है। किन्तु यह अनुपलब्ध है। बलरामपुर-नरेश दिग्विजयसिंह पर नामित 'दिविजय-भूषण' (गोकुलप्रसाद 'ब्रज' या गोकुल कवि कृत) से इनके सुन्दर छन्द देखें जिसकी अलंकृत शृंगारिकता प्रभावी है तथा ब्रजभाषा ललित :

1. कोकनद कली देखी कली की रली विशेषी, राची एक संग हवैकै प्राची अरुनाति है।
तारे मनहारे इंदु आभा उजियारे अलि, खोलि देत तारे तारे काहे अरसाति है।।
'नबी कवि' उरगलता सी मुख ठठरानी, पियरानी पिय रानी काहे पियराति है।
हारी हौं मनाइ इत, उत मग हेरि हारे, तू तो इतराति उत राति बीती जाति है।।

1. पचाकर के "कूलन में केलि में..." (बसंत) छन्द का स्मरण आता है।

2. श्री ग्रन्थ साहेब : संत जीतादास (डॉ. इन्द्र सेंगर कृत अप्रकाशित 'भारतेन्दु-पूर्व खड़ीबोली-कविता' में उद्धृत)।

3. 'आप' पाठ गलत लगता है तथा विशेष सार्थक भी नहीं लगता। 'पास' से समग्रामबोध भी हो जाता है।

स्वातितिरुनाल

सुदूर केरल में त्रावनकोर के महाराजा स्वातितिरुनाल (1813-1849¹ ई.) ने कृष्णभक्तिपरक हिन्दी-रचना कर उन्नीसवीं सदी (ई.) के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीयता एकता का विलक्षण परिचय दिया था। स्वातितिरुनाल हिन्दी के राष्ट्रभाषा-रूप के एक असाधारण प्रतीक हैं। वे जगद्गुरु शंकराचार्य (788-820 ई.) के सच्चे उत्तराधिकारियों में परिगणित किए जा सकते हैं—आचार्य ने समग्र राष्ट्र की सनातन सांस्कृतिक एकता को दर्शन-पुष्ट किया, आज मलयालम की संस्कृतनिष्ठता के मूल कारण में ही हैं। इस कवि ने राष्ट्रभाषा का एकता को काव्य-पुष्ट किया! दोनों थोड़ा जिए, पर बहुत किए! स्वातितिरुनाल की हिन्दी-कविता में कृष्ण के प्रति सख्य एवं शृंगार (माधुर्य) भक्ति की प्रधानता है, किन्तु उन्होंने दास्य भक्ति का भी सम्मान किया है। उनकी भक्ति के आयाम विशद हैं। डॉ. एन. चन्द्रशेखरन् नायर के शब्दों में, “वे बहुभाषाविद्, संगीतज्ञ तथा नृत्यकलाप्रेमी रहे थे। उनके गीतों की भाषा अधिकतर ब्रजभाषा रही थी। सहृदय कलाप्रेमी होने के साथ-साथ वे साहित्य एवं संगीत के आचार्य भी थे और श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ और शासनकर्ता भी। हिन्दी-गीत ही नहीं बल्कि संस्कृत, मलयालम् और मराठी में भी उन्होंने गीतों को रचना की है।” पारम्परिक होते हुए भी, उनकी कविता में ताज़गी मिलती है :

1. बंसीवाले मन मोहावे।² बोली बोले मीठी दर-दर उमँग करावे।।
बेणु बजाके तान गावे निस-दिन गोपियाँ रिझावे। साँवरो रंग मोहनी अंग सुमिरन तन को भुलावे।।
कालिंदी के तीर ठाढ़े मोहन बाँसुरी बजावे। पद्मानाभ प्रभु दीनबंधु सुर, नर, चारण मनावे।।
साँवरो रंग मोहनी अंग सुमिरन तन को भुलावे। कालिंदी के तीर ठाढ़े मोहन बाँसुरी बजावे।।³
2. चलिए कुंजन में तुम-हम मिल स्याम हरी। देखो जुमना रे वही सुंदर अति नीर-भरी।।
छेंड़ियो कैसे मोर कूँ, मैं तो तेरे हाथ धरी। सुनिए कोयल के बोल पिया क्या कह री।।

असम, बंगाल इत्यादि में ब्रजबुलि, नानक इत्यादि की पंजाबी-मिश्रित और तेगबहादुर, गोविन्दसिंह इत्यादि की शुद्ध ब्रजभाषा तथा मीरों इत्यादि की राजस्थानी-मिश्रित ब्रजभाषा इस काव्यरानी-विभाषा के राष्ट्रीय महत्व की सूचना देने वाले बिन्दु हैं। ‘अभीप्सा’ की कवयित्री तथा ‘सिन्धु एवं सोरठ की प्रेमकथाएँ’ की लेखिका डॉ. निर्मला आसनाणी से गुजरात के कच्छ क्षेत्र के मुख्यनगर भुज में स्वतन्त्रता-पूर्व तक दो सौ वर्षों तक चलने वाले (जिसके तीन सौ-पचास कवि हुए) ‘ब्रजभाषा की पाठशाला एवं उससे सम्बद्ध कवियों का कृतित्व’ (शोधग्रन्थ) का प्रणयन कर राष्ट्र की एकता की चिरस्मणीय सेवा की है। स्वातितिरुनाल के जीवनकाल में भुज की ब्रजभाषा-पाठशाला चल रही थी! हमारी महान् राष्ट्रीय एकता को स्वतन्त्र भारत के टुच्चे नेताओं ने जर्जर कर डाला है, किन्तु वह इन देशद्रोहियों के वार-पर-वार झेलकर भी न तो मरी है और न मरेगी!!

पजनेस

पन्ना के पजनेस (जन्म 1815 ई.)⁴ बौद्धिककाल में भी शास्त्रीयकालीन परम्परा की काव्यरचना करने वाले लोकप्रिय चमत्कारवादी कवियों में समाहित हैं, जिनकी रचनाएँ 127-छन्दीय ‘पजनेश-प्रकाश’ में संगृहीत की गई हैं। पजनेस प्रदर्शनवादी कृत्रिम कविता के आचार्य हैं। मिश्रबन्धु ने ‘विनोद’ में इनकी कविता को ‘बड़ी ओजस्विनी’ मानते हुए भी ‘उद्दंडता’ एवं ‘अश्लीलता’ से ग्रस्त माना है, जिस पर छीटाकशी की लत से लाचार आ. शुक्ल तक “ये प्रतिकूल-वर्णत्व की परवा कम करते थे” की आचार्यत्व की लपेट के साथ सहमत ही हैं। शृंगारी-कवि पजनेस फ़ारसी के शब्दों तथा वाक्यों तक का प्रयोग करने में दिलचस्पी रखते थे जो “यथा राजा तथा प्रजा” की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखते समझा भी जा सकता है (आज तक अनेक ‘प्रबुद्ध’—बुद्ध नहीं—तथा ‘बुद्धिजीवी’—गृद्धजीवी

1. केरल के हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास (डॉ. एन. चन्द्रशेखरन् नायर), पृष्ठ 52।

2. यह पंक्ति मैंने व्यवस्थित की है। कवि ने यही लिखा होगा।

3. सात-आठ पंक्तियाँ दोबारा आ गई हैं। कवि की इच्छा या अन्य की त्रुटि?

4. शिवसिंह कृत ‘सरोज’ के अनुसार संवत् 1872 वि.। ‘सरोज’ में इनके ‘मधुप्रिया’ एवं ‘नखशिख’ ग्रन्थों का उल्लेख है। किन्तु ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग ३ (सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि) में ‘नखशिख’ को ‘मधुप्रिया’ का ही अंग बतलाया गया है। यह (या ये) कृति (या कृतियाँ) अनुपलब्ध हैं (या हैं)।

नहीं—उर्दू की रवानी की तारीफ़ करते लहालोट हो जाते हैं, ‘ग़ज़ल’ शब्द सुनते ही झूम उठते हैं, कव्याली सुनकर ‘हाल’ के हालात में खो जाते हैं। उनकी यमक में बड़ी रुचि थी—वस्तुतः वे यमक-व्यामोही भी थे :

पजनेस तसहुक ता विस्मिल जुल्फ़े फुरक़त न क़बूल कसे ।
महबूब चुनाँ बदमस्त सनम अज़दस्त अलावल जुल्फ़ बसे ।।
मज़बूँ न काफ़ शिगाफ़ रुए सम क़यामत चश्म से खूँ वरसे ।
मिजगाँ सुरमा तहरीर दुताँ नुक़ते बिन बे कित ते किन से ।।¹
मानसी पूजा मयी पजनेस मलिच्छन हीन करी ठकुराई ।²
रोके उदोत सबै सुर गोत वसेरन मैं सिकराली बसाई ।।
जानि परै न कला कलु आजु कि काहे सखी अजया यक लाई ।
पोसे मराल कहौ केहि कारन ए री भुजगिनी क्यों पोसवाई ।।

सूर्यमल्ल मिश्रण

बूँदी-राजवंश का प्रायः 2500 पृष्ठों (टीकासहित 4368 पृष्ठों) में प्रसरित गद्य-पद्यात्मक इतिहास ‘वंश-भास्कर महाचम्पू’ (1840 ई.) लिखकर कवि सूर्यमल्ल मिश्रण (19 अक्टूबर 1815-1836 ई., बूँदी) ‘सुजान-चरित्र’ के प्रणेता सूदन का स्मरण कराते हैं। इनके अन्य ग्रन्थ ‘वलवंत-विलास’, ‘छन्दोमयूख’ एवं ‘वीर-सप्तशती’ हैं। इनकी राजस्थानी—मिश्रित ब्रजभाषा वस्तुतः अतिमिश्रित-भाषा है जो उनके नाम से संप्रवृत्त ‘मिश्रण’ की चरितार्थ करती है। ‘वंश-भास्कर’ के टीकाकार ने सूर्यमल्ल के सन्दर्भ में “न भूतो न भविष्यति” तो व्यर्थ ही लिखा है, क्योंकि महाभारत³ (भरतवंशगाथा), शाहनामा⁴ (ईरान की मोहम्मदीयत-पूर्व काव्येतिहास), फ़ारसी का महाभारत—यद्यपि दर्शन-विपन्न), राजतरंगिणी⁵ (कश्मीर का प्रायः 1149 ई. तक का काव्येतिहास), पृथ्वीराजरासो⁶ (चौहानों के इतिहास से निष्पन्न पृथ्वीराजपरक महाकाव्य) इत्यादि ग्रन्थ ‘सजातीय’ हैं; और सूर्यमल्ल मिश्रण सूदन के स्तर के कवि ही हैं (उनसे प्रभावित भी) किन्तु इनकी प्रतिभा एवं पाण्डित्य में सन्देह नहीं। सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने ‘वंश-भास्कर’ को ‘राजस्थान का महाभारत’ कहा है, किन्तु एक तो बूँदी-राजवंश में बद्ध होने के कारण यह निराधार है क्योंकि राजस्थान बहुत बड़ा है, दूसरे बिना महान् चरित्रों के कोई ग्रन्थ महान् नहीं बन पाता। फिर भी, सूर्यमल्ल मिश्रण कल्हण और सूदन के स्तर के आदरणीय कवि अवश्य हैं। 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम में अपने महाराज रामसिंह की ब्रिटिश-सेवा से खिन्न कवि ने ‘वीर-सप्तसई’ की रचना की जो उसे एक तेजस्वी देशभक्त प्रमाणित करती है। खेद है कि बूँदी के इतिहास के इस श्रेष्ठतम कवि की हवेली दुर्दशाग्रस्त है तथा समग्रतः भग्नावशेष बनने की प्रतीक्षा कर रही है। स्वतन्त्र भारत में स्वतन्त्र्य-प्रेमियों की दुर्दशा एक व्यापक सत्य है: “देशद्रोही हो गया नेतृत्व सारा” लिखकर मैंने, रुकते हुए भी परिवर्तन नहीं किया! मिश्रवन्धु ने स्वीकार किया है, “इनका काव्य-चमत्कार अच्छी श्रेणी का है।” मुंशी देवीप्रसाद ने इन पर प्रात्ययिक विवरण प्रस्तुत किया है। उदाहरण प्रस्तुत है :

1. चढ़्यो मल्हार⁸ लै तुखार नो हजार नच्यते । धए प्रबीर तानि तीर जंगधीर जच्यते ।।
बजे निसान स्वान जे निसा दिसान बिल्यरे । चर्मकि पारि चिक्करी डिगेरु दिक्करी ढरे ।।

1. सहज-उर्दू को उर्दू-ए-मुअल्ला का रूप प्रदान करने वाले परम-व्यसनी ग़ालिब (संयोगात् पजनेस के समकालीन) भी इस आडंबरवाद के सामने पानी-पानी हो । जाएँगे! हिन्दी को उर्दू बनाने की जी-तोड़ कोशिश में लस्त-पस्त दुष्यन्तकुमार इत्यादि बेचारे तो हक्के-बक्के ही रह जाएँगे!
2. “जमन महामहिपाल” (भुखड़ लुटेरे सम्राट बने बैठे हैं) के गहरे व्यंग्य में विश्वकवि तुलसीदास ने सच्चा इतिहास उभारा था, जिसको “मलिच्छन हीन करी ठकुराई” (म्लच्छों ने राजकर्म को गरिमाहीन कर दिया) कहकर साधारण कवि पजनेस ने भी प्रमाणित कर दिया।
3. व्यास (तथा अनेक परवर्ती व्यासों) कृत विश्व का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य।
4. फ़िरदौसी कृत विश्व का एक श्रेष्ठतम महाकाव्य।
5. महाकवि कल्हण कृत अमर ऐतिहासिक-महाकाव्य।
6. चन्द्रवरदायी, जल्हण, मलैसिंह (मलयसिंह) इत्यादि कृत राष्ट्रीय-महाकाव्य।
7. वंश या वंशों या शासकगण से संबद्ध।
8. मल्हाराय होल्कर।

2. रजोमयी तमोमयी भटालि भीर भूमयी। बिमान जाल देवतान ताल रीझि कै गयी।।
धसैं छुरी दुसार वीर पार नीरधार सी। स्वसैं उतंग के परे मतंग भुल्लि सारसी।।
3. झटक्कि इक्क कौं पटक्कि बज्र लौं मही परैं। खटक्कि खगग खुप्परी अटक्कि पग्घ उत्तरैं।।
दरक्कि छत्ति देख यों भरक्कि जैपुरे' भजैं। करक्कि संधि कंटकी बरक्कि बाढ़ के बजैं।।

द्विजदेव

शास्त्रीयकालीन काव्य-परम्पराओं के उन्मुक्त उत्तराधिकारी अयोध्या-महाराज मानसिंह 'द्विजदेव' (1823-1873 ई.)² की कविता अपनी अकृत्रिम अनुभूति एवं स्वच्छ ब्रजभाषा के कारण विख्यात रही है। रीतिबद्ध एवं रीतिमुक्त काव्य की स्थूल भेददृष्टि से द्विजदेव का वस्तुपरक अध्ययन सम्भव नहीं, क्योंकि इनकी दोनों प्रख्यात कृतियों 'शृंगारलतिका' एवं 'शृंगारवत्तीसी' में षड्भूत, भ्रमरगीत, नखशिखवर्गीय सौन्दर्य-चित्रण प्रभृति की पारम्परिक छटा ही अभिव्यक्ति की ताजगी के साथ प्रकट हुई है। द्विजदेव ने दौलत कवि³ इत्यादि के 'रितुसुखसागर' जैसे ग्रन्थों के सदृश प्रकृति को उद्दीपन का लगूभगू मात्र नहीं बनाए रखा, उसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व-सा प्रदान किया है, किन्तु परम्परा के प्रति ठाकुर-जैसा विद्रोह भी उन्हें रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ। अयोध्या का राजवंश ब्राह्मणों का था। दरभंगा के राजवंश के सदृश। प्राचीन शुंगवंश, पश्चिमोत्तर भारत का शाही वंश, सिन्ध का दाहिर के साथ समाप्त वंश इत्यादि राजनीति में ब्राह्मणों के प्रभाव के ऐतिहासिक निदर्शन हैं। अयोध्या के इन राजाओं ने काव्य की बड़ी सेवा की। द्विजदेव स्वयं तो कवि थे ही, लछिराम, पं. प्रवीन, बलदेव, जगन्नाथ अवस्थी इत्यादि कवियों के आश्रयदाता भी थे। आगे चलकर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' एवं रामनाथ ज्योतिषी इत्यादि को भी द्विजदेव की कविता तथा इस राजवंश से अच्छी प्रेरणा मिली।

द्विजदेव ने प्रकृति-सौन्दर्य, नेत्र-सौन्दर्य एवं प्रेम-प्रभाव के बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन किए हैं। निस्सन्देह इनकी कविता आलम और घनआनन्द के स्तर की है तथा बोधा और ठाकुर इनकी समता नहीं कर पाते। इन पर देव और पद्माकर का प्रभाव तो पड़ा है, किन्तु अस्मितानिष्पन्न रूप में। इनकी अनुभूति जितनी निश्छल है, अभिव्यक्ति उतनी ही साफ-सुथरी। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

प्रकृति-सौन्दर्य

1. गाओ किन कोकिल, बजाओ किन बेनु बेनु, नाचो किन झूमरि लतागन बने-ठने।
फेंकि-फेंकि मारौ किन निज करपल्लव सौं, ललित लवंग फूल पानन घने-घने।।
फूलमाल वारौ किन, सौरभ सँवारौ किन, ये ही परिचारक समीर सुख सो सने।
मोर धरि बैठी किन चतुर रसाल आज, आवत बसंत ऋतुराज तुम्हैं देखने।।
2. घरि-घरि घन सघन चहुँधा घेरि, छहरि-छहरि विष-बूँद बरसावै ना।
द्विजदेव की सौं, अब चूक मत दाँव, एरे, पातकी पपीहा! तू पिया की धुनि गावै ना।।⁴
फिरि ऐसी अवसर न ऐहै तेरे हाथ, एरे, मटकि-मटकि मोर सोर तू मचावै ना।
हौं तौ बिन प्रान आन चहत तजोई अब, कत नभ चंद तू अकास चढ़ि धावै ना।।

द्विजदेव की प्रकृति-सौन्दर्य में आलम्बनात्मक प्रकृति चित्रण के निदर्शन भी प्राप्त हो जाते हैं, उद्दीपनात्मक के भी। उक्त दो छन्द इस तथ्य को स्पष्ट कर देते हैं।

1. जयपुर को।

2. मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में निधन 1930 वि. में 'सम्भवतः पचास वर्ष की अवस्था में' लिखा है, शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में उदाहरण तो बहुत दिए हैं किन्तु तिथियाँ बिल्कुल नहीं दीं, 'हिन्दी साहित्य कोश' में जीवनकाल 1830-1871 ई. दिया है, कतिपय पाठ्यपुस्तिकाओं में तिथियाँ गलत एवं निराधार तक दे दी गई हैं।

3. 'दौलत कवि ग्रन्थावली' (सं. डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित, 1993 ई.) दौलत कवि का प्रमुख ग्रन्थ 'रसप्रबोध' है।

4. टेल मी नो मोर ऑफ़ दाइ लेंव पपीहा! बुइस्ट दौउ रिक्काल माइ हार्ट पपीहा!

द ड्रीम्स ऑफ़ डिलाइट टैट आर गोन? (सरोजिनी नाइडू)

नेत्र-सौन्दर्य

नेत्र आत्मा के दर्पण हैं। 'हिन्दी कविता में नेत्र-वर्णन' विशाल ग्रन्थ का विषय है। श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने 'आँख और कविगण' शीर्षक सुन्दर ग्रन्थ लिखा ही है। तुलसी, बिहारी और रसलीन के नेत्रवर्णन अमर हो चुके हैं। जायसी, मंझन, उस्मान इत्यादि सूफ़ी नखशिख-वर्णनकारों ने स्वभावतः नेत्रवर्णन किए ही हैं। किन्तु 'द्विजदेव का नेत्रवर्णन' लघुग्रन्थ-विषय है, बहुत सुन्दर है :

बाँके संकहीने, राते कंज छवि छीने, माते, झुकि-झुकि, झूमि-झूमि काहू को कछु गनै न।
द्विजदेव की सौं ऐसी वनक बनाय बहु भाँतिन वगारे चित चाह न चहुँधा चैन॥
पेखि परे प्रात जौ पै गातन उछाह भरे, वार-वार तातें तुम्हें बूझती कछूक बैन।
अहो ब्रजराज! मेरो प्रेमधन लूटिबे को बीरा खाय आए कितै आपके अनोखे नैन॥

प्रस्तुत महान् छन्द में स्नेहारुण लोचनों की ताम्बूल-लालिमा से संगति, मानवीकरण, लोकोक्ति-चारुत्व एवं बिम्बालेखन विश्व-स्तरीय है। एक अन्य छन्द प्रस्तुत है, जिसमें नेत्र-इन्द्रजाल का विलक्षण प्रभाव उच्चतम स्तर पर चित्रित है :

हाँसी भई सपनों, अवाँ सी भई देह यह, दासी भई बैरिनै, विसासी भई सखियाँ।
द्विजदेव त्यों ही कछु फूल-फूले किंसुकन ज्वाल-जाल जागी सी चहुँधा दिसि लखियाँ।
चोप चटवारो चित चंचल चकोर मेरो, कैसी करै वावरी परिंद बिन पँखियाँ।
जो छन ते जाय अति उमगि अघाय मन मोहन सों हाय! मिलि आई मेरी आँखियाँ॥

प्रेम-प्रभाव

प्रेम विश्व का मोहकतम चेटक है। इसकभ मधुर कुहुक जीवन की जीवंततम निधि है। देव, पद्माकर इत्यादि से प्रभावित होते हुए भी द्विजदेव ने प्रेम के प्रभाव के अतीव उत्कृष्ट वर्णन किए हैं, जो समूचे साहित्य का शृंगार करते हैं :

1. औरै भाँति कोकिल चकोर ठौर-ठौर वोलैं, औरै भाँति सबद पपीहन के ब्यै गए।
औरै भाँति पल्लव लिए हैं वृंद-तरु, औरै छवि पुंज कुंज कुंजन उनै गए॥
औरै भाँति सीतल सुगंध मंद डोलै पौन, द्विजदेव देखत न ऐसे फल है गए।
औरै रीति, औरै रंग, औरै साज, औरै संग, औरै बन, औरै छन, औरै मन है गए॥²

कुछ लोगों ने लफट लगाया था कि द्विजदेव के कहे जाने वाले छन्द इनके आश्रित कवि लछिराम ने लिखे हैं जिसका बड़ा सतर्क खंडन महान् आलोचक मिश्रबन्धु ने किया है। लछिराम की कविता का स्तर द्विजदेव की कविता का स्तर है ही नहीं। मिश्रबन्धु ने अपने अमर 'विनोद' के तृतीय खंड का समारम्भ 'द्विजदेव-काल' के रूप में करके इस उत्कृष्ट कवि का सम्मान किया है। शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में द्विजदेव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। एक उत्कृष्ट शृंगारी कवि, एक अनूठे प्रकृति-कवि एवं एक उत्कृष्ट भाषा-शिल्पी के रूपों में द्विजदेव हिन्दी के अमर कवियों में प्रतिष्ठित किए जाने का अधिकार रखते हैं।

'क्षितिपाल'

विज्ञानविलास, भगवतीविजय, मोक्षचिन्तामणि, श्रीरघुनाथचरित्र, भक्तिरत्नाकर, वैराग्यप्रकाश, सज्जनविलास एवं भजनप्रदीप के भक्त-कवि राजा लाल माधवसिंह 'क्षितिपाल' (29 नवम्बर 1823—24 अगस्त 1891) अमेठी के एक अत्यन्त उदार शासक थे। वे अमेठी, प्रयाग, विंध्याचल, काशी, लखनऊ इत्यादि में भव्य भवनों एवं देवालयों के निर्माता के रूप में वास्तुकला के एक उल्लेख्य प्रेमी के रूप में भी स्मरणीय हैं। उनकी ब्रजभाषा में लिखित साधारण-सी कविता में तीर्थमहिमा, संतमहिमा, वैराग्यनिरूपण, रामकथा और सबसे बढ़कर, शक्तिस्तुति के प्रभावी दर्शन होते हैं। 'क्षितिपाल' वस्तुतः राजर्षि थे :

1. वंदित रमेस औ गनेस, सुर, सिद्ध, मुनि, बिधिहू अचंभो होत देखि गति सारी है।
संजम, अचार, जोग, जाग, जागरन, व्रत, ज्ञान औ बिराग हू की मान मद मारी है॥

1. यत्र-तत्र प्रचलन-प्रेरणावश 'जवाहरलाल' भी लिखा मिल जाता है।

2. यह छंद पद्माकर के "औरै भाँति कुंजन में गुंजरत और भीर" की छाया लिए है

न्यारी त्रिभुवन, सप्तद्वीप, नवखंड हू ते, 'क्षितिपाल' संभुजू की परम पियारी है।

तीनि ताप हारी बेद कहत पुकारी, काशी मुक्ति देन वारी सब जीव समचारी है॥ (काशी-महिमा)

2. क्या मज़ा है साँच फ़क़ीरी में। औरन की गिनती केहि लेखे, डालो खाक़ अमीरी में॥

साधन याको युवा समय है, बृथा जानिए पीरी में। जन 'क्षितिपाल' ख्याल करि देखो जागति जोति फ़क़ीरी में॥

‘लेखराज’¹

‘रसरत्नाकर’, ‘राधानखशिख’, ‘गंगाभूषण’ एवं ‘लघुभूषण’ के नायिकाभेद, नखशिख एवं अलंकारों का उत्कृष्ट निरूपण करने वाले एक उल्लेख्य ब्रजभाषा-कवि नन्दकिशोर मिश्र ‘लेखराज’ (1831-1892 ई.)² अपने समय में लखनऊ के प्रसिद्ध करोड़पति थे, जो 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम की उथल-पुथल और लूट-खसोट के बाद भी गँधौली और सिंहपुर (सीतापुर) के ज़मींदार बने रह सके। उन्हें इस-सब का दुःख नहीं हुआ क्योंकि बहुत गम्भीर एवं प्रशांत व्यक्ति थे। इनके पुत्रद्वय लालबिहारी (द्विजराज) एवं जुगलकिशोर या युगलकिशोर (ब्रजराज) एवं अन्य पुत्र रसिकबिहारी भी कवि थे तथा पौत्र कृष्णबिहारी मिश्र प्रसिद्ध समालोचक। खेद है कि ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग 2 में स्व. डॉ. ओमप्रकाश ने लेखराज को कृष्णबिहारी मिश्र का पिता लिख दिया है जो एकदम ग़लत है। ‘गंगाभूषण’ इनका ऐसा श्रेष्ठ काव्य है जिसमें गंगास्तुति में ही प्रायः समस्त अलंकारों का निरूपण किया गया है। इन्होंने पावन काशी में मणिकार्णिकाघाट के प्रख्यात गंगातट पर ही महाशिवरात्रि के पर्व पर शरीर-त्याग भी किया! इन्होंने बहुत-से मुक्तक (छन्द) भी रचे। इनके एवं मिश्रबन्धु के पूर्वज एक थे। ‘विनोद’ से एक छन्द अवतरित है :

1. रति रतिरंग संग सो उमंग भरि, उरुज उत्तंग, अंग-अंग जंबूनद के।
ललकि-ललकि लपटात लाय-लाय उर, बलकि-बलकि बोल बोलत उलद के॥
लेखराज पूरे किए लाख-लाख अभिलाष, लोयन लखात लखि सूने-सूने स्वद के।
दोरु हद रद के सु देत छद रद के, बिबस मैन मद के कहै मैं गई सदके।

गिरिधरदास (मूलनाम गोपालचन्द्र)

अपूर्ण एकादशीसर्गीय महाकाव्य ‘जरासंधवध’ एवं ‘नहुष नाटक’³ (1857 ई.) के ऐतिहासिक प्रणेता, शास्त्रीयकाव्यों के स्फीत प्रस्तोता, दशावतारों पर अनेक काव्यों के रचयिता, ललित-कृष्णोपासक, ‘सरस्वती भवन’ (पुस्तकालय) के संस्थापक एवं आधुनिक हिन्दी के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सुयोग्य जनक बाबू गोपालचन्द्र उपनाम ‘गिरिधरदास’ यव ‘गिरिधर’ या ‘गिरिधरान’ (1833-1860 ई. काशी) ने 27 वर्ष के जीवन में 40 ग्रन्थ⁴ रचे। निस्सन्देह, उनकी प्रतिभा अतीव विलक्षण थी। उनकी कविता भावपक्ष की दृष्टि से भी अच्छी है, कलापक्ष की दृष्टि से भी (यद्यपि यत्र-तत्र अलंकारों, विशेषतः यमक, के मोह से ग्रस्त भी) :

1. आनन की उपमा जो आनन को चाहै तरु आन न मिलैगी चतुरानन बिचारे को।
कुसुम कमान के कमान को गुमान गयो करि अनुमान भौंह रूप अति प्यारे को॥
गिरिधरदास दोरु देखि नैन बारिजात बारि जात बारिजात मान सर वारे को।
राधिका के रूप देखि रति को लजात रूप, जातरूप जातरूप जातरूप वारे को॥
2. सिंधु जनित गर हर पियो, मरे असुर समुदाय।
नैन बान बैनन लग्यो, भयो करेजे घाय॥⁵

1. दादा लेखराज का स्मरण आता है जिन्होंने बीसवीं शताब्दी ई. में, ब्रह्माकुमारी आन्दोलन चलाया। आरम्भ सिन्ध (अब पाकिस्तान) में किया, किन्तु कालांतर में मॉर्ट आबू में प्रधान केन्द्र स्थापित किया। वे हिन्दी में भी बोलते थे।

2. निधन शिवरात्रि 1948 वि. को हुआ।

3. मिश्रबन्धु ने नाट्यशैलीगत ‘विज्ञानगीता’ (केशवदास), ‘देवमायाप्रपंच नाटक’ (देव) तथा ‘आनन्दरघुनन्दन नाटक’ (विश्वनाथसिंह) को नहीं प्रत्युत ‘नहुष नाटक’ को ही ‘सबसे पहला नाटक’ माना है।

4. “जिन श्री गिरिधरदास कवि रचे ग्रन्थ चालीस।” (भारतेन्दु)

5. असंगति अलंकार का सुन्दर उदाहरण (ऐसे उदाहरण अनेक हैं)।

रूपरेखा

सुधारवादी युग
(1850-1900 ई.)

राष्ट्रकाव्य	पारंपरिक भाक्तकाव्य	पारंपरिक शृंगारकाव्य	नाटक	निबन्ध	आलोचना	उपन्यास	जीवनी
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रतापनारायण मिश्र जगमोहनसिंह अविकादत्त व्यास इत्यादि	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	प्रतापनारायण मिश्र	वालकृष्ण भट्ट	पं. गौरीदत्त	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
प्रतापनारायण मिश्र प्रेमघन राधाकृष्णदास इत्यादि	प्रतापनारायण मिश्र राधाकृष्णदास गुणमंजरीदास राधाचरण गोस्वामी श्रद्धाराम फिल्लौरी इत्यादि	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रतापनारायण मिश्र प्रेमघन राधाकृष्णदास श्रीनिवासदास इत्यादि	प्रतापनारायण मिश्र प्रेमघन राधाकृष्णदास श्रीनिवासदास इत्यादि	वालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रेमघन शिवप्रसाद तिलोहिनन्द इत्यादि	श्रद्धाराम फिल्लौरी श्रीनिवासदास वालकृष्ण भट्ट जगमोहन सिंह इत्यादि	श्रद्धाराम फिल्लौरी श्रीनिवासदास वालकृष्ण भट्ट जगमोहन सिंह इत्यादि	कार्तिकप्रसाद खत्री काशीनाथ खत्री रमाशंकर व्यास देवीप्रसाद मुखर्जी राधाकृष्णदास इत्यादि

1. काव्य की भाषा प्रायः ब्रज। किन्तु भारतेन्दु ने खड़ीबोली का यत्र-तत्र प्रयोग किया है।

2. गद्य की भाषा परिनिष्ठित एवं व्याकरणसम्मत नहीं, विरामचिह्न-योजना नहीं, किन्तु सहज अनौपचारिक गद्य अतीव आकर्षक है। साहित्यिक महत्व काव्य, नाटक एवं निबन्ध का। अन्य विधाओं का महत्व केवल ऐतिहासिक।

1. डॉ. नगेन्द्र संपादित एवं अनेक लेखक कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' शीर्षक सामग्रीसंकलन ग्रन्थ में थोड़ा-सा विवरण दिया है। 'विनोद' में लेखकों के ग्रन्थ दिए हैं।

सुधारवादी युग

प्रस्तावना

पश्चिम के गोरों के साथ भारत के सम्बन्ध बहुत पुराने हैं। 326 ईसा-पूर्व में सिकन्दर ने भारत के कुछ भाग जीते (अब ये पाकिस्तान में हैं), 305 ईसा पूर्व के आसपास सेल्यूकस को चन्द्रगुप्त ने परास्त किया, 1294-1295 ई. में वेनिस के यात्री मॉर्को पोलो ने भारत का अटन किया, किन्तु इस सब का प्रभाव अपेक्षाकृत सीमित रहा। मई 1498 में पुर्तगाली वास्को ड गामा के कालीकट पहुँचने के बाद गोरों के भारत पर व्यावसायिक एवं राजनैतिक प्रभाव का आरम्भ हुआ। पुर्तगाली, इच, फ्रांसीसी और अंग्रेज़ भारत में भारी व्यापार फैलाने में सफल हुए किन्तु काल-क्रम ने पुर्तगालियों को गोआ, दमण, दीव, दादरा एवं नागर हवेली बिन्दु-बन्द कर दिया और डचों को एकदम उखाड़ दिया। अब अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों में होड़ लगी, जिसमें फ्रांसीसी पॉण्डिशेरी (पांडेचेरी), माही, कराइकल और चन्द्रनगर में बिन्दुबन्द होने पर विवश हुआ तथा अंग्रेज़ों का क्रमशः एकच्छत्र प्रभाव होता गया।

भारत में अंग्रेज़ी-शासन की स्थापना 'द ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी' के द्वारा स्थापित 31 दिसम्बर 1600 को महारानी एलिज़ा बेथ प्रथम (राज्यकाल 1558-1603 ई.) द्वारा अधिकारपत्र के कारण एकाधिकार-पुष्ट हो चुकी थी। कम्पनी ने सूरत में पहली कोठी खोली। स्थानीय शासक ने अनुमति दे दी थी। कैप्टन हॉकिंस (1608 ई.) एवं सर टॉमस रो (1615 ई.) जहाँगीर से मिले। हॉकिंस पुर्तगालियों के प्रभाव के कारण असफल रहे। रो को कुछ रियायतें मिलीं। जहाँगीर (राज्यकाल 1605-27 ई.) के समकालीन 'चित्रावली' के सूफ़ी कवि उस्मान ने हिन्दी में सर्वप्रथम 'अंग्रेज़ा' (बंलदीप देखे अंग्रेज़ा) या अंग्रेज़ शब्द का प्रयोग किया। गोमांसभक्षी होने के कारण हिन्दू तथा शूकरमांसभक्षी होने के कारण मुसलमान गोरों से घृणा करते थे। उस्मान ने अंग्रेज़ों के प्रति घृणा की स्पष्ट अभिव्यक्ति की है। सारे गोरों फिरंगी कहे जाते थे क्योंकि फिरंगी की तरह घूमते-फिरते रहते थे। शाहजहाँ और औरंगजेब के द्वारा इन्हें मुसलमानों को ईसाई बनाने के कारण दंडित भी किया गया। किन्तु ये बड़े धैर्य और कौशल के साथ सूरत, मुम्बई, चेन्नै, कलकत्ता इत्यादि में अपने किले वगैरह बनाते हुए शक्ति में वृद्धि करते रहे। हिन्दू अपने अस्तित्व के लिए चिंतित थे और औरंगजेब ने जब हिन्दू-जाति को उच्छिन्न करना चाहा तब ऐसी विकट हिन्दू-जागृति हुई कि मुग़ल-वंश ध्वस्त हो गया। 1707 ई. में औरंगजेब के मरण से पूर्व ही मुग़ल-वंश का भी वास्तविक मरण हो चुका था। 1739 ई. में नादिरशाह और 1757 ई. में अहमदशाह दुर्रानी (अब्दाली) द्वारा दिल्ली के भयावह विनाश ने मुग़लों की रही-सही प्रतिष्ठा को भी धूल में मिला दिया। मुसलमान किसी भी रूप में हिन्दू-वर्चस्व नहीं सहन कर सकते थे। इससे भी अंग्रेज़ों को भारी लाभ हुआ। 23 जून, 1757 ई. को प्लासी के युद्ध में बंगाल के क्रूर एवं हिन्दू-अपमानकर्ता नवाब सिराजुद्दौला को परास्त करने से अंग्रेज़ बंगाल के स्वामी बन गए। क्लाइव के पास 1000 गोरों और 2000 भारतीय सैनिक थे, नवाब के पास 50,000 पैदल और 18000 घुड़सवार और 50 तोपें। सितम्बर 1764 ई. में बक्सर² (बिहार) में दिल्ली के नामनिहाल बादशाह शाहआलम तथा अवध एवं बंगाल के नवाबों की सम्मिलित सेना को परास्त करने से वे देश में प्रभावी हो गए (यद्यपि यह प्रभाव वीर मराठों के कारण निरापद नहीं होने पाया, 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम में हिला भी, तथापि वे बहुत सफल रहे)। विजेता हेक्टर मुनरो के पास 7072 सैनिक (गोरों केवल 857) थे जिन्होंने 50000 के लगभग शत्रुओं पर विजय पाई।³

अंग्रेज़ों की सफलता का प्रधान कारण

भारत में अंग्रेज़ों की सफलता का प्रधान कारण देशवासी हिन्दुओं के मन में मन्दिरों को ढहाने वाले, मूर्तियों को तोड़ने वाले बलात् मुसलमान बनाने वाले, अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए गहरी तक करते हुए विदेशी मुसलमानों को आक्रमण का आमंत्रण देने वाले विदेशी शासन के प्रति गहरी और पुरानी अरुचि थी, जिनको अंग्रेज़ी राज्य से लाभ भी हुआ, जिसमें वे लूट-पाट के बल पर फ़न्नेख़ाँ बने। लोगों से आर्थिक एवं बौद्धिक दृष्टियों से बहुत आगे निकल गए। विख्यात इतिहासकार पी. ई. रॉबर्ट्स ने प्लासी के युद्ध के सन्दर्भ में "यूरोप की एक व्यावसायिक जाति द्वारा भारत के एक प्रान्त की विजय" को 'क्रान्ति' घोषित करते हुए हिन्दुओं

1. ए न्यू हिस्ट्री ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन (आर. बी. मॉरैट), पृष्ठ 620।

2. वही, पृष्ठ 623।

3. वही, पृष्ठ 630।

के लिए 'देशवासी' (नेटिव) तथा मुसलमानों के लिए 'विदेशी' (फ़ॉरेन) विशेषणों का प्रयोग तो किया ही है, उनके आर्थिक लाभों की ओर इंगित भी किया है, यद्यपि प्रधान लाभ अंग्रेजों का ही स्वीकार किया है।¹ स्वतन्त्र भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता का महत्व अपरिहार्य है। मुसलमान हिन्दुओं के भाई हैं, एकदेशवासी हैं। धर्मनिरपेक्षता का सच्चा रूप (जो भारत में दिखाई तक नहीं देता) एक अत्यन्त प्रगतिशील वस्तु है। किन्तु इतिहास के सत्य को झुठलाना पाप है, सत्य की हत्या का अपराध है। एकता इतिहास की हत्या से सम्भव नहीं। आर्य, नाग, किन्नर, गंधर्व, असुर, राक्षस, द्रविड़, वानर, गृद्ध (भास), किरात, भील, संथाल, गोंड, कूकी, जयंतिया, मिज़ो इत्यादि एक हैं और इस एकता ने इतिहास की हत्या की। अतएव, इतिहास के सत्यों को शिरोधार्य करके भी हिन्दू-मुसलमान एक रह सकते हैं। असत्य-प्रतिष्ठापन से सन्देह एवं सन्देह से विरोध उत्पन्न होता है।

हिन्दी-भाषी क्षेत्र और अंग्रेज

हिन्दीभाषी क्षेत्र अंग्रेजों के कब्जे में बाद में आए। प्रत्यक्ष गौरांग-सत्ता 1857 ई. के अनन्तर आई किन्तु परोक्ष बक्सर-युद्ध के साथ 1764 ई. से ही आ चुकी थी। 1857 ई. के स्वातन्त्र्य संग्राम में हिन्दी के 'राजा'—साहित्यकारों (रघुराजसिंह, मानसिंह 'द्विजदेव', लक्ष्मणसिंह) ने अंग्रेजों की हर तरह से सहायता की। तदनन्तर शिवसिंह, भारतेन्दु, प्रेमघन इत्यादि ने अंग्रेजी-सत्ता की प्रशंसा की :

रानी, महारानी हिंद, लंदन की इसुती तैं,

ईस्वरी समान प्रान हिंदुन की ह्वै गई।

(शिवसिंह सेंगर)

अंग्रेज-राज सुख-साज सजे सब भारी।...

(भारतेन्दु)

उठहु आर्य-संतान, सकल मिलि अव न विलंब लगाओ,

ब्रिटिश राज्य स्वातन्त्र्यमय समय, वैठि न व्यर्थ गँवाओ! (प्रेमघन)

इसका यह अर्थ नहीं कि हिन्दी-क्षेत्र परतन्त्रतावादी था। वह केवल वर्बर मध्यकालीन अत्याचार के स्थान पर प्रगतिशील आधुनिक आचार-विचार का स्वागत कर रहा था, क्योंकि स्वातन्त्र्य-संग्राम (चाहे 1857 ई. का हो या चाहे 1942 ई. का) में सर्वाधिक संघर्ष एवं बलिदान हिन्दी-क्षेत्र ने ही किया है—बेगम हज़रतमहल, मंगल पांडे, नानाराव, तात्यां टोपे, लक्ष्मीबाई, कुंवरसिंह, राना बेनीमाधव, बाबू रामबल्लुसिंह, विरसा मुण्डा, जयप्रकाश, लोहिया, चित्तू पांडे इत्यादि हिन्दी-क्षेत्र के ही सेनानी थे। वंकिम एवं रवीन्द्र, नर्मदा एवं गांधी², वीरेशलिंगम् एवं फ़क़ीरमोहन सेनापति इत्यादि भी गोरे शासन की प्रशंसा या सेवा कर चुके हैं।

आधुनिक विकास का श्रीगणेश

राजा राममोहन राय (1772³-1833 ई.) ने औपनिषदिक अद्वैतवाद की पुनरस्थापना का प्रयत्न करते हुए सर्वांगीण समाज-सुधार का श्रीगणेश किया। उन्होंने कलकत्ता नगर में 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना की। एकेश्वरवाद के माध्यम से उन्होंने हिन्दुओं, मुसलमानों एवं ईसाइयों के बीच एकता स्थापित करने का समारम्भ किया। देवेन्द्रनाथ ठाकुर (1817-1905 ई.) एवं केशवचन्द्र सेन (1838-1884 ई.) ने ब्रह्म समाज को प्रभावी बनाने के यत्न किए। 1867 ई. में महादेव गोविन्द रानाडे इत्यादि के द्वारा पुणे (पूना) में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई, 1875 ई. में दयानन्द के द्वारा मुम्बई (बम्बई) में आर्य समाज तथा कर्नल ऑल्कोट एवं मैडम ब्लॉवत्स्की के द्वारा 1882 में चेन्नै में थिओसॉफ़िकल सोसाइटी की स्थापना हुई, 1885 ई. में ए. ओ. ह्यूम के द्वारा मुम्बई में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। विवेकानन्द ने 1897 ई. में बेलूर में रामकृष्ण मिशन स्थापित किया। हिन्दी-क्षेत्र भी दयानन्द (1824-1883 ई.) के सुधारवाद एवं कांग्रेस की गतिविधियों से प्रभावित हुआ। सती-प्रथा, ठगी-प्रथा इत्यादि का अन्त ही हो चुका था, 1871 ई. में कलकत्ता मदरसा, 1791 ई. में बनारस संस्कृत कॉलेज, 1816 ई. में हिन्दू विद्यालय कलकत्ता, 1857 ई. में कलकत्ता, मुम्बई, चेन्नै विश्वविद्यालयों, 1882 ई. में पंजाब विश्वविद्यालय, 1887 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय इत्यादि की स्थापना से भारी शैक्षिक प्रगति भी हुई। देश में

1. हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया अंडर कम्पनी एंड क्रॉउन, अध्याय 13, पृष्ठ 130।

2. गाँधी की सेवाओं से सन्तुष्ट होकर अंग्रेजों ने उन्हें 'कैसरेहिन्द' का तमगा दिया था।

3. कहीं-कहीं 1874 ई. लिखा मिलता है, जबकि मरणवर्ष पर विवाद नहीं।

रेल इत्यादि के आगमन से व्यापकता-बोध में भारी सहायता मिली। लल्लूजी 'लाल' (1746-1824 ई.), सदल मिश्र (1767-1847 ई.), सदासुखलाल 'नियाज़' (1746-1824 ई.) एवं इंशा अल्ला ख़ाँ (देहान्त 1817 ई.) गद्य की विविधातापूर्ण आधार-भूमि प्रस्तुत कर चुके थे। 1835 ई. में अंग्रेज़ी-शिक्षा के लागू होने से विश्व-वाङ्मय से सम्पर्क स्थापित होने लगा था। इस पृष्ठभूमि एवं पार्श्वभूमि के कारण सुधारवादी युग में साहित्य का प्रशस्य विकास हुआ।

गद्य का अभूतपूर्व उत्कर्ष: प्रगति का सर्वांगीण सन्देश

हिन्दी-गद्य के प्रथम लेखक रामप्रसाद निरंजनी थे जिन्होंने 1741 ई. में 'भाषा योग-वासिष्ठ' प्रस्तुत किया था, जो श्रेष्ठता-ग्रन्थि या पाश्चात्य पूर्वग्रह से अभिभूत ग्रीयर्सन जैसे विद्वानों की इस स्थापना का अतर्क्य खंडन करता है कि हिन्दी-गद्य का उद्भव 1800 ई. में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद हुआ। उर्दूवाजों की यह सनक कि हिन्दी-गद्य उर्दू-गद्य से प्रेरित हुआ तो विचारणीय तक नहीं है तथा उर्दू का जन्म ही हिन्दवी (खुसरो) या हिन्दुकी (दाऊद) या हिन्दुई (जायसी) या हिन्दुस्तानी (बाबर) या हिन्दी (नूरमोहम्मद) या दक्खिनी हिन्दी (आदिलशाह इत्यादि) से हुआ और उर्दू-शायरी सीतल, सूदन इत्यादि से सीधी प्रभावित हुई, यद्यपि उसकी जड़े कुलपति, आलम, घनआनन्द इत्यादि तक जाती हैं, जिनके कारण प्रो. आज़ाद ने स्वीकार किया है कि हमारी जुवान ब्रजभाषा से निकली है। रामप्रसाद निरंजनी का प्रभाव लल्लूजी 'लाल', सदल मिश्र एवं सदासुखलाल 'नियाज़' पर भी पड़ा है जिसे कथावाचक शैली के वाक्यों में स्पष्ट देखा जा सकता है। 'रामप्रसाद निरंजनी का परवर्ती गद्यकारों पर प्रभाव' शोध का अच्छा विषय है। इंशाअल्ला ख़ाँ का तरंगवादी गद्य कोई प्रभाव न डाल सका किन्तु उसे भी ऐतिहासिक महत्व प्राप्त हो चुका है।

रामप्रसाद निरंजनी, लल्लूजी 'लाल', सदल मिश्र, सदासुखलाल 'नियाज़' एवं इंशाअल्ला ख़ाँ हिन्दी-गद्य के पंचतत्व कहे जा सकते हैं। जिनमें लल्लूजी 'लाल' सबसे बड़े प्रयोगवादी शैलीकार सिद्ध होते हैं क्योंकि उन्होंने पारम्परिक हिन्दी-गद्य भी लिखा, उर्दू से भरी-पूरी गद्य-शैली का प्रवर्तन भी किया (जिसका अनुकरण राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने अपनी उर्दू-आक्रान्त गद्य-शैली में किया तथा जो यत्र-तत्र प्रेमचन्द से होती हुई आज तक पसरी पड़ी है), ब्रजभाषा-गद्य भी लिखा। हिन्दी-गद्य के पंचतत्वों से जो शरीर निर्मित हुआ उसके बाहु थे दो राजा¹ शिवप्रसाद सितारेहिन्द (1823-1895 ई.) और लक्ष्मणसिंह (1826-1896 ई.) जिनमें एक हिन्दी-हृद्देश उत्तर प्रदेश के पूर्व में स्थित प्रकाश-नगर काशी के थे और दूसरे पश्चिम में स्थित अग्र-नगर आगरा के।² राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द एक विलक्षण विद्वान् एवं प्रतिभाशाली शैलीकार थे। उनका 'राजा भोज का सपना' कथा-शैली में रचित एक विलक्षण निबन्ध है जो मानव के लोकहितकारी कार्यों के मूल में निहित लोकेषण की विवृति करता है, विनय की प्रेरणा देता है, जिसकी गद्य-शैली का नितान्त प्रसन्न एवं अकृतित्रम है। किन्तु 'इतिहास-तिमिरनाशक' में राजा साहब उर्दूबाज़ी की उस लपेट में आ ही गए जिसमें कालान्तर में 'हिन्दुस्तानी' (बाबर की नहीं, ग्रिलक्राइस्ट की) के छद्मनाम से गाँधी, मोतीलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू जवाहरलाल नेहरू, आनन्दनारायण मुल्ला इत्यादि को अभिभूत किया। शिवप्रसाद सितारेहिन्द की उक्त दो रचनाओं से दो उद्धरण प्रस्तुत हैं जो दो शैलियों का प्रतिनिधित्व करते हैं:

1. वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराज भोज का नाम न सुन हो। उसकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े-बड़े महिपाल नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े-बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते। सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और खज़ाना उसका सोने-चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा हरिश्चन्द्र को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया।

2. हम लोगों को जहाँ तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए कि जो आम-फ़हम और खास-पसन्द हों अर्थात् जिनको ज़्यादा आदमी समझ सकते हैं और जो यहाँ के पढ़े-लिखे आलिम-फ़ाजिल, पंडित, विद्वान् की बोल-चाल में छोड़े नहीं गए हैं और जहाँ तक बन पड़े हम लोगों हर्गिज़ ग़ैर-मुल्क के शब्द काम में न लाने चाहिए और न संस्कृत ही टकसाल कायम करके नए-नए ऊपरी

1. दोनों जन्मजात राजा न थे, क्षेत्र-विशेष के शासक थे, अंग्रेज़-दत्त 'राजा' की पदवी से वैसे ही अलंकृत थे जैसे अहमद ख़ाँ, रवीन्द्र, इक़्बाल, राधाकृष्णन्, इत्यादि 'सर, गाँधी 'कैसरेहिन्द' पदक से।

2. कदौर, रैदास, तुलसी, भारतेन्दु, रत्नाकर, प्रेमचन्द, प्रसाद इत्यादि की काशी हिन्दी की प्रकाश-नगरी है। सूर (रुनकता), कुलपति मिश्र, सूरति मिश्र, लल्लूजी 'लाल', लक्ष्मणसिंह, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव इत्यादि का आगरा हिन्दी का अग्र-नगर रहा है।

शब्दों के सिक्के जारी करने चाहिए जब तक कि हम लोगों को उसके जारी करने की जरूरत न साबित हो जाय अर्थात् यह कि उस अर्थ का कोई शब्द हमारी ज़बान में नहीं है या जो है अच्छा नहीं है या कविताई की जरूरत या इल्मी जरूरत या कोई और खास जरूरत साबित हो जाय।

एक साँस में ही राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द 'गैर-मुल्क के शब्द काम में न लाने' की वकालत करते हैं किन्तु ठीक उसी में विदेशी शब्दों का भरपूर एवं अनावश्यक प्रयोग भी करते हैं। यह ठीक वैसा ही है जैसा एक ओर नेहरू का संविधान में हिन्दी को राजभाषा स्वीकृत करना और दूसरी ओर किसी एक राज्य तक का इसे-निरस्त करने का निशेषाधिकार¹ भी दे डालना—वैसे उन्होंने रानी एलिज़ाबेथ द्वितीय के स्वागत-भाषण में जोर-शोर से कहा था कि पिछले तेरह वर्षों में भरत में अंग्रेज़ी जानने वालों की संख्या दूनी हो गई है! स्व. राजीव गाँधी हिन्दी-क्षेत्र में हिन्दी की वकालत करते थे और तमिलनाडु में हिन्दी का विरोध—उनकी भाषा हिन्दी-उर्दू-अंग्रेज़ी का तिगड़ा होती थी। यदि राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द 'राजा भोज का सपना' एवं 'मानवधर्मसार' की भाषा को ही गतिशील करते अर्थात् 'इतिहास तिमिरनाशक' की तिमिराच्छन्न शैली से दूर रहते तो हिन्दी-गद्य के इतिहास में उन्हें वही स्थान प्राप्त होता जो भारतेन्दु को हुआ। भारतेन्दु ने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द से अंग्रेज़ी सीखी भी किन्तु भाषा के मामले में गुरु को आचार्य नहीं माना, उनका अनुकरण नहीं किया और सहज-सरल दासभावमुक्त-हीनभावमुक्त गद्य-शैली का प्रयोग कर आधुनिक हिन्दी के जनक का अजर-अमर गौरव प्राप्त किया।

राजा लक्ष्मणसिंह ने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की उर्दूपरस्ती के विरोध में उर्दू-विरोध का दूसरा छोर पकड़ा जिसके परिणामस्वरूप वे सहज मध्यता-प्रतिपदा से कट गए। प्रख्यात क्रान्तिकारी हरदयाल ने कहा था कि एक-एक अरबी-फ़ारसी शब्द हमारी दासता का स्मरण कराता है। किन्तु ऐतिहासिक सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता। शताब्दियों के विविध सम्बन्धों एवं सम्पर्कों के कारण अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्दों का जीवन में भारी समावेश हो गया है, जिसका उच्छेद न सम्भव है, न आवश्यक। मोहम्मद अली करीम चागला (छागला)² जैसे महान् नेताओं की उर्दू को देवनागरी लिपि में लिखने की सलाह उर्दू ने कभी नहीं सुनी। परिणाम सामने हैं। जिन्हें उर्दू का अलिफ़-बे भी नहीं आता, वे भी मातृभाषा उर्दू लिखाते हैं। यदि हिन्दी अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अंग्रेज़ी इत्यादि के शब्दों से बिदकने लगेगी तो उसकी वही दुर्दशा होगी जो संस्कृत एवं हिन्दी से बिदकने के कारण उर्दू की हुई है। इसका यह अर्थ नहीं कि अज्ञानवश हिन्दी की अस्मिता को ही मिटाने का दुष्प्रयत्न किया जाए, जैसाकि दूरदर्शन ('दूरदर्शन' का असली नाम) तथा अन्य चैनल्स एवं आभासवानी (आकाशवाणी का असली नाम), कई कॉमेड, कई कश्मीरों और कई अधिकारी करते हैं। हमें संवैधानिक राजभाषा अपनानी है। भाषा को दोगड़ा-तिगड़ा-चौगड़ा बनाना उसकी अस्मिता का विनाश ही कर सकता है। राजा लक्ष्मणसिंह एक महान् एवं निष्ठावान हिन्दी-सेवी थे। उनका विशुद्ध हिन्दी-गद्य डॉ. श्यामसुन्दरदास, डॉ. सम्पूर्णनन्द, महाकवि प्रसाद³ इत्यादि के गद्य का प्रेरक तक कहा जा सकता है। वे हिन्दी के एक अमर गद्यकार हैं। किन्तु उनका भाषा-दर्शन संकीर्ण है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. हमारे मत में हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं।⁴ हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानों और फ़ारसी पढ़े हुए हिन्दुओं की बोलचाल है। हिन्दी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी-फ़ारसी के। परन्तु कुछ अवश्य नहीं है कि अरबी-फ़ारसी के बिना हिन्दी न बोली जाय न हम उस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी-फ़ारसी के शब्द भरे हों।
2. तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो और किस देश की प्रजा को विरह में व्याकुल छोड़ यहाँ पधारे हो? क्या कारण है जिससे तुमने अपने कोमल गात को कठिन तपोवन में आकर पीड़ित किया है?

1. वीटो-पॉवर।

2. चागला ने भूमिनाशक ऋद्धि के बजाय प्रगतिशील दाह को वरीयता दी (रंगकर्मी सफ़्फ़र हाशमी, इस्मत चुगताई, न्यायमूर्ति हिदायतुल्ला इत्यादि ने भी चागला का अनुकरण किया)। ईसाई ब्रिटेन के दार्शनिक बर्टाण्ड रसेल से पारसी भारतीय फ़ीरोज़ गाँधी, नवल टाटा इत्यादि तक ने कालातीत धार्मिक रूढ़ियों, (ईसाइयों में विवर-शयन, पारसियों में शान्ति-स्तम्भ पर शव के पक्षी-भक्षण) पर प्रगतिशील दाह-कर्म को वरीयता प्रदान की। सिंगपुर, हॉगकॉग इत्यादि में मुसलमान दाह कार्य करते हैं।

3. संयोगात् तीनों काशी-संपृक्त।

4. अव्यावहारिक-आदर्शवादी नेताओं, परकीयताग्रस्त विद्वानों तथा संकीर्ण जातिवादी व्यक्तियों द्वारा बनाया गया भारी-भरकम भारतीय संविधान (जिसके कोड़ियों अवसरवादी संशोधनों ने उसे थिंगलियों का अजायबघर बनाकर छोड़ दिया है) भी इस तथ्य को स्वीकार करता है।

निस्सन्देह, राजा लक्ष्मणसिंह ने हिन्दी-गद्य को उस बिन्दु तक पहुँचाया जिससे आगे सार्वभौम गद्य का विकास हो सकता है। सार्वभौम हिन्दी-गद्य का उद्भव एवं विकास भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885 ई.) के द्वारा किया गया, जिन्होंने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की उर्दूबाज़ी एवं राजा लक्ष्मणसिंह के उर्दू-विरोध से बचते हुए उस माध्यम-प्रतिपदा का उद्घाटन किया, जिसे हिन्दी-गद्य के सर्वश्रेष्ठ निर्माता, विशुद्ध-गद्यावतार एवं खड़ीबोली-कविता के आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.) ने अधुनातन एवं मानक रूप प्रदान किया। भारतेन्दु रामप्रसाद निरंजनी, लल्लूजी 'लाल', सदल मिश्र, सदासुखलाल 'नियाज़', इंशाअल्ला ख़ाँ, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द एवं राजा लक्ष्मणसिंह के योग्यतर उत्तराधिकारी सिद्ध होते हैं, जिनकी सृजनात्मक प्रतिभा की समता तो उनसे श्रेष्ठतर निर्माता एवं नेता महावीरप्रसाद द्विवेदी तक नहीं कर सकते। स्वयं उन्होंने तथा उनके महान् सहयोगियों प्रतापनारायण मिश्र (1846-1894 ई.), बालकृष्ण भट्ट (1844-1914 ई.), प्रेमघन (1855-1923 ई.) इत्यादि ने हिन्दी को आधुनिक रूप प्रदान किया।

हिन्दी-गद्य की यह प्रतिष्ठा उस विषम समय में हुई जब हिन्दी-समर्थन के बाद शिवप्रसाद सितारेहिन्द¹, अहमद ख़ाँ, हैवेल² और विदेशों के गार्सा द तासी जैसे प्रभावी व्यक्ति हिन्दुस्तानी या उसके छद्म-रूप उर्दू को थोपने की फ़िराक में थे। दूसरी ओर, लक्ष्मणसिंह, भारतेन्दु (जो उर्दू-रचनाकार के रूप में 'शायर मारुफ़ बुलबुले-हिन्दोस्तान' कहे जाते थे), प्रतापनारायण मिश्र (जिनका 'दीवान-विरहमन' महशूर था), नवीनचन्द्र राय (बंगाली सज्जन जो पंजाब में रहते थे) और विदेशों के फ़्रेडेरिक पिंकॉट जैसे प्रभावी व्यक्ति हिन्दी की अस्मिता की रक्षा में सन्नद्ध थे। शिवप्रसाद सितारेहिन्द की हिन्दीरक्षायत्नों की मिश्रबन्धु ने भारी प्रशस्ति की है, तदनुवर्ती आ. शुक्ल ने हिन्दुस्तानी-पक्षपात के प्रत्याख्यान के साथ भी इस यत्नों का उल्लेख किया है, किन्तु मेरे विचार से जिस हिन्दी या हिन्दुस्तानी का राजा साहब समर्थन कर रहे थे वह उर्दू से भी अधिक हिन्दीघाती थी और अब तक बनी हुई है, अतः उनकी वस्तुवादी आलोचना तभी सम्भव है जब कठोर शब्दों का प्रयोग किया जाए। लक्ष्मणसिंह ने उर्दू का पार्थक्य विवेचित किया, प्रतापनारायण मिश्र ने उसके 'दोगलेपन' पर प्रकाश डाला और नवीनचन्द्र राय ने स्पष्ट किया, "उर्दू के प्रचलित होने से देशवासियों का कोई लाभ न होगा क्योंकि वह भाषा खास मुसलमानों की है। उसमें मुसलमानों ने व्यर्थ बहुत-से अरबी-फ़ारसी के शब्द भर दिए हैं। पद्य या छन्दोबद्ध रचना के भी उर्दू उपयुक्त नहीं। हिन्दुओं का यह कर्तव्य है कि वे अपनी परम्परागत भाषा की उन्नति करते चलें। उर्दू में आशिकी कविता के अतिरिक्त किसी गम्भीर विषय को व्यक्त करने की शक्ति नहीं"। हम लक्ष्मणसिंह, नवीनचन्द्र राय, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट इत्यादि हिन्दी-रक्षकों का सदैव कृतज्ञ रहेगा। इन्होंने अभिजातवाद, परकीयतावाद, पतनवाद इत्यादि से राष्ट्र की रक्षा की, राष्ट्रभाषा की जन-ज्योति को बुझने नहीं दिया। इसके लिए इन्हें साधना करनी पड़ी। भारतेन्दु, मिश्र, भट्ट इत्यादि राष्ट्रभाषा के जुझारू योद्धा भी थे। ये समतावादी, जनवादी एवं प्रगतिवादी लोकनायक भी थे। इनके गद्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जो केवल अभूतपूर्वतः विकसित गद्य के सूचक नहीं अपितु प्रगति एवं प्रवाह के प्रतीक भी हैं :

1. हिन्दी नयी चाल में ढली सन् 1876 ई.। (कालचक्र)

2. क्या सारे संसार में लोग सुखी रहें और हम लोगों का परम बन्धु, पिता, मित्र, पुत्र, सब भावनाओं से भावित, भारत का एकमात्र हित, हिन्दी का एकमात्र जनक, भाषा-नाटकों का एकमात्र जीवनदाता हरिश्चन्द्र ही दुखी हो?... मित्र! तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो, तुम्हें इनकी निन्दा से क्या? स्मरण रखो, ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोकबहिष्कृत होकर इनके सिर पर पैर रख विहार करोगे!³ (प्रेमयोगिनी)

3. आज बड़ा-दिन⁴ है, क्रिस्तान लोगों को इससे बढ़कर कोई आनन्द का दिन नहीं है। किन्तु मुझको आज उलटा और दुःख है। इसका मनुष्य-स्वभाव-सुलभ इर्ष्या मात्र है। मैं कोई सिद्ध नहीं कि राग-द्वेष से विहीन हूँ। जब मुझे अंग्रेज़ी रमणी लोग मेदसिंचित

1. शिवप्रसाद सितारेहिन्द अंग्रेज़ी-शासन को अपने विद्रोही शिष्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रति भड़का तक रहे थे और यदि भारतेन्दु क्षयी न होते तो सम्भवतः उन्हें दंडित भी होना पड़ता।
2. यह 1867-1868 के आसपास तब के संयुक्त प्रान्त 'आगरा और अवध' (यूनाइटेड प्रॉविन्सेज़ ऑफ़ आगरा एंड अवध) के शिक्षा-विभाग का प्रधान था। प्रख्यात पुरातत्वेत्ता जगदीशचन्द्र चतुर्वेदी ने 'भारतीय कलाविद' शीर्षक उत्कृष्ट ग्रन्थ में सर अलेक्जेंडर कनिंघम, फ़्रेडेरिक सीमन ग्राँउस, आनन्द के कुमारस्वामी, राय कृष्णदास, सी. शिवराममूर्ति, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीचन्द्र, भगवतशरण उपाध्याय के साथ अर्नेस्ट बी. हैवेल पर भी निबन्ध लिखा है (समयक्रम में कनिंघम के बाद)।
3. आत्मपरिचय एवं भविष्यवाणी।
4. क्रिसमस या एक्समस जो 25 दिसम्बर को पड़ता है। कहते, ईसा या एशु इसी दिन पैदा हुए थे। उनके मृत्युदंड-दिवस को गुड-फ्रायडे कहते हैं।

केश-राशि, कृत्रिम कुंतलजूट, मिथ्या रत्नाभरण, विविध-वर्ण वसन से भूषित, क्षीण कटिदेश कसे, निज-निज पतिगण के साथ प्रसन्नवदन इधर से उधर फर-फर कल' की पुतली की भाँति फिरती हुई दिखाई पड़ती हैं तब इस देश की सीधी-सादी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही बात मेरे दुःख का कारण होता है। (नीलदेवी : वक्तव्य) —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

4. सच है, “सवतें भले है मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगत गति” मजे से पराई “गायक बैठना, खुशामदियों से गप मारा करना, जो कोई तिथ-त्योहार आ पड़ा तो गंगा में बदन धो आना, गंगापुत्र² को चार पैसे देकर संत-मेंत में धरमत-धरमऔतार का खिताब पाना; संसार-यथार्थ दोनों तो वन गए, अब काहे की है-है और काह की खे-खे? आफत तो विचारे जिन्दादिलों की है जिन्हें न यों कल न वों कल; जब स्वदेशी भाषा का पूर्ण प्रसार था तब के विद्वान् कहते थे, “गार्वाणवाणीषु विशालबुद्धिस्तथान्यभाषारसलोलुपोहम्”। आज अन्य भाषा वरंच अन्य भाषाओं का करकट (उर्दू) छाती का पीपल हो रही है, अब यह चिन्ता खाए लेती है कि कैसे इन चुड़ैल से पीछा छूटे। (समझदार की मौत है) —प्रतापनारायण मिश्र

5. इधर पचास-साठ वर्षों से अंग्रेजी राज्य में अमन-चैन का फायदा पाए हमारे देश वाले किसी भलाई की ओन न झुके वरन् दस वर्ष की गुड़ियों का व्याह कर पहिले से ड्योढ़ी-दूनी सृष्टि अलवत्ता बढ़ाने लगे। हमारे देश की जनसंख्या अवश्य घटना चाहिए। .. आत्मनिर्भरता में दृढ़, अपने कूवते-वाजू पर भरोसा रखने वाला पुष्टवीर्य, पुष्टबल, भाग्यवान् एक सन्तान अच्छा। ‘कूकर-सूकर-से’ निकम्मे, रग-रग में दास-भाव से पूर्ण परभाग्योपजीवी दस किस काम के? (आत्मनिर्भरता) —बालकृष्ण भट्ट

6. यद्यपि इस पुस्तक की समालोचना करने के पूर्व इसके समालोचकों की समालोचनाओं की समालोचना करने की आवश्यकता जान पड़ती है क्योंकि जब हम इस नाटक की समालोचना अपने बहुतेरे सहयोगी और मित्रों को करते देखते हैं तो अपनी ओर से जहाँ तक खुशामद और चापलूसी का कोई दरजा पाते हैं, शेष छोड़ते नहीं दिखाते।.... गर्जें कि इस सफ़हे की कुछ स्पीचें ‘मरचेन्ट ऑफ वेनिस’ से ली गईं। पहिले तो मैं यह पूछता हूँ कि विवाह में मुद्रिका-परिवर्तन की रीति इस देश की नहीं बल्कि यूरोप की। मैंने माना कि आप शकुन्तला को दुष्यन्त के मुद्रिका देने का प्रमाण देंगे पर वो तो परिवर्तन न था किन्तु महाराज ने अपना स्मारक-चिह्न दिया था।³ —प्रेमघन

सुधारवादी युग का गद्य कोष-साहित्य न होकर जीवन-साहित्य है, जिसमें परतन्त्र एवं शोषित राष्ट्र की दयनीय स्त्री-जाति पर शोक प्रकट किया गया है, नारी-जागरण का शंखनाद किया गया है, वेश्यागमन पर प्रहार किया गया है, बालिका-विवाह का प्रत्याख्यान किया गया है, जनसंख्या-नियन्त्रण का ऐसा प्रतिपादन किया गया है, धार्मिक पाखंड का खंडन किया गया है, राष्ट्रप्रेम का प्रचार किया गया है। परतन्त्रता के उस युग में राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के सर्वांगीण उत्कर्ष के हेतु जिसे साहसपूर्ण एवं वीरत्वपूर्ण साहित्य की सृष्टि भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र एवं बालकृष्ण भट्ट इत्यादि ने की है वैसी आज स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साठ वर्ष बाद भी नहीं की जा रही।

विविध गद्य-विधाओं का उद्भव एवं विकास

नाटक

सुधारवादी युग में गद्य की निबन्ध, उपन्यास इत्यादि विधाओं का उद्भव हुआ, किन्तु नाटक सबसे बाजी मार ले गया। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास एवं श्रीनिवासदास प्रभृति कुशल नाट्यकारों ने विविधरूपात्मक नाट्यरचना द्वारा परिमाणगत अतुलनीयता एवं गुणगत उत्कृष्टता का भव्य प्रदर्शन किया, रंगमंच को लोकप्रिय बनाया, सर्वकालासमन्वित इस सभ्यता-प्रतीक विधा को जनजीवन से संपृक्त किया। सुधारवादी युग के शतशः अनुरूप नाट्य-रचना के उद्देश्य अतीतगरिमा-मंडन, राष्ट्रवादी विचारधारा अथवा देशभक्ति का प्रतिपादन एवं पल्लवन, धार्मिक पाखंड का खंडन, सामाजिक विषमता का विरोध, वेश्यावृत्ति-उन्मूलन, दूत-दुष्परिणाम-चित्रण, व्यवहार-परिमार्जन इत्यादि थे। हिन्दी में सुधारवादी युग तक केवल 1700 ई. के आसपास रचित ‘आनन्द-रघुनन्दन’ (विश्वनाथ सिंह) एवं 1857 ई. के आसपास रचित ‘नहुष’ (गिरिधरदास अथवा गोपालचन्द्र) ही उल्लेख्य हैं किन्तु ये भी ब्रजभाषा-काव्य के अंग अधिक लगते हैं विशुद्ध नाटक कम, क्योंकि 1610 ई. के आसपास रचित ‘रामायण

1. यंत्र।

2. पंडा।

3. ‘आनन्दकादम्बिनी’ में श्रीनिवासदास कृत नाटक ‘संयोगिता-स्वयंवर’ की 21 पृष्ठों की स्त्रीत समालोचना के अंश। बालकृष्ण भट्ट ने ‘हिन्दी-प्रदीप’ में भी इसकी समालोचना की थी। आधुनिक हिन्दी-आलोचना का उद्भव इसी के साथ ही हुआ।

महानाटक' (प्राणचन्द्र चौहान), 1680 ई. के आसपास अनूदित 'शकुन्तल' (नेवाज) इत्यादि वस्तुतः काव्य हैं तथा 'देव-मायाप्रपंच नाटक' एक अप्रामाणिक रचना है जिसमें नाट्य तत्वों का अभाव है। भारतेन्दु ने 'मुद्राराक्षस' (संस्कृत से अनूदित), 'सत्य-हरिश्चन्द्र' (बांग्ला-नाटक का छायानुवाद—मौलिकप्राय), 'श्री चन्द्रावली' (नाटिका), 'नीलदेवी' (गीतिनाट्य), 'भारत-दुर्दशा' (नाट्यरासक), 'अंधेर नगरी' एवं 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (प्रहसन), 'विषस्य विषमोषधम्' (भाण) इत्यादि ऐतिहासिक, पौराणिक, भावात्मक, काल्पनिक, हास्य-व्यंग्य इत्यादि सभी प्रकार एवं आकार के नाटक लिखकर विश्वस्तर का स्पर्श किया है। भारतेन्दु का नाट्यकार-रूप उनके कवि-रूप से भी अधिक सफल है, यद्यपि वह कविता से इतना अधिक सम्पन्न है कि उसका कर्ता अनायास ही एक श्रेष्ठ कवि भी सिद्ध हो जाता है। भारतेन्दु के अनन्तर, सुधारवादी युग के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार प्रतापनारायण मिश्र बहुमुखी प्रतिभा में भी भारतेन्दु का स्मरण कराते हैं, जिनके 'कलिकौतुक' (रूपक), 'कलिप्रभाव', 'हठी हमीर', 'गोसंकट' (नाटक), 'जुवारी सुवारी' (प्रहसन) उन्हें एक सफल नाट्यकार' सिद्ध करते हैं। उपाध्याय पं. ब्रदीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की बहुमुखी प्रतिभा से 'भारत-सौभाग्य', 'वारांगना-रहस्य', 'प्रयाग-रामगमन' (नाटक), 'वृद्ध-विलाप' (प्रहसन) इत्यादि कृतियाँ भी उद्भूत हुई। श्रीनिवासदास का 'संयोगिता-स्वयंवर' नाटक तो इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसके कारण आलोचना की विधा का उद्भव हो ही गया! राधाकृष्णदास कृत 'महाराणा प्रताप' नाटक समग्र हिन्दी-साहित्य की एक श्रेष्ठ रचना है। राधाचरण गोस्वामी कृत 'अमरसिंह राठौर' भी प्रसिद्ध नाटक सिद्ध हुआ था। इन सभी नाट्यकारों ने मिलकर हिन्दी-नाटक को अत्यन्त सम्पन्न रूप प्रदान कर दिया। बालकृष्ण भट्ट, खड्गबहादुर मल्ल (आरत भारत), अम्बिकादत्त व्यास², कार्तिकप्रसाद खत्री इत्यादि ने भी नाटक-रचना में योगदान किया।

सुधारवादी युग की नाट्य-रचना में युग सर्वाधिक साकार हुआ है, क्योंकि इस विधा में राष्ट्रवाद, देशप्रेम, समाज-सुधार के प्रायः सभी प्रमुख विन्दुओं, हास-परिहास-व्यंग्य इत्यादि की जैसी अनूठी अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है वैसी किसी अन्य विधा में नहीं, काव्य तक में नहीं (जो शृंगारिकता, भक्तिभावना, अलंकृत प्रकृतिचित्रण इत्यादि में प्रायः पारम्परिक है, अधिकतर ब्रजभाषा में रचा गया है)। सुधारवादी युग का नाटक राष्ट्रीय पुनर्जागरण का सर्वोपरि प्रतीक है जिसमें परतन्त्रता, शोषण, प्रपीड़न, धार्मिक पाखंड, फूट, असमानता, बालविवाह, वृद्धविवाह, वेश्यावृत्ति, द्यूत, राष्ट्रमोपेक्षा इत्यादि का अभूतपूर्व समाहार विस्मय की सृष्टि करता है। इसकी भाषा जनभाषा है, शैली जनशैली। खेद है कि सुधारवादी युग में उन्नत नाटक की परम्परा को पहले व्यावसायिक पारसी थिएटर एवं कालान्तर में चलचित्र चर गया। दोनों पर अहिन्दी भाषी छाए रहे हैं। हिन्दी-चलचित्र की अस्मिता ही नहीं बन पाई। परकीय शोषकों ने हिन्दी-क्षेत्रों का विकट शोषण किया है—चलचित्र उनसे कैसे छूटता? हिन्दी-चलचित्र से तो पारसी थिएटर ही कही भला था, जिसके आगा हथ्र कश्मीरी, तुसलीदत्त 'शैदा', नारायणप्रसाद 'बेताब', राधेश्याम कथावाचक इत्यादि नाटककार सामाजिकता के प्रति सर्वथा जागरूक थे, भारतीय संस्कृति से पूर्णतः संपृक्त थे तथा आदर्श के प्रति निष्ठावान थे, जबकि चलचित्र क्रमशः परकीयता, मूल्यहीनता, आदर्शहीनता इत्यादि का प्रतीक ही बनता चला जा रहा है।³

उपन्यास

सुधारवादी युग में नाटक का गुण-परिमाण अद्वितीय रहा, तदनन्तर निबन्ध। मौलिकता एवं गुणवेत्ता में सुधारवादी युग का निबन्ध नाटक एवं काव्य से भी बाज़ी मार सकता है किन्तु परिमाण में उसका स्थान नाटक एवं काव्य के अनन्तर मानना समीचीन है। अन्य विधाएँ विशेष उत्कर्ष नहीं कर सकी किन्तु उपन्यास-रचना की दृष्टि से इस युग का ऐतिहासिक महत्व कोई नहीं नकार सकता। पंडित गौरीदत्त कृत 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870 ई.) हिन्दी का प्रथम उपन्यास है, 'कविताश्री' (अंडाल, पश्चिम बंगाल) के संपादक एवं हाइकुकार नलिनीकान्त के अनुसार भारतेन्दु की प्रेमिका (बंग सुन्दरी किन्तु बालविधवा) मल्लिका ने 1875 ई. में 'प्रेमप्रकाश' शीर्षक, 18-20 पृष्ठों का, नारी समस्या पर 'विप्लवी' उपन्यास रचा था, जो नारी-स्वातन्त्र्य का उद्घोष करता है। 1876 ई. में भारतेन्दु ने 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती' उपन्यास आरम्भ किया था, जिसके केवल दो पृष्ठ 'कविचन सुधा' में निकल पाए थे;⁴ श्रद्धाराम फिल्लौरी

1. प्रतापनारायण मिश्र ने भी 'भारत-दुर्दशा' नाटक लिखा है।

2. व्यास जी ने भी 'भारत सौभाग्य' (1887 ई.) नाटक लिखा है।

3. पारसी-थिएटर एवं हिन्दी-चलचित्र दोनों ही आदर्शवादी युग में प्रभावी हुए। यहाँ केवल प्रासंगिक चर्चा।

4. कविताश्री, वर्ष 39 अंक 225, जनवरी 2005, पृष्ठ 5।

कृत 'भग्यवती' (1877 ई.) वस्तुतः द्वितीय, लाला श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरु' (1882 ई.) तृतीय। आ. शुक्ल एवं उनके अंधानुकरणकर्त्ताओं द्वारा 'परीक्षागुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानना निराधार है (फिल्लौरी को फुल्लौरी लिखना तो एकदम गलत है ही)। बालकृष्ण भट्ट ('सौ अजान एक सुजान', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'रहस्य-कथा', राधाकृष्ण (निस्सहास हिन्दू), लज्जाराम शर्मा (धूर्त रसिकलाल), जगमोहन सिंह (श्यामस्वप्न) इत्यादि इस युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। किन्तु इस युग के उपन्यासकारों में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई देवकीनन्दन खत्री को, जिनके तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों 'चन्द्रकान्ता' (1888 ई.) एवं 'चन्द्रकान्ता संतति' (1896 ई.) ने सारे भारत में तहलका ही मचा दिया। हजारों लोगों ने इन्हें पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। आ. नरेन्द्रदेव जैसे प्रतिभाशाली विद्वान् एवं नेता ने अपने कैशोर्य में 'चन्द्रकान्ता-संतति' को 17 बार पढ़ा था! आज भी 'चन्द्रकान्ता' एवं 'चन्द्रकान्ता-संतति' के संस्करण-पर-संस्करण निकलते रहते हैं। देवकीनन्दन खत्री पाठक (विशेषतः बालक एवं किशोर पाठक) को एक अद्भुत कल्पना-लोक का तन्मय यात्री बनाने में सर्वथा समर्थ हैं। यद्यपि किशोरीलाल गोस्वामी (1899 ई. में लवंगलता) एवं गोपालराम गहमरी (1896 ई. में 'अद्भुत लाश' एवं 1899 ई. में 'गुप्तचर') ने भी उपन्यास-रचना का समारंभ इसी युग में किया था किन्तु वस्तुतः उन्हें आदर्शवादी युग में समाहित करना ठीक होगा। इस युग में वकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (1838-1894 ई.), रमेशचन्द्र दत्त (1848-1909 ई.), तारकनाथ गांगुली (1845-1891 ई.), दामोदार मुखर्जी (1843-1907 ई.) प्रभृति के बांग्ला-उपन्यासों के अनुवाद भी लोकप्रिय हुए।

सुधारवादी युग के पं. गौरीदत्त, श्रद्धाराम फिल्लौरी, श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट इत्यादि के उपन्यासों का उद्देश्य समाज एवं व्यक्ति का सुधार मात्र है, यथार्थ वस्तु-प्रस्तुति एवं मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण नहीं। संस्कृत-सूक्तियों से अंग्रेजी-उद्धरणानुवादों तक के प्रयोग आरम्भिकता की सूचना देते हैं। भाषा भी भारी-भरकम है। दूसरी ओर, प्रतिनिधि उपन्यास-रचना से हटकर एकदम जादुई दुनिया के जादूगर चित्ते देवकीनन्दन खत्री का उद्देश्य केवल मनोरंजन है। किन्तु मनोरंजन का महत्व भी नकारा नहीं जा सकता। अतः देवकीनन्दन खत्री को ही सुधारवादी युग का प्रमुख उपन्यासकार मानना उचित होगा, भले ही वे अपने युग के प्रतिनिधि न हों।

कहानी

यद्यपि अम्बिकादत्त व्यास, शिवप्रसाद सितारेहिन्द, चंडीप्रसाद सिंह इत्यादि ने पुराणकथाओं एवं लोककथाओं पर आधृत कुछ रचनाएँ प्रस्तुत कीं तथा मुंशी नवलकिशोर ने ऐसे ही सौ रचनाओं की 'मनोहर कहानियाँ' सम्पादित की तथापि सुधारवादी युग में कहानी का अभाव ही रहा। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द कृत 'राजा भोज का सपना' एवं भारतेन्दु कृत 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' जैसी उत्कृष्ट रचनाओं का कलेवर कहानी का लग सकता है तथापि ये कथा-शैली में रचित निबन्ध हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य विचार-संप्रेषण है।

निबन्ध

सुधारवादी युग का निबन्ध अतीव मौलिक, अतीव कलात्मक एवं अतीव जनपरक है। जो अनौपचारिकता एवं पाठक के साथ आत्म्यता सुधारवादी युग के निबन्ध में दृग्गत होती है वह हिन्दी-निबन्ध के स्वर्णयुग आदर्शवादी युग के निबन्ध में भी नहीं (भले ही वह विषय-स्फीति एवं गरिमा, भाषा एवं शैली में श्रेष्ठतर हो)। परवर्ती निबन्ध में पाठक-आत्म्यता का हास होता गया तथा कृतित्रमता आती गई। यद्यपि भारतेन्दु (हरिश्चन्द्र मैगजीन), प्रतापनारायण मिश्र (ब्राह्मण), बालकृष्ण भट्ट (हिन्दी-प्रदीप), प्रेमघन (आनन्द-कादम्बिनी), श्रीनिवासदास (सदादर्श), राधाचरण गोस्वामी (भारतेन्दु), अम्बिकादत्त व्यास, काशीनाथ खत्री इत्यादि ने ही नहीं प्रत्युत पूर्ववर्ती शिवप्रसाद सितारेहिन्द इत्यादि ने भी धर्म, दर्शन, कला, जीवनी, भाषा इत्यादि पर शत-शत निबन्ध रचकर विधा को अतीव सम्पन्न रूप प्रदान किया (गुणवत्ता में सुधारवादी युग का निबन्ध समग्र विधाओं में अन्यतम है, भले ही स्फीति में नाटक हो), तथापि प्रतापनारायण मिश्र एवं बालकृष्ण भट्ट युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार थे। आ. शुक्ल ने इनकी तुलना एडिसन एवं स्टील से की है। अंग्रेजी-साहित्य के शुक्ल जी से भी बड़े अध्येता आ. श्यामसुन्दरदास ने प्रतापनारायण मिश्र को हिन्दी का मॉन्टेन और लैंब कहा है तथा निबन्ध-रचना में बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं रामचन्द्र शुक्ल से भी श्रेष्ठतर माना है। फ्रांस के मॉन्टेन (1533-1592 ई.) निबन्ध के जनक हैं, जिनकी

अनौपचारिक शैली के निबन्ध मॉन्तेन-शैली के निबन्ध कहे जाते हैं। प्रतापनारायण मिश्र के निबन्ध अपनी अनौपचारिकता में मॉन्तेन के निबन्धों का स्मरण कराते हैं। यह अवश्य है कि मॉन्तेन में व्यथा-वेदना एवं अवसाद-अवसान की गहनता अधिक है। उनकी विद्रोहपरक अशान्त चिन्ता-धारा ने पैस्कल, टॉमब्रॉउन, रूसो, नीत्शे प्रभृति चिन्तकों को प्रभावित किया। उनकी रचनाओं के अनुवाद से शेक्सपीयर ने लाभ उठाया। उनके दृष्टिकोण के कारण चार्ल्स लैम्ब अंग्रेजी के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार बन गए, अंग्रेजी के मॉन्तेन बन गए। किन्तु प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों की सहजता अनौपचारिकता एवं प्रतिभा विलक्षणता भी अपने-आप में अप्रतिम हैं। 'ध', 'ट', 'द', 'ह' जैसे विषयों पर उत्कृष्ट निबन्ध-रचना असाधारण प्रतिभा का ही द्योतक हो सकता है। 'दाँत', 'भौं', 'मुच्छ', 'आप', 'खुशामद', 'बात' जैसे विषयों को जिस प्रातिभ रोचकता से प्रतापनारायण मिश्र ने निबद्ध किया है वह विस्मयकारिणी है। 'नारी', 'परीक्षा', 'मनोयोग', 'समझदार की मौत है' जैसे विषय भी उनकी मस्ती और ज़िन्दादिली के कारण मनोहारी हो गए हैं। उनकी खड़ीबोली में बैसवाड़ी (बैसवारी) का बहुत ही सजीव योग दृग्गत होता है। विश्व-निबन्ध का कोई भी मर्मी विद्वान् उनके निबन्ध पढ़कर आ. श्यामसुन्दरदास की भावना से सहमत हो सकता है। वस्तुतः वे मॉन्तेन एवं लैम्ब के वर्ग के आत्मभिव्यक्ति से पूर्ण अनौपचारिक निबन्धकार ही हैं, एडिसन या स्टील के वर्ग के रुचि-परिष्कारक या व्यक्तित्व-सुधारक निबन्धकार नहीं अतः आ. शुक्ल की एतद्विषयक स्थापना का अर्थ केवल इतना है कि भट्ट एवं मिश्र ने हिन्दी-निबन्ध को लोकप्रियता एवं लोकमान्यता दिलाई—अंग्रेजी में यह कार्य एडिसन एवं स्टील ने किया था। कई शहरीपन का दिखावा करने वाले आत्मरस से वंचित सज्जन ('विद्वान' भी) मिश्र के निबन्धों में 'गँवारूपन' की गंध पाते हैं। निवेदन है कि गँवारूपन तो तुलसी और सूर में भी भरा पड़ा है। भारत गाँवों का देश रहा है। गाँव प्रधान सर्जक भी है, अर्जक भी। अतः गाँव से एलर्जी जनविरोधी भी है, पाखंडपूर्ण भी। साहित्य का गहन रस गाँव से संपृक्त है। लोककथाओं के प्रकाशन पर विकसित अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान इत्यादि की अपार रुचि है। अतएव, 'गँवारूपन' पर भुनभुनाना मूर्खतापूर्ण भी है, लोकतन्त्र-अवमानताकारी भी।

बालकृष्ण भट्ट निस्सन्देह हिन्दी के एडिसन हैं जिनका 'प्रदीप' हिन्दी का 'स्पेक्टेटर' था। भट्ट जी पाठक-परिष्कारक निबन्ध रचते थे। उनका उद्देश्य समाज-सुधार एवं व्यक्ति-परिष्कार है। 'कृषकों की दुरवस्था', 'राजा और प्रजा', 'अंग्रेजी-शिक्षा और प्रकाश', 'हमारे नए सुशिक्षितों में परिवर्तन', 'देशसेवा-महत्व', 'बाल-विवाह', 'स्त्रियों और उनकी शिक्षा', 'महिला-स्वातन्त्र्य' इत्यादि विषय सुधारवादी युग को साकार कर देते हैं। किन्तु ये विषय पत्रकारिता के विशेष निकट हैं। पत्रकारिता द्वितीय श्रेणी की साहित्यिकता है। अतः भट्ट के श्रेष्ठ साहित्यिक निबन्ध 'कल्पना-शक्ति', 'आशा', 'बातचीत', 'खटका', 'ईश्वर भी क्या ठठोल है', 'देवताओं से हमारी बातचीत' इत्यादि ही हैं। भट्ट खरी-खरी कहते हैं किन्तु शिष्टता के साथ। उनके निबन्ध नागर-निबन्ध हैं। अतः कई लेखकों ने उन्हें अपने युग का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार तक माना है। यद्यपि उन्होंने 'आँसू' एवं 'चन्द्रोदय' जैसे उत्कृष्ट भावात्मक निबन्ध भी लिखे हैं तथापि उनके अधिकांश निबन्ध विचारात्मक हैं। औपचारिक या विचारात्मक निबन्ध फ्रांसिस बेकन (1561-1626 ई.) से संपृक्त है जो अंग्रेजी-निबन्ध के जनक हैं तथा जिन्होंने मॉन्तेन से प्रेरित होकर निबन्ध रचे तो किन्तु उनसे प्रभावित नहीं हुए। लॉर्ड बेकन के निबन्ध राजकुमार-राजकुमारियों के ज्ञानसंवर्द्धन, रुचिपरिष्कार एवं व्यक्तित्वसुधार के लिए लिखे गए विचारपूर्ण निबन्ध हैं जो सूत्र-शैली में निबद्ध हैं, अर्थात् जो व्यास-शैली के न होकर समास-शैली के हैं। यद्यपि भट्ट सूत्र-शैली या समास-शैली का प्रयोग बहुत कम निबन्धों में किया है अर्थात् उनके अधिकांश निबन्ध व्यास-शैली के हैं, तथापि वे मॉन्तेन या लैम्ब के नहीं प्रत्युत बेकन या एडिसन या स्टील के निकट पड़ जाते हैं। उनके निबन्धों में प्रातिभा सृजन प्रधान नहीं है, प्रयत्न लेखन प्रधान है। भाषा-शैली की दृष्टि से कहीं-कहीं फ़ारसीवाजी, प्रायः अंग्रेजी-शब्दप्रयोग, यत्र-तत्र-सर्वत्र संस्कृत, फ़ारसी वगैरह के उद्धरणों का आतंक सहज नहीं अपितु कृत्रिम प्रतीत होने लगता है। अतः सृजनात्मक साहित्य के निकष पर मिश्र ही श्रेष्ठतर निबन्धकार सिद्ध होते हैं। मॉन्तेन बेकन से श्रेष्ठतर निबन्धकार हैं क्योंकि वे सृष्टि करते हैं, विचार नहीं। अंग्रेजी का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार लैम्ब को माना जाता है, बेकन को नहीं, क्योंकि लैम्ब सृजनात्मक है और बेकन विचारात्मक (भले ही दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, अंग्रेजी-निबन्ध-जनक बेकन के व्यक्तित्व की समता में लैम्ब का व्यक्तित्व नगण्यवत् लगे—बेकन ब्रिटेन के अरस्तू थे)। सृजनात्मक मूल्यों की अवहेलना से साहित्य का सम्यक् आकलन सम्भव नहीं। आलोचना परकीयताबद्ध नहीं, मूल्यबद्ध होनी चाहिए।

राज शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने 'राजा भोज का सपना' शीर्षक कथा-शैली का निबन्ध लिखा है जो लोकेषणा की विवृति में अप्रतिम है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'एक अद्भूत अपूर्व स्वप्न' शीर्षक कथात्मक निबन्ध पर उसका परोक्ष प्रभाव पड़ा है। सितारेहिन्द प्रासंगिक निबन्धकार मात्र थे। किन्तु भारतेन्दु एक उत्कृष्ट निबन्धकार थे जिनके 'वैष्णवता और भारतवर्ष', 'नाटक या दृश्यकाव्य' जैसे उच्चकोटि

के निबन्ध चिरस्मरणीय हैं। उन्होंने मोहम्मद, अली, हुसैन इत्यादि पर जीवनी-निबन्ध भी लिखे हैं। किन्तु निबन्धकार के रूप में प्रतापनारायण मिश्र एवं बालकृष्ण भट्ट के युग्म ही अन्यतम हैं। प्रेमघन का निबन्धकार-रूप मिश्र, एवं भारतेन्दु के अनन्तर सर्वाधिक उल्लेखनीय है। अम्बिकादत्त व्यास ने धर्म पर श्रेष्ठ निबन्ध रचे।

सुधारवादी युग के निबन्ध का उद्देश्य देशप्रेम-संचार, राष्ट्र-सुधार एवं व्यक्तित्व-परिष्कार था, जिसमें उसे भरपूर सफलता प्राप्त हुई तथा आदर्शवादी युग के निबन्धकार उससे पर्याप्त प्रभावित हुए। बालमुकुन्द गुप्त पर प्रतापनारायण मिश्र का परोक्ष प्रभाव स्पष्ट है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी भी मिश्र के प्रशंसक थे। बालकृष्ण भट्ट की विचारात्मकता का विकास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों में देखा जा सकता है। भारतेन्दु की भावुकता को माधवप्रसाद मिश्र ने पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठित किया। निस्सन्देह, सुधारवादी युग के निबन्ध में यत्र-तत्र अनौपचारिकता की अति दिखाई दे जाती है, व्यक्तित्व-परिष्कार थोपा-थापा लगने लगता है, भाषा में परिनिष्ठता अल्प ही है, वर्तनी की विशृंखलता भी मिल जाती है, विरामचिह्न-योजना भी आदर्शवादी युग में ही चल पाई, किन्तु इस युग का निबन्ध अपनी प्रतिभा उत्कृष्टता, उत्कट देशभक्ति, तीव्रतम हिन्दी-प्रेमी, सर्वांगीण सुधार-चेष्टा एवं पाठक के प्रति सहज आत्मीयता के कारण प्रस्थान-ऐतिहासिक महत्व के साथ-साथ साहित्यिक गौरव में भी अतीव प्रशस्य है, वस्तुतः प्रणम्य है।

आलोचना

यद्यपि आलोचना की विधा का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध आरम्भ एवं विकास आदर्शवादी युग में आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'सरस्वती' में नियमित पुस्तक-समीक्षा के साथ हुआ तथापि सुधारवादी युग में भी इस विधा का नाम (समालोचना) सुनाई देने लगा था। शास्त्रीयकाव्यों की गुणदोषनिरूपिणी पारम्परिक आलोचना तो 1600 ई. के आसपास से चली आ रही थी, टीकागत आलोचना भी 1700 ई. के आसपास आरम्भ हो गई थी। सुधारवादी युग में शिवसिंह नेंगर के 'सरोज' (1878 ई.) के साथ कवि-परिचय-संपृक्त आलोचना-बिन्दु भी उभरे। किन्तु इस सबको आलोचना नहीं अपितु आलोचना की पूर्व-पीठिका मात्र कहना उचित होगा। वास्तविक आधुनिक आलोचना समय-समय पर 'आनन्द-कादम्बिनी' में प्रेमघन एवं 'हिन्दी-प्रदीप' में बालकृष्ण भट्ट द्वारा ही की गई। प्रेमघन ने श्रीनिवासदास कृत 'संयोगिता-स्वयंवर' इत्यादि तथा भट्ट जी ने 'संयोगिता-स्वयंवर', 'परीक्षागुरु' इत्यादि की अच्छी आलोचनाएँ लिखीं। प्रेमघन ने आलोचना में परकीय प्रभाव एवं तज्जन्य विसंगतियों का भी संकेत किया। स्वतन्त्र रूप से निस्सन्देह, प्रेमघन सुधारवादी युग की आलोचना के शीर्ष-अभिधान हैं।

आधुनिक राष्ट्रीय कविता का प्रस्थान-युग

यद्यपि भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी, प्रेमघन, जगमोहनसिंह इत्यादि ने पारम्परिक भक्तिकाव्य भी रचा, हरिनाथ पाठक (1843-1904 ई.) ने 'श्री ललित रामायण' (1893 ई.), अक्षयकुमार ने 'रसिकविलास रामायण' (1896 ई.), तोताराम (1848-1902 ई.) ने 'राम-रामायण' रचकर रामकाव्य में योगदान किया, भारतेन्दु ने नाटकों एवं लघुकाव्यों में लीला-लास वर्णनादि, अम्बिकादत्त व्यास ने 'कंसवध', घनारंग दुब (1899-1987 ई.) ने कृष्ण-रामायण प्रस्तुत की, भारतेन्दु ने 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' एवं राधाचरण गोस्वामी ने 'नवभक्तमाल' रचकर नाभादास की भक्तमाला-परम्परा को आगे बढ़ाया, प्रतापनारायण मिश्र ने 'नवरात्र के पद' रचकर देवी-काव्य में योगदान किया, भारतेन्दु जगमोहनसिंह इत्यादि ने प्रकृतिकाव्य की आकर्षक रचना की, प्रतापनारायण मिश्र ने प्रार्थना-काव्य में चिरस्मरणीय योगदान किया, भारतेन्दु इत्यादि ने शृंगारकाव्य भी रचा, तथापि सुधारवादी युग की कविता की अमरता का कारण वह 'जातीय संगीत', वह राष्ट्रवादी कविता, वह सुधारवादी कविता है जिसने नव्यता ही नहीं प्रत्युत भव्यता की सूचना भी दी तथा परवर्ती युगों को प्रभावित किया, प्रेरित किया। सुधारवादी युग की राष्ट्रीय कविता हिन्दी में अपने ढंग की प्रस्थान-कविता है, क्योंकि संक्रान्तिकालीन राष्ट्रकवि चन्द्रवरदायी, पुनरुत्थानकालीन राष्ट्रकवि जसवंत, शास्त्रीयकालीन राष्ट्रकवि भूषण, लाल, गुरु गोविन्दसिंह एवं सूदन में केवल हिन्दुत्व का निरूपण है, जबकि इसमें सर्वव्यापक राष्ट्रीय दयनीयता आपसी फूट, शोषण, प्रपीड़न, घूसखोरी, बेरोजगारी, मैहगाई, काला-गोरा-भेदभाव, कांग्रेस के पाखंड इत्यादि का मार्मिक वर्णन है। भारतेन्दु एवं प्रतापनारायण मिश्र आधुनिक राष्ट्रकवियों के महान् अग्रदूत थे, दोनों ने 'भारत-दुर्दशा' पर आँसू बहाए, भारतोत्कर्ष के लिए प्रार्थनाएँ कीं, अंग्रेजों के सुशासन-स्थापन का सम्यक् आकलन करते हुए भी भारतीय धन के विदेश जाने पर सन्ताप

व्यक्त किया, देशवासियों की दुर्बलताओं पर प्रकाश डाला। सुधारवादी युग की कविता की सर्वोपरि एवं भविष्य-प्रभावी विशेषता राष्ट्रीयता ही है :

1. रोवहु सब मिलि, आवहु भारत-भाई! हा-हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन-बल दीनो। सबके पहिले जेहि सभ्य बिधाता कीनो॥
सबके पहिले जो रूप-रंग-रस भीनो। सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई। हा-हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥
2. अंग्रेज-राज सुख-साज सजे सब भारी। पै धन विदेस चल जात इहै अति खवारी॥
ताहू पै महेँगी काल-रोग बिस्तारी। दिन-दिन दूने दुख देत, ईस! हा-हारी॥¹²
सबके ऊपर टिक्कस की आफति आई। हा-हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥
3. भीतर-भीतर सब रस चूसै। हँसि-हँसि के तन-मन-धन मूसै॥
जाहिर बातन में अति तेज़। क्यों सखि! साजन? नहिँ अँगरेज़॥
4. तीन बुलाओ, तेरह आवैं। आपनि विपदा हमें सुनावैं॥
आँखें फूटीं, भरा न पेट। ऐ सखि! साजन? ना! ग्रेजुएट॥
5. हिंदू-चूरन इसका नाम। विलायत-पूरन इसका काम॥
चूरन पुलिसवाले खाते। सब कानून हज़म कर जाते॥
6. अंधाधुंध मच्यो सब देसा।
मानहुँ राजा रहत बिदेसा॥ —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
7. सब धन लिए जात अँगरेज़।
हम केवल लेक्चर के तेज़॥
8. चहहु जौ साँचौ निज कल्यान। तो सब मिलि भारत-संतान॥
जपौ निरंतन एक ज़बान। हिंदी-हिंदू हिंदुस्तान॥
9. तबहिँ लख्यों जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत। तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहु को तरसत॥
जहाँ कृषी, वाणिज्य, शिल्पसेवा, सब माहीं। देसिन के हित कछू तत्व कहूँ कैसहु नाहीं॥
कहिय कहाँ लगि, नृपति दवे हैं जहँ ऋनभारन। कहँ तिनकी धनकथा कौन जे गृही सधारन॥
10. हम आरत भारतवासिन पै अब दीनदयाल! दया करिए। —प्रतापनारायण मिश्र
11. कौन भरोसे अब इत रहिए, कुमति आय घर घाली।
फूट्यो फूट बैर फलि फैल्यो, बिधि की कठिन कुचाली।....
जिन पर नाहिँ छड़ी ते करिहैं कहा करद रखवाली।
छमा-कवचधारी ये बिहँसत खाय लात अरु गाली॥
जिनसो सँभारि सकत नहिँ तन की धोती ढीलीढाली।
देसप्रबंधन करैगे कैसे वे, यह खामख्याली॥
दासवृत्ति की चाह चहूँ दिसि चारहु बरन बढ़ाली।
करत खुसामद, झूठ प्रसंसा, मानहुँ बने डफाली॥¹
12. अचरज होत तुमहुँ सम गोरे बाजत कारे।....
यहै असीस देत तुमको मिलि हम सब कारे—
सफल होहिँ मन के सब ही संकल्प तुम्हारे!²

—प्रेमघन

1. परवर्ती कविता जिसमें कांग्रेस के 'नरमदल' और सम्भवतः गाँधी के पाखंड की आलोचना की गई है।
2. दादाभाई नौरोजी (कांग्रेस के दादा) ब्रिटिश 'होउस ऑफ़ कॉमंस' के सदस्य तो बनाए गए किन्तु गौरांग-महाप्रभु उन्हें 'काले' (ब्लैकी) कहते ही रहे। इस पर कवि के उद्गार। आज भी गोरे अगोरे (काले और सँवाले, काले बालों वाले, धवलवर्ण, पीले इत्यादि) को 'ब्लैकी' ही कहते-मानते हैं।

सुधारवादी युग का साहित्य टकसाली-जनसाहित्य है

सुधारवादी युग का साहित्य विशुद्ध जन-साहित्य है जो किसी वाद या पूर्वाग्रह से मुक्त राष्ट्र का तटस्थ चित्रण करता है। आदर्शवादी युग में कांग्रेस के प्रभाव के कारण चित्रण तटस्थ नहीं रहा। स्वच्छन्दतावादी युग में वह काल्पनिक आदर्शवाद से ओतप्रोत हो गया। यथार्थवादी युग में वह अमेरिकावादी, रूसवादी, पाकिस्तानवादी, कांग्रेसवादी, संघवादी इत्यादि पूर्वाग्रहग्रस्त खंड-रूपों में विखर कर रह गया है। यथार्थवादी युग में इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शन, साहित्य, सभी-कुछ नितान्त-संकीर्ण-सत्य या दलगत सत्य बन गया है। इतिहास की हिन्दू-मुस्लिम-एकता के नाम पर हत्या की जा रही है। अंग्रेजों के अत्याचारों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जा रहा है, जो न इतिहाससम्मत है, न साहित्यसम्मत। निस्सन्देह अंग्रेजों ने जुल्म भी किए, लूट की फूट को बढ़ावा देकर, हिन्दु-मुसलमानों को लड़ाया भी, जिस पर वीर सावरकर (1857 का स्वातन्त्र्य समर¹), पं. सुन्दरलाल (भारत में ब्रिटिश राज), श्री अशोक मेहता, श्री प्रतापचन्द्र 'चन्दर' इत्यादि ने अच्छा प्रकाश डाला है। किन्तु अंग्रेज, अरबों, तुर्कों, पठानों एवं मुगलों के सदृश न तो बर्बर थे, न मतांध। आधुनिक भारत के वास्तविक निर्माता अंग्रेज थे, इसे नकारना सत्य को नकारना होगा। कांग्रेस की गरिमा के कल्पित चित्र तो एकदम निराधार ही हैं। कांग्रेसी प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह तक ने इसे स्वीकार किया है; 2005 ई. की ब्रिटेन-यात्रा का भाषण साक्षी है।

अंग्रेज व्यापारी था, शोषक था; किन्तु वह क्लाइव की निन्दा भी कर सकता था, वारेन हेस्टिंग्स पर महाभियोग भी लगा सकता था। प्रधानमंत्री ग्लैडस्टोन भारत को "स्वतन्त्र संस्थाओं के लाभ एवं आशीर्वाद" न प्रदान करने की असफलता स्वीकार कर सकते थे।² इतिहासकार रॉबर्ट्स गाँधी को पैगम्बर (प्रॉफेट)³ तक कह सकता था। यह सत्य है कि गौरांगों ने भारतीय संस्कृति एवं इतिहास को विकृत किया है किन्तु यह भी सत्य है कि उन्होंने वेदों, उपनिषदों, पुराणों, इतिहास इत्यादि की प्रशंसा भी की है। मुसलमानों की तुलना में अंग्रेज अच्छे शासक थे। स्वतन्त्रता के पाँच दशकों से अधिक समय के बाद भी करोड़ों लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। स्वयं कांग्रेस अंग्रेजों और अंग्रेजी की भक्त रही है।

1857 ई. के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम की असफलता के प्रधान कारण हिन्दू-मुसलमानों में एक नेता का अभाव, गोरखों-सिखों-दक्षिणात्यों की अंग्रेजपरस्ती तथा क्षेत्रीय स्वार्थों की प्रधानता इत्यादि थे। इस संग्राम को असफल होना ही था। इसकी सफलता राष्ट्र के लिए भयावह होती, क्योंकि इसका नारा था "खल्क खुदा का मुल्क बादशाह का (स्थानीय क्षेत्र वहाँ के शासक का)"। यदि मुगल-सल्तनत कायम हो जाती तो भारत मध्यकाल के अंधकार में जा पड़ता। उसकी दशा अरब या ईरान की सी होती।

कांग्रेस के संस्थापक एलन ऑक्टेवियन ह्यूम तथा अनेक नेता (सर विलियम वैडरवर्न, सर हेनरी कॉटन, जॉर्ज यूल इत्यादि) अंग्रेज थे। इसके अध्यक्षों में दादाभाई नौरोजी ब्रिटिश-सांसद थे, सत्येन्द्र सिन्हा सर तथा बाद में लॉर्ड (1918 ई.) बने⁴ तथा 'हॉउस ऑफ़ लॉर्ड्स' के सदस्य थे, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी 'सर' थे। 1886 ई. लॉर्ड डफ़रिन (गवर्नर-जनरल एंड वाइसरॉय) ने कलकत्ते के गवर्नमेन्ट हॉउस में कांग्रेस-नेताओं को प्रीति-भेजा पर आमन्त्रित किया था। लॉर्ड लिटन ने इसके नेशन शब्द को ही अस्वीकार कर दिया था क्योंकि यह अंग्रेजी-भाषी संस्था थी। फिर भी, सर सैय्यद अहमद ख़ाँ ने कांग्रेस का विरोध किया, 1888 ई. में 'अपर इंडिया मुस्लिम एसोसिएशन' बनाया, 1899 ई. में सर अमीर हसन ने कांग्रेस को "देश की सच्ची राजनैतिक एवं नैतिक प्रगति में बाधक" घोषित किया, 1906 ई. में भारत-विभाजन के आदिपुरुष तत्कालीन (विदेशी) साम्प्रदायिकता-विग्रह आगा ख़ाँ ने लॉर्ड मिन्टो से पृथक् निर्वाचन की माँग की जो स्वीकृत हुई (इसी समय मुस्लिम लीग बनी)—और यह-सब तब हुआ जब कि कांग्रेस की स्थापना करने वालों में ह्यूम के साथ सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, के. टी. तैलंग, महादेव गोविन्द रानाडे, दादाभाई नौरोजी, फ़ीरोज़शाह मेहता, दिनश वाचा और बदरुद्दीन तैयबजी के रूपों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सभी सम्मिलित थे। इसके प्रथम अध्यक्ष व्यामेशचन्द्र बैनर्जी एक प्रगतिशील व्यक्ति थे। कांग्रेस के छठे अधिवेशन में 22 प्रतिशत मुसलमान शामिल हुए थे।

1. मराठी के लेखक, प्रख्यात अंग्रेजी-ग्रन्थकार, अतुलनीय स्वातन्त्र्य-योद्धा विनायक दामोदर सावरकर के ग्रन्थों में '1857 का स्वातन्त्र्य समर' के अतिरिक्त 'हिन्दूपदपादशाही', 'हिन्दुत्व के पंचप्राण', 'आजन्म कारावास', 'कालापानी' एवं 'गोमांतक' (उपन्यास) इत्यादि भी अनूदित किए गए हैं।
2. हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया अंडर द कम्पनी एंड क्रॉउन (रॉबर्ट्स), पृष्ठ 461
3. वही पृष्ठ 621।
4. लॉर्ड सिन्हा ऑफ़ रामपुर (हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया अंडर द कम्पनी एंड द क्रॉउन, पृष्ठ 580)।

तब कांग्रेस राजा-महाराजाओं, रईसों, वकीलों वगैरह की संस्था थी, जिसमें अंग्रेजी को भारी महत्व प्राप्त था। फिर भी, कुछ-न-कुछ करती जरूर थी। 1885 ई. की स्थापना-अधिवेशन (मुम्बई) में इन बिन्दुओं पर जोर दिया गया :

1. भारत-सचिव की समिति तोड़ी जाए।
2. व्यवस्थापिका सभाओं का सुधार किया जाए।
3. इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा इंग्लैण्ड तथा भारत में एक साथ ली जाए।
4. निर्धनता दूर करने का उपाय किया जाए।
5. सैनिक व्यय घटाया जाय¹।

किन्तु माँगों के साथ जन-स्पृहाएँ भी बढ़ीं और 1890 ई. में सरकार ने अपने कर्मचारियों को कांग्रेस में भाग लेने पर रोक लगा दी। भयावह शोषण, भारतीय उद्योगों को नष्ट करके इस महान् राष्ट्र को कच्चे माल का भांडार बनाया, यहाँ से कच्चा माल ले जाकर ब्रिटेन में उसे पक्का रूप देकर संसार और यहाँ भी बाबा-मोल पर बेचना, विकट बेरोज़गारी, प्लेग इत्यादि महामारियों, तपेदिक-चेचक-मलेरिया इत्यादि के प्रकोप, भयानक अकाल इत्यादि ने अंग्रेज़-संस्थापित एवं अद्यावधि अंग्रेज़ी-दासी कांग्रेस तक को नरम दल (मॉडरेट्स) और गरम दल (एक्स्ट्रीमिस्ट्स) में विभक्त कर ही दिया। नरम दल के नेता दादाभाई नरौजी, सर फ़ीरोज़शाह मेहता, सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, मदनमोहन मालवीय इत्यादि की तुलना में गरम दल के बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष इत्यादि को व्यापकतर जनाधार प्राप्त हुआ—यहाँ तक कि नरम दादाभाई ने 1906 ई. के कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में 'स्वराज्य' को अपना लक्ष्य बनाया। फिर भी, कांग्रेस के नरम दल को बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं, अमीर-उमरावों, व्यापारियों-ज़मींदारों, वकीलों-डॉक्टरों इत्यादि का प्रभावी समर्थन प्राप्त था और अंग्रेज़ का हाथ उसकी पीठ पर था, अतः तिलक-जैसा कांग्रेस के समूचे इतिहास का सर्वश्रेष्ठ नेता, "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" का उद्घोषक स्वातन्त्र्य योद्धा, 'गीता-रहस्य' के द्वारा कर्मयोग को राष्ट्र का जीवन-दर्शन बनाने वाला मनीषी विद्वान्, चाफेकर-बन्धुत्रय को हुतात्मा बनने की प्रेरणा देने वाला था अरविन्द घोष, खुदीराम बोस, सुभाषचन्द्र बोस इत्यादि जुझारू नेताओं का क्रान्तिमन्त्रदाता, लाल-बाल-पाल की आग्नेय-त्रयी का प्राण आज के राष्ट्रीय पर्व गणेशोत्सव का प्रेरक, मराठी की लिपि देवनागरी बनाकर उसे व्यापकतम रूप प्रदान करने वाला कभी कांग्रेस का अध्यक्ष न बन सका; यही नहीं, 1907 ई. की सूरत कांग्रेस में उस महापुरुष पर (सम्भवतः 'नरम') जूता तक फेंका गया। चले-चपाटियों ने गरमदलिया सुभाष पर ठीक वैसा ही (अब 'अहिंसक' भी) जूता फेंका! आज भी कांग्रेस तथा अन्य दलों की नकेल राजा-महाराजाओं (अब 'भूतपूर्व'), पूँजीपतियों-व्यापारियों, वकीलों-दलालों भूस्वामियों-डकैत प्रभुओं इत्यादि के हाथ में ही है, जिनका खरबों रुपया स्विट्ज़रलैण्ड, ब्रिटेन, फ्रांस अमेरिका इत्यादि के बैंकों में जमा है (यह रुपया देश के उद्योगों में लगे तो देश का नक्शा बदल जाए)! सुधारवादी युग के कवियों ने देश के शोषण-प्रपीड़न एवं ज़रूरत से ज़्यादा नरम कांग्रेसी नेताओं की खूब ख़बर ली है। भारतेन्दु इत्यादि 'स्वदेशी' पर भी अनेक भाषणों में प्रशंस्य प्रकाश डाला है जिनको डॉ. रामविलास शर्मा ने योग्यतापूर्वक उद्धृत किया है। सुधारवादी युग में जनता स्वदेशी-आन्दोलन से परिचित हो चुकी थी। खेद है कि आदर्शवादी, स्वच्छन्तावादी एवं यथार्थवादी युगों के कवियों में एकाध (कहीं-कहीं 'नवीन' और कहीं-कहीं 'दिनकर' जैसों) ने ही समसामयिक नेतृत्व पर न्यायोचित प्रहार का साहस दिखा पाया!

उपसंहार

यद्यपि बौद्धिककाल का समारम्भ सन्धियुग (1800-1850 ई.) में ही हो चुका था तथापि उसका विकास सुधारवादी युग में ही हुआ, जिसमें राष्ट्रवाद, समाज-सुधार, व्यक्ति-सुधार, समस्या-चित्रण, स्वदेशी, हिन्दी-प्रेम इत्यादि के प्रभावी स्वर हमारे साहित्येतिहास में पहली बार सुनाई पड़े। यह सत्य है कि इस काल की कविता को पारम्परिक शृंगारपरक, प्रकृतिपरक, भक्तिपरक रूपों में कोई अमर कृति नहीं प्राप्त होती किन्तु इसके देशभक्ति, एकता, हिन्दीभक्ति, उत्सर्ग एवं सुधार के स्वर राष्ट्रोत्थानकारी सिद्ध हुए, प्रेरक सिद्ध हुए तथा आज भी वे प्रायः उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने सृजन के समय थे, क्योंकि आज भी राष्ट्र दरिद्र है, शासक शोषक हैं, विषमता बढ़ रही है, धन विदेशों में जमा है, हिन्दी को अंग्रेज़ी एवं उर्दू का भारवाही बनाया जा रहा है, नए समाज-रोग (दहेज-हत्याएँ, अहंमूलक पारिवारिक कलह, प्रदर्शन-वृत्ति, मदिरापान, धूम्रपान, घातक-व्यसन इत्यादि) पुराने समाज-रोगों से अधिक भयावह सिद्ध हो

1. भारतवर्ष का इतिहास (डॉ. ईश्वरीप्रसाद), पृष्ठ 371।

रहे हैं, देशद्रोही नेताओं और राष्ट्रघाती पूँजीपतियों की साँठ-गाँठ से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है (जीवन तक के लिए भयानक प्रश्नचिह्न लग रहे हैं), मिथ्या इतिहास की रचना की जा रही है, सत्तालोलुपों द्वारा फूट बढ़ाई जा रही है, दंगे-फ़साद पहले से ज़्यादा हो रहे हैं, धर्मनिरपेक्षता निर्वाचन की दासी बना दी गई है, परिवार-नियोजन जैसा पावन दायित्व भी राजनीति की लपेट में ले लिया गया है, अतः प्रभावी नहीं सिद्ध हो रहा, करोड़ों लोग विदेशियों के संकेतों पर नाच रहे हैं, नए-नए प्रतिगामी आरक्षणों से राष्ट्र को नई-नई फूटों से तोड़ा जा रहा है। खेद है कि अब न तिलक, लाजपतराय, सुभाष जैसे नेता हैं और न भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमचन्द जैसे कवि! अतः आज भी सुधारवादी युग प्रेरक ही बना हुआ है। नाटक की स्फीति एवं निबन्ध की गुणवत्ता के कारण सुधारवादी युग का साहित्यिक महत्व सर्वकालिक बना रहेगा। सामाजिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक सभी दृष्टियों से सुधारवादी युग एक महान् युग था।

प्रमुख साहित्यकार रघुनाथदास 'रामसनेही'

'विश्रामसागर' (1854 ई.) शीर्षक वृहत् एवं 'इतिहास', 'कृष्णगायन' एवं 'रामायण' त्रिखंड-विभक्त (अन्ततः प्रश्नावली) भी ग्रन्थ के कारण लोकप्रिय एवं लोकादृत बाबा रघुनाथदास वस्तुतः भी 'रामसनेही' थे तथा रामानुज-संप्रदाय के प्रतिष्ठित महन्त के रूप में अयोध्या में रहते थे। वे सुधारवादी युग के एक प्रतिष्ठित रामकाव्यकार, कृष्णकाव्यकार एवं पुराणकाव्यकार थे। विश्रामसागर में पौराणिक आख्यानों, देवी-देवताओं, महापुरुषों, नीतिज्ञों इत्यादि के वर्णनों के अतिरिक्त कृष्णकथा एवं रामकथा का समाहार सर्वथा उल्लेखनीय एवं आदरणीय है। रघुनाथदास पर विशेषतः तुलसीदास एवं सामान्यतः विष्णुदास, पुरुषोत्तम, ललकदास, मधुसूदनदास, ब्रजवासीदास इत्यादि का प्रभाव शोध का विषय है।¹ उन्होंने तुलसी के सदृश श्लोक-रचना भी की, जिससे उनका संस्कृत-ज्ञान स्पष्ट होता है। उनकी संस्कृतनिष्ठ-अवधी ब्रजस्पर्श से पुलकित है—ठीक वैसे ही जैसे वे रामकृष्णमय थे। तुलसी-प्रभाव से ऊभचूब रघुनाथदास की तीन चौपाइयाँ प्रस्तुत हैं :

पैहैं सुख संपति यश पावन। हवैहैं हरि हर जन मन भावन॥
कल्पित ग्रंथ कहै जो कोऊ। याचौं ताहि जोरि कर दोऊ॥
रामकथा शुभ चिंतामनि सी। दायक सकल पदार्थ जन सी॥
अभिनत फलप्रद देवधेनु सी। स्वच्छ-करन गुरुचरन रेनु सी॥
अरिभय-हरणि बिभाव सुता सी। दुखद आविधा तूल हुता सी॥
धर्म कर्म बार बीज रसासी। सुमति बढ़ावन सुख सुदसा सी॥

यद्यपि सुधारवादी युग में आत्माहंस² जैसे कबीर-प्रेरित निर्गुननिराकारवादी संत-कवि भी हुए अवश्य, किन्तु अधिकता तुलसी-प्रेरित सगुणसाकारवादी भक्त-कवियों की रही, सूर-प्रेरित सगुणसाकारवादी भक्त-कवियों की रही—और युगकाव्यकार सर्वोपरि सिद्ध हुए।

जुगुलानन्यशरण

'सीतारामसनेहवाटिका', 'रामनाममाहत्म्य सटीक', 'विनोद-विलास', 'मधुर-मंजूमाला', 'प्रेमपरत्वप्रभादोहावली', 'दंपतिरहस्य' इत्यादि अनेकानेक काव्यों के स्फीत प्रणेता जुगुलानन्यशरण³ (देहान्त 1876 ई.)⁴ मधुरकाव्यकारों में रचना-राशि की दृष्टि से अन्यतम है। यद्यपि इनकी कविता पारम्परिक एवं साधारण है, ब्रजभाषा में अरबी-फ़ारसी शब्द अधिक हैं, तथापि रचना-राशि की दृष्टि से यह एक स्मरणीय कवि हैं। मिश्रबन्धु ने इनकी हिन्दीसेवा की प्रशंसा की है। उदाहरण देखें :

ललित कंठ कमनीय लाल मन मोल लेत विन दामैं।
अरुन पीत सित असित माल मनि नूतन लसत ललामैं॥

1. 'विश्रामसागर के आधार-ग्रन्थ' विषय पर शोध होना चाहिए।

2. डॉ. महेन्द्रनारायण सिंह (डॉ. महेन्द्र 'मस्ताना') ने 'संत-कवि ठाकुर आत्माहंस: व्यक्तित्व और कृतित्व' शोधग्रन्थ लिखा है।

3. जुगुलानन्यशरण भी।

4. देहान्त-तिथि विवादास्पद।

क्या तारीफ़ सरीफ़ कीजिए रहिए हेरि हरामैं।
जुगुलानन्य नबीन वीन पिक कायल सुनत कलामैं॥

सेवक¹

श्री ऋषिनाथ को हौं! मैं पनाती औ नाती हौं श्री कवि ठाकुर केरो।
श्री धनीराम को पूत मैं सेवक शंकर को लघु-बंधु ज्यों चेरों।।
मान को बाप बवा कसिया को चचा मुरणीधर कृष्ण हू हेरो।
अश्विनी² मैं घर, काशिका मैं, हरिशंकर भूपति रच्छक मेरो॥

सर्वांगीण नायकभेद-नायिकाभेद शास्त्रीयकाव्य 'वाग्विलास' एवं 90 छन्दय 'वरवै-नखशिख' के प्रसिद्ध कवि सेवक (1815-81 ई.) बहुत समय तक पर्याप्त लोकप्रिय रहे। 'प्रस्थान'-परिचयदाता मिश्रबन्धु के अनुसार, "इनका षड्भुक्त तो बहुत ही प्रशंसनीय है।ब्रजभाषा....अति सराहनीय है।" छन्द देखिए :

1. उनए घन देख रहैं उनए दुनए ते लता-द्रुम फूलो करैं।
सुनि सेवक मत्त मयूरन के सुर दादुर ऊ अनुकूलो करैं॥
तरपैं दरपैं दबि दामिनि दीह यही मन माँह कबूलो करैं।
मनभावती के सँग मैमनयी धनस्याम सबै निसि झूलो करैं॥
2. दधि आछत भाल पै देखि गए अँग के रँग छीन से हवै।
दुख औचक वारो कहे न बनै विधु सेवक सौहे अरीन से हवै॥
मृगराज के दावे बिंधे वनसी³ के विचारे मले मृग मीन से हवै।
हरि आए बिदा को भटू के तहीं भरि आए दोऊ दृग दीन से हवै॥

सरदार कवि

'साहित्यसुधाकर', 'साहित्य-सरसी', 'शृंगारसंग्रह'⁴, 'वाग्विलास', 'रामलीलाप्रकाश', 'रामरत्नाकर', 'षड्भुक्त', 'हनुमतभूषण', 'तुलसीभूषण' के शृंगाररस एवं अलंकार के प्रेमी कवि तथा रामकाव्यकार सरदार कवि (देहान्त 1885 ई.⁵) ने 'सूर के दृष्टिकूट', 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'बिहारी-सतसई' की टीकाएँ भी लिखीं। इनकी कविता एवं टीकाएँ पुरानी शैली की हैं। यह कवि से अधिक टीकाकार के रूप में प्रसिद्ध हुए और यही ठीक भी है। मिश्रबन्धु ने इनके 'अश्लील विषय के भी दो-चार छन्द' कहने की चर्चा की है। इन्होंने प्रायः चालीस वर्षों तक कविता की और टीकाएँ लिखीं।

सरदार कवि ललितपुर (उत्तर प्रदेश) के मूलवासी थे। इनके गुरु प्रतापसाहि चरखारी के प्रसिद्ध कवि एवं आचार्य थे। किन्तु इनका जीवन प्रायः काशी से संपृक्त रहा जिसके भदौनी मुहल्ले में रहे। काशी-नरेश ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के

1. आ. शुक्ल ने राधावल्लभ-संप्रदाय के सम्मानित आचार्य सेवक जी (दामोदरदास—जन्म 1520 ई. के लगभग) और शास्त्रीय-कवि सेवक को एक में ही गढ़भगड़ कर दिया। इन दो 'सेवकों' के अतिरिक्त पाँच 'सेवादास' भी हुए हैं : 'सेवादास की बानी' वाले मल्लूदास—शिष्य सेवादास, 'सेवादास-ग्रन्थमाला' वाले निरंजनी 'सेवादास', 'करुणाविहरप्रकाश' वाले 'अयोध्यावासी सेवादास', 'सृष्टिपुराण' के गद्यकार सेवादास, 'अलबेलाल जू के छप्पय' एवं 'रघुनाथ-अलंकार' के उत्कृष्ट कवि सेवादास। पंजाब के महन्त सेवादास (जिन्हें आतंकवाद की लहर में सेवादाससिंह वनना पड़ा) का स्मरण भी हो आता है! कानपुर के कवि, विद्वान् एवं प्राध्यापक डॉ. सेवक वात्स्यायन भी याद आ जाते हैं।
2. असनी, गंगातटवर्ती प्रसिद्ध कवि-ग्राम, जो फ़तेहपुर में है। अंतर्वेद (गंगा-यमुना का मध्यवर्ती क्षेत्र) कवि-कोविद-सम्पन्न रहा ही है। 'असनी के कवि' (स्व. विपिनबिहारी त्रिवेदी) स्मरणीय ग्रन्थ है। आज भी यहाँ के ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली के सफल कवि एवं आशुकि पं. सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' (निवास रायबरेली) अपनी प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध हैं। 'शिवलोक' एवं 'जाम्बवान्' उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ (महाकाव्य) हैं।
3. मछली पकड़ने वालों की वंशी।
4. घनआनन्द के 150 छन्द भी। वस्तुतः यह संकलन है।
5. इसी वर्ष भारतेन्दु का निधन हुआ तथा कांग्रेस का जन्म।

दरबारी-कवि के रूप में भी अच्छी ख्याति प्राप्त हुई। सरदार की ख्याति उनकी प्रतिभा की तुलना में काफी-अधिक है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. वा दिन ते निकसो न बहोरि कै जा दिन आगि दै अंदर पैठो ।
हाँकत हूँकत ताकत है मन माखन मान मरोर उमैठो ॥
पीर सहों न कहाँ तुम सों सरदार विचारत चार कुटैठो ।
ना कुच कंचुकी छोरौ लला कुच कंदर अंदर बंदर बैठो ॥
2. मनि मंदिर चंदमुखी चितवै हित मंजूल मोद मवासिन को ।
कमनीय करोरिन काम कला करि थामि रही पिय पासिन को ॥
सरदार चहूँ दिसि छाय रहे सब छंद छरा रस रासिन को ।
मन मंद उसासन लेन लगी मुख देखि उदास खवासिन को ॥

गोकुल कवि

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कम-से-कम 12 'गोकुल' हुए हैं: 1. वल्लभाचार्य के पौत्र एवं विद्वलनाथ के पुत्र गोस्वाली गोकुलनाथ (1551-1640 ई.) जिनके तथाकथित ग्रन्थ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ-बावन वैष्णवन की वार्ता' प्रसिद्ध हैं, 2. गोकुलबिहारी (रचनाकाल 1633 ई.) जिन्हें मिश्रबन्धु ने 'निम्न श्रेणी' का (कवि) माना है, 3. 'हरिवंश भाषा' के प्रस्तोता गोकुलचन्द्र जैन (रचनाकाल 1743 ई. के आसपास), 4. आचार्य-कवि एवं स्वपुत्र गोपीनाथ तथा स्वशिष्य मणिदेव के साथ स्फीत महाभारत एवं हरिवंश के अमर अनुवादक गोकुलनाथ (जन्म 1763 ई. के लगभग), 5. कपूरथला के राजा रणधीरसिंह को अपने वाग्जाल में फँसाकर ईसाई मजहब की ओर आकृष्ट करने वाले पादरी गोकुलनाथ (प्रभावकाल 1863 ई. के आसपास) जिनकी मजहबी सियासत का पर्दाफाश श्रद्धाराम फिल्लौरी ने किया था, 6. 'बूढ़े मुँह मुँहासे लोग चले तमाशे' के प्रहसनकार गोकुलचन्द्र (1873 ई. के आसपास) 7. मेहर के वकील हिन्दीसेवी गोकुलनाथ भट्ट (1883 ई. के आसपास), 9. 'आत्मविद्या' के संपादक एवं 'कमला-सरस्वती' इत्यादि के ग्रन्थकार गोकुलनन्दप्रसाद कायस्थ (जन्मकाल 1876 ई.), 10. मैनुपुरी के ललित ब्रजभाषा-कवि (जिन्होंने 'वर्तमान योरप-संग्राम' शीर्षक प्रथम विश्वयुद्ध पर भी काव्य रचा) गोकुलचन्द्र मिश्र 'प्रेम' (1878 ई. के आसपास), 11. "हिन्दी के परम भक्त तथा रायबहादुर हीरालाल जी के बन्धु" (मिश्रबन्धु) एवं 'दुर्ग-दर्पण' के प्रणेता गोकुलप्रसाद (देहान्त 1926 ई.), किन्तु यहाँ गोकुल कायस्थ (बलरामपुर वाले) नामक जिन कवि की चर्चा हो रही है वे गोकुलप्रसाद 'ब्रज' या गोकुल कवि (जन्म 1820 ई.) अपने आश्रयदाताओं पर अनेक पारम्परिक चरितकाव्यों के प्रणेता थे, जिनका 'दिग्विजय-भूषण' (प्रकाशन-वर्ष 1868 ई.) एक प्रायः सर्वांगपूर्ण शास्त्रीयकाव्य है। डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह ने 1959 ई. में 'दिग्विजय-भूषण' का मानक संस्करण प्रकाशित कराके हिन्दी की स्मरणीय सेवा की है। 'दिग्विजय-भूषण' बलरामपुर के राजा दिग्विजयसिंह से संपृक्त है, जिसके नाम से इसके 'शिवराज-भूषण' (भूषण) एवं 'भाषा-भूषण' (जसवन्तसिंह) इत्यादि के सदृश अलंकार-ग्रन्थ होने की सूचना प्राप्त होती है किन्तु जिसमें नायिकाभेद, नखशिख, षड्भुज इत्यादि का भी समावेश किया गया है, तथा इसमें 189 कवियों के उदाहरणों की रत्नराशि भी प्राप्त होती है। मंगलाचरण, आश्रयदाता के वंश, यश इत्यादि से आरम्भ होकर यह ग्रन्थ एक शास्त्रीयकाव्य के रूप में विकसित होता चलता है। रामस्वरूप ने इसकी टीका की थी। महारानी इन्द्रकुँवर के आदेश पर रचित 'दिग्विजय-प्रकाश' में समसामयिक इतिहास, विशेषतः 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम, का प्रभावी चित्रण किया गया है। गोकुल कवि हिन्दी-साहित्येतिहास में चरितकाव्यकार एवं शास्त्रीय-कवि के रूप में स्मरणीय हैं। वैसे, उन्होंने धार्मिक विषयों पर भी अनेक काव्य रचे हैं। डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह के शब्दों में, "गोकुल कवि ने अनेक विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं, पर इनका स्थान रीतिकालीन काव्य-परम्परा में सुरक्षित है। यद्यपि इस क्षेत्र में इन्होंने परम्परा का अनुसरण किया है फिर भी इनके काव्य में पर्याप्त मौलिक उद्भावना तथा स्वतन्त्र कल्पना देखी जा सकती है। इनको चमत्कारपूर्ण प्रयोग में विशेष सफलता मिली है।"

1. रणजीतसिंह के पुत्र दिलीपसिंह के विकटोरिया के चरणों में नत होने, हीरा कोहिनूर भेंट करने तथा ईसाई हो जाने के साथ पंजाब के राजतत्वों में ईसाइयत का मोह बढ़ा। नेहरू-मन्त्रिमंडल की राजकुमारी अमृत कौर एवं राजीव-मन्त्रिमंडल के अरुणसिंह (राजीव, सतीश शर्मा इत्यादि मित्रों के ही सदृश गोरी 'वाइफ' वाले) ईसाई थे। (राजीव सपरिवार कैथलिक-ईसाई थे।)

पतितदास

1857 ई. के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम और उसके एक कारण ईसाई मज़हब की स्थापना का दुष्प्रयत्न पतितदास की वाणी में प्रतिबिम्बित है। तुलसीदास ने रामचरितमानस, कवितावली एवं दोहावली में मध्यकाल के अंधकार को मूर्तिमंत किया है। मुगल-वंश के पतन और उसके प्रधान कारण मोहम्मदी मज़हब की स्थापना का दुष्प्रयत्न भूषण, सूदन, चाचा हित वृन्दावनदास इत्यादि की वाणी में प्रात्ययिक रूप से चित्रित है। अंग्रेजी अत्याचार एवं उनकी विजय का वृत्तांत पतितदास, बनादास, हुतात्मा युगलानन्दशरण इत्यादि भक्त-कवियों में जीवंत है। यदि भारतीय इतिहासकार हिन्दी-साहित्य पढ़ते तो उनके इतिहास-ग्रन्थ एंवेसी-ब्रैंड होने से बच सकते थे। सन्तुलित मुस्लिमकालीन एवं ब्रिटिशकालीन इतिहास-ग्रन्थ अत्यल्प ही हैं : कुछ बेहद-विदेशी हैं तो कुछ बेहद-देशी! रामभक्त पतितदास का अपतित इतिहास देखिए :

अब गई फकीरी भारे में।

तप जप जोग सपन हवै गैलो वेद विचार विवेक किनारे में।

किरिस्तान के होय गयो लेखा सोइ हितू जो आवै हमारे में।¹

छलबल नखरा बहुत पुजावैं कै जुलुवा पूर अखारे में।

बेंचई धरम सरम नहिं आवै² तान ध्यान गुन जारे में।³

आठों पहर सुख स्वाद के धंधे गिरे अथाह खो के नारे में।⁴

‘दास पतित’ तजु दोनों मारग गहि सुमरण साँचु अधारे में।।

पतितदास के अनुसार, प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम में सवा पाँच लाख मनुष्य मारे गए थे और अंग्रेजों की विजय हुई थी :

1. संवत उनइस सै चौदह के आदि जग वड़ उतपात परै।

सवा पाँच लाख मनुष्य की हानी, प्रभु बिन को धीरज धरै।।

2. फाल्गुन शिव तिथि गुरै मध्याह्न संवत पंचदास परै।

ताहि दुहाई चहुँ दिसि घूमै सो दक्षिण जाय मरै।।

संवत उनइस⁵ सै सत्रह लै हृदय हसब सोच भारे परै।

पतितदास की कविता 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम के कारणों, विनाश एवं तत्परिणामस्वरूप आतंक-राज्य का यथातथ्यपूर्ण चित्रण करने के कारण अविस्मरणीय भी है, महत्वपूर्ण भी।

ठाकुरप्रसाद मिश्र ‘पंडित प्रवीन’

प्रसिद्ध अयोध्यानरेश मानसिंह ‘द्विजदेव’ के आश्रित कवि ठाकुरप्रसाद मिश्र ‘पण्डित प्रवीन’ (रचनाकाल 1850-1870 ई.) ने शृंगार एवं वीर रसों की अच्छी कविता लिखी है। सन्धि-युग (1800-1850 ई.) एवं सुधारवादी युग (1850-1900 ई.) में वीरकाव्य बहुत कम लिखा गया था, अतः इस दृष्टि से भी वे विशेष उल्लेख्य-योग्य कवि हैं। उन पर भूषण का प्रभाव दृग्गत होता रहता है।

1857 ई. के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम में एक नेता का अभाव तथा ‘मुल्क बादशाह’ का नारा असफलता के प्रधान कारण थे। स्वयं प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम में आधुनिक सांप्रदायिकता के जनक सर सैयद अहमद ख़ाँ हिन्दू-वर्चस्व की आशंका से अंग्रेजों का समर्थन कर रहे थे।⁶ ऐसे में रीवाँ-नरेश रघुराजसिंह, अयोध्या-नरेश मानसिंह ‘द्विजदेव’, राजा लक्ष्मणसिंह प्रभृति का अंग्रेज-समर्थन

1. अंग्रेजों तथा अन्य गोरे ईसाइयों का ईसाई बनने वाले भारतीयों के प्रति पक्षपात।

2. धर्मविक्रेता या ईसाई बनने वालों की निर्लज्जता का प्रत्याख्यान।

3. सगुण-दहन कर ईसाई बनने वालों पर व्यंग्य।

4. धर्मविक्रेताओं की विलासिता एवं पतितवस्था का चित्रण।

5. ‘सोलह’ पाठ मिलता है, जिससे अर्थ नहीं खुलता।

6. अब स्वतन्त्र्य-संग्राम में मुसलमानों के योगदान पर नए-नए आविष्कार किए जा रहे हैं। जफ़र तक तो गनीमत थी, पर हज़रत महल (लखनऊ) की नयी छवि उभारी जा रही है: उन्हें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से अधिक वीर (1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम की सर्वश्रेष्ठ वीरांगना बताया जा रहा है—‘प्रगतिशील’ एवं ‘धर्मनिरपेक्ष’ मुसलमानों द्वारा साहू-जैन के अंग्रेजी-अख़बार दनादन छाप रहे हैं)।

एकांत-निन्दा का विषय नहीं बनाया जा सकता। ठाकुर शिवसिंह सेंगर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन इत्यादि ने विक्टोरिया और अंग्रेजी-राज्य की प्रशंसा की है (रवीन्द्र का इबारत से ही जाहिर 'जनगणमन' चारणगान ब्रिटिश-युवराज के स्वागत में रचा गया था), जिसे चाटुकारिता मात्र समझना इतिहास के सत्य को साम्यवाद-छाप चश्मे से देखना मात्र होगा। रामचन्द्र शुक्ल ने विक्टोरिया की तारीफ़ की है, मेथिलीशरण गुप्त ने पंचम जॉर्ज का जयजयकार किया है। खिलाफ़त आन्दोलन में गाँधी के अफ़ग़ानिस्तान के अमीर के आक्रमण पर स्वागत तथा हैदराबाद के निज़ाम को बादशाह के रूप में स्वीकार करने के विचारों का प्रबल विरोध लाजपतराय, मालवीय, श्रद्धानन्द, मुंजे, जमनादास मेहता इत्यादि ने किया था। इस विषय पर ब्रह्मदत्त भारती ने 'गाँधी एंड गांधीइज़म अन्मास्कड: वाज़ गाँधी ए ट्रेट-ग्रन्थ' लिखा। जब बीसवीं सदी के स्वातन्त्र्य-संग्राम के समय यह हाल था तब उन्नीसवीं सदी का वातावरण समझा जा सकता है। व्यक्तिगत रूप से, मैं नक्कीशाह, अहमद ख़ाँ, सिंधिया, रघुराजसिंह, 'द्विजदेव' इत्यादि का प्रशंसक नहीं हूँ, जबकि मंगलपांडे, लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे, बेनीमाधव, रामबख्शसिंह इत्यादि हुतात्माओं का भक्त हूँ। किन्तु इतिहास की वस्तुस्थिति को नकारना सत्य को नकारना होगा। ठाकुरप्रसाद मिश्र 'पण्डित प्रवीन' की कविता में मुग़ल विरोध इतिहास-बोध की दृष्टि से सर्वथा उल्लेखनीय है। वे सांप्रदायिक न थे, यह उनकी प्रशंसा मुसलमानों की मुक्त प्रशंसा से स्पष्ट है। उन्होंने अपने आश्रयदाता की स्तुति में भी अच्छे छन्द लिखे हैं। उनका प्रकृति-काव्य भी सुन्दर है। उनके 'सारसंग्रह' पर स्तरीय शोध अपेक्षित है। एक उद्धरण प्रस्तुत है :

1. भाजे भुजदंड के प्रचंड चोट वाजे वीर, सुंदरी समेत सेवें मंदर की कंदरी।
मुग़ल, पठान, शेख, सैयद असेष धरि, आवत हज़ारन बजार कैसे चौधरी।।
पंडित प्रवीन कहै मानसिंह भूपति, कमान पै आरोपत यों तीखो तीर कैवरी।
सिंह के समेटे गज, बाज के झपेटे लवा, तैसे भूलै भूतल चकत्तन की चौकरी।।

रघुराजसिंह

राम-अष्टयाम, राम-स्वयंवर, राम-रसिकावली, रघुपति-शतक, रघुराज-विलास, चित्रकूट-माहात्म्य, हनुमान-चरित्र इत्यादि के प्रसिद्ध रामकाव्यकार रीवाँ-नरेश रघुराजसिंह (1823-1889 ई.) प्रसिद्धतर महाराज विश्वनाथसिंह के पुत्र थे जिन्होंने श्रीमद् भागवत-माहात्म्य, जगन्नाथ-शतक, यदुराज-विलास, रुक्मिणी-परिणय इत्यादि के कृष्णकाव्यकार होने, 'शंभु-शतक' एवं 'गंगा-शतक' इत्यादि के व्यापक भक्तिकाव्यकार होने तथा भक्तमाल के भक्तिप्रशस्तिकार होने का युगपत् गौरव प्राप्त किया है, भले ही इनकी भारी संख्यावाली रचनाओं में अनेक रसिकानारायण, रसिकविहारी, श्रीगोविन्द, बालगोविन्द, रामचन्द्र शास्त्री इत्यादि आश्रित कवियों ने लिखी हैं (विश्वनाथसिंह पर भी यही बात लागू होती है—सम्राट् हर्ष से अब तक सत्ताधारियों की साहित्य-रचनाओं, भाषणों इत्यादि पर भी यही बात लागू होती है जो मत्स्य-न्याय के सर्वथा अनुकूल है)। इन्होंने दास्यभक्ति से माधुर्यभक्ति तक भक्ति के अनेक आयामों का स्पर्श किया है। यह प्रसिद्ध मधुरोपासक-रामभक्त युगलानन्द शरण का बहुत आदर करते थे तथा चित्रकूट में प्रमोदवन इत्यादि वृन्दावन-परिपाटी के रम्यस्थल दोनों के सम्बन्ध के परिणामस्वरूप ही बने। राम-अष्टयाम एवं रुक्मिणी-परिणय इनकी अत्यन्त ललित कृतियाँ हैं। इन्होंने यमक के अच्छे प्रयोग किए हैं। इन्होंने आखेट, रास, फाग इत्यादि के मनोहारी वर्णन किए हैं। इनकी अनेक छन्दबद्ध भाषा भी प्रशंस्य है। राजा मानसिंह 'द्विजदेव', ठा. शिवसिंह सेंगर, राजा लक्ष्मणसिंह इत्यादि के सदृश रघुराजसिंह भी 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम में अंग्रेज़ों के समर्थक रहे। सम्भवतः इससे ख्याति को आघात लगा हो। उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. अनल उदंड को प्रकाश नवखंड छायो, ज्वाला चंड मानौ ब्रह्मंड फौरै जाय-जाय।
पूरी अग्ना लखत ज्वालामालै दरसति एक, लोहित पयोधि भयो छाया एक छाय-छाय।।
देवता, मुनीस, सिद्ध, चारण, गंधर्व जेते, मानै महाप्रलै बेगि ब्योम और धाय-धाय।
देखि रामराम हेत दीन्हीं लंक लाय सबै, चाय भरे चले कपि राम-यश गाय-गाय।।

2. बांधवगढ़ पूरब जो गायो। सेन¹ नाम नापित² तहँ आयो।।
ताकी रही सदा यह रीती। करत रहै साधुन सों प्रीती।।
तहँ को राजा राम बधेला। बरन्यो जिहि कबीर को चेला³।।
कुरै सदा तिनकी सेवकई। मुकर⁴ दिखावै तेल लगाई।।

शंकरदास

‘बुद्धिप्रकाश’, ‘ब्रह्मज्ञानप्रकाश’, ‘भीष्मपर्व’, ‘तुलसीदास’ इत्यादि ग्रन्थों के प्रस्तोता स्वामी शंकरदास (1823⁵-1912⁶ ई., जिठौली, जनपद मेरठ) अत्यन्त स्फीत रचनाकर किन्तु अत्यन्त साधारण कवि थे। यह गौड़ ब्राह्मण⁷ थे। यह निरक्षर थे। किन्तु अपनी करुणा एवं आस्था के कारण आदर के पात्र माने गए। इनके परिचयात्मक उद्गार देखिए :

1. मकसत दुतियाने का निकास हुआ, पिलखुवा में बसे बड़े अन्न जब प्रकाश का।
कल्याणदत्त नाम-देह पिता का विख्यात हुआ, दान कौर माता फंदा टूटा यम-त्रास का।।
आध गौड़ विप्र और गोत्र तो वसिष्ठ म्हारा, मेरठ का जिला, डाकखाना मऊ खास का।
गढ़⁸ को सड़क जात, मौजे का जिठौली नाम, छोटा-सा स्थान जिसमें बना शंकरदास का।।
2. सब गुनियों का दास हूँ मैं मूरख मतिमद।
पढ़ा-लिखा मैं हूँ नहीं, नहीं रच जानूँ छंद।।

इनके चित्र से स्पष्ट होता है कि इन्हें वाद्य-संगीत का भी अभ्यास था। कभी-कभी धोती उठाने या नंगे होने, पुलिस के आने पर घर से बाहर न निकलने जैसे आचरण इन्हें असामान्य मस्तिष्क का व्यक्ति सिद्ध कर सकते हैं। चित्र भी यह सामान्य नहीं लगते। आ. क्षेमचन्द्र ‘सुमन’ के अनुसार, यह बाल-ब्रह्मचारी थे। इनके शिष्यों की संख्या अच्छी-खासी थी किन्तु उदार मानवतावादी होने के कारण इनके प्रति वह पारम्परिक भक्ति न पनप पाई जो पंथप्रवर्तकों या जातिविशेषजन्माओं इत्यादि के प्रति पनपती है। भारत में आदर पाने का एक सुगम साधन सत्त्वतः संकीर्णतावादी बनना है।

गंगादास

‘तत्त्वज्ञानप्रकाश’, ‘ब्रह्मज्ञानचिन्तामणि’, ‘ब्रह्मज्ञान-चेतावनी’, ‘ज्ञानमाला’, ‘गंगाविलास’ इत्यादि के उदासीन-संप्रदायगत संतकाव्यकार, ‘सिया-स्वयंवर’, ‘लचमण-मूर्छा’, ‘लंका-चढ़ाई’ इत्यादि के रामकाव्यकार, कृष्णलीला-गिरिराजपूजा (होली), ‘नागलीला’, ‘सुदामाचरित’ इत्यादि के कृष्णकाव्यकार ‘भक्त श्रवणकुमार’ (होली), ‘पार्वती-मंगल’ इत्यादि के विविधवृत्तकार गंगादास¹ (1823-1913 ई., रसूलपुर बहलोलपुर, जनपद गाजियाबाद) आधुनिक खड़ीबोली-कविता के एक इतिहास-पुरुष के रूप में भी अमर होने योग्य हैं, जिनकी साहित्येतिहास में प्रतिष्ठित करने का श्रेय स्व. श्री क्षेमचन्द्र ‘सुमन’ को है। ‘सुमन’ जी ने ‘दिवंगत हिन्दीसेवी’ (प्रथम खंड) में इनके अन्य प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों की सूची दी है। गेय पदों, विविध छन्दों, रसों, अलंकारों में गहरी पैठ इन संत-कवि की एक

1. वाराणसी में कबीरचौरा और तुलसीघाट के सदृश सेनपुरा भी है।
2. नाई-ठाकुर: चन्द्रगुप्त मौर्य, विन्दुसार, अशोक इत्यादि सम्राटों से कर्पूरी ठाकुर तक अनेक सत्ताधारी नाई थे, तभी तो ‘ठाकुर’ विशेषण लगा। सेन अन्य नापित-विभूति थे।
3. रामानन्द के शिष्य थे, कबीर-गुरुभाई। कबीर-शिष्य रीवाँ-राजवंश का संकेत।
4. मुकुर, आदर्श, दर्पण।
5. क्षेमचन्द्र ‘सुमन’ कृत ‘दिवंगत हिन्दीसेवी’ (प्रथम भाग), पृष्ठ 559।
6. डॉ. इन्द्र सेंगर कृत ‘भारतेन्दु-पूर्व खड़ीबोली-कविता’ (अप्रकाशित) के अनुसार ‘दिवंगत हिन्दीसेवी’ में भी यही है।
7. वसिष्ठ गोत्रीय।
8. गढ़गंगा। गढ़मुक्तेश्वर।
9. वास्तविक नाम गंगावल्हासिंह (मुंडेरगोत्रीय जाट)। घना जाट एवं गंगादास जाट-संत थे। प्रो. विजयेन्द्र स्नातक एवं स्व. प्रो. जगदीश कुमार जाट विद्वान् थे। अंग्रेजी-विद्वान् एवं राजनीतिज्ञ डॉ. सरूपसिंह भी जाट हैं। इतिहास-पुरुष सूरजमल एवं नेता चरणसिंह तो विख्यात हैं ही।

विशिष्टता है। 'सुमन' जी की प्रेरणा से 'महाकवि गंगादासः व्यक्तित्व एवं कृतित्व' (डॉ. जगन्नाथ शर्मा) शीर्षक प्रथम शोधकार्य आगरा विश्वविद्यालय से सम्पन्न हुआ। तदनन्तर, मेरठ विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर, 'संत गंगादास के साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन' (डॉ. नित्यकिशोर शर्मा), 'संत गंगादास एवं कवीर' (डॉ. राजेशवती) एवं 'कवीर एवं गंगादास के काव्य का तुलात्मक अध्ययन' (डॉ. सुरेन्द्रनाथ श्रीवास्तव) शोधग्रन्थ प्रकाशित हुए। प्रस्थान-शोधकार एवं गंगादासमय विद्वान् डॉ. जगन्नाथ शर्मा ने और आगे बढ़कर 'उदासीन-सम्प्रदाय के हिन्दी-कवि और उनका साहित्य' विषय पर मेरठ विश्वविद्यालय से डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त की, जिसकी प्रेरणा से डॉ. गिरीशचन्द्र शर्मा कृत 'उदासीन संत निगमानन्द और उनका साहित्य' शीर्षक शोधकार्य सम्पन्न हुआ। गंगादास पर अन्य अनेक शोधकार्य भी हुए और हो रहे हैं। 'सुमन' जी की प्रेरणा से डॉ. जगन्नाथ शर्मा ने संत गंगादास शोध संस्थान (शाहदरा, दिल्ली) की स्थापना की है जो पांडुलिपि-संकलन-प्रकाशनादि की दिशा में यत्नशील है। यह संस्था भव्य आयोजन भी करती रहती है। डॉ. इन्द्र सेंगर के शोधप्रबन्ध 'भारतेन्दु-पूर्व खड़ीवोली-कविता' एवं डॉ. मोहनसिंह गहरवार के शोधप्रबन्ध 'उत्तरमध्यकालीन हिन्दी-निर्गुण काव्य' में भी गंगादास पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यह सत्य है कि संत गंगादास को क्षेत्रीय-भावना से देखा-सराहा गया है, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि वे एक जागरूक एत एवं स्फीत कवि हैं, जिनकी वाणी में परम्परा का प्राधान्य होते हुए भी अस्मिता का नितान्त अभाव भी नहीं है। 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के उद्धरणों से खुसरो, ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, नामदेव, प्राणनाथ इत्यादि की वाणी तक प्रसरित खड़ीवोली कविता के एकहज़ार साल के ज्ञात इतिहास में गंगादास का नाम भी आदरपूर्वक लिया जा सकता है। वे संकीर्ण विचारधारा के संत न थे तथा निर्गुण-सगुण के स्थूल द्वैत में रुचि न रखते थे। उनकी वाणी में निर्गुण ब्रह्म, शिव, राम, कृष्ण सबके लिए उचित स्थान उपलब्ध है। उन्होंने ऐसे गीत भी रचे हैं जैसे उनके युग में अन्यत्र दुर्लभ हैं। उन्होंने उलटबाँसी के प्रयोग भी किए हैं। व्यक्तिगत रूप से, मैं गंगादास के अधिकांश युगाग्र-गीतों की प्रामाणिकता के प्रति शंकालु हूँ। उनकी विशद एवं उदार वाणी के दो निदर्शन प्रस्तुत हैं :

1.

संजम का कर थाल लिया है ज्ञान का दीपक वाल लिया है

तन-घंटा तत्काल लिया है

धूप करी निष्काम की—मनौ अनहद शंख बजाया।

पूजा करके आत्माराम की मनौ परमेश्वर पति पाया।

2.

तू भरमाया किस भूत ने, भूतों का भूत तुही है।

भूल के अपने सदा संग कू

फिरै ढूँढ़ता जल तरंग कू

सर्वगी के एक अंग कू

पकड़ाया किस ऊत ने, सत्ती अर ऊत तुही है।

रवि की रश्मि समेट विशाला

बनवाई। वर अद्भुत माला

जनमा। नहीं बनानेवाला

पहरी वंध्या के पूत ने माता अर पूत तुही है।

कनक में मिथ्या भूषण जैसे

माटी में घट समझो तैसे

जगत बुना चेतन ने ऐसे

जा बिध बस्तर सूत ने, बस्तर अर सूत तुही है।

कर तलाश तू अपने घर कू

शिव सर्वज्ञ उमापति हर कू

गंगादास त्याग दे डर कू

तू धमकाया किस दूत ने, हाकम अर दूत तुही है।

तू भरमाया किस भूत ने, भूतों का भूत तुही है।।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द

हिन्दी-गद्य के इतिहास में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द (1823-1895 ई.¹ काशी) को एक निश्चित स्थान प्राप्त है। उनके 'राजा भोज का सपना', 'वीरसिंह का वृत्तांत', 'मानवधर्मसार', 'उपनिषद्सार', 'वामा'-मनोरंजन', 'गुटका' (तीन भाग) इत्यादि की भाषा आदर्श हिन्दी थी, किन्तु सरकार और पुरानी-सरकार (मुसलमान) के तुष्टीकरण के कारण (सरकारी-बन्दे थे ही) वे उर्दू के फेर में पड़ गए तथा 'बनारस अखबार', 'इतिहास-तिमिर-नाशक', 'सिखों का उदय और अस्त', 'कुछ बयान अपनी जुबान का' इत्यादि ग्रन्थों में न इधर के रहे न उधर के। सर सैयद अहमद खाँ जनभाषा हिन्दी का गँवारों की 'भाखा' कह रहे थे क्योंकि सभ्य-संस्कृत भाषा केवल एक थी—उर्दू। दूर फ्रांस में बैठे गार्सी द तासी मोहम्मदीयत के भी मूर्तिपूजाहीन न होने तथा कुरान में ईसा को पैगम्बर माने जाने के सम्मान से अभिभूत होकर 'परस्पर प्रशंसन्ति' की लकीर के फ़कीर बन रहे थे। ऐसे में शिवप्रसाद सितारेहिन्द भी "आमफ़हम जुबान" का राग अलापकर उर्दूबाज़ी के फेर में पड़ गए। इसका कोई परिणाम नहीं निकल सकता था क्योंकि कोटि-कोटि जनता की भाषा को कोई दबा नहीं सकता। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द उर्दूपरस्ती के कारण उस गौरव से वंचित रह गए जो उनके शिष्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को प्राप्त हुआ। भारतेन्दु ने उनका मज़ाक भी उड़ाया, क्योंकि वे भारत-भक्त और भारती-भक्त पहले थे, अन्य कुछ बाद में। वे अन्ध गुरु-भक्ति के आखेट नहीं बने और उनके लिए भी शुभ रहा और हिन्दी के लिए भी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में लिखा है, "उन्होंने राजा शिवप्रसाद को लक्ष्य करके खुशामदियों और केवल अपनी मानवृद्धि में की फ़िक्र में रहने वालों पर छींटे छोड़े। भारत के प्रेम में मतवाले, देशहित की चिन्ता में व्यग्र हरिश्चन्द्र जी पर सरकार की जो कुदृष्टि हो गई थी, उसके कारण बहुत-कुछ राजा साहब ही समझे जाते थे।" किन्तु राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के प्रकृत-संस्कार कभी-कभी हिन्दी को उखाड़ने वालों के षड्यन्त्र का सफल विरोध करने के लिए विवश भी होते रहते थे। 'विनोद' के महान् प्रणेता मिश्रबन्धु के शब्दों में, "इन्होंने अनेकानेक पाठ्यपुस्तकें लिखीं और शिक्षा-विभाग में हिन्दी को स्थान दिलाकर हिन्दी-जगत् का बड़ा ही उपकार किया। उस समय यह प्रश्न उठा था कि शिक्षा-विभाग से हिन्दी उठा दी जाए। ऐसे अवसर पर राजा साहब के परिश्रम से वह रुक गई।" इसी बिन्दु को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं, "यहाँ तक कोशिश की गई कि वर्नाक्यूलर स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा जारी ही न होने पाए। विरोध के नेता थे सर सैयद अहमद साहब, जिनका अंग्रेज़ों के बीच बड़ा मान था। वे हिन्दी को एक 'गँवारी बोली' बताकर अंग्रेज़ों को उर्दू की ओर झुकाने की लगातार चेष्टा करते आ रहे थे। इस प्रान्त के हिन्दुओं में राजा शिवप्रसाद अंग्रेज़ों के उसी ढंग के कृपापात्र थे जिस ढंग के सर सैयद अहमद। अतः हिन्दी की रक्षा के लिए उन्हें खड़ा होना पड़ा और वे बराबर इस सम्बन्ध में यत्नशील रहे।"

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की सहज हिन्दी एवं उर्दू-हिन्दी के नमूने पेश हैं :

1. विदर्भ नगर² के राजा भीमसेन की कन्या भुवनमोहिनी दमयन्ती का रूप और गुण सारे भारतवर्ष में प्रख्यात हो गया था। निषध देश के राजा वीरसेन के पुत्र सर्वगुणविशष्ट अतिसुशील धार्मिक नल से स्वयंवर में उसने जयमान देकर विवाह किया।

2. यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं की मदद से बनता है उसका हाल कई दफ़ा ज़ाहिर हो चुका है।... देखकर लोग उस पाठशाले के किते के मकानों की खूबियाँ अक्सर बयान करते हैं और उनके बनने के खर्च की तजवीज़ करते हैं कि जमा से ज्यादा लगा होगा और हर तरह से लायक़ तारीफ़ के है। सो यह सब दानाई साहब ममदूह की है।

कई लोग भाषायी-घोंघेबाज़ी के कारण आम-फ़हम जुबान केवल उर्दू-भरी भाषा को ही मानते हैं जो एकदम ग़लत है। उर्दू-भरी हिन्दी केवल हिन्दी की अस्मिता के विरुद्ध ही नहीं हैं, जनता की समझ में नहीं आती और दक्षिणी राज्यों, बंगाल, असम, महाराष्ट्र इत्यादि में विदेशी भाषा लगती है।

1. मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में संवत् 1880-1952 विक्रमी। मिश्रबन्धु के अनुसार, वे जैन थे। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है कि वे परमारवंशीय क्षत्रिय थे।

2. 'विदर्भ' (पुरानी शैली में 'देश') अब भी इस अंचल को विदर्भ ही कहते हैं।

हिन्दी-साहित्य के आरम्भकाल से ही अहिन्दी-क्षेत्रों के कवि, संत इत्यादि हिन्दी में रचना करते हैं। तेरहवीं-चौदहवीं सदियों में ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, नामदेव इत्यादि महाराष्ट्र के संतों ने हिन्दी-कविता की श्रीवृद्धि की तथा फ़ारसी-महाकवि खुसरो ने ऐतिहासिक हिन्दी-काव्यरचना की। हिन्दी के ये कवि खड़ीबोली-कवि थे। नानक, अर्जुन जैसे सिख-गुरुओं ने पंजाबी में नहीं प्रत्युत हिन्दी (ब्रजभाषाप्रधान) को अपनाया क्योंकि ये मानवतावादी एवं राष्ट्रवादी संत थे, संकीर्ण मतवादी-भाषावादी नहीं। कुतुबशाह जैसे दक्षिणात्य एवं प्राणनाथ जैसे गुजराती महानुभावों ने हिन्दी (खड़ीबोली) अपनाई। बंगाली राममोहन राय, दक्षिणात्य कांदूर श्रीरंगाचार्य, गुजराती दयानन्द सरस्वती, कर्णाटक के मुक्तानन्द परमहंस, केरल के आनन्दशंकर माधवन, केरल के ही एन. चन्द्रशेखरन् नायर इत्यादि ने अनमोल हिन्दी-ग्रन्थरचना की है। हिन्दी के विद्यापति एवं कबीर ने रवीन्द्र को प्रेरणा दी तथा रवीन्द्र ने सूर पर कविता रची, तुलसी की सराहना की। हिन्दी के सूर के “प्रभुजी मेरे अवगुन चित न धरो” शीर्षक पद खेतड़ी (राजस्थान) में एक वेश्या से सुनकर विवेकानन्द के नेत्रों से अश्रु झर चले थे तथा उन्होंने इस पद का अंग्रेज़ी-अनुवाद भी किया। ये सारे तथ्य हिन्दी के सहज एवं प्राचीन राष्ट्रभाषा-रूप को सिद्ध करते हैं। आर्य समाज² के संस्थापक, महान् समाज-सुधारक, वेदों के अप्रतिम पुनर्प्रतिष्ठापक दयानन्द (12 फरवरी 1824-1830 अक्टूबर 1883 ई.) पहले संस्कृत में शास्त्रार्थ एवं प्रवचन करते थे। उन्होंने व्यापक जन-जीवन पर प्रभाव की दृष्टि से बंगाल के ब्रह्म समाज नेता केशवचन्द्र सेन के अनुरोध पर हिन्दी को माध्यम बनाया। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग 2 में ज्ञानवती दरबार एवं डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने दयानन्द के इन ग्रन्थों का उल्लेख किया : अनुभ्रमोच्छेदन, अष्टाध्यायी-भाष्य, आत्मचरित, आर्याभिविनय, आर्योद्देश्य-रत्नमाला, कुरानहिन्दी, गोकर्ण-निधि, गौतम-अहल्या की कथा, जालन्धर की बहस, पंचमहायज्ञविधि (संध्या-भाष्य), भाव्यार्थ, पोपलीला, प्रतिमापूजनविचार, प्रश्नोत्तर हलधर, प्रश्नोत्तर उदयपुर, भ्रमोच्छेदन, मेला चौदपुर, ऋग्वेद-भाष्य-भूमिका, ऋग्वेद-भाष्य, यजुर्वेद-भाष्य, वेदविरुद्धमत-खण्डन, वेदातिध्वात-निवारण, व्यवहार-भानु, शिक्षा-पत्री ध्वात निवारण, संस्कार-विधि, संस्कृत वाक्य-बोध, सत्यार्थप्रकाश, सत्यासत्य-विवेक, वर्णोच्चारण, सन्धि-विषय, नामिक, आख्यातिक, पारिभाषिक, सौवर, अनादि कोष, निघंटु, ‘पाणिनि के ग्रन्थ अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, शिक्षा और प्रतिपादिक’, आलंकारिक कथा। स्वामी दयानन्द सरस्वती का सत्यार्थप्रकाश सार्वभौम एवं सार्वकालिक महत्त्व का ग्रन्थ है, जिसमें उन्होंने अपने द्वारा प्रतिपादित वेदवाद के अतिरिक्त समस्त भारतीय सिद्धान्तों (अद्वैत, शैव, वैष्णव, शाक्त इत्यादि) एवं समस्त भारतीय-अभारतीय व्यक्तिप्रवर्तित मतों (बौद्ध, जैन, सिख, ईसाई, मोहम्मदी इत्यादि) का प्रखर शैव, वैष्णव, शाक्त इत्यादि) एवं समस्त भारतीय-अभारतीय व्यक्तिप्रवर्तित मतों (बौद्ध, जैन, सिख, ईसाई, मोहम्मदी इत्यादि) का प्रखर खण्डन किया है। दयानन्द विश्व के सर्वोपरि खण्डनवादी मनीषी थे। उन्होंने सनातन-धर्म, ईसाइयत और मोहम्मदीयत इत्यादि के ध्वज उड़ाकर रख दिए हैं। उनका खण्डनवाद कठोर है, उनकी प्रतिपादन-शैली लड़मार है, उनकी भाषा रूक्ष है, किन्तु भारतवर्ष, हिन्दू-जाति एवं हिन्दी-भाषा के लिए की गई उनकी सशक्त एवं प्राणवान सेवा उन्हें राममोहन राय एवं गाँधी तक से श्रेष्ठतर सिद्ध करती है (उनका प्रभाव गहनतर है)। उनके लाला लाजपतराय³, स्वामी श्रद्धानन्द⁴ महात्मा हंसराज⁵ भाई परमानन्द⁶, लाला दीवनचन्द (महान् डी. ए. वी. कॉलेज लाहौर एवं डी. ए. वी. कॉलेज कानुपर के प्राचार्य, आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति, शिक्षाविद्, दार्शनिक अंग्रेज़ों-विद्वान् एवं लेखक, हिन्दी-लेखक) जैसे शिष्यों एवं अनुयायियों ने स्वतन्त्र-संग्राम में ही नहीं प्रत्युत शिक्षा-उन्नयन की दिशाओं में ही महान् कार्य किए। आर्य समाज को हुतात्मा समाज कहा जा सकता है। दयानन्द जोधपुर की एक मुसलमान वेश्या (जिसका राजदरबार में

1. मूलनाम मूलशंकर-तिवारी ब्राह्मण-परिवार उत्तर प्रदेश से टंकारा (गुजरात) में जा बसा था, जहाँ जन्म हुआ। इनके गुरु मथुरावृन्दावन के प्रज्ञाचक्षु विद्वान् विरजानन्द (संन्यासी) थे। विरजानन्द बड़े जड़बुद्धि विद्वान् थे जो अपने शिष्यों से पुराणों पर ही नहीं अपितु 'रघुवंशम्' इत्यादि पर भी उपानह-प्रहार करते थे—आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस सन्दर्भ में उचित भर्त्सना की है। विरजानन्द का दयानन्द पर प्रभाव स्वाभाविक है। नई दिल्ली में विरजानन्द अन्ध महाविद्यालय इनका स्मारक है।
2. 10 अप्रैल, 1875 को मुम्बई में स्थापना हुई।
3. दिल्ली में लाजपतनगर, लाजपतराय मार्केट, संसद-समीप मूर्ति, लाजपतराय मार्केट मूर्ति इत्यादि, देश के अनेक नगरों में लाजपतनगर लाल-बाल-माल की ऐतिहासिक त्रयी के इस महापुरुष को जीवन्त बनाए हैं। कानपुर में लाजपतराय तो है ही, विशाल लाजपतराय चिकित्सालय भी है जिसका पुराना नाम हैलेट हॉस्पिटल (अन्तिम अंग्रेज-गवर्नर पर) था।
4. दिल्ली के घंटाघर (अब नहीं) क्षेत्र में साम्राज्यवादी बन्दूकों के सामने छाती खोलने वाले श्रद्धानन्द की मूर्ति लगभग वहीं टॉउन हॉल परिसर में प्रतिष्ठित है। मूलनाम मुंशीराम था। गुरुकुल काँगड़ी के संस्थापक के रूप में इनके चरणों पर सर रखकर गाँधी हर्षविह्वल होकर रोए थे।
5. दिल्ली के प्रसिद्ध हंसराज कॉलेज एवं स्कूल इनके जीवन्त-स्मारक हैं। यह महान् शिक्षाविद् थे।
6. हिन्दू महासभा भवन, नयी दिल्ली (बिड़ला मन्दिर के पास) में इनकी मूर्ति प्रतिष्ठित है, 'नगर' एवं 'मार्केट' भी हैं।

प्रवेश था—एक बार दयानन्द को जाते देख महाराज डर गया है और उसे हटाने की हड़बड़ी में पालकी को खुद उठाने लगा जिस पर दयानन्द ने भारी फटकार बताई जिससे वह बहुत आहत हो गई और रसोई के जरिए भोजन में पिसा काँच दिला दिया जिससे दयानन्द रुग्ण हो गए और कुछ समय पश्चात् अजमेर में दिवंगत हो गए) के कारण हुतात्मा बने, लाजपतराय स्वातन्त्र्य-संग्राम में उस सांडर्स की लाठियों के शिकार बनकर (कुछ समय पश्चात्) हुतात्मा बने जिसे मारकर राजगुरु (मराठा) एवं भगतसिंह (पंजाबी-सिख आर्यसमाजी) अमर हो गए, श्रद्धानन्द को 'शुद्धि' के कारण एक मतान्ध क्रांतिल (मुसलमान) ने हुतात्मा बनाया।

पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर', आ. पद्मसिंह शर्मा, आ. रामदेव, जयचन्द्र विद्यालंकार, सत्यकेतु विद्यालंकार, जयदेव वेदालंकार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, यशपाल¹, डॉ. नगेन्द्र², प्रो. बलराज मधोक, प्रो. कमला मधोक इत्यादि कई तरह के आर्यसमाजियों ने हिन्दी-साहित्य की विविध विधाओं में महत्वपूर्ण ग्रन्थरचना की है। दयानन्द पर भक्तों एवं अनुयायियों ने शत-शत ग्रन्थ रचे हैं। क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने 'हिन्दी-साहित्य को आर्यसमाज की देन' शीर्षक ग्रन्थ में विषय का अच्छा परिचय दिया। डॉ. भगतराम शर्मा ने भी इसी प्रकार का अन्य ग्रन्थ रचा है। डॉ. महेन्द्रप्रताप सिंह ने उन पर 'स्वप्न-दर्शन' खण्डकाव्य प्रस्तुत किया है। श्री जगदेव 'शान्त' ने 'महर्षि दयानन्द' महाकाव्य रचा है। यह सत्य है कि आर्य-समाज का शुष्क, नाकरात्मक एवं तर्कप्रधान जीवन-दर्शन किसी महान् कवि या कलाकार को उत्पन्न नहीं कर सकता, मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में 'मुखमोहिनी विद्या' की चर्चा भी की है, आर्यसमाज के प्रभाव से कवि या कलाकार को उत्पन्न नहीं कर सकता, मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में 'मुखमोहिनी विद्या' की चर्चा भी की है, आर्यसमाज के प्रभाव से कवि या कलाकार भी नेता बन जाता है (ऋषिविरोधोत्सव नितान्त स्थूलतावादी है—महाशिवरात्रि पर्व के दिन शिवलिंग पर मूषक-क्रियाकलाप देखकर बालक मूलशंकर मूर्तिपूजा-विरोधी बने थे: यह 'बोध' अहं एवं द्वैत पर आधृत है क्योंकि शिव के लिए मूषक अवहेलनीय नहीं प्रत्युत वह उनके पुत्र गणेश का प्रिय वाहन है; देववाहनवाद अद्वैत-व्यंजक है)—किन्तु राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा की सेवा में उसका योगदान प्रशंस्य भी है, प्रणम्य भी है। स्वयं मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में 1859-1868 ई. के समय को दयानन्द-काल माना है। परकीयतावादी एवं हिन्दीघाती³ आर्य समाज पर जो प्रहार करते हैं उनका कोई महत्व नहीं, क्योंकि वे क्षुद्र राजनीति से प्रेरित होते हैं। एक उदाहरण से बिन्दु स्पष्ट हो जाएगा: पहले ये तत्व विभाजन के लिए आर्य समाज को उत्तरदायी ठहराते थे और बाद में खालिस्तानी आन्दोलन के लिए—प्रश्न उठता है कि यदि आर्य समाज इतना प्रभावी था तो वह सत्ता की दृष्टि से प्रभावहीन कैसे रह गया, जबकि कांग्रेस विभाजित भारत पर, मुस्लिम लीग पाकिस्तान पर, अकाली दल पंजाब पर और साम्यवादी बंगाल पर एवं केरल पर शासन कर सके? दयानन्द की हिन्दी का एक निदर्शन प्रस्तुत है :

“जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं, वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथ्वी आदि भूति, पाषाण और पृक्ष आदि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक⁴ महाक्लेश भोगते हैं जो सब जगत में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा⁵ परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है। जो वाणी की इयत्ता, अर्थात् यह जल है लीजिए वैसा विषय नहीं और जिसके धारण और सत्ता से वाणी को प्रवृत्ति होती है, उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर, और जो उससे भिन्न है, वो उपासनीय नहीं। जो मन से इयत्ता कर मन में नहीं आता जो मन को जानता है, उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर, जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण है, उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान पर मत कर।”

खैराशाह

खैराशाह मेरठ के जुलाहे थे जिन्होंने 'बाहरमासा' लिखा था। इसकी एक प्रति 1870 ई. की है जो किसी अल्पशिक्षित व्यक्ति द्वारा लिखी होने के कारण अत्यन्त अव्यवस्थित है। आषाढ़ का वर्णन देखिए:

1. यशपाल पहले आर्यसमाजी थे, किन्तु कालान्तर में परिस्थितियों ने वाममार्गी बना दिया।
2. नगेन्द्र के पिता पक्के आर्यसमाजी थे। कठोरता से मुक्त नगेन्द्र तक आर्यसमाज के निकट-से रहे।
3. परकीयतावादी कॉम्युनिस्ट रोमन लिपि में लिखित हिन्दुस्तानी या उर्दू को राष्ट्रभाषा-राजभाषा बनाना चाहते थे, जिसके विरोध पर राहुल, यशपाल, रागेय राघव इत्यादि को पार्टी से निकाला था। बाद में भी भारतीयता की सम्पूर्ण उपेक्षा न करने के कारण रामविलास शर्मा की कुछ उपेक्षा की गई।
4. प्रकृतिपूजा की नरकमयमूलक विगर्हणा तत्त्वतः अन्धविश्वासपूर्ण एवं मोहम्मदी-प्रभावजन्य रूढ़ि मात्र है। 'एक अदृश्य' मात्र की पूजा भी तर्क से निराधारा सिद्ध की जा सकती है। पूजा का आधार आस्था है जो तर्क से नहीं सिद्ध की जा सकती।
5. स्वयं दयानन्द के चित्र पूजे जाते हैं।

असाढ़ में विनती करै खैराशाह अधीन। तुम बिन व्याकुल नैन हैं जैसे जल बिन मीन।।
असाढ़ में सोहै परी सब ख्वाब देखै कामिनी। अवर ने बिजली खिलै दुष देत दोनों दामिनी।।
हर वक्त मत उठ बोल कोयल पी विना नैना झुरै। काली घटा चहुँ ओर छाई पवन पुरवाई चलै।।
वन मोर बोले खुश गुलसुन के वचन हियरा डरै। सो सार जाने इश्क ही उनकी बलाएं सिर पड़ै।।

राजा लक्ष्मणसिंह

“वर्तमान हिन्दी-भाषा का प्रचार जब तक भारतवर्ष में रहेगा, विद्वन्मण्डली में राजा साहब का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाएगा।”
—मिश्रबन्धु (विनोद)

“राजा लक्ष्मणसिंह के समय में ही हिन्दी-गद्य की भाषा अपने भावी रूप का आभास दे चुकी थी।... ये हिन्दी के गद्य-प्रवर्तकों में थे।”
—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी-साहित्य का इतिहास)

“आपकी भाषा जनता के अधिक निकट है। भारतेन्दु को अपना पथ प्रशस्त करने में राजा शिवप्रसाद की अपेक्षा राजा लक्ष्मणसिंह से अधिक प्रेरणा मिली होगी।” हिन्दी-गद्य शैली के उन्नायकों में आपका ऐतिहासिक महत्व है।”
—रामचन्द्र तिवारी (हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2)

रामप्रसाद निरंजनी, सदासुखलाल ‘नियाज़’, लल्लूजी ‘लाल’, सद्गल मिश्र, इंशा अल्ला ख़ाँ एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के कथावाचनवाद, क्रिस्तागोर्ड एवं उर्दूवाद की सँकरी गलियों से निकालकर-हिन्दी-गद्य को प्रशस्य एवं प्रशस्त जनपथ पर लाने वाले राजा लक्ष्मणसिंह (1826-1896 ई., आगरा) भारतेन्दु-पूर्व गद्यकारों में शीर्षस्थ स्थान के अधिकारी हैं। यदि उनके गद्य में आगरापन न होता (गुन, अचरज, पछताव, राँड़, गगरी, उनहार, आरबल, टहलुवा इत्यादि के स्थान पर सार्वभौम शब्दों के प्रयोग होते क्योंकि अनुवाद कालिदास के अभिज्ञान-शकुन्तलम्, रघुवंशम् एवं मेघदूतम् थे) तथा वे “हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं”¹ की मान्यता को दूर तक न खींचते (उर्दू हिन्दी की एक ही शैली है जिसे सांप्रदायिकता ने विदेशी अरबी-फ़ारसी-तुर्की से लादकर और विदेशी लिपि की वन्दिनी बनाकर संकीर्ण एवं विवादास्पद कर दिया है) तो वे सर्वमान्य हिन्दी-गद्य के जनक कहे जाते। उनकी अनुवाद-शैली मल्लिनाथ की “नामूलं लिख्यते किञ्चित्” के अत्यधिक अनुरूप चलती है। राजा लक्ष्मणसिंह के गद्य एवं काव्य के उद्धरण² प्रस्तुत हैं :

1. अनसूया—(हौले प्रियंवदा से) सखी, मैं भी इसी सोच-विचार में हूँ। अब इससे कुछ पूछूँगी—(प्रकट) महात्मा, तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो? और किस देश की प्रजा को विरह में व्याकुल छोड़ यहाँ पधारें हो? क्या कारण है जिससे तुमने इतने कोमल गात को इस कठिन तपोवन में आकर पीड़ित किया है?

2. पृथ्वी ऐसी जान पड़ती है मानो ऊपर को उठते हुए पहाड़ों की चोटी से नीचे खिसलती जाती है। वृक्षों की पीड़ें जो पत्तों से ढकी हुई सी थी खुलती आती है। नदियों का पतलपन मिटता जाता है और भूमण्डल हमारे निकट आता हुआ ऐसा दीखता है मानो ऊपर को उछाल दिया है।

3. रस वीच मैं लै चलियो चिर विंध को जो मग तेरी निहारती है।

कटि किंकिनि मानो बिहंगम पाँति तरंग उठे झनकारती हैं।।

मनरंजन चालि आनोखी चलै अरु भौर सी नाभि उधारती है।

बतरात है मीत सों आदि यही तिय बिभ्रम मोहिनी डारती है।।

4.

मीत के मंदिर जाति चली मिलिहैं तहँ केतिक राति में नारी।

मारग सूझ तिन्हें न परै जब सूचिकाभेद झूकै अँधियारी।।

कंचन रेख कसौटी सी दामिनी तू चमकाई दिखाइ अगारी।

कीजियो ना कहूँ मेह की घोर मरै अबला अकुलाइ बिचारी।।

1. राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द एवं भारतेन्दु के रास्ते अलग-अलग थे। दोनों में छिड़ भी गई थी। अतः यह उल्लेख निरर्थक है। हाँ, भारतेन्दु पर राजा लक्ष्मणसिंह का प्रभाव सम्भव है।

2. ‘रघुवंशम्’ के अनुवाद की ऐतिहासिक भूमिका में।

3. ‘विनोद’ के उद्धरणों का ही प्रायः सभी परवर्ती लेखकों ने प्रयोग किया है। ‘विनोद’ अद्यावधि हिन्दी का अद्वितीय साहित्येतिहास एवं उद्धरण-कोश है।

स्पष्ट है कि राजा लक्ष्मणसिंह गद्यकार थे—हिन्दी के मल्लिनाथ—और उनका काव्यानुवाद कविकुलगुरु¹ के गहन लालित्य को संप्रेषित नहीं कर पाता। उनका काव्यानुवाद बोझिला भी है। किन्तु उससे उनके कवि होने की सूचना तो मिल ही जाती है। उनके अनूदित नाटक को विशद लोकप्रियता प्राप्त हुई तथा देश-विदेश में उसका व्यापक सम्मान भी हुआ। फ्रेडरिक पिन्कोट, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द², मिश्रबन्धु एवं रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

राजा लक्ष्मणसिंह का साधु गद्य कहीं भी न कठिन है, न नीरस, न बोझिला। वह प्रायः अरबी-फ़ारसी-तुर्की के शब्दों से मुक्त है। किन्तु वह इंशाअल्ला खाँ के गद्य के सदृश कृत्रिम और हल्का नहीं है। क्रान्तिकारी एवं देशभक्त लाला हरदयाल प्रत्येक अरबी, फ़ारसी, तुर्की शब्द को हमारी दासता का एक चिह्न मानते थे। डॉ. श्यामसुन्दरदास, प्रसाद प्रभृति मान्य आचार्य एवं कवि भी अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्दों से मुक्त भाषा का प्रयोग कर चुके हैं। किन्तु 721 ई. से 1739 ई. तक (मोहम्मद बिन-कासिम की सिन्ध-विजय से नादिरशाह की दिल्ली-लूट तक) अरबों, तुर्कों, फ़ारसियों³ (ईरानियों) इत्यादि से इतिहास पर जो अमिट प्रभाव पड़ा है उसे सामान्य जनजीवन से मिटाया नहीं जा सकता और इसे आधुनिक हिन्दी के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ निर्माता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही ध्यान में रखा है।

हरिसेवक⁴

‘सेवक-बहार’ एवं ‘सेवक-तरंग’ के कवि संत स्वामी हरिसेवक साहब (1829-1899 ई.) की कविता इसलिए उल्लेखनीय है कि उसमें बलिया⁵ के सुन्दर वर्णन प्राप्त होते हैं तथा भक्ति को आधुनिक बलसाधनों से जोड़ा गया है। उन्होंने बलिया का सम्बन्ध राजा बलि से न बताकर आदिकवि वाल्मीकि से बताया है जो महत्वपूर्ण है। उनका भक्ति को पिस्तौल, बन्दूक, तोप, गोला, इत्यादि सम्पृक्त करना अभूतपूर्व भी है, रोचक भी। उनकी भाषा में प्रवाह अच्छा है :

1. बचन बिस्वास वो मदद गुरु आसले, त्रिगुण पिस्तौल बंदूख करु ग्राम को।
तोप संतोष अरु ज्ञान गोला बना, बीर ना गने रण शीत और घाम को॥
बंधु सुत नारि परिवार सब बहर बनो है, ढाल कर बाल अहरह जाम को।
कहें हरिसेवक पद शीश दे गुरु को, विषय को मारि, ललकारि ले राम को॥
2. जै जै जै बालमीक बलिया जो प्रगट कियो, चारों दिसि खाई जाकी चौकी मुनीश्वर की।
पूरब परासर पच्छिम गंगा गर्ग दर दर भृगु दक्खिन हैं कपिलदेव उत्तर देकुलेस्वर की॥
मध्य पुरी राजे बिपुल साधु संत गाजें तामें, धाम छबि छाजें हुकुम रानी बलेस्वर की।
गादी है बजार बंस कायथ वजीरापुर, तामह हरिसेवक खास किंकर परमेस्वर की॥

श्रद्धाराम फिल्लौरी⁶

‘सत्यामृत-प्रवाह’, ‘आत्म-चिकित्सा’, ‘तत्व-दीपक’, ‘धर्म-रक्षा’, ‘उपदेश-संग्रह’ इत्यादि गद्य तथा ‘शतोपदेश’ एवं ‘ओउम जय जगदीश हरे’ शीर्षक विश्व-विश्रुत प्रार्थना इत्यादि पद्य रचनाओं के प्रस्तोता, रामायण एवं महाभारत के अतिलोकप्रिय कथावाचक तथा अपने समय में पंजाब में हिन्दूधर्म के प्रमुख रक्षक एवं प्रखर व्याख्यानकर्ता पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी (1837-1881 ई.) यद्यपि तत्कालीन साहित्यकार एवं कवि न होकर उपदेशक एवं कथावाचक थे, तथापि ‘भाग्यवती’ उपन्यास (1877 ई.) के कारण कोई साहित्येतिहासकार

1. “कालिदास—“भासी हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।”

2. जिनका ‘गुटका’ स्फीत प्रस्तुति से सम्पन्न है।

3. पारसी नहीं।

4. ‘विनोद’ में ‘स्वामी हरिसेवक साहब संत’ लिखा है।

5. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ‘बलिया ज़िले का इतिहास’ लिखा है।

6. शुक्ल ने फुल्लौरी लिखा जो साफ़-सपाट गलत है और जल्दबाजी में लिख डाला था, किन्तु अंधानुयायियों ने इसी को तोतादंत का परिचय दिया है, जबकि फिल्लौरी अब भी भारत में है। शुक्ल के महान् व्यक्तित्व का आतंक इतना अधिक है कि उनकी गलतियों के संकेत के कारण मैं बहुत दंडित किया गया (दिल्ली में, लखनऊ में, अन्यत्र भी)—और पद्यश्री देवेन्द्र सत्यार्थी (स्वयं पंजाबी) तो फुल्लौरी के पक्ष में भी कुछ बोलकर ही चुप हुए थे।

उन्हें विस्मृत नहीं कर सकता। शुक्ल ने 'भाग्यवती' एवं उसके रचनाकाल का उल्लेख करते हुए भी असावधानीवश श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा-गुरु' (1882 ई.) को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है जो स्पष्टतः गलत है और खेद है कि परवर्ती लकीर के फ़कीरों ने वही पथ अपनाए रखा है—किन्तु हिन्दी का प्रथम उपन्यास पं. गौरीदत्त कृत 'देवराणी-जेठानी की कहानी' (1870 ई.) है। पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'ओउम जय जगदीश हरे' प्रार्थना को किन्हीं 'शिवानन्द स्वामी' एवं 'हरिहर स्वामी' (हरीहर स्वामी) ने बड़ी बेशर्मी से चुरा डाला है, किन्तु "श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ संतन की सेवा" की समापन-पंक्ति में उनकी 'छाप' स्पष्ट है। आर्य समाज के प्रति जागरूक होते हुए भी पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी ने दयानन्द की वेदेतर प्राचीनग्रन्थखंडन में भोंड़ी रुचि के विरोधी थे तथा भक्ति में दास्यभाव का सम्मान करते थे। उनकी अमर प्रार्थना प्रस्तुत है :

ॐ जय जगदीश हरे, प्रभु जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट क्षण में दूर करे।। ॐ...
जो ध्यावे फल पावे, दुख बिनसे मन का।
सुख-संपति घर आवे, कष्ट मिटे तन का।। ॐ...
माता-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा आस करूँ जिसकी।। ॐ...
तुम पूरन परमात्मा, तुम अंतर्यामी
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सब के स्वामी।। ॐ...
तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्ता।
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता।। ॐ...
तुम हो एक अगोचर, सब के प्रानपती।
किस विध मिलूँ, दयामय, तुमको मैं कुमती।। ॐ...
दीनबन्धु, दुखहर्ता, तुम ठाकुर मेरे।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे।। ॐ...
विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा।। ॐ...

हरीदास

'भक्तिविलास' के सगुणरामभक्त संत-कवि एवं 'रामचरितमानस की शीलावृत्ति टीका' के व्याख्याकार बाबा हरीदास (निधन वर्ष 1717 ई.¹, बावन बुजुर्ग बल्ला या बबुरिहा पुरवा, जनपद रायबरेली) ने 'सिंहावलोकन', 'चित्रकाव्य', 'मसल-विवेक' एवं 'भक्ति-विनोद' की रचना तथा 'समुझाई-बुझाई (अर्थ रत्नावली)' एवं 'हनुमानबाहुक की टीका' भी की है। उनके 'भक्तमाल' एवं 'प्रश्नोत्तरी' ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। उन्होंने सर्वधर्मएकता की प्रगतिशील भारतीय परम्परा का भरपूर सम्मान करते हुए भी सगुणसाकार-रामभक्ति का प्रतिपादन किया है। इस दृष्टि से रायबरेली जनपद के ही प्रायः समकालीन संत धीरदास या धीरजदास का स्मरण आ जाता है। बाबा हरीदास की कविता नितान्त पारम्परिक है जिसमें कोई नवीनता नहीं है। भाषा-शैली साधारण ब्रज एवं विविधछन्दीय है। कहीं-कहीं अनुप्रास की कला के दर्शन हो जाते हैं। रायबरेली जनपद ने मुल्ला दाऊद, मलिक मोहम्मद जायसी, पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र एवं आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के रूपों को चार महान् साहित्यकार प्रदान किए हैं। इस बृहत्चतुष्टयी के अनन्तर, लालनदास, नरहरि, होलराय, बेनी बंदीजन, जोतिषी, सिरस, ब्रजनन्दन प्रभृति कविरत्नों का उल्लेख न्यायसंगत होगा। अधुनातन साहित्य की दृष्टि से अमर

1. 'मानस-मन्दाकिनी' (स्मारिका—श्रीरामचरितमानस सम्मेलन 1991, बबुरिहा, महाराजगंज, रायबरेली) में राधेमण त्रिपाठी का लेख 'बाबा हरीदास: एक परिचय' पृष्ठ 93 में जन्म 1792 ई. लिखा है, जिसके अनुसार आयु 125 वर्ष ठहरती है। निधन 1917 ई. में तथा जन्मवर्ष अज्ञात मानना ही समीचीन लगता है। किन्तु राधेमण त्रिपाठी का हरीदास लिखना ठीक है, क्योंकि संत-कवि ने स्वयं 'हरिदास' या 'दासहरि' की तुलना में 'हरीदास' का प्रयोग अधिक किया है तथा पांडुलिपियों के मुखपृष्ठों पर भी 'हरीदास' मिलता है। 'हरी' प्रचलन भी अधिक है।

बहादुर सिंह 'अमरेश' एवं प्रयागनारायण त्रिपाठी के नाम लिए जा सकते हैं। किन्तु बाबा हरिदास भी जनपद की एक विभूति थे, इसमें सन्देह नहीं। उदाहरण देखें :

1. देखु तौ तयारी बनी राम की सवारी, मन गाजन की अबारी, चमक भान किरन वारी हैं।
घोरे बेगवारी पवनचारी बरनिपारी कौन, मौन ही निहारी सारदा सो हीय हारी हैं॥
चढ़े छैल झारी बैस तरुन की तयारी, बान नल भाल धारी सूर करतब अधिकारी है॥
लिए हाथ झारी, पानदान पिचकारी, हरीदास अनुजचारी' रामचंद्र मुख निहारी है॥
2. भजिए सदा अल्लाह को! यह मानिए सल्लाह को॥
सब घर सोई रोसन हुआ। बिन पिय मिलो जग है धुआँ॥
नहिं जाउ मक्के दूर को। नहिं काम यह तन झूरि को॥
सब सों मिले रहिए सदा। साही को तजि चहिए मदा॥
रोजा नमाज न काम है। मतवाल को रस नाम है॥
बैठे खड़े सूते पड़े। पिय द्वार ही पड़ते पड़े॥
कर छोड़ि तसबी स्वास की। भजि और तजि जग आस की॥
हरिदास सो पिउ पाउता। नहिं बहुरि यहि जग आउता॥

मुरारिदान

'जसवंत-जसोभूषण' (रचनाकाल 1893 ई. के आसपास तथा प्रकाशन 1897 ई.—जिसका लघु-संस्करण 'जसवंत-भूषण' है) के प्रकाण्ड अलंकारशास्त्री कविराजा मुरारिदान (निधन 1909 ई. के लगभग)² ने अलंकारों के लक्षण उनके अभिधानों से ही चरितार्थ करने की विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है, जिसकी सराहना समसामयिक अलंकारप्रेमियों ने मुक्तकंठ से की थी। यह प्रसिद्ध अलंकार-ग्रन्थ आश्रयदाता जोधपुर-नरेश जसवंतसिंह को समर्पित है—संयोगात् शास्त्रीयकालीन अलंकार-आचार्य महाराज जसवंतसिंह ('भाषाभूषण' के प्रणेता) भी जोधपुर के थे। कविराजा मुरारिदान को जोधपुर राज्य में उच्च पद एवं व्यापक सम्मान प्राप्त था। वह महामहोपाध्याय की उपाधि से भी सम्मानित किए गए थे। 'ख्यात बाँकीदास री', 'आसिया बाँकीदास री' 'श्री हजूरान री कविता' के प्रख्यात इतिहासकथाकार एवं राजस्थानी-कवि कविराजा बाँकीदास (1781-1833 ई.) कविराजा मुरारिदान के पितामह थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने इनकी 26 कृतियों का प्रकाशन 'बाँकीदास-ग्रन्थावली' (दो भाग) के रूप में किया है, किन्तु डॉ. रामसिंह तोमर के अनुसार प्रायः दस कृतियाँ अप्रकाशित हैं। प्रात्ययिकता के प्रश्नचिह्नित होने पर भी बाँकीदास के ख्यात एवं आसिया ऐतिहासिक मूल्य से रहित नहीं हैं। मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में कविराजा बाँकीदास की 'ऊँची श्रेणी' प्रदान की है। डॉ. रामसिंह तोमर ने 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में 'ख्यात बाँकीदास री' को 'इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण' माना है। कविराजा मुरारिदान श्रेष्ठ पितामह के सुयोग्य पौत्र थे। कविराजा मुरारिदान³ बूँदी के सूरजमल कविराज के दत्तक पुत्र तथा 'वंश-समुच्चय' एवं 'डिंगल-कोष' के प्रणेता कविराज मुरारिदास (1838-1907 ई.) के समकालीन थे। मुरारिदास ने बूँदी-नरेश रामसिंह के आदेश पर सूर्यमल्ल मिश्रण के विख्यात ग्रन्थ 'वंश-भास्कर' को पूर्ण किया था। बूँदी राज्य में इन्हें पाँच गाँवों की जागीर प्राप्त थी। 'गुणविजय-विवाह' के साधारण-स्तरीय जैन कवि मुरारिदास (रचनाकाल 1840 ई. के लगभग) इन दोनों के पूर्ववर्ती थे।

कविराजा मुरारिदान के हिन्दी-साहित्येतिहास में स्थान एक विशेष कारण इनके द्वारा सर्वप्रथम 'पृथ्वीराजरासो' को अप्रामाणिक ग्रन्थ सिद्ध करना है। पृथ्वीराजरासो को हिन्दू-मुसलमान दोनों ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक-सा मानते आ रहे थे। कविराजा मुरारिदान ने इसको ऐतिहासिक विसंगतियों तथा इसके परवर्ती वर्ण्यविषयों की ओर संकेतकर अध्ययन एवं शोध का एक नूतन आयाम उद्घाटित किया। कविराजा श्यामलदास ने अपने 'पृथ्वीराज-चरित्र' ग्रन्थ में विशेष परिश्रम करते हुए पृथ्वीराजरासो को एकदम ज़ाली ठहराया।

1. राम के अनुज तीन (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न) थे, चार नहीं। किन्तु 'चारी' का अर्थ 'पैदल' भी होता है, अतः अलंकृत (किन्तु 'अप्रयुक्तत्व' दोष)। पायदान और पिचकारी वैदिक जीवन से क़तई मेल नहीं खाते।
2. 'विनोद' में 'जसवंत-जसोभूषण' का रचनाकाल "सं. 1950 के लगभग", प्रकाशन-वर्ष सं. 1954 ई. एवं "स्वर्गवास प्रायः सं. 1966 के निकट" लिखा है।
3. किशनगढ़ राज्य के डिंगल-पिंगल कवि मुरारिदान बारहठ यत्किंचित् परवर्ती हैं।

परिणाम यह हुआ कि महामहोपाध्याय कविराज मुरारिदान श्यामलदास से प्रेरित होकर हर्वर्ट, मॉरिसन, महामहोपाध्याय रायबहादुर डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इत्यादि ने महान् ऊहापोह किया तथा पृथ्वीराजरासो की अनैतिहासिकता सिद्ध-सी हो गई, भले ही मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या एवं मिश्रबन्धु ने इसके खंडन में आकाश-पाताल के कुलावे मिला डाले हों (श्यामसुन्दरदास एवं हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मध्यमा-प्रतिपदा का अनुसरण किया, जिनविजय एवं माताप्रसाद गुप्त ने नए जोड़-तोड़ किए, रामचन्द्र शुक्ल एवं रामकुमार वर्मा ने दुलमुलपन का पल्लू पकड़ा)! जोधपुर का राठौड़ (राठौर) राजघराना जयचन्द्र-वंशीय है अतः उससे संबद्ध चारणों एवं विद्वानों का पृथ्वीराज चौहान के सम्बन्ध में खुरपेंच निकालना स्वाभाविक है, किन्तु पृथ्वीराजरासो की ऐतिहासिकता वास्तव में प्रमाणित नहीं होती। आश्चर्य यह है कि किसी जोधपुर-राज्यगत विद्वान् ने जयचन्द्र के देशद्रोह की निराधार (पृथ्वीराज चौहान एवं उनके वंशजों के चरणों द्वारा कल्पित) मान्यता का खंडन नहीं किया, संयोगिता-कल्पना पर प्रकाश नहीं डाला-कन्नौज के लोग, जयचन्द्र की रक्षा करते हुए भी देशद्रोह-कल्पना एवं संयोगिता-कल्पना का खंडन नहीं करते! रुढ़ि योगात् बलीयसी। जोधपुर घराने से संबद्ध 'राठौड़ों' री ख्यात' (सिंघायच दयालदास) में 'जयचन्द्र-प्रकाश' (भट्ट केदार) एवं जयमयंकजसचन्द्रिका (मधुकर कवि) की कल्पना अवश्य की गई है।

कविराजा मुरारिदान एक सरस-समलंकृत ब्रजभाषा-कवि, एक उत्कृष्ट अलंकारशास्त्री एवं पृथ्वीराजरासो की अप्रात्ययिकता के प्रथम विश्लेषक के रूप में सर्वद्वय स्मरणीय रहेगी। कविता की बानगी पेश है :

कैसी अली की भली यह बानि है देखिए पीतम ध्यान लगाय कै।
छाक गुलाब मधू सों मुरारि सु बेलि नबेलिन में बिरमाय कै।।
खेलत कंतकी जाय जुहीन में केलत मालती बृंद अघाय कै।
आज जो जोवत खोवत दौस पै सोवत है नलिनी सँग जाय कै।।

काली कवि

काली कवि (1832-1909 ई.) का पूरा नाम पण्डित कालीदत्त नागर था जो कालीप्रसाद भट्ट भी कहलाते थे (जैसाकि 'विनोद' में लिखा है) तथा यह उरई (ज़िला जालौन, उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। यह अपने समय के प्रसिद्ध ज्योतिषी, तान्त्रिक एवं विद्वान् थे, जिन्हें पहलवानी में भी महारत हासिल थी। इसीलिए इनका परिवार 'ओझा' कहलाता था। उनकी हनुमतपताका, गंगागुणमंजरी, छविरत्नम्, रितुराजीव, रसिकाविनोद, कविकल्पद्रुम तथा चिदम्बररहस्य कृतियाँ उन्हें एक मँजा हुआ चमत्कारवादी-अलंकारवादी कवि सिद्ध करती हैं। संप्रति उनके वंशज अरुण नागर एक युवा कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। केशवदास और पद्माकर से प्रभावित होते हुए भी उन्होंने मौलिकता का प्रभावी परिचय दिया है। उनकी प्रमुख कृति 'हनुमतपताका' में 135 छन्द हैं, जिनमें कवित्त और दोहा की प्रधानता है, यद्यपि 8 छन्द संस्कृत के भी हैं जो रावण की कृति कही जाने वाली शिवताण्डवस्तोत्रम् का स्मरण कराते हैं। सुन्दरकांड की कथा पर आधृत हनुमतपताका एक सुन्दर अलंकृत खंडकाव्य है। सम्भव है कि असोधर (ज़िला फ़तेहपुर) के कवि भगवंतराय खींची और चरखारी (बुन्देलखंड) के कवि खुमान के मारुति-काव्य की काली कवि पर प्रभाव पड़ा हो। 'गंगागुणमंजरी' 58 कवित्त और 1-1 समारम्भ समापन दोहों में निबद्ध मुक्तकाव्य है। सम्भव है कि इस पर पद्माकर की गंगालहरी का प्रभाव पड़ा हो। इन दो कृतियों के कारण काली कवि 'हिन्दी का मारुति-काव्य' एवं 'हिन्दी का गंगा-काव्य' जैसे शोध या आलोचना ग्रन्थों पर अपरिहार्य सिद्ध होते हैं। काव्याचार्य चतुर्भुज शर्मा द्वारा ब्रजभाषा में रचित 'हनुमान-बावनी' के प्रकीर्ण छन्द काली कवि की परम्परा को गतिशील करते हैं। इस दिशा में खड़ीबोली के 'रामदूत' (कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह), 'आंजनेय' (प्रकाश द्विवेदी) जैसे स्फीत प्रबन्धकाव्य एवं दोहों में निबद्ध संतकुमार टंडन 'रसिक' कृत 'नमन' जैसे मुक्तकाव्य नवीन कृतियाँ हैं। चमत्कारपूर्ण होने पर भी कहीं-कहीं काली कवि ने मनोहारी सहजकाव्य का सृजन भी किया है। 'छविरत्नम्' में वे एक सिद्धहस्त श्रृंगारी कवि के रूप में प्रकट होते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

छोरन पै कंचुक चकोर कुच कोरन को, करन पसार के उधार तम सारी को।

काली कवि अमर तरंगिनी इजारी खोल, जारी कर हसन गदूल गुलजारी को।।

1. कवि का मृत्यु संवत् तो 'विनोद' परवर्ती ग्रन्थों में ठीक दिया है। किन्तु संवत् 'विनोद' में है ही नहीं तथा अन्यत्र ग़लत दिया है। मैंने 1832 ई. काली कवि के प्रपौत्र श्री अरुण नागर के शोध के आधार पर दिया है।

चौदनी को चंदन चढ़ाय सब अंगन में, तारन के हारन सम्हार सुकुमारी को।
 दाब कर अंबर अशंक परयंक पर अंक भर भेंटत मयंक निशि नारी को॥ (हनुमत पताका)
 बदन-सदन ते अनत कहूँ जाय न हिये विचार।
 जनु जग छबि बँधुवा करी नक नथ बेड़ी डार॥ (छविरत्नम्)

शिवसिंह

‘सरोज’ (1878 ई.) के रूप में कवि-सहस्रार² के अमर प्रस्तोता ठाकुर शिवसिंह सेंगर (1833-1878 ई., काँथा³, जनपद उन्नाव) हिन्दी के प्रथम साहित्येतिहासकार हैं। ग्रीयर्सन⁴, मिश्रबन्धु एवं शुक्ल ने शिवसिंह से अपार सहायता ली है। ग्रीयर्सन ने उनका प्रभाव स्वीकार किया है। मिश्रबन्धु ने उनका सम्यक् आकलन किया है: “इनका नाम शिवसिंह-सरोज लिखने के कारण भाषा-साहित्य में चिरकाल तक अमर रहेगा। जिस समय में कोई सुगम उपाय कवियों के समय व ग्रन्थों को जानने का न था उस समय इन्होंने अथक श्रम और धन-व्यय से इस ग्रन्थ को तैयार कर भाषा-साहित्य-इतिहास का पथ-प्रदर्शन किया। हिन्दी-प्रेमियों और भाषा पर आपका अगाध ऋण है।” शुक्ल ने अपने ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ का ‘वक्तव्य’ इन्हीं से आरम्भ किया है तथा कुल मिलाकर सोलह बार ‘सरोज’ का उल्लेख किया है, यद्यपि इन पर स्वतन्त्र रूप से कुछ भी प्रकाश नहीं डाला। उन्होंने अपने इतिहास के आधार-ग्रन्थ ‘विनोद’ की उपेक्षा की थी, ‘सरोज’ का भी ‘ब्लैक-ऑउट’ कर देते तो अध्येता अन्य अनेक प्रश्न भी उठाते। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित ‘हिन्दी साहित्यकोश’ भाग 2 में भी ‘सरोज’ को “हिन्दी-साहित्य का इतिहासों में प्रथम प्रयास” ठीक ही कहा गया है। ‘साहित्य का इतिहास-दर्शन’ में नव्यता के आतंक-प्रदर्शनार्थ ‘नकेनवादी’ (नलिन-केदार-केसरी की प्रयोगवादी त्रयी) डॉ. नलिनविलोचन शर्मा (1916-1960 ई.—बदरघटा, पटना: पिता आदर्शवादी युग के प्रकाण्ड विद्वान् महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा जिन्हें आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ‘सोऽह’ कह गए हैं) ने साहित्य, इतिहास एवं दर्शन तीनों से अन्याय करते हुए लिख मारा है, “जहाँ तक साहित्य-इतिहास के रूप में ‘सरोज’ के महत्व का प्रश्न है, यह ग्रन्थ सही⁵ अर्थ में सर्ववृत्तसंग्रह भी नहीं कहा जा सकता, साहित्यिक इतिहास तो दूर की बात है क्योंकि कवियों के जन्मकाल आदि के सम्बन्ध में जो विवरण हैं, वे भी अत्यन्त संक्षिप्त और बहुधा अनुमान पर आश्रित हैं।” किन्तु उन्हें भी स्वीकार करना पड़ा है, “फिर भी, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि ग्रीयर्सन ने ‘मॉर्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान’ में ‘सरोज’ को ही आधार बनाया है और इसके अभाव में मिश्रबन्धुओं को ‘विनोद’ तैयार करने में काफी कठिनाई होती।” डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने ‘विनोद’ को भी इतिहास नहीं माना। शुक्ल ने ‘विनोद’ का लगभग अनुल्लेख एवं मिश्रबन्धु पर प्रहार इसलिए किए कि ऐसा न करने पर उनको जो अत्यधिक महत्व⁶ मिला वह न मिल पाता। किन्तु नलिनविलोचन शर्मा एवं देवीशंकर अवस्थी का इतिहास-विकास की प्रक्रिया का अज्ञान-प्रदर्शन⁷ करने पर क्या मिला? इनसे भी डेढ़ डग छलौंग लगाकर डॉ. किशोरीलाल गुप्त

1. ‘विनोद’ में मिश्रबन्धु ने सं. 1934 वि. ठीक दिया है। किन्तु सर्वत्र 57 घटाकर ईसवी बनाना ठीक नहीं, क्योंकि माघ-फाल्गुन में नया ई. सन् लग जाता है। ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में आ. रामचन्द्र शुक्ल ने 1883 ई. लिखा है जो एकदम गलत है—वस्तुतः यह द्वितीय संस्करण का वर्ष है। ‘आधुनिक हिन्दी साहित्य’ में डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्ण्य ने 1877 ई. लिखा है। यह 57—घटाऊवाद भी गलत है। ‘हिन्दी पुस्तक साहित्य’ में डॉ. माताप्रसाद गुप्त एवं ‘सरोज-सर्वक्षण’ में डॉ. किशोरीलाल गुप्त (जिन्होंने ‘सरोज’ का संपादन भी किया है) ने 1878 ई. लिखा है जो ठीक है।
2. हठयोग, सिद्धयोग में स्वर्ग या ‘सून्य महलिया’ या ‘दसअँ दुआर’ सहस्रार (1000 पाँखुरियों का कमल) को ही माना गया है। ‘सरोज’ में भी सहस्र दल हैं। नाम अतीव गम्भीर है।
3. ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग 2 में कौथा गलत लिखा है। ‘विनोद’ का काँथा ही ठीक है।
4. ग्रीयर्सन (जी आर आई ई आर एस ओ एन) को ग्रीयर्सन (जी आर आई ए आर ओ एन) लिखने का रिवाज है। वास्तव में वे ग्रीयर्सन (ग्रायर्सन) थे। किन्तु ‘य’ तो ‘वाई’ का व्यंजक है। इंडिया, एसिया, एयर इत्यादि शब्द भी गलत ही (इंडिया, एशिया, एयर इत्यादि रूपों में) लिखे जाते हैं। मेरा भी ध्यान इस दिशा में 1987 ई. में गया और “देर आयद दुरुस्त आयद” को मानना ही उचित लगा।
5. ‘सही’ क्या है? इस प्रश्न की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया—केवल आदेश-पद्धति से काम निकाला गया है।
6. मिश्रबन्धु स्वयं बहुवचन है; फिर ‘अनेकों’ जैसा प्रयोग क्यों?
7. आचार्य शुक्ल को हिन्दी-विद्वानों, शोधकर्ताओं, एवं छात्रों के अनध्ययन का पूर्ण प्रत्यय था, जो उनके गहन लोकवृत्तिबोध का सूचक है।
8. हेरोडोटस (पश्चिम में ‘इतिहास का जनक’) आज इतिहासकार तक न लगे, कल्हण (कश्मीर की ‘राजतरंगिणी’ के अमर प्रवाहक) ईषत्-इतिहासकार लगे, जियाउद्दीन बरनी (‘बर्नी’ गलत है क्योंकि अलीगढ़ जनपद के बरन-निवासी ‘बरनी’ कई हुए हैं) कुंठित-वृद्ध गल्पकार मात्र लगे, तो यह उनकी नहीं प्रत्युत हमारी मूढ़ता होगी। आज का एंबेसी-ब्रैंड या वाद-छाप इतिहास क्या प्रचाराच्छन्न नहीं है?

ने 'स्थापना'—व्यामोहवश ग्रीयर्सन को 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' से चस्पाँ कर दिया। फिर, तासी की उपेक्षा क्यों? न किशोरीलाल गुप्त की ग्रीयर्सन-तरंग वस्तुवादी है, न नलिनविलोचन शर्मा की शुक्ल-तरंग (हजारीप्रसाद द्विवेदी के अल्पल्प-प्रभावी छात्रोपयोगी² इतिहास³ के प्रति चारण-तरंग भी)—देवीशंकर अवस्थी तो इस पचड़े में नाहक ही पड़े!

ठाकुर शिवसिंह सेंगर जन्म से धनी-मानी जमींदार और पेशे से तेज़-तर्रार थानेदार (दारोगा, पुलिस-इंस्पेक्टर) होते हुए भी विद्या-व्यसनी भी थे, कवि भी। ('हमारा साहित्य, विशेषतः हमारी कविता, छत्रसाल जैसे योद्धाओं, अकबर जैसे सम्राटों, विश्वनाथप्रतापसिंह और अटलबिहारी वाजपेयी जैसे प्रधानमन्त्री, बालकृष्णराव और जगदीशचन्द्र माथुर जैसे प्रशासकों, वृन्दावनलाल वर्मा और परशुराम चतुर्वेदी जैसे वकीलों तथा महेन्द्रप्रसाद सिंह (राजनीतिशास्त्र), रमेश त्रिपाठी (दर्शनशास्त्र), लल्लनप्रसाद (अर्थशास्त्र) जैसे सामान्यतः शुष्क समझे जाने वाले विषयों के आचार्यों (प्रोफेसरो) से सम्पन्न है: सृजन एक सहजधर्म है, सृजन एक दुर्दनीय अपेक्षा है और सबसे बढ़कर, सृजन एक गहन आनन्द है।) वे हिन्दी, संस्कृत एवं फ़ारसी के अच्छे विद्वान् थे तथा उन्होंने इनके ग्रन्थों का अच्छा-खासा पुस्तकालय बनाया था, जिसे मिश्रबन्धु ने देखा था। इनका अंग्रेज़ी-ज्ञान भी अतीव लाभकर सिद्ध हुआ। वे अपुत्र⁴ रहे। वे कवि भी थे। मिश्रबन्धु ने इनकी कविता "सरस व मनोहर" मानी है। मेरी समझ में, शिवसिंह सेंगर की कविता इतिहास-बोध की दृष्टि से भी मननीय है, कला की दृष्टि से भी। वे 'सेंगर सुकवि' छाप का प्रयोग करते हैं। उन्होंने ब्रह्मोत्तरखण्ड एवं शिवपुराण के गद्यानुवाद भी किए थे। उनके समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विशद प्रकाश नहीं पड़ पाया, यह हम-सबके लिए लज्जा का विषय है, कृतघ्नतासूचक है। केवल मिश्रबन्धु ने उनके साथ न्याय किया है, किन्तु वह उतना ही है जितना 'विनोद' जैसे विशाल विषयाधृत ग्रन्थ में सम्भव है। उनकी कविता के दो उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. महिख से मारे मगरूर महिपालन⁵ को, बीज से रिपुन निरबीज भूमि कै गई।
सुंभ औ निसुंभ से सँघारि झारि म्लेच्छन⁶ को, दिल्ली दल दलि दुनी देर बिन लै गई।।
प्रबल प्रचंड भुजदंडन सों खगग गहि, चंड-मुंड खलन खेलाय खाक कै गई।
रानी⁷! महारानी हिंद⁸! लंदन की, ईसुरी तैं, ईस्वरी समान प्रान हिंदुन के हवै गई।।⁹
2. कहकही काकली कलित कल कंठन की, कंज कली कालिन्दी कलोल कहलन मैं।
सेंगर सुकवि ठंड लागती ठिठोर वारी, ठाठ सब ठटे, ठगि तेत टहलन मैं।।
फहरैं फहरै फबि रही सेज फूलन सों, फेन-सी फटिक चौतरा के पहलन मैं।
चाँदनी, चमेली चारु फूली बीच बाग आजु, बसिए, बटोही! मालती के महलन मैं।।

प्रतापकुँवरि बाई

रामचन्द्रनाममहिमा, रामगुणसागर, रघुवरस्नेहलीला, रामप्रेमसुखसागर, रामसुजस पच्चीसी, रघुनाथ जी के कवित्त, ज्ञानसागर, प्रतायच्चीसी इत्यादि अनेक काव्यों की प्रणेता मारवाड़-नरेश मानसिंह की पत्नी प्रतापकुँवरि बाई (निधन 1886 ई.) हिन्दी साहित्य में

1. मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान का अनुवाद।
2. डॉ. द्विवेदी ने भूमिका में स्वयं स्पष्टतः लिखा है।
3. 'हिन्दी-साहित्य' नामक ग्रन्थ।
4. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी सतानरहित थे, भारतेन्दु एवं रामकुमार वर्मा प्रभृति पुत्ररहित—इससे इन्हें वे परवर्ती-लाभ न प्राप्त हो पाए जो प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला प्रभृति को हुए। द्विवेदी जी का तो विशाल गृह तक नष्ट होता जा रहा है।
5. ऐयाश और निकम्मे हिन्दू-राजाओं पर उचित प्रहार।
6. अत्याचारी और दुराचारी मुग़लों वगैरह पर उचित प्रहार।
7. क्वीन ऑफ़ इंग्लैंड (किंग ऑफ़ इंग्लैंड)।
8. एम्प्रेस ऑफ़, इंडिया (एंड अदर कॉलोनीज़)। 'किंग-एम्पटर' या 'क्वीन-एम्प्रेस'।
9. विक्टोरिया की स्तुति। अंग्रेज़ या अंग्रेज़ी-शासन या विक्टोरिया या उसके वंशजों की स्तुति हिन्दी के शिवसिंह, भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रतापनारायण, मिश्र, रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि ने ही नहीं की, बांग्ला के बंकिम एवं सर रवीन्द्रनाथ टैगोर इत्यादि, गुजराती के नर्मद इत्यादि, उर्दू के सर सैयद अहमद खाँ इत्यादि ने भी की है। हिन्दू बर्बर म्लेच्छ-शासन से मुक्ति चाहते थे, मुसलमान गौरांग-महाप्रभुओं का कृपा-कटाक्ष चाहते (वे हिन्दू या मराठा राज्य न चाहते थे, भले ही अहमदशाह अब्दाली को बुलाना पड़े)।

रामकाव्य की श्रेष्ठतम कवयित्री मानी जा सकती हैं। अनुभूति की तन्मयता एवं ब्रजभाषा के प्रयोग में उनकी कविता सफल है। उनकी पद-रचना संगीत से सम्पन्न है। मिश्रबन्धु ने उन्हें मधुसूदनदास की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. धरि ध्यान रतौ रघुबीर सदा धनुधारि को ध्यान हिए धरु रे।
पर पीर में जाय कै बेगि परौ करते सुभ सुकृत को करु रे।।
तरु भवसागर को भजि कै लजि कै अघ औगुन ते डरु रे।
परतापकुँवरि कहै पदपंकज पाव घरी जनि वीसरु रे।।
2. होरी खेलन की रितु भारी।
नर तन पाय भजन करि हरि को है औसर दिन चारी।
अरे अब चेतु अनारी।।
ज्ञान गुलाल अबीर प्रेम करि प्रीत तणी पिचकारी।
सास-उसास राम रँग भरि-भरि सुरति सरी-सी नारी।
खेल इन संग लचारी।।....

प्रतापबाला

जामनगर की मीराँ प्रतापबाला (1834 ई., जामनगर, गुजरात) का जीवन भी मीराँ से कुछ-कुछ मिलता-जुलता था: राज-परिवार में जन्म, जोधपुर के महाराज तखतसिंह से विवाह (1851 ई.), वैधव्य, दो पुत्रों का निधन, वैराग्य! वे 'जामसुता' (जामनगर की बेटी), 'जाम की दुलारी', 'प्रताप', 'प्रताप कौर' इत्यादि की छापों से लिखती थीं। वे सुधारवादी-युग (1850-1900) की एक उल्लेखनीय भक्त-कवयित्री हैं। वे पारम्परिक भक्ति की कवयित्री हैं, जिनकी हिन्दी-कविता का महत्व उनकी मातृभाषा गुजराती होने के कारण और अधिक बढ़ जाता है :

1. भजु मन! नंदन गिरधारी।
सुख-सागर, आगुण को आगर, भगतवछल बनवारी।
मीरा, करमा, कुबरी, शबरी, तारी गौतम नारी।।
बेद-पुरानन में जस गायो, ध्याये होवत प्यारी।
जामसुता को स्याम चतुरभुज, लेगा खबर हमारी।।
2. प्रीतम हमारो प्यारो स्याम गिरधारी है।
मोहन अनाथ-नाथ संतन के डोलें साथ, बेद गुन गाए गाय, गोकुल-बिहारी है।
कमल बिसाल नैन, निपट रसीले बैन, दीन को सुख दैन, चारभुजाधारी है।
केसव कृपानिधान, वाही सो हमारो ध्यान, तन-मन वारूँ मान जीवन मुरारी है।
सुमिरौँ मैं साँझ-भोर, बार-बार हाथ जोर, कहती प्रताप कौर जाम की दुलारी है।।

गणेशप्रसाद¹

बारहमासा, ऋतुवर्णन, शिखनख, छन्दलावनी इत्यादि के, नजीर अकबराबादी के सदृश, हिन्दी-उर्दू-सेतु-कवि गणेशप्रसाद ने 'भारतसुदशाप्रवर्तक'² (1879 ई.) के द्वारा हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में भी स्थान प्राप्त किया था। जिस फ़र्रुखाबाद में 1907 ई. में महादेवी

1. 'प्रद्यम्नविजय' के नाट्यकार, 'हनुमत्पचीसी' के कवि एवं वाल्मीकि-रामायण (बालकंड एवं किष्किंधाकांड के पाँच अध्याय मात्र) के अनुवादक गणेश कवि (1793-1853 ई. में विद्यमान) एवं 'सोहागबिन्दी' (6 एकांकी) के एकांकीकार गणेशप्रसाद द्विवेदी अन्य उल्लेख्य समनामी हैं।
2. भारतेन्दु कृत 'भारत-दुर्दशा', प्रतापनारायण मिश्र कृत 'भारत-दुर्दशा', प्रेमधन कृत 'भारत-सौभाग्य', अम्बिकादत्त व्यास कृत 'भारत-सौभाग्य' इत्यादि नाटकों का स्मरण आता है।

उत्पन्न हुई; वही इन्होंने साहित्यसेवा की थी। यह भी कायस्थ थे, किन्तु व्यवसाय से हलवाई¹। इसी जनपद में पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र (कंपिला) एवं आचार्य-कवि देवकीनन्दन (मकरन्दनगर) जैसे ऐतिहासिक महत्व के साहित्य-स्रष्टा हुए हैं; और कान्कुब्ज (कन्नौज) के अधीश्वर जयचन्द्र² द्वारा तांबूल-सम्मानित 'नैषधीयचरितम्' के महाकवि श्रीहर्ष मिश्र तो जनपद-इतिहास के गौरव-पुरुष हैं ही!³

गणेशप्रसाद की सामान्यस्तरीय किन्तु यमक-सम्पन्न कविता में भावी-युग के संकेत देखे जा सकते हैं, भले ही वे परम्पराप्रवण कवि रहे हों :

1. जोवन पर जिनके शम्सोकमर वारी है। हर गुल्शन पे उस गुल की गुलजारी है।।
जंजीर जुल्फ़ जाना⁴ ने लटकाली है। काली है फ़िदा जिस पर नागिन काली है।।
आवरु कमान कुदरत ने परका ली है। वह आँख आँख आहू ने झपका ली है।।⁵

फ्रेडेरिक पिन्कॉट

ब्रिटेन में जन्में अन्ततः भारत आकर लखनऊ में दिवंगत होने वाले 'बालदीपक' एवं 'विक्टोरिया-चरित' के प्रणेता फ्रेडेरिक पिन्कॉट (1836—7 फरवरी 1896) गद्यकार एवं ब्रजभाषा-कवि के अतिरिक्त हिन्दी के अनन्य प्रेमी थे। बीम्स, हैवले, तासी, सर सैयद अहमद खाँ प्रभृति हिन्दी-विरोधियों एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की उर्दूबाज़ी के बीच, वे ब्रिटेन से हिन्दी का समर्थन करते रहे। उनकी उदार एवं सुचिंतित भाषा-नीति आज भी मननीय है। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आ. श्यामसुन्दरदास कृत 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला' (भाग 1) एवं मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' (भाग 3) के आधार पर, फ्रेडेरिक पिन्कॉट की हिन्दी-सेवा पर प्रशस्ति प्रकाश डाला है और आ. श्यामकुमारी ने 'भारतेन्दु की खड़ीबोली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन' में इसी सारी सामग्री का विषयानुकूल प्रयोग किया है। फ्रेडेरिक पिन्कॉट भारतेन्दु के भक्त थे। कार्तिकप्रसाद खत्री इत्यादि से भी उनका पत्रव्यवहार चलता था। गौरांगों में हिन्दी भाषा और साहित्य, विशेषतः तुलसीदास, पर अनेकानेक लेखक हुए हैं। किन्तु हिन्दी के रचनाकार गौरांग फ्रेडेरिक पिन्कॉट, कामिल बुल्के, स्मेल्ल इत्यादि थोड़े-से ही हैं। 'हिन्दी के पाश्चात्य लेखक' शोध का उत्तम विषय है, जिसमें 'हिन्दी के पाश्चात्य रचनाकार' अध्याय निस्सन्देह विशिष्ट होगा। दो उदाहरण देखें :

1. बैस-बंस⁶-अवतंस श्री बाबू हरिचंद जू।
छीर नीर कल हंस टुक उत्तर लिखि देव मोहिं।।
पर उपकार में उदार अवनी में एक भाषत अनेक यह राजा हरिचंद हैं।
विभव बड़ाई वपु बसन विलास लखि कहत यहाँ के लोग बाबू हरिचंद हैं।
चंद वैसो अमिय अनंदकर भारत को कहत कविंद यह भारत के चंद हैं।
कैसे अव देखैं, को बतावै, कहाँ पावैं? हाय, कैसे वहाँ आवैं हम मतिमंद हैं।।
श्रीयुत सकल-कविंद-कुल-नृप बाबू हरिचंद।
भारत-हृदय-सतार-नभ उदय रहो जनु चंद।।

2. देखो, अस्सी बरस हुए बंगाली भाषा निरी अपभ्रंश भाषा थी। पहले-पहल थोड़ी-थोड़ी संस्कृत बातें उसमें मिली थीं। परन्तु अब क्रम करके सँवारने से निपट अच्छी भाषा हो गई। इसी तरह चाहिए कि इन दिनों में पंडित लोग हिन्दी भाषा में थोड़ी-थोड़ी संस्कृत बातें मिलावें। इस पर भी स्मरण कीजिए कि उत्तर-पश्चिम में हजार बरस तक फ़ारसी बोलने वाले लोग राज करते थे। उन फ़ारसी बातों को भाषा से निकाल देना असम्भव है। इसलिए उनको निकाल देने का उद्योग मूर्खतापूर्ण है।

1. प्रसाद हलवाई थे, किन्तु व्यवसाय से सुँघनीसाहु। (सुँघनी = सुरती = तम्बाकू, खड़नी)।
2. भट्ट केदार, मधुकर, श्रीधर इत्यादि कवियों ने जयचन्द्र पर काव्यरचना की थी।
3. अब कन्नौज एक नया ज़िला बन गया है।
4. जान, प्राण, प्रियतम या प्रियतमा।
5. 'काली' का यमक-सौन्दर्य आकर्षक है।
6. बारी = बाला, वाली। श्लेष।

नवीनचन्द्र राय

‘आचारादर्श’ (1872 ई.), ‘धर्मदीपिका’ (1873 ई.), ‘तत्त्वबोध’ (1875 ई.), ‘उपनिषत्सार’ (1875 ई.), ‘ब्राह्मणधर्म के प्रश्नोत्तर’ (1880 ई.), ‘जलस्थिति और जलगति’ (1882 ई.), ‘स्थितितत्त्व और गतितत्त्व’ (1882 ई.) के धर्म एवं विज्ञान पर ऐतिहासिक महत्व के लेखक तथा ‘ज्ञानप्रदायिनी’ पत्रिका के संपादक नवीनचन्द्र राय (1837-1890 ई.)² पंजाब के विख्यात शिक्षाधिकारी एवं नारीशिक्षा-उन्नायक थे। राजा राममोहन राय, सुरेन्द्रनाथ सेन, तारामोहन मित्र (1850 ई. में काशी से ‘सुधाकर’ के प्रमुख प्रवर्तक), चिन्तामणि घोष (प्रयाग की ऐतिहासिक एवं महान् ‘सरस्वती’ के प्रवर्तक), बंगमहिला बिजलीरानी चौधरी, क्षितीन्द्रमोहन मित्र (किसी समय प्रयाग की साहित्यिक ‘माया’ के प्रवर्तक), क्रान्तिकारी-लेखक मन्मथनाथ गुप्त, उपन्यासकार प्रणवकुमार बंधोपाध्याय, कवि एवं आलोचक श्यामसुन्दर घोष, इन्द्रनाथ चौधरी (साहित्य अकादमी के एक पूर्व सचिव जो बहुभाषा-ज्ञानकार और अनुवादक हैं) इत्यादि बंगाली हिन्दी-साहित्य में स्मरणीय हैं। ‘हिन्दी के बंगाली साहित्यकार’ शोध का विषय है। नवीनचन्द्र राय ने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की उर्दूबाजी और सर सैयद अहमद खाँ की हिन्दीहत्याचेष्टा का विरोध कर भविष्यद्रष्टा होने का परिचय भी दिया था। उनका भाषा-दर्शन राजा लक्ष्मणसिंह के निकटतर था :

‘उर्दू के प्रचलित होने से देशवासियों को कोई लाभ न होगा क्योंकि वह भाषा खास मुसलमानों की है। उसमें मुसलमानों ने व्यर्थ बहुत सी अरबी-फ़ारसी के शब्द भर दिए हैं। पद्य या छन्दोबद्ध रचना के भी उर्दू उपयुक्त नहीं। हिन्दुओं का यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी परम्परागत भाषा की उन्नति करते चलें। उर्दू में आशिकी कविता के अतिरिक्त किसी गम्भीर विषय को व्यक्त करने की शक्ति ही नहीं है।’

‘बेनी’³ द्विज

तोष के शिष्य और मिश्रबन्धु के शब्दों में “उन्हीं की कोटि के सुकवि”, पैतृक परम्परा से तथा स्वयं भी वाजिदअली शाह के दरबार से संबद्ध तथा 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम के अनन्तर लखनऊ छोड़कर काशी में ‘सुँघनीसाहु’ (प्रसाद के पितामह) के मुनीम, काशी-कवि-मंडल के जान-माने ब्रजभाषा-समस्यापूर्तिकार तथा अम्बिकादत्त व्यास, रामकृष्ण वर्मा ‘बलवीर’ या ‘वीरकवि’, नकछेदी तिवारी ‘अजान’ इत्यादि के कवि-मित्र वेणीराम ‘द्विज बेनी’ (1838-1914 ई., जन्म लखनऊ, निधन काशी) ने ‘हिन्दी-शब्दसागर’ के संपादन-विभाग में भी काम किया था। वे आ. श्यामसुन्दरदास प्रसाद इत्यादि के सम्पर्क में आए थे। उन पर तुलसीदास का भारी प्रभाव पड़ा था। उन्होंने कोई व्यवस्थित ग्रन्थ नहीं रचा, न समस्यापूर्तियों तथा कवित्तों को लिपिबद्ध ही किया। उनके शिष्य छन्नूलाल पाठक को कुछ छन्द मिले थे। जिनमें से पाँच ‘विनोद’ में प्राप्त होते हैं—दो प्रस्तुत हैं :

1. सीतारामलखन बिलोकि ग्राम नारी नर मोहित हवै ठाढ़े सबै एकटक लाय कै।
तिन मैं सयानी नारी अरज गुजारी आनि जनकदुलारी आगे सीसन नवाय कै।।
काकी हौ पियारी दोऊ राजहंस बंसन मैं ‘बेनी द्विज’ दीजिए दया सों समझाय कै।
लाजन लजाय अकुलाय तबै सैनन सों दीन्हों है लखाय राम मुरि मुसुकाय कै।।
2. जैसी प्रीति स्वाती सों पपीहा के ठनी है जीव, बैसी ही हमारी प्रीति पीउ सों ठनी रहै।
जैसी चाह चंद की चकोर के चुभी है चित्त, ताहू सों दुचंद मेरी आरजू घनी रहै।।
बार-बार गौरी सों बिनै कै यह माँगति हौं, ‘बेनी द्विज’ दीठि में धरोई मों घनी रहै।
चाहै जौन बाल के परे वो प्रेम-जाल, तऊ लाल उर लागिबे की लालसा बनी रहै।।

1. वैसवाड़ा (बैसवारा) अंचल (उन्नाव-रायबरेली जनपद-द्वय के अंचलों में प्रसरित) के ‘बैस’ ठाकुर थे। यहाँ अभिप्राय व्यापक है—वैश्य या वणिक् या बनिया से।
2. हिन्दी साहित्य कोश भाग 2 : डॉ. रामचन्द्र तिवारी (वर्ष-क्रम-व्यवस्था मेरी)।
3. ‘विनोद’ (मिश्रबन्धु) : 1894-1947 वि.।
4. संयोगात् प्रख्यात बेनी प्रवीन लखनऊ के ही थे, समकालीन थे; और प्रख्यात भँड़ैयाकार बेनी बन्दीजन भी लखनऊ आते रहते थे, समकालीन थे। तीन बेनी एक नगर में प्रायः एक साथ।

बलदेव¹

‘प्रताप-विनोद’ (रस, अलंकार, छन्द इत्यादि पर जो सीतापुर जनपद के राजा² रुद्रप्रतापसिंह को समर्पित है), ‘शृंगार-सुधाकर’, ‘शृंगार-सरोज’, ‘ब्रजराज-विहार’ (कृष्णलीलाधृत विशाल ग्रन्थ जो इटौंजा-नरेश इन्द्रविक्रमसिंह को समर्पित है), ‘मुक्तमाल’ इत्यादि के शास्त्रीयकाव्यकार बलदेव या द्विज बलदेव (जन्म 1840 ई., सीतापुर जनपद) सुधारवादी युग के एक प्रसिद्ध पारम्परिक कवि थे जिन्हें सीतापुर, लखनऊ प्रभृति जनपदों के विभिन्न आश्रयदाताओं से पर्याप्त भूमि, धन, गज इत्यादि की प्राप्ति हुई थी। इनके एक पुत्र गंगाधर ‘द्विज गंग’ भी श्रेष्ठ कवि थे जिन्होंने प्रायः पैंतीस वर्षों के जीवन में “शृंगारचन्द्रिका”, ‘महेश्वरभूषण’ एवं ‘प्रमदा-पारिजात’ नामक तीन ग्रन्थ रचे थे। द्विज बलदेव अवस्थी³ कुलरत्न थे। इनकी कविता की दो वानगियाँ पेश हैं :

1. कहा हवैहै कखू जानि परै सब अंग अनंग सों जोरि जरे।
उतै बीथिन मैं बलदेव अचानक दीठि प्रकासक प्रेम पर॥
हँसिकै गे अयान दया न दई है सयान सबै हियरे के हरे।
चले कौन ये जात लिए मन मो सिर मोर की चंद्रकला को धरे॥
2. खुर्द घटै बढै राहु ग्रसै बिरही हियरे घने घाय घला है।
सो तौ कलंकित त्यों विषबंधु निसाचर बारिज वारि पला है॥
प्रेम समुद्र बढै बलदेव के चित चकोर को चोप चला है।
काव्य सुधा बरसै निकलक उदै जस सी तुही चंद्रकला है॥

आलम बेगम⁴

आलम बेगम अवध के अन्तिम ऐयाश और निकम्मे नवाब ‘वाजिदअली शाह अख्तर’ (13 फरवरी, 1856 को अंग्रेजों द्वारा पदच्युत—इसी के साथ अवध ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारतीय साम्राज्य का एक सूबा बन गया⁵) की शताधिक बीवियों में एक थीं। जब शासक शासन नहीं करते तब उनकी प्रतिभा कविता करने लगती है। मुगल-वंश के शाह आलम (द्वितीय), अकबर (द्वितीय), बहादुरशाह (द्वितीय) ‘जफ़र’ इत्यादि ‘द्वितीय’ द्वितीय या इतर श्रेणियों के शायर थे, कभी-कभी हिन्दी-कविता भी कर डालते थे। यही हाल ‘अख्तर’ वगैरह और उनकी कुछ बेगमों का था। वाजिदअली शाह के समय कथक-नृत्य, नाटक और साहित्य की अच्छी उन्नति हुई थी। यह ‘धीर’ न सही पर ‘ललित’ अवश्य था! गोरा-चिह्ना भारी शरीर का आदमी! विलासिता की कथाओं में आज भी जीवन्त! इसके पतन पर आँसू न गिरा, एक बूँद खून की तो बात ही और है!⁶ इसके लिए 1857 ई. को स्वातन्त्र्य-संग्राम में लड़ने-जूझने वाले योद्धा राना बेनीमाधव⁷, राव रामबख्शसिंह⁸, दरियावसिंह⁹ इत्यादि भी क्षेत्रीय सम्मान मात्र प्राप्त कर सके। बलिदानी या त्यागी सर्वोपरि होते हैं। बेगम हजरतमहल, झॉंसी की रानी लक्ष्मीबाई, तात्यां टोपे, नानाराव पेशवा, ठाकुर कुँवरसिंह इत्यादि ही व्यापक श्रद्धा एवं अमरता पा सके हैं। हरियाणा के राव तुलाराम, मैनपुरी के तेजसिंह¹⁰, हरदोई के गुलाबसिंह इत्यादि तक प्रत्यक्ष बलिदान या त्याग के अभाव में विस्मृत हो गए। आलम बेगम का एक ठुमरी-खम्माच देखिए :

1. एक बलदेव मिश्र ने औरंगज़ेब-राज्यकाल (1658-1707 ई.) के आसपास ‘अजमतख़ाँ-यशवर्णन’ काव्य रचा था। आधुनिककाल में डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र एवं डॉ. बलदेव उपाध्याय प्रसिद्ध हैं ही—प्रथम कवि-विद्वान्, द्वितीय विद्वान्।
2. उन्नाव, रायबरेली, लखनऊ, सीतापुर इत्यादि जनपदों में छोटे-बड़े दर्जनों राजा थे। इनमें से अनेक कविता-प्रेमी थे, अनेक विद्या-प्रेमी।
3. बलदेव अवस्थी, जगमोहनाथ अवस्थी, सद्गुरुशरण अवस्थी, सिद्धेश्वर अवस्थी, डॉ. देवीशंकर अवस्थी, डॉ. रामकुमार अवस्थी, रमानाथ अवस्थी, राजेन्द्र अवस्थी, डॉ. मोहन अवस्थी, धर्मपाल अवस्थी, डॉ. महेशप्रतापनारायण अवस्थी (महेश अवस्थी), डॉ. सुरेश अवस्थी इत्यादि ने हिन्दी-सेवा की है।
4. आलम (अकबरकालीन) एवं स्वच्छन्द-कवि आलम (मुअज्जम के आश्रित) तथा अन्य आलमों से भिन्न कवयित्री।
5. हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया द कम्पनी एंड द क्रॉउन (पी. ई. रॉबर्ट्स) पृष्ठ 356। हिन्दी में विविध (समाजशास्त्र, अपराधशास्त्र, जीवनीयों इत्यादि) विषयों के छात्रोपयोगी ग्रन्थकार परिपूर्णनन्द वर्मा ने ‘वाजिदअली शाह और अवध राज्य का पतन’ ग्रन्थ प्रस्तुत किया है।
6. प्रेमचन्द की ‘शतरंज के खिलाड़ी’ में युगसत्य विवृत हैं। भारतरत्न सत्यजित् राय ने ‘शतरंज के खिलाड़ी’ शीर्षक हिन्दी-चलचित्र बनाया है।
7. डॉ. चक्रपाणि पांडेय इत्यादि ने काव्यरचना की है।
8. राममनोहर त्रिपाठी इत्यादि ने काव्यरचना की है।
9. काका बैसवारी ने छन्दरचना की है।
10. श्रीकृष्ण मिश्र ने ‘टीले’ उपन्यास लिखा है।

हाँ जोराजोरी मोरी बहियाँ मरोरी रे। बरजोरी कर पकरत पिया छतियाँ छुवत
देखो देखो मोरी सारी चुरियाँ करक गई अँगिया मसक गई ऐसी करत ठठोरी रे॥
लाज मरूँ बनि नहि आवै मोरा जिया डरपावै
'आलम' दिनन की मैं थोरी रे॥

मथुरा¹प्रसाद मिश्र

कृत्तिवास कृत विख्यात बांग्ला-रामायण के विशाल लंकाकांड के ललित ब्रजभाषा अनुवादकर्ता (1894 ई.) पं. मथुराप्रसाद मिश्र (पच्छिमगाँव, तत्कालीन अमेठी राज्य, सुल्तानपुर जनपद, उत्तर प्रदेश) निस्सन्देह एक सफल कवि थे। उनका अनुवाद ब्रजभाषा में बांग्ला-मूलजनक संस्कृतनिष्ठता एवं जन्ममूलक अवधी के सहज योग से सम्पन्न है, अनमिल या अनगढ़ नहीं। मिश्रबन्धु के शब्दों में यह लंकाकांड सम्पूर्ण तुलसीदास जी की रामायण से आकार में कुछ कम न होगा। इनमें रायल अठपेजी के 510 पृष्ठों में कथा, 10 पृष्ठों में भूमिका, पाँच में विषय-सूची तथा 78 पृष्ठों में टिप्पणी आदि हैं। कुल 603 पृष्ठों में यह कांड समाप्त हुआ। इसमें कथा बहुत विस्तार से लिखी गई है।² यह रचना लखनऊ के एक उपन्यायाधीश बाबू कालीप्रसन्नसिंह की प्रेरणा से की गई। कवि ने उत्तरकांड का अनुवाद भी किया है जो उसके तथा प्रेरक के निधनों के कारण प्रकाशित न हो पाया। मथुराप्रसाद मिश्र एक श्रेष्ठ कवि थे। उनका संस्कृत, बांग्ला, ब्रजभाषा, छन्दःशास्त्र इत्यादि का ज्ञान पर्याप्त गम्भीर था। उदाहरण देखें :

1. रबि किरण तनु ते प्रकट शशधर ज्योति ज्योतिष्मान। श्रमबिंदु झलकत चंद्रमुख अरबिंद-बिंदु समान॥
रबि उदय ते लगि अस्त युद्ध प्रवृत्त नहिं अवसान। कर मध्य भीषण धनुष बरखहिं प्रखर अगणित वान॥
तूणीर ते शर लेत क्षण यकमात्र बाण लखाय। दरसात रिपुदल पर परत शत सहस ते अधिकाय॥
2. संग्राम जासु यम आदि गए पराई। कोदंड हाथ लखि कंपत देवराई॥
जेते सुरासुर सवीर त्रिलोक माहीं। जाके कराल शत ते थिर कोइ नाहीं॥
आदेशकारि शशि सूर³ समीर जाके। त्रैलोक्य हर्षित महा विनिपात ताके॥
सानंद देव-मुनि वृंद ऋचा सुनावैं। गंधर्व दुंदभि बजाय सुगीत गावैं॥

शरच्चन्द्र 'सोम'³

1890 ई. में सम्पूर्ण 'महाभारत' (18 पर्व) के द्वादश पंडित कृत गद्य-अनुवाद के प्रस्तोता शरच्चन्द्र 'सोम' को मिश्रबन्धु ने अहिन्दीभाषी लिखा है, किन्तु परिचय नहीं दिया। गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव की त्रयी का अनुवाद काव्य में है तथा मिश्रबन्धु के शब्दों में "कुछ संक्षेप में लिखा गया है", जबकि इनके द्वारा प्रस्तुत अनुवाद प्रतिश्लोकी अर्थात् पूर्ण है तथा उत्कृष्ट भाषा में भी विशिष्ट है। अजन्ता, खजुराहो, कोणार्क इत्यादि के कलाकारों, सायण के संयोजकत्व में प्रस्तुत वेदानुवादकर्ताओं, नेताओं के भाषणों के प्रस्तोताओं इत्यादि-इत्यादि के सदृश महाभारत के शरच्चन्द्र 'सोम' द्वारा प्रस्तुत अनुवाद के द्वादश पंडितों को कोई नहीं जानता! 'विनोद' का उदाहरण प्रस्तुत है :

"श्रीवैशंपायन मुनि बोले, हे राजा जनमेजय। इस प्रकार कुरु-कुलश्रेष्ठ पांडवों ने अपने संगियों के सहित प्रसन्न होकर अभिमन्यु का विवाह किया, फिर रात्रि भर सुख से अपने घर में रहे और प्रातःकाल होते ही राजा विराट् की सभा में आए। वह राजा विराट् की सभा मणियों से खिंची हुई, फूल की मालाओं से सुशोभित और सुगंधित जल से छिड़की थी। उसी में सब राजाओं में श्रेष्ठ पांडव लोग आकर बैठे। उनके बैठते ही सब राजाओं से पूजित बूढ़े महाराज विराट् और द्रुपद आसनों पर बैठे। द्रुपद के पास कृतवर्मा और बलदेव बैठे। राजा विराट् के पास महाराज युधिष्ठिर बैठे। राजा द्रुपद के सब पुत्र, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, प्रद्युम्न, सांव,

1. 'पंचांग-दर्शन' शीर्षक ज्योतिष-ग्रन्थ (1800 ई.) के लेखक पं. मथुरानाथ शुक्ल एवं 'साहसेन्द्र-साहस' (शेक्सपीयर की महान् त्रासदी 'मैकबेथ' का अनुवाद 1893 ई.) के प्रस्तोता पं. मथुराप्रसाद चौधरी से यत्किंचित् नाम-साम्य।
2. सूर्य। ऋग्वेद में भी 'सूर' का प्रयोग मिलता है।
3. स्व. डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' समीपनामी हैं।

अभिमन्यु और राजा विराट् के महावीर पुत्र ये सब एक स्थान पर बैठे। पांडवों के तुल्य रूपवान् पराक्रमी द्रौपदी के पाँचों पुत्र मणिजटित सोने के सिंहासनों पर बैठे। जब उत्तम वस्त्र और आभूषणधारी राजा लोग अपने-अपने और योग्य आसनों पर बैठ चुके तब वह राजाओं से भरी सभे ऐसी शोभित हुई जैसे निर्मल तारों से भरा आकाश होता है।”

निस्सन्देह यह गद्य सफल आधुनिक गद्य है, प्रशस्य है।

लछिराम

रामचन्द्रभूषण, रामरत्नाकर, रघुवीर-विलास, सरयूलहरी, हनुमतशतक इत्यादि के उल्लेख्य रामकाव्यकार कवि एवं अलंकार, विशेषतः श्लेष के विवेक आचार्य लछिराम (1841-1904 ई.¹, जन्मस्थान अमाढ़ा, बस्ती, निधनस्थान अयोध्या) ने आश्रयदाता राजाओं को समर्पित अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। यह ब्रह्मभट्ट थे। इनके प्रधान आश्रयदाता अयोध्या-नरेश मानसिंह 'द्विजदेव एवं प्रतापनारायण सिंह थे तथा बस्ती-नरेश शीतलाबख्शसिंह ने भूमि, गज इत्यादि प्रदान किए थे—तीनों पर क्रमशः मानसिंहष्टक, प्रताप रत्नाकर, प्रेमरत्नाकर की रचना हुई है। इन्होंने अन्य राजाओं और एकाध रईसों को समर्पित ग्रन्थरचना भी की थी। सुधारवादी युग के शास्त्रीयकालीन प्रवृत्तियों के कवियों में इनका एक उल्लेखनीय स्थान है। रचनाएँ पारम्परिक होने पर भी अच्छी हैं। एक बानगी पेश है :

चैत चंद चौंदनी प्रकाश छोर छिति पर, मंजुल मरीचिका तरंग रंग बरसो।
कोकनद, किंसुक, अनार, कचनार, लाल, बेला, कुंद, बकुल, चमेली, मोतीलर सो।।
श्रीपति सरस स्याम सुंदरी बिहारथल, लछिराम राजें दुज आनंद अमर सो।
यों ही ब्रज बागन विथोरित रतन फैल्यो, नागर बसंत रतनाकर सुधर सो।।

लछिराम उस बस्ती जनपद के थे जहाँ के मगहर में कबीर ने शरीर छोड़ा तथा जहाँ के अगोना में रामचन्द्र शुक्ल का जन्म हुआ। बस्ती जनपद कवियों की दृष्टि से बहुत सम्पन्न रहा है। श्री गोमतीप्रसाद मिश्र 'अनिल' ने 'बस्ती' जनपद की काव्य-साधना के अतीत-खंड में सहाईराम, रामदीन अनिंद, शम्भूनाथ 'द्विज', स्वामी बालकानन्द, पीतम्बर भट्ट, भवानीबख्श, ब्रह्मदेव भट्ट, बलदेव (बल्दी), रामगरीब चतुर्वेदी 'गंगाजन', 'रामलोचन भट्ट, शीतलाबख्श सिंह 'महेश', 'विश्वेश्वर', 'वत्सपाल'², राजारामनाथसिंह 'नरदेव', लाल लक्ष्मीनाथसिंह 'लाल', आचार्य लछिराम भट्ट, लाल त्रिलोकीनाथसिंह 'भुवनेश', हनुमंत भट्ट, राजबहादुर शर्मा, रघुनाथसिंह, 'किंकर', बलराम चतुर्वेदी, बलराम मिश्र 'द्विजेश', भास्करप्रसाद चतुर्वेदी 'दिनेश', बुद्धिसागर मिश्र 'पंचानन', श्रीनारायण चतुर्वेदी³, गौरीनाथ शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रामचरित्र पांडेय 'पावन', रंगनारायण पाल 'रंगपाल', रामनारायण चतुर्वेदी।

ईसुरी

बुन्देलखंड (साहित्य और शौर्य में अतुलनीय बुन्दलखंड) के लोककवि ईसुरी (1841-1909 ई.)⁴ के चौकड़िया फाग लक्ष-लक्ष जनता के कंठहार बन गए हैं। वे 'ईसुरी' के साथ 'ईसुर' छाप का प्रयोग भी करते थे। भोजपुरी में भिखारी, छोटकुन, भागीरथी प्रभृति विख्यात लोककवि अत्यन्त प्रिय रहे हैं, किन्तु ईसुरी केवल प्रिय ही नहीं रहे अपितु समसामयिक गंगाधर व्यास, रसिया, खयालाराम मनभावन शुक्ल इत्यादि कवियों के प्रेरक भी सिद्ध हुए थे। ईसुरी के चौकड़िया फागों का संकलन कर कुँवर दुर्गासिंह ने साहित्य की सेवा की। डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त कृत 'बुन्देलखंड की लोकसंस्कृति का इतिहास' में ईश्वरी की विद्यमानता स्वयंसिद्ध है। डॉ. गुप्त कृत 'बुन्देलखंड का साहित्यिक इतिहास' (अप्रकाशित) में एक खंड 'बुन्देली लोकसाहित्य' है। साहित्यतिहास तब तक अपूर्ण है जब तक वह लोकसाहित्य का समावेश न करता हो। श्री आनन्दस्वरूप श्रीवास्तव के शब्दों में, "ईसुरी के फागों का प्रमुख प्रतिपाद्य शृंगार है। शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का इनकी रचनाओं में मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है।" उनकी नर्तकी-प्रेमिका सुन्दरिया का नाम भी उनके साथ 'कथा' बन गया है। ईसुरी की बुन्देली हिन्दी का अभिन्न अंग है। अशिक्षितप्राय होते हुए भी

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 (सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि) में 1940 ई. गलत छपा लगता है।
2. यह विख्यात लोककवि 'रंगपाल' के पिता थे।
3. विख्यात हिन्दीसेवी श्रीनारायण चतुर्वेदी से भिन्न (जो इटावा के थे)।
4. 'विनोद' में जन्मकाल "अनुमानतः संवत् 1920" (1863 ई.) दिया है, जो गलत है।

उन्होंने अपनी कविता में उपमा-उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग बारम्बार किया है। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है। उनकी कविता स्थानीय जीवन का सुन्दर दर्पण है। सुधारवादी युग में कविता की शृंगार-धारा¹ अनवरत प्रवाहित रही; और ईसुरी उसके एक उल्लेख्य कवि हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. गोला मौ पै पटियाँ पारें, सुंदर माँग सँमारें।
मानो स्वच्छ चंद्र के ऊपर कागा पंख पसारें।।
दोऊ तरफ बहैं सुंदर सी गंगा जमुना धारें।
तिरबेनी बेनी खो देखत राती सिमट किनारे।।
ईसुर कात दास के होतन कलमल सिखर निकारें।।
2. तुम छाँ बिध ने नेक बनाओ जनम साव घर पावो।
वाधाहरन धन्य वह पंडित राधा नाम धराओ।।
धन वह धाम, धन्य वह नगरी जिनके बीच वसाओ।
धन वह पिता, धन्य वह माता जौन घरी जब जाओ।।
गुन अरु रूप ईसुरी वरनो नाम तिहारो धियायो।।
3. खेलें फाग राधिका प्यारी, ब्रजखोरन गिरधारी।
इन भर वाहु बाँस की टाटी, उन मारी पिचकारी।।
इनते छीनो लकुट मुरलिया, उन छीनी तन सारी।
वे तो आयँ नंद के लाला, जे बृषभान-दुलारी।।
अपुन बनी नटनागर ईसुर, उनै बनायो नारी।।

बालकृष्ण भट्ट

सुधारवादी युग के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं पं. प्रतापनारायण मिश्र के अनन्तर अन्यतम साहित्यकार पं. बालकृष्ण भट्ट (1844-1914)² एक महान् निबन्धकार थे। वैसे, उन्होंने 'कलिराज की सभा', 'रेल का विकट खेल', 'बालविवाह' इत्यादि मौलिक तथा अनेक संस्कृताधृत नाटक 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान' प्रभृति उपन्यास भी लिखे और अपने अमर 'प्रदीप' में 1889 ई. में श्रीनिवासदास कृत नाटक 'संयोगिता-स्वयंवर' की आलोचना के साथ हिन्दी-आलोचना के जन्मदाता³ का गौरव भी प्राप्त किया, तथापि साहित्य में उनका उच्च स्थान 'आँख', 'नाक', 'कान' जैसे मुहावरों के विस्मयकारी प्रयोगों से निष्पन्न 'बातचीत', 'आत्मनिर्भरता', 'कल्पनाशक्ति' जैसे विचारात्मक तथा 'आँसू' और 'चन्द्रोदय' शीर्षक अमर भावात्मक (काव्यात्मक-कलात्मक) निबन्धों के कारण ही सिद्धा होता है। 'भट्ट-निबन्धावली' में उनके निबन्ध संगृहीत हैं। राजेन्द्र शर्मा कृत 'हिन्दी-गद्य के निर्माता बालकृष्ण भट्ट', गोपाल पुरोहित कृत 'निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट', मधुकर भट्ट कृत 'बालकृष्ण भट्ट का व्यक्तित्व और कृतित्व' जैसे ग्रन्थों में उनके त्याग एवं तप से पावन जीवन एवं साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन उनके साहित्य-शिष्य थे।⁴ उनके सुपुत्र श्री जनार्दन भट्ट ('बौद्धकालीन भारत', 'अशोक के धर्मलेख' जैसे स्मरणीय ग्रन्थों के लेखक) 25 दिसम्बर, 1989 को 100 वर्ष पूरे करने के उपरांत 1990 ई. में प्रायः 101 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए।

हिन्दी के महान् निबन्धकारों में माधवप्रसाद मिश्र आवेश में लिखते थे, बालकृष्ण भट्ट आक्रोश में। पारिवारिक एवं आजीविकात्मक क्षेत्रों में अनवरत असफलताओं में भट्ट को आक्रोशग्रस्त कर दिया था जिसके प्रभाव से उनके निबन्ध भी नहीं बच सके। एडिसन के सदृश भट्ट प्रायः पाठक का मनोरंजन करते-करते ही सुधार-परिष्कार करने का लक्ष्य सामने रखकर लिखते थे। वे एक जागरूक

1. सुधारवादी युग में भक्ति-धारा भी अनवरत प्रवाहित रही, शास्त्रीय-धारा भी। सुधारवादी युग के कवि अतीत से संपृक्त रहकर ही वर्तमान का निर्माण करते रहे, भविष्य-पथ प्रशस्त करते रहे। यही सहज साहित्य की विकास-गाथा है।
2. सं. 1901-71 वि.। जन्मस्थान-कर्मस्थान प्रयाग।
3. भारतेन्दु-युग (डॉ. रामविलास शर्मा)।
4. वैसे, टंडनजी महामना मालवीय से विशेष प्रभावित रहे।

सुधारक और द्रष्टा साहित्यकार थे। उन्होंने पोंगापंथियों पर भरपूर चोटें की हैं। अपने समय में तो दूर, वे आज भी विलक्षण प्रगतिशील सर्जक प्रतीत होते हैं। 'प्रदीप' को हिन्दी का 'सपेक्टेटर' कहा जा सकता है। दोनों महान् निबन्धकार हास्य का पुट देते चलते हैं। एडिसन अधिक विषयबद्ध हैं, तो भट्ट अधिक कलात्मक। एडिसन सहज हैं, किन्तु भट्ट अपने संस्कृत, फ़ारसी अंग्रेज़ी प्रभृति भाषाओं के ज्ञान के प्रदर्शन के कारण यत्र-तत्र कृत्रिम लगने लगते हैं। ग़नीमत यही है कि फ़ारसी के शब्द, मुहावरे एवं उद्धरण देवनागरी लिपि में हैं अन्यथा अंग्रेज़ी के प्रयोग वे ठेठ रोमन लिपि में ही ठोंक देते हैं! इस प्रवृत्ति से उनके निबन्ध कहीं-कहीं नाहक ही दुरुह हो गए हैं। वे कहीं-कहीं बहुत कठोर होकर लिखते लगते हैं (उर्दू और पंजाबी के प्रति उनका दृष्टिकोण एक प्रमाण है)।

आ. श्यामसुन्दरदास¹ ने ठीक ही प्रतापनारायण मिश्र को बालकृष्ण भट्ट से अधिक सफल निबन्धकार माना है। यह सत्य है कि भट्ट मिश्र से अधिक विचारशील हैं तथा साधु भाषा के प्रयोग से भी कुल मिलाकर आगे हैं, किन्तु उनके निबन्धों में प्रतिभा का मिश्र-जैसा चमत्कार दृग्गत नहीं होता मिश्र में हास-परिहास भी विशुद्ध है, आक्रोशग्रस्त नहीं। मिश्र एक उत्कृष्ट कवि भी थे, जिससे भी उनके निबन्ध लाभान्वित हुए हैं। कालाक्रमानुसार भट्ट, मिश्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय एवं हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के श्रेष्ठतम निबन्धकार हैं, क्योंकि पूर्णसिंह एवं रघुवीरसिंह के निबन्ध बहुत थोड़े भी हैं एवं भावातिरेकपूर्ण भी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (कछुवा-धर्म) एवं यशोदानन्दन अखौरी (इत्यादि की आत्मकहानी) एवं चतुर्भुज शर्मा औदीच्य (कवित्व) के श्रेष्ठ निबन्ध टुटूँ-टूँ एक-एक हैं, श्यामसुन्दरदास एवं नन्ददुलारे वाजपेयी एवं नगेन्द्र के निबन्ध वस्तुतः आलोचना के अंग हैं, विद्यानिवास मिश्र ('भैरे राम का मुकुट भीग रहा है' इत्यादि-इत्यादि ग्रन्थ) एवं कुबेरनाथ राय ('महाकवि की तर्जनी' इत्यादि-इत्यादि ग्रन्थ) के निबन्ध कृत्रिम एवं पत्रपत्रिकामूलक हैं। वैसे, भारतेन्दु, प्रेमधन, आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, पद्मसिंह शर्मा, लक्ष्मण नारायण गर्दे, माधवराव सप्रे इत्यादि ने भी अच्छे निबन्ध लिखे हैं। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, नरेन्द्रदेव, सम्पूर्णनन्द, मुंशीराम शर्मा 'सोम' इत्यादि के 'निबन्ध' विद्वानों के विचार हैं, साहित्यरसनिष्पन्न निबन्ध नहीं। अंततः भट्ट के निबन्धों से दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. यावत् मिथ्या और दारोग की क़िबलेगाह इस कल्पना-पिशाचिनी का ओर-छोर भी किसी ने पाया है? अनुमान करते-करते हैरान गौतम से मुनि 'गौतम' हो गए। कणाद् तिनका खा-खा कर किनका बीनने लगे पर मन की मनभावनी कन्या कल्पना का पार न पाया। कपिल बेचारे पच्चीस तत्वों की कल्पना करते-करते 'कपिल' अर्थात् पीले पड़ गए। व्यास ने इन तीनों दार्शनिकों की दुर्गति देख मन में सोचा, कौन इस भूतनी के पीछे दौड़ता फिरे, यह सम्पूर्ण विश्व जिसे हम देख-सुन सकते हैं सब कल्पना, मिथ्या, नाशवान् और क्षणभंगुर है, अतएव हेय है। (कल्पना-शक्ति)

2. इधर पचास-साठ वर्षों से अंग्रेज़ी राज्य² के अमन चैन का फ़ायदा पाए हमारे देशवाले किसी भलाई की ओर न झुके वरन् दस वर्ष की गुड़ियों का ब्याह कर पहिले से ड्योढ़ी दूनी सृष्टि अलबत्ता बढ़ाने लगे। हमारे देश की जनसंख्या अवश्य घटना चाहिए।³आत्मनिर्भरता में दृढ़, अपने कूवते-बाजू पर भरोसा रखने वाला पुष्टवीर्य, पुष्टबल, भाग्यवान् एक सन्तान अच्छा। 'कूकर-सूकर से' निकम्मे, रग-रग में दास-भाव से पूर्ण परभाग्योपजीवी दस किस काम के?

रसिकबिहारी

बौद्धिककाल के सुधारवादी युग के रामकाव्यकारों में सफल 'रामरसायन' (1882 ई. अथवा 1939 वि.) के कवि महंत जानकीप्रसाद 'रसिकबिहारी' (जन्म 1844 ई. अथवा 1901 वि., झाँसी जनपद) भी उल्लेख्य माने जा सकते हैं। रचना का उद्देश्य कवि ने स्वयं स्पष्ट किया है :

रामकथा कछु रचत हौं सुरस सत्य सुख धाम।

रामरसायन नाम यह बरनौं ग्रंथ ललाम।।

1. साहित्यालोचन।

2. 'हिन्दी-साहित्य में अंग्रेज़ी-राज्य' शोधप्रबन्ध का गम्भीर विषय है। 'हिन्दी-साहित्य में मोहम्मदी राज्य' भी ऐसा ही उत्तम विषय है।

3. द्रष्टा भट्ट यह उद्गार तब का है जब उपमहाद्वीप एक था (भारतपुत्र पाकिस्तान और भारतपौत्र बांग्ला देश अलग न थे) और जनसंख्या प्रायः 18 करोड़ रही होगी (1991 ई. में, भारत की 85 करोड़, पाकिस्तान की 11 करोड़, बांग्लादेश की 12 करोड़) — 1 अरब 8 करोड़ है जो कुछ वर्षों में ही सीधे 1 अरब से अधिक होने जा रही है। भट्ट परिवार-नियोजन के प्रथम प्रचारक थे।

पद्याकर ने भी रामरसायन प्रस्तुत किया था। रविकविहारी का रामरसायन सरस काव्य है। एक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय छन्द प्रस्तुत है :

बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु, रसिकविहारी देत बंधु कहैं फेर फेर।
चाखि चाखि भाखैं यह वाहू ते महान मीठो, लेहु तौ लखन यों बखानत हैं बेर बेर॥
बेर बेर देवे बेर सबरी सु बेर बेर, तेऊ रघुवीर बेर बेर तिहि टेर टेर।
बेर जनि लाओ बेर बेर जनि लाओ बेर, बेर जनि लाओ बेर लाओ कहैं बेर बेर॥

नेवाज बिलग्रामी

प्रसिद्ध छत्रसाल-आश्रित नेवाज ब्राह्मण, अंतर्वेद¹वासी एवं भगवंतराम खींची-आश्रित नेवाज ब्राह्मण बुन्देलखंडवासी से भिन्न, नेवाज बिलग्रामी² मुसलमान जुलाहे थे जिनका जन्म 1847 ई. में बताया जाता है। डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव के शब्दों में, “इनके सवैये ‘दिग्विजय-भूषण’, ‘शिवसिंह-सरोज’, ‘सुन्दरी-तिलक’, ‘मुसलमानों की हिन्दी-सेवा’, ‘हिन्दी के मुसलमान कवि’ आदि पुस्तकों में उपलब्ध होते हैं।” डॉ. श्रीवास्तव नेवाज बिलग्रामी के साथ न्याय करते-करते ‘अति’ की अप्रात्ययिकता की सीमा का स्पर्श कर गए हैं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि नेवाज बिलग्रामी शृंगार, विशेषतः सम्भोग-शृंगार, के सफल कवि हैं (यद्यपि यत्र-तत्र उल्लंग हो गए हैं)। ब्रजभाषा के उत्कृष्ट सवैयाकारों में इनकी भी गणना की जा सकती है। इनकी प्रकृति के प्रतीक दो सवैये प्रस्तुत हैं :

1. पीठि दै पौढ़ि दुराग कपोल को मानै न कोटि पिया उर पोटत।
बाँहन बीच किए कुच दोऊ गहे रसना मन ही मन सोचत॥
सोवत जानि ‘नेवाज’ पिया कर सों कर दै निज ओर करोटत।
नीबी विमोचत चौंकि परी मृगछौना सी बाल बिछौना पै लोटत॥
2. मुख चुंबन में मुख लै जो भजै पिय के मुख में मुख लायो चहै॥
गलवाहीं गोपाल के मेलत ही मुख नहीं कहै मन ते न कहै॥
नाहिं देत ‘नेवाज’ छुवै छतियाँ में लगाए ते लागि रहै।
कर खैंचत सेज की पाटी गहै रति में रति की परिपाटी गहै॥

सहजराम

रामायण³ एवं ‘प्रह्लाद-चरित्र’ के वर्णनात्मक कवि सहजराम (1848 ई.⁵, बँधुवा, जनपद सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश) ने अवधी विभाषा एवं दोहा-चौपाई छन्द-प्रयोग में तुलसीदास का अनुकरण किया है। इनकी कविता में शान्तरस की निष्पत्ति अच्छी हुई है :

जो कदाचि धन धाम बिलोका। तिन⁶-समान मानै त्रैलोका॥
जो धनहीन दीन मुख बाए। जहँ-तहँ जाँचहि पेट खलाए॥
नहिं जप-जोग, भोग मन लावा। यह-वह करत जरापन आवा॥
तन भा अबल, बदन रद-हीना। तृष्णा तरुन, होय तन छीना॥
अनइच्छित आई जरा, सहजराम सित केस। मनहुँ बिसिख सित पुंख तें, भेदेउकाल-नरेस॥
जिमि जिमि देह जरावन आवा। तिमि तिमि तृष्णा तरुन कहावा॥
अनइच्छित तन बरसी बुढ़ाई। नीच मीच-भगिनी दुखदायी॥

1. गंगा-यमुना का मध्यवर्ती क्षेत्र (विशेषतः आज के कानपुर एवं फ़तेहपुर जनपद-द्वय में प्रसरित) प्राचीन काल में अंतर्वेद कहलाता था।
2. साहित्य-विख्यात बिलग्राम, हरदोई जनपद में है।
3. “इनकी रामायण के भी तीन कांड (किष्किन्धा, सुन्दर और लंका) हमने देखे हैं।” —मिश्रबन्धु
4. “प्रह्लाद-चरित्र नामक 45 पृष्ठ का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ हमारे पास वर्तमान है।” —मिश्रबन्धु
5. संवत् 1905 वि. —शिवसिंह
6. तिनका, तृण।

थके चरन, कर कंपन लागे। प्रिय, बालक जल देइ न माँगे ॥
 खाँसे-खाँसे भूकहिं महिं माहीं। सुत, पतवधू देखि अनखाहीं ॥
 चिंता-मगत न लगन कछु हरिपद-पंकज-धूरि।
 आइ गँवायो जनम जड़ मगन मनोरथ भूरि ॥

गोविन्द गिल्लाभाई

सुधारवादी युग से आदर्शवादी युग तक प्रसरित पारम्परिक ब्रजभाषा-कविता के सृजन एवं उन्नयन में मूलतः गुजराती के कवि एवं लेखक गोविन्द गिल्लाभाई¹ (1848-1926 ई., सिहोर, भावनगर, गुजरात) का नाम सर्वथा स्मरणीय है। 'विनोद' में उनके नीतिविनोद, षट्क्रतु, पावस-पयोनिधि, समस्यापूर्ति-प्रदीप, वक्रोक्ति-विनोद, श्लेष-चन्द्रिका इत्यादि प्रकाशित तथा गोविन्द हजारा-संग्रह, अन्योक्ति-अंबुधि, शब्द-विभूषण, बोध-वत्तीसी, विवेक-विलास, राधारूपमंजरी, शृंगारषोडशी, राधामुखषोडशी, छवि-सरोजिनी, पयोधर-पचीसी, नैनमंजरी, प्रेमपचीसी इत्यादि अप्रकाशित ग्रन्थों के उल्लेख से लगता है कि यह एक स्फीत कवि थे, जिनका प्रमुख रस शृंगार था तथा जिन्होंने अलंकार-निरूपण में पर्याप्त कार्य किया था। यह आचार्य भी थे, कवि भी। इनका पुस्तकालय भी अत्यन्त सम्पन्न था। 'विनोद' में इनका कई बार उल्लेख है तथा विवरण भी है। आ. शुक्ल के अनुसार, "भूषण का एक बहुत शुद्ध संस्करण इन्होंने निकाला।"² गोविन्द गिल्लाभाई ने ब्रजभाषा में यत्र-तत्र गुजराती तथा अन्य शब्दों को पिरोया है। पारम्परिक नायिकाभेद-नखशिख-परक सौन्दर्यचित्रण, प्रेमनिरूपण एवं प्रकृतिवर्णन की दृष्टियों से गोविन्द गिल्लाभाई एक श्रेष्ठ ब्रजभाषा-कवि सिद्ध होते हैं। बानगी पेश है:

दरिद के बूंद मंद मंद बरसत अरु मंद मंद बोलत मयूर मनभावनों।
 चंचला चमक चहुँ ओर लसे मंद मंद, मंद मंद मारुत सुहात सुख छावनों।
 मंद मंद झूलत हिंडोरे नर नारी सवै³, मंद मंद पपिहा पुकार पिय आवनों।
 गोविंद अनेक ऐसे कौतुक उपावन को आयो मनभावन ये सावन सुहावनों।

दलपति, वंशीधर, गोविन्द गिल्लाभाई जैसे गुजराती जो ज्ञानेश्वर, नानदेव, प्रभाकर माचवे जैसे मराठे या स्वातंत्रितिरुनाल, चन्द्रशेखरम् नायर, आनन्दशंकर माधवन् जैसे केरली या डॉ. सुधांशु नायक, डॉ. मधुसूदन साहा, अर्जुन सतपथी जैसे उत्कली या सारे देश के ऐसे ही हिन्दी-साहित्यकार हिन्दी या भारती की हिन्द-व्याप्ति या भारत-व्याप्ति के जाज्वल्यमान् प्रतीक हैं।

देवीप्रसाद⁴

मुंशी देवीप्रसाद या देवीप्रसाद मुंसिफ (जन्म 1848 ई.⁵—जयपुर में किन्तु कार्यक्षेत्र जोधपुर रहा) को हिन्दी में रचना करने वाला प्रमुख इतिहासकार माना जा सकता है, क्योंकि इन्होंने 'साँगा', 'उदयसिंह', 'प्रतापसिंह', 'वीरबल' (दो भाग), 'जसवंतसिंह' इत्यादि अनेक राजस्थानी वीरों एवं राजाओं, 'बाबर', 'शेरशाह', 'हुमाँयूँ', 'अकबर', 'खानखानाँ', 'शाहजहाँ', 'औरंगजेब' इत्यादि मुसलमान शासकों तथा 'मीराबाई' जैसी विश्व की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री पर ग्रन्थ रचे, 'अरबी भाषा में संस्कृत-ग्रन्थ' एवं 'सिन्ध का इतिहास' जैसी अमूल्य कृतियाँ लिखीं। उन्होंने 754 अभिधानों से सम्पन्न 'कविरत्नमाला' की पाण्डुलिपि देकर महान् मिश्रबन्धु को अमर 'विनोद' रचने में सहयोग दिया, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा को ऐतिहासिक शोध की उन्नति के लिए उस समय की बहुत बड़ी राशि 30,000 रुपये दान किए। उन्होंने 'जहाँगीरनामा' जैसे अनेक ग्रन्थ हिन्दी में प्रस्तुत किए। मुंशी देवीप्रसाद आजीवन हिन्दी-सेवा में संलग्न रहने वाले

1. पिता का नाम। गुजरात में पिता का नाम भी लिखा जाता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में कृपाशंकर पांडेय में गिलाभाई लिखा है, जो गलत है। इसी ग्रन्थ में नवनीत के परिचय में देवनारायण द्विवेदी में गीलाभाई लिखा है और यह भी गलत है।
2. 'भूषणमंजरी'।
3. गुजरात में अधिकांश घरों में झूले का रिवाज था ही!
4. मुंशी देवीप्रसाद 'प्रीतम' भिन्न हैं जो बुन्देलखंडी थे तथा जिन्होंने 'बिहारी-सतसई' का अनुवाद उर्दू-शेरों में किया है।
5. "माघ सुदी 14 सं. 1904" ('विनोद')। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने 5 साल घटाकर 1846 ई. लिखा है जो गलत लगता है, क्योंकि माघ-फाल्गुन तक आते-आते ई. बदल जाती है।

एक पुण्यश्लोक महापुरुष थे। यह सत्य है कि उनका इतिहास-बोध एवं इतिहास-शोध आनुपातिक दृष्टि से जनश्रुतियों को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दे गया तथा रचनाओं की स्फीति के कारण गहन ऊहापोह कम ही हो सका है अर्थात् बौद्धिक तीक्ष्णता में वे राजस्थान के शीर्षस्थ इतिहासकार महामोहपाध्याय रायबहादुर डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की समता नहीं कर पाते। किन्तु यह भी सत्य है कि उनके कर्तृत्व का सम्यक् आकलन नहीं हो सका। 'मुंशी देवीप्रसाद के इतिहास-ग्रन्थों का शोध-परीक्षण', 'मुंशी देवीप्रसाद की कवि-नामावली का शोध-परीक्षण', 'हिन्दी के महान् सेवक मुंशी देवीप्रसाद' जैसे ग्रन्थ ही उनके साथ न्याय कर सकते हैं। 'मुंशी देवीप्रसाद ग्रन्थावली' प्रकाशित होनी चाहिए तथा जयपुर, टोंक एवं जोधपुर में उनकी स्मृति की सुरक्षा की जानी चाहिए।

उनके उन्नत गद्य का निदर्शन प्रस्तुत है :

“दूसरे चित्र में एक सिंहासन बना था। ऊपर शामियाना तना था। उस सिंहासन पर एक भाग्यवान् पुरुष पाँव रक्खे बैठा था; तकिया पीठ से लगा था, पाँच सेवक आग-पीछे खड़े थे और वृक्ष की शाखा उस सिंहासन पर छाया किए हुए थी”। (जहाँगीरनामा, पृष्ठ 144)

काशीनाथ खत्री

नानक, अर्जुन, तेगबहादुर, गोविन्दसिंह प्रभृति सिख-गुरुओं, सुन्दरदास, मलूकदास प्रभृति संतों, देवकीनन्दन खत्री, दुर्गाप्रसाद खत्री, श्यामसुन्दरदास प्रभृति साहित्यकारों, अयोध्याप्रसाद खत्री, पुरुषोत्तमदास टंडन, डॉ. रघुवीर, प्रो. बलराज मधोक, प्रो. कमला मधोक प्रभृति नेताओं के खत्री होने के कारण 'हिन्दी और खत्री-बंधु' शोध का विषय बन गया है। इन्हीं खत्री-बन्धुओं में एक थे अनुवाद कला के आचार्य एवं लेखक काशीनाथ खत्री (1849—9 जनवरी 1891, जन्मस्थान माईथान, आगरा, निधनस्थान सिरसा, (इलाहाबाद)। इन्होंने 'स्टोरीज फ्रॉम शेक्सपियर' (चार्ल्स लैम्ब) एवं 'सेल्स-कल्चर' (ब्लैकी) के अनुवादों के साथ 'इंडियन' नेशनल कांग्रेस' (संस्थापक एलेन ऑक्टोवियन ह्यूम के भाषाण का अनुवाद), 'देश की दशा और अंग्रेजी' राजनीति' (दादाभाई नौरोजी के भाषाण का अनुवाद), 'भारत त्रिकालिक दशा' (कर्नल ऑल्कॉट के भाषाण का अनुवाद) इत्यादि प्रस्तुत किए। इन्होंने 'ग्राम-पाठशाला और निकृष्ट नौकरी नाटक', 'तीन ऐतिहासिक' रूपक', 'बालविधवा-संताप नाटक' के कारण सुधारवादी युग के नाट्यकारों में भी स्थान प्राप्त किया। यह 'भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के चरित्र', 'यूरोपियन' धर्मशीला स्त्रियों के चरित्र', 'मातृभाषा की उन्नति किस विधि करना योग्य है' प्रभृति उपयोगी ग्रन्थों के लेखक भी थे।

काशीनाथ खत्री के अधिकतर ग्रन्थ साहित्येतर-विषयक हैं; किन्तु वे नाट्यकार भी हैं तथा अंग्रेजी-साहित्य के सीमांत शेक्सपीयर के नाटकों के वृत्त-प्रस्तोता भी। कालान्तर में डॉ. रांगेय राधव ने भी इनसे लाभ उठाते हुए लैम्ब की 'स्टोरीज फ्रॉम शेक्सपीयर' के अनुवाद प्रस्तुत किए जो रही हैं, क्योंकि वित्तीय दबाव की त्वरा में प्रकाश में आए।

बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवर जी

रीवाँ के प्रख्यात रामकाव्यकार महाराज विश्वनाथसिंह की पौत्री एवं सुकवि महाराज रघुराजसिंह की पुत्री तथा जोधपुरनरेश यशवंतसिंह के अनुज किशोर सिंह की पत्नी बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवर जी (निधन 1908 ई.) ने ललित कृष्णकाव्य की रचना में अच्छी सफलता प्राप्त की है, यद्यपि उनका रामकाव्य भी उल्लेख्य है। कानपुर के राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' संस्थापित रसिकसमाज में उठाई गई समस्या-पूर्ति में उन्होंने गहरी रुचि ली थी। 'अवध-विलास' एवं 'कृष्ण-विलास' उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। रचनाएँ पारम्परिक ब्रजभाषा में हैं :

1. मैं शेक्सपीयर लिखता....पर सब चलता है!
2. मैं 'इंडियन' लिखना ठीक समझता हूँ।
3. अंग्रेजी।
4. 'सिन्धुदेश की राजकुमारियों' (दाहिर-मतन के बाद का करुणवृत्त), 'गन्नीर की रानी' (भोपाल-पतन के बाद विधवा रानी का वृत्त) एवं 'लव जी का स्वप्न' (कालिदास कृत 'रघुवंशम्' पर आधृत)। शुक्ल ने ऐतिहासिक शब्द के साथ '(?)' लगाया है।
5. यूरोपियन या यूरोपीयन।

1. छोड़ि कुल-कानि और आनि गुरु लोगन की, जीवन सु एक निज जाहि हित मानी है।
दरस-उपासी प्रेम रस की पियासी जाके पद की सु दासी कहा दीठि की बिकानी है।।
श्रीमुख-मयंक की चकोरी ये सुखोरी बीच ब्रज की फिरत है है भारी दुख सानी है।
जिन्हें अति मानी चख-पतूरी सी जानी हम सों ते रारि ठानी अब कूबरी मिठानी है।।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आपके जीवन एवं साहित्य का सबसे बड़ा प्रभाव देश और हिन्दी-साहित्य में जातीयता का वर्द्धन था। आप ही ने हिन्दी में धार्मिक के स्थान पर देशभाव जातीयता का भारी प्रचार किया। — *मिश्रबन्धु (हिन्दी-नवरत्न)*

अपनी सर्वतोमुखी के बल से एक ओर तो वे पद्याकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर वंगदेश के मधुसूदनदत्त और हेमचन्द्र की श्रेणी में; एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए 'नयी भक्तमाला' गूँथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर टीकाधारी बंगला-भगतों की हँसी उड़ाते तथा स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है। साहित्य के एक नवीन युग के आदि में प्रवर्तक के रूप में खड़े होकर उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि नए-नए या बाहरी भावों को पचाकर इस ढंग से मिलना चाहिए कि वे अपने ही साहित्य के विकसित अंग से लगें। प्राचीन और नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल और मृदुल कला का संचार अपेक्षित था, वैसी ही शीतल और मृदुल कला के साथ भारतेन्दु का उदय हुआ, इसमें सन्देह नहीं। — *रामचन्द्रशुक्ल (चिन्तामणि: भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)*

आधुनिक हिन्दी के जनक के रूप में अजर-अमर, चिरस्मरणीय नाट्यकार, कुशल कवि, उत्कृष्ट निबन्धकार एवं बहुमुखी प्रतिभा के आदि-निदर्शन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885 ई.) संसार-साहित्य के महान् निर्माताओं की पंक्ति को सुशोभित करते हैं। भारतीय इतिहास के एक नवयुग में हिन्दी-निर्माता के रूप में उन्होंने वही कार्य किया जो वंकिमचन्द्र ने बांग्ला, फ़कीरमोहन सेनापति ने उड़िया, नर्मद ने गुजराती, वीरेशलिंगम् ने तेलुगू तथा सर सैयद अहमद ख़ाँ ने उर्दू के लिए किया, यद्यपि वंकिम के हिन्दू-पक्षपात, फ़कीरमोहन एवं नर्मद के गौरांग-प्रभाव, वीरेशलिंगम् की सृजनवैविध्याल्पता तथा अहमद ख़ाँ की गौरांग-चाटूक्ति, उर्दूबाज़ी इत्यादि से मुक्त होने के कारण उनका व्यक्तित्व निस्सन्देह श्रेष्ठतर था, जो अप्रतिम त्याग की ज्योति से जगमग होने के कारण अप्रतिम ही है। हिन्दुत्वप्रेमी होते हुए भी (सर सैयद अहमद ख़ाँ के सदृश) उन्होंने उदारता का परित्याग कभी नहीं किया। अंग्रेज़ों द्वारा लाई गई जागृति के प्रशंसक होते हुए भी उन्होंने (नर्मद के सदृश) मांस-प्रशस्ति इत्यादि नहीं की। सर्वथा प्रगतिशील होते हुए भी उन्होंने (मधुसूदन दत्त इत्यादि की) राम-घृणा जैसी बीमारी नहीं पाली। उनकी तुलना में एडिसन और स्टील कोरे गद्यकार लगते हैं, इमर्सन और थोरो कोरे विचारक, रूसो और वॉल्टेयर कोरे दार्शनिक, टॉल्स्टॉय कोरे आदर्शवादी और डॉस्टाएव्स्की कोरे चित्रणवादी। उनके व्यक्तित्व में त्याग एवं अस्मिता का जैसा भव्य प्रयाग दृग्गत होता है, वैसा उनके युग में विश्व के किसी साहित्यकार में नहीं, यद्यपि इनमें से रूसो एवं वॉल्टेयर ने विश्व को अधिक प्रभावित किया है, टॉल्स्टॉय एवं डॉस्टाएव्स्की उनसे श्रेष्ठतर कलाकार हैं। हिन्दी-साहित्य के निर्माताओं में खड़ीबोली-कविता के आचार्य एवं मानक-उच्चारण के जन्मदाता महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनन्तर कोई भी उनका समतुल्य नहीं, यद्यपि सृजनात्मक गौरव में वे द्विवेदी से बहुत श्रेष्ठतर हैं। उनका सम्यक् आदर भी हुआ है। राधाकृष्णदास, शिवनन्दन सहाय, ब्रजरत्नदास इत्यादि ने उनकी अनमोल जीवनियाँ लिखी हैं तथा राय कृष्णदास इत्यादि ने उनके जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है, क्योंकि जीवन की स्वस्थ-स्वच्छ बहुरांगी छटा में उनकी समता व्यक्तिवप्रधान साहित्य-गौरवस्तम्भ कबीर और निराला भी नहीं कर सकते। हिन्दी के प्रथम महान् आलोचक मिश्रबन्धु ने 'हिन्दी-नवरत्न' में प्रतिष्ठित कर उन्हें सम्मानित किया तथा मिश्रबन्धु की सामग्री को विकास प्रदान करने वाले आलोचक-सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल ने सामान्यतः 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' एवं विशेषतः 'चिन्तामणि' (भाग 1) के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' निबन्ध में उनकी बहुमुखी प्रतिभा पर विशद प्रकाश डाला। मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' एवं 'भारतेन्दु-युग' ग्रन्थों में उनका एवं उनके युगका अध्वसायपूर्ण एवं शोधमूल्यनिष्पन्न अंकन एवं आकलन किया। स्व. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल ने 'भारतेन्दु की नाट्यकला' ग्रन्थ में उनके कलाकार-रूप के सर्वाधिक सक्षम पक्ष पर विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला। हिन्दी नाटक के प्रमुख शोधकर्ता एवं विवेचक डॉ. (कुँवर) चन्द्रप्रकाशसिंह ने 'मध्यकालीन हिन्दी नाट्य-परम्परा और भारतेन्दु' में अतीतगत नाट्य-परिप्रेक्ष्य में उनका आकलन किया। श्रीयुत श्रीनारायण चतुर्वेदी ने उन पर उच्चकोटि का ग्रन्थ रचा। अनेक कवियों

एवं शोधकर्ताओं ने उनके स्पर्श से अपनी लेखनियाँ पवित्र कीं। 'भारतेन्दु पर रचित साहित्य' शोध का सुन्दर विषय बन चुका है।¹ उनके महान् व्यक्तित्व की झलक उनके ही इन कवित्त में मिल जाती है :

सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के हैं, कबिन के मीत, चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महाबाँके हम बाँकेन² सों, हरीचंद नगद दमाद अभिमानी के।।
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह, नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निमानी के।
सर बस रसिक के, दास-दास हैं प्रेमिन के, सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के।।

उनकी जिन्दादिली ऐसी थी कि होली में कमर से लक्कड़ बाँधकर फाग-कबीर गाते निकलने, कभी भिखारी बन जाते और मित्रों को चकित कर देते, एक अप्रैल को मूर्खदिवस (फुल्स डे) पर अक्सर कोई न कोई गुल खिलाते, दीवाली में इत्र के दिए जलवाते, चमेली के तेल की मालिशें चलवाते, कवियों को मुक्तहस्त धन प्रदान करते, चहेते माँगते तो अमूल्य-से-अमूल्य वस्तु तक दे डालते। मदिरापन, मल्लिका नाम बंगालिन को घर बैठाल लेना, बाइयों के कोठों पर चले जाना इत्यादि कमजोरियों के बावजूद वे न तो निराला, उग्र, मोहन 'राकेश', धर्मवीर 'भारती', राजेन्द्र अवस्थी इत्यादि के सदृश क्रमशः पागलपन, लुच्चापन, गुंडापन, पत्नी-अत्याचार, परव्यय-मदिरापानादि की सीमा तक गए और न अज्ञेय, शिवमंगलसिंह 'सुमन' इत्यादि की क्रमशः गौरव-मूलक, पदमूलक, वादमूलक नारीशोषण-वृत्ति तक: वे वैसे भी, उनकी समता इनमें से कोई नहीं कर सकता: न निराला न अज्ञेय, और न शेष-मव मिलकर! यह सत्य है कि उनके व्यक्तित्व में तुलसी और महावीरप्रसाद द्विवेदी की महत्तमस्तरीय गरिमा न थी, उनके कृतित्व में कबीर और सूर की महत्तमस्तरीय प्रतिभा न थी, तथापि अपनी अखूट सेवा और अटूट लगन के बल पर वे इनके स्तर का स्पर्श कर लेते हैं। भारत की आत्मा काशी ने जिन साहित्य-महारथियों को जन्म दिया, उनमें कबीर, प्रेमचन्द और प्रसाद के अतिरिक्त कोई उनके समकक्ष नहीं। हिन्दी को उन्होंने तन-मन-धन ही नहीं, स्वन-प्रण सृजन भी दिया। "जिन भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल" का नारा देनेवाले भारतेन्दु एक महान् नेता भी थे :

हिन्दी के उद्धार हित कष्ट अनेकन जिन सहे।
भारतेन्दु हरिचंद की उज्ज्वल कीर्ति सदा रहे।।

महान प्रभाव

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सुधारवादी युग की आत्मा थे। स्वयं उन्होंने पंडित तिवारी से हिन्दी तथा श्री नन्दकिशोर एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द से अंग्रेजी सीखी थी। सितारेहिन्द की उर्दूबाजी के समर्थक न होकर भी वे उनका आदर करते रहे: उर्दूबाजी 'सितारेहिन्द' ही बना सकती है, 'भारतेन्दु' नहीं—कालांतर में भी उसने 'सर' तेजबहादुर सपू ही पैदा किए, 'भारतरत्न' राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन नहीं। स्वयं सर्वविधि-शिक्षित भारतेन्दु ने शिक्षा के महत्व को खूब समझा था। शिक्षा-प्रसार की दिशा में उन्होंने चौखंभा स्कूल स्थापित किया जो हरिश्चन्द्र हाई स्कूल के रूप से होते हुए हरिश्चन्द्र कॉलेज के रूप में विद्यमान है तथा जिसमें भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री जैसे राष्ट्र की जनता के सच्चे प्रतीक ने शिक्षा पाई। इस स्कूल में निःशुल्क शिक्षा, निर्धन छात्रों को भोजन-वस्त्र-पुस्तकादि की जैसी उत्तम व्यवस्था थी वैसी भारतेन्दु जैसे दानी ही कर सकते थे। बारह वर्षों तक उन्होंने इसे केवल अपने बल-बूते पर चलाया, तदनन्तर स्थानीय निकाय ने यत्किंचित् दायित्व-पूर्ति भी आरम्भ की। नारी-जागरण की दिशा में उन्होंने 'बाला-बोधिनी' पत्रिका निकाली तथा चार वर्षों तक व्यय करते हुए चलाई भी। साहित्य की नव्यता-दिशा में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (जो आठ मास बाद 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' तथा कालांतर में 'नवोदिता' के रूपों में भी निकली) तथा परम्परा-दिशा में 'कवि-वचन-सुधा' के द्वारा उनकी सेवाएँ ऐतिहासिक महत्व की सिद्ध हुईं। उनकी 'कवितावर्द्धिनी सभा' हिन्दी की प्रथम साहित्यकारसंस्था मानी जा सकती है जिससे सरदार कवि, बाबा दीनदयाल गिरि, नारायण कवि, मन्नालाल द्विज कवि, अम्बिकादत्त व्यास, द्विज बलदेव, सुधाकर द्विवेदी, बाबा सुमेरसिंह (हरिऔध के गुरु) इत्यादि संबद्ध हुए। भारतेन्दु ने समय-समय पर अम्बिका दत्त व्यास, द्विज बलदेव, सुधाकर द्विवेदी इत्यादि को प्रशस्तिपत्र, पुरस्कार इत्यादि से सम्मानित भी किया। दूर-दूर तक साहित्यकारों की भारतेन्दु पर कितनी श्रद्धा थी, इसका

1. 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' (सभा) अथवा 'भारतेन्दु समग्र' (हिन्दी प्रचारक संस्थान) उनकी सृजन-शक्ति के विलक्षण स्मारक हैं।

2. वंकिमों, वक्रों को हम महावकिम, महावक्र हैं: टेढ़ों को महाटेढ़े।

अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है—‘पितृ-मातृ-सहायक-स्वामि-सखा’ एवं ‘शरणागतपाल-कृपाल-प्रभो’ प्रार्थनाओं के अमर कवि, कुशल नाट्यकार तथा महान् निबन्धकार प्रतापनारायण मिश्र (कानपुर) उन्हें अपना गुरु मानते थे, प्रसिद्ध कवि राधाचरण गोस्वामी (वृन्दावन) ‘भारतेन्दु’ शीर्षक पत्रिका निकालते थे, फ्रेडेरिक पिन्कोट (इंग्लैण्ड) उनकी प्रशस्ति में पत्र एवं कविताएँ लिखा करते थे, मुसलमान मित्रों ने उनकी उर्दू-शायरी से प्रभावित होकर उन्हें ‘शायर-मारुफ़ बुलबुले-हिन्दीस्तान’ की पदवी से सम्मानित किया था।

भारतेन्दु ने केवल स्कूल खोलकर या ‘बाला-बोधिनी’ निकालकर ही समाज एवं राष्ट्र के प्रति दायित्व-निर्वाह किया हो, ऐसा न था—उन्होंने ‘तदीय समाज’ की स्थापना की जिसके सदस्य हिंसा-त्याग एवं ‘स्वदेशी’—वस्तुव्यवहार के व्रत लेते थे। उन्होंने ‘वैश्य-हितैषिणी सभा’ की स्थापना कर हिन्दू-समाज के इस अत्यन्त प्रभावी अंग की भी सेवा की। स्थान-स्थान पर भ्रमण कर भारतेन्दु ने राष्ट्रीयता, देशप्रेम, स्वदेशी, हिन्दीप्रेम इत्यादि को जो ज्योति जलाई थी वह उन्हें भारतीय जन-जागरण का एक गौरवशाली नेता सिद्ध करती है, जिसका ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि वह स्पष्ट करती है कि तिलक एवं गाँधी के नेतृत्व को व्यापक पृष्ठभूमि प्राप्त थी: ‘प्रस्थान’ हो चुका था, इन्होंने गति दी।

हिन्दी भाषा को अभिनव रूप प्रदान करना भारतेन्दु के नेतृत्व की महत्तम उपलब्धि है। यद्यपि कविता का प्रधान माध्यम ब्रजभाषा ही रही (खड़ीबोली में केवल थोड़ी-सी हास्य-रचना ही उपलब्ध है) तथापि उसे राष्ट्रीयता, देशप्रेम, समाज-सुधार इत्यादि से संपृक्त कर नव्यता प्रदान की गई तथा गद्य का वह विशद रूप उजागर किया गया जो ‘आधुनिक गद्य’ का प्रतिष्ठापक सिद्ध हुआ। आचार्य शुक्ल ने ‘भारतेन्दु हरिश्चन्द्र’² शीर्षक निबन्ध में इस बिन्दु पर महान् प्रकाश डाला है, “उनकी भाषा में न तो लल्लुलाल³ का ब्रजभाषापन आने पाया, न मुंशी सदासुख⁴ का पंडिताऊपन, न सदल मिश्र का पूरबीपन, न राजा शिवप्रसाद⁵ का उर्दूपन और न राजा लक्ष्मणसिंह का खलिसपन और आगरापन। इतने ‘पनों’⁶ से एक साथ पीछा छुड़ाया भाषा के सम्बन्ध में बहुत ही परिष्कृत रुचि का परिचय देता है। संस्कृत-शब्दों के रहने पर भी भाषा का सुबोध बना रहना, फ़ारसी-अरबी के शब्द आने पर भी साथ-साथ उर्दूपन न आना हिन्दी की स्वतन्त्र सत्ता का प्रमाण था। उनका भाषा-संस्कार शब्दों की काट-छाँट तक ही नहीं रहा, वाक्य-विन्यास में भी वे सफ़ाई लाए।” (वैसे, इन ‘पनों’ में अधिकांश मिश्रबन्धु के ‘विनोद’ से उठाए गए हैं।)

हिन्दी-साहित्य में काव्येतर विधाओं का सृजन वस्तुतः भारतेन्दु एवं उनके मंडल के साहित्यकारों द्वारा ही आरम्भ किया गया। नाटक का प्रशस्य उद्भव एवं विकास, निबन्ध का महान् उद्भव एवं विकास, उपन्यास का जन्म, कहानी की चर्चा, आलोचना का मानचित्र, जीवनी का प्रवेश इत्यादि भारतेन्दु एवं उनके मंडल से संपृक्त हो चुके हैं। सुधारवादी युग में हिन्दी भाषा एवं साहित्य को जो व्यापक एवं उन्नत आयाम प्राप्त हुए, उनका सर्वोपरि श्रेय भारतेन्दु को है।

1. पुर्तगालियों, डचों, फ़्रांसीसियों, अंग्रेजों इत्यादि पाश्चात्यों की विदेशी लूट से क्षुब्ध अनेक भारतीयों ने ‘स्वदेशी’ अपनाने का प्रतिपादन किया। अंग्रेजों के वर्चस्व के साथ विदेशी माल की खपत बढ़ी। “धन विदेश चलि जात” (भारतेन्दु) के स्वदेशी-समर्थन के भाषण ऐतिहासिक हैं। वैसे, 1840 ई. के आसपास महाराष्ट्र में रामकृष्ण विश्वनाथ नामक सज्जन ने ‘स्वदेशी’ की विविधवत् प्रतिपादन किया जिसमें विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार भी सम्मिलित था। न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे (गोपाल कृष्ण गोखले के गुरु) ने भी ‘स्वदेशी’ का प्रतिपादन किया। (गोखले के शिष्य गाँधी ने इसे सशक्त आन्दोलन का रूप दिया)। 1894 ई. में तिलक ने ‘स्वदेशी’ के प्रतिपादन के साथ ‘बहिष्कार’ पर विशेष जोर दिया। अक्टूबर 1905 ई. में महान् स्वातन्त्र्य-वीर विनायक दामोदर सावरकर ने (फ़र्ग्युसन कॉलेज पुणे के छात्र के रूप में) विदेशी वस्तुदाह का आयोजन किया जिसमें तिलक और एस. एम. परांजपे जैसे विख्यात व्यक्ति भी सम्मिलित हुए ‘स्वदेशी’ आन्दोलन गाँधी से पूर्व ही, वस्तुतः तिलक से भी पूर्व, चल चुका था। भारतेन्दु अत्यारम्भिक महापुरुषों में परिगणित हैं।
2. डॉ. पवनकुमार के अनुसार “आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आधुनिक प्रतिभाओं का सम्यक् आकलन नहीं कर सके क्योंकि उनकी अभिरुचि भक्तिकाव्यबद्ध थी, किन्तु भारतेन्दु पर उनका श्रेष्ठ निबन्ध निस्सन्देह अपवाद है जिसमें उन्होंने आधुनिक हिन्दी के जनक के साथ पूरा न्याय किया है।
3. लल्लू जी ‘लाल’ (गुजराती नाम, ‘लाल’ उपनाम) का श्रुत प्रयोग, श्रद्धाराम फिल्लौरी (फिल्लौर विभाजित भारत का एक नगर है) को श्रद्धाराम फुल्लौरी (पता नहीं फुल्लौरी का अर्थ क्या है?) का प्रयोग भी ऐसा ही किया है। ‘एक बनरसिया होली यह भी’ उन्नाव के मासिक ‘सानुबन्ध’ के 1987 ई. के होली अंक में डॉ. दामोदर दीक्षित ने ‘1535 या 1936’ की एक ‘हवाई डाक’ के आधार पर प्रस्तुत के अनुसार आचार्य शुक्ल को ‘भाँग का गोला’ की पदवी से ‘सम्मानित’ किया गया था। वे अपने हाथ की बूटी छानने के बाद लेट कर लिखते थे तथा नाम, उपनाम, उद्धरण, स्थापन, विस्थापन, सब श्रद्धाराम फुल्लौरी बना डालना, ‘परीक्षा-गुरु’ को प्रथम उपन्यास कह मारना इत्यादि इसी के सूचक हैं।
4. मुंशी सदासुखलाल ‘नियोज का शुक्ल-बैण्ड ‘शार्टकर्ट’।
5. राजा विश्वप्रसाद सितारेहिन्द।
6. ईशाअल्लाह खाँ और उनका ‘पन’ छूट गया है।

राष्ट्रवाद

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी-कविता में राष्ट्रवाद के प्रथम कवि हैं। यह सत्य है कि हिन्दी की राष्ट्रीय कविता के इतिहास में चन्द्रवरदायी, राठौड़राज प्रिथ्वीराज, तुलसीदास, भूषण, लाल कवि, गुरु गोविन्दसिंह प्रभृति के अभिधान अपरिहार्य हैं; किन्तु यह भी सत्य है कि जो सुनिर्दिष्ट एवं व्यवस्थित राष्ट्रकाव्य भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर' इत्यादि ने रचा है, वह अभूतपूर्व है। भारतेन्दु ने मार्मिक एवं प्रेरक राष्ट्रवादी काव्य-रचना की है :

1. याही भुव'महँ होत है हरीक, आम, कपास। इतही हिमगिरि, गंगाजल, काव्य-गीत-परगास।।....
याही भारत मध्य में रहे कृष्ण-मुनि-ब्यास¹। जिनके भारत-गान सों भारत-बदन-प्रकास।।....
सोइ ब्यास अरु राम के बंस सबै संतान। ये मेरे भारत भरे, सोइ गुन रूप समान।।
सोइ वंस, रुधिरहु वही, सोई मन बिस्वास। वही बासना, चित्त वही, आसय वही बिलास।।....
सोइ भारत की आज यह भई दुर्दसा हाय! कहा करें? कित जायँ? नहिं सूझत कछू उपाय।।
2. रोवहु सब मिलिकै, आवहु भारत-भाई! हा-हा! भारत-दुर्दसा न देखी जाई।।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन, बल दीनो। सबके पहिले जेहि सभ्य बिधाता कीनो।।
सबके पहिले जो रूप-रंग-रस भीनो। सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो।।

अब सबके पीछे सोई परत लखाई। हा-हा! भारत-दुर्दसा न देखी जाई।।

हाय पंचनद! हा पानीपत! अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत।।

हाय चितौर! निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहि मैझारी।।

जा दिन तुव अधिकार नसायो। ता दिन क्यों नहि धरनि समायो।।

मैथिलीशरण का भारत-दुर्दशा-रोदन हो या प्रसाद का भारत-गौरव-गान, पंत की भारत-दयनीयता-व्यथा हो या दिनकर का प्रलय-आह्वान, सबके प्रेरक भारतेन्दु ही हैं। किन्तु भारतेन्दु के राष्ट्रवाद में जागरण का मंत्र भी उद्घोषित हुआ है, जिसने माखनलाल, नवीन, सुभद्रा, सोहनलाल द्विवेदी इत्यादि को प्रेरणा प्रदान की :

1. जागो, जागो रे भाई!
सोवत निसि बैस गँवाई, जागो-जागो रे भाई।।
निसि की कौन कहै, दिन बीत्यो, कालराति चलि आई।।
देखिं परत नहिं हित-अनहित कछु परे बैरि-बस जाई।।
2. धनि-धनि भारत की छत्रानी।
वीरकन्यका, वीरप्रसविनी, वीरवधू जग जानी।।
सती-सिरोमनि, धरम-धुरंधर, बुधि-बल-धीरज-खानी।।
इनके जस की तिहूँ लोक मैं अमल धुजा फहरानी।।
3. चलहु बीर! उठि तुरत सबै जयध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खरक खींचि, रन-रंग जमाओ।।
परिकर कसि कटि उठौ, धनुष पै धरि सर साधौ।
केसरिया बानो सजि-सजि, रन-कंकन बाँधौ।।
जौ आरजगन² एक होय निज रूप सँभारै।।

1. ऋषि पराशर एवं मत्स्य-व्यवसायी-कन्या (योजनगंधा, सत्यवती) के पुत्र महाभारतकार श्याम वर्ण के थे। अतः नाम कृष्ण रखा गया। नदी के द्वीप में जन्मे। द्वैपायन विशेषण जोड़ा गया। वेदशास्त्र-विद्वान् कथावाचकादि होने के कारण व्यास कहलाए। वासुदेव कृष्ण के समकालीन थे। अतः व्यास के रूप में ही प्रचलित हो गए। राम दो (दाशरथि, भार्गव) थे, कृष्ण दो (वासुदेव, पराशर) थे।

2. आर्यगण।

तजि गृह-कलहहि अपनी कुल-मरजाद बिचारैं ।।
 तौ ये कितने! नीच, कहा इनको बल भारी ।
 सिंह जगे, कहूँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी ।।
 पदतल इन कहँ दलहु कीट-तून-सरिस जवन-चय ।
 तनिकहुँ संक न करहु, धर्म जित तित जय निश्चय² ।।

प्रगतिशीलता

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक प्रवृद्ध एवं प्रगतिशील साहित्यद्रष्टा-साहित्यस्रष्टा थे, जिन्होंने शोषण-प्रपीड़न, धार्मिक विद्वेष, फूट इत्यादि का विरोध करते हुए 'अग्रजन्मा' होने का अतुलनीय परिचय दिया था तथा इस दृष्टि से वंकिमचन्द्र, नर्मद इत्यादि से बहुत आगे थे; उनकी तुलना में मैथिलीशरण, दिनकर इत्यादि तक 'नरम' लगते हैं। ब्रिटिशराज्य-स्तुति वंकिम, नर्मद इत्यादि से रवीन्द्र (जिन्होंने 'सर' की पदवी पाई तथा 'भारत-भाग्य विधाता' शीर्षक युवराज-गान रचा), गाँधी (जिन्होंने 'कैसरोहिन्द' का तमगा पाया) इत्यादि तक तो प्रसरित है ही, मैथिलीशरण (जय-जय पंचम जाजी), रामचन्द्र शुक्ल (विक्टोरिया-प्रशस्ति इत्यादि) तक दृग्गत होती है। केवल भारतेन्दु ने प्रखर आलोचना की है³ (यद्यपि वे भी सामयिक अंग्रेज़-स्तवन एवं शासक-सम्पर्क से शतशः च.5 मुक्त न रह पाए थे), क्योंकि विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक ऑफ़ एडिनबरा के काशी-आगमन पर स्वर्ण-रजत-मसि लिखित 'सुमनांजलि' प्रस्तुत की थी जिसमें उन्हें 'आर्यवंश का एकमात्र शुभचिंतक' बताया गया था: किन्तु भारतेन्दु की प्रगतिशीलता राष्ट्र के मूल्य पर न थी, संस्कृति के मूल्य पर न थी क्योंकि वे राष्ट्र को जानते थे, संस्कृति को जानते थे, जिसे न जानने के कारण अनेक प्रगतिवादी एवं प्रगतिशील तत्व टॉय-टॉय-फिस्स होकर रह गए। हमें यह न भूलना चाहिए कि भारत उपनिषद् एवं महाभारत (गीता जिसका एक अंग है) का देश है जिनके समक्ष मानवेन्द्रनाथ राय, डॉंगे, जयप्रकाश नारायण इत्यादि मार्क्सप्रेमियों को भी नत होना पड़ा था। मार्क्स की भारत-निन्दा सर्वथा अनुचित है यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि उसके चिन्तन ने मानवता को श्रममूलक-समता का पावन जीवन-दर्शन प्रदान कर इतिहास को जाण्वल्यमान् किया है। किन्तु प्रगति एवं समता को मार्क्स की खूंटों की बकरियाँ बनाना मानवता के साथ घोर अन्याय होगा। हिन्दी-साहित्य में प्रगति के जैसे सहज एवं अकृत्रिम स्वर कबीर, सूर, तुलसी, भारतेन्दु प्रभृति में श्रुतिगोचर होते हैं, वैसे किसी आधुनिक कवि में नहीं। कबीर ने धार्मिक एकता एवं सर्वजातिसमता के माध्यम से विशद मानवतावाद का प्रतिपादन किया, सूर ने इसे ही शुष्क उपदेशात्मकता से ऊपर उठाकर कलात्मक रूप प्रदान किया, तुलसी ने इन दोनों से आगे बढ़कर कुशासन, बेरोज़गारी, अकाल, महामारी इत्यादि का हृदयविदारक चित्रण भी किया, भारतेन्दु ने यद्यपि तुलसी-सा वैराट्य नहीं प्रदर्शित कर पाया तथापि विदेशी-शोषण, महँगाई, करातिरेक, बेरोज़गारी इत्यादि का प्रभावी उल्लेख किया है। यही कारण है कि डॉ. रामविलास शर्मा जैसे मूर्खन्य मार्क्सवादी आलोचक ने इन सब (विशेषतः तुलसी एवं भारतेन्दु) की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और देर से ही सही, महान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को भी पढ़ा-समझा। भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान का समतावाद से योग ही राष्ट्र की समस्याएँ हल कर सकता है। भारतेन्दु को प्रखर प्रगतिशीलता आज उनके समय से भी अधिक गम्भीर लगती है:

1. अंगरेज-राज सुख-साज सजे सब भारी। पै धन बिदेस चलि जात, रहै अति ख्यारी ।।
 ताहू पै महँगी काल-रोग बिस्तारी ।। दिन-दिन दूने दुख देत, ईस! हा-हारी ।।
 सबके ऊपर टिक्कस की आफति आई। हा-हा! भारत-दुर्दसा न देखी जाई ।।
2. उपजा ईश्वर-कोप से, आया भारत-बीच ।
 छार-खार सब हिंद करूँ, मैं उत्तम, नहीं नीच ।।
 मुझे तुम सहज न जानो जी। मुझे यह राक्षस मानो जी ।।

1. यवन-समूह ।
 2. "सत्यमेव जयते नानृतम्" । (उपनिषद्), "यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः ।" (रामायण), "यतो धर्मस्ततो जयः" (महाभारत) ।
 3. भीतर-भीतर सब रस चूसे । हँसि-हँसि कै तन-मन-धन मूसै ।।
 जाहिर बातन में अति तेज । क्यों सखि! साजन? ना, अंग्रेज़ ।।

3. कौड़ी-कौड़ी को करूँ मैं सबको मुहताज ।
 भूखे प्राण निकालूँ इनका, तो मैं सच्चा राज ।।
 रचि बहु विधि के बाक्य पुरानन माहिं घुसाए ।¹
 सैव, साक्त, वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए ।।
 जाति अनेकन करीं नीच अरु ऊँच बनायो ।।
 खान-पान-संबध सबन सो बरजि छुड़ायो ।।
4. तीन बुलाओ, तेरह आवैं । आपनि विपदा हमैं सुनावैं ।।
 आँखें फूटीं, भरा न पेट । ऐ सखि! साजन? ना ग्रेजुएट ।।

प्रकृति-चित्रण

हिन्दी की पुनरुत्थानकालीन कविता में विद्यापति, सूर एवं तुलसी ने प्रकृति के चित्रण में पर्याप्त रुचि दिखलाई थी; विशेषतः तुलसी ने उसके नानाआयामी चित्रण किए थे। किन्तु शास्त्रीयकालीन कविता अपने व्यापक सृजनरूप के साथ उद्दीपनात्मक एवं अलंकृत मात्र-सी होकर रह गई, कहीं-कहीं रहस्यात्मक भी हुई। अपने उद्दीपनात्मक एवं अलंकृत रूपों में अतुलनीय एवं महान् होते हुए भी, शास्त्रीयकालीन कविता प्रकृतिचित्रण की दृष्टि से नानाआयामिता-विपन्न ही रही। भारतेन्दु के सुधारवादी युग की विराट् चेतना प्रकृति की ओर भी मुड़ी। उन्होंने तथा जगमोहनसिंह इत्यादि ने सुन्दर प्रकृतिकाव्य रचा, जिसे श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी इत्यादि ने उन्नत रूप प्रदान किया तथा पंत ने पराकाष्ठा पर पहुँचाया। यद्यपि भारतेन्दु का अधिकांश प्रकृतिचित्रण प्रायः अलंकृत एवं उद्दीपनात्मक ही है, तथापि वह पर्याप्त स्वतन्त्र-स्वच्छन्द भी है:

1. नव उज्ज्वल जलधार हार-हीरक-सी सोहति ।
 बिच-बिच छहरत बूँद मध्य मुक्ता, मनि पोहति ।।
 लोल लहर लहि पावन एक पै यक इमि आवत ।
 जिमि नरगन मन विविध मनोरथ करत, मिटावत ।।²
2. फूलैंगे पलास वन आगि-सी लगाइ कूर, कोकिल कुहुकि कल सबद सुनावैगो ।
 त्यों ही सखी! लोक सबै गावैगो धमारि, धीर हरन अबीर बीर!³ सब ही उड़ावैगौ ।।
 सावधान होहु री बियोगिनी! सँभारि तन, अतन तनक ही मैं तापन ते तावैगो ।
 धीरज नसावत, बढ़ावत बिरह, काम कहर मचावत बसंज अब आवैगो ।।
3. मनभावन भइ साँझ सुहाई ।
 दीपक प्रगटि, कमल सकुचाने, प्रमुदित कुमुदिनि निसि ढिग आई ।।
 ससि-प्रकास परसित, तारागन उगन लगे नभ में अकुलाई ।
 साजत सेज सबै जुवतीजन पीतम हित हिय हेत बढ़ाई ।।
 फूले रैनि-फूल बागन मैं, सीतल पवन चली सुखदायी ।
 गौरी राग सरस सुर सब मिलि गावत कामिनि काम-बधाई ।।

भारतेन्दु के प्रकृतिचित्रण का प्रायः तात्कालिक एवं व्यापक प्रभाव रत्नाकर पर पड़ा, जिनके पिता पुरुषोत्तमदास जी भारतेन्दु के घनिष्ठ मित्र थे। उनके उत्प्रेक्षा-सन्देह-संकर रत्नाकर के 'गंगावतरण' के महान् प्रकृतिचित्रण के प्रेरक लगते हैं। 'सत्य-हरिश्चन्द्र' की गंगा तथा 'चन्द्रावली' की यमुना पर कविताएँ हिन्दी-साहित्य के प्रकृतिचित्रण में उल्लेखनीय स्थान रखती हैं।

1. प्रस्तुत पंक्तियों को सुधारवादी युग का सर्वायामी घोषणापत्र कहा जा सकता है।
 2. सूक्ष्म एवं उन्नत उदाहरण (तत्त्वतः उपमा)।
 3. सखी।

प्रेम

एक ओर राष्ट्रवाद, प्रगतिशीलता इत्यादि की नवीनता तो दूसरी ओर भक्ति, प्रेम इत्यादि को पारम्परिकता ने भारतेन्दु को ऐसा विराट् रूप प्रदान किया कि वे सार्वकालिक प्रतिभा के पुंज बन गए। प्रेम उसकी कविता का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है जो राधा-कृष्ण-पदावली, भ्रमरगीत इत्यादि से 'रत्नावली', 'प्रेमयोगिनी' इत्यादि तक प्रसरित है। उनकी सख्यभक्ति प्रेम के सर्वथा अनुकूल रही। इसके अतिरिक्त, उन्होंने, देव मतिराम, पद्माकर इत्यादि की परिपाटी पर प्रेमप्रधान कवित्त-सवैया भी रचे। अपने विशद प्रेमकाव्य में भारतेन्दु एक ओर पुनरुत्थानकालीन भक्तकवियों का स्मरण कराते हैं, दूसरी ओर शास्त्रीयकालीन कलाकार-कवियों का। उनके प्रेमकाव्य में तन्मयता के दर्शन होते हैं :

1. हमहूँ सब जानतीं लोक की चालन, क्यों इतनी बतरावती हौ?
हित जामैं हमारै बनै सो करौ, सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ।।
हरिचंदजू यामैं न लाभ कछू, हमैं बातन क्यों बहरावती हो?
सजनी! मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन को का समझावती हौ?
2. सब मिलि गाओ प्रेम-बधाई।
यहि संसार रतन यक प्रेमहि, और बादि चतुराई।।
प्रेम बिना फीकी सब बातें कहहु न लाख बनाई।
जोग, ध्यान, जप, तप, व्रत, पूजा प्रेम बिना बिनसाई।।
हाव-भाव, रस-रंग-रीति बहु, काव्य-केलि-कुसलाई।
विना लोन विंजन सो सब ही प्रेमरहित दरसाई।।
प्रेमहि सो हरि हू प्रगटत हैं, जदपि ब्रह्म जगराई।
तासों यहि जग प्रेम सार है, और न आन उपाई।।

हास्य-सम्राट्

यद्यपि गम्भीरता एवं बहुज्ञता का ठप्पा लगाने के लिए आ. शुक्ल ने 'शिष्ट हास्य' की अल्पता तथा उनके अनुकरण में डॉ. नगेन्द्र ने एतद्विषयक विपन्नता का 'आदेश' दिया है तथापि वस्तुस्थिति यह है कि हिन्दी-साहित्य हास्य की दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न है जिसे तुलसी की गहन प्रतिभा का स्पर्श प्राप्त है, सूर की चुभती प्रतिभा की 'दृष्टि' प्राप्त है, और सुखदेव, अली मुहिब खूँ 'प्रीतम', बेनी बंजीजन इत्यादि से लेकर बेढब बनारसी, काका हाथरसी, इत्यादि तक का काव्यसृजन एवं बालमुकुन्द गुप्त, गुलाबराय, भगवतीचरण वर्मा, अन्नपूर्णानन्द, गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, बरसानेलाल चतुर्वेदी, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, स्वामीनाथ पांडेय, रमेशकुमार वाजपेयी इत्यादि ने विविधतागत गद्यरचना द्वारा उसे व्यापक रूप प्रदान किया है—प्रतापनारायण मिश्र जैसे महान् निबन्धकार एवं प्रेमचन्द जैसे महान् कथाकार तक हास्य से ऊभ-चूभ हैं। हिन्दी-कवियों में भारतेन्दु को हास्य-सम्राट् कहा जा सकता है क्योंकि उनकी एतद्विषयक सृष्टि भी उन्हें 'प्रीतम', बेनी बंजीजन, बेढब, काका, गोपालप्रसाद व्यास इत्यादि से उच्च स्थिति प्रदान कर देती है। भारतेन्दु के नाटकों में हास, परिहास और व्यंग्य शोध का रोचक विषय है। कुल मिलाकर, हिन्दी-साहित्य में यदि किसी को हास्य-सम्राट् कहा जा सकता है तो वह भारतेन्दु ही हैं। वे हास्य लिखते न थे, जीते भी थे जो उनके प्रत्येक होली पर अपना ही जुलूस निकालने, प्रत्येक मूर्ख-दिवस (1 अप्रैल) पर कुछ-न-कुछ कर दिखाने, भिक्षु बनकर चकित करने, भोज इत्यादि में वैचित्र्य द्वारा सबको चमत्कृत करने¹, यह करने, वह करने, सब से स्पष्ट है। उनका हास्य-साम्राज्य अतीव विस्तृत भी है, अतीव आकर्षक भी, जिसमें उन्होंने खड़ीबोली और भोजपुरी का भी अच्छा प्रयोग किया है :

1. हिंदू-चूरन इसका नाम। बिलायत-पूरन इसका काम।।
चूरन अमले सब जो खावें। दूनी रिश्वत तुरत पचावें।।

1. ऐसे एक भोज में उन्होंने केवल मोटे अतिथि बुलाए, मोटे सेवक रखे, मोटे ही परोसे। पहले सब एक-दूसरे को घूरते रहे, बाद में ठहाके लगे।

चूरन नाटकवाले खाते। सबकी नकल पचाकर लाते।।
 चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।।
 चूरन खाते लाला लोग। जिनको अकल-अजीरन रोग।।
 चूरन खाए एडिटर जात। जिनके पेट पचै ना बात।।
 चूरन पुलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।

2. दुनिया में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा। मर जाना पर उठ के कही जाना नहीं अच्छा।।
 बिस्तर पे मिस्ल लोथ पड़े रहना हमेशा। बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा।।
 सिर भारी चीज़ है, इसे तकलीफ़ हो तो हो। पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा।।
 फ़ाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए। दुनिया नहीं अच्छी है, ज़माना नहीं अच्छा।।
 सिजदे से गर बिहिश्त मिले, दूर कीजिए। दोज़ख़ ही सही, सर का झुकाना नहीं अच्छा।।
 मिल जाय हिद खाक में, हम काहिलों को क्या? ए मीरे-फ़र्श! रंज़ उठाना नहीं अच्छा।।¹

3. अंधेर नगरी, अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा²।।
 बेस्या जोरू एक समान। बकरी, गऊ एक करि जान।।
 साँचे मारे-मारे डोलें। छली, दुष्ट सिर चढ़ि-चढ़ि बोलें।।
 प्रगट सभ्य, अंतर छलधारी। सोई राजसभा-बल भारी।।
 साँच कहैं ते पनही खावैं। झूठे बहु विधि पदवी पावैं।।
 छलियन के एका के आगे। लाख कहौ एकौ नहिं लागे।।
 भीतर होइ मलिन की³ कारो। चहिए बाहर रँग चटकारो।।
 धर्म-अधर्म एक दरसाई। राजा करै सो न्याय सदाई।।
 भीतर स्याही, बाहर सादे। राज करहिं अमले अरु प्यादे।।
 अंधाधुंध मच्यो सब देसा। मानहुँ राजा रहत बिदेसा।।⁴

परवर्ती नाट्यकारों में प्रसाद ('राज्यश्री' एवं 'विशाख') से लेकर राधेश्याम कथावाचक, चन्द्रशेखर पांडेय 'चंद्रमणि' इत्यादि तक पर भारतेन्दु के हास्य-व्यंग्य का प्रभाव शोध का विषय है।

महान् नाट्यकार

यद्यपि भारतेन्दु एक उच्चकोटि के कवि एवं एक उल्लेख्य निबन्धकार भी हैं, तथा 'काश्मीर-कुसुम' (कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' पर आधृत किन्तु अपने समय तक प्रसरित कश्मीर का इतिहास), 'महाराष्ट्र देश का इतिहास', 'बादशह-दर्पण', 'उदयपुरोदय', 'पुरावृत्तसंग्रह', 'चरितावली' (विक्रम, कालिदास, शंकर, रामनुज, वल्लभ, सूर, सुकरात, नैपोलियन इत्यदि के जीवन पर प्रकाश—कुछ की कुंडलियाँ भी), 'पंच-पवित्रात्मा' (मोहम्मद, अली, फ़ातिमा, हसन एवं हुसैन), 'कालचक्र' (विश्व की कुछ महान् घटनाओं पर प्रकाश), 'खत्रियों की उत्पत्ति', अगरवालों की उत्पत्ति', 'भक्तमाल-उत्तरार्द्ध', (नाभादास कृत अमर 'भक्तमाल' के बाद हुए भक्तों पर प्रकाश) प्रभृति रचनाएँ उनके व्यापक एवं वैश्विक इतिहास-बोध की सूचना देने में सर्वथा सक्षम हैं, उनके 'एक कहानी—'कुछ आपबीती कुछ जगबीती' और 'हम्मीर-हठ' शीर्षक अपूर्ण (वस्तुतः आरम्भ किए गए) उपन्यास उनकी बहुमुखी प्रतिभा की अतिरिक्त-सूचना देते हैं, तथापि उनके कृतित्व का सर्वाधिक गौरवशाली रूप उनके नाटकों में ही विवृत हुआ है। 'वैदिकी हिंसार हिंसा न भवति' (प्रहसन),

1. भारतेन्दु एक सफल गज़लकार भी थे। उद्धरण एकदम सजीव है। मौलवी ताज अली से उन्होंने फ़ारसी की तालीम पाई थी और 'शायर-मालूम बुलबुले-हिन्दोस्तान' माने जाते थे।
2. काजू। एक मैदा या आटा से बनी बढ़िया मिठाई।
3. या, अथवा।
4. लगता है, 'स्वतन्त्र भारत' ('पिंडारी-राज्य': डॉ. ईश्वरीप्रसाद) का राज्य-चित्र खींचा है।

‘विषस्य विषमौषधम्’ (भाण), ‘श्रीचन्द्रावली’ (नाटिका), ‘नीलदेवी’ (गीति-नाट्य), ‘भारत-दुर्दशा’ (नाट्यरासक या लास्यरूपक), ‘अंधेर नगरी’ (प्रहसन) एवं ‘पाँचवें (चूसा) पैगम्बर’ (नाटक या वक्तव्य मात्र?) शीर्षक मौलिक, ‘प्रेमयोगिनी’ (नाटिका) एवं ‘सतीप्रताप’ (गीतिरूपक) शीर्षक अपरिसमाप्त मौलिक, ‘सत्य-हरिश्चन्द्र’ (रूपक) शीर्षक अर्द्धमौलिक, ‘विद्यासुन्दर’ (नाटक), ‘धनंजय-विजय’ (व्यायोग), ‘मुद्राराक्षस’ (नाटक), ‘कर्पूरमंजरी’ (सट्टक) एवं ‘दुर्लभ बन्धु’ (नाटक) शीर्षक अनूदित, ‘रत्नावली’ (नाटिका) एवं ‘पाखंड-विडम्बना’ (महाकवि कृष्ण मिश्र कृत विश्वविख्यात ‘प्रबोध-चन्द्रोदय’ नाटक पर आधृत) शीर्षक अपरिसमाप्त अनूदित, ‘भारत-जननी’ (ओपेरा) शीर्षक संशोधित अठारह नाट्य कृतियाँ अपने परिसीमित गुण एवं विराट् परिमाण में उन्हें विश्वस्तरीय नाट्यकार सिद्ध करती हैं। ‘सबै जाति गोपाल की’, ‘वसंतपूजा’, ‘ज्ञाति-विवेकिनी सभा’ एवं ‘संडभंडयो संवाद’ शीर्षक-रचनाएँ एवं ‘रणधीर-प्रेममोहिनी की प्रस्तावना’, ‘बन्दर-सभा’, ‘श्रीरामलीला’ शीर्षक विविध-रचनाएँ उनके नाट्यकार की परिशिष्ट-कृतियाँ मानी जा सकती हैं। ‘नाटक अथवा दृश्यकाव्य’ शीर्षक महान् सूचनासम्पन्न निबन्ध तथा ‘मुद्राराक्षस’ की स्फीत भूमिका (उपसंहार भी) उनको आधुनिक-नाट्याचार्य भी सिद्ध करते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने उनकी शेक्सपीयर से तुलना की है। भारतेन्दु जनवादी नाट्यकार हैं, जबकि प्रसाद एवं लक्ष्मीनारायण मिश्र अभिजातवादी प्रतीत होते हैं तथा इतर श्रेणी के मोहन राकेश साम्यवादी होते हुए भी बुद्धिजीवी-वंदी। यद्यपि अपनी गहन सांस्कृतिक गरिमा, आने विशद एवं एकनिष्ठ ऐतिहासिक फलक, अपनी वंकिम कला इत्यादि के कारण प्रसाद हिन्दी के श्रेष्ठतम नाट्यकार माने जा सकते हैं, तथापि भारतेन्दु के ‘प्रस्थान’ कार्य एवं अनन्त आयाम उन्हें प्रथमस्थानिक ही बनाए रखेंगे, क्योंकि समाहार-दृष्टि से वे पीछे नहीं पड़ते। लक्ष्मीनारायण मिश्र का स्थान आधुनिकता-बोध एवं रचना-वैविध्य के कारण पर्याप्त उच्च है किन्तु वे भारतेन्दु की ‘प्रस्थान’-प्रतिभा एवं प्रसाद की वंकिम-प्रतिभा की समता नहीं कर पाते। अन्य कोई नाट्यकार भारतेन्दु-समतुल्य नहीं।

भारतेन्दु के नाटकों में लम्बे-लम्बे भाषण और लम्बी-लम्बी स्वतन्त्र कविताएँ पुरातनता को भी पुरातन करती लगती हैं, किन्तु उनकी ‘वस्तु’ में आधुनिकता (बौद्धिकता) संपृक्त है। गद्य की खड़ीबोली और पद्य की ब्रजभाषा द्वैतमयी है! यों, भास और कालिदास जैसे मूर्द्धन्य नाट्यकारों में गद्य की प्राकृत और पद्य की संस्कृत ऐसे द्वैत को सर्वथा विचित्र नहीं लगने देती। वे सुधारवादी नाट्यकार हैं। उनका उद्देश्य धर्मपाखंड एवं विषमता पर प्रहार है।

भारतेन्दु कोरे नाट्यकार न थे, अभिनेता भी उच्चकोटि के थे। एक बार ‘सत्य-हरिश्चन्द्र’ नाटक के नायक का अभिनय कर रहे थे; शैव्या-प्रकरण पर दर्शकों में आसीन बलिया के कॉलेक्टर की मेम बेजरह रो पड़ी! (‘लोकशिक्षक, जयपुर—30 सितम्बर, 2005 अंक में डॉ. भवानीलाल)।

श्रेष्ठ निबन्धकार

‘नाटक या दृश्यकाव्य’ जैसे काव्यशास्त्रीय, ‘वैष्णवता और भारतवर्ष’ जैसे विचारात्मक, ‘एक अद्भूत अपूर्व स्वप्न’ जैसे कथात्मक (काल्पनिक) एवं अनेक ऐतिहासिक निबन्धों के प्रणेता के रूप में भारतेन्दु का स्थान विधा के इतिहास में अत्यन्त उच्च ही माना जाएगा। निस्सन्देह, वे बालकृष्ण भट्ट के सदृश औपचारिक-निबन्ध एवं प्रतापनारायण मिश्र के सदृश अनौपचारिक-निबन्ध के प्रतिनिधि-निबन्धकार नहीं हैं किन्तु इनके अनन्तर तथा प्रेमघन के साथ-साथ अपने युग के एक उत्कृष्ट निबन्धकार अवश्य हैं। जहाँ तक अध्ययन की स्फीति का सम्बन्ध है, उनकी समता उनके युग का कोई निबन्धकार नहीं कर सकता। उनके निबन्ध सुधारवादी युग के दर्पण हैं; जिनमें भारतीय गौरव की प्रतिष्ठा, देशभक्ति, पाखंड-खंडन, सुधार-प्रतिपादन प्रभृति तत्व यथास्थान स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते रहते हैं। भाषा का रूप सर्वथा स्फीत एवं स्तर सर्वथा सन्तोषजनक है।

आकलन

अपने सर्वस्व-न्याग, अपनी सर्वतोमुखी सेवा, अपनी अंसाधारण प्रतिभा इत्यादि के कारण भारतेन्दु का व्यक्तित्व तुलसी, सूर, कबीर और आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के साथ-साथ हिन्दी-साहित्य के समग्र इतिहास में सर्वोच्चवर्गीय सिद्ध होता है, यद्यपि उनका कृतित्व विलक्षण होते हुए भी तद्वत् नहीं है। अपनी मौलिक कविता में वे उत्कृष्ट नहीं हैं। उनके नाटक अच्छे हैं, किन्तु उनमें एस्काइलस, सोफोक्लीज,

शेक्सपीयर, मोलियर, इब्सन, शॉ अथवा भारत के भास, कालिदास, भवभूति, कृष्ण मिश्र अथवा हिन्दी के प्रसाद का जैसा कला-वैभव नहीं दृग्गत होता। उनका निबन्धकार-रूप बस उल्लेखनीय है। किन्तु उनका कृतित्व हिन्दी के महतोमहीमान् निर्माता, सर्वघोषित 'हिन्दी के प्रथम आचार्य' महावीरप्रसाद द्विवेदी के कृतित्व से बहुत अधिक श्रेष्ठ, व्यापक एवं महत्वपूर्ण है, जो उन्हें प्रमुखतः केवल साहित्य-निर्माता एवं साहित्य-नेता मात्र नहीं रहने देता। इसका यह अर्थ नहीं कि वे द्विवेदी से महत्तर हैं। इसका अर्थ केवल इतना है कि वे एक महान् साहित्य-निर्माता एवं साहित्य-नेता के साथ-साथ बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न एक उच्चस्तरीय साहित्यकार भी थे। उनकी प्रतिभा वंकिम से अधिक सन्तुलित एवं बहुमुखी थी, नर्मदा से अधिक संयमित एवं गम्भीर थी, फ़क़ीरमोहन सेनापति से अधिक सरस एवं जीवन्त भी, अहमद ख़ाँ से बहुत अधिक मानवीय एवं बहुत-बहुत अधिक सृजनात्मक थी। भारतेन्दु द्विवेदी के सदृश साहित्य पर आकाशवत् छाए तो नहीं किन्तु उसे ज्योतित एवं शीतल अवश्य किया। प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, फ़्रेडेरिक पिंकॉट, राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक, रत्नाकर, मैथिलीशरण, प्रसाद, पंत, दिनकर, बच्चन, प्रभाकर माचवे, गंगाप्रसाद पांडेय इत्यादि कवियों ने उनकी प्रशस्ति में इतना काव्यसृजन किया है कि 'भारतेन्दु पर रचित कविताएँ' एक श्रेष्ठ संकलन बन सकती हैं तथा उनका विवेचन एक श्रेष्ठ लघुप्रबन्ध। उनका साहित्य-निर्माता एवं साहित्य-स्रष्टा का द्विविध गौरव उन्हें विश्व के साहित्यिक इतिहास की एक अजर-अमर विभूति सिद्ध करता है:

जब लौं भारत-भूमि आरज-कुल आसा।
जब लौं आरज-धर्म माहिं आरज-विस्वासा।।
जब लौं गुन-आगरी नागरी आरज-बानी।
जब लौं आरज-बानी के आरज अभिमानी।।
तब लौं तुम्हारो नाम थिर चिरजीवी रहिहै अटल।
नित चंद-सूर सम सुमिरिहैं हरचंदहु सज्जन सकल।। —श्रीधर पाठक

ग्रीयर्सन¹

आज हिन्दी संसार के दर्ज़नों देशों के सैकड़ों विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है, जिससे संबद्ध विषयों पर अनेक शोधकार्य हो रहे हैं। हिन्दी-प्रेमी की विश्वकथा का समारम्भ फ़्रांस के गार्सा द तासी से हुआ, जिनके 'इस्त्वार दल ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ हिन्दुस्तानी' (हिन्दी-उर्दू साहित्यों का इतिहास—जिसके हिन्दी-भाग का डॉ. लक्ष्मीसागर वाण्ये ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' शीर्षक अनुवाद किया है) के प्रथम एवं द्वितीय खण्ड पेरिस में क्रमशः 1839 ई. एवं 1847 ई. में प्रकाशित हुए। ग्रेट ब्रिटेन के फ़्रेडेरिक पिन्कॉट (1836-1896 ई.) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में मित्रों में थे, प्रबल हिन्दी-समर्थक थे, हिन्दी में गद्य-पद्य दोनों लिख लेते थे। यह लखनऊ में दिवंगत हुए। तीसरा बड़ा नाम ग्रेट ब्रिटेन के जॉर्ज अब्राहम ग्रीयर्सन (1851-1941 ई.) का है जिनका एकादश-खण्डीय अतिवृहत् 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इंडिया' (भारत का भाषाई सर्वेक्षण) अतुलनीय शोधमहाग्रन्थ है तथा जिनका शिवसिंह के 'सरोज' पर आधृत 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ नॉर्डर्न हिन्दुस्तान' (हिन्दी साहित्य का इतिहास—डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' के भ्रामक शीर्षक से इसका अनुवाद किया है) एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है जो 1889 ई. में प्रकाशित हुआ। इटैली के डॉ. टेसीटैरी (लुइजिपिओ तैस्सीतोरी 13 दिसम्बर 1889—22 नवम्बर 1991 ई.) ने 1911 ई. में तुलसी पर फ़्लोरेंस विश्वविद्यालय में शोध किया। यह सज्जन हिन्दी में पत्र-व्यवहार करते थे तथा बीकानेर में दिवंगत हुए²। ग्रेट ब्रिटेन के डॉ. एन कार्पेन्टर ने 1918 ई. में लन्दन विश्वविद्यालय में शोधकार्य किया। रूस के महान् भाषाविद् ए. वारान्निकोव ने दस वर्ष की साधना के अनन्तर 1948 ई. में रामचरितमानस का रूसी-अनुवाद प्रकाशित कराया तथा यह सर्वोच्च सम्मान ऑर्डर ऑफ़ लेनिन³ से विभूषित किए गए। 'द रामायना ऑफ़ तुलसीदास' के अमर अनुवादक एट्किन्स ने इन्हें आदर्श बनाया। महान् ए. वारान्निकोव के पुत्र पी. वारान्निकोव³ हिन्दी-प्रेमी हैं। चेलीशेव, डॉ. (श्रीमती) लुबोव विचिहिना इत्यादि रूसी हिन्दीप्रेमी हैं। 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' (1950 ई.) के प्रख्यात शोधकर्ता तुलसी-पंडित बेल्जियम के पादरी कामिल बुल्के (1908-1984) का नाम तो मूल हिन्दी में लिखने वाले विदेशियों में अग्रगण्य है ही। यह भारतीय हो गए थे। जर्मनी के डॉ. लोथार

1. 'जी आर आई एस ओ एन' सी ग्रीयर्सन या ग्रायर्सन ही बनता है, प्रचलित ग्रीयर्सन (जो आर आई वाई ए आर एस ओ एन) ग़लत है।
2. कानपुर के मोती झील स्थित सुरम्य तुलसी-उद्यान में टेसीटैरी की मूर्ति लगी है। तुलसी, टण्डन, गुप्त इत्यादि की भी मूर्तियाँ हैं।
3. मैंने इनका हिन्दी-भाषण सुना था जो उच्चारण-समस्या के बावजूद स्तरीय था।

लूम्सेने, हैंस बर्त बस्तर इत्यादि, मेक्सिको के ए. एल. वैशम, स्वीडेन की लीनार्ड पेसर्न, कॅनेडा के डॉक्टर क्रिस्टोफर आर. किंग, ऑस्ट्रेलिया के आर. के. बार्ज, जापान के प्रो. क्यूयादीई ('जापानी-हिन्दी कोष', 'हिन्दी-जापानी कोष', 'हिन्दी-वार्तालाप' इत्यादि के प्रस्तोता) प्रभृति भी उल्लेखनीय विदेशी हिन्दी-सेवी हैं। चेक गणराज्य के डॉ. ओदोलेन स्मेकल हिन्दी के विद्वान् एवं संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के प्रेमी तो हैं ही, खड़ीबोली के प्रथम व्यवस्थित एवं सुनियोजित यूरोपीय कवि भी हैं। हिन्दीसेवी विदेशियों की संख्या संप्रति (1997 ई.) एकसहस्र से अधिक है—हिन्दी जानने वाले विदेशी तो लाखों में हैं।

ग्रीयर्सन की हिन्दी-साहित्येतिहास में कृष्ण-बाललीला को क्राइस्ट-बाललीला से प्रभावित सिद्ध करने, दक्षिण के आलवार-भक्तों पर ईसाई प्रभाव प्रभृति स्थापनाएँ उस गौरांग-श्रेष्ठताग्रन्थ की उद्भावनाएँ हैं, जिन पर विचार करना अबब कालातीत हो चुका है—अब गौरांग-वर्चस्व का नहीं मानव-समाज का युग चल रहा है। अकबरी दरबार एवं विक्टोरिया पर अध्यायों का लेखन समीचीन नहीं क्योंकि कृतित्व-दृष्टि से इनका प्रासंगिक मूल्य ही सिद्ध होता है। ग्रीयर्सन का मैथिली प्रभृति विभाषाओं को हिन्दी से पृथक् करना अतिसैद्धान्तिक अर्थात् अव्यावहारिक है, जिससे भेदभाव की गन्ध आती है। किन्तु संक्रान्तिकाल का चारणकाल नामकरण करना, विद्यापति कृत अपभ्रंश-काव्य 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका' का प्रथमोल्लेख (जिसका परिणाम महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री की नेपाल-यात्राजन्य 'कीर्तिलता' की प्राप्ति है), रामगुलाम द्विवेदी द्वारा प्रतिपादित 1632 ई. (1589 वि.) को तुलसी-जन्मवर्ष के रूप में मान्य करना, कबीर पर गम्भीर विचार, तुलसी की महान् आलोचना, शास्त्रीकालीन कविता (विशेषतः बिहारी) की समुचित प्रशस्ति इत्यादि के कारणों से ग्रीयर्सन हिन्दी-साहित्येतिहास के एक अभिन्न अंग बन चुके हैं। उनके हिन्दीप्रेमी की प्रशस्ति अतिरंजित है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे एक विश्वस्तरीय महान् भाषाविद् थे जो एक हिन्दी-साहित्येतिहासकार (अंग्रेजी) के रूप में स्मरणीय रहेंगे।

श्रीनिवास

सुधारवादी युग के एक प्रतिभाशाली नाट्यकार श्रीनिवासदास (1851-1887 ई.) पर मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में लिखा है: "यह महाशय अजमेरा वैश्य लाला मंगीलाल के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् 1908 ई. कार्तिक सुदी परिवा को मथुरा में हुआ था। राजा लक्ष्मणदास की ओर से आप उनकी दिल्लीवासी कोठी के संचालक और एक बड़े रईस थे।भारतेन्दु के अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी में उत्कृष्ट नाटक लिखे हैं। 'तृप्तासंवरण', 'संयोगिता-स्वयंवर' तथा 'रणधीर-प्रेममोहिनी' नामक इन्होंने तीन^२ नाटक ग्रन्थ लिखे, जिनका हिन्दी-पठित समाज में पूर्ण समादर हुआ, विशेषतया अन्तिम दोनों का। इनके अन्तिम नाटक के अनुवाद उर्दू और गुजराती में हुए और अभिनीत भी हुए। इन्होंने 'परीक्षा-गुरु' नामक एक उपन्यास भी लिखा, पर वह ऐसा अच्छा नहीं है, जितने कि इनके अन्य ग्रन्थ हैं।" मिश्रबन्धु ने इन्हें तोष-श्रेणी का उत्कृष्ट कवि भी माना है। यह भी एक संयोग था कि इनके 'संयोगिता-स्वयंवर' की भारी प्रशंसा की प्रतिक्रिया में 1886 ई. में बालकृष्ण भट्ट ने 'प्रदीप' तथा प्रेमधन ने 'आनन्द-कादाम्बिनी' में 'सच्ची समालोचना' का श्रीगणेश किया। रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में लिखा है: "अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले-पहल हिन्दी में लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षा-गुरु' ही निकला था।" शुक्ल यहाँ ग़लत लिख गए हैं क्योंकि 'परीक्षा-गुरु' 1882 ई. में प्रकाशित हुआ था, जिससे पूर्व 1877 ई. में श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती' निकल चुका था, किन्तु वस्तुतः हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास पं. गौरीदत्त कृत 'देवरानी-जैठानी की कहानी' था, जो 1870 ई. में ही प्रकाशित हो चुका था।^१ मैंने इसके मुखपृष्ठ की चित्रप्रति देखी है। खेद है कि प्रायः सभी परवर्ती साहित्येतिहासकार एवं कोशकार लकीर के फ़कीर बने रहे। 1983 ई. में प्रकाशित डॉ. नगेन्द्र इत्यादि द्वारा संपादित 'भारतीय साहित्य कोश' में "अधिकांश आलोचकों के अनुसार" शब्द देखकर हिन्दी-विद्वानों की जड़ता पर क्लेश हुआ क्या 'अधिकांश आलोचक' इतिहास के प्रकट तथ्य बदल देंगे? इससे तो डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा संपादित पूर्ववर्ती 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 ही भला जिसमें डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने श्रद्धाराम 'फुल्लौरी' कृत 'भाग्यवती' का स्मरण तो किया है! आश्चर्य तो यह है कि शुक्ल ने अन्यत्र 'भाग्यवती' तथा 'देवरानी-जैठानी' का उल्लेख भी किया है!

1. 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने जन्मवर्ष 1850 ई. दिया है, जो ग़लत लगता है—शुक्ल की अनुकृति यहाँ भी ग़लत हो गई है।
2. आरम्भिक एवं शिथिल 'प्रह्लाद-चरित' नाटक लेखक की मृत्यु के बाद 1895 ई. में छपा।
3. शुक्ल ने 'फुल्लौरी' ग़लत लिखा है।
4. दे. 'दिवंगत हिन्दीसेवी' (क्षेमचन्द 'सुमन')।
5. शिवप्रसाद सिंह को यह तक ज्ञात नहीं कि फिल्लौर अब भी (विभाजित) भारत में ही है!

श्रीनिवासदास को सुधारवादी युग के एक उत्कृष्ट नाट्यकार एवं हिन्दी के तृतीय उपन्यासकार के रूपों में सदैव याद किया जाता रहेगा। 'समालोचना' के उद्भव-सन्दर्भ में 'संयोगिता-स्वयंवर' के कारण भी वे अविस्मरणीय हैं। श्रीनिवासदास युगसजग साहित्यकार न होकर एक सहृदय लेखक मात्र थे। सुधारवाद या राष्ट्रवाद के प्रति उनमें विशेष ललक न थी। नाट्यकार के रूप में मिश्रबन्धु ने उनकी जो स्तुति की है, वह अतिरंजित हो सकती है। उपन्यासकार के रूप में शुक्ल ने उनकी जो 'प्रतिष्ठा' की है, वह गलत है। किन्तु उसमें सन्देह नहीं कि वे ऐतिहासिक महत्व के नाट्यकार भी हैं, उपन्यासकार भी। डॉ. श्रीकृष्णलाल ने 'श्रीनिवासदास-ग्रन्थावली' का संपादन कर उनकी प्रतिभा को उजागर किया है।

श्रीनिवास भारतेन्दु, मैथिलीशरण, प्रसाद प्रभृति के सदृश अतिधनिक-परिवार के रत्न थे। व्यापारेवसतिलक्ष्मी! धनवान् व्यापारी श्रेष्ठी कहलाते थे। सेठी, सेठ, सेठना इत्यादि शब्द आज भी उनका प्रभाव बताते हैं। धर्म-अर्थ-काम-कोश में धन या व्यापार पुरुषार्थ का एक अप्रतिवार्य-अपरिधर्म अंग है। व्यापार का उद्देश्य मानवसेवा है। प्रो. मेहता ने अर्थशास्त्र को लोकहित का माध्यम बताया है। मार्शल, अमर्त्य सेन इत्यादि पर उनका प्रभाव पड़ा है। व्यापारियों ने सभी दिशाओं में राष्ट्र की महान् सेवाएँ की हैं। साहित्य भी उनका ऋणी है।

प्रेमघन

सुधारवादी युग के एक प्रख्यात ब्रजभाषा-कवि, नाट्यकार एवं निबन्धकार, अलंकृत-गद्यकार, मासिक 'आनन्द-कादम्बिनी' एवं साप्ताहिक 'नागरी-नीरद' के संपादक, आदर्शवादी युग में आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभाववश 'आनन्द-अरुणोदय' एवं 'भयंक-महिमा' की खड़ीबोली-कवि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तृतीय (कलकत्ता) अधिवेशन (1921 ई.) के अध्यक्ष तथा अपने समय के एक प्रतिष्ठित कांग्रेसी² उपाध्याय एवं पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (1855-1923 ई.)³ एक बहुरंगे व्यक्ति एवं साहित्यकार थे। उनकी बात-बात में रईसी टपकती थी, किन्तु वे 'जीर्ण जनपद' के मर्मस्पर्शी जनकवि थे। वे ब्रिटिश शासन के प्रशंसक थे (वंकिम, नर्मद, फ़कीरमोहन सेनापति, वीरशिलिंगम, सर सैयद अहमद ख़ाँ एवं भारतेन्दु प्रभृति प्रायः समग्र सुधारवादी युग के साहित्य-निर्माताओं से सदृश ही—खेद है कि आज इस विराट् एवं निर्विवाद ऐतिहासिक सत्य के साथ अन्याय करते हुए धेलहा इतिहासकार मुस्लिम राज्य का गुणगान कर रहे हैं—सच्ची धर्मनिरपेक्षता वरेण्य है किन्तु वह असत्य के बल पर नहीं स्थापित की जा सकती), किन्तु प्रखर देशभक्त भी। यद्यपि गोंडा जनपद के दत्तापुर⁴ एवं शीतलगंज⁵ से भी उनका सम्बन्ध रहा, किन्तु वे उस मीरजापुर (मिर्ज़ापुर⁶) की ही विभूति माने जाएँगे जिससे मंझन (चरणाद्रि या चुनार), देवकीनन्दन खत्री, रामचन्द्र शुक्ल एवं हजारीप्रसाद द्विवेदी भी संबद्ध रहे हैं। मीरजापुर में प्रेमघन-मार्ग उनका स्मारक है।

हिन्दी के सर्वाधिक उपयोगी एवं सामग्रीसम्पन्न साहित्येतिहास 'विनोद' में मिश्रबन्धु ने प्रेमघन के 29 ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिसमें 'भारत-सौभाग्य' नाटक, 'प्रयाग-रामगमन' नाटक, 'वारांगना-रहस्य' महानाटक, 'वृद्धविलाप', प्रहसन नाट्य-रचनाएँ,

1. दूदर्शितापूर्ण अध्यक्षीय भाषण के कुछ वाक्य आज भी मनीय एवं माननीय हैं: 'जब तक आपकी भाषा की पूछ न होगी, उसका कोई ग्राहक न होगा—क्यों कोई उसमें योग्यता बढ़ाने के लिए व्यर्थ श्रम करेगा?' 'भाषा को सरल बनाएँ और उसमें भाषापन लाएँ।' 'हिन्दी में एक नहीं कोटि लाल हैं, ये यदि अपनी ललाई को वचाना चाहते हैं तो मातृभाषा हिन्दी की तन-मन-धन से सेवा करें।'
2. 1889 ई. के कांग्रेस अधिवेशन पर 'भारत-सौभाग्य' नाटक खेला गया। आ. शुक्ल (जिनके प्रेमघन से निकट सम्पर्क थे) 1888 ई. लिखते हैं, किन्तु 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रवीन्द्र 'भ्रमर' ने 1889 ई. लिखा है जो ठीक लगता है, क्योंकि अधिवेशन प्रायः वर्षान्त मास में होते थे तथा प्रायः माघ से नया ई. सन् लग जाता है।
3. जन्म भाद्र कृष्ण 6 सं. 1912 वि., निधन फाल्गुन शुक्ल 14 सं. 1979 वि.। माघ-फाल्गुन में वि. सं. से 57 वर्ष घटाकर ई. सन् निकालने का नियम गलत हो जाता है। अतः निधन 1922 ई. में नहीं जैसा कि 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रवीन्द्र 'भ्रमर' ने लिखा है, अपितु 1923 ई. में जैसा कि डॉ. नगेन्द्र संपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने लिखा है। 57 साल घटाने की आँखमूँद-परिपाटी से प्रेमघन का सही निधनवर्ष (1923 ई.), शुक्ल का सही निधनवर्ष (1941 ई.), प्रसाद का सही जन्मवर्ष (1890 ई.), निराला का सही जन्मवर्ष (1897 ई.) इत्यादि गलत हो जाते हैं।
4. डॉ. रवीन्द्र 'भ्रमर' के अनुसार प्रेमघन का जन्मस्थान। 'दुर्दशा दत्तापुर' ग्रन्थ के कारण भी विचारणीय।
5. मिश्रबन्धु के अनुसार। वैसे, कालान्तर में रहे।
6. मिश्रबन्धु ने ईषत्-स्पष्टतः एवं शुक्ल ने स्पष्टतः जन्मस्थान लिखा है। मिर्ज़ापुर वस्तुतः मीरजापुर है। पंडा दुर्गादत्त उपाध्याय 'दत्त' के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि 'मीर' (संस्कृत) का अर्थ समुद्र भी होता है। अतः मीरजा का अर्थ लक्ष्मी हुआ और मीरजापुर का लक्ष्मीपुर।

‘भारत-भाग्योदय’, काव्य, ‘कजली-कादम्बिनी’, ‘शोकाश्रु-विन्दु’, ‘आत्मोल्लास’ काव्य रचनाएँ, ‘स्वभावविन्दुसौन्दर्य’ गद्यकाव्य एवं ‘कान्ताकामिनी’ उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने ‘कंसवध’ महाकाव्य लिखना आरम्भ किया था जो अधूरा रह गया। विशाल ‘प्रेमघन-सर्वस्व’ उनकी विशाल बहुमुखी प्रतिभा को निर्विवादी बना देता है। निस्सन्देह, प्रेमघन एक उच्चकोटि के कवि एवं उल्लेख्य नाट्यकार तो थे ही, उपन्यास, गद्यगीतकार एवं आलोचक भी थे। डॉ. पवनकुमार तो उनके निबन्धकार-रूप के प्रशंसक भी हैं। बालकृष्ण भट्ट (‘प्रदीप’—संपादक एवं निबन्धकार) के साथ-साथ उन्होंने अपनी ‘आनन्द-कादम्बिनी’ में श्रीनिवासदास के ‘संयोगिता-स्वयंवर’ नाटक की ‘सच्ची समालोचना’ लिखकर ऐतिहासिक महत्व प्राप्त किया था।

प्रेमघन ने अपनी समग्र कृतियों में सुधारवाद, देशाभक्ति, दीनदलित-संवेदन इत्यादि सामयिक प्रवृत्तियों को उजागर किया है। भारतेन्दु एवं प्रतापनारायण मिश्र के सदृश ही, वे कोरे साहित्यकार मात्र न होकर देशसेवक-हिन्दीसेवक महापुरुष भी थे। उनके सृजन में पारम्परिक कला एवं नव्य दीनसंवेदन दोनों का ही स्तर बहुत ऊँचा है। वेश्यावृत्ति-उन्मूलन, वृद्धविवाह-विरोध, शोषण, प्रपीड़न, राष्ट्रव्यापी आलस्य इत्यादि के विरुद्ध उनके आह्वान आज भी प्रेरक लगते हैं। वे युग-सजग साहित्यकार थे। ‘प्रेमघन की कृतियों में सामाजिक इतिहास’ शोध का विषय है।¹ उनकी बहुमुखी प्रतिभा का साक्षात्कार कराने वाले कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. बगियान वसंत बसेरो कियो; बसिए, तेहि त्यागि तपाइए ना।
दिन काम-कुतूहल के जो बने, तिन बीच बियोग बुलाइए ना॥
घन प्रेम बढ़ाय कै प्रेम अहो! बिथा बारि बृथा वरसाइए ना।
चित चैत की चौंदनी चाह भरी, चरचा चलिबे की चलाइए ना॥
2. पटरानी नृप सिंधु की त्रिपथगामिनी नाम। तुहिं भगवति भागीरथी! बारहिं बार प्रनाम॥
वारहिं बार प्रनाम जननि! सब सुख की दायिनि। पूरनि भगतनि मनोरथनि, अतिसहज सुभायिनि॥
ब्रह्मलोकहू लौं करि निज अधिकार समानी। पूरहु मम मन आसं सिंधु नृप की पटरानी॥
3. उठहु आर्य-संतान! सकल मिलि अब न बिलंब लगावौ।
ब्रिटिस राज्य स्वातन्त्र्यमय समय, बैठि व्यर्थ गँवावौ॥
4. दोनों दलों की दलादली में दलपति का विचार भी दलदल में फँसा रहा।

5. दिव्यदेवी श्री महाराणी बड़हर लाख झंझट झेल और चिरकाल पर्यन्त बड़े-बड़े उद्योग और मेल से दुःख के दिन सकेल, अचल कोर्ट का पहाड़ ढकेल² फिर गद्दी पर बैठ गई। ईश्वर का भी क्या खेल है कि कभी तो मनुष्य पर दुःख की रेलपेल और कभी उसी पर सुख की कुलेल है।

6. गर्चे कि इस सफ़हे की कुछ स्पीचें ‘मरचेंट ऑफ़ वेनिस’ से ली गईं। पहिले तो मैं यह पूछता हूँ कि विवाह में मुद्रिका-परिवर्तन की रीति इस देश की नहीं बल्कि यूरोप की है। मैंने माना कि आप शकुन्तला को दुष्यन्त के मुद्रिका देने का प्रमाण देंगे पर वो तो परिवर्तन न था किन्तु महाराज ने अपना स्मारक चिह्न दिया था।³

प्रतापनारायण मिश्र⁴

पं. प्रतापनारायण मिश्र में बहुत बातें बाबू हरिश्चन्द्र की सी थीं। कितनी ही बातों में यह उनके बराबर और कितनी ही में कम थे, पर एक-आधा में बढ़कर भी थे। जिस गुण में वह कितनी ही बार हरिश्चन्द्र के बराबर हो जाते थे, वह उनकी काव्यत्व-शक्ति और सुन्दर भाषा लिखने की शैली थी। हिन्दी गद्य और पद्य के लिखने में हरिश्चन्द्र जैसे तेज़ तीखे और बेधड़क थे, प्रतापनारायण भी वैसे ही थे। —बालमुकुन्द गुप्त (गुप्त-निबन्धावली)

-
1. ‘भारतेन्दु की कृतियों में सामाजिक इतिहास’ एवं ‘प्रतापनारायण मिश्र की कृतियों में सामाजिक इतिहास’ जैसे विषय भी अतीव प्रभावी होंगे।
 2. न्याय-व्यवस्था पर व्यंग्य। युगलकिशोर शुक्ल का स्मरण आता है!
 3. ‘संयोगिता-स्वयंवर’ नाटक (श्रीनिवासदास) की ‘समालोचना’ से।
 4. एक अन्य स्व. प्रतापनारायण मिश्र भी हैं जिन्होंने ‘क्या कहती सरयू-धारा’ ग्रन्थ के रूप में अयोध्या का ललित साहित्यिक इतिहास लिखा है। स्व. प्रतापनारायण श्रीवास्तव (कानपुर) प्रसिद्ध उपन्यासकार थे, स्व श्री प्रतापनारायण वर्मा मासिक ‘अवध-पुष्पाञ्जलि’ (लखनऊ) के संपादक थे।

हिन्दी पर इनका विशेष प्रेम था और जातीयता¹ तो इनमें कूट-कूटकर भरी थी। बड़े ही गोभक्त थे।... यह उच्चकोटि के कवि और बड़े ही जिन्दादिल इंसान थे। प्रतिभा इनकी विलक्षण थी। —मिश्रबन्धु (विनोद)

इस क्षेत्र² में सबसे अधिक उत्कृष्ट कार्य पं. प्रतापनारायण मिश्र का माना जाएगा। उनके समकालीन तथा परवर्ती भी कोई उनके समकक्ष नहीं पहुँचते। विनोद की मात्रा के साथ-साथ प्रतापनारायण जी में स्वगत भाव की अत्यन्त स्पष्ट और स्वाभाविक रूप से कह सुनाने की क्षमता थी। आत्मीयता उनकी शैली का विशिष्ट गुण है। अन्य लेखकों में उसके बदले कृत्रिम गम्भीरता का पुट रहता है जो उक्त कला के लिए बड़ा व्याघात सिद्ध हुआ है। पं. प्रतापनारायण मिश्र को आधुनिक हिन्दी का मॉन्टेन³ या लैम्ब⁴ कहा जा सकता है।

पं. प्रतापनारायण मिश्र और पं. बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी गद्य-साहित्य में वही काम किया है जो अंग्रेजी गद्य-साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया था —रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी-साहित्य का इतिहास)।

हिन्दी के अतुलनीय प्रातिभ-निबन्धकार, सुधारवादी युग के भारतेन्दु-तुल्य प्रतिनिधि कवि एवं नाट्यकार, 'ब्राह्मण' (1883 ई.) के ऐतिहासिक संपादक, शीर्षस्थ व्यंग्यकार एवं 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान' के अनन्य उपासक पं. प्रतापनारायण मिश्र (1856-1894 ई.)⁵ हिन्दी-साहित्येतिहास-व्योम के एक अतीव जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। उनका जन्म उन्नाव जनपद के बैजगाँव⁶ में हुआ किन्तु पिता पं. संकटाप्रसाद मिश्र के निकटवर्ती कानपुर में ज्योतिष का कार्य करने के कारण नितान्त शैशवावस्था में ही कानपुर ले जाए गए तथा वहीं के हो गए। वहीं दिवंगत हुए। कानपुर के प्रसिद्ध नेता एवं लेखक श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा इनके शिष्य थे तथा प्रसिद्ध पत्र 'प्रताप' का नामकरण इन पर ही किया गया था। आजीविकावश कानपुर-प्रवासी कविवर नाथूराम शर्मा 'शंकर' इनसे बहुत प्रभावित हुए। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं बाबू बालमुकुन्द गुप्त इनके प्रशंसकों में थे। हिन्दी के स्फीत एवं परम-मूल्यवान साहित्येतिहास 'विनोद' में मिश्रबन्धु ने इनके सृजन का जो उल्लेख किया है, वह इनकी महान् बहुमुखी प्रतिभा को उजागर करता है: ग्रन्थ—अनुवादित—1. राजसिंह, 2. इंदिरा, 3. राजधानी, 4. युगलांगुरीय (विक्रमचन्द्र के बँगला उपन्यासों से), 5. चरिताष्टक, 6. पंचामृत, 7. नीतिरत्नावली, 8. कथामाला, 9. संगीत-शाकुंतल, 10. वर्णपरिचय, 11. सेन-वंश, 12. सूवे बंगाल का भूगोल।

स्वरचित—1. कलिकौतुक (रूपक), 2. कलिप्रभाव (नाटक), 3. हठी हमीर (नाटक), 4. गोसंकट (नाटक), 5. जुवारी खुवारी (प्रहसन), 6. प्रेमपुष्पावली, 7. मन की लहर, 8. शृंगारविलास, 9. दंगलखंड (आल्हा), 10. लोकोक्तिशतक, 11. तृप्यंताम्, 12. ब्रैडला-स्वागत, 13. भारत-दुर्दशा (रूपक), 14. शैव-सर्वस्व, 15. मानस-विनोद, 16. सौन्दर्यमयी।

संग्रह—1. रसखान-शतक, 2. प्रताप-संग्रह। उर्दू-ग्रन्थ—1. दीवान-ए-बिरहमन।"

शालशिक्षाविहीन होते हुए भी पं. प्रतापनारायण मिश्र संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला एवं उर्दू के मर्मज्ञ विद्वान् थे तथा बकौल बाबू बालमुकुन्द गुप्त इन सभी में धाराप्रवाह बोल सकते थे। पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उनसे मिलने पधारे तो उनकी अगाध विद्वत्ता, उनकी असाधारण प्रतिभा एवं उनकी अप्रतिम सरलता से बहुत प्रभावित हुए थे।

महान् निबन्धकार

आ. श्यामसुन्दरदास ने प्रतापनारायण मिश्र को हिन्दी का मॉन्टेन या लैम्ब घोषित करते हुए बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि से श्रेष्ठतर निबन्धकार माना है, जो मिश्र के 'दौत', 'भौं', 'ट', 'द', 'घ', 'ह' जैसे विषयों पर लिखे गए विस्मयकारी प्रातिभ-निबन्धों को देखते हुए अत्युक्तिपूर्ण नहीं लगता। डॉ. विजयशंकर मल्ल सम्पादित 'प्रतापनारायण-निबन्धावली' में

1. राष्ट्रीयता। पहले 'जातीयता' शब्द का प्रयोग प्रचलित था, जो अब भ्रमोत्पादक लग सकता है।

2. निबन्ध।

3. मॉन्टेन (फ्रांस) जो निबन्ध के जनक हैं। वे एक विश्व-प्रेरक महान् साहित्यकार थे। उनके निबन्ध अनौपचारिक एवं ललित हैं।

4. चार्ल्स लैम्ब अंग्रेजी के महान् निबन्धकार हैं। वे अंग्रेजी के मॉन्टेन थे।

5. 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने निधन-वर्ष 1895 ई. दिया है, जो गलत है। प्रतापनारायण मिश्र का जन्म 24 सितम्बर, 1856 को हुआ तथा देहान्त 6 जुलाई, 1894 ई. को 'कान्यकुब्ज मंच' कानपुर के दिसम्बर 1988 अंक में फ़तेहपुर के स्वातन्त्र्य सेनानी एवं कवि (स्व.) दयाशंकर मिश्र 'सूर्य' का 'पं. प्रतापनारायण मिश्र के सहोदरवत् थे।

6. आ. शुक्ल एवं अन्य अनेक लेखकों ने जन्म कानपुर में लिखा है। बैजगाँव उन्नाव जनपद के देथर का एक भाग है, कोल्हु आगाड़ा एवं निंबई जाने वाले खरंजे पर 'प्रतापनारायण मिश्र मार्ग' प्रस्तर लगा है।

उनके प्रातिभ-निबन्ध पढ़कर निबन्ध के जन्म-विकास एवं गौरव से परिचित कोई भी चिन्तक अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। 'कल्पना-शक्ति' या 'बातचीत' (बालकृष्ण भट्ट) तथा 'कविता क्या है?' या 'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद' (रामचन्द्र शुक्ल) विषयों पर देश-विदेश में अनेकानेक निबन्ध मिल जाएंगे, किन्तु 'ट' या 'ध' तथा 'दौत' और 'भौ' पर नहीं। प्रतिभा और वैयक्तिकता की दृष्टियों से भट्ट या शुक्ल तक निबन्धकार के रूप में मिश्र की समता नहीं कर सकते। निबन्ध की प्रकृति से अपरिचित एवं गांभीर्यभक्त अनेक प्राध्यापकों ने इस दिशा में बहुत अनुतरदायी ढंग से लिखा है। शुक्ल के 'लोभ और प्रीति', 'श्रद्धा-भक्ति', 'करुणा' जैसे निबन्ध प्रातिभ हैं उच्चस्तरीय हैं, किन्तु इनमें भी उन्हें कोशों से सहायता मिली है; 'दौत' या 'भौ' या 'आप' की सृजनात्मक शक्ति अपनी जगह पर है। यह सत्य है कि शक्ति, निपुणता और अभ्यास के त्रित् में विपुल सामर्थ्य के कारण, व्यक्तिगत रूप से मैं रामचन्द्र शुक्ल को हिन्दी ही नहीं प्रत्युत भारत का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार मानता हूँ—प्रतापनारायण मिश्र 'शक्ति' (प्रतिभा) मात्र में श्रेष्ठतर है।

मिश्र के निबन्धों का सबसे बड़ा गुण है अनौपचारिकता (जिसके लिए निबन्ध के जनक महान् मॉन्टेन एवं अंग्रेजी-निबन्धसीमान्त लैम्ब इतने प्रसिद्ध हैं)—लगता है कि वे ऐन सामने बैठे बतिया रहे हैं! कोई कृत्रिमता नहीं, प्रदर्शन नहीं, गोपन नहीं: एकरस आत्मीयता! उनके निकटवर्ती प्रातिभ निबन्धकार बालमुकुन्द गुप्त के निबन्धों में भी ऐसा निजीपन कहाँ? प्रतापनारायण मिश्र के निबन्धों की तुलना में माधवप्रसाद मिश्र एवं सरदार पूर्णसिंह तक के निबन्ध भाषण प्रतीत होते हैं! उनकी ज़िन्दादिली उनकी अपनी और अपनी है। उनकी भाषा में (शुक्ल के अनुकरण में) बिना पढ़े-पढ़ाए और रसे-रसियाए गँवारूपन की गन्ध उन्हें ही लगेगी जो भाषा के मामले में घोंघावादी हैं। मिश्र के निबन्धों में उनका युग साकार हो उठा है। वे इतने अधिक 'निजी' हैं कि उनका सफल अनुवाद असम्भव से कुछ ही कम है।

प्रतिभाशाली कवि

प्रतापनारायण मिश्र 'भारतेन्दु-स्तर के प्रतिभाशाली कवि हैं : क्या पारम्परिक भक्तिकाव्य, क्या पारम्परिक शृंगार काव्य, क्या नव्य राष्ट्रकाव्य, क्या सशक्त 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान-काव्य' क्या हास्यकाव्य, सबके सृजन में उन्हें उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त, उन्होंने अवधी के स्वस्थानीय रूप बैसवाड़ी (बैसवारी) में भी स्मरणीय सृजन किया है, जिसका प्रभाव आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'कल्लू अन्हइत' रूप से लेकर रमई काका (चन्द्रभूषण त्रिवेदी) इत्यादि तक प्रसरित है। 'बैसवाड़ी-काव्य' (बैसवारी-काव्य) शोध का विषय है। मिश्र जी के प्रिय छन्द सवैया और कवित्त हैं। कहीं-कहीं दो-चार पंक्तियाँ खड़ीबोली की भी मिल जाती हैं। भारतेन्दु के अतिरिक्त कोई समकालीन कवि उनकी समता नहीं कर सकता। उनकी नाट्य-रचना पर भी उनका कवि छाया रहता है। निस्सन्देह, भारतेन्दु उनसे श्रेष्ठतर नाट्यकार हैं (जैसे कि वे भारतेन्दु से श्रेष्ठतर निबन्धकार)। दोनों की नाट्यकृतियाँ कवित्व, देशभक्ति, सुधारवाद, व्यंग्य-विनोद एवं प्रगतिशीलता से ओतप्रोत हैं। दोनों विशुद्ध-जनवादी (वादी-विवादी-प्रतिवादी नहीं) साहित्यस्रष्टा थे। प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु का बहुत सम्मान करते थे; उन्हें गुरुवत् मानते थे—वस्तुतः भारतेन्दु-पूजक थे। उनकी सृजन-शक्ति की बानगियाँ देखिए :

1.

पितु मातु सहायक स्वामि सखा! तुमही एक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और अधार नहीं, तिनके तुमही रखवारे हो।।
सब भाँति सदा सुखदायक हो, दुख दुर्गुन नासनहारे हो।
प्रतिपाल करो सिंगरे जग को, अतिसै करुना उर धारे हो।।
भुलिहैं हमही तुमको, तुम तौ हमरी सुधि नाहिं बिसारे हो।
उपकारन को कछु अंत नहीं छिन-छिन जो बिस्तारे हो।।
महाराज! महा महिमा तुम्हरी, समुझैं बिरले बुधिवारे हो।
शुभ-शांतिनिकेतन, प्रेमनिधे, मन-मंदिर के उजियारे हो।।
यहि जीवन के तुम जीवन हो, इन प्रानन के तुम प्यारे हो।
तुम-सों प्रभु पाय प्रतापहरी, किहिके अब और सहारे हो।।^१

1. प्रताप + हरी (हरि = नारायण)। प्रतापनारायण मिश्र ने प्रताप, प्रतापहरी, प्रतापनारायण, प्रेमदास, बरहम इत्यादि कई छापों का प्रयोग किया है। 'हरिऔध' छाप पर 'प्रतापहरी' छाप का प्रभाव स्पष्ट है।

2. सुप्रसिद्ध पार्श्वगायक मुकेश ने इस प्रार्थना को मनोहारी स्वरों में गाया है।

2. शरणागत पाल कृपाल प्रभो! हमको इक आस तुम्हारी है।
तुम्हरे सम दूसर और कोऊ नहिं दीनन को हितकारी है।।
सुधि लेत सदा सब जीवन की अति ही करुना बिस्तारी है।
प्रतिपाली करै बिन ही बदले अस कौन पिता-महतारी है।।
जब नाथ दया करि देखत हौ छुटि जाति बिथा संसारी है।
बिसराय तुम्हें चाहत जो अस कौन नदान अनारी है।।
परवाह तिन्हें नहिं स्वर्गहु की जिनको तव कीरति प्यारी है।
धनि है धनि है सुखदायक जो तब प्रेमसुधा-अधिकारी है।।
सब भौति समर्थ सहायक हौ, तव आश्रित बुद्धि हमारी है।
परतापनरायन तौ तुम्हरे पदपंकज पै बलिहारी है।।
3. आगे रहे गनिका-गज-गीध सु तौ अब कोऊ दिखात नहीं है।
पापरायन, ताप-भरे परताप समान न आन कहीं है।।
हे सुखदायक, प्रेमिनिधे! जग यों तौ भले औ बुरे सबही हैं।
दीनदयाल औ दीन प्रभो! तुम-से तुम ही, हम-से हम ही हैं।।
तबहिं लख्यो जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत।
तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहु को तरसत।।
जहाँ कृषी, वाणिज्य, शिल्पसेवा सब माहीं।
देसिन के हित कछू तत्व कहूँ कैसुह नाहीं।।
कही कहाँ लगि, नृपति दबे हैं जहाँ रिनभारन।
कहँ तिनकी धनकथा कौन जे गृही सधारन।।
4. सब धन लिए जात अँगरेज।
हम केवल लेक्चर में तेज।।
5. चहहु जौ साँचौ निज कल्यान। तौ सब मिलि भारत-संतान।।
जपहु निरंतन एक जबान। हिंदी-हिंदू-हिंदुस्तान।।
6. आठ मास बीते जजमान। अब तौ करौ दक्षिणा-दान।
हर गंगा!
7. जौ तुम धाहौ बहुत खिझाय। यह कौनिउ भलमंसी आय।
हर गंगा!
8. अरे बुढ़ापा! तोहरे मारे अब तौ हम नकुनाय गयन।
करत-धरत कछु बनतै नाहीं, कहाँ जाय औ कैस करन।।
दाढ़ी-नाक याक माँ मिलिगै, बिन दाँतन मुँह अस पोपलान।
दढ़िही पर बहि-बहि आवति है कबौ तमाखू जो फाँकन।।
बार पाकिगै, रीरौ झुकिगै, मूडौ सासुर हालन लाग।
हाँथ-पाँय कुछु रहे न आपन, केहिके आगे दुखु र्वावन।।²

9. शरीर के द्वारा जितने काम किए जाते हैं उन सब में मन का लगाव अवश्य रहता है। जिनमें मन प्रसन्न रहता है वही उत्तमता के साथ होते हैं और जो उसकी इच्छा के अनुकूल नहीं होते वह वास्तव में चाहे अच्छे कार्य भी हों किन्तु भले प्रकार पूर्ण रीति से संपादित नहीं होते, न उनका कर्त्ता ही यथोचित आनन्द-लाभ करता है। इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर-रूपी नगर का राजा

1. ख्याति-आखेटक कांग्रेसियों पर व्यंग्य।

2. मिश्र 38 वर्ष जिए थे। वैसे, “तीसरा सो खीसा” कहावत चलती है, किन्तु ‘अरे बुढ़ापा’ कविता का आधार कल्पना ही है।

है और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छन्द रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है। यदि रोका न जाए तो कुछ काल आलस्य और अकृत्य का व्यसन उत्पन्न करके जीवन को व्यर्थ एवं अनर्थपूर्ण कर देता है। (मनोयोग)

10. सच है “सब तें भले हैं मूढ़ न व्यापै जागत गति”। मजे से पराई जमा गपक बैठना, खुशामदियों से गप मारा करना, जो कोई तिथि-त्योहार आ पड़ा तो गंगा में बदन¹ धो आना, गंगापुत्र² को चार पैसे देकर सेंट-मेंत में धरमरत-धरमऔतार का खिताब पाना; संसार-परमार्थ दोनों तो बन गए, अब काहे की है-है और काहें की खै-खै³? आफत तो बिचारे जिन्दादिलों की है जिन्हें न यों कल न वों कल। जब स्वदेशी भाषा का पूर्ण प्रसार था तब के विद्वान् कहते थे “गीर्वाणवाणीषु⁴ विशाल बुद्धिस्तथान्यभाषारसलालुपोहम्”। अब आज अन्य भाषा वरंच अन्य भाषाओं का करकट (उर्दू) छाती का पीपल हो रही है, अब यह चिन्ता खाए लेती है कि कैसे इस चुड़ैल से पीछा छूटे! (समझदार की मौत है)

आकलन

प्रतापनारायण मिश्र एक महान् निबन्धकार एवं एक प्रतिभाशाली कवि थे। निबन्धकार के रूप में विश्वस्तरीय स्रष्टा हैं: जिनकी तुलना मॉन्टेन, लैव इत्यादि से की गई है। हिन्दी-निबन्धकारों में वे शुक्ल के समकक्ष हैं: जो स्थान विचारात्मक निबन्धों में शुक्ल का है वही भावात्मक निबन्धों का। कवि के रूप में वे स्फीत एवं अधिक कलात्मक भारतेन्दु से ही पीछे हैं; अन्य समग्र युगीन कवियों में श्रेष्ठतम। उनका नाट्यकार-रूप भी उल्लेखनीय है, किन्तु वह गुण-परिमाण दोनों में भारतेन्दु के समतुल्य नहीं है। उनकी साहित्य एवं भाषा की सेवा उन्हें भारतेन्दु एवं आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनन्तर किसी से भी पीछे नहीं रहने देती। सुधारवादी युग की बृहत्त्रयी भारतेन्दु-मिश्र-भट्ट की ही है, जिसमें अपनी बहुमुखी प्रतिभा में मिश्र भारतेन्दु के साथ-साथ से हैं। बहुमुखी प्रतिभा की दृष्टि से भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रसाद, अज्ञेय और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के अग्रणी साहित्यकार हैं। हिन्दी के एक महान् साहित्यकार एवं एक महान् सेवक के रूपों में सुधीजन प्रतापनारायण मिश्र का स्मरण सदा-सर्वदा श्रद्धापूर्वक करते रहेंगे।

हाजी अली खाँ

‘वेदपरोपकारक’, ‘खलनदलगंजन’, ‘हाजी-दृष्टान्तमाला’, ‘मोरध्वज-चरित्र’, ‘गौ-अष्टक’, ‘शराब की ऐसी-तैसी’ जैसे अनेक ग्रन्थों के रचयिता हाजी अली खाँ ‘अलि’ (1856-1931 ई. दमोह जनपद) एक सच्चे देशप्रेमी, समाजसुधारक एवं प्रगतिशील ब्रजभाषा-कवि खड़ीबोली-लेखक थे। संस्कृत, हिन्दी, एवं उर्दू के विद्वान् होने के अतिरिक्त हाजी ‘अली’ चिकित्सक भी थे। इनकी कविता का एक प्रभावी छन्द देखें :

दाता नहीं रंक होत दान के दिए ते कवीं, कूकर ना वृष होत गंग के नहाए तैं।
अस्त्र के गहे तैं कूर शूर नहि होय जात, बगुला ना हंस होत मोती के चुगाए तैं।।
पोथी पाय मूर्ख जन पंडित हवै जात नाहीं, तपी नहीं होत भस्म अंग के रमाए तैं।
खून पिएं स्यार नहिं सिंह होत हाजी अली, तीतुर के जाए बाज होत न सिखाए तैं।।

जगमोहन सिंह

श्यामस्वप्न, श्यामसरोजिनी, श्यामालला, देवयानी, प्रेमसंपत्तिलता, प्रेमहजारा, प्रलय, सज्जनाष्टक, मेघदूत-कुमारसम्भव-रघुवंश (कालिदास) के अनुवाद, सांख्यसूत्र (कपिल) एवं वेदान्तसूत्र (बादरायण) पर टिप्पणियाँ इत्यादि गद्य-गद्य की उभय विधाओं में अनेक ग्रन्थों के प्रणेता, विजय-राघवगढ़ के राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिंह (1857-1899 ई.)⁵ ने पारम्परिक ब्रजभाषा के काव्य एवं खड़ीबोली के गद्य में नूतन प्रकृति-प्रेम का मनोहरी समावेश किया है। ‘श्यामास्वप्न’ उपन्यास उनकी प्रमुख कृति है जिसमें प्रकृति का रम्य चित्रण तद्वत् प्रांजल भाषा में किया गया है और जिसे पं. अम्बिकादत्त व्यास ने ठीक ही ‘गद्यकाव्य’ कहा है। डॉ. श्रीकृष्णलाल ने इसका प्रशस्य संपादन किया है। वास्तव में जगमोहन सिंह के सारे मौलिक सृजन का नायक उनका जन्मस्थान श्यामापुर है। इसके प्राकृतिक सौन्दर्य

1. तन (मन नहीं)।

2. पंडा।

3. है-है खै-खै मुहावरे का प्रयोग।

4. गीर्वाणवाणी = देववाणी = संस्कृत।

5. ‘विनोद में मृत्यु संवत् 1955 (1898 ई.) दिया है, गलत लगता है। ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में सं. 1956 (मार्च सन् 1899) दिया है, जो ठीक है।

को वे डिप्टी-कलक्टर¹ होकर भी नहीं भूले थे। आ. शुक्ल के शब्दों में “वे...हिन्दी के एक प्रेमपथिक कवि और माधुर्यपूर्ण गद्यलेखक थे।” उदाहरण साक्षी हैं :

1. आई शिशिर बरोरु शालि अरु ऊखन संकुल धरनी।
प्रमदा प्यारी ऋतु सोहावनी क्रींच रोर मनहरनी।।
मूँदे मंदिर उपर झरोखे भानु किरन अरु आगी।
भारी बसन हसन मुख बाला नवयौवन अनुरागी।।
2. कुल कानि तजी गुरु लोगन में बसिकै सब बैन-कुबैन सहा।
परलोक नसाय सबै बिधि सों उनमत्त को मारग जान गहा।।
जगमोहन धोय हया निज हाथन या तन पाल्यो है प्रेम महा।
सब छाँड़ि तुम्हें हम पायो अहो तुम छोड़ि हमें कहो पायो कहा।।
3. नर्मदा के दक्षिण दंडकारण्य का एकदेश दक्षिण कोशल² के नाम प्रसिद्ध है—
याही मग हवै कै गए दंडकवन श्रीराम।
तासों पावन देश यह विंध्याटवी ललाम।।

....जहाँ के शल्लकी-वृक्षों की छाल में हाथी अपना वदन रगड़-रगड़ खुजली मिटाते हैं और उनमें से निकला क्षीर सब वन के शीतल समीर को सुरभित करता है। मंजु वंजुल की लता और नील निचुल के निकुज जिनके पत्ते ऐसे सघन जो सूर्य की किरणों को भी नहीं निकलने देते इस नदी के तट पर शोभित हैं।....इस नदी के तीर अनेक जंगली गाँव बसे हैं।इस पावन अभिराम ग्राम का नाम श्यामापुर है।ऐसा सुन्दर ग्राम जिसमें श्यामसुन्दर स्वयं विराजमान हैं, मेरा जन्मस्थान था।

‘द्विजराज’

प्रसिद्ध कवि ‘लेखराज’ के पुत्र जुगलकिशोर या युगलकिशोर मिश्र ‘ब्रजराज’ के भ्राता, पं. कृष्णबिहारी मिश्र के पितृव्य लालबिहारी मिश्र ‘द्विजराज’ (1858-1905 ई. गँधौली, जनपद सीतापुर) ने रामकाव्य-परक ‘श्रीरामचन्द्रनखशिख’, कृष्णकाव्यपरक ‘वासुदेवपंचक’, ‘प्यारीजू को शिखनख’ तथा शक्तिकाव्यपरक ‘दुर्गास्तुति’, ‘भव्यार्णवलहरी’, ‘विजयमंजरीलतिका’, ‘विजयानन्दचन्द्रिका’ जैसे लघुकाव्यों की रचना की। ‘द्विजराज’ की कविता ललित ब्रजभाषा में रचित है तथा सरस एवं सार्थक है। भक्ति एवं तत्संपृक्त शृंगार उनकी कविता के प्रधान रस हैं। ‘विनोद’ से दो रवैये अवतरित हैं :

1. फरकें लगीं खंजन-सी अँखियाँ, भरि भावन भौहें मरौं लगी।
अँगिराय कछू अँगिया की तनी छबि छाकि छिनौ दिन छोरै लगी।।
बलि जैबै परे द्विजराज कहै मन मौज मनोज हलौरै लगी।
बतियान में आनंद धोरै लगी दिन द्वै ते पियूष निचौरै लगी।।
2. मनि मंगल देवन देस दुरे लखि बारिज साँझ लजाने रहैं।
किसलै न प्रवाल कै बिंब जपा जड़ताई के जोगन आने रहैं।।
अरुनाई सियावर पाँवन तैं उपमान सबै अपमाने रहैं।
द्विजराज जू देखौ दिनेस अजौं अरुनोपल आइ लुकोने रहैं।।

अम्बिकादत्त व्यास

संस्कृत एवं हिन्दी के प्रभावी साहित्यकार, आशुकि, धुरंधर ‘सनातनी’ शास्त्रार्थी एवं दिग्गज विद्वान् साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त

1. उन दिनों किसी भारतीय का डिप्टी-कलक्टर होना बड़ी बात थी।

2. वाल्मीकि-रामायण के कोसल, कौसल्या इत्यादि शुद्ध प्रयोग कोशल, कौशल्या इत्यादि के रूपों में ढल गए हैं। प्रसाद ने भी ‘कोशल’ (‘पुरस्कार’ कहानी, ‘अजातशत्रु’ नाटक) का प्रयोग किया है। अब तो ‘कौशल’ का भिन्नार्थी प्रयोग तक चल पड़ा है और ‘कौशलेन्दु भरत’ (परमानन्द जड़िया) काव्य तक उपलब्ध हैं। कोसल से राम का निर्वासन हुआ, किन्तु द्वितीय कोसल (महाकोसलय या महाकोशल) में स्वाग।

3. “कुल मिलाकर इनकी रचना प्रायः 200 पृष्ठों की होगी।” —मिश्रबन्धु

व्यास (1858-1900 ई.) सुधारवादी युग की एक चिरस्मरणीय विभूति थे। मिश्रबन्धु ने लिखा है: “इन्हें बहुत-से प्रशंसापत्र तथा उपाधियाँ मिलीं और इनकी आशुकाविता की तो मुक्तकंठ से सराहना हुई। इन्होंने संस्कृत और हिन्दी दोनों में, कुल मिलाकर 78 ग्रन्थ निर्माण किए हैं, जिनके नाम सन् 1901 वाली ‘सरस्वती’ के पृष्ठ 444 पर लिखे हैं। ललिता नाटिका, गोंसकट नाटक, महरकटा नाटक, भारत-सौभाग्य नाटक, भाषाभाष्य, गद्य-काव्य-मीमांसा, बिहारी-बिहार, बिहारी-चरित्र, शीघ्रलेख-प्रणाली, निज-वृत्तांत इनके प्रसिद्ध ग्रन्थों में हैं।” अवतार-मीमांसा, पावस-पचासा इत्यादि उनकी अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। व्यासजी ने अधिकतर ब्रजभाषा में पारम्परिक काव्यरचना की, किन्तु ‘कंसवध’ शीर्षक खड़ीबोली-महाकाव्य भी लिखना आरम्भ किया था जो अकाल-मृत्यु के कारण केवल तीन सर्ग तक ही चल पाया। संस्कृत में उनका शिवराज विजयम् नाटक विख्यात है। संस्कृत में वे रमे-रसे थे। एक बार काशी की एक दुकान पर पूछ रहे थे, “गुडस्य भावः?” उत्तर गंगास्नानार्थ जाते स्वामी दयानन्द सरस्वती ने दिया, “गुडत्वम्!” आज तक प्रसिद्ध है कि एक बार इन्होंने शास्त्रार्थ में दयानन्द को परास्त कर दिया था। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. सुमिरथ छवि नंदनंद की विसरत सब दुख-दंद। होत अमंद अनंत हिय मिलत मनहुँ सुख-कंद॥
रसना हू बस ना रहत वरनि उठत करि जोर। नंदनंद मुखचंद पै चितहू होत चकोर॥
2. परनिंदा ठगपनो कबहुँ नहिं चोरी करिहैं। जंतुन को दे पीर कबहुँ नहिं जीवन हरिहैं॥
मिथ्या अप्रिय वचन नाहिं काहू सन कहिहैं। परउपकारन हेत सबै विधि सब दुख सहिहैं॥

3. अब गद्य-विभाग की परीक्षा की जाती है। यहाँ साहित्यदर्पणकार के कथनानुसार तीन गद्य तो असमास, अल्पसमास और दीर्घसमास हैं और चौथा वृत्तगंधि है। परन्तु यह विचारना है कि प्रथम ही तीन गद्यों में सरस्वती का सारा गद्यभंडार भर जाता है फिर कौन सा स्थान शेष रह जाता है जहाँ वृत्तगंधि गद्य स्थिर हो। हाँ, वृत्तगन्धि गद्य जब होगा तब उन्हीं तीन में से कोई सा होगा। इसलिए इसे प्रविभाग कहें तो कहें पर गद्यविभाग में तो रख ही नहीं सकते।

रामकृष्ण वर्मा

भारत जीवन प्रेस (1884 ई.) एवं ‘भारत जीवन’ (नामकरण भारतेन्दु द्वारा) पत्र द्वारा हिन्दी-ग्रन्थों के प्रकाशन एवं हिन्दी-सेवा के लिए विख्यात काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्थापन से अपने जीवन के अन्त तक सेवा के लिए प्रशंसित, अंग्रेजी-बांग्ला-उर्दू के अनेक नाटकों एवं उपन्यासों के स्मरणीय अनुवादक, काशी कवि-समाज के एक स्तम्भ बाबू रामकृष्ण वर्मा (1859-1906 ई., काशी) की सहृदय कवि के रूप में भी चर्चा होती थी। वे ‘बलवीर’ और ‘वीरकवि’ छापों का प्रयोग करते थे पर ये चली नहीं, क्योंकि इनका कवि-रूप प्रेसस्वामी, पत्रकार एवं अनुवादक रूपों के तले दब गया। उन्होंने अपने सारे क्रिया-कलाप में परम्परा एवं प्रगति का सद्वृद्धिपूर्वक समन्वय किया। इनके पिता हीरालाल खत्री एक सम्पन्न व्यक्ति थे। मिश्रबन्धु ने अच्छे-अच्छे ग्रन्थ छापने के साथ “मूल्य अधिक रखते थे” की शिकायत भी की है। बांग्ला से अनूदित ‘चित्तौर-चातकी’ चित्तौड़-राजवंश की मर्यादा के विरुद्ध समझी गई और आचार्य शुक्ल के शब्दों में “इनके अनूदित ग्रन्थों में ‘कृष्णकुमारी नाटक’, ‘पद्मावती नाटक’, ‘वीर नारी’, ‘ठगवृत्तांत माला’ (भाग 4), ‘पुलिसवृत्तांतमाला’ इत्यादि अपने समय में बहुत प्रसिद्ध हुए थे। इनका महान् कार्य ‘कथासरित्सागर’ (12 भागों के बावजूद अपूर्ण) को प्रस्तुत करना है, जिसको पूर्ण कर पुनः प्रकाशित किया जाना चाहिए। इन्होंने ‘ईसाईमत-खंडन’ नामक ग्रन्थ भी लिखा जिसमें दयानन्द के ‘सत्यार्थप्रकाश’ के एतद्विषयक ‘प्रस्थान’ का विकास दृग्गत होता है।

सुधारवादी युग में साहित्यकार परम्परा-प्रेमी होते हुए भी प्रगतिशील थे, सच्चे जनवादी थे और बाबू रामकृष्ण वर्मा उन्हीं के अनुरूप थे। यह सत्य है कि उनकी हिन्दीसेवा बहुत दूर तक व्यावसायिक थी, किन्तु उसका महत्व एवं प्रभाव शुभ रहा। इनकी कविता का एक उदाहरण अवतरित है :

1. ‘विनोद’ में जन्म 1915 वि. (1858 ई.) दिया है जिसको सभी परवर्ती लेखकों ने स्वीकार किया है, किन्तु पता नहीं क्यों डॉ. रवीन्द्र ‘भ्रमर’ ने ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग 2 में जन्म 1848 ई. लिखा है: मुद्रण-त्रुटि लगती है।
2. ‘रामकृष्ण वर्मा, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद’ इत्यादि ने चित्तौड़ को ‘चित्तौर’ लिखा है, जो वस्तुपरक दृष्टि से गलत है। कारण? अंग्रेजी-प्रभाव।
3. ‘विनोद’। ‘हिन्दी साहित्य कोश’ भाग 2 के सन्तोषजनक विवरण में रवीन्द्र ‘भ्रमर’ ने 10 भाग लिखा है।
4. कवि समाज द्वारा प्रकाशित अनेक भागों में प्रसरित ‘समस्यापूर्ति-प्रकाश’ अनेक स्फुट रचनाएँ। ‘हिन्दी के निर्माता’ भाग 1 में आचार्य श्यामसुन्दरदास ने ‘बलवीर-पचासा’ का उल्लेख किया है। इनकी कविता का शोध एवं प्रकाशन अपेक्षित है।

राधिका नवेली वृषभान की किशोरी गोरी अंग-अंग जाकी आभा कुंद-सी दिपति है।
थोरी वैस वारी जरतारी कोरदार स्याम सारी मध्य जाकी प्रभा फूटि कसति है।।
अंक की निकाई बिधना ने यों बनाई जाकी शुभ स्वच्छताई मनभायी सरसति है।
देखिए बिहारी चलि रसिक रसीले लाल अरुण उदै की कंज कली-सी लसति है।।

राधाचरण गोस्वामी

‘अमरसिंह राठौर’ जैसे श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक तथा ‘तन मन धन श्री गोसाई जी के अर्पण’ जैसे प्रहसन के सफल नाट्यकार, ‘भारतेन्दु’ मासिक द्वारा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रति आस्था व्यक्त करनेवाले ब्रजभाषा-कविताप्रेमी, अनेक बांग्ला-उपन्यासों के सफल अनुवादक वृन्दावनवासी श्री राधाचरण गोस्वामी (1859-1925 ई.)¹ बल्लभ-संप्रदाय के धर्माचार्य एवं नामी-गिरामी रईस थे, जिनका साहित्यप्रेम देशभक्ति एवं सुधारवाद से प्रेरित था। ‘विनोद’ में इनका ‘सरोजिनी’ नाटक तथा ‘विधवा-विपत्ति’, ‘विरजा’, ‘जावित्री’, ‘यमलोक की यात्रा’, ‘स्वर्ग-यात्रा’, ‘मृण्मयी’, ‘कल्पलता’, एवं ‘बालविधवा’ पुस्तिकाओं का उल्लेख है। ‘विरजा’, ‘जावित्री’ एवं ‘मृण्मयी’, बांग्ला से अनूदित उपन्यास हैं। ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में इनके ‘सुदामा नाटक’, ‘सती चन्द्रावली’, ‘अमरसिंह राठौर’ तथा ‘तन मन धन श्री गोसाई जी के अर्पण’ के लिए “बहुत अच्छे मौलिक नाटक” शब्दों का प्रयोग सर्वथा उचित है। राधाचरण गोस्वामी के ऐतिहासिक, कल्पित-ऐतिहासिक² तथा पौराणिक नाटक उन्हें हिन्दी-साहित्येतिहास में एक निश्चित स्थान का अधिकारी सिद्ध करते हैं। उनकी कल्पना पर आधृत यमलोक तथा स्वर्लोक से सम्बन्धित रचनाएँ अत्यन्त रोचक हैं।

राधाचरण गोस्वामी अपने समय में ब्रजभाषा के सबसे बड़े पक्षधर थे। किन्तु उनका खड़ीबोली का विरोध न व्यावहारिक था, न बौद्धिक। श्रीधर पाठक एवं अयोध्याप्रसाद खत्री की खड़ीबोली-समर्थन पर उन्होंने दोनों पर जो प्रहार किए, वे कोरी भावुकता पर आधृत होने के कारण व्यर्थ-परिमाणों ही सिद्ध हो सकते थे। विभाषागत अदूरदर्शिता के बावजूद, अपनी उत्कट देशभक्ति एवं प्रशस्य सुधारवादिता के कारण राधाचरण गोस्वामी का स्मरण आदरपूर्वक किया जाता रहेगा।

शीतलाप्रसाद³ उपाध्याय ‘शीतल’⁴

‘शीतल समीर’, ‘शीतल सुमिरनी’, ‘शीतल संहार’, ‘दूरदर्शी योगी’, ‘राजा रामसिंह की वाणी’, ‘राजा रामपालसिंह की योरप-यात्रा’, ‘धर्मप्रकाश’ के पारम्परिक ब्रजभाषा-कवि एवं गद्यकार शीतलाप्रसाद उपाध्याय ‘शीतल’ (जन्म 1860 ई.) कालाकाँकर (प्रतापगढ़) के प्रसिद्ध भारत एवं भारती के उपासक राजा रामपालसिंह के द्वारा स्थापित ‘हिन्दोस्तान’ के सम्पादक भी रहे। उन्होंने ‘सम्राट्’ का संपादन भी किया। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कुंज बन सघन अकेली हाय भूली भ्रम⁶ मिलो एक युवक अचानक डगर में।
मटुकि हमारी फोरि सारी की बिगारि दीन्हीं, कंचुकी को फारि दीन्हीं शीतल झगर में।।
गति जो हमारी भई, कहत बनत नाहिं, ऐसी तो ढिठाई देखी काहू न लगर⁷ में।
कीन्हीं बरजोरी मोरी वाहन मरोरी माय⁸, बेचन न जैहों दधि गोकुल नगर में।।

1. ‘विनोद’ में जन्मसंवत् 1915 वि. (1858 ई.) दिया है, जो गलत है।

2. ‘सती चन्द्रावली’ औरंगजेब के समय हिन्दुओं पर किए गए अत्याचारों पर आधृत है। कृष्ण की प्रिया ‘चन्द्रावली’ (जिस पर भारतेन्दु में नाटिका लिखी है) से इन चन्द्रावली का कोई सम्बन्ध न होना स्वयंसिद्ध है।

3. अपने समय के प्रसिद्ध नाट्यकार शीतलप्रसाद त्रिपाठी के ‘जानकीमंगल नाटक’ में भारतेन्दु ने अभिनय किया था। श्री शीतलाप्रसाद दीक्षित रायबरेली के जाने-माने स्वातन्त्र्य-सेनानी, कवि एवं साहित्यसेवी थे।

4. ‘शीतल’ कवि भी हुए हैं।

5. ‘ऋतुसंहारम्’ के अनुकरण में रखा गया शीर्षक।

6. मार्ग।

7. लगार, पीछे लग जाने वाला। लग्गर।

8. माई, सखी।

2. कहाँ है, कहाँ है, कस बाजत सुरीली राग, मुरली कलिंदी-तट प्यारी ब्रजराज की।
मधुप उड़े हैं कहाँ शीतल पराग लेन, बौरे हैं रसाल जहाँ बारी नँदराज की।।
काहे को बिहाल बिन बिहँग भ्रमे हैं आज, निकसी सवारी कहुँ मार महाराज की।
काहे री! सखिन मन उमँग बड़े हैं आज जानत न भोरी! है अवाई रघुराज की।।

शिवबिहारीलाल मिश्र

पं. बालदत्त (इटौंजा, लखनऊ के नामी रईस, भूस्वामी एवं कवि) के पुत्र शिवबिहारीलाल मिश्र (1860-1917 ई.) में बहरेपन, खाँसी, श्वासरोग इत्यादि से भरे जीवन के बीच 1891 ई. से कविता की रचना में रुचि ली तथा अनेक उत्कृष्ट पारम्परिक ब्रजभाषा-छन्द रचे। इनका नेत्र-वर्णन मनोहारी है। दो का अवलोकन करें :

- मीन मृग खंजन तुरंग सों चपलताई, कंच दल ही सों लै सरूप मुद पायो है।
वेधकपनो है जौन अति अनियारो ताहि, बानन सों लैकें कूरताई उपजायो है।।
स्यामता हलाहल सों मद सों ललाई पुनि, चारु मतवारोपन लैकें छबि छायो है।
अमिय सों लैकें सेतताई जगमोहन को, बिधना जुगल इन नैनन बनायो है।।
- झूमत हैं मद सों भरिकै मृग से पुनि चौकि चहुँ दिसि जोहैं।
खंजन से उड़ि जात सबै थल मीन सपच्छ मनौ जुग सोहैं।।
नूतन कंज समान विकास धरे चख ये सबको मन मोहैं।
पै उलटो गुन धारि सदा बनि बान समान हनै मन को है।।

‘ब्रजराज’

नन्दकिशोर मिश्र ‘लेखराज’ के पुत्र लालबिहारी मिश्र ‘द्विजराज’ के अनुज एवं आलोचक कृष्णबिहारी मिश्र¹ के पितृव्य जुगलकिशोर या युगलकिशोर मिश्र ‘ब्रजराज’ (1861-1917 ई., गँधौली, जनपद सीतापुर) “दशंग कविता में बड़े ही निपुण”² थे। यद्यपि वे कोई ग्रन्थ पूर्ण न कर सके, तथापि समस्यापूर्तिजन्य एवं स्फुट कविता की पर्याप्त रचना की। मिश्रबन्धु (त्रय) में कनिष्ठ शुकदेवबिहारी इनके काव्य-शिष्य थे। इनके अनुज ‘साधू’ भी शिष्य थे। इनके शिष्यों की संख्या काफी बड़ी थी। किन्तु अत्यन्त पारम्परिक कविता के विशेष युगानुकूल न होने के कारण किसी को कवि-रूप में ख्याति प्राप्त न होने पाई। ‘द्विजराज’ से भीषण मनोमालिन्य, ऋणपूर्ति, अपुत्रता, रुग्णता इत्यादि के बावजूद, ‘ब्रजराज’ ने अच्छी पारम्परिक ब्रजभाषा-कविता की :

- समुहातहि मैली प्रभा को धरैं नित नूतन आनि कै फोर्यो करैं।
सरसी ढिग जात मुँदेई लखात न या डर सों दृग जोर्यो करैं।।
ब्रजराज हित नभ ओर चितै नहिं तू भरमैं यों निहोर्यो करैं।
तरु आरसी कंज ससी सकुचैं इनसों कब लौं मन मोर्यो करैं।।
- सारी सिर बैजनी में कंचन बुटी की ओप, मुकुत किनारी चहुँ ओरन गसत हैं।
जरबीली जरित जरी सी जाफरानी पाग, कोर मैं जमुर्दी जवाहिर लसत हैं।।
रतन-सिंहासन पै दीन्हें गलाबाहीं, मुख चंद मुसुकाय भवताप को नसत हैं।
या विधि अनंद-भरे राधा-ब्रजनंद सदा, दंपति चरन मेरे हिय मैं बसत हैं।।

1. मिश्रबन्धु (त्रय = गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र) के अतिरिक्त उनके विमातृ-बन्धु।
2. ‘लेखराज’ स्वयं एवं उनके ज्येष्ठ-मध्यपुत्र-द्वय ‘द्विजराज’ एवं ‘ब्रजराज’ कवि थे, जबकि कनिष्ठ पुत्र रसिकबिहारी मिश्र ‘साधू’ मुख्यतः काव्यरसिक।
कृष्णबिहारी मिश्र, रसिकबिहारी मिश्र ‘साधू’ के पुत्र थे। ‘द्विजराज’ एवं ‘ब्रजराज’ तथा ‘साधू’ (क्रमशः एक तथा दो) विमातृ-बन्धु थे।
3. ‘विनोद (मिश्रबन्धु)।

नकछेदी तिवारी 'अजान'

'मनोज-मंजरी' (संग्रह, 4 भाग), 'कविकीर्तन-कलानिधि', 'भँडौआ-संग्रह', 'वीरोल्लास', 'खड्गावली', 'होरी-गुलाल', 'विचित्रोपदेश' इत्यादि के यशस्वी प्रस्तोता, 'नखशिख' (बलभद्र मिश्र), 'अंगदर्पण' (रसलीन), 'काव्यनिर्णय', (भिखारीदास), 'इश्कनामा' (बोधो), 'शृंगारलतिका' इत्यादि के 'प्रस्थान' संपादक तथा 'लछिराम का जीवन' के लेखक पं. नकछेदी तिवारी (जन्म 1862 ई., जन्मस्थान हल्दी, निवास डुमराँव, जनपद शाहाबाद, बिहार) एक सुजान ग्रन्थ-संपादक एवं एक सहृदय कवि के रूप में सर्वतः स्मरणीय हैं। यत्र-तत्र में इनके जिस 'कवि-रीति-कलानिधि' ग्रन्थ की चर्चा है वह वस्तुतः 'कवि-कीर्तन-कलानिधि' है। 'अजान' ने अनेक कवियों एवं ग्रन्थों का ज्ञान कराया! मिश्रबन्धु ने इनके 'भाषा-प्रेम' एवं इनकी 'गवेषणा शक्ति' को 'आदरणीय' माना है। आ. शुक्ल ने पं. अम्बिकादत्त व्यास और बाबू रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर' के काशी कवि समाज में इनके महत्वपूर्ण योगदान तथा "बड़ी सुन्दर कविता" एवं पढ़ने के "बड़े ही अनूठे" ढंग की प्रशंसा की है, 'ब्रजभाषा-रीतिशास्त्रग्रन्थ कोश' (जवाहरलाल चतुर्वेदी) एवं 'खड़ीबोली का हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (ब्रजरत्नदास) जैसे ग्रन्थों में भी इनका सादर उल्लेख प्राप्त है। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 (सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि) में डॉ. किशोरीलाल ने इनकी समस्यापूर्ति-क्षमता की प्रशंसा की है तथा 'विज्ञान-मार्तण्ड' ग्रन्थ का उल्लेख भी किया है।

नकछेदी तिवारी 'अजान' विद्वान्, संपादक एवं कवि के त्रित् में सुधारवादी युग की एक प्रेरक विभूति थे। इनकी सरस कविता की एक बानगी पेश है :

परभात लौं केलि करी ललना, बगरे कध एँड़िन लौं छहरैं।
रसरती उँनीदी भई अँखियाँ रद लागे कपोलन मैं छहरैं।।
दरकी अँगिया में उरोज लसैं लट तापै अजान परी लहरैं।
मनो केसरि कुंभ के शृंग पै सुंदर साँपिनि के चेटुवा बिहरैं।।

राधाकृष्णदास

'विजयिनी-विलाप', 'प्रयाण', 'देशदशा', 'प्रताप-विसर्जन' इत्यादि के मार्मिक कवि 'महाराणा प्रताप' (राजस्थान-केसरी), 'महारानी पद्मावती', 'धर्मालाप', 'दुःखिनी बाला' इत्यादि के राष्ट्रवादी-सुधारवादी नाट्यकार, 'निःसहाय हिन्दू' के उपन्यासकार, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के प्रथम अध्यक्ष, 'सरस्वती' के आदि-संपादकमंडल के सदस्य, 'सूरसागर' (अपूर्णा) के प्रथम व्यवस्थित संपादक, सूरदास, नागरीदास, भारतेन्दु इत्यादि के जीवनीकार तथा श्रीधर (मुरलीधर), गिरिधरदास (गोपालचन्द्र) इत्यादि पर प्रकाशदाता, 'पुरातत्त्व', 'मुसलमानी दफ्तरों में हिन्दी' इत्यादि के शोधनिबन्धकार, भारतेन्दु के फुफेरे-भाई राधाकृष्णदास (1865-1907 ई.) बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न एक विलक्षण साहित्यकार एवं एक अप्रतिम हिन्दीसेवी थे, जिनका स्थान हिन्दी-साहित्य के इतिहास में सदैव अमर रहेगा। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र एवं बालकृष्ण भट्ट की सुधारवादी-युग-बृहत्त्रयी के अनन्तर राधाकृष्णदास को अन्यतम मानना समीचीन होगा। वे सुधारवादी युग की राष्ट्रवेदना एवं आदर्शवादी युग की राष्ट्रवादिता के प्रवहमान संगम हैं। आ. श्यामसुन्दरदास ने 'राधाकृष्णदास-ग्रन्थावली' का प्रशस्य संपादन किया है। उनकी कृतियाँ राष्ट्रवाद-सुधारवाद की प्रतिनिधि कृतियाँ हैं। उनकी सर्वश्रेष्ठ कलाकृति 'महाराणा प्रताप' हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में एक है। भावुकता, त्याग एवं तप से ऊभचूभ उनका व्यक्तित्व एवं तद्वत् कृतित्व सदैव ही प्रेरक माना जाता रहेगा। वे एक साथ ही पारम्परिक भक्त एवं नूतन देशभक्त, सजग अतीतवादी एवं प्रखर सुधारवादी थे। भारतेन्दु की गहरी छाप के बावजूद, वे एक महान् साहित्यकार थे। कविता के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. मोहन की यह मोहिनी मूरति सों भूलत नाहिं भुलाए।
छोरन चाहत नेह को नातो कोऊ बिधि छूटत नाहिं छुराए।।
'दासजू'² छोरि कै प्यारे हहा हमैं और के रूप पै जाइ लुभाए।
भूलि सकै अब कौन जिया उन तौ हँसि कै पहिले ही चुराए।।

1. 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (शुक्ल) में 'मनोमंजरी' लिखा।

2. राधाकृष्णदास 'दासजू' छाप का प्रयोग करते हैं। केवल 'दास' की छाप ने भिखारीदास की छाप का भ्रम सम्भव था।

2.

हे हे वीर-सिरोमनि सब सरदार हमारे ।
हे विपत्ति-सहचर, प्रताप के प्रानपियारे ।।
तव भुजबल सों मैं भयो रक्षा करन समर्थ ।
मातृभूमि-स्वाधीनता¹ प्रवल शत्रु करि व्यर्थ ।।
अनेकन कष्ट सहि ।

रामसुजानसिंह

‘सुजान-सरोवर’ (दो खंड) के उत्कृष्ट शृंगारी कवि एवं रामकाव्यकार ‘सुजान-भूषण’ (दो खंड) के रस-निरूपक एवं अलंकार-व्याख्यता, ‘सुजान-दोहावली’ के विविधविषयक दोहाकार, ‘राग-रागनी’ के संगीतज्ञ-कवि एवं ‘रूपया-उत्कर्षता’ (रूपिया-महात्म) के विशिष्ट एवं आसाधारण हास्यरसकवि लाल रामसुजानसिंह, साहित्य-भूषण, जागीर साहेब बरहना कोठी, जनपद सतना (1865-1923 ई.)² वस्तुतः सुधारवादी युग (1850-1900 ई.) एवं तत्पश्चात् सन्धियुग (1800-1850 ई.) के कवि थे, जिनकी आत्मा शास्त्रीयकाल (1600-1800 ई.) में रमती थी। उनका नायिकाभेद-निरूपण, अलंकार-निरूपण इत्यादि विशुद्ध शास्त्रीयकाव्य के अन्तर्गत ही आता है। वे शृंगार, भक्ति एवं हास्य रसों के उत्कृष्ट कवि के अतिरिक्त विशिष्ट संगीतज्ञ-कवि या शास्त्रीय-गीतकार भी थे। उनकी ब्रजभाषा मानक है। कवित्त, सवैया, दोहा, पद इत्यादि माध्यमों पर उनका अधिकार अचूक है।

यह सत्य है कि वे पारम्परिक ब्रजभाषा-कवि थे, निजयुग-प्रतिनिधि कवि नहीं; किन्तु उनकी पारम्परिक कविता अस्मितासम्पन्न है तथा ‘रूपया उत्कर्षता’ तो सर्वथा मौलिक एवं विलक्षण हास्यरसकाव्य है ही, जो अली मुहिब खाँ ‘प्रीतम’ कृत ‘खटमल-बाईसी’ से मौलिकता में भी श्रेष्ठतर है, शालीनता में भी, जीवनवादिता में भी, आकार में भी। मेरी दृष्टि में 52 कवित्त-सवैया-दोहा-निबद्ध ‘रूपया-उत्कर्षता’ हिन्दी-हास्यकविता की अन्यतम स्वतन्त्र एवं विशद कृति है। ‘रूपया उत्कर्षता’ एक गम्भीर व्यंग्यकाव्य है, कोरा हास्यकाव्य नहीं। इसका एक-एक छन्द रौप्य नहीं अपितु स्वर्णमुद्रा है। अपने समग्र रूप में रामसुजानसिंह एक उच्चकोटि के शृंगाररसकवि, एक समर्पित रामकाव्यकार, एक अतीव समर्थ हास्यकवि एवं एक अप्रतिम शास्त्रीय-गीतकार के रूपों में हिन्दी-साहित्येतिहास में अपना एक स्वतन्त्र विशिष्ट एवं विलक्षण स्थान प्राप्त करने का अधिकार रखते हैं। प्रशस्य मानवतावादी आत्मपरिचय देखें :

नाते या शरीर राम सो सुजान नाम, व्याघ्रवंश विदित बरहना निवासी हों।
नाते जब दास हों चराचर को साँची कहों, कीजै सब छोह मैं मलीन अघरासी हों।।
नाते श्री उपासना के निशि दिन आठों याम, अवधबिहारी केरो सेवक सुपासी हों।
नाते ब्रह्म व्यापक अनादि लोकालोक माहिं, निर्विकार निर्गुण अखंड अविनासी हों।।

इन कविरत्न की बहुमुखी काव्य-प्रतिभा के निदर्शन प्रस्तुत हैं :

1. कविता सविता सम चाहि करै, जग करीत वीरता चाहि छई है।
मख तीरथ दानहिं चाहि करै, शत वासव की पद चाहि भई है।।
श्रुति शास्त्र पढ़ै चहि रामसुजान, सुगान कला सिख चाहि लई है।
तब लौ सुख पैहै न कैसहूँ तू जब लौं नहि बासना जीत लई है।। (शान्तरस की प्रभावी कविता)
2. औरहि कर्ता बनै जग, करबाबत सब काम।
आप करत नहिं काज कछु, कै रुपिया के राम।।
3. काम जिमि लाज पर, आलस सुकाज पर, नीच संग राज पर तुरत बिगार है।
क्रोध जिमि शांत पर, बोध जिमि भ्रांति पर, धर्मरोध कांत पर प्रगट पसार है।।
लोभ जिमि नीति पर, भेद जिमि प्रीति पर, क्रूर कुल रीति पर अजस अपार है।
मोह जिमि ज्ञान पर राम सो सुजस मान, बिपति बिदार तिमि पार कलदार है।।³

1. ‘स्वाधीनता’ शब्द का प्रयोग ऐतिहासिकता की दृष्टि से विचारणीय है। दादाभाई नौरोजी ने ‘स्वराज्य’ शब्द का प्रयोग बाद में किया।

2. आश्विन शुक्ल 2, सं. 1922—ज्येष्ठ शुक्ल 4, सं. 1980 वि. (जन्म एवं मृत्यु दोनों में ‘शुक्ल’!)। द्रष्टव्य है; ‘सुजान-सौख’ शीर्षक ग्रन्थावली, सं. लाल रामरसेन्द्र सिंह, प्रकाशक डॉ. पुष्पेन्द्र सिंह (बरहना सदन, सतना), प्रकाशन-वर्ष 1989 ई.।

3. भूषण के “इन्द्र जिमि जंभ पर” छन्द पर आधृत सफल पैरोडी।

4. व्यापित है सब जगत में, हे प्रीतम कलदार ।
रत्न, मही, पट, अन्न, पशु रौरेन¹ मोल प्रचार ।।
5. आबुह ढिंग, जाबहु न कहूँ छाबहु सब सुख साज ।
भाबहु, तरसाबहु न जिय, हे रुपिया महाराज ।।
6. तू ही हौ कृपान दल शत्रुन हराइबे को, सचिव समान तू ही सुमति देवैया हौ ।
तू ही अंगराग अंग सुंदर करनहार, तू ही बसीकर्ण मन नारिन करैया हौ ।।
तू ही हौ जगत बंदी² बिरद बढ़ायवे में, तू ही बाजपेय कुल उन्नत करनैया हौ ।
तू ही हौ हिरन्यगर्भ समवर्त लग्नेजज्ञ, राम सो सुजान जग एक तू रुपैया हौ ।।

श्रीनिधि

‘साहित्यश्रीनिधि’, ‘सोरठाशतक’ एवं ‘स्फुटकाव्य’ के रचयिता परसंहड़ी जनपद सीतापुर के सम्पन्न भूमिपति रामेश्वरबाख्श सिंह ‘श्रीनिधि’ (जन्म 1867 ई.) ने पारम्परिक अलंकृत ब्रजभाषा में अच्छी कविता लिखी थी। शक्ति-आराधना के साथ-साथ शृंगार-साधना की सफल कविता उन्हें उल्लेखनीय बना देती है। वे उर्दू-गज़लकार एवं संगीत-विशेषज्ञ भी थे। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. श्रीनिधि जू मानुख औ महीपन की कहै कौन, जहाँ देवराज के से चाँवर ढर्यो करैं ।
ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र से परे हैं चरणांबुज में, ऋषि-मुनि जाकौं ध्यान उर में धर्यो करैं ।।
ऐसी आदिशक्ति मातु सोहति सिंहासन पै, जाके रूप आगे रमा, रति हू डर्यो करैं ।
दौस-निसि भानु-सितभानु जाकी फेरी करैं, चेरी-सम ऋद्धि-सिद्धि टहल कर्यो करैं ।।
2. कैधौं बेलि सुंदर सिंगार-सुधा सींची, कैधौं खींची बिधि रेख जोबनागम मदन तैं ।
कैधौं धरी नीलम छरी उरज नाभि मध्य, उपटी किधौं या बेनी पीठि की हदन तैं ।।
श्रीनिधि जू पाँति कै पिपीलिका बनायो, कैधौं मंत्र शिव मदन चलायो है कदन तैं ।
युगुल उरोज बीच राजी रोमराजी किधौं, काढ़ी पन्नगी पिनाकी के सदन तैं ।।

‘विशाल कवि’

‘होलिकाभरण’ नामक अश्लील अलंकर-ग्रन्थ तथा नायिकाभेद के अनेक अश्लील पद रचने वाले भैरवप्रसाद वाजपेयी ‘विशाल कवि’ (1869-1907 ई., लखनऊ) ने प्रतिक्रिया-स्वरूप ‘पापविमोचन’ एवं ‘शंकरस्तुति’ पुस्तिकाएँ भी रचीं जो ठीक-ठाक हैं। इनके शृंगार-छन्द भी अच्छे हैं। यह वाग्मी, व्यंग्याचार्य एवं अथक श्रोता भी थे। ‘हिन्दी का अश्लील साहित्य’ विषय पर भी शोधकार्य हो सकता है और उसमें ‘विशाल कवि’ का स्थान विशेष स्तर का एवं विशाल होगा। खुसरो, कबीर, जायसी, मंझन, बिहारी, दूलह, धूमिल इत्यादि कवियों से लेकर गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, राहुल, यशपाल, नागार्जुन, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती इत्यादि गद्यकारों तक ने ‘काव्यप्रकाश’ में आचार्य मम्मट के सूत्र ‘क्वचिद् अश्लीले गुणे’ को फाँदकर विविध प्रकार का प्रभूत अश्लील साहित्य रचा है; यद्यपि वह उर्दू के ज़ाफ़र जटल और मियाँ चिरकीन की निम्नता के कीर्तिमानों का स्पर्श नहीं कर पाया, क्योंकि अश्लीलता हिन्दी-संस्कृति से मेल नहीं खाती। एक छन्द प्रस्तुत है :

1. अँगरेजी पढ़ी जब सों तब सों हमरो तुमरौ बिसवास नहीं ।
तुम हौ कि नहीं यहै सोचो करैं, परमान मिले परकास नहीं ।।
बिनु जाने न होत सनेह बिसाल, सनेह बिना अभिलास नहीं ।
यहि कारन तैं हमको सिवजी! तरिबे की रही कछु आस नहीं ।।

1. आपके ही ।

2. बंदीजन, भाट, चारण, यशवर्णनकर्ता ।

युगलप्रिया

बुन्देलखंड की मीराँ युगलप्रिया (1871-1921 ई., जन्म ओरछा के इतिहास-प्रसिद्ध राजवंश में, विवाह भी इतिहास-प्रसिद्ध छतरपुर के राजवंश में) के भक्ति के पद अपनी तन्मयता एवं शब्दप्रवाह में प्रभावी हैं। उनकी पारम्परिक कविता उन्हें उल्लेख्य भक्त-कवयित्री सिद्ध करती है:

1. छत्र चक्र सुपदम राजत सोभा सकल धरन। दाम पव गद सक्ति कुंडल मीन सुवरन बरन।।
अस्टकीन सुवेदिका रथ प्रेम आनंद भरन। कमल पद के आसरे नित रहत राधा रमन।।
काम दुख संताप भंजन बिरह सागर तरन। कलित कोमल सुभग सीतल हरत जिय की जरन।।
जयति जय नव नागरी पद सफल भव भय हरन। जुगलप्यारी नयन निरमल होत लख लख किरन।।
2. नाथ अनाथन की सब जाने।
ठाढ़ी द्वार पुकारत है स्रवन सुनत नहिं कहा रिसाने।
की बहु खोट जानि जिय मेरी की कछु स्वारथहित अरगाने।।
दीनबंधु मंसा के दाता गुन अवगुन कैधौं मन आने।
आप एक हम पतित अनेकन यही देखि का मन समुचाने।।
झूठी अपनो नाम धरायो समझ रहे हैं हम भी सयाने।
तजो टेक मनमोहन मेरे जुगलप्रिया रस दानै।।

कन्हैयालाल¹ पोद्दार

‘काव्य-कल्पद्रुम’ (‘रसमंजरी’ और ‘अलंकार-मंजरी’ से शोभित) एवं ‘अलंकार-प्रकाश’ के विश्रुत प्रणेता, ‘गंगालहरी’, ‘हिन्दी-मेघदूत-विमर्श’ एवं भर्तृहरि कृत अजर-अमर नीतिशतकम्, वैराग्यशतकम् एवं शृंगारशतकम् के अनुवादक तथा ‘संस्कृत साहित्य का इतिहास’ के विद्वान् लेखक कन्हैयालाल पोद्दार (1871-1948 ई., जन्मस्थान रामगढ़, जनपद सीकर, राजस्थान) को आधुनिक हिन्दी-काव्यशास्त्र के मूर्द्धन्य आचार्यों पंक्ति में स्थान प्राप्त होना चाहिए। ‘काव्य-प्रभाकर’ एवं ‘छन्द-प्रभाकर’ के प्रणेता जगन्नाथप्रसाद ‘भानु’² तथा ‘काव्य-विमर्श’, ‘काव्यलोक’ इत्यादि के प्रणेता हिन्दी के मम्मट आचार्य पण्डित रामदहिन मिश्र के साथ पंक्तिबद्ध ‘काव्य-दर्पण’ कन्हैयालाल पोद्दार अपने बहुआयामी लेखन में विशिष्ट भी थे। उनकी ‘सरस्वती’ में प्रकाशित कविताएँ एवं ‘महाकवि भारवि’ निबन्ध भी प्रशस्य हैं। उनका ब्रजभाषा-कवि-रूप भी ललित है :

1. अलि पुंजन की पद गुंजन सो बन कुंजन मंजु बनाय रह्यो।
लगि अंग अनंग तरंगन सों रति रंग उमंग बढ़ाय रह्यो।।
बिकसे सर कंजन कपित कै रज रंजन लै छिरकाय रह्यो।
चलि मंद सुमंद प्रभंजन ये मकरंद दसो दिसि छाव रह्यो।।
2. नंदनंदन के स्मित आनन पास लगी रहे कान सदा भर जी।
अधरामृत को रस पान करे, ब्रजगोपिन सों न रहै बरजी।
कर जोरि कै तोहि प्रनाम करौं, मुरली! सुनु एक यही अरजी।
मुरलीधर सों मम दीन दसा कहियों फिरि है उनकी मरजी।।

-
1. कन्हैयालाल नामक एक सज्जन ने लाहौर से ‘मित्रविलास’ (1877 ई.) निकाला था, जिसने तत्कालीन पंजाब में हिन्दी-सेवा में योगदान किया था। राजस्थान के स्व. डॉ. कन्हैयालाल सहल ने ‘आलोचना के पथ पर’ जैसे प्रभावी ग्रन्थ रचे। हिन्दी-चलचित्र के इतिहास में ग्रामीण-खलनायक के रूप में अद्भुत अभिनय करने वाले स्व. कन्हैयालाल का स्मरण भी आ सकता है। गुजराती के महान् ऐतिहासिक उपन्यासकार एवं साहित्येतिहासकार (राजनीतिज्ञ, भारतीय संविधान-निर्माताओं में एक अग्रणी व्यक्तित्व, मन्त्री, राज्यपाल इत्यादि भी—भारतीय विद्या भवन मुम्बई के संस्थापक भी) कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (गुजरात एवं बंगाल में ‘मुंशी’ ब्राह्मण होते हैं—ये बहुत कम हैं) भी समकालीन थे। कन्हैयासिंह ‘सरोज’ डलमऊ (रायबरेली) के एक कवि हैं।
 2. ‘विचित्र विवरण’, ‘निरंकुशता-निदर्शन’ इत्यादि के लेखक हास्यसावतार जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी से स्पष्टतः भिन्न। स्व. जगन्नाथप्रसाद ‘मिलिंद’ एवं स्व. डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा भी समनामी हैं।

रामप्रतापसिंह

‘राम-विलास’ एवं ‘मोहन-विनोद’ के पारम्परिक ब्रजभाषा कवि रामप्रताप सिंह (1879 ई.) को 1899 ई. में सीतामऊ राज्य का राजा बनाया गया तथा वे योग्य शासक सिद्ध हुए। विद्याव्यसनी राजा संस्कृत के कवि भी थे। विज्ञान में रुचि के कारण ‘वायु-विज्ञान’ (1906 ई.) ग्रन्थ भी रचा। कविता से दो छन्द प्रस्तुत हैं :

1. त्रय बाँधव संग जितें तितहीं शिशु रूपहि धारि फिर्यो करिए।
रजधानि सबै नरनारिन के नित लोचनलाभ सर्यो करिए।।
चित चोरत तोतरि तें बातन में पितु-मातु प्रमोद भर्यो करिए।
रघुनाथ सदा यह साज सजें मम नेत्र पवित्र कर्यो करिए।।
2. मीन कंज खंजन के भए मद भंग सबै, मोहन निहारे नेक नैनन लुनाई को।
पूरन सरद चंद छीन छबि होत बेगि। पेखि जाके आनन की सोभा सुधराई को।।
चाप चारु बिंबाफल देखि के लजात हिय, भौंह की बँकाई अरु अधर-ललाई को।
रसिक सुजान कान्ह रीझें क्यों न ऐसी लखि, राधा गुन खान की स्वरूप अधिकाई को।।

कवि लाल

‘कवि लाल और उनका काव्य’ का संपादन एवं प्रकाशन कर कविवर डॉ. त्रिभुवननाथ शर्मा ‘मधु’ ने प्रशस्य कार्य किया है, यद्यपि इस कार्य के प्रेरक श्री कमलाकान्त राय हैं, जिन्हें भदोही (वाराणसी)—निवासी श्री राजाराम गुप्त से ‘हनुमान-पैज’ एवं ‘अंगद-पैज’ की पांडुलिपियाँ (जो अहरौरा बाज़ार, मीरजापुर के निवासी स्व. हनुमानप्रसाद हलवाई ने 1897 ई. या 1954 वि. में कैथी लिपि में लिखी थीं) प्राप्त हुई थीं। कवि लाल के पुत्र नन्दराम ने ‘देवी-अष्टक’ लिखा था जो इस ग्रन्थ में संकलित है, किन्तु ‘जानकी-समर’ (जिसमें ‘कवि राम’ की छाप स्थान-स्थान पर प्राप्त होती है) का संकलन मुझे विवादास्पद लगता है। ‘नन्दराम’ ने कवि राम क्यों लिखा? ‘जानकी-समर’ की छन्दोयोजना एवं भाषा भी ‘देवी-अष्टक’ से भिन्नता की सूचना देती है। श्री हलवाई ने ही ‘जानकी-समर’ की प्रति तैयार की थी किन्तु इससे रचनाकार का प्रामाणिक होना सिद्ध नहीं होता। श्री राय की भी रचना नन्दराम की ‘प्रतीत’ ही हुई है। विद्वत्तापूर्ण भूमिका में डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने नन्दराम, ‘दुर्गा-अष्टक’ एवं ‘जानकी-समर’ की चर्चा नहीं की। स्पष्टतः ‘नन्दराम’ एवं ‘कवि राम’ दो कवि हैं। डॉ. किशोरीलाल गुप्त के अनुसार, “लाल कवि² गाँव रामरायपुर तहसील ज्ञानपुर, ज़िला वाराणसी के ब्रह्मभट्ट थे।...यह सं. 1940 वि.³ के पूर्व के ही हैं, बाद के नहीं।” कवि लाल वीररस के अच्छे कवि हैं। उनके पुत्र नन्दराम साधारण कवि लगते हैं। ‘कवि राम’ का ‘जानकी-समर’ कथानक-वैशिष्ट्य के बावजूद काव्यकला की दृष्टि से साधारण ही है। मेरी दृष्टि में, ‘कवि लाल और उनका काव्य’ में ‘कवि लाल’, नन्दराम एवं ‘कवि राम’ नामक तीन कवियों तथा हनुमान-पैज एवं अंगद-पैज (कवि लाल), ‘देवी-अष्टक’ (नन्दराम) एवं ‘जानकी-समर’ (कवि राम) शीर्षक चार कृतियों को उजागर करके डॉ. त्रिभुवननाथ शर्मा ‘मधु’, श्री कमलाकान्त राय एवं श्री राजाराम गुप्त ने हिन्दी की प्रशस्य सेवा की है। इस ग्रन्थ की विद्वत्तापूर्ण भूमिका में शोध के प्रख्यात आचार्य डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने पाँच प्रमुख एवं सात अन्य (कुल बारह—पौबारह!) लालों का अपूर्व कोष प्रस्तुत किया है। जिनकी चर्चा मैं अपने ढंग से करूँगा, क्योंकि मैं ‘साहित्य’ का इतिहास लिख रहा हूँ (डॉ. दीनदयालु गुप्त, डॉ. माताप्रसाद गुप्त एवं डॉ. किशोरीलाल गुप्त की महान् शोधत्रयी पर हिन्दी गर्व कर सकती है। इन गुप्तों ने प्रचुर गुप्त-धन विवृत कर साहित्य को सम्पन्न बनाया है): 1. छत्रप्रकाश (वीरकाव्य) एवं विष्णुविलास (नायिकाभेद-काव्य) के प्रणेता गोरेलाल पुरोहित ‘लाल’ (1658-1707 ई.) जो लालों में ‘लाल’ हैं। 2. श्रीकृष्ण भट्ट

1. ‘जानकी-समर’ में राम के आहत होने पर सीता काली-रूप (शक्ति-रूप) में रावण को परास्त करती हैं। कवि राम शाक्त हैं। निराला की ‘राम की शक्ति पूजा’ का स्मरण आता है।
2. इस सन्दर्भ में ‘कवि लाल’ ठीक होगा, क्योंकि कवि इस छाप का प्रयोग करता है। ‘लाल कवि’ अमर ‘छत्रप्रकाश’ के प्रणेता कविवर गोरेलाल पुरोहित के लिए प्रसिद्ध हैं।
3. 1883 ई.।

कवि-कलानिधि 'लाल' (1672-1752 ई.) जिन्होंने 'अलंकार कलानिधि', 'शृंगाररस-माधुरी', 'नखशिख', 'वृत्तचन्द्रिका' इत्यादि ग्रन्थ रचे। 3. 'लाल' बन्दीजन बनारसी (1770-1795 ई.) जो कवि गुलाब के पिता, गणेश कवि के पितामह एवं वंशीधर के प्रपितामह थे, जिन्होंने विहारी-सतसई की 'लाल-चन्द्रिका' टीका लिखी ('जो शिवसिंह सेंगर के वंशजों के पास अब भी है और लल्लू जी 'लाल' की लाल-चन्द्रिका टीका से भिन्न है')। 4. लाल विहारी 'लाल' जो महाकवि मतिराम के पनाती थे, जिन्होंने चरखारी-नरेश विजय विक्रमाजीत (1772-1829 ई.) कृत 'विक्रम-सतसई' की टीका (1815 ई.) लिखी है। 5. लल्लू जी 'लाल' (1763-1824 ई.) जो प्रेमसागर के कारण गद्याचार्य माने जाते हैं। इन पाँच 'प्रसिद्ध लाल कवियों' के अतिरिक्त सात अन्य लाल कवि भी हैं। 6. लाल कवि, नेवाजीलाल दीक्षित, जिन्होंने किन्हीं राजा विक्रमसाहि पर नामित 'विक्रमविलास' (1583 ई.) नायिकाभेद-ग्रन्थ रचा। 7. लाल कवि (जैन) जो शाहजहाँपुर-निवासी थे तथा इनका नाम लालचन्द विनोदी था, इनका समय अठारहवीं शती (वि.) था तथा इन्होंने 'जयमाल' लिखा था। 8. लाल कवि (1831 ई. में विद्यमान) जिन्होंने 'ककहरा' एवं 'दुकूल चितावनी' रची। 9. लाल कवि (1855 ई. से पूर्व) जिन्होंने 'भारत-सार' लिखा। 10. लाल कवि जिन्होंने दोहों में 'चाणक्य-नीति' अनूदित की। 11. लाल कवि जिन्होंने 'मानवत्तीसी' लिखी है और 12. यह लाल कवि (वस्तुतः 'कवि लाल') जिन्होंने 'हनुमान-पैज' 'अंगद-पैज' की रचना की। कवि लाल के अनेक कवित्त एवं छप्पय, यत्र-तत्र न्यूनपदत्व के बावजूद, उत्कृष्ट कोटि के हैं। यह वीररस के कवि हैं जिन पर तुलसीदास, केशवदास एवं भूषण जैसे महाकवियों का प्रभाव स्पष्टतः दृग्गत होता है :

1. समर भूधराकार कीस रविमंडल मंड्यो।
समर भयंकर वीर धीर गंभीर गरंज्यो॥
धर्यो परम लघु रूप मातु चरनन चित दीन्हों।
मन महुँ भयो भरोस जानकी आसिस दीन्हों॥
फल देखि भूख कवि लाल भनि लगी चित्त अनुराग में।
भै रजाइ सिर नाइ कपि चल्थो भूप बर बाग में॥
(हनुमान-पैज)

2. भयो धुधकाले हाले सुभट बेहाले, हाले कंचन किंवाड़े, लखे ठाढ़े जिमि काल है।
जाहि को बिलोकै सुधि जाइ सो समो कै, कोऊ मारगै न रोकै ओक-ओकै धुनि भाल है॥
एहो कवि लाल सोइ कीस, एक बार आयो, सहर जरायो, बीर अछै को सँघाल है।
आयौ तौन मालै, करैगो पुर कालै, न बजाओ सबै गालै गयो जहाँ दसभाल है॥
3. अंगद! उदंड भुजदंड हैं प्रचंड मेरे, कीन खंड-खंड राम-जानकी अखंडना।
डंडों सब दंड-दंड डंडन अखंड दंड, जाकी दही, हम कीनी दो बार भंडना॥
मेरी प्रबल धारि^१, भागे सब हारि काल, कोऊ डंड कवि लाल डंड डंडना।
तापस आदंड दंडो-दंडौ सब दंडिन, कौन ताको दंड दंडिबो को लायो हरि अंगना॥
(अंगद-पैज)

1. दग्ध।

2. सेना।

आदर्शवादी (1900-20 ई.)

494

कविता	निबन्ध	आलोचना	कहानी	उपन्यास	नाटक	विविध
ब्रज	खड़ीबोली					
श्रीधर पाठक	आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी	आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी	माधवप्रसाद मिश्र	देवकीनन्दन खत्री	गंगाप्रसाद गुप्त	कोश
श्रीधर पाठक	बालमुकुन्द गुप्त	मिश्रबन्धु	माधवराव सप्रे	गोपालराम गहमरी	वृन्दावनलाल वर्मा	व्याकरण
नाथूराम शर्मा 'शंकर'	माधवप्रसाद मिश्र	कृष्णविहारी मिश्र	भगवानदीन वी. ए.	किशोरीलाल गोस्वामी	बदरीनाथ भट्ट	जीवनी
राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'	पूर्णसिंह	भगवानदीन 'दीन'	किशोरीलाल गोस्वामी	गंगाप्रसाद गुप्त	कृष्णानन्द जोशी	यात्रावृत्त
हरिलौघ	आ. रामचन्द्र शुक्ल	आ. पद्मसिंह शर्मा	वंगमहिला	जयरामदास गुप्त	मिश्रबन्धु	संस्मरण
रत्नाकर	आ. श्यामसुन्दरदास	आ. रामचन्द्र शुक्ल	आ. रामचन्द्र शुक्ल	मधुराप्रसाद शर्मा	आगा हथ कश्मीरी	साक्षात्कार
रामनाथ ज्योतिषी (जोतिषी)	आ. पद्मसिंह शर्मा	आ. रामचन्द्र शुक्ल	गुलेरी	लज्जाराम शर्मा	तुलसीदास 'शैदा'	आत्मकथा
सत्यनारायण	गोविन्दनारायण मिश्र	आ. श्यामसुन्दरदास	प्रेमचन्द	हरिसौध	नारायणप्रसाद 'देताव'	डायरी
कविरत्न	ओझा	इत्यादि ।	कोशिक	राधिकास्मरण	राधेश्याम कथावाचक	इत्यादि
इत्यादि ।	लक्ष्मण नारायण गद्दे		सुदर्शन	प्रसाद सिंह	इत्यादि ।	साहित्यिक
	पाण्डेय रामावतार शर्मा		इत्यादि	प्रेमचन्द		एवं मानविकी
	गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी			कौशिक		वैज्ञानिकी
	इत्यादि ।			इत्यादि ।		इत्यादि पर
						लेखों, ग्रन्थों की
						निर्णायक रचना ।

ब्रजभाषा कविता की विशुद्ध पारम्परिक एवं नूतन देशप्रेमपरक, प्रकृतिपरक, सुधारपरक तथा अन्तर्व्यथापरक सृष्टि । खड़ीबोली-कविता का वास्तविक एवं अनवरत श्रीगणेश तथा महाकाव्य, खण्डकाव्य, स्वच्छन्दकाव्य, मुक्तककाव्य, गीतिकाव्य इत्यादि का अभूतपूर्व सुजन । गद्य की विभिन्न विधाओं तथा ज्ञान-विज्ञान-परक विषयों में चिरप्रभावी लेखन । समग्र प्रातिभ एवं ज्ञानपरक ग्रन्थों में त्याग, बलिदान, जनसेवा, लोकमंगल, दलितोत्थान, समाज-सुधार इत्यादि के प्रेरक आदर्शों की प्रतिष्ठा का एक लक्ष्य । अनुशासित, शुद्ध, व्याकरणसम्मत भाषा । संसार-साहित्य के इतिहास का एक अद्वितीय युग ।



डॉ. रामप्रसाद मिश्र

विशिष्ट कृतियाँ

- कविता** : 1. दृष्टि (बाईस-सर्गीय मानववादी महाकाव्य)
2. नेताचरित्रम् (नौ-सर्गीय प्रथम व्यंग्य-काव्य)
3. स्वर्गता (सात-सर्गीय शोककाव्य)
4. सार्वभौम (विशाल कवितासंग्रह)
5. पुरुषोत्तम (अड़तीस-सर्गीय महाकाव्य)
6. कल्पान्त (पंद्रह-सर्गीय महाभारतपरक महाकाव्य)
7. वेदायन (बारह-सर्गीय काव्य)
8. मोहम्मद (सात-सर्गीय ऐतिहासिक काव्य)

- आलोचना** : 1. विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य
2. तुलसी-साहित्य के सर्वोत्तम अंश
3. प्रसाद : आलोचनात्मक सर्वेक्षण
4. हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास
5. आलोचना-सागर
6. दोसौअस्सी साहित्यकार
7. हिंदी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास

- उपन्यास** : 1. जागता गाँव (आंचलिक)
2. मसीहा (ऐतिहासिक : ईसा पर)
3. पिटा हुआ मोहरा (सामाजिक)

- निबंध संग्रह** : 1. विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य
2. आधुनिक साहित्य के विविध पक्ष
3. भारत की एकता
4. दिल्लीनामा

- हास्यव्यंग्य** : 1. मौख्यशास्त्र (ईडिऑटिक्स)
2. मच्छर-सभा : अध्यक्षीय भाषण
3. मौख्य और साहित्य
4. हास्यसागर

- अंग्रेजी** : 1. हिंदूधर्म : फेथ ऑफ़ फ्रीडम
2. ऑउटलाइंस ऑफ़ हिंदी लिटरेचर

प्रस्तुत ग्रंथ वस्तुतः हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास है जो लगभग पचास वर्षों के अध्ययन अनुशीलन, सुदीर्घ सुनियोजन एवं इतिहास, दर्शन, धर्म, राजनीति इत्यादि से समन्वित हिंदी की बारह सौ वर्ष की साहित्य-यात्रा का इतिहास प्रस्तुत करता है। इसे 'इतिहासों' की बाढ़ व्यर्थता प्रमाणित कर देता है क्योंकि अब भी मिश्रबंधु कृत 'विनोद' तथा 'तुलसी सामग्री' का प्रशंस्य एवं प्रातिभ प्रयोग करने वाले रामचंद्र शुक्ल कृत 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' ही श्रेष्ठ ग्रंथ है। 'विनोद' आधुनिकता को परितुष्ट नहीं कर पाया था। शुक्ल जी ने पाठ्यक्रम-त्तरा की सीमा का संकेत किया था। डॉ. नगेंद्र ने अभाव की सूचना दी थी। यह ग्रंथ इन सारे बिंदुओं को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसकी अपूर्व विशेषताएं हैं:

हिंदी की विश्वभाषा एवं राष्ट्रभाषा रूपों में प्रस्तुति।

अंगी-हिंदी के विभाषा-रूपी अंगों (खड़ीबोली, अवधी, ब्रज राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली, अंगिका, बघेली, बुंदेली, कुमाउँनी इत्यादि) के साथ न्याय।

तंत्रगवादी और विजातीयतावादी दृष्टिकोणों से मुक्त वस्तुवादी दृष्टि।

प्रचार, पुरस्कार, राजनीति इत्यादि से पृथक् प्रतिभा का वास्तविक आकलन।

इतिहास के सत्यो की निस्संग विवृति।

बारहसौ वर्षों की कविता का एकमात्र स्वर्णकोष।

उत्कृष्ट गद्य-उदाहरण।

आलोचना का विश्वकोश क्योंकि विशिष्ट स्रष्टाओं पर व्यापक प्रकाश डाला गया है तथा लगभग सात सौ साहित्यकारों का बेलाग आकलन किया गया है। संदर्भगत सहस्रों साहित्यकारों के उल्लेख किए गए हैं।

विभिन्न विधाओं पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है।

नमन प्रकाशन

4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
दूरभाष : 23247003, 23254306

ISBN 81-8129-151-4



दो खण्डों का
मूल्य 2200/-